Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

# कल्याण

## संक्षिप्त

# वाल्मीकीय रामायणाङ्क

[ अठारहवें वर्षका विशेषाङ्क ]

कल्याण-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5 JAN 1963

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कल्याण

संक्षिप्त

अङ्क १

# वाल्मीकीयरामायणाङ्क

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय ।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव जय शंकर ।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । गौरीशंकर सीताराम ॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥

## कोई सज्जन विज्ञापन भेजनेका कष्ट न उठावें ।

कल्याणमें बाहरके विज्ञापन नहीं छपते ।

## समालोचनार्थ पुस्तकें कृपया न भेजें ।

कल्याणमें समालोचनाका स्तम्भ नहीं है ।

इस अङ्कका मूल्य ५≡) सजिल्दका ६≡)

वार्षिक मूल्य भारतमें ७॥)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

वार्षिक मूल्य विदेशमें १०) (१५ शिलिंग)

Edited by Hanumanprasad Poddar and C. L. Goswami, M. A., Shastri.
Printed and Published by Ghanshyamdas Jalan at the Gita Press, Gorakhpur, U. P. (India)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८२५

श्रीहरिः

# प्रेमी ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

१—संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायणाङ्कके दो संस्करण ५५६०० प्रतियोंके सं० २००० में छपे थे जो शीघ्र समाप्त हो गये। उसी समयसे इसके लिये लोगोंका बड़ा आग्रह था कि इसका एक संस्करण और छापा जाय; परंतु अनेक कारणोंसे यह कार्य अबतक पूरा न हो सका। अब यह ५००० प्रतियोंका नया संस्करण छापा गया है जो पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है।

२—इस अङ्कमें वाल्मीकीय रामायण सातों काण्डोंका संक्षिप्त अनुवाद तथा कतिपय विद्वानोंके रामायण-सम्बन्धी लेख दिये जा रहे हैं। इस विशेषाङ्कमें भी पहिलेकी तरह ही ५३६ पृष्ठ, १३७ सादे लाइन चित्र और १४ रंगीन चित्र पूरे-के-पूरे दिये गये हैं। इनके सिवा ११ इकरंगे हाफटोन चित्र भी लगाये गये हैं।

३—कागज, स्याही आदिका मूल्य पहलेसे बहुत बढ़ा हुआ होनेपर भी इस अङ्कका मूल्य पहलेवाला ही अर्थात् ५॥) ही रक्खा गया है। विदेशके लिये ११½ शिलिंग है।

४—सजिल्द अङ्क मँगानेवाले भारतके लिये १) और विदेशके लिये २ शिलिंग अधिक जोड़कर भेजनेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

वा० रा० अं० क—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५६७८

# 'कल्याण'के प्राप्य विशेषाङ्क

१३ वें वर्षका मानसाङ्क ( पूरे चित्रोंसहित )—पृष्ठ ९४४, चित्र बहुरंगे सुनहरी ८, दुरंगे सुनहरी ४, तिरंगे ४६, इकरंगे १२०, मूल्य ६॥), सजिल्द ७॥) ।

१७ वें वर्षका संक्षिप्त महाभारताङ्क—पूरी फाइल दो जिल्दोंमें ( सजिल्द )—पृष्ठ-संख्या १९१८, तिरंगे चित्र १२, इकरंगे लाइन चित्र ९७५ ( फरमोंमें ), मूल्य दोनों जिल्दोंका १०) ।

२२ वें वर्षका नारी-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ८००, चित्र २ सुनहरी, ९ रंगीन, ४४ इकरंगे तथा १९८ लाइन, मूल्य ६≡), सजिल्द ७।≡) मात्र ।

२४ वें वर्षका हिंदू-संस्कृति-अङ्क—पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, मूल्य ६॥), साथमें अङ्क २-३ बिना मूल्य, ५ प्रतियाँ एक साथ लेनेपर १५) प्रतिशत कमीशन।

२६ वें वर्षका भक्त-चरिताङ्क—पूरी फाइल, पृष्ठ १५१२, लेख-संख्या ७३९, तिरंगे चित्र ३६ तथा इकरंगे चित्र २०१, मूल्य ७॥) मात्र ।

२७ वें वर्षका बालक-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ८१६, तिरंगे तथा सादे बहुसंख्यक चित्र, मूल्य ७॥) ।

२८ वें वर्षका संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क—पूरी फाइल, पृष्ठ-संख्या १५२४, चित्र तिरंगे ३१, इकरंगे लाइन १९१ ( फरमोंमें ), मूल्य ७॥), सजिल्दका ८॥।) ।

२९ वें वर्षका संत-वाणी-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ८००, चित्र सुनहरे ४, बहुरंगे १६, दुरंगे २२, सादे ४२, कुल ८४ तथा संतोंके चित्र १४० ( फरमोंमें ) मूल्य ७॥), सजिल्दका ८॥।), सन् १९५५ के ग्राहकोंको वार्षिक मूल्य ७॥) में ही ग्यारह अङ्कोंसहित यह विशेषाङ्क मिलेगा ।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

# THE KALYANA-KALPATARU

## SPECIAL NUMBERS

| | | |
|---|---|---|
| Vol. XII Special Issue, The Gita-Tattva Number—I ( It contains 6 chapters from 1 to 6 ) | ... | Rs. 2-8-0 |
| Vol. XIII Special Issue, The Gita-Tattva Number—II ( It contains 6 chapters from 7 to 12 ) | ... | Rs. 2-8-0 |
| Vol. XIV Special Issue, The Gita-Tattva Number—III ( It contains 6 chapters from 13 to 18 ) | ... | Rs. 2-8-0 |
| Vol. XV Special Issue, The Mānasa Number—I ( It contains the Bālakāṇḍa ) | ... | Rs. 2-8-0 |
| Vol. XVI Special Issue, The Mānasa Number—II ( It contains the Ayodhyā, Araṇya and Kiṣkindhā Kaṇḍas ) | ... | Rs. 2-8-0 |
| Vol. XVII Special Issue, The Mānasa Number—III ( It contains the Sundara, Lankā and Uttara Kāṇḍas ) | ... | Rs. 2-8-0 |

Note:—The Gītā-Tattva Numbers contain an exhaustive commentary on the *Gītā*. The Mānasa Numbers contain an English translation of Śrī *Rāmacharitamānasa* by Goswami Tulasidas.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

# लेख-सहित संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायणके भावानुवादकी विषय-सूची


पृष्ठ-संख्या

१—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी वेद-मूलकता ( श्रीमन्मध्व-सम्प्रदायाचार्य, दार्शनिक-सार्वभौम, साहित्य-दर्शनाद्याचार्य, तर्करत्न, न्यायरत्न गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री ) ... ... ३

२—सरल पथ ( न्याय-वेदान्ताचार्य स्वामी श्रीरामपदार्थ-दासजी महाराज ) ... ... ४

३—रामायणकी मर्म-वाणी ( श्रीयुत अक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय एम्० ए० ) ... ... ६

४—रामावतार और कृष्णावतारके कार्य-क्रममें विभिन्नताएँ ( स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी चक्रवर्ती ) ११

५—आदिकवि वाल्मीकि ( पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम्० ए०, साहित्याचार्य ) ... ... १२

६—हमारी निधि ( साहित्यरञ्जन पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी ) ... ... १६

७—साहित्यमें श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणकी विशेषता (देवर्षि-भट्ट पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, साहित्याचार्य, साहित्य-वारिधि, कविरत्न ) ... ... १८

८—वाल्मीकीय रामायण ( श्रीताराचन्द्रजी पाण्ड्या ) २३

९—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके कुछ महान् आदर्श ( गोस्वामी श्रीछबीलेवल्लभजी ) ... २५

१०—रामायण-कालीन संस्कृति ( श्रीशान्तिकुमार नानूराम व्यास, बी० ए० ) ... ... २८

११—संक्षिप्त रामायण ( संग्राहक—स्वामी श्रीप्रेमपुरीजी) ३१

१२—वाल्मीकि-रामायणकी अद्वितीयता ( पं० श्रीराम-निवासजी शर्मा ) ... ... ३२

१३—वाल्मीकिके राम ( साहित्यरत्न पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री ) ... ३४

१४—वाल्मीकीय रामायणपर एक दृष्टि ( पाण्डेय श्री-रामनारायणदत्तजी शास्त्री ) ... ३५

१५—वाल्मीकीय रामायणका संक्षिप्त माहात्म्य ... ४१

## १६—संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण

### बालकाण्ड

१—नारदजीका वाल्मीकि मुनिको संक्षेपसे रामचरित सुनाना ... ... ... ४३

२—रामायण काव्यका उपक्रम ... ... ४६

पृष्ठ-संख्या

३—भगवान् रामके दरबारमें कुश और लवद्वारा रामायण-गानका आरम्भ ... ... ४८

४—अयोध्याके राजा दशरथ और सुयोग्य मन्त्रियों-का वर्णन ... ... ... ५०

५—राजा दशरथका पुत्रके लिये यज्ञ करनेका निश्चय और ऋष्यशृङ्ग मुनिकी कथा ... ५१

६—दशरथके पुत्रेष्टि यज्ञका आरम्भ और भगवान् विष्णुका रावण-वधके लिये अवतार लेनेका निश्चय ... ... ... ५४

७—दिव्य खीरके भक्षणसे कौसल्या आदि रानियोंका गर्भधारण तथा देवता आदिके द्वारा वानर और भालुओंकी उत्पत्ति ... ... ५५

८—राम आदि चारों भाइयोंके जन्म, गुण तथा पारस्परिक प्रेमका वर्णन ... ... ५६

९—विश्वामित्रजीका आगमन तथा उनका राम और लक्ष्मणको लेकर तपोवनके लिये प्रस्थान ... ५७

१०—रामके द्वारा ताटकाका वध ... ... ६०

११—विश्वामित्रजीका रामको दिव्यास्त्रदान, यज्ञका आरम्भ तथा रामके द्वारा सुबाहु आदि राक्षसों-का वध ... ... ... ६२

१२—श्रीराम-लक्ष्मणकी मिथिला-यात्रा तथा मार्गमें विश्वामित्रजीका गङ्गावतरणकी कथा सुनाना ... ६४

१३—अहल्याका उद्धार ... ... ६९

१४—मिथिलामें जनकके द्वारा विश्वामित्र आदिका सत्कार, शतानन्दका रामसे विश्वामित्रके पूर्व-चरित्रका वर्णन—विश्वामित्रका वसिष्ठसे पराभव ७०

१५—विश्वामित्रजीके प्रभावसे त्रिशङ्कुका सदेह स्वर्ग-गमन ... ... ... ७४

१६—विश्वामित्रजीकी घोर तपस्या और ब्राह्मणत्व-प्राप्ति ७६

१७—धनुर्भङ्ग ... ... ... ७९

१८—दशरथका मिथिलामें आना, इक्ष्वाकु और निमिवंशका परिचय तथा चारों राजकुमारोंके विवाहका निश्चय ... ... ... ८१

१९—चारों भाइयोंका विवाह, परशुरामका बल-हरण तथा दशरथका पुत्रों और वधुओंके साथ अयोध्यामें प्रवेश ... ... ८४


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पृष्ठ-संख्या

## अयोध्याकाण्ड


२०—रामके गुणोंका वर्णन, राजा दशरथका रामको युवराज बनानेका विचार तथा प्रजाजनोंके द्वारा उसका समर्थन ... ... ... ८९

२१—रामके राज्याभिषेककी तैयारी ... ९१

२२—कुब्जाके कुचक्रसे कैकेयीका कोपभवनमें प्रवेश ९४

२३—कैकेयीका रामको वनमें भेजनेके लिये वर माँगना और राजा दशरथका शोक करना ... ९७

२४—सुमन्त्रका रामको बुलाना, राम-कैकेयी-संवाद और रामके द्वारा वनवासकी स्वीकृति ... १०१

२५—कौसल्याका विषाद, लक्ष्मणका अमर्ष और रामका उन दोनोंको समझाकर वनमें जानेका निश्चय ... १०६

२६—लक्ष्मणकी ओजभरी बातें, रामका शोकग्रस्त कौसल्याको समझाना तथा कौसल्याद्वारा रामका स्वस्त्ययन ... ... ... ... ११०

२७—राम और सीताका संवाद तथा सीताके वनगमनका निश्चय ... ... ... ११२

२८—श्रीराम-लक्ष्मण-संवाद, लक्ष्मणके वनगमनका निश्चय और श्रीरामका धन बाँटना ... ११६

२९—प्रजाका शोक तथा लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामका दशरथसे वन जानेकी आज्ञा लेना ... ११८

३०—सुमन्त्रका कैकेयीको फटकारना, सिद्धार्थका समझाना, कैकेयीका श्रीराम आदिको वल्कल देना और वसिष्ठ एवं दशरथका सीताके वल्कल धारणपर आपत्ति करना ... ... १२०

३१—श्रीरामका पिता-मातासे मिलकर वनको प्रस्थान और सबका शोक करना ... ... १२३

३२—दशरथ और कौसल्याका शोक, सुमित्राका समझाना तथा पुरवासी ब्राह्मणोंका वनके मार्गमें रामसे लौटनेकी प्रार्थना करना ... १२६

३३—श्रीरामका पुरवासियोंको तमसाके तटपर सोते छोड़कर जाना, उनका निराश होकर लौटना और उनकी स्त्रियोंका शोक करना ... १२८

३४—श्रीरामका शृङ्गवेरपुरमें रात बिताना, सुमन्त्रको संदेश देकर लौटाना और गङ्गा पार होकर पैदल ही वनकी यात्रा करना ... १३०

३५—श्रीराम आदिका भरद्वाजके आश्रमपर निवास तथा यमुनाके पार होकर श्यामवट आदिका दर्शन करते हुए चित्रकूट पहुँचना ... १३५

३६—सुमन्त्रका अयोध्यामें लौटना और पुरवासी मनुष्यों, राजा दशरथ तथा कौसल्याका शोकाकुल होना ... ... १३८

३७—मुनिकुमारके वधका प्रसङ्ग सुनाकर राजा दशरथका प्राण त्यागना और कौसल्या आदिका शोक ... ... ... १४०

३८—भरतका अपने मामाके यहाँसे अयोध्यामें आना १४४

३९—कैकेयीके मुँहसे उसकी करतूत सुनकर भरतका उसे धिक्कारना ... ... १४६

४०—भरतका कौसल्याके आगे शपथ खाना, दशरथका दाह-कर्म और श्राद्ध करना तथा शत्रुघ्नका मन्थराको दण्ड देना ... ... १४९

४१—भरतकी वनमें श्रीरामसे मिलनेके लिये जानेकी तैयारी ... ... ... १५२

४२—भरतकी वन-यात्रा और शृङ्गवेरपुरमें रात्रि-वास ... ... ... १५४

४३—भरतका सेनासहित गङ्गा पार करके भरद्वाजके आश्रमपर जाना और मुनिका आतिथ्य ग्रहण करके वहाँसे प्रस्थित होना ... ... १५७

४४—श्रीरामका सीतासे चित्रकूट और मन्दाकिनीकी शोभाका वर्णन, भरतके प्रति लक्ष्मणका रोष, रामका उन्हें समझाना तथा भरतको रामके आश्रमका दर्शन ... ... १६०

४५—भरत और शत्रुघ्नकी श्रीरामसे भेंट ... १६३

४६—श्रीरामका भरतको कुशल-प्रश्नके बहाने राजनीतिका उपदेश ... ... १६४

४७—भरत-राम-संवाद तथा श्रीराम आदिका पिताके लिये जलदान एवं पिण्डदान ... १६७

४८—वसिष्ठजीके साथ माताओंका आगमन तथा श्रीराम-भरत-संवाद ... ... १६८

४९—जाबालि और भगवान् श्रीरामका संवाद ... १७१

५०—भरतका धरना देनेको तैयार होना और श्रीरामका उन्हें पादुका देकर विदा करना ... १७२

५१—भरतका भरद्वाजजीसे मिलते हुए अयोध्यामें जाना और नन्दिग्राममें निवास करना ... १७४

५२—श्रीराम आदिका अत्रि मुनिके आश्रमपर होते हुए दुर्गम वनमें प्रवेश तथा अनसूयाद्वारा सीताका सत्कार ... ... १७६


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

महिला मंडल पुस्तकालय
काशी।
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पृष्ठ-संख्या

## अरण्यकाण्ड


५३–विराधका वध ... ... १७९
५४–श्रीराम आदिका शरभङ्गके आश्रमपर जाना, शरभङ्गका ब्रह्मलोक-गमन तथा अन्य महर्षियों-का राक्षसोंके वधके लिये श्रीरामसे प्रार्थना करना १८१
५५–सुतीक्ष्णद्वारा श्रीराम आदिका सत्कार तथा राक्षसोंको मारनेके विषयमें सीता और श्रीरामचन्द्रजीका संवाद ... ... १८३
५६–श्रीरामचन्द्रजीका अगस्त्यके भाई और अगस्त्य-मुनिके आश्रमपर जाना और वहाँ सत्कार ग्रहण करके पञ्चवटीके लिये प्रस्थान करना ... १८५
५७–भगवान् श्रीराम आदिका पञ्चवटीमें निवास और शूर्पणखाका अङ्ग-भङ्ग ... ... १८८
५८–श्रीरामके द्वारा चौदह राक्षसोंका वध, खर और दूषणका आक्रमण तथा श्रीरामका उनसे युद्ध करनेके लिये तैयार होना ... १९१
५९–श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा दूषणसहित चौदह हजार राक्षसोंका वध ... ... १९४
६०–त्रिशिरा और खरका वध ... ... १९६
६१–रावणका अकम्पनकी सलाहसे सीताका हरण करनेके लिये जाना और मारीचके कहनेसे लङ्काको लौट आना ... ... १९८
६२–शूर्पणखाके उत्तेजित करनेपर रावणका पुनः मारीचके पास जाना और उससे सहायता माँगना ... ... ... १९९
६३–मारीचका रावणको समझाना ... ... २०२
६४–रावणका मारीचको मृत्युकी धमकी देना, मारीचका कपटमृगके वेषमें सीताको लुभाना और श्रीरामका उसे मारनेके लिये जाना ... २०४
६५–मारीचका वध और सीताकी प्रेरणासे लक्ष्मणका श्रीरामके पास जाना ... ... २०६
६६–रावण-सीता-संवाद और सीता-हरण ... २०८
६७–रावणके द्वारा जटायुका वध और सीताका तिरस्कारपूर्वक अपहरण ... ... २११
६८–रावणका सीताको लङ्कामें ले जाकर काबूमें करनेकी चेष्टा करना और सीताका उसे फटकारना ... ... ... २१४
६९–श्रीरामका लौटना, मार्गमें लक्ष्मणसे उनकी भेंट होना तथा आश्रममें सीताको न देखकर उनका विलाप करना ... ... २१७
७०–सीताकी खोज, श्रीरामचन्द्रजीका विलाप तथा मृगोंके संकेतसे श्रीराम और लक्ष्मणका दक्षिण दिशामें जाकर युद्धके चिह्न देखना ... २२०
७१–लक्ष्मणका श्रीरामको ढाढ़स देना, जटायुका प्राण-त्याग और श्रीरामद्वारा उनका दाह-संस्कार २२२
७२–कबन्धका उद्धार तथा उसका श्रीरामचन्द्रजीको सुग्रीवसे मैत्री करनेका परामर्श देते हुए उनके पास जानेका मार्ग बताना ... ... २२४
७३–श्रीराम और लक्ष्मणका शबरीके आश्रम एवं पम्पातटपर जाना और शबरीका परलोकगमन २२८


## किष्किन्धाकाण्ड


७४–श्रीराम और लक्ष्मणका पम्पा-सरोवर होते हुए ऋष्यमूककी ओर जाना और सुग्रीवका उनके पास हनुमान्‌जीको भेजना ... ... २३१
७५–हनुमान्‌जीका श्रीराम-लक्ष्मणसे वार्तालाप और उन्हें लेकर ऋष्यमूक-पर्वतपर आना ... २३३
७६–श्रीराम और सुग्रीवकी मैत्री, सुग्रीवका सीताके आभूषण दिखाना और शोकग्रस्त श्रीरामको सान्त्वना देना ... ... २३५
७७–सुग्रीवका अपनी दुर्दशा तथा वालीसे वैर बँधने-का कारण बताना और श्रीरामका उन्हें आश्वासन देना ... ... ... २३६
७८–दुन्दुभिके वध और मतङ्ग मुनिके शापका वृत्तान्त, श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमका प्रदर्शन तथा वाली-सुग्रीवके युद्धमें सुग्रीवकी पराजय ... २३९
७९–ताराके मना करनेपर भी वालीका सुग्रीवसे भिड़ना तथा श्रीरामके बाणसे घायल होकर गिरना ... ... २४२
८०–वाली और भगवान् श्रीरामका संवाद ... २४४
८१–ताराका विलाप, हनुमान्‌जीका उसे समझाना तथा वालीका सुग्रीव और अङ्गदको सन्देश देकर प्राण त्यागना ... ... २४७
८२–सुग्रीवका शोक, ताराका श्रीरामसे अपने वधके लिये अनुरोध करना और श्रीरामका उसे समझाना ... ... ... २५०
८३–वालीका दाह-संस्कार और सुग्रीवका राज्याभिषेक २५२


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पृष्ठ-संख्या

८४–वर्षाके समय श्रीरामका प्रस्रवण-गिरिपर निवास और शरद्‌के प्रारम्भमें हनुमान्‌जीके समझानेसे सुग्रीवका सैन्य-संग्रहके लिये उद्योग करना ... २५४

८५–शरद्-ऋतुका वर्णन और श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणका किष्किन्धामें जाना ... २५७

८६–हनुमान्‌जीका सुग्रीवको समझाना, लक्ष्मणका सुग्रीवके महलमें जाना, ताराका उन्हें सान्त्वना देना और अन्तःपुरमें लक्ष्मणका सुग्रीवको फटकारना ... ... २६०

८७–ताराका लक्ष्मणको शान्त करना, सुग्रीवका क्षमा माँगना तथा पृथ्वीभरके वानरोंको एकत्रित करनेके लिये दुबारा दूत भेजना ... २६३

८८–सुग्रीवका लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीके पास जाना, असंख्य वानरोंका समागम तथा सुग्रीवका पूर्व दिशामें सीताकी खोजके लिये वानरोंको भेजना ... ... ... २६५

८९–सुग्रीवका दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशामें वानरोंको भेजना ... ... २६८

९०–श्रीरामका हनुमान्‌जीको अँगूठी देकर भेजना, तीन दिशाओंके वानरोंका लौट आना और दक्षिणमें गये हुए वानरोंका सीताकी खोज आरम्भ करना ... ... २७१

९१–वानरोंका एक गुफामें जाकर भूख-प्यास बुझाना और स्वयंप्रभाके प्रभावसे समुद्र-तटपर पहुँचना २७३

९२–वानरोंका उपवास करके मरनेका निश्चय तथा सम्पातीसे उनकी बातचीत ... ... २७५

९३–समुद्र लाँघनेके सम्बन्धमें विचार, वानरोंका अपनी-अपनी शक्तिका परिचय देना तथा जाम्बवान्‌के बढ़ावा देनेपर हनुमान्‌जीका पार जानेको कटिबद्ध होना ... ... २८०

## सुन्दरकाण्ड

९४–हनुमान्‌जीका समुद्र लाँघना तथा मैनाक, सुरसा और सिंहिकाके प्रसङ्ग ... २८५

९५–हनुमान्‌जीका लङ्का-प्रवेश और लङ्किनीकी पराजय ... ... ... २८८

९६–हनुमान्‌जीका लङ्काके चौक, भवन और पुष्पक-विमान आदिको देखना ... २९०

९७–हनुमान्‌जीद्वारा रावणके अन्तःपुरमें सीताजीकी खोज, पर-स्त्री-दर्शनके कारण धर्म-नाशकी शङ्का तथा सीताजीको न पानेसे उनका उदास होना ... ... ... २९३

९८–अशोक-वाटिकाको देखते-देखते हनुमान्‌जीको सीताजीके दर्शन होना ... ... २९५

९९–अशोक-वाटिकामें रावणका आना और सीताजीको प्रलोभित न कर सकनेपर दो मासकी अवधि नियत करके घर लौट जाना ... २९८

१००–राक्षसियोंका सीताजीको समझाना और धमकाना तथा त्रिजटाका राक्षसियोंको अपना स्वप्न सुनाना ... ... ३०१

१०१–सीताजीका विलाप तथा हनुमान्‌जीका अपने कर्त्तव्यके विषयमें विचार करना ... ३०४

१०२–हनुमान्‌जीका प्रकट होना, सीताका संदेह और हनुमान्‌का उन्हें विश्वास दिलाते हुए श्रीरामके गुणोंका वर्णन करना ... ... ३०५

१०३–हनुमान्-सीता-संवाद, हनुमान्‌जीका सीतासे अपने साथ चलनेका अनुरोध और सीताका उसे अस्वीकार करना ... ... ३१०

१०४–सीताका हनुमान्‌जीको पहचानके रूपमें एक समूचा प्रसङ्ग सुनाना और चूड़ामणि देकर भगवान्‌को शीघ्र बुला लानेके लिये अनुरोध करना ... ... ... ३१२

१०५–हनुमान्‌जीके द्वारा अशोक-वाटिका ( प्रमदा-वन ) का विध्वंस और किङ्कर नामक राक्षसोंका वध ... ... ... ३१५

१०६–हनुमान्‌जीके द्वारा जम्बुमाली, सात मन्त्रिकुमार तथा पाँच सेनापतियोंका वध ... ३१७

१०७–अक्षयकुमारका वध तथा इन्द्रजित्‌के द्वारा बन्धनमें पड़कर हनुमान्‌जीका रावणके दरबारमें प्रवेश ... ... ... ३१९

१०८–हनुमान्‌जीका श्रीरामके प्रभावका वर्णन करते हुए रावणको समझाना ... ... ३२२

१०९–विभीषणकी सलाहसे रावणका दूतके वधसे निवृत्त होना और राक्षसोंका हनुमान्‌जीकी पूँछमें आग लगाकर उन्हें नगरमें घुमाना ... ३२४

११०–लङ्का-दहन और सीताके लिये हनुमान्‌जीकी चिन्ता ... ... ... ३२५

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2/22

पृष्ठ-संख्या

१११–हनुमान्‌जीका सीताको प्रणाम करके लौटना और समुद्रके पार आकर अपने सुहृदोंसे मिलना ३२७
११२–वानरोंका सीताको ले आनेके लिये उत्साह, जाम्बवान्‌की सम्मतिसे सबका किष्किन्धाकी ओर लौटना और मधुवनका यथेष्ट उपभोग करना ... ... ३३०
११३–मधुवनसे वानरोंका जाना और वहाँ हनुमान्‌जीका श्रीरामको सीताके समाचार तथा संदेश सुनाना ... ... ३३३

## युद्धकाण्ड

११४–श्रीरघुनाथजीद्वारा हनुमान्‌जीकी प्रशंसा, लङ्का-विजयके लिये परामर्श और सेनाको प्रस्थान करनेका आदेश ... ... ३३५
११५–वानर-सेनाका प्रस्थान और समुद्र-तटपर उसका पड़ाव ... ... ३३७
११६–राक्षसोंकेसाथ रावणका परामर्श तथा विभीषणके समझानेके अनन्तर उस दिनकी सभा विसर्जित करना ... ... ३३९
११७–विभीषणका एकान्तमें जाकर रावणको समझाना, रावणका सभामें विचार-विनिमय करना और विभीषणके समझानेपर उसका तिरस्कार करना ... ... ३४१
११८–विभीषणकी शरणागति ... ... ३४५
११९–शुकका दूतत्व, समुद्रका पराभव, सेतु-बन्धन तथा वानर-सेनाका समुद्रके पार होना ... ३४९
१२०–रावणके गुप्तचर शुक और सारणका वानर-सेनामें जाना तथा रावणको उसका निरीक्षण कराते हुए प्रधान-प्रधान वानर-वीरोंका वर्णन करना ... ... ३५३
१२१–रावणका वानर-सेनाके निरीक्षणके लिये दूत भेजना, उनके मुखसे उसका समाचार जानकर सीताको श्रीरामचन्द्रजीका माया-रचित सिर दिखाना तथा सीताजीका विलाप ... ३५७
१२२–सरमाका सीताको सान्त्वना देना तथा उन्हें मन्त्रियोंके साथ रावणके परामर्शका वृत्तान्त सुनाना ... ... ३५९
१२३–वानर-सेनाकी व्यूह-रचना, सुग्रीव और रावणका मल्लयुद्ध तथा लङ्कापर वानरोंकी चढ़ाई ... ३६१

पृष्ठ-संख्या

१२४–अङ्गदका दूत-कर्म, लङ्कापर वानरोंकी चढ़ाई तथा राक्षसोंके साथ उनका द्वन्द्व-युद्ध ... ३६४
१२५–राक्षस और वानरोंका रात्रियुद्ध तथा इन्द्रजित्‌का अदृश्य होकर श्रीराम और लक्ष्मणको नाग-पाशमें बाँधकर अचेत कर देना ... ३६७
१२६–इन्द्रजित्‌का रावणको श्रीराम-लक्ष्मणके मारे जानेका समाचार सुनाना, रावणकी आज्ञासे सीताजीका पुष्पक-विमानद्वारा जाकर वह दृश्य देखना और विलाप करना तथा त्रिजटाका उन्हें धैर्य बँधाना ... ... ३६९
१२७–श्रीरामचन्द्रजीका विलाप तथा गरुड़का नाग-पाश काटना ... ... ३७१
१२८–धूम्राक्षका युद्ध और हनुमान्‌जीके हाथसे उसका वध ... ... ३७२
१२९–वज्रदंष्ट्रका युद्ध और अङ्गदके हाथसे उसका वध ... ... ३७३
१३०–अकम्पनका युद्ध और हनुमान्‌जीके हाथसे उसका वध ... ... ३७५
१३१–प्रहस्तका युद्ध और नीलके हाथसे उसका वध ... ... ३७६
१३२–रावणका वानरोंके साथ युद्ध करना और श्रीरामचन्द्रजीसे परास्त होकर लङ्कामें लौटना ... ... ३७७
१३३–राक्षसोंका कुम्भकर्णको जगाना और उसका रावणसे मिलकर युद्धके लिये तैयार होना ... ३८०
१३४–कुम्भकर्णकी रण-यात्रा और हतोत्साह वानरोंको अङ्गदका प्रोत्साहन देना ... ... ३८५
१३५–कुम्भकर्णका भयंकर युद्ध और श्रीरामके हाथसे उसका वध ... ... ३८७
१३६–रावणका शोक, उसके पुत्रोंका युद्धके लिये जाना और अङ्गदके हाथसे नरान्तकका वध ... ३९०
१३७–हनुमान्‌जीके द्वारा देवान्तक और त्रिशिराका तथा लक्ष्मणके द्वारा अतिकायका वध ... ३९२
१३८–इन्द्रजित्‌के ब्रह्मास्त्रद्वारा श्रीराम और लक्ष्मण-सहित वानर-सेनाका मूर्च्छित होना तथा हनुमान्‌जीकी लायी हुई ओषधिसे सबका जाग्रत् होना ... ... ३९५
१३९–राक्षस और वानरोंके युद्धमें कम्पन, प्रजङ्घ,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पृष्ठ-संख्या

यूपाक्ष, शोणिताक्ष, कुम्भ और निकुम्भका वध ... ... ३९८
१४०—मकराक्षका वध ... ... ४००
१४१—इन्द्रजित्‌का युद्ध और उसके द्वारा मायामयी सीताका वध ... ... ४०१
१४२—सीताके लिये श्रीरामचन्द्रजीका शोक, विभीषणद्वारा भ्रमनिवारण तथा लक्ष्मणका इन्द्रजित्‌से युद्ध करनेके लिये प्रस्थान ... ४०३
१४३—विभीषण-इन्द्रजित्-संवाद तथा लक्ष्मणका इन्द्रजित्‌के साथ युद्ध ... ... ४०५
१४४—इन्द्रजित् और लक्ष्मणका भयंकर युद्ध तथा इन्द्रजित्‌का वध ... ... ४०८
१४५—श्रीरामकी प्रसन्नता, रावणका शोक तथा सुपार्श्वके समझानेसे उसका सीता-वधसे निवृत्त होना ... ... ४११
१४६—श्रीरामद्वारा राक्षस-सेनाका संहार तथा रावणका युद्धिभूमिमें जाकर वानरोंका विनाश करना ... ४१३
१४७—विरूपाक्ष, महोदर और महापार्श्वका वध ... ४१४
१४८—राम-रावण-युद्ध, रावणकी शक्तिसे लक्ष्मणकी मूर्च्छा, श्रीरामका विलाप तथा सुषेणकी दवासे लक्ष्मणका सचेत होना ... ... ४१६
१४९—इन्द्रके भेजे हुए रथपर बैठकर श्रीरामका रावणसे युद्ध करना, रावणके सारथिका रथको दूर हटाना और रावणकी आज्ञासे पुनः युद्धमें ले आना ... ... ४१९
१५०—अगस्त्य-मुनिका श्रीरामको विजयके लिये 'आदित्य-हृदय' के पाठकी सम्मति देना ... ४२१
१५१—श्रीराम-रावणका युद्ध और रावणका वध ... ४२४
१५२—विभीषण और मन्दोदरी आदिका विलाप तथा रावणके शवका दाह-संस्कार ... ४२६
१५३—विभीषणका राज्याभिषेक और सीताकी अग्नि-परीक्षा ... ... ४३१
१५४—भगवान् श्रीरामके पास देवताओंका आगमन, ब्रह्माद्वारा उनकी भगवत्ताका वर्णन और अग्निदेवका सीताजीके सतीत्वकी साक्षी देना ... ४३६
१५५—भगवान् श्रीरामके पास दशरथजीका आना तथा इन्द्रका मरे हुए वानरोंको जीवित करना ४३८
१५६—भगवान् श्रीरामका विभीषणके द्वारा वानरोंका सत्कार कराना तथा पूरे दलके साथ पुष्पक-विमानपर चढ़कर अयोध्याके लिये प्रस्थान करना ... ... ४३९
१५७—अयोध्याकी यात्रा करते समय श्रीरामका सीताजीको मार्गके स्थान दिखलाना तथा भरद्वाज-आश्रमपर पहुँचकर हनुमान्‌को भरतके पास भेजना ... ... ४४१
१५८—हनुमान्‌जीका भरतजीको श्रीरामके आगमनकी सूचना देना, अयोध्यामें स्वागतकी तैयारियाँ होना तथा श्रीरामचन्द्रजीकी सब पुरवासियोंसे भेंट ... ... ४४३
१५९—राम-राज्याभिषेक, वानरोंकी विदाई और ग्रन्थका माहात्म्य ... ... ... ४४५

## उत्तरकाण्ड

१६०—श्रीरामके दरबारमें महर्षियोंका आगमन तथा अगस्त्य-मुनिका रावण-जन्मके प्रसङ्गमें ब्रह्मर्षि पुलस्त्यसे विश्रवाकी उत्पत्तिका वर्णन करना ४४९
१६१—वैश्रवणकी उत्पत्ति, तपस्या तथा लङ्कामें निवास ४५१
१६२—राक्षस-वंशका वर्णन ... ... ४५२
१६३—राक्षसोंके उत्पातसे पीड़ित देवताओंको विष्णुका आश्वासन और उनके द्वारा राक्षसोंका संहार ... ४५४
१६४—रावण आदिका जन्म, तपस्या और वर-प्राप्ति ४५७
१६५—रावणका कुबेरको हटाकर लङ्कामें बसना, तीनों भाइयोंका विवाह और मेघनादका जन्म ... ४६०
१६६—कुम्भकर्णका शयन, रावणका कुबेरके भेजे हुए दूतको मारकर उनपर चढ़ाई करना और उन्हें परास्त कर पुष्पक-विमान छीन लेना ... ४६१
१६७—भगवान् शङ्करके द्वारा रावणका मान-भङ्ग तथा उनसे चन्द्रहास खड्गकी प्राप्ति ... ४६४
१६८—रावणके द्वारा अनरण्यका वध, यमलोकमें युद्ध और यमराजकी पराजय ... ... ४६५
१६९—रावणके द्वारा निवातकवचोंसे मैत्री, कालकेयोंका वध, वरुण-पुत्रोंकी पराजय, स्त्रियोंका हरण तथा रोती हुई शूर्पणखाको आश्वासन ... ४६८
१७०—मेघनादकी यज्ञके द्वारा सफलता, रावणका मधु और अपनी सेनाके साथ इन्द्रलोकपर धावा तथा मार्गमें उसे नलकूबरका शाप देना ... ४७०
१७१—रावणका इन्द्रलोकपर आक्रमण, सुमालीका वध,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




पृष्ठ-संख्या

मेघनादका इन्द्रको जीतकर लङ्कामें लाना और ब्रह्माजीका वहाँ आकर उन्हें छुड़ाना ... ४७२

१७२—हैहयराज अर्जुनके द्वारा रावणका पराभव ... ४७६

१७३—वालीके द्वारा रावणका पराभव ... ४७८

१७४—हनुमान्‌जीके बाल-चरित्रोंका वर्णन तथा अगस्त्यादि ऋषियोंका अपने-अपने आश्रमको जाना ... ... ... ४७९

१७५—श्रीरघुनाथजीका राजा जनक, युधाजित्, प्रतर्दन तथा अन्य समस्त राजाओंको एवं वानर, रीछ और राक्षसोंको विदा करना तथा पुष्पक-विमानका पुनः लौटकर आना ... ४८१

१७६—गर्भिणी सीताजीका मुनियोंके आश्रम देखनेकी इच्छा प्रकट करना, रघुनाथजीका मित्रोंके मुख-से लोकापवादके विषयमें सुनना तथा सीताको वनमें छोड़नेके लिये लक्ष्मणजीको आज्ञा देना ... ४८५

१७७—लक्ष्मणजीका सीताजीको ले जाकर वनमें छोड़ना तथा मुनिवर वाल्मीकिका उन्हें अपने आश्रम-पर ले आना ... ... ४८७

१७८—सुमन्त्रका भृगुऋषिके शापकी कथा कहकर लक्ष्मणजीको शान्त करना, उनका रघुनाथजीके पास पहुँचना और रघुनाथजीका लक्ष्मणकी प्रशंसा करते हुए राजा नृगकी कथा सुनाकर पुनः राज्य-कार्य सँभालनेके लिये अपनी इच्छा प्रकट करना ... ... ४८९

१७९—ऋषियोंकी प्रेरणासे श्रीरामचन्द्रजीका शत्रुघ्नको लवणासुरके वधके लिये भेजना, रास्तेमें शत्रुघ्नका वाल्मीकिजीके स्थानपर ठहरना तथा उसी रातमें कुश-लवका जन्म होना ... ४९१

१८०—शत्रुघ्नजीका महर्षि च्यवनके मुखसे लवणासुरके बलका वर्णन सुनना तथा उसके साथ युद्ध करके उसे मारना ... ... ४९५

१८१—देवताओंसे वर पाकर शत्रुघ्नजीका शूरसेन जनपदकी स्थापना करना और फिर वाल्मीकि-जीके आश्रमपर होते हुए भगवान् श्रीरामके दर्शनोंके लिये अयोध्या जाना ... ४९७

१८२—श्रीरामचन्द्रजीका एक शूद्र-तपस्वीको मारकर ब्राह्मणके मृत पुत्रको जीवन-दान देना तथा अगस्त्य-जीके आश्रमपर होकर अयोध्या लौट आना ... ४९८

पृष्ठ-संख्या

१८३—अश्वमेध-यज्ञके विषयमें सम्मति देते हुए लक्ष्मणजीका इन्द्रकी ब्रह्महत्या-निवृत्तिकी कथा सुनाना तथा श्रीरामचन्द्रजीका यज्ञकी तैयारी करना ... ... ५००

१८४—श्रीरामका कुश-लवके मुखसे रामायण-गान सुनना और सीताका अपनी शुद्धिका प्रमाण देकर भूमिमें प्रवेश करना ... ५०३

१८५—श्रीरामचन्द्रजीका खेद, ब्रह्माजीका सान्त्वना देकर जाना और श्रीरामका शेष उत्तरकाण्ड सुनना ५०७

१८६—भरत और लक्ष्मणके पुत्रोंका भिन्न-भिन्न देशोंके राज्यपर अभिषेक ... ... ५०८

१८७—काल और दुर्वासाका आगमन तथा श्रीरामके त्याग देनेपर लक्ष्मणका सशरीर परलोकगमन ५१०

१८८—श्रीरामचन्द्रजीका भाइयों, पुरवासियों तथा सुग्रीव आदि वानरों एवं रीछोंके साथ परमधाम जानेका निश्चय ... ... ५१२

१८९—भाइयोंसहित श्रीरामका विष्णुस्वरूपमें प्रवेश तथा साथ आये हुए सब लोगोंको सन्तानक-लोककी प्राप्ति ... ... ५१३

१९०—रामायण-काव्यका उपसंहार और इसकी महिमा ५१५


## संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण समाप्त


१७—मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम ( श्रीजयदयालजी गोयन्दका ) ... ... ५१६

१८—सीताजीका आदर्श जीवन ( श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका ) ... ... ५२५

१९—निवेदन और क्षमा-प्रार्थना (जयदयाल गोयन्दका) ५३१


## सङ्कलित लेख-सूची


१—श्रीरामायण-महिमा तथा मुनि-वन्दना ( श्री-रामायण-तिलक ) ... ... २


## पद्य-सूची


१—वन्द्य-विभूति [शार्दूल-विक्रीडित] (साहित्य-सम्राट् पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' ) ... १७

२—मर्यादा-पुरुष हे राम ! (डाँगी सूरजचन्दजी शुक्र) २४

३—आदिकविके प्रति ( 'राम' ) ... ३१

४—अभिलाषा ( श्रीसेविका विद्यावती गुप्त 'स्नेहलता') ५२४

५—मैथिलीको आश्वासन ( श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त ) ५३४




CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चित्र-सूची


पृष्ठ-संख्या

१—अयोध्या-प्रतिगमन ... ... मुखपृष्ठ
२—वनवासी राम ... ... १
३—देवसभामें भगवान् विष्णु ... ... ४३
४—सीताको चीर-दान और वसिष्ठजीका विरोध ... ... १२२
५—विराध-वध ... ... १७९
६—तपोवनके दिव्य पथिक ... ... १८५
७—शबरीके अतिथि ... ... २२८
८—आभूषणोंकी पहचान ... ... २३६
९—जाम्बवान्का हनुमान्को प्रोत्साहन ... ... २८२
१०—जानकीजीका चूडामणि-दान ... ... ३१४
११—समुद्रपर शासन ... ... ३५१
१२—श्रीरामका राज्याभिषेक ... ... ४४६
१३—सीताजीको वाल्मीकिका आश्वासन ... ... ४८९
१४—प्रजापालक राम ... ... ५१६

## इकरंगे

१५—लव-कुशकी रामायण-शिक्षा ... ... ४८
१६—परशुरामका तेजोहरण ... ... ८६
१७—कौसल्याका भरतको आश्वासन ... ... १५०
१८—श्रीरामके चरणोंमें भरत ... ... १६४
१९—श्रीरामके द्वारा राक्षस-वधकी प्रतिज्ञा ... ... १८३
२०—भक्त और भगवान्की भेंट ... ... २३१
२१—वानरोंका सम्पातिसे समागम ... ... २७७
२२—सुरसाके मुखमें हनुमान्जी ... ... २८७
२३—पर्वताकार मारुति ... ... ३१२
२४—भरतका मारुतिसे मिलाप ... ... ४४४
२५—सीताका वनवासके लिये विसर्जन ... ... ४८७

## इकरंगे ( लाइन )

### बालकाण्ड

२६—वाल्मीकिजीके आश्रमपर नारदजी ... ... ४३
२७—क्रौंच-वधसे विचलित होकर वाल्मीकिजीका व्याधको शाप देना ... ... ४६
२८—रामायण-काव्य रचनेके लिये वाल्मीकिजीको ब्रह्माजीका आदेश ... ... ४७
२९—राम-सभामें कुश-लवका रामायण-गान ... ... ४९
३०—वेश्याओंका शृङ्गी-ऋषिको प्रलोभित करके ले जाना ... ... ... ५३
३१—महाराज दशरथका विश्वामित्रजीके हाथ राम-लक्ष्मणको सौंपना ... ... ... ५९
३२—कपिलके क्रोधसे सगर-पुत्रोंका दाह ... ... ६६
३३—जनकजीद्वारा विश्वामित्र तथा राम-लक्ष्मणका स्वागत ७०
३४—त्रिशङ्कुका स्वर्गसे पतन और विश्वामित्रजीका उन्हें आकाशमें ही रोक देना ... ... ७६
३५—धनुर्भङ्गके लिये राजाओंका प्रयास ... ... ७९
३६—भगवान् रामद्वारा धनुर्भङ्ग ... ... ८०
३७—रघुनाथजीका परशुरामजीके दिये हुए धनुषपर बाण चढ़ाना ... ... ... ८६

### अयोध्याकाण्ड

३८—भगवान् विष्णु ... ... ... ८८
३९—मन्थराका कैकेयीको भड़काना ... ... ९४
४०—महाराज दशरथका कैकेयीको मनाना ... ... ९७
४१—कैकेयीकी वर-याचनासे महाराज दशरथका मूर्च्छित होना ... ... ९८
४२—कैकेयीका रामचन्द्रजीको महाराजके शोकका कारण बताना ... ... ... १०४
४३—दरिद्र ब्राह्मणका अद्भुत पुरुषार्थ ... ... ११८
४४—सीताजीको चीर-वस्त्र देनेपर वसिष्ठजीका विरोध १२२
४५—रामजीके वन-गमनके समय अयोध्याकी विकलता १२५
४६—निषादराजद्वारा रामजीका स्वागत ... ... १३१
४७—शृङ्गवेरपुरकी रात्रि ... ... १३२
४८—सुमन्त्रकी बिदाई ... ... १३३
४९—श्रीराम, सीता और लक्ष्मणका नौकासे गङ्गा पार करना ... ... १३४
५०—भरद्वाजके द्वारा श्रीराम, सीता और लक्ष्मणका आतिथ्य-सत्कार ... ... १३५
५१—निवासस्थानके विषयमें भरद्वाज-मुनिसे परामर्श १३६
५२—चित्रकूटकी पर्णकुटी ... ... १३७
५३—मुनि-दम्पतीका शोक और मुनिकुमारका स्वर्गारोहण १४२
५४—महाराज दशरथका स्वर्गवास ... ... १४३
५५—कैकेयी और भरत ... ... १४८
५६—पुत्र-शोकाकुला कौसल्यासे भरत-शत्रुघ्नका मिलना १४९
५७—शत्रुघ्नजीद्वारा मन्थराको दण्ड और भरतजीका छुड़ाना ... ... ... १५१
५८—राज्य-स्वीकृतिके लिये वसिष्ठजीका भरतको आदेश १५३
५९—निषादराजका भरतके पास भेंट लेकर आना १५५


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पृष्ठ-संख्या

६०—भरद्वाज-मुनिके द्वारा भरतका स्वागत ... १५७
६१—लक्ष्मणजीका साल-वृक्षपर चढ़कर भरतकी सेनाको देखना ... ... १६१
६२—वृक्षोंमें चीर-वस्त्र बँधे देखकर भरतका विलाप १६३
६३—श्रीरामके चरणोंमें भरत ... ... १६४
६४—श्रीभरतका पादुका-पूजन ... ... १७६
६५—चित्रकूटसे सीता-लक्ष्मणसहित भगवान् रामका प्रस्थान ... ... ... १७६
६६—अनसूयाद्वारा सीताजीका सत्कार ... १७८

## अरण्यकाण्ड

६७—भगवान् रामका लक्ष्मणजीको शरभङ्ग-मुनिसे बातें करते हुए देवराज इन्द्रके दर्शन कराना ... १८१
६८—शरभङ्ग-मुनिके आश्रमपर रामचन्द्रजीके पास ऋषियोंका आगमन ... ... १८२
६९—सुतीक्ष्ण-मुनिद्वारा श्रीराम आदिका स्वागत ... १८३
७०—अगस्त्य-मुनिका भगवान् रामको दिव्यास्त्र-दान १८७
७१—पञ्चवटी-आश्रममें श्रीसीता-राम ... १८९
७२—लक्ष्मणजीद्वारा शूर्पणखाका अङ्ग-भङ्ग ... १९०
७३—शूर्पणखाका खरको अपना दुःख सुनाना ... १९१
७४—गुफाके भीतर श्रीसीताजी और लक्ष्मण .. १९३
७५—श्रीराम और खरका संग्राम ... ... १९४
७६—खरका उद्धार ... ... ... १९७
७७—रावणकी सभामें शूर्पणखा ... ... २००
७८—मारीचके पास रावण ... ... २०१
७९—सुवर्ण-मृगको लानेके लिये श्रीरामका प्रस्थान २०६
८०—मृगको मारनेके लिये श्रीरामका दिव्य बाण छोड़ना ... ... ... २०७
८१—घबरायी हुई सीताजीका लक्ष्मणको श्रीरामजीकी सहायताके लिये जानेका आदेश देना ... २०७
८२—श्रीसीताजीके द्वारा भिक्षु-वेषधारी रावणका स्वागत २०९
८३—रावणद्वारा सीताजीका हरण ... ... २११
८४—जटायु और रावणका युद्ध ... ... २१४
८५—प्रवर्षण-पर्वतपर बैठे हुए वानरोंको देखकर सीताजीका वस्त्र और आभूषण डालना ... २१५
८६—सीताजीके भेजे हुए लक्ष्मणकी रघुनाथजीसे भेंट २१७
८७—पर्णशालाको सूनी देखकर श्रीरामका विलाप करना ... ... ... २१९
८८—लक्ष्मणजीका श्रीरामको मृगोंके संकेतका तात्पर्य समझाना ... ... ... २२१
८९—जटायुपर कृपा ... ... ... २२३

पृष्ठ-संख्या

९०—भगवान् राम और लक्ष्मणकी एक विशालकाय राक्षसीसे भेंट और लक्ष्मणका उसे अङ्ग-भङ्ग करना २२४
९१—श्रीराम और लक्ष्मणद्वारा कबन्धकी भुजाओंका छेदन ... ... ... २२६
९२—शबरीद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणका आतिथ्य २२८

## किष्किन्धाकाण्ड

९३—सीता-वियोगी राम ... ... २३०
९४—हनुमान्‌जी श्रीराम और लक्ष्मणको सुग्रीवके पास ले जा रहे हैं ... ... २३४
९५—श्रीराम और लक्ष्मणद्वारा वाली और सुग्रीवके युद्धका निरीक्षण ... ... २४३
९६—मरणासन्न वालीके पास श्रीराम और लक्ष्मणका पधारना ... ... ... २४४
९७—भगवान् रामके आगे ताराका विलाप ... २५१
९८—श्रीरामका लक्ष्मणजीके प्रति वर्षाऋतुकी शोभाका वर्णन करना ... ... ... २५५
९९—श्रीलक्ष्मणजीका अन्तःपुरमें सुग्रीवको फटकारना २६२
१००—वानरोंसे घिरे हुए सुग्रीव लक्ष्मणजीके साथ भगवान् रामके पास जा रहे हैं .. २६५
१०१—सीताजीकी खोजके लिये भगवान् रामद्वारा हनुमान्‌जीकी बिदाई ... ... २७२
१०२—वृद्धा तपस्विनीके साथ हनुमान्‌जीकी बातचीत २७४
१०३—वानरोंके साथ सम्पातिकी बातचीत ... २७७
१०४—समुद्रको लाँघनेके विषयमें वानरोंका विचार-विनिमय ... ... ... २८१
१०५—जाम्बवान्‌का हनुमान्‌जीको प्रोत्साहन और हनुमान्‌जीकी शरीर-वृद्धि ... ... २८२

## सुन्दरकाण्ड

१०६—श्रीराम-दूत हनुमान् ... ... २८४
१०७—हनुमान्‌का समुद्र लाँघना ... ... २८६
१०८—हनुमान्‌का लङ्का-निरीक्षण ... ... २८९
१०९—हनुमान्‌जी पुष्पक-विमानपर ... ... २९२
११०—हनुमान्‌जीको सीताजीका प्रथम दर्शन ... २९६
१११—अशोक-वाटिकामें रावणद्वारा सीताजीका प्रलोभन २९९
११२—हनुमान्‌द्वारा सीताजीको मुद्रिका-दान ... ३१०
११३—जानकीजीके सामने हनुमान्‌जीका अशोक-वाटिका-को विध्वंस करना ... ... ३१६
११४—हनुमान्‌जीके द्वारा राक्षस-सेनाका विध्वंस ... ३१८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पृष्ठ-संख्या

११५–राक्षसोंका ब्रह्मपाशसे बँधे हुए हनुमान्‌जीको पुनः रस्सोंसे बाँधना ... ... ३२१
११६–लङ्का-दहन ... ... ... ३२६
११७–हनुमान्‌जीका लङ्कासे वानरोंके पास लौटना ३२९
११८–सुग्रीवके मधुवनमें वानरोंकी स्वच्छन्दता ... ३३१
११९–हनुमान्‌जीसे सीताजीकी चूडामणि पाकर रामका विकल होना ... ... ... ३३४

## युद्धकाण्ड

१२०–समुद्र-तटपर लक्ष्मणजीके आगे श्रीरामका विलाप ३३९
१२१–अपमानित विभीषणकी रावणसे बिदाई ... ३४४
१२२–सुग्रीवका श्रीरामको विभीषणके आगमनकी सूचना देना ... ... ... ३४५
१२३–लक्ष्मणजीद्वारा विभीषणका राज्याभिषेक ... ३४९
१२४–भगवान् रामके बाणसे क्षुभित होकर समुद्रका प्रकट होना ... ... ... ३५१
१२५–श्रीरामका सुवेल-पर्वतपरसे लङ्काका निरीक्षण करना ... ... ... ३६२
१२६–सुग्रीव रावणपर अपना कोप उतार रहे हैं ... ३६३
१२७–अङ्गदजीका अद्भुत पराक्रम ... ३६५
१२८–लङ्काके द्वारपर वानर और राक्षसोंकी झड़प ... ३६६
१२९–सीताजीका पुष्पक-विमानपरसे नाग-पाशमें बँधे हुए राम और लक्ष्मणको देखकर विलाप करना ३७०
१३०–नाग-पाशसे मुक्त होकर श्रीरघुनाथजीकी गरुड़-जीके साथ बातचीत ... ... ३७२
१३१–रावण और लक्ष्मणजीका युद्ध ... ... ३७९
१३२–कुम्भकर्णको देखकर वानर-सेनाका भागना ... ३८६
१३३–हनुमान्‌जीका ओषधिसहित पर्वत लेकर वानर-सेनामें पहुँचना ... ... ३९८
१३४–इन्द्रजित्‌द्वारा वानरोंके सामने माया-रचित सीताजीका तिरस्कार ... ... ४०३
१३५–इन्द्रजित् और लक्ष्मणजीका युद्ध ... ४०७
१३६–सीताजीको मारनेके लिये उद्यत रावणको सुपार्श्वका समझाना ... ... ४१२
१३७–भगवान् रामके पास इन्द्रका रथ लेकर मातलिका आना ... ... ४१९
१३८–रावणकी मृत्युपर विभीषणका विलाप ... ४२७
१३९–लक्ष्मणद्वारा विभीषणका लङ्कामें राज्याभिषेक ४३०

पृष्ठ-संख्या

१४०–विभीषणका श्रीसीताजीको भगवान् रामके पास लाना ... ... ... ४३३
१४१–अग्निदेवका सीताजीको लेकर प्रकट होना ... ४३७
१४२–स्वर्गसे पधारे हुए दशरथजीको राम और लक्ष्मणका प्रणाम करना ... ... ४३८
१४३–पुष्पक-विमानपरसे श्रीरामचन्द्रजी सीताजीको सेतु दिखा रहे हैं ... ... ४४१
१४४–पुष्पक-विमानपर भरत और श्रीरामकी भेंट ... ४४५
१४५–सिंहासनारूढ़ श्रीसीता-राम ... ४४७

## उत्तरकाण्ड

१४६–भगवान् रामकी सभामें अगस्त्यादि ऋषिगण ४४९
१४७–माली आदि राक्षसोंके साथ विष्णुभगवान्‌का संग्राम ... ... ... ४५६
१४८–रावण आदि तीनों भाइयोंको ब्रह्माजीका वरदान ४५९
१४९–रावणको नन्दीश्वरका शाप ... ४६४
१५०–ब्रह्माजीका यमराजको रावणपर कालदण्ड छोड़नेसे रोकना ... ... ४६८
१५१–मेघनादका इन्द्रको बाँधकर लङ्कामें ले जाना ४७४
१५२–रावणको बगलमें दबाकर वाली सन्ध्योपासन कर रहा है ... ... ... ४७८
१५३–निर्वासिता सीताको महर्षि वाल्मीकिका आश्वासन ... ... ... ४८९
१५४–महर्षि वाल्मीकि नवजात कुश-लवकी भूत-बाधासे रक्षाकी व्यवस्था कर रहे हैं ... ४९४
१५५–शत्रुघ्न और लवणासुरका युद्ध ... ४९६
१५६–राजद्वारपर एक ब्राह्मणका अपने मृतपुत्रको लेकर आना और श्रीरामका उसके सम्बन्धमें विचार करनेके लिये मन्त्रणा-सभा बुलाना ... ४९८
१५७–भगवान् रामका यज्ञानुष्ठानके विषयमें भरत और लक्ष्मणके साथ परामर्श ... ५०१
१५८–राम-दरबारमें कुश-लवका रामायण-गान ... ५०४
१५९–श्रीसीताजीका पृथ्वी-प्रवेश ... ... ५०६
१६०–दुर्वासा-मुनिका श्रीरामके पास जानेसे रोके जानेपर लक्ष्मणजीको डाँटना ... ... ५११
१६१–भरतद्वारा राज्यकी अस्वीकृति ... ५१२
१६२–गोप्रतार-घाटपर अयोध्यावासियोंके सहित भगवान् रामका महाप्रयाण ... ... ५१४

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

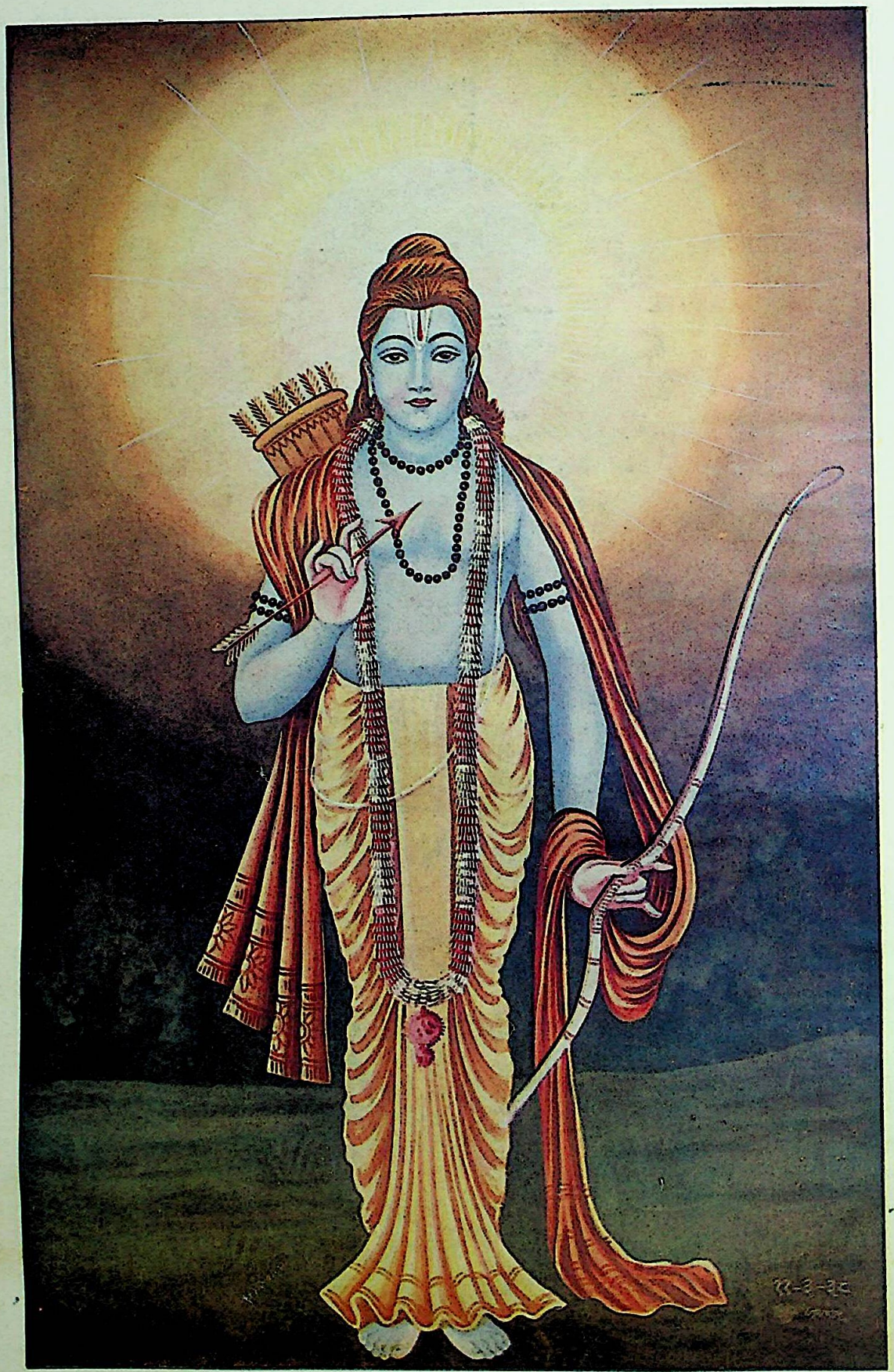

वनवासी राम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

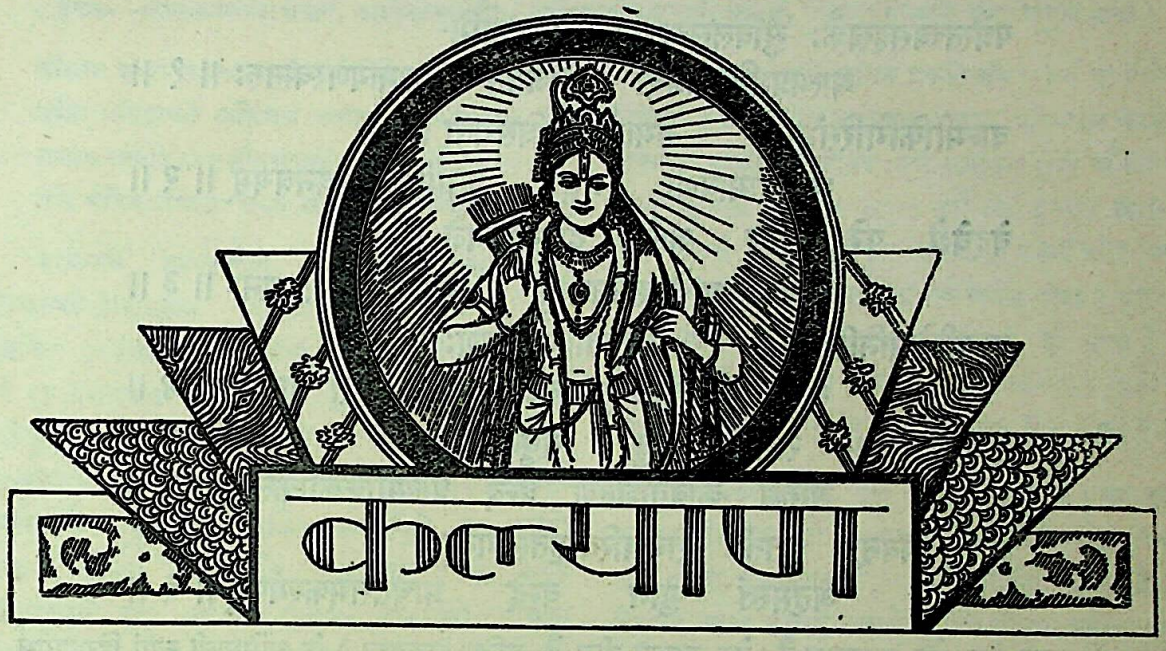


रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥

वर्ष १८ | गोरखपुर, अक्टूबर १९४३, सौर आश्विन २०००० | संख्या १ पूर्ण संख्या २०५

यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यं यन्नाभिपङ्कजभवः कमलासनश्च ।
यन्नामसाररसिको भगवान् पुरारिस्तं रामचन्द्रमनिशं हृदि भावयामि ॥

जिनके चरण-कमलोंकी रजको श्रुतियाँ भी ढूँढ़ती रहती हैं—वह उन्हें मिल नहीं पाती, अखिल विश्वकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी जिनके नाभि-कमलसे उत्पन्न हुए हैं और स्वयं भगवान् शङ्कर जिनके नामामृतका बड़े चावसे रसास्वादन करते हैं, उन भगवान् रामचन्द्रका मैं निरन्तर हृदयमें ध्यान करता हूँ ।

(अध्या० रा० १ । ५ । ४७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीरामायण-महिमा तथा मुनि-वन्दना

श्रीमद्ब्रह्म तदेव बीजममलं यस्याङ्कुरश्चिन्मयः
काण्डैः सप्तभिरन्वितोऽतिविततो मुन्यालवालोदितः ।
पत्रैस्तत्त्वसहस्रकैः सुविलसच्छाखाशतैः पञ्चभि-
श्चात्मप्राप्तिफलप्रदो विजयते रामायणस्वस्तरुः ॥ १ ॥

वाल्मीकिगिरिसंभूता रामाम्भोनिधिसंगता ।
श्रीमद्रामायणी गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम् ॥ २ ॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ॥ ३ ॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ४ ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ ५ ॥

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ६ ॥

रामायण एक श्रेष्ठ कल्पवृक्ष है। वेद उसका बीज है, बुद्धि ( महत्तत्त्व ) के अभिमानी स्वयं हिरण्यगर्भ ( ब्रह्माजी ) ही उसके अङ्कुर हैं। बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध और उत्तर—ये सात काण्ड ही उसके सात तने हैं। इसका विस्तार बहुत बड़ा है। मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि इसके थाल्हे हैं। चौबीस हजार लोक ही इसके पत्ते हैं और पाँच सौसे अधिक सर्ग इसकी सुन्दर शाखाएँ हैं। आत्मसाक्षात्कार ही इसका फल है। रामायणको हम गङ्गा भी कह सकते हैं। हिमालयकी भाँति वाल्मीकि ही इसके उद्गमस्थान हैं। जिस प्रकार देवनदी गङ्गा समुद्रमें जा मिलती हैं, उसी प्रकार रामायणके गन्तव्य-स्थान स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्र हैं। वही इसके प्रतिपाद्य हैं, उन्हींकी प्राप्तिमें इसका पर्यवसान है। त्रिपथगामिनी भागीरथीकी भाँति यह भी तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली है। जो केवल वेदोंद्वारा ( शब्द-प्रमाणसे ही ) जाननेमें आते हैं, वे ही परम पुरुष परमात्मा जब राजा दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे प्रकट हुए, तब [ उनकी देखादेखी ] साक्षात् वेद भी महर्षि वाल्मीकिके मुखसे रामायणके रूपमें प्रकट हुए। वाल्मीकि मुनियोंमें सिंहके समान हैं। उन्होंने कवितारूपी वनमें विचरण करते हुए ( कवियोंके लिये मार्गदर्शक बनकर ) रामकथाकी गर्जना की। उनकी इस गर्जनाको सुनकर कौन ऐसा है, जो मोक्षरूप परम गति ( सिद्धि ) को नहीं प्राप्त कर लेगा। वाल्मीकिको कोयलकी भी उपमा दी जा सकती है। वे कवितारूपी वृक्षकी शाखापर बैठकर अत्यन्त मधुर शब्दोंमें बड़ी मधुरताके साथ राम-नामकी कूक लगा रहे हैं। उन कोकिल बने हुए वाल्मीकिकी मैं वन्दना करता हूँ। जो रामचरितरूपी सुधा-सागरका निरन्तर पान करते हुए भी सदा अतृप्त ही बने रहते हैं, उन निष्पाप वाल्मीकि-मुनिकी मैं बार-बार वन्दना करता हूँ।

( श्रीरामायण-तिलक )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी वेद-मूलकता

( लेखक—श्रीमन्मध्वसंप्रदायाचार्य, दार्शनिकसार्वभौम, साहित्यदर्शनाचार्य, तर्करत्न, न्यायरत्न गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री )

श्रीरामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गती
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे
रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः॥

कल्याणके कल्याणप्रिय कल्याणास्पद वाचकवृन्द! श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण एक आर्ष-ग्रन्थ है। इससे सभी शुद्धचित्त पुरुषोंकी सद्वासनाओंकी पूर्ति होती है; इस दृष्टिसे इसे इस धराधामका अद्वितीय कल्पवृक्ष कह सकते हैं। सभी वृक्षोंका कोई बीज भी होता ही है। इसका बीज है—इसीके बालकाण्डका प्रथम सर्ग। इसीसे वह 'मूल-रामायण' नामसे विख्यात है। आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिने इस बीजको वाङ्मयी वसुधामें बोया और स्वभावतः दयालु देवर्षि श्रीनारदजीने इसे अपनी सुधामयी सरस्वतीसे सींचकर अङ्कुरित किया। फिर देवर्षिके कराये हुए दिग्दर्शनके आश्रयसे आदिकविने ही इसे मुकुलित, पल्लवित, पुष्पित और फलित करके एक विशाल वृक्षके रूपमें रस-लोलुपोंके लिये सुलभ किया।

यद्यपि मूल-रामायणमें भगवदीय आदर्श नर-लीलाओंको लक्ष्यमें रखकर श्रीवाल्मीकिजीने प्रश्नके मिससे कुछ आदर्श विशेषणोंसे युक्त मनुष्यके विषयमें ही जिज्ञासा की है, तथापि देवर्षिने उन्हें जो उत्तर दिया है, उसके द्वारा पारिशेष्य-न्यायसे भगवत्तत्त्वका ही प्रकाशन हुआ है और यह एक प्रकारसे आगेके सर्गोंमें वर्णित भगवच्चरित्रका उपोद्घात ही है। नारदजीने अपने उत्तरमें जैसे पुरुषका परिचय दिया है, उसे जीव-कोटिमें किसी प्रकार नहीं गिना जा सकता; क्योंकि महर्षि वाल्मीकिके प्रश्नमें आये हुए सोलह विशेषणोंका जो उत्तर दिया गया है, वह किसी भी जीवके विषयमें लागू नहीं हो सकता। उसके विशेष्यरूपसे तो 'राम-तापनी' उपनिषद्के दोनों भागोंद्वारा प्रतिपादित सविशेष और निर्विशेष ब्रह्मरूप राम-तत्त्वका ही निरूपण हुआ है। ब्रह्मके सविशेष और निर्विशेष स्वरूपका वर्णन करनेवाले समस्त उपनिषद्वाक्योंका अविरोधपूर्वक समन्वय तो इसी प्रकार हो सकता है कि निर्विशेष या निर्गुण ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाले समस्त वाक्योंका तात्पर्य मायाभासित प्रकृतिजनित गुणों या विशेषोंके निषेधमें तथा सविशेष या सगुण ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाले वाक्योंका स्वारस्य अमायिक एवं अप्राकृत गुणों या विशेषोंके नित्य सद्भावमें समझा जाय। नहीं तो, इनमेंसे किसी भी एक पक्षकी गौणता स्वीकार करनी ही पड़ेगी और निरपेक्ष विचारकी दृष्टिसे ऐसा मानना प्रमाण-विरुद्ध होगा। अतः इन दोनों पक्षोंका उपसंहार एक राम-तत्त्वमें ही होता है और वह भगवत्तत्त्व ही है। इसलिये उसका प्रतिपादन करनेवाला सप्तकाण्डात्मक आदिकाव्य उपनिषन्मूलक सिद्ध होता है।

यहाँ प्रकारान्तरसे एक शङ्का उठती है। वह यह कि आदिकविका प्रश्न तो 'गुणवान्' इत्यादिसे 'कस्य बिभ्यति' तक सोलह विशेषणयुक्त व्यक्तिके विषयमें हुआ है और देवर्षिने उसके उत्तरमें पचासों गुणोंसे सम्पन्न व्यक्तिका वर्णन किया है—ऐसा क्यों? इसका समाधान यह है कि वास्तवमें देवर्षिने भी प्रश्नके अनुसार ही उत्तर दिया है। परन्तु उत्तरका उद्देश्य तो संशयको निर्मूल करना ही है; अतः किसी गूढ़ विशेषणको स्पष्ट करनेके लिये अधिक शब्दोंका प्रयोग करना भी अप्रासङ्गिक नहीं कहा जा सकता। देवर्षिने भी ऐसा ही किया है। जैसे 'श्रीमान्' और 'शत्रुनिबर्हणः' इन दो पदोंके अर्थकी पुष्टिके लिये 'विपुलांसः' से 'शुभलक्षणः' तक तथा 'सर्वगुणोपेतः' और 'कौसल्यानन्दवर्धनः' इन दो विशेषणोंके समर्थनके लिये ही 'समुद्र इव' से 'सत्ये धर्म इवापरः' तकका ग्रन्थ कहा गया है। इस प्रकार उक्त शङ्काके लिये कोई अवकाश नहीं रह जाता।

इस लेखको हम यहीं समाप्त करते हैं। भगवदिच्छा हुई तो फिर कभी कोई अन्य उपहार लेकर कल्याण-सेवियोंकी सेवामें उपस्थित होनेकी आशा रखते हैं।

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
माचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीरामनामात्मकः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सरल पथ

( लेखक—न्याय-वेदान्ताचार्य स्वामी श्रीरामपदार्थदासजी महाराज )

इस घोर कलिकालमें तमोगुणकी प्रधानता होनेके कारण जीवके सामने सघन अन्धकार छाया रहता है; और जब वह उससे अत्यन्त व्याकुल एवं किंकर्तव्य-विमूढ होकर भव-सागर पार करनेका मार्ग ढूँढ़ने लगता है तब जिस पदार्थपर उसका हाथ पड़ जाता है उसे ही अपना अवलम्बन मान लेता है। कभी-कभी तो उसको भ्रमवश ग्राह-जैसे हिंसक प्राणी भी सहायक प्रतीत होने लगते हैं। वस्तुतः इस अवस्थामें यथार्थ साधनकी खोज वही कर सकता है जो स्वयं प्रकाशमें हो और तीनों कालकी वस्तुओंको हस्तामलकवत् देखता हो। उसीके खोजे हुए साधनका आश्रय ग्रहण करके दूसरे लोग भी अज्ञानरूपी तमका भेदन कर प्रकाशकी प्राप्ति करते हैं। हमारे सौभाग्यसे पूर्वकालमें भारतके ऋषि-महर्षिगण ऐसे बहुत-से सुन्दर एवं सरल मार्ग दिखा गये हैं, जिनमेंसे किसी एकपर भी चलनेसे जीवको अनायास भुक्ति-मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है और आगे भी सदा-सर्वदा होती रहेगी। उन पथ-प्रदर्शक ऋषियों अथवा आचार्योंमें महर्षि वाल्मीकिजीका स्थान श्रेष्ठतम है।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिजी सर्वज्ञ थे, उनके मुखसे निकला हुआ एक अक्षर भी अलीक अथवा व्यर्थ नहीं है। उनकी तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर स्वयं चतुराननने उन्हें श्रीराघवके परम पावन चरित्रकी रचना करनेका आदेश तथा वरदान दिया था। ब्रह्माजीके वचन इस प्रकार हैं—'ब्रह्मन्! तुमने नारदजीके मुँहसे जैसा सुना है, उसीके अनुसार श्रीरामके चरित्रका वर्णन करो। राम, लक्ष्मण, सीता तथा राक्षस आदिके जो-जो चरित्र गुप्त या प्रकाशित होंगे, वे सब तुम्हें ज्ञात हो जायँगे। जिस बातको तुम नहीं जानते हो, वह भी तुमसे छिपी नहीं रहेगी, तुम्हारे लिखे हुए काव्यमें एक बात भी झूठी नहीं होगी। इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी परम पवित्र एवं मनोरम कथाको श्लोकबद्ध करके लिखो। इस पृथ्वीपर जबतक नदियों और पर्वतोंकी सत्ता रहेगी, तबतक संसारमें रामायण-कथाका प्रचार होता रहेगा।' *

इन वाक्योंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्रह्माजीने श्रीवाल्मीकिजीको त्रिपादविभूतिमें जानेसे रोककर महाप्रलय-पर्यन्त अपने पास ही रहनेका आग्रह किया। वास्तवमें ब्रह्माजीको श्रीरामचरित्र इतना प्रिय है कि वे उसे श्रीनारदजीके मुँहसे बराबर सुना करते हैं। यथा—

यस्यावतारचरितानि विरञ्चिलोके
गायन्ति नारदमुखा भवपद्मजाद्याः।
—अध्यात्मरामायण

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुनगानहिं॥
—रामचरितमानस

अस्तु, महर्षि वाल्मीकिजीने अपनी अमर वाणीमें हमारे सामने श्रीरघुनाथजीके उसी परम प्रकाशमय आदर्श चरित्रको चित्रित करके रख दिया है, जिससे जीवको इस कलिकालमें भी अगम भव-सिन्धुका सन्तरण करनेकी नौका सुगमतापूर्वक मिल सकती है। वह सुलभ तरणी श्रीरामभद्रजूकी शरणागति ही है, जिसके सम्बन्धमें स्वयं श्रीमुख-वाणी यह कहती है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

'प्राणिमात्रके लिये मेरी यह प्रतिज्ञा है कि यदि कोई जीव केवल एक बार मैखिकरूपसे भी मेरे शरणागत हो जाता है तो मैं उसको सबसे सर्वथा और सदाके लिये निर्भय कर देता हूँ।'

'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्' इस वेदान्त-सिद्धान्तके अनुसार शरणागतिकी आवृत्ति करनेकी आवश्यकता नहीं है, केवल

---

* वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्॥
रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः। रामस्य सह सौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः॥
वैदेह्याश्चैव यद्वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः। तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति॥
न ते वागमृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति। कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्॥
यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले। तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥
( वा० रा० बाल० २। ३२–३६ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


एक बारकी शरणागति ही चेतनका कल्याण करनेके लिये पर्याप्त है। ऊपर भगवान्‌ने जो प्रतिज्ञा की है, वह अन्यथा नहीं हो सकती; क्योंकि 'रामो द्विर्नाभिभाषते'—'राम दो बार नहीं बोलते।' जो भी एक बार उनकी शरणमें चला जाता है, उसे वे अभय कर देते हैं, यह नहीं देखते कि शरणमें आनेवाला पापी है अथवा पुण्यात्मा। पिताका वात्सल्य पुत्रपर कितना होता है, इसका अनुभव पुत्र-वत्सल पिता ही कर सकता है। पिताकी दृष्टिमें पुत्र चाहे कैसा ही अपराधी क्यों न हो, उसपर पिताका वात्सल्य कम नहीं होगा। फिर हमारे प्रभु तो परम पिता, परम कारुणिक तथा वात्सल्य एवं औदार्य आदि गुणोंके आकर हैं। उनके यहाँ तो जीव यदि एक बार भी अनुकूल बन जाय तो वे उसके पिछले असंख्य पापोंको भूल जाते हैं, कभी उनकी याद ही नहीं करते, उसको सदा-सर्वदाके लिये अपना लेते हैं। यथा—

कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥

अस्तु, इसीलिये श्रीवाल्मीकि-रामायणको—मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामके चरित्रात्मक प्रबन्धको विशेषकर इस कलिकालमें अपूर्व कल्पवृक्ष बतलाया गया है। उसका पाठ करनेमात्रसे ही जीव सम्पूर्ण पापोंसे विमुक्त होकर धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों पुरुषार्थोंके साथ-साथ परम पुरुषार्थ मोक्षको भी अनायास ही प्राप्त कर लेता है। उसका एक-एक अक्षर महान् पातकोंका नाश करके जीवको अत्यन्त निर्मल बना देता है—

एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्।

जिस प्रकार भगवन्नामोंमें सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रधान नाम 'राम' के जप-कीर्तनमें सबका अधिकार है, उसी प्रकार परम पावन परम श्रेष्ठ चरित्रात्मक प्रबन्ध श्रीवाल्मीकि-रामायणके पाठमें भी सबका समानरूपसे अधिकार है—'ग्रन्थोऽयं सार्ववर्णिकः।' उसके सम्बन्धमें स्पष्ट कहा गया है—

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीया-
ज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्॥
(वा० रा० बाल० १।९९)

अर्थात् इस राम-चरित्रका पाठ करनेवाला ब्राह्मण विद्वानोंमें सर्वोच्च पदको प्राप्त करेगा। यदि क्षत्रिय इसका पाठ करेगा, तो उसे राज्यकी प्राप्ति होगी। वैश्यको वाणिज्यमें सफलता मिलेगी और शूद्रको अपने वर्गमें ऊँचा स्थान प्राप्त होगा।

और भी, ग्रन्थके अन्तमें फलश्रुति बतलाते हुए स्वयं महर्षिने ही लिखा है—

पूजनीयं पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम्।
सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥

इस प्राचीन एवं सर्वमान्य इतिहास-ग्रन्थका पाठमात्र करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है और लंबी आयु प्राप्त करता है।

फिर सबके अन्तमें भगवल्लोककी प्राप्ति तो बतायी ही गयी है, क्योंकि इस ग्रन्थका पाठ-पारायण करनेसे भगवान्‌की प्रसन्नता सदाके लिये प्राप्त हो जाती है, यथा—

प्रीयते सततं रामः स हि ब्रह्म सनातनः।
आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः॥

सबसे बड़ी विशेषता इस ग्रन्थमें यह है कि इसके प्रत्येक पद, प्रत्येक वाक्य तथा प्रत्येक प्रकरणमें ही शक्ति और लक्षण आदि काव्य-गुणोंकी प्रधानता नहीं है; अपितु इसके प्रत्येक अक्षरमें चरित्रनायक श्रीरामचन्द्रजू एवं उनके श्रीरामनामकी तरह अविरलरूपसे समस्त शक्तियाँ सन्निहित हैं। उसका प्रत्येक श्लोक एक-एक कार्यमें अनेक रूपोंसे लौकिक एवं पारमार्थिक प्रयोगोंका काम करता है। सब प्रकारके दुःखोंकी निवृत्तिके लिये इस ग्रन्थराजका अनुष्ठान किया जाता है, अतः यह अकेले ही समस्त दर्शनों एवं स्मृतियोंका कार्य पूर्णरूपसे करता है। इसकी महिमाके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा जाय, थोड़ा है; उसमें किसी प्रकारका अर्थवाद या अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। यह ग्रन्थरत्न सब प्रकारसे कल्याणकारी है, अतः इसका पाठ-पारायण सबको करना चाहिये।

धन्य है यह ग्रन्थ और धन्य हैं इसके वक्ता, श्रोता आदि!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# रामायणकी मर्म-वाणी

( लेखक—श्रीयुत अक्षयकुमार बन्द्योपाध्याय, एम्० ए० )

पूर्वजन्मके कर्म-प्रभावसे जो डाकू रत्नाकर थे, वे ही महापुरुषके सङ्गके प्रभावसे महर्षि वाल्मीकि हो गये । उनकी दस्युता साधुके प्राणोंपर आघात करने जाकर स्वयं ही साधुतामें परिणत हो गयी। वे इतने दिनोंतक कामिनी-काञ्चनमें आसक्त थे। दूसरोंको पीड़ित करने और उनका धन लूटनेमें ही उन्हें आनन्द मिलता था। उनकी वह आसक्ति और वह आनन्द महापुरुषकी कृपासे तिरोहित हो गये। वे सत्-चित्-शिवानन्द-रसका सन्धान पाकर उसमें निमज्जित हो गये। संसारको भूलकर, देहको भूलकर और अपने पूर्वजीवनकी सारी स्मृतियाँ मिटाकर वे अपनेमें ही डूब गये, एवं अपनी अन्तरात्माके भीतर ही निखिल-रसामृत-सिन्धुका आस्वादन करने लगे।

इस आस्वादनसे जब उनका हृदय परितृप्त हो गया तब उस आनन्दको संसारमें वितरित करनेके लिये उनका प्राण आकुल हो उठा। उन्होंने अपने हृदयद्वारा विश्वके हृदयमें जिस नित्य सत्-चित्-घन प्रेमानन्दमय रसनिर्झरकी दिव्यानुभूति प्राप्त की, उसी रस-धारासे जगत्के सभी श्रेणियोंके स्त्री-पुरुषोंके हृदयको पूत, परिप्लुत और सुस्निग्ध करनेकी लालसासे वे उन्मत्त हो गये। अपना आन्तरिक आनन्द वितरित करके विश्वके सकल नर-नारियोंका जीवन आनन्दमय बनानेकी महती कामनाने उनके चित्तको आविष्ट कर लिया। वे ध्यान-समाधिके द्वारा जिस ब्रह्मानन्दकी उपलब्धि करते थे, उसीको बाहर एक सर्वाङ्गसुन्दर स्वरूप देकर नर-नारियोंके सम्मुख उपस्थित करनेके लिये वे समाधिके उच्च शिखरसे साधारण ज्ञानभूमिपर अवतीर्ण हुए। विश्वके प्रति अहैतुक प्रेम, आनन्द-भिक्षु विभ्रान्तदृष्टि आत्मविस्मृत नर-नारीके प्रति हार्दिक समवेदना, सम्पूर्ण दुखी नर-नारियोंको अपने अन्तरानन्दका भागी बनानेके लिये आकुल आग्रह—इन सबने ध्यान-मग्न ऋषिका ध्यान भंग कर उन्हें मुखर कर दिया, उन्हें कवि बनाकर छोड़ा। सत्-चित्-शिवानन्द-प्रिया देवी सरस्वतीने महर्षिके मन और वाणीको आविष्ट कर लिया। महर्षि महाकवि हो गये,—विधाताके अचिन्तनीय विधानसे वे भारतीय संस्कृतिके आदि महाकवि हुए।

किन्तु विश्वके अन्तर्निहित सत्-चित्-शिवानन्दस्वरूपका जो परिचय ऋषिने अपने अन्तरके गभीर स्तरमें प्राप्त किया था, उसे भाषामें वास्तविकरूप देना एक कठिन समस्या थी। ऋषिके अन्तस्तलमें जो विश्वका स्वरूप प्रकटित हुआ, बाह्य जगत्में उसका आभास पाना भी कठिन था। यह जगत् सत्-चित्-शिवानन्दसे ही उद्भूत है, उसीमें स्थित है एवं उसीमें विलीन होनेके लिये चिरकालसे गतिशील है; सत्-चित्-शिवानन्द ही विश्वके उपादान हैं, और उन्होंने ही विश्वके भीतर अशेष-वैचित्र्यमय खण्ड-खण्ड रूप धारण कर रखे हैं; विश्वके समस्त व्यापार असत्, अकल्याण, अनित्य और सुख-दुःखके प्रवाहके बीच सत्य, शिव, नित्य परमानन्दको विभिन्न रूपोंमें प्रकट करनेके लिये, निखिल-रसामृत-सिन्धु अखण्ड चैतन्यको विभिन्न रसमय आकारोंमें अभिव्यक्त करनेके लिये ही हो रहे हैं—इस बातका जगत्की बाह्य आकृति-प्रकृतिमें तो कोई प्रमाण नहीं पाया जाता। इस जगत्का इतिहास तो जीवन-संग्रामका इतिहास है। दैवी शक्तिके ऊपर दानवी शक्तिके प्रभाव-विस्तारका इतिहास है। मानव-प्रकृतिके ऊपर काम, क्रोध और लोभके उद्दाम नृत्यका इतिहास है। इस जगत्में मनुष्य स्वार्थ, हिंसा, घृणा और भयके वशीभूत होकर सत्य, न्याय और धर्मको विसर्जन कर देता है। प्रेम, करुणा और उदारताका बलिदान कर देता है। कल्याणके मूलपर ही कुठाराघात करता है। मानव-जगत्में सत्य, प्रेम और पवित्रताका चित्र वे किस प्रकार अङ्कित करें? वे मनुष्यके पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवनमें सत्-चित्-शिवानन्दका आदर्श किस प्रकार प्रकट करें?

इस समस्यासे ऋषिका चित्त जब आन्दोलित हो रहा था उसी समय सत्य-प्रेमानन्द-मूर्ति देवर्षि नारद उनके समीप उपस्थित हुए। विश्वतश्चक्षु परमभागवत देवर्षि नारदने वाल्मीकिको बतलाया—'आपने जिस आदर्शकी अनुप्राणना अपने हृदयमें अनुभूत की है, वही आदर्श जगत्में कोशलराजकिशोर श्रीरामचन्द्रके रूपमें मूर्तिमान् हुआ है। श्रीरामचन्द्र वस्तुतः सत्-चित्-शिवानन्दमय विश्वात्माके घनीभूत विग्रह हैं। उन्होंने मानव-जगत्के पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवनमें सत्य, प्रेम एवं पवित्रताका, ज्ञान, आनन्द एवं कल्याणका तथा सब प्रकारके भेदमें अभेदकी प्रतिष्ठाका आदर्श उज्ज्वल-रूपमें प्रकटित करनेके उद्देश्यसे ही मानव-देह धारण किया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है। इस समय भी वे उसी देहमें विद्यमान हैं और अयोध्याके राज्यसिंहासनपर अधिष्ठित हैं।

मनुष्यके व्यष्टि-जीवनमें सत्-चित्-शिवानन्दकी उपलब्धिके लिये जैसे साधनाकी आवश्यकता है—काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिके साथ संग्राम करके उन्हें अभिभूत करनेकी तथा मल, विक्षेप एवं आवरणसे प्रयत्नपूर्वक चित्तको मुक्त करनेकी आवश्यकता है, उसी प्रकार मानव-समाजके समष्टि-जीवनमें भी आसुरी एवं राक्षसी शक्तियोंसे संग्राम करके उनके प्रभावसे समाजको मुक्त करना जरूरी हो जाता है। जिस समय आसुरी और राक्षसी शक्तियाँ समाजके भीतर राष्ट्रीय प्रभुत्व स्थापित करके शासन एवं दण्डका परिचालन करने लगती हैं, और जब दैवी शक्तियाँ संग्राममें पराभूत होकर आसुरी और राक्षसी शक्तियोंकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हो जाती हैं, उस समय मानव-जीवनके अन्तरमें निहित सत्-चित्-शिवानन्दके आदर्शपर पर्दा पड़ जाता है तथा समाजकी शिक्षा-दीक्षा, रीति-नीति और नियम-कानून आदि अहंकार, दम्भ, दर्प, काम, क्रोध एवं लोभका पोषण करने लगते हैं। ऐसी स्थितिमें धर्मकी ग्लानि और अधर्मका प्रादुर्भाव हो जाता है। उस समय विश्व-मानवकी अन्तरात्मा ही रजोगुण एवं तमोगुणके आवरणसे मुक्ति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे शक्तिशाली रूप ग्रहण करके समाजमें आविर्भूत होती है। वह एक ओर राक्षसी एवं आसुरी शक्तिके पापमय चंगुलसे राष्ट्रका उद्धार करती है और दूसरी ओर मानव-जीवनके नित्य-सत्य प्रेम एवं पवित्रतामय कल्याणका आदर्श लोक एवं समाजमें स्थापित करती है। इसी उद्देश्यसे श्रीरामचन्द्रका आविर्भाव हुआ। आसुरी एवं राक्षसी शक्तिके सजीव प्रतीक, विशाल साम्राज्यके अधीश्वर, अमित-प्रभाव-सम्पन्न रावणका वंश-सहित उच्छेद करके उन्होंने समग्र भारतमें मानवताकी विजय-पताका फहरा दी और भारतकी सभी जाति, सारे सम्प्रदाय एवं सभी श्रेणीके लोगोंके हृदयमें सत्-चित्-शिवानन्दकी महती प्रेरणा जाग्रत् कर दी।

देवर्षि नारदने श्रीरामचन्द्रजीकी समुज्ज्वल जीवन-कथाका संक्षेपमें वर्णन करके, उन्हींको नायकरूपसे स्वीकार करके महाकाव्यकी रचना करनेके लिये महर्षि वाल्मीकिको उत्साहित किया। वाल्मीकिजी अपना अभीष्ट मूर्तिमान् आदर्श प्राप्त करके कृतार्थ हो गये। श्रीरामचन्द्रजीके जीवनके विचित्र भाव-प्रवाहका और उनके जीवनके साथ विभिन्नरूपसे सम्बद्ध नर-नारियोंके चरित्रोंका श्रद्धा, प्रेम और सहानुभूतिके साथ ध्यान करते-करते श्रीवाल्मीकिजीका कविहृदय विकसित हो उठा तथा वे एक नवीन छन्द और नवीन भाषामें विचित्र रस-माधुर्यसे पूर्ण रामायण-महाकाव्यकी रचना करनेमें प्रवृत्त हो गये।

पवित्र इक्ष्वाकु-वंशमें आर्य-नरपति दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञके फलरूपसे श्रीरामचन्द्रजी तथा उनके कायव्यूह-स्वरूप तीन भाइयोंने जन्म लिया था और उनका सारा जीवन ही यज्ञमय था। सत्य, प्रेम, पवित्रता और विश्व-कल्याणके आदर्शके लिये अपनी समस्त आन्तरिक और बाह्य सम्पदाको होम देना ही उनके जीवनका व्रत था। पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवनमें उनके जीवनका नियामक एक ही आदर्श था। मनुष्य सत्-चित्-शिवानन्दका ही मूर्तिमान् सान्त विग्रह है। सत्-चित्-शिवानन्दरूप आदर्शको विभिन्न कर्म-कलापके द्वारा अलग-अलग रूप प्रदान करनेके लिये ही मनुष्यका जन्म हुआ है तथा आन्तरिक एवं बाह्य प्रकृतिकी समस्त विरोधी शक्तियोंको ज्ञान और वीर्यके द्वारा पराभूत करके जीवनके प्रत्येक विभागमें उक्त आदर्शको उज्ज्वल बनाना ही मनुष्यका वास्तविक धर्म है—इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन श्रीरामचन्द्र और उनके भाइयोंने अपने जीवनके द्वारा किया और महर्षि वाल्मीकिजी उनके प्रत्येक कर्मका तात्पर्य अतुलनीय कवित्वके साथ वर्णन करनेके लिये अग्रसर हुए।

पारिवारिक जीवनमें श्रीरामचन्द्र एक आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श स्वामी तथा अन्तिम जीवनमें आदर्श पिता थे। मनुष्यके पुत्रत्व, भ्रातृत्व, स्वामित्व और पितृत्वका अर्थ केवल स्नेह और ममताका दासत्व ही नहीं है; माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री-पुत्र-कन्या और आत्मीय स्वजनोंके लिये भोग-विलासकी सामग्री जुटानेमें ही इन सम्बन्धोंकी सार्थकता नहीं है; इन सबकी सार्थकता तो मानव-जीवनके चरम आदर्शको जीवनमें प्रतिबिम्बित करनेके साधनरूपसे ही है—इस बातको श्रीरामचन्द्रजीने अपने पारिवारिक जीवनके प्रत्येक व्यवहारमें असाधारण दृढ़ता एवं कोमलताके साथ प्रकट किया है। उनके स्नेह, ममता, सेवा-नैपुण्य, अकृत्रिम भक्ति और प्रेम तथा आदर-सत्कारसे सभी मुग्ध थे। किन्तु पिताके सत्यकी रक्षाके लिये, पिताके धर्म और जीवनको अक्षुण्ण एवं निर्मल रखनेके लिये वे युवराज-पदमें अभिषिक्त होनेके दिन ही पिताको मृत्युके मुखमें छोड़कर, माताको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शोकातुर करके, आत्मीय स्वजनोंको विरह-व्यथासे व्याकुल करके तथा समस्त पुरजन एवं प्रजावर्गको रुलाकर वल्कल-वस्त्र धारण करके वनको चले गये। उनकी नव-विवाहिता पत्नी जनकराज-दुलारी सीता अपने वनवासी पतिके सब प्रकारके क्लेशोंको बँटानेके लिये तथा सभी परिस्थितियोंमें पतिकी सहधर्मिणी होनेके आदर्शको जीवनमें परिणत करनेकी आकाङ्क्षासे ही सब प्रकारकी विघ्न-बाधाओं, भय-भावनाओं एवं सगे-सम्बन्धियोंके निषेध-वाक्योंकी भी अवहेलना करके पति-के साथ चली गयीं। लक्ष्मणने भी भ्रातृप्रेमका उज्ज्वल आदर्श जगत्‌को दिखा दिया। श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें अपना जीवन उत्सर्ग करनेके लिये उन्होंने भी माता और पत्नीको शोक-समुद्रमें डुबाकर, राज्य एवं ऐश्वर्यको लात मारकर श्रीराम और सीताजीका अनुसरण किया। सत्य, प्रेम और पवित्रताके आदर्शके सामने देह और इन्द्रियोंके भोग, राष्ट्रीय और सामाजिक प्रभाव एवं गौरव तथा आत्मीय स्वजनोंके स्नेह और ममताके आकर्षणको बात-की-बातमें बलिदान करके उन्होंने दिखा दिया कि पिता-माता पिता-माताके लिये प्रिय नहीं हैं, आत्माके लिये—आत्मिक आदर्शके लिये ही माता-पिता प्रिय हैं; आत्मीय स्वजन आत्मीय स्वजनोंके लिये प्रिय नहीं हैं, वे आदर्शके लिये ही प्रिय हैं; देह और इन्द्रियाँ देह और इन्द्रियोंके लिये प्रिय नहीं हैं, वे आदर्श-प्राप्तिके साधनरूपसे ही प्रिय हैं; समाज, राष्ट्र और परिवार—ये सब आदर्श जीवनकी प्राप्तिके साधन-क्षेत्ररूपसे ही प्रिय हैं; इनमेंसे किसीकी भी स्वतन्त्र सार्थकता नहीं है।

श्रीरामचन्द्रजीको वनवासके सङ्कल्पसे च्युत करनेके लिये की गयी सारी चेष्टाएँ जब व्यर्थ हो गयीं, तब भरतजीने अपने जीवनमें प्रकारान्तरसे सत्य-शिव-सुन्दरके आदर्शको मूर्तिमान् करके दिखा दिया। श्रीरामचन्द्रजीकी पादुकाओंको सिंहासनपर स्थापित करके उन्होंने संन्यासीके वेषमें अपनेको उनकी सेवामें लगा दिया। राजसिंहासनपर स्थापित की हुई पादुकाओंकी सेवा करना कोई सहज काम नहीं था। इन पादुकाओंकी सेवाका अर्थ था—एक विशाल साम्राज्यकी सेवा। वे राजत्वके अभिमानको पूर्णतया मिटाकर, भोग और ऐश्वर्यकी आसक्तिसे सर्वथा मुक्त रहकर तथा संन्यासीका वेष और संन्यासीका मन लेकर श्रीरामचन्द्रजीके आज्ञापालक सेवकके रूपमें राज्यकी सुन्दर व्यवस्था करने लगे। इस प्रकार सारे संसारने भरतके अंदर यह संन्यासी और सम्राट्‌का अपूर्व सम्मेलन देखा। वे भोगमें संन्यासी और कर्ममें सम्राट् थे, निरभिमानतामें संन्यासी और दृढ़तामें सम्राट् थे तथा अपने आराध्यके ध्यानमें नित्य-समाहित संन्यासी और विशाल राज्यमें शान्ति, सुव्यवस्था और समृद्धिकी स्थापना करनेमें सब ओर दृष्टि रखनेवाले सम्राट् थे। श्रीमान् भरतके जीवनको लेकर ऋषि-कवि वाल्मीकिने एक आत्मत्यागी आर्य-सम्राट्‌के सनातन आदर्शको बड़ी निपुणतासे अङ्कित किया है।

श्रीरामचन्द्रने पिताके आध्यात्मिक जीवनके प्रति पुत्रोचित कर्तव्यका पालन करनेके लिये अयोध्याके राज्यसे निर्वासन स्वीकार करके भी देश, जाति और विश्वके मानवोंके प्रति एक न्याय-धर्मनिष्ठ आदर्श-परायण क्षत्रिय-वीरका जो कर्तव्य है, उससे मुँह नहीं मोड़ा। जहाँ भी दुर्बलपर सबलका अत्याचार हो, धर्मके ऊपर अधर्माचारीका आघात हो, तपस्वीकी तपस्यामें विघ्न होता हो, ब्राह्मणोंके यज्ञ-यागादिके सम्पादनमें अड़चन आती हो, निरीह गृहस्थोंकी सम्पत्ति लूटी जाती हो, भोगकामियोंका परस्पर कलह होता हो और दैवी शक्तिके ऊपर आसुरी या राक्षसी शक्तिका उपद्रव हो, वहींपर क्षत्रिय-वीरका कर्मक्षेत्र होता है; उस जगह निश्चेष्ट रहना क्षत्रिय-राजपुरुषके लिये स्वधर्मकी अवहेलना और अपने आदर्शसे गिरना ही है। इन सब क्षेत्रोंमें समाजके प्रति शक्तिशाली धार्मिक पुरुषका और भी अधिक उत्तरदायित्व है। श्रीराम और लक्ष्मण युवावस्थाके आरम्भमें ही इस क्षात्रधर्ममें दीक्षित हुए थे। उस समय उनके दीक्षा देनेवाले थे—उग्रतपा क्षत्रिय-ऋषि विश्वामित्र। इस स्वधर्मके पालनके लिये उन्होंने उन ऋषिकी कृपासे ही अनेकों दिव्य अस्त्र प्राप्त किये थे। वे भारतवर्षके विभिन्न वनोंमें निर्भीक हृदयसे विचरने लगे और सभी जगह इस सामाजिक कर्तव्यका पालन करनेके लिये तैयार रहे। आर्य-संस्कृतिके ये दोनों प्रतिनिधि सती-शिरोमणि सीता-देवीके साथ जिस वन्यप्रदेश, जिस पर्वतीय भूमि या जिस जनपदमें जाते थे, उसी जगह सत्-चित्-शिवानन्दकी विजय-पताका फहराने लगती थी, आर्यभावोंकी धारा बहने लगती थी तथा भारतकी सभी जातियाँ, सभी श्रेणियाँ और सभी सम्प्रदाय एक प्राण-सूत्रमें ग्रथित हो जाते थे। कौन जानता था कि विधाताके विधानसे श्रीराम, सीता और लक्ष्मणके वनवास-की यह व्यवस्था आर्य-भारतके संगठनकी भित्तिको सुदृढ़ करनेके उद्देश्यसे ही हुई है! कौन जानता था कि सम्पूर्ण मानव-जातिके भाग्यने ही वेद और वेदान्तोंके महान् आदर्श-को सर्व-साधारणके लिये सुलभ करनेके उद्देश्यसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कैकेयीके श्रीराम-स्नेहसे स्निग्ध हृदयमें, ऐसी निष्ठुर कठोरताका सञ्चार किया है। रामायण-महाकाव्यकी रचनाके प्रसङ्गसे ऋषि-कवि वाल्मीकिने समस्त भारतमें आर्य-आदर्शके विस्तारके इतिहासका—अनार्य जातियोंके साथ आर्य-जातिके मिलनके इतिहासका अर्थात् अर्थ और कामके सेवनमें ही लगी हुई विभिन्न प्रकृतिवाली जडभावनिष्ठ सभ्य, अर्धसभ्य और असभ्य—सभी प्रकारकी जातियोंको सत्-चित्-शिवानन्द-के आदर्शमें दीक्षित करनेके इतिहासका—अनुपम रस-माधुर्य-के साथ वर्णन किया है।

भारतकी, पृथ्वीकी और विश्वकी अन्तरात्मा जिस महान् आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिये श्रीरामचन्द्र-जैसे लोकोत्तर महापुरुष-का आवाहन करके उन्हें इस जगत्में लायी, उसके मार्गमें उस युगमें प्रधान अन्तराय थी—एक विराट् राक्षसी सभ्यता, जिसका अधिनायक अतुलित पराक्रमशाली राक्षसराज रावण था। रावणका साम्राज्य बहुत विशाल था। दक्षिण-भारतका अधिकांश भाग उसके साम्राज्यके अन्तर्गत था। भारतमें सर्वत्र ही उसकी अबाध गति थी। अपनी शक्तिके द्वारा इन्द्र, वायु, वरुण और अग्नि आदिपर आधिपत्य जमाकर वह जल, स्थल और आकाशमें समानरूपसे विहार करता था। सुख, अर्थ और प्रभुत्वके आदर्शका संग्राम-शक्तिके द्वारा उत्कर्ष स्थापित करके उसने लोकमें मानवकी अन्तरात्माके आदर्शको दबा दिया था। इस राक्षसी सभ्यताका ध्वंस किये बिना मानव-समाजमें विश्व-मानवके आत्मिक आदर्शकी प्रतिष्ठा करना सम्भव नहीं था। अतः श्रीरामचन्द्रके जीवन-व्रतको सार्थक करनेके लिये एक विराट् ध्वंस-यज्ञकी आवश्यकता थी। किन्तु दिग्विजय, साम्राज्य-विस्तार अथवा अन्यान्य जातियों-की भोग-सामग्रीको लूटनेके उद्देश्यसे युद्धमें पड़ना अथवा किसी जाति या व्यक्तिका ध्वंस करना रघुनाथजीके लिये सम्भव नहीं था; उसे तो वे अपने जीवनके आदर्शपर निष्ठुर आघात ही समझते। जिस आदर्शके लिये वे अपने जीवनका बलिदान करने, अपने प्राणप्रिय स्वजनोंको त्यागने और सब प्रकारके क्लेशोंको वरण करनेके लिये तैयार थे, उसी आदर्शके लिये क्या वे दूसरोंके जीवनकी बलि देने, दूसरोंको कष्ट देने अथवा दूसरोंकी सौभाग्य-सम्पत्तिपर आघात करनेमें अपनी शक्तिको लगा सकते थे?

उनके वनवास-कालके तेरहवें वर्षके अन्तमें अकस्मात् उनके जीवनादर्शपर एक ऐसा आघात उपस्थित हुआ कि जिसके कारण उन्हें भीषण संग्राममें प्रवृत्त होना तथा उस समयके सबसे प्रबल अनार्य-साम्राज्यका ध्वंस करना पड़ा। राक्षस-कुलकी स्वेच्छाचारिणी ललना शूर्पणखाने कामार्त्त होकर सीताजीके सामने ही श्रीराम और लक्ष्मणके आगे एक अवैध प्रस्ताव रखा और अपनी मनोरथ-पूर्त्तिमें बाधक समझकर वह सीताजीको मारनेके लिये तैयार हो गयी। आर्य-युवक राम और लक्ष्मणने घृणापूर्वक उसके प्रस्तावको ठुकरा-कर उसका तिरस्कार किया। इस तिरस्कारका बदला लेनेके लिये राक्षसराज रावण राम और लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें कपटपूर्वक साधुवेषमें आकर सीतादेवीका अतिथि बना और इस आतिथ्य-रूप सुयोगसे लाभ उठाकर उन्हें हर ले गया। किसी अनार्य-के द्वारा एक आर्य-नारीका अपहरण समग्र आर्यजातिके धर्म और मर्यादाके प्रति भीषण आक्रमण ही समझा जाता है। जिनकी नाड़ियोंमें आर्य-रक्त बहता है, उनके लिये सती स्त्रीपर अत्याचार स्वभावसे ही असह्य होता है। जो पति अपनी सह-धर्मिणीको किसी दुष्टके आक्रमणसे बचानेमें असमर्थ है, आर्य-दृष्टिसे वह 'पुरुष' कहलानेयोग्य नहीं है। श्रीराम और लक्ष्मण सीताजीकी खोजमें लग गये। उन्हें इस बातका पता लगा कि एक सुविशाल साम्राज्यके अधीश्वर राक्षसराज रावणने ही यह कुकर्म किया है। अपराधी कितना ही प्रबल या पराक्रमी हो, उसे यथोचित दण्ड देनेकी व्यवस्था न करना कायरता है। खोजके समय सुग्रीव और हनुमान् आदि वानरोंसे उनकी भेंट हुई। वानर-राज्यके अधिपति महा-पराक्रमी वालीने अपने छोटे भाई सुग्रीवको बिना विचार किये ही राज्यसे निकाल दिया था। समस्त राज्यके सहित सुग्रीवकी पत्नीपर भी उसने अधिकार कर लिया था। रामचन्द्र-जीने पीड़ित, निर्वासित एवं विषादग्रस्त सुग्रीवका पक्ष लिया और युक्तिपूर्वक वालीका वध करके सारी वानर-जातिको सुग्रीव और वालिपुत्र अङ्गदके नेतृत्वमें संगठित किया। इससे विशाल वानर-जातिका आर्य-आदर्शके प्रति अनुराग हो गया और वह श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर हो गयी। इन दो आर्य-युवकोंने संगठनकी अलौकिक शक्तिके द्वारा बहुत ही थोड़े समयमें इस अर्धसभ्य अनार्य-जातिको राक्षस-सम्राट्के विरुद्ध संग्राम करनेके योग्य बना लिया।

महावीर हनुमान्ने असाधारण कौशलसे लङ्कामें पहुँचकर सीतादेवीको खोज निकाला और उन्हें यह संवाद दिया कि श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही राक्षस-कुलका ध्वंस करके उनका उद्धार करेंगे। पत्थरोंका सेतु बाँधकर लङ्काद्वीपपर आक्रमण करनेका मार्ग प्रशस्त किया गया तथा बड़े ही अद्भुत


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रण-कौशलसे राक्षस-शक्तिका ध्वंस करके आर्यवीर श्रीरामचन्द्र-ने सीतादेवीका उद्धार किया एवं रावणके छोटे भाई धर्म-परायण विभीषणको राक्षस-साम्राज्यके अधीश्वरके पदपर प्रतिष्ठित करके राक्षस-जातिको आर्य-आदर्शमें दीक्षित किया। इस प्रकार सारा भारतवर्ष सत्-चित्-शिवानन्दके आदर्शमें दीक्षित हो गया। श्रीरामचन्द्रने इस विशाल देशके अन्तिम प्रान्ततक आर्य-साधनाके सुमहान् आदर्शका प्रचार करके भी आर्य-साम्राज्यके विस्तारकी चेष्टा नहीं की, उन्होंने किसी भी देशको अयोध्याके राज्यमें नहीं मिलाया तथा किसी जातिको आर्य-जातिके दासत्वकी शृङ्खलामें भी नहीं बाँधा। श्रीरामचन्द्र-की लङ्का-विजय राष्ट्रिय विजय नहीं थी, वह सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विजय थी।

समस्त भारतको आध्यात्मिक दृष्टिसे आर्य-भारतमें परिणत करके श्रीराम, सीता और लक्ष्मण चौदह वर्ष बीत जानेपर अयोध्यामें लौटे। महाकवि वाल्मीकिने भिक्षु-वेषधारी रामचन्द्र-के द्वारा राक्षस-जातिके पराभवका वर्णन करके इस तत्त्वको सुन्दर रूपसे प्रकट किया है कि जड सभ्यता स्वयं ही नष्ट होनेवाली है, जो जातियाँ ऐश्वर्य, प्रभुत्व और ऐहिक सुख-भोगको आदर्श मानकर उन्नतिके मार्गपर अग्रसर होती हैं, वे उन्नतिके साथ-साथ ध्वंसके मार्गपर भी बढ़ती रहती हैं; तथा सत्-चित्-शिवानन्दके द्रोही अहङ्कार, दम्भ, काम और हिंसा आदि आसुर एवं राक्षस-भाव जिन जातियोंके अस्थि-मज्जागत हो जाते हैं, विश्वका नियमन करनेवाली महाशक्तिके कालोचित विधानके द्वारा उनको दण्ड मिलना अनिवार्य है। जब रामचन्द्रजी अयोध्या लौटे तब राजयोगी भरतने उनकी धरोहर उनके चरणोंमें समर्पित कर दी। रामचन्द्रजीने राष्ट्र-का अधिनायकत्व ग्रहण किया तथा भारतमें 'रामराज्य' प्रतिष्ठित हुआ। अनार्य राजाओंने उनके अभिषेकोत्सवमें सम्मिलित होकर सार्थकनामा आर्य-सम्राट्की राष्ट्र-नीति और समाज-नीतिका प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त किया।

आर्य-राष्ट्रनीतिमें राजा प्रजावर्गकी समष्टि-आत्माका प्रतिनिधि है; प्रजारञ्जन ही उसके जीवनका व्रत है; प्रजावर्ग-में केवल शान्ति एवं व्यवस्थाकी स्थापनाके प्रति ही नहीं, बल्कि उनके सभी प्रकारके कल्याण-विधानके प्रति भी राजाकी जिम्मेवारी है। प्रजागण राजाको अपने हृदयके आराध्य देवता—विश्वके अन्तर्यामी नियन्ताके प्रत्यक्ष विग्रहरूपसे पूजते हैं और उस परम देवताके सभी सद्गुण और सभी सच्छक्तियोंको उसके भीतर प्रतिबिम्बित देखनेकी आशा रखते हैं। राज्यके भीतर कहीं पापकी प्रबलता होनेपर, कहीं दुर्भिक्ष या महामारी होनेपर, कहीं संघर्ष, अशान्ति या अकालमृत्यु होनेपर तथा कहीं प्रजागणके मानव-जीवनके आध्यात्मिक आदर्शसे च्युत होनेपर सत्पुरुष राजाको ही उसका उत्तरदायी मानते हैं। वे ऐसा निश्चय करते हैं कि राजाके जीवनमें अवश्य कहीं अधर्मको आश्रय मिला है। राजा जिस प्रकार प्रजाका निर्णायक है, वैसे ही प्रजा भी राजाकी निर्णायिका है। राजाके पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रिय जीवनके प्रत्येक व्यापारपर प्रजाकी तीव्र दृष्टि रहती है; क्योंकि उसकी जीवन-धारापर ही सारे राष्ट्रका हिताहित अवलम्बित है। प्रजागण राजाके जीवनके सम्बन्धमें कैसी आलोचना करते हैं—गुप्तचरोंके द्वारा इसका संवाद प्राप्त करना तथा उसके अनुसार अपने आचरणका संशोधन या अपनेको दण्ड देना राजाका विशेष कर्तव्य माना जाता है। राजाका जीवन आदर्श होनेपर तथा राजा और प्रजाके बीचमें सुमधुर सम्बन्ध प्रतिष्ठित रहनेपर ही राष्ट्रका अभ्युदय होता है। ऐसे राजाके राज्यमें ही वस्तुतः प्रजा स्वाधीन कही जा सकती है तथा उसमें समता, मैत्री, प्रेम और धर्म सुन्दर रूपमें विद्यमान कहे जा सकते हैं।

श्रीरामचन्द्रजीने अपने व्यक्तिगत जीवनमें भीषण दण्ड ग्रहण करके राजजीवनके इस महान् आदर्शकी अति उज्ज्वल-रूपसे लोकमें प्रतिष्ठा की। गुप्तचरके द्वारा प्रजावृन्दकी मृदु समालोचनाका संवाद पाकर उन्होंने अपनी प्राणप्रिया सहधर्मिणी सती-शिरोमणि सीताको निर्वासित कर दिया। सीताको वनवास देना वस्तुतः अपनेको प्राणदण्डकी अपेक्षा भी कठोर दण्ड देना था। इस प्रकार राजा और रानीने अपराधके बिना ही मृत्युदण्ड स्वीकार करके प्रजा-रञ्जनका महान् आदर्श संसारको दिखला दिया। जन-साधारणमें स्वधर्म-निष्ठाको अक्षुण्ण रखनेके लिये धर्मनेता और समाज-नेताओंके आदेशसे महाराज श्रीरामचन्द्रने स्वधर्मकी अवहेलना करनेवाले अपने भक्त शूद्र-तपस्वीके प्राणदण्डका विधान किया। अन्तमें राजकीय कर्तव्यके अनुरोधसे ही प्राणाधिक भाई लक्ष्मणको भी त्याग दिया। आदर्शकी सेवाके लिये किस प्रकार समस्त स्नेह और ममता, समस्त भक्त-वात्सल्य, समस्त सुख-सौभाग्य और समस्त प्रियजनोंको भी त्याग देना होता है—श्रीरामचन्द्रजीका जीवन चिरकालके लिये इसका दीपस्तम्भ बना हुआ है।

महर्षि वाल्मीकिकी असाधारण कवि-प्रतिभासे निकली हुई वाङ्मयी भागीरथी युग-युगान्तरसे भारतके प्रत्येक नर-नारीके द्वारपर महाभावमयी लोक-पावनी रस-धारा प्रवाहित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कर रही है। यह अमृतवाहिनी जाह्नवी संसारके कर्म-तरङ्गमय चिर-चञ्चल महासमुद्रके साथ संसारातीत सत्-चित्-शिवानन्दमय नित्य-स्थिर हिमालयका योग किये हुए है। भारतीय साधनाकी मर्मकथा इसके भीतर रसस्निग्ध स्रोतके रूपमें बह रही है। रामायणकी संगीत-माधुरी मुक्तकण्ठसे मनुष्यको मनुष्य-जीवनके उच्चतम आदर्शकी दीक्षा प्रदान करती है, कर्मानन्दके भीतर ब्रह्मानन्दका पथ-प्रदर्शन करती है तथा मनुष्यके हृदयकी जड़ता, नीचता, शठता, शुद्धता और जघन्यताको धोकर उसमें दिव्य जीवनकी चेतनाको जाग्रत् कर देती है। रामायण-महाकाव्य भारतीय आर्य-सभ्यताके अन्तर्हृदयकी अमर प्रतिच्छवि है। रामायणको उपनिषद्के इस महाकाव्यका कवित्वपूर्ण भाष्य कहा जा सकता है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥

# रामावतार और कृष्णावतारके कार्य-क्रममें विभिन्नताएँ

( लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी चक्रवर्ती )

कतिपय सज्जन श्रीरामचन्द्रजीको १२ कला और श्रीकृष्णजीको १६ कलाका पूर्ण अवतार मानते हैं। किंतु मेरे मतमें श्रीरामावतार और श्रीकृष्णावतार दोनों ही पूर्णावतार थे। सूर्य १२ राशियोंमें पूर्ण है। चन्द्रमा १६ कलाओंमें पूर्ण है। हैं दोनों ही पूर्ण। जैसे आयुर्वेदमें दो प्रकारके तोले माने गये हैं—एक १२ माशोंका, दूसरा १६ माशोंका। जो १२ माशोंका तोला मानते हैं, वे ८ रत्तियोंका माशा मानते हैं। इस प्रकार एक तोलेमें १२×८=९६ रत्तियाँ हुईं। इसके विपरीत जो लोग १६ माशोंका तोला मानते हैं, वे ६ रत्तियोंका माशा मानते हैं। इस तरह भी एक तोलेमें १६×६=९६ रत्तियाँ ही हुईं। यहाँ भी दोनोंकी पूर्णता है।

दोनों अवतारोंमें जो विलक्षणता है, वह इस प्रकार है—

१. श्रीरामचन्द्रजी मर्यादापुरुषोत्तम थे, किंतु श्रीकृष्णजी मर्यादासे परे थे। जैसे राम एकपत्नीव्रती थे, किंतु श्रीकृष्ण अनेक नारियोंके पति थे।

२. रामावतारमें शेषावतार लक्ष्मण छोटे भाई थे, किंतु कृष्णावतारमें शेषावतार बलरामजी बड़े भाई थे।

३. रामचन्द्रने सूर्य-पुत्र सुग्रीवकी रक्षा की और इन्द्र-पुत्र वालीको मारा; किंतु कृष्णने सूर्य-पुत्र कर्णको मारा और इन्द्र-पुत्र अर्जुनकी रक्षा की।

४. रामचन्द्रजीने ताड़का राक्षसीको एक ही बाणसे मारा था, किंतु कृष्णजीने पूतना राक्षसीको उसका विषभरा दूध पीकर मारा था।

५. श्रीरामचन्द्रजीको सीताहरण एवं लक्ष्मणजीकी मूर्च्छाके समय बनावटी मोह हुआ था, किन्तु श्रीकृष्णजीको बलभद्रजीसे लेकर ५६ करोड़ यदुवंशियोंतकके वियोगके समय भी मोह-शोक नहीं हुआ। बल्कि उन्होंने मोहप्राप्त अर्जुनको गीतारूपी महान् अमृत पिलाकर उनके मोहको नष्ट किया। साथ ही सांसारिक जीवोंके उद्धारके लिये, उन्हें पूर्णानन्दकी प्राप्ति करानेके लिये तथा उनके सम्पूर्ण दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्तिके लिये वे उस गीतारूपी अमृतको सदाके लिये छोड़ गये—'पी ले, जिसका जी चाहे।'

६. श्रीरामचन्द्रजीने शूर्पणखाकी नाक कटवाकर उसे कुरूप बना दिया, किंतु श्रीकृष्णने कुब्जाके कुबड़ेपनको दूर कर सुरूप बना दिया।

७. गीतामें जगह-जगह श्रीकृष्णभगवान्ने अपनेको पुरुषोत्तम ( परब्रह्म ) कहकर वर्णन किया है, किंतु श्रीरामचन्द्रजीने अपने ईश्वरत्वको प्रकट नहीं किया।

८. श्रीरामजी सूर्यवंशी थे, किंतु श्रीकृष्णजी चन्द्रवंशी थे।

मेरे भावानुसार कार्यक्रमके उल्टे रहनेपर भी जो रामावतार है, वही कृष्णावतार है। दोनों पूर्णावतार थे। कोई-कोई शङ्का करते हैं कि एक जगह ( जैसे अयोध्या अथवा गोकुलमें ) पूर्णावतार होनेसे दूसरी जगह परमात्माका अभाव होगा। ऐसी शङ्का नासमझीसे की जाती है। उसका उत्तर यह है कि परमात्मा सर्वशक्तिमान् हैं। उनमें अवतार लेनेपर किसी प्रकारकी कमी नहीं आती। वे एकसे अधिक स्थानोंमें पूर्णरूपसे अभिव्यक्त रह सकते हैं। निम्नलिखित श्रुति इसी सिद्धान्तका समर्थन करती है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वह ( परमात्मा ) पूर्ण है, यह भी पूर्ण है, पूर्णसे पूर्ण निकल जानेपर भी शेष पूर्ण ही रहता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आदिकवि वाल्मीकि

( लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, साहित्याचार्य )

तामस-हारिणी तमसा कल-कल करती हुई बह रही थी, उसका पावन तट वृक्षोंकी स्निग्ध छायासे शीतल था। तीर्थमें न तो पङ्क कलङ्ककी तरह चिपका था और न शैवाल दुष्टजनोंकी चित्तवृत्तिके समान उसे कलङ्कित कर रहा था। मनोऽभिराम जल सज्जनोंके चित्तकी भाँति नितान्त प्रसन्न था। महर्षि वाल्मीकिके हृदयको इस दृश्यने लुभा लिया। उन्होंने स्नान कर, वल्कल पहन इस प्रकारके शान्त वनमें भ्रमण करना शुरू किया। इसी समय क्रौञ्चीके करुण स्वरने उनकी दयादृष्टिको अपनी ओर खींचा। उनके सामने क्रौञ्चका मृत कलेवर खूनमें लथपथ हो रहा था। इस दृश्यको देखकर ऋषिके कोमल चित्तमें नैसर्गिकी करुणाका स्रोत प्रवाहित होने लगा—सुप्त करुणा इस दृश्यसे बलात् जाग पड़ी। अकस्मात् उनके मुँहसे यह श्लोकात्मक वाग्-वैखरी प्रस्खलित हुई।

**मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।**
**यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥**

सम-अक्षरयुक्त चार पादोंसे मण्डित 'श्लोक' का जन्म हो गया। संस्कृत काव्यकुमारका यही उदय है। महाकाव्यकी भाविनी परम्पराका यही मूलस्रोत है।

× × × ×

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं तथा वाल्मीकीय रामायण आदि महाकाव्य है। कविके सच्चे रूपकी कल्पना हमने वाल्मीकिसे सीखी है और महाकाव्यके महत्त्वको हमने रामायणसे ग्रहण किया है। यदि वाल्मीकि न होते तो हम कविके वास्तविक स्वरूप तथा अभिराम आदर्शको कहाँसे सीखते? और यदि उनकी प्रसन्न-गम्भीर रामायण हमें नहीं मिलती तो हम महाकाव्यके माहात्म्य तथा गौरवको कैसे पहचानते? कवि और काव्यके विशुद्ध रूपकी कसौटी है—आदिकविका परम पावन, मननीय तथा माननीय आदिकाव्य रामायण। कविका पद ऋषिके समान है। ऋषिका भी अर्थ है—द्रष्टा। वस्तुओंके विचित्र भाव, धर्म तथा तत्त्वको भलीभाँति अवगत करनेवाला व्यक्ति ही 'ऋषि' के महनीय पदका वाच्य है। 'कवि' का भी अर्थ है—क्रान्त-दर्शी 'कवयः क्रान्तदर्शिनः'—अर्थात् नेत्रोंके व्यापार-से दूर रहनेवाले अतीत एवं भविष्यके पदार्थों-को यथार्थरूपसे देखनेवाला पुण्यात्मा पुरुष। परंतु दोनोंमें थोड़ा अन्तर है। वस्तु-तत्त्वके दर्शन होनेसे ऋषित्वकी प्राप्ति हो जाती है; परंतु जबतक वह अपने अनुभूत वस्तु-तत्त्वको शब्दोंके द्वारा व्यक्त नहीं करता, तबतक वह 'कवि' नहीं कहला सकता। कविकी कल्पनामें 'दर्शन' के साथ 'वर्णना' का भी मनोरम सामञ्जस्य है और इस कल्पनाके जनक स्वयं महर्षि वाल्मीकि ही हैं। उन्हें वस्तुओंका निर्मल दर्शन नित्यरूपसे था; परन्तु जबतक 'वर्णना' का उदय नहीं हुआ, तबतक उनकी 'कविता' का प्राकट्य नहीं हुआ। 'मा निषाद' पद्यके उच्चारण करते ही ब्रह्मा स्वयं ऋषिके सामने उपस्थित हुए और कहने लगे—महर्षे! तुम्हारी आर्ष चक्षु या प्रातिभ चक्षुका अब उन्मेष हो गया है। तुम आद्यकवि हो। भवभूतिके स्मरणीय शब्दोंमें—

**ऋषे प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि। तद् ब्रूहि रामचरितम्। अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभाति। आद्यः कविरसि।**

कविके यथार्थ रूपको वाल्मीकिके दृष्टान्तके द्वारा प्रसिद्ध समालोचक-शिरोमणि भट्ट तौतने इस पद्यमें कितनी सुन्दरतासे समझाया है—

**दर्शनाद् वर्णनाच्चाथ रूढा लोके कविश्रुतिः।**
**तथा हि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुनेः।**
**नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना॥**

संस्कृत काव्य-धाराकी दिशा तो उसी अवसरपर निर्दिष्ट हो गयी, जब प्रेम-परायण सहचरके आकस्मिक वियोगसे सन्तप्त क्रौञ्चीके करुण निनादको सुनकर वाल्मीकिके हृदयका शोक श्लोकके रूपमें छलक पड़ा था। काव्यका जीवन रस है, काव्यका आत्मा रस है—इसे साहित्य-संसारने तभी सीख लिया, जब आदिकविकी आदि कविताके रसामृतका उसने पान किया; बारंबार प्रीयमाण तथा नितान्त विस्मित शिष्योंने आश्चर्यभरे शब्दोंमें इस रहस्यभूत तत्त्वको पहचाना—

**समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा।**
**सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः॥**

( १।२।४० )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


महाकवि कालिदासने इसी तथ्यकी अभिव्यक्ति की है—

तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥
( रघुवंश १४ । ७० )

इन्हीं सूत्रोंको पकड़कर आनन्दवर्धनने स्पष्ट शब्दोंमें 'प्रतीयमान' अर्थके सामान्यरूपेण काव्यमें मुख्य होनेपर भी रसको ही काव्यका आत्मा स्वीकार किया है—

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥
( ध्वन्यालोक १ । ५ )

आदिकविका यह समग्र काव्य ही कविताके सच्चे रूपको प्रकट कर रहा है। वाल्मीकीय-रामायण मनोरम उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओंका एक विराट् भव्य प्रासाद है; परंतु उसके बाह्य आवरणोंमें उसका विशुद्ध रसमय हृदय भलीभाँति झलक रहा है। इतने स्पष्टरूपमें कि उसकी सत्ताका परिचय हमें पद-पदपर प्राप्त होता है। रामायणका हृदय है—रस-पेशल-वर्णन और इस वर्णनमें सर्वत्र विद्यमान है—समग्र-काव्यगत व्यापक औचित्य। महाकाव्यका प्रथम तथा भव्य निदर्शन है—यही वाल्मीकीय-रामायण। रामायणका ही विश्लेषण कर आलंकारिकोंने 'महाकाव्य' का लक्षण प्रस्तुत किया है। 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्' लक्षणका प्रथम तथा सबसे सुन्दर लक्ष्य है—रामायण। दण्डीका यह प्रसिद्ध लक्षण 'रामायण' को ही आदर्श मानकर लिखा गया है—

अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलङ्कृति॥

आनन्दवर्धनने स्पष्टतः 'करुण' को ही रामायणका मुख्य रस कहा है। रामायणका आरम्भ 'करुण' से होता है तथा रामके सामने सीताके पृथ्वीके भीतर अन्तर्धान होनेके दृश्यसे रामायणका अन्त भी 'करुण' से ही होता है—

रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविना सूचितः 'शोकः श्लोकत्वमागतः' इत्येवंवादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता।
( ध्वन्यालोक पृ० २३७ )

वाल्मीकि समग्र कवि-समाजके उपजीव्य हैं—विशेषतः कालिदास तथा भवभूतिके। इन दोनों महाकवियोंने रामायणका गाढ़ अनुशीलन किया था और इनकी कवितामें हमें जो रस मिलता है, उसमें रामायणकी भक्ति कम सहायक नहीं रही है। कालिदासका शृङ्गार-रस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, परंतु उनका 'करुण' रस कम प्रभावशाली नहीं है। कालिदासने उभयविध 'करुण' को उपस्थित कर उसे साङ्गोपाङ्गरूपसे दिखलाया है। पत्नीके लिये पतिकी करुणाका रूप हम रघुवंशके अज-विलापमें पाते हैं और पतिके निमित्त पत्नीकी करुण परिदेवना 'रतिविलाप' के रूपमें हमें रुलाती है। तापसे लोहा भी पिघल उठता है; तब कोमलहृदय मानवका चित्त संतापसे मृदु बन जाय—क्या इस विषयमें सन्देहके लिये स्थान है! 'अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु।'—कालिदासके इन करुण वर्णनोंमें मानव-हृदयको प्रभावित करनेकी नितान्त क्षमता है, परंतु भवभूतिके उत्तरचरितमें तो यह अपनी पराकाष्ठाको पहुँच गया है। यह भवभूतिका ही काम था कि उन्होंने सीताके वियोगमें रामको रोते देखकर पत्थरको रुलाया है और वज्रके हृदयको भी विदीर्ण होते दिखलाया है—

'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।'

इन करुण उक्तियोंकी चोटसे क्षुब्ध होकर गोवर्धनाचार्यने भवभूतिकी भारतीको 'भूधरकी कन्या' बतलाया है। तभी तो उसके करुण-क्रन्दनको सुनकर पत्थरका हृदय पिघल गया था। प्यारी पुत्रीका रुदन सुनकर किस पिताका हृदय द्रवित होकर आँसुओंके रूपमें नहीं बह निकलेगा!

भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥

भवभूतिने करुणको 'एको रसः'—मुख्य रस, अर्थात् समस्त रसोंकी प्रकृति माना है और अन्य रसोंको उसकी विकृति माना है। 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्'—इस कथनके मूलको हमें वाल्मीकिके अंदर खोजना चाहिये।

वाल्मीकिका यह महाकाव्य पृथ्वीतलको विदीर्ण कर उगनेवाले उस विराट् वट-वृक्षके समान है, जो अपनी शीतल छायासे भारतके समस्त मानवोंको आश्रय देता हुआ प्रकृतिकी विशिष्ट विभूतिके समान अपना मस्तक ऊपर उठाये हुए खड़ा है। महाकाव्य प्रधानतया वीर-रस-प्रधान हुआ करते हैं, जिनमें युद्धका घोष, विजय-दुन्दुभिका गर्जन तथा सैनिकोंका तर्जन मानवोंके हृदयमें उत्साह तथा स्फूर्तिको उत्पन्न किया करते हैं; परंतु रामायणका माहात्म्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वीर-रसके प्रदर्शनमें नहीं है। किसी देव-चरित्रके वर्णनमें भी रामायणका गौरव नहीं है; क्योंकि महर्षि वाल्मीकिने जब आदर्श गुणोंसे मण्डित किसी व्यक्तिका परिचय पूछा, तब नारदजीने एक मानवको ही उन अनुपम गुणोंका भाजन बतलाया—'तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।' यह नर-चरित्रका ही कीर्तन है। भारतीय गार्हस्थ्य-जीवनका विस्तृत चित्रण रामायणका मुख्य उद्देश्य-सा प्रतीत हो रहा है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पत्नी—आदि जितने आदर्शोंको इस अनुपम महाकाव्यमें आदिकविकी शब्द-तूलिकाने खींचा है, वे सब गृहधर्मके पटपर ही चित्रित किये गये हैं। इतना ही क्यों राम-रावणका वह भयानक युद्ध भी इस काव्यका मुख्य उद्देश्य नहीं है। वह तो राम-जानकी—पति-पत्नीकी परस्पर विशुद्ध प्रीतिको पुष्ट करनेका एक उपकरणमात्र है। और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। रामायणको भारतीय सभ्यताने अपनी अभिव्यक्तिके लिये प्रधान साधन बना रखा है और भारतीय सभ्यताकी प्रतिष्ठा है—गृहस्थ-आश्रम। अतः यदि इस गार्हस्थ्य-धर्मकी पूर्ण अभिव्यक्तिके लिये आदिकविने इस महाकाव्यका प्रणयन किया तो इसमें आश्चर्य क्या है। रामायण तो भारतीय सभ्यताका प्रतीक ठहरा, दोनोंमें परस्पर उपकार्योपकारक-भाव बना हुआ है। एकको हम दूसरीकी सहायतासे समझ सकते हैं।

आदिकविने अपने काव्य-मन्दिरकी पीठपर प्रतिष्ठित किया है—मर्यादा-पुरुषोत्तम महामानव महाराजा रामचन्द्रको। विभिन्न विकट परिस्थितियोंके बीचमें रहकर व्यक्ति अपने शीलके सौन्दर्यकी किस प्रकार रक्षा कर सकता है, यह हमें वाल्मीकिने ही सिखलाया है। यदि आदिकविने इस चरित्रका चित्रण न किया होता तो हमें मञ्जुल गुणोंके सामञ्जस्यका परिचय कहाँसे मिलता। भारतवासी मानवके आदर्श चरित्रको सुननेके लिये लालायित थे, वाल्मीकिने उसी चरित्रको उनके सामने प्रस्तुत किया। यही कारण है कि इस काव्यकी मोहकता कभी कम नहीं होती; इसके शब्दोंमें इतनी माधुरी है, चित्रोंमें इतनी चमक है कि मानव कान और मन इसके परिशीलनसे एक साथ ही आप्यायित हो उठते हैं। रामायणको मैं जितनी बार पढ़ता हूँ उतनी ही बार उसमें नयी-नयी बातें सूझती हैं। इन सरल परिचित शब्दोंमें इतना रस-परिपाक हुआ है कि पढ़नेवालेका चित्त आनन्दसे गद्गद हो उठता है। सच बात तो यह है कि रामायणके इन अनुष्टुपोंको पढ़कर शताब्दियोंसे भारतका हृत्पिण्ड स्पन्दित हो रहा है और सदैव होता रहेगा।

रामके किन आदर्श गुणोंके अङ्कनमें यह लेखनी प्रवृत्त हो? उनकी कृतज्ञताका वर्णन किन शब्दोंमें किया जाय? वे तो किसी तरह किये गये एक ही उपकारसे संतुष्ट हो जाते हैं; और अपकार चाहे कोई सैकड़ों ही करे, उनमेंसे एकका भी स्मरण उन्हें नहीं रहता। अपकारोंको भूलनेवाला हो तो ऐसा हो—

कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥
(२।१।११)

उनका क्रोध तथा प्रसाद दोनों ही अमोघ हैं। अपने पापोंके कारण हननयोग्य व्यक्तियोंको बिना मारे वे नहीं रहते और 'अवध्य'के ऊपर क्रोधके कारण उनकी आँख भी लाल नहीं होती—

नास्य क्रोधः प्रसादो वा निरर्थोऽस्ति कदाचन।
हन्त्येष नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्यति॥
(२।२।४६)

रामका शील कितना मधुर है। वे सदा दान करते हैं, कभी दूसरेसे प्रतिग्रह नहीं लेते। वे अप्रिय कभी नहीं बोलते। साधारण स्थितिकी बात नहीं, प्राण-सङ्कट उपस्थित होनेकी विषम दशामें भी राम इन नियमोंका उल्लङ्घन नहीं करते—

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयान्न ब्रूयात् किञ्चिदप्रियम्।
अपि जीवितहेतोर्वा रामः सत्यपराक्रमः॥
(५।३३।२५)

अपने कुटुम्बियोंके प्रति उनका व्यवहार कितना कोमल तथा सहानुभूतिपूर्ण है। सीताके प्रति रामके प्रेमका वर्णन करते समय आदिकविने मानस-तत्त्वका बड़ा ही सूक्ष्म निरीक्षण प्रस्तुत किया है। राम सीताके वियोगमें चार कारणोंसे संतप्त हो रहे हैं—सीताके प्रति उनके परितापका कारण चतुर्मुखी है। धर्मशास्त्र आपत्तिमें स्त्रीकी रक्षा करनेका उपदेश देता है, परंतु रामसे यह न हो सका; अतः वह अबला स्त्रीकी रक्षा न कर सकनेके कारण कारुण्यसे संतप्त हैं। वनमें सीता रामके आश्रित थीं, परंतु रामने अपने आश्रितकी रक्षा नहीं की; अतः आनृशंस्य—आश्रित जनोंके संरक्षण-स्वभावसे संतप्त हैं। सीता उनकी पत्नी—सहधर्मिणी ठहरीं। उनके नष्ट होनेपर उनके (श्रीरामके)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


धर्मका पालन क्योंकर हो सकेगा, अतः शोकसे। वे उनकी प्रिया, प्रियतमा ठहरीं। परम सुखकी साधिका ठहरीं। उस परम लावण्यमयीके नाशने उनके हृदयमें अतीतके उस आनन्दमय जीवनकी मधुर स्मृति जगा दी है—इस कारण प्रेमसे। इन नाना भावोंके कारण सीताके वियोगमें राम संतप्त हो रहे हैं—

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिः परितप्यते।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च॥
स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च॥
(५। १५। ४८-४९)

लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर रामने भ्रातृप्रेमके विषयमें जो उद्गार निकाले हैं, उनकी समता भला किसी अन्य सुरक्षित कहलानेवाले देशके साहित्यमें भी कभी मिल सकती है। 'यदि मनुष्य चाहे तो एक देशके बाद दूसरे देशमें उसे विवाहयोग्य स्त्रियाँ मिल सकती हैं, प्रत्येक देशमें मित्र भी मिल सकते हैं; परंतु मैं उस देशको नहीं देखता, जहाँ सहोदर भ्राता मिल सकें।' धन्य हैं भगवान् रामचन्द्र! केवल इस उक्तिके अनूठेपनपर समस्त साहित्यको न्योछावर कर देनेका मन होता है। यह सूक्ति हृदयपर कितना अधिक चोट कर रही है—

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥

रामचन्द्रकी शरणागत-वत्सलताका चरम दृष्टान्त है—अपने मायावी शत्रुके भाईको उसीकी नगरीमें आश्रय प्रदान करना। उनके औदार्यकी झलक रावणवध होनेके बाद रावणके दाह-संस्कारके समय मिलती है। रामका कहना है कि रावण जिस प्रकार विभीषणका सगा सम्बन्धी है, उसी प्रकार उनका भी है। रावणकी मृत्युके साथ-साथ उनका उसके प्रति वैर भी शान्त हो गया है। अब वैर लेनेकी क्या आवश्यकता रह गयी?

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥

भगवती जनक-नन्दिनीके शील-सौन्दर्यकी ज्योत्स्ना किस व्यक्तिके हृदयको शीतलता तथा शान्ति नहीं प्रदान करती। जानकीका चरित्र भारतीय ललनाके महान् आदर्शका प्रतीक है। रावणके बारंबार प्रार्थना करनेपर सीताने जो अवहेलना-सूचक वचन कहा है, वह भारतीय नारीके गौरवको सदा उद्घोषित करता रहेगा। इस निशाचर रावणसे प्रेम करनेकी बात तो दूर रही, मैं तो इसे अपने पैरसे—नहीं-नहीं, बायें पैरसे भी नहीं छू सकती—

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्॥
(५। २६। १०)

रावणकी मृत्युके अनन्तर रामने सीताके चरित्रकी विशुद्धिको सामान्य जनताके सामने प्रकट करनेके लिये अनेक कटुवचन कहे। उन वचनोंके उत्तरमें सीताके वचन इतने मर्मस्पर्शी हैं कि आलोचकका हृदय आनन्दातिरेकसे गद्गद हो जाता है। सीताजीके कतिपय कथनोंपर दृष्टि डालिये। 'मनुष्य उसी वस्तुके लिये उत्तरदायी हो सकता है, जिसपर उसका अधिकार हो। मैं अपने हृदयकी स्वामिनी हूँ। वह सदा आपके चिन्तनमें निरत रहा है। अङ्गोंपर मेरा काबू नहीं। वे पराधीन ठहरे। रावणने बलात्कारसे उनका स्पर्श कर लिया तो इसमें मेरा क्या अपराध है—

मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा॥

'मेरे चरित्रपर लाञ्छन लगाना कथमपि उचित नहीं है। मेरे निर्बल अंशको आपने पकड़कर आगे किया है, परंतु मेरे सबल अंशको पीछे ढकेल दिया है। नारीका दुर्बल अंश है—उसका स्त्रीत्व और उसका सबल अंश है—उसका पत्नीत्व तथा पातिव्रत। नर-शार्दूल! आप मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं; परंतु क्रोधके आवेशमें आपका यह कहना साधारण मनुष्योंके समान है। आपने मेरे स्त्रीत्वको तो दोषारोपण करनेके निमित्त आगे किया है, परंतु आपने इस बातपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि बालकपनमें ही आपने मेरा पाणिग्रहण किया है, आपकी मैं शास्त्रानुमोदित धर्मपत्नी हूँ। मैं आपकी भक्ति करती हूँ तथा मेरा स्वभाव निश्छल और पवित्र है। आश्चर्य है आप-जैसे नर-शार्दूलने मेरे स्वभावको, भक्तिको तथा पाणिग्रहणको पीछे ढकेल दिया, केवल स्त्रीत्वको आगे रखा है—

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्॥
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम्॥

कितनी ओजस्विता भरी है इन सीधे-सादे निष्कपट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शब्दोंमें। अनादृता भारतीय ललनाका यह हृदयोद्गार कितना हृदय-वेधक है। सुनते ही सहृदय मनुष्यकी आँखोंमें सहानुभूतिके आँसू छलक पड़ते हैं।

राम और सीताका निर्मल चरित्र वाल्मीकिकी कोमल काव्य-प्रतिभाका मनोरम निदर्शन है। रामायण हमारा जातीय महाकाव्य है। यह भारतीय हृदयका उच्छ्वास है। वाल्मीकि हमारे प्रतिनिधि कवि हैं। रामायणका जितना पठन किया जायगा, रामचरित्रका जितना चिन्तन किया जायगा, वह उतना ही मङ्गलप्रद होगा; क्योंकि सचमुच यह मानव-जीवन राम-दर्शनके बिना निरर्थक है। 'राम-दर्शन' उभय अर्थमें—राम-कर्तृक दर्शन ( रामके द्वारा देखा जाना ) तथा राम-कर्मक दर्शन ( रामको देखना )। राम जिसको नहीं देखते, वह लोकमें निन्दित है। और जो व्यक्ति रामको नहीं देखता, उसका भी जीवन निन्दित है। उसका अन्तःकरण उसकी स्वयं निन्दा करने लगता है—

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः स भवेल्लोके स्वात्माप्येनं विगर्हते॥

रामकी अनुकम्पाका उपाय है—रामका चिन्तन। इस राम-चरित्रके मननकी सामग्री है—वाल्मीकीय-रामायण। आज भगवत्कृपासे इसीका सार-अंश विशेषाङ्करूपसे सुबोध एवं सरल भाषामें प्रकाशित किया जा रहा है। भगवान्‌से मेरी हार्दिक विनय है कि आदिकविकी निर्मल रसामृत-तरङ्गिणी प्रत्येक भारतीयके द्वारपर सुख तथा शान्तिको बहाती हुई उसे मङ्गलमय बनाये। तथास्तु।

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्॥

# हमारी निधि

( लेखक—साहित्यरञ्जन पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी )

हमारी निधि वेद है। वही अनेक विद्या-स्थानोपबृंहित प्रदीपकी भाँति सभी अर्थोंका प्रकाशक है, वही सर्वज्ञकल्प है, वही हमारे सर्वविध कल्याणका एकमात्र आश्रय है। पर वहाँतक हमारी पहुँच नहीं। उसके अति गम्भीर अर्थके धारण करनेमें आविर्भूतप्रकाश साक्षात्कृतधर्मा महापुरुष ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा ही समर्थ हैं। अनधिकारियोंको उसके अध्ययनसे लाभके बदले हानिकी ही अधिक सम्भावना है, अतः उनके लिये उसका श्रवण भी निषिद्ध है। उन्हें वह गँवारोंके गीत-सा मालूम पड़ेगा, उन्हें उसमें मानव-जातिके बाल्यावस्थाके विचार-विभ्रमका कौतूहल दृष्टिगोचर होगा, उससे वे अनेकानेक अनर्थोंकी कल्पना करेंगे। अतः वेद सर्वसाधारणके उपयोगकी वस्तु नहीं है।

घरमें निधि रहते हुए भी हम कंगाल न रहें, हम उसके उपयोगसे वञ्चित न रहें, अतः वेदभगवान् करुणा करके वाल्मीकिद्वारा अवतीर्ण हुए, यथा—'वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना'। ( स्कन्ध० ) इस प्रकार वेदका ही सर्वलोकहितकारी संस्करण वाल्मीकीय-रामायण है। धर्माचरण कैसे करना चाहिये, कौन सा आचरण किस अवसरपर धर्म होता है और वही किस अवसरपर अधर्म हो जाता है, धर्म-अर्थ-कामका सेवन किस अवसरपर कैसे करना चाहिये, पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, राजा-प्रजा, शत्रु-मित्रमें परस्पर कैसा बर्ताव होना चाहिये, वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्मका किस भाँति पालन करना चाहिये—इत्यादि सभी बातें सुस्पष्टरूपसे उदाहरण देकर रामायणमें सामने खड़ी करके दिखलायी गयी हैं, और साक्षात् मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रका चित्र चित्तपर अङ्कित करनेका वाल्मीकीय-रामायणके पाठसे अतिरिक्त दूसरा कोई सुलभ साधन नहीं है।

इसके पाठमात्रसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि और सम्पूर्ण महापापोंका नाश होता है, यथा—'एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्।' यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि उस निधिको अत्यन्त सुलभ करनेके लिये, सबकी पहुँचके भीतर करनेके लिये 'कल्याण'ने प्रशंसनीय उद्योग किया है। देशका अभ्युत्थान यदि हो सकता है तो इसी ग्रन्थके प्रचारसे हो सकता है। क्योंकि 'धर्मकी जय, अधर्मका नाश, प्राणियोंमें सद्भावना और विश्वका कल्याण' ही इस ग्रन्थका ध्येय है। इसी दृष्टि और इसी सङ्कल्पसे पाठक यदि इस ग्रन्थका अध्ययन करेंगे तो उनके हृदयोंमें राम-राज्यके स्थापित होनेमें देर न लगेगी, और हृदयमें रामराज्यका स्थापित होना संसारमें राम-राज्य-स्थापनाका पूर्वरूप है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वन्द्य-विभूति

## [ शार्दूल-विक्रीडित ]

( रचयिता—साहित्य-सम्राट् पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' )

है सद्भाव-दिगन्त-मध्य-लसिता सत्कान्ति स्वर्गोपमा ।
है अन्तस्तल-व्योमको वितरती लोकोत्तरा दिव्यता ।
होती है उसको विलोक निहता अज्ञानता-शर्वरी ।
है बालार्क-समा विभूति-वलिता वाल्मीक-वाल्मीकता ॥ १ ॥

है शान्ता सरसा नितान्त-रुचिरा आमोद-आमोदिता ।
नाना-नीति-निकेतना नय-नता निर्वेद-उन्नायिका ।
आभा-अंकित कीर्त्ति-कान्त-मधुरा सद्भावसे भूषिता ।
है विज्ञान-विकाससे विकसिता वाल्मीकिकी विज्ञता ॥ २ ॥

हैं सौन्दर्य्यमयी सखी सुरुचिकी सारी रची पंक्तियाँ ।
हैं आधार-सुयुक्तियाँ सरलताके सर्व-सद्बोधकी ।
हैं न्यारी अनुभूति पूत पथके कर्त्तव्यद्वारा लसी ।
हैं माधुर्य्य-उपेतासंचित सुधा वाल्मीकिकी सूक्तियाँ ॥ ३ ॥

दोनोंकी वर भाव-भूति भवमें हैं कीर्त्ति विस्तारती ।
दोनोंकी अनुरंजिनी प्रगति है उत्कर्षसे अंकिता ।
दोनोंकी हितकारिता सदयताकी कान्त सम्पत्ति है ।
सीखी है सुर-आपगा-सुकृतिसे वाल्मीकिने शिष्टता ॥ ४ ॥

ज्ञानागार महान दिव्यजनसे शिक्षा अतीवोत्तमा ।
यत्नोंसे सब काल लाभ करके दीक्षा बड़ी दुर्लभा ।
विज्ञोंकी सहकारिता-विबुधतासे शान्ति-सत्ता मिले ।
पायी हैं वसुधा-विभूति-बलसे वाल्मीकिने सिद्धियाँ ॥ ५ ॥

है प्राणी वह धन्य-मान्य, जिसकी अत्युत्तमा उक्तिमें ।
भावोंको कर सिक्त राम-रसकी है स्निग्ध धारा बही ।
लोकाचार-परायणा हित-रता सद्वृत्तिसे शोभिता ।
है एकान्त-मनोज्ञ कान्त महती वाल्मीकिकी कल्पना ॥ ६ ॥



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# साहित्यमें श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणकी विशेषता

( लेखक—देवर्षिभट्ट पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, साहित्याचार्य, साहित्य-वारिधि, कविरत्न )

आदिकवि भगवान् वाल्मीकिका सरस्वती-निष्यन्द श्रीमद्रामायण समस्त भूमण्डलमें आद्य-काव्य माना जाता है। वेदोंकी बात तो अलग है; परन्तु लोकमें छन्द ( पद्य ) का निर्माण पहले-पहल वाल्मीकिद्वारा ही आरम्भ हुआ, यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। आर्ष अर्थात् एक ऋषिकी रचना होनेपर भी 'संहिता' न कहलाकर काव्य कहलाना—यह विशेषता श्रीमद्रामायणको ही प्राप्त है। रस-भावपूर्णता, मधुरता, चमत्कार-सारता आदि जो-जो गुण काव्यकी उत्तमताके परिचायक हैं, उन सबकी दृष्टिसे यह काव्य 'आद्य' अर्थात् सर्वप्रथम गणनीय है। काव्य-रचनामें उत्तरोत्तर विकास होनेपर कालिदास आदि महाकवियोंकी कृतियोंमें जो-जो विशेषताएँ प्रकट हुईं, वे इसमें नहीं—यह बात नहीं है। वस्तुतः कवियोंके द्वारा विकसित जो-जो विशेषताएँ हैं, उन सबका मूलस्रोत यही है और यही इस काव्यकी विशेषता है। बल्कि इस काव्यमें एक अलौकिक दिव्य प्रभाव है और इसीपर यत्किञ्चित् प्रकाश डालना इस निबन्धका प्रधान उद्देश्य है।

ऊपर हम कह आये हैं कि वाल्मीकि-रामायण ऋषि-की रचना होनेपर भी वेदव्यासकी रचनाकी भाँति 'संहिता' नहीं कहलायी, अपितु इसको 'काव्य' कहते हैं। संहितामें अनेक इतिहासों, आख्यायिकाओं एवं वंशादिका अनुकीर्तन रहता है; किन्तु इसमें एक नायकका चरित्र ही आरम्भसे अन्ततक वर्णित है और उसे ऐसा-निभाया गया है कि उसकी तुलना भूमण्डलमें नहीं है। आज-कलके आलोचक चरित्र-चित्रणकी कसौटीपर ही काव्यकी परीक्षा किया करते हैं। इस दृष्टिसे हम देखेंगे कि श्रीरामायण काव्य ही नहीं, वरं सम्पूर्ण जगत्का आदर्श काव्य है। इसमें जिन-जिन चरित्रोंका वर्णन है, वे अपने-अपने स्थानपर सभी लोगोंके लिये आदर्श हो गये हैं। प्रधान नायक भगवान् श्रीरामचन्द्रका चरित्र प्रजा-पालन, धर्म-मर्यादा, शासन-व्यवस्था आदिमें कितना आदर्श गिना जाता है—इसका विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं। प्रजाके लिये वे कहते हैं—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

'लोककी प्रसन्नताके लिये स्नेह, दया, अपने समस्त सुख, और तो क्या—अपनी प्राणप्रिया जानकीको भी छोड़नेमें मुझे व्यथा नहीं होगी।' ऐसा कहनेवाले कितने राजा हुए हैं? उनके इस आदर्शसे ही प्रभावित होकर प्रजा भी कहती है—

न हि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति॥

'जहाँ राम राजा नहीं, वह राष्ट्र नहीं कहला सकता; परन्तु वह जंगल भी राष्ट्र हो जायगा, जिसमें राम निवास करेंगे।'

भगवान् श्रीरामचन्द्रके मर्यादा-पालनकी तो बात ही क्या है, क्योंकि वे साक्षात् मर्यादा-पुरुषोत्तम ठहरे। शासन-व्यवस्थाकी दृष्टिसे भी राम-राज्य जगत्भरके लिये आदर्श है। आजके इस 'सुधरे' हुए जमानेमें भी किसी आदर्श राज्यको 'राम-राज्य' की उपमा दी जाती है।

भ्रातृत्वके लिये भरत और लक्ष्मण दुनियामें प्रसिद्ध हो गये। जिस राज्य-प्राप्तिके लोभसे बड़े-बड़े शिक्षित और उन्नतमना भाई आपसमें कट मरते हैं, उसके लिये श्रीरामायणने यह आदर्श स्थापित किया है कि पिताके द्वारा प्राप्त राज्यको छोड़कर भाई भरत पिताकी आज्ञासे वनवासी हुए बड़े भाईसे राज्य स्वीकार करानेके लिये पाँव-प्यादे वनमें जाते हैं। वे रामको केवल बड़ा भाई ही नहीं, बल्कि पूज्य और सर्वस्व मानते हैं। वनमें रामकी कुटीके पास पहुँचते-पहुँचते वे इतने आतुर हो जाते हैं कि शीघ्र-से-शीघ्र पहुँचाये जानेकी पुकार करने लगते हैं। यथा—

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥

कहाँतक कहा जाय, भरतके चरित्रपर तो जगत् इतना मुग्ध है कि बहुतोंने उसे श्रीरामके चरित्रसे भी उत्तम माना है। उनके चरित्रकी उत्तमताका इससे अधिक प्रमाण और क्या होगा कि जिन रामकी शपथपर आजकल अदालतोंमें फैसले होते हैं, वे ही रामचन्द्र स्वयं शपथ खाकर कहते हैं—

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भी भावमग्न होकर कहते हैं—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होत न भूतल भाव भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

मित्रता और प्रतिज्ञा-पालनका आदर्श भी रामायणमें उत्कृष्ट कोटिका है। जिस समय श्रीलक्ष्मणजीको शक्ति लगती है और वे मूर्च्छित होकर मृत्यु-शय्यापर पड़ जाते हैं, उस समय श्रीराम अपना शरीर छोड़ देना ही उचित समझते हैं। विलाप करते समय आप अपनी प्रियतमा जानकी, भाई भरत आदिके पहले अपने मित्र विभीषणके साथ की हुई प्रतिज्ञाका ही स्मरण करते हुए कहते हैं—

तत्तु मिथ्याप्रलप्तं मां प्रधक्ष्यति न संशयः।
यन्मया न कृतो राजा राक्षसानां विभीषणः॥

'वह झूठी प्रतिज्ञा—नहीं, मिथ्या प्रलाप मेरे हृदयको सदा जलाता रहेगा कि मैं विभीषणको राक्षसोंका राजा नहीं बना सका।' क्या ऐसी प्रतिज्ञा और उसकी रक्षा अन्यत्र देखी जाती है? स्वामि-सेवाका आदर्श भगवान् मारुतिसे बढ़कर और कौन दिखला सकता है, जिसके कारण वे सेवक होकर भी सम्पूर्ण जगत्के सेव्य और अमर हो गये। इस लेखमें प्रत्येक चरित्रकी समीक्षाके लिये अवकाश नहीं है, किन्तु सभी मार्मिक आलोचकोंने यह माना है कि रामायणके सभी चरित्र अपने-अपने दायरेमें अद्वितीय एवं आदर्श सिद्ध हुए हैं। जिस रचनाका प्रत्येक चरित्र आदर्श उतरता है, वह क्या आदर्श काव्य नहीं है?

श्रीरामायणकी अपूर्वताको केवल भारतवर्षने ही माना हो सो बात नहीं; बल्कि किसी भी भाषाके साहित्यमें रामकथाकी जोड़का और कोई कथानक नहीं है। इसीका यह प्रभाव है कि संसारभरमें ऐसी भी कोई भाषा नहीं, जिसमें रामकथाका पूरा या अंशतः अनुवाद न हुआ हो। 'विश्व-साहित्य' की चर्चा आजकल बहुत सुननेमें आती है। सच पूछिये तो रामकथा-जैसा साहित्य ही 'विश्व-साहित्य' है, जिसे विश्वभरके कवि अपनी कविताका आधार बनाते हैं। कवियोंके भेद इस प्रकार गिनाये जाते हैं—

पादोपजीवी पदकोपजीवी छायोपजीवी सकलोपजीव्यः।

'कोई कवि किसी दूसरे कविका एक चरण ले लेते हैं, तो कोई पद और कोई छाया लेकर ही कवि बन जाते हैं; परन्तु एक ऐसे कवि भी होते हैं, जो 'सकलोपजीव्य' होते हैं, अर्थात् जिनके अर्थोंको लेकर समस्त कवि अपनी-अपनी रचना सँवारते हैं।' ऐसे 'सकलोपजीव्य' कवि व्यास और वाल्मीकि ही हैं।

बड़े-बड़े अन्वेषकोंका यह सिद्धान्त है कि रामकथाको लेकर जितने ग्रन्थ बने, उतने और किसी कथानकको लेकर नहीं बने। अद्भुतरामायण, भुशुण्डि-रामायण, योगवाशिष्ठ, अध्यात्मरामायण, अभिनन्दकीरामायण, बाल-रामायण आदि अनेकों तो रामायणें हैं। फिर अनर्घराघव, प्रसन्नराघव, उन्मत्तराघव, उत्तररामचरित, महावीरचरित, रामायण-चम्पू, रघुवंश आदि अनेक दृश्य एवं श्रव्य काव्य बन गये, तथा आज भी 'रामायणी कथा' आदि बन रहे हैं। किसी विदेशी आलोचकने बड़े फखके साथ लिखा था कि भारतीय कवियोंको रामके अतिरिक्त और कोई नायक ही नहीं मिलता। किन्तु उसे मालूम नहीं कि भारतीय कवियोंने इसका उत्तर पहलेसे ही दे रखा है—

स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां
कवीनां को दोषः स तु गुणगणानामवगुणः।
यदेतैर्निःशेषैरपरगुणलुब्धैरिव जग-
त्यसावेकश्चक्रे सततसुखसंवासवसतिः॥

'अपनी सूक्तियोंका विषय एकमात्र कोसल-राजकुमारको ही बनानेवाले बेचारे कवियोंका क्या दोष है; दोष तो उन गुणगणोंका ही है, जिन्होंने एक स्थानपर परस्पर मिलनेके लोभसे केवल श्रीरामचन्द्रजीको ही अपना सुख-निवास बना डाला।'

तात्पर्य यह कि कथानक सजानेके लिये नायकमें जितने गुण होने चाहिये, वे सब एक ही जगह श्रीरामचन्द्रजीके अतिरिक्त और कहाँ मिलते हैं, जो कविलोग उन्हें छोड़कर दूसरी तरफ दौड़ें। श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका ही यह प्रभाव है कि गोस्वामी तुलसीदासजीने भाषामें रामायण बनाकर उसे घर-घरमें पहुँचा दिया। वैदेशिक आलोचकोंका कहना है कि 'क्रिश्चियनोंकी दृष्टिमें जो स्थान बाइबलको प्राप्त है, वही स्थान हिन्दुओंकी दृष्टिमें रामायणका है।' दुनियाकी ऐसी कोई भाषा नहीं, जिसमें इसका अनुवाद नहीं हुआ हो। अब कहिये, ऐसा साहित्य विश्व-साहित्य न होगा तो और कौन-सा होगा?

अब आता है क्रूर आलोचनाओंका अवसर। जब आप इसे 'काव्य-साहित्य'की चीज स्वीकार करते हैं, तब आलोचनाओंका भी स्वागत करना ही होगा। ठीक है, हम भी आलोचनाओंसे नहीं घबराते। वस्तुतः आलोचनासे ही तो साहित्यका वास्तविक आनन्द मिलता है। कहा भी है—

सङ्गीतमथ साहित्यं सरस्वत्याः स्तनद्वयम्।
एकमापातमधुरमन्यदालोचनामृतम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अर्थात् सङ्गीत और साहित्य जगन्माता सरस्वतीके दूधसे भरे दो स्तन हैं। एक तो कानरूपी मुँहमें जाते ही मधुर प्रतीत होता है, दूसरा मार्मिक विचार करनेपर—बुद्धिरूपी गलेमें उतरनेपर आनन्द देता है।

आलोचना यहींसे आरम्भ होती है कि "आप रामायणको आदिकाव्य मानते हैं। कहते हैं कि महर्षि वाल्मीकि नारदके मुखसे राम-कथा सुनकर विचार करते-करते तमसा-नदीमें स्नान करने गये। वहाँ नदीके किनारे क्रौञ्च-पक्षीका जोड़ा आनन्द-विहार कर रहा था। तब-तक व्याधने उनमेंसे नर पक्षीको बाणसे मार दिया। उस समय क्रौञ्चीका विलाप सुनकर महर्षिके हृदयमें एकदम करुण-भाव उमड़ पड़ा। उसी भावमग्न अवस्थामें उनके मुखसे 'मा निषाद' इत्यादि अनुष्टुप् श्लोक निकल पड़ा। तब महर्षिको स्वयं ही बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह गीति-लय-बद्ध तथा निश्चित मात्राओंका शब्द-समूह मेरे मुखसे कैसे निकल गया। फिर ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर कहा कि 'तुम्हारे मुखसे छन्दका आविर्भाव हुआ है। तुम नारदके द्वारा सुनी हुई राम-कथाको इसी छन्दमें श्लोकबद्ध करो।' यहाँ यह प्रश्न उठता है कि कविको जब इस एक छन्दपर ही इतना विस्मय हुआ और दूसरा कोई छन्द उस समय था ही नहीं, तब असली रामायण केवल अनुष्टुप् छन्दमें ही होनी चाहिये। स्वयं वाल्मीकिजी भी हृदयमें निश्चय करते हैं कि 'कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम्।' फिर नाना छन्दोंसे युक्त यह रामायण आद्यकाव्य कैसे माना जा सकता है? इसमें तो इन्द्रवज्रा, उपजाति, पुष्पिताग्रा आदि १३ छन्द बराबर मिलते हैं। दूसरे, रचना-प्रौढि तथा गुम्फन-शैलीको देखते हुए कौन यह कह सकता है कि रस, अलङ्कार, गुण, रीति आदि साहित्य-नियमोंके आविर्भावके पहले यह काव्य लिखा जा चुका था। स्वयं रामायणमें नाना अलङ्कार, रस, छन्द आदि आये हैं; फिर यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है कि काव्य-साहित्यके विकासके पहलेकी यह रचना है? एक बात और है—आप कहते हैं कि रामायण त्रेता-युगकी कथा है और अन्यान्य महापुराण, जैसे महाभारत आदि, उसके बादके हैं। इसी प्रकार कृष्णावतारको भी रामावतारका परवर्ती माना गया है। किन्तु स्वयं रामायणमें देवतागण श्रीरामकी स्तुतिमें कहते हैं—

शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग्विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥
(६। ११७। १५)

अर्थात् हे राम! आप शङ्ख-चक्रधारी विष्णु और कृष्ण हैं।

और भी अनेक स्थानोंपर परशुराम, राम, लक्ष्मण तथा हनुमान्‌के लिये 'भीमसंकाशः'—'भीमके सदृश' विशेषण आया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रीवाल्मीकि-रामायण महाभारतके पीछेकी रचना है।"

यहाँतक तो हुई रामायणको आदिकाव्य माननेपर शंकाएँ! दूसरे आलोचक विद्वान् इसके चरित्र-चित्रणपर भी व्यङ्ग करते हैं। वे कहते हैं कि "वाल्मीकिके हाथसे चरित्र-चित्रण बिगड़ गया है, उसे आधुनिक कवियोंने सुधारा है। चरित्र-चित्रणके दोषकी बानगी देखिये। दण्डकारण्यमें जब मारीचने मरते-मरते राक्षसी मायासे श्रीरामके कण्ठस्वरमें 'हा लक्ष्मण! हा सीते!' कहा और जब वह ध्वनि सीताके कानोंमें पड़ी, तब सीताने घबराकर लक्ष्मणसे कहा—'.....गच्छ जानीहि राघवम्। न हि मे जीवितं स्थाने हृदयं चावतिष्ठते।' (जल्दी जाओ, श्रीरामकी खबर लो। इन शब्दोंको सुनकर मेरा जी और कलेजा अपने स्थानपर नहीं रह गये हैं।) इसपर लक्ष्मणजीने उन्हें समझाया कि 'भगवान् श्रीरामका अनिष्ट करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। यह राक्षस-बहुल दण्डकारण्य मायामय है। किसी राक्षसने चालाकी की है। थोड़ी ही देरमें कमल-दल-लोचन श्रीरामको आप अपने पास देखेंगी।' परन्तु इस सान्त्वनासे सीताको बिल्कुल ही सन्तोष नहीं हुआ। वे लक्ष्मणजीको श्रीरामकी सहायताके लिये जल्दी न जाते देखकर एकदम बिगड़ उठीं और कहने लगीं—

अनार्यकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन।
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्॥
× × × ×
सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेवानुगच्छसि।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा॥
तन्न सिध्यति सौमित्रे तव वा भरतस्य वा।
कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम्॥
उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम्।

'अरे नीच! निर्दय! क्रूर कर्म करनेवाले कुलकलङ्क! मैं जान गयी कि तुमको रामका प्राण-संकट ही अभीष्ट है। मैं जानती हूँ कि तुम रामके साथ अकेले क्यों आये हो। अवश्य ही तुम बुरी नीयतसे मुझे चाहते हो, अथवा भरतने तुमको गुप्तरूपसे भेजा है। लेकिन मैं कहे देती हूँ, तुम्हारा या भरतका मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता। भला, मैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इन्दीवरश्याम श्रीरामके समान पति पाकर किसी दूसरे पुरुषको चाह सकती हूँ ?'

ये उन सीताके वाक्य हैं, जिन्हें लोग प्रत्यक्ष देवता मानते हैं। उनके मुखसे 'नीच ! कुल-कलङ्क !' जैसी जघन्य गालियाँ ? वह भी उन लक्ष्मणके लिये, जिनका जीवन ही राममय था, जो रामको अपना परमेश्वर मानते थे और जिन्होंने अपने बड़े भाईके साथ ऐसा 'साहचर्य' स्थापित किया जो सम्पूर्ण जगत्के लिये दृष्टान्त बन गया। आज भी लोग दो प्रेमी भाइयोंको देखकर कहते हैं कि यह तो राम-लक्ष्मणकी-सी जोड़ी है ! ऐसे लक्ष्मणके प्रति सीताजीके मुँहसे इस तरहकी अधर्मपूर्ण भर्त्सना कैसे करायी गयी ?''

ऐसी-ऐसी और भी कई आलोचनाएँ इस आद्यकाव्यपर हुई हैं। उन सबका उल्लेख करनेके लिये यहाँ अवसर नहीं है। इन आलोचनाओंकी चर्चा करनेका उद्देश्य यही है कि विद्वान् तथा धर्मप्रेमी महानुभाव उनसे कुछ परिचित हो जायँ और अपने धार्मिक साहित्यकी गौरव-रक्षामें तत्पर हों। बाहर-से ये शङ्काएँ बड़ी मार्मिक और कुछ कठिन मालूम पड़ती हैं। श्रीमान् लक्ष्मणके प्रति कहे गये सीताजीके ये कठोर वचन सबके हृदयोंमें अवश्य ही उथल-पुथल मचा देते हैं। परन्तु जिन सज्जनोंने 'कल्याण' में प्रकाशित 'विभीषणकी शरणागति' शीर्षक मेरा लेख पढ़ा होगा, उन्हें स्मरण होगा कि मैंने आरम्भमें ही वाल्मीकिकी वाणीको गम्भीर और व्यङ्ग्यार्थपूर्ण बताया है। उसे समझनेके लिये धैर्य चाहिये। जबतक पूरी गहराईतक नहीं पहुँचा जाता, तबतक उसका तत्त्व समझमें नहीं आता। अभी हालकी बात है, सुन्दरकाण्डके 'यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः। स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥' ( यदि अधर्म बलवान् न होता तो यह रावण इन्द्रसहित देवलोकका भी रक्षक होता। )—इस पद्यार्थपर एक सज्जन बोले कि 'यहाँ कहना तो यह चाहिये कि इन्द्रसहित स्वर्गलोकपर भी रावणका डंका बजता। वैरीको रक्षक बनाना तो व्यर्थकी बात है।' तर्क ठीक है, परन्तु जरा महर्षिके विचारकी गहराईतक तो जाइये ! किसी मुल्कपर धावा करने या उसे पराजित करके विजयका डंका बजानेमें अधिक बड़ाई है या उस देशको हृदयसे वशीभूत करनेमें, जिससे कि वह हमें अपना संरक्षक मानने लगे। निश्चय ही दूसरी बातका गौरव पहलीकी अपेक्षा अधिक है।

अब उपर्युक्त शङ्काओंपर भी ध्यान दीजिये। पहले सीताकी कठोरोक्तिको ही लीजिये। उसकी गहराईतक पहुँचनेके लिये सीताजीके स्वभाव और उस समयके भयानक संकटकी परिस्थितिको समझना होगा। श्रीसीताका जीवन राममय है। रामने उन्हें वनके दुःख अच्छी तरह समझाये थे फिर भी वे उनके बिना अयोध्यामें नहीं रह सकीं। उनकी सेवाके लिये वनमें चली आयी थीं। सीताजीका रामके अतिरिक्त कुटुम्बके और किसी व्यक्तिसे अधिक स्नेह-सम्पर्क नहीं रहा। श्रीराम ही उनके जीवनावलम्ब हैं। अतः जब जानकीजीको यह अच्छी तरह मालूम हो गया कि श्रीरामजी मेरे ही हठसे इस घोर जंगलमें जाकर संकटमें पड़ गये हैं तथा 'हा लक्ष्मण ! हा सीते !' यह करुण पुकार कर रहे हैं, तब श्रीरामके अमङ्गलकी आशङ्कासे उनका हृदय और आत्मा उनके वशमें नहीं रहा, जैसा कि स्वयं महर्षिने भी बताया है। इसके बाद सीताने तीन बार अपनी व्याकुलता दिखाकर लक्ष्मणको जानेके लिये कहा, परन्तु सदा-सर्वदा श्रीसीताकी आज्ञाको ईश्वराज्ञाकी तरह माननेवाले लक्ष्मण टस-से-मस नहीं हुए। वे तरह-तरहकी दलीलें देकर सीताजीको समझानेकी चेष्टा तो करने लगे, परन्तु उन्होंने उस नाजुक अवसरपर भी रामके पास जानेकी तत्परता नहीं दिखायी। फिर तो उस घोर विपत्तिके कारण अपने प्रियतमपर जीवन न्योछावर करनेवाली श्रीसीताके हृदयसे सारे संसारका नाता एकदम दूर हो गया। वे सोचने लगीं कि 'जब घोर प्राण-संकटके समय भी लक्ष्मण रामकी सहायता नहीं कर रहे हैं, बार-बार कहनेपर भी नहीं जा रहे हैं, तब ये मेरे होते ही कौन हैं।' उसी क्षण राममयी सीताकी दृष्टिमें लक्ष्मण सारे गुणोंसे हीन और नाना दोषयुक्त दीखने लगे।

सीताके पास बारीक विचार करने और हिताहित समझनेका समय ही नहीं था; क्योंकि स्वयं लक्ष्मणने श्रीरामके पास जाकर सीताका वृत्तान्त कहते समय उन्हें 'परिमोहित-चेतना' का विशेषण दिया है। प्रियतमके अमङ्गलकी बात समझमें आते ही उनका चैतन्य मूर्च्छित हो गया—उनके विवेकपर परदा पड़ गया। फिर तो वे लक्ष्मणके प्रति कठोर वचन कहकर आलोचकोंकी दृष्टिमें गिर जायँगी—ऐसा सोच ही कब सकती थीं। दूसरे वे दो बार 'तुम भाई नहीं, शत्रु हो; तुम रामका अनिष्ट चाहते हो।'—इत्यादि कठोर-कठोर वचन कह चुकी थीं; तब भी लक्ष्मण जहरकी-सी घूँट पिये बैठे ही रहे। उन्होंने हृदयको रोककर इतना ही कहा कि 'उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम।'—अर्थात् आप कुछ भी कहिये, मैं आपके सम्मुख जवाब नहीं दे सकता; आप मेरी पूज्य देवता हैं। बड़ी अजीब बात है। आज्ञापालक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लक्ष्मण इस बार बुरी तरह भर्त्सना करनेपर भी श्रीरामके पास नहीं जाते। जायँ भी कैसे? श्रीरामने मारीचका पीछा करनेके लिये जाते समय उन्हें सख्त आज्ञा जो दी थी—'अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया।' 'सीतया' तृतीया विभक्तिका रूप है। भगवान् कहते हैं कि 'सीताके साथ तुम निरन्तर आश्रममें ही रहना, बड़ी सावधानी रखना, जरा भी गलती न करना—जबतक मैं लौट न आऊँ।' श्रीरामकी आज्ञा लक्ष्मणके लिये ईश्वरसे भी बढ़कर थी। फिर वे सीताजीको अकेली छोड़कर कहाँ जा सकते थे—वह भी उन सीताके कुछ बुरा-भला कहनेपर, जिन्हें वे माताके समान मानते थे! नहीं-नहीं, वे 'दैवतं भवती मम'—आप मेरी पूज्य देवता हैं—यह कहकर श्रीरामजीकी आज्ञापर डटे रहे।

किन्तु कविके ऊपर इस समय बड़ा संकट है। जबतक लक्ष्मण यहाँसे हटते नहीं, तबतक सीता-हरण-काण्ड, बल्कि यों कहिये कि सम्पूर्ण रामायण ही रुकी हुई है। सीताकी यह कठोर भर्त्सना ही मानो समग्र रामायण-शरीरका मेरुदण्ड है। लक्ष्मण यहाँसे जायँ, तब सीता-हरण हो; और जब सीता-हरण हो तब रावण-वध आदि देव-कार्य तथा रामायणका बीज सफल हो। अतएव सीताकी इन उक्तियोंको साधारण नहीं समझना चाहिये, बड़ी मार्मिक दृष्टिसे इनकी आलोचना करनी चाहिये। यदि सीताके भला-बुरा कहनेमात्रसे ही लक्ष्मण रुष्ट होकर चल खड़े होते हैं तो सीताके प्रति उनके पूज्यभावका आदर्श गिर जाता है। अतएव कविके लिये सीताके मुखसे ऐसी बात कहलाना आवश्यक हो गया, जो लक्ष्मणके लिये असह्य हो जाय। सीताके प्रति दूषित भाव रखनेका कलङ्क ही ऐसा है, जो उनको (लक्ष्मणको) किसी प्रकार सह्य नहीं हो सकता था। लक्ष्मणकी यह चर्या थी कि वनवास-कालमें सेवा करते समय भी उनकी दृष्टि जानकीके चरणोंतक ही जाती थी। ऊपरके अङ्गोंकी ओर वे आँखतक नहीं उठाते थे। इसी कारण जब श्रीरामचन्द्रजीने श्रीसीताके आभूषणोंको पहचाननेके लिये कहा तब श्रीलक्ष्मणने उत्तर दिया—'नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्'—'मैं तो केवल नूपुरोंको ही पहचानता हूँ, क्योंकि प्रणाम करते समय नित्य इनके पास ही मेरा मस्तक टिकता था; दूसरे आभूषणोंको मैं नहीं पहचानता।' ऐसे लक्ष्मणको जब सीताने यह कहा कि 'तुम बुरी नीयतसे यहाँ मेरे साथ आये हो' तब उनका आसन डोल गया। उन्होंने उत्तर दिया।

धिक्त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे।
गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने॥

'मालूम हो गया, तुम्हारा अनिष्ट होनेवाला है; तभी तुम मेरे सम्बन्धमें ऐसी शङ्का करती हो। खैर, मैं जाता हूँ, तुम्हारा मङ्गल हो।' यह कहकर लक्ष्मण चल खड़े हुए।

सोचनेकी बात है। यदि चरित्र-सम्बन्धी इतना असह्य और तीव्र प्रहार न होता तो जानकीको 'दैवतं भवती मम' समझनेवाले लक्ष्मणका दूसरी जरा-सी बातपर बुरा मानकर हट जाना कितना अस्वाभाविक और आज्ञाकारी चरित्रके प्रतिकूल गिना जाता। पाठक इस मर्मको संक्षेपमें ही समझ लें, अधिक विस्तारके लिये अवकाश नहीं है।

अब यह शङ्का रह जाती है कि 'रामायणको 'आद्य-काव्य' कैसे माना जाय। इसमें तो साहित्यिक विकासकी सारी सामग्री है। फिर एक आरम्भिक काव्यमें इतना साहित्यिक विकास कैसे हो सकता है?' इसके उत्तरमें मैं पहले ही कह आया हूँ कि श्रीरामायणके 'आर्ष' विशेषणपर सावधानीके साथ ध्यान देना चाहिये। यह एक क्रान्तदर्शी महर्षिकी रचना है और उसपर भी ईश्वरप्रेरित है—

मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती।
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम॥

ऐसी अवस्थामें एक क्रान्तदर्शी ऋषिकी तुलना साधारण कवियोंसे करना कहाँतक ठीक होगा? आजकल एक दवाकी जब वैज्ञानिक परीक्षा की जाती है, तब उनमें अनेकों गुण और शक्तियाँ जान पड़ती हैं; किन्तु हमारे यहाँके ऋषियोंने उस आरम्भिक कालमें ही, जब परीक्षाके लिये यान्त्रिक साधन नहीं थे और अनन्त ओषधियोंका परीक्षण किसी एक पुरुषकी आयुमें हो भी नहीं सकता, अपने दिव्य ज्ञानसे आयुर्वेद-शास्त्रकी रचना की और समस्त ओषधियोंके गुण, स्वभाव आदि लिख दिये, जिन्हें हम सब परीक्षा करके देख सकते हैं। क्या यह किसी साधारण पुरुषके द्वारा सम्भव है?

अस्तु, कविताके लिये जिन-जिन रमणीय साधनोंकी आवश्यकता थी, वे सब ऋषिकी क्रान्तदर्शिताकी दिव्य शक्तिसे सिद्ध हो गये—यह साधारण बुद्धिसे भी समझा जा सकता है। और तो क्या, कविको साक्षात् ईश्वरकी यह आज्ञा प्राप्त थी कि 'जो वृत्तान्त तुमसे अविदित रहेगा, वह भी विदित हो जायगा'—

रहस्यं वा प्रकाशं वा यद् वृत्तं तस्य धीमतः।
रामस्य सह सौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वैदेह्याश्चापि यत् वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः।
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति॥

अब कहिये, ऐसी स्थितिमें इन शङ्काओंके लिये कहाँ अवकाश रह जाता है?

'भीमसंकाश' इस विशेषणमें आये हुए 'भीम' शब्दसे जो यह शङ्का उठती है कि वाल्मीकि-रामायणकी अपेक्षा महाभारत पहलेकी रचना है, यह भी रचना-मार्मिकोंके लिये विचारणीय है। 'भीम' शब्द भयंकरके अर्थमें स्थान-स्थानपर आया है। जैसे—

सहसाभूत्ततो वेगाद्भीमवेगो महोदधिः।
योजनं व्यतिचक्राम वेलामन्यत्र संप्लवात्॥
(६।२२।१५)

इसी प्रकार 'कृष्ण' पदको देखकर वाल्मीकि-रामायणको कृष्णावतारके बादकी रचना बतलाना भी बड़ी मोटी गलती है। जहाँ-जहाँ 'कृष्ण' पदका प्रयोग हुआ है, वहाँ-वहाँ टीकाकारोंने उसका 'श्याम' अर्थ किया है। उसके बिना महर्षिके तात्पर्यकी भी संगति नहीं बैठती। श्रीरामकी स्तुति करते हुए देवता कहते हैं—"आप शार्ङ्ग और खड्गको धारण करनेवाले वही वैकुण्ठाधिपति विष्णु हैं। इस समय आपका वर्ण 'कृष्ण' अर्थात् श्याम है, परन्तु हैं आप वही विष्णु।"

अस्तु, अन्तमें मेरी पाठकोंसे यही विनीत प्रार्थना है कि उपर्युक्त शङ्काओंको हृदयसे निकाल देना चाहिये। वाल्मीकि-रामायणमें अनेकों अपूर्व गुण हैं। विस्तार-भयसे इस लेखमें उन सबका उल्लेख नहीं किया जा सकता। अबकी बार पाठकोंके सौभाग्यसे श्रीवाल्मीकि-रामायण स्वयं 'कल्याण'के अभिमुख होकर उसके अङ्क (गोद) में आ रही है। या यों कहिये कि हमलोगोंको ही श्रीमद्रामायणाङ्क —श्रीरामायणकी गोदमें बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। फिर भगवान्‌के अनुग्रहसे उसके दिव्य गुणोंको समझना क्या बाकी रह जायगा?

# वाल्मीकीय रामायण

(लेखक—श्रीताराचन्द्रजी पाण्डया)

वाल्मीकीय रामायण करुण-रसका महाकाव्य है। संसार दुःखस्वरूप है, सुख और दुःखका चक्र निरन्तर चलता रहता है; उसमें भी सुखके अरे बहुत थोड़े और दुःख-के अरे बहुत ज्यादा हैं; और जो थोड़ा-सा सुख है, वह भी शहद-लपेटी तलवारकी धारके समान है—इसका चित्रण वाल्मीकीय रामायणमें हुआ है। थोड़ा-सा वैवाहिक जीवनका विलास, राज्याभिषेककी आशा और फिर वनवास एवं विरह; थोड़ा-सा राज्य-सुख और फिर झूठा लोकापवाद और सीता-वियोग। अलबत्ता, इस दुःख-सागरमें धर्मके सुदृढ़ पोतकी कैसी अद्‌भुत महिमा है—यह भी परिलक्षित होता है।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

करुणाभावसे निःसृत ये शब्द जगत्‌के आदिकाव्यके आदि शब्द हैं, अर्थात् संसारभरके प्रथम कवितामय शब्द हैं। इससे केवल यही सिद्ध नहीं होता कि वाल्मीकीय रामायण करुण-रसकी कविता है, बल्कि यह भी कि कविता-वस्तुका उद्‌गम-स्थान एवं लक्ष्य करुणा, दया तथा अहिंसा ही हैं, और यह कि अहिंसा तथा दया-भावसे च्युत कविताको भ्रष्ट, पतित एवं विकृत ही समझना चाहिये। ये शब्द केवल क्रौंच-घातक निषादको ही सम्बोधित नहीं किये गये हैं, बल्कि सभी हिंसकों एवं युद्ध-प्रिय जातियोंके लिये अनन्तकालके लिये शापस्वरूप हैं। किस हिंसामें प्रियजनोंका वियोग तथा कामनाजन्य मोह एवं विवशता नहीं होती!

वाल्मीकीय रामायणकी रचना तब हुई थी, जब आर्यावर्त स्वाधीनता तथा सभ्यताके शिखरपर था। इसलिये इसके पात्रोंमें और (क्योंकि स्त्रियाँ अपने देश तथा कालका विशेष प्रतिविम्ब होती हैं) विशेषकर स्त्री-पात्रोंमें जो तेज और आत्म-गौरव (सेवा-भावका गौरव न कि दासताकी दीनता) दिखायी देते हैं, वे बादकी रामायणोंमें उतने नहीं दृष्टिगोचर होते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मर्यादा-पुरुष हे राम !

[ रचयिता—डाँगी सूरजचन्दजी शुक्र ]

सन्मर्यादाका मान रहे,
हे राम ! तुम्हारा ध्यान रहे ॥ध्रुव॥

जग-जीवनकी इस लीलामें, रोते-हँसते सब खेल करें।
निर्लिप्त रहें, निष्काम रहें, संन्यास-कर्मका मेल करें॥
सच्चिदानन्दका ज्ञान रहे,
हे राम ! तुम्हारा ध्यान रहे ॥ १ ॥

कर्तव्य न भूल सकें अपना, समभाव हृदयको सिखलायें।
सुखमें न कभी अभिमान रहे, दुखमें न दीनता दिखलायें॥
मुखमें मीठी मुसकान रहे,
हे राम ! तुम्हारा ध्यान रहे ॥ २ ॥

भय और प्रलोभन दूर रहें, प्राणोंकी भी पर्वाह न हो।
तीनों लोकोंका राज्य जाय, पर अन्यायोंकी चाह न हो॥
प्रण-पालनका अरमान रहे,
हे राम ! तुम्हारा ध्यान रहे ॥ ३ ॥

दुनियाके सुन्दर उपवनमें, सब निरख-निरखकर हरा-हरा।
मनमें मस्ती, तनमें चुस्ती, चितवनमें हो उत्साह भरा॥
पर भले-बुरेका भान रहे,
हे राम ! तुम्हारा ध्यान रहे ॥ ४ ॥

चाहे केवट हो, वानर हो, हम बान्धव-सा व्यवहार करें।
यदि मिले विभीषण राक्षस भी, तो मित्र बनाकर प्यार करें॥
दुर्जनताको सुविधा न रहे,
हे राम ! तुम्हारा ध्यान रहे ॥ ५ ॥

अबला-अनाथ-असहायोंपर, अत्याचारोंको सह न सकें।
कामी सम्राटोंके प्रचण्ड आतङ्क-वेगमें बह न सकें॥
निश्छल दृढ़ताकी बान रहे,
हे राम ! तुम्हारा ध्यान रहे ॥ ६ ॥

सेवा अंजनिके नन्दन-सी, उत्साह सुमित्रा-नन्दन-सा।
केकइ-नन्दन-सा भ्रातृभाव, वात्सल्य रहे अज-नंदन-सा॥
भू-नन्दिनि-सा ईमान रहे,
हे राम ! तुम्हारा ध्यान रहे ॥ ७ ॥

पुरुषोत्तम-सा आदर्श रहे, रामायण-सा रस-पान रहे।
चमकें जबतक ये सूर्य-चन्द्र, घर-घर प्रभुका गुणगान रहे॥
हरि-भक्तोंका अहसान रहे,
हे राम ! तुम्हारा ध्यान रहे ॥ ८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके कुछ महान् आदर्श

( लेखक—गोस्वामी श्रीछबीलेवल्लभजी )

यह बात निर्विवादरूपसे सिद्ध है कि मानव-जीवनकी धाराको अविराम गतिसे चरम लक्ष्यकी ओर प्रवाहित करनेके लिये धर्म ही एकमात्र श्रेयस्कर मार्ग है। यद्यपि साधारणतया यह मार्ग कण्टकाकीर्ण है, तथापि इसका क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है और जीवनकी विशद भावनाओंको जाग्रत् करनेका यही आनन्दमय केन्द्र है। इस केन्द्रसे सम्पर्क रखनेवाले पुरुषोंको स्वप्नमें भी दुःख, निराशा और असफलताका मुँह नहीं देखना पड़ता; क्योंकि प्रत्येक धर्मानुरागी जीवनकी समस्याओंको सुलझाना अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता है और इस कर्त्तव्यमें तत्परतासे संलग्न रहनेके कारण वही कृतकृत्यताका दुर्लभ सुख प्राप्त कर सकता है। अनेकों सहृदय विद्वानोंने मार्मिक विवेचनोंद्वारा इसी बातका सिद्धान्तरूपसे प्रतिपादन किया है। यद्यपि यह एक सार्वदेशिक नियम है, तथापि भारतीय सभ्यतापर इसकी गहरी छाप लगी हुई है। इस तथ्यको सर्वसाधारणके सामने लानेका सबसे अधिक श्रेय आर्ष धर्मग्रन्थोंको ही है; क्योंकि इन ग्रन्थोंके रचयिता समाजमें कोरी धाक जमानेवाले पुरुष नहीं थे, बल्कि वे महापुरुष थे जिन्होंने जीवनके प्रत्येक तथ्यको स्वयं आचरणमें परिणत करके अथवा विशुद्ध समाधिप्रज्ञाके द्वारा अनुभव किया था। उन्होंने जहाँ अनेकों दार्शनिक सिद्धान्तों एवं मनुष्यकी बाह्य इन्द्रियोंसे अनुभवमें न आनेवाली तरह-तरहकी कर्मगतियोंका निरूपण किया है, वहाँ अनेकों आदर्श चरित्रोंका चित्रण करके भी समाजको अपना चरम लक्ष्य प्राप्त करनेका सरल और सुन्दर मार्ग प्रदर्शित किया है। इस प्रकारके चरित्र सर्वसाधारणके सामने एक जीता-जागता आदर्श उपस्थित कर देते हैं, जिसके अनुकूल अपना चरित्र-गठन करनेमें उन्हें बहुत ही उत्साह और बल प्राप्त होता है। महर्षि वाल्मीकि एक ऐसे ही ग्रन्थकार हैं और वे भारतवर्षके ही नहीं, सारे संसारके आदिकवि हैं। उनका अद्भुत महाकाव्य साहित्याकाशका वह निर्मल चन्द्रमा है, जो अपनी स्निग्ध छटासे मानवमात्रके अन्तःकरणोंको शीतल कर देता है तथा जिसके दिव्य आलोकमें मानव-जीवनके सामाजिक, राजनीतिक और पारिवारिक—सभी प्रकारके आदर्श अत्यन्त परिष्कृत रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। इसने भारतीय सभ्यताका जो महान् और उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया है वह भारतीयोंके लिये तो वन्दनीय है ही, विदेशियोंके लिये भी कम गौरवकी चीज नहीं है। यह स्पष्टरूपसे आर्योंके प्रभाव और सदाचारको प्रकाशित करके सारे संसारको आश्चर्य-चकित कर देता है तथा उसकी दृष्टिमें इस ऋषि-भूमिकी ऋषि-सन्तानोंके प्रति सम्मानका भाव जाग्रत् करता है।

महर्षि वाल्मीकिका आदिकाव्य श्रीरामायण संसारको सच्चरित्रताका पाठ पढ़ानेवाला है। इसके चरितनायक भगवान् राम सर्वगुणसम्पन्न और अत्यन्त विवेकशील हैं। उनके परम पुनीत आदर्श चरित्रका अनुकरण या मनन करनेसे चित्त एक प्रकारके स्वर्गीय सुखका अनुभव करने लगता है। राम एक चक्रवर्ती राज्यके अधिष्ठाता हैं; तो भी प्रजाके साथ उनकी जो घनिष्ठता और सुहृदता पायी जाती है, उसमें राजा-प्रजाका पद-प्रभावजनित भेदभाव विलीन हो जाता है और वे प्रजाके अपने ही जान पड़ते हैं। वास्तवमें यही राजा-प्रजाके सम्बन्धका सर्वश्रेष्ठ आदर्श है, यही सुशासनका फल है और इसीके द्वारा प्रजामें सच्ची शान्ति स्थापित हो सकती है। जो राजा इस प्रकार प्रजाके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध रखता है, वह सर्वदा एक आराध्य देवके समान उनके हृदय-मन्दिरमें आसन जमाये रहता है।

पारिवारिक जीवनमें पिता-पुत्रका सम्बन्ध एक विशेष स्थान रखता है। इसमें शील, गौरव और माधुर्यका अपूर्व सम्मेलन रहता है। पिताको पुत्रपर अत्यधिक स्नेह रखकर उसकी सभी आवश्यकताओंका ध्यान रखना चाहिये तथा पुत्रको सरल हृदयसे पिताका सम्मान करते हुए हर समय उनके गौरवकी रक्षा करनी चाहिये। पारिवारिक जीवनमें पुत्रके लिये पिताके वचन ही परम प्रमाण हैं। उनका श्रद्धा और सद्भावपूर्वक पालन करनेसे वह अनायास ही सांसारिक और पारमार्थिक सुख प्राप्त कर सकता है। इस विषयमें महाराज दशरथ और रामने जो आदर्श संसारके सामने रखा है, उसे 'न भूतो न भविष्यति' कहा जा सकता है। दशरथका पुत्र-स्नेह और रामकी पितृ-भक्ति संसारके इतिहासमें अपूर्व ही हैं। यही बात माता और पुत्रके सम्बन्धके विषयमें भी है। यद्यपि संसारके सभी धर्म इस सम्बन्धकी महत्ता स्वीकार करते हैं, तथापि आर्यधर्ममें इसका जो गौरव और माधुर्य है वह सर्वथा अवर्णनीय है। मानव-सभ्यताके आदिस्रोत वेदोंने भी 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव' इत्यादि मार्मिक शब्दोंद्वारा इन सम्बन्धोंकी महत्ताका प्रतिपादन किया है। इस आदर्शको भगवान् रामने जैसा चरितार्थ किया है, वैसा कहीं



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यत्र मिलना कठिन ही है। उन्होंने अपनी माताके वचनों-की तो बात ही क्या, विमाताके वचनोंका भी प्राणपणसे पालन किया और उनपर एक समृद्धिशाली राज्यके वैभवको तृणकी तरह त्यागकर सारे संसारके आगे अनुपम आदर्श उपस्थित कर दिया।

यह विश्व विधिका ही विधान है, इसे सुचारुरूपसे सञ्चालित रखनेके लिये ही पति-पत्नीकी जोड़ी बनायी गयी है। यह प्रेममय सम्बन्ध वैदिक मन्त्रोंद्वारा अग्निको साक्षी बनाकर स्थापित किया जाता है। प्रेम ही इसका जीवन है। आज कलि महाराजके प्रभावसे यद्यपि यह प्रेम-बन्धन भी कलहका क्रीडाक्षेत्र बन गया है, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि इसका प्रधान उद्देश्य जीवनमें प्रेमका विकास और आनन्दका उल्लास करना ही है। पत्नीके लिये तो यही सम्बन्ध परमार्थ-प्राप्तिका भी प्रधान साधन है। यह पतिके रूपमें उसके सामने अपने परमाराध्यकी पवित्र प्रतिमा प्रस्तुत करता है, जिसकी सेवा-पूजासे वह सहजहीमें परम पदकी प्राप्ति और परमार्थकी उपलब्धि कर सकती है। सती-शिरोमणि राम-वल्लभा श्रीसीता-जीने अपने अटूट पतिप्रेमके द्वारा जो आदर्श उपस्थित किया है, वह प्रत्येक आर्य-ललनाके लिये अनुकरणीय है। सीताकी पतिपरायणता और रामका एकपत्नीव्रत संसारमें दाम्पत्य-धर्मके अद्वितीय दृष्टान्त हैं। यही कारण है कि आज संसारके सभी धर्मावलम्बियोंके हृदयोंपर न्यूनाधिक रूपसे इनके प्रति गौरव और सम्मानकी छाप लगी हुई है।

माता-पिता और पति-पत्नीके सम्बन्धोंके समान ही भ्रातृत्वका सम्बन्ध भी पारिवारिक जीवनमें एक विशेष स्थान रखता है। जहाँ सच्चा भ्रातृप्रेम होता है, वहाँ इस संसारमें ही स्वर्गीय सुखका अनुभव हो सकता है। भगवान् रामके प्रति उनके छोटे भाई भरत आदिका जो गौरव और प्रेमका भाव है तथा श्रीरामका अपने भाइयोंके प्रति जो स्वाभाविक स्नेह और वात्सल्य है, उनकी स्मृतिमात्रसे सुभ्रातृत्वकी एक अनुपम मूर्त्ति सामने खड़ी हो जाती है। जहाँ एक ओर भगवान् राम भाई भरतके लिये अयोध्याके वैभवको त्यागनेमें अत्यन्त आनन्द और उत्साहका अनुभव करते हैं, वहाँ भरतजी भी उस राज्यश्रीसे सर्वथा निर्लिप्त रहकर तापस-वेषसे रामकी पादुकाओंका पूजन करनेमें ही अपने जीवनकी सार्थकता मानते हैं। भारत-भूषण भरत भक्ति और करुणाके मूर्त्तिमान् विग्रह ही हैं। जिस समय वे ननिहालसे लौटते हैं और पिताकी मृत्युका समाचार सुनते हैं, उस समय उनका हृदय शोक-सागरमें डूब जाता है; किन्तु जब उन्हें रामचन्द्र-जीके वन-गमनका समाचार मिलता है, तब तो वे उसे भी भूल जाते हैं। पिताके और्ध्वदेहिक कर्मोंसे निवृत्त होकर वे तुरंत ही श्रीरामको वनसे लौटानेके लिये चल देते हैं। उस समयकी उनकी दशा किस सहृदयको आकुल नहीं कर देती। परम सुकुमार शरीर और किशोर अवस्था है, तो भी उस कण्टकाकीर्ण पथमें बिना पादत्राणके पैदल ही चल रहे हैं! परन्तु प्रेम-राज्यमें इन बातोंके विचारका अवकाश ही कहाँ है। वहाँ तो बड़े-से-बड़े कष्ट भी प्रेमकी माधुरीमें पगकर मधुरातिमधुर हो जाते हैं। उस समयकी उनकी विकलता, बार-बार 'हा राम! हा राम!' कहकर पुकारना और श्रीसीता-रामके चरण-चिह्नोंकी रजमें विलाप करते हुए लोटना—ये सब ऐसी बातें हैं जो कठोर-से-कठोर हृदयको भी द्रवीभूत कर देती हैं। भगवान् राम और भरतका मिलन तो करुणा-निकेतमें भक्त और भगवान्का मिलन ही है। भरतने रामको अयोध्या लौटानेका अधिक-से-अधिक प्रयत्न किया, परन्तु भाईका प्रेमपूर्ण आग्रह भी श्रीरामको अपनी धर्मनिष्ठासे विचलित न कर सका। अन्तमें भरत सिरपर श्रीरामकी पादुकाएँ और हृदयमें उनकी मधुर मूर्ति धारणकर अयोध्या लौट आये और तपोमय जीवन व्यतीत करते हुए श्रीरामके पुनरागमनकी प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार भरतने श्रीरामकी प्रतीक्षामें चौदह वर्ष बिताये और लक्ष्मणने श्रीरामकी सेवामें। लक्ष्मणने तो माता जानकी और श्रीरामको ही अपना सर्वस्व समझा और उन्हींकी सेवा तथा उन्हींके आज्ञापालनमें अपने जीवनकी कृतार्थता मानी। श्रीरामकी आज्ञाके औचित्य-अनौचित्यपर विचार करनेका भी उन्हें अवकाश नहीं था, उनकी आज्ञा होनेपर उन्हें सीताजीके अग्नि-प्रवेशके लिये चिता तैयार करने तथा उन्हें वनमें छोड़ आने-जैसे कठोर कर्त्तव्योंका पालन करनेमें भी हिचक नहीं हुई।

इस प्रकार पारिवारिक सम्बन्धोंके विषयमें संक्षेपसे विचार करके जब हम श्रीरामायणमें चित्रित सामाजिक सम्बन्धोंकी ओर आते हैं, तब सबसे पहले हमारी दृष्टि आदर्श सेवक हनुमान्पर पड़ती है। स्वामी और सेवकका सम्बन्ध सामाजिक जीवनमें एक विशेष स्थान रखता है। सेवक स्वामीका ही एक अङ्ग माना जाता है; अङ्ग ही नहीं, व्यावहारिक कोटिमें उसे स्वामीका आत्मा भी कहा जाता है। परन्तु इस सम्बन्धमें घनिष्ठता और मधुरता तो तभी आती है, जब स्वामीका सेवकके प्रति सच्चा स्नेह और आदरका भाव हो तथा सेवक सच्चा स्वामिभक्त, सच्चरित्र और आज्ञापालक हो। जो स्वामी सेवकको अपना आत्मीय समझता है और जो सेवक स्वामीके कार्यको अपना कार्य समझता है, वे ही इस सम्बन्धका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यथार्थ सुख भोग सकते हैं। ऐसे स्वामी और सेवक आवश्यकता होनेपर एक-दूसरेके लिये बड़े-से-बड़ा बलिदान करनेके लिये तैयार रहते हैं; इसलिये उन्हें जीवन-संग्राममें प्रायः सफलता ही प्राप्त होती है और चिरकालतक उनका सुयश बना रहता है। भगवान् श्रीराम ऐसे ही आदर्श स्वामी और श्रीहनुमान्‌जी ऐसे ही आदर्श सेवक थे। हनुमान्‌ने श्रीरामके लिये कभी कोई बात उठा नहीं रखी और श्रीराम सर्वदा अपनेको हनुमान्‌का ऋणी ही मानते रहे। इसीसे आज प्रत्येक रामभक्त अपने इष्टदेवकी प्राप्तिमें श्रीहनुमान्‌जीके नेतृत्वको अनिवार्य समझता है।

भगवान् श्रीरामकी कर्तव्य-परायणताका सबसे अच्छा परिचय तो उस समय मिलता है, जब स्वयं शत्रुका भाई विभीषण उनकी शरणमें आता है और अनेकों प्रमुख वानरोंके साथ वानरनाथ सुग्रीव भी उसमें शत्रुकी किसी दुरभिसन्धिका सन्देह करके उसे बाँधनेका परामर्श देते हैं। ऐसे समयमें श्रीराम आगे-पीछेकी सब बातोंका विचार छोड़कर केवल अपने प्रस्तुत कर्तव्यपर ही दृष्टि देते हैं और कहते हैं कि रावणका भाई नहीं, यदि स्वयं रावण भी शरणमें आये तो मैं उसे अवश्य अभय-दान दूँगा। शरणागत चाहे कैसा ही अपराधी हो, शरण्यकी श्रेष्ठता और उदारता तो इसीमें है कि वह उसके सब अपराधोंको भूलकर उसे अभय कर दे। भगवान्‌के इस अनूठे भावकी स्फूर्ति उस समय केवल उनके अनन्य भक्त और सेवक हनुमान्‌के हृदयमें ही हुई; जिस समय उनसे इस विषयमें सलाह ली गयी, उस समय उन्होंने वही बात कही जो स्वयं भगवान् करना चाहते थे। भगवान्‌ने विभीषण-को केवल अभय ही नहीं किया, अपितु उसी समय लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त भी कर दिया। संसारके इतिहासमें शरणागत-वत्सलताका ऐसा सुन्दर दृष्टान्त और कहाँ मिलेगा।

श्रीराम जिस प्रकार आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भ्राता, आदर्श स्वामी और आदर्श शरण्य हैं, उसी प्रकार आदर्श मित्र भी हैं। सुग्रीवके लिये उन्होंने क्या नहीं किया। स्वयं सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ होकर भी वे प्रत्येक कार्यमें पहले सुग्रीवकी सलाह अवश्य लेते हैं। सुग्रीवके सम्मान और सत्कारका वे सर्वत्र पूरा ध्यान रखते हैं। लङ्काविजय करनेपर जो सामग्री विभीषण उनके सत्कारके लिये लाता है, उससे वे सुग्रीवका सत्कार कराते हैं तथा अयोध्या पहुँचनेपर सुग्रीवको अपने महलमें ठहराते हैं। दूसरी ओर सुग्रीव भी श्रीरामकी कार्य-सिद्धिके लिये कोई बात उठा नहीं रखते, अपनी पूरी शक्तिसे उनकी सहायतामें जुट जाते हैं और अन्तमें उसे पूरा करके ही विश्राम लेते हैं। श्रीराम और सुग्रीवकी मैत्री ऊपरसे सप्रयोजन प्रतीत होनेपर भी वस्तुतः है विशुद्ध प्रेमजनित ही। वास्तवमें तो सभी प्रधान-प्रधान वानर देवताओंके अवतार थे और उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी अलौकिक लीलाओंमें सहयोग देनेके लिये ही इस लोकमें अवतार लिया था। अतः उनका निःस्वार्थ सहयोग तो स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अकेले श्रीरामचन्द्रके जीवनमें ही अनेकों अद्भुत आदर्शोंका समन्वय हुआ है। मानव-जीवनके सर्वतोमुख विकासके लिये अकेले उनके जीवनको आदर्श मानकर चलनेसे ही पूरी सफलता मिल सकती है। रामायणमें उनके साथ यद्यपि भरत, लक्ष्मण, सीता, हनुमान् आदि अन्य कई पात्रोंके आदर्श चरित्रोंका भी निरूपण हुआ है, तथापि इस महाग्रन्थके प्रधान पात्र दो ही हैं—राम और रावण। इनमें भगवान् श्रीराम सब प्रकारके आदर्श और दैवी गुणोंके मूर्तिमान् विग्रह हैं और विश्वविजयी रावण उनका ठीक प्रतिद्वन्द्वी है। उसने अपनी सारी शारीरिक और मानसिक शक्तिका प्रयोग किया है अनाचार, अत्याचार और विश्वके उत्पीडनमें। अपनी कामान्धताके कारण उसने सती-शिरोमणि सीताजीका बलात्कारसे हरण किया, मदान्धताके कारण अपने हितैषी और साधुचरित्र अनुजका तिरस्कार किया तथा बलान्धताके कारण निरपराध ऋषि, मुनि, देवता और ब्राह्मणोंको पीड़ित किया। इन दैवी और आसुरी शक्तियोंके संघर्षका इतिहास ही श्रीरामायण है। इस महा-ग्रन्थमें 'यतो धर्मस्ततो जयः' इस सनातन सिद्धान्तको सत्य सिद्ध करते हुए यह दिखाया गया है कि अन्तमें आसुरी शक्तिको दैवी शक्तिके सामने नीचा देखना ही पड़ा। रावणका मद गलित हो गया, उसकी सारी श्री नष्ट हो गयी, सारा वैभव मिट्टीमें मिल गया और अपने समस्त अनुयायियोंके सहित उसे कालके गालमें जाना पड़ा।

अतः रामायण हमारे सामने जो आदर्श उपस्थित करती है, वही मानव-जीवनमें सुख और सफलता प्राप्त करनेका सर्वोत्तम साधन है। यदि उसके निर्दिष्ट पथपर श्रद्धापूर्वक अग्रसर हुआ जाय तो वह निःसन्देह मनुष्यको सब प्रकारके दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे मुक्त करके परमानन्दकी प्राप्ति करा सकती है। अतः यदि हम ऐहिक और आमुष्मिक सब प्रकारका अभ्युदय चाहते हैं तो श्रद्धापूर्वक इस परम पवित्र महाकाव्यका अनुशीलन करें। इसके द्वारा हमें जीवनमें सब प्रकारकी सफलताएँ प्राप्त होंगी और अन्तमें परमपदकी प्राप्ति भी हो सकेगी। बोलो श्रीसीतारामकी जय!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# रामायण-कालीन संस्कृति

( लेखक—श्रीशान्तिकुमार नानूराम व्यास, बी० ए० )

किसी भी देश या युगकी संस्कृतिका प्रधान परिचायक वहाँका या उस युगका साहित्य है। संस्कृत-साहित्यके आदि-काव्य रामायणमें चित्रित संस्कृति भारतीय जीवनके अनेक पहलुओं—राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक—पर प्रकाश डालती है। राजनीतिक जीवनकी समीक्षा करनेपर हम देखते हैं कि उस समय सम्पूर्ण उत्तरी और दक्षिणी भारत अयोध्या-सम्राट्के आधिपत्यमें था। रामायणमें राजा दशरथकी जिस राज्य-व्यवस्थाका वर्णन है, उसकी समुन्नत-से-समुन्नत राज्यकी व्यवस्थाके साथ तुलना की जा सकती है। शासन-प्रणालीका स्वरूप एक राजतन्त्र था। शासन-तन्त्रके प्रति प्रजामें पैतृक भावनाका प्रसार था। नियन्त्रण 'मन्त्रिपरिषद्' द्वारा होता था, जिसका प्रधान सदस्य पुरोहित होता था। रामायणमें आदिसे अन्ततक पुरोहितका स्थान बड़े महत्त्वका है। तपोनिष्ठ वसिष्ठ-मुनिका प्राधान्य सभी कोसलाधिपोंके शासनकालमें दृष्टिगोचर होता है। मन्त्रिपरिषद्के साथ ही 'पौर' और 'जानपद' आदि अन्यान्य समितियाँ भी होती थीं,[2] जिनका महत्त्वपूर्ण अवसरोंपर परामर्शके लिये एकत्र होना आवश्यक था। बहुधा ज्येष्ठ पुत्र ही पिताका उत्तराधिकारी होता था[3]। अभिषेकोत्सवमें राजकुमारको 'युवराज' की पदवी दी जाती थी। युवराज-निर्वाचनमें प्रजाकी सम्मति लेना राजा अपना कर्तव्य समझते थे[4]। राजकुमारोंको प्रान्तीय शासक बनाकर भेजनेकी प्रथा थी। भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नके पुत्र दूर-दूर स्थानों ( तक्षशिला, मथुरा, विदिशा आदि ) में शासक बनाकर भेजे गये थे[5]। इस प्रान्तीय शासन-प्रणालीसे श्रीरामचन्द्रजीके साम्राज्यका विस्तार सूचित होता है।

इक्ष्वाकु-वंशके नृपति धर्मपरायण, प्रजापालक, पराक्रमी तथा विद्याविनय-सम्पन्न हुआ करते थे। महाराज दशरथकी गुणावली एक आदर्श राजाके सर्वथा अनुरूप है[6]। राजाके मन्त्रिमण्डलमें राजनीति-विशारद, शास्त्रज्ञ एवं निःस्वार्थी आठ मुनिगण हुआ करते थे[7]। राजा प्रजाको अपनी सन्तान मानकर व्यवहार करता था। राजनीतिक सिद्धान्तोंका पालन करना तो राजाके लिये अनिवार्य था ही; पर इनसे बढ़कर कुछ ऐसे लौकिक नियम भी थे, जिनका सत्कार करना राजाका धर्म समझा जाता था। नियम-भङ्ग करनेपर राजाको अराजकता और विप्लवका सामना करना पड़ता था। शासन-प्रणाली एकराजतन्त्र होनेपर भी प्रजाको राजकार्यमें योग दे सकनेकी पूर्ण सुविधा प्राप्त थी। 'श्रेणी' और 'नैगम' सदृश कुछ अर्द्ध-राजनीतिक संस्थाएँ भी थीं, जिनके प्रतिनिधि देशके शासनमें पूर्ण सहयोग देते थे। विचार-विनिमयद्वारा अमात्यगण, राज्यके मेधावी पुरुष तथा सेनाके प्रमुख सञ्चालक देशकी उन्नतिके लिये नये-नये मार्गोंका अनुसरण करते थे। अवसर-विशेषपर राज्यके विभिन्न भागोंसे नागरिक विचार-विमर्श करनेके लिये सम्मिलित होते थे। विचार-स्वातन्त्र्यका अधिकार सभीको प्राप्त था। राम-राज्याभिषेकके अवसरपर अयोध्यामें नागरिकोंकी महती सभा हुई थी, जिसमें प्रजाजनोंने स्पष्टरूपसे घोषित किया कि वे रामको ही युवराज देखना चाहते हैं[1]। यहाँतक कि रावण-जैसे दुर्दान्त और अभिमानी राजाके दरबारमें भी विचार-स्वातन्त्र्यको स्थान मिलता है और हम देखते हैं कि न केवल विभीषण अपितु कुम्भकर्ण और माल्यवान् भी विभिन्न दृष्टिकोणोंसे रावणके सीताके प्रति किये गये आचरणकी खरी आलोचना करते हैं।

आदर्श राजा और मन्त्रिमण्डलके प्रभावसे प्रजा सब प्रकारसे धर्मरत, सुखी और सम्पन्न थी। महाराज दशरथके दीर्घ शासनकालमें अयोध्या एवं अन्य प्रान्त अत्यन्त समृद्धिशाली थे, तथा लोग 'प्रभूत-धनधान्यवान्' थे[2]। राजा तथा अधिकारि-वर्गके अनुकरणीय जीवनने जन-साधारणके सांस्कृतिक उत्थानको नैतिक प्रेरणा प्रदान की। इसका सबसे प्रबल प्रमाण वाल्मीकिकी इस उक्तिमें मिलता है कि 'नासीत् पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरः क्वचित्'। राजधानी अयोध्या बड़ी ही रम्य थी। इसका विस्तृत वर्णन बालकाण्डके पञ्चम सर्गमें मिलता है, जिससे मालूम पड़ता है कि इस महानगरीमें सुन्दर लंबी-चौड़ी सड़कें बनी हुई थीं, जिनपर रोज जलका छिड़काव होता था तथा सुगन्धित पुष्प बिखेरे जाते थे। सभी गृहस्थोंके घर गौ, घोड़े और धन-धान्यसे पूर्ण थे। वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता अग्निहोत्री और गुणी पुरुषोंसे नगरी भरी थी। कामी,

१. ( २ । २ । १ ) २. ( २ । २ । १९ ) ३. ( २ । ११ । ३६ ) ४. ( २ । २ । १०१ ) ५. ( ७ । १०१ । ११, १०८ । ९-११, १०२ । १-९ ) ६. ( १ । ६ । १-५ ) ७. ( १ । ७ )

१. ( २ । २ । ५३ ) २. ( १ । ५ । ५ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कृपण, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक तो ढूँढ़े नहीं मिलते थे। कृषकों और व्यवसायियोंको राज्यकी ओरसे विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं। क्षत्रिय-राजाओंद्वारा पुत्रलाभ, विश्व-विजय आदिके लिये यज्ञोंका अनुष्ठान किया जाता था। राज्यके व्ययकी सूचीमें मन्दिर, संस्कार, ब्राह्मण, योग्य अतिथि, योद्धा तथा मित्रादि-सम्बन्धी व्ययका समावेश पाया जाता है।

रामायणमें सैनिक संगठन और शासन-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेना होती थी, जो धन-धान्य, जल, अस्त्र-शस्त्र, यन्त्र और शिल्पकारोंसे सुसज्जित किलोंमें तैनात रहती थी। उस समय एक विशेष युद्ध-सचिव होता था, जिसका काम अपने और शत्रुके बलाबलका ज्ञान रखना तथा तदनुसार राजाको सम्मति प्रदान करना था[1]। रण-परिषदें भी होती थीं, जो युद्ध छिड़नेके पूर्व बुलायी जाती थीं और जिनमें युद्धका कार्यक्रम बनाया जाता था। रावणने जब सुना कि रामचन्द्रजी समुद्र पार कर लङ्कामें आ गये हैं, तब उसने अपनी रण-परिषद्-की सभा बुलायी थी। राजदूतोंका सङ्ग सैनिक नीतिका एक प्रधान अङ्ग था। दूत अवध्य होता था। सैन्य-सञ्चालन तथा शिविर-स्थापन वैज्ञानिक ढंगसे होते थे। शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके बाद उसीको वहाँके सिंहासनपर करद राजाके रूपमें प्रतिष्ठित कर देते थे; और यदि शत्रु-राजा युद्धमें मारा जाता तो उसकी जगह उसका यथार्थ उत्तराधिकारी सिंहासनारूढ़ किया जाता था। उदाहरणार्थ, लङ्का-विजयके पश्चात् विभीषण-को राजतिलक दिया गया था। रामायण-कालीन वीर महा-पराक्रमी होनेपर भी युद्ध-विमुखपर शस्त्र चलाकर अथवा धर्म-युद्धके नियमोंका अनादर कर अपना सुयश नहीं खोते थे। राजाद्वारा उनका प्रभूत सम्मान होता था, इसी कारण वे राज्य-भक्त और कर्तव्य-परायण होते थे। लवण-वधके लिये प्रयाण करते हुए शत्रुघ्नको राम आदेश देते हैं कि सैनिकोंको यथेच्छ भोजन तथा पारतोषिकद्वारा प्रसन्न और संतुष्ट रखना चाहिये। भरतको भी वे ऐसी ही सुशिक्षा देते हैं। अयोध्याकाण्डके ८३ वें सर्गमें भरतकी ससैन्य वन-यात्रा तथा युद्धकाण्डके २२ वें सर्गमें वानरोंद्वारा निर्मित सेतुबन्धके वर्णनसे उस समयके सैनिक यन्त्रकारोंके कौशलका पर्याप्त परिचय मिलता है।

रामायण-कालीन समाजमें वर्णाश्रम-धर्म पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित था। चारों वर्ण 'स्वकर्म-निरत' थे[2]। शूद्र-तपस्वी शम्बूक अनधिकार-चेष्टाके कारण वधका पात्र समझा गया। ब्राह्मण-लोग शूद्रको मन्त्रदान करनेपर पतित हो जाते थे। ब्राह्मणोंके लिये यान और आसनादिकी स्वतन्त्र व्यवस्था थी। विवाहके सम्बन्धमें कन्या स्वतन्त्र नहीं थी, प्रत्युत अपने पिताके सर्वथा अधीन थी। स्वयंवरका उल्लेख होनेपर भी वह स्वेच्छा-सम्मत नहीं था। सीताके स्वयंवरका आयोजन राजा जनकने अपनी प्रतिज्ञा-पूर्तिके लिये किया था। जब वायु कुशनाभकी कन्याओंसे भार्या बनानेकी प्रार्थना करता है तो वे कहती हैं—'यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति।'[1] रामायणमें परदा-प्रथाका भी अस्तित्व स्पष्ट प्रमाणित होता है। वन-गमनके समय, जिस सीताको आकाशगामी प्राणी भी नहीं देख सकते थे, उसे सर्वसाधारण आम रास्तेपर जाते हुए देखते हैं[2]। लङ्का-विजयके पश्चात् सीता 'आरोप्य शिबिकां दीप्तां परार्घ्याम्बरसंवृताम्'—एक चमकती हुई पालकीमें, जिसपर बढ़िया परदा पड़ा हुआ था, सवार होकर रामके पास आयी थीं[3]। रनिवासकी ड्योढ़ीपर स्त्रियों, बालकों और बूढ़ोंको ही रखा जाता था[4]। राजाओंमें उस समय बहुविवाहकी प्रथा थी, जो अवश्य ही आदर्श नहीं कही जा सकती; श्रीरामने इस प्रथाको तोड़कर आदर्श सुधार किया। पारिवारिक जीवन बड़ा सुखमय था। स्त्रियाँ पतिपरायणा, मञ्जुभाषिणी तथा कुटुम्ब-सेवा-निरत होती थीं। सहिष्णुता तथा क्षमा परिवारमें कलहका कलुषित प्रभाव नहीं जमने देती थीं। पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, सास-पतोहू, स्वामी-नौकर आदि परस्पर स्नेहसे अनुरक्त रहते थे। चारों वर्णोंके स्त्री-पुरुष देवता और अतिथिकी पूजा करनेवाले, पर-दुःख-भञ्जन, कृतज्ञ और शूरवीर थे। धर्मात्मा, इन्द्रियनिग्रही, हर्षयुक्त और सुशील थे। सभी स्नान करते, कुण्डल-मुकुट-माला धारण करते, सुगन्धित अङ्गरागोंका लेपन करते, उत्तम भोजन करते और दान देते थे। क्षुद्र विचारका, चरित्रहीन, चोर और वर्णसङ्कर कोई नहीं था। पुरुष दीर्घजीवी और स्त्री-पुत्र-पौत्रादिसे युक्त होते थे[5]। हवन एवं यज्ञानुष्ठान, पितरोंका तर्पण और श्राद्ध विधिपूर्वक सम्पन्न होते थे[6]। कामना-सिद्धिके लिये स्त्रियाँ पूजा, प्रार्थना और रात्रि-जागरण किया करती थीं।

रामायण-कालके आदर्श राजा, सुसंस्कृत प्रजा तथा

१. ( ६ । १४ । २२ ) २. ( १ । ६ । १९ )

१. ( १ । ३२ । २२ ) २. ( २ । ३३ । ८ ) ३. ( ६ । ११४ । १५ ) ४. ( २ । २० । १२ ) ५. ( १ । ५ ) ६. ( २ । ७६ । २२-२३, ७७ । १-२ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कर्त्तव्यनिष्ठ अधिकारिवर्ग अपनी नीति-परायणताके लिये उस उच्च सांस्कृतिक शिक्षाके ऋणी थे, जो उस समय सर्वत्र उपलब्ध थी। राज्यमें शिक्षणकी ऐसी सुव्यवस्था थी कि समाजका प्रत्येक सदस्य भलीभाँति जानता था कि किस प्रकार उसे अपने कर्तव्यविशेषका पालन करना है तथा किस प्रकार अपने कर्तव्यको सार्वजनिक कर्तव्यकी पूर्तिमें सार्वजनिक हित-साधनमें लगाना है। शासनकर्ताओंका यह धर्म होता था कि समाजके भिन्न-भिन्न अङ्गोंको शिक्षित बनानेके साथ-ही-साथ व्यक्तित्वके विकास एवं समष्टिके उत्कर्षद्वारा सुशिक्षाके सौरभका सर्वत्र प्रसार करें। ब्राह्मणोंके प्रति राजाका प्रश्न यह होता था—'क्या आपके शिष्यगण शिक्षा-कालमें श्रद्धा और तत्परतापूर्वक आपकी परिचर्या करते हैं?' क्षत्रियसे प्रश्नका रूप यह होता था—'क्या तुम्हारे सैनिक सर्वदा रणभूमिमें जानेके लिये सुसज्जित रहते हैं?' इसी प्रकार अन्य वर्णोंकी प्रगतिके सम्पर्कमें राजा अपने-आपको सदा रखता था[1]। राजाका शिक्षण बहुमुखी होता था; क्योंकि राज्यका प्रधान सञ्चालक होनेके नाते उसके लिये यह जानना नितान्त आवश्यक था कि किस प्रकार अपने राज्यके भिन्न स्वभाववाले लोगोंका उत्कृष्टतम अंश उसे प्राप्त हो सकता है। मौलिकता एवं आविष्कार-क्षमताको प्रोत्साहन देनेके लिये उसे विविध समारोहोंका आयोजन करना पड़ता था। रामायण-कालमें संस्कृत बोलचालकी भाषाके रूपमें प्रचलित थी। हनुमान्‌जीने भी सर्वप्रथम अशोक-वाटिकामें पहुँचकर सीताजीसे किस प्रकार वार्तालाप किया जाय, इस विषयमें बड़ा सोच-विचार किया और अन्तमें संस्कृतमें ही भाषण करना निश्चित किया। उस समय वेद-शास्त्रोंके पठन-पाठनकी सुव्यवस्था थी। वेद-शास्त्र-सम्पन्न ब्राह्मण विद्वानोंका बड़ा समादर था, उन्हें दान-दक्षिणा भी खूब मिलती थी। पण्डित लोग सभाओंमें पहुँचकर विजय पानेकी इच्छासे शास्त्रार्थ भी किया करते थे। यज्ञानुष्ठानके शुभ अवसरोंपर दिग्दिगन्तसे लोग एकत्र होते थे तथा लौकिक एवं पारमार्थिक विषयोंपर चर्चा किया करते थे। राजपरिवारके सदस्य कलाकारों तथा विशेषज्ञोंके संरक्षक होते थे। वन-गमनके समय राम अपने आश्रितोंकी देख-भालके लिये लक्ष्मणको आदेश देते हैं।[2]

वनवासी मुनियों तथा नगर-निवासी क्षत्रिय-राजाओंमें सहयोग और सहानुभूतिकी भावना स्पष्ट लक्षित होती है। 'हमलोग अरण्यवासी हैं, फल-मूलद्वारा शरीर-निर्वाह करते हैं, हमें धन-वैभवकी आवश्यकता नहीं है।'—मुनियोंकी यह भावना प्राचीनकालकी संस्कृतिमें पूर्णतया ओत-प्रोत थी। वृक्षोंके नीचे घास-फूसकी कुटियामें निवास करनेवाले तपस्वी ऋषि-मुनि अपनी असाधारण प्रतिभा एवं ज्ञानका निःशुल्क वितरण करनेकी क्षमता रखते थे। समाज इन महात्माओंकी अमूल्य सेवाओंका आदर कर उनके परिवार तथा शिष्योंके भरण-पोषणके लिये समुचित प्रबन्ध करता था। अपने पुनीत कार्यमें विघ्न-बाधा होनेपर ऋषिलोग राजाके समीप संरक्षणकी याचना करने जाते थे। सब भूतप्राणियोंके प्रति हेतुरहित दया ही इनके जीवनका मूल-मन्त्र होता था। विरक्त जीवन व्यतीत करनेकी इच्छासे आनेवालोंका इन मुनियोंके आश्रममें स्वागत होता था, जहाँ उनकी आध्यात्मिक भूख शान्त हो जाती थी। दीन-दुखियोंके लिये इन आश्रमोंके द्वार सदा खुले रहते थे। वाल्मीकिका सीता तथा उनके पुत्रोंको आश्रय देना इस बातका ज्वलंत प्रमाण है कि संसारका परित्याग करनेवाले ये मानवीय देवता सांसारिक ऐश्वर्यको तृणवत् समझकर किस प्रकार आर्त एवं अनाथ प्राणियोंको अपने निर्मल, अहैतुक प्रेमकी वर्षासे परिप्लावित कर देते थे।

धर्म ही रामायण-कालीन संस्कृतिका प्राण था। दैनिक जीवनमें सुख और संतोष, माधुर्य एवं नवीनताका उत्पादक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवनमें सहकारिता और सद्भावनाओंका प्रसारक धर्म ही था। आन्तरिक पवित्रताका सत्कर्मोंद्वारा प्रकट होकर पापका पराभव करना ही धर्मके निर्मल प्रभावका द्योतक है। अपने व्यक्तित्वकी सर्वांगीण उन्नति धार्मिक अनुष्ठानोंके सम्पादनसे, दान, कर्तव्य-पालन तथा स्वाध्यायसे एवं संयम, वैराग्य तथा नीतियुक्त सदाचरणसे ही सिद्ध हो सकती है—यही महर्षि वाल्मीकिका अमर सन्देश है और यही रामायण-कालीन संस्कृतिकी उज्ज्वलताका रहस्य है।

१. ( २। २। ३८–४० ) २. ( २। ३२। १३–२२ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# संक्षिप्त रामायण

( संग्राहक—स्वामी श्रीप्रेमपुरीजी )

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने शत-कोटि रामायणकी रचना की। उसे लूटनेके लिये देव, दानव और मानव—सभी टूट पड़े। झगड़ा छिड़ गया, छीना-झपटीकी नौबत आ गयी। कुछ विचारशीलोंने प्रस्ताव रखा कि इसका बटवारा किसी मध्यस्थके द्वारा करा लेना चाहिये। यह बात सबको पसंद आ गयी। अब पंचकी खोज शुरू हुई। मध्यस्थ ऐसा निःस्वार्थ तथा तटस्थ होना चाहिये, जो बंदरकी तरह बिल्लियोंको रुलानेवाला न हो। अन्तमें सबकी नज़र देवाधिदेव महादेवपर ठहरी। झट सब मिलकर भगवान् शंकरकी सेवामें उपस्थित हुए। सबने अपना मन्तव्य निवेदन किया और रामायणका यथोचित विभाग कर देनेकी प्रार्थना की।

सदाशिवने शत-कोटि श्लोकोंमेंसे तैंतीस-तैंतीस करोड़ श्लोक तीनोंको बाँट दिये। एक करोड़ बच रहे। इस प्रकार उत्तरोत्तर बाँटते-बाँटते अन्तमें एक श्लोक बाकी रह गया। रामायणके श्लोक अनुष्टुप् छन्दके होनेके कारण एक श्लोकमें बत्तीस अक्षर होते हैं। सुतरां शिवजीने फिर दस-दस अक्षर बाँट दिये। फिर भी दो अक्षर बच रहे। शिवजीने सकुचाते हुए कहा, 'ये दो अक्षर अपनी मेहनतके इनाममें मुझे मिलने चाहिये।' सबने बड़ी खुशीसे स्वीकार किया। अतः महादेवजीने उन दोनों अक्षरोंको अपने हृदयमें धारण कर लिया। वे दो अक्षर थे—'रा' और 'म'। भोले बाबाने इन दो अक्षरोंमें ही सारा ( शत-कोटि ) रामायण समेट लिया। इसीसे वे देवाधिदेव या महादेव बन सके हैं और उनके त्याग, तप, महिमा एवं ज्ञानकी थाह आजतक देव, दानव या मानव—कोई भी नहीं पा सका है।

# आदिकविके प्रति

( १ )

कंज खिला, रवि-रश्मियोंसे अनुरंजित हो गया कानन सारा।
चारा चला चुगने निज नीडसे संग बधूके बिहंग बिचारा॥
त्यों ही छिपे तमसा-नदी-तीरसे तीर बहेलियेने उसे मारा।
चीख उठी असहाय विहंगिनी रो उठा था वन-कूल-किनारा॥

( २ )

देखा गया नहीं दृश्य तुझे यह, अन्तरमें करुणा-घटा छायी।
दर्दभरी निकली इक आह-सी, दौड़ सरस्वती कंठमें आयी॥
फूट पड़ा व्यथासे भरा गान जो काव्य महान हुआ सुखदायी।
पी-पी जिसे अमरत्व मिला, वसुधामें सुधा वह तूने बहायी॥

( ३ )

पिला राम-रसायन संसृतिके दुख-द्वन्द्व निवार उबारनेवाली।
अघ-ओघ मिटाकर जीवनमें सदा पावन पुण्य पसारनेवाली॥
तुम आदिकवे! यहाँ होते न जो, यह तारक मन्त्र दे तारनेवाली।
रघुनाथ-कथा मिलती कहाँसे भव-सिन्धुके पार उतारनेवाली॥

'राम'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वाल्मीकि-रामायणकी अद्वितीयता

( लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा )

**शताब्दियोंपर शताब्दियाँ बीतती जाती हैं, परन्तु रामायण और महाभारतका पावन स्रोत भारतमें नाममात्रको भी नहीं सूखता।**

—रवीन्द्रनाथ

वाल्मीकि-रामायण हिन्दू-जीवन, हिन्दू-सभ्यता, हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-धर्म, हिन्दू-आदर्श, हिन्दू-चारित्र्य, हिन्दू-नीति, हिन्दू-व्यवहार, हिन्दू-पवित्रता, हिन्दू-दर्शन, हिन्दू-शासन, हिन्दू-मानवता, हिन्दू-विचारपद्धति, हिन्दू-मनोवृत्ति, हिन्दू-गार्हस्थ्य, हिन्दू-दाम्पत्यभाव, हिन्दू-गौरव, हिन्दू-स्वाभिमान और हिन्दू-कर्तव्यका जीता-जागता अनुपम विचार-स्रोत है। प्रत्युत इसमें इससे भी अधिक कुछ और है। वह है—

मानव-समाजको पवित्रताके उच्च शिखरपर पहुँचानेवाला सीताका त्रैलोक्यवन्द्य सतीत्व, मानव-कुटुम्बमें एकता-समानता-भ्रातृभाव फूँकनेवाला, अद्वैतवाद-सम्मत किन्तु प्रेम-भक्ति-समन्वित, भरतका लोकोत्तर 'पादुकावाद'[1], महाराज दशरथका स्नेह और धर्म-निर्वाहक समन्वय-सामंजस्य-पूर्ण प्रायश्चित्तका ज्वलन्त, लोक-दुर्लभ किन्तु स्वाभाविक उच्चादर्श, पवन-कुमार हनुमान्‌का त्रिकाल-दुर्लभ पुरुषोत्तमता-ज्ञापक सेवा-वाद, जटायुका आत्मत्याग, लक्ष्मणका संरक्षक-तात्मक ममतामय भ्रातृ-भाव-पूर्ण दिव्य सेवा-संगीत, सुमित्राका कौटुम्बिकता-निर्वाहक अपूर्व पुत्रोपदेश आदि-आदि दिव्याति-दिव्य आदर्श हैं। साथ ही मन्थरा, कैकेयी, रावण आदिका दुर्धर्षता-पूर्ण, आत्मपक्ष-साधक, लोक-दुर्लभ प्रयास-वाद भी।

उक्त माधुर्यात्मक और ऐश्वर्यात्मक गुण-गरिमाके सिवा दशरथके मन्त्रि-मण्डलका त्रैलोक्य-वन्द्य व्यक्तित्व, विश्वामित्रका दिव्यास्त्र-निर्मातृत्व-रहस्य, जनकका व्यावहारिक अद्वैतवाद, भरतका राज्य-व्यवहार, अयोध्याकी संसार-दुर्लभ नागरिकता, पम्पाकी सम्भ्रान्त सभ्यता, वसिष्ठकी अद्वितीय अधिनायकता, उदारता, उच्चता, ब्राह्मणता, नलका महान् शिल्प-यज्ञ, विभीषणकी अनिवार्य कर्मठता आदिके वर्णन भी कुछ कम अभिनन्दनीय नहीं हैं।

रामायणकी राजनीति, धर्म-नीति, अर्थ-नीति, समाज-नीति, युद्ध-नीति, नगर-निर्माण-विद्या, विमान-विद्या, दिव्य-शस्त्रास्त्र-साधन-विद्या, अध्यात्म-विद्या, भौतिक विद्या* भी समधिक प्रशंसनीय हैं। किन्तु फिर भी यह मानना पड़ता है कि रामायणकी सर्वाधिक विशेषताका तो कारण है—

उसका संगीतमय काव्य-स्रोत, नीतिमय सुन्दर अभिव्यञ्जना, मधुरतम दिव्य भाव-प्रवाह, धर्ममय विचार-विमर्श, शिल्पमय सुन्दर शब्द-विन्यास, नृत्यमय घटना-संघात, चित्रमय सालंकार चरित्र-चित्रण, चातुर्य-पूर्ण संलाप-विलाप, आत्ममय सम्बन्ध-निर्वाह, सृष्टि-विसृष्टिमय लोकोत्तर सुमृदु कल्पना मनोमोहक भाषा-सौष्ठव, मूर्तिमय छन्दश्छटा, रसात्मक कथा-प्रसङ्ग, विश्लेषणात्मक विवाद-संवाद, विचित्र प्रकृति-चित्रण, चरित्रात्मक महामहिम जीवनादर्श और सौन्दर्य-माधुर्य-शिवात्मक काव्योचित स्वर्गीय सन्देश, विशेषतः वाल्मीकिके श्रद्धा-विश्वास-समुत्पादक प्रवचन और कला-रसात्मक संस्पर्श, जो कि वस्तुतः रामायणको रामायण बनाते हैं।

यही कारण है कि इस आदिकाव्यपर अनादि कालसे ही प्राच्यभाषा-तत्त्वविद्, काव्य-मर्मज्ञ, मनोविज्ञान-शास्त्री, दार्शनिक, वैज्ञानिक, कला-विशारद, अध्यात्म-तत्त्ववेत्ता और योगीतक मुग्ध रहे हैं और आधुनिक कर्म-योगी संसारकी रीझ और गुण-ग्राहकता भी इसके दिव्य गुणोंके कारण उत्तरोत्तर फूल-फल रही है। देखिये, वाल्मीकिकी सुन्दर रचनापर विमुग्ध होकर प्रोफेसर ग्रिफ़िथ साहब अपने अंग्रेज़ी-अनुवादकी भूमिकामें कहते हैं—

१—संसारमें काव्य-ग्रन्थोंकी कमी नहीं; परन्तु आचरणकी पवित्रताका वाल्मीकि-रामायणमें जिस दृढ़ता, मनोहरता और रसिकतासे निर्वाह हुआ है, वैसा अन्यत्र सुलभ नहीं।

२—काव्य-संसारमें यही एक ऐसा ग्रन्थ है, जो मानव-हृदयमें सौन्दर्य-पूर्ण शैलीसे सत्यप्रेम उत्पन्न करनेकी शक्ति रखता है।

३—इसके अध्ययनसे हमें यह मालूम होने लगता है कि हमारे अंदर उच्च विचार प्रविष्ट हो रहे हैं और हम कुछ-से-कुछ बनते जा रहे हैं।

४—सच तो यह है कि इसके पाठसे मानवता और

---

१. भगवान् रामने स्वयं हनुमान्-जैसे दुष्कर कार्य-कर्ताको पुरुषोत्तम कहा है। ( वा० रा० यु० का० )

* तत्कालीन भारतीय भौगोलिक बातोंका भी वाल्मीकि-रामायणमें उल्लेखनीय स्थान है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्रेष्ठताको समलङ्कृत करनेवाली सम्पूर्ण गुण-राशि हमारे सामने आ खड़ी होती है।

५—प्रभावोत्पादक शैलीमें मानव-समाजको धार्मिक शिक्षा प्रदान करना तो रामायणका मुख्य उद्देश्य है।

६—आदर्श मनुष्य-जीवनकी अलभ्य तस्वीर भी इसके अंदर हमें राम और सीताके चित्रणमें मिलती है।

७—मानव-जीवनके प्रत्येक पहलूपर कविने प्रकाश डाला है—वह भी बड़ी ही मनोमोहक शैलीसे।

८—सारांश यह कि रामायण प्रत्येक समय, देश, व्यक्ति और विद्याकी वस्तु है।

इस प्रकार न केवल महाशय ग्रिफ़िथ ही इसपर मुग्ध हैं, प्रत्युत यूरपके अन्यान्य दर्जनों विद्वान् भी इसपर मोहित हैं। उनके कुछ उद्गार इस प्रकार हैं—

१—इसकी टक्करका दूसरा ग्रन्थ साहित्य-संसारमें अब-तक किसीने नहीं देखा।

२—वाल्मीकि-रामायणको पढ़कर ही होमरने अपने काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं।

३—काव्य और नैतिकताका इतना मनोमोहक समन्वय अन्यत्र नहीं पाया जाता।

४—मानवीय कृतियोंमें इसका आसन बहुत ऊँचा है।

सर मोनियर विलियम्स और ए. ली. ली. के क्रमशः राम और सीता-विषयक विचार भी सुनिये—

(अ) शस्त्रास्त्र-सुसज्जित राम संसारके इतिहासमें अपना प्रतियोगी नहीं रखते।

(आ) सीता वह सुललित चरित्र-चित्रण थी, जिसने कभी मानव अथवा देव-हृदयमें पैठकर कल्पनाको जाग्रत् किया था।

एक और दूसरे ग्रन्थकारने भी वाल्मीकि और उनकी रामायणके विषयमें देखिये, क्या ही सुन्दर विचार प्रकट किये हैं—

'आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने अपने देश और कालको अपना काव्यरूपी कण्ठ दिया था। रामायण उसीका अमर सन्देश है।'

इससे बढ़कर भी क्या कहीं कवि, कवित्व, समय और परिस्थितिका समन्वय-सामञ्जस्य-पूर्ण संगीतमय अभिनन्दन और वास्तविकताका दिग्दर्शन हो सकता है?

रवीन्द्रनाथने भी एक स्थानपर कहा है—

'वाल्मीकि-रामायण आरती उतारनेकी वस्तु है, वह आलोचना-प्रत्यालोचनासे ऊपरकी चीज़ है।'

इतना ही नहीं, वाल्मीकि-रामायण लोक-विस्मय-कारक क्षात्र-धर्मका एक अन्यतम जीवित वाङ्मय है। फिर इसके क्षत्रियोचित कार्य, वीरोचित स्पर्द्धा, सैनिकोचित सफलता और मनुष्योचित चिकीर्षाके विवरण तो सम्भ्रान्त मानवीयता-के भी महतो-महीयान् कार्य हैं।

देखिये, अकेले राम चौदह हजार राक्षसोंका वध करते हैं। संसारके महापराक्रमी रावण और उसके राक्षसी साम्राज्यको धूलमें मिला देते हैं। साथ ही वाली-जैसे बलवान्का वध कर उसकी दुर्धर्ष अधिनायकताके प्रभावको सदाके लिये नाम-शेष कर देते हैं।

लक्ष्मण तो कर्मवाद और वीरताकी मूर्ति ही हैं।

रामके लङ्काविजयी सेनापति भी एक-से-एक बढ़कर हैं; उनके सैनिकोचित चरित्र भी वीर-रस और वीर-काव्यके लोम-हर्षण निदर्शन हैं।

इतना लिखनेके बाद भी कहना पड़ता है कि रामायणकी हृदयको स्पर्श करनेवाली, मस्तिष्कको शान्त रखनेवाली, आर्य-जातिके उत्तरदायित्वपूर्ण गौरवकी रक्षा करनेवाली बात तो रामकी ऐश्वर्य-माधुर्यात्मक चरित्र-चित्रावली ही है। वही प्रत्यक्ष-परोक्षरूपसे, ज्ञात-अज्ञात ढंगसे उसके सम्पूर्ण सत्य-तथ्य और कवित्वको समुज्ज्वल करनेवाली है। किन्तु रामकी चारु-चरितावलीमें भी रामकी सम्पूर्ण विशेषता तो उनके क्षत्रियोचित मानवीय नैतिक मर्यादावादमें बंद है। इसीमें उनके अवतारकी भी सार्थकता है; और यही बात मुख्यतः रामायणको रामायण बनानेवाली भी है। भक्तोंकी मालाके प्रत्येक मनकेके साथ ही मध्यमा वाणीद्वारा उच्चरित होनेवाली रामकी गुण-गरिमा भी इसीमें सन्निहित है।*

किन्तु इसमें भी रामका नृपोचित व्यक्तित्व ही मुख्य है, जिसने मानवोचित गुणावलीके प्रचार-प्रसारद्वारा तत्कालीन समाजके परम्परागत दूषित वातावरणको शुद्ध कर आदर्श राम-राज्यकी स्थापना की और यह दिखला दिया कि राजा वस्तुतः

* स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

इससे बढ़कर रामका राजनीतिक आदर्श क्या हो सकता है। साथ ही नृपोचित चरित्र-चारित्र्यकी महिमा।



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ईश्वरांश है । उसमें अष्ट लोकपालोंकी शक्ति है । वह चाहे तो कालकी गतिको भी बदल सकता है । इससे बढ़कर भला, रामके व्यक्तित्व, शासन और मर्यादावादका क्या प्रमाण हो सकता है ।

परन्तु ऐसे चरित्र-चारित्र्यका रचयिता होनेसे मानना पड़ता है कि वाल्मीकिमें पूर्वोक्त कवित्व-शक्तिके साथ-साथ कुछ और भी विशेष गुण था और वह था उनका आर्षेय दिव्य व्यक्तित्व, इस तरह हम देखते हैं कि वाल्मीकि-रामायण ऋषित्व-समन्वित कवित्वका लोकदुर्लभ दिव्य संगीत है ।*

# वाल्मीकिके राम

( लेखक—साहित्यरत्न पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री )

वाल्मीकिकृत रामायण नामक आदिकाव्यके नायक रामरूपमें स्वयं भगवान् श्रीविष्णु ही हैं । बालकाण्डके सोलहवें सर्गमें लिखा है कि रावणके अत्याचारोंसे पीड़ित देवमण्डलीको जब लोकपितामह ब्रह्माजी सान्त्वना दे रहे थे, तब पीताम्बर-विभूषित, शंख-चक्र-गदाधारी, सुवर्ण-केयूर-मण्डित, अतितेजस्वी, जगत्पति श्रीविष्णुभगवान् गरुड़पर विराजमान हो वहाँ पधारे । नम्रतापूर्वक स्तुति करके देवताओंने उनसे प्रार्थना की कि 'आप महाराज दशरथके पुत्र[2] बनिये । विष्णुभगवान्ने देवकृत प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया ।

रामरूपधारी विष्णुकी स्तुतिमें निम्नलिखित श्लोक मननीय है—

सहस्रचरणः श्रीमान् शतशीर्षः सहस्रदृक् ।
त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ॥
( ६ । ११७ । १७ )

—इस श्लोकसे 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं सर्वतः स्पृत्वा'''इस ऋग्वेदीय वचनका सादृश्य स्पष्ट है ।

श्रीरामका वर्ण श्याम है, जैसा कि लिखा है—'रामः श्यामो[3] महायशाः ।' किन्तु उनके मुखमण्डलसे विनिस्सृत पीताभ किरणावलीके कारण वे सुवर्णच्छवि भी कहे गये हैं, जैसा कि वचन है—'स सुवर्णच्छविः श्रीमान् ।' जानकीजीने हनुमान्‌जीसे रघुनाथजीकी कुशल पूछते हुए उनके सुवर्णके समान वर्णवाले मुखका स्मरण किया है । श्रुत्युक्त 'सर्व एव सुवर्णः' 'रुक्मवर्णम्', 'आदित्यवर्णम्', 'यथा माहारजत-वासः' आदि वचनावलीका ही भाव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी-की सुवर्णच्छवितामें प्रदर्शित हुआ है ।

रामायणके अनुसार जानकीजी साक्षात् लक्ष्मीजी ही हैं[5] और वे भगवान्‌से उसी प्रकार अभिन्न[6] हैं, जिस प्रकार सूर्यसे उसकी प्रभा । लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न क्रमशः उन्हीं रामके अंश हैं—व्यूह हैं[7] । धराधामसे अपने नित्य-धामको जाते समय महर्षि वाल्मीकिके शब्दोंमें श्रीराम 'विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः'—भाइयोंके साथ सशरीर विष्णुरूपमें पुनः प्रविष्ट हो गये ।

इस प्रकार आदिकाव्यके आदि, मध्य और अन्तसे यह सिद्ध है कि श्रीविष्णुने ही श्रीरामरूप धारण किया था ।

---

* नानृषिः कविरित्युक्त ऋषिश्च किल दर्शनात् । विचित्रभावधर्माशतत्त्वप्रख्या च दर्शनम् ॥
स तत्त्वदर्शनादेव शास्त्रेषु कथितः कविः । दर्शनाद्वर्णनाच्चाथ लोके रूढा कविश्रुतिः ॥
वस्तुतः कवित्वकी वास्तविक विशेषता तो उसके महर्षितुल्य काव्योचित प्रवचनमें ही है । अन्यथा वह आर्योचित सत्कवित्व नहीं कहा जा सकता, चाहे फिर वह पूर्णतः अलङ्कारशास्त्र-सम्मत और काव्य-सौन्दर्य-सम्पन्न ही क्यों न हो ।

१. एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः । शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥ १६ ॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा । तप्तहाटकेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ।
ब्रह्मणा च समागत्य तत्र तस्थौ समाहितः ॥ १७ ॥
२. विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ॥ २० ॥ ३-४. वाल्मीकि—रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग ३५, श्लोक २२ । ५. सीता लक्ष्मीः । ( ६ । ११७ । २९ ) । ६. अनन्या हि मया सीता भास्करेण यथा प्रभा । ( ६ । ११८ । २० ) । ७. उत्तरकाण्ड, सर्ग १११, श्लोक १२ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वाल्मीकीय रामायणपर एक दृष्टि

( लेखक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

## रामायणसे शिक्षा

वाल्मीकीय रामायण महर्षि वाल्मीकिकी वह दिव्य वाणी है, जो मरणधर्मा मानवोंको श्रीरामचरित्रकी स्वादु सुधा पिलाकर अमरत्व प्रदान करनेके लिये धराधाममें अवतीर्ण हुई है। इसके द्वारा युग-युगान्तरोंसे असंख्य नर-नारी श्रीराम-कथाकी पावन मन्दाकिनीमें निरन्तर अवगाहन करके पाप-तापसे रहित हो अनन्त शान्ति-लाभ करते आ रहे हैं। 'रामायण'के अन्तर्गत दो शब्द हैं—'राम' और 'अयन'। अयन-शब्द मार्ग और आश्रयका वाचक है। राम ही जिसके आश्रय हैं, वह रामायण है। अतः राम-कथाको आधार मानकर लिखा जानेवाला ग्रन्थ 'रामायण' कहलाता है। इसका स्वाध्याय करनेवाले मनुष्यका जीवन भी रामायण ही होना चाहिये, उसे रामका ही आश्रय लेना चाहिये। रामायणका दूसरा अर्थ है—रामका मार्ग। राम जिस मार्गसे गये हैं, वही प्रत्येक मनुष्यका मार्ग है। 'मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।' राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, उनका हर एक आचरण अपनी शक्ति-के अनुसार हमारे लिये अनुकरणीय है। जिस मार्गपर चलनेसे राम मिलें, वह भी राम-मार्ग या रामायण है। वह मार्ग है रामकी भक्ति या शरणागति। इस प्रकार अनेकों अर्थोंको अभिव्यक्त करती हुई रामायण-कथा यह शिक्षा देती है कि 'हम रामका भजन करें, रामकी शरण लें और रामकी तरह ही अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमकी मर्यादाका पालन करते हुए धर्मानुकूल आचरण करें। स्वार्थका त्याग करके गुरुजनोंकी कठिन-से-कठिन आज्ञाको भी शिरोधार्य करें और यथाशक्ति दूसरोंके हित-साधनमें संलग्न रहें।' रावणकी सेनाने देवताओंपर आक्रमण किया, देवता अपना बल और अभिमान लेकर सामना करनेके लिये गये, पर टिक न सके। अन्तमें उन्होंने भगवान्‌की शरण ली। आर्त्तवत्सल भगवान्‌ने स्वयं ही राक्षसोंका विनाश करके देवताओंका संकट दूर किया। आज भी हमलोगोंपर प्रतिदिन राक्षसी वृत्तियोंका आक्रमण हो रहा है। हमारा देवत्व पीडित है और राक्षस विजयी हो रहे हैं। ऐसे समयमें हम सबको भगवान्‌की ही शरण लेनी चाहिये, तभी हमारा संकट टल सकता है। हृदय-देशमें भगवान्‌के पदार्पण करते ही राक्षसी वृत्तियोंकी लङ्का ढह जायगी। राम-विमुख रावण और वाली मारे गये तथा रामकी शरण लेनेवाले विभीषण और सुग्रीवको सुख मिला। अतः रामकी शरण जानेमें ही जीवका कल्याण है।

संसारमें सुख और दुःखके दिन सबपर आते हैं, पर दोनोंका समानरूपसे स्वागत करनेवाले लोग बहुत कम होते हैं। सुखको छोड़कर दुःखको हँसते-हँसते गले लगानेवाले महापुरुष तो बिरले ही होंगे। हम सुख पाकर उन्मत्त हो उठते हैं और दुःखमें हमारे हाहाकारसे दिशाएँ गूँज उठती हैं। हम दूसरोंको दुखी देखकर सुख भोगना चाहते हैं। दूसरोंके आँसुओंसे हमारा मनोरञ्जन होता है, हम हँसते हैं। हमें अपने वैभवका, विशाल अट्टालिकाका आनन्द तभी मिलता है, जब हमारे सामनेका जगत् दैन्यग्रस्त हो, झोंपड़ियोंमें फाकाकशीका ताण्डव-नृत्य हो रहा हो। रावणकी ऐसी ही मनोवृत्ति थी। उसका सुख संसारके लिये अभिशाप हो गया था। उसका अट्टहास जगत्‌के लिये हाहाकार था। ऐसी मनो-वृत्तिवालोंका वही हाल होता है, जो रावणका हुआ। इसके विपरीत श्रीरामका सुख संसारका सुख था; अतः उनका दुःख देखकर सारा जगत् दुखी हुआ। उन्हें वनमें जाते देख समस्त चराचर प्राणी सन्तप्त हो उठे थे। सभी उनके दुःखमें हाथ बँटानेको व्याकुल देखे जाते थे। वास्तवमें दुःख ही मानवताकी परखके लिये सबसे अच्छी कसौटी है। सोना आँचमें तपकर ही खरा उतरता है। दुःखमें ही साधारण मनुष्यों और महात्माओंकी पहचान होती है। जो दुःख पड़नेपर भी अपनी स्थितिसे विचलित नहीं होता, वही महापुरुष है। रामको राज्याभिषेकके लिये आमन्त्रित करके वनवास दिया गया, पर उनके चेहरेपर शिकनतक न आयी*। ऐसे समयमें खून-खराबियोंकी नौबत आ जाती है; पर श्रीरामने माता ही नहीं, विमाताकी अत्यन्त कठोर आज्ञाको सिर-आँखों चढ़ाया। इसी प्रकार भगवती सीताका पातिव्रत्य तथा भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नका भ्रातृप्रेम संसारके इतिहासमें अपनी सानी नहीं रखते। ये सभी बातें मानव-जीवनको ऊँचा उठानेवाली हैं। इस प्रकार वाल्मीकीय रामायणमें आर्य-संस्कृतिका आदर्श स्वरूप उपलब्ध होता है। इसमें आर्यावर्तके उस समयके मानचित्रका दर्शन होता है, जिस समय आर्य-जाति उन्नतिके शिखरपर पहुँची हुई थी। यह देश भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही प्रकारकी समृद्धियोंसे सम्पन्न था। युगों पहले सरयू-किनारे बसा हुआ कोसल-प्रदेश जैसा 'प्रभूत धन-धान्यवान्' था, क्या उसका शतांश भी आज रह गया है? राजा दशरथके समयमें अयोध्याकी यह अवस्था थी कि वहाँ ढूँढ़नेपर भी कोई कामी, कंजूस, क्रूर, नास्तिक अथवा मूर्ख

---

* न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया॥
( वा० रा० २। १९। ३३ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मनुष्य नहीं मिलता था।* सभी सत्यवादी और सन्तुष्ट थे।†

## वाल्मीकीय रामायणका काव्यत्व और उसका उपयोग

वाल्मीकीय रामायण भारतीय वाङ्मयका आदि महाकाव्य है—इस बातको सभी विद्वान् मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। ब्रह्माजीकी प्रेरणासे, जो वाणीके अधिदेवता हैं, महर्षि वाल्मीकिके कण्ठसे अकस्मात् एक श्लोकके रूपमें काव्यमयी सरस्वतीका प्रादुर्भाव हुआ। उसीसे प्रभावित होकर महर्षिने इस काव्यका निर्माण किया। इन्हें कथा-वस्तु देवर्षि नारदसे तथा काव्य-रचनाकी आज्ञा ब्रह्माजीसे ही प्राप्त हुई थी। महाकाव्यके आदर्शोंको सामने रखकर इसका निर्माण नहीं हुआ है। स्वयं इस काव्यने ही काव्यके आदर्शोंको जन्म दिया है। इसके पहले काव्य और उसके आदर्शोंका नाम भी नहीं सुना जाता था। यद्यपि वेदोंमें भी छन्दोबद्ध मन्त्रोंकी उपलब्धि होती है, उनमें अनेकों प्रकारके अलङ्कार भी देखे जाते हैं, तथापि उनकी काव्यके रूपमें प्रसिद्धि नहीं है। वैदिक कालमें 'कवि' शब्द त्रिकालदर्शी, ज्ञानी एवं सर्वज्ञ आदि अर्थोंमें ही प्रचलित था। आज भी ये अर्थ अग्राह्य नहीं हुए हैं; तथापि रचना-वैशिष्ट्यके कारण जो कवि और काव्यका एक विशेष अर्थ हृदयङ्गम होता है, वह वाल्मीकि-रामायणके बाद ही प्रसिद्ध हुआ है। इसीको देखकर साहित्यके रीतिकार दावेके साथ यह कहनेमें समर्थ हो सके हैं कि थोड़ी बुद्धिवाले मनुष्योंको भी सुगमतापूर्वक चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाला यदि कोई साधन है तो वह काव्य ही है।‡ जगत्में बहुत-से ऐसे मनुष्य हैं, जो दर्शनोंके जटिल विषयोंको समझनेमें असमर्थ होते हैं। वे 'तत्' पदार्थ और 'त्वं' पदार्थकी एकता नहीं कर पाते। 'जहल्लक्षणा' और 'अजहल्लक्षणा'का नाम सुनते ही उनका दिमाग चकरा जाता है। अन्तःकरण शुद्ध न होनेके कारण श्रम-साध्य साधनोंमें भी उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। ऐसे लोगोंके लिये संसार-सागरसे पार होनेका उपाय है—भगवान्की लीला-कथाओंका चिन्तन, संतों और महापुरुषोंके आदर्श चरित्रोंका अध्ययन। जिनका चित्त कहीं भी एकाग्र नहीं होता, वे भी कथा-कहानियोंको ध्यानसे पढ़ते और सुनते देखे जाते हैं। प्राकृत कथाओंको छोड़कर यदि मनुष्य भगवत्कथाका ही रसास्वादन करे तो उसके समस्त पाप धुल जायँ * और वह भगवान्का सान्निध्य प्राप्त कर ले। अतः ऐसे काव्यको चतुर्वर्गका साधक बताना सर्वथा युक्तियुक्त ही है।

## काव्योचित विशेषता

इस काव्यका प्रधान रस है करुण; अन्य सभी रस उसके अङ्ग हैं। हम इसकी काव्योचित विशेषताओंका विवेचन यहाँ नहीं करना चाहते। अग्निपुराणसे लेकर अबतकके रीतिग्रन्थोंमें काव्यके सम्बन्धमें जितनी खोज हुई है, जितने चमत्कार उपलब्ध हुए हैं, वे सभी वाल्मीकि-रामायणमें पर्याप्तरूपसे विद्यमान हैं। भगवान् व्याससे लेकर अबतकके सभी आलोचकोंके सामने लक्ष्य-ग्रन्थके रूपमें वाल्मीकिका यह आदिकाव्य रहा है। रस, गुण, अलङ्कार तथा ध्वनिके सभी भेद-प्रभेदोंके उदाहरण रामायणके भीतर प्रचुर मात्रामें उपलब्ध हो सकते हैं—सहृदय विद्वानोंकी दृष्टिसे यह बात छिपी नहीं है। समुद्रके मन्थनसे एक घड़ा अमृत निकला था, बाकी सब पानी ही था; पर वाल्मीकिके इस काव्यसमुद्रमें सब अमृत-ही-अमृत भरा है। इसमें एक श्लोक भी शायद ही ऐसा मिले, जिसमें काव्योचित गुण मौजूद न हो। यह आदिकाव्य इसलिये नहीं कहलाता कि लौकिक संस्कृतमें 'श्लोक-रचना' सबसे पहले वाल्मीकिने ही की; क्योंकि वैदिक कालके बाद स्मृतियोंकी रचना हुई थी। स्वायम्भुव मनुकी स्मृति वाल्मीकीय रामायणसे पहले मौजूद थी। भगवान् श्रीरामने घायल पड़े हुए वालीके सामने धर्मकी व्याख्या करते हुए अपने श्रीमुखसे मनुके दो श्लोकोंका उल्लेख किया है—'श्रूयेते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ॥' वे श्लोक रामायणमें इस प्रकार उद्धृत हैं—

राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥
शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्॥
(४।१८।३३-३४)

—ऐसी स्थितिमें वाल्मीकिके श्लोकोंको आदिकाव्य माननेका यही कारण हो सकता है कि काव्योचित विशेषताओंके साथ सर्वप्रथम श्लोक-रचना इन्होंने ही की।

## कवि और काव्यका आदर्श

इस आदिकाव्यके द्वारा कवि और काव्यके विषयमें यह शिक्षा प्राप्त होती है कि कविका जीवन त्याग और तपस्यासे पूर्ण होना चाहिये। उसमें अनेकों शास्त्रोंकी विद्वत्ताके साथ-साथ लोकके विविध विषयोंका ज्ञान होना

---

* कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः॥
(बा० रा० १।६।८)

† नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः॥
(बा० रा० १।६।६)

१. मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती।

‡ चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि। काव्यादेव···।
(साहित्यदर्पण १ परि०)

* यः पठेद् रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भी आवश्यक है। उसे किसी स्वार्थ या लोकैषणासे काव्य-निर्माणमें नहीं प्रवृत्त होना चाहिये। काव्यका एक ही उद्देश्य है—जगत्का कल्याण। कवि पथप्रदर्शक है। वह अन्धकारमें भटकते हुए प्राणियोंके सामने अपने काव्यका प्रदीप रखकर उन्हें राह दिखाता है। जिसका उद्देश्य केवल मनोरञ्जन है, जिसमें जीवनकी जटिल समस्याओंका कोई हल नहीं है तथा जिसे पढ़कर पाठकको आत्मोत्थानके लिये कोई प्रेरणा नहीं मिलती, वह काव्य व्यर्थ है। उस कविका परिश्रम निरर्थक है। उपर्युक्त शुभ उद्देश्यको सिद्ध करनेवाले महाकाव्यका नायक भी भगवान्के सिवा और कौन हो सकता है—'न ह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग् राघवादृते।' दूसरा कौन है, जो अखिल कल्याणमय गुणोंका धाम हो। किसी मानवकी प्रशंसामें जितनी बात कही जाती है, वह अधिकांश झूठी होती है; परन्तु भगवान्की प्रशंसामें वाणी जितना भी कह सकती है, वह सब अधूरा और थोड़ा है। मन और वाणी भगवान्की महिमातक पहुँच ही नहीं सकती—'न तत्र वाग् गच्छति न मनः।' अतः अधिकारी कविद्वारा निर्मित भगवद्गुणगानसे परिपूर्ण काव्य ही सत्पुरुषोंके स्वाध्याय और मननकी वस्तु है। उसीसे जगत्को वास्तविक लाभ पहुँच सकता है। भगवान् व्यास तो यहाँतक कह देते हैं कि 'जिसमें भगवत्सम्बन्धी गुणोंका वर्णन न हो, वह वाणी व्यर्थ है; उसमें कही हुई सारी बातें झूठी अथवा निःसार हैं।* उसकी पदावली कितनी ही विचित्र, कितनी ही मनोहर क्यों न हो, वह काक-तीर्थके समान त्याज्य है; साधुपुरुष उसका सेवन नहीं करते†। इसके विपरीत जिस ग्रन्थमें भगवान्के सुयशका प्रतिपादन हो, उसकी रचना शिथिल ही क्यों न हो, वह जनताके पाप-तापको नष्ट करनेवाला है। सज्जन पुरुष उसीको पढ़ते, सुनते और गाते हैं।‡ प्राचीन कालसे लेकर अबतकके संत महा-कवियोंने अपने काव्योंमें इसी आदर्शका पालन किया है।

## उपदेश और भगवान्के ऐश्वर्यका वर्णन

कुछ लोग वाल्मीकीय रामायणमें अध्यात्म तथा राम-चरितमानस आदिकी भाँति भगवान्के ऐश्वर्यका स्मरण करानेवाले उपदेशपूर्ण वचनोंकी अधिकता न देखकर उसमें किञ्चित् न्यूनताका अनुभव करते हैं; परन्तु विचारदृष्टिसे देखनेपर न्यूनताकी कोई बात नहीं जान पड़ती; क्योंकि वाल्मीकीय रामायण काव्य है और काव्यमें किसी भी वस्तुका उतना ही समावेश उचित माना गया है, जिससे उसके रसोत्कर्षमें बाधा न पड़े। रसकी अधिक अनुभूतिके लिये ऐश्वर्यका गोपन वाञ्छनीय है। उदाहरणके लिये—जब हम भगवान् श्रीरामको सीताके विरहमें दुखी एवं विलाप करते देखते हैं, तब हमारे हृदयमें भी करुणा उमड़ आती है, नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगता है; परन्तु यदि उसी समय सहसा यह बात ध्यानमें आ जाय कि श्रीराम तो पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं, उनको क्या दुःख और कैसा शोक! यह सब उन्होंने दिखावेके लिये किया है, तो हमारे हृदयपर उस करुणाका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। नकली रुलाई देख-कर हँसी आती है, रोना नहीं आता। अतः प्रकृतरसका पूर्णतया आस्वादन हो सके—इसके लिये ऐश्वर्यका गोपन सर्वथा उचित ही है। यही बात उपदेशके सम्बन्धमें भी है। इसीलिये आदिकविने विषयान्तरोंको अधिक नहीं लिया है। फिर भी उसमें उपदेश आदिका अभाव नहीं है। स्थान-स्थानपर प्रसङ्गके अनुकूल उपदेशकी बातें भी संक्षेपमें दी ही गयी हैं। अयोध्याकाण्डके १८। २८—३० में तथा १९। ५, ७, ८, २०, २२, २४ आदि श्लोकोंमें श्रीरामका पिता-माताकी सेवामें कितना उत्साह था—इस बातका परिचय मिलता है। उसी काण्डके ३०। ३५—३७ में माता-पिताकी भक्ति, ३९ वें सर्गके २४, ३० श्लोकोंमें पतिभक्ति तथा १०९ वें सर्गके ११—१३ श्लोकोंमें सत्यकी महिमाका वर्णन है। ११७वें सर्गमें सतीधर्मकी सुन्दर व्याख्या उपलब्ध होती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी शरणागत-रक्षा तथा धर्म-पालन आदि विषयोंके अनेकों उत्तम उपदेश प्राप्त होते हैं। इसके सिवा, रामायण तो यों ही उपदेश है; उससे केवल वाचनिक नहीं, क्रियात्मक उपदेश मिलता है—'रामादिवत् प्रवर्तितव्यम्, न रावणादिवत्' (श्रीराम आदिके समान अपना बर्ताव होना चाहिये, न कि रावण आदिके समान)। क्रियात्मक उपदेशका ही प्रभाव स्थायी होता है। हम 'सत्यं वद, धर्मं चर' का उपदेश बराबर सुनते रहते हैं, किन्तु कानपर जूँतक नहीं रेंगती; पर जब सत्यवादी हरिश्चन्द्र तथा धर्मराज युधिष्ठिर आदिके जीवन-वृत्तान्तोंको पढ़ते हैं, तब उन-उन घटनाओंका हमारे हृदयपर गहरा प्रभाव पड़ता है। ऐसे धार्मिक महा-पुरुषोंकी कथाओंसे कितनोंका जीवन पलट जाता है।

---

* मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः।
(श्रीमद्भा० १२। १२। ४८)

† न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद् वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः॥
(श्रीमद्भा० १। ५। १०)

‡ स वाग्विसर्गो जनताघसंप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि य-
च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥
(श्रीमद्भा० १२। १२। ५१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हम ऊपर बता आये हैं कि रसकी पुष्टिके लिये ऐश्वर्यका गोपन वाल्मीकीय रामायणकी काव्य-शैलीके अन्तर्गत है। फिर भी उसमें उपयुक्त स्थलोंपर उसका स्मरण भी कराया ही गया है। प्रारम्भमें ही ब्रह्माजी महर्षि वाल्मीकिसे कहते हैं—'मुने! देवर्षि नारदसे जैसा तुमने सुना है, उसीके अनुसार धर्मात्मा और बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामके चरित्रका वर्णन करो।'* यहाँ 'भगवत्' शब्द उनके ऐश्वर्यका सूचक है। श्रीराम-जन्मके उपक्रम ( बाल० १६ ) में तो श्रीरामको विष्णु-का अवतार बताया ही गया है; रावणवधके पश्चात् ( युद्ध० ११७ सर्गमें ) भी उनकी परमात्मस्वरूपताका विशेषरूप-से प्रतिपादन किया गया है। वहाँ ब्रह्माजी कहते हैं—'सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः।' इसमें 'वेदात्मा' कहकर उनके वेदवेद्य ब्रह्मभावकी ओर ही ध्यान आकृष्ट किया गया है। बालकाण्डमें परशुरामजीने भी उनके स्वरूपको पहचानकर कहा है—'भगवन्! मैं जानता हूँ आप देवताओंके स्वामी साक्षात् मधुसूदन हैं'—'अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।' ( ७६। १७ ) अयोध्या-काण्डमें लक्ष्मणकी माता सुमित्रा रामके वन जानेपर कौशल्या-को धैर्य देती हुई कहती हैं—'बहिन! श्रीराम सूर्यके भी सूर्य और अग्नि के भी अग्नि हैं। वे प्रभुके प्रभु, लक्ष्मीकी लक्ष्मी, कीर्तिकी कीर्ति, क्षमाकी क्षमा तथा देवताओंके भी देवता हैं। राम ही सम्पूर्ण भूतोंको सत्ता प्रदान करनेवाले परमेश्वर हैं। वे वनमें रहें या नगरमें, उनका क्या अमङ्गल हो सकता है।† अरण्यकाण्डमें शरभङ्ग मुनि जब अपनी तपस्यासे जीते हुए लोक भगवान्‌को भेंट करते हैं, उस समय श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—'महामुने! वे सब लोक मैं ही आपको अर्पण करूँगा—मेरी ही कृपासे वे आपको प्राप्त होंगे—'अहमेवा-हरिष्यामि स्वयं लोकान् महामुने।' ( ५। ३३ ) यही उत्तर उन्होंने सुतीक्ष्णको भी दिया है। सुन्दरकाण्डके ५१ वें सर्गमें हनुमान्‌जी श्रीरामके लोकोत्तर ऐश्वर्यका वर्णन करते हुए कहते हैं—'रावण! तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो श्रीरामचन्द्रजीका अपराध करके सुखी रह सके।'‡ महा-यशस्वी श्रीराम समस्त चराचर प्राणियोंका संहार करके पुनः नये सिरेसे उनकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं। देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, सर्प, विद्याधर, नाग, गन्धर्व, सिद्ध, किन्नर और पक्षी आदि प्राणियोंमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो श्रीरामका सामना कर सके।* औरोंकी तो बात ही क्या है, चार मुखोंवाले स्वयम्भू ब्रह्मा, त्रिपुरासुरका संहार करने-वाले त्रिनेत्रधारी रुद्र तथा देवराज इन्द्र भी रघुनाथजीके सामने युद्धमें नहीं ठहर सकते—

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रःसुरनायको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥
( ५१। ४४ )

इसी प्रकार युद्धकाण्डमें रावण-वधके पश्चात् जब मन्दोदरी विलाप करने लगी है, उस समय उसने श्रीरामके सम्बन्धमें अपना उद्गार इस प्रकार प्रकट किया है—'निश्चय ही ये श्रीराम-चन्द्रजी महान् योगी एवं सनातन परमात्मा हैं। इनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। ये महान्‌से भी महान्, अज्ञानान्धकारसे परे तथा सबको धारण करनेवाले परमेश्वर हैं। जिनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित हैं, वक्षः-स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा पाता है, भगवती लक्ष्मी जिनका कभी साथ नहीं छोड़तीं, जिन्हें परास्त करना सर्वथा असम्भव है तथा जो नित्य, स्थिर एवं सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर हैं, उन सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णुने ही जगत्‌का कल्याण करनेके लिये मनुष्यरूप धारण करके वानररूपमें प्रकट हुए देवताओंके साथ आकर राक्षसोंसहित आपका वध किया है; क्योंकि आप देवताओंके शत्रु और समस्त संसारके लिये भयंकर थे।'† उत्तरकाण्डमें भगवान्‌के परमधाम पधारनेके समय ब्रह्माजी कहते हैं—'भगवन्! आइये और इच्छाके अनुसार अपने सगुण साकार विग्रह विष्णुरूपमें अथवा सनातन आकाशस्वरूप निर्गुण ब्रह्मभावमें स्थित होइये—

आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव।
भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम्॥
यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम्।
वैष्णवीं तां महातेजस्तद् वाऽऽकाशं सनातनम्॥
( ११०। ७—९ )

---

* ...धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः।
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्॥
( वा० रा० बाल० २। ३२-३३ )

† सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमाक्षमा॥
दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः।
तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे॥
( ४४। १५-१६ )

‡ देखिये श्लोक २०।

* देखिये श्लोक ३९ से ४१ तक।

† व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः।
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान्॥
तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः।
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः।
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः।
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः॥
सर्वलोकेश्वरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया।
स राक्षसपरीवारं देवशत्रुं भयावहम्॥
( १११। ११—१४ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


—और ब्रह्माजीके इतना कहनेपर वे अपने विष्णु-स्वरूपमें सशरीर प्रवेश करते हैं—'विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरो महाभुजः ।'

ऊपर उद्धृत किये हुए सभी स्थलोंपर भगवान् श्रीरामके दिव्य स्वरूपका स्मरण कराया गया है। वहाँ उनके लोकोत्तर ऐश्वर्यकी—परमात्मभावकी झाँकी मिलती है। वे सभी स्थल इसके लिये उपयुक्त हैं; अतः वहाँ इस विषयकी चर्चा करनेसे प्रबन्धके रस-प्रवाहमें कोई अन्तर नहीं आता, बल्कि काव्यकी सरसता और भी बढ़ जाती है।

## रामायण सच्चा इतिहास है

वाल्मीकीय रामायण काव्य होनेके साथ ही सच्चा इतिहास[1] भी है। इसमें एक अक्षर भी असत्य नहीं है। आरम्भमें स्वयं ब्रह्माजी 'न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति' कहकर इसकी सत्यता प्रमाणित करते हैं तथा उत्तरकाण्डके ९९। १९ में भी उन्होंने 'सत्यवाक्यमनावृतम्' कहते हुए इसी बातकी पुष्टि की है। इसके सिवा, महाभारत तथा विभिन्न पुराणोंमें भी रामायण एवं श्रीरामचरितका वर्णन मिलता है। इन बातोंसे भी रामायणकी ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

## रामायणकी बहिरङ्ग-परीक्षा

इस रामायणमें कुल चौबीस हजार श्लोक, सौ उपाख्यान, पाँच सौ सर्ग तथा उत्तरकाण्डके अलावे छः काण्ड हैं—इस बातका प्रतिपादन बालकाण्डके चौथे तथा उत्तरकाण्डके ९४ वें सर्गमें किया गया है। युद्धकाण्डके अन्तमें भी ग्रन्थ-समाप्तिके ढंगकी फलश्रुति दी गयी है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि पहले महर्षिने युद्धकाण्डतक ही लव-कुशको पढ़ाया था, उसके कुछ काल बाद उत्तरके प्रसङ्गका स्वाध्याय कराया। अन्तमें सबको एक साथ जोड़कर ग्रन्थको एक व्यवस्थित रूप दे दिया गया। तभी देवर्षि नारदका प्रसङ्ग, क्रौञ्चवध और लव-कुशके रामायण-गानका प्रसङ्ग भी इसके साथ सम्मिलित किया गया होगा। लव-कुशने 'सर्वा पूर्वमियं येषामासीत् कृत्स्ना वसुन्धरा ।' से ही रामायण-गान प्रारम्भ किया है; अतः यहींसे उन्हें इसकी शिक्षा मिली होगी। यह इस काव्यका पाँचवाँ सर्ग है। इसके पहलेके चार सर्ग, जो उपक्रमरूप हैं, पीछेसे जोड़े गये हैं। किन्तु यह सब कुछ स्वयं महर्षिने ही किया है। किसी दूसरेने पीछेसे परिवर्तन या परिवर्धन किया हो, ऐसी बात नहीं है। श्लोकों और सर्गोंकी संख्या भी उन्हींकी लगायी है। आजकलकी प्रतियोंमें बालकाण्डसे लेकर उत्तर-काण्डतकके श्लोक गिननेपर कुछ कमी-बेशीके साथ साढ़े तेईस हजारके लगभग होते हैं। कई श्लोक तीन-तीन पङ्क्तिके भी हैं। सम्भव है, उन्हें ३२ अक्षरके अनुष्टुप्की गिनतीसे ठीक-ठीक गिननेपर श्लोकोंकी संख्या पूरे २४ हजार हो जाय। परन्तु मूलमें पाँच सौ सर्ग ही लिखे हैं और आजकलकी प्रतियोंमें युद्धकाण्डतक ही पाँच सौसे अधिक सर्ग हो जाते हैं। इसी आधारपर कुछ लोग उत्तरकाण्डको प्रक्षिप्त माननेका दुःसाहस करते हैं। परंतु यह ठीक नहीं है; क्योंकि युद्धकाण्डके अन्तमें रामायणकी फलश्रुति होनेपर भी श्रीराम-कथाकी समाप्ति नहीं हुई है। इसके सिवा, उत्तर-काण्डको अलग माननेपर २४ हजार श्लोकोंकी प्रतिज्ञा भी मिथ्या हो जाती है; उस दशामें केवल २० हजार श्लोक रह जाते हैं। अतः काण्ड सभी वाल्मीकिजीके ही हैं। सर्गों-की गणनामें कालक्रमसे उलट-फेर हो गया है। जैसे आज-कल कई प्रक्षिप्त सर्ग मिलते हैं, उसी प्रकार यह भी सम्भव है कि जो सर्ग अधिक श्लोकोंके रहे हों, उन्हें लेखकोंने एक-की जगह दो करके लिख दिये हों। रामायणकी तिलक और रामायण-शिरोमणि आदि टीकाओंमें इस तरहका अन्तर प्रायः देखा जाता है। जहाँ एक टीकामें पहला ही सर्ग चल रहा है, वहीं दूसरी टीकामें दूसरा सर्ग आरम्भ हो गया है। नीचे एक प्रतिके अनुसार वाल्मीकीय रामायणके श्लोकोंकी तालिका दी जाती है—

| काण्ड | सर्ग | श्लोक |
|---|---|---|
| बालकाण्ड | ७७ | २२६८ |
| अयोध्याकाण्ड | ११९ | ४२८६ |
| अरण्यकाण्ड | ७५ | २४३९ |
| किष्किन्धाकाण्ड | ६७ | २४५५ |
| सुन्दरकाण्ड | ६८ | २८२७ |
| युद्धकाण्ड | १२८ | ५७५९ |
| उत्तरकाण्ड | १११ | ३३७२ |
| | ६४५ | २३४०६ |

## वाल्मीकि-रामायणका काल

वाल्मीकि-रामायणके समयके सम्बन्धमें भी आजकल बड़ा मतभेद है। यद्यपि रामायणके अन्तरङ्ग प्रमाणों तथा बाह्य कारणोंपर भी विचार करनेसे रामायण श्रीरामचन्द्रजीके समयका ही बना हुआ सिद्ध होता है, तथापि कुछ लोग इसे ईस्वी सन्से दो ही चार शताब्दी पहलेकी कृति मानते हैं। कोई पाणिनिके बाद इसकी रचना हुई बताता है तो कोई भारतके बाद। इस विषयमें श्रीयुत सेठ कन्हैयालालजी पोद्दारने अपने 'संस्कृत-साहित्यके इतिहास' में अच्छी तरह विचार करते

१. पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हुए वाल्मीकीय रामायणको परम प्राचीनतम सिद्ध किया है। अतः इसके सम्बन्धमें हम यहाँ कुछ विशेष लिखना नहीं चाहते। केवल एक-दो बातें निवेदन कर देना उचित समझते हैं। पाणिनिने 'कैकेयी' आदि पदोंके साधनार्थ 'केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः' (७।३।२) इत्यादि सूत्रोंका निर्माण किया है; अतः वाल्मीकि-रामायणके पहले पाणिनिका होना कदापि नहीं सिद्ध होता। महाभारतके द्रोण-पर्वमें वाल्मीकिका नामोल्लेख करते हुए उनके श्लोकको उद्धृत किया गया है, जो इस प्रकार है—

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्या स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत्॥
(१४३।६७-६८)

वाल्मीकि-रामायणके युद्धकाण्डमें यह श्लोक इस प्रकार मिलता है—

न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम।
पीडाकरममित्राणां यच्च कर्तव्यमेव तत्॥
(८१।३०)

ये ही दो प्रमाण रामायणको प्राचीनतम सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त हैं। कुछ लोग रामायणमें बौद्धमतका विरोध तथा बुद्धके नाम देखकर इसे बुद्धके पीछेकी रचना बताते हैं। पर यह भी भ्रम ही है। आस्तिकवाद और नास्तिकवाद वैदिक कालसे ही चले आ रहे हैं। श्रुतिमें नास्तिकवादका उल्लेख करके उसका विरोध किया गया है—'असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत्।' इस नास्तिकवादके माननेवाले ही असुर हैं। विष्णुपुराणमें माया-मोहके उपदेशोंपर चलनेवाले असुरोंको ही बौद्ध बताया गया है। अतः बुद्ध, तथागत, सुगत आदि माया-मोहके ही नामान्तर हैं। कुमार सिद्धार्थका नाम कहीं रामायणमें आया होता तो कुछ शङ्का की भी जाती। ये तो बुद्धके नाम हैं। बौद्ध-मतके अनुसार भी बुद्ध कोई एक व्यक्ति नहीं है। कोई भी बुद्ध हो सकता है। गौतम-बुद्धके पहले भी वह मत यत्र-तत्र प्रचलित था, जिसपर रामायणमें कटाक्ष किया गया है; इसलिये उसके आधारपर रामायणको अर्वाचीन नहीं बताया जा सकता।

## रामायण-पाठकी महिमा

वाल्मीकि-रामायणके पाठकी बड़ी महिमा है, स्वयं रामायणमें तथा अन्यत्र भी इसका माहात्म्य बतलानेवाले वचन उपलब्ध होते हैं। युद्ध और उत्तरकाण्डके अन्तमें जो वचन हैं, उनका भावार्थ प्रस्तुत अनुवादमें आ चुका है। अतः यहाँ कुछ अन्यत्रके वचन दिये जा रहे हैं; ये स्कन्द-पुराणके उत्तरखण्डमें रामायण-माहात्म्यके अन्तर्गत हैं—

रामायणं नाम परं तु काव्यं सुपुण्यदं वै शृणुत द्विजेन्द्राः।
यस्मिञ्छ्रुते जन्मजरादिनाशो भवत्यदोषः स नरोऽच्युतः स्यात्॥
वरं वरेण्यं वरदं तु काव्यं संतारयत्याशु च सर्वलोकम्।
संकल्पितार्थप्रदमादिकाव्यं श्रुत्वा च रामस्य पदं प्रयाति॥

'रामायण नामक काव्य सर्वश्रेष्ठ है, यह उत्तम पुण्यका फल प्रदान करनेवाला है। द्विजेन्द्रो! आपलोग इसका श्रवण करें। इसे सुननेसे जन्म और जरा आदि अवस्थाओंका नाश होता है तथा श्रवण करनेवाला पुरुष सब प्रकारके दोषोंसे रहित हो नरसे नारायण बन जाता है। आदिकाव्य रामायण श्रेष्ठ होनेके साथ ही वरदाता भी है, यह अपने आश्रयमें आये हुए सम्पूर्ण जगत्का तत्काल उद्धार कर देता है। इससे मनकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा इसको सुननेवाला पुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके परमधाममें जाता है।'

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति विष्णुसमो देवो नास्ति रामायणात् परम्॥
नास्ति वेदसमं शास्त्रं नास्ति शान्तिसमं सुखम्।
नास्ति शान्तिपरं ज्योतिर्नास्ति रामायणात् परम्॥
नास्ति क्षमासमं सारं नास्ति कीर्तिसमं धनम्।
नास्ति ज्ञानसमो लाभो नास्ति रामायणात् परम्॥

गङ्गाके समान तीर्थ, माताके तुल्य गुरु, विष्णुके सदृश देवता तथा रामायणसे बढ़कर कोई उत्तम वस्तु नहीं है। वेदके समान शास्त्र, शान्तिके समान सुख, शान्तिसे बढ़कर ज्योति तथा रामायणसे उत्कृष्ट कोई काव्य नहीं है। क्षमाके सदृश बल, कीर्तिके समान धन, ज्ञानके सदृश लाभ तथा रामायणसे बढ़कर कोई उत्तम ग्रन्थ नहीं है।'

रामायणपरा ये तु रामनामपरायणाः।
त एव कृतकृत्याश्च घोरे कलियुगे द्विजाः॥
रामायणमादिकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मतम्।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिबर्हणम्॥

'जो रामायण तथा श्रीराम-नामका आश्रय लेते हैं, वे ही इस भयंकर कलिकालमें कृतार्थ हैं। आदिकाव्य रामायण सम्पूर्ण वेदार्थोंके अनुकूल है। यह समस्त पापोंको हरनेवाला तथा पुण्य प्रदान करनेवाला है। इसके पाठसे सब प्रकारके दुःख दूर हो जाते हैं।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीरामचन्द्राय नमः ॥

# वाल्मीकीय रामायणका संक्षिप्त माहात्म्य

**श्रीरामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गती**
**रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः ।**
**रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे**
**रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः ॥ १ ॥**

श्रीरामचन्द्रजी समस्त संसारको शरण देनेवाले हैं। रामके बिना दूसरी कौन-सी गति है। राम कलियुगके समस्त दोषोंको नष्ट कर देते हैं, अतः श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार करना चाहिये। रामसे कालरूपी भयङ्कर सर्प भी डरता है। जगत्का सब कुछ भगवान् रामके वशमें है। श्रीराममें मेरी अखण्ड भक्ति बनी रहे। हे राम! आप ही मेरे आधार हैं॥ १॥

**चित्रकूटालयं रामभिन्दिरानन्दमन्दिरम् ।**
**वन्दे च परमानन्दं भक्तानामभयप्रदम् ॥ २ ॥**

चित्रकूटमें निवास करनेवाले, भगवती लक्ष्मी ( सीता ) के आनन्दनिकेतन और भक्तोंको अभय देनेवाले परमानन्द-स्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको मैं नमस्कार करता हूँ॥२॥

**ऋषियोंने पूछा**—सूतजी! इस संसार-बन्धनको काटनेवाला कौन-सा साधन है? आपने बतलाया है कि कलियुगमें वेदोक्त मार्ग नष्ट हो जायँगे। पापमें लगे हुए जीवोंको जो यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, उनका भी आपने वर्णन किया। घोर कलियुग आनेपर जब वैदिक मार्ग लुप्त हो जायँगे, उस समय संसारमें केवल पाखण्डका ही प्रचार रहेगा—यह बात भी आपके द्वारा मालूम हुई। सुना है, कलियुगके सभी मनुष्य कामी, नाटे शरीरके, लोभी और धर्म तथा ईश्वरका आश्रय छोड़कर परस्पर एक-दूसरेपर ही निर्भर रहनेवाले होंगे। इस प्रकार घोर कलिकालमें सदा पाप-परायण रहनेके कारण जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकेगा, उन लोगोंकी मुक्ति कैसे होगी? तथा उनके ऊपर देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कैसे प्रसन्न होंगे? सूतजी! आप करुणाके सागर और सर्वज्ञ हैं। मेरी पूछी हुई सारी बातें बतानेकी कृपा कीजिये। आपके वचनामृतोंका पान करनेसे हमें किसी तरह तृप्ति नहीं होती।

**सूतजीने कहा**—मुनिवरो! सुनिये, आपलोग जो सुनना चाहते हैं, वह मैं बताता हूँ। महात्मा नारदजीने सनत्कुमारको सम्पूर्ण वेदार्थोंकी सम्मतिके अनुकूल बने हुए जिस रामायण नामक महाकाव्यका श्रवण कराया था, वह समस्त पापोंका नाश और दुष्ट ग्रहोंकी बाधाका निवारण करनेवाला है। दुःस्वप्नका नाशक, प्रशंसाके योग्य तथा भोग और मोक्षरूप फल देनेवाला है। उसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन है। उसको पढ़ने और सुननेसे समस्त कल्याणमयी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वह महाकाव्य महान् फल देनेवाला है। महान् पातकों अथवा सम्पूर्ण उपपातकोंसे युक्त मनुष्य भी उस ऋषिप्रणीत दिव्यकाव्यका श्रवण करनेसे शुद्ध हो जाता है। सम्पूर्ण जगत्के हित-साधनमें लगे रहनेवाले जो सत्पुरुष रामायणमें मन लगाते हैं, वे ही सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मको समझनेवाले और कृतार्थ हैं। विप्रवरो! रामायण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन तथा परम अमृतरूप है; अतः सदा भक्तिपूर्वक उसका श्रवण करना चाहिये। यह बिल्कुल पक्की बात है कि जिस मनुष्यके पूर्वजन्मोंके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसीका रामायणके प्रति अधिक प्रेम होता है। जो पापके बन्धनमें जकड़ा हुआ है, वह रामायणकी कथा आरम्भ होनेपर उसकी अवहेलना करके दूसरी-दूसरी बातोंमें फँस जाता है; इसलिये ब्राह्मणो! आप लोग रामायण नामके अत्युत्तम महाकाव्यका श्रवण करें। उसके सुननेसे जन्म, जरा और मृत्युके भयका नाश हो जाता है और श्रवण करनेवाला मनुष्य पापसे रहित होकर अच्युतस्वरूप हो जाता है। रामायण-काव्य अत्यन्त उत्तम, वन्दनीय, मनोवाञ्छित वर देनेवाला, श्रवण करनेयोग्य तथा अपने ज्ञानालोकसे सम्पूर्ण जगत्को नूतन प्रकाश देनेवाला है। यह आदिकाव्य मनचाही वस्तु प्रदान करता है। जो मनुष्य इसे सुनता है, उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जो नाम तथा जाति आदि विकल्पोंसे रहित, कार्य-कारणसे परे, वेदान्त-शास्त्रके द्वारा जानने योग्य एवं स्वयं प्रकाश परमात्मा है, उसका समस्त पुराणों और वेदोंके द्वारा साक्षात्कार होता है ( रामायणके श्रवणसे भी उसकी प्राप्ति होती है )।

द्विजवरो! कार्तिक, माघ तथा चैत्र मासके शुक्लपक्षमें नौ दिनोंमें रामायणकी अमृतमयी कथाका श्रवण करना चाहिये। जो इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके मङ्गलमय चरित्रका श्रवण करता है, वह इस लोक और परलोकमें भी अपनी समस्त उत्तम कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। उसके सारे पाप दूर हो जाते हैं और वह भगवान् रामके परमधामको प्राप्त होता है। इसलिये घोर कलियुग आनेपर रामायणकी परम पवित्र कथाका नवाह-श्रवण अवश्य करना चाहिये। जो लोग भयंकर कलिकालमें रामायणका आश्रय लेंगे, वे कृतार्थ हो जायँगे; कलियुग उन्हें बाधा नहीं पहुँचा सकेगा। जिस घरमें प्रतिदिन रामायणकी कथा



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होती है, वह तीर्थस्वरूप हो जाता है। वहाँ जानेसे दुष्टोंके पापका नाश हो जाता है। तपोधनो! शरीरमें तभीतक पाप रहते हैं, जबतक मनुष्य भलीभाँति रामायणकी कथाका श्रवण नहीं करता। संसारमें रामायणकी कथा अत्यन्त दुर्लभ है। जब करोड़ों जन्मोंके पुण्योंका उदय होता है, तभी उसकी प्राप्ति होती है। जो पुरुष श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिका आश्रय लेकर प्रेमपूर्वक इस कथाका श्रवण करता है, वह राशि-राशि महापातकों और उपपातकोंसे मुक्त हो जाता है।

**ऋषियोंने पूछा**—महामुने! देवर्षि नारदजीने सनत्कुमारजीसे रामायण-सम्बन्धी सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन किस प्रकार किया था? उन दोनों ब्रह्मवादी महात्माओंका किस क्षेत्रमें समागम हुआ था? नारदजीने उनसे जो कुछ कहा, वह सब आप हमलोगोंको बताइये।

**सूतजीने कहा**—मुनिवरो! सनकादि ऋषि ब्रह्माजीके पुत्र हैं, वे सब-के-सब बड़े महात्मा माने गये हैं। ममता और अहंकारका तो उनमें नाम भी नहीं है तथा वे सभी ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) हैं। मैं आपलोगोंसे उनके नाम बताता हूँ, सुनिये। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन—इन चारोंको सनकादि कहते हैं। वे महात्मा भगवान् विष्णुके बड़े भक्त हैं, सदा ब्रह्मके चिन्तनमें लगे रहते हैं। वे बड़े सत्यवादी हैं। एक दिन वे महातेजस्वी ब्रह्मपुत्र सनकादि ब्रह्माजीकी सभा देखनेके लिये मेरु पर्वतके शिखरपर गये। वहाँ भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई परम पवित्र गङ्गा नदी, जिन्हें सीता भी कहते हैं, बह रही थीं। गङ्गाजीका दर्शन करके वे तेजस्वी महात्मा उनके जलमें नहानेको उद्यत हुए। इतनेमें ही देवर्षि नारदजी भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करते हुए वहाँ आ पहुँचे। वे 'नारायण! अच्युत! अनन्त! वासुदेव! जनार्दन! यज्ञेश! यज्ञपुरुष! राम! विष्णो! आपको नमस्कार है।' इस प्रकार भगवन्नामका उच्चारण करके सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र बनाते वहाँ आये। आनेपर उन्होंने त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली देवनदी गङ्गाका भी स्तवन किया। महान् तेजस्वी महर्षि सनकादिकोंने नारदजीको आये देख उनकी यथोचित पूजा की तथा नारदजीने भी उन मुनीश्वरोंको प्रणाम किया।

**तब सनत्कुमारजीने पूछा**—मुनियोंको आदर देनेवाले महाप्राज्ञ नारदजी! आपको सभी विषयोंका ज्ञान है; तथा आप सदा भगवान्‌की भक्तिमें तन्मय रहते हैं इसलिये आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है, अतः मैं पूछता हूँ; जिनसे समस्त चराचर जगत्‌की उत्पत्ति हुई है तथा ये गङ्गाजी जिनके चरणोंसे प्रकट हुई हैं, उन श्रीहरिके स्वरूपका कैसे ज्ञान होता है? यदि आपकी हमलोगोंपर कृपा हो तो इसका ठीक-ठीक उत्तर देनेकी कृपा कीजिये।

**नारदजीने कहा**—जो परसे भी पर हैं, जिनका निवास-स्थान (परमधाम) उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट है तथा जो सगुण और निर्गुणरूप हैं, उन परमात्मस्वरूप भगवान्‌को नमस्कार है। पृथ्वीका भार उतारनेमें जिनका मनोरञ्जन होता है, जो (एक होकर भी) चार स्वरूपोंमें अवतीर्ण होते हैं, जिन्होंने वानरोंको साथ लेकर राक्षस-सेनाका संहार किया है, उन दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ। भगवान् श्रीरामके ऐसे-ऐसे अनेकों चरित्र हैं, जिनके नाम करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं गिनाये जा सकते। जिनके नामकी महिमाका मनु और मुनीन्द्र भी नहीं पार पा सके तथा जिनके नामके श्रवणमात्रसे बड़े-से-बड़े पातकी भी पवित्र हो जाते हैं, उन परमात्माका स्तवन मेरे-जैसा तुच्छ बुद्धिवाला प्राणी कैसे कर सकता है। सनत्कुमारजी! भगवान्‌की महिमाको जाननेके लिये कार्तिक, माघ और चैत्रके शुक्ल-पक्षमें रामायणकी अमृतमयी कथाका नवाह-श्रवण करना चाहिये।

**सनत्कुमारजीने कहा**—नारदजी! आप रामायणके माहात्म्यका वर्णन कीजिये। आपके अमृतमय वचन सुननेसे हमें तृप्ति नहीं होती।

**नारदजीने कहा**—महर्षियो! आप सब लोग निश्चय ही बड़े भाग्यशाली और कृतार्थ हैं; क्योंकि आप भक्तिपूर्वक भगवान् रामका प्रभाव सुननेको उद्यत हुए हैं। ब्रह्मवादी मुनियोंने भगवान् रामके माहात्म्यका श्रवण पुण्यात्मा पुरुषोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ बतलाया है। इसलिये आपलोग सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले देवाधिदेव श्रीनारायणकी रामायण-कथा सुनें। यह कामधेनुके समान बतायी गयी है। माघ मासके शुक्लपक्षमें यत्नपूर्वक रामायण-कथाका नवाह-पाठ सुनना चाहिये। वह सम्पूर्ण धर्मोंका फल देनेवाला है। जो सब पापोंका नाश करनेवाले इस पवित्र उपाख्यानका पाठ या श्रवण करता है, वह भगवान् रामका भक्त होता है।

॥ माहात्म्य समाप्त ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# देवसभामें भगवान् विष्णु

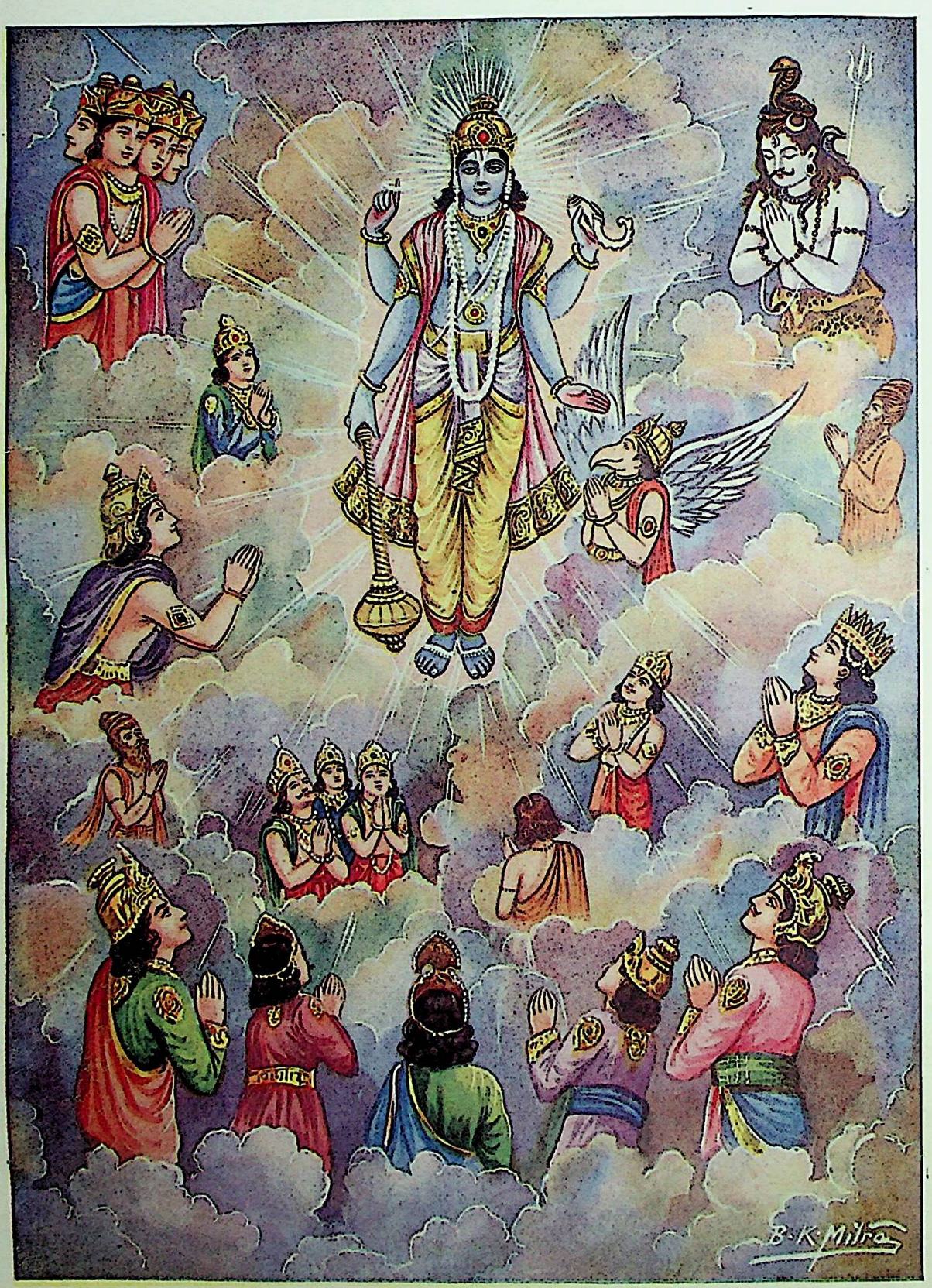


एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः । शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा । तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. (बाल० १५ । १६-१७)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण

## बालकाण्ड

### नारदजीका वाल्मीकि मुनिको संक्षेपसे रामचरित सुनाना

तपस्वी वाल्मीकिजीने तपस्या और स्वाध्यायमें लगे हुए, विद्वानोंमें श्रेष्ठ मुनिवर नारदजीसे पूछा—'मुने ! इस समय

इस संसारमें गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ, उपकार माननेवाला, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है ? सदाचारसे युक्त, समस्त प्राणियोंका हितसाधक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन ( सुन्दर ) पुरुष कौन है ? मनपर अधिकार रखनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, कान्तिमान् और किसीकी भी निन्दा नहीं करनेवाला कौन है तथा संग्राममें कुपित होनेपर किससे देवता भी डरते हैं ? महर्षे ! मैं यह सुनना चाहता हूँ, इसके लिये मुझे बड़ी उत्सुकता है; और आप ऐसे पुरुषको जाननेमें समर्थ हैं ?'

महर्षि वाल्मीकिके इस वचनको सुनकर तीनों लोकोंका ज्ञान रखनेवाले नारदजीने उन्हें सम्बोधित करके कहा—'अच्छा, सुनिये'; और फिर प्रसन्नतापूर्वक बोले—"मुने ! आपने जिन बहुत-से दुर्लभ गुणोंका वर्णन किया है, उनसे युक्त पुरुषको मैं विचार करके कहता हूँ; आप सुनें । इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं, जो लोगोंमें रामके नामसे विख्यात हैं; वे ही मनको वशमें रखनेवाले, महाबलवान्, कान्तिमान्, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं । वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, ऐश्वर्यवान् तथा शत्रुसंहारक हैं । उनके कंधे मोटे और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, ग्रीवा शङ्खके समान और ठोढ़ी भरी हुई है, छाती चौड़ी और धनुष बड़ा है तथा गलेके नीचेकी हड्डी ( हँसली ) मांससे छिपी हुई है । वे शत्रुओंका दमन करनेवाले हैं, उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लंबी हैं, मस्तक सुन्दर है, ललाट भव्य है और चाल मनोहर है । उनका शरीर [ अधिक ऊँचा या नाटा न होकर ] मध्यम और सुडौल है, देहका रंग चिकना है, वे बड़े प्रतापी हैं । उनका वक्षःस्थल भरा हुआ और आँखें बड़ी-बड़ी हैं । वे शोभायुक्त और शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, धर्मके ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ, प्रजाके हित-साधनमें लगे रहनेवाले, यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय और मनको एकाग्र रखनेवाले हैं । प्रजापतिके समान श्रीसम्पन्न, वैरिविध्वंसक और धर्म तथा जीवोंके रक्षक हैं । स्वधर्म और स्वजनोंके पालक, वेद-वेदाङ्गोंके तत्त्वको जाननेवाले तथा धनुर्वेदमें प्रवीण हैं । अखिल शास्त्रोंके मर्मज्ञ, स्मरणशक्तिसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



युक्त और प्रतिभासम्पन्न हैं। अच्छे विचार और उदार हृदयवाले वे रामचन्द्रजी बातचीत करनेमें चतुर तथा समस्त लोकोंके प्रिय हैं। जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार रामसे सदा साधु पुरुष मिलते रहते हैं। वे आर्य एवं सबमें समान भाव रखनेवाले हैं, उनका दर्शन सदा ही प्रिय मालूम होता है। सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त वे श्रीरामचन्द्रजी अपनी माता कौसल्याके आनन्द बढ़ानेवाले हैं। वे गम्भीरतामें समुद्र और धैर्यमें हिमालयके समान हैं, विष्णुभगवान्‌के समान बलवान् हैं तथा उनका दर्शन चन्द्रमाके समान मनोहर प्रतीत होता है। वे क्रोधमें कालाग्निके समान और क्षमामें पृथ्वीके सदृश हैं तथा दानमें कुबेर और सत्यमें द्वितीय धर्मराजके समान हैं।

"इस प्रकार उत्तम गुणोंसे युक्त और सत्य पराक्रमवाले सद्गुणशाली अपने प्रियतम ज्येष्ठ पुत्रको, जो प्रजाके हितमें संलग्न रहते थे, प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छासे राजा दशरथने प्रेमवश युवराजपदपर अभिषिक्त करना चाहा। तब रामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ देखकर रानी कैकेयीने, जिसे पहले ही वर दिया जा चुका था, राजासे यह वर माँगा कि रामका निर्वासन ( वनवास ) और भरतका राज्याभिषेक हो। राजा दशरथने सत्यवचनके कारण धर्म-बन्धनमें बँधकर प्यारे पुत्र रामको वनवास दे दिया। वीरवर रामचन्द्र कैकेयीका प्रिय एवं पिताकी आज्ञाके अनुसार उनकी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये वनको चले। तब सुमित्राके आनन्द बढ़ानेवाले विनयशील लक्ष्मणने भी, जो अपने बड़े भाई रामको बहुत ही प्रिय थे, अपने सुबन्धुत्वका परिचय देते हुए स्नेहवश वनको जानेवाले अपने भाईका अनुसरण किया। फिर जनकके कुलमें उत्पन्न सीता भी, जो अवतीर्ण हुई देवमायाकी भाँति सुन्दरी, समस्त शुभलक्षणोंसे विभूषित, स्त्रियोंमें उत्तम और रामकी प्राणोंके समान प्रियतमा पत्नी तथा सदा ही पतिका हित चाहनेवाली थीं, रामचन्द्रजीके पीछे हो लीं, जैसे चन्द्रमाके पीछे रोहिणी चलती है। उस समय पिता दशरथने [ अपना सारथि भेजकर ] और पुरवासी मनुष्योंने [ स्वयं साथ जाकर ] दूरतक उनका अनुसरण किया। फिर शृङ्गवेरपुरमें गङ्गा-तटपर अपने प्रिय निषादराज गुहके पास पहुँचकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने सारथिको [ अयोध्याके लिये ] विदा कर दिया। निषादराज गुह, लक्ष्मण और सीताके साथ राम—ये चारों एक वनसे दूसरे वनमें गये, मार्गमें अनेकों बड़ी-बड़ी नदियोंको पार करके [ भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचे और गुहको वहीं छोड़ ] भरद्वाज मुनिकी आज्ञासे चित्रकूट पर्वतपर गये। वहाँ वे तीनों देवता और गन्धर्वोंके समान वनमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हुए एक रमणीय पर्णकुटी बनाकर आनन्दपूर्वक रहने लगे।

"इसी समय रामके चित्रकूट चले जानेपर पुत्रशोकसे पीड़ित राजा दशरथ पुत्रके लिये विलाप करते हुए स्वर्गगामी हुए। उनके स्वर्गगमनके पश्चात् वसिष्ठ आदि प्रमुख ब्राह्मणोंद्वारा राज्यसञ्चालनके लिये नियुक्त किये जानेपर भी महाबलशाली वीर भरतने राज्यकी कामना न करके पूज्य रामको प्रसन्न करनेके लिये वनको ही प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर सद्भावनायुक्त भरतजीने अपने बड़े भाई सत्यपराक्रमी महात्मा रामसे इस प्रकार प्रार्थना की—'धर्मज्ञ! आप ही राजा हों।' परन्तु राम भी महान् यशस्वी, परम उदार, प्रसन्नमुख और महाबली थे। उन्होंने पिताके आदेशका पालन करते हुए राज्यकी अभिलाषा न की और राज्यके लिये न्यास ( चिह्न ) रूपमें अपनी खड़ाऊँ भरतको देकर उन्हें बार-बार आग्रह करके लौटा दिया। अपनी अपूर्व इच्छाको लेकर ही भरतने रामके चरणोंका स्पर्श किया और रामके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए वे नन्दिग्राममें रहकर राज्य-कार्य करने लगे। भरतके लौट जानेपर सत्यप्रतिज्ञ जितेन्द्रिय श्रीमान् रामने वहाँपर पुनः नागरिक जनोंका आना-जाना देखकर [ उनसे बचनेके लिये ] एकाग्रभावसे दण्डकारण्यमें प्रवेश किया। उस महान् वनमें पहुँचनेपर कमललोचन रामने विराध नामक राक्षसको मारकर शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य मुनि तथा अगस्त्यके भ्राताका दर्शन किया। फिर अगस्त्य मुनिके कहनेसे उन्होंने इन्द्रका दिया हुआ धनुष, एक खड्ग और दो तूणीर, जिनमें बाण कभी नहीं घटते थे, प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किये।

"एक दिन वनमें वनचरोंके साथ रहनेवाले रामके पास असुर तथा राक्षसोंके वधके लिये निवेदन करनेको वहाँके सभी ऋषि आये। उस समय रामने अग्निके समान तेजस्वी उन दण्डकारण्यवासी ऋषियोंको राक्षसोंके मारनेका वचन दिया और संग्राममें उनके वधकी प्रतिज्ञा की। वहाँ रहते हुए ही श्रीरामने इच्छानुसार रूप बनानेवाली जनस्थाननिवासिनी शूर्पणखा नामकी राक्षसीको [ लक्ष्मणके द्वारा उसकी नाक कटाकर ] कुरूप करा दिया। फिर उन्होंने शूर्पणखाके कहनेसे चढ़ाई करनेवाले सभी राक्षसोंको और खर, दूषण, त्रिशिरा तथा उनके पृष्ठपोषक असुरोंको युद्धमें मार डाला। इस प्रकार उस वनमें निवास करते हुए उन्होंने जनस्थाननिवासी चौदह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हजार राक्षसोंका संहार किया । तब अपने कुटुम्बका वध सुनकर रावण नामका राक्षस क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और उसने मारीच राक्षससे सहायता माँगी । यद्यपि मारीचने यह कहकर कि 'रावण ! महाबली रामके साथ तुम्हारा विरोध करना ठीक नहीं है' उसे अनेकों बार मना किया, परन्तु कालकी प्रेरणासे रावणने मारीचके वाक्योंको टाल दिया और उसको साथ लेकर वह रामके आश्रमपर गया । मायावी मारीचके द्वारा उसने दोनों राजकुमारोंको आश्रमसे दूर हटा दिया और स्वयं रामकी पत्नी सीताका अपहरण कर लिया तथा [ जाते समय मार्गमें विघ्न डालनेके कारण उसने ] जटायुनामक गृध्रको भी मार डाला । जटायुको आहत देख और [ उसीके मुखसे ] सीताका हरण सुनकर श्रीरामचन्द्रजी शोकसे पीड़ित होकर विलाप करने लगे; उस समय उनकी सभी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी थीं । फिर उस शोककी अवस्थामें ही उन्होंने जटायु गृध्रका अग्निसंस्कार किया और वनमें सीताको ढूँढ़ते हुए कबन्धनामक राक्षसको देखा । यह देखनेमें बड़ा ही बेडौल और भयावना था । महाबाहु रामने उसे मारकर उसका भी दाह-संस्कार किया, अतः वह स्वर्गको चला गया । जाते समय उसने रामको धर्मचारिणी शबरीका पता बतलाया और कहा—'रघुनन्दन ! आप धर्मपरायणा संन्यासिनी शबरीके आश्रमपर जाइये ।' तब शत्रुहन्ता महान् तेजस्वी दशरथकुमार राम शबरीके यहाँ गये । उसने इनका भली-भाँति पूजन किया । फिर वे पम्पासरके तटपर जाकर हनुमान्नामक वानरसे मिले और उन्हींके कहनेसे उन्होंने सुग्रीवसे भी भेंट की । महाबलवान् रामने आरम्भसे ही अपना सारा समाचार और विशेषतः सीताका वृतान्त सुग्रीवको कह सुनाया । सुग्रीवने रामकी सारी बातें सुनकर उनके साथ प्रेमपूर्वक अग्निको साक्षी बनाकर मित्रता की । उसके बाद वानरराज सुग्रीवने स्नेहवश बड़े दुःखपूर्वक रामचन्द्रजीको वालीके साथ अपना वैर होनेकी सारी बातें बतलायीं । इसपर रामने वालीको मारनेकी प्रतिज्ञा की । तब सुग्रीवने वालीके बलका वर्णन किया; क्योंकि उसे रामके बलके विषयमें बराबर शङ्का बनी हुई थी । रामकी परीक्षाके लिये उन्होंने दुन्दुभि दैत्यका महान् पर्वताकार शरीर दिखलाया । महाबली रामने तनिक मुसकराकर उस अस्थिसमूहको देखा और पैरके अँगूठेसे दस योजन दूर फेंक दिया । फिर एक ही विशाल बाणसे उन्होंने अपना विश्वास दिलाते हुए सात तालवृक्षोंको और पर्वत तथा रसातलको बींध डाला । रामके इस कार्यसे महाकपि सुग्रीव मन-ही-मन प्रसन्न हुए और उन्हें रामपर विश्वास हो गया । फिर वे उसी समय उनके साथ किष्किन्धा गुहामें गये । वहाँ पहुँचकर सुवर्णके समान पिङ्गलवर्णवाले वीरवर सुग्रीवने गर्जना की । उस महानादको सुनकर वानरराज वाली अपनी पत्नी ताराको आश्वासन देकर तुरंत घरसे बाहर निकला और सुग्रीवसे भिड़ गया । तब श्रीरामचन्द्रजीने वालीको एक ही बाणसे मार गिराया । इस प्रकार सुग्रीवके कथनानुसार वालीको संग्राममें मारकर श्रीरामने सुग्रीवको ही उसके राज्यपर बिठाया । तब वानर-राज सुग्रीवने सभी वानरोंको बुलाकर जानकीका पता लगानेके लिये उन्हें चारों दिशाओंमें भेजा ।

"तत्पश्चात् सम्पातिनामक गृध्रके कहनेसे बलवान् हनुमान्जी सौ योजन विस्तारवाले क्षार समुद्रको कूदकर लाँघ गये । उन्होंने रावणपालित लङ्कापुरीमें पहुँचकर अशोकवाटिकामें सीताको चिन्तामग्न देखा । उन विदेह-नन्दिनीको अपनी पहचान देकर हनुमान्जीने रामका सन्देश सुनाया और उन्हें सान्त्वना देकर उस वाटिकाका द्वार तोड़ डाला । फिर पाँच सेनापतियों और सात मन्त्रिकुमारोंका वध करके वीर अक्षयकुमारका भी कचूमर निकाला । इसके बाद वे अपनी इच्छासे पकड़में आ गये । ब्रह्माजीके वरदानसे अपनेको ब्रह्मपाशसे छूटा हुआ जानकर भी वीर हनुमान्जीने अपनेको बाँधनेवाले राक्षसोंका अपराध स्वेच्छानुसार सह लिया । तत्पश्चात् मिथिलेशकुमारी सीताके स्थानके अतिरिक्त समस्त लङ्काको जलाकर वे महाकपि रामको प्रिय सन्देश सुनानेके लिये लङ्कासे लौट आये । अपरिमित बुद्धिशाली हनुमान्जीने वहाँ जाकर महात्मा रामकी प्रदक्षिणा की और यह सत्य समाचार निवेदन किया—'भगवन् ! मैंने सीताजीका दर्शन किया है ।' तब भगवान् राम सुग्रीवके साथ महासागरके तटपर गये और उन्होंने अपने सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंसे समुद्रको क्षुब्ध कर डाला । नदियोंका स्वामी समुद्र स्वयं उनके सामने प्रकट हुआ । उसके कहनेसे ही भगवान् रामने नलके द्वारा एक पुलका निर्माण कराया और उसीसे लङ्कापुरीमें जाकर रावणको मारा ।

"सीताके मिलनेपर रामको बड़ी लज्जा हुई और वे भरी सभामें उनसे मर्मभेदी वचन कहने लगे । उनकी इस बातको न सह सकनेके कारण साध्वी सीताने अग्निमें प्रवेश किया । इसके बाद अग्निके कहनेसे उन्होंने सीताको निष्कलङ्क माना । महात्मा रामचन्द्रजीके इस महान् कर्मसे देवता और ऋषियोंसहित चर और अचर तीनों लोक सन्तुष्ट हो गये । फिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित होकर श्रीरामचन्द्रजी बहुत ही प्रसन्न हुए और राक्षसराज विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त करके उन्होंने अपनेको कृतकृत्य समझा। उस समय निश्चिन्त हो जानेके कारण उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। यह सब हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजी देवताओंसे वर पाकर और मरे हुए वानरोंको जीवन दिलाकर अपने सभी साथियोंके साथ पुष्पकविमानपर चढ़े और अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए। भरद्वाज मुनिके आश्रमपर पहुँचकर सबको आनन्द देनेवाले सत्यपराक्रमी रामने भरतके पास हनुमान्‌जीको भेजा। फिर सुग्रीवके साथ कथा-वार्ता कहते हुए वे पुष्पकविमानसे ही नन्दिग्रामको गये और वहाँ पापके सम्पर्कसे रहित श्रीरामचन्द्रजीने भाइयोंके सहित अपनी जटाएँ कटायीं। इस प्रकार श्रीसीताजीको प्राप्त करके उन्होंने अपना राज्य भी प्राप्त कर लिया है। अबसे रामके राज्यमें लोग प्रसन्न, सुखी, सन्तुष्ट, पुष्ट, धार्मिक तथा रोग और व्याधिसे मुक्त रहेंगे। उन्हें दुर्भिक्षका भय नहीं होगा। कहीं किसीको भी अपने पुत्रकी मृत्यु नहीं देखनी पड़ेगी। स्त्रियाँ सदा सुहागिन और पतिव्रता रहेंगी। आग लगनेका किञ्चित् भी भय नहीं होगा। कोई भी प्राणी जलमें नहीं डूबेंगे। वात और ज्वरका थोड़ा भी भय नहीं रहेगा। क्षुधा तथा चोरीका डर भी जाता रहेगा। सभी नगर और राष्ट्र धन-धान्यसे सम्पन्न होंगे। सत्ययुगकी भाँति सभी लोग सदा प्रसन्न रहेंगे। महायशस्वी राम बहुत-से सुवर्णकी दक्षिणावाले सौ अश्वमेधयज्ञ करेंगे। उनमें विद्वान् ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दस हजार करोड़ ( एक खर्ब ) गौएँ और अपरिमित धन देंगे तथा सैकड़ों राजवंशोंकी स्थापना करेंगे। संसारमें चारों वर्णोंको वे अपने-अपने धर्ममें लगाये रखेंगे। फिर ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके श्रीरामचन्द्रजी अपने परमधामको पधारेंगे।

"यह रामचरित वेदोंके समान पवित्र, पापनाशक और पुण्यमय है; जो इसे पढ़ेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा। यह कथा आयु बढ़नेवाली है; इसका पाठ करनेवाला मनुष्य मृत्युके अनन्तर पुत्र, पौत्र तथा अन्य परिजन-वर्गके साथ ही स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि ब्राह्मण इसका पाठ करे तो विद्वान् हो, क्षत्रिय पढ़े तो पृथ्वीका राज्य प्राप्त करे, वैश्यको व्यापारमें लाभ हो और शूद्र भी प्रतिष्ठा प्राप्त करे।"

## रामायण काव्यका उपक्रम

महामुनि देवर्षि नारदजीके उपर्युक्त वचन सुनकर वाणीविशारद धर्मात्मा ऋषि वाल्मीकिजीने अपने शिष्योंसहित उनका पूजन किया। वाल्मीकिजीसे यथावत् सम्मानित होकर नारदजी आकाशमार्गसे चले गये। उनके देवलोक पधारनेके थोड़ी ही देर बाद वाल्मीकिजी तमसा नदीके तटपर, जो गङ्गाजीसे कुछ ही दूरीपर था, गये और वहाँके विस्तृत वनकी शोभा निहारते हुए विचरने लगे! उन्होंने अपने पास ही क्रौञ्चपक्षियोंके एक जोड़ेको बड़े आनन्दसे विचरते देखा। इतनेमें ही जीवद्रोही एक निषादने आकर उस जोड़ेमेंसे एक—नर पक्षीको उनके देखते-देखते अपने बाणका निशाना बनाया। वह पक्षी खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और पंख फड़फड़ाता हुआ तड़पने लगा। अपने पतिकी हत्या देखकर क्रौञ्ची करुणाभरे स्वरमें चीख उठी। नर पक्षीकी वह दुर्दशा देखकर धर्मात्मा मुनिको बड़ी दया आयी। रोती हुई क्रौञ्चीका आर्तनाद सुनकर उनके मुँहसे निकल पड़ा—'निषाद! तुझे कभी भी शाश्वत शान्ति नहीं मिलेगी; क्योंकि तूने इस क्रौञ्चके जोड़ेमेंसे एककी, जो कामसे मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराधके हत्या कर डाली।'

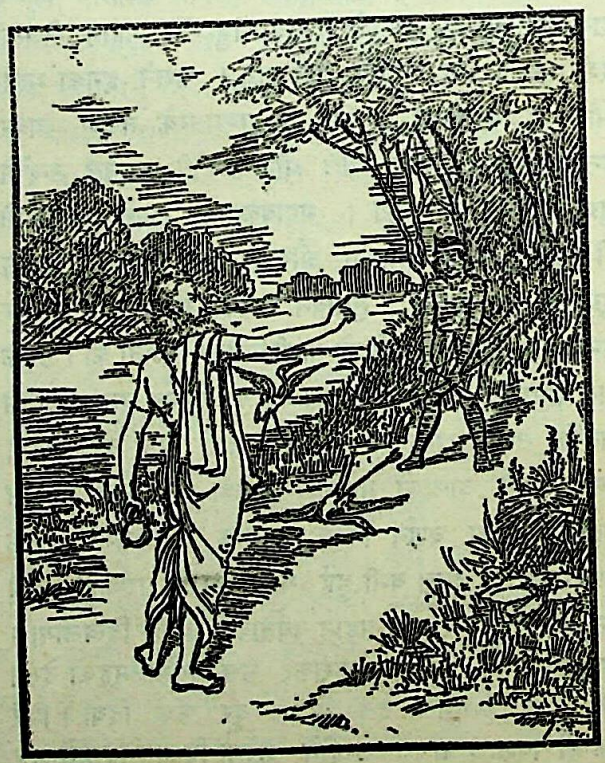

ऐसा कहकर जब उन्होंने इसपर विचार किया तो उनके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। ये सोचने लगे—'ओह! इस पक्षीके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शोकसे पीडित होकर मैंने यह क्या कह डाला।' यही सोचते-विचारते हुए वे मुनिश्रेष्ठ अपने शिष्यसे बोले—'तात! शोकके आवेशमें मेरे मुँहसे जो वाक्य निकल पड़ा है, यह चार चरणोंमें आबद्ध है। इसके प्रत्येक चरणमें बराबर-बराबर (यानी आठ-आठ) अक्षर हैं तथा इसे वीणाके लयपर गाया भी जा सकता है; अतः मेरा यह वचन श्लोकरूप (अर्थात् श्लोक नामक छन्दमें आबद्ध काव्यरूप या यशः-स्वरूप) होना चाहिये, अन्यथा नहीं।' मुनिकी यह उत्तम बात सुनकर उनके शिष्य भरद्वाजको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उनका समर्थन करते हुए कहा 'हाँ! आपका यह वाक्य श्लोकरूप ही होना चाहिये।' शिष्यके इस कथनसे मुनिको विशेष संतोष हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने उस उत्तम तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान किया और उसी विषयका विचार करते हुए वे आश्रमकी ओर लौट पड़े। उनका छात्र भरद्वाज बड़ा ही विनीत और शास्त्रज्ञ था। वह जलसे भरा हुआ कलश लेकर गुरुजीके पीछे-पीछे चला।

आश्रममें पहुँचनेपर धर्मज्ञ ऋषि वाल्मीकिजी अपने शिष्यके साथ बैठकर दूसरी-दूसरी बातें करने लगे; किन्तु उनका ध्यान उस श्लोककी ओर ही लगा था। इतनेमें ही अखिल विश्वकी सृष्टि करनेवाले महातेजस्वी ब्रह्माजी महर्षिसे मिलनेके लिये आये। महर्षि वाल्मीकि उन्हें आये देख सहसा उठकर खड़े हो गये और अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ जानेके कारण तुरंत कुछ बोल न सके, केवल हाथ जोड़े विनीत भावसे खड़े रहे। तत्पश्चात् उन्होंने पाद्य, अर्घ्य और आसन आदि देकर भगवान् ब्रह्माजीका विधिवत् पूजन किया और उनके चरणोंमें प्रणाम करके कुशल पूछी। ब्रह्माजी एक सुन्दर आसनपर विराजमान हुए और वाल्मीकि मुनिको भी उन्होंने आसनपर बैठनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाकर वे बैठ तो गये, किन्तु उनका मन उस समय क्रौञ्च पक्षीवाली घटना-की ओर ही लगा रहा। वे उसीके विषयमें सोचने लगे—'ओह! उस व्याधेने बिना किसी अपराधके ही उस क्रौञ्च पक्षीके प्राण ले लिये।' यही सोचते-सोचते उन्होंने क्रौञ्चीके आर्त-नादको सुनकर व्याधेको लक्ष्य करके जो श्लोक कहा था, उसको फिर ब्रह्माजीके सामने दुहराया। उसे दुहराते ही फिर उनके मनमें अपने दिये हुए शापके अनौचित्यका ध्यान आया, तथा वे शोक और चिन्तामें डूब गये। ब्रह्माजी उनकी स्थितिको समझकर हँस पड़े और उनसे बोले—'ब्रह्मन्! तुम्हारे मुँहसे निकला हुआ यह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोकरूप ही होगा, उसके लिये चिन्ता न करो। मेरी ही प्रेरणासे तुम्हारे मुँहसे ऐसी वाणी निकली है। मुनिवर! तुम रामके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन करो। परम बुद्धिमान् भगवान् रामचन्द्रजी संसारमें सबसे बड़े धर्मात्मा और धीर पुरुष हैं। तुमने नारदजीके मुँहसे जैसा सुना है, उसीके अनुसार उनके चरित्रका चित्रण करो। राम, लक्ष्मण, सीता तथा राक्षस आदिके जो-जो चरित्र गुप्त या प्रकाशित होंगे, वे सब तुम्हें ज्ञात हो जायँगे। जिस बातको तुम नहीं जानते हो, वह भी तुमसे छिपी नहीं रहेगी। तुम्हारे लिखे हुए काव्यमें एक बात भी झूठी नहीं होगी, इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी परम पवित्र एवं मनोरम कथाको श्लोकबद्ध करके लिखो। इस पृथ्वीपर जबतक नदियों और पर्वतोंकी सत्ता रहेगी, तबतक संसारमें रामायण-कथाका प्रचार होता रहेगा।'

यह कहकर भगवान् ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। उनकी बात सुनकर शिष्योंसहित महर्षि वाल्मीकिको बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर उनके सभी शिष्य अत्यन्त प्रसन्न होकर बारंबार उस श्लोकका गान करने लगे और अत्यन्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्मित हो परस्पर कहने लगे—'हमारे गुरु महर्षिने क्रौञ्च पक्षीके दुःखसे अत्यन्त दुखी होकर जिस समान अक्षरोंवाले चार चरणोंसे युक्त वाक्यका उच्चारण किया था वह था तो उनके हृदयका शोक, परंतु श्लोक[1] रूप हो गया।' इधर, शुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षि वाल्मीकिके मनमें यह विचार हुआ कि मैं ऐसे ही श्लोकोंमें सम्पूर्ण रामायण-काव्यकी रचना करूँ। यह सोचकर उदार दृष्टिवाले उन यशस्वी महर्षिने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रको लेकर हजारों श्लोकोंसे युक्त महाकाव्यकी रचना की, जो उनके यशको बढ़ानेवाला है। इसमें श्रीरामके उदार चरित्रोंका प्रतिपादन करनेवाले मनोहर पदोंका प्रयोग किया गया है। महर्षि वाल्मीकिके बनाये हुए इस काव्यमें तत्पुरुष आदि समासों, दीर्घ-गुण आदि सन्धियों और प्रकृति-प्रत्ययके सम्बन्धका यथायोग्य निर्वाह हुआ है। इसकी रचनामें समता ( पतत्-प्रकर्ष आदि दोषोंका अभाव ) है, पदोंमें माधुर्य है और अर्थमें प्रसाद-गुणकी अधिकता है। इस प्रकार शास्त्रीय पद्धतिके अनुकूल बने हुए इस रघुवर-चरित्र और रावण-वधके प्रसङ्गको ध्यान देकर सुनना चाहिये।

## भगवान् रामके दरबारमें कुश और लवद्वारा रामायण-गानका आरम्भ

नारदजीके मुँहसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले सम्पूर्ण रामचरित्रको, जो रामायण-काव्यका प्रधान विषय था, भलीभाँति सुनकर महर्षि वाल्मीकिजी उसे पुनः विस्तारके साथ जाननेका उद्योग करने लगे। वे पूर्वकी ओर मुख करके रखे हुए कुशोंके आसनपर बैठ गये और विधिवत् आचमन करके हाथ जोड़े हुए योगधर्म ( समाधि ) के द्वारा श्रीराम आदिके चरित्रोंका ध्यान करने लगे। राम, लक्ष्मण, सीता, राज्यसहित राजा दशरथ तथा उनकी कौसल्या आदि रानियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी बातें थीं—हँसना, बोलना और चलना आदि जितनी चेष्टाएँ हुईं—उन सबका उन्होंने अपने धर्मके प्रभावसे भलीभाँति साक्षात्कार किया। सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीताके साथ वनमें विचरते समय जो-जो लीलाएँ की थीं, वे सब उनकी दृष्टिमें आ गयीं। योगका आश्रय लेनेवाले उन धर्मात्मा महर्षिने पूर्वकालकी सभी घटनाओंको हाथपर रक्खे हुए आँवलेकी तरह प्रत्यक्ष देखा। सबके मनको प्रिय लगनेवाले भगवान् रामके सम्पूर्ण चरित्रोंका यथार्थरूपसे निरीक्षण करके महाबुद्धिमान् महर्षि वाल्मीकिने उन सबको महाकाव्यका रूप देनेका निश्चय किया। महात्मा नारदजीने पहले जैसा वर्णन किया था, उसीके क्रमसे उन्होंने रघुकुलभूषण रामके चरित्रविषयक रामायण-काव्यकी रचना की। जैसे समुद्र सब रत्नोंकी निधि है उसी प्रकार यह काव्य गुण, अलंकार एवं ध्वनि आदि रत्नोंका भंडार है। इतना ही नहीं, यह सम्पूर्ण श्रुतियोंके सारभूत अर्थका प्रतिपादक होनेके कारण सबके कानोंको प्रिय लगनेवाला और सभीके चित्तको आकृष्ट करनेवाला है। इसमें राम-जन्मसे लेकर वैदेही-वनवासतकके सारे प्रसङ्गोंका वर्णन है। इसके सिवा रामचन्द्रजीके राज्यकालमें इस पृथ्वीपर भविष्यमें जो कुछ होनेवाला था, उसका उल्लेख भी महर्षिने उत्तरकाण्डमें कर दिया।

श्रीरामचन्द्रजीने जब वनसे लौटकर राज्यका शासन अपने हाथोंमें ले लिया, उसके बाद महर्षि वाल्मीकिने उनके सम्पूर्ण चरित्रके आधारपर विचित्र पद और अर्थसे युक्त रामायणकाव्यका निर्माण किया। इसमें चौबीस हजार श्लोक, पाँच सौ सर्ग और उत्तरसहित सात काण्ड हैं। भविष्य तथा उत्तरकाण्डसहित समस्त रामायण पूर्ण कर लेनेके पश्चात् महर्षिने सोचा—'कौन ऐसा शक्तिशाली पुरुष होगा, जो इस महाकाव्यको पढ़कर जनसमुदायमें सुना सके?' शुद्ध अन्तःकरणवाले उन महर्षिके इस प्रकार विचार करते ही मुनि-वेषमें रहनेवाले राजकुमार कुश और लवने आकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। वे दोनों भाई धर्मके ज्ञाता और यशस्वी थे। उनका स्वर बड़ा ही मधुर था और वे मुनिके आश्रमपर ही रहते थे। उनकी धारणा-शक्ति अद्भुत थी तथा वे दोनों ही वेदोंमें पारङ्गत हो चुके थे। उन बालकोंको सर्वथा योग्य समझकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षिने वेदार्थका विस्तारके साथ ज्ञान करानेके लिये उन्हें रामायणनामक सम्पूर्ण महाकाव्यका अध्ययन कराया। वह काव्य पढ़ने और गानेमें भी मधुर, द्रुत, मध्य और विलम्बित—इन तीनों गतियोंसे अन्वित, षड्ज आदि सातों स्वरोंसे युक्त, वीणा बजाकर स्वर और तालके साथ गानेयोग्य तथा शृङ्गार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक एवं वीर आदि सभी रसोंसे ओतप्रोत था।

१. काव्य या यशरूप।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## लव-कुशकी रामायण-शिक्षा

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ । भ्रातरौ स्वरसंपन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ ॥
स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ । वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥
(बाल० ४ । ५-६)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दोनों भाई कुश और लव उस महाकाव्यको पढ़कर उसका गान करने लगे। वे दोनों गान्धर्व-विद्या ( संगीतशास्त्र ) के तत्त्वज्ञ, स्थान[1] और मूर्छना[2]के जानकार, मधुर स्वरसे सम्पन्न तथा गन्धर्वोंके समान सुन्दर थे। मनोहर रूप और शुभ लक्षण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। उन दोनोंकी बोली बड़ी ही मीठी थी। वे दोनों राजकुमार सब लोगोंकी प्रशंसाके पात्र थे। उन्होंने उस समूचे धार्मिक उपाख्यानको कण्ठस्थ कर लिया और जब कभी ऋषियों, ब्राह्मणों तथा साधुओंका समागम होता, उस समय उनके बीचमें बैठकर वे दोनों एकाग्रचित्तसे रामायणका गान किया करते थे।

एक दिनकी बात है—बहुत-से शुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियोंकी मण्डली एकत्रित हुई। राजकुमार कुश और लव भी उस सभामें उपस्थित थे। उन्होंने उन महात्माओंके बीच इस रामायण-काव्यका गायन आरम्भ किया। उसे सुनकर सबके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली और सभी विस्मय-विमुग्ध होकर उन्हें साधुवाद देने लगे। मुनि धर्मवत्सल तो होते ही हैं, वह धार्मिक उपाख्यान सुनकर उनके मनको बड़ा आनन्द मिला और वे रामायण-कथाके गायक कुमार कुश और लवकी इस प्रकार प्रशंसा करने लगे—'अहो! इन बालकोंके गानेमें कितनी मिठास है, श्लोकोंका माधुर्य तो और भी अद्भुत है। यद्यपि इस काव्यमें वर्णित घटना बहुत दिनों पहले हो चुकी है, तथापि इसे सुनकर ऐसा जान पड़ता है मानो सब बातें अभी-अभी आँखोंके सामने हो रही हैं।' महर्षि वाल्मीकिद्वारा वर्णित यह आश्चर्यजनक उपाख्यान परवर्ती कवियोंके लिये श्रेष्ठ आधारशिला है। श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण चरित्रोंका क्रमशः वर्णन करते हुए इसकी समाप्ति की गयी है। यह आयु और पुष्टि प्रदान करनेवाला तथा सबके कान और मनको मोहनेवाला मधुर संगीत है। सब प्रकारके गीत गानेमें कुशल राजकुमार कुश और लव सर्वत्र घूम-घूमकर इस रामायण-काव्यका गान करते थे और सभी जगह उन दोनोंकी प्रशंसा होती थी।

एक दिन वे दोनों भाई अयोध्याकी गलियों और सड़कोंपर विचरते हुए रामायण-गान कर रहे थे, इतनेमें उनके ऊपर भरतके बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजीकी दृष्टि पड़ी। वे उन्हें आदरके योग्य समझकर अपने महलमें लिवा ले गये और उनका यथायोग्य सम्मान किया। फिर श्रीरामचन्द्रजीने भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नसे कहा—'ये देवताके समान तेजस्वी दोनों कुमार विचित्र अर्थ और पदोंसे युक्त मधुर उपाख्यान गाकर सुनाया करते हैं, तुम सब लोग इसे सुनो।' यह कहकर उन्होंने उन दोनों भाइयोंको गानेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाकर वे दोनों भाई वीणाके लयके साथ अपने मनोऽनुकूल उच्च एवं मधुर स्वरमें राग अलापते हुए रामायण-काव्यका गान करने

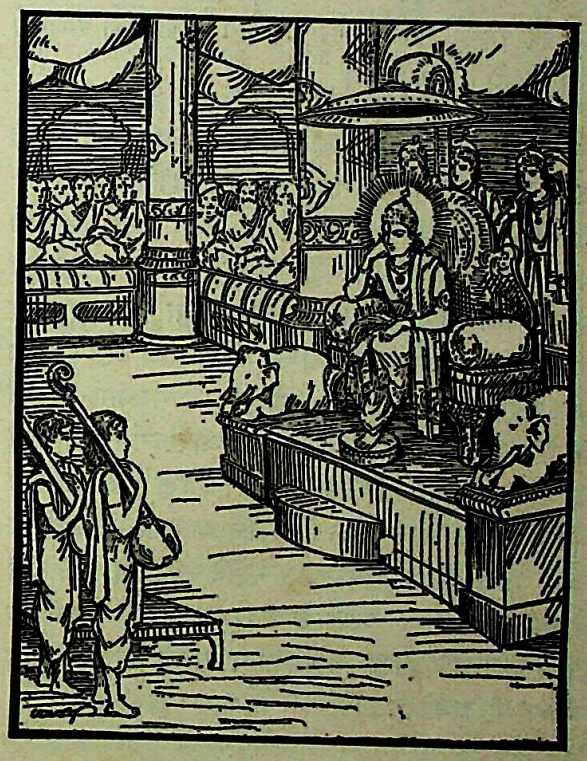

लगे। उनका उच्चारण इतना स्पष्ट था कि सुनते ही अर्थका बोध हो जाता था। उनका गान सुनकर श्रोताओंके समस्त शरीरमें रोमाञ्च हो आया तथा सबके मन और हृदयमें आनन्दकी तरङ्गें उठने लगीं। वे दोनों मार्ग-विधान[3]की रीतिसे गान कर रहे थे। सभामें बैठे हुए भगवान् राम भी धीरे-धीरे उनका गान सुननेमें तन्मय हो गये।

---

१. मन्द्र, मध्यम और तार—इन तीनों स्वरोंकी उत्पत्तिका स्थान। २. जहाँ स्वरोंकी पूर्णता होती है, उसे मूर्छना कहते हैं। ३. गान दो प्रकारके होते हैं—मार्ग और देशी। भिन्न-भिन्न देशोंकी प्राकृत भाषामें गाये जानेवाले गानको देशी कहते हैं और समूचे राष्ट्रमें प्रसिद्ध संस्कृत आदि भाषाका आश्रय लेकर गाया हुआ गान मार्गके नामसे प्रसिद्ध है। कुमार कुश और लव संस्कृत-भाषाका आश्रय लेकर उसीकी रीतिसे गा रहे थे।



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## अयोध्याके राजा दशरथ और सुयोग्य मन्त्रियोंका वर्णन

यह सारी पृथ्वी पूर्वकालमें प्रजापति मनुसे लेकर अब-तक जिस वंशके विजयशाली राजाओंके अधिकारमें रही है; जिन्होंने समुद्रको खुदवाया था और जिन्हें यात्राकालमें साठ हजार पुत्र घेरकर चलते थे, वे महाप्रतापी राजा सगर जिनके कुलमें उत्पन्न हुए, उन्हीं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा राजाओंकी कुल-परम्परामें रामायण नामसे प्रसिद्ध इस महान् ऐतिहासिक काव्यकी अवतारणा हुई है। हम दोनों आदिसे अन्ततक इसका गान करेंगे; आपलोग दोषदृष्टिका परित्याग करके इसका श्रवण करें।

कोसल नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा देश है, जो सरयू नदीके किनारे बसा हुआ है। वहाँके लोग धन-धान्यसे सम्पन्न और सुखी हैं। उसी देशमें अयोध्या नामकी एक नगरी है, जो समस्त संसारमें विख्यात है। उस पुरीको स्वयं महाराज मनुने बसाया था। वह बारह योजन लंबी और तीन योजन चौड़ी थी। अलग-अलग बनी हुई बड़ी-बड़ी सड़कें और महान् राजमार्ग उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके चारों ओर दुर्गम एवं गहरी खाइयाँ बनी थीं, जिनके कारण किसी दूसरेके लिये उस नगरीमें प्रवेश पाना बहुत ही कठिन था। वह सब प्रकारके रत्नोंसे भरी-पूरी और विमानाकार गृहोंसे सुशोभित थी। वहाँ अस्त्र-विद्यामें प्रवीण और शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले हजारों महारथी योद्धा बसाये गये थे, जो शब्दवेधी बाण चलाना भी जानते थे।

एक समयकी बात है, उस अयोध्यापुरीमें महाराज दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा हुए, जो वेदोंके विद्वान् तथा सभी उपयोगी वस्तुओंका संग्रह करनेवाले थे। वे दीर्घदर्शी, महातेजस्वी, नगर और प्रान्तकी प्रजाके प्रिय, अतिरथी, यज्ञ करनेवाले, धर्मपरायण, जितेन्द्रिय, महर्षियोंके समान गुणोंवाले तथा कुबेरके समान धनी थे। महातेजस्वी महाराज मनु जिस प्रकार जगत्‌की रक्षा करते थे, वैसे ही राजा दशरथ भी प्रजाजनोंकी रक्षामें दत्तचित्त रहते थे। अयोध्यापुरीमें निवास करनेवाले सभी मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा बहुश्रुत, निर्लोभ, सत्यवादी और अपने-अपने धनसे ही सन्तुष्ट रहनेवाले थे। वहाँ कोई कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख अथवा नास्तिक पुरुष देखनेको भी नहीं मिलता था। वहाँके स्त्री और पुरुष सभी धर्मात्मा, संयमी, सदा प्रसन्न रहनेवाले तथा शील और सदाचारकी दृष्टिसे महर्षियोंकी भाँति विशुद्ध थे। अपवित्र अन्न भोजन करनेवाला, दान न देनेवाला तथा मनको काबूमें न रखनेवाला मनुष्य तो वहाँ कोई दिखायी ही नहीं देता था। अयोध्यापुरीमें एक भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो अग्निहोत्र और यज्ञ न करता हो। क्षुद्र, चोर, दुराचारी अथवा वर्णसंकरका तो वहाँ नाम भी नहीं था। वहाँ निवास करनेवाले ब्राह्मण सदा अपने कर्मोंमें लगे रहते, इन्द्रियोंपर काबू रखते, दान और स्वाध्याय करते तथा प्रतिग्रहसे बचे रहते थे। उस नगरीमें कहीं एक भी ब्राह्मण ऐसा नहीं था, जो नास्तिक, असत्यवादी, अनेक शास्त्रोंका ज्ञान न रखनेवाला, दूसरोंके दोष ढूँढ़नेवाला, साधनमें असमर्थ, गँवार, वेदके छहों अङ्गोंको न जाननेवाला, व्रतका पालन न करनेवाला, दीन, विक्षिप्तचित्त अथवा दुखी हो। सभी वर्णोंके लोग देवता और अतिथियोंके पूजक, कृतज्ञ, उदार, शूर, पराक्रमी, दीर्घजीवी तथा धर्म और सत्यका आश्रय रखनेवाले थे। उस नगरके सभी मनुष्य सदा स्त्री-पुत्र और पौत्र आदि परिवारके साथ सुखसे रहते थे। क्षत्रिय ब्राह्मणोंका मुँह जोहते थे, वैश्य क्षत्रियोंकी आज्ञाका पालन करते थे और शूद्र अपने कर्तव्यका पालन करते हुए उपर्युक्त तीनों वर्णोंकी सेवामें संलग्न रहते थे। इक्ष्वाकुकुलके स्वामी राजा दशरथ अयोध्यापुरीकी रक्षा उसी प्रकार करते थे, जैसे महाराज मनुने पूर्वकालमें उसकी रक्षा की थी। उस पुरीके चारों ओर आठ-आठ कोसतक अग्निके समान तेजस्वी सैनिक, भिन्न-भिन्न देशोंमें उत्पन्न हुए घोड़े और पर्वताकार मतवाले गजराज भरे रहते थे; अतः कोई भी शत्रु उसपर चढ़ाई करके युद्ध करनेका साहस नहीं करता था। इसलिये उसका अयोध्या नाम सार्थक हो गया था।

इक्ष्वाकुवंशीय महाराज दशरथके धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त—ये आठ मन्त्री थे, जो मन्त्रके तत्त्वको जाननेवाले और बाहरी चेष्टा देखकर ही मनके भाव समझ लेनेवाले थे। वे बड़े यशस्वी और गुणवान् थे। सदा ही राजाके प्रिय और हितमें लगे रहते थे, उनके स्वभाव और विचार बहुत ही शुद्ध थे तथा राजकीय कार्योंमें वे निरन्तर संलग्न रहा करते थे। मुनियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठ और वामदेव—ये दो उनके माननीय पुरोहित थे। इनके सिवा सुयज्ञ, जाबालि, कश्यप, गौतम, दीर्घायु, मार्कण्डेय और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


द्विजवर कात्यायन भी महाराजके मन्त्री थे। इन ब्रह्मर्षियोंके साथ राजाके परम्परागत ऋत्विज भी मन्त्रीका कार्य करते थे। वे सब-के-सब विद्वान्, विनयशील, संकोची, चतुर, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, महात्मा, शस्त्रविद्याके ज्ञाता, पराक्रमी, यशस्वी, राजकार्यमें सावधान, राजाकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेवाले, तेजस्वी, क्षमावान् और हँसकर बात करनेवाले थे। उनमें कोई ऐसा नहीं था, जो काम, क्रोध या स्वार्थके वशीभूत होकर कभी झूठ बोलता हो। अपने या शत्रु-पक्षके राजाओंकी कोई भी बात उनसे छिपी नहीं रहती थी। दूसरे राजा क्या करते हैं, क्या कर चुके हैं और क्या करना चाहते हैं—ये सभी बातें उन्हें गुप्तचरोंके द्वारा मालूम रहती थीं। वे सभी व्यवहारमें कुशल थे, उनके सौहार्दकी अनेकों अवसरोंपर परीक्षा हो चुकी थी। वे मौका पड़नेपर अपने पुत्रको भी उचित दण्ड देनेमें नहीं हिचकते थे और अपराध न होनेपर शत्रुकी भी हिंसा नहीं करते थे। सबमें शौर्य और उत्साह था, सभी राजनीतिके अनुसार काम करते और अपने राज्यके भीतर रहनेवाले सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिये सदा उद्यत रहते थे। वे ब्राह्मणों और क्षत्रियोंको कष्ट न पहुँचाकर न्यायोचित धनसे राजाका खजाना भरते थे। उन सबके भाव शुद्ध और विचार एक थे। उनकी जानकारीमें अयोध्यापुरी अथवा कोसलराज्यके भीतर कहीं एक भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो मिथ्यावादी, दुष्ट और परस्त्रीलम्पट हो। समूचे राष्ट्र और नगरमें पूर्ण शान्ति छायी रहती थी। सभी मन्त्री उत्तम व्रतका पालन करनेवाले और राजाके हितैषी थे। वे नीतिरूपी नेत्रोंसे देखते हुए सदा सजग रहते थे और अपने गुणोंके कारण महाराजके विशेष कृपापात्र थे। उन्हें सन्धि और विग्रहके उपयोग और अवसरका अच्छी तरह ज्ञान था। वे राजकीय मन्त्रणाको गुप्त रखनेमें समर्थ और सूक्ष्म विषयका विचार करनेमें कुशल थे। नीतिशास्त्रमें उनकी विशेष जानकारी थी तथा वे सदा ही प्रिय लगनेवाली बात बोलते थे। ऐसे गुणवान् मन्त्रियोंके साथ रहकर पापसे दूर रहनेवाले महाराज दशरथ इस भूमण्डलका शासन करते थे।

## राजा दशरथका पुत्रके लिये यज्ञ करनेका निश्चय और ऋष्यशृङ्ग मुनिकी कथा

सम्पूर्ण धर्मोंको जाननेवाले महात्मा राजा दशरथ ऐसे प्रभावशाली होते हुए भी पुत्रके लिये सदा चिन्तित रहते थे। उनके वंशको चालू रखनेवाला कोई पुत्र नहीं था। उसके लिये चिन्ता करते-करते एक दिन उनके मनमें यह विचार हुआ कि 'मैं पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे यज्ञका अनुष्ठान क्यों न करूँ?' यह सोचकर उन परम बुद्धिमान् धर्मात्मा राजाने अपने सम्पूर्ण मन्त्रियोंके साथ इस विषयमें विचार किया और अन्तमें इस निश्चयपर पहुँचे कि 'यज्ञ अवश्य करना चाहिये।' इसके बाद जब राजाने मन्त्रियोंको विदा कर दिया तो सुमन्त्रने उन्हें एकान्तमें पाकर कहा—"महाराज! मैं ऋत्विजोंके मुँहसे सुनी हुई एक पौराणिक वार्ता बता रहा हूँ, इसे ध्यान देकर सुनिये। पूर्वकालमें भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोंके निकट एक कथा सुनायी थी, वह आपकी पुत्र-प्राप्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली है। उन्होंने कहा था—'मुनिवरो! महर्षि काश्यपके विभाण्डक नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र हैं। उनके भी एक पुत्र होगा, जिसकी लोगोंमें ऋष्यशृङ्गके नामसे प्रसिद्धि होगी। वे ऋष्यशृङ्ग मुनि सदा वनमें ही रहेंगे और वनमें ही उनका लालन-पालन होगा। हमेशा अपने पिताके साथ रहनेके कारण उनका और किसीसे परिचय नहीं होगा। ब्राह्मणलोग ब्रह्मचर्यका जैसा स्वरूप बतलाते हैं तथा उसका जैसा स्वरूप लोकमें प्रसिद्ध है, उन दोनोंहीका ऋष्यशृङ्ग मुनि पालन करेंगे। उसी समय अङ्गदेशमें रोमपाद नामके एक बड़े प्रतापी और बलवान् राजा होंगे। उनके द्वारा धर्मका उल्लङ्घन हो जानेसे देशमें भयंकर अनावृष्टि हो जायगी। उस अवर्षणसे सम्पूर्ण जगत्के लोग भयभीत हो उठेंगे। वर्षा न होनेके कारण राजाको भी बहुत दुःख होगा और वे शास्त्र-ज्ञानमें बढ़े-चढ़े हुए ब्राह्मणोंको बुलाकर कहेंगे—'विप्रवरो! आपलोग शास्त्रके अनुसार कर्म करनेवाले और लोगोंके आचार-विचारको जाननेवाले हैं, अतः कृपा करके मुझे ऐसा कोई नियम बताइये, जिससे मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जाय।' राजाके इस प्रकार कहनेपर वेदके पारगामी ब्राह्मण उन्हें यह सलाह देंगे—'राजन्! महर्षि विभाण्डकके पुत्र ऋष्यशृङ्ग मुनि वेदोंके पारङ्गत विद्वान् हैं। आप हर एक उपायसे उन्हें यहाँ बुलानेकी चेष्टा कीजिये और जब वे आ जायँ तो उनका अच्छी तरह सत्कार कीजिये। फिर एकाग्रचित्त होकर वैदिक विधिके अनुसार उनके साथ अपनी कन्या शान्ताका विवाह कर दीजिये।' उनकी बात सुनकर राजा इस चिन्तामें पड़ जायँगे कि उन शक्तिशाली महर्षिको किस उपायसे यहाँ लाया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकता है। फिर वे मन्त्रियोंके साथ निश्चय करके वेश्याओंके द्वारा ऋषिकुमारको अङ्गदेशमें बुलायेंगे। इस प्रकार अङ्गराजके बुलानेपर ऋष्यशृङ्गके आते ही उस देशमें वृष्टि होने लगेगी। तत्पश्चात् राजा रोमपाद उन्हें अपनी शान्ता नामवाली कन्या अर्पण कर देंगे।' महाराज! वे ही शृङ्गी ऋषि आपको कई पुत्र देंगे। यह सनत्कुमारजीकी कही हुई वार्ता मैंने आपसे निवेदन की है।"

यह सुनकर राजा दशरथको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे सुमन्त्रसे बोले—'मुनिकुमार ऋष्यशृङ्गको वहाँ जिस प्रकार और जिस उपायसे बुलाया गया, उसका विस्तारके साथ वर्णन करो।' राजाकी आज्ञा पाकर सुमन्त्रने कहा—"महाराज! राजा रोमपादके मन्त्रियोंने ऋष्यशृङ्गको जिस प्रकार और जिस उपायसे अङ्गदेशमें बुलाया था, वह सब मैं बताता हूँ; आप ध्यान देकर सुनें। अमात्योंसहित पुरोहितने राजा रोमपादसे कहा—'महाराज! हमलोगोंने एक उपाय सोचा है, जिसे काममें लानेसे किसी भी विघ्न-बाधाके आनेकी सम्भावना नहीं है। ऋष्यशृङ्ग मुनि सदा वनमें ही रहकर तपस्या और स्वाध्यायमें लगे रहते हैं। वे स्त्रियोंको पहचानतेतक नहीं हैं और विषय-सुखोंसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। अतः यदि सुन्दरी वेश्याएँ भलीभाँति शृङ्गार करके वहाँ जायँ तो वे उन्हें तरह-तरहके उपायोंसे लुभाकर सत्कारपूर्वक यहाँ लानेमें सफल हो सकती हैं।' यह सुनकर राजाने कहा—'बहुत अच्छा, आपलोग ऐसा ही करें।' आज्ञा पाकर पुरोहित और मन्त्रियोंने वैसी ही व्यवस्था की। नगरकी मुख्य-मुख्य वेश्याएँ राजाका आदेश सुनकर उस महान् वनमें गयीं और मुनिके आश्रमसे थोड़ी ही दूरपर ठहरकर उनके दर्शनका उद्योग करने लगीं। मुनिकुमार ऋष्यशृङ्ग बड़े ही धीर स्वभावके थे, सदा आश्रममें ही रहा करते थे। उन्हें पिताके पास रहनेमें ही सुख मिलता था, इसलिये वे कभी आश्रमके बाहर नहीं निकलते थे। उन्होंने जन्मसे लेकर उस समयतक नगर या राष्ट्रके गाँवमें उत्पन्न हुए पुरुष, स्त्री या और किसी प्राणीको नहीं देखा था।

"एक दिन विभाण्डककुमार ऋष्यशृङ्ग अकस्मात् घूमते-फिरते उस स्थानपर चले आये, जहाँ वे वेश्याएँ ठहरी हुई थीं। वहाँ उन्होंने उन सुन्दरी वनिताओंको देखा। उनका वेष बड़ा ही सुन्दर और अद्भुत था। वे मीठे स्वरोंमें गा रही थीं। ऋषिकुमारको देखकर सभी उनके पास चली आयीं और बोलीं—'ब्रह्मन्! आप कौन हैं? क्या करते हैं? तथा इस निर्जन वनमें आश्रमसे इतनी दूर आकर अकेले क्यों विचर रहे हैं? ये सब बातें बताइये, हमलोग जानना चाहते हैं।' ऋष्यशृङ्गने वनमें कभी ऐसी मनोहर रूपवाली स्त्रियाँ नहीं देखी थीं। उस दिन उन्हें देखकर उनके मनमें उन स्त्रियोंके प्रति स्नेह उत्पन्न हो गया। इसलिये उन्होंने उनसे अपने पिताका परिचय देनेका विचार किया। वे कहने लगे—'मेरे पिताका नाम विभाण्डक मुनि है, मैं उन्हींका औरस पुत्र हूँ तथा ऋष्यशृङ्गके नामसे प्रसिद्ध हूँ। मेरे तपस्या आदि कर्म भी इस पृथ्वीपर सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। मेरा आश्रम यहाँसे समीप ही है। आप सब लोग वहाँ चलें, मैं सबका विधिवत् स्वागत-सत्कार करूँगा।' ऋषिकुमारकी बात सुनकर सबने उनका आश्रम देखनेका निश्चय किया और सभी उनके साथ वहाँतक गयीं। वहाँ जानेपर ऋष्यशृङ्गने 'यह अर्घ्य है, यह पाद्य है तथा यह भोजनके लिये मूल और फल प्रस्तुत है!'—ऐसा कहते हुए उन सबका विधिवत् पूजन किया। ऋषिकी पूजा स्वीकार करके वे सभी वहाँसे चले जानेको उत्सुक हुईं। उन्हें विभाण्डक मुनिका डर लग रहा था, इसलिये शीघ्र ही जानेका विचार करके बोलीं—'विप्रवर! हमारे पास भी ये उत्तम-उत्तम फल हैं; इन्हें लीजिये और शीघ्र ही खा जाइये, विलम्ब न कीजिये।' यह कहकर उन सबने हर्षमें भरकर ऋषिका आलिङ्गन किया और उन्हें खाने योग्य उत्तम-उत्तम पदार्थ तथा तरह-तरहकी मिठाइयाँ दीं। उनका रसास्वादन करके उन तेजस्वी ऋषिने समझा कि ये भी फल ही हैं; क्योंकि उस दिनके पहले उन्होंने कभी वैसे पदार्थ नहीं खाये थे। भला सदा वनमें रहनेवालोंके लिये वैसी वस्तुओंके स्वाद लेनेका अवसर कहाँ मिलता है। तत्पश्चात् उनके पिता विभाण्डक मुनिके डरसे वे स्त्रियाँ व्रत और अनुष्ठानका बहाना बनाकर ऋष्यशृङ्गकी आज्ञा ले वहाँसे चली गयीं। उन सबोंके चले जानेपर ऋष्यशृङ्ग मन-ही-मन व्याकुल हो उठे और अत्यन्त दुखी होकर इधर-उधर घूमने लगे। फिर दूसरे दिन भी मनमें उन्हींका चिन्तन करते हुए वे उसी स्थानपर गये, जहाँ पहले दिन उन्होंने वस्त्र और आभूषणोंसे सजी हुई उन सुन्दरी वेश्याओंको देखा था।

मुनिकुमारको देखते ही वेश्याओंका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। वे सब-की-सब उनके पास जाकर बोलीं—'सौम्य! आज हमारे आश्रमपर चलिये। यद्यपि यहाँ नाना प्रकारके फल-मूल बहुत मिलते हैं, तथापि वहाँ भी इन सबका विशेषरूपसे प्रबन्ध हो सकता है।' वेश्याओंकी मनोहर बातें सुनकर ऋष्यशृङ्ग उनके साथ जानेको तैयार हो गये और वे स्त्रियाँ उन्हें अङ्गदेशमें ले गयीं। उन महात्मा ब्राह्मणके अङ्गदेशमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पहुँचनेपर इन्द्रने सम्पूर्ण जगत्‌को प्रसन्न करते हुए सहसा पानी बरसाना आरम्भ कर दिया। वर्षासे ही राजाको अनुमान

हो गया कि तपस्वी मुनिकुमार आ गये। फिर बड़ी विनयके साथ राजाने मुनिकी अगवानी की और पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर एकाग्रचित्त होकर उन्होंने ऋषिको विधिपूर्वक अर्घ्य निवेदन किया और उनसे वरदान माँगा—'भगवन्! आप और आपके पिताजी मुझपर प्रसन्न हों।' ऐसा उन्होंने इसलिये किया कि कहीं कपटपूर्वक यहाँतक लाये जानेका रहस्य जान लेनेपर विप्रवर ऋष्यशृङ्ग अथवा विभाण्डक मुनिके मनमें मेरे प्रति क्रोध न हो। तत्पश्चात् ऋष्यशृङ्गको अन्तःपुर में ले जाकर उन्होंने शान्तचित्त-से अपनी कन्या शान्ताका उनके साथ विधिपूर्वक ब्याह कर दिया। ऐसा करके राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रकार महातेजस्वी ऋष्यशृङ्ग राजासे भलीभाँति पूजित हो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोग प्राप्त कर अपनी धर्मपत्नी शान्ताके साथ वहाँ रहने लगे।

फिर सुमन्त्रने कहा—"महाराज! आप पुनः अपने हितकी वह बात सुनिये, जिसे देवताओंमें श्रेष्ठ परम बुद्धिमान् सनत्कुमार-जीने ऋषियोंको सुनाया था। उन्होंने कहा था—'इक्ष्वाकु-वंशमें दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक परम धार्मिक सत्यप्रतिज्ञ राजा होंगे। उनकी अङ्गराजके साथ मित्रता होगी। अङ्गदेशके राजकुमार-का नाम होगा रोमपाद। राजा दशरथ रोमपादके पास जाकर कहेंगे—'धर्मात्मन्! मैं सन्तानहीन हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो शान्ताके पति ऋष्यशृङ्ग मुनि चलकर मेरा यज्ञ करा दें; इससे मुझे पुत्रकी प्राप्ति होगी और मेरे वंशकी रक्षा हो जायगी।' राजाकी बात सुनकर रोमपाद मन-ही-मन उसपर विचार करेंगे और शान्ताके पतिको उनके साथ भेज देंगे। उन्हें पाकर राजा दशरथकी चिन्ता दूर हो जायगी और वे प्रसन्न-चित्त होकर यज्ञका अनुष्ठान करेंगे। तदनन्तर राजा हाथ जोड़कर द्विजवर ऋष्यशृङ्गका पुत्रकी इच्छासे यज्ञ करानेके लिये वरण करेंगे और उन महर्षिकी कृपासे उनका मनोरथ पूर्ण होगा। राजाके चार पुत्र होंगे, जो बड़े ही पराक्रमी, वंशकी मर्यादा बढ़ानेवाले और सर्वत्र विख्यात होंगे। महा-राज! पहले सत्ययुगमें भगवान् सनत्कुमारजीने ऋषियोंके समक्ष यही कथा कही थी। इसलिये आप स्वयं ही सेना और सवारियोंके साथ अङ्गदेशमें जाइये और मुनिकुमार ऋष्यशृङ्ग-को सत्कारपूर्वक यहाँ ले आइये।"

सुमन्त्रके वचन सुनकर राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मुनिवर वसिष्ठजीको भी सुमन्त्रकी बातें सुनायीं और उनकी आज्ञा लेकर रनिवासकी रानियों तथा मन्त्रियोंके साथ अङ्गदेशके लिये प्रस्थान किया, जहाँ विप्रवर ऋष्यशृङ्ग निवास करते थे। रास्तेमें अनेकों वनों और नदियोंको पार करके वे धीरे-धीरे मुनिवर ऋष्यशृङ्गके निवास-स्थानपर जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने राजा रोमपादके पास बैठे हुए ऋषिकुमार-का दर्शन किया, जो अग्निके समान तेजस्वी दिखायी दे रहे थे। तदनन्तर राजा रोमपादने मित्रताके कारण अत्यन्त प्रसन्न हो-कर दशरथका शास्त्रोक्त विधिके अनुसार विशेषरूपसे पूजन किया और ऋषिकुमार ऋष्यशृङ्गको राजा दशरथके साथ अपनी मित्रताकी बात बतायी। इसपर उन्होंने भी राजाका सम्मान किया। इस प्रकार भलीभाँति आदर-सत्कार पा-कर राजा दशरथ रोमपादके साथ वहाँ सात-आठ दिनोंतक रहे। इसके बाद उन्होंने अङ्गराजसे कहा—'राजन्! आपकी पुत्री शान्ता अपने पतिके साथ मेरे नगरमें चले। वहाँ बहुत बड़ा आवश्यक कार्य उपस्थित हुआ है।' राजा रोमपादने 'बहुत अच्छा' कहकर उनका जाना स्वीकार कर लिया और ऋष्यशृङ्गसे कहा—'विप्रवर! आप शान्ताके साथ महाराज दशरथके यहाँ जाइये।' उनकी आज्ञा पाकर ऋषि अपनी पत्नीसहित जानेको तैयार हो गये। यात्राके समय राजा दशरथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


और रोमपादने स्नेहवश एक दूसरेको छातीसे लगाया और परस्पर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए बड़ी प्रसन्नताका अनुभव किया। तत्पश्चात् राजा दशरथ अपने मित्र रोमपादकी आज्ञा लेकर वहाँसे प्रस्थित हुए और यथासमय अयोध्या पहुँचकर उन्होंने शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजोंके साथ ऋष्यशृङ्गको आगे करके अपने सजे-सजाये नगरमें प्रवेश किया। उन ऋषिकुमारका दर्शन करके सभी नगरनिवासी बहुत प्रसन्न हुए। राजा दशरथने ऋषिको अन्तःपुरमें ले जाकर शास्त्रविधिके अनुसार उनका पूजन किया और उनके आ जानेसे अपनेको कृतार्थ माना। शान्ताको अपने पतिके साथ उपस्थित देख अन्तःपुरकी सभी रानियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्हें विशेष आनन्द मिला। शान्ता भी उन रानियोंसे तथा विशेषतः महाराज दशरथके द्वारा आदर-सत्कार पाकर वहाँ कुछ कालतक अपने पति ऋष्यशृङ्गके साथ बड़े सुखसे रही।

## दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञका आरम्भ और भगवान् विष्णुका रावण-वधके लिये अवतार लेनेका निश्चय

तदनन्तर, बहुत समय बीत जानेके बाद एक दिन राजा दशरथने ऋष्यशृङ्गसे कहा—'मुने! अब आप मेरे कुलको बढ़ानेवाले कर्मका अनुष्ठान आरम्भ करें।' ऋष्यशृङ्गने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की और कहा—'राजन्! आपके वंशको चलानेवाले चार पुत्र होंगे।' महर्षिके मीठे वचन सुनकर महाराज दशरथने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त हर्षसे भरकर उस कर्मको आरम्भ करनेकी पुनः प्रार्थना की। महात्मा ऋष्यशृङ्ग बड़े मेधावी और वेदोंके ज्ञाता थे। उन्होंने थोड़ी देरतक ध्यान लगाकर अपने कर्तव्यका निश्चय किया। उसके बाद राजाको इस प्रकार उत्तर दिया—'महाराज! मैं आपको पुत्रकी प्राप्ति करानेके लिये अथर्ववेदके मन्त्रोंसे पुत्रेष्टिनामक यज्ञ करूँगा। वेदोक्त विधिके अनुसार अनुष्ठान करनेपर वह यज्ञ अवश्य सफल होगा।'

यह कहकर उन तेजस्वी ऋषिने पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे पुत्रेष्टियज्ञ प्रारम्भ किया और श्रौत-विधिके अनुसार अग्निमें आहुति डाली। तब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण विधिके अनुसार अपना-अपना भाग ग्रहण करनेके लिये उस यज्ञमें एकत्रित हुए।

उसी समय ब्रह्माजीकी सभामें भी देवतालोग एकत्रित होकर उनसे बोले—भगवन्! रावण नामका राक्षस आपका कृपा-प्रसाद पाकर हम सब लोगोंको बड़ा कष्ट दे रहा है। हममें इतनी शक्ति नहीं है कि अपने पराक्रमसे उसको दबा सकें। आपने प्रसन्न होकर उसे वर दे दिया है और उसके मारे तीनों लोकोंके प्राणियोंका नाकोंदम हो रहा है। वह दुष्टात्मा जिनको कुछ ऊँची स्थितिमें देखता है, उन्हींके साथ द्वेष करने लगता है। आपके वरदानसे मोहित होकर वह इतना उद्दण्ड हो गया है कि ऋषियों, यक्षों, गन्धर्वों, असुरों तथा ब्राह्मणोंका अपमान करता फिरता है। सूर्य उसको ताप नहीं पहुँचा सकते, हवा उसके पास ज़ोरसे नहीं चलती; तथा जिसकी उत्ताल तरङ्गें सदा ऊपर-नीचे होती रहती हैं, वह समुद्र भी रावणको देखकर भयके मारे स्थिर-सा हो जाता है—उसमें कम्पन नहीं होता। वह राक्षस देखनेमें भी बड़ा भयंकर है। उससे हमलोगोंको बहुत बड़ा भय उपस्थित हुआ है। इसलिये भगवन्! उसके वधका कोई-न-कोई उपाय अवश्य कीजिये।'

देवताओंके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजी कुछ सोचकर बोले—"देवताओ! चिन्ता न करो, उस दुरात्माके वधका उपाय मेरी समझमें आ गया। उसने वर माँगते समय कहा था कि 'मैं गन्धर्व, यक्ष, देवता तथा राक्षसोंके हाथसे न मारा जाऊँ।' मैंने भी 'तथास्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मनुष्योंको तो वह तुच्छ समझता था, इसलिये उनसे अवध्य होनेका वरदान नहीं माँगा। अतः अब मनुष्यके हाथसे ही उसका वध होगा।" ब्रह्माजीकी कही हुई यह प्रिय बात सुनकर सम्पूर्ण देवता और महर्षियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी समय महान् तेजस्वी जगत्पति भगवान् विष्णु भी गरुड़पर सवार हो वहाँ आ पहुँचे। उनके शरीरपर पीताम्बर और हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुध शोभा पा रहे थे। सम्पूर्ण देवताओंने उन्हें प्रणाम किया और वे ब्रह्माजीसे मिलकर सावधानीके साथ सभामें विराजमान हो गये। तब देवताओंने विनीतभावसे उनकी स्तुति करके कहा—प्रभो! अयोध्याके राजा दशरथ महर्षियोंके समान तेजस्वी हैं। उनकी तीन रानियाँ हैं, जो ह्री, श्री और कीर्ति—इन तीन देवियोंके समान हैं। आप अपने चार स्वरूप बनाकर उन तीनों रानियोंके गर्भसे पुत्ररूपमें अवतार धारण कीजिये। इस प्रकार मनुष्यरूपमें प्रकट होकर आप संसारके लिये प्रबल कण्टकरूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रावणका, जो देवताओंके लिये अवध्य हो रहा है, वध कीजिये। वह मूर्ख राक्षस अपने बढ़े हुए पराक्रमसे देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंको बहुत कष्ट दे रहा है; अतः हम सभी देवता, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष तथा महर्षिगण उसके वधके लिये आपकी शरणमें आये हैं। भगवन्! आप ही हम सब लोगोंकी परमगति हैं। अतः इन देव-शत्रुओंका वध करनेके लिये आप मनुष्यलोकमें अवतार लेनेका निश्चय कीजिये।'

उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर देवाधिदेव भगवान् विष्णुने ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'देवगण! आपका कल्याण हो, आपलोग भयका त्याग करें। मैं आपका हित करनेके लिये रावणको उसके पुत्र, पौत्र, मन्त्री तथा भाई-बन्धुओंसहित युद्धमें मार डालूँगा। देवता और ऋषियोंको भय देनेवाले उस क्रूर एवं दुर्धर्ष राक्षसका नाश करके मैं ग्यारह हजार वर्षोंतक पृथ्वीका पालन करता हुआ मनुष्य-लोकमें निवास करूँगा।' देवताओंको ऐसा वरदान देकर भगवान् विष्णुने मनुष्य-लोकमें पहले अपनी जन्मभूमिके सम्बन्धमें विचार किया। इसके बाद अपनेको चार स्वरूपोंमें प्रकट करने और राजा दशरथको पिता बनानेका निश्चय किया। तब देवता, ऋषि, गन्धर्व तथा रुद्र आदिने दिव्य स्तुतियोंके द्वारा भगवान् मधुसूदनका स्तवन किया। वे कहने लगे—'भगवन्! रावण बड़ा उद्दण्ड है, उसका तेज अत्यन्त उग्र और घमंड बहुत बढ़ा-चढ़ा है। वह देवराज इन्द्रसे सदा द्वेष रखता है। साधुओं और तपस्वियोंके लिये तो वह बहुत बड़ा कण्टक है, अतः आप उस भयंकर राक्षसकी जड़ उखाड़ डालिये। प्रभो! सारे जगत्‌को सतानेवाले उस दारुण पराक्रमी रावणको सेना और बन्धु-बान्धवोंसहित नष्ट करके फिर आप अपने वैकुण्ठ-धाममें पधारियेगा।'

## दिव्य खीरके भक्षणसे कौसल्या आदि रानियोंका गर्भधारण तथा देवता आदिके द्वारा वानर और भालुओंकी उत्पत्ति

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णुने राजा दशरथको ही अपना पिता बनानेका निश्चय किया। इस प्रकार निश्चय करके वे पितामहकी अनुमति लेकर देवताओं और महर्षियोंसे पूजित हो वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

उसी समय पुत्रहीन राजा दशरथ पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे अयोध्यामें पुत्रेष्टि-यज्ञ कर रहे थे। वहाँ ब्रह्माजीसे प्रेरित होकर अग्निकुण्डसे एक विशालकाय पुरुष प्रकट हुआ। उसके शरीरमें इतना प्रकाश था, जिसकी कहीं तुलना नहीं की जा सकती। उसका पराक्रम महान् और बल अनन्त था। उसके शरीरपर लाल वस्त्र शोभा पा रहा था। उसके मुखका रंग भी लाल ही था। उसकी देदीप्यमान कान्ति धधकती हुई आगकी ज्वालाको मात कर रही थी। वह पुरुष अपने दोनों हाथोंमें दिव्य खीरसे भरा हुआ एक सुवर्णमय पात्र लेकर प्रकट हुआ। उसने राजा दशरथकी ओर देखकर कहा—'राजन्! मैं प्रजापति लोकका पुरुष हूँ और ब्रह्माजीकी आज्ञासे यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। यह देवताओंकी बनायी हुई खीर ग्रहण कीजिये। इससे धन और आरोग्यकी वृद्धि तथा सन्तानकी प्राप्ति होती है। आप यह खीर अपनी योग्य पत्नियोंको देकर कहिये, वे इसे खा जायँ। ऐसा करनेपर उनके गर्भसे आपको कई पुत्रोंकी प्राप्ति होगी, जिनके लिये आप यह यज्ञ कर रहे हैं।' राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर उस दिव्य पुरुषके दिये हुए देवान्नपूर्ण पात्रको अपने मस्तकपर धारण किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर उस पुरुषकी प्रदक्षिणा की। इसके बाद वह परम तेजस्वी अद्भुत पुरुष वहाँसे अन्तर्धान हो गया।

राजा दशरथ वह खीर लेकर अन्तःपुरमें गये और कौसल्यासे बोले—'देवि! यह खीर ग्रहण करो, इससे तुम्हें पुत्र होगा।' ऐसा कहकर राजाने उस खीरका आधा भाग महारानी कौसल्याको दे दिया। फिर बचे हुए आधेका आधा भाग सुमित्राको अर्पण किया। इन दोनोंको देनेके बाद जितनी खीर बच रही, उसका आधा भाग तो उन्होंने कैकेयीको दिया और शेष आधेको बुद्धिमान् नरेशने कुछ सोचकर पुनः सुमित्राको ही अर्पण कर दिया। इस प्रकार उन्होंने अपनी सभी रानियोंको अलग-अलग खीर बाँट दी। महाराजके हाथसे वह खीर पाकर उन साध्वी स्त्रियोंने अपना सम्मान समझा और उनका चित्त प्रफुल्लित हो गया। उस उत्तम खीरको भोजन करके उन तीनों रानियोंने शीघ्र ही गर्भ धारण किया और वे अग्नि तथा सूर्यके समान तेजस्विनी दिखायी देने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लगीं। अपनी रानियोंको गर्भवती देख राजा दशरथको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने समझा, अब मेरा मनोरथ सफल हो गया।

तदनन्तर, भगवान् ब्रह्माजीने सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'भगवान् विष्णु सत्यप्रतिज्ञ और हम सब लोगोंके हितैषी हैं। तुम उनकी सहायताके लिये ऐसे पुत्र उत्पन्न करो, जो महान् बली, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, माया जाननेवाले, शूरवीर, वायुके समान वेगवान्, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, किसीसे परास्त न होनेवाले, तरह-तरहके उपायोंके जानकर, दिव्य शरीरधारी तथा सब प्रकारकी अस्त्रविद्या जाननेवाले हों। इसके लिये मैंने पहलेसे ही ऋक्षराज जाम्बवान्‌को उत्पन्न कर रक्खा है। एक बार मैं जँभाई ले रहा था, उसी समय वह सहसा मेरे मुखसे प्रकट हो गया।' भगवान् ब्रह्माके ऐसा कहनेपर देवताओंने उनकी आज्ञा स्वीकार की और वानररूपमें अनेकों पुत्र उत्पन्न किये। महात्मा ऋषि, सिद्ध, विद्याधर, नाग और चारणोंने भी वनमें विचरनेवाले वानर-भालुओंके रूपमें वीर पुत्रोंको जन्म दिया। इन्द्रने वानरराज वालीको उत्पन्न किया, जो उन्हींके समान पराक्रमी था। सूर्यने सुग्रीवको जन्म दिया। बृहस्पतिसे तार नामक महाकाय वानरकी उत्पत्ति हुई, जो परम बुद्धिमान् और श्रेष्ठ था। कुबेरका पुत्र गन्धमादन तथा विश्वकर्माका पुत्र नल था। अग्निदेवका पुत्र नील हुआ, जो उन्हींके समान कान्तिमान् और तेज, यश तथा पराक्रममें सबसे बढ़कर था। दोनों अश्विनीकुमारोंने मैन्द और द्विविद नामके वानरोंको उत्पन्न किया। वरुणने सुषेणको और महाबली पर्जन्यने शरभको जन्म दिया। हनुमान् नामवाले वानर वायुदेवताके औरस पुत्र थे। उनका शरीर वज्रके समान था और तेज चलनेमें वे गरुड़को भी मात करते थे। बुद्धि और बलमें भी वे मुख्य-मुख्य सभी वानरोंसे श्रेष्ठ थे।

इस प्रकार कई हजार वानरोंकी उत्पत्ति हुई। वे सभी रावणका वध करनेको तैयार रहते थे। उनके बलकी कोई सीमा नहीं थी। सब-के-सब वीर, पराक्रमी और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे। वे गजराजों और पर्वतोंके समान महाकाय थे। भालू, वानर तथा गोलाङ्गूल (लङ्गूर) जातिके वीर शीघ्र ही उत्पन्न हो गये। जिस देवताका जैसा रूप, वेष और पराक्रम था, उससे उसीके समान पुत्र उत्पन्न हुआ। वे सभी पुत्र अपने-अपने पितासे कुछ अधिक पराक्रमी हुए। उस समय देवता, महर्षि, गन्धर्व, गरुड़, यक्ष, नाग, किन्नर, सिद्ध तथा विद्याधर आदि सबने प्रसन्नतापूर्वक हजारों पुत्र उत्पन्न किये। वे सब-के-सब इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और बलवान् थे। जो जहाँ चाहते, जा-आ सकते थे। दर्प और बलमें वे सिंह और व्याघ्रोंको भी मात करते थे। वे पत्थरकी चट्टानोंका प्रहार करते और पर्वत उठाकर लड़ते थे। वे सब नख और दाँतोंसे भी शस्त्रोंका काम लेते थे। उन सबको सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान था। वे पर्वतोंको भी हिला देते और खड़े वृक्षोंको भी तोड़ डालते थे। अपने वेगसे समुद्रमें भी हलचल पैदा कर सकते थे। उनमें पैरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करने और महासागरोंको भी लाँघ जानेकी शक्ति थी। ऐसे बलशाली और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर करोड़ोंकी संख्यामें उत्पन्न हुए। वे सभी अन्यान्य वानरोंके यूथपति थे। वानरोंके बड़े-बड़े समुदायोंपर उनका आधिपत्य था। इन यूथपतियोंने भी अनेकों वानर वीरोंको उत्पन्न किया और वे भी अपने जन्मदाताओंकी भाँति महान् यूथ-पति हुए। उनमेंसे हजारों यूथपति ऋक्षवान् पर्वतके शिखरपर रहने लगे तथा दूसरोंने नाना प्रकारके पर्वतों और जंगलोंका आश्रय लिया। इन्द्रकुमार वाली और सूर्यनन्दन सुग्रीव—ये दोनों भाई थे। समस्त वानर यूथपति उन दोनोंके अधीन हो गये। बहुतेरे वानर नल, नील, हनूमान् तथा अन्य यूथपतियोंके आश्रयमें रहने लगे। उन सबके शरीर और लक्षण नाना प्रकारके थे। वे शूरवीर वानर पर्वत, वन और समुद्रोंसहित समस्त भूमण्डलमें फैल गये। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी सहायताके लिये उत्पन्न हुए उन महाबली वानर यूथपतियोंसे सारी पृथ्वी भर गयी।

## राम आदि चारों भाइयोंके जन्म, गुण तथा पारस्परिक प्रेमका वर्णन

महात्मा राजा दशरथका यज्ञ समाप्त होनेपर देवतालोग अपना-अपना भाग ग्रहण करके जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। भिन्न-भिन्न देशोंके राजा भी, जो उनके यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये आये थे, महाराज दशरथद्वारा यथावत् सम्मानित हो मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ तथा ऋष्यशृङ्गको प्रणाम करके प्रसन्नता-पूर्वक अपनी-अपनी राजधानीको चले गये। राजाओंके विदा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हो जानेपर राजा दशरथने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको आगे करके अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। तत्पश्चात् राजाके द्वारा भली-भाँति पूजित होकर ऋष्यशृङ्ग मुनि भी शान्ताके साथ अपने देशको चले गये। उस समय परम बुद्धिमान् राजा दशरथ अपने अनुचरोंको साथ लेकर मुनिके पीछे-पीछे बहुत दूरतक पहुँचाने गये थे। इस प्रकार सम्पूर्ण अतिथियोंको विदा करके वे पूर्णमनोरथ होकर पुत्र-जन्मकी प्रतीक्षा करते हुए सुखसे समय व्यतीत करने लगे।

यज्ञ-समाप्तिके बाद छः ऋतु बीत जानेपर बारहवें महीनेमें चैत्र-मासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको, जब कि पुनर्वसु नक्षत्र और कर्क लग्न बीत रहा था, [ सूर्य, मङ्गल, शनि, गुरु और शुक्र—ये] पाँच ग्रह अपने-अपने उच्च स्थानमें विद्यमान थे तथा लग्नमें चन्द्रमाके साथ बृहस्पति विराजमान थे, महारानी कौसल्याने दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजीको उत्पन्न किया। उनके नेत्रोंमें कुछ-कुछ लालिमा थी। उनके ओठ लाल, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और स्वर दुन्दुभिके शब्दके समान गम्भीर था। वे इक्ष्वाकुवंशका आनन्द बढ़ानेवाले थे। उस अमित तेजस्वी पुत्रके जन्मसे रानी कौसल्याकी बड़ी शोभा हुई। तत्पश्चात् कैकेयीके गर्भसे सत्यपराक्रम भरतका जन्म हुआ। तदनन्तर रानी सुमित्राने लक्ष्मण और शत्रुघ्न—इन दो पुत्रों-को जन्म दिया। भरत सदा प्रसन्नचित्त रहते थे, उनका जन्म पुष्य नक्षत्र और मीन लग्नमें हुआ था। सुमित्राके दोनों पुत्र आश्लेषा नक्षत्र और कर्क लग्नमें उत्पन्न हुए थे; उस समय सूर्य अपने उच्च स्थानमें विराजमान थे।

राजा दशरथके ये चारों पुत्र बड़े ही गुणवान् और सुन्दर थे। इनके जन्मके समय देवताओंके नगारे बजने लगे और आकाशसे दिव्य फूलोंकी वर्षा होने लगी। अयोध्यामें बहुत बड़ा उत्सव हुआ। मनुष्योंकी भारी भीड़ इकट्ठी हुई। गलियाँ और सड़कें लोगोंसे खचाखच भरी हुई थीं। वहाँ सब ओर गाने-बजानेके शब्द सुनायी देते थे; सब प्रकारके रत्नोंका भंडार सजा हुआ था। राजा दशरथने ब्राह्मणोंको बहुत धन और हजारों गौएँ दान कीं। ग्यारह दिन बीतनेपर बारहवें दिन महाराजने बालकोंका नामकरण-संस्कार किया। उस समय महर्षि वसिष्ठने बड़ी प्रसन्नताके साथ सबके नाम रक्खे। उन्होंने ज्येष्ठ पुत्रका नाम राम, कैकेयीके पुत्रका भरत, सुमित्राके एक पुत्रका लक्ष्मण और दूसरेका शत्रुघ्न रक्खा। राजाने ब्राह्मणों, पुरवासियों तथा राज्यके निवासियोंको भी भोजन कराया। ब्राह्मणोंको बहुत-से उज्ज्वल रत्न दान किये। वसिष्ठजीने समय-समयपर उन बालकोंके जातकर्म, नामकरण आदि सभी संस्कार कराये।

राजाके सभी पुत्र वेदोंके विद्वान् और शूरवीर थे। सब-के-सब लोकहितकारी कार्योंमें लगे रहते थे। सभी ज्ञानवान् और समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न थे। उनमें भी सत्य-पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी सबसे अधिक तेजस्वी और सब लोगों-के विशेष प्रिय थे। वे सदा धनुर्वेदका अभ्यास करते और पिताकी सेवामें लगे रहते थे। लक्ष्मण बाल्यावस्थासे ही श्रीरामचन्द्रजीके बड़े भक्त थे। वे अपने बड़े भाईका सदा ही प्रिय करते थे और अपने शरीरसे भी उनकी सेवामें जुटे रहते थे। लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीके लिये बाह्यप्राणके समान थे। नरश्रेष्ठ रामको उनके बिना नींद भी नहीं आती थी। यदि कोई उत्तम भोजन ले आता तो श्रीरामचन्द्रजी उसमेंसे लक्ष्मणको दिये बिना नहीं खाते थे। यदि राम घोड़ेपर सवार होकर शिकार खेलने जाते तो लक्ष्मण धनुष लेकर उनकी रक्षाके लिये पीछे-पीछे जाते थे। इसी प्रकार लक्ष्मण-के छोटे भाई शत्रुघ्न भरतजीको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थे और वे भी भरतजीको सदा प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय मानते थे। वे चारों भाई लज्जाशील, यशस्वी, सर्वज्ञ और दूरदर्शी थे। प्रतिदिन वेदोंके स्वाध्याय, पिताकी सेवा तथा धनुर्वेदके अभ्यासमें दत्तचित्त रहते थे।

## विश्वामित्रजीका आगमन तथा उनका राम और लक्ष्मणको लेकर तपोवनके लिये प्रस्थान

एक दिन धर्मात्मा राजा दशरथ अपने पुरोहित और बन्धु-बान्धवोंके साथ अपने पुत्रोंके विवाहके सम्बन्धमें विचार कर रहे थे। उसी समय महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि आये। उन्होंने द्वारपालोंसे कहा—'मैं राजासे मिलना चाहता हूँ, जल्दी उन्हें मेरे आनेकी सूचना दो।' द्वारपालोंने दरबारमें जाकर कहा—'महाराज! महर्षि विश्वामित्र पधारे हैं।' यह सुनकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पुरोहितके साथ सावधानतापूर्वक आगे बढ़कर महर्षिका स्वागत किया। विश्वा-मित्रजी अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उनका दर्शन करके राजाका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और उन्होंने



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


महर्षिको अर्घ्य निवेदन किया। राजाका अर्घ्य स्वीकार करके महर्षिने उनसे उनके नगर, खजाने, राज्य, बन्धु-बान्धव तथा सुहृदोंकी कुशल पूछी। फिर स्वयं राजाके सम्बन्धमें प्रश्न किया—'राजन्! आप सकुशल तो हैं न? आपके राज्यकी सीमाके निकट रहनेवाले सभी शत्रु आपसे परास्त होकर आपकी शरणमें आ गये हैं न? आपके यज्ञ-यागादि देव-कर्म और अतिथि-सत्कारादि मनुष्य-कर्म तो अच्छी तरह सम्पन्न होते हैं न?' इसके बाद मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने वसिष्ठजी तथा अन्यान्य ऋषियोंसे मिलकर यथायोग्य उन सबकी कुशल पूछी। इससे उन सभी ऋषियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे राजाके दरबारमें पहुँचकर उनके द्वारा पूजित हो यथायोग्य आसनोंपर बैठ गये। तब राजा दशरथने विश्वामित्रजीसे कहा—'महामुने! आपका स्वागत है। बताइये, आप क्या चाहते हैं? मैं आपकी किस आज्ञाका हर्षके साथ पालन करूँ? ब्रह्मन्! आप मुझसे सब प्रकारकी सेवा लेने योग्य उत्तम पात्र हैं। मेरा अहोभाग्य है जो आपने यहाँ-तक पधारनेका कष्ट उठाया। आज मेरा जन्म सफल और जीवन धन्य हो गया। आपका आगमन मुझे परम पवित्र बनानेवाला है। आपके दर्शनसे आज मेरा घर तीर्थ हो गया। कहिये, किस अभिप्रायसे आपका यहाँ पधारना हुआ है? मैं आपकी कृपासे उस अभिप्रायको जानकर उसकी पूर्ति करना चाहता हूँ। आपकी आज्ञाके पालनसे मेरा अपना ही अभ्युदय होनेवाला है। आप जो भी आज्ञा देंगे मैं उसका पालन करूँगा। आज आपके आगमनसे मुझे सम्पूर्ण धर्मोंका फल मिल गया।'

मनस्वी राजाके ये विनीत वचन, जो हृदय और कानोंको सुख देनेवाले थे, सुनकर महर्षि विश्वामित्र बहुत प्रसन्न हुए।

महाराज दशरथकी बात सुनकर महातेजस्वी विश्वामित्रजीने कहा—'महाराज! ये बातें आपके ही योग्य हैं। इस पृथ्वीपर दूसरेके मुखसे ऐसे उदार वचन निकलनेकी सम्भावना नहीं है। क्यों न हो, आपको वसिष्ठ-जैसे ब्रह्मर्षिका उपदेश जो प्राप्त है। अच्छा, अब जो बात मेरे हृदयमें है और जिसके लिये मैं आया हूँ, उसको आप पूर्ण कीजिये। आपने मेरा कार्य सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य कीजिये। मैं सिद्धिके लिये एक नियमका अनुष्ठान कर रहा हूँ; उसमें इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दो राक्षस बाधक हो रहे हैं। उनके नाम हैं मारीच और सुबाहु। उन्होंने मेरी यज्ञ-वेदीपर रक्त और मांसकी वर्षा कर दी है, जिससे मैं उत्साहहीन होकर वहाँसे चला आया हूँ। उन्हें क्रोधमें आकर शाप देनेका भी विचार नहीं होता; क्योंकि वह नियम ही ऐसा है, जिसको आरम्भ कर देनेपर किसीको शाप नहीं दिया जाता। इसलिये महाराज! आप अपने सत्यपराक्रमी ज्येष्ठ पुत्र वीरवर रामको मुझे दे दें। मैं इनकी रक्षा करूँगा। ये अपने दिव्य तेजके प्रभावसे उन विघ्नकारी राक्षसोंका नाश करनेमें समर्थ हैं। रामके सिवा दूसरा कोई पुरुष उन राक्षसोंको मारनेका साहस नहीं कर सकता। मैं आपके सामने प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ, आप रामके हाथसे उन राक्षसोंको मरा हुआ ही समझिये। सत्यपराक्रमी महात्मा रामको (उनके वीर्य और प्रभावको) मैं जानता हूँ। ये महातेजस्वी वसिष्ठजी तथा अन्य तपस्वी भी जानते हैं। यदि वसिष्ठ आदि सभी मन्त्री आज्ञा दें तो आप यज्ञके दस दिनोंके लिये रामको मुझे दे दीजिये।'

धर्ममें तत्पर रहनेवाले महातेजस्वी विश्वामित्रजी ये धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहकर चुप हो गये; उनके इन वचनोंको सुनकर राजा दशरथको [ पुत्रवियोगकी आशङ्कासे ] बड़ा दुःख हुआ। वे सहसा काँप उठे और बेहोश हो गये। थोड़ी देर बाद जब उन्हें होश हुआ तो वे बोले—'महर्षे! मेरा राम अभी पूरे सोलह वर्षका भी नहीं हुआ, मुझे उसमें राक्षसोंके साथ युद्ध करनेकी योग्यता नहीं दिखायी देती। ये मेरे शूरवीर सैनिक, जो अस्त्रविद्यामें कुशल और बड़े पराक्रमी हैं, राक्षसोंसे युद्ध करनेकी योग्यता रखते हैं। मैं स्वयं हाथमें धनुष ले युद्धमें सबसे आगे रहकर आपके यज्ञकी रक्षा करूँगा और जबतक इस शरीरमें प्राण रहेंगे तबतक निशाचरोंके साथ लड़ता रहूँगा। मेरे द्वारा सुरक्षित होकर आपका नियमानुष्ठान बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण होगा। अतः मैं ही आपके साथ चलूँगा। मेरा राम तो अभी बालक है, इसने अभीतक युद्धकी विद्या ही नहीं सीखी है, यह दूसरेके बलाबलको नहीं जानता। न तो इसे अस्त्रका ही बल प्राप्त है और न यह युद्धमें ही प्रवीण हो सका है। यह राक्षसोंसे युद्ध करने योग्य तो है ही नहीं; क्योंकि राक्षस मायासे—छल-कपटसे युद्ध करते हैं। मुनिवर! रामसे वियोग हो जानेपर मैं दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता, इसलिये आप मेरे रामको न ले जाइये। अथवा यदि आपकी इच्छा रामको ही ले जानेकी हो तो चतुरङ्गिणी सेनाके साथ मैं भी चलता हूँ; मेरे साथ इसे ले चलिये। मुने! मेरी उम्र साठ हजार वर्षकी हो गयी, इस बुढ़ापेमें बड़ी कठिनाईसे मुझे पुत्रकी प्राप्ति हुई है। अतः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कृपा करके आप रामको न ले जाइये। साथ ही वे राक्षस कैसे पराक्रमी हैं, किसके पुत्र हैं और कौन उनकी रक्षा करते हैं—ये सारी बातें भी बतानेकी कृपा कीजिये।'

राजा दशरथकी बात सुनकर विश्वामित्रजी बोले—'राजन्! रावण नामका एक राक्षस है, जो महर्षि पुलस्त्यके वंशमें उत्पन्न हुआ है। ब्रह्माजीने उसे मुँहमाँगा वरदान दे दिया है, जिसके प्रभावसे वह तीनों लोकोंको बड़ा कष्ट दे रहा है। वह बड़ा बलवान् और महान् पराक्रमी है। बहुतेरे राक्षस चारों ओरसे उसकी रक्षा करते रहते हैं। राक्षसराज रावण विश्रवा मुनिका पुत्र और कुबेरका भाई है, उसीकी प्रेरणासे मारीच और सुबाहु नामके दो महाबली राक्षस मेरे यज्ञमें विघ्न डाला करते हैं।' मुनिके ऐसा कहनेपर राजा दशरथने कहा—'मुनिवर! मैं उस दुरात्माके सामने युद्धमें नहीं ठहर सकता; आप धर्मज्ञ हैं, मेरे पुत्रपर दया कीजिये। आप मेरे देवता और गुरु हैं, मुझपर अनुग्रह कीजिये। युद्धमें रावणका वेग तो देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, गरुड़ और नाग भी नहीं सह सकते; फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। रावणके साथ संग्राममें बड़े-बड़े पराक्रमी वीर भी अपना पराक्रम खो बैठते हैं, अतः मैं अपनी सेना और पुत्रोंके साथ रहकर भी उससे तथा उसके सैनिकोंसे लोहा लेनेमें असमर्थ हूँ। यह मेरा बालक तो युद्ध करना जानता ही नहीं, इसलिये इसको मैं कदापि नहीं दे सकता।'

राजा दशरथके ऐसे वचन सुनकर महर्षि विश्वामित्रने कुपित होकर कहा—'राजन्! पहले मेरी इच्छा पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा करके अब आप उसे तोड़ना चाहते हैं! ऐसा व्यवहार रघुवंशियोंके योग्य तो नहीं है। यदि आप ऐसा ही करना उचित समझते हैं तो मैं जैसे आया था वैसे ही लौट जाऊँगा। आप अपनी प्रतिज्ञा झूठी करके हितैषी मित्रोंके साथ सुखी होइये।' विश्वामित्रके क्रुद्ध होते ही सारी पृथ्वी काँप उठी। उनके रोषसे सारे संसारको त्रस्त देखकर महर्षि वसिष्ठने राजा दशरथसे कहा—'महाराज! आप इक्ष्वाकुवंशी राजाओंके कुलमें साक्षात् दूसरे धर्मराजके समान उत्पन्न हुए हैं। आप धैर्यवान् तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हैं, अतः इस समय आपको धर्मका परित्याग नहीं करना चाहिये। 'रघुकुलभूषण दशरथ बड़े धर्मात्मा हैं' यह बात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। अतः आप अपने धर्मका ही पालन कीजिये, अधर्मका भार न उठाइये। 'मैं अमुक काम करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके भी जो उस वचनका पालन नहीं करता, उसके यज्ञ-यागादि इष्ट तथा बावली, तालाब बनवाना आदि पूर्त कर्मोंके पुण्यका नाश हो जाता है। इसलिये आप रामको विश्वामित्रजीके साथ जाने दीजिये। राक्षस इनका सामना नहीं कर सकते। विश्वामित्रजी साक्षात् धर्मकी मूर्ति हैं। विद्यामें भी ये इस जगत्में सबसे बढ़े-चढ़े हैं। तपस्याके तो भंडार ही हैं। इन्हें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान है। चराचर प्राणियोंसहित त्रिभुवनमें कोई भी पुरुष न तो इन्हें अच्छी तरह जानता है और न जान सकेगा। देवता, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा नाग भी इनके प्रभावको नहीं जानते। प्रायः सभी अस्त्र महर्षि कुशाश्वके पुत्र हैं; विश्वामित्रजीको उन सबका ज्ञान है। जो अस्त्र अभीतक देखनेमें नहीं आये हैं, उनको भी उत्पन्न करनेकी इनमें पूर्ण शक्ति है। इन धर्मात्मा महर्षिसे भूत या भविष्यकी कोई भी बात छिपी नहीं है। ये ऐसे ही प्रभावशाली हैं। इनका तेज महान् है। अतः इनके साथ रामको भेजनेमें आप किसी प्रकारका सन्देह न करें। विश्वामित्रजी स्वयं भी उन राक्षसोंका संहार करनेमें समर्थ हैं; किन्तु ये आपके पुत्रका कल्याण करना चाहते हैं, इसीलिये यहाँ आकर आपसे याचना कर रहे हैं।''

महर्षि वसिष्ठका वचन सुनकर महाराज दशरथका मन प्रसन्न हो गया और विश्वामित्रजीके साथ रामको भेजनेकी उन्हें इच्छा हो गयी। उन्होंने राम और लक्ष्मणको बुलाया। फिर माता कौसल्या, पिता दशरथ और पुरोहित वसिष्ठजीने उनका यात्रासम्बन्धी मंगलकार्य सम्पन्न किया। महाराजने

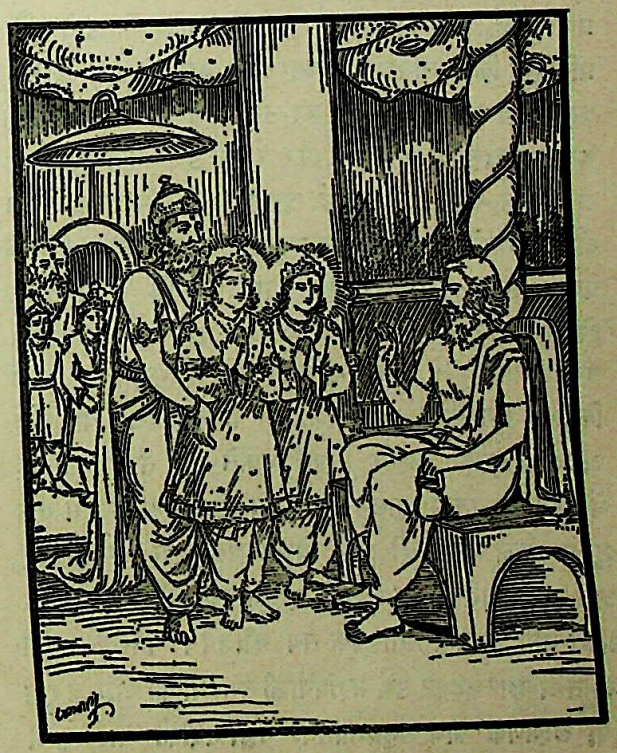

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पुत्रका मस्तक सूँघकर उसे प्रसन्न चित्तसे विश्वामित्रजीके अर्पण कर दिया। उस समय सुखदायिनी हवा चलने लगी। रामको विश्वामित्रजीके साथ जाते देख आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। देवताओंके नगारे बज उठे, शङ्ख आदि-की ध्वनि होने लगी। आगे-आगे विश्वामित्र, उनके पीछे धनुर्धर राम और सबसे पीछे सुमित्राकुमार लक्ष्मण जा रहे थे। राजकुमार राम और लक्ष्मण विश्वामित्रके पीछे चलते समय अपनी अनुपम कान्तिसे बड़ी शोभा पा रहे थे। उन दोनोंने अपने हाथोंकी अँगुलियोंमें दस्ताने पहन रखे थे। दोनोंके ही पार्श्वभागमें तलवार लटक रही थी। सरयूके दक्षिण किनारे होते हुए अयोध्यासे छः कोस दूर निकल जानेके बाद विश्वामित्रने मधुर वाणीमें कहा—'राम! अब सरयूके जलमें आचमन करो, विलम्ब नहीं होना चाहिये। यह मन्त्र ग्रहण करो और मुझसे बला तथा अतिबला नामकी विद्याएँ सीख लो। इसके प्रभावसे तुम्हें कभी शारीरिक परिश्रम और मानसिक चिन्ताका शिकार नहीं होना पड़ेगा। तुम्हारे रूपमें भी किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं होगा तथा सोते समय या असावधानीकी अवस्थामें भी राक्षस तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। इतना ही नहीं, बला और अतिबलाके अभ्याससे तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान कोई नहीं रह जायगा। सौभाग्य, चातुर्य, ज्ञान और बुद्धिसम्बन्धी निश्चयमें तथा किसीके प्रश्नका उत्तर देनेमें भी कोई तुम्हारी तुलना नहीं कर सकेगा; क्योंकि ये बला और अतिबला नामकी विद्याएँ सब प्रकारके ज्ञानकी जननी हैं। इनके प्रभावसे तुम्हें भूख-प्यासका भी कष्ट नहीं होगा। ये दोनों विद्याएँ ब्रह्माजीकी पुत्री तथा तेजसे सम्पन्न हैं। तपस्यापूर्वक धारण करनेपर इनका नाना रूपोंमें विस्तार होगा।'

तदनन्तर राम आचमन करके पवित्र हो गये और उन शुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षिसे उन्होंने वे दोनों विद्याएँ ग्रहण कर लीं। तत्पश्चात् रामने विश्वामित्रजीकी गुरुजनोचित सेवाएँ कीं। उस दिन तीनोंने सरयूके किनारे बड़े सुखसे रात बितायी। सबने तृणकी शय्यापर ही शयन किया।

## रामके द्वारा ताटकाका वध

दूसरे दिन सबेरा होनेपर महामुनि विश्वामित्रने पत्तोंके बिछौनेपर सोये हुए दोनों राजकुमारोंसे कहा—'राम! प्रातःकालकी सन्ध्याका समय हो गया है। उठो और प्रतिदिन किये जानेवाले देवसम्बन्धी कार्योंको पूर्ण करो।' ऋषिके ये उदार वचन सुनकर उन दोनों वीरोंने स्नान करके देवताओंका तर्पण किया और फिर वे परम उत्तम गायत्री-मन्त्रका जप करने लगे। नित्यकर्म समाप्त करके महापराक्रमी राम और लक्ष्मणने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक विश्वामित्रजीके चरणोंमें प्रणाम किया और वहाँसे आगे जानेके लिये तैयार हो गये। जाते-जाते जब गङ्गा और सरयूके परम उत्तम संगमपर पहुँचे तो वहाँ उन्होंने दिव्य नदी गङ्गाजीका दर्शन किया। संगमके पास ही एक परम पवित्र आश्रम था, जहाँ अनेकों सिद्धात्मा महर्षि हजारों वर्षोंसे तीव्र तपस्या कर रहे थे। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महात्माओंने एक सुन्दर नौका मँगा दी और विश्वामित्रसे कहा—'मुनिवर! आप राजकुमारोंको आगे करके इस नावपर बैठ जाइये और अपने मार्गको निर्विघ्नतापूर्वक तय कीजिये।' विश्वामित्रजीने 'बहुत अच्छा' कहकर उन महर्षियोंकी सराहना की और वे राम तथा लक्ष्मणके साथ समुद्रगामिनी गङ्गा नदीको पार करने लगे। जब नाव बीच धारामें पहुँची तो दो जलोंके टकरानेकी बड़ी भारी आवाज सुनायी देने लगी। उसे सुनकर राम तथा उनके छोटे भाई लक्ष्मणको यह निश्चितरूपसे जाननेकी इच्छा हुई कि यह कैसा शब्द सुनायी पड़ रहा है। उनकी जिज्ञासा जानकर धर्मात्मा विश्वामित्रजीने कहा—'राम! कैलासपर्वतपर एक सरोवर है, जिसे ब्रह्माजीने अपने मनके सङ्कल्पसे प्रकट किया था। मनके द्वारा उत्पन्न होनेसे ही उसे मानस-सरोवर कहते हैं। उस सरोवरसे एक नदी निकली है, जो अयोध्यासे सटकर बहती है। ब्रह्मसरसे निकलनेके कारण ही वह पवित्र नदी सरयूके नामसे विख्यात है। उसीका जल गङ्गाजीमें मिल रहा है। दो नदियोंके जलोंके संघर्षसे ही यह भारी आवाज हो रही है। तुम इस संगमके जलको प्रणाम करो।' यह सुनकर उन दोनों धर्मात्मा भाइयोंने गङ्गा और सरयूको प्रणाम किया और गङ्गाके दक्षिण किनारेपर उतरकर वे सब लोग धीरे-धीरे पैदल चलने लगे। सामने बड़ा भयंकर वन दिखायी पड़ा। उसमें मनुष्योंके आने-जानेका कोई चिह्न नहीं था। उसे देखकर राजकुमार रामने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे कहा—'गुरुदेव! यह वन तो बड़ा ही दुर्गम है। यहाँ चारों ओर झिल्लियोंकी झनकार सुनायी दे रही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। भीषण शिकारी जीव भरे हुए हैं। बड़े-बड़े पक्षियोंकी डरावनी बोली कानोंमें पड़ रही है। सिंह, व्याघ्र, सूअर और हाथी इस जंगलकी शोभा बढ़ा रहे हैं। यह भयानक वन कैसा है? इसका परिचय दीजिये।'

तब महातेजस्वी विश्वामित्रजीने कहा—'नरश्रेष्ठ! यहाँ मलद और करूषनामक दो देश हैं, जो बहुत समयतक समृद्धिशाली, धन-धान्यसे परिपूर्ण और सुखी रहे हैं। कुछ कालके अनन्तर यहाँ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली एक यक्षिणी उत्पन्न हुई, जिसका नाम ताटका है। उसके शरीरमें एक हजार हाथियोंका बल है। वह सुन्द नामके राक्षसकी पत्नी है। मारीच नामका राक्षस, जो इन्द्रके समान पराक्रमी है, उस ताटकाका ही पुत्र है। उसकी भुजाएँ गोल, मस्तक बहुत बड़ा, मुँह फैला हुआ और शरीर विशाल है। वह भयानक आकारवाला राक्षस यहाँकी प्रजाको हमेशा त्रास पहुँचाता रहता है तथा दुराचारिणी ताटका भी सदा मलद और करूष—इन दोनों देशोंका सर्वनाश करनेमें लगी रहती है। वह छः कोसका रास्ता रोककर इस जंगलमें निवास करती है; अतः हमलोगोंको उधरसे ही चलना चाहिये, जिधर ताटकाका वन है। राम! तुम मेरी आज्ञासे अपने बाहुबलका सहारा लेकर उस दुष्ट राक्षसीको मार डालो और इस देशको निष्कण्टक बना दो। उस भयङ्कर यक्षिणीने ही इस जंगलको इतना भयानक बना रक्खा है और उसीने यहाँके सारे प्रदेशको उजाड़ डाला है, जो अबतक हरा-भरा नहीं हो सका। तुम स्त्री-हत्याका विचार करके उसे मारनेसे मुँह न मोड़ना; क्योंकि चारों वर्णोंकी प्रजाका हित करनेके उद्देश्यसे क्षत्रियके लिये ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। जिनके ऊपर राज्यका भार है, उनका तो यह सनातनधर्म है। ताटका महापापिनी है, अतः उसको मार डालो। सुना जाता है, पूर्वकालमें विरोचनकी पुत्री मन्थरा सारी पृथ्वीका नाश कर डालना चाहती है—यह जानकर इन्द्रने उसे मौतके घाट उतार दिया। और भी बहुत-से क्षत्रिय महात्माओंने पापाचारिणी स्त्रियोंका वध किया है। इसलिये तुम घृणा त्यागकर मेरे आदेशसे उस राक्षसीका वध करो।'

मुनिके ये उत्साहभरे वचन सुनकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राजकुमार रामने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'भगवन्! अयोध्यामें मेरे पिता महाराज दशरथने गुरुजनोंके सामने यह उपदेश दिया था कि 'बेटा! तुम पिताके कहनेसे, पिताके वचनोंका गौरव रखनेके लिये कुशिकनन्दन विश्वामित्रजीकी आज्ञाका निःशङ्क होकर पालन करना, कभी भी उनकी बातकी अवहेलना न करना।' अतः मैं पिताजीकी आज्ञाके अनुसार आपके प्रत्येक आदेशका पालन करूँगा। आपकी आज्ञा होनेसे मैं ताटका-वधके कार्यको उत्तम समझता हूँ, अतः निःसन्देह उसका वध करूँगा। गौ, ब्राह्मण तथा समूचे देशका हित करनेके लिये मैं आप-जैसे अनुपम प्रभावशाली महात्माके आदेशका पालन करनेको सब प्रकारसे तैयार हूँ।'

ऐसा कहकर शत्रुदमन रामने धनुषके मध्यभागमें मुट्ठी बाँधकर उसे जोरसे पकड़ा और उसकी प्रत्यञ्चापर तीव्र टंकार दी। उसकी आवाजसे चारों दिशाएँ गूँज उठीं और ताटका-वनमें रहनेवाले समस्त प्राणी थर्रा उठे। ताटका भी वह शब्द सुनकर एक बार स्तब्ध-सी हो गयी, किन्तु फिर क्रोधमें भर गयी। धीरे-धीरे आवाजको पहचानकर वह आगबबूला हो उठी और जहाँसे वह आवाज आयी थी, उसी दिशाकी ओर दौड़ी। पास आते ही ताटकाने राम और लक्ष्मणके ऊपर धूल उड़ाना आरम्भ किया। धूलकी उस भारी वर्षाके द्वारा उसने थोड़ी देरतक दोनों राजकुमारोंको मोहमें डाल दिया। तत्पश्चात् मायाका आश्रय लेकर वह उन दोनों भाइयोंपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगी। तब रामने अपने बाणोंकी वर्षासे उसकी शिला-वृष्टिका निवारण करके अपनी ओर दौड़कर आती हुई उस निशाचरीके दोनों हाथ काट दिये। दोनों भुजाएँ कट जानेसे थकी हुई ताटका उनके निकट आकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगी। यह देख लक्ष्मणने क्रोधमें भरकर उसके नाक-कान काट लिये। परन्तु वह तो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली यक्षी थी; अनेकों प्रकारके रूप बनाकर राम और लक्ष्मणको मोहमें डालती हुई वह अपनी मायाशक्तिसे अदृश्य हो गयी और आकाशसे पत्थरों-की भयंकर वर्षा करती हुई इधर-उधर विचरने लगी। यह देख विश्वामित्रजी कहने लगे—'राम! इसके ऊपर दया करना व्यर्थ है। यह बड़ी पापिनी और दुराचारिणी है। हमेशा यज्ञोंमें विघ्न डाला करती है। यह अपनी मायासे पुनः प्रबल हो सकती है, अतः उसके पहले ही इसे मार डालो। अभी सन्ध्या हुआ चाहती है। सन्ध्याके समय राक्षसोंको परास्त करना बड़ा कठिन हो जाता है।'

विश्वामित्रजीके ऐसा कहनेपर रामने शब्दवेधी बाण चलानेकी शक्तिका परिचय देते हुए बाण मारकर पत्थरोंकी वृष्टि करनेवाली ताटकाको सब ओरसे घेर दिया। उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बाणोंसे घिर जानेपर वह मायाविनी राक्षसी जोर-जोरसे गर्जना करती हुई राम और लक्ष्मणके ऊपर टूट पड़ी। उसे इन्द्रके वज्रकी भाँति वेगसे आती देख रामने एक बाण मारकर उसकी छाती चीर डाली और वह धरतीपर गिरकर मर गयी। उस भयंकर निशाचरीको मरी देख देवताओंके सहित इन्द्रने साधुवाद देते हुए रामचन्द्रजीकी सराहना की। फिर सब देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर विश्वामित्रजीसे कहा—'कुशिकनन्दन! आपका कल्याण हो। आपने अपने इस कार्यसे हम सबको सन्तुष्ट किया है। अब रामपर अपने स्नेहका परिचय दीजिये। प्रजापति कृशाश्वके अस्त्र-रूपधारी पुत्रोंको, जो सत्यपराक्रमी और तपःशक्तिसे सम्पन्न हैं, रामको अर्पण कीजिये।' ऐसा कहकर सभी देवता विश्वामित्रजीकी सराहना करते हुए प्रसन्नतापूर्वक आकाश-मार्गसे चले गये। तत्पश्चात् सन्ध्या हो गयी। महर्षि विश्वामित्र ताटकाके वधसे बहुत सन्तुष्ट थे। उन्होंने रामका मस्तक सूँघकर बड़े प्रेमसे कहा—'रघुनन्दन! आजकी रात हमलोग यहीं व्यतीत करें, कल सबेरे अपने आश्रमपर चलेंगे।' यह सुनकर रामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने ताटका-वनमें रहकर वह रात्रि बड़े सुखसे व्यतीत की। यक्ष-कन्या ताटकाके मारे जानेसे देवताओं और सिद्धोंके समुदायमें रामचन्द्रकी बड़ी सराहना होने लगी। उन्होंने प्रातःकालकी प्रतीक्षा करते हुए विश्वामित्रजीके साथ ताटका-वनमें निवास किया।

## विश्वामित्रजीका रामको दिव्यास्त्र-दान, यज्ञका आरम्भ तथा रामके द्वारा सुबाहु आदि राक्षसोंका वध

ताटका-वनमें रात व्यतीत करके फिर महायशस्वी विश्वामित्रने हँसकर मीठे स्वरमें रामचन्द्रजीसे कहा—'राजकुमार! तुम्हारा कल्याण हो। ताटका-वधके कारण मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ, अतः बड़ी प्रसन्नताके साथ तुम्हें सब प्रकारके अस्त्र दे रहा हूँ। इनके प्रभावसे तुम अपने शत्रुओंको—चाहे वे देवता, असुर, गन्धर्व अथवा नाग ही क्यों न हों—बलपूर्वक वशमें करके उनपर विजय पा सकोगे। आज मैं तुम्हें सभी दिव्यास्त्र प्रदान करता हूँ। मैं तुम्हें महान् दिव्यास्त्र दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र तथा अत्यन्त भयंकर ऐन्द्रचक्र दूँगा। शिवका शूलवत् नामक अस्त्र, इन्द्रका वज्रास्त्र तथा ब्रह्माजीका ब्रह्मशिर अस्त्र भी दूँगा। साथ ही ऐषीकास्त्र तथा सबसे उत्तम ब्रह्मास्त्र भी दे रहा हूँ। इनके सिवा दो अत्यन्त उज्ज्वल और सुन्दर गदाएँ, जिनके नाम मोदकी और शिखरी हैं, तुम्हें अर्पण करता हूँ। धर्मपाश, कालपाश और वरुणपाश भी बड़े उत्तम अस्त्र हैं; इन्हें भी आज तुम्हारे हवाले करता हूँ। सूखी और गीली—दो प्रकारकी अशनि तथा पिनाक एवं नारायणास्त्र भी दे रहा हूँ। अग्निका प्रिय आग्नेय अस्त्र, जो शिखरास्त्रके नामसे भी प्रसिद्ध है, तुम्हें अर्पण करता हूँ। अस्त्रोंमें प्रधान वायव्यास्त्र, हयशिरा, क्रौञ्च और दो शक्तियोंको भी देता हूँ। कंकाल, भयंकर मूसल, कपाल तथा किंकिणी आदि सब अस्त्र, जो राक्षसोंके वधमें उपयोगी होते हैं, तुम्हें दे रहा हूँ। नन्दन नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंका महान् अस्त्र, उत्तम खड्ग, गन्धर्वोंका मोहनास्त्र, प्रस्वापन, प्रशमन, सौम्य, वर्षण, शोषण, सन्तापन, विलापन, कामदेवका प्रिय एवं दुर्निवार्य अस्त्र मादन, गन्धर्वोंका प्रिय मानवास्त्र, पिशाचोंका प्रिय मोहनास्त्र, तामस, सौमन, संवर्त, मौसल, सत्य और मायामय अस्त्र भी अर्पण करता हूँ। सूर्यदेवताका तेजःप्रभ नामक अस्त्र, जो शत्रुके तेजका नाश करनेवाला है, तुम्हारे अधीन करता हूँ। सोमदेवताका शिशिर नामक अस्त्र, त्वष्टा (विश्वकर्मा) का अत्यन्त दारुण अस्त्र और भग देवताका शीतेषु नामवाला मानव अस्त्र भी आज तुम्हें दे रहा हूँ। महाबाहो! ये सभी अस्त्र इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, अत्यन्त शक्तिसम्पन्न और परम उदार हैं। तुम शीघ्र ही इन्हें ग्रहण करो।'

यह कहकर मुनिवर विश्वामित्रजी स्नान आदिसे शुद्ध हो पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये और अत्यन्त प्रसन्नताके साथ उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको उन सभी उत्तम अस्त्रोंका उपदेश दिया। जिन अस्त्रोंका पूर्णरूपसे संग्रह करना देवताओंके लिये भी कठिन है, उन सबको विप्रवर विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीको समर्पित कर दिया। बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने ज्यों ही जप आरम्भ किया, त्यों ही वे सभी दिव्यास्त्र स्वतः आकर वहाँ उपस्थित हो गये और अत्यन्त हर्षमें भरकर श्रीरामचन्द्रजीसे हाथ जोड़कर कहने लगे—'रघुनन्दन! आपका कल्याण हो। हम सब आपके किंकर हैं। आप हमसे जो-जो सेवा लेना चाहेंगे, वह सब हम करनेको तैयार हैं।' उन महान् प्रभावशाली अस्त्रोंके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए और हाथसे उनका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्पर्श करके बोले—'आप सब मेरे मनमें निवास करें।' तदनन्तर महातेजस्वी रामने प्रसन्नतापूर्वक महामुनि विश्वामित्रजीको प्रणाम किया और आगेकी यात्रा आरम्भ की। चलते-चलते उन्होंने विश्वामित्रजीसे कहा—'मुनिवर! आपकी कृपासे मुझे इन अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त हुआ, अब देवता भी मुझे परास्त नहीं कर सकते।' यह कहकर रामचन्द्रजीने पुनः मधुर वचनोंमें प्रश्न किया—'मुने! सामनेवाले पर्वतके पास ही जो मेघकी घटाके समान सघन वृक्षोंसे भरा हुआ स्थान दिखायी देता है, वह क्या है, उसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है। यह किसका आश्रम है? जहाँ ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाले वे पापी, दुराचारी और दुरात्मा राक्षस आपके यज्ञमें विघ्न डालने आया करते हैं, जहाँ आपकी यज्ञवेदी बनी हुई है तथा जहाँ चलकर मुझे यज्ञ-कर्मका रक्षण और राक्षसोंका वध करना है, वह स्थान कौन है—यह सब मैं सुनना चाहता हूँ।'

अनन्त प्रभावशाली रामके इस प्रकार प्रश्न करनेपर महातेजस्वी विश्वामित्रने यों कहना आरम्भ किया—'महाबाहु राम! यह आश्रम पहले महात्मा वामनजीका था। यहाँ उन्होंने बहुत वर्षोंतक तपस्या की थी और यहीं उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी, इसलिये यह तपोवन 'सिद्धाश्रम' के नामसे विख्यात हो गया। उन्हीं भगवान् वामनमें भक्ति होनेके कारण मैं भी इस स्थानका उपयोग करता हूँ। इसी आश्रमपर मेरे यज्ञमें विघ्न डालनेवाले राक्षस आते हैं। यहीं तुम्हें उन दुराचारियोंका वध करना है। अब हमलोग उसी उत्तम सिद्धाश्रममें चल रहे हैं। वह आश्रम जैसे मेरा है वैसे ही तुम्हारा भी है।' ऐसा कहकर मुनिने अत्यन्त प्रेमके साथ राम-लक्ष्मणका हाथ पकड़ लिया और उन दोनोंके साथ आश्रममें प्रवेश किया। उस समय पुनर्वसु नामक दो नक्षत्रोंके बीचमें स्थित चन्द्रमाकी भाँति उनकी शोभा हुई। विश्वामित्रजीको आये देख सिद्धाश्रममें रहनेवाले सभी तपस्वी उछलते-कूदते सहसा उनके पास आये और सबने मिलकर उनकी यथोचित पूजा की। इसी प्रकार उन्होंने राम और लक्ष्मणका भी अतिथि-सत्कार किया। थोड़ी देर विश्राम करनेके बाद उन दोनों राजकुमारोंने हाथ जोड़कर विश्वामित्रजीसे कहा—'मुनिवर! आप आज ही यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करें।' उनके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्र जितेन्द्रियभावसे नियमपूर्वक यज्ञकी दीक्षामें प्रविष्ट हो गये। वे दोनों राजकुमार भी सावधानीके साथ रात व्यतीत करके सबेरे उठे और पवित्र होकर प्रातःकालकी सन्ध्योपासना तथा नियमपूर्वक सर्वश्रेष्ठ गायत्री-मन्त्रका जप करने लगे। जप पूरा होनेपर उन्होंने अग्निहोत्र करके बैठे हुए विश्वामित्रजीके चरणोंमें प्रणाम किया।

तत्पश्चात् राम और लक्ष्मणने विश्वामित्रजीसे पूछा—'मुनिवर! बताइये, हमें किस समय उन दोनों राक्षसोंसे यज्ञकी रक्षा करनी है। कहीं ऐसा न हो वह अवसर यों ही हाथसे चला जाय।' उनकी बात सुनकर सभी आश्रमवासी ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और उन दोनों राजकुमारोंकी सराहना करते हुए बोले—'ये मुनिवर विश्वामित्रजी यज्ञकी दीक्षा ले चुके हैं, अतः अब मौन रहेंगे। आप दोनों सावधान होकर आजसे छः रातोंतक इनके यज्ञकी रक्षा करते रहें।' मुनियोंके वचन सुनकर वे दोनों यशस्वी राजकुमार बड़ी सावधानीके साथ उस तपोवनकी तथा विश्वामित्रजीकी निरन्तर रक्षा करने लगे। उन्होंने छः रातोंतक नींद भी नहीं ली। इस प्रकार जब छठा दिन आया तो रामने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! तुम अपने चित्तको एकाग्र करके सावधान हो जाओ।' राम इस प्रकार कह ही रहे थे कि उपाध्याय, पुरोहित, ऋत्विज तथा विश्वामित्रजीसे घिरी हुई यज्ञकी वेदी आहवनीय अग्निसे प्रज्वलित हो उठी। उसके चारों ओर रखे हुए कुश, चमस, स्रुक्, समिधा तथा फूलोंकी ढेरी प्रकाशित होने लगी; फिर तो शास्त्रीय विधिके अनुसार मन्त्र पढ़ते हुए यज्ञका कार्य आरम्भ हुआ। उसी समय आकाशमें बड़े जोरका शब्द हुआ। वह शब्द बड़ा ही भयंकर था। मारीच और सुबाहु नामके राक्षस अपनी माया फैलाते हुए यज्ञ-मण्डपकी ओर दौड़े आ रहे थे। उनके अनुचर भी साथ थे। उन भयंकर राक्षसोंने वहाँ आकर रक्तकी धाराएँ बरसाना आरम्भ कर दिया। यह देख रामचन्द्रजी सहसा उठकर दौड़े हुए गये और लक्ष्मणकी ओर देखकर बोले—'लक्ष्मण! यह देखो, मांसभक्षण करनेवाले दुराचारी राक्षस आ पहुँचे। मैं अभी इन्हें मानवास्त्रसे उड़ाये देता हूँ।' यों कहकर रामचन्द्रजीने अपने धनुषपर अत्यन्त तेजस्वी मानवास्त्रका सन्धान किया और अत्यन्त क्रोधमें भरकर मारीचकी छातीको उसका निशाना बनाया। उस मानव नामक महान् अस्त्रका आघात लगनेसे मारीच पूरे सौ योजनकी दूरीपर समुद्रके जलमें जा गिरा। इसके बाद रामचन्द्रजीने आग्नेय अस्त्र लेकर उससे सुबाहुकी छातीपर प्रहार किया। उसकी चोट लगते ही वह मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बाकी राक्षसोंको महायशस्वी रामने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वायव्यास्त्रसे मार डाला। इस प्रकार यज्ञमें विघ्न डालनेवाले समस्त राक्षसोंका संहार करके परम उदार रामने मुनियोंको आनन्दित किया। इसके बाद उन मुनियोंने भी रामचन्द्रजीकी बड़ी प्रशंसा की। यज्ञ समाप्त होनेपर महामुनि विश्वामित्रने सम्पूर्ण दिशाओंको विघ्न-बाधाओंसे रहित देख रामचन्द्रजीसे कहा—'महाबाहो! तुम्हें पाकर मैं कृतार्थ हो गया; तुमने गुरुकी आज्ञाका अच्छी तरह पालन किया और इस सिद्धाश्रमका नाम सार्थक कर दिया।' इस प्रकार रामचन्द्रकी प्रशंसा करके उन्होंने दोनों भाइयोंको साथ लेकर सन्ध्योपासना की।

## श्रीराम-लक्ष्मणकी मिथिलायात्रा तथा मार्गमें विश्वामित्रजीका गङ्गावतरणकी कथा सुनाना

विश्वामित्रजीका यज्ञ पूर्ण हो जानेपर वीरवर राम और लक्ष्मणने कृतकृत्य होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ वह रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल होनेपर वे दोनों भाई जब पूर्वाह्णकालके नैत्यिक नियमोंसे निवृत्त हो गये तो विश्वामित्रजी तथा अन्य महर्षियोंके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने परमतेजस्वी मुनिवर विश्वामित्रको प्रणाम किया और मधुर वचनोंमें कहा—'महर्षे! बताइये, अब हमलोग किस आज्ञाका पालन करें।' उन दोनोंके ऐसा कहनेपर सभी महर्षि विश्वामित्रको आगे करके रामचन्द्रसे बोले—'नरश्रेष्ठ! मिथिलाके राजा जनकका परम धर्ममय यज्ञ प्रारम्भ होनेवाला है; उसमें हम सब लोग जायँगे, तुम भी हमारे साथ चलना। वहाँ एक बड़ा ही अद्भुत धनुष-रत्न है। वह तुम्हारे देखने योग्य है। पहले कभी यज्ञमें पधारे हुए देवताओंने वह धनुष जनकके किसी पूर्व पुरुषको दिया था। वह बड़ा प्रकाशमान है। मनुष्योंकी तो बात ही क्या, देवता, गन्धर्व, असुर तथा राक्षस भी उसकी प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा पाते। उस धनुषकी शक्तिका पता लगानेके लिये कितने ही महाबली राजा और राजकुमार आये; किन्तु कोई भी उसे चढ़ा न सके। वहाँ चलनेसे तुम मिथिलानरेशके उस धनुषको तथा उनके अद्भुत यज्ञको भी देख सकोगे। महाराज जनकके यहाँ नाना प्रकारके गन्ध, धूप और अरगजा आदि सुगन्धित पदार्थोंसे उस धनुषकी पूजा होती है। वह उनके घरमें पूजनीय देवताकी भाँति प्रतिष्ठित है।'

ऐसा कहकर मुनिवर विश्वामित्रजीने वनदेवताओंसे आज्ञा ली और ऋषिमण्डली तथा राम-लक्ष्मणके साथ वहाँसे प्रस्थान किया। उस समय उनके साथ जानेवाले ब्रह्मवादी महर्षियोंकी सौ गाड़ियाँ मुनिवर विश्वामित्रके पीछे-पीछे चलीं। दूरतकका मार्ग तै कर लेनेके बाद जब सूर्य डूबने लगे तो उन ऋषियोंने शोणभद्रके तटपर सावधानतापूर्वक पड़ाव डाल दिया और जब सूर्य बिल्कुल अस्त हो गया तो स्नान करके उन्होंने अग्निहोत्रका कार्य पूर्ण किया। इसके बाद वे सभी अमित तेजस्वी ऋषि विश्वामित्रजीको आगे करके बैठे। राम और लक्ष्मण भी उन ऋषियोंका आदर करते हुए विश्वामित्रजीके सामने बैठ गये। विश्वामित्रजीने रामके पूछनेपर उस देशका परिचय देते हुए प्रसङ्गवश अपने वंशकी कथा कही और फिर सब लोग सो गये। इस प्रकार रात व्यतीत होनेपर जब सबेरा हुआ तो विश्वामित्रजीने कहा—'राम! तुम्हारा कल्याण हो, प्रभात हो गया। सबेरेकी सन्ध्याका समय आ पहुँचा। अब उठो और चलनेकी तैयारी करो।' महर्षिकी बात सुनकर रामने प्रातःकालका नैत्यिक कर्म पूरा किया और फिर सबके साथ आगे चल दिये। चलते-चलते वे बहुत दूर पहुँच गये और दोपहरीके समय मुनिजनसेवित श्रेष्ठ नदी गङ्गाजीके तटपर जा पहुँचे। हंस और सारसोंसे सेवित पुण्यसलिला भागीरथीका दर्शन करके राम और लक्ष्मणसहित सभी महर्षियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उस समय सबने गङ्गाजीके तटपर डेरा डाला और विधिवत् स्नान करके पितरों और देवताओंका तर्पण किया। उसके बाद अग्निहोत्र करके अमृतके समान मीठे हविष्यका भोजन किया। इससे सबका मन प्रसन्न हो गया और सभी महात्मा विश्वामित्रजीको चारों ओरसे घेरकर गङ्गातटपर बैठ गये।

तब रामने विश्वामित्रजीसे पूछा—'मुनिवर! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि तीन मार्गोंसे प्रवाहित होनेवाली ये गङ्गाजी किस प्रकार तीनों लोकोंमें घूमकर समुद्रमें जा मिली हैं।' रामके इस प्रकार प्रश्न करनेपर महामुनि विश्वामित्रजीने गङ्गाजीकी उत्पत्ति और वृद्धिकी कथा आरम्भ की। वे बोले—'राम! हिमवान् नामक एक पर्वत है, जो सम्पूर्ण पर्वतोंका राजा है। वह सब प्रकारके धातुओंका खजाना है। गिरिराज हिमालयकी दो कन्याएँ हैं, जो संसारमें अनुपम सुन्दरी हैं। मेरु पर्वतकी पुत्री मेना हिमवान्‌की पत्नी हैं, वे ही उन दोनों कन्याओंकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जननी हैं। मेनाके गर्भसे जो पहली कन्या उत्पन्न हुई, वही ये गङ्गाजी हैं। ये हिमवान्‌की ज्येष्ठ पुत्री हैं। हिमवान्‌की दूसरी कन्याका नाम उमा है। कुछ कालके पश्चात् देवताओंने देवकार्यकी सिद्धिके लिये त्रिपथगा गङ्गानदीको गिरिराज हिमालयसे माँगा। हिमालयने त्रिभुवनका हित करनेकी इच्छासे स्वच्छन्द पथपर विचरनेवाली अपनी लोकपावनी पुत्री गङ्गाको धर्मपूर्वक उन्हें दे दिया। रघुनन्दन! गिरिराजकी जो दूसरी कन्या उमा थीं, वे कठोर व्रतका पालन करती हुई घोर तपस्यामें लग गयीं। हिमवान्‌ने वह विश्ववन्दिता तपस्विनी कन्या अनुपम प्रभावशाली भगवान् रुद्रको दान कर दी। इस प्रकार श्रेष्ठ नदी गङ्गा और भगवती उमा—ये दोनों गिरिराज हिमालयकी ही कन्याएँ हैं। सारा संसार इनके चरणोंमें मस्तक झुकाता है।'

विश्वामित्रजीकी बात समाप्त होनेपर राम और लक्ष्मण दोनों वीरोंने उनका अभिनन्दन करते हुए कहा—'ब्रह्मन्! आपने यह बड़ी उत्तम धर्मयुक्त कथा सुनायी। अब आप गिरिराज हिमवान्‌की ज्येष्ठ पुत्री गङ्गाका वृत्तान्त विस्तारके साथ सुनाइये। लोकोंको पवित्र करनेवाली गङ्गाजी किस कारण तीन मार्गोंसे प्रवाहित होती हैं? उनकी त्रिपथगा नामसे क्योंकर प्रसिद्धि हुई? तीनों लोकोंमें वे अपनी तीन धाराओंके द्वारा कौन-कौन-से कार्य करती हैं?' रामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर तपस्वी विश्वामित्रने ऋषियोंके बीचमें गङ्गाजीसे सम्बन्ध रखनेवाली सब कथाएँ कहनी प्रारम्भ की। वे बोले—'राम! पहलेकी बात है, अयोध्यामें सगर नामके एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। उन्हें कोई पुत्र नहीं था, अतः वे पुत्र-प्राप्तिके लिये सदा उत्सुक रहा करते थे। विदर्भ-राजकुमारी केशिनी उनकी ज्येष्ठ पत्नी थी। वह बड़ी ही धर्मिष्ठा और सत्यवादिनी थी। सगरकी दूसरी पत्नीका नाम सुमति था, वह अरिष्टनेमिकी कन्या और सुपर्णकी बहिन थी। महाराज सगर अपनी दोनों पत्नियोंके साथ हिमालयपर गये और भृगुप्रश्रवण नामक शिखरपर (जहाँ भृगु मुनिका आश्रम था) घोर तपस्या करने लगे। सौ वर्ष पूरे होनेपर महर्षि भृगु उनकी तपस्यासे प्रसन्न हुए। उन्होंने महाराज सगरको वरदान दिया—'राजन्! तुम्हें बहुत-से पुत्रोंकी प्राप्ति होगी और संसारमें तुम्हारी अतुलित कीर्ति फैलेगी। तुम्हारी दो पत्नियोंमेंसे एकको तो एक ही पुत्र होगा, जिसके द्वारा तुम्हारे वंशकी वृद्धि होगी; और दूसरी स्त्री साठ हजार पुत्र उत्पन्न करेगी।' राजासे ऐसा कहकर परम धर्मात्मा भृगुजीने उनकी रानियोंसे कहा—'देवियो! तुमलोग अपनी इच्छा प्रकट करो, तुम्हें वंश चलानेवाला एक ही पुत्र चाहिये या महान् बली, यशस्वी और अत्यन्त उत्साही बहुत-से पुत्र? इन दो वरोंमेंसे किसको कौन-सा वर चाहिये?'

'रघुनन्दन! भृगु मुनिका वचन सुनकर केशिनीने वंश चलानेवाले एक ही पुत्रका वरदान माँगा और सुपर्णकी बहिन सुमतिने महान् उत्साही तथा यशस्वी साठ हजार पुत्र पानेकी इच्छा प्रकट की। तत्पश्चात् राजा सगरने महर्षि भृगुकी परिक्रमा करके उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और दोनों रानियोंको साथ लेकर अपनी राजधानीको चले गये। कुछ काल व्यतीत होनेपर बड़ी रानी केशिनीने सगरके औरस पुत्र असमञ्जको जन्म दिया और छोटी रानी सुमतिने तूँबीके आकारका एक गर्भपिण्ड उत्पन्न किया। उसको फोड़नेसे साठ हजार बालक निकले। उन्हें घीसे भरे हुए घड़ोंमें रखकर धाइयाँ उनका पालन-पोषण करने लगीं। धीरे-धीरे जब बहुत दिन बीत गये तो वे बालक युवा अवस्थाको प्राप्त हुए। सगरका ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज नगरके बालकोंको पकड़कर सरयूके जलमें फेंक देता और जब वे डूबने लगते तो उनकी ओर देखकर हँसा करता। इस प्रकार पापाचारमें प्रवृत्त होकर जब वह सत्पुरुषोंको पीड़ा देने और नगरनिवासियोंका अहित करने लगा तो पिताने उसे नगरसे बाहर निकाल दिया। असमञ्जके पुत्रका नाम था अंशुमान्। वह बड़ा ही पराक्रमी, मधुरभाषी तथा सब लोगोंको प्रिय था। कुछ कालके अनन्तर महाराज सगरके मनमें यह विचार हुआ कि 'मैं यज्ञ करूँ।' इस बातका निश्चय करके वे वेदवेत्ता नरेश अपने उपाध्यायोंके साथ यज्ञ करनेकी तैयारीमें लग गये। हिमालय और विन्ध्य-पर्वतके मध्यभागमें जो देश है, उसीमें उनके यज्ञका आरम्भ हुआ। वही देश यज्ञ करनेके लिये उत्तम माना गया है। राजा सगरकी आज्ञासे यज्ञिय अश्वकी रक्षाका भार महारथी अंशुमान्‌ने स्वीकार किया था। किन्तु पर्वके दिन यज्ञमें लगे हुए सगरके यज्ञसम्बन्धी घोड़ेको इन्द्रने राक्षसका रूप धारण करके चुरा लिया। घोड़ेकी चोरी होती देख उपाध्यायोंने यजमानसे कहा—'राजन्! आज पर्वके दिन कोई इस यज्ञिय अश्वको चुराकर बड़े वेगसे लिये जा रहा है। चोरको मारिये और घोड़ा वापस लाइये। नहीं तो यज्ञमें विघ्न पड़ जायगा और यह हम सब लोगोंके लिये अमङ्गलका कारण होगा। आप ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे यह यज्ञ निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण हो जाय।'



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


"यज्ञ-सभामें बैठे हुए राजा सगरने उपाध्यायोंकी बात सुनकर अपने साठ हजार पुत्रोंसे कहा—'पुत्रो ! समुद्रसे घिरी हुई सारी पृथ्वीमें घूम-घूमकर घोड़ेका पता लगाओ। एक-एक योजन भूमि बाँटकर उसे छान डालो। मेरी आज्ञासे अश्व चुरानेवालेकी खोजमें लग जाओ और जबतक घोड़ा न दीखे तबतक जमीन खोदते रहो। मैं यज्ञकी दीक्षा ले चुका हूँ, इसलिये उपाध्यायों तथा पौत्र अंशुमान्‌के साथ घोड़ेसहित तुम्हारी बाट देखता हुआ यहीं रहूँगा।' पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके वे महाबली राजकुमार घोड़ेकी खोजमें बड़ी प्रसन्नतासे पृथ्वीपर घूमने लगे। उनमेंसे एक-एकने अपनी वज्रके समान सुदृढ़ भुजाओंके द्वारा एक-एक योजन लंबी-चौड़ी जमीन खोद डाली। इस प्रकार पर्वतोंसे पूर्ण जम्बूद्वीपकी भूमि खोदते हुए वे राजकुमार सब ओर चक्कर लगाने लगे। उन सगरपुत्रोंके हाथसे जब पृथ्वी खोदी जा रही थी, उस समय उससे वज्रपातके समान बड़ा भयंकर शब्द होता था। इस तरह सारी पृथ्वी खोदकर तथा उसकी परिक्रमा करके वे सभी राजकुमार पिताके पास खाली हाथ लौट आये और बोले—'पिताजी ! हमने सारी पृथ्वी छान डाली; देव, दानव, राक्षस, पिशाच और नाग आदि बड़े-बड़े बलवान् प्राणियोंको मार डाला; फिर भी हमें न तो कहीं घोड़ा दिखायी दिया और न घोड़ेका चुरानेवाला ही। अब हम क्या करें, आप ही कोई उपाय सोचकर बताइये।' पुत्रोंकी बात सुनकर राजा सगर कुपित होकर बोले—'जाओ, फिरसे सारी पृथ्वी खोदो और इसे फोड़कर घोड़ेके चोरका पता लगाओ। काम पूरा हुए बिना न लौटना।' अपने महात्मा पिताकी बात मानकर वे साठ हजार राजकुमार रसातलकी ओर बढ़े और रोषमें भरकर पृथ्वी खोदने लगे। इस बार वे महाबली वीर बड़े भयंकर वेगसे अपने कार्यमें लगे थे। थोड़ी ही देरमें उन्हें सनातन विष्णुके अंशावतार भगवान् कपिलका दर्शन हुआ। उनके पास ही वह यज्ञका घोड़ा इधर-उधर घूम रहा था। घोड़ेको पाकर उन्हें बड़ी खुशी हुई; किन्तु कपिलजीको अपने यज्ञमें विघ्न डालनेवाला समझकर उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वे हाथमें कुदाल, हल और नाना प्रकारके वृक्ष तथा पत्थरोंके टुकड़े लेकर 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए चारों ओरसे उनपर टूट पड़े। निकट जानेपर उन्होंने कहा—'अरे मूर्ख ! तू हमारे यज्ञके घोड़ेको चुराकर यहाँ आ छिपा है। हम राजा सगरके पुत्र हैं, यहाँ भी तुम्हारा पता लगाते हुए आ पहुँचे।'

"सगर-पुत्रोंकी बात सुनकर भगवान् कपिलको बड़ा रोष हुआ और उस रोषके आवेशमें ही उनके मुँहसे हुंकारका शब्द निकल पड़ा। उस शब्दके होते ही सगरके सभी

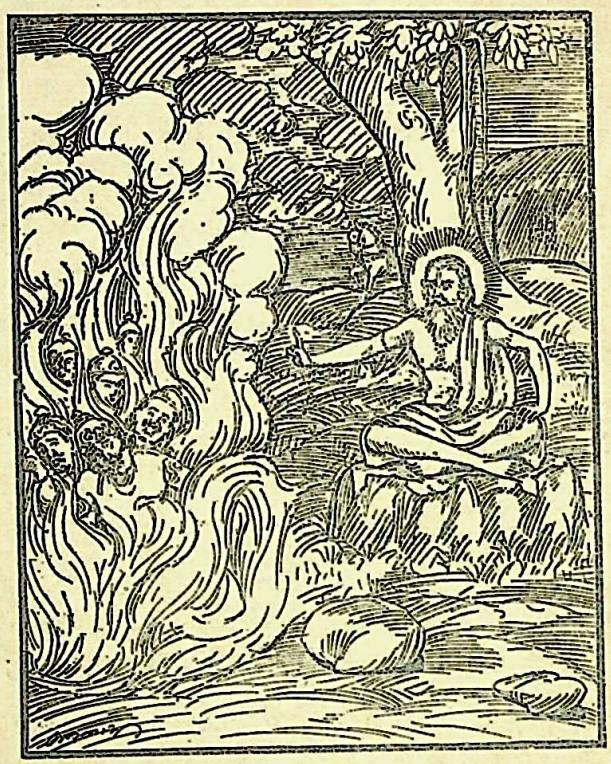

पुत्र राखके ढेर हो गये। 'पुत्रोंके गये बहुत दिन हो गये' ऐसा जानकर राजा सगरने अपने पौत्र अंशुमान्‌से कहा—'बेटा ! तुम शूरवीर, विद्वान् और अपने पूर्वजोंके तुल्य पराक्रमी हो। तुम भी अपने चाचाओंके पथका अनुसरण करो और घोड़ेके चोरका पता लगाओ। देखो, पृथ्वीके भीतर बड़े बलवान् जीव रहते हैं; उनका मुकाबला करनेके लिये तलवार और धनुष भी लेते जाओ। जो वन्दनीय हों, उन्हें प्रणाम करना और जो तुम्हारे मार्गमें विघ्न डालें, उनको मार डालना। जाओ, कार्य सिद्ध करके लौटो और मेरे इस यज्ञको पूर्ण कराओ।' महात्मा सगरके ऐसा कहनेपर शीघ्र पराक्रम कर दिखानेवाला वीरवर अंशुमान् धनुष और तलवार लेकर चल दिया। उसके चाचाओंने पृथ्वीके भीतर जो मार्ग बना दिया था, उसीसे चलकर वह उस स्थानपर जा पहुँचा जहाँ सगरके सभी पुत्र राखके ढेर हुए पड़े थे। उनकी मृत्युसे अंशुमान्‌को बड़ा दुःख हुआ और वह आर्तभावसे फूट-फूटकर रोने लगा। उसने पास ही चरते हुए यज्ञके घोड़ेको भी देखा। फिर दुःख और शोकमें डूबे हुए अंशुमान्‌ने सगर-पुत्रोंका तर्पण करनेके लिये जलकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इच्छा की, किन्तु वहाँ कहीं भी जलाशय नहीं दिखायी दिया। इसके बाद उसने दूरतक दृष्टि फैलायी तो पक्षिराज गरुड़को देखा। वायुके समान वेगसे चलनेवाले गरुड़जी सगरपुत्रोंके मामा थे। उन्होंने अंशुमान्‌से कहा—'नरश्रेष्ठ! तुम शोक मत करो। इनका वध संसारके मंगलके लिये हुआ है। अप्रमेय महात्मा कपिलजीने इन महाबली राजकुमारोंको भस्म किया है। इन्हें साधारण जलकी अञ्जलि देना उचित नहीं है। हिमालयकी बड़ी पुत्री, जो गङ्गाजी हैं, उन्हींके जलसे इन अपने चाचाओंका तर्पण करो। गङ्गाजी जगत्‌को पवित्र करनेवाली हैं। जिस समय राखके ढेर होकर गिरे हुए इन साठ हजार राजकुमारोंको वे अपने जलसे आप्लावित करेंगी, उसी समय इन सबको स्वर्गलोक पहुँचा देंगी। इसलिये अब तुम यज्ञका घोड़ा लेकर यहाँसे जाओ और अपने पितामहका यज्ञ पूर्ण कराओ।'

"गरुड़की बात सुनकर महापराक्रमी अंशुमान् घोड़ा लेकर तुरंत लौट आया। उसके मुँहसे वह भयंकर समाचार सुनकर राजाने कल्पोक्त नियमके अनुसार यज्ञको विधिवत् पूर्ण किया और फिर अपनी राजधानीमें चले आये। वहाँ आनेपर उन्होंने गङ्गाजीके ले आनेके विषयमें बहुत विचार किया; किन्तु वे किसी निश्चयपर न पहुँच सके। बहुत दिनोंके बाद भी उन्हें कोई निश्चित उपाय नहीं सूझा और तीस हजार वर्षोंतक राज्य करके वे स्वर्गलोकको चले गये। सगरकी मृत्यु हो जानेपर प्रजाजनोंने परम धार्मिक अंशुमान्‌को राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया। अंशुमान् बड़े विख्यात राजा हुए। उनके एक पुत्र हुआ, जिसकी महाराज दिलीपके नामसे प्रसिद्धि हुई। अंशुमान् दिलीपको राज्य देकर हिमालयको चले गये और वहाँ एक रमणीय शिखरपर बैठकर कठोर तपस्या करने लगे। उन महान् यशस्वी नरेशने बत्तीस हजार वर्षोंतक तपस्या की और अन्तमें तपोवनमें ही शरीर त्यागकर स्वर्ग प्राप्त किया। महातेजस्वी दिलीप भी अपने पितामहोंका वध सुनकर बहुत दुखी रहते थे। अपनी बुद्धिसे बहुत सोचने-विचारनेके बाद भी वे किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके। वे सदा इसी चिन्तामें रहने लगे कि इस पृथ्वीपर गङ्गाका आना कैसे सम्भव हो, कैसे पितामहोंका तर्पण किया जाय और किस प्रकार उनका उद्धार हो। महाराज दिलीपकी यह चिन्ता कभी दूर नहीं होती थी। उन्होंने धर्माचरणके द्वारा आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त किया था। समयानुसार उनके परम धार्मिक भगीरथ नामका पुत्र हुआ। उसके बाद महातेजस्वी दिलीपने अनेकों यज्ञ किये और तीस हजार वर्षोंतक राज्यका पालन किया। इतने समयमें भी उन्हें अपने पितरोंके उद्धारका कोई निश्चित उपाय नहीं सूझा और अन्तमें रोगके शिकार होकर वे कालके गालमें चले गये। उन्होंने अपने जीवन-कालमें ही पुत्र भगीरथको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया था और वे स्वयं अपने किये हुए पुण्यकर्मोंके प्रभावसे इन्द्रलोकको प्राप्त हुए।

"राजर्षि भगीरथ बड़े धर्मात्मा थे। उन्हें कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये अपने राज्यका भार मन्त्रियोंके ऊपर रखकर वे गङ्गाजीको भूलोकमें उतारनेके प्रयत्नमें लग गये। वे गोकर्णतीर्थमें रहकर घोर तपस्या करने लगे। अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर खड़े-खड़े पञ्चाग्निका ताप सहते और इन्द्रियोंको काबूमें रखकर एक-एक महीनेपर आहार ग्रहण करते थे। इस प्रकार घोर तपस्यामें लगे हुए राजा भगीरथके एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये। तब प्रजाओंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न होकर देवताओंके साथ वहाँ आये और तपस्यामें लगे हुए भगीरथसे बोले—'महाराज! तुम्हारी इस उत्तम तपस्यासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर माँगो।' राजा भगीरथ हाथ जोड़े खड़े थे। उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि इस तपस्याका कुछ फल है तो मैं यही चाहता हूँ कि राजा सगरके सभी पुत्रोंको मेरे हाथसे गङ्गाजीका जल प्राप्त हो। गङ्गाजीके जलसे उनकी भस्मराशिके आप्लावित होनेपर मेरे सभी प्रपितामहोंको अक्षय स्वर्गलोक मिले। भगवन्! एक प्रार्थना और है—मेरे कोई सन्तान नहीं है, अतः उसके लिये भी याचना करता हूँ। हमारे कुलकी परम्परा कभी नष्ट न हो। मेरा यह वर समस्त इक्ष्वाकुवंशके लिये लागू होना चाहिये।' राजा भगीरथके ऐसा कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजीने परम कल्याण-मयी मधुर वाणीमें कहा—'भगीरथ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा यह महान् मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। ये हैं हिमालयकी ज्येष्ठ पुत्री गङ्गाजी। इनको धारण करनेके लिये भगवान् शङ्करको तैयार करो। गङ्गाके गिरनेके वेगको यह पृथ्वी नहीं सह सकेगी। भगवान् शङ्करके सिवा मैं और किसीको ऐसा नहीं देखता, जो गङ्गाजीको धारण कर सके।' ऐसा कहकर ब्रह्माजीने भगवती गङ्गाजीसे भी भगीरथपर अनुग्रह करनेके लिये कहा। इसके बाद वे देवताओंके साथ स्वर्गलोकको चले गये।

"देवाधिदेव ब्रह्माजीके चले जानेपर राजा भगीरथ अँगूठेके अग्रभागके सहारे खड़े होकर एक वर्षतक भगवान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शङ्करकी उपासनामें लगे रहे। वर्ष पूरा होनेपर विश्व-वन्दित उमानाथ भगवान् शिवने प्रकट होकर कहा—'नरश्रेष्ठ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा। गिरिराज हिमालयकी पुत्री गङ्गादेवीको अपने मस्तकपर धारण करूँगा।' शङ्करजीकी स्वीकृति मिल जानेपर हिमवान्‌की ज्येष्ठ कन्या गङ्गाजी, जिनके चरणोंमें सारा संसार मस्तक झुकाता है, बहुत बड़ा रूप धारण करके अपने वेगको असह्य बनाकर आकाशसे शङ्करके मस्तकपर गिरीं। उन्होंने सोचा—'मैं अपने वेगसे शङ्करको बहाती हुई पातालमें घुस जाऊँगी।' उनका यह अहंकार भगवान् शङ्करसे छिपा न रहा, अतः उन्होंने गङ्गाको अदृश्य कर देनेका विचार किया। पुण्यस्वरूपा गङ्गा जब भगवान् शङ्करके पवित्र मस्तकपर गिरीं तो उनके जटाओंके जालमें इस प्रकार उलझ गयीं कि यत्न करनेपर भी किसी तरह पृथ्वीपर न जा सकीं। जटा-मण्डलसे बाहर निकलनेका उन्हें कोई रास्ता ही नहीं मिला। अन्ततोगत्वा वे अनेकों वर्षोंतक शिवके जटा-जूटमें ही भटकती रहीं।

आकाशसे उतर आनेपर भी जब गङ्गाजीका दर्शन नहीं हुआ तो फिर महाराज भगीरथ कठोर तपस्यामें लग गये। इससे अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् शिवने गङ्गाको विन्दु सरोवरमें ले जाकर छोड़ दिया। छूटते ही उनकी सात धाराएँ हो गयीं। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी—ये तीन शीतल जलवाली धाराएँ पूर्व दिशाकी ओर चली गयीं। सुचक्षु, सीता और महानदी सिन्धु—ये तीन धाराएँ पश्चिम दिशाको प्रवाहित हुईं। सातवीं धारा महाराज भगीरथके रथके पीछे-पीछे चली। राजर्षि भगीरथ दिव्य रथपर सवार हो आगे-आगे चले और गङ्गा उनके पीछे-पीछे जाने लगीं। उस समय देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और सिद्धगण नगरके समान आकारवाले विमानोंपर बैठकर आकाशसे पृथ्वीपर गयी हुई गङ्गाजीके अवतरणकी शोभा निहारने लगे। गङ्गाकी वह धारा कहीं तेज, कहीं टेढ़ी और कहीं चौड़ी होकर बहती थी। कहीं बिल्कुल नीचेकी ओर गिरती और कहीं ऊँचेकी ओर उठी हुई थी। कहीं समतल भूमिपर बहुत धीरे-धीरे बहती थी और कहीं उसमें जलकी जलसे ही टक्कर लगती रहती थी। उस समय भूतलनिवासी ऋषि और गन्धर्व यह सोचकर कि भगवान् शङ्करके मस्तकसे गिरा हुआ यह जल बहुत ही पवित्र है, उसमें आचमन करने लगे। जो शापभ्रष्ट होकर आकाशसे पृथ्वीपर आ गये थे, वे गङ्गाके जलमें स्नान करके निष्पाप हो गये तथा उस जलसे पाप धुल जानेके कारण पुण्यस्वरूप हो पुनः आकाशमें पहुँचकर अपने-अपने लोकको पा गये। उस प्रकाशमान जलके सम्पर्कसे सम्पूर्ण जगत्‌को बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी लोग गङ्गामें स्नान करके पापहीन हो गये।

राजर्षि भगीरथ दिव्य रथपर बैठकर आगे चल रहे थे और गङ्गाजी उनके पीछे-पीछे जा रही थीं। उस समय देवता, ऋषि, दैत्य, दानव, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग, सर्प तथा अप्सराएँ—ये सब प्रसन्नताके साथ भगीरथके रथके पीछे गङ्गाजीके साथ-साथ चल रहे थे। रास्तेमें अद्भुत पराक्रमी महाराज जह्नु यज्ञ कर रहे थे। गङ्गाजी अपने प्रवाहसे उनके यज्ञ-मण्डपको बहा ले गयीं। जह्नुने इसे गङ्गाजीका प्रमाद समझा और उनके सारे जलको पी लिया। यह एक अद्भुत बात हुई। देवता, गन्धर्व और ऋषि सभी अत्यन्त विस्मित होकर महात्मा जह्नुकी स्तुति करने लगे। तब महातेजस्वी जह्नुने प्रसन्न होकर अपने कानोंके द्वारा गङ्गाको बाहर निकाल दिया। इस कारण गङ्गाजी जह्नुकी पुत्री कहलाती हैं और तभीसे उनका नाम 'जाह्नवी' पड़ गया। वहाँसे फिर वे भगीरथके रथका अनुसरण करने लगीं और भगीरथका कार्य सिद्ध करनेके लिये रसातलमें जा पहुँचीं। वहाँ सगरपुत्रोंके शरीरकी जो भस्म-राशि पड़ी थी, उसे उन्होंने अपने जलसे आप्लावित कर दिया और वे सभी राजकुमार निष्पाप होकर स्वर्गमें पहुँच गये।

"राम! इस प्रकार राजा भगीरथने गङ्गाजीको साथ लिये समुद्रतक जाकर रसातलमें, जहाँ उनके पूर्वज भस्म हुए थे, प्रवेश किया। वह भस्मराशि जब गङ्गाजीके जलमें विलीन हो गयी तो सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीने प्रकट होकर कहा—'राजन्! तुमने अपने पूर्वजोंका उद्धार कर दिया। महात्मा सगरके साठ हजार पुत्र देवताओंकी भाँति स्वर्गमें प्रतिष्ठित हो गये। संसारमें सागरका जल जबतक मौजूद रहेगा, तबतक सगरके सभी पुत्र देवताओंकी भाँति स्वर्गलोकमें निवास करेंगे। ये गङ्गा तुम्हारी ज्येष्ठ पुत्री मानी जायँगी और तुम्हारे नामपर रखे हुए 'भागीरथी' नामसे इस जगत्‌में प्रसिद्ध होंगी। त्रिपथगा और भागीरथी—इन दोनों नामोंसे दिव्य नदी गङ्गाकी प्रसिद्धि होगी। ये अपनी धाराओंसे तीनों लोकोंके पथको पवित्र करती हैं, इसलिये त्रिपथगा कहलायँगी। महाराज! अब तुम गङ्गाजीके जलसे अपने सभी पितामहोंका तर्पण करके अपनी की हुई प्रतिज्ञाको पूर्ण करो। राजा अंशुमान् और तुम्हारे पिता राजर्षि दिलीप भी गङ्गाको यहाँ लाना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते थे, किन्तु वे सफलमनोरथ न हो सके। तुमने गङ्गाजीको लानेकी प्रतिज्ञा पूरी कर ली, इससे संसारमें तुम्हें महान् यशकी प्राप्ति हुई है। गङ्गाजीको यहाँ लाकर तुमने महान् धर्मका उपार्जन किया है। गङ्गाजीका जल सदा ही स्नानके योग्य है। इसमें स्वयं भी स्नान करके पवित्र हो जाओ और पुण्यका फल प्राप्त करो। अपने सभी पितामहोंका तर्पण करो। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं अपने लोकको जाऊँगा। तुम भी अपनी राजधानीको लौट जाओ।' ऐसा कहकर लोकपितामह ब्रह्माजी जैसे आये थे वैसे ही देवलोकको लौट गये। राजर्षि भगीरथ भी उस उत्तम जलसे सगर-पुत्रोंका विधिवत् तर्पण करके अपने नगरको गये। राजाके लौट आनेसे प्रजाको बड़ा आनन्द हुआ। सबका शोक जाता रहा।

"राम! यह गङ्गाजीकी कथा विस्तारके साथ मैंने तुम्हें सुना दी। तुम्हारा कल्याण हो; अब जाओ, स्नान आदि नित्यकर्म करो। सन्ध्याका समय बीता जा रहा है। यह गङ्गावतरणका उपाख्यान धन, यश, आयु, पुत्र और स्वर्ग प्रदान करनेवाला है। जो पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा अन्य वर्णके लोगोंको यह प्रसङ्ग सुनाता है, उसके ऊपर देवता और पितर प्रसन्न होते हैं। गङ्गावतरणका यह शुभ वृत्तान्त आयु बढ़ानेवाला है। जो प्रतिदिन इसका श्रवण करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और उसकी आयु तथा कीर्तिका विस्तार होता है।"

## अहल्याका उद्धार

विश्वामित्रजीकी बातें सुनकर लक्ष्मणसहित रामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे कहने लगे—'ब्रह्मन्! आपने गङ्गाजीके स्वर्गसे उतरने और समुद्रके भरनेकी यह बड़ी अद्भुत कथा सुनायी। लक्ष्मणके साथ इस सुन्दर कथापर विचार करते हुए मेरी यह रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी है।' तत्पश्चात् निर्मल प्रभातकाल उपस्थित होनेपर विश्वामित्रजी जब नित्य-कर्मसे निवृत्त हो चुके तो रामचन्द्रजीने उनके पास जाकर कहा—'मुनिवर! रात बीत गयी, अब हमलोगोंको सरिताओंमें श्रेष्ठ पुण्यसलिला भागीरथीके उस पार चलना चाहिये। सदा पुण्यकर्ममें तत्पर रहनेवाले ऋषियोंकी यह नाव उपस्थित है। इसपर सुखद आसन बिछा है। आप इस तटपर विराजमान हैं, यह जानकर ऋषियोंकी भेजी हुई यह नाव बड़ी तेजीके साथ यहाँ आयी है।' रामचन्द्रजीके वचन सुनकर विश्वामित्रजीने पहले ऋषियोंसहित राम-लक्ष्मणको पार कराया। तत्पश्चात् स्वयं भी उत्तर तटपर पहुँचकर उन्होंने वहाँ रहनेवाले ऋषियोंका सत्कार किया। उस समय सब लोग गङ्गाजीके किनारे ठहरकर विशालानामक पुरीकी शोभा देखने लगे। वह नगरी बड़ी ही दिव्य और रमणीय थी तथा अपनी सुषमासे स्वर्गको भी मात कर रही थी। मुनिवर विश्वामित्रजी तुरंत ही राम और लक्ष्मणको साथ लेकर उस पुरीकी ओर चल दिये और वहाँ एक रात निवास करके सब लोग मिथिलाकी ओर प्रस्थित हुए। मिथिलामें पहुँचनेपर जनकपुरीकी सुन्दर शोभा देख सभी महर्षि उसकी प्रशंसा करने लगे। रामचन्द्रजीने देखा मिथिलाके उपवनमें एक पुराना आश्रम है, जो अत्यन्त रमणीय होते हुए भी सुनसान दिखायी देता है। उसे देखकर उन्होंने मुनिवर विश्वामित्रजीसे पूछा—'महर्षे! यह कैसा स्थान है? यह देखनेमें तो आश्रम-जैसा है, परन्तु एक भी मुनि यहाँ दिखायी नहीं देते। मैं जानना चाहता हूँ कि पूर्वकालमें यहाँ किसका आश्रम था?'

रामका प्रश्न सुनकर महामुनि विश्वामित्रजीने कहा—"रघुनन्दन! पूर्वकालमें यहाँ महात्मा गौतमका आश्रम था। उस समय यह स्थान बड़ा ही दिव्य जान पड़ता था। देवता भी इसकी पूजा किया करते थे। महर्षि गौतम अपनी पत्नी अहल्याके साथ रहकर यहाँ तप किया करते थे। उन्होंने इस आश्रमपर अनेकों वर्ष व्यतीत किये हैं। एक समयकी बात है, गौतमजी आश्रमसे कहीं अन्यत्र चले गये थे। उन्हें अनुपस्थित जानकर शचीपति इन्द्रने मुनिका वेष धारण किया और अहल्याके पास जाकर कहा—'सुन्दरी! मैं तुम्हारे साथ समागम चाहता हूँ।' अहल्याकी भी बुद्धि मारी गयी। उसने मुनिके वेषमें इन्द्रको पहचानकर भी कौतूहलवश उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अहल्यासे समागम कर जब इन्द्र कुटीसे बाहर निकले तो गौतमके आ जानेकी आशङ्कासे बड़ी उतावलीके साथ भागनेका प्रयत्न करने लगे। इतनेमें ही उन्होंने देखा तपोबलसम्पन्न महामुनि गौतम आश्रममें प्रवेश कर रहे हैं। वे हाथमें समिधा और कुशा लिये हुए थे। उनका तेज अग्निके समान उद्दीप्त हो रहा था। उनपर दृष्टि पड़ते ही देवराज इन्द्र भयसे थर्रा उठे, उनके मुखपर विषाद छा गया। दुराचारी इन्द्रको मुनिका वेष धारण किये देख सदाचारसम्पन्न मुनिवर गौतमजीने रोषमें भरकर कहा—'दुर्बुद्धे! तूने मेरा रूप धारण करके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यह पाप-कर्म किया है, इसलिये तू विफल ( अण्डकोषोंसे रहित ) हो जायगा ।' महात्मा गौतमके क्रोधपूर्वक ऐसा कहनेपर इन्द्रके दोनों अण्डकोष उसी क्षण पृथ्वीपर गिर पड़े । इन्द्रको इस प्रकार शाप देकर गौतमने अपनी पत्नीको भी शाप दिया—'दुराचारिणी ! तू भी यहाँ कई हजार वर्षोंतक केवल हवा पीकर या उपवास करके कष्ट उठाती हुई राखमें पड़ी रहेगी । समस्त प्राणियोंसे अदृश्य रहकर इस आश्रममें निवास करेगी । जब दशरथकुमार राम इस घोर वनमें पदार्पण करेंगे, उस समय तू पवित्र होगी । उनका आतिथ्य-सत्कार करनेसे तेरे लोभ-मोह आदि दोष दूर हो जायँगे और तू प्रसन्नतापूर्वक अपना पूर्व शरीर धारण करके मेरे पास पहुँच जायगी ।' ऐसा कहकर महातेजस्वी गौतमने इस आश्रमको त्याग दिया और सिद्ध तथा चारणोंसे सेवित हिमालयके रमणीय शिखरपर जाकर तपस्या करने लगे । रघुनन्दन ! तुम बड़े तेजस्वी हो, पुण्यात्मा महर्षि गौतमके इस आश्रमपर चलो और देवरूपिणी महाभागा अहल्याका उद्धार करो ।" यह सुनकर लक्ष्मणसहित रामने विश्वामित्रजीको आगे करके उस आश्रममें प्रवेश किया । वहाँ जाकर उन्होंने देखा महासौभाग्यशालिनी अहल्या अपनी तपस्यासे देदीप्यमान हो रही है । गौतमके शापवश रामचन्द्रजीका दर्शन होनेके पहले किसी भी प्राणीके लिये अहल्याका दर्शन होना कठिन था । अब रामका दर्शन मिल जानेसे जब उसके शापका अन्त हो गया तो वह सबको दिखायी देने लगी । उस समय राम और लक्ष्मणने बड़ी प्रसन्नताके साथ उसके दोनों चरणोंका स्पर्श किया । महर्षि गौतमके वचनोंका स्मरण करके अहल्याने बड़ी सावधानीके साथ पाद्य, अर्घ्य आदिके द्वारा उन दोनों भाइयोंका अतिथि-सत्कार किया । भगवान् रामने भी शास्त्रीय विधिके अनुसार अहल्याके आतिथ्यको स्वीकार किया । उस समय देवताओंकी दुन्दुभि बज उठी और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी । अहल्या अपनी तपःशक्तिसे विशुद्ध स्वरूपको प्राप्त हुई—यह देख सम्पूर्ण देवता उसकी प्रशंसा करने लगे ।

## मिथिलामें जनकके द्वारा विश्वामित्र आदिका सत्कार, शतानन्दका रामसे विश्वामित्रके पूर्वचरित्रका वर्णन—विश्वामित्रका वसिष्ठसे पराभव

तदनन्तर लक्ष्मणसहित राम विश्वामित्रजीको आगे करके महर्षि गौतमके आश्रमसे ईशानकोणकी ओर चले और मिथिलानरेशके यज्ञमण्डपमें जा पहुँचे । वहाँ रामने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे कहा—'महाभाग ! महात्मा जनकके यज्ञका समारोह तो बड़ा सुन्दर दिखायी दे रहा है । यहाँ नाना देशोंके रहनेवाले हजारों ब्राह्मण जुटे हुए हैं, जो वेदोंके स्वाध्यायसे शोभा पा रहे हैं । अब ऐसा कोई स्थान निश्चय कीजिये, जहाँ हमलोग भी पड़ाव डालें ।' रामचन्द्रके वचन सुनकर महामुनि विश्वामित्रने एकान्त स्थानमें डेरा डाला, जहाँ पानीका सुभीता था । महाराज जनकने जब सुना कि विश्वामित्रजी पधारे हैं तो वे तुरंत अपने पुरोहित शतानन्दको आगे करके अर्घ्य लिये विनीत भावसे उनका स्वागत करनेको चल दिये । उनके साथ कई ऋत्विज महानुभाव भी थे । समीप जाकर राजाने धर्मके अनुसार विश्वामित्रका पूजन किया । विश्वामित्रजीने वह पूजा स्वीकार करके महात्मा राजा जनकका कुशल-समाचार पूछा । उनके यज्ञकी निर्बाध स्थितिके सम्बन्धमें भी जिज्ञासा की । साथ ही वहाँ आये हुए अन्य ऋषि-मुनियों, उपाध्यायोंकी कुशल पूछी और सबके साथ योग्यताके अनुसार मिले-जुले । उसके बाद राजा जनकने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे हाथ जोड़कर कहा—'भगवन् ! आप इन सब मुनीश्वरोंके सहित आसनपर विराजमान होइये ।' यह सुनकर महामुनि विश्वामित्र आसनपर बैठ गये । उनके साथ पुरोहित, ऋत्विज, राजा तथा उनके मन्त्री भी सब ओर

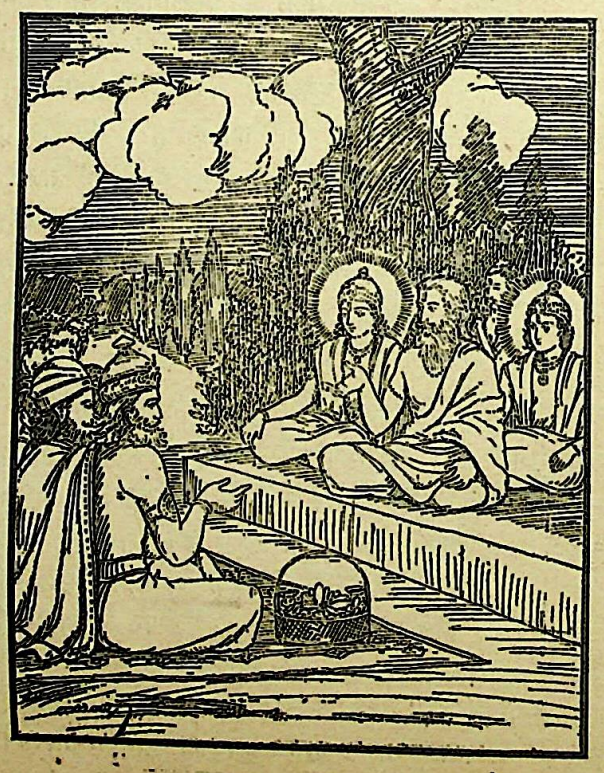

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

यथायोग्य आसनोंपर विराजमान हो गये। तदनन्तर राजाने विश्वामित्रजीकी ओर देखकर कहा—'भगवन्! आज देवताओंने मेरे यज्ञकी आयोजना सफल कर दी। आज श्रीचरणोंके दर्शनसे मुझे यज्ञका फल प्राप्त हो गया। मेरे यज्ञमण्डपमें इतने महर्षियोंके साथ आपने पदार्पण किया, इससे मैं धन्य हो गया। यह आपका मेरे ऊपर बहुत बड़ा अनुग्रह है। महामुने! देवताके समान पराक्रमी और सुन्दर आयुध धारण करनेवाले ये दोनों राजकुमार, जो अपने मनोहर रूपसे अश्विनीकुमारोंको भी लज्जित कर रहे हैं, जिन्होंने अभी-अभी यौवनावस्थामें प्रवेश किया है तथा जो स्वेच्छानुसार देवलोकसे उतरकर पृथ्वीपर आये हुए दो देवताओंके समान जान पड़ते हैं, किसके पुत्र हैं? और यहाँ किसलिये पैदल ही पधारे हैं? इन दोनोंके शरीरकी ऊँचाई, इशारे और चेष्टाएँ एक दूसरेसे बहुत मिलती-जुलती हैं। मैं इन वीरोंका वृत्तान्त यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।'

महात्मा जनककी बात सुनकर विश्वामित्रजीने कहा—'ये दोनों महाराज दशरथके पुत्र हैं।' इसके बाद उन्होंने उन दोनोंके सिद्धाश्रममें निवास, राक्षसोंके वध, बिना किसी घबराहटके मिथिलातक आने और अहल्याके दर्शन आदि कार्योंका विस्तारके साथ वर्णन किया। अन्तमें यह भी बतलाया कि 'ये आपके यहाँ रखे हुए महान् धनुषके सम्बन्धमें कुछ जाननेकी इच्छासे यहाँतक आये हैं।' ये सब बातें निवेदन करके महामुनि विश्वामित्रजी चुप हो गये। उनकी बातें सुनकर गौतमके ज्येष्ठ पुत्र महातपस्वी शतानन्दके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे रामचन्द्रजीके दर्शनमात्रसे ही बड़े विस्मित हुए। उन राजकुमारोंको सुखपूर्वक बैठे देख शतानन्दने विश्वामित्रजीसे पूछा—'महर्षे! मेरी यशस्विनी माता अहल्या बहुत दिनोंसे तपस्या कर रही थी, क्या आपने उसे राजकुमार रामके दर्शन कराये? क्या रामचन्द्रजीके दर्शनके प्रभावसे मेरी माता शापसे मुक्त होकर पिताजीसे जा मिली?' उनकी बात सुनकर महामुनि विश्वामित्रने कहा—'मुनिश्रेष्ठ! मैंने कुछ उठा नहीं रक्खा। मेरा जो कर्तव्य था उसे मैंने पूरा किया। तुम्हारी माता अहल्या महर्षि गौतमसे जा मिली।' विश्वामित्रके वचन सुनकर महातेजस्वी शतानन्द रामसे बोले—"नरश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। मेरे बड़े भाग्य थे जो आपने महर्षि विश्वामित्रके साथ यहाँतक आनेका कष्ट उठाया। महर्षि विश्वामित्रके कर्म अचिन्त्य हैं। ये तपस्यासे ब्रह्मर्षि-पदको प्राप्त हुए हैं, इनकी कान्ति असीम है और ये महान् तेजस्वी हैं। मैं इनको जानता हूँ, ये जगत्के परम आधार हैं। रघुनन्दन! आपसे बढ़कर धन्य पुरुष इस भूमण्डलपर दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि कुशिकनन्दन विश्वामित्र आपके रक्षक हैं, इन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की है। मैं महात्मा कौशिकके बल और स्वरूपका यथार्थ वर्णन करता हूँ, आप ध्यान देकर सुनिये। प्राचीन कालमें कुश नामके एक राजा हुए हैं, वे प्रजापतिके पुत्र थे। कुशके बलवान् पुत्रका नाम कुशनाभ हुआ, वह बड़ा ही धर्मात्मा था। कुशनाभके पुत्र गाधि नामसे प्रसिद्ध हुए। ये महान् तेजस्वी महर्षि विश्वामित्रजी महाराज गाधिके ही पुत्र हैं। इन्होंने राजा होकर कई हजार वर्षोंतक राज्य किया है। एक समयकी बात है, महातेजस्वी राजा विश्वामित्र सेना एकत्रित करके एक अक्षौहिणी सेनाके साथ सम्पूर्ण पृथ्वीपर घूम रहे थे। वे अनेकों नगरों, राष्ट्रों, नदियों, बड़े-बड़े पर्वतों और आश्रमोंमें क्रमशः विचरते हुए वसिष्ठके आश्रमपर आये। वह आश्रम नाना प्रकारके फूलों, लताओं और वृक्षोंसे शोभा पा रहा था। बहुत-से ब्राह्मणों, ब्रह्मर्षियों और देवर्षियोंसे भरा था। बहुत-से तपःसिद्ध महात्मा, जो अग्निके समान तेजस्वी थे, उस आश्रमको सनाथ किये रहते थे। ब्रह्माजीके समान प्रभावशाली महापुरुष वहाँ सब ओर भरे रहते थे। वहाँ कोई जल पीकर रहता था तो कोई केवल हवा पीकर। कितने ही महात्मा फल-मूल खाकर अथवा सूखे पत्ते चबाकर रहते थे। राग आदि दोषोंको जीतकर मन और इन्द्रियोंपर काबू रखनेवाले बहुत-से ऋषि, जप-होममें लगे हुए वालखिल्य मुनिगण तथा अन्यान्य वैखानस महात्मा सब ओरसे उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। इन सब विशेषताओंके कारण महर्षि वसिष्ठका वह आश्रम दूसरे ब्रह्मलोकके समान जान पड़ता था।

"महाबली विश्वामित्रजी उस आश्रमको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठको बड़ी विनयके साथ प्रणाम किया। महात्मा वसिष्ठने उनका स्वागत करते हुए बैठनेको आसन दिया तथा उन्हें नाना प्रकारके फल-मूल भेंट किये। उनका आतिथ्य ग्रहण करके महाराज विश्वामित्रने उनके तप, अग्निहोत्र, शिष्यवर्ग और लता-वृक्ष आदिका कुशल-समाचार पूछा। इसके बाद जब वे सुखपूर्वक बैठकर विश्राम करने लगे तो ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजीने पूछा—'राजन्! आप सकुशल तो हैं न? क्या आप धर्मके अनुसार प्रजाको प्रसन्न रखते हुए उसका पालन करते हैं? आप तो स्वयं धर्मपरायण हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


राजोचित बर्तावका त्याग तो नहीं करते ? क्या आप अपने भृत्योंका अच्छी तरह भरण-पोषण करते हैं ? क्या वे आपकी आज्ञाके अधीन रहते हैं ? आपकी सेना, कोष, मित्र तथा पुत्र-पौत्र आदि सब अच्छी तरहसे हैं न ?' महातेजस्वी राजा विश्वामित्रने उत्तर दिया—'हाँ भगवन् ! मेरे यहाँ सर्वत्र कुशल है।' फिर बड़ी देरतक दोनों धर्मात्मा पुरुष बड़े आनन्दके साथ परस्पर वार्तालाप करते रहे। एकका दूसरेके साथ बड़ा प्रेम हो गया। बातचीत करके महर्षि वसिष्ठने विश्वामित्रजीसे हँसकर कहा—'राजन् ! आप बड़े हैं, पराक्रमी हैं, मैं आपका तथा आपकी सेनाका अतिथि-सत्कार करना चाहता हूँ। आप अतिथियोंमें श्रेष्ठ हैं, इसलिये यत्नपूर्वक आपका सत्कार करना मेरा कर्तव्य है।' राजा विश्वामित्र बोले—'मुने ! आपके सत्कारपूर्ण वचनोंसे ही मेरा सत्कार हो गया। आपके आश्रमपर जो भी फल, मूल, पाद्य, आचमनीय आदि वस्तुएँ हैं, वे तो मुझे प्राप्त हुई ही हैं; सबसे बढ़कर आपका दर्शन हुआ। इन सबके द्वारा मेरा पूरा आतिथ्य हो गया। महाप्राज्ञ ! आप मेरे पूजनीय हैं, तो भी आपने मेरा भलीभाँति पूजन किया। आपको नमस्कार है। आप मैत्रीपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखिये। अब मैं यहाँसे जाऊँगा।' राजाके ऐसा कहनेपर उदार बुद्धिवाले वसिष्ठजीने उन्हें निमन्त्रण स्वीकार करनेके लिये बार-बार आग्रह किया। तब गाधि-नन्दन विश्वामित्रने कहा—'मुनिश्रेष्ठ ! मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है। जैसी आपकी रुचि हो वैसा कीजिये।' ऐसा कहकर जब उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया तो वसिष्ठजीने प्रसन्न होकर अपनी होमधेनु—कपिला गौको बुलाया और कहा—'कपिले ! शीघ्र यहाँ आओ, मेरी बात सुनो। मैं इन राजर्षि विश्वामित्रजीका तथा इनकी सारी सेनाका उत्तम भोजन आदिके द्वारा सत्कार करना चाहता हूँ। तुम सारी सामग्री जुटा दो। षटरस भोजनोंमेंसे जिसको जो पसंद हो, उसके लिये वही प्रस्तुत करो। तुम दिव्य कामधेनु हो। मेरा प्रिय करनेके लिये इस समय सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थोंकी वर्षा करो। रसयुक्त, भोजन, पान, लेह्य (चटनी आदि) और चोष्य (चूसनेकी वस्तु) से युक्त भाँति-भाँतिके अन्नोंकी ढेरी लगा दो। सभी आवश्यक वस्तुओंकी सृष्टि कर दो, विलम्ब न करो।'

"वसिष्ठ मुनिके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उस कपिला कामधेनुने जिसकी जैसी इच्छा थी, उसके लिये वैसी ही सामग्री जुटा दी। नाना प्रकारकी खाद्य वस्तुएँ, जो बहुत ही उत्तम थीं, प्रस्तुत हो गयीं। गरम-गरम भातकी पर्वतके समान ढेरियाँ लग गयीं। सफाईके साथ बने हुए स्वादिष्ट अन्न और दाल तैयार दिखायी देने लगे। दहीकी तो नदियाँ बह चलीं। भाँति-भाँतिके सुस्वादु रस और खाण्डव उपस्थित हो गये। तरह-तरहके भोजनोंसे भरी हुई चाँदीकी हजारों थालियाँ सज गयीं। उन सभी पदार्थोंको पाकर सब लोगोंको बड़ा सन्तोष हुआ। वसिष्ठजीने विश्वामित्रकी सारी सेनाको भलीभाँति तृप्त कर दिया। राजर्षि विश्वामित्र स्वयं भी बहुत सन्तुष्ट हुए। अमात्यों, मन्त्रियों और सेवकोंके साथ सत्कार पाकर वे बड़े हर्षमें भर गये और महर्षि वसिष्ठसे बोले—'ब्रह्मन् ! आप स्वयं मेरे पूजनीय हैं; तो भी आपने मेरा पूजन किया, हर तरहसे स्वागत-सत्कार किया। अब मैं एक बात कहता हूँ, उसे सुनिये। मुझसे एक लाख गौएँ लेकर यह कपिला गौ मुझे दे दीजिये। यह गौ रत्नरूप है और रत्न लेनेका अधिकारी राजा होता है।' विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर मुनिवर वसिष्ठने उत्तर दिया—'राजन् ! एक लाख गौओंकी तो बात ही क्या है; यदि आप सौ करोड़ भी गौएँ दें और यहाँ चाँदीकी ढेरी लगा दें, तो भी इस कपिला गौको मैं नहीं दे सकता। मेरा हव्य-कव्य और जीवन-निर्वाह इसीपर निर्भर है। अग्निहोत्र, बलि, होम, स्वाहा, वषट्कार और अनेकों प्रकारकी विद्याएँ इस कपिला गौके ही अधीन हैं। सच्ची बात तो यह है कि यह कपिला गौ ही मेरा सर्वस्व है। यही मुझे सब प्रकारसे सन्तुष्ट रखनेवाली है। अनेकों ऐसे कारण हैं, जिनसे इस कपिला गौको मैं नहीं दे सकता।' वसिष्ठकी बात सुनकर राजा विश्वामित्र अत्यन्त आग्रह करते हुए कहने लगे—'मुने ! मैं आपको चौदह हजार हाथी दूँगा, जिनके कसनेवाले रस्से, गलेके आभूषण और अंकुश भी सोनेके बने होंगे। इनके सिवा आठ सौ सुवर्णमय रथ प्रदान करूँगा, जिनमें सोनेके घुँघुरू लगे होंगे और हर एक रथमें चार-चार सफेद रंगके घोड़े जुते होंगे, तथा अत्यन्त तेजस्वी एक हजार घोड़े और नयी अवस्थाकी एक करोड़ गौएँ भी दूँगा। इनके अलावे आप जितने रत्न और सुवर्ण लेना चाहें, वह सब देनेको तैयार हूँ; किन्तु यह गौ मुझे अवश्य दे दीजिये।' वसिष्ठजीने कहा—'राजन् ! मैं कपिला गौको किसी तरह नहीं दे सकता। यही मेरा रत्न है, यही मेरा धन है, यही मेरा सर्वस्व है और यही मेरा जीवन है। मेरे सारे पुण्यकर्म इसीपर निर्भर हैं, अतः मैं इस कामधेनुको कदापि नहीं दे सकता।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महर्षि वसिष्ठने जब किसी तरह उस कामधेनु गौको देना स्वीकार नहीं किया तो राजा विश्वामित्र उसे जबर्दस्ती घसीट ले चले। उनके इस प्रकार ले चलनेपर वह शोकाकुल होकर मन-ही-मन रो पड़ी और अत्यन्त दुखित होकर विचारने लगी—'क्या महात्मा वसिष्ठने मुझे त्याग दिया है, जो ये राजाके सिपाही मुझ दीन और दुखिया गौको इस प्रकार लिये जाते हैं। महर्षि वसिष्ठका हृदय तो बड़ा ही शुद्ध है; मैंने उनका क्या बिगाड़ा है कि वे मुझे निरपराध और भक्त जानकर भी त्याग रहे हैं।' यह सोचकर वह गौ बारंबार लंबी साँस लेने लगी और राजाके सैकड़ों सेवकोंको झटककर महातेजस्वी वसिष्ठ मुनिके पास बड़े वेगसे जा पहुँची। उनके चरणोंके निकट जाकर वह मेघके समान गम्भीर स्वरमें रोती हुई बोली—'ब्रह्मन्! क्या आपने मुझे त्याग दिया, जो ये राजाके सैनिक मुझे आपसे दूर लिये जाते हैं?' यह सुनकर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ उस दुःखिनी गौसे बोले—'कपिले! मैं तुम्हारा त्याग नहीं करता और तूने मेरा कोई अपराध भी नहीं किया है। ये महाबली राजा मुझसे जबर्दस्ती छीनकर तुम्हें लिये जाते हैं।' उनके ऐसा कहनेपर कपिलाने विनीत-भावसे कहा—'ब्रह्मन्! क्षत्रियका बल कोई चीज नहीं है। ब्राह्मण ही सबसे बढ़कर बलवान् होते हैं। ब्राह्मणका बल दिव्य है, वह क्षत्रिय-बलसे अधिक प्रबल होता है। मैं आपके ब्रह्मबलसे सम्पन्न हूँ। आप केवल मुझे आज्ञा दे दीजिये। मैं इस दुरात्मा राजाके बल, प्रयत्न और अभिमानको अभी चूर्ण किये देती हूँ।' गौके ऐसा कहनेपर महायशस्वी वसिष्ठने कहा—'अच्छा, तुम इस शत्रुसेनाको नष्ट करनेवाले सैनिकोंकी सृष्टि करो।' उनका आदेश सुनकर गौने वैसा ही किया। उसके हुंकार करते ही सैकड़ों पह्लव जातिके वीर पैदा हो गये और विश्वामित्रके देखते-देखते उनकी सेनाका नाश करने लगे। इससे राजा विश्वामित्रको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने छोटे-बड़े कई तरहके शस्त्रोंका प्रयोग करके उन पह्लवोंका संहार कर डाला। यह देख कपिलाने पुनः शक और यवन जातिके भयंकर वीरोंको उत्पन्न किया। उनसे वहाँकी सारी पृथ्वी भर गयी। उन वीरोंने तीखी तलवारें और पट्टिश लेकर विश्वामित्रकी सारी सेनाको भस्म करना आरम्भ किया। तब महातेजस्वी विश्वामित्रने अनेकों प्रकारके अस्त्रोंका प्रहार किया, जिनसे यवन, काम्बोज और बर्बर जातिके वीर व्याकुल हो उठे। उनकी घबराहट देखकर वसिष्ठजीने कामधेनुसे कहा—'अब और योद्धाओंकी सृष्टि करो।' आज्ञा पाकर उसने फिर हुंकार किया। उसके शब्दसे काम्बोज, थनोंसे बर्बर, योनिसे यवन, गुदासे शक और रोमकूपोंसे म्लेच्छ, हारीत तथा किरात जातिके बहुत-से योद्धा प्रकट हो गये। उन सबने मिलकर पैदल, हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त विश्वामित्रकी समस्त चतुरङ्गिणी सेनाका एक ही क्षणमें नाश कर डाला। यह देख विश्वामित्रके सौ पुत्र अत्यन्त क्रोधसे भर गये और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर वसिष्ठजीके ऊपर टूट पड़े; किन्तु महर्षि वसिष्ठने अपने हुंकार-मात्रसे ही उन सबको जलाकर खाक कर डाला। तब महायशस्वी विश्वामित्र लज्जित होकर बड़ी चिन्तामें पड़ गये। पुत्र और सेनाके मारे जानेसे उनका सारा बल और उत्साह नष्ट हो गया। वे मन-ही-मन अत्यधिक खिन्न हुए। उनका एक ही पुत्र बच गया था, उसीको उन्होंने राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया और क्षत्रियधर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन करनेकी आज्ञा दे स्वयं वनमें चले गये। हिमालयके पार्श्वभागमें, जो किन्नरों और नागोंसे सेवित प्रदेश है, वहाँ रहकर महादेवजीको प्रसन्न करनेके लिये वे बड़ा भारी तप करने लगे। कुछ कालके बाद देवाधिदेव भगवान् शङ्करने दर्शन देकर कहा—'राजन्! किसलिये तप करते हो? बताओ, क्या चाहते हो? मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ; जो तुम्हारी अभिलाषा हो, कहो।' महादेवजीके इस प्रकार कहनेपर महातपस्वी विश्वामित्रने प्रणाम करके कहा—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अङ्ग, उपाङ्ग, उपनिषद् और रहस्यों-सहित धनुर्वेद प्रदान कीजिये। देव, दानव, महर्षि, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंको जिन अस्त्रोंका ज्ञान हो, वे सब आपकी कृपासे मेरे हृदयमें स्फुरित हो जायँ। यही मेरा मनोरथ है।'

"एवमस्तु' कहकर भगवान् शङ्कर वहाँसे चले गये। उनसे नाना प्रकारके अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके महाबली विश्वामित्रको बड़ा घमंड हो गया और वे वसिष्ठ मुनिके आश्रमपर आकर तरह-तरहके अस्त्रोंका प्रयोग करने लगे। उनके अस्त्रोंके तेजसे सारा तपोवन भस्म होने लगा। यह देखकर वसिष्ठजीके शिष्य सैकड़ों मुनि और हजारों मृग तथा पक्षी भयभीत होकर चारों दिशाओंमें भाग चले। वसिष्ठजी बार-बार कहते ही रह गये कि 'डरो मत' तो भी उनका आश्रम सूना हो गया। अब महर्षि वसिष्ठ रोषमें भरकर विश्वामित्रसे बोले—'ओ मूर्ख! मैंने इस आश्रमको बहुत दिनोंसे हरा-भरा कर रक्खा था। आज तूने इसे उजाड़ डाला। यह तो महान् अत्याचार है।


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अब तू कुशलसे नहीं रह सकता।' ऐसा कहकर वे अत्यन्त क्रुद्ध हो धूमरहित कालाग्निके समान उद्दीप्त हो उठे और यमदण्डके समान भयंकर दण्ड हाथमें उठाकर तुरंत उनका मुकाबला करनेके लिये तैयार हो गये। तब गाधिनन्दन विश्वामित्रने क्रोधसे भरकर वारुण, रौद्र, ऐन्द्र, पाशुपत और ऐषीक नामक अस्त्रोंका प्रयोग किया। उसके पश्चात् क्रमशः मानव, मोहन, गान्धर्व, स्वापन, जृम्भण, सन्तापन, विलापन, शोषण, विदारण, वज्रास्त्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वारुणपाश, पिनाक, सूखी-गीली—दो प्रकारकी अशनि, दण्डास्त्र, पैशाचास्त्र, क्रौञ्चास्त्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वायव्यास्त्र, मन्थनास्त्र, हयशिरा, दो प्रकारकी शक्ति, कङ्काल, मुसल, वैद्याधरास्त्र, कालास्त्र, भयंकर त्रिशूलास्त्र, कापालास्त्र और कङ्कणास्त्र—ये सभी अस्त्र उन्होंने वसिष्ठजीके ऊपर चलाये। यह एक अद्भुत बात हुई; किन्तु उससे भी बढ़कर आश्चर्यकी बात यह हुई कि ब्रह्मपुत्र वसिष्ठने उन सभी अस्त्रोंको केवल अपने डंडेसे ही शान्त कर दिया। उन अस्त्रोंके शान्त हो जानेपर गाधिनन्दन विश्वामित्रने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। ब्रह्मास्त्रको उद्यत देखकर अग्नि आदि देवता, देवर्षि, गन्धर्व और बड़े-बड़े नाग भी दहल गये। तीनों लोकोंके प्राणी थर्रा उठे। परन्तु वसिष्ठने अपने ब्रह्मतेजके प्रभावसे उस भयंकर अस्त्रको भी ब्रह्मदण्डके द्वारा ही शान्त कर दिया। उस समय उनके समस्त रोमकूपोंमेंसे किरणोंकी भाँति धूमयुक्त आगकी लपटें निकलने लगीं। वसिष्ठके हाथमें उठा हुआ द्वितीय यमदण्डके समान वह ब्रह्मदण्ड धूमरहित कालाग्निकी भाँति प्रज्वलित हो रहा था। उनके इस प्रकार पराक्रम दिखानेपर समस्त मुनिगण स्तुति करते हुए बोले—'ब्रह्मन्! आपका बल अमोघ है। अब अपने तेजको अपनी ही शक्तिसे समेट लीजिये। महाबली विश्वामित्र आपसे परास्त हो गये। अब आप शान्त हो जाइये, जिससे लोगोंकी पीड़ा दूर हो। महर्षियोंके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी वसिष्ठजी शान्त हो गये और पराजित विश्वामित्र लंबी साँस खींचकर बोले—'क्षत्रियके बलको धिक्कार है! ब्रह्मतेजसे प्राप्त होनेवाला बल ही वास्तवमें बल है; क्योंकि आज एक ही ब्रह्मदण्डने मेरे सभी अस्त्र-शस्त्रोंको शान्त कर दिया। अतः अब मैं अपने मन और इन्द्रियोंको निर्मल करके उस महान् तपका अनुष्ठान करूँगा, जो मेरे लिये ब्राह्मणत्वकी प्राप्तिका कारण बन सके।"

## विश्वामित्रजीके प्रभावसे त्रिशङ्कुका सदेह स्वर्ग-गमन

शतानन्दजी कहते हैं—"तदनन्तर विश्वामित्र अपनी पराजयको याद करके मन-ही-मन सन्तप्त होने लगे और महात्मा वसिष्ठसे वैर बाँधकर रानीसहित दक्षिण दिशामें जा घोर तपस्या करने लगे। वहाँ मन और इन्द्रियोंको वशमें करके वे फल और मूलका आहार करते थे। एक हजार वर्ष पूरे होनेपर लोकपितामह ब्रह्माजीने तपस्याके धनी विश्वामित्रको दर्शन देकर मधुर वाणीमें कहा—'कुशिकनन्दन! तुमने तपस्या करके राजर्षियोंके लोकोंपर विजय पायी है। इस तपके प्रभावसे हम तुम्हें सच्चा राजर्षि समझते हैं।' यह कहकर सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी ब्रह्माजी देवताओंके साथ ब्रह्मलोकको चले गये। उनकी बात सुनकर विश्वामित्रजीने लज्जासे मस्तक झुका लिया और बहुत दुखी होकर मन-ही-मन कहा—'मैंने इतना बड़ा तप किया, तो भी सब देवता और ऋषि मुझे राजर्षि ही समझते हैं। मालूम होता है इस तपस्याका कोई फल नहीं हुआ।'—ऐसा सोचकर अपने मनको वशमें करनेवाले महातपस्वी विश्वामित्रजी पुनः तपस्यामें लग गये।

"इसी बीचमें एक दूसरी घटना घटी। इक्ष्वाकुवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाले एक बड़े सत्यवादी और जितेन्द्रिय राजा हो चुके हैं, जो त्रिशङ्कुके नामसे विख्यात थे। उनके मनमें यह विचार हुआ कि 'मैं ऐसा कोई यज्ञ करूँ, जिससे इसी देहसे स्वर्ग-में चला जाऊँ।' यह विचारकर उन्होंने महर्षि वसिष्ठको बुलाया और उनसे अपना अभिप्राय निवेदन किया। महात्मा वसिष्ठने यह कहकर कि ऐसा होना असम्भव है, उनका यज्ञ करानेसे इनकार कर दिया। तब वे दक्षिण दिशाको चले गये। वहाँ वसिष्ठके सौ पुत्र तपस्या कर रहे थे। उन तेजस्वी तपस्वियों-का दर्शन करके त्रिशङ्कु उनके पास गये और प्रणाम करके कहने लगे—'गुरुपुत्रो! आपलोग शरणागतपर दया करने-वाले हैं। यह जानकर आज मैं भी आपकी शरणमें आ पड़ा हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि आपलोग मुझसे ऐसा कोई यज्ञ करावें, जिससे मैं सदेह स्वर्गलोकमें जा सकूँ। तपोधनो! वसिष्ठजीके इनकार कर देनेपर अब मुझे आपके सिवा और कोई गति नहीं दिखायी देती। इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न सभी राजाओंके पुरोहित और परम गति महर्षि वसिष्ठजी ही हैं। आपलोग उन्हींके पुत्र हैं, अतः मेरे लिये आप भी देवताके समान पूजनीय हैं।' रघुनन्दन! त्रिशङ्कुके वचन सुन-कर महर्षि वसिष्ठके सौ पुत्र बोले—'दुर्मते! तुम्हारे गुरुने जब मना कर दिया है तो तुम उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके दूसरेके पास कैसे चले आये? याद रक्खो वे सत्यवादी हैं, उनकी बातको कोई अन्यथा नहीं कर सकता। जिस कार्यको उन्होंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असम्भव बतलाया है, उसे हमलोग कैसे कर सकते हैं? तुम अपने नगरको लौट जाओ। हम महर्षिका अपमान नहीं कर सकते।'

"गुरुपुत्रोंकी क्रोधभरी बात सुनकर राजा त्रिशङ्कुने फिर कहा—'तपोधनो! गुरुदेव वसिष्ठजीने तो मेरी प्रार्थना अस्वीकार कर ही दी थी, आपलोग भी मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार कर रहे हैं। अतः आपका कल्याण हो, अब मैं दूसरे किसीकी शरणमें जाऊँगा।' यह सुन महर्षिके पुत्रोंने अत्यन्त क्रोधसे भरकर भयंकर शाप दिया—'जा, तू चाण्डाल हो जायगा।' यह कहकर वे महात्मा अपने-अपने आश्रममें प्रविष्ट हो गये। तदनन्तर, रात व्यतीत होनेपर राजा त्रिशङ्कु चाण्डाल हो गये। उनके शरीरका रंग नीला हो गया, कपड़े भी नीले हो गये। सारे शरीरमें चिताकी राख-सी लिपट गयी; लोहेके गहने शरीरपर पड़ गये। राजाको चाण्डालके रूपमें देखकर सभी मन्त्री और पुरवासी, जो उनके साथ-साथ आये थे, उन्हें छोड़कर भाग गये। अब राजा अकेले रह गये थे, दिन-रात चिन्ताकी आग उन्हें जलाती रहती थी; तो भी धैर्य धारण करके वे आगे बढ़ते गये और धीरे-धीरे तपस्वी विश्वामित्रके पास जा पहुँचे। विश्वामित्रने देखा राजाका जीवन विफल हो गया है। उन्हें चाण्डालकी सूरतमें देखकर धर्मात्मा मुनिको बड़ी दया आयी। वे करुणासे द्रवित होकर भयंकर आकारवाले राजासे बोले—'वीरवर! अयोध्यानरेश! यहाँ किस कामसे तुम्हारा आना हुआ है? जान पड़ता है तुम किसीके शापसे चाण्डाल हो गये हो।' विश्वामित्रकी बात सुनकर चाण्डाल-भावको प्राप्त हुए राजा त्रिशङ्कुने हाथ जोड़कर कहा—'महात्मन्! मैं चाहता था इसी शरीरसे स्वर्गको जाऊँ; इसके लिये यज्ञ करनेका विचार था किन्तु गुरु वसिष्ठजीने यज्ञ करानेसे इनकार कर दिया। वहाँसे निराश होकर मैं गुरुपुत्रोंकी शरणमें आया, किन्तु उन्होंने भी जवाब दे दिया। मेरी वह इच्छा तो पूरी हुई नहीं, उलटे यह विपरीत परिणाम भोगना पड़ रहा है। मैंने सैकड़ों यज्ञ किये हैं, किन्तु उनका भी कोई फल नहीं मिल रहा है। बड़े-से-बड़े संकटमें पड़नेपर भी न तो पहले कभी मैंने मिथ्या भाषण किया है और न आगे ही करनेका विचार है। मैंने नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया, धर्मके अनुसार प्रजाजनोंकी रक्षा की और सदा शील एवं सदाचारके द्वारा महात्माओं तथा गुरुजनोंको सन्तुष्ट रखनेका प्रयास किया है। इस समय भी मैं यज्ञ करना चाहता था, अतः मेरा यह प्रयत्न धर्मके लिये ही था; तो भी मेरे गुरु मुझपर सन्तुष्ट न हो सके। यह देखकर मैं दैवको ही बड़ा मानता हूँ, पुरुषार्थ तो निरर्थक जान पड़ता है। मुने! आपका कल्याण हो, मैं बहुत दुखी हूँ और आपकी कृपा चाहता हूँ। अब मैं आपके सिवा दूसरे किसीकी शरणमें नहीं जाऊँगा, दूसरा कोई मुझे शरण देगा भी नहीं; अतः आप ही अपने पुरुषार्थसे मेरे भाग्यको पलट सकते हैं।'

"साक्षात् चाण्डालके स्वरूपको प्राप्त हुए उस राजाके ऐसा कहनेपर कुशिकनन्दन विश्वामित्रजीने दयासे द्रवित होकर मधुर वाणीमें कहा—'वत्स! तुम्हारा स्वागत है; मैं जानता हूँ तुम बड़े धर्मात्मा हो। डरो मत, मैं तुम्हें शरण देता हूँ। तुम्हारे यज्ञमें सहायता करनेवाले पुण्यात्मा महर्षियोंको मैं आमन्त्रित करूँगा। तुम आनन्दपूर्वक यज्ञ करना। गुरुके शापसे तुम्हें जो यह नवीनरूप प्राप्त हुआ है, इसके साथ ही इसी शरीरसे तुम स्वर्गको जा सकते हो।' ऐसा कहकर महातेजस्वी विश्वामित्रने अपने धर्मपरायण पुत्रोंको यज्ञकी सामग्री जुटानेके लिये आज्ञा दी। फिर शिष्योंको बुलाकर कहा—'तुमलोग मेरी आज्ञासे अनेकों विषयोंके ज्ञाता ऋषि-मुनियोंको उनके शिष्यों और इष्ट-मित्रोंसहित बुला लाओ।' उनकी आज्ञा मानकर सभी शिष्य चारों दिशाओंमें चले गये। फिर तो उन तेजस्वी महर्षिके पास सभी देशोंसे ब्रह्मवादी मुनियोंका समाज एकत्रित हुआ। महर्षिके वे शिष्य भी लौट आये। तदनन्तर, विश्वामित्रने ऋषियोंकी मण्डलीमें कहा—'मुनिवरो! ये इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजा त्रिशङ्कु हैं, ये बड़े ही धर्मात्मा और दानी हैं। इन्हें इसी शरीरसे स्वर्गलोकपर अधिकार पानेकी इच्छा है और यही उद्देश्य लेकर ये मेरी शरणमें आये हैं। अतः आपलोग मेरे साथ रहकर ऐसे यज्ञका अनुष्ठान करें, जिससे इन्हें इस शरीरसे ही स्वर्गकी प्राप्ति हो सके।

'विश्वामित्रजीकी बात सुनकर धर्मको जाननेवाले सभी महर्षियोंने सहसा एकत्रित होकर आपसमें धर्मयुक्त परामर्श किया और सर्वसम्मतिसे निश्चय किया कि ऐसा यज्ञ आरम्भ करना चाहिये, जिससे इक्ष्वाकुनन्दन त्रिशङ्कु विश्वामित्रजीके प्रभावसे सशरीर स्वर्गमें पहुँच जायँ। यों विचार करके महर्षियोंने अपना-अपना कार्य प्रारम्भ किया। महातेजस्वी विश्वामित्र स्वयं ही उस यज्ञमें अध्वर्यु हुए। अन्यान्य मन्त्रवेत्ता महर्षियोंने ऋत्विजोंका कार्य सँभाला। सबने मिलकर कल्पशास्त्रोक्त विधिके अनुसार क्रमशः सभी कार्य सम्पन्न किये। इस प्रकार बहुत समय बीतनेपर महातपस्वी विश्वामित्रने अपना-अपना भाग ग्रहण करनेके लिये सम्पूर्ण देवताओंका आवाहन किया; किन्तु कोई भी देवता वहाँ नहीं आये। तब महामुनि विश्वामित्रको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने स्रुवा उठाकर रोषके साथ कहा—'राजन्! अब तुम मेरे द्वारा उपार्जित तपस्याका बल देखो, इस समय अपने तेजसे मैं तुम्हें सशरीर स्वर्ग पहुँचाता हूँ। यदि मेरी तपस्याका कुछ भी फल है, तो उसके प्रभावसे तुम अपने इसी शरीरके साथ स्वर्गको जाओ।'

"मुनिके इतना कहते ही राजा त्रिशङ्कु सबके देखते-देखते सशरीर स्वर्गमें चले गये। इन्द्रने जब त्रिशङ्कुको स्वर्गमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचा देखा तो सब देवताओंके साथ उनके पास आकर कहा—'मूर्ख त्रिशङ्कु ! लौट जा यहाँसे, तेरे लिये स्वर्गमें स्थान नहीं है। तू गुरुके शापसे नष्ट हो चुका है, इसलिये नीचे मुँह किये पुनः पृथ्वीपर गिर जा।' इन्द्रके इतना कहते ही राजा त्रिशङ्कु विश्वामित्रको सम्बोधित करके 'त्राहि-त्राहि' की पुकार मचाते हुए पुनः स्वर्गसे नीचे गिरे। उनकी करुण पुकार विश्वामित्रके कानोंमें पड़ी। अब देवताओंके प्रति उनका क्रोध भड़क उठा। वे त्रिशङ्कुसे बोले—'वहीं ठहर जा, वहीं ठहर जा।' [ त्रिशङ्कु बीचमें ही लटके रह गये। ] तदनन्तर

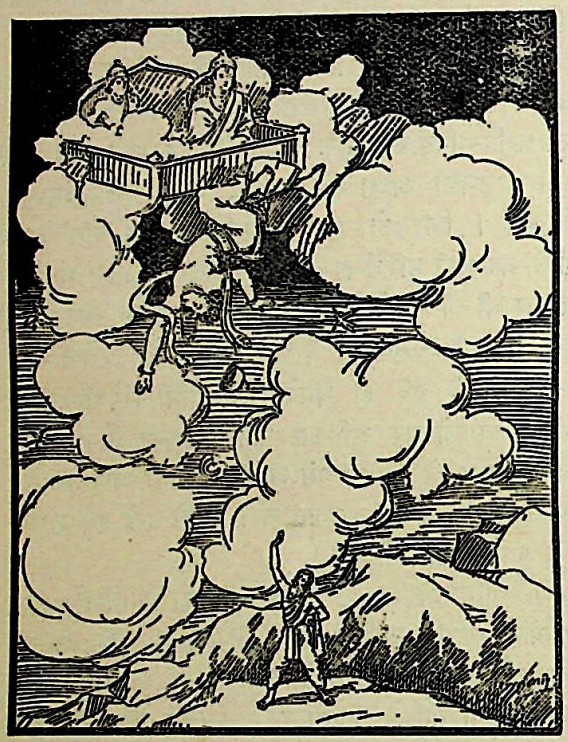

तेजस्वी विश्वामित्रने ऋषियोंके सामने ही दूसरे प्रजापतिकी भाँति दक्षिणमार्गके लिये नये सप्तर्षियोंकी सृष्टि की तथा क्रोधसे भरकर उन्होंने नवीन नक्षत्रोंका भी निर्माण कर डाला। इसके बाद नूतन देवताओंकी सृष्टि प्रारम्भ की। यह देख देवता, असुर और ऋषि बहुत घबराये और सभी वहाँ आकर बड़ी विनयके साथ बोले—'महाभाग ! ये राजा त्रिशङ्कु गुरुके शापसे अपने पुण्य खो चुके हैं, इसलिये शरीरसहित स्वर्गमें रहनेके कदापि अधिकारी नहीं हैं।' देवताओंकी बात सुनकर कौशिकने कहा—'देवगण ! आपका कल्याण हो। मैंने राजा त्रिशङ्कुको सदेह स्वर्ग भेजनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। अतः उसे मैं झूठी नहीं कर सकता। इन्हें इसी शरीरसे सदा स्वर्गीय सुख उपलब्ध होना चाहिये तथा मैंने जिन नक्षत्रोंका निर्माण किया है, वे भी सदा मौजूद रहें। जबतक संसार कायम रहे, तबतक ये सभी वस्तुएँ, जिनकी मेरे द्वारा सृष्टि हुई है, मौजूद रहें। आपलोग मेरी इन बातोंका अनुमोदन करें।' महर्षिके ऐसा कहनेपर देवताओंने उत्तर दिया—'आपका कल्याण हो। आप जो कुछ चाहते हैं, वैसा ही हो। ये सभी वस्तुएँ कायम रहें। आपके रचे हुए नक्षत्र आकाशमें वैश्वानर-पथसे बाहर प्रकाशित होंगे और उन्हींके बीचमें सिर नीचा किये त्रिशङ्कु भी प्रकाशमान रहेंगे। वहाँ इनकी स्थिति देवताओंके समान होगी और ये सभी नक्षत्र इनका अनुसरण करते रहेंगे।' इसके बाद सम्पूर्ण देवताओंने ऋषियोंके सामने ही धर्मात्मा विश्वामित्र मुनिकी स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने देवताओंका अनुरोध स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् यज्ञ समाप्त होनेपर सभी देवता और महर्षि जैसे आये थे उसी प्रकार अपने-अपने स्थानको लौट गये।''

## विश्वामित्रजीकी घोर तपस्या और ब्राह्मणत्व-प्राप्ति

शतानन्दजी कहते हैं—''राम ! यज्ञमें आये हुए उन सब वनवासी ऋषियोंको वहाँसे जाते देख महातेजस्वी विश्वामित्रने उनसे कहा—'महर्षियो ! इस दक्षिण दिशामें रहनेसे मेरी तपस्यामें बहुत बड़ा विघ्न पड़ा है; इसलिये अब दूसरी दिशामें चला जाऊँगा और वहीं रहकर तपस्या करूँगा। पश्चिम दिशामें बड़े-बड़े तपोवन हैं, वहीं पुष्कर तीर्थके तटवर्ती वनमें तपका अनुष्ठान करूँगा। उस तपोवनमें तपस्वियोंके लिये सब तरहकी सुविधाएँ हैं।' ऐसा कहकर वे पुष्करतीर्थमें चले गये और वहाँ फल-मूलका भोजन करते हुए बड़ी कठोर तपस्या करने लगे। जब एक हजार वर्ष पूरे हो गये तो उन्होंने व्रतकी समाप्तिका स्नान किया। उस समय सम्पूर्ण देवता उन्हें तपस्याका फल देनेकी इच्छासे वहाँ आये। महातेजस्वी ब्रह्माजीने मधुर वाणीमें कहा—'तपोधन ! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अपने द्वारा उपार्जित शुभ कर्मोंके प्रभावसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि हो गये।' इतना कहकर वे पुनः स्वर्गको चले गये। तब विश्वामित्रजी पहलेसे भी कठोर तपस्यामें लग गये।

'तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर मेनका नामकी एक परम सुन्दरी अप्सरा पुष्करतीर्थमें आयी और वहाँ स्नान करने लगी। उसके रूप और लावण्यकी कहीं उपमा नहीं थी। मुनिकी दृष्टि उसके ऊपर पड़ी और वे कामदेवके वशमें हो गये। इस प्रकार पुनः उनकी तपस्यामें बहुत बड़ा विघ्न पड़ गया। अतः इसके लिये पश्चात्ताप करते हुए वे उत्तर दिशामें एक पर्वतपर चले गये और कामादि विकारोंसे रहित स्थिर बुद्धि प्राप्त करनेकी इच्छासे कौशिकी नदीके तीरपर घोर तपस्या करने लगे। जब पुनः एक हजार वर्ष बीत गये तो देवताओंको बड़ा भय हुआ। उन्होंने उत्तर पर्वतपर ऋषियोंके साथ एकत्रित हो आपसमें सलाह की कि 'कुशिकनन्दन विश्वामित्रको महर्षिकी पदवी प्राप्त हो जानी चाहिये—यही इनके लिये उत्तम बात होगी।' देवताओंकी बातें सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी तपस्वी विश्वामित्रके पास जाकर मधुर वचनोंमें बोले—'वत्स! तुम्हारा स्वागत है, तुम्हारी इस उग्र तपस्यासे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है। मैं तुम्हें महत्ता और ऋषियोंमें मुख्यता देता हूँ—आजसे तुम महर्षि हुए।' ब्रह्माजीका कथन सुनकर विश्वामित्रने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! यदि आप मुझे ब्रह्मर्षिकी अतुलनीय पदवी प्रदान करेंगे, तब मैं अपनेको जितेन्द्रिय समझूँगा।' 'अच्छा, अभी तुम जितेन्द्रिय होनेका प्रयत्न करो।' यह कहकर ब्रह्माजी स्वर्गको चले गये। देवताओंके चले जानेके पश्चात् महामुनि विश्वामित्रने पुनः घोर तपस्या आरम्भ की। वे दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये बिना किसी आधारके खड़े होकर केवल वायु पीकर रहते हुए तपमें संलग्न हो गये। गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्निका सेवन करते, वर्षाकालमें खुले आकाशके नीचे रहते और जाड़ेकी मौसिममें रात-दिन पानीमें रहते थे। इस प्रकार एक हजार वर्षतक उन्होंने इस कठोर तपस्याको चालू रक्खा। उन्हें इस प्रकार तप करते देख देवताओंसहित इन्द्रको बड़ा संताप हुआ और वे रम्भा अप्सरासे बोले—'रम्भे! देवताओंका एक बहुत बड़ा कार्य उपस्थित हुआ है। उसे तुम पूरा करो। महर्षि विश्वामित्रको इस प्रकार लुभाओ, जिससे वे काम और मोहके वशीभूत हो जायँ।'

"इन्द्रकी बात सुनकर रम्भाने अत्यन्त मनोहर वेष धारण किया और वह मन्द-मन्द मुसकराती हुई विश्वामित्रके पास जाकर अपनी ललित भाव-भङ्गियोंसे उन्हें लुभाने लगी। विश्वामित्रके कानोंमें कोयलकी मीठी तान सुनायी पड़ी। उन्होंने प्रसन्नचित्तसे देखा तो सामने रम्भा खड़ी थी। उसके अनुपम गानको सुनकर मुनिके चित्तमें सन्देह हुआ। सारा कुचक्र उनकी समझमें आ गया। फिर तो क्रोधमें भरकर उन्होंने उस अप्सराको शाप दिया—'रम्भे! मैं काम और क्रोधपर विजय पाना चाहता हूँ और तू आकर मुझे लुभाती है। इस अपराधके कारण तू दस हजार वर्षोंतक पत्थरकी शिला बनकर पड़ी रहेगी। उसके बाद एक महान् तेजस्वी और तपोबलसम्पन्न ब्राह्मण तेरा उद्धार करेगा।' इस प्रकार शाप दे देनेके बाद यह सोचकर कि 'मैं अपने क्रोधको सँभाल न सका' महामुनि विश्वामित्रको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। रम्भा उनके कठोर शापसे तुरंत पत्थरकी शिला बन गयी। क्रोधसे तपस्याका क्षय हो गया और इन्द्रियाँ अभीतक काबूमें न आ सकीं, यह विचारकर उनके चित्तको तनिक भी शान्ति न मिली। तपकी हानि देखकर अब उनके मनमें यह बात आयी कि 'अबसे न तो क्रोध करूँगा और न किसी भी अवस्थामें मुँहसे कुछ बोलूँगा। इन्द्रियोंको जीतकर इस शरीरको सुखा डालूँगा। जबतक अपनी तपस्यासे उपार्जित ब्राह्मणत्वको न प्राप्त कर लूँगा, तबतक चाहे अनन्त वर्ष बीत जायँ, बिना खाये-पीये खड़ा रहूँगा, साँसतक न लूँगा।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने पुनः हजार वर्षतक तप करनेकी दीक्षा ग्रहण की। रघुनन्दन! विश्वामित्रजीने जो प्रतिज्ञा की, उसकी संसारमें कहीं तुलना नहीं है।

"अब वे महामुनि उत्तर दिशाका परित्याग करके पूर्व दिशाको चले गये और वहीं रहकर कठोर तपस्या आरम्भ की। एक हजार वर्षोंके लिये सर्वश्रेष्ठ मौन-व्रत धारण करके वे दुष्कर तपस्यामें प्रवृत्त हो गये। हजार वर्षतक वे महामुनि काष्ठकी भाँति निश्चेष्ट बने रहे। बीच-बीचमें अनेकों प्रकारके विघ्न आये; किन्तु क्रोधको उनके भीतर घुसनेका अवसर न मिला। अपने निश्चयपर अटल रहकर उन्होंने अक्षय तपका अनुष्ठान किया। जब एक हजार वर्ष पूरे हो गये तो वे अपना व्रत समाप्त करके अन्न ग्रहण करनेको उद्यत हुए। इसी समय इन्द्रने ब्राह्मणके वेषमें आकर उनसे तैयार हुए अन्नकी याचना की। तब उन्होंने वह सारा अन्न ब्राह्मण देवताको दे दिया। उसमेंसे कुछ भी बचा नहीं, इसलिये वे बिना खाये ही रह गये। फिर भी उस ब्राह्मणसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कुछ कहा नहीं, अपने मौनव्रतका यथार्थरूपसे पालन किया। इसके बाद पुनः नये सिरेसे श्वासोच्छ्वासरहित मौनव्रतका अनुष्ठान आरम्भ किया। पूरे एक हजार वर्षोंतक उन्होंने साँसतक नहीं ली। इस तरह साँस रुक जानेके कारण उनके मस्तकसे धुआँ उठने लगा। उससे तीनों लोकोंके प्राणी घबरा गये। सभी सन्तप्त-से होने लगे। उस समय मुनिकी तपस्यासे देवता, ऋषि, गन्धर्व, नाग, सर्प और राक्षस—सब मोहित हो गये। उनके तेजसे सबकी कान्ति फीकी पड़ गयी। वे चिन्तित हो ब्रह्माजीके पास जाकर बोले—'भगवन्! हमें महामुनि विश्वामित्रमें कोई छोटा-सा भी दोष नहीं दिखायी देता। यदि इनका अभीष्ट मनोरथ पूरा नहीं किया गया तो ये अपनी तपस्यासे त्रिभुवनके समस्त चराचर प्राणियोंका नाश कर डालेंगे। इस समय सारी दिशाएँ धूमसे आच्छादित हो गयी हैं, कहीं कुछ भी सूझ नहीं पड़ता। समुद्र क्षुब्ध हो रहे हैं, पर्वत विदीर्ण हुए जाते हैं, धरती डगमग हो रही है और प्रचण्ड आँधी चल रही है। समस्त त्रिलोकीका मन चञ्चल हो उठा है। सभी किंकर्तव्यविमूढ-से हो रहे हैं। महर्षिके तेजसे सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी है। ये महाकान्तिमान् मुनि अग्निस्वरूप हो रहे हैं। इनके मनमें जगत्के प्रलय करनेका सङ्कल्प हो, इसके पहले ही इन्हें प्रसन्न कर लेना चाहिये।'

तदनन्तर ब्रह्मा आदि सभी देवता महात्मा विश्वामित्रजीके पास गये और बोले—'ब्रह्मर्षे! हम तुम्हारा स्वागत करते हैं। तुम्हारे इस कठोर तपसे हमलोग बहुत सन्तुष्ट हैं। अपनी उग्र तपस्याके प्रभावसे आज तुमने ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया। ब्रह्मन्! मैं इन सब देवताओंके साथ तुम्हें दीर्घायु होनेका वरदान देता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम सुखपूर्वक जहाँ इच्छा हो, जाओ।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर महामुनि विश्वामित्रने अत्यन्त प्रसन्न होकर सम्पूर्ण देवताओंको प्रणाम किया और कहा—'देवताओ! यदि आपलोगोंकी कृपासे मुझे ब्राह्मणत्व मिल गया है और दीर्घ आयुकी भी प्राप्ति हो गयी है तो ओंकार, वषट्कार तथा चारों वेदोंमें मेरा पूर्ण अधिकार हो जाय। ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी भी मुझे ब्रह्मर्षि कहकर स्वीकार करें। यदि ऐसी बात हो तो मैं समझूँगा कि मेरा उत्तम मनोरथ आप लोगोंने पूर्ण कर दिया और उस अवस्थामें आप जा सकते हैं।' तब देवताओंने वसिष्ठजीके पास जा उन्हें प्रसन्न करके अपने अनुकूल बनाया। ब्रह्मर्षि वसिष्ठने विश्वामित्रका ब्रह्मर्षि होना स्वीकार किया और उनके साथ मित्रता कर ली। तत्पश्चात् देवताओंने कहा—'मुने! अब तुम निःसन्देह ब्रह्मर्षि हो गये। तुम्हारी सारी कामनाएँ सफल हो गयीं।' यह कहकर सब देवता जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। इस प्रकार उत्तम ब्राह्मणत्व पानेके अनन्तर धर्मात्मा विश्वामित्रजीने भी ब्रह्मर्षि वसिष्ठका पूजन किया और सर्वथा सफलमनोरथ होकर तपस्यामें लगे हुए ही ये सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरने लगे। रघुनन्दन! इस प्रकार कठोर तपस्याके द्वारा इन महात्माने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया है। ये तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप हैं।' उत्तम धर्मके साक्षात् विग्रह हैं और पराक्रमकी निधि हैं।''

ऐसा कहकर महातेजस्वी विप्रवर शतानन्दजी चुप हो गये। उनकी बात सुनकर राजा जनकने हाथ जोड़कर विश्वामित्रजीसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! आप राम और लक्ष्मणके साथ स्वयं मेरे यज्ञमें पधारे, इससे मैं धन्य हो गया। आपने दर्शन देकर मुझे पवित्र कर दिया। आज मैंने और महात्मा रामने इन सभी सदस्योंके साथ आपकी तपस्याका वर्णन विस्तारके साथ सुना है। आपका तप अवर्णनीय है और आपके गुण अनन्त हैं। आपकी आश्चर्यमयी कथाओंके श्रवणसे मुझे तृप्ति नहीं होती; किन्तु यज्ञका समय हो गया है और सूर्यदेव ढलते जा रहे हैं। अतः अब आप मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये, कल सबेरे फिर आपके दर्शन होंगे।' राजाके ऐसा कहनेपर मुनिवर विश्वामित्रने उनकी बड़ी प्रशंसा की और प्रसन्नतापूर्वक उन्हें विदा किया। तब मिथिलानरेश जनकने अपने उपाध्याय और बन्धु-बान्धवोंके साथ विश्वामित्रजीकी परिक्रमा की और वहाँसे चल दिये। तत्पश्चात् धर्मात्मा विश्वामित्र महात्माओंसे पूजित होकर राम और लक्ष्मणके साथ अपने विश्रामस्थानपर लौट आये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# धनुर्भङ्ग

तदनन्तर दूसरे दिन सबेरे धर्मात्मा राजा जनकने अपना नैत्यिक नियम पूरा करके रामचन्द्र और लक्ष्मणसहित महात्मा विश्वामित्रजीको बुलाया तथा शास्त्रीय विधिके अनुसार मुनि तथा उन दोनों राजकुमारोंका पूजन करके कहा—'महर्षे ! आपका स्वागत है; आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?' यह सुनकर विश्वामित्रजी बोले—'राजन् ! महाराज दशरथके ये दोनों राजकुमार विश्वविख्यात क्षत्रिय हैं । आपके यहाँ जो उत्तम धनुष रखा है, उसे देखनेकी इनकी बड़ी इच्छा है । उसे इन्हें दिखा दीजिये । उनके दर्शनमात्रसे इनका मनोरथ सफल हो जायगा और ये प्रसन्न होकर अपने देश-लौट जायँगे ।' मुनिके ऐसा कहनेपर राजा जनकने कहा—'मुनिवर ! इस धनुषका वृत्तान्त सुनिये; जिस प्रयोजनसे यह धनुष यहाँ रखा गया है, वह सब बताता हूँ । निमिके ज्येष्ठ पुत्र राजा देवरात-के नामसे विख्यात थे । उन्हीं महात्माको यह धनुष धरोहर-के रूपमें मिला था । कहते हैं, पूर्वकालमें दक्ष-यज्ञ-विध्वंसके समय परम पराक्रमी भगवान् शङ्करने धनुष उठाकर यज्ञ नष्ट करनेके पश्चात् क्रोधसे भरकर कहा था—'देवताओ ! मैं यज्ञमें भाग प्राप्त करना चाहता था, किन्तु तुमलोगोंने नहीं दिया । इसलिये इस धनुषसे मैं तुम सबके मस्तक काट डालूँगा ।' यह सुनकर सम्पूर्ण देवता उदास हो गये और स्तुतिके द्वारा देवाधिदेव महादेवजीको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे । अन्तमें भगवान् शङ्कर उनके ऊपर प्रसन्न हो गये और उन्होंने बड़े प्रेमके साथ यह धनुष उन्हें अर्पण कर दिया । वही यह देव-देव भगवान् शङ्करका धनुषरत्न है, जो मेरे पूर्वज महाराज देवरातके पास धरोहरके रूपमें रखा गया था ।

"एक दिन मैं यज्ञके लिये भूमि-शोधन करते समय खेतमें हल चला रहा था, उसी समय हलके अग्रभागसे एक कन्या प्रकट हुई । सीता ( हलके अग्रभाग ) से उत्पन्न होनेके कारण उसका नाम 'सीता' रखा गया । पृथ्वीसे प्रकट हुई वह मेरी कन्या क्रमशः बढ़कर सयानी हुई । अपनी इस अयोनिजा कन्याके सम्बन्धमें मैंने यह निश्चय किया कि जो अपने पराक्रमसे इस धनुषको चढ़ा देगा, उसीके साथ इसका ब्याह करूँगा । इस कन्याको कई राजाओंने यहाँ आकर माँगा; किन्तु मैंने आजतक किसीको यह कन्या नहीं दी । सबको यही उत्तर देता रहा कि जो पराक्रम दिखायेगा, उसीको यह प्राप्त हो सकती है । तब सभी राजा एकत्रित होकर मिथिलामें आये और पूछने लगे कि सीताको पानेके लिये कौन-सा पराक्रम निश्चित किया गया है । मैंने उन लोगोंके सामने यह शिवजीका धनुष रख दिया; किन्तु उनमेंसे कोई भी इसे उठाने या हिलानेमें

समर्थ न हो सका । अतः उन सबको अल्पपराक्रमी समझकर मैंने कन्या देनेसे इनकार कर दिया । तब उन सब राजाओंने अत्यन्त क्रोधमें भरकर मिथिलाको चारों ओरसे घेर लिया और सारे नगरनिवासियोंको पीड़ा देना आरम्भ कर दिया । वे एक वर्षतक घेरा डाले ही रहे । इस बीचमें मेरे पास शत्रुको दबानेके जितने साधन थे, सभी नष्ट हो गये । इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ और तपस्याके द्वारा मैंने देवताओंको प्रसन्न करनेकी चेष्टा की । देवता प्रसन्न हो गये और उन्होंने मुझे चतुरङ्गिणी सेना प्रदान की । फिर तो मार पड़नेके कारण घेरा डाले हुए सभी राजाओंके पैर उखड़ गये और वे अपने मन्त्रियोंसहित चारों दिशाओंमें भाग गये । वे सब-के-सब पराक्रमहीन तथा पापाचारी थे, इसलिये टिक न सके । यही वह परम प्रकाशमान धनुष है । अब मैं राम-लक्ष्मणको भी उसे दिखाऊँगा । यदि दशरथकुमार राम इस धनुषकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रत्यञ्चा चढ़ा सके तो मैं इन्हें अपनी अयोनिजा कन्या सीताको अर्पण कर दूँगा।''

जनककी बात सुनकर महामुनि विश्वामित्रने कहा—'राजन्! आप रामको अपना धनुष दिखाइये।' तब राजा जनकने मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि 'चन्दन और मालाओंसे सुशोभित वह दिव्य धनुष यहाँ ले आओ।' राजाकी आज्ञा पाकर वे अमित तेजस्वी मन्त्री नगरमें गये और उस धनुषको आगे करके पुरीसे बाहर निकले। वह धनुष आठ पहियोंवाली लोहेकी बहुत बड़ी सन्दूकमें रखा था। उसे मोटे-ताजे पाँच हजार आदमी किसी तरह ठेलकर वहाँतक ला सके। सन्दूक लाकर मन्त्रियोंने कहा—'महाराज! यही वह श्रेष्ठ धनुष है; यदि आपकी इच्छा हो तो इसे कुमारोंको दिखाइये।' उनकी बात सुनकर राजा जनकने दोनों भाई राम और लक्ष्मणकी ओर दृष्टि रखते हुए महात्मा विश्वामित्रसे हाथ जोड़कर कहा—'ब्रह्मन्! देवता, असुर, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और बड़े-बड़े नाग भी इस धनुषको झुकाने, इसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाने, बाण सन्धान करने, इसे खींचने तथा हाथपर लेकर तौलनेमें समर्थ न हो सके; फिर मनुष्योंमें तो इतनी शक्ति ही कहाँ है। वही यह श्रेष्ठ धनुष यहाँ प्रस्तुत किया गया है। अब आप इसे इन दोनों राजकुमारोंको दिखाइये।'

महर्षि विश्वामित्र और रामचन्द्रजीने भी राजा जनककी ये बातें सुनीं। इसके बाद महर्षिने कहा—'राम! इस धनुषको देखो।' महर्षिकी आज्ञासे रामने सन्दूक खोलकर उस धनुषको देखा और कहा—'अच्छा, तो मैं इस दिव्य एवं श्रेष्ठ धनुषमें हाथ लगाता हूँ; मैं इसे चढ़ाने और तौलनेका भी प्रयत्न करूँगा।' राजा और मुनिने एक-स्वरसे उनका समर्थन किया। तब रामने उस धनुषको बीचसे पकड़कर लीलापूर्वक उठा लिया और खेल-सा करते हुए उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। इसके बाद ज्यों ही उन्होंने उसे खींचा कि वह बीचमेंसे टूट गया। टूटते समय

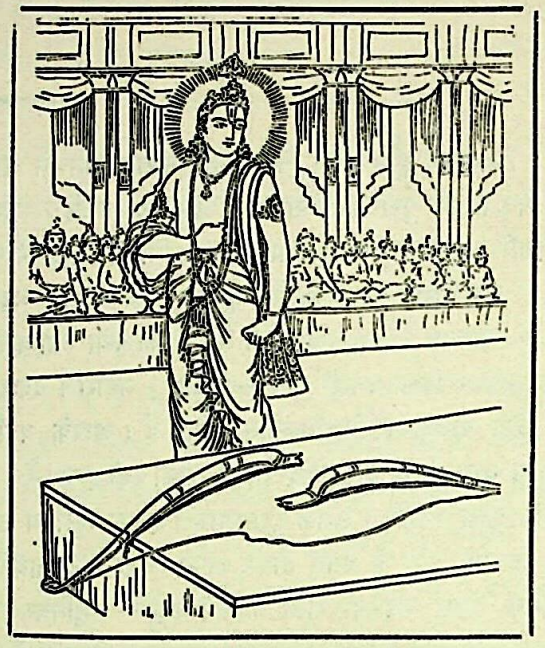

उससे वज्रपातके समान भयंकर आवाज हुई। ऐसा जान पड़ा मानो पर्वत फटा हो। उस समय विश्वामित्र, जनक, राम और लक्ष्मणको छोड़कर बाकी सभी मनुष्य उस भयानक शब्दसे मूर्छित होकर गिर पड़े। थोड़ी देरमें जब सबको चेत हुआ तो राजा जनकने हाथ जोड़कर कहा—''मुनिश्रेष्ठ! मैंने दशरथकुमार रामका पराक्रम अच्छी तरह देख लिया। मेरी पुत्री सीता इन्हें पतिके रूपमें पाकर जनक-वंशकी कीर्ति बढ़ायेगी। यदि आपकी आज्ञा हो तो मेरे मन्त्री रथपर सवार होकर शीघ्र ही अयोध्याको जायँ और विनययुक्त वचन सुनाकर महाराज दशरथको मेरे नगरमें लिवा लायें। साथ ही इस बातका भी सर्वत्र प्रचार कर दें कि 'जिसके लिये पराक्रमकी ही शर्त रखी गयी थी, उस मेरी कन्या सीताका विवाह रामचन्द्रजीके साथ होने जा रहा है।' ये लोग महाराज दशरथसे यह भी कह दें कि 'आपके दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण विश्वामित्रजीके द्वारा सुरक्षित होकर बड़े आनन्दमें हैं।' तथा महाराजको यहाँ शीघ्र ही बुला लायें।'' विश्वामित्रने 'तथास्तु' कहकर राजाकी बातका समर्थन किया। तब उन्होंने अपने मन्त्रियोंको समझा-बुझाकर यहाँका ठीक-ठीक समाचार महाराज दशरथको सुनाने और उन्हें मिथिलापुरी ले आनेके लिये भेज दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# दशरथका मिथिलामें आना, इक्ष्वाकु और निमिवंशका परिचय तथा चारों राजकुमारोंके विवाहका निश्चय

राजा जनककी आज्ञासे उनके मन्त्री अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए। मार्गमें तीन रात व्यतीत करके चौथे दिन वे अयोध्यापुरीमें पहुँचे। राजाकी आज्ञासे उनका राजमहलमें प्रवेश हुआ। वहाँ जाकर उन्होंने बूढ़े महाराज दशरथका दर्शन किया और हाथ जोड़कर विनययुक्त मधुर शब्दोंमें कहा—'महाराज ! ऋत्विजोंसहित मिथिलानरेश जनकने स्नेहमयी वाणीमें आपकी तथा आपके उपाध्याय और पुरोहितोंकी बारंबार कुशल पूछी है और इसके बाद उन्होंने विश्वामित्रजीकी सम्मतिसे आपको यह संदेश दिया है—'राजन्! आपको मेरी पहले की हुई प्रतिज्ञाका हाल मालूम होगा, मैंने अपनी पुत्रीके विवाहके लिये पराक्रमकी शर्त रखी थी। मेरी उस कन्याको विश्वामित्रजीके साथ अकस्मात् घूमते-फिरते आये हुए आपके पुत्रने अपने पराक्रमसे जीत लिया है। महात्मा रामने मेरे यहाँ रखे हुए रत्नस्वरूप दिव्य धनुषको तोड़ डाला है, अतः मैं इन्हें अपनी कन्या सीताको प्रदान करना चाहता हूँ। आप इसके लिये आज्ञा देनेकी कृपा करें। महाराज अपने उपाध्याय और पुरोहितको साथ लेकर शीघ्र ही मिथिलामें पधारें और अपने दोनों पुत्र राम तथा लक्ष्मणको देखनेके साथ ही मेरी प्रतिज्ञा भी पूर्ण करें।' यही मिथिलानरेशका मधुर संदेश है।''

सन्देशवाहक मन्त्रियोंकी बातें सुनकर राजा दशरथको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने महर्षि वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्य मन्त्रियोंसे कहा—'कौसल्यानन्दन राम विश्वामित्रसे सुरक्षित होकर अपने भाई लक्ष्मणके साथ इस समय विदेहराज जनकके नगरमें निवास कर रहे हैं। महात्मा राजा जनक रामचन्द्रके पराक्रमकी परीक्षा करके उन्हें अपनी कन्या प्रदान करना चाहते हैं। यदि आपकी सम्मति हो तो हम सब लोग शीघ्र ही मिथिलापुरीको चलें।' महर्षियोंसहित सब मन्त्रियोंने एक-स्वरसे चलनेकी ही सम्मति दी। राजा बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मन्त्रियोंसे कहा—'कल सबेरे ही यात्रा कर देनी चाहिये।' राजा दशरथके मन्त्री सभी सद्गुणोंसे सम्पन्न थे। उन्होंने चलनेकी बात सुनकर बड़े आनन्दसे वह रात्रि व्यतीत की। सबेरा होनेपर उपाध्याय और बन्धु-बान्धवोंके सहित महाराज दशरथ हर्षमें भरकर सुमन्त्रसे बोले—'हमारे यहाँके सभी खजांची बहुत-सा धन और नाना प्रकारके रत्न लेकर सबसे पहले चलें; उनके साथ हर तरहकी सुव्यवस्था होनी चाहिये। चतुरङ्गिणी सेनाको भी शीघ्र ही कूच कर देना चाहिये। अभी मेरी आज्ञा सुनते ही सुन्दर-सुन्दर पालकियाँ और अच्छे-अच्छे घोड़े आदि सवारियाँ तैयार होकर चल दें। महर्षि वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, दीर्घजीवी मार्कण्डेय तथा कात्यायन—ये सभी ब्रह्मर्षि आगे-आगे चलें। मेरा रथ भी तैयार करो, देर नहीं होनी चाहिये। राजा जनकके दूत मुझे जल्दी करनेके लिये प्रेरित कर रहे हैं।'

राजाकी आज्ञाके अनुसार चतुरङ्गिणी सेना तैयार हो गयी और ऋषियोंके साथ यात्रा करते हुए महाराज दशरथके पीछे-पीछे चली। मार्गमें चार दिन व्यतीत करके राजा दशरथ विदेहनगर पहुँचे। उनके आगमनका समाचार पाकर जनकने आतिथ्य और पूजाकी तैयारी की; फिर हर्षसे भरकर वे बूढ़े महाराजके पास पहुँचे। उनसे मिलकर जनकको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बड़े आनन्दके साथ कहा—'रघुनन्दन ! आपका स्वागत है; मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपने यहाँतक पदार्पण किया। इन सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ महातेजस्वी महर्षि वसिष्ठका पधारना भी मेरे सौभाग्यकी ही सूचना दे रहा है। रघुकुलके महापुरुष बल और पराक्रममें सबसे श्रेष्ठ होते हैं। आज इस कुलके साथ सम्बन्ध होनेसे मेरे वंशकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी। यह मेरे लिये महान् सौभाग्यकी बात हुई है। महाराज ! कल सबेरे इन सभी ऋषियोंके साथ उपस्थित होकर रामके विवाहका शुभ कार्य सम्पन्न कीजिये।' राजा जनककी बात सुनकर महाराज दशरथने उत्तर दिया—'राजन्! आप तो धर्मके ज्ञाता ही ठहरे। मैंने सुन रखा है कि प्रतिग्रह दाताके अधीन होता है; इसलिये आप जैसा कहेंगे, वैसा ही हम सब लोग करेंगे। तदनन्तर सभी महर्षि एक दूसरेसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और सबने बड़े आराम-के साथ वह रात बितायी। राजा दशरथने भी जनकके द्वारा आदर-सत्कार पाकर तथा अपने दोनों पुत्रोंको सकुशल देखकर अत्यन्त हर्षके साथ वह रात्रि व्यतीत की।

तत्पश्चात् जब सबेरा हुआ और राजा जनक नित्यकर्मसे निवृत्त हो गये तो अपने पुरोहित शतानन्दजीसे बोले—'ब्रह्मन्! मेरे भाई कुशध्वज, जो अत्यन्त धार्मिक हैं, इस


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समय इक्षुमती नदीका जल पीते हुए उसके किनारे बसी हुई सांकाश्या नगरीमें रहते हैं। उसके चारों ओरके परकोटोंकी रक्षाके लिये बड़े-बड़े यन्त्र लगाये गये हैं। वह पुरी पुष्पक-विमानके समान विस्तृत और पुण्यात्मा पुरुषोंके निवाससे सुशोभित है। वहाँ रहनेवाले अपने भाईको इस शुभ अवसरपर मैं यहाँ उपस्थित देखना चाहता हूँ। मेरे साथ वे भी इस मङ्गल-समारोहका सुख उठावें।' राजाके इस प्रकार आज्ञा देनेपर श्रेष्ठ दूत तेज चलनेवाले घोड़ोंपर सवार हो कुशध्वजको बुलानेके लिये चल दिये और सांकाश्या नगरीमें पहुँचकर उनसे मिले। उन्होंने मिथिलाका सारा समाचार बताकर राजा जनकका अभिप्राय भी निवेदन किया। दूतोंके मुखसे सारे समाचार सुनकर राजा कुशध्वज महाराज जनककी आज्ञाके अनुसार मिथिलामें आये और उनसे मिले। वे धर्मवत्सल महात्मा जनक तथा पुरोहित शतानन्दजीको प्रणाम करके राजाके योग्य सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हुए। दोनों ही भाई बड़े तेजस्वी थे। उन्होंने एक आसनपर साथ-साथ बैठकर अपने श्रेष्ठ मन्त्री सुदामासे कहा—'मन्त्रिवर! आप शीघ्र ही महाराज दशरथके पास जाइये और उन्हें पुत्रों तथा मन्त्रियोंसहित बुला लाइये।' आज्ञा पाकर मन्त्री सुदामा रघुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले राजा दशरथके डेरेमें जाकर उनसे मिले और प्रणाम करके बोले—'अवधनरेश! मिथिलाके राजा जनक उपाध्याय और पुरोहितके साथ आपका दर्शन करना चाहते हैं।' यह सुनकर राजा दशरथ ऋषियों और बन्धु-बान्धवोंके साथ जनकके स्थानपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने विदेहराजसे कहा—'महाराज! आपको मालूम होगा इक्ष्वाकु-कुलके देवता ये महर्षि वसिष्ठजी हैं। हमारे यहाँ सब कार्योंमें इन्हींकी आज्ञाका पालन किया जाता है। ये विश्वामित्र तथा अन्य सब महर्षियोंकी अनुमति लेकर पहले मेरी वंश-परम्पराका क्रमशः परिचय देंगे।' यह कहकर जब वे चुप हो गये तो वसिष्ठजीने जनक और उनके पुरोहितको सुनाते हुए कहा—'ब्रह्माजीकी उत्पत्तिका कारण अव्यक्त है—वे स्वयम्भू हैं। नित्य, शाश्वत और अविनाशी हैं। उनसे मरीचिकी उत्पत्ति हुई। मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे विवस्वान् (सूर्य), उनसे वैवस्वत मनु, मनुसे इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकुसे कुक्षि, कुक्षिसे विकुक्षि और विकुक्षिसे महातेजस्वी बाणका जन्म हुआ। बाणके पुत्र अनरण्य, अनरण्यके पृथु, पृथुके त्रिशङ्कु, त्रिशङ्कुके धुन्धुमार, धुन्धुमारके युवनाश्व, युवनाश्वके मान्धाता, मान्धाताके सुसन्धि, सुसन्धिके ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिके भरत और भरतके पुत्र महातेजस्वी असित हुए। हैहय, तालजंघ और शशबिन्दु—इन तीन राजवंशोंके क्षत्रिय महाराज असितके शत्रु हो गये। युद्धमें इन तीनों शत्रुओंका सामना करनेके कारण राजा असितको राज्य छोड़कर परदेशमें चला जाना पड़ा। वे थोड़ी-सी सेना लिये अपनी दोनों रानियोंके साथ हिमालय पर्वतपर रहने लगे। वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। उस समय उनकी दोनों रानियाँ गर्भवती थीं। उनमेंसे एकने अपनी सौतका गर्भ नष्ट करनेके लिये उसे जहर मिलाया हुआ भोजन दे दिया। उस समय उस पर्वतपर भृगुकुलमें उत्पन्न हुए महामुनि च्यवन तपस्या कर रहे थे। राजा असितकी रानी कालिन्दी, जिसे जहर दिया गया था, तेजस्वी महर्षि च्यवनके पास गयी और उनके चरणोंमें प्रणाम करके चुपचाप बैठ गयी। तब मुनिने उससे कहा—'महाभागे! तुम्हारे गर्भमें एक महान् तेजस्वी और बलवान् पुत्र है। वह थोड़े ही दिनोंमें गर (जहर) के साथ उत्पन्न होगा। तुम चिन्ता न करो।' वह विधवा राजकुमारी बड़ी पतिव्रता थी। च्यवनको नमस्कार करके वह आश्रमपर लौट आयी और यथासमय उसके गर्भसे पुत्रका जन्म हुआ। वह गर (जहर)के साथ उत्पन्न होनेके कारण 'सगर' कहलाया। सगरके पुत्र असमञ्ज, असमञ्जके अंशुमान्, अंशुमान्के दिलीप, दिलीपके भगीरथ, भगीरथके ककुत्स्थ, ककुत्स्थके रघु, रघुके कल्माषपाद, कल्माषपादके शंखण, शंखणके सुदर्शन, सुदर्शनके अग्निवर्ण, अग्निवर्णके शीघ्रग, शीघ्रगके मरु, मरुके प्रशुश्रुक, प्रशुश्रुकके अम्बरीष, अम्बरीषके नहुष, नहुषके ययाति, ययातिके नाभाग, नाभागके अज, अजके पुत्र ये महाराज दशरथ हैं। इन्हीं दशरथसे ये दोनों भाई राम और लक्ष्मण उत्पन्न हुए हैं। इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए राजाओंका वंश आदिकालसे ही अत्यन्त शुद्ध रहा है। ये सब-के-सब धर्मात्मा और सत्यवादी होते आये हैं। इन्हींके कुलमें उत्पन्न कुमार राम और लक्ष्मणके लिये मैं आपकी दो कन्याओंका वरण करता हूँ। ये आपकी कन्याओंके योग्य हैं और आपकी कन्याएँ इनके योग्य; अतः आप इन्हें कन्यादान करें।'

महर्षि वसिष्ठ जब इस प्रकार इक्ष्वाकु-वंशका परिचय दे चुके, तब राजा जनकने हाथ जोड़कर उनसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! अब मैं भी अपने कुलका परिचय देता हूँ; क्योंकि कुलीन पुरुषके लिये कन्यादानके समय अपने कुलका पूर्णरूपेण परिचय देना आवश्यक है। अतः आप सुननेकी कृपा करें। प्राचीन कालमें निमि नामके एक परम धर्मात्मा राजा हुए हैं जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


धैर्यशाली, महापुरुषोंमें अग्रगण्य तथा अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंमें विख्यात थे। उनके पुत्र मिथि नामसे प्रसिद्ध हुए। मिथिके पुत्रका नाम जनक हुआ। ये ही हमारे कुलमें पहले जनक हुए हैं (इन्हींके नामपर हमारे वंशका प्रत्येक राजा 'जनक' कहलाता है)। जनकके उदावसु, उदावसुके नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धनके सुकेतु, सुकेतुके देवरात, देवरातके बृहद्रथ, बृहद्रथके महावीर, महावीरके सुधृति, सुधृतिके धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके हर्यश्व, हर्यश्वके मरु, मरुके प्रतीन्धक, प्रतीन्धकके कीर्तिरथ, कीर्तिरथके देवमीढ, देवमीढके विबुध, विबुधके महीध्रक, महीध्रकके कीर्तिरात, कीर्तिरातके महारोमा महारोमाके स्वर्णरोमा और स्वर्णरोमाके पुत्र ह्रस्वरोमा हुए। ये महात्मा बड़े धर्मज्ञ थे। इनके दो पुत्र हुए। उनमें बड़ा तो मैं हूँ और छोटा मेरा भाई कुशध्वज है। मेरे पिता मुझ ज्येष्ठ पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त करके कुशध्वजका सारा भार मुझे सौंपकर वनमें चले गये। वृद्ध पिताके स्वर्गगामी हो जानेपर अपने देवतुल्य भाई कुशध्वजको स्नेहदृष्टिसे देखता हुआ मैं इस राज्यका धर्मके अनुसार पालन करने लगा। कुछ कालके अनन्तर राजा सुधन्वाने सांकाश्य नगरसे आकर मिथिलाको चारों ओरसे घेर लिया और मेरे पास अपने दूतसे यह सन्देश कहला भेजा कि 'तुम शिवजीके धनुष तथा अपनी कन्या सीताको मेरे हवाले कर दो।' महर्षे! मैंने उसकी माँग पूरी नहीं की, इसलिये मेरे साथ उसका घोर युद्ध हुआ। उस संग्राममें विमुख होकर सुधन्वा मेरे हाथसे मारा गया। उसे मारकर सांकाश्य नगरके राज्यपर मैंने अपने भाई शूरवीर कुशध्वजको अभिषिक्त कर दिया। मुनिवर! मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ आपको दो बहुएँ प्रदान करता हूँ। पराक्रम ही जिसको पानेकी शर्त थी, उस देव-कन्याके समान सुन्दरी सीताको रामके लिये और अपनी दूसरी पुत्री उर्मिलाको लक्ष्मणके लिये दे रहा हूँ—इस बातको मैं तीन बार दुहराता हूँ।' वसिष्ठजीसे ऐसा कहकर राजा जनकने महाराज दशरथसे कहा—'राजन्! अब आप राम-लक्ष्मणके मङ्गलके लिये उनसे गो-दान कराइये और नान्दीमुख श्राद्धका कार्य सम्पन्न कीजिये। इसके बाद विवाहका कार्य आरम्भ कीजियेगा। आज मघा नक्षत्र है, आजके तीसरे दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें वैवाहिक कार्य कीजियेगा।'

विदेहराज जनक जब अपनी बात समाप्त कर चुके तो महामुनि विश्वामित्र वसिष्ठजीका सहयोग लेकर उनसे बोले—'राजन्! इक्ष्वाकु और विदेह दोनों ही राजाओंके वंश अचिन्तनीय हैं। दोनोंके ही प्रभावकी कोई सीमा नहीं है। इन दोनोंकी समानता करनेवाला दूसरा कोई राजवंश नहीं है। राम और लक्ष्मणका सीता तथा उर्मिलाके साथ जो सम्बन्ध निश्चित हुआ है, वह सब प्रकारसे योग्य है। इसके बाद मुझे भी कुछ कहना है। आपके छोटे भाई जो ये राजा कुशध्वज बैठे हैं, इनकी भी दो कन्याएँ हैं, जो इस भूमण्डलमें अनुपम सुन्दरी हैं। मैं उन दोनों कन्याओंको कुमार भरत और शत्रुघ्नकी पत्नी बनानेके लिये माँगता हूँ। राजा दशरथके ये सभी पुत्र रूपवान् हैं, तरुण हैं तथा लोकपालों और देवताओंके समान पराक्रमी हैं। इन दोनोंको भी कन्या दान करके आप इक्ष्वाकु-कुलको अपने सम्बन्धसे बाँध लीजिये।' उनकी बात सुनकर राजा जनकने विश्वामित्र और वसिष्ठ दोनोंसे हाथ जोड़कर कहा—'मुनिवरो! मैं अपने कुलको धन्य मानता हूँ, जिसे आपलोग इक्ष्वाकुवंशके योग्य समझकर इसके साथ सम्बन्ध जोड़नेके लिये स्वयं आज्ञा दे रहे हैं। मैं आपके प्रस्तावका अनुमोदन करता हूँ। कुमार भरत और शत्रुघ्न राजा कुशध्वजकी दोनों कन्याओंको अपनी धर्मपत्नीके रूपमें स्वीकार करें। महामुने! ये चारों महाबली राजकुमार एक ही दिन हमारी चारों राजकुमारियोंका पाणिग्रहण करें। अगले दो दिन फाल्गुनी नामके नक्षत्र हैं। इनमें पहले दिन तो पूर्वाफाल्गुनी है और दूसरे दिन (अर्थात् परसों) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र होगा, जिसके देवता प्रजापति भग हैं। मनीषी पुरुष उस नक्षत्रमें वैवाहिक कार्य करना बहुत उत्तम मानते हैं।' विदेहराज जनकके ऐसा कहनेपर रघुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले राजा दशरथने प्रसन्न होकर कहा—'मिथिलेश्वर! आप दोनों भाइयोंके गुण असंख्य हैं। आपलोगोंने ऋषियों और राजाओंका भली-भाँति सत्कार किया है। आपका कल्याण हो। अब मैं अपने विश्रामस्थानको जा रहा हूँ। वहाँ विधिपूर्वक नान्दीमुख-श्राद्धका कार्य सम्पन्न करूँगा।' यों कहकर राजा जनककी स्वीकृति ले महाराज दशरथ मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र और वसिष्ठको आगे करके तुरंत अपने आवासस्थानपर चले गये और वहाँ प्रातःकाल उठकर विधि-विधानसे श्राद्धकी क्रिया पूरी की। उन्होंने एक-एक पुत्रके मङ्गलके लिये एक-एक लाख गौएँ ब्राह्मणोंको दान कीं। उन सबके सींग सोनेसे मढ़े हुए थे। सबके साथ बछड़े और काँसेके दुग्धपात्र थे। इस प्रकार उन्होंने चार लाख गौओंका दान किया तथा और भी बहुत-सा धन ब्राह्मणोंको बाँटा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## चारों भाइयोंका विवाह, परशुरामका बल-हरण तथा दशरथका पुत्रों और वधुओंके साथ अयोध्यामें प्रवेश

राजा दशरथने जिस दिन अपने पुत्रोंके विवाहके निमित्त गो-दान किया, उसी दिन भरतके मामा केकय-राजकुमार युधाजित् वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने महाराजका दर्शन करके कुशल पूछी और इस प्रकार कहा—'रघुनन्दन! केकयदेशके महाराजने बड़े स्नेहके साथ आपका कुशल-समाचार पूछा है और आप भी हमारे यहाँके जिन-जिन लोगोंकी कुशल जानना चाहते होंगे, वे सब इस समय स्वस्थ और सानन्द हैं। केकयनरेश भरतको देखना चाहते हैं, अतः इन्हें लेनेके लिये ही मैं अयोध्या गया था। वहाँ जाने-पर यह मालूम हुआ कि 'आपके सभी पुत्र विवाहके लिये आपके साथ मिथिला पधारे हैं।' यह सुनकर मैं तुरंत यहाँ चला आया।' महाराज दशरथने अपने प्रिय अतिथिको उपस्थित देख बड़े सत्कारके साथ उनकी आव-भगत की। फिर पुत्रोंके साथ वह रात व्यतीत करके वे सबेरे उठे और नित्यकर्मोंसे निवृत्त होकर ऋषियोंको साथ ले जनककी यज्ञशालामें जा पहुँचे। तत्पश्चात् विवाहके योग्य विजय नामक मुहूर्त आनेपर दूल्हेके अनुरूप वेष-भूषासे अलङ्कृत हो भाइयोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी भी वहाँ आये। वे विवाहकालोचित मङ्गलाचार पूर्ण कर चुके थे तथा उनके आगे-आगे वसिष्ठ एवं अन्यान्य महर्षि चल रहे थे।

इसके बाद महर्षि वसिष्ठ राजा जनकके पास जाकर बोले—'राजन्! महाराज दशरथ अपने पुत्रोंके साथ आये हैं और महलमें आनेके लिये दाताके आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं; अतः आप विवाहकालोपयोगी शुभकर्मोंका अनुष्ठान करके उन्हें बुलाइये और कन्यादानरूप स्वधर्मका पालन कीजिये।' महात्मा वसिष्ठके ऐसा कहनेपर परम धर्मज्ञ राजा जनकने इस प्रकार उत्तर दिया—'मुनिश्रेष्ठ! महाराजके लिये मेरे यहाँ कौन पहरेदार खड़ा है? ये किसके आदेशकी प्रतीक्षा करते हैं? अपने घरमें आनेके लिये कैसा सोच-विचार? यह जैसे मेरा राज्य है वैसे ही आपका है। मेरी कन्याओंका वैवाहिक मङ्गलकृत्य सम्पन्न हो चुका है। अब वे यज्ञवेदीके पास आकर बैठी हैं। इस समय मैं आपकी ही प्रतीक्षामें इस वेदीपर बैठा हूँ। निर्विघ्नतापूर्वक सब कार्य पूर्ण कीजिये। विलम्ब क्यों करते हैं?' वसिष्ठके मुखसे जनककी बात सुनकर राजा दशरथ अपने पुत्रों और सम्पूर्ण महर्षियोंको महलके भीतर ले आये। तदनन्तर विदेहराजने वसिष्ठसे कहा—'महर्षे! आप ऋषियोंको साथ लेकर विवाहके सब कार्य कराइये।' वसिष्ठने 'बहुत अच्छा' कहकर विश्वामित्र और शतानन्दजीको साथ लेकर विवाह-मण्डपके मध्यभागमें विधि-पूर्वक वेदी बनायी और गन्ध तथा फूलोंके द्वारा उसे चारों ओरसे सुन्दर रूपमें सजाया। साथ ही सुवर्णपालिका, जौके अङ्कुरोंसे युक्त चित्रित कलश, अङ्कुर जमाये हुए सिकोरे, धूपपात्र, शंखपात्र, स्रुवा, स्रुक्, अर्घ्य आदि पात्र, लावासे भरे हुए पात्र तथा धोये हुए अक्षत आदि सामग्रियोंको भी यथास्थान रख दिया। तत्पश्चात् वसिष्ठजीने बराबर-बराबर कुशोंको वेदीके चारों ओर बिछाकर मन्त्रोच्चारण करते हुए विधिके अनुसार अग्निस्थापन किया और विधिको प्रधानता देते हुए मन्त्रपाठपूर्वक प्रज्वलित अग्निमें हवन किया। तदनन्तर राजा जनकने सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित सीताको ले आकर अग्निके निकट रामचन्द्रजीके सामने बिठा दिया और उनसे कहा—'राम! तुम्हारा कल्याण हो, यह मेरी पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणीके रूपमें उपस्थित है। इसका हाथ अपने हाथमें लो और इसे स्वीकार करो। यह परम पतिव्रता, सौभाग्यवती और छायाकी भाँति तुम्हारे पीछे चलनेवाली होगी।' यह कहकर राजाने रामके हाथमें मन्त्रसे पवित्र जल छोड़ दिया। उस समय देवता और ऋषियोंने 'साधु-साधु' कहकर जनकके सौभाग्यकी सराहना की। देवताओंके नगारे बजने लगे और आकाशसे फूलोंकी बड़ी भारी वर्षा हुई। इसके बाद राजा जनकने हर्षसे भरकर कहा—'लक्ष्मण! तुम्हारा कल्याण हो। आओ, मैं उर्मिलाको तुम्हारी सेवामें दे रहा हूँ। इसे स्वीकार करो।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तत्पश्चात् उन्होंने भरतसे कहा—'रघुनन्दन ! आओ, माण्डवीका हाथ अपने हाथमें लो।' फिर शत्रुघ्नको सम्बोधित करके कहा—'महाबाहो ! तुम श्रुतकीर्तिको स्वीकार करो । तुम चारों भाई शान्तस्वभाव हो, तुमने उत्तम व्रतका भलीभाँति आचरण किया है ।' राजा जनकके वचन सुनकर चारों राजकुमारोंने चारों राजकन्याओंके हाथ अपने-अपने हाथमें लिये। इसके बाद वसिष्ठजीकी आज्ञासे उन्होंने अपनी-अपनी पत्नीके साथ अग्नि, वेदी, राजा दशरथ तथा ऋषि-मुनियोंकी परिक्रमा की और वेदोक्त विधिके अनुसार वैवाहिक कार्य पूर्ण किया। अग्निकी तीन बार परिक्रमा करके उन्होंने पत्नियोंको स्वीकार किया, फिर सब-के-सब स्त्रियोंसहित जनवासेमें चले गये । राजा दशरथ भी ऋषियों और बन्धु-बान्धवोंके साथ पुत्रों और पुत्र-वधुओंको देखते हुए उनके पीछे-पीछे गये।

तदनन्तर जब रात बीती और सवेरा हुआ तो महामुनि विश्वामित्र राजा जनक और महाराज दशरथसे पूछकर उनकी स्वीकृति ले उत्तरपर्वतपर चले गये। फिर महाराज दशरथ भी जानेको तैयार हुए। उस समय विदेहराज जनकने अपनी कन्याओंके निमित्त दहेजमें बहुत अधिक धन दिया। कई लाख गौएँ, बहुतेरे अच्छे-अच्छे कम्बल तथा करोड़ोंकी संख्यामें रेशमी और सूती वस्त्र दिये। तरह-तरहके गहनोंसे सजे हुए बहुत-से हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सिपाही भेंट किये। अपनी लड़कियोंके लिये सखीके रूपमें उन्होंने सौ कन्याएँ और अनेकों दास-दासियाँ अर्पण कीं। इन सबके अलावे राजाने बहुत-से मोती-मूँगे और सुवर्ण भी दिये। इस प्रकार अनेकों तरहकी वस्तुएँ दहेजमें देकर राजा जनक दशरथकी आज्ञा ले अपने महलमें लौट आये और अयोध्यानरेश सम्पूर्ण महर्षियोंको आगे करके अपने पुत्रों और सैनिकोंके साथ राजधानीकी ओर प्रस्थित हुए । उस समय मार्गमें उनके चारों ओर भयंकर बोली बोलनेवाले पक्षी चहचहाने लगे और भूमिपर विचरनेवाले मृग उन्हें दाहिने रखकर जाने लगे। उन सबको देखकर राजाने वसिष्ठजीसे पूछा—'मुनिवर ! एक ओर तो ये भयंकर पक्षी बोल रहे हैं और दूसरी ओर ये मृग हमें दाहिनी ओर रखकर जा रहे हैं। यह अशुभ और शुभ—दो प्रकारका शकुन कैसा ? मेरा हृदय काँपता है, मन खिन्न हो रहा है ।' उनके इस प्रकार पूछनेपर वसिष्ठजीने मधुर वाणीमें कहा—'राजन् ! सुनिये, पक्षियोंके मुँहसे यह बात निकल रही है कि इस समय कोई भारी भय उपस्थित होनेवाला है। किन्तु हमें दाहिने रखकर जानेवाले मृग यह सूचित करते हैं कि आया हुआ संकट टल जायगा, इसलिये आप चिन्ता छोड़िये ।' इन लोगोंमें इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि बड़े जोरोंकी आँधी चली। सारी पृथ्वी काँप उठी। बड़े-बड़े वृक्ष उखड़कर गिर पड़े। सूर्य अन्धकारसे आच्छन्न हो गया। किसीको दिशाओंका भान न रहा। धूलसे ढक जानेके कारण सारी सेना मूर्च्छित-सी हो गयी। उस समय केवल वसिष्ठ आदि ऋषि तथा पुत्रोंसहित राजा दशरथको ही चेत रह गया था। उस घोर अन्धकारमें राजा दशरथने देखा—क्षत्रियोंका मान-मर्दन करनेवाले भृगुनन्दन परशुराम कंधेपर फरसा रक्खे और हाथमें धनुष एवं भयंकर बाण लिये विकट वेष धारण किये सामनेसे आ रहे हैं। उनके मस्तकपर बड़ी-बड़ी जटाएँ दिखायी पड़ रही थीं तथा वे अपने तेजसे जाज्वल्यमान हो रहे थे । प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर परशुरामको उपस्थित देख वसिष्ठ आदि महर्षियोंने उन्हें अर्घ्य प्रदान किया। ऋषियोंकी दी हुई उस पूजाको स्वीकार करके उन महाप्रतापी जमदग्निकुमारने रामचन्द्रजीसे कहा—'राम ! सुना जाता है तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है। तुम्हारे द्वारा धनुष टूटनेका सारा समाचार भी मेरे कानोंमें पड़ चुका है। उस धनुषका तोड़ना अद्भुत और अचिन्त्य है। इस बातको सुनकर मैं एक दूसरा उत्तम धनुष लेकर आया हूँ । यह है वह भयंकर और विशाल धनुष । तुम इसे खींचकर इसके ऊपर बाण चढ़ाओ और मेरे सामने अपने बलका प्रदर्शन करो । तुम्हारा बल देखकर मैं तुमसे द्वन्द्वयुद्ध करूँगा ।'

परशुरामजीके वचन सुनकर राजा दशरथ दीनभावसे हाथ जोड़कर बोले—'महामुने ! आप स्वाध्याय-वृत्तिसे शोभा पानेवाले भार्गव-कुलमें उत्पन्न हुए हैं और स्वयं भी महान् तपस्वी और ब्रह्मज्ञानी हैं; इसलिये मेरे बालक पुत्रोंको आप अभयदान देनेकी कृपा करें ।' राजा दशरथ इस प्रकार कहते ही रह गये; परन्तु प्रतापी परशुरामने उनके वचनोंकी अवहेलना करके रामसे ही बातचीत जारी रक्खी। वे बोले—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


'नरश्रेष्ठ ! ये दो धनुष सबसे श्रेष्ठ और दिव्य थे। सारा संसार इन्हें सम्मानकी दृष्टिसे देखता था। साक्षात् विश्वकर्माने इन्हें बनाया था; ये बड़े प्रबल और दृढ़ थे। इनमेंसे एकको देवताओंने त्रिपुरासुरसे युद्ध करनेके लिये भगवान् शङ्करको दे दिया था; जिस धनुषको तुमने तोड़ा है, उसीसे त्रिपुरासुरका वध हुआ था। और दूसरा दुर्धर्ष धनुष यह है, जो मेरे हाथमें है; इसे देवताओंने भगवान् विष्णुको दिया था यह भी वैसा ही प्रबल है जैसा शिवजीका धनुष था। भगवान् शङ्करने बाण-सहित अपना धनुष राजर्षि देवरातके हाथमें दे दिया था और विष्णुने अपने धनुषको भृगुवंशी ऋचीक मुनिके यहाँ धरोहरके रूपमें रक्खा था। इस प्रकार यह महान् वैष्णव धनुष मेरे पिता-पितामहोंके अधिकारमें रहता चला आया है। अब तुम इसे हाथमें लेकर इसके ऊपर बाण चढ़ाओ। यदि ऐसा कर सकोगे तो मैं तुम्हारे साथ द्वन्द्वयुद्ध करूँगा।'

दशरथकुमार रामचन्द्रजी अपने पिताके गौरवका ख्याल करके संकोचवश कुछ बोल नहीं रहे थे; किन्तु परशुरामजीकी उपर्युक्त बात सुनकर वे मौन न रह सके। उन्होंने कहा—'भृगुनन्दन ! मैं क्षत्रिय-धर्मसे युक्त हूँ, तो भी आप मुझे पराक्रमहीन और असमर्थ मानकर मेरे तेजका तिरस्कार कर रहे हैं। अच्छा, अब मेरा पराक्रम देखिये। ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने क्रोधमें भरकर परशुरामजीके हाथसे वह उत्तम धनुष और बाण ले लिया तथा धनुषका प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उस-

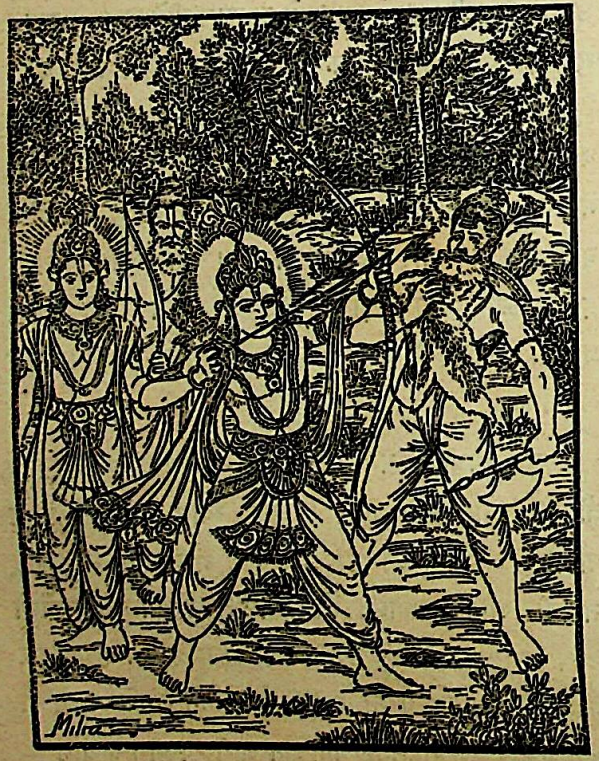

पर बाणका सन्धान किया। इसके बाद वे परशुरामसे बोले—'भृगुनन्दन ! आप ब्राह्मण होनेके नाते मेरे पूज्य हैं तथा विश्वामित्रजीके साथ आपका सम्बन्ध है—इन सब कारणोंसे मैं इस प्राण-संहारक बाणको आपके शरीरपर नहीं छोड़ सकता। मेरा विचार है कि आपको अपने तपोबलसे जो सर्वत्र शीघ्रतापूर्वक आने-जानेकी शक्ति प्राप्त हुई है, उसीको इस बाणसे नष्ट कर डालूँ; क्योंकि यह दिव्य वैष्णव बाण कभी निष्फल नहीं जाता।' उस समय उस उत्तम धनुष और बाणको धारण किये हुए श्रीरामचन्द्रजीको देखनेके लिये सम्पूर्ण देवता और ऋषि ब्रह्माजीको आगे करके वहाँ एकत्रित हो गये। जमदग्निकुमार परशुराम निर्वीर्य एवं जडवत् हो गये थे। उन्होंने रामचन्द्रजीकी ओर देखकर धीरे-धीरे कहा—'रघुनन्दन ! पूर्वकालमें मैंने कश्यपजीको जब यह पृथ्वी दान की थी तो उन्होंने मुझसे कहा था—'तुम मेरे राज्यमें कभी न रहना।' तबसे अपने गुरु कश्यपजीकी इस आज्ञाका पालन करता हुआ मैं कभी रातमें पृथ्वीपर नहीं रहता। इसलिये तुम मेरी इस गमन-शक्तिका नाश न करो। मैं मनके समान वेगसे अभी महेन्द्र पर्वतपर जाऊँगा। मैंने अपनी तपस्यासे अनुपम लोकोंपर विजय पायी है। उन्हींको इस बाणसे नष्ट कर डालो। तुमने इस धनुषको लेकर चढ़ा दिया, इससे मुझे निश्चय हो गया कि तुम मधु दैत्यको मारनेवाले अविनाशी देवेश्वर विष्णु हो। तुम्हारा कल्याण हो। ये सब देवता यहाँ एकत्रित होकर तुम्हारी ओर देख रहे हैं। तुम्हारे कर्म अनुपम हैं। युद्धमें कोई भी तुम्हारा मुकाबला नहीं कर सकता। तुम्हारे द्वारा जो आज मुझे परास्त होना पड़ा है, इसके कारण मुझे तनिक भी संकोच नहीं होगा; क्योंकि तुम त्रिलोकीनाथ हो। अब तुम अपना बाण छोड़ो। इसके छोड़नेके बाद ही मैं महेन्द्र पर्वतपर जाऊँगा।' परशुरामके ऐसा कहनेपर रामने वह उत्तम बाण छोड़ दिया। परशुरामजीने अपने तपोबलसे जो पुण्यलोक प्राप्त किये थे, वे सब उस बाणसे नष्ट हो गये। यह दृश्य अपनी आँखों देखकर वे महेन्द्र पर्वतपर चले गये। उनके जाते ही समस्त दिशाओंका अन्धकार दूर हो गया। उस समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

# परशुरामका तेजोहरण

जडीकृते तदालोके रामे वरधनुर्धरे। निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ राममुदैक्षत ॥
(बाल० ७६। ११)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देवताओं और ऋषियोंने दशरथकुमार रामकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

जमदग्निकुमार परशुरामजीके चले जानेपर महायशस्वी रामने अपार शक्तिशाली वरुणके हाथमें वह धनुष दे दिया। तत्पश्चात् वसिष्ठ आदि ऋषियोंको प्रणाम करके उन्होंने अपने पिताको विकल देखकर कहा—'पिताजी! परशुरामजी चले गये। अब आपके द्वारा सुरक्षित चतुरङ्गिणी सेनाको अयोध्याकी ओर चलना चाहिये।' 'परशुरामजी चले गये' यह सुनकर राजा दशरथने रामको दोनों भुजाओंसे खींचकर छातीसे लगा लिया और उनका मस्तक सूँघते हुए बड़ी प्रसन्नताका अनुभव किया। तदनन्तर उन्होंने सेनाको नगरकी ओर कूच करनेकी आज्ञा दी और वहाँसे चलकर बड़ी शीघ्रताके साथ अयोध्यापुरीमें जा पहुँचे। उस समय वहाँ सब ओर पताकाएँ फहरा रही थीं। पुरीकी शोभा बड़ी रमणीय दिखायी देती थी। तरह-तरहके बाजोंकी आवाजसे सारी अयोध्या गूँज रही थी। सड़कोंपर जलका छिड़काव हुआ था। यत्र-तत्र फूल बिखेरे गये थे। पुरवासी मनुष्य हाथोंमें माङ्गलिक वस्तुएँ लेकर राजाके प्रवेशमार्गपर खड़े थे। नगर-निवासी ब्राह्मणोंने दूरतक जाकर महाराजकी अगवानी की। इसके बाद उन्होंने पुत्रोंको साथ लेकर महलमें प्रवेश किया। कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी तथा राजपरिवारकी दूसरी स्त्रियोंने सौभाग्यवती सीता, यशस्विनी उर्मिला तथा कुशध्वजकी दोनों कन्याओंको सवारीसे उतारा और मङ्गल-गीत गाती हुई सब वधुओंको घरमें ले गयीं। देवमन्दिरमें ले जाकर रानियोंने बहुओंसे देवताओंका पूजन करवाया। तदनन्तर सभी राजकुमारियोंने पूजनीया सास आदिके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने-अपने पतिके साथ एकान्तमें रहकर वे बड़े आनन्दसे समय व्यतीत करने लगीं। राम आदि चारों भाई अस्त्र-विद्यामें निपुण और विवाहित होकर अपने मित्रोंके साथ पिताकी सेवामें रहने लगे। कुछ कालके बाद राजा दशरथने कैकेयीनन्दन भरतसे कहा—'बेटा! तुम्हारे मामा केकयराज-कुमार युधाजित् तुम्हें लेनेके लिये आये हैं और कई दिनोंसे ठहरे हुए हैं।' पिताकी बात सुनकर भरतने शत्रुघ्नके साथ मामाके यहाँ जानेका विचार किया। वे अपने पिता राजा दशरथ, बड़े भाई राम तथा सभी माताओंसे पूछकर, उनकी आज्ञा ले शत्रुघ्नसहित वहाँसे चल दिये। युधाजित् उन दोनों भाइयोंको साथ लेकर बड़े आनन्दसे अपने नगरमें गये। उनसे मिलकर उनके पिताको बड़ी प्रसन्नता हुई। भरतके चले जानेपर महाबली राम और लक्ष्मण अपने पिताकी सेवा-सत्कारमें रहने लगे। पिताकी आज्ञाके अनुसार वे नगरवासियोंके सब काम देखने तथा उनके प्रिय और हितकर कार्य करने लगे। वे अपनेको बड़े संयममें रखते थे और समय-समयपर माताओं तथा अन्य गुरुजनोंके कार्योंको भी पूर्ण करनेका ध्यान रखते थे। उनके इस बर्तावसे राजा दशरथ, वेदवेत्ता ब्राह्मण तथा राज्यके भीतर निवास करनेवाले सभी मनुष्य बहुत प्रसन्न रहा करते थे। श्रीरामचन्द्रजी सदा सीताके हृदय-मन्दिरमें विराजमान रहते थे तथा इनका मन भी सीतामें ही लगा रहता था। दोनों दोनोंके अनन्य प्रेमी थे। रामने सीताके साथ रहकर अनेकों ऋतुओंतक विहार किया।

**बालकाण्ड समाप्त**

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

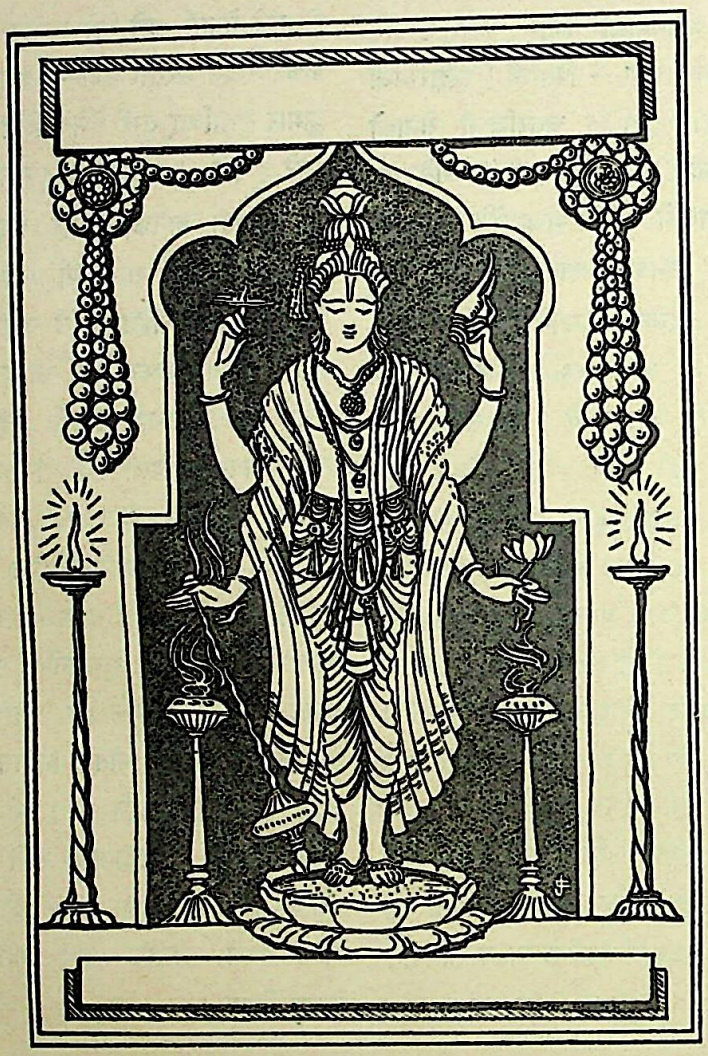

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥
(अयोध्या० १।७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण

## अयोध्याकाण्ड

### रामके गुणोंका वर्णन, राजा दशरथका रामको युवराज बनानेका विचार तथा प्रजाजनोंके द्वारा उसका समर्थन

पहले बताया जा चुका है कि भरत अपने मामाके यहाँ जाते समय काम आदि शत्रुओंको जीतनेवाले शत्रुघ्नको भी प्रेमवश साथ लेते गये थे। वहाँ भाईसहित उनका बड़ा आदर-सत्कार हुआ और वे बड़े आनन्दसे रहने लगे। उनके मामा युधाजित्, जो अश्वयूथके स्वामी थे, उन दोनोंपर पुत्रकी भाँति स्नेह रखते और बड़ा लाड़-प्यार करते थे। यद्यपि मामाके यहाँ उन दोनों भाइयोंकी सभी इच्छाएँ पूर्ण की जाती थीं और वे सन्तुष्ट भी रहते थे, तथापि उन्हें अपने वृद्ध पिता महाराज दशरथकी याद कभी नहीं भूलती थी। राजा दशरथ भी अपने दोनों पुत्र भरत और शत्रुघ्नका सदा स्मरण किया करते थे। उनको अपने चारों ही पुत्र बहुत प्रिय थे; किन्तु उनमें भी महातेजस्वी राम सबकी अपेक्षा अधिक गुणवान् होनेके कारण पिताके विशेष स्नेह-भाजन थे। इसका एक कारण और भी था—वे साक्षात् सनातन विष्णु थे और परम प्रचण्ड रावणके वधकी अभिलाषा रखनेवाले देवताओंकी प्रार्थनापर मनुष्यलोकमें अवतीर्ण हुए थे। उस अमिततेजस्वी पुत्रसे महारानी कौसल्याकी बड़ी शोभा थी—बड़ा सम्मान था। राम बड़े ही रूपवान् और पराक्रमी थे। वे किसीके दोष नहीं देखते थे। भूमण्डलमें उनकी समता करनेवाला कोई नहीं था। वे सदा शान्तचित्त रहते और मीठे वचन बोलते थे। यदि कोई कठोर बात भी कह देता तो उसका उत्तर नहीं देते थे। किसीके सैकड़ों अपकार करनेपर भी उसके अपराधोंको याद नहीं रखते थे। चरित्रमें, ज्ञानमें तथा अवस्थामें बड़े सत्पुरुषोंसे सदा बातचीत करते और उनसे शिक्षा लेते थे। हमेशा मधुर और प्रिय बोलते थे। झूठी बात तो उनके मुँहसे कभी निकलती ही नहीं थी। वे वृद्ध पुरुषोंका सदा सम्मान किया करते थे। प्रजाका रामके प्रति और रामका प्रजाके प्रति अनुराग था। वे परम दयालु, क्रोधको जीतनेवाले और ब्राह्मणोंके पुजारी थे। दीनोंपर कृपालु, धर्मका रहस्य जाननेवाले और इन्द्रियजयी थे। रामचन्द्रजी बाहर और भीतरसे सदा ही शुद्ध रहते थे। शास्त्रविरुद्ध बातोंको सुननेमें उनकी कभी रुचि नहीं होती थी। वे अपने न्याययुक्त पक्षके समर्थनमें बृहस्पतिके समान एक-से-एक बढ़कर युक्तियाँ देते थे। उनका शरीर नीरोग था और अवस्था तरुण। वे असाधारण वक्ता, सुन्दर विग्रहसे सुशोभित तथा देश-कालके तत्त्वको समझनेवाले थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था कि विधाताने संसारमें समस्त पुरुषोंके सारतत्त्वको समझनेवाले साधु पुरुषके रूपमें एकमात्र रामको ही प्रकट किया है। श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त राजकुमार राम अपने गुणोंके कारण प्रजाको बाहरी प्राणोंकी भाँति प्रिय थे। वे सम्पूर्ण विद्याओंमें निष्णात और साङ्गवेदके ज्ञाता थे। बाणविद्यामें तो अपने पितासे भी बढ़कर थे। वे कल्याणकी जन्मभूमि, साधु, दीनतारहित, सत्यवादी और सरल थे। धर्म और अर्थके ज्ञाता वृद्ध ब्राह्मणोंके द्वारा उन्हें उत्तम शिक्षा प्राप्त हुई थी। धर्म, काम और अर्थके तत्त्वका उनको सम्यक् ज्ञान था। वे स्मरणशक्तिसे सम्पन्न और प्रतिभाशाली थे। उन्हें सामयिक लोकाचारोंका विशेष ज्ञान था। वे गम्भीर, अपने आकारको छिपानेवाले और मन्त्रको गुप्त रखनेवाले थे। उन्हें सत्पुरुषोंके संग्रह, दीनोंपर अनुग्रह तथा दुष्ट पुरुषोंके निग्रहके अवसरोंका ठीक-ठीक ज्ञान था। उन्होंने सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों तथा संस्कृत-प्राकृत आदि नाना प्रकारकी भाषाओंके ज्ञानमें निपुणता प्राप्त की थी। मनोरञ्जनके उपयोगमें आनेवाले संगीत, वाद्य और चित्रकारी



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आदि शिल्पोंके भी वे विशेषज्ञ थे। श्रीरामचन्द्रजी धनुर्वेदके विद्वानोंमें श्रेष्ठ थे। अतिरथी पुरुषोंमें उनका विशेष आदर था। वे शत्रु-सेनापर आक्रमण और प्रहार करनेमें विशेष कुशल थे। सेना-सञ्चालनकी नीतिमें उन्होंने अधिक निपुणता प्राप्त की थी। संग्राममें क्रोधसे भरकर आये हुए देवता और असुर भी उनको परास्त नहीं कर सकते थे। दोषदृष्टिका तो उनमें लेश भी नहीं था। क्रोधको वे जीत चुके थे। घमंड और द्वेष उनके पास भी नहीं फटकने पाते थे। किसी भी प्राणीके मनमें उनके प्रति अवहेलनाका भाव नहीं था। वे कालके वशमें होकर उसके पीछे-पीछे चलनेवाले नहीं थे (काल ही उनके पीछे चलता था)। इस प्रकार उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण राजकुमार राम समस्त प्रजा और तीनों लोकोंके प्राणियोंके लिये आदरणीय थे। उन्हें ऐसा सदाचारसम्पन्न देख पृथ्वीने भी अपना स्वामी बनानेकी कामना की।

अपने पुत्र रामको अनेकों अनुपम गुणोंसे युक्त देखकर बूढ़े महाराज दशरथके मनमें यह विचार हुआ कि किस प्रकार मेरे जीते-जी रामचन्द्रका राज्याभिषेक हो। इसके लिये उनके मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो गयी। वे सोचने लगे कि—'राम सब लोगोंके अभ्युदयकी कामना करते और सम्पूर्ण जीवोंपर दया रखते हैं। वे संसारमें वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति मुझसे भी बढ़कर प्रिय हो गये हैं। गुणोंमें तो वे मुझसे सर्वथा बढ़े-चढ़े हैं। मैं इसी उम्रमें अपने बेटेको सारी पृथ्वीका राज्य करते देख यथासमय सुखसे स्वर्ग प्राप्त करूँ—यही मेरे जीवनकी साध है।' इस प्रकार विचार कर तथा अपने पुत्र रामको असंख्य सज्जनोचित गुणोंसे विभूषित देख राजा दशरथने मन्त्रियोंसे सलाह ली और उन्हें युवराज बनानेका निश्चय कर लिया। पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले राम समस्त प्रजाके प्रिय थे। लोगोंका उनके प्रति प्रेम देखकर राजाकी भविष्यविषयक चिन्ता जाती रही। तदनन्तर उपयुक्त समय आनेपर धर्मात्मा राजा दशरथ अपने और प्रजाके कल्याणके लिये बड़ी उतावलीके साथ पुत्रके राज्याभिषेककी तैयारी करने लगे। उनके हृदयका प्रेम और प्रजाका अनुराग भी उस उतावलीमें कारण हो रहा था। उन्होंने भिन्न-भिन्न नगरोंमें निवास करनेवाले प्रधान अधिकारियों तथा अन्य देशोंके सामन्त राजाओंको भी अयोध्यामें बुलवा लिया, किन्तु बहुत जल्दी होनेके कारण केकयराज तथा मिथिलानरेशको नहीं बुलवाया। सोचा, वे लोग इस प्रिय समाचारको पीछेसे सुन लेंगे। तदनन्तर बहुत-से राजा तथा नगर और देशके निवासी मनुष्य वहाँ आये और विशेष सम्मानित होकर विनीतभावसे राजाके आसपास बैठ गये। उन सबसे घिरे हुए राजा दशरथकी बड़ी शोभा हुई।

उस समय राजसभामें बैठे हुए सब लोगोंको सम्बोधित कर महाराज दशरथने बड़े मधुर स्वरसे सबके आनन्दको बढ़ानेवाली यह हितकारक बात कही—'सज्जनो! आपलोगोंको मालूम ही होगा कि मेरे पूर्वज राजाओंने इस राज्यकी प्रजाका किस तरह पुत्रकी भाँति पालन किया था। अब मैं भी सम्पूर्ण जगत्‌को कल्याणका भागी बनाना चाहता हूँ, इसलिये यहाँ बैठे हुए सम्पूर्ण द्विजातियोंकी अनुमति लेकर मेरा प्रजाजनोंके हितके कार्यपर अपने पुत्र रामको नियुक्त करनेका विचार हो रहा है और ऐसा करके मैं इस राज्य-भारसे अलग हो विश्राम लेना चाहता हूँ। राम धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। वे आपलोगोंके लिये योग्य स्वामी सिद्ध होंगे। उनके-जैसे स्वामीको पाकर तो सम्पूर्ण त्रिलोकी भी अपनेको सनाथ समझेगी। वे कल्याणस्वरूप हैं। मैं शीघ्र ही उनका अभिषेक करके इस पृथ्वीका उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करूँगा—भूमण्डलको कल्याणका भागी बनाऊँगा। अपने पुत्रको राज्य सौंपकर मैं सर्वथा निश्चिन्त हो जाऊँगा। यदि मेरा यह प्रस्ताव आपलोगोंको अनुकूल जान पड़े तथा यदि मैंने यह अच्छी बात सोची हो तो आप इसके लिये मुझे सहर्ष अनुमति दें।' राजा दशरथके ऐसा कहनेपर वहाँ उपस्थित राजाओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी बातका अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् समस्त जनसमुदायकी स्नेहमयी हर्षध्वनि सुनायी पड़ी। वह ध्वनि इतनी प्रबल थी कि समस्त पृथ्वीको कँपाती हुई-सी जान पड़ी। धर्म और अर्थके ज्ञाता महाराज दशरथके अभिप्रायको जानकर सम्पूर्ण ब्राह्मण, सेनापति तथा नगर और राज्यके प्रधान-प्रधान व्यक्ति परस्पर विचार करनेके लिये एकत्रित हुए और जब वे एक निश्चयपर पहुँच गये तो राजा दशरथसे बोले—'महाराज! आपकी अवस्था कई हजार वर्षोंकी हो गयी, बुढ़ापा आ गया; अतः अपने पुत्र रामका अवश्य ही युवराजके पदपर अभिषेक कीजिये। रघुवीर रामचन्द्रजी महान् गजराजपर बैठे हों और उनके ऊपर श्वेत छत्र तना हो—इस रूपमें हम उनकी झाँकी करना चाहते हैं। आपके पुत्र राममें बहुत-से सद्‌गुण हैं। वे सत्यवादी, सत्यपरायण एवं सत्पुरुष हैं। साक्षात् रामने ही अर्थके साथ धर्मको प्रतिष्ठित किया है। जैसे चन्द्रमा सबको आह्लादित करते हैं, उसी प्रकार राम भी प्रजाजनोंको सुख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


एवं आनन्द प्रदान करते हैं। वे धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, शीलवान्, दोषदृष्टिसे रहित, क्षमाशील, दूसरोंको सान्त्वना देनेवाले, प्रिय वचन बोलनेवाले, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाववाले, स्थिर-बुद्धि, सदा कल्याणकारी तथा प्रियवादी होनेके साथ-साथ सत्यवादी भी हैं। देवता, असुर और मनुष्योंके सम्पूर्ण अस्त्रोंका उन्हें विशेषरूपसे ज्ञान है। वे साङ्ग वेदके विद्वान् और सम्पूर्ण विद्याओंमें निष्णात हैं। कल्याणकी तो वे जन्म-भूमि ही हैं! प्रजाके घर उत्सव देखकर उन्हें पिताकी भाँति प्रसन्नता होती है। वे महान् धनुर्धर, वृद्ध पुरुषोंके सेवक और हँसकर बात करनेवाले हैं। उन्होंने धर्मका पूर्णरूपसे आश्रय लिया है। उनकी भौंहें सुन्दर हैं, आँखें विशाल और कुछ लालिमा लिये हुए हैं। वे साक्षात् विष्णुकी भाँति शोभा पाते हैं; सम्पूर्ण लोकोंको आनन्दित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी शूरता, वीरता और पराक्रम आदिके द्वारा सदा प्रजाका पालन करनेमें लगे रहते हैं। उनकी इन्द्रियोंपर राग आदि दोषोंका प्रभाव नहीं पड़ता। इस पृथ्वीकी तो बात ही क्या, वे सम्पूर्ण त्रिलोकीकी भी रक्षा कर सकते हैं। ऐसे सर्वगुणसम्पन्न, लोकपालोंके समान प्रभावशाली एवं सत्यपराक्रमी रामको इस पृथ्वीकी जनता अपना स्वामी बनाना चाहती है। राज्यमें, अयोध्यापुरीमें तथा गाँवों और नगरोंमें जितने मनुष्य रहते हैं, वे स्त्री हों या पुरुष—सभी रामके बल, आरोग्य तथा आयुकी शुभ-कामना करते हैं। इस पुरीकी बूढ़ी और युवती—सब तरहकी स्त्रियाँ सबेरे और सायंकालमें एकाग्रचित्त होकर परम उदार श्रीरामचन्द्रजीके युवराज होनेके लिये देवताओंसे प्रार्थना किया करती हैं। महाराज! उनकी वह याचना आपकी कृपासे पूर्ण होनी चाहिये। हम आपके ज्येष्ठ पुत्र रामको युवराज-पदपर विराजमान देखना चाहते हैं; अतः आप देवाधिदेव श्रीविष्णुके समान पराक्रमी, सम्पूर्ण लोकोंके हितमें संलग्न रहनेवाले और महापुरुषोंद्वारा सेवित अपने पुत्र श्रीरामचन्द्रजीका जितना शीघ्र हो सके प्रसन्नतापूर्वक राज्याभिषेक कीजिये। इसीमें हमलोगोंका हित है।'

## रामके राज्याभिषेककी तैयारी

सभासदोंने हाथ जोड़कर महाराजके प्रस्तावका समर्थन किया, उसे सुनकर राजा दशरथ उन सबसे प्रिय और हितकारी वचन बोले—'अहा! आपलोग मेरे परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र रामको युवराजके पदपर विराजमान देखना चाहते हैं, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। इस प्रकारकी बातोंसे पुरवासी तथा बाहरके लोगोंका सत्कार करके महाराज दशरथने उनके सुनते हुए ही वामदेव और वसिष्ठ आदि ब्राह्मणोंसे कहा—'विप्रवरो! यह चैत्र मास बड़ा सुन्दर और पवित्र है। इसमें रामका युवराज-पदपर अभिषेक करनेके लिये सब सामग्री एकत्रित कराइये। जो-जो सामान आवश्यक हों, उन्हें लानेके लिये आज ही सेवकोंको आज्ञा दीजिये।' तब वसिष्ठजीने हाथ जोड़कर खड़े हुए सेवकोंको आज्ञा दी—'सुवर्ण आदि रत्न, देवपूजनकी सामग्री, सब प्रकारकी ओषधियाँ, श्वेत पुष्पोंकी मालाएँ, लावा, घी, मधु, नये वस्त्र, रथ, सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, चतुरङ्गिणी सेना, उत्तम लक्षणोंसे युक्त हाथी, दो चँवर, ध्वजा, श्वेत छत्र, अग्निके समान देदीप्यमान सोनेके सौ कलश, सोनेसे मढ़े हुए सींगोंवाला एक साँड़, समूचा व्याघ्रचर्म तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ एकत्रित करके कल प्रातःकाल महाराजकी अग्निशालामें रक्खी जायँ। अन्तःपुर तथा नगरके सभी दरवाजे चन्दन और फूलोंसे सजा दिये जायँ। दही-दूध और घी आदिसे संयुक्त अत्यन्त उत्तम एवं गुणकारी अन्न तैयार कराया जाय, जो एक लाख ब्राह्मणोंके भोजनके लिये पर्याप्त हो। कल सूर्योदय होते ही स्वस्तिवाचन होगा, उसके लिये ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर उनके लिये आसन आदिका प्रबन्ध कर रखना चाहिये। नगरमें सब ओर पताकाएँ फहरायी जायँ और राजमार्गोंपर छिड़काव कराया जाय।' इस प्रकार सेवकोंको आवश्यक कार्य बताकर वसिष्ठ और वामदेवजीने शेष कार्य राजासे पूछकर स्वयं किया और उसे पूरा करके महाराजको सूचना दी कि सब कार्य सम्पन्न हो गया।

तदनन्तर राजाने सुमन्त्रसे कहा—'पवित्रात्मा रामको तुम शीघ्र यहाँ बुला लाओ।' 'जो आज्ञा' कहकर सुमन्त्र गये और राजाके कथनानुसार रथियोंमें श्रेष्ठ रामको रथपर बिठाकर ले आये। रथसे उतरकर जब राम पिताजीके पास चले तो सुमन्त्र उनके पीछे-पीछे हाथ जोड़े हुए गये। उनके साथ ऊँचे प्रासादपर चढ़कर रामचन्द्रजीने पिताके निकट जा उनके चरणों-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


में प्रणाम किया और अपना नाम सुनाकर परिचय दिया। प्रिय पुत्रको प्रणाम करते देख राजाने उनके दोनों हाथ पकड़कर अपने पास खींच लिया और बड़े प्रेमके साथ छातीसे लगाया। फिर उन्हें मणिजटित सुवर्णसे भूषित सुन्दर सिंहासन-पर बैठनेकी आज्ञा दी। राम उसपर विराजमान होकर अपनी ही प्रभासे उद्दीप्त होने लगे। भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे अलङ्कृत अपने ही प्रतिबिम्बकी भाँति शोभा पानेवाले पुत्रको देखकर राजाको बड़ा सुख मिला। वे रामको सम्बोधित करके बोले—'बेटा! तुम्हारा जन्म मेरी बड़ी महारानी कौसल्याके गर्भसे हुआ है। तुम अपनी माताके अनुरूप ही उत्पन्न हुए हो। मेरे पुत्र होकर भी गुणोंमें मुझसे सर्वथा बढ़े-चढ़े हो, इसलिये मुझे विशेष प्रिय हो। तुमने अपने गुणोंसे समस्त प्रजाको प्रसन्न कर लिया है, अतः पुष्यनक्षत्रके योगमें युवराजपद स्वीकार करो। यद्यपि तुम स्वभावसे ही गुणवान् हो, तो भी स्नेहवश मैं तुम्हें कुछ हितकी बातें कहता हूँ। तुम काम और क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दुर्व्यसनों-का सर्वथा त्याग करना, स्वयं जाँच-पड़ताल कर तथा गुप्तचरों-द्वारा पता लगाकर ठीक-ठीक न्याय करना। मन्त्री, सेनापति आदि अधिकारियों तथा समस्त प्रजाको प्रसन्न रखना। जो राजा भंडारघर तथा शस्त्रागार आदिके द्वारा उपयोगी वस्तुओंका बहुत बड़ा संग्रह रखता है और मन्त्री, सेनापति आदि कर्मचारियों तथा सम्पूर्ण प्रजाको प्रसन्न रखते हुए पृथ्वीका पालन करता है, उसके मित्र उसी भाँति आनन्दित रहते हैं जैसे अमृतको पाकर देवता प्रसन्न हुए थे। इसलिये बेटा! तुम अपने चित्तको वशमें रखकर इस प्रकारके उत्तम आचरणोंका पालन करना।'

राजाकी बातें सुनकर रामचन्द्रजीका प्रिय करनेवाले सुहृदोंने तुरंत माता कौसल्याके पास जाकर यह शुभ समाचार निवेदन किया। कौसल्याने उस प्रिय संवादके सुनानेवालोंको तरह-तरहके रत्न, सुवर्ण और गौएँ पुरस्कारमें दीं। इसके बाद रामचन्द्रजी राजाको प्रणाम करके रथपर बैठे और प्रजाजनोंसे सम्मानित होते हुए अपने शोभाशाली भवनमें चले गये। नगरनिवासी मनुष्योंने राजाकी बातें सुनकर मन-ही-मन यह अनुभव किया कि हमारी अभीष्ट कामना सिद्ध हो गयी; अतः वे उनकी आज्ञा लेकर घर चले गये और अत्यन्त हर्षसे भरकर अपनी अभीष्ट-सिद्धिके उपलक्षमें देवताओंकी पूजा करने लगे। इधर महाराज दशरथने अन्तःपुरमें जाकर सूतको बुलाया और आज्ञा दी—'जाओ, रामको एक बार फिर यहाँ बुला लाओ।' उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर सुमन्त्र रामको शीघ्र बुला ले आनेके लिये पुनः उनके महलमें गये। द्वारपालोंने रामको सुमन्त्रके आनेकी सूचना दी। सुनते ही रामचन्द्रजीने उन्हें भीतर बुला लिया और उतावले-से होकर कहा—'आपको पुनः यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ी?' सूतने कहा—'महाराज आपसे मिलना चाहते हैं।' सूतकी बात सुनकर रामचन्द्रजी महाराजका दर्शन करनेके लिये तुरंत उनके महलकी ओर चल दिये। भीतर प्रवेश करते ही उन्होंने पिताको देखा और दूरसे ही हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें पड़ गये। महाराजने रामको उठाकर छातीसे लगा लिया और उन्हें आसनपर बिठाकर पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'राम! अब मैं बूढ़ा हुआ, मेरी आयु बहुत अधिक हो गयी। मैं नाना प्रकारके मनोवाञ्छित भोग भोग चुका। अन्न और बहुत-सी दक्षिणासे युक्त सैकड़ों यज्ञ भी कर लिये। देवता, ऋषि, पितर और ब्राह्मणोंके तथा अपने ऋणसे भी उऋण हो गया। अब तुम्हें युवराज-पदपर अभिषिक्त करनेके सिवा और कोई कर्तव्य मेरे लिये शेष नहीं रह गया है। इस समय सारी प्रजा तुम्हें राजा बनाना चाहती है। ज्योतिषियोंका कहना है कि आज चन्द्रमा पुष्यसे एक नक्षत्र पहले पुनर्वसुपर विराजमान हैं, अतः कल निश्चय ही वे पुष्य-नक्षत्रपर रहेंगे। इसलिये पुष्यमें ही अपना अभिषेक करा लो। मेरा मन इस कार्यमें बहुत शीघ्रता करनेको कहता है। इस कारण कल अवश्य तुम्हारा अभिषेक करूँगा। तुम इस समयसे लेकर सारी रात इन्द्रिय-संयमपूर्वक रहते हुए वधू सीताके साथ उपवास करो और कुशकी शय्यापर सोओ।'

राजाके इस प्रकार कहनेपर रामचन्द्रजी उनसे आज्ञा ले अपने महलमें गये और उसी समय वहाँसे निकलकर माताके महलमें चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, माता कौसल्या रेशमी वस्त्र पहने मौन हो मन्दिरमें बैठकर देवाराधनमें लगी हैं और पुत्रके लिये राजलक्ष्मीकी याचना कर रही हैं। रामके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्याभिषेकका प्रिय समाचार सुनकर सुमित्रा और लक्ष्मण वहाँ पहलेसे ही आये हुए थे तथा सीता भी बादमें बुला ली गयी थीं। जब रामचन्द्रजी पहुँचे, उस समय भी कौसल्या आँख बंद किये ध्यान लगाये बैठी थीं और सुमित्रा, सीता तथा लक्ष्मण उनकी सेवामें खड़े थे। पुष्य नक्षत्रके योगमें पुत्रके युवराज-पदपर अभिषिक्त होनेकी बात सुनकर वे उसकी मङ्गल-कामनासे प्राणायामके द्वारा परम पुरुष नारायणका ध्यान कर रही थीं। उसी अवस्थामें निकट जाकर रामने माताको प्रणाम किया और उन्हें आनन्दित करते हुए कहा—'माँ! पिताजीने मुझसे कहा है—'कल तुम्हारा अभिषेक होगा।' तथा उन्होंने उपाध्यायोंकी कही हुई यह बात भी बतायी है कि 'तुमको और सीताको आज रातमें उपवास करना होगा।' अतः कल होनेवाले अभिषेकके निमित्तसे आज मेरे और सीताके लिये जो-जो मङ्गल-कार्य आवश्यक हों, वे सब हमसे कराओ।' यह सुनकर कौसल्याने आनन्दके आँसू बहाते हुए गद्गद कण्ठसे कहा—'बेटा! चिरञ्जीवी हो, तुम राजलक्ष्मीसे युक्त होकर मेरे और सुमित्राके बन्धु-बान्धवोंको आनन्दित करो। मेरे द्वारा की हुई पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णुकी आराधना आज सफल हो गयी; क्योंकि यह इक्ष्वाकु-कुलकी राजलक्ष्मी अब तुम्हें प्राप्त होनेवाली है।' माताके ऐसा कहनेपर रामचन्द्रजीने विनीतभावसे हाथ जोड़कर खड़े हुए लक्ष्मणकी ओर देख मुसकराते हुए कहा—'लक्ष्मण! मेरे साथ इस पृथ्वीका राज्य भोगो। तुम मेरे द्वितीय अन्तरात्मा हो। यह राजलक्ष्मी तुम्हारे ही अधीन हो रही है। मेरा जीवन और राज्य सब तुम्हारे लिये है।' लक्ष्मणसे ऐसा कहकर रामने दोनों माताओंको प्रणाम किया और सीताको भी साथ चलनेकी आज्ञा दिलाकर उनको लिये हुए अपने महलमें चले गये।

उधर महाराज दशरथ रामचन्द्रको दूसरे दिन होनेवाले अभिषेकके सम्बन्धमें जब आवश्यक सन्देश दे चुके तो अपने पुरोहित वसिष्ठजीको बुलाकर बोले—'तपोधन! आप जाकर वधूसहित रामसे उपवास-व्रतका पालन कराइये।' महर्षि वसिष्ठ 'तथास्तु' कहकर एक सुन्दर रथपर बैठे और रामको उपवास-व्रतका उपदेश देनेके लिये उनके महलकी ओर चल दिये। वहाँ रामसे मिलकर उन्होंने कहा—'रघुनन्दन! तुम्हारे पिता राजा दशरथ कल प्रातःकाल बड़े प्रेमसे तुम्हारा अभिषेक करेंगे, अतः आज सीताके साथ तुम उपवास करो। ऐसा कहकर उन्होंने वैदिक मन्त्रका उच्चारण करके राम और सीताको उपवास-व्रतकी दीक्षा दी। तत्पश्चात् रामने गुरु वसिष्ठका यथावत् पूजन किया और वे रामकी अनुमति लेकर उनके महलसे निकले। बाहर आनेपर वसिष्ठजीने देखा, सारे राजमार्ग मनुष्योंकी भीड़से भरे हैं। धीरे-धीरे वे राजा दशरथके महलमें जाकर उनसे मिले। उन्हें आये देख राजा आसन छोड़कर खड़े हो गये और पूछने लगे—'मुनिवर! क्या आपने मेरा अभिप्राय सिद्ध किया?' वसिष्ठजीने उत्तर दिया—'हाँ' तदनन्तर, गुरुकी आज्ञासे राजा दशरथने सभासदोंको विदा करके अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया। अयोध्यावासी मनुष्योंने जब सुना कि रामचन्द्रजीने सीताके साथ उपवास-व्रत आरम्भ कर दिया है, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। सबेरा होनेपर रामके अभिषेकका समाचार सुनकर सभी पुरवासी अयोध्यापुरीको सजानेमें लग गये। हिमालयके शिखरके समान ऊँचे-ऊँचे देवमन्दिरों, चौराहों, गलियों, वृक्षों, सभाओं, अट्टालिकाओं, नाना प्रकारकी बेचनेयोग्य वस्तुओंसे भरी हुई व्यापारियोंकी बड़ी-बड़ी दुकानों तथा धनी गृहस्थोंके समृद्धिशाली सुन्दर महलोंपर ध्वजारोपण हुआ और पताकाएँ फहरायी गयीं। पुरवासियोंने राजमार्गपर फूलोंके हार बिछाये तथा सब ओर धूपकी सुगन्ध फैला दी। वे आपसमें कहने लगे—'भगवान्‌का हमलोगोंपर बहुत बड़ा अनुग्रह है कि श्रीरामचन्द्रजी हमारे राजा होंगे और चिरकालतक हमारी रक्षा करते रहेंगे।' उस समय रामका अभिषेक देखनेके लिये चारों दिशाओंसे इतने लोग जुटे कि सारी अयोध्या खचाखच भर गयी। उन मनुष्योंके महान् कोलाहलसे गूँजता हुआ वह नगर ऐसा जान पड़ता था, मानो जल-जन्तुओंसे भरा हुआ समुद्र अविरत गर्जन कर रहा हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## कुब्जाके कुचक्रसे कैकेयीका कोपभवनमें प्रवेश

रानी कैकेयीकी नैहरसे आयी हुई एक दासी थी, जिसका नाम था मन्थरा। वह सदा कैकेयीके ही साथ रहा करती थी। अभिषेकके एक दिन पहले वह अकस्मात् कैकेयीके महलकी छतपर चढ़ी। वहाँसे उसने देखा कि अयोध्यापुरीमें सब ओर बहुमूल्य पताकाएँ फहरा रही हैं। ध्वजाओंसे पुरीकी अपूर्व शोभा हो रही है। सड़कोंपर चन्दनमिश्रित जलका छिड़काव किया गया है। देवमन्दिरोंके दरवाजे [ चूने आदिसे लीप-पोतकर ] सफेद एवं सुन्दर बनाये गये हैं। सब प्रकारके बाजोंकी मनोहर ध्वनि हो रही है। अत्यन्त हर्षमें भरे हुए मनुष्योंसे सारा नगर परिपूर्ण है और चारों ओर वेदकी ध्वनि गूँज रही है। अयोध्याकी ऐसी शोभा देख मन्थराको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पासके ही कोठेपर रामकी धायको खड़ी देखा। उसके नेत्र प्रसन्नतासे खिले हुए थे और शरीरपर पीले रंगकी रेशमी साड़ी शोभा पा रही थी। मन्थराने उससे पूछा—'आज रामकी माता अत्यन्त हर्षमें भरकर लोगोंको धन क्यों बाँट रही हैं, सभी मनुष्योंको आज इतनी प्रसन्नता क्यों है? इसका कारण मुझे भी बताओ।' रामकी धाय तो हर्षसे फूली नहीं समाती थी। उसने मन्थराके पूछनेपर बड़े आनन्दके साथ कहा—'कुब्जे! महाराज कल पुष्य नक्षत्रके योगमें श्रीमान् रामको युवराजके पदपर अभिषिक्त करेंगे।'

धायकी बात सुनकर कुब्जा मन-ही-मन कुढ़ गयी और तुरंत ही कोठेसे नीचे उतर पड़ी। मन्थराको इसमें कैकेयीका अनिष्ट दिखायी देने लगा। वह क्रोधसे जलती हुई कैकेयीके महलमें गयी। रानी कैकेयी उस समय पलँगपर लेटी हुई थी। उसी अवस्थामें उसके पास जाकर मन्थराने कहा—'मूर्खे! उठ, क्या सो रही है? तुझपर बड़ा भारी भय आ रहा है। अरी! तेरे ऊपर दुःखका पहाड़ टूट पड़ा है, फिर भी तुझे चेत नहीं होता!' कुब्जाके ये कठोर वचन सुनकर कैकेयीका मन खिन्न हो गया। उसने पूछा—'मन्थरे! कोई अमङ्गलकी बात तो नहीं हो गयी? तेरे मुखपर विषाद छा रहा है, तू बहुत दुखी दिखायी देती है। इसका क्या कारण है?' कैकेयीके मीठे वचन सुनकर कुब्जाने अपना चेहरा और भी उदास बना लिया तथा रामकी ओरसे उसके मनमें भेद पैदा करती हुई वह रोषमें भरकर बोली—'देवि! कल महाराज दशरथ रामको युवराज-पदपर अभिषिक्त करेंगे। यह समाचार पाकर मैं दुःख और शोकसे व्याकुल हो अगाध भयमें डूबी जा रही हूँ; क्योंकि यदि तुम्हारे ऊपर दुःख आया तो मुझे भी बड़े भारी दुःखमें पड़ना होगा। तुम्हारी उन्नतिमें ही मेरी भी उन्नति है। तुम्हारे स्वामी धर्म बहुत बघारते हैं, परन्तु हैं बड़े धूर्त। बातें तो चिकनी-चुपड़ी करते हैं, किन्तु हृदयके बड़े क्रूर हैं। तुम समझती हो कि वे सारी बातें शुद्ध भावसे ही कहते हैं, इसीलिये आज उनके द्वारा बेतरह ठगी गयी हो। उनका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय इतना दूषित है कि भरतको तो उन्होंने तुम्हारे भाईके घर भेज दिया और कल सवेरे ही अवधके निष्कण्टक राज्यपर रामका अभिषेक करेंगे।'

मन्थराके वचन सुनकर रानी कैकेयीके मुखपर प्रसन्नता दौड़ गयी। वह तुरंत ही पलँगसे उठ बैठी और अत्यन्त हर्षसे भरकर एक परम सुन्दर दिव्य आभूषण मन्थराको पुरस्कारके रूपमें देती हुई बोली—'मन्थरे! यह तो तूने मुझे बड़ा ही प्रिय समाचार सुनाया। मैं राम और भरतमें कोई भेद नहीं समझती; अतः यह जानकर कि राजा रामका अभिषेक करनेवाले हैं, मुझे बड़ी खुशी हुई है। ऐसा प्रिय वचन सुनानेके उपलक्षमें मैं तुझे कोई उत्तम वर देना चाहती हूँ; तेरी जो इच्छा हो माँग ले।' यह सुनकर मन्थराने कैकेयीकी ओर अनखभरी दृष्टिसे देखा और वह आभूषण फेंककर क्रोध और दुःखसे भरकर बोली—'देवि! तुम्हें शोकके स्थानपर हर्ष हो रहा है, तुम बहुत बड़ी विपत्तिको पाकर सन्तोष मानती हो—यह देखकर मुझे मन-ही-मन बड़ा क्लेश सहन करना पड़ता है। मैं दुःखसे व्याकुल हो रही हूँ। तुम्हारी मूर्खता देखकर ही मुझे अधिक शोक होता है। अरे! सौतका बेटा शत्रु होता है। वह साक्षात् मृत्युके समान है। भला, उसका अभ्युदय देखकर कौन समझदार स्त्री हर्ष मानेगी। इस राज्यपर राम और भरतका समान अधिकार है, इसलिये रामको भरतसे ही भयकी आशङ्का हो सकती है। लक्ष्मण और शत्रुघ्न छोटे हैं, अतः उन्हें राज्य पानेका अधिकार नहीं है। रामके बाद भरत ही उसके अधिकारी हैं, इसलिये तुम्हारे पुत्रको मुझे रामसे खतरा जान पड़ता है और यही सोचकर मैं भयसे काँप उठती हूँ। वास्तवमें कौसल्या ही सौभाग्यवती हैं; क्योंकि उनके पुत्रका अभिषेक होने जा रहा है। वे भूमण्डलका निष्कण्टक राज्य पाकर प्रसन्न होंगी और तुम दासीकी भाँति उनकी सेवामें हाथ जोड़े खड़ी रहोगी। इस प्रकार हमलोगोंके साथ तुम भी कौसल्याकी दासी बनोगी और तुम्हारे पुत्र भरतको रामकी गुलामी करनी पड़ेगी।'

मन्थराको अप्रसन्नताके कारण इस प्रकार बहकी-बहकी बातें करते देख देवी कैकेयीने रामके ही गुणोंकी प्रशंसा करते हुए कहा—'कुब्जे! राम धर्मके ज्ञाता, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र होनेके साथ ही महाराजके ज्येष्ठ पुत्र हैं। अतः युवराज होनेका अधिकार उन्हींको है। वे दीर्घजीवी होकर अपने भाइयों और भृत्योंका पिताकी भाँति पालन करेंगे। भला, उनके अभिषेककी बात सुनकर तू इतनी जल क्यों रही है? रामकी राज्य-प्राप्तिके सौ वर्ष बाद भरतको भी अपने पिता-पितामहोंका राज्य मिलेगा। ऐसे अभ्युदयके समय, जब कि भविष्यमें कल्याण-ही-कल्याण दिखायी दे रहा है, तुझे इतना दुःख क्यों होता है? मेरे लिये जैसे भरत आदरके पात्र हैं वैसे ही, बल्कि उनसे भी बढ़कर राम हैं। वे कौसल्यासे भी अधिक मेरी सेवा करते हैं। यदि रामको राज्य मिल रहा है, तो उसे भरतको ही मिला समझ; क्योंकि रामचन्द्र अपने ही समान अपने भाइयोंको भी समझते हैं।'

कैकेयीकी बातें सुनकर मन्थराको बहुत दुःख हुआ। वह लंबी और गरम साँस खींचकर कैकेयीसे बोली—'तुम मूर्खतावश अनर्थको ही अर्थ समझ रही हो, तुम्हें अपनी स्थितिका भी पता नहीं है। जब रामचन्द्र राजा हो जायँगे, तो फिर उनके पुत्रको ही राज्य मिलेगा। भरत राज्यपरम्परासे अलग समझे जायँगे। राजाके सभी लड़कोंको राज्यका अधिकारी नहीं बनाया जाता, अतः तुम्हारा पुत्र राजवंशसे तो अलग होगा ही, साथ-ही-साथ अनाथकी भाँति वह समस्त सुखोंसे भी वञ्चित हो जायगा; इसलिये मैं तुम्हारे ही हितकी बात सुझानेके लिये यहाँ आयी हूँ। किन्तु तुम मेरा अभिप्राय तो समझती नहीं, उलटे सौतका अभ्युदय सुनकर पारितोषिक देने चली हो। याद रक्खो, यदि रामको निष्कण्टक राज्य मिल गया, तो वे भरतको अवश्य ही इस देशसे निकाल बाहर करेंगे। सुमित्राकुमार लक्ष्मण रामकी रक्षा करते हैं और राम उनकी। उन दोनोंका भ्रातृप्रेम अश्विनीकुमारोंकी भाँति सारे जगत्में प्रसिद्ध है। इसलिये राम लक्ष्मणका तो किञ्चित् भी अनिष्ट नहीं करेंगे, किन्तु भरतका अनिष्ट किये बिना रह नहीं सकते—इसमें तनिक भी सन्देह न मानना। अतः रामचन्द्र महाराजके महलसे ही सीधे वनको चले जायँ—मुझे तो यही अच्छा जान पड़ता है और इसीमें तुम्हारा हित है। यदि भरत धर्मानुसार अपने पिताका राज्य प्राप्त कर लेंगे तो तुम्हारा और तुम्हारे पक्षके सब लोगोंका कल्याण होगा। अतः ऐसा कोई उपाय सोचो, जिससे तुम्हारे पुत्रको तो राज्य मिले और रामचन्द्र वनमें चले जायँ।'

मन्थराके ऐसा कहनेपर कैकेयीका मुख क्रोधसे तमतमा उठा। वह लंबी और गरम साँस खींचकर उससे बोली—'कुब्जे! अब मैं रामको शीघ्र ही यहाँसे वनमें भेजूँगी और युवराजके पदपर भरतका अभिषेक कराऊँगी। यह सब कार्य जितना जल्दी हो सके करना है। परन्तु इस समय यह तो सोचो, काम बनेगा कैसे? भरतको राज्य मिले और रामको नहीं—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यह किस उपायसे सम्भव हो सकता है ?' कैकेयीके यों पूछनेपर मन्थरा रामके स्वार्थपर कुठाराघात करती हुई कहने लगी—'केकयराजकुमारी ! क्या तुम भूल गयीं, जो मुझसे उपाय पूछती हो ? यदि मेरे ही मुँहसे सुननेका आग्रह हो तो बताती हूँ, सुनो और सुनकर उसे काममें लाओ। पूर्वकालकी बात है, दक्षिण दिशामें दण्डकारण्यके भीतर वैजयन्त नामसे प्रसिद्ध नगरमें तिमिध्वज नामका एक बहुत बड़ा असुर रहता था। वह सैकड़ों प्रकारकी माया जानता था और लोगोंमें शम्बरके नामसे प्रसिद्ध था। एक बार उसने देवताओंसहित इन्द्रके साथ युद्ध छेड़ दिया। देवताओं और असुरोंके उस महान् युद्धमें अन्य राजर्षियोंके साथ तुम्हारे स्वामी महाराज दशरथ भी इन्द्रकी सहायता करनेके लिये गये थे। उस समय वे तुम्हें भी साथ ले गये थे। महाराजने वहाँ असुरोंसे घोर युद्ध किया। असुरोंके अस्त्र-शस्त्रोंसे उनका शरीर जर्जर हो गया और उनकी चेतना लुप्त हो गयी। तब उन्हें युद्ध-भूमिसे दूर ले जाकर तुमने पतिके प्राणोंकी रक्षा की। इससे सन्तुष्ट होकर महाराजने तुम्हें दो वरदान देनेको कहा; किन्तु तुमने यह कहकर कि 'जब मुझे इच्छा होगी, माँग लूँगी' वे वर उन्हींके पास रहने दिये। तुम्हारे स्वामीने भी 'तथास्तु' कहकर तुम्हारी बात मान ली। यह प्रसङ्ग मुझे तुम्हींने सुनाया था। तबसे तुम्हारे स्नेहवश मैं इस बातको सदा याद रखती आयी हूँ। अब तुम उन दोनों वरोंको अपने स्वामीसे माँगो। एक वरके द्वारा भरतका राज्याभिषेक और दूसरेके द्वारा रामका चौदह वर्षतक वनवास माँग लो। राम जब चौदह वर्षोंके लिये वनमें चले जायँगे तो उतने समयमें राजा भरत समस्त प्रजाके हृदयमें अपने लिये स्नेह पैदा कर लेंगे और इस प्रकार तुम्हारे पुत्रका राज्य स्थिर हो जायगा। इस समय मैले वस्त्र पहन लो और कोपभवनमें प्रवेश करके दरवाजेके सामने ही कुपित-सी होकर जमीनपर लेट जाओ। राजा आवें तो न उनकी ओर देखना, न कोई बात करना। उन्हें देखते ही शोकमग्न हो धरतीपर लोट-लोटकर रोने लगना। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुम महाराजको बड़ी प्यारी हो। वे तुम्हारा प्रिय करनेके लिये अपने प्राण भी दे सकते हैं, तुम्हारी बात किसी तरह टाल नहीं सकते। मुग्धे ! तुम अपने सौभाग्यके बलका स्मरण करो। राजा दशरथ तुम्हें भुलावेमें डालनेके लिये मणि, मोती, सुवर्ण और तरह-तरहके रत्न देनेकी कोशिश करेंगे; किन्तु तुम उनकी ओर मन न चलाना। जब वे स्वयं तुम्हें धरतीसे उठाकर वर देनेको तैयार हों तो उन्हें सत्यकी शपथ दिलाकर—अच्छी तरह पक्का करके वर माँगना। मेरी समझमें उनसे मनोवाञ्छित वर प्राप्त करनेका यही सबसे अच्छा अवसर है। तुम निर्भय होकर राजाको अपने वचनोंसे बाँध लो और उन्हें रामके राज्याभिषेकके सङ्कल्पसे हटा दो।'

इस प्रकार तरह-तरहकी बातें बनाकर कुब्जाने कैकेयीकी बुद्धिमें अनर्थको ही अर्थरूपसे जँचा दिया। कैकेयीको उसकी बातपर विश्वास हो गया और वह मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। यद्यपि वह बड़ी समझदार थी, तो भी कुबरीके कहनेसे नादान बालिकाकी तरह कुमार्गपर चली गयी—अनुचित काम करनेको तैयार हो गयी। उसे मन्थराकी बुद्धिपर बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उससे बोली—'कुब्जे ! तू अत्यन्त उत्तम एवं हितकी बात कहनेमें कुशल है। मैं तेरी बुद्धिकी अवहेलना नहीं कर सकती। तू ही मेरी हितैषिणी है और सदा सावधान रहकर मेरा कार्य सिद्ध करनेमें लगी रहती है। यदि तू न होती तो राजा जो षड्यन्त्र रचना चाहते हैं, वह कदापि मेरी समझमें नहीं आता। सुन्दरी ! असुरराज शम्बरको जिन सहस्रों मायाओंका ज्ञान है, वे सब तेरे हृदयमें स्थित हैं। इनके अलावे भी तू हजारों प्रकारकी माया जानती है। यदि मेरा मनोरथ पूरा हुआ तो मैं तेरे लिये अनेकों सुन्दर-सुन्दर गहने बनवा दूँगी और अच्छे-अच्छे वस्त्र दूँगी, जिन्हें पहनकर तू देवाङ्गनाकी भाँति विचरना।' यह सुनकर कुब्जाने कहा—'कल्याणी ! पानी निकल जानेपर बाँध नहीं बाँधा जाता, इसलिये जल्दी उठकर अपना कल्याण करो—कोपभवनमें जाकर राजाको अपनी अवस्थाका परिचय दो।'

मन्थराके इस प्रकार प्रोत्साहन देनेपर कैकेयी उसे साथ लेकर कोपभवनमें गयी और उसकी बातोंमें आकर लाखोंकी लागतके मोतियोंके हार तथा दूसरे-दूसरे बहुमूल्य आभूषणोंको अपने शरीरसे उतार-उतारकर फेंकने लगी। इसके बाद वह जमीनपर लेट गयी और मन्थरासे बोली—'कुब्जे ! मुझे सुवर्ण, रत्न तथा भाँति-भाँतिके भोजनोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। अब या तो रामचन्द्रके अधिककालके लिये वन चले जानेपर भरतका मनोरथ सफल होगा या तुम महाराजको मेरी मृत्युका समाचार सुनाओगी। यदि राम यहाँसे वनको नहीं गये तो मैं इस जीवनको रखना नहीं चाहूँगी।' ऐसे कठोर वचन कहकर कैकेयीने सारे आभूषण उतारकर फेंक दिये और खाली जमीनपर लोटने लगी। उस समय उसका मुख बढ़े हुए अमर्षरूपी अन्धकारसे आच्छादित हो रहा था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कैकेयीका रामको वनमें भेजनेके लिये वर माँगना और राजा दशरथका शोक करना

कैकेयीके उस निश्चयको सुनकर उसका स्वार्थ सिद्ध करनेकी इच्छावाली मन्थरा, जो उसकी हितैषिणी बनी हुई थी, बहुत प्रसन्न हुई, मानो उसे कोई उत्तम सिद्धि मिल गयी हो। क्रोधसे भरी हुई कैकेयी अपने निश्चयको भलीभाँति दृढ़ करके भौंहें चढ़ाकर लेटी हुई थी। उसके फेंके हुए विचित्र-विचित्र हार और दिव्य आभूषण भूमिपर पड़े थे। मलिन वस्त्र पहनकर एक वेणी बाँधे वह कोपभवनमें इस प्रकार निश्चेष्ट पड़ी थी, मानो उसके शरीरमें प्राण न हों। उधर महाराज दशरथ मन्त्री आदिको रामके राज्याभिषेककी तैयारीके लिये आज्ञा दे और सबको यथासमय उपस्थित होनेके लिये प्रेरित करके रनिवासमें गये। उन्होंने सोचा—आज ही रामके अभिषेककी बात प्रसिद्ध की गयी है, इसलिये यह समाचार अभी कैकेयीको नहीं मालूम हुआ होगा। ऐसा विचारकर राजाने अपनी प्यारी रानी कैकेयीको यह प्रिय संवाद सुनानेके लिये उसके महलमें प्रवेश किया, जो अपनी सजावटसे स्वर्गकी शोभाको मात कर रहा था। वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने पलँगपर कैकेयीको नहीं देखा। इससे उनके मनमें खेद हुआ और वे उसकी पूछ-ताछ करने लगे। राजाको यह नहीं मालूम था कि वह मूर्खा कोई स्वार्थ सिद्ध करना चाहती है। उन्होंने पहलेकी ही भाँति प्रतिहारीसे उसके विषयमें पूछा। प्रतिहारीने डरते-डरते हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'महाराज! रानी कैकेयी अत्यन्त क्रोधमें भरकर कोपभवनकी ओर दौड़ी गयी हैं।' यह सुनकर राजाको बड़ा विषाद हुआ, उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। कोपभवनमें जाकर उन्होंने देखा कैकेयी धरतीपर पड़ी है। तब वे उसके समीप गये और दोनों हाथोंसे उसका शरीर पोंछते हुए बोले—'देवि! तुम्हारा क्रोध मेरे ऊपर है, ऐसा तो मुझे विश्वास नहीं होता। फिर किसने तुम्हारा अपराध किया है? किसके द्वारा तुम्हारा अपमान हुआ है? क्या कारण है कि तुम मुझे दुखी करनेके लिये इस तरह धूलमें लोट रही हो? मेरे मनमें तो सदा तुम्हारे कल्याणकी ही भावना रहती है। बताओ, आज किसका प्रिय करना है? अथवा किसने तुम्हारा अप्रिय किया है, जिसके लिये उसे अत्यन्त अप्रिय—कठोर दण्ड दिया जाय? किस दरिद्रको धनवान् और किस धनीको दर-दरका भिखारी बना दूँ? मैं और मेरे सभी सेवक सदा तुम्हारी आज्ञाके अधीन चलते हैं। तुम्हारी किसी भी इच्छाको मैं पूर्ण किये बिना नहीं रह सकता, चाहे उसके लिये मुझे प्राण ही क्यों न देने पड़ें; अतः तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, उसे साफ-साफ बताओ। जहाँतक सूर्यका चक्र घूमता है, वहाँतक सारी पृथ्वी मेरे अधिकारमें है। द्रविण, सिन्धु-सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिणके सारे प्रदेश तथा अङ्ग, वङ्ग, मगध, मत्स्य, काशी और कोसल—इन सभी समृद्धिशाली देशोंपर मेरा आधिपत्य है। उनमें पैदा होनेवाले भाँति-भाँतिके द्रव्य और धन-धान्य आदि जो भी लेना चाहो, मुझसे माँग लो।'



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



राजाके ऐसा कहनेपर कैकेयीको कुछ सान्त्वना मिली। अब उसे अपने स्वामीसे वह अप्रिय बात कहनेकी इच्छा हुई। उन्हें पीड़ित करनेके लिये वह अत्यन्त रुखाईके साथ कठोर बचन बोली—'देव! न तो किसीने मेरा अपराध किया है और न किसीके द्वारा मैं अपमानित ही हुई हूँ। मेरा कुछ मतलब है और मैं आपके द्वारा उसकी पूर्ति चाहती हूँ। यदि आप उसे पूर्ण करना चाहते हों, तो प्रतिज्ञा कीजिये। इसके बाद मैं अपना मनोरथ आपसे कहूँगी।' महाराज दशरथ कामके अधीन हो रहे थे। कैकेयीकी बात सुनकर किञ्चित् मुसकराये और इस प्रकार कहने लगे—'मानिनि! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि रामके अतिरिक्त दूसरा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो मुझे तुमसे बढ़कर प्रिय हो। जिनका एक मुहूर्तके लिये भी वियोग हो जानेपर मैं जीवित नहीं रह सकता, उन्हीं रामकी शपथ खाकर कहता हूँ, तुम जो कहोगी उसे पूर्ण करूँगा। यही नहीं, अपने शुभ कर्मोंकी भी शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ, तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा।' कैकेयीका मन स्वार्थकी सिद्धिमें ही लगा हुआ था। अपने अभिप्रायको प्रकट करनेका उपयुक्त अवसर जानकर वह हर्षसे भर गयी और उस न कहने योग्य बातको भी कहने लगी—'राजन्! आप जिस तरह क्रमशः शपथ खाकर मुझे वर देनेको उद्यत हुए हैं, उसे इन्द्र आदि तैंतीस देवता अच्छी तरह सुन लें। चन्द्रमा, सूर्य, आकाश, ग्रह, रात, दिन, दिशा, जगत्, यह पृथ्वी, गन्धर्व, राक्षस, रातमें विचरनेवाले प्राणी, गृहदेवता तथा इनके अतिरिक्त भी जितने भूत-प्राणी हों, वे सब आपके वचनोंके साक्षी बनें। सब देवता सुनें—ये सत्यप्रतिज्ञ, महातेजस्वी, धर्मज्ञ, पवित्र तथा सत्यवादी महाराज दशरथ मुझे वर दे रहे हैं।'

ऐसा कहकर देवी कैकेयीने वर देनेवाले राजा दशरथसे कहा—'महाराज! उस पुरानी बातको याद कीजिये, जब कि देवासुर-संग्राममें शत्रुने आपको घायल करके गिरा दिया था, केवल प्राण नहीं लिये थे। वहाँ सारी रात जागकर, अनेकों यत्न करके मैंने आपके जीवनकी रक्षा की थी; उस समय आपने सन्तुष्ट होकर मुझे दो वर देनेको कहा था। किन्तु वे दोनों वर मैंने आपहीके पास धरोहरके रूपमें रख दिये थे। उन्हें आज ही मैं प्राप्त करना चाहती हूँ। आप मेरी बात सुनें। यह जो रामके राज्याभिषेककी तैयारी की गयी है, इसीके द्वारा मेरे पुत्र भरतका अभिषेक कीजिये और राम तपस्वीके वेषमें वल्कल तथा मृगचर्म धारण करके चौदह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें जाकर रहें। भरतको आज निष्कण्टक युवराज-पद प्राप्त हो जाना चाहिये। आप ऐसी व्यवस्था करें, जिससे मैं रामचन्द्रको आज ही वनकी ओर जाते देखूँ। आप राजाओंके राजा हैं; अतः सत्यप्रतिज्ञ बनिये और उस सत्यके ही द्वारा अपने कुल, शील तथा जन्मकी रक्षा कीजिये। तपस्वी पुरुषोंका कहना है कि सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ धर्म है, वह परलोकमें मनुष्योंका परम कल्याण करनेवाला है।'

कैकेयीके ये कठोर वचन सुनकर महाराज दशरथको बड़ी चिन्ता हुई। वे एक मुहूर्ततक अत्यन्त सन्ताप करते रहे। इसके बाद सोचने लगे—'क्या दिनमें ही यह मुझे स्वप्न दिखायी दे रहा है अथवा मेरे चित्तका मोह है?' यही सोचते-सोचते अत्यन्त शोकके कारण उनकी चेतना लुप्त हो गयी।

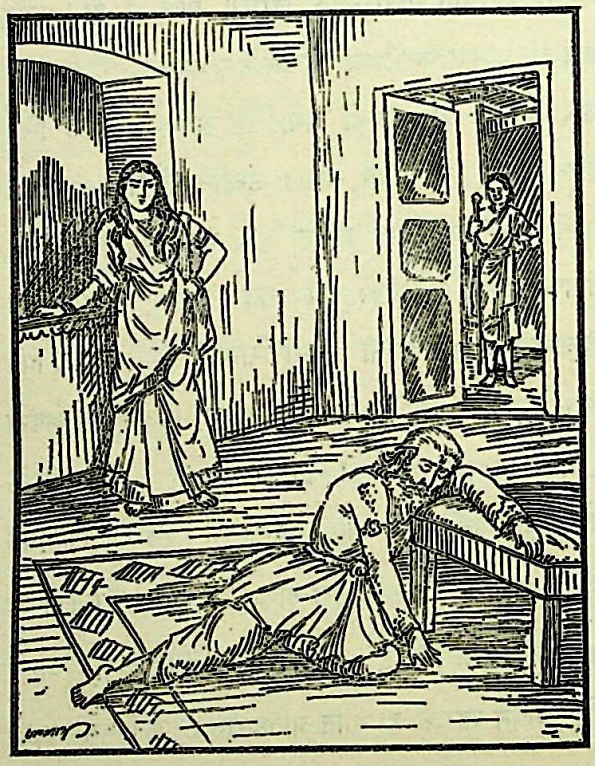

वे मूर्छित हो गये। बहुत देरके बाद जब उन्हें फिर चेत हुआ तो वे अत्यन्त दुखी होकर कैकेयीको अपने तेजसे दग्ध-सी करते हुए बोले—'पापिनि! तू बड़ी क्रूर और इस कुलका विनाश करनेवाली है। बता, मैंने या रामने तेरा क्या बिगाड़ा है? राम तो तेरे साथ सदा सगी माताका-सा बर्ताव करते आये हैं, फिर तू किसलिये उनका इस तरह अनिष्ट करनेपर उतारू हो गयी है? मालूम होता है मैंने अपना नाश करनेके लिये ही तुझे घरमें रख छोड़ा था। मैं नहीं जानता था कि तू राज-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कन्याके रूपमें तीखे जहरवाली नागिन है। सारा संसार जिनके गुणोंकी प्रशंसा करता है, उन्हीं अपने प्यारे पुत्र रामको मैं किस अपराधसे त्याग दूँ? मैं कौसल्या, सुमित्रा, राजलक्ष्मी तथा अपने प्राणोंका भी त्याग कर सकता हूँ, किन्तु पितृभक्त रामको नहीं छोड़ सकता। उन्हें देखते ही मेरे हृदयमें अनन्त प्रेम उमड़ आता है। सूर्यके बिना कदाचित् यह संसार रह सकता है, पानीके बिना खेती बनी रह सकती है; किन्तु रामके बिना मेरे शरीरमें प्राण नहीं रह सकते। इसलिये आग्रह न कर, इस पापपूर्ण निश्चयको त्याग दे; मैं तेरे पैरों पड़ता हूँ, मुझपर प्रसन्न हो जा। भला, ऐसी क्रूरतापूर्ण बात तूने किसलिये सोची है? यदि तू यह जानना चाहती है कि भरत मुझे प्रिय हैं या नहीं, तो भरतके सम्बन्धमें तू पहले जो कुछ कह चुकी है, वह पूर्ण हो—तेरे प्रथम वरके अनुसार मैं भरतका राज्याभिषेक स्वीकार करता हूँ। आजसे पहले बातचीतके सिलसिलेमें तू कई बार कहा करती थी 'मेरे लिये राम भरतके ही समान हैं।' उन्हीं परम सुकुमार रामका चौदह वर्षोंतक भयंकर वनमें रहना तुझे कैसे अच्छा लगता है? जो सदा तेरी सेवामें लगे रहते हैं, उन्हीं नयनाभिराम रामको देश-निकाला दे दिया जाय—यह बात तुझे क्योंकर उचित जान पड़ती है? मैं देखता हूँ भरतसे अधिक राम ही तेरी सेवा करते हैं। भरत उनसे अधिक तेरी सेवामें रहते हों—ऐसा नहीं देखा जाता। नरश्रेष्ठ रामसे बढ़कर गुरुजनोंकी सेवा करनेवाला, उनको गौरव प्रदान करनेवाला, उनकी बातोंपर विश्वास रखनेवाला और वे जो भी आज्ञा दें, उनका तुरंत पालन करनेवाला दूसरा कौन है? मेरे यहाँ हजारों स्त्रियाँ हैं और बहुत-से भृत्यजन हैं; परन्तु किसीके मुँहसे रामचन्द्रके सम्बन्धमें सच्ची या झूठी किसी प्रकारकी शिकायत नहीं सुनी जाती। सत्य, दान, तप, त्याग, मैत्री, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरु-शुश्रूषा—ये सभी सद्गुण राममें स्थिररूपसे रहते हैं। महर्षियोंके समान तेजस्वी उन सीधे-सादे देवतुल्य रामका तू क्यों अनिष्ट करना चाहती है? राम सब लोगोंसे प्रिय बोलते हैं। उन्होंने कभी किसीको अप्रिय वचन कहा हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। ऐसे लोकप्रिय रामको मैं तेरे लिये अप्रिय बात कैसे सुनाऊँगा? जिनमें क्षमा, सत्यपरायणता, धर्म, कृतज्ञता और समस्त जीवोंके प्रति दया भरी हुई है, उनके बिना मेरी क्या गति होगी? कैकेयी! मैं बूढ़ा हूँ, मृत्युके किनारे बैठा हूँ और दीनभावसे तेरे सामने गिड़गिड़ा रहा हूँ; मुझ दयनीयपर दया कर। समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीपर जो कुछ मिल सकता है, वह सब मैं तुझे दे दूँगा, किन्तु तू मुझे मौतके मुखमें न ढकेल।'

महाराज दशरथ इस प्रकार दुःखसे सन्तप्त होकर विलाप कर रहे थे। उनकी चेतना बार-बार लुप्त हो जाती थी। उनके मस्तिष्कमें चक्कर आ रहा था और वे शोक-समुद्रमें डूबकर उससे पार होनेके लिये बारंबार अनुनय-विनय कर रहे थे। किन्तु कैकेयीका हृदय नहीं पिघला। वह और भी भीषण रूप धारण करके अत्यन्त कठोर वचन कहने लगी—'राजन्! यदि दो वरदान देकर आप फिर उनके लिये पश्चात्ताप करते हैं तो इस भूमण्डलपर अपनी धार्मिकताका ढिंढोरा कैसे पीट सकेंगे? जब बहुत-से राजर्षि एकत्रित होकर मेरे वरदानके सम्बन्धमें आपसे बात करेंगे, उस समय आप उन्हें क्या उत्तर देंगे? यही कहेंगे न कि 'जिसके प्रसादसे मैं जीवित हूँ, जिसने बहुत बड़े संकटसे मेरी रक्षा की, उसी कैकेयीको वर देनेके लिये की हुई प्रतिज्ञा मैंने झूठी कर दी।' महाराज! आज ही वरदान देकर यदि फिर उससे विपरीत बात कहेंगे, तो आप अपने वंशके राजाओंके माथे कलङ्कका टीका लगायेंगे। राजा शैब्यने बाज और कबूतरके झगड़ेमें [ कबूतरके प्राण बचानेकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिये ] बाजको अपने शरीरका मांस काटकर दे दिया था। अतः पूर्ववर्ती महापुरुषोंके बर्तावको ध्यानमें रखकर आपको अपनी प्रतिज्ञा झूठी नहीं करनी चाहिये। [ परन्तु आप मेरी बात क्यों सुनेंगे? ] आप तो धर्मको तिलाञ्जलि देकर रामको राज्यपर अभिषिक्त करके हमेशा कौसल्याके साथ मौज उड़ाना चाहते हैं। अब धर्म हो या अधर्म—आपने जिस बातके लिये मुझसे प्रतिज्ञा कर ली है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। यदि रामका राज्याभिषेक होगा, तो मैं आपके सामने आपके देखते-देखते आज ही जहर पीकर प्राण त्याग दूँगी। मैं अपनी और भरतकी शपथ खाकर कहती हूँ कि रामको वनमें भेजनेके सिवा दूसरे किसी वरसे मुझे सन्तोष नहीं हो सकता।'

इतना कहकर कैकेयी चुप हो गयी। राजा बहुत रोये-गिड़गिड़ाये किन्तु उसने उनकी किसी बातका जवाब नहीं दिया। रामका वनवास हो और भरतका राज्याभिषेक, कैकेयीके ये अनुचित वचन सुनकर राजा दशरथको बड़ा दुःख हुआ। उसके घोर निश्चय और शपथकी ओर ध्यान जाते ही वे 'हा राम!' कहकर लंबी साँस खींचते हुए कटे वृक्षकी भाँति गिर पड़े। तत्पश्चात् उन्होंने दीन और आतुर वाणीमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पुनः कैकेयीसे कहा—'तुझे किस बातका भय हो गया है, जो इस तरहका वर माँगती है ? भरतका राज्याभिषेक और रामका वनवास—यह बड़ा असत्य तथा ओछा विचार है । यदि अपने स्वामीका, पुत्रका और सारे संसारका प्रिय करना चाहती है, तो इस अनुचित विचारको त्याग दे; क्योंकि रामके बिना भरत किसी तरह राज्य लेना स्वीकार नहीं करेंगे । मेरी समझमें धर्मपालनकी दृष्टिसे भरत रामसे भी बढ़े-चढ़े हैं । जब बहुत-से बहुश्रुत, गुणवान् एवं वृद्ध पुरुष आकर मुझसे पूछेंगे कि 'राम कहाँ हैं ?' तो मैं उन्हें यह कैसे कहूँगा कि 'कैकेयीके दबावसे मैंने अपने बेटेको घरसे निकाल दिया ।' यदि रामको घरसे निकालकर मैं सत्यका पालन करूँ, तो इसके पहले जो उन्हें राज्य देनेकी बात कह चुका हूँ, वह असत्य हो जायगी । अगर राम वनको चले गये, तो कौसल्या मुझे क्या कहेगी ? उसका इतना बड़ा अपकार करके मैं उसे क्या जवाब दूँगा ? हाय ! तेरे ही कारण अपना प्रिय चाहनेवाली प्रियवादिनी कौसल्याका, जो सर्वथा सत्कारके योग्य थी, मैंने कभी आदर नहीं किया । तेरे साथ जो मैंने इतना अच्छा बर्ताव किया, उसे याद करके इस समय मुझे बड़ा संताप हो रहा है । रामके अभिषेकका निवारण और उनका वनकी ओर प्रस्थान देखकर सुमित्रा अत्यन्त भयभीत हो जायगी, उसे किस तरह मेरा विश्वास हो सकेगा ? हाय ! बेचारी सीताको एक ही साथ दो अप्रिय समाचार सुनने पड़ेंगे—रामका वनवास और मेरी मृत्यु । जब वह रामके लिये शोक करने लगेगी, उस समय मेरे प्राण नष्ट हुए बिना नहीं रह सकेंगे । ऐसी दशामें तू विधवा होकर बेटेके साथ अयोध्याका राज्य करना । ओह ! मैं तुझे अत्यन्त सती-साध्वी समझता था; किन्तु तू तो बहुत बड़ी दुष्टा निकली । अबतक जो तू सान्त्वनापूर्ण मीठे वचन बोलकर मुझे सन्तुष्ट किया करती थी, वे तेरी कही हुई सारी बातें झूठी थीं । जैसे व्याध हरिणको मधुर संगीतसे आकृष्ट करके उसे मार डालता है, उसी प्रकार तू भी पहले मुझे लुभाकर अब मेरे प्राण ले रही है । ओह ! कितना दुःख है, कितना कष्ट है, जो मुझे तेरी ये बातें सहन करनी पड़ रही हैं । यह मेरे पूर्वजन्मके पापका ही फल है, जो मुझपर ऐसा महान् दुःख आ पड़ा । पापिनी ! मुझ पापीने बहुत दिनोंसे तेरी रक्षा की और अज्ञानवश तुझे गले लगाया; किन्तु तू आज मेरे लिये गलेमें पड़ी हुई फाँसीकी रस्सी बन गयी । जैसे बालक एकान्तमें खेलता-खेलता काले नागको हाथसे पकड़ ले, उसी प्रकार मैं भी तेरे साथ एकान्त-क्रीड़ामें आसक्त रहा; किन्तु यह न जान सका कि तू ही एक दिन मेरी मृत्युका कारण बनेगी । हाय ! मुझ दुरात्माके कारण मेरा महात्मा पुत्र भी पितृस्नेहसे वञ्चित हो गया । संसारके लोग मुझे अच्छी तरह धिक्कारें—मेरी खूब निन्दा करें कि 'राजा दशरथ कैसा मूर्ख और कामी है जो स्त्रीको सन्तुष्ट करनेके लिये अपने प्यारे बेटेको वनमें भेज रहा है ।' अपने पुत्र रामसे यदि मैं कह दूँ कि 'तुम वनमें चले जाओ' तो वे तुरंत 'हाँ' कहकर मेरी आज्ञाको स्वीकार कर लेंगे । वे दूसरी कोई बात मुँहसे निकालेंगे ही नहीं । वन जानेकी आज्ञा देनेपर भी यदि वे उसके विपरीत करते—वनमें नहीं जाते, तो मेरे लिये बड़ा अच्छा होता; किन्तु मेरा बेटा ऐसा कर नहीं सकता । कौसल्याको यदि मुझसे, रामसे तथा लक्ष्मण एवं शत्रुघ्नसे बिछोह हो जायगा तो वह इतने बड़े दुःखको सहन नहीं कर सकेगी, मेरे ही पीछे परलोक सिधार जायगी । [ सुमित्राका भी यही हाल होगा । ] इस प्रकार कौसल्याको, सुमित्राको और तीनों पुत्रोंके साथ मुझे भी महान् शोकमें डाल कर तू स्वयं सुखी होना । यदि भरतको भी रामचन्द्रका वन जाना अच्छा लगता हो, तो मेरी मृत्युके बाद वे मेरे शरीरका दाह-संस्कार न करें । जो सदा बहुमूल्य वस्त्र पहना करते थे, जिनका चिरकालसे सुखमें ही समय बीता है, वे राम गेरुए वस्त्र पहनकर वनमें कैसे रह सकेंगे ? रामचन्द्रको संकटमें पड़े देखकर तो पिता पुत्रको त्याग देंगे और अनुरागिणी स्त्रियाँ भी अपने पतियोंका परित्याग कर देंगी । इस प्रकार सारे जगत्का व्यवहार ही विपरीत हो जायगा । देवकुमारके समान कमनीय रूपवाले अपने पुत्र रामको जब वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित होकर सामने आते देखता हूँ तो इन नेत्रोंसे उनकी शोभा निहारकर निहाल हो जाता हूँ । उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो मैं फिर जवान हो गया । कदाचित् सूर्यके बिना भी संसारका काम चल जाय, इन्द्रके वर्षा न करनेपर भी प्राणियोंका जीवन सुरक्षित रह जाय; किन्तु रामको यहाँसे वनकी ओर जाते देखकर कोई भी जीवित नहीं रह सकता—मेरी ऐसी ही धारणा है । क्रूरतापूर्ण बर्ताव करनेवाली कैकेयी ! तू संकटमें पड़े हुएपर प्रहार कर रही है । अरी ! जब तू दुराग्रहपूर्वक ऐसी कठोर बातें मुँहसे निकालती है, उस समय तेरे दाँतोंके हजारों टुकड़े होकर गिर क्यों नहीं जाते ? पापिनी ! तेरे प्रिय वचनोंमें भी सदा दुर्भावना भरी रहती है, तेरे हृदयका भाव अत्यन्त दूषित है तथा तू अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कुलका भी नाश करनेवाली है। इतना ही नहीं, तू प्राणोंसहित मेरे हृदयको भी जलाकर खाक कर डालना चाहती है। देवि! मैं अपने बेटे रामके बिना जीवित नहीं रह सकता, तू मेरा अहित करनेपर उतारू न हो। तेरे पैरों पड़ता हूँ, मुझपर कृपा कर।' इस प्रकार महाराज दशरथ उस हठीली स्त्रीके वशमें पड़कर अनाथकी भाँति विलाप करते हुए भूमिपर गिर पड़े।

राजा दशरथको इस अयोग्य अवस्थामें पड़े देखकर अनर्थकी साक्षात् मूर्ति कैकेयी, कहीं यह मेरा सारा उद्योग निष्फल न हो जाय, इसलिये निडर होकर पुनः राजाको सम्बोधित करती हुई बोली—"महाराज! आप तो डींग मारा करते थे कि 'मैं बड़ा सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ हूँ'; फिर मेरे इस वरदानको क्यों हजम करना चाहते हैं?" कैकेयीके ऐसा कहनेपर राजा दशरथ थोड़ी देरतक व्याकुलकी-सी अवस्थामें रहे। उसके बाद क्रोधमें भरकर इस प्रकार उत्तर देने लगे—'अनार्ये! नरश्रेष्ठ रामके वन चले जानेपर जब मेरी मृत्यु हो जायगी, उस समय तू सफलमनोरथ होकर सुखसे रहना। हाय! स्वर्गमें भी जब देवता मुझसे रामकी कुशल पूछेंगे, उस समय मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा? यदि कहूँ, उन्हें घरसे निकाल दिया तो उसके बाद जो मुझे धिक्कार मिलेगा, उसे कैसे सह सकूँगा? 'कैकेयीको वरदान देनेके कारण उसका प्रिय करनेके लिये मैंने रामको वनमें भेज दिया' यह सच्ची बात भी यदि कहूँगा तो झूठी ही समझी जायगी। अरी! जो शूरवीर और क्षमापरायण हैं, जिनकी कमलके पत्ते-जैसी बड़ी-बड़ी आँखें और विशाल भुजाएँ हैं, उन नयनाभिराम रामको मैं दण्डक-वनमें कैसे भेज सकूँगा? रामचन्द्र दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं। उन्हें यह वनवासका दुःख दिये बिना ही यदि मैं इस संसारसे विदा हो जाता तो बड़ा सुख मानता। पापपूर्ण विचार रखनेवाली पाषाणहृदया कैकेयी! सत्यप्रतिज्ञ राम मेरे बड़े प्रिय हैं। तू मुझसे उनका बिछोह क्यों करा रही है? ऐसा करनेसे संसारमें बड़ी अपकीर्ति होगी।' इस प्रकार विलाप करते-करते राजा दशरथका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो उठा। इतनेमें ही सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये। राजाके हृदयका भाव अत्यन्त शुद्ध था। उनके आँसूभरे नेत्र लाल हो गए थे तथा वे दीनभावसे करुण विलाप कर रहे थे; किन्तु दूषित विचार रखनेवाली निष्ठुर कैकेयीने उनके दयनीय विलापको सुनकर भी स्वामीकी आज्ञाका पालन नहीं किया। [ इतनी अनुनय-विनयके बाद भी ] जब वह किसी तरह सन्तुष्ट न हो सकी और बराबर प्रतिकूल बात ही मुँहसे निकालती गयी, तो पुत्रके वनवासकी बात सोचकर राजा पुनः दुःखके मारे मूर्छित हो गये और होश-हवास खोकर धरतीपर गिर पड़े। वह रात उन्होंने बड़ी बेचैनीके साथ काटी। बार-बार भयंकर उच्छ्वास लेते रहे। प्रातःकाल राजाको जगानेके लिये मनोहर बाजोंके साथ मङ्गलगान होने लगा; किन्तु उन्होंने मनाही भेजकर वह सब बंद करा दिया।

## सुमन्त्रका रामको बुलाना, राम-कैकेयी-संवाद और रामके द्वारा वनवासकी स्वीकृति

राजा दशरथ पुत्र-शोकसे पीड़ित होकर अचेत पड़े थे और वेदनासे छटपटा रहे थे। उनकी ऐसी अवस्था देखकर कैकेयी कहने लगी—'महाराज! यह क्या? आपने मुझे दो वर देनेकी प्रतिज्ञा की थी और जब मैंने उन्हें माँगा तो आप सन्न होकर जमीनपर गिर पड़े। धर्मज्ञ पुरुष सत्यको ही सबसे श्रेष्ठ धर्म बतलाते हैं। उस सत्य-धर्मका पालन करनेके लिये ही मैंने आपको प्रेरित किया है। सत्य ही प्रणवरूप शब्दब्रह्म है, सत्यमें ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही अविनाशी वेद है और सत्यसे ही परब्रह्मकी प्राप्ति होती है; इसलिये यदि आपकी बुद्धि धर्ममें स्थित हो तो सत्यका अनुसरण कीजिये। आपने मुझे वरदान दिया है, अतः आप धर्म-पालनकी इच्छासे ही अपने पुत्र रामको घरसे निकाल दीजिये। मैं इस बातको तीन बार दुहराती हूँ—यदि मुझसे की हुई इस प्रतिज्ञाका आप पालन न करेंगे तो आपके सामने ही प्राण त्याग दूँगी।' इस प्रकार कैकेयीने निःशंक होकर जब राजाको प्रेरित किया तो वे सत्यरूपी पाशसे अपनेको मुक्त न कर सके। उनका चित्त विक्षिप्त हो गया, चेहरा फीका पड़ गया और वे अपने विकल नेत्रोंसे कुछ भी देखनेमें असमर्थ-सा हो गये। उन्होंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बड़ी कठिनाईसे धैर्य धारण करके अपने हृदयको सँभाला और कैकेयीसे इस प्रकार कहा—'पापिनी ! मैंने अग्निके समीप मन्त्र-पाठ करके तेरे जिस हाथको पकड़ा था, उसे आज छोड़ रहा हूँ । साथ ही तेरा और तेरे पुत्रका भी त्याग करता हूँ । रात बीत गयी । सूर्योदय होते ही सब लोग रामका राज्याभिषेक करनेके लिये मुझे शीघ्रता करनेको कहेंगे । उस समय जो सामान अभिषेकके लिये जुटाया गया है, उसके द्वारा मेरे मरनेके बाद रामके हाथसे तर्पण करवा देना; किन्तु अपने पुत्रसहित तू मेरे लिये जलाञ्जलि न देना ।'

महात्मा राजा दशरथके इस तरहकी बात करते-करते ही वह रात समाप्त हुई । उस समय कैकेयीने क्रोधसे आग-बबूला होकर कठोर वाणीमें कहा—'राजन् ! आप ये जहरीले वचन क्यों बोल रहे हैं ? अपने पुत्र रामको सीधे-सीधे यहाँ बुलाइये, मेरे पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कीजिये और रामको वनमें भेज दीजिये; तभी आप कृतकृत्य हो सकेंगे ।' इस प्रकार बारंबार कैकेयीके प्रेरित करनेपर राजाने कहा—'मैं धर्मके बन्धनमें बँधा हुआ हूँ । मेरी चेतना लुप्त होती जा रही है, अतः इस समय मैं अपने धर्मपरायण ज्येष्ठ पुत्र रामको देखना चाहता हूँ ।

एक ओर राजा दशरथकी यह अवस्था थी और दूसरी ओर परम गुणवान् महर्षि वसिष्ठ अभिषेकका पुण्य मुहूर्त आया जानकर शिष्योंके साथ आवश्यक सामग्रियोंका संग्रह करके नगरमें आये । उस समय सड़कें झाड़-बुहारकर साफ की गयी थीं: उनपर जलका छिड़काव हुआ था । सारी अयोध्यापुरी पताकाओंसे सुशोभित हो रही थी । बाजार और दूकानें खूब सजायी गयी थीं, हर्षसे भरे हुए मनुष्य झुंड-के-झुंड इधर-उधर विचर रहे थे । चारों ओर चन्दन, अगर और धूपकी सुगन्ध व्याप्त हो रही थी । अमरावतीके समान शोभा पानेवाली उस पुरीको पार करके वसिष्ठजी राजा दशरथके अन्तःपुरके द्वारपर पहुँचे, जहाँ सहस्रों ध्वजाएँ फहरा रही थीं । वहाँ जानेपर उन्हें महाराजके सचिव सुमन्त्र दिखायी पड़े । वसिष्ठजीने उनसे कहा—'सूत ! तुम महाराजको शीघ्र ही मेरे आगमनकी सूचना दो । रामका राज्याभिषेक करनेके लिये सब सामान एकत्रित कर लिया गया है । ये गङ्गाजलसे भरे हुए कलश रक्खे हैं । इन सुवर्णमय कलशोंमें समुद्रका जल भरा है । गूलरकी लकड़ीका भद्रपीठ भी लेता आया हूँ । इसीपर बिठाकर अभिषेक होगा । सब प्रकारके बीज, गन्ध, भाँति-भाँतिके रत्न, मधु, दही, दूध, घी, लावा, कुश, फूल, आठ सुन्दरी कन्याएँ, मत्त गजराज, चार घोड़ोंवाला रथ, चमकता हुआ खड्ग, उत्तम धनुष, मनुष्यसे ढोयी जानेवाली सवारी ( पालकी आदि ), चन्द्रमाके समान श्वेत छत्र, सफेद चँवर, सोनेकी झारी, सुवर्णकी रस्सीमें बँधा हुआ ऊँचे डीलवाला पीला साँड़, चार दाढ़ोंवाला सिंह, बलवान् घोड़ा, सिंहासन, व्याघ्रचर्म, समिधा, सब प्रकारके बाजे, शृंगार की हुई सौभाग्यवती स्त्रियाँ, आचार्य, ब्राह्मण, गौ, पवित्र पशु-पक्षी, नगर और प्रान्तके श्रेष्ठ पुरुष, अपने सेवकोंसहित प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यापारी—ये तथा और भी बहुत-से प्रियवादी मनुष्य एवं राजालोग रामके अभिषेकके लिये यहाँ उपस्थित हैं । तुम महाराजसे शीघ्रता करनेके लिये कहो, जिससे सूर्योदय होते ही पुष्य नक्षत्रके योगमें रामके राज्याभिषेकका कार्य सम्पन्न हो जाय ।'

वसिष्ठजीके वचन सुनकर सूतपुत्र सुमन्त्र राजाकी स्तुति करते हुए महलके भीतर गये । बूढ़े सचिवको भीतर जाते देख द्वारपालोंने रोक-टोक नहीं की; क्योंकि उनके लिये पहलेसे ही राजाकी आज्ञा थी कि ये किसी समय भीतर आनेसे रोके न जायँ । सुमन्त्र राजाके पास चले गये । उन्हें उनकी अवस्थाका पता न था, इसलिये वे हाथ जोड़कर प्रसन्नता बढ़ानेवाले वचनोंसे उनकी स्तुति करने लगे । तत्पश्चात् बोले—'महाराज ! रामके राज्याभिषेककी सब सामग्री एकत्रित हो गयी है । नगर और प्रान्तके लोग तथा व्यापारी समाज भी उपस्थित हैं । महर्षि वसिष्ठजी भी ब्राह्मणोंके साथ द्वारपर विराजमान हैं । अतः अब अभिषेकका कार्य आरम्भ करनेकी शीघ्र आज्ञा दीजिये ।' सुमन्त्रके सान्त्वनापूर्ण एवं सार्थक वचन सुनकर महाराज दशरथ पुनः शोकसे ग्रस्त हो गये । पुत्रके वियोगकी सम्भावनासे उनकी प्रसन्नता नष्ट हो चुकी थी । शोकके कारण उनके नेत्र लाल हो गये थे । उन्होंने एक बार दृष्टि उठाकर सूतकी ओर देखा और कहा—'तुम ऐसी बातें सुनाकर मेरे मर्मपर और अधिक आघात क्यों कर रहे हो ?' राजाके करुण वचन सुनकर और उनकी दीन दशापर दृष्टिपात करके सुमन्त्र उस स्थानसे कुछ दूर पीछे हटकर हाथ जोड़े खड़े हो गये । तब कैकेयी बोली—'सुमन्त्र ! तुम कोई विचार न करो । जाओ, राजकुमार रामको शीघ्र यहाँ बुला लाओ ।' सुमन्त्रने कहा—'देवि ! महाराजकी आज्ञा सुने बिना मैं कैसे जा सकता हूँ ?' मन्त्रीकी बात सुनकर राजाने कहा—'सुमन्त्र ! मैं रामको देखना चाहता हूँ । तुम शीघ्र उन्हें यहाँ ले आओ ।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजाके वचन सुनकर सुमन्त्र उनकी आज्ञाके अनुसार तुरंत वहाँसे चल दिये। राजमहलसे निकलनेपर पहले द्वारपालोंसे उनकी मुलाकात हुई। इसके बाद उन्होंने राजद्वारपर अनेकों धनवान् नागरिकोंको उपस्थित देखा। फिर आगे बढ़कर वे ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित राजमार्गपर जा पहुँचे। रास्तेमें सब लोगोंके मुँहसे रामके राज्याभिषेककी आनन्दमयी वार्ता सुनायी पड़ती थी। तदनन्तर वे रामचन्द्रके मनोहर भवनके पास पहुँच गये। वह महल इन्द्रभवनकी शोभाको मात कर रहा था। उसके अग्रभागमें सोनेकी प्रतिमाएँ शोभा पा रही थीं। बाहरी फाटक मणियों और मूँगोंसे सजाया गया था। सोनेकी मालाओंसे, जिनके बीच-बीचमें बहुमूल्य मणियाँ पिरोयी गयी थीं, वह भवन सुशोभित हो रहा था। वहाँ मोती और मणियोंका भंडार भरा था। चन्दन और अगरकी मनोहर सुगन्ध छा रही थी। वहाँ पहुँचकर सुमन्त्रने महलकी स्वर्गीय शोभासे युक्त अनेकों ड्योढ़ियोंको पार करके रामचन्द्रकी आज्ञामें चलनेवाले बहुतेरे श्रेष्ठ मनुष्योंको बीचमें छोड़ते हुए अन्तःपुरके द्वारपर पदार्पण किया। वहाँ बहुत-से मनुष्योंकी भीड़ एकत्रित थी। उस भीड़को लाँघकर वे ड्योढ़ीके भीतर गये, उसमें अधिक मनुष्य नहीं थे। वहाँ रामके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले एकाग्रचित्त एवं सावधान पुरुष धनुष और बाण लिये खड़े थे। गेरुआ वस्त्र पहने हुए अनेकों वृद्ध पुरुष बेंतकी छड़ी लिये अन्तःपुरके दरवाजेपर सावधान होकर बैठे हुए थे। वे सभी स्त्रियोंके रक्षक थे। सुमन्त्रको आते देख सब-के-सब सहसा अपने आसनोंसे उठ खड़े हुए। उनके पास जाकर सुमन्त्रने कहा—'आपलोग रामसे यह निवेदन करें कि सुमन्त्र दरवाजेपर खड़े हैं।'

यह सुनकर वे अन्तःपुरके रक्षक तुरंत रामके पास गये। उस समय रामचन्द्रजी अपनी धर्मपत्नी सीताके साथ विराजमान थे। रक्षकोंने शीघ्र ही उन्हें सुमन्त्रका सन्देश सुनाया। सूचना पाकर रामने उन्हें भीतर ही बुला लिया, क्योंकि वे उनके पिता दशरथजीके अन्तरंग व्यक्ति थे। वहाँ जाकर सुमन्त्रने देखा, रामचन्द्रजी सोनेके पलँगपर विराजमान हैं और विदेहनन्दिनी सीता उनके पास बैठकर चँवर डुला रही हैं। निकट जाकर सुमन्त्रजीने विनीतभावसे प्रणाम किया और स्वयं भी सम्मानित होकर राजकुमार रामसे कहा—'रघुनन्दन! महारानी कैकेयीके साथ बैठे हुए आपके पिता राजा दशरथ इस समय आपको देखना चाहते हैं। शीघ्र चलिये, विलम्ब नहीं होना चाहिये।' सुमन्त्रके ऐसा कहनेपर महान् तेजस्वी नरश्रेष्ठ राम सीताका सम्मान करते हुए उनसे बोले—'देवि! जान पड़ता है माता कैकेयी और पिताजी दोनों एकत्रित होकर मेरे अभिषेकके सम्बन्धमें ही कुछ विचार कर रहे हैं। निश्चय ही आज महाराज मुझे युवराजके पदपर अभिषिक्त करेंगे। अतः मैं शीघ्र ही यहाँसे जाकर उनका दर्शन करूँगा। तुम परिजनोंके साथ यहाँ सुखपूर्वक रहो।' पतिके द्वारा इस प्रकार सम्मानित होकर सीता देवी उनका मङ्गल-चिन्तन करती हुई द्वारतक जाकर उन्हें पहुँचा आयीं और रामचन्द्रजी सुमन्त्रके साथ महलसे बाहर निकले। द्वारपर पहुँचते ही उन्होंने देखा, कुमार लक्ष्मण विनीतभावसे हाथ जोड़े खड़े हैं। उनके साथ आगे जाकर रामचन्द्रजी रथपर सवार हो तुरंत वहाँसे चल दिये। उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी विचित्र चँवर हाथमें लेकर रथपर बैठ गये और पीछेसे रामचन्द्रजीकी रक्षा करने लगे। उस समय उनके रथके पीछे-पीछे पर्वतोंके समान विशालकाय गजराज और अच्छे-अच्छे घोड़े सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें चल रहे थे, मार्गमें तरह-तरहके बाजे बज रहे थे, वंदीजन स्तुति गा रहे थे और शूरवीरोंके सिंहनाद सुनायी पड़ते थे। महलोंकी खिड़कियोंमें बैठी हुई वस्त्राभूषणोंसे विभूषित वनिताएँ सब ओरसे रामके ऊपर फूलोंकी वर्षा कर रही थीं। अयोध्यामें आये हुए दूर-दूरके लोग अत्यन्त हर्षसे भरकर रामचन्द्रजीके सम्बन्धमें तरह-तरहकी बातें करते थे, जो उनके कानोंमें पड़ रही थीं। वे कहते थे—'इस समय रामचन्द्रजी महाराज दशरथकी कृपासे बहुत बड़ी सम्पत्तिके अधिकारी होने जा रहे हैं, अब हम सब लोगोंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी; क्योंकि राम हमारे राजा होंगे। यदि यह सारा राज्य बहुत दिनोंके लिये इनके हाथमें आ जाय तो जगत्के सभी लोगोंका महान् लाभ होगा। इनके राजा होनेपर कभी किसीका अप्रिय नहीं होगा, किसीको दुःख नहीं देखना पड़ेगा।'

इस प्रकार रामचन्द्रजी अपने सुहृदोंको आनन्द प्रदान करते हुए रथपर बैठे राजमार्गके बीचसे चले जा रहे थे। उस समय सारा नगर ध्वजा और पताकाओंसे सुशोभित हो रहा था। चारों ओर अगरकी सुगन्ध छा रही थी। सब ओर असंख्य मनुष्योंकी भीड़ दिखायी देती थी। उनके सुहृद् और हितैषी कहते थे—'रामके पिता-पितामहोंके द्वारा जिस प्रकार हमलोगोंका पालन-पोषण हुआ है, रामके राज्यमें हम उससे भी अधिक सुखी रहेंगे।' सुहृदोंके मुँहसे निकली हुई ये तथा और भी कई तरहकी सुन्दर बातें, जो उनकी प्रशंसासे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सम्बन्ध रखती थीं, सुनते हुए रामचन्द्रजी राजपथपर बढ़े चले जा रहे थे। जो रामकी ओर एक बार देख लेता, वह देखता ही रह जाता। उनके दूर चले जानेपर भी कोई नरश्रेष्ठ रामचन्द्रजीकी ओरसे अपना मन या दृष्टि हटाना नहीं चाहता था। उस समय जिसने रामको नहीं देखा और रामने जिसकी ओर दृष्टिपात नहीं किया, उसकी सब लोगोंमें निन्दा हुई तथा स्वयं उसकी अन्तरात्मा भी उसे धिक्कारने लगी। धर्मात्मा राम चारों वर्णोंके सभी मनुष्योंपर उनकी अवस्थाके अनुरूप दया दिखाते थे, इसलिये सभी उनके भक्त थे। वे चौराहों, देवमार्गों, चैत्यवृक्षों तथा देवमन्दिरोंको अपने दाहिने रखते हुए जा रहे थे।

इस प्रकार क्रमशः आगे बढ़ते हुए राजमहलके पास पहुँचकर राजकुमार रामने पिताके भवनमें प्रवेश किया। उन्होंने धनुर्धर वीरोंद्वारा सुरक्षित महलकी तीन ड्योढ़ियोंको तो घोड़े जुते हुए रथसे ही पार किया और दो ड्योढ़ियों-में वे पैदल ही गये। इस प्रकार सारी ड्योढ़ियोंको लाँघकर रामचन्द्रजी अन्तःपुरमें पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने पिताको कैकेयीके साथ एक सुन्दर आसनपर बैठे देखा। उनका चेहरा उतरा हुआ था, मुँह सूख गया था और वे बड़ी दयनीय स्थितिमें दिखायी देते थे। निकट पहुँचनेपर रामने विनीतभावसे पहले अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, उसके बाद बड़ी सावधानीके साथ उन्होंने कैकेयीके चरणोंमें भी मस्तक झुकाया। उस समय दयनीय अवस्थामें पड़े हुए राजा दशरथ एक बार 'राम' ऐसा कहकर चुप हो गये। इससे आगे उनसे बोला न गया। आँखोंमें आँसू भर आनेके कारण न तो वे रामकी ओर देख सके और न कोई बात ही कर सके। राजाका वह अभूतपूर्व भयंकर रूप देखकर रामको भी भय हो गया। उनकी इन्द्रियाँ प्रसन्न नहीं थीं, वे शोक और सन्तापसे दुर्बल हो रहे थे, बार-बार लंबी साँस भरते थे, उनके चित्तमें बड़ी व्यथा और व्याकुलता थी और वे राहुसे ग्रस्त सूर्यकी भाँति श्रीहीन दिखायी देते थे।

पिताकी यह अवस्था देख उनके हितमें तत्पर रहने-वाले श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'आज ही ऐसी क्या बात हो गयी कि महाराज मुझसे प्रसन्न होकर बोलते नहीं। और दिन तो ये क्रोधमें रहनेपर भी मुझे देखते ही प्रसन्न हो जाते थे। आज मेरी ओर दृष्टिपात करके इन्हें क्लेश क्यों हो रहा है?' ऐसा विचारकर राम बहुत दुखी हुए। उन्होंने प्रणाम करके कैकेयीसे ही पूछा—'माँ! मुझसे अनजानमें कोई अपराध तो नहीं हो गया, जिससे पिताजी मुझपर नाराज हो गये हैं? मुझे तो ये सदा ही प्यार करते थे, आज क्यों अप्रसन्न हो गये? देखता हूँ ये आज मुझसे बोलतेतक नहीं हैं, इनका चेहरा उतरा हुआ है, ये अत्यन्त दीन हो रहे हैं। कोई शारीरिक व्याधि अथवा मानसिक चिन्ता तो इन्हें पीड़ित नहीं कर रही है? प्रियदर्शन कुमार भरत, महाबली शत्रुघ्न अथवा माताओंका तो कोई अनिष्ट नहीं हुआ है? महाराजको असन्तुष्ट करके अथवा इनकी आज्ञा न मानकर इन्हें कुपित कर देनेपर मैं एक मुहूर्त भी जीवित रहना नहीं चाहता। मनुष्य जिसके कारण अपना प्रादुर्भाव देखता है, उस प्रत्यक्ष देवता पिताके जीते-जी वह उसके अनुकूल बर्ताव क्यों न करेगा? कहीं तुमने तो अभिमान या रोषमें आकर पिताजीसे कोई कठोर बात नहीं कह डाली, जिससे इनका मन दुखी हो रहा है? माँ! मैं सच्ची बात पूछता हूँ। बताओ, महाराजके मनमें आज इतना सन्ताप क्यों है? इनकी ऐसी अवस्था तो पहले कभी नहीं देखी गयी थी।'

महात्मा रामके इस प्रकार पूछनेपर निर्लज्ज कैकेयी बड़ी ढिठाईके साथ अपने मतलबकी बात बोली—'राम! महाराज

कुपित नहीं हुए हैं और न इन्हें कोई कष्ट ही हुआ है। इनके मनमें कुछ बात है, जिसे तुम्हारे डरसे ये कह नहीं पाते। तुम इनके प्रिय हो, तुमसे कोई अप्रिय बात कहनेके लिये इनकी जबान नहीं खुलती; किन्तु इन्होंने जिस कार्यके लिये मेरे सामने प्रतिज्ञा की है, उसका तुम्हें अवश्य पालन करना चाहिये। इन्होंने पहले तो सत्कारपूर्वक मुझे वरदान दे दिया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अब ये दूसरे गँवार मनुष्योंकी भाँति उसके लिये पश्चात्ताप कर रहे हैं। राम! सत्य ही धर्मकी जड़ है; कहीं ऐसा न हो कि ये महाराज तुम्हारे कारण मुझपर कुपित होकर अपने सत्य-धर्मको छोड़ बैठें। यदि राजाकी कही हुई बात तुम्हारे कानोंमें पड़कर वहीं नष्ट न हो जाय—यदि तुम उनकी हर एक बातका पालन कर सको तो मैं तुमसे सब कुछ खोलकर बता दूँ।' कैकेयीकी बात सुनकर रामको बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने राजाके सामने ही उससे कहा—'अहो! मुझे धिक्कार है! देवि! तुम्हें मेरे प्रति ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये। मैं महाराजके कहनेसे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीव्र विषका पान कर सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ। महाराज मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं; इनकी आज्ञा होनेपर मैं क्या नहीं कर सकता? इसलिये देवि! राजाको जो अभीष्ट है, वह मुझे बताओ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, उसे पूर्ण करूँगा। राम दो तरहकी बात नहीं करता।'*

राम सरल और सत्यवादी थे, उनकी बात सुनकर अनार्या कैकेयीने अत्यन्त दारुण वचन कहना आरम्भ किया—'रघुनन्दन! पहलेकी बात है, देवासुर-संग्राममें तुम्हारे पिता शत्रुओंके बाणोंसे बिंध गये थे। उस समय मैंने इनकी रक्षा की थी, उससे प्रसन्न होकर इन्होंने मुझे दो वर दिये थे। उन्हींमेंसे एक वरके द्वारा तो मैंने इनसे यह याचना की है कि भरतका राज्याभिषेक हो और दूसरा वर यह माँगा है कि तुम्हें आज ही दण्डकवनमें भेज दिया जाय। यदि चाहते हो कि तुम्हारे पिता सत्यप्रतिज्ञ बने रहें और तुम भी सत्यवादी कहलाओ तो मेरी यह बात सुनो—राजाने तुम्हारे अभिषेकके लिये जो तैयारी की है, उसके द्वारा यहाँ भरतका अभिषेक किया जाय और तुम इस अभिषेकको त्यागकर जटा और चीर धारण करके चौदह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें रहो। बस, इतनी ही बात है। इससे तुम्हारा बिछोह होगा, यह जानकर महाराज करुणामें डूब रहे हैं, इसी शोकसे इनका मुँह सूख गया है और इन्हें तुम्हारी ओर देखनेका साहस नहीं होता। तुम राजाकी इस आज्ञाका पालन करो तथा इनके महान् सत्यकी रक्षा करके इन्हें उबार लो।'

कैकेयीके इस कठोर वचनको सुनकर भी रामके हृदयमें शोक नहीं हुआ। उन्होंने कैकेयीसे कहा—'देवि! बहुत अच्छा ऐसा ही होगा; किन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि आज महाराज मुझसे पहलेकी तरह बोलते क्यों नहीं हैं? तुम्हारे सामने ऐसी बात पूछ रहा हूँ, इसके लिये क्रोध न करना। निश्चय ही चीर और जटा धारण करके मैं वनको चला जाऊँगा। तुम प्रसन्न रहो। राजा मेरे हितैषी, गुरु, पिता और कृतज्ञ हैं; उनकी आज्ञा होनेपर उनका कौन-सा ऐसा प्रिय कार्य है, जिसे मैं निःशंक होकर न कर सकूँ*। किन्तु मेरे मनको एक ही बातकी चिन्ता अधिक जला रही है कि स्वयं महाराजने मुझसे भरतके अभिषेककी बात नहीं कही। मैं केवल तुम्हारे कहनेसे भी अपने भाई भरतके लिये सीताको, राज्यको, अपने प्यारे प्राणोंको तथा सारी सम्पत्तिको भी प्रसन्नतापूर्वक दे सकता हूँ;† फिर यदि स्वयं महाराज—'मेरे पिताजी आज्ञा दें और वह भी तुम्हारा प्रिय करनेके लिये, तो मैं प्रतिज्ञाका पालन करते हुए उस कार्यको क्यों नहीं करूँगा?‡ तुम मेरी ओरसे विश्वास दिलाकर महाराजको आश्वासन दो, ये लज्जित होकर पृथ्वीकी ओर दृष्टि किये धीरे-धीरे आँसू क्यों बहा रहे हैं? आज ही महाराजकी आज्ञासे दूत शीघ्रगामी घोड़ोंपर सवार हो भरतको मामाके यहाँसे बुलानेके लिये चले जायँ। मैं अभी दण्डकारण्यको जाता हूँ।' रामकी बात सुनकर कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई और बोली—'राम! तुम ठीक कहते हो, ऐसा ही होना चाहिये। भरतको मामाके यहाँसे बुलानेके लिये तेज चलनेवाले घोड़ोंपर सवार होकर दूत तो जायँगे ही; किन्तु तुम वनमें जानेके लिये विशेष उत्सुक जान पड़ते हो, अतः तुम्हारा विलम्ब करना मैं ठीक नहीं समझती। तुम जितना शीघ्र हो सके वनको चले जाओ। महाराज जो स्वयं तुमसे कुछ नहीं कहते हैं, इसमें दूसरी कोई बात नहीं है। ये इस समय विशेष लज्जित हैं।'

कैकेयीकी बात सुनकर राजा लंबी साँस खींचकर बोले—'धिक्कार है! हाय, बड़ा कष्ट हुआ।' इतना कहकर वे शोकमें

---

* अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च॥
तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते॥ (१८।२८—३०)

* हितेन गुरुणा पित्रा कृतज्ञेन नृपेण च।
नियुज्यमानो विस्रब्धः किं न कुर्यामहं प्रियम्॥ (१९।५)

† अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः॥ (१९।७)

‡ किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा प्रचोदितः।
तव च प्रियकामार्थं प्रतिज्ञामनुपालयन्॥ (१९।८)


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डूब गये और मूर्च्छित होकर उस स्वर्णजटित पलँगपर गिर पड़े। उस समय रामने राजाको उठाकर बैठा दिया और कैकेयीसे कहा—'देवि! मैं धनका उपासक होकर संसारमें नहीं रहना चाहता, तुम विश्वास रक्खो। मैंने भी ऋषियोंकी ही भाँति निर्मल धर्मका आश्रय ले रक्खा है।* पूज्य पिताजीका जो भी प्रिय कार्य मैं कर सकता हूँ, उसे प्राण देकर भी करूँगा; उसे तुम सर्वथा मेरे द्वारा किया ही समझो। पिताकी सेवा अथवा उनकी आज्ञाका पालन करना, इससे बढ़कर संसारमें दूसरा कोई धर्म नहीं है।† यद्यपि पिताजीने मुझसे स्वयं नहीं कहा है, तथापि मैं तुम्हारे ही कहनेसे चौदह वर्षोंतक निर्जन वनमें निवास करूँगा। कैकेयी! तुम्हारा मुझपर पूरा अधिकार है—मैं तुम्हारी हर एक आज्ञाका पालन कर सकता हूँ; फिर भी तुमने स्वयं न कहकर इस कार्यके लिये पिताजीको कष्ट दिया। इससे जान पड़ता है तुम मुझमें कोई गुण नहीं देखतीं।‡ अच्छा, अब मैं माता कौसल्यासे पूछ लूँ और सीताको समझा-बुझा लूँ; उसके बाद आज ही घोर दण्डकारण्यकी यात्रा करूँगा। तुम ऐसा प्रयत्न करना, जिससे भरत इस राज्यका पालन और पिताजीकी सेवा करते रहें; क्योंकि यही सनातन धर्म है।' रामकी बात सुनकर पिताको बहुत दुःख हुआ, वे शोकके आवेगसे कुछ बोल न सके, फूट-फूटकर रोने लगे। रामने अचेत पड़े हुए पिताके चरणोंपर मस्तक रखा और कैकेयीको भी प्रणाम किया; फिर पिता और कैकेयीकी प्रदक्षिणा करके वे उस अन्तःपुरसे बाहर निकले और अपने मित्रोंसे मिले। सुमित्राकुमार लक्ष्मण इस अन्यायको देखकर अत्यन्त क्रोधमें भर गये थे। वे दोनों आँखोंसे आँसू बहाते हुए चुपचाप श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे चले गये। श्रीरामके हृदयमें अब वन जानेकी आकांक्षाका उदय हो गया था, अतः अभिषेकके लिये रखी हुई सामग्रियोंकी प्रदक्षिणा करते हुए वे धीर-धीरे आगे बढ़ गये। उनकी ओर उन्होंने दृष्टितक नहीं डाली। उस समय राज्यका न मिलना लोक-कमनीय रामकी शोभामें कोई अन्तर न डाल सका। वे वनमें जानेको तैयार थे और सारी पृथ्वीका राज्य छोड़ रहे थे; फिर भी उनके चित्तमें लोकातीत जीवन्मुक्त महात्माकी भाँति कोई विकार नहीं देखा गया। श्रीरामने छत्र लगानेवालेको मना कर दिया, चँवर डुलानेवालोंको भी रोक दिया, रथको लौटा दिया और परिजनों तथा पुरवासी मनुष्योंको भी विदा कर दिया तथा अपने मनको स्थिर करके माताको यह अप्रिय समाचार सुनानेके लिये उनके महलमें प्रवेश किया। जो लोग सदा सत्यवादी रामके निकट रहा करते थे, उन्होंने भी उनके मुखपर किसी प्रकारके विकारका चिह्न नहीं देखा। श्रीरामने अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता नहीं छोड़ी थी।

## कौसल्याका विषाद, लक्ष्मणका अमर्ष और रामका उन दोनोंको समझाकर वनमें जानेका निश्चय

उधर, नरश्रेष्ठ राम ज्यों ही कैकेयीके महलसे बाहर निकले, अन्तःपुरमें रहनेवाली राजमहिलाओंका महान् आर्तनाद सुनायी पड़ने लगा। वे कह रही थीं—'हाय! जो पितासे पूछे बिना भी अन्तःपुरके सब कार्योंका प्रबन्ध स्वतः करते थे, जो हमलोगोंके सहारे और रक्षक थे, वे ही राम आज वनको चले जायँगे! उनका बचपनसे ही अपनी माता कौसल्याके साथ जैसा बर्ताव था, वैसा ही हमारे साथ भी था। महाराजकी बुद्धि मारी गयी है, ये इस समय सम्पूर्ण संसारका विनाश करनेपर तुले हुए हैं; तभी तो सबके जीवनाधार रामका परित्याग कर रहे हैं!' इस प्रकार समस्त रानियाँ अपने पतिको कोसती हुई बछड़ोंसे बिछुड़ी हुई गौओंकी तरह उच्चस्वरसे क्रन्दन करने लगीं। अन्तःपुरका वह भयंकर हाहाकार सुनकर महाराज दशरथका शोक-संताप और भी बढ़ गया और वे मुँहके बल बिछौनेपर पड़ गये। इधर श्रीरामने भाई लक्ष्मणके साथ माताके अन्तःपुरमें प्रवेश किया। वे पहली ड्योढ़ी लाँघकर जब दूसरीमें पहुँचे, तो यहाँ उन्हें राजाके द्वारा सम्मानित बहुत-से वेदज्ञ ब्राह्मण दिखायी दिये। उन्हें प्रणाम करके तीसरी ड्योढ़ीमें प्रवेश करनेपर रामने बाल और वृद्ध अवस्थाकी स्त्रियोंको देखा, जो अन्तःपुरके द्वारकी रखवाली कर रही थीं। उन सबने श्रीरामको आशीर्वाद दे

* नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे। विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम्॥ (१९। २०)
† न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम्। यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया॥ (१९। २२)
‡ न नूनं मयि कैकेयि किञ्चिदाशंससे गुणान्। यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती॥ (१९। २४)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर जाकर उनकी माताको उनके आगमनका प्रिय समाचार सुनाया।

उस दिन देवी कौसल्या पुत्रकी मंगल-कामनासे एकाग्रचित्त हो सवेरेसे ही भगवान् विष्णुकी पूजामें लगी थीं और माङ्गलिक कार्य पूरा करके मन्त्रयुक्त अग्निहोत्र करा रही थीं। रामने माताके मनोहर अन्तःपुरमें प्रवेश करके देखा, वे जलसे देवताका तर्पण करती हुई ऋत्विजोंके द्वारा अग्निमें हवन करा रही हैं। अपने आनन्द बढ़ानेवाले प्रिय पुत्रको बहुत देरके बाद सामने उपस्थित देख माता कौसल्या झपटकर उनकी ओर चलीं। रामने निकट आयी हुई माताके चरणोंमें प्रणाम किया और माता कौसल्याने उन्हें दोनों भुजाओंसे कसकर छातीसे लगा लिया और बड़े प्यारसे उनका मस्तक सूँघा। फिर वे स्नेहवश प्रिय एवं हितकर बात कहने लगीं—'बेटा! तुम्हारे धर्मात्मा पिता आज ही तुम्हें युवराजके पदपर अभिषिक्त करेंगे' यह कहकर माताने उन्हें बैठनेके लिये उत्तम आसन दिया और भोजन करनेको कहा। श्रीरामचन्द्रजी स्वभावसे ही विनीत थे। उन्होंने माताका गौरव रखनेके लिये उनके दिये हुए आसनका हाथसे स्पर्शमात्र कर लिया। फिर दोनों हाथ जोड़कर दण्डकारण्यकी ओर जानेके सम्बन्धमें आज्ञा लेनेके लिये इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'माँ! शायद तुम्हें मालूम नहीं है। अब मुझे ऐसे उत्तम आसनोंकी आवश्यकता नहीं रही। मेरे लिये कुशकी चटाईपर बैठनेका समय आया है। महाराज युवराजका पद भरतको दे रहे हैं और मुझे तपस्वीके वेषमें दण्डकारण्य भेजते हैं; अतः अब मैं चौदह वर्षोंतक उस निर्जन वनमें निवास करूँगा और जंगलमें सुलभतासे मिलनेवाले वल्कल आदिको धारण करके फल-मूलके आहारसे ही जीवन-निर्वाह करूँगा।'

यह अप्रिय बात सुनकर फरसेसे काटी हुई शालवृक्षकी शाखाके समान कौसल्या देवी सहसा जमीनपर गिर पड़ीं। जिन्होंने जीवनमें कभी दुःख नहीं देखा था, उन्हीं माता कौसल्याको कटी कदलीकी भाँति अचेत-अवस्थामें भूमिपर पड़ी देख श्रीरामने हाथका सहारा देकर उठाया और उनके देहमें लगी हुई धूलिको अपने ही हाथसे पोंछा। उस समय कौसल्याने लक्ष्मणके सामने ही अपने पास खड़े हुए रामसे कहा—'बेटा! यदि तुम्हारा जन्म न हुआ होता तो मुझे एक ही बातका शोक रहता। आज जो मुझपर इतना भारी दुःख आ पड़ा है, इसे वन्ध्या होनेपर नहीं देखना पड़ता। वन्ध्याको एक ही शोक होता है; उसके मनमें यह चिन्ता होती है कि मुझे कोई सन्तान नहीं है। इसके सिवा दूसरे किसी दुःखका उसे सामना नहीं करना पड़ता। पुत्रके बिछोहसे बढ़कर स्त्रियोंके लिये और कौन-सा दुःख होगा? आज जो मुझे शोक और विलाप करना पड़ रहा है, इसका कभी अन्त नहीं दिखायी देता। पूर्ण चन्द्रमाके समान तुम्हारे मनोहर मुखको देखे बिना मैं दुःखिनी अपना दयनीय जीवन कैसे बिताऊँगी? निश्चय ही यह मेरा हृदय बड़ा कठोर है, जो तुम्हारे बिछोहकी बात सुनकर भी फट नहीं जाता। जान पड़ता है मुझे मौत आयेगी ही नहीं। मेरे लिये यमराजके घरमें भी जगह नहीं है। अवश्य ही मेरा हृदय और शरीर लोहेका बना है। तभी तो यह पृथ्वीपर पड़नेपर भी और इतने बड़े दुःखसे व्याप्त होनेपर भी नष्ट नहीं होता। सच है, बिना समय आये किसीकी मृत्यु नहीं होती। बेटा! जैसे गौ दुर्बल होनेपर भी अपने बछड़ेके पीछे-पीछे चली जाती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे साथ ही वनको चली चलूँगी।' इस प्रकार उस भारी दुःखको न सह सकनेके कारण माता कौसल्या श्रीरामकी ओर देखकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगीं।

तब लक्ष्मण अत्यन्त दुखी होकर उस समयके योग्य वचन बोले—'आर्ये! मुझे भी यह अच्छा नहीं लगता कि श्रीरामचन्द्र राज्य-लक्ष्मीका परित्याग करके वनमें जायँ। राजा इस समय स्त्रीकी बातमें आ गये हैं। बूढ़े होनेके कारण उनकी बुद्धि उलटी हो गयी है; अतः कामके वशमें होकर वे कैकेयीकी प्रेरणासे क्या नहीं कह सकते? मैं तो ऐसा कोई अपराध या दोष नहीं देखता, जिसके कारण श्रीरामको राज्यसे निकालकर वनमें रहनेके लिये विवश किया जाय। संसारमें एक भी मनुष्य ऐसा नहीं दिखायी देता, जो परोक्षमें भी इनका कोई दोष बतलाता हो। धर्मपर दृष्टि रखनेवाला ऐसा कौन राजा होगा जो देवताके समान सरल, जितेन्द्रिय और शत्रुपर भी दया करनेवाले राम-जैसे पुत्रका अकारण परित्याग करेगा? रघुनन्दन! जबतक यह बात लोगोंमें फैले नहीं, तबतक आप मेरी सहायतासे राज्यको अपने अधिकारमें कर लें। आप स्वयं यमराजके समान हैं और जब मैं धनुष लिये आपके पास रहकर आपकी रक्षा करूँगा, उस समय ऐसा कौन है जो आपसे बढ़कर पौरुष दिखानेका साहस कर सके? यदि नगरके लोग विरोधमें खड़े होंगे, तो मैं अपने तीखे बाणोंसे सारी अयोध्याको मनुष्योंसे सूनी कर दूँगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जो-जो भरतका पक्ष लेंगे, उन सबको मौतके घाट उतार दूँगा। राजा किस बलपर अथवा किस कारणसे आपको न्यायतः प्राप्त यह राज्य कैकेयीको देना चाहते हैं ? यदि पिता कैकेयीके प्रोत्साहन देनेपर उसके ऊपर सन्तुष्ट हो हमारे साथ शत्रुका-सा वर्ताव करते हैं तो हमें भी मोह-ममता छोड़कर इन्हें कैद कर लेना या मार डालना चाहिये। यदि गुरु भी अभिमानमें आकर कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान खो बैठे और कुमार्गपर चलने लगे तो उसे भी दण्ड देना आवश्यक हो जाता है। देवि ! मैं सत्य, धनुष, दान तथा यज्ञ आदिकी शपथ खाकर तुमसे सच्ची बात कहता हूँ कि मेरा अपने पूज्य भ्राता श्रीरामके चरणोंमें हार्दिक अनुराग है। आप विश्वास रक्खें—यदि राम जलती हुई आगमें या घोर जंगलमें प्रवेश करनेवाले होंगे तो मैं इनसे भी पहले उसमें प्रविष्ट हो जाऊँगा। इस समय आप और रामचन्द्रजी मेरे पराक्रमको देखें। जैसे सूर्य उदय होकर अन्धकारका नाश कर देता है, उसी प्रकार मैं भी अपनी शक्तिसे आपके दुःख दूर कर दूँगा।'

महात्मा लक्ष्मणके ओजस्वी वचन सुनकर शोकमग्न माता कौसल्या श्रीरामसे बोलीं—'बेटा ! मैंने तुम्हारे भाई लक्ष्मणकी बातें सुन लीं। इसके बाद अब तुम जो कुछ करना उचित समझो, जैसा करनेकी तुम्हारी रुचि हो, वह करो। मेरी सौतके अधर्मयुक्त वचन सुनकर मुझे शोकसे संतप्त छोड़कर तुम्हें वनमें नहीं जाना चाहिये। तुम धर्मको जाननेवाले धर्मात्मा हो; इसलिये यदि धर्मका पालन करना चाहो तो यहीं रहकर मेरी सेवा करो—यही तुम्हारे लिये श्रेष्ठ धर्मका आचरण होगा। जैसे गौरवके कारण राजा तुम्हारे पूज्य हैं, उसी प्रकार मैं भी हूँ। मैं तुम्हें वन जानेकी आज्ञा नहीं देती, इसलिये न जाओ। तुम्हारे साथ तिनके चबाकर रहनेमें भी मेरा कल्याण है; किन्तु तुमसे विलग हो जानेपर न मुझे इस जीवनकी आवश्यकता है न सुखकी। यदि मुझे शोकमें डूबी छोड़कर तुम वनको चले जाओगे तो मैं उपवास करके प्राण त्याग दूँगी, जीवित नहीं रह सकूँगी।'

माता कौसल्याको इस प्रकार दीनभावसे विलाप करते देख धर्मात्मा श्रीरामने यह धर्मयुक्त वचन कहा—'माँ ! तुम्हें सिर नवाकर तुमसे क्षमा माँगता हूँ; मुझमें पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेकी शक्ति नहीं है, अतः मैं वनको ही जाना चाहता हूँ।* हमारे कुलमें भी पहले राजा सगरके पुत्र ऐसे हो गये हैं, जो पिताकी आज्ञासे पृथ्वी खोदते हुए बुरी तरहसे मारे गये। जमदग्निके पुत्र परशुरामने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ही वनमें फरसेसे अपनी माता रेणुकाका गला काट डाला था। इन्होंने तथा और भी अनेकों देव-तुल्य मनुष्योंने उत्साहके साथ पिताके आदेशका पालन किया है; अतः मैं भी उत्साहपूर्वक पिताके हितकर वचनोंका पालन करूँगा। माँ ! मैं तुम्हारे प्रतिकूल किसी नवीन धर्मका प्रचार नहीं कर रहा हूँ। पूर्वकालके धर्मात्मा पुरुषोंको भी यह अभीष्ट था। मैं तो उनके चले हुए रास्तेपर ही चल रहा हूँ। इस भूमण्डलपर जो सबके लिये करनेयोग्य है, वही मैं भी करने जा रहा हूँ। इसके विपरीत कोई न करनेयोग्य काम नहीं कर रहा हूँ। पिताकी आज्ञाका पालन करनेसे कोई भी धर्मसे भ्रष्ट नहीं होता।'

मातासे ऐसा कहकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन ! मेरे प्रति जो तुम्हारा अत्यन्त उत्तम प्रेम है, उसे मैं जानता हूँ। तुम्हारे पराक्रम, धैर्य और दुर्धर्ष तेजसे भी मैं अपरिचित नहीं हूँ। शुभलक्षण ! मेरी माताको जो महान् दुःख हो रहा है, वह सत्य और शमके विषयमें मेरा अभिप्राय न समझनेके कारण है। संसारमें धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। धर्ममें ही सत्यकी प्रतिष्ठा है। पिताजीका यह वचन भी धर्मसे युक्त होनेके कारण श्रेष्ठ है। धर्मका आश्रय लेकर रहनेवाले पुरुषको पिता, माता अथवा ब्राह्मणोंके वचनोंका पालन करनेकी प्रतिज्ञा करके उसे मिथ्या नहीं करना चाहिये; अतः मैं पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। क्योंकि पिताजीके कहनेसे ही कैकेयीने मुझे वन जानेकी आज्ञा दी है। इसलिये केवल क्षात्र-धर्मका अवलम्बन करनेवाली इस ओछी बुद्धिका त्याग करो। धर्मका आश्रय लो और मेरे विचारके अनुसार चलो।' भाई लक्ष्मणसे सौहार्दवश ऐसा कहनेके पश्चात् श्रीरामने पुनः कौसल्याके चरणोंमें मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर कहा—'माँ ! मैं यहाँसे वनको जाऊँगा। तुम मुझे आज्ञा दो और स्वस्तिवाचन कराओ। पिताजीकी आज्ञाका पालन करके वनवाससे मैं फिर यहाँ लौट आऊँगा। तुमको, मुझको, सीताको, लक्ष्मणको और सुमित्राको भी पिताजीकी आज्ञाके अनुसार चलना चाहिये—यही सनातन धर्म है। माता ! यह अभिषेककी सामग्री अब ले जाकर रख दो। अपने मनका दुःख मनमें ही दबा लो और वनवासके सम्बन्धमें जो मेरा धर्मानुकूल विचार है, उसका अनुसरण करो—मुझे जानेकी आज्ञा दे दो।'

* नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्॥(२१। ३०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामचन्द्रजीकी यह धर्मानुकूल तथा व्यग्रता और आकुलतारहित बात सुनकर जैसे मरे हुए मनुष्यमें प्राण आ जाय, उसी प्रकार देवी कौसल्या मूर्च्छा त्यागकर होशमें आ गयीं और अपने पुत्र रामकी ओर देखकर कहने लगीं—'बेटा! धर्म और सौहार्दके नाते जैसे पिता तुम्हारे लिये आदरणीय हैं, वैसे मैं भी हूँ। मैं तुम्हें जानेकी आज्ञा नहीं देती। मुझ दुःखिनी-को छोड़कर न जाओ। तुम्हारे बिना मुझे इस जीवनसे क्या लाभ है? इन स्वजनोंसे, देवता तथा पितरोंकी पूजासे और अमृतसे भी क्या लेना है? तुम एक क्षण भी मेरे पास रहो तो वही मेरे लिये सम्पूर्ण संसारके राज्यसे भी बढ़कर सुख देनेवाला है।' श्रीरामजीने देखा माता अचेत-सी हो रही हैं और सुमित्राकुमार लक्ष्मणका भी सन्ताप कम नहीं होता। फिर भी वे धर्ममें स्थित होकर धर्मानुकूल ही वचन बोले। ऐसे अवसरपर उस तरहकी बात वे ही कह सकते थे—उन्हींके योग्य वे वचन थे। उन्होंने कहा—'लक्ष्मण! मैं जानता हूँ, तुम सदा ही मुझमें भक्ति रखते हो। तुम्हारा पराक्रम भी मुझसे अज्ञात नहीं है। तथापि तुम मेरे अभिप्रायकी ओर नहीं ध्यान देते, इसीलिये माताके साथ-साथ तुम भी मुझे दुखी बना रहे हो। जिस कर्ममें धर्म आदि सब पुरुषार्थोंका समा-वेश न हो, उसको नहीं करना चाहिये। जिससे धर्मकी सिद्धि होती हो, उसीका आरम्भ करना चाहिये। जो केवल अर्थपरायण होता है, उससे संसारके लोग द्वेष करते हैं और कामपरायण होना कोई प्रशंसाकी बात नहीं है। महाराज हमलोगोंके गुरु, राजा और पिता होनेके साथ ही वृद्ध भी हैं। अतः वे क्रोधसे, हर्षसे अथवा कामनावश भी यदि किसी बातके लिये आज्ञा दें तो धर्म समझकर उसका पालन करना चाहिये। जिनके आचरणोंमें क्रूरता नहीं है—ऐसा कौन पुरुष होगा, जो पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा। इसलिये मैं पिताकी इस प्रतिज्ञाका यथावत् पालन करनेसे मुँह नहीं मोड़ सकता। तात लक्ष्मण! वे ही हम दोनोंको आज्ञा देनेवाले गुरु हैं और माताजीके तो पति, गति तथा धर्म—सब कुछ वे ही हैं। वे धर्मके प्रवर्तक महाराज अभी जीवित हैं और विशेषतः अपने धर्ममय मार्गपर स्थित हैं—ऐसी दशामें माता-जी किसी अन्य विधवा स्त्रीकी भाँति मेरे साथ वनमें कैसे चल सकती हैं। इसलिये माँ! तुम मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दो और स्वस्तिवाचन कराओ, जिससे मैं वनवासकी अवधि समाप्त करके फिर तुम्हारे पास चला आऊँ। जीवन अधिक दिनों-तक रहनेवाला नहीं है, इसके लिये मैं अधर्मपूर्वक पृथ्वीका राज्य नहीं लेना चाहता।' इस प्रकार नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने दण्डकारण्यमें जानेकी इच्छासे धैर्यपूर्वक माताको प्रसन्न करने-का प्रयत्न किया और अपने भाई लक्ष्मणको भी अपना अभिप्राय समझानेकी बहुत चेष्टा की।

[ रामके राज्याभिषेकमें विघ्न पड़नेके कारण ]

लक्ष्मणके मनमें अधिक रोष था। उस समय श्रीरामने प्रिय भ्राता सुमित्राकुमारके निकट जाकर धैर्यपूर्वक कहा—'लक्ष्मण! केवल धैर्यका आश्रय लेकर अपने मनके क्रोध और शोकको दूर करो, चित्तसे अपमानकी भावना निकाल दो और खूब प्रसन्न हो जाओ। मेरे अभिषेकके लिये जो यह उत्तम सामग्री एकत्र की गयी है, इसे हटा दो तथा ऐसा कार्य करो, जो मेरे वन जानेमें बाधक न हो। अबतक अभिषेकके लिये सामग्री जुटानेमें जो तुम्हारा उत्साह था, वह इसे रोकने और मेरे वन जानेकी तैयारी करनेमें होना चाहिये। मेरे अभिषेकके कारण जिसके चित्तमें सन्ताप हो रहा है, उस माता कैकेयीको जिससे मेरे ऊपर किसी तरहका सन्देह न हो, वही काम करो। जिस बातसे उसके मनमें सन्देहके कारण भी कोई दुःख हो जाय, उसकी मैं एक मुहूर्तके लिये भी उपेक्षा नहीं कर सकता। मैंने कभी जान-बूझकर या अनजानमें, माताओं अथवा पिताजीका कोई छोटा-सा भी अपराध किया हो—ऐसा याद नहीं आता। पिताजी सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ और सत्यपराक्रमी हैं। वे परलोकके भयसे सदा डरते रहते हैं। इसलिये मुझे वही काम करना चाहिये, जिससे पिताजीका पारलौकिक भय दूर हो जाय।

'लक्ष्मण! इन्हीं सब कारणोंसे मैं अपने अभिषेकका कार्य रोककर शीघ्र ही यहाँसे वनको चला जाना चाहता हूँ। कैकेयीको जिसने ऐसी बुद्धि प्रदान की है तथा जिसकी प्रेरणासे उसका मन मुझे वन भेजनेमें अत्यन्त दृढ़ हो गया है, उस विधाताको मैं विफलमनोरथ नहीं करना चाहता; इसलिये शीघ्र ही वनको जाऊँगा। मेरी समझसे कैकेयीका यह विपरीत मनोभाव कालकी ही प्रेरणाका फल है; यदि ऐसा न होता तो वह मुझे वन भेजनेका निश्चय क्यों करती? तुम तो जानते ही हो कि मेरे मनमें पहले भी कभी माताओंके प्रति भेदभाव नहीं हुआ और कैकेयी भी मुझमें या अपने पुत्रमें कोई अन्तर नहीं समझती थी। फिर भी इस समय उसने मेरे अभिषेकको रोकने और मुझे वनमें भेजनेकी चेष्टा की है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उसमें दैवके सिवा दूसरे किसीको मैं कारण नहीं मानता। यदि ऐसी बात न होती तो वैसे उत्तम स्वभाव और श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त राजकुमारी एक साधारण स्त्रीकी भाँति अपने पतिके सामने मुझे वन भेजनेकी बात कैसे कह सकती थी।

'जिसके विषयमें कभी कुछ सोचा न गया हो, वही दैवका विधान है। प्राणियोंमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो उसे मेट सके। निश्चय ही मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले घटनाचक्रमें और कैकेयीकी मतिमें उसीकी प्रेरणासे यह उलट फेर हुआ है। सुमित्रानन्दन ! कर्मोंके सुख-दुःखादिरूप फल प्राप्त होनेपर ही जिसका ज्ञान होता है, उनसे अन्यत्र कहीं भी जिसका पता नहीं चलता, उस दैवके साथ कौन पुरुष युद्ध कर सकता है ? सुख-दुःख, लाभ-हानि, उत्पत्ति-विनाश तथा इस प्रकारके और भी जितने विधान प्राप्त होते हैं, जिनका कोई कारण समझमें नहीं आता, वे सब दैवके ही कार्य हैं। जो बात बिना सोचे-विचारे अकस्मात् सिरपर आ पड़ती है और प्रयत्नोंद्वारा आरम्भ किये हुए कार्य-को रोककर एक नया ही काण्ड उपस्थित कर देती है, उसे दैवका ही विधान समझना चाहिये। इस तात्त्विक बुद्धिके द्वारा मैंने स्वयं ही अपने मनको स्थिर कर लिया है, इसलिये मेरे अभिषेकमें विघ्न पड़ जानेपर भी मुझे कोई दुःख नहीं होता। इसी प्रकार तुम भी मेरे विचारका अनुसरण करके सन्तापशून्य हो जाओ और राज्याभिषेकके इस आयोजनको शीघ्र ही बंद करा दो। लक्ष्मण ! लक्ष्मीके इस उलट-फेरसे तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि इस समय दो बातें सामने हैं—राज्य और वनवास। इनमेंसे मुझे तो वनवासके ही द्वारा अपना महान् अभ्युदय दिखायी देता है। राज्याभिषेकमें जो विघ्न आया है, उसमें मेरी छोटी माता कैकेयी कारण है—ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह दैवके अधीन हो रही है। इसी प्रकार पिताजीको भी किसी तरह इसका कारण नहीं कहा जा सकता। तुम दैव और उसके अद्भुत प्रभावको जानते ही हो; तुम्हें क्या समझाना है ?

## लक्ष्मणकी ओजभरी बातें, रामका शोकग्रस्त कौसल्याको समझाना तथा कौसल्याद्वारा रामका स्वस्त्ययन

श्रीरामचन्द्रजी जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय लक्ष्मण सिर झुकाये कुछ सोचते रहे; फिर तुरंत ही वे शोक और हर्षके बीचकी स्थितिमें आ गये ( रामके राज्या-भिषेकमें विघ्न पड़नेके कारण उन्हें शोक हुआ और उनकी धर्ममें दृढ़ता देखकर प्रसन्नता हुई )। थोड़ी ही देरमें लक्ष्मण-की भौंहें चढ़ गयीं। उनके मुखकी ओर देखना कठिन हो गया। क्रोधमें भरे हुए सिंहकी भाँति उनका चेहरा तमतमा उठा। जैसे हाथी अपनी सूँड़ हिलाया करता है, उसी प्रकार वे अपने दाहिने हाथको हिलाते और गर्दनको सब ओर घुमाते हुए अपने भाई रामकी ओर टेढ़ी नजरोंसे कटाक्षपूर्वक देख-कर बोले—'धर्मात्मन् ! दैव तो सामर्थ्यसे रहित एवं दीन है। आप उसकी इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं ? आपको उन दोनों पापियोंपर सन्देह क्यों नहीं होता ? संसारमें कितने ही ऐसे पापासक्त मनुष्य हैं, जो दूसरोंको ठगनेके लिये धर्मका ढोंग बनाये रहते हैं। क्या आप उन्हें नहीं जानते ? वे दोनों अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये शठतावश धर्मके बहाने आप-जैसे सच्चरित्र पुरुषका परित्याग कर रहे हैं। यदि उनका ऐसा विचार न होता तो जो कार्य आज हुआ है, उसे वे पहले ही कर डालते। यदि वरदानवाली घटना सच्ची होती तो आपका अभिषेक प्रारम्भ होनेके पूर्व ही इस तरहका वर दे दिया गया होता। आपके सिवा किसी दूसरेका राज्याभिषेक हो, यह मुझसे सहन नहीं होनेका। इसके लिये आप मुझे क्षमा करेंगे। पिताके जिस वचनको धर्म मानकर आप मोहमें पड़े हुए हैं और जिसके कारण आपकी बुद्धिमें दुविधा उत्पन्न हो गयी है, मैं उसे धर्म माननेका पक्षपाती नहीं हूँ। ऐसे धर्मका मैं विरोध करता हूँ। आप अपने पराक्रमसे सब कुछ करनेमें समर्थ होकर भी कैकेयीके वशमें रहनेवाले पिताके अधर्मपूर्ण एवं निन्दित वचनका कैसे पालन करेंगे ? वरदानकी झूठी कल्पना करके आपके अभिषेकमें रोड़ा अटकाया गया है, फिर भी आप इसे इस रूपमें नहीं ग्रहण करते। माता और पिताके इस विचारको कि आपका राज्याभिषेक न हो, जो आप दैवी प्रेरणाका फल मानते हैं, यह भी मुझे अच्छा नहीं लगता। इसलिये आप अपने इस मतका परित्याग कर दीजिये।

'जो कायर है, जिसमें पराक्रमका नाम नहीं है, वही दैवका भरोसा करता है। सारा संसार जिन्हें आदरकी दृष्टिसे देखता है, वे सामर्थ्यशाली वीर पुरुष दैवकी उपासना नहीं करते। जो अपने पुरुषार्थसे दैवको दबानेकी शक्ति रखता है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

वह दैवके द्वारा अपने कार्यमें बाधा पड़नेपर खेद नहीं करता—शिथिल होकर नहीं बैठता। आज संसारके लोग देखेंगे कि दैवकी शक्ति बड़ी है या पुरुषका पुरुषार्थ। आज दैव और मनुष्यमें कौन बलवान् है और कौन दुर्बल, इसका निर्णय हो जायगा। जिन लोगोंने दैवके बलसे आपके राज्याभिषेकको नष्ट होता देखा है, वे ही आज मेरे पुरुषार्थसे दैवका भी विनाश देखेंगे। सम्पूर्ण लोकपाल और तीनों लोकोंके प्राणी मिलकर भी आज श्रीरामके राज्याभिषेकको नहीं रोक सकते; फिर पिताजीकी तो बात ही क्या है। दैवमें भी इतनी ताकत नहीं है कि मेरे बलका—पुरुषार्थका विरोध कर सके। यदि कदाचित् दैव मेरे विपक्षमें खड़ा होगा तो मेरा यह प्रचण्ड पुरुषार्थ उसे दुःखमें डाल देगा—उसका विनाश करके छोड़ेगा।

'आर्य! पहलेके राजर्षियोंने जैसा आचरण किया है, उसीके अनुसार प्रजाओंका पुत्रवत् पालन करनेके लिये उन्हें अपने पुत्रके हाथोंमें सौंपकर वनमें जाना राजाका कर्तव्य माना गया है। अतः आजसे सहस्रों वर्षोंके पश्चात् जब आप स्वेच्छासे राज्यका परित्याग करके वनमें रहनेके लिये जायँगे, उस समय आपके बाद आपके पुत्र प्रजावर्गका पालन करेंगे। अब आप माङ्गलिक सामग्रियोंसे अपना राज्याभिषेक होने दीजिये। इसके लिये तत्पर हो जाइये। मैं अकेला ही समस्त विरोधी राजाओंका बलपूर्वक निवारण करनेमें समर्थ हूँ। मेरी ये दोनों भुजाएँ शोभाके लिये नहीं हैं, इस धनुषका आभूषण नहीं बनेगा, यह तलवार सिर्फ बँधी रहनेके लिये नहीं है तथा इन बाणोंके खंभे नहीं बनेंगे—ये चारों वस्तुएँ शत्रुओंका दमन करनेके लिये ही हैं। जिस समय मैं इस तीखी धारवाली तलवारको हाथमें लेता हूँ, यह बिजलीकी तरह चमक उठती है। इसके द्वारा मैं अपने किसी भी शत्रुको, चाहे वह वज्रधारी इन्द्र ही क्यों न हो, कुछ भी नहीं समझता। आज मेरी तलवारके आघातसे टुकड़े-टुकड़े हुए हाथी-सवारों, घुड़सवारों और रथियोंके हाथ, जंघा और मस्तक आदि अङ्गोंसे सारी जमीन पट जायगी, उसपर चलना कठिन हो जायगा। आज राजाकी प्रभुताको मिटाने और आपके प्रभुत्वकी स्थापना करनेके लिये मेरा और मेरे इन अस्त्रोंका प्रभाव प्रकट होगा। भैया! मैं आपका किंकर हूँ; बताइये, आपके किस शत्रुको मैं अभी प्राण, यश और सुहृदोंसे सदाके लिये विलग कर दूँ? जिस किसी उपायसे यह सारी पृथ्वी आपके अधिकारमें आ जाय, उसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।' रघुवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाले श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणकी ये बातें सुनकर उनके आँसू पोंछे और बारंबार समझाकर उन्हें शान्त किया। इसके बाद इतना ही कहा—'सौम्य! मुझे तो तुम पिता-माताकी आज्ञामें ही स्थित समझो। यही सत्पुरुषोंका मार्ग है।'

कौसल्याने जब देखा कि श्रीरामने पिताकी आज्ञाके पालन करनेका ही दृढ निश्चय कर लिया है, तो वे कहने लगीं—'राम! निश्चय ही इस जगत्में काल ही सबसे बड़ा बलवान् है। उसकी आज्ञा सबके ऊपर चलती है; क्योंकि उसीके प्रभावमें आकर तुम्हारे-जैसा लोकप्रिय मनुष्य भी आज वन जानेको तैयार है। किन्तु तुमसे बिछुड़ जानेपर मुझे शोककी आग जलाकर भस्म कर डालेगी। इसलिये बेटा! तुम जहाँ जाओगे, वहाँ मैं भी चलूँगी।' यह सुनकर नरश्रेष्ठ श्रीरामने अपनी दुःखिनी मातासे कहा—'माँ कैकेयीने राजाके साथ धोखा किया है, और मैं वनको जा रहा हूँ; इस अवस्थामें यदि तुम भी उनका त्याग कर दोगी तो वे जीवित नहीं रह सकेंगे। स्वामीका परित्याग स्त्रीके लिये बड़ा क्रूरतापूर्ण कार्य है, सत्पुरुषोंने इसकी बड़ी निन्दा की है; अतः तुमको तो ऐसी बात कभी मनमें भी नहीं लानी चाहिये। मेरे पिता महाराज दशरथ जबतक जीवित हैं, तबतक तुम उन्हींकी सेवा-शुश्रूषा करो। यही स्त्रीके लिये सनातन धर्म है।' रामके ऐसा कहनेपर शुभ कर्मोंपर दृष्टि रखनेवाली देवी कौसल्याने प्रसन्न होकर कहा—'अच्छा, बेटा! ऐसा ही करूँगी।' तब धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने अत्यन्त दुःखमें पड़ी हुई मातासे फिर कहा—'माँ! पिताजीकी आज्ञाका पालन करना मेरा और तुम्हारा दोनोंका कर्तव्य है। राजा हम सब लोगोंके स्वामी, गुरु और ईश्वर हैं। ये चौदह वर्ष वनमें बिताकर मैं लौट आऊँगा और बड़े प्रेमसे तुम्हारी आज्ञाका पालन करता रहूँगा।'

श्रीरामकी यह बात सुनकर कौसल्याके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। वे अत्यन्त आर्त होकर अपने प्यारे पुत्रसे बोलीं—'बेटा! मुझसे इन सौतोंके बीचमें नहीं रहा जायगा। यदि पिताकी आज्ञाके अनुसार तुमने वनमें जानेका ही निश्चय किया है, तो मुझे भी साथ ले चलो। वनकी हरिनियोंकी तरह मैं भी वहीं रहूँगी।' यह कहकर माता कौसल्या रोने लगीं। इसपर श्रीराम भी रो पड़े और बोले—'माँ! स्त्रीके जीते-जी उसका पति ही उसके लिये देवता और ईश्वरके समान है। महाराज तुम्हारे और हमारे दोनोंके ही प्रभु हैं। जबतक वे जीवित हैं, हमें अपनेको अनाथ नहीं समझना चाहिये। भरत भी बड़े धर्मात्मा हैं। सदा ही धर्ममें संलग्न रहते हैं। वे तुम्हारी सेवा करेंगे। मेरे चले जानेपर महाराजको पुत्र-शोकके कारण विशेष कष्ट न हो, इसके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लिये तुम सावधानीके साथ प्रयत्न करना । कहीं ऐसा न हो, यह दारुण शोक उनकी जीवन-लीलाको ही समाप्त कर डाले। राजा बूढ़े हैं, तुम सदा सावधान होकर उनके हित-साधनमें लगी रहना । जाति और गुणोंसे उत्तम तथा व्रत-उपवास आदिमें तत्पर होनेपर भी जो नारी अपने पतिकी सेवा नहीं करती, उसे पापियोंकी ही गति मिलती है । देवताओंकी पूजा और वन्दनासे दूर रहनेपर भी जो स्त्री अपने स्वामीकी सेवामें लगी रहती है, उसे उत्तम स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। अतः नारीको अपने पतिके प्रिय और हितमें संलग्न रहकर सदा उसीकी सेवा करनी चाहिये—यही स्त्रीका लोक और वेदमें प्रसिद्ध सनातनधर्म है, इसीका श्रुतियों और स्मृतियोंमें भी वर्णन है ।* अतः तुम भी नियमित आहार करके नियमोंका पालन करती हुई स्वामीकी सेवामें लगी रहो और मेरे आगमनकी प्रतीक्षा करती हुई समय व्यतीत करो । यदि धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महाराज जीवित रहेंगे तो मेरे लौट आनेपर तुम्हारी शुभ कामना भी पूर्ण होगी ।'

श्रीरामके ऐसा कहनेपर कौसल्याके नेत्रोंमें आँसू छलक आये । वे पुत्र-शोकसे पीड़ित होकर बोलीं—'बेटा! मैं तुम्हारे वन जानेके निश्चित विचारको नहीं पलट सकती । निश्चय ही कालकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना बड़ा कठिन है । अब तुम निश्चिन्त होकर वनको जाओ । तुम्हारा कल्याण हो । जब फिर तुम वनसे लौट आओगे, उस समय मेरे सारे क्लेश, सब सन्ताप दूर हो जायँगे । महाबाहो ! इस समय जाओ और कुशलपूर्वक लौटकर सान्त्वनाभरे मधुर वचनोंसे मुझे फिर आनन्दित करना । बेटा ! क्या वह समय अभी आ सकता है, जब कि जटा-वल्कल धारण किये वनसे लौटकर आये हुए तुमको देख सकूँगी ?' श्रीरामजी वनवासका दृढ़ निश्चय कर चुके हैं—यह जानकर माता कौसल्या उनकी मङ्गल-कामनासे स्वस्तिवाचन करनेके लिये कल्याणमय वचन बोलीं । पहले तो उन्होंने पवित्र जलसे आचमन किया । फिर माङ्गलिक कार्य सम्पन्न करके कहने लगीं—'रघुनन्दन ! अब मैं तुम्हें रोक नहीं सकती । इस समय जाओ, सत्पुरुषोंके मार्गपर स्थिर रहो और शीघ्र ही वनसे लौट आओ । तुम नियमपूर्वक प्रसन्नताके साथ जिस धर्मका पालन करते हो, वही तुम्हारी रक्षा करे । देवस्थानों और मन्दिरोंमें जाकर तुम जिनको प्रणाम करते हो, वे सब देवता महर्षियोंके साथ वनमें तुम्हारी रक्षा करें । पिताकी शुश्रूषा, माताकी सेवा तथा सत्यके पालनसे सुरक्षित होकर चिरञ्जीवी बने रहो ।' इस प्रकार आशीर्वाद देकर माताने पुत्रके मस्तकपर अक्षत रखे, चन्दन और रोली लगायी तथा सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली विशल्यकरणी नामकी उत्तम ओषधि लेकर रक्षाके उद्देश्यसे मन्त्र पढ़ते हुए उसको श्रीरामके हाथमें बाँध दिया । इसके बाद उनके मस्तकको सूँघकर उन्हें छातीसे लगाया और कहा—'बेटा ! तुम्हारा मनोरथ सफल हो, तुम सुखपूर्वक जाओ; जब पूर्णकाम होकर आरोग्यपूर्वक अयोध्यामें लौटोगे, उस समय तुम्हें राज-मार्गपर स्थित देखकर सुखी होऊँगी ।' इस प्रकार माताने आँखोंमें आँसू भरकर विधिके अनुसार वह माङ्गलिक कार्य पूर्ण किया और रामकी प्रदक्षिणा करके फिर उन्हें गलेसे लगाया । श्रीरामने भी बारंबार माताके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने स्वाभाविक तेजसे देदीप्यमान होते हुए वे सीताके महलकी ओर चल दिये ।

## राम और सीताका संवाद तथा सीताके वनगमनका निश्चय

विदेहनन्दिनी सीताने अभीतक यह सारा हाल नहीं सुना था । उनके हृदयमें यही बात समायी हुई थी कि मेरे पतिका युवराज-पदपर अभिषेक हो रहा होगा । वे सामयिक कर्तव्यों तथा राजधर्मोंको जानती थीं, अतः देवताओंकी पूजा करके प्रसन्नचित्तसे रामके आनेकी प्रतीक्षा कर रही थीं । इतनेमें ही रामने अपने सजे-सजाये अन्तःपुरमें, जो प्रसन्न मनुष्योंसे भरा हुआ था, प्रवेश किया । उस समय लज्जासे उनका मुख कुछ नीचा हो रहा था । भीतर आकर उन्होंने सीतासे कहा—'जनकनन्दिनी ! इस समय पिताजीने मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दी है । जिस कारण मुझे यह आज्ञा हुई है, वह मैं क्रमशः बताता हूँ; सुनो । मेरे सत्यप्रतिज्ञ पिता महाराज दशरथने माता कैकेयीको पहले कभी दो वर दिये थे । इधर, जब मेरे राज्याभिषेककी तैयारी होने लगी, तो कैकेयीने उस वरदानकी प्रतिज्ञाको याद दिलाकर महाराजको

* व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ॥
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत् । भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम् ॥
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् । शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता ॥
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः । ( २४ । २५—२८ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मतः अपने काबूमें कर लिया। इससे विवश होकर पिताजीको चौदह वर्षतक मेरा वनवास और भरतका युवराज-पदपर अभिषेक स्वीकार करना पड़ा। अतः अब मुझे उतने समयतक दण्डक वनमें रहना पड़ेगा। इस समय वहाँ जानेके लिये प्रस्थित होकर मैं तुमसे मिलने आया हूँ। पिताजीकी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये मैं आज ही वनकी यात्रा करूँगा। तुम अपने चित्तको स्थिर करके यहाँ निवास करो। कल्याणी! जब मैं महर्षियोंसे सेवित वनमें चला जाऊँ, तो तुम व्रत और उपवास आदि नियमोंमें संलग्न रहना। सवेरे उठकर देवताओंकी विधिपूर्वक पूजा करनेके अनन्तर मेरे पिता महाराज दशरथके चरणोंमें प्रणाम करना। मेरी वृद्धा माता कौसल्या भी शोक-संतापसे दुर्बल हो रही है। वह धर्मतः तुम्हारे द्वारा विशेष सम्मान पानेके योग्य है। उसके सिवा मेरी जो अन्य माताएँ हैं, उनको भी प्रतिदिन नमस्कार करना। स्नेह, प्रेम और सुख देनेकी चेष्टा—इन सभी दृष्टियोंसे सब माताएँ मेरे लिये समान हैं, मुझपर सभीका समान भावसे प्यार रहा है। भरत और शत्रुघ्न मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, अतः तुम उन दोनों-पर भाई और पुत्रके समान स्नेह-दृष्टि रखना। भरतकी इच्छाके विरुद्ध कभी कोई काम न करना; क्योंकि इस समय वे मेरे देश और कुलके राजा हैं। अनुकूल आचरणके द्वारा आराधना तथा प्रयत्नपूर्वक सेवा करनेपर राजा प्रसन्न होते हैं और विपरीत बर्ताव करनेसे कुपित हो जाते हैं। राजालोग अहित करनेवालोंको, चाहे वे अपने पुत्र ही क्यों न हों, त्याग देते हैं और आत्मीय न होनेपर भी जो लोग सामर्थ्यवान् होते हैं, उन्हें अपना बना लेते हैं। इसलिये कल्याणी! तुम राजा भरतके अनुकूल बर्ताव करती हुई धर्म एवं सत्यमें स्थित होकर यहाँ निवास करो। प्रिये! अब मैं उस महान् वनमें जा रहा हूँ और तुम्हें यहीं रहना है। तुम्हारे बर्तावसे किसीको कुछ कष्ट न हो, इसका ध्यान रखते हुए तुम यहाँ मेरी आज्ञाका पालन करती रहो।'

रामके ऐसा कहनेपर प्रियवादिनी सीताजी, जो सब प्रकार अपने स्वामीका प्यार पाने योग्य थीं, प्रेमसे ही कुछ कुपित होकर बोलीं—'नरश्रेष्ठ! आप मुझे ओछी समझकर यह क्या कह रहे हैं? आपकी ये बातें सुनकर मुझे हँसी आती है। आर्यपुत्र! पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्रवधू—ये सब पुण्यादि कर्मोंका फल भोगते हुए अपने-अपने प्रारब्धके अनुसार जीवन-निर्वाह करते हैं। केवल स्त्री ही स्वामीके भाग्यका अनुसरण करती है। अतः आपके साथ मुझे भी वनवासकी आज्ञा मिली है। नारीके लिये इस लोक और परलोकमें एकमात्र पति ही आश्रय देनेवाला है। पिता, पुत्र, माता, सखियाँ तथा अपना यह शरीर भी उसका सच्चा सहायक नहीं है।* यदि आप आज ही दुर्गम वनकी ओर प्रस्थान कर रहे हैं, तो मैं रास्तेके कुश और काँटोंको कुचलती हुई आपके आगे-आगे चलूँगी; अतः मुझे भी साथ ले चलिये; क्योंकि ऊँचे-ऊँचे महलोंमें रहना, विमानोंपर चढ़कर घूमना अथवा अणिमा आदि सिद्धियोंके द्वारा आकाशमें विचरना—इन सबकी अपेक्षा स्त्रीके लिये किसी भी अवस्थामें पतिके चरणोंकी छायामें रहना विशेष महत्त्व रखता है। मुझे किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इस विषयमें मेरे पिता और माताने अनेकों प्रकारसे शिक्षा दी है। अतः सिंह तथा मृगोंसे भरे हुए उस मानवहीन दुर्गम वनमें मैं अवश्य आपके साथ चलूँगी। मैं तो जैसे अपने पिताके घरमें रहती थी, उसी प्रकार उस वनमें भी सुखपूर्वक निवास करूँगी। वहाँ मुझे त्रिलोकीके किसी भी विषयका चिन्तन नहीं होगा, सदा पातिव्रत्य धर्मका स्मरण करती हुई आपकी सेवामें लगी रहूँगी। नियमपूर्वक रहकर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करूँगी और आपके साथ मीठी-मीठी सुगन्धसे भरे हुए वनोंमें विचरूँगी। आप तो वनमें रहकर दूसरे लोगोंकी भी रक्षा कर सकते हैं, फिर मेरी रक्षा करना आपके लिये कौन बड़ी बात है? अतः मैं आपके साथ निश्चय ही वनको चलूँगी। मैं हर तरहसे तैयार हूँ, किसी तरह रुक नहीं सकती। वहाँ आपको कोई कष्ट नहीं दूँगी, सदा आपके साथ रहूँगी और फल-मूलका भोजन करूँगी। आपके आगे-आगे [रास्ता साफ करती हुई] चलूँगी और आपके भोजन कर लेनेपर जो कुछ बचेगा, उसे ही खाकर रहूँगी। नाथ! मेरी बड़ी इच्छा है कि आपके साथ निर्भय हो वनमें सब ओर घूम-घूमकर पर्वतों, छोटे-छोटे तालाबों और सरोवरोंको देखूँ। मैं आपके चरणोंमें अनुराग रखकर प्रतिदिन उन जलाशयोंमें स्नान करूँगी और आपके साथ बड़े सुखसे रहूँगी। इस प्रकार सैकड़ों या हजारों वर्षोंतक भी यदि आपके साथ रहनेका सौभाग्य मिले तो मुझे कभी कष्टका अनुभव नहीं होगा। आपके बिना तो मुझे स्वर्गलोकका निवास भी रुचिकर नहीं हो सकता; अतः उस दुर्गम

* न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा॥(२७। ६)


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनमें, जहाँ हजारों मृग, वानर और हाथी निवास करते हैं, मैं अवश्य चलूँगी और आपके ही चरणोंकी सेवामें रहकर बड़े सुखसे समय बिताऊँगी। मेरे हृदयका सम्पूर्ण प्रेम एकमात्र आपको ही अर्पित है—आपके सिवा और कहीं मेरा मन नहीं जाता। यदि आपसे वियोग हुआ तो निश्चय ही मेरी मृत्यु हो जायगी; इसलिये आप मेरी याचना सफल करें; मुझे साथ ले चलें। मेरे रहनेसे आपपर कोई भार नहीं पड़ेगा।'

धर्मपरायणा सीताके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भी नरश्रेष्ठ रामको उन्हें अपने साथ ले जानेकी इच्छा नहीं हुई। वे उन्हें वनवासके विचारसे निवृत्त करनेके लिये वहाँके कष्टोंका नाना प्रकारसे वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा—'सीते! तुम अत्यन्त उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हो और सदा धर्मके ही आचरणमें लगी रहती हो; अतः यहीं रहकर धर्मका पालन करो, जिससे मेरे हृदयको सन्तोष हो। मैं जैसा कहूँ, वैसा ही करना तुम्हारा कर्तव्य है। तुम अबला हो और वनवासमें अनेकों प्रकारके दोष हैं; इसलिये वनमें चलनेका विचार छोड़ दो। तुम्हारे हितकी भावनासे ही मैं ये बातें कह रहा हूँ। वनमें सदा दुःख ही होता है। जहाँतक मेरी जानकारी है, वहाँ सुख कभी नहीं मिलता। पर्वतोंकी गुफाओंमें सिंहोंके दहाड़नेकी आवाज बड़ी कष्टप्रद जान पड़ती है। सूने वनमें निर्भय होकर क्रीड़ा करनेवाले जंगली पशु मनुष्यको देखकर चारों ओरसे उसपर टूट पड़ते हैं। वनके मार्ग लताओं और काँटोंसे भरे होते हैं, उनपर चलनेमें कष्ट होता है और आस-पास जल नहीं मिलता—इन सब कारणोंसे वनमें दुःख-ही-दुःख है। दिनभरके परिश्रमसे थके-माँदे मनुष्यको रातमें जमीनके ऊपर अपने-आप गिरे हुए पत्तोंके बिछौनेपर सोना पड़ता है। वहाँ मनको वशमें रखकर वृक्षोंसे स्वतः गिरे हुए फलोंके आहारपर ही दिन-रात सन्तोष करना पड़ता है। अपनी शक्तिके अनुसार उपवास करना, सिरपर जटाका भार ढोना और वल्कल-वस्त्र धारण करना—यही वहाँकी जीवन-शैली है। देवताओंका, पितरोंका तथा आये हुए अतिथियोंका प्रतिदिन शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पूजन करना—यह वनवासीका प्रधान कर्तव्य है। उसके लिये नित्यप्रति नियमपूर्वक तीनों समय स्नान करना आवश्यक है। वनवासियोंको जब जो कुछ मिल जाय, उसीपर सन्तोष करना होता है। वनमें प्रचण्ड आँधी, घोर अन्धकार तथा और भी बड़े-बड़े भय प्राप्त होते हैं। नाना प्रकारके सर्प मतवाले होकर बीच रास्तेमें विचरते रहते हैं। पतंगे, बिच्छू, कीड़े, डाँस और मच्छर सदा कष्ट पहुँचाते रहते हैं। इस प्रकार वनमें निवास करनेवालेको हमेशा दुःख ही भोगना पड़ता है; इसलिये तुम्हें वनमें नहीं जाना चाहिये। वहाँ जाकर तुम कुशलसे नहीं रह सकतीं। मैंने खूब विचार करके देख लिया, वनमें रहना बहुत ही कष्टदायक है।'

रामकी यह बात सुनकर सीताको बहुत दुःख हुआ। वे नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई धीरे-धीरे बोलीं—'रघुनन्दन! आपने वनमें रहनेके जो-जो दोष बतलाये हैं, वे सब आपका स्नेह पाकर मेरे लिये गुणरूप हो जायँगे। मृग, सिंह, हाथी, शेर और अन्यान्य जंगली जीव आपका अद्भुत रूप देखकर भाग जायँगे; क्योंकि सभी आपसे डरते हैं। आपके समीप रहनेपर देवताओंके राजा इन्द्र भी बलपूर्वक मेरा तिरस्कार नहीं कर सकते। पतिव्रता स्त्री अपने पतिसे वियोग होनेपर जीवित नहीं रह सकती। आप भले ही मुझे इस प्रकार घरमें रहनेकी बात सुझायें; किन्तु अपने पिताके घरपर रहते समय मैं ब्राह्मणोंके मुखसे पहले यह बात सुन चुकी हूँ कि मुझे अवश्य ही वनमें रहना पड़ेगा। हस्तरेखा देखकर भविष्यकी बात बतानेवाले ब्राह्मणोंसे ऐसी बात सुनकर मैं सदा वनवासके लिये उत्साहित रहती हूँ। ब्राह्मणसे प्राप्त हुआ वह वनमें रहनेका आदेश एक-न-एक दिन मुझे पूरा करना ही पड़ेगा; अतः मैं अपने स्वामी आपके साथ वनमें अवश्य जाऊँगी। ऐसा होनेसे उस ब्राह्मणकी बात भी सत्य हो जायगी और मैं उस भाग्यके विधानको भी भोग लूँगी। मैं जानती हूँ, वनवासमें बहुत-से दुःख प्राप्त होते हैं; किन्तु वे उन्हींको दुःख जान पड़ते हैं, जिनकी इन्द्रियाँ अपने वशमें नहीं हैं। मुझे उनका कोई भय नहीं है। पिताके घरपर कुमारी अवस्थामें एक शान्ति-परायणा भिक्षुकीके मुखसे भी मैंने अपने वनवासकी बात सुनी थी। उसने मेरी माताके सामने ही ऐसी बात कही थी। आप मेरे स्वामी हैं, आपके पीछे-पीछे प्रेमभावसे वनमें जानेपर मेरे पाप दूर हो जायँगे; क्योंकि स्वामी ही स्त्रीके लिये सबसे बड़ा देवता है। आपके अनुगमनसे परलोकमें भी मेरा कल्याण होगा। वहाँ भी आपके साथ मेरा सुखद संयोग होगा। इस विषयमें यशस्वी ब्राह्मणोंके मुखसे एक बड़ी ही पवित्र कहावत सुनी जाती है। वह इस प्रकार है—इस लोकमें पिता आदिके द्वारा जो कन्या जिस पुरुषको अपने धर्मके अनुसार जलसे सङ्कल्प करके दे दी जाती है, वह मरनेके बाद परलोकमें भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसीकी स्त्री होती है।* मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ, उत्तम व्रतका पालन करनेवाली हूँ और पतिव्रता हूँ; फिर क्या कारण है कि आप मुझे अपने साथ ले चलना नहीं चाहते। नाथ! मैं आपकी भक्त हूँ, पातिव्रत्यका पालन करती हूँ, आपके बिछोहके भयसे दीन हो रही हूँ तथा आपके सुख-दुःखमें समानरूपसे हाथ बँटानेवाली हूँ; अतः आप अवश्य ही मुझे साथ ले चलनेकी कृपा करें।'

इस प्रकार सीताजीने वनमें जानेके लिये नाना प्रकारसे प्रार्थना की; किन्तु महाबाहु रामने उन्हें निर्जन वनमें ले जानेकी स्वीकृति नहीं दी। इससे मिथिलेशकुमारीको बड़ी चिन्ता हुई और वे अपने नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू बहाकर धरतीको भिगोने लगीं। विदेहनन्दिनीको चिन्तित और कुपित देख भगवान् श्रीराम उन्हें भाँति-भाँतिकी बातें कहकर समझाने लगे। उनके समझानेपर जनककुमारी सीता वनवासकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये फिर बोलीं—'नाथ! आपके मुझे छोड़कर चले जानेपर संसारके लोग अज्ञानवश यदि यह कहने लगें कि श्रीरामचन्द्रमें तेज और पराक्रमका अभाव है, तो लोगोंकी यह असत्य धारणा मेरे लिये कितने दुःखकी बात होगी? आप क्या सोचकर विषादमें पड़े हुए हैं अथवा किससे आपको भय हो रहा है, जिसके कारण अपनी स्त्रीका, जो एकमात्र आपके ही चरणोंमें अनुराग रखती है, परित्याग करना चाहते हैं? जैसे सावित्री द्युमत्सेनकुमार वीरवर सत्यवान्‌की ही अनुगामिनी थी उसी प्रकार मुझे भी अपनी आज्ञाके अधीन समझिये। अतः मुझे साथ लिये बिना आपको वनमें जाना उचित नहीं है। तपस्या करनी हो, वनमें रहना हो या स्वर्गमें जाना हो—सभी जगह मैं आपके साथ रहना चाहती हूँ। जैसे पलँगपर सोते समय मुझे कोई कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार आपके पीछे-पीछे वनके मार्गपर चलनेमें भी कोई परिश्रम नहीं जान पड़ेगा। रास्तेमें जो कुश, काश, सरकंडे, सींक तथा काँटेदार वृक्ष मिलेंगे, उनका स्पर्श मुझे आपके साथ रहनेसे रूई और मृगचर्मके समान सुखद प्रतीत होगा। प्रचण्ड आँधीसे उड़कर मेरे शरीरपर जो धूल पड़ेगी, उसे मैं उत्तम चन्दनके समान समझूँगी। जब वनके भीतर रहूँगी, तो आपके साथ घासपर भी सो लूँगी। रंग-बिरंगे कम्बल और मुलायम बिछौने बिछे हुए पलंगोंपर क्या उससे अधिक सुख हो सकता है? आप अपने हाथसे लाकर थोड़ा या बहुत फल, मूल, पत्ता—जो कुछ देंगे, वही मेरे लिये अमृतरसके समान होगा। ऋतुके अनुकूल जो भी फल-फूल प्राप्त होंगे, उन्हें खाकर रहूँगी और माता-पिता अथवा महलको कभी याद नहीं करूँगी। वहाँ रहते समय मेरा कोई भी प्रतिकूल व्यवहार आप नहीं देख सकेंगे। मेरे कारण आपको कोई कष्ट नहीं होगा तथा मेरे भरण-पोषणकी भी आपको विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। आपके साथ जहाँ भी रहना पड़े, वहीं मेरे लिये स्वर्ग है और आपके बिना कोई भी स्थान मेरे लिये नरकके समान है। मेरे इस निश्चयको जानकर आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे अपने साथ ले चलें। नाथ! आप मुझे त्यागकर जब वनको चले जायँगे तो पीछे इस भारी दुःखके कारण मेरे जीवित रहनेकी आशा नहीं है। ऐसी दशामें मैं इसी समय आपके जाते ही प्राण त्याग देना अच्छा समझती हूँ। आपके विरहका शोक मुझसे एक मुहूर्त भी नहीं सहा जायगा; फिर मैं दुःखिनी चौदह वर्षोंतक इसे कैसे सह सकूँगी?' इस प्रकार शोकसन्तप्ता सीताजी करुणाजनक विलाप करती हुई अपने पतिके गलेसे लगकर जोर-जोरसे रोने लगीं।

सीताजी दुःखके मारे अचेत-सी हो रही थीं। श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें दोनों हाथोंसे सँभालकर हृदयसे लगा लिया और सान्त्वना देते हुए कहा—'देवि! स्वयम्भू ब्रह्माजीकी भाँति मुझे किसीसे किञ्चित् भी भय नहीं है। यद्यपि वनमें तुम्हारी रक्षा करनेके लिये मैं सर्वथा समर्थ हूँ तो भी तुम्हारे हार्दिक अभिप्रायको पूर्णरूपसे जाने बिना तुमको वनवासिनी बनाना मैंने उचित नहीं समझा। परन्तु जब तुम मेरे साथ वनमें रहनेके लिये ही उत्पन्न हुई हो तो मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता—ठीक उसी तरह, जैसे आत्मज्ञानी पुरुष अपनी स्वाभाविक प्रसन्नताका त्याग नहीं करते। पूर्वकालके सत्पुरुषोंने अपनी स्त्रीके साथ रहकर जिस धर्मका आचरण किया था, उसीका मैं भी तुम्हारे साथ रहकर अनुसरण करूँगा। मिथिलेशकुमारी! पिता और माताकी आज्ञाके अधीन रहना पुत्रका धर्म है; इसलिये मैं उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके जीवित नहीं रह सकता। जिनकी सेवासे धर्म, अर्थ और काम—तीनोंकी प्राप्ति होती है, जिनकी आराधनासे तीनों लोकोंकी आराधना हो जाती है, उन माता-पिताके समान पवित्र इस संसारमें दूसरा कोई भी नहीं है। इसीलिये लोग माता-पिताकी सेवा करते हैं। सीते! पिताकी सेवा करना कल्याणप्राप्तिका जैसा उत्तम साधन माना गया है, वैसा न सत्य है,

* इहलोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल।
अग्निर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा॥
(२९। १८)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न दान है, न मान है और न पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञ ही हैं। गुरुजनोंकी सेवासे स्वर्ग, धन, धान्य, विद्या, पुत्र और सुख—कुछ भी दुर्लभ नहीं है। माता-पिताकी शुश्रूषामें लगे रहनेवाले महात्मा पुरुष देवलोक, गन्धर्वलोक, गोलोक, ब्रह्मलोक तथा अन्य लोकोंको भी प्राप्त कर लेते हैं।* इसलिये सत्य और धर्मके मार्गपर स्थित रहनेवाले पूज्य पिताजी मुझे जैसी आज्ञा दे रहे हैं, मैं वैसा ही बर्ताव करना चाहता हूँ; क्योंकि यह सनातन धर्म है। 'मैं आपके साथ वनमें निवास करूँगी' ऐसा कहकर तुमने मेरे साथ जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया है; इसलिये तुम्हें दण्डकारण्य ले चलनेके सम्बन्धमें जो मेरा पहला विचार था, वह अब बदल गया है। मैं तुम्हें वनमें चलनेकी आज्ञा देता हूँ। मेरी अनुगामिनी बनो और साथ रहकर धर्मका आचरण करो। प्रिये! तुमने मेरे साथ चलनेका जो यह उत्तम निश्चय किया है, यह तुम्हारे और मेरे कुलके सर्वथा योग्य ही है। अब तुम वनवासके योग्य दान आदि कार्य प्रारम्भ करो। ब्राह्मणोंको तरह-तरहके रत्न और भिक्षुकोंको भोजन दो तथा अन्य याचकोंको भी उनकी इच्छाके अनुसार दान दो। शीघ्रता करो, विलम्ब नहीं होना चाहिये। तुम्हारे पास जितने बहुमूल्य आभूषण, अच्छे-अच्छे वस्त्र, मनोरञ्जनकी सुन्दर सामग्रियाँ, मेरे और तुम्हारे उपयोगमें आनेवाली उत्तम-उत्तम शय्याएँ, सवारियाँ तथा और भी जितनी वस्तुएँ हों, उनमेंसे ब्राह्मणोंको दान करनेके पश्चात् जो बचें, उन सबको अपने सेवकोंमें बाँट दो।'

स्वामीने मेरा वनमें चलना स्वीकार कर लिया, यह जानकर देवी सीता बहुत प्रसन्न हुईं और शीघ्रतापूर्वक सब वस्तुएँ दान करने लगीं।

## श्रीराम-लक्ष्मण-संवाद, लक्ष्मणके वनगमनका निश्चय और श्रीरामका धन बाँटना

जिस समय श्रीराम और सीतामें बातचीत हो रही थी, लक्ष्मण वहाँ पहलेसे उपस्थित थे। उन दोनोंका संवाद सुनकर उनका मुखमण्डल आँसुओंसे भीग गया। भाईके विरहका शोक अब उनके लिये भी असह्य हो उठा। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके दोनों पैर जोरसे पकड़ लिये और यशस्विनी सीता तथा महान् व्रतका पालन करनेवाले श्रीरामसे कहा—'आर्य! हजारों जंगली पशुओं तथा हाथियोंसे भरे हुए वनमें जानेका यदि आपने निश्चय कर ही लिया है, तो मैं भी धनुष धारण करके आपके आगे-आगे चलूँगा। आपके बिना मैं स्वर्गमें जाना, अमर होना तथा सम्पूर्ण लोकोंका ऐश्वर्य प्राप्त करना भी नहीं चाहता।' यह सुनकर श्रीरामने अनेकों सान्त्वनापूर्ण वचनोंसे लक्ष्मणको समझाया और उन्हें वनमें जानेसे रोका। तब लक्ष्मणने कहा—'भैया! आपने तो पहलेसे ही मुझे अपने साथ रहनेकी आज्ञा दे रक्खी है, फिर इस समय मुझे क्यों रोकते हैं?' यों कहकर लक्ष्मण आगे जानेके लिये तैयार हो भगवान् श्रीरामके सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़कर याचना करने लगे। उनकी यह स्थिति देख महातेजस्वी श्रीरामने कहा—'लक्ष्मण! तुम मेरे स्नेही, धर्मपरायण, धीर और सदा सन्मार्गमें स्थित रहनेवाले हो, मुझे प्राणोंके समान प्रिय हो तथा मेरे वशमें रहनेवाले, आज्ञापालक और सखा हो। यदि मेरे साथ तुम भी वनको चल दोगे तो परम यशस्विनी माता कौसल्या और सुमित्राकी सेवा कौन करेगा? इसलिये तुम यहीं रहकर अपने प्रयत्नसे अथवा राजाकी कृपा प्राप्त करके माता कौसल्याका पालन करो। मेरा कहना मानकर माताओंकी रक्षामें रहो; ऐसा करनेसे मेरे प्रति जो तुम्हारी भक्ति है, वह भी सफल होगी और गुरुजनोंकी पूजा करनेसे जो अतुलित और महान् धर्म होता है, वह भी तुम्हें प्राप्त होगा। सुमित्रानन्दन! ऐसा ही करो; नहीं तो हमलोगोंके न रहनेपर माताजीको सुख नहीं मिलेगा।'

श्रीरामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणने उन्हें मधुर वाणीमें उत्तर दिया—'वीरवर! आपके ही प्रतापसे भरत माता कौसल्या और सुमित्रा दोनोंकी शुद्ध भावसे पूजा करेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इस उत्तम राज्यको पाकर यदि वे बुरे रास्तेपर चलेंगे और दुर्विचारके कारण घमंडमें आकर

---

* न सत्यं दानमानौ वा यज्ञा वाप्याप्तदक्षिणाः। तथा बलकराः सीते यथा सेवा पितुर्मता॥
स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्याः पुत्राः सुखानि च। गुरुवृत्त्यानुरोधेन न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥
देवगन्धर्वगोलोकान् ब्रह्मलोकांस्तथापरान्। प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः॥(३०।३५—३७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माताओंकी रक्षा नहीं करेंगे तो मैं उनकी दुर्बुद्धि और क्रूरता-के कारण उनका और उनके पक्षका समर्थन करनेवाले सब लोगोंका वध कर डालूँगा। यदि सारी त्रिलोकी ही उनकी सहायतामें उतर आये, तो उसे भी प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा। माता कौसल्याको अपने आश्रितोंका पालन करनेके लिये एक हजार गाँव मिले हुए हैं; इसलिये वे स्वयं ही अपना, मेरी माताका तथा मेरे-जैसे और भी बहुत-से मनुष्योंका भरण-पोषण करनेमें समर्थ हैं; अतः आप मुझको अपना अनुगामी बना लीजिये। इसमें कोई धर्मकी हानि नहीं होगी और मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। वनमें रहकर आपकी सेवाका कार्य किया करूँगा। आपको रास्ता दिखाता हुआ आगे-आगे चलूँगा। आपके लिये फल और मूल तथा तपस्वियोंके लिये वनमें सुगमतासे मिल सकनेवाली हवनसामग्री जुटाता रहूँगा। आप जागते रहें या सोते, हर समय आपके सभी आवश्यक कार्य पूर्ण करूँगा।'

लक्ष्मणकी इस बातसे श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा—'सुमित्रानन्दन! जाओ, माता आदि सभी सुहृदोंसे चलनेकी आज्ञा ले लो। राजा जनकके महान् यज्ञमें स्वयं महात्मा वरुणने उन्हें दो दिव्य धनुष दिये थे, जो देखनेमें बड़े भयंकर हैं; साथ ही दो अभेद्य कवच, दो तरकस—जिनके बाण कभी समाप्त नहीं होते, और सूर्यकी तरह देदीप्य-मान दो खड्ग—जिनकी मूँठपर सोना मढ़ा हुआ है, प्रदान किये थे। वे सभी दिव्यास्त्र मिथिलानरेशने मुझे दहेजमें दे दिये थे। वे सब आचार्य वसिष्ठजीके घरमें अच्छी तरह सँभालकर रखे हुए हैं, उन सबको भी शीघ्र ले आओ।' आज्ञा पाकर लक्ष्मणजी गये और सुहृज्जनोंकी अनुमति लेकर वनवासके लिये निश्चितरूपसे तैयार हो आये। फिर इक्ष्वाकु-कुलके गुरु वसिष्ठजीके घर जाकर उन्होंने वे दिव्य आयुध लिये और श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर उन्हें दिखाये।

तब मनस्वी श्रीरामने उनसे प्रसन्न होकर कहा—'लक्ष्मण! तुम ठीक समयपर आये। मैं तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षामें ही था। गुरुजीके यहाँ भक्तिभावसे जो अनेकों अच्छे-अच्छे ब्राह्मण रहते हैं तथा और जो अपने आश्रयमें रहनेवाले मनुष्य हैं, उन सबको मैं इस समय अपना सारा धन बाँटना चाहता हूँ।' यह कहकर रामचन्द्रजीने कुबेरकी भाँति ब्राह्मणोंको धन लुटाया। इसके बाद अपने आश्रित सेवकोंको बुलवाया; वे सब सामने आकर खड़े हुए। उस समय आँसुओंसे उनका गला रुँधा था। श्रीरामने एक-एक सेवकको चौदह वर्षोंतक जीविका चलाने योग्य बहुत-सा धन दिया और कहा—'जबतक मैं वनसे लौटकर न आऊँ, तबतक मेरे तथा लक्ष्मणके घरको छोड़कर न जाना।' अपने दुखी सेवकोंसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी खजांचीसे बोले—'खजानेमें मेरा जितना धन है, सब ले आओ।' यह सुनकर सभी सेवक धन ढो-ढोकर लाने लगे; वहाँ धनकी बहुत बड़ी ढेरी लग गयी, जो देखने ही योग्य थी। तदनन्तर नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मणने बालक और बूढ़े ब्राह्मणों तथा दीन-दुखियोंको धन बाँटना आरम्भ किया। उस समय अयोध्यामें एक त्रिजट नामका गर्गगोत्रीय ब्राह्मण रहता था। उसके पास जीविकाका कोई साधन नहीं था; इसलिये [ उपवास आदिके कारण ] उसके शरीरका रंग पीला पड़ गया था। वह सदा फाल, कुदारी और हल लिये वनमें फल-मूलकी तलाशमें घूमा करता था। उसकी स्त्रीने उससे कहा—'नाथ! श्रीरामचन्द्रजी बड़े धर्मज्ञ हैं। यदि आप उनका दर्शन करें तो वहाँ अवश्य आप-को कुछ-न-कुछ मिल जायगा। पत्नीकी बात सुनकर ब्राह्मण एक फटी धोती, जिससे मुश्किलसे शरीर ढक पाता था, पहनकर रामचन्द्रजीके महलकी राह पकड़े चल दिया। वह पाँचवीं ड्योढ़ीतक चला गया, किसीने रोक-टोक नहीं की। श्रीरामसे मिलकर त्रिजटने कहा—'राजकुमार! मैं निर्धन हूँ, मेरे बहुत-से पुत्र हैं। जीविका नष्ट हो जानेसे सदा वनमें ही रहता हूँ। आप मुझपर कृपादृष्टि कीजिये।'

उसकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको एक परिहास सूझा, उन्होंने ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर! आप अपना डंडा जितनी दूर फेंक सकेंगे, वहाँतककी सारी गौएँ आपको मिल जायँगी।' यह सुनकर उसने बड़ी तेजीके साथ धोतीके पल्लेको सब ओरसे कमरमें लपेट लिया और अपनी सारी शक्ति लगाकर डंडेको बड़े जोरसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

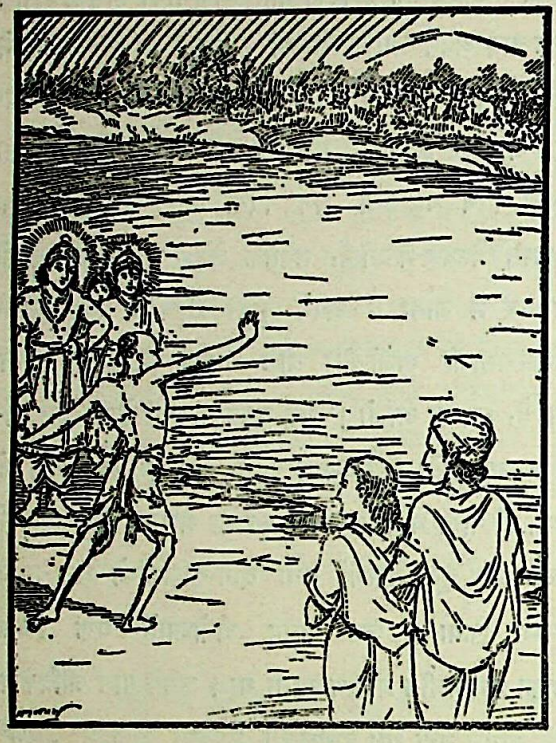

घुमाकर फेंका। ब्राह्मणके हाथसे छूटा हुआ वह डंडा सरयूके उस पार जाकर हजारों गौओंसे भरे हुए गोष्ठमें एक साँड़के पास गिरा। धर्मात्मा श्रीरामने त्रिजटको छातीसे लगा लिया और वहाँतककी सारी गौएँ उसके आश्रमपर भेज दीं। उस समय उन्होंने ब्राह्मणको सान्त्वना देते हुए कहा—'ब्रह्मन्! मैंने विनोदमें यह बात कह दी थी, इसके लिये बुरा न मानियेगा।' गौओंके उस बड़े समूहको पाकर त्रिजट और उसकी स्त्रीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे महात्मा श्रीरामको यश, बल, प्रीति तथा सुख बढ़ानेवाले आशीर्वाद देने लगे। तदनन्तर, पूर्ण पराक्रमी भगवान् श्रीराम धर्मपूर्वक उपार्जन किये हुए उस महान् धनको लोगोंके सम्मानपूर्ण वचनोंसे प्रेरित होकर बहुत देरतक अपने सुहृदोंमें बाँटते रहे। उस समय वहाँ कोई भी ब्राह्मण, सुहृद्, सेवक, दरिद्र अथवा भिक्षुक ऐसा नहीं था, जो यथायोग्य सम्मान, दान तथा सत्कारसे तृप्त न किया गया हो।

## प्रजाका शोक तथा लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामका दशरथसे वन जानेकी आज्ञा लेना

सीताके साथ श्रीराम और लक्ष्मणने ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान किया; फिर तीनों वन जानेको तैयार होकर पिताका दर्शन करनेके लिये चल दिये। उस समय सड़कें मनुष्योंकी भीड़से भरी थीं। उनपर सुगमतापूर्वक चलना कठिन हो गया था; इसलिये बहुत-से लोग प्रासाद ( तिमंजिले मकान ), हर्म्य ( राजमहल ) और विमानों ( सात मंजिलवाले मकान ) की छतपर चढ़कर उदास मनसे श्रीरामकी ओर देखने लगे। श्रीरामचन्द्रजीको छोटे भाई लक्ष्मण और सीताके साथ पैदल जाते देख अधिकांश मनुष्योंका हृदय शोकसे व्याकुल हो उठा। वे खेदके साथ कहने लगे—'हाय! यात्राके समय जिनके पीछे बहुत बड़ी चतुरङ्गिणी सेना चलती थी, वे श्रीरामचन्द्रजी आज अकेले जा रहे हैं तथा उनके पीछे केवल सीता और लक्ष्मण ही चल रहे हैं। जो सबकी कामनाएँ पूर्ण करते थे, वे महात्मा श्रीराम आज धर्मका गौरव रखनेके लिये पिताकी बात झूठी करना नहीं चाहते। ओह! पहले जिसे आकाशमें विचरनेवाले प्राणी भी नहीं देख पाते थे, उसी सीताको इस समय सड़कोंपर खड़े हुए मनुष्य देख रहे हैं। गुणहीन पुत्रको भी घरसे निकाल देनेकी हिम्मत नहीं होती; फिर जिसके केवल चरित्रपर ही सारा संसार मुग्ध है, उसको वनवास कैसे दिया जा सकता है? क्रूरताका अभाव, दया, विद्या, शील, दम ( इन्द्रियसंयम ) और शम ( मनोनिग्रह )—ये छः गुण नरश्रेष्ठ श्रीरामको सदा ही सुशोभित करते हैं। अतः इनके ऊपर आघात करने—इनके राज्याभिषेकमें विघ्न डालनेसे प्रजाको बड़ा क्लेश पहुँचा है; ठीक वैसे ही, जैसे गर्मीमें जलाशयका पानी सूख जानेसे उसके भीतर रहनेवाले जीव तड़पने लगते हैं। जगत्के स्वामी श्रीरामचन्द्रजीकी पीड़ासे सारा जगत् पीड़ित हो रहा है। महान् तेजस्वी श्रीराम सम्पूर्ण मनुष्योंके मूल हैं, धर्म ही इनका बल है। जगत्के दूसरे प्राणी इन्हींके पत्र, पुष्प और शाखाएँ हैं। अब हमलोग भी लक्ष्मणकी भाँति स्त्री और बन्धु-बान्धवोंके सहित इन्हींके पीछे-पीछे चल दें। जिस मार्गसे श्रीराम जाते हैं, उसी मार्गका हम भी आश्रय लें। बाग-बगीचे, घर-द्वार और खेती-बारी—सब छोड़कर धर्मात्मा श्रीरामका अनुसरण करें। इनके सुख-दुःखके साथी बनें। जहाँ ये श्रीरामचन्द्रजी जा रहे हैं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह वन ही नगर हो जाय और हमारे छोड़ देनेसे यह नगर भी जंगल बन जाय।

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने लोगोंके मुँहसे तरह-तरहकी बातें सुनीं; किन्तु इनसे उनके मनमें कोई विकार नहीं हुआ। वे विनयी वीर पुरुषोंसे भरे हुए राजभवनमें प्रवेश करके अपने स्वजनोंको दुखी देखकर भी स्वयं दुःखसे विचलित न हुए और पिताजीका दर्शन करनेके लिये मुसकराते हुए आगे बढ़े। सामने सुमन्त्रको देखकर वे ठहर गये और बोले—'आप महाराजको मेरे आनेकी सूचना दे दें।' श्रीरामकी आज्ञासे भीतर जाकर सुमन्त्रने देखा, राजा दशरथ लंबी साँस खींचते हुए रामका ही चिन्तन कर रहे हैं। तब उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! आपके पुत्र नरश्रेष्ठ श्रीराम ब्राह्मणों और सेवकोंको धन बाँटकर द्वारपर खड़े हैं। सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी अपने सब सुहृदोंसे मिलकर विदा ले चुके हैं और अब आपका दर्शन करना चाहते हैं; इसके लिये आप उन्हें आज्ञा दीजिये।

यह सुनकर धर्मात्मा राजा दशरथने कहा—'सुमन्त्र! मेरी सब स्त्रियोंको बुलाओ। उन सबके साथ मैं रामको देखना चाहता हूँ।' तब सुमन्त्रने अन्तःपुरमें जाकर सब स्त्रियोंसे कहा—'देवियो! आपलोगोंको महाराज बुला रहे हैं, अतः शीघ्र चलें। सुमन्त्रके मुँहसे महाराजकी आज्ञा सुनकर साढ़े तीन सौ पतिव्रता रानियाँ कौसल्याको चारों ओरसे घेरकर धीरे-धीरे वहाँ आयीं। सबके आ जानेपर राजाने अपने सारथिसे कहा—'सुमन्त्र! अब मेरे पुत्रको ले आओ।' सुमन्त्र गये और राम, लक्ष्मण तथा सीताको लेकर शीघ्र ही लौट आये। महाराज दूरसे ही अपने पुत्रको हाथ जोड़कर आते देख सहसा आसनसे उतर पड़े और आर्त होकर बड़े वेगसे श्रीरामकी ओर दौड़े, किन्तु उनके पास पहुँचनेके पहले ही दुःखसे व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़े और मूर्छित हो गये। उस समय श्रीराम और लक्ष्मण बड़ी तेजीसे चलकर शोकमग्न राजाके पास जा पहुँचे और अपनी दोनों भुजाओंसे उठाकर उनको पलँगपर बिठा दिया। शोकसागरमें डूबकर निरन्तर आँसू बहाते हुए राजा दशरथको थोड़ी देर बाद जब चेत हुआ तो श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—'महाराज! आप हम सब लोगोंके स्वामी हैं। मैं दण्डकारण्यको जा रहा हूँ और आपसे आज्ञा लेने आया हूँ; आप अपनी कृपा-दृष्टिसे मेरी ओर देखिये। मेरे साथ लक्ष्मण और सीताको भी वनमें जानेकी आज्ञा दीजिये। मैंने अनेकों सच्चे-सच्चे कारण दिखाकर इन दोनोंको रोकनेकी चेष्टा की है; परन्तु ये यहाँ रहना नहीं चाहते; अतः आप शोक छोड़कर हम सबको अपनी अनुमति देकर अनुगृहीत करें। मैं चौदह वर्षोंतक वनमें रहकर आपकी प्रतिज्ञा पूरी कर लेनेपर फिर आपके चरणोंमें मस्तक झुकाऊँगा।'

राजा दशरथ एक तो सत्यके बन्धनमें बँधे थे, दूसरे कैकेयी उन्हें रामको तुरंत वनमें भेजनेके लिये बाध्य कर रही थी; इस अवस्थामें वे आर्तभावसे रोकर अपने प्यारे पुत्र रामसे बोले—'बेटा! तुम कल्याणके लिये, वृद्धिके लिये और फिर लौट आनेके लिये शान्तभावसे जाओ। तुम्हारा मार्ग विघ्न-बाधाओंसे रहित और निर्भय हो। तुम सत्यस्वरूप और धर्मात्मा हो। तुम्हारे विचारको पलटना तो असम्भव है; किन्तु आज रातभर और रह जाओ। एक दिन भी तो तुम्हें देखकर सुखसे समय व्यतीत कर लूँ। रघुनन्दन! तुम सर्वथा दुष्कर कार्य कर रहे हो। मेरा प्रिय करनेके लिये ही तुमने इस प्रकार वनमें रहनेका निश्चय किया है; किन्तु मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, यह मुझे प्रिय नहीं है—मुझे तुम्हारा वनमें जाना अच्छा नहीं लगता। कुलोचित आचारपर पानी फेर देनेवाली इस कैकेयीने मुझे वरदानके लिये प्रेरित करके मेरे साथ बहुत बड़ा धोखा किया है। तुम अपने पिताको सत्यवादी बनाना चाहते हो। तुम्हारे लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि तुम गुण और अवस्था दोनों ही दृष्टियोंसे मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो।'

शोकाकुल पिताकी यह बात सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामने कहा—'महाराज! आपने देवासुर-संग्राममें कैकेयीको जो वर देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसे पूर्णरूपसे देकर अपने सत्यका पालन कीजिये। मैं राज्य, सुख, पृथ्वी, भोगसामग्री, स्वर्ग तथा इस जीवनकी भी इच्छा नहीं रखता। मेरे मनमें यदि कोई इच्छा है तो यही कि आप सत्यवादी बनें, आपका वचन मिथ्या न होने पावे। यह बात मैं आपके सामने सत्य और शुभ कर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ। अब मैं एक क्षणके लिये भी यहाँ रुक नहीं सकता। कैकेयीके यह कहनेपर कि 'राम! तुम वनको चले जाओ' मैंने वचन दिया था कि 'अवश्य जाऊँगा।' उस सत्यका मुझे पालन करना है। आप चिन्ता न कीजिये; जहाँ सब ओर हिरन चौकड़ी भरते और भाँति-भाँतिके पक्षी कलरव करते रहते हैं, उस वनमें हमलोग बड़े आनन्दसे रहेंगे। पिता देवताओंके भी देवता माने गये हैं, अतः मैं देवता समझकर ही पिताकी आज्ञाका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन करूँगा। तात! अब यह सन्ताप छोड़िये, चौदह वर्ष बीतनेपर आप फिर मुझे देख सकेंगे। आप तो सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। यहाँ जितने लोग आँसू बहा रहे हैं, इन सबको धैर्य बँधाना आपका कर्तव्य है। फिर आप स्वयं इतने व्याकुल कैसे हो रहे हैं? अब मैं दीर्घकालतक वनमें निवास करनेके लिये यात्रा करता हूँ। आपकी सत्पुरुषोंद्वारा अनुमोदित आज्ञाका पालन करनेमें मेरा मन जैसा लगता है, वैसा बड़े-बड़े भोगोंमें तथा अपने किसी प्रिय पदार्थमें भी नहीं लगता। अतः मेरे लिये आपके मनमें जो दुःख है, उसे दूर कर दीजिये। आपको मिथ्यावादी बनाकर अक्षय राज्य, सब प्रकारके भोग, वसुधाका आधिपत्य, मिथिलेशकुमारी सीता तथा अन्य किसी अभिलषित पदार्थको भी मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी एकमात्र इच्छा यही है कि आपकी प्रतिज्ञा सत्य हो। वनमें प्रवेश करके फल-मूलका भोजन करूँगा और पर्वतों, नदियों, सरोवरों तथा विचित्र-विचित्र वृक्षोंको देख-देखकर सुखी होऊँगा। इसलिये आप अपने मनको शान्त कीजिये।'

रामके ऐसा कहनेपर राजा दशरथने दुःख और सन्तापसे पीडित हो उन्हें छातीसे लगाया और फिर अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय उनका शरीर जडकी भाँति चेष्टा-रहित हो गया। यह देखकर रानी कैकेयीके सिवा वहाँ एकत्रित हुई सभी स्त्रियाँ रो पड़ीं। सुमन्त्र भी रोते-रोते मूर्छित हो गये तथा सब ओर हाहाकार मच गया।

## सुमन्त्रका कैकेयीको फटकारना, सिद्धार्थका समझाना, कैकेयीका श्रीराम आदिको वल्कल देना और वसिष्ठ एवं दशरथका सीताके वल्कल-धारणपर आपत्ति करना

तदनन्तर, होशमें आनेपर सारथि सुमन्त्र सहसा उठकर खड़े हो गये। उनके मनमें बड़ा सन्ताप हुआ। उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। राजा दशरथके मनकी वास्तविक अवस्था जानकर वे बारंबार लंबी साँस खींचने लगे और सिर कँपाकर, हाथ-से-हाथ मलकर, दाँत कटकटाकर अपने वचनरूपी तीखे बाणोंसे कैकेयीके मर्मस्थलोंको बींधते हुए-से बोले—'देवि! जब तुमने स्वयं अपने पति राजा दशरथका ही त्याग कर दिया तो जगत्‌में कोई ऐसा निषिद्ध कर्म नहीं है, जिसे तुम न कर सको। मैं तो समझता हूँ, तुम पतिकी हत्या करनेवाली और कुलघातिनी हो। महाराज दशरथ तुम्हारे पति हैं, पालक हैं तथा वरदाता हैं; इनका अपमान न करो। स्त्रियोंके लिये अपने पतिकी इच्छाके अनुसार चलना करोड़ों पुत्रोंसे अधिक महत्त्व रखता है। इस कुलमें राजाका परलोकवास हो जानेपर उसके पुत्रोंकी अवस्थाका विचार करके जिस प्रकार ज्येष्ठ पुत्रको राज्य देनेकी व्यवस्था है, उसको तुम इन इक्ष्वाकुवंशके स्वामी राजा दशरथके जीते-जी ही छीन कर देना चाहती हो। तुम्हारे पुत्र भरत राजा हो जायँ; किन्तु हमलोग तो वहीं चले जायँगे, जहाँ श्रीराम जा रहे हैं। सम्पूर्ण बन्धु-बान्धव और सदाचारी ब्राह्मण भी तुम्हारा त्याग कर देंगे। फिर इस राज्यको पाकर तुम्हें क्या आनन्द मिलेगा? ओह! तुम ऐसा मर्यादा-हीन काम करना चाहती हो! मुझे तो यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि तुम्हारे इतने बड़े अत्याचार करनेपर भी पृथ्वी तुरंत फट क्यों नहीं जाती अथवा बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंके धिक्कारपूर्ण वाग्दण्ड—जलानेवाले भयंकर शाप तुम्हारा सत्यानाश क्यों नहीं कर डालते? हाय! तुम श्रीरामको निकालने-पर तुली हुई हो। कैकेयी! मेरी समझमें तुम्हारी माताका अपने कुलके अनुरूप जैसा स्वभाव था, वैसा ही तुम्हारा भी है। लोकमें कही जानेवाली यह कहावत सत्य ही है कि नीमकी पत्ती निचोड़नेसे मधु नहीं टपकता। तुम्हारी माताके दुराग्रहकी बात भी मुझे मालूम है। एक बार किसी वर देनेवाले साधुने तुम्हारे पिताको अत्यन्त उत्तम वर दिया था। उसके प्रभावसे केकयनरेश सब प्राणियोंकी बोली समझने लगे। एक दिन तुम्हारे तेजस्वी पिता शय्यापर लेटे हुए थे, इतनेमें जृम्भ नामक पक्षीकी आवाज उनके कानोंमें पड़ी। उसकी बोलीका अभिप्राय समझकर राजा कई बार हँसे। इससे तुम्हारी माताको बड़ा क्रोध हुआ और वह बोली—'राजन्! मैं तुम्हारे हँसनेका कारण जानना चाहती हूँ।' राजाने कहा—देवि! यदि उसका कारण बता दूँ, तो निःसन्देह इसी क्षण मेरी मृत्यु हो जायगी।' यह सुनकर तुम्हारी माताने केकयराजसे कहा—'तुम जियो या मरो, मुझे कारण बता दो।' अपनी प्यारी रानीकी बात सुनकर केकयनरेशने उस वर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देनेवाले साधुके पास जाकर सारा समाचार कह सुनाया। साधुने उत्तर दिया—'महाराज! रानी मरे या घरसे निकल जाय, तुम कदापि यह बात उसे न बताना।' साधुके ऐसा कहनेपर राजाने तुम्हारी माताको घरसे निकाल दिया। तुम भी इसी प्रकार मोहवश राजासे अनुचित आग्रह कर रही हो। आज मुझे यह लोकोक्ति सोलह आने सच मालूम होती है कि पुत्र पिताके समान होते हैं और कन्याएँ माताके समान। तुम इस लोकोक्तिको चरितार्थ न करो। पापपूर्ण विचार रखनेवाले लोगोंके बहकानेसे तुम अपने लोकप्रतिपालक स्वामीको अनुचित कार्य करनेके लिये विवश न करो। राजा दशरथ पापसे दूर रहते हैं, वे अपनी प्रतिज्ञा झूठी नहीं करेंगे; किन्तु यदि श्रीराम वनको चले जायँगे तो संसारमें तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी। इसलिये तुम श्रीरामको ही इस राज्यका पालन करने दो।'

इस प्रकार सुमन्त्रने हाथ जोड़कर कैकेयीको तीखे तथा सान्त्वनापूर्ण वचनोंसे भी बारंबार विचलित करनेकी चेष्टा की, किन्तु वह टस-से-मस न हुई। उसके मनमें तनिक भी दुःख न हुआ। यहाँतक कि उसके चेहरेके रंगमें भी कोई फर्क नहीं पड़ा। तब राजा दशरथने सुमन्त्रसे कहा—'सूत! तुम शीघ्र ही रत्नोंसे सुसज्जित चतुरङ्गिणी सेनाको रामके पीछे-पीछे जानेकी आज्ञा दो। राम निर्जन वनमें निवास करनेके लिये जा रहे हैं, इसलिये मेरा खजाना और अन्न-भंडार सब इनके साथ जाना चाहिये। ये वनके पावन प्रदेशमें ऋषियोंसे मिलकर यज्ञ करेंगे और पर्याप्त दक्षिणा देते हुए वहाँ सुखपूर्वक रहेंगे।' राजाकी यह बात सुनकर कैकेयीको बड़ा विषाद हुआ। उसका मुँह सूख गया और वह अत्यन्त त्रस्त होकर राजाकी ओर देखती हुई बोली—'महाराज! इस धनहीन और सूने राज्यको भरत नहीं लेंगे। आपके ही वंशमें महाराज सगर हुए थे, जिन्होंने अपने जेठे पुत्र असमञ्जके लिये राज्यका दरवाजा सदाके लिये बंद कर दिया था। इसी प्रकार रामको भी निकल जाना चाहिये।' उसके ऐसा कहनेपर राजा दशरथने कहा—'धिक्कार है!' वहाँ जितने लोग बैठे थे, सभी लाजसे गड़ गये; किन्तु कैकेयी अपने कथनके अनौचित्यको नहीं समझ सकी।

उस समय वहाँ राजाके प्रधान और वयोवृद्ध मन्त्री सिद्धार्थ बैठे थे। वे बड़े ही शुद्ध स्वभाववाले और राजाके आदरणीय थे। उन्होंने कैकेयीसे कहा—"देवि! असमञ्ज बड़ा दुष्ट था। वह मार्गपर खेलते हुए बालकोंको पकड़कर सरयूकी धारामें फेंक देता था। यही उसका मनोरञ्जन था। उसकी यह करतूत देखकर सभी नगरनिवासी क्रोधमें भर गये और राजाके पास जाकर बोले—'महाराज! या तो आप अकेले असमञ्जको लेकर रहिये या असमञ्जको त्यागकर हमारी रक्षा कीजिये।' राजाने पूछा—'तुम्हें असमञ्जसे किस कारण भय हुआ है?' प्रजाने कहा—'ये हमारे खेलते हुए छोटे-छोटे बच्चोंको पकड़ लेते हैं और जब वे बहुत घबरा जाते हैं तो उन्हें सरयूमें फेंक देते हैं। ऐसा करके इन्हें अपनी मूर्खताके कारण बड़ा आनन्द मिलता है।' प्रजाकी बात सुनकर राजा सगरने उनका प्रिय करनेकी इच्छासे अपने दुष्ट पुत्रको उसकी पत्नीसहित रथपर बिठाया और अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि 'इसे जीवनभरके लिये राज्यसे बाहर निकाल दो।' इस प्रकार पापी होनेके कारण ही परम धार्मिक राजा सगरने असमञ्जको राज्यसे बाहर किया था। रामने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, जिसके कारण इनके लिये राज्यका दरवाजा बंद कर दिया जाय? हमें तो इनमें कोई दोष नहीं दिखायी देता। तुम्हें इनका कोई दोष मालूम हो तो बताओ; फिर इन्हें भी निकाल दिया जायगा। जिसमें कोई दुष्टता नहीं है, जो सन्मार्गमें स्थित है, ऐसे पुरुषका त्याग धर्मसे विरुद्ध माना जाता है। ऐसा धर्मविरुद्ध कर्म तो इन्द्रके भी तेजको दग्ध कर देगा; अतः तुम रामके राज्याभिषेकमें विघ्न न डालो। तुम्हें लोकापवादसे भी बचनेकी चेष्टा करनी चाहिये।"

सिद्धार्थकी बातें सुनकर राजा दशरथ अत्यन्त थके हुए स्वरसे शोकाकुल वाणीमें बोले—'पापिनी! क्या तुझे यह बात नहीं रुची? मेरे या अपने हितका तुझे बिल्कुल ज्ञान नहीं है। तू खोटे मार्गका आश्रय लेकर ऐसी कुचेष्टा कर रही है। तेरा सारा प्रयत्न साधु पुरुषोंके मार्गके विरुद्ध है। अब मैं भी यह राज्य, सुख और धन छोड़कर श्रीरामके पीछे चला जाऊँगा। ये सब लोग भी श्रीरामका ही साथ देंगे। तू अकेली राजा भरतके साथ चिरकालतक राज्य भोगती रह।'


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रधान मन्त्रीके वचन सुनकर विनयपूर्ण बर्तावको जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजीने विनीत होकर पितासे कहा—'राजन्! मैं भोगोंका परित्याग कर चुका हूँ। जंगली फल-मूलोंसे जीवन-निर्वाह करूँगा। मुझे सेनाकी क्या आवश्यकता है? मैं ये सब वस्तुएँ भरतको अर्पण करनेकी सम्मति देता हूँ। मेरे लिये तो वल्कल-वस्त्र मँगवाइये। कोई जाकर फावड़ा और खाँची ला दे। चौदह वर्षोंतक वनमें रहनेके लिये ये चीजें उपयोगी हो सकती हैं।'

कैकेयी लाज-संकोच छोड़ चुकी थी, वह स्वयं ही जाकर वल्कल-वस्त्र ले आयी और जनसमुदायमें बोली—'लो, इन्हें पहनो।' नरश्रेष्ठ श्रीरामने कैकेयीके हाथसे दो चीर ले लिये और अपने महीन वस्त्र उतारकर मुनियोंके-से वस्त्र धारण कर लिये। इसी प्रकार लक्ष्मणने भी अपने पिताके सामने ही सुन्दर वस्त्र उतारकर तपस्वियोंके-से वल्कल-वस्त्र पहने। इसके बाद रेशमी वस्त्र पहनने और धर्मपर दृष्टि रखनेवाली सुलक्षणा सीता अपने पहननेके लिये कैकेयीके हाथसे दो वल्कल-वस्त्र ले लज्जित-सी होकर अपने स्वामीसे बोलीं—'नाथ! वनवासी मुनिलोग चीर कैसे बाँधते हैं?' यह कहकर वे उसे धारण करनेमें कुशल न होनेके कारण एक वल्कल गलेमें डाल, दूसरा हाथमें लेकर चुपचाप खड़ी रहीं। तब धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीराम जल्दीसे उनके पास आकर स्वयं अपने हाथोंसे उनके रेशमी वस्त्रके ऊपर वल्कल-वस्त्र पहनाने लगे। यह देख रनिवासकी स्त्रियाँ नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई अत्यन्त खिन्न होकर रामसे बोलीं—'बेटा! मनस्विनी जानकीको वनवासकी आज्ञा नहीं दी गयी है। जबतक तुम पिताकी आज्ञासे निर्जन वनमें रहोगे, तबतक हमें इसीको देखकर अपना जीवन सफल बनाने दो।'

माताओंकी ये बातें सुनकर भी श्रीरामचन्द्रजीने सीताको वल्कल-वस्त्र पहना ही दिया। पतिके समान शील-स्वभाव-वाली सीताके चीर धारण कर लेनेपर राजाके गुरु वसिष्ठजीकी आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होंने सीताको रोककर कैकेयीसे

कहा—'मूर्ख कैकेयी! तू धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन करके पापके पथपर पैर बढ़ा रही है। कुलकलंकिनी! राजाको धोखा देकर अब तू सीमाके भीतर नहीं रहना चाहती। अरी! सीतादेवी वनमें नहीं जायेंगी और यदि जायेंगी तो हम भी इनके साथ चले जायेंगे। अपनी पत्नीके साथ श्रीरामचन्द्रजी जहाँ निवास करेंगे, वहीं अन्तःपुरके रक्षक तथा राज्य और नगरके लोग भी अपनी धन-दौलत और आवश्यक सामान लेकर चले जायेंगे। भरत और शत्रुघ्न भी वल्कल-वस्त्र धारण करके वनमें रहेंगे और वहाँ अपने बड़े भाई रामकी सेवा करेंगे। फिर तू वृक्षोंके साथ अकेली रहकर इस सूनी पृथ्वीका राज्य करना। राम जहाँके राजा न होंगे, वह राज्य राज्य नहीं रह जायगा—जंगल हो जायगा और जहाँ श्रीरामचन्द्रजी निवास करेंगे, वह वन एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायगा। यदि भरत राजा दशरथके पुत्र हैं, तो पितासे न्यायतः प्राप्त हुए बिना वे इस राज्यको कदापि लेना नहीं चाहेंगे तथा तेरे साथ पुत्रवत् बर्ताव करनेके लिये यहाँ बैठे नहीं रहेंगे। तू पृथ्वी छोड़कर आसमानमें उड़ जाय तो भी अपने पितृवंशके आचार-व्यवहारको जानने-वाले भरत कुलाचारके विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेंगे। तूने पुत्रका हित करनेकी इच्छासे वास्तवमें उसका अहित किया है। संसारमें कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है, जो श्रीरामका भक्त न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## सीताजीको चीरदान और वसिष्ठजीका विरोध

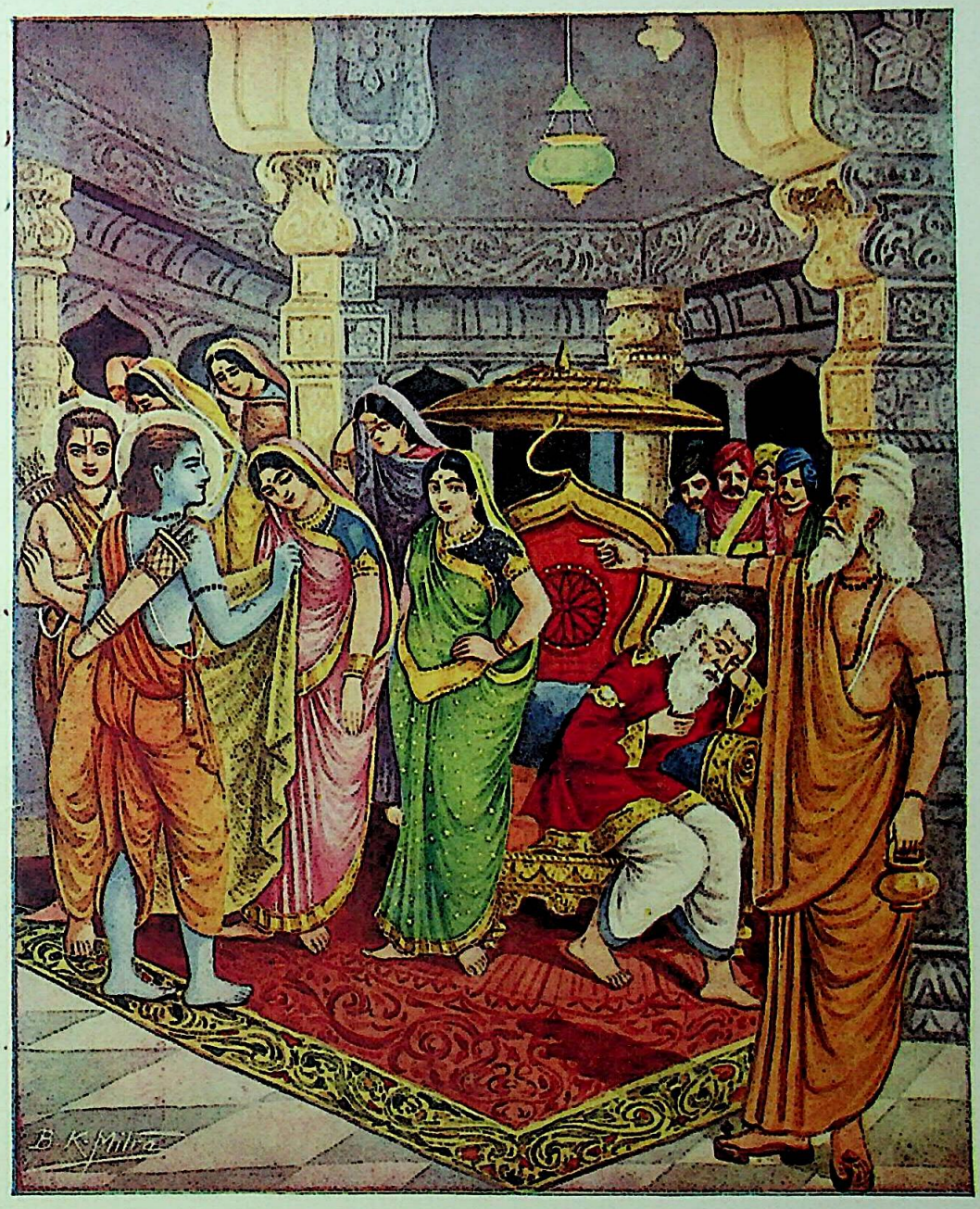

तासामेवंविधा वाचः शृण्वन् दशरथात्मजः । बबन्धैव तथा चीरं सीतया तुल्यशीलया ॥
चीरे गृहीते तु तया सबाष्पो नृपतेर्गुरुः । निवार्य सीतां कैकेयीं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥
( अयोध्या० ३७ । २०-२१ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

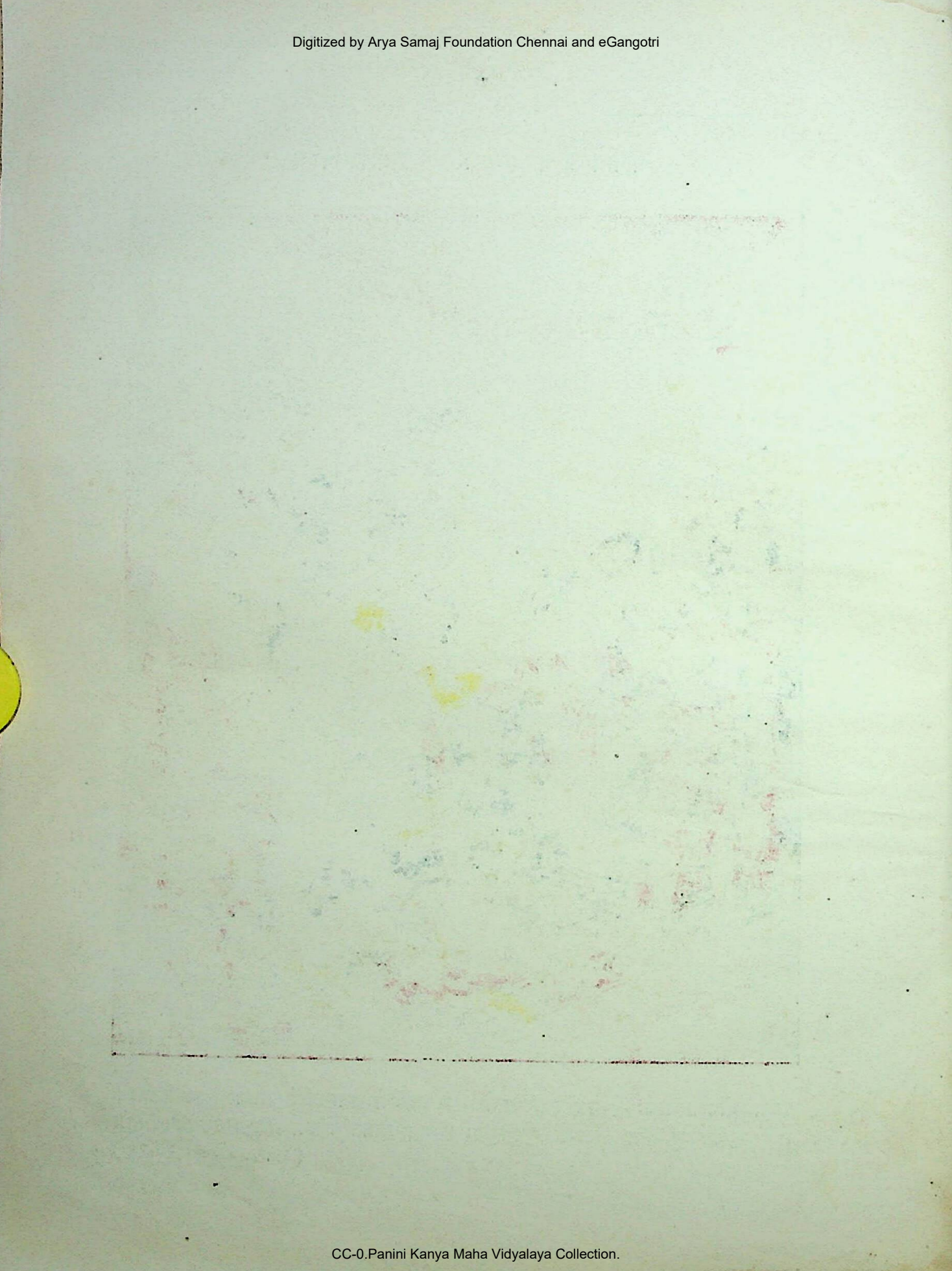

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। देवी! सीता तेरी पुत्रवधू है। इसके शरीरसे वल्कल-वस्त्र हटाकर इसे उत्तम-उत्तम वस्त्र और आभूषण पहननेको दे। तूने अकेले रामके ही वनवासका वर माँगा है। वर माँगते समय सीताकी चर्चा नहीं की थी, इसलिये यह राज-कुमारी वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर मुख्य-मुख्य सेवकों तथा सवारियोंके साथ वनको जाय और वनमें भी सदा वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर रामचन्द्रके साथ रहे।'

अब राजा दशरथने गरम साँस खींचते हुए अपनी पत्नी कैकेयीसे कहा—'गुरुजी ठीक कहते हैं। सीता वनमें जानेके योग्य नहीं है। जानकी अपने चीर-वस्त्र उतार डाले। मैंने इसे किसी भी रूपमें वन भेजनेकी प्रतिज्ञा नहीं की है, यह सब प्रकारके रत्नोंको साथ लेकर सुखपूर्वक जा सकती है। मैं जीवित रहने योग्य नहीं हूँ। मैंने तेरे वचनोंमें बँधकर एक तो यों ही बड़ी क्रूर प्रतिज्ञा कर डाली, दूसरे तूने अपनी नादानीके कारण सीताको चीर पहनाना आरम्भ कर दिया। जिस प्रकार बाँसका फूल बाँसको सुखा डालता है, उसी प्रकार मेरी की हुई प्रतिज्ञा मुझीको भस्म किये डालती है। पापिनी! तूने रामको वनवास देकर ही पूरा पाप कमा लिया है, अब सीता आदिको भी वनमें भेजने और वल्कल पहनानेका कार्य करके फिर इतने पातक किसलिये बटोर रही है? मिथिलेशकुमारी जानकीको भी जो तू वल्कल-वस्त्र पहने देखना चाहती है, इससे जान पड़ता है तुझे मर्यादाका उल्लङ्घन करके नरकमें पड़नेकी इच्छा हो रही है।'

राजा दशरथ सिर नीचा किये इस प्रकार कह रहे थे; उस समय वनकी ओर जाते हुए श्रीरामने उनसे कहा—'धर्मात्मन्! मेरी वृद्धा माता कौसल्या बड़ी उदार हैं, ये कभी आपकी निन्दा नहीं करतीं; इनके ऊपर कभी कोई भारी संकट भी नहीं पड़ा है। मेरे न रहनेसे ये शोक-समुद्रमें डूब जायेंगी, अतः आप सदा इनका सम्मान करते रहें। ये निरन्तर अपने बिछुड़े हुए बेटे-को देखनेके लिये उत्सुक रहेंगी। कहीं ऐसा न हो, मेरे वनमें रहते समय माता कौसल्या शोकसे कातर होकर अपने प्राण गवाँ बैठें, अतः आप सदा इनके ऊपर ध्यान रखें।'

## श्रीरामका पिता-मातासे मिलकर वनको प्रस्थान और सबका शोक करना

श्रीरामकी बातें सुनकर और उन्हें मुनिवेष धारण किये देख राजा दशरथ अपनी स्त्रियोंसहित शोकसे अचेत हो गये। दो घड़ीतक अचेत रहनेके बाद जब उन्हें होश हुआ तो वे रामका ही चिन्तन करते हुए अत्यन्त दुखी होकर विलाप करने लगे—'जान पड़ता है मैंने पूर्वजन्ममें बहुत-सी गौओं-का उनके बछड़ोंसे बिछोह कराया है, अथवा अनेकों प्राणियों-की हिंसा की है, इसीसे आज मेरे ऊपर यह विपत्ति आ पड़ी है। समय पूरा हुए बिना किसीके शरीरसे प्राण नहीं निकलते, तभी तो कैकेयीके द्वारा इतना क्लेश पानेपर भी मेरी मृत्यु नहीं होती। ओह! अपने अग्निके समान तेजस्वी पुत्रको महीन वस्त्र त्याग कर तपस्वियोंके-से वल्कल-वस्त्र धारण किये सामने खड़ा देख रहा हूँ [फिर भी मेरे प्राण नहीं निकलते]।'

इतना कहते-कहते राजाकी आँखोंमें आँसू भर आये, उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और वे एक बार 'राम!' कहकर चुप हो गये, आगे कुछ न बोल सके। थोड़ी देर बाद चेत होनेपर वे नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए अपने सारथि सुमन्त्रसे बोले—'तुम सवारीके योग्य एक रथ उत्तम घोड़े जोतकर यहाँ ले आओ और रामको उसपर बिठाकर मनुष्योंकी आबादीसे बाहरतक पहुँचा आओ।' राजाकी आज्ञा शिरोधार्य कर सुमन्त्र शीघ्रतापूर्वक गये और उत्तम घोड़ोंसे सुशोभित रथ जोतकर ले आये। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! रथ तैयार है।' तब राजाने तुरंत ही कोषाध्यक्षको बुलाकर कहा—'तुम जल्दी विदेह-कुमारी सीताके पहननेयोग्य बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण ले आओ। इन्हें जितने वर्ष वनमें रहना है, उतने समयके लिये गिनकर पर्याप्त मात्रामें लाना।' महाराजकी आज्ञाके अनुसार कोषाध्यक्षने खजानेसे सब चीजें लाकर सीताको अर्पण कर दीं। तब उनकी सास कौसल्याने उन्हें अपनी दोनों भुजाओंसे कसकर छातीसे लगा लिया और उनके मस्तकको सूँघकर कहा—'बेटी! जो स्त्रियाँ अपने पतिके द्वारा सदा सम्मानित होनेपर भी संकटमें पड़नेपर उसका अपमान करती हैं, वे संसारमें असतीके नामसे पुकारी जाती हैं। दुष्टा स्त्रियोंका यह स्वभाव होता है कि पहले तो वे पतिके द्वारा यथेष्ट सुख भोगती हैं, परन्तु जब वह थोड़ी-सी भी विपत्तिमें पड़ता है तो उसपर अनेकों प्रकारके दोषारोपण करने लगती हैं। इनके विपरीत जो सत्य, सदाचार,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शास्त्रोंकी आज्ञा और कुलोचित मर्यादामें स्थित रहती हैं, उन साध्वी स्त्रियोंके लिये एकमात्र पति ही परम पवित्र एवं सर्वश्रेष्ठ देवता है।* इसलिये तुम मेरे पुत्र रामका, जिन्हें वनवासकी आज्ञा मिली है, कभी अनादर न करना। ये निर्धन हों या धनी, तुम्हारे लिये देवताके तुल्य हैं।'

सासके धर्म और अर्थयुक्त वचनोंका तात्पर्य भलीभाँति समझकर सीता उनके सामने खड़ी हो हाथ जोड़कर बोलीं—'आर्ये! आप मेरे लिये जो कुछ उपदेश दे रही हैं, मैं उसका पूर्णरूपसे पालन करूँगी। स्वामीके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये—इस बातको मैं पहले भी सुन चुकी हूँ; इसलिये इसकी मुझे पूरी जानकारी है। जैसे चन्द्रमासे उसकी प्रभा दूर नहीं होती, उसी प्रकार मैं भी धर्मसे विचलित नहीं हो सकती। पिता, भ्राता और पुत्र—ये परिमित सुख प्रदान करते हैं; किन्तु पति अपरिमित सुखका दाता है—उसकी सेवासे इहलोक और परलोक दोनोंमें कल्याण होता है। अतः ऐसी कौन स्त्री है, जो अपने पतिका सत्कार नहीं करेगी?† मैंने अपनेसे श्रेष्ठ स्त्रियों—माता आदिके मुखसे नारीके सामान्य और विशेष धर्मोंका भलीभाँति श्रवण किया है। इस प्रकार पातिव्रत्यका महत्त्व जानकर भी क्या मैं पतिका अपमान करूँगी? मैं जानती हूँ—स्त्रीका देवता केवल पति ही है।' सीताके मनोहर वचन सुनकर शुद्ध अन्तःकरणवाली देवी कौसल्याके नेत्रोंसे शोक और हर्षके आँसू बहने लगे। तब परम धर्मात्मा श्रीराम सब माताओंके बीचमें खड़ी हुई अपनी माता कौसल्याको देख हाथ जोड़कर बोले—'माँ! [ इन्हींके कारण मेरे पुत्रका वनवास हुआ है, ऐसा समझकर ] तुम पिताजीकी ओर दुःखित होकर न देखना। वनवासकी अवधि शीघ्र ही समाप्त हो जायगी। ये चौदह वर्ष तो तुम्हारे सोते-सोते निकल जायँगे। फिर एक दिन देखोगी कि मैं अपने सुहृदोंसे घिरा हुआ सीता और लक्ष्मणके सहित यहाँ आ गया हूँ।' मातासे इस प्रकार न्याययुक्त वचन कहकर दशरथ-नन्दन श्रीरामने अपनी अन्य साढ़े तीन सौ माताओंकी ओर दृष्टि डाली। वे भी कौसल्याकी ही भाँति शोकाकुल हो रही थीं। तब उन्होंने हाथ जोड़कर उन सबसे कहा—'माताओ! सदा एक साथ रहनेके कारण मैंने जो कुछ कठोर वचन कह दिये हों अथवा अनजानमें भी मुझसे जो अपराध बन गये हों—आप उनके लिये क्षमा करें। मैं आपलोगोंसे विदा लेता हूँ।' शोकातुर माताओंने श्रीरामचन्द्रजीकी यह धर्मयुक्त और उचित बात सुनी और वे सब-की-सब रोने लगीं।

इसके बाद राम, लक्ष्मण और सीताने हाथ जोड़कर दीनभावसे राजा दशरथके चरणोंका स्पर्श करके उनकी प्रदक्षिणा की। फिर सीताके सहित धर्मज्ञ रामने अपनी माता-को प्रणाम किया। रामके बाद लक्ष्मणने भी पहले कौसल्याको मस्तक झुकाया और फिर अपनी माता सुमित्राके दोनों पैर पकड़ लिये। उस समय सुमित्राने महाबाहु लक्ष्मणका मस्तक सूँघकर कहा—'बेटा! तुम अपने सुहृद् श्रीरामके परम अनुरागी हो; इसलिये मैं तुम्हें वनवासके लिये विदा करती हूँ। तुम्हारे बड़े भाई वनको जाते हैं, तुम उनकी सेवामें प्रमाद न करना। वे संकटमें हों अथवा समृद्धिमें, वे ही तुम्हारी परमगति हैं। संसारमें सत्पुरुषोंका यही धर्म है कि सर्वदा अपने बड़े भाईकी आज्ञाके अधीन रहें। दान देना, यज्ञमें दीक्षा ग्रहण करना और युद्धमें शरीर त्यागना—यही इस वंशका उचित एवं सनातन आचार है। तुम रामको ही अपने पिता राजा दशरथ, जनककुमारी सीताको ही माता सुमित्रा और वनको ही अयोध्या समझना। तात! अब जाओ, सुखपूर्वक प्रस्थान करो।'*

तदनन्तर सुमन्त्रने हाथ जोड़कर विनीतभावसे कहा—'महायशस्वी राम! आप इस रथपर बैठें; मैं जहाँ आपकी इच्छा हो, वहीं आपको पहुँचा दूँ।' तब सुन्दरी सीता उत्तम अलङ्कार धारण करके प्रसन्न चित्तसे उस सूर्यके समान देदीप्यमान रथपर जा बैठीं। राजा दशरथने दोनों भाइयोंके लिये बहुत-से अस्त्र-शस्त्र और कवच प्रदान किये। वे सब रथके पिछले भागमें रख दिये गये। इसके बाद श्रीराम और लक्ष्मण भी शीघ्रतासे उस स्वर्णमण्डित रथपर सवार हो गये। तीनोंको रथपर बैठे देख सारथि सुमन्त्रने घोड़ोंको हाँका। जब श्रीरामचन्द्रजी दीर्घ कालके लिये उस महान् वनकी ओर जाने लगे तो उस समय समस्त पुरवासियों, सैनिकों तथा दर्शक-रूपमें आये हुए बाहरी लोगोंको भी मूर्च्छा आ गयी। अयोध्यापुरीके आबाल-वृद्ध सब लोग अत्यन्त पीड़ित होकर श्रीरामके ही पीछे दौड़े। उनमेंसे कुछ रथके पीछे और अगल-बगलमें लटक गये। सभी रामके लिये उत्कण्ठित थे, सबके

---

* साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते।
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते॥ (३९।२४)

† मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥ (३९।३०)

* रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥ (४०।९)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँह आँसुओंसे भीगे थे। वे सभी उच्च स्वरसे कहने लगे—'सूत! घोड़ोंकी लगाम खींचो, रथको धीरे-धीरे ले चलो, हम रामका मुख देखेंगे। अब हमारे लिये इनका दर्शन दुर्लभ हो जायगा।' इसी समय दयनीय दशाको प्राप्त हुई अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए राजा दशरथ अत्यन्त दीन होकर 'मैं अपने प्यारे पुत्र रामको देखूँगा' ऐसा कहते हुए महलसे बाहर निकल

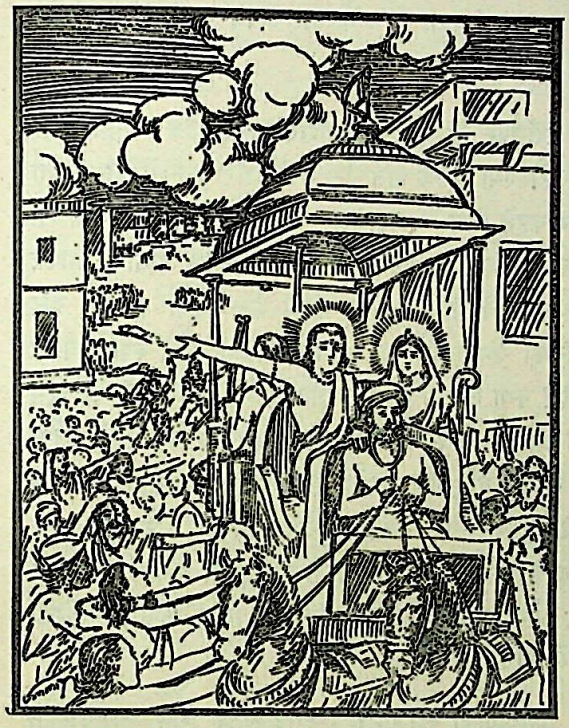

आये। यह देख अचिन्त्यस्वरूप भगवान् श्रीरामने सुमन्त्रसे कहा—'आप रथको तेजीसे चलाइये।' एक ओर श्रीरामचन्द्रजी रथ हाँकनेको कहते थे और दूसरी ओर सारा जनसमुदाय रोकनेकी प्रेरणा कर रहा था। इस प्रकार दुविधामें पड़कर सारथि दोनोंमेंसे कुछ न कर सका—न तो रथको रोक सका और न उसे तेज ही चला सका। श्रीरामचन्द्रजीके प्रस्थान करते समय सारा नगर अत्यन्त पीड़ित हो गया। सब रोने और आँसू बहाने लगे तथा सभी हाहाकार करते-करते अचेत-से हो गये। राजा दशरथ सारी अयोध्यापुरीको रामके लिये समानभावसे व्याकुल देख अत्यन्त दुःखके कारण जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति भूमिपर गिर पड़े। रानियोंके सहित रोते-बिलखते राजा दशरथकी दशा देख कोई 'हा राम!' कहकर और कोई 'हा राममाता!' की पुकार मचाकर विलाप करने लगे।

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने माता और पिताको पैदल ही अपने पीछे-पीछे आते देख सारथिको शीघ्र रथ हाँकनेके लिये प्रेरित किया। उन दोनोंको इस दुःखद अवस्थामें देखना उनके लिये असह्य हो गया। जैसे बँधे हुए बछड़ेवाली गौ शामको घरकी ओर लौटते समय बछड़ेके स्नेहसे दौड़ी चली आती है, उसी प्रकार रामकी माता कौसल्या 'हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' की रट लगाकर उन तीनोंके लिये आँसू बहाती रथके पीछे-पीछे दौड़ रही थीं। राजा दशरथ पुकार-पुकारकर कहने लगे—'सुमन्त्र! जरा रथको रोक दो।' किन्तु राम कहते थे 'नहीं' रथको तेज चलाना चाहिये।' बेचारे सुमन्त्रका मन उस समय दो पहियोंके बीचमें पड़े हुए मनुष्यका-सा हो रहा था। उनसे कुछ भी करते नहीं बनता था। अन्तमें सब लोगोंको दूर हटनेकी आज्ञा दे सारथिने रामके ही आदेशका पालन किया। यद्यपि घोड़े स्वाभाविक गतिसे चल रहे थे, फिर भी उन्हें तीव्र गतिसे हाँका। इधर मन्त्रियोंने महाराज दशरथसे कहा—'राजन्! जिसके लिये यह इच्छा की जाय कि वह पुनः शीघ्र लौट आये, उसके पीछे दूरतक नहीं जाना चाहिये।' मन्त्रियोंका वचन सुनकर राजा दशरथ वहीं खड़े हो गये और रानियोंसहित अत्यन्त दीनभावसे पुत्रकी ओर देखने लगे।

नरश्रेष्ठ श्रीरामके निकल जानेपर रानियोंमें बड़ा हाहाकार मच गया। वे सब-की-सब बछड़ेसे बिछुड़ी हुई गौओंकी तरह दुःखसे आर्त होकर रोने और उच्चस्वरसे चिल्लाने लगीं। उस दिन सूर्य डूब गया, किन्तु गृहस्थोंके घर अग्निहोत्र नहीं हुआ। हाथियोंने चारा खाना छोड़ दिया, गौओंने बछड़ोंको दूध नहीं पिलाया, नक्षत्रोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी और ग्रह निस्तेज हो गये। सारे नगरमें हलचल मच गयी। समस्त दिशाएँ व्याकुल हो उठीं; उनमें अन्धकार-सा छा गया। पुरवासी मनुष्योंकी बड़ी दयनीय दशा थी। सड़कोंपर कोई मनुष्य प्रसन्न नहीं दिखायी देता था। सबका मुख आँसुओंसे भीगा था। सभी शोकमग्न हो रहे थे। बालक माताओंको, पति स्त्रियोंको और भाई भाईको भूल गये। सब सबकी परवा छोड़कर केवल श्रीरामका ही चिन्तन करने लगे। जो रामके मित्र थे वे तो और भी अपनी सुध-बुध खो बैठे। शोकके भारसे आक्रान्त होनेके कारण उन्हें नींदतक नहीं आयी। इस प्रकार सारी अयोध्यापुरी महात्मा श्रीरामके विरहमें भय और शोकसे प्रज्वलित होकर क्षुब्ध हो उठी तथा हाथी, घोड़े और सैनिकोंसहित भयंकर चीत्कार करने लगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## दशरथ और कौसल्याका शोक, सुमित्राका समझाना तथा पुरवासी ब्राह्मणोंका वनके मार्गमें रामसे लौटनेकी प्रार्थना करना

वनकी ओर जाते हुए रामके रथकी धूल जबतक दिखायी देती रही, तबतक इक्ष्वाकुवंशके स्वामी राजा दशरथने उधरसे अपनी आँखें नहीं हटायीं। वे रामको जब-तक देखते रहे, तबतक उनका शरीर मानो पृथ्वीपर बढ़ रहा था—वे ऊँचे उठ-उठकर उनकी ओर निहार रहे थे। जब धूलका दिखायी देना भी बंद हो गया, तो वे अत्यन्त विषादग्रस्त और शोकार्त होकर धरतीपर गिर पड़े। उस समय उन्हें सहारा देनेके लिये रानी कौसल्या उनकी दाहिनी बाँहके पास और कैकेयी उनके वाम भागमें जा पहुँचीं। कैकेयीको देखते ही नीति, विनय और धर्मसे सम्पन्न राजा दशरथकी समस्त इन्द्रियाँ व्यथित हो उठीं। उन्होंने कहा—'कैकेयी! तेरे विचार पापपूर्ण हैं, तू मेरे अङ्गोंमें हाथ न लगा; मैं तुझे देखना नहीं चाहता। तू न तो मेरी स्त्री है और न संगिनी ही। तूने धनमें आसक्त होकर धर्मको त्यागा है, अतएव मैं तेरा परित्याग करता हूँ। तेरा पुत्र भरत भी यदि इस विघ्न-बाधासे रहित राज्यको पाकर प्रसन्न हो तो वह मेरे लिये श्राद्धमें जो कुछ पिण्ड या जल आदि दान करे, वह मुझे प्राप्त न हो। तू अपनी कामना सफल कर और विधवा होकर राज्य भोग। मैं नरश्रेष्ठ रामके बिना जीवित नहीं रह सकता।' इस प्रकार विलाप करते हुए राजा दशरथ मनुष्योंकी भारी भीड़से घिरकर महलकी ओर चले। उन्होंने देखा—नगरके प्रत्येक घरका बाहरी चबूतरा और भीतरी भाग भी सूना हो रहा है [क्योंकि उन घरोंके सब लोग श्रीरामके पीछे चले गये थे,] बाजार-हाट बंद हैं, जो लोग नगरमें हैं वे भी अत्यन्त क्लान्त, दुर्बल और दुखी हो रहे हैं और बड़ी-बड़ी सड़कोंपर भी अधिक आदमी आते-जाते दिखायी नहीं देते। नगरकी यह अवस्था देखकर रामके लिये ही चिन्ता और विलाप करते हुए महाराजने महलमें प्रवेश किया। उस समय उनका गला भर आया, उन्होंने द्वारपालोंसे कहा—'मुझे राम-माता कौसल्याके घरमें पहुँचा दो, मेरे शोक-सन्तप्त हृदयको और कहीं शान्ति नहीं मिल सकती।' उनके ऐसा कहनेपर द्वारपालोंने बड़ी विनयके साथ उन्हें रानी कौसल्याके भवनमें पहुँचाया और पलँगपर सुला दिया। दोनों पुत्र और पुत्रवधू सीतासे रहित वह भवन राजाको चन्द्रहीन आकाशकी तरह श्रीहीन दिखायी देने लगा। वह रात उन्हें अपनी कालरात्रिके समान जान पड़ती थी। आधी रातके समय राजाने कौसल्यासे कहा—'देवि! मेरी दृष्टि रामके ही साथ चली गयी, वह अबतक लौटी नहीं है; अतः मैं तुम्हें देख नहीं पाता हूँ; एक बार अपने हाथसे मेरे शरीरका स्पर्श तो करो।'

पलँगपर पड़े हुए राजा दशरथको शोकसे व्याकुल देख रानी कौसल्या उनके पास बैठ गयीं और पुत्र-शोकसे पीड़ित होकर कहने लगीं—'महाराज! जिन्होंने जीवनमें कभी भी दुःख नहीं देखे थे, उन राम, लक्ष्मण और सीताको आपने कैकेयीकी बातोंमें आकर वनमें भेज दिया। अब उन बेचारोंकी वनवासके कष्ट भोगनेके सिवा और क्या अवस्था होगी? क्या अब फिर मेरे शोकको नष्ट करनेवाली वह शुभ घड़ी आयेगी, जब मैं सीता और लक्ष्मणके साथ वनसे लौटे हुए रामको देखूँगी? नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मणको पुनः वनसे आये देखकर यह अयोध्यापुरी पूर्णिमाके उमड़ते हुए समुद्रकी भाँति कब हर्षोल्लाससे पूर्ण होगी? अब प्यारे पुत्र राम और महाबली लक्ष्मणको देखे बिना जीवित रहनेकी मुझमें शक्ति नहीं है।'

कौसल्याको इस प्रकार विलाप करते देख धर्मपरायणा सुमित्राने ये धर्मानुकूल वचन कहे—'बहिन! तुम्हारे पुत्र राम उत्तम गुणोंसे युक्त और पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं; उनके लिये इस प्रकार विलाप करना और दीनतापूर्वक रोना व्यर्थ है। आर्ये! जो राज्य छोड़कर अपने महात्मा पिताको सत्यवादी बनानेके लिये वनमें चले गये हैं, वे तुम्हारे पुत्र महाबली राम उस उत्तम धर्ममें स्थित हैं, जिसका सत्पुरुषोंने सर्वदा और सम्यक् प्रकारसे पालन किया है तथा जो परलोकमें भी श्रेष्ठ फल प्रदान करनेवाला है। ऐसे धर्मात्मा रामके लिये कभी भी शोक नहीं करना चाहिये। विदेहनन्दिनी सीताने भी वनवासके दुःखोंको भलीभाँति सोच-समझकर ही तुम्हारे धर्मात्मा पुत्रका अनुसरण किया है। [अतः उसके लिये भी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है।] श्रीरामचन्द्रजी महान् तेजस्वी हैं; उन्होंने युद्धमें तिमिध्वज-पुत्र दानवराज सुबाहुका वध किया था, यह देखकर उस समय ब्रह्माजीने उन्हें अनेकों दिव्य अस्त्र दिये थे। नरश्रेष्ठ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम बड़े शूरवीर हैं। वे अपने बाहुबलके ही भरोसे जंगलमें भी महलकी ही भाँति निडर होकर रहेंगे। देवि! राम सूर्यके भी सूर्य और अग्निके भी अग्नि हैं। वे प्रभुके प्रभु, लक्ष्मीकी लक्ष्मी, कीर्तिकी कीर्ति, क्षमाकी क्षमा और देवताओंके भी देवता हैं। राम ही सम्पूर्ण भूतोंको सत्ता प्रदान करनेवाले परमेश्वर हैं। वे वनमें रहें या नगरमें, उनका क्या अमङ्गल हो सकता है? किसीसे भी परास्त न होनेवाले, वल्कल-वस्त्रधारी वीरवर रामके पीछे सीताके रूपमें साक्षात् लक्ष्मी गयी हुई हैं; अतः उन्हें कौन-सी वस्तु दुर्लभ हो सकती है? जिनके आगे धनुष, बाण और तलवार धारण किये धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ लक्ष्मण जा रहे हैं, उनको किस बातकी कमी हो सकती है? वनवासकी अवधि समाप्त होनेपर राम यहाँ फिर आयेंगे और तुम उन्हें देखोगी—यह बात मैं तुमसे सत्य-सत्य कहती हूँ; इसलिये तुम शोक और मोह छोड़ दो। रामका अमङ्गल होनेकी कोई सम्भावना ही नहीं है। तुम शीघ्र ही सीता और लक्ष्मणके साथ लौटे हुए अपने पुत्रको देखोगी। देवि! तुम्हें तो इन सबको धैर्य बँधाना चाहिये; फिर स्वयं ही इस समय अपने हृदयको इतना व्याकुल क्यों कर रही हो? तुम रामचन्द्र-जैसे पुत्रकी माता हो, तुम्हें इतना शोक नहीं करना चाहिये। रामसे बढ़कर सन्मार्गमें स्थित रहनेवाला मनुष्य संसारमें दूसरा कोई नहीं है। वे शीघ्र ही अयोध्यामें आकर तुम्हारे चरणोंमें प्रणाम करेंगे।' सुमित्राजी बातचीत करनेमें कुशल थीं, उनके इन वचनोंको सुनकर कौसल्याका शोक तुरंत शान्त हो गया।

उधर सत्यपराक्रमी महात्मा रामके प्रति अनुराग रखनेवाले अयोध्यावासी वनमें रहनेकी इच्छासे उनके साथ-साथ जा रहे थे। उन्होंने रामसे अयोध्या लौट चलनेके लिये बहुत प्रार्थना की; किन्तु वे पिताके सत्यकी रक्षाके लिये वनकी ही ओर बढ़ते गये। वे प्रजाजनोंको इस प्रकार स्नेहभरी दृष्टिसे देख रहे थे मानो नेत्रोंसे उन्हें पी रहे हों। उस समय रामने उन सब लोगोंसे प्रेमपूर्वक कहा—'अयोध्यानिवासियोंका मेरे प्रति जो प्रेम और आदर है, वह मेरी ही प्रसन्नताके लिये भरतके प्रति और अधिक रूपमें होना चाहिये।* भरतका चरित्र बड़ा ही सुन्दर और सबका कल्याण करनेवाला है। वे आपलोगोंका यथावत् प्रिय और हित करेंगे। अवस्थामें छोटे होनेपर भी वे ज्ञानमें बड़े हैं। पराक्रमोचित गुणोंसे युक्त होनेपर भी उनका हृदय कोमल है। वे आपलोगोंके लिये योग्य राजा होंगे और प्रजाके भयका निवारण करेंगे। उन्हें राजाके गुणोंसे युक्त देखकर ही युवराज बनाया गया है। राजोचित गुणोंकी शिक्षा उन्हें मैंने भी दी है, अतः आपलोगोंको अपने स्वामी भरतकी आज्ञाका सदा पालन करना चाहिये। मेरे वन चले आनेसे महाराज दशरथको किसी प्रकारका शोक और चिन्ता न होने पाये—इस बातके लिये आपलोग सदा चेष्टा रखें, मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे मेरी इस प्रार्थनापर अवश्य ध्यान दें।'

दशरथनन्दन श्रीरामने धर्मका आश्रय लेनेके लिये ज्यों-ज्यों दृढ़ता दिखलायी, त्यों-ही-त्यों प्रजाजनोंके मनमें उन्हींको अपना राजा बनानेकी इच्छा प्रबल होती गयी। समस्त पुरवासी अत्यन्त दीन होकर आँसू बहा रहे थे और राम तथा लक्ष्मण अपने गुणोंमें बाँधकर मानो उन्हें खींचे लिये जा रहे थे। उनमें बहुत-से ब्राह्मण थे, जो ज्ञान, अवस्था और तपोबल—तीनों ही दृष्टियोंसे वृद्ध थे। वृद्धावस्थाके कारण कितनोंके ही सिर काँप रहे थे। वे दूरसे ही बोले—'अरे ओ तेज चलनेवाले घोड़ो! तुम जातिसे ही तुरङ्गम (शीघ्रगामी) हो। यद्यपि कान सभी प्राणियोंके होते हैं तथापि तुम्हारे कान विशेषतः बड़े हैं; तुम हमारी याचना सुनकर लौट पड़ो। तुम्हारे स्वामी राम विशुद्धात्मा, वीर और उत्तम व्रतका दृढ़तासे पालन करनेवाले हैं; अतः इनकी सवारीमें रहना यद्यपि तुम्हारा कर्तव्य है, तो भी इन्हें नगरसे वनमें नहीं ले जाना चाहिये।' वृद्ध ब्राह्मणोंको इस प्रकार आर्तभावसे प्रलाप करते देख श्रीरामचन्द्रजी सहसा रथसे नीचे उतर पड़े और लक्ष्मण तथा सीतासहित धीरे-धीरे पैदल ही वनकी ओर चलने लगे। भगवान् श्रीरामके चरित्रमें वात्सल्य गुणकी प्रधानता थी, उनकी दृष्टिमें दया भरी हुई थी; इसलिये वे उन पैदल चलनेवाले ब्राह्मणोंको पीछे छोड़कर रथके द्वारा आगे न जा सके।

उन्हें अब भी वनकी ओर ही जाते देख ब्राह्मण मन-ही-मन घबरा उठे और अत्यन्त सन्तप्त होकर बोले—'वत्स! तुम ब्राह्मण-जातिके हितैषी हो, इसीसे यह सारा ब्राह्मणसमाज तुम्हारे पीछे-पीछे चल रहा है। इन ब्राह्मणोंके कंधोंपर चढ़कर अग्निदेव भी तुम्हारा अनुसरण कर रहे हैं। हमारी जो बुद्धि सदा वेद-मन्त्रोंके पीछे चलती थी—उन्हींके चिन्तनमें लगी रहती थी, वही तुम्हारे लिये वनवासका निश्चय कर चुकी

* या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम्।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम्॥(४५। ६)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है। वेद जो हमारे परम धन हैं, हमारे हृदयोंमें स्थित हैं। हमारी स्त्रियाँ अपने चरित्रबलसे सुरक्षित होकर घरोंमें ही रहेंगी। अब हमें अपने कर्तव्यके विषयमें पुनः कुछ निश्चय नहीं करना है। हमने तुम्हारे साथ जानेका विचार स्थिर कर लिया है। तो भी हमें इतना अवश्य कहना है कि जब तुम्हीं धर्मकी ओरसे निरपेक्ष हो जाओगे, तो दूसरे किसकी धर्ममार्गपर स्थिति रह सकेगी? यहाँ आये हुए ब्राह्मणोंमें बहुत-से ऐसे हैं, जिन्होंने यज्ञ आरम्भ कर दिया है। अब इनके यज्ञोंकी समाप्ति तुम्हारे लौटनेपर ही निर्भर है। संसारके स्थावर और जङ्गम सभी प्राणी तुम्हारे प्रति भक्ति रखते हैं, वे सब तुमसे लौट चलनेकी प्रार्थना कर रहे हैं। इन भक्तोंपर तुम अपना स्नेह दिखाओ। ये वृक्ष अपनी जड़ोंके कारण गतिहीन हैं, इसीसे तुम्हारे पीछे नहीं चल सकते; परन्तु वायुके वेगसे जो इनमें सनसनाहट पैदा होती है, उसके द्वारा मानो ये तुम्हें पुकार रहे हैं—तुमसे लौट चलनेकी प्रार्थना कर रहे हैं। पक्षी भी सब प्रकारकी चेष्टा छोड़ चुके हैं, वे चारा चुगनेके लिये भी कहीं उड़कर नहीं जाते। वे निश्चितरूपसे वृक्षके एक स्थानपर ही पड़े रहते हैं। आप सब प्राणियोंपर दया करनेवाले हैं, अतः ये पक्षी भी आपसे लौटनेके लिये याचना कर रहे हैं।' इस प्रकार रामसे लौटनेके लिये प्रार्थना करते हुए वे ब्राह्मण उनके साथ-साथ जा रहे थे। इतनेहीमें उन्हें तमसा नदी दिखायी पड़ी, जो श्रीरामचन्द्रजीको मानो आगे बढ़नेसे मना कर रही थी। वहाँ पहुँचनेपर सुमन्त्रने भी रथसे उतरकर थके हुए घोड़ोंको खोल दिया। फिर उनके लोट-पोट कर लेनेपर उन्होंने उन्हें पानी पिलाया, नहलाया और नदीके आस-पास ही चरनेको छोड़ दिया।

## श्रीरामका पुरवासियोंको तमसाके तटपर सोते छोड़कर जाना, उनका निराश होकर लौटना और उनकी स्त्रियोंका शोक करना

तमसाके रमणीय तटपर पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! हमलोग वनकी ओर प्रस्थित हुए हैं और हमारे वनवासकी यह पहली रात है। इस समय मुझे पिता और यशस्विनी माताके लिये बड़ा शोक हो रहा है। कहीं ऐसा न हो कि वे निरन्तर रोते रहनेके कारण अंधे हो जायँ। किन्तु भरत बड़े धर्मात्मा हैं; मुझे विश्वास है कि वे धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके अनुकूल वचनोंसे पिताजीको और मेरी माताको भी सान्त्वना देंगे। भरतके कोमल स्वभावका बारंबार स्मरण करके मुझे पिता-माताके लिये अधिक चिन्ता नहीं होती। नरश्रेष्ठ! तुमने मेरे साथ आकर बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है; क्योंकि तुम न आते तो मुझे विदेहकुमारी सीताकी रक्षाके लिये कोई सहायक ढूँढ़ना पड़ता। लक्ष्मण! यद्यपि यहाँ नाना प्रकारके जंगली फल-मूल मिल सकते हैं, तथापि आजकी रात मैं केवल जल पीकर ही बिताऊँगा; यही मुझे अच्छा जान पड़ता है।' लक्ष्मणसे ऐसा कहकर वे सुमन्त्रसे बोले—'सौम्य! अब आप घोड़ों-पर ध्यान दें।'

सुमन्त्रने सूर्यास्तके समय घोड़ोंको लाकर बाँध दिया और उनके आगे बहुत-सा चारा डालकर वे श्रीरामके पास आ गये। फिर कल्याणमयी सन्ध्योपासना आदिसे निवृत्त हो रात्रि होती देखकर लक्ष्मणसहित सुमन्त्रने श्रीरामचन्द्रजीके सोनेयोग्य स्थान और आसन ठीक किया। तमसाके तटपर वृक्षके पत्तोंसे बनी हुई शय्या देखकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताके साथ उसपर बैठे। थोड़ी देरमें सीतासहित श्रीराम थककर सो गये। तब लक्ष्मण सुमन्त्रसे उनके नाना प्रकारके गुणोंका वर्णन करने लगे। सुमन्त्र और लक्ष्मण तमसाके किनारे रामके गुणोंकी चर्चा करते हुए रातभर जागते रहे। महातेजस्वी श्रीराम कुछ रात रहते ही उठ खड़े हुए और उन्होंने सोते हुए नगरवासियोंकी ओर देखकर लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! इन पुरवासियोंकी ओर देखो, ये इस समय वृक्षकी जड़ोंसे सटकर सो रहे हैं। इन्हें केवल हमारी चाह है। ये अपने घरोंकी ओरसे भी पूर्ण निरपेक्ष हो गये हैं। हमें लौटा ले चलनेके लिये ये जैसा उद्योग कर रहे हैं, इससे जान पड़ता है कि ये प्राण त्याग देंगे किन्तु अपना निश्चय नहीं छोड़ेंगे। अतः जबतक ये सो रहे हैं, तभीतक हमलोग रथपर सवार होकर शीघ्रतापूर्वक यहाँसे चल दें। फिर हमें इस मार्गपर किसीके आनेकी आशंका नहीं रहेगी। अयोध्यावासी हमलोगोंके अनुरागी हैं। जब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हम यहाँसे निकल चलेंगे, तो इन्हें फिर इस प्रकार वृक्षोंकी जड़ोंसे सटकर नहीं सोना पड़ेगा। राजकुमारोंका यह कर्तव्य है कि वे पुरवासियोंको अपने द्वारा होनेवाले दुःखसे मुक्त करें, न कि अपना दुःख देकर उन्हें और भी दुखी बना दें।'

यह सुनकर लक्ष्मणने साक्षात् धर्मके समान विराजमान भगवान् श्रीरामसे कहा—'आर्य! आपकी सलाह मुझे भी पसंद है। शीघ्र ही रथपर सवार होइये।' तब रामने सुमन्त्रसे कहा—'आप! शीघ्र ही रथ जोतकर तैयार कीजिये, मैं अभी वनको चलूँगा। जाइये, जल्दी कीजिये।' आज्ञा पाकर सुमन्त्रने उन उत्तम घोड़ोंको तुरंत ही रथमें जोत दिया और रामके पास जा हाथ जोड़कर निवेदन किया—'महाबाहो! आपका कल्याण हो, रथ तैयार है; आप सीता और लक्ष्मणके साथ शीघ्र सवार होइये।' श्रीरामचन्द्रजी सबके साथ रथपर बैठकर तमसा नदीके उस पार गये और [ फिर रथसे उतरकर ] सारथिसे बोले—'आप पहले उत्तर दिशाकी ओर रथ ले जाइये और फिर थोड़ी ही देरमें उसे तेजीसे दक्षिणकी ओर लौटा लाइयेगा। सावधानीके साथ ऐसा यत्न कीजिये, जिससे पुरवासियोंको मेरे मार्गका पता न चले।' श्रीरामकी बात सुनकर सारथिने वैसा ही किया और लौटकर पुनः रामकी सेवामें रथ उपस्थित कर दिया। तत्पश्चात् सीतासहित श्रीराम और लक्ष्मण रथपर चढ़े तथा सारथिने घोड़ोंको तपोवनके मार्गपर बढ़ा दिया।

इधर रात बीतनेपर जब सवेरा हुआ तो अयोध्यावासी पुरुष श्रीरामचन्द्रजीको न देखकर बहुत दुखी हुए और शोकसे आँसू बहाते इधर-उधर उनकी खोज करने लगे। उन्हें श्रीरामके मार्गका ज्ञान करानेवाला कोई साधन नहीं दिखायी दिया; फिर तो वे शोकसे व्याकुल हो उठे। उनका मुँह सूख गया और श्रीरामके विरहमें अत्यन्त दीन होकर वे करुणाभरे वचन कहने लगे—'हाय! हमारी उस निद्राको धिक्कार है, जिससे अचेत हो जानेके कारण हम इस समय महाबाहु श्रीरामके दर्शनसे वञ्चित हो रहे हैं। जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका पालन करता है, उसी प्रकार जो सदा हमारी रक्षा करते थे, वे ही रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम आज हमें छोड़कर वनमें कैसे चले गये? अब हमलोग यहीं अपने प्राण दे दें या मरनेका निश्चय करके उत्तर दिशाकी ओर चल दें अथवा यहाँ बहुत-से सूखे लकड़ पड़े हुए हैं, उनसे चिता जलाकर उसीमें प्रवेश कर जायँ? क्या अब नगरमें चलकर हम यही कहेंगे कि प्रिय वचन बोलनेवाले श्रीरामको हम वनमें पहुँचा आये हैं? हाय! यह बात हमसे किस तरह कही जायगी? हमलोग वीरवर महात्मा श्रीरामके साथ सर्वदा निवास करनेके लिये निकले थे, अब उनसे बिछुड़कर हम अयोध्यापुरीको कैसे देख सकेंगे?' इस तरह अनेकों प्रकारकी बातें कहते हुए समस्त पुरवासी अपनी भुजाएँ उठा-उठाकर विलाप करने लगे। वे बछड़ोंसे बिछुड़ी हुई गौओंकी तरह दुःखसे व्याकुल हो रहे थे। फिर रास्तेपर रथकी लीक देखते हुए सब-के-सब कुछ दूरतक गये; किन्तु आगे मार्गका चिह्न न मिलनेके कारण वे महान् शोकमें डूब गये और कहने लगे—'यह क्या हुआ? अब हम क्या करें दैव भी हमारा घातक हो रहा है।'

अन्तमें थककर—हताश हो वे रथकी लीक देखते हुए जिस मार्गसे गये थे, उसीसे लौट पड़े और धीरे-धीरे अयोध्यापुरीमें आ पहुँचे। उस समय वह पुरी चन्द्रहीन आकाश और जलहीन समुद्रकी भाँति आनन्दशून्य दिखायी दे रही थी। वे सभी पुरवासी दुःखके मारे हुए थे, उनकी प्रसन्नता नष्ट हो चुकी थी। उन्होंने बड़े क्लेशके साथ अपने धन-धान्य-सम्पन्न गृहोंमें प्रवेश किया। वे सबको देखते हुए भी अपने-परायेकी पहचान न कर सके। ऐसा जान पड़ता था, मानो उनके प्राण निकल गये हों। उनका चित्त ठिकाने नहीं था। अपने-अपने घरोंमें जाकर वे पत्नी और पुत्रोंके साथ मिलकर आँसू बहाने लगे। उस दिन अयोध्यामें गृहस्थोंके घर चूल्हे नहीं जले। प्रत्येक घरकी स्त्रियाँ अपने पतियोंको लौटकर आया देख रो पड़ीं और दुःखसे आतुर होकर कोसती हुई बोलीं—'जो लोग श्रीरामको नहीं देखते, उन्हें घर-द्वार, स्त्री पुत्र, धन-दौलत अथवा सुख-भोगोंसे क्या लेना है? इस संसारमें एकमात्र लक्ष्मण ही सत्पुरुष हैं, जो सीताके साथ श्रीरामकी सेवा करनेके लिये वनमें जा रहे हैं। उन नदियों, कमलोंसे शोभायमान बावलियों तथा सरोवरोंने अवश्य बड़ा पुण्य किया है, जिनके पवित्र जलमें स्नान करके श्रीरामचन्द्रजी आगे बढ़ेंगे। दशरथनन्दन श्रीराम शूरवीर हैं; वे जहाँ रहेंगे, वहाँ कोई भय नहीं रह सकता और न किसीके द्वारा पराभव ही हो सकता है। अतः जबतक वे हमलोगोंसे बहुत दूर नहीं निकल जाते, हमें उनके पास पहुँचकर पीछे लग जाना चाहिये। उनके-जैसे महात्माके चरणोंकी छायामें रहनेमें ही सुख है। वे ही हमारे स्वामी, गति और परम आश्रय हैं। हम सीताकी सेवा करेंगी और तुम सब श्रीरामचन्द्रजीकी शुश्रूषामें लगे रहना। यदि इस राज्यपर कैकेयीका अधिकार हुआ तो यह अनाथ-सा


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हो जायगा। इसमें धर्मकी मर्यादा नहीं रहने पायेगी। ऐसे राज्यमें तो हमें जीवित रहनेकी ही आवश्यकता नहीं जान पड़ती, फिर पुत्र और धनसे क्या प्रयोजन हो सकता है? हम अपने पुत्रोंकी शपथ खाकर कहती हैं—जबतक कैकेयी जीवित रहेगी, तबतक हम जीते-जी कभी उसके राज्यमें रह नहीं सकतीं। जिस क्रूर स्वभाववालीने महाराजके पुत्रको राज्यसे बाहर निकलवा दिया, उस पापपरायणा दुष्टके अधिकारमें रहकर कौन सुखसे जीवन व्यतीत कर सकता है? कैकेयीके कारण यह सारा राज्य अनाथ होकर उपद्रवका केन्द्र बन गया। अब इसमें यज्ञ-यागादि शुभ कर्म नहीं हो सकते और एक दिन सबका विनाश हो जायगा। श्रीरामचन्द्रके वनवासी हो जानेपर राजा दशरथ जीवित नहीं रह सकेंगे और उनके मरनेपर इस राज्यका नाश अवश्यम्भावी है; इसलिये अब तुमलोग यह समझ लो कि हमारे पुण्य समाप्त हो गये, यहाँ रहकर हमें दुःख-ही-दुःख भोगना है। ऐसी दशामें या तो जहर घोलकर पी जाओ या श्रीरामके पीछे चलो। अथवा किसी ऐसे देशमें चलो, जहाँ कैकेयीका नाम भी न सुनायी पड़े। हाय! उस पापिनीने व्यर्थ ही—बिना किसी कारणके स्त्री और भाईसहित रामको देशनिकाला दे दिया। लक्ष्मणके ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर है। उनके शरीरका रंग श्याम, हँसली मांससे ढकी हुई, भुजाएँ घुटनोंतक लंबी और नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। वे सामने आनेपर पहले ही बातचीत छेड़ते हैं, मीठे और सत्य वचन बोलते हैं। वे शत्रुओंका दमन करनेवाले और महान् बलवान् हैं। उनका पराक्रम मतवाले गजराजके समान और स्वभाव कोमल है। उनका दर्शन सबको चन्द्रमाके समान प्रिय जान पड़ता है। वे महारथी नरश्रेष्ठ वनमें चारों ओर विचरते हुए उसकी शोभा बढ़ायेंगे।'

इस प्रकार विलाप करके पुरवासिनी स्त्रियाँ दुःखसे सन्तप्त होकर जोर-जोरसे रोने लगीं। इसी समय सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और रात हो गयी। उस समय किसीके घरमें आग नहीं जली, स्वाध्याय और कथा-वार्ता भी नहीं हुई। सारी अयोध्यापुरी अन्धकारसे पुती हुई-सी जान पड़ती थी। पुरवासिनी स्त्रियाँ श्रीरामके लिये आतुर होकर रो रही थीं। वे उन्हें अपने पुत्रोंसे भी बढ़कर प्रिय थे। अयोध्यामें गाने-बजाने और नाचनेके उत्सव बंद हो गये। सबका उत्साह जाता रहा। बाजार और दूकानें नहीं खुलीं। इन सब कारणोंसे वह नगरी जलहीन समुद्रके समान सुनसान जान पड़ती थी।

## श्रीरामका शृङ्गवेरपुरमें रात बिताना, सुमन्त्रको सन्देश देकर लौटाना और गङ्गा पार होकर पैदल ही वनकी यात्रा करना

उधर नरश्रेष्ठ श्रीराम भी पिताकी आज्ञाको स्मरण करके शेष रात्रिमें ही बहुत दूर निकल गये। चलते-चलते वह रात्रि भी बीत चली। सवेरा होनेपर उन्होंने सन्ध्योपासना की और भिन्न-भिन्न देशों ( राज्यों ) को लाँघते हुए चल दिये। गाँवोंके आसपास उनकी सीमातकके खेत जुते हुए थे। उनको तथा फूलोंसे सुशोभित वनोंको देखते हुए वे बड़ी शीघ्रताके साथ जा रहे थे, फिर भी [ सुन्दर दृश्योंके देखनेमें तन्मय रहनेके कारण ] उन्हें घोड़ोंकी चाल धीमी ही जान पड़ती थी। रास्तेमें वेदश्रुति नामकी एक नदी मिली, जिसमें स्वच्छ एवं शीतल जल प्रवाहित हो रहा था। उसे पार करके वे अगस्त्यसेवित दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ गये। बहुत देरतक चलनेके बाद वे समुद्रगामिनी गोमतीके तटपर पहुँचे और उसे भी पार करके आगे जानेपर उन्होंने स्यन्दिका नामकी नदी पार की। स्यन्दिकाके किनारेकी धन-धान्यपूर्ण भूमि [ जो कोसल देशकी दक्षिणी सीमा थी ] पूर्वकालमें महाराज मनुने इक्ष्वाकुके अधिकारमें दी थी। वहाँ कई देशोंकी सीमा मिलती थी। श्रीरामचन्द्रजीने सीताको परिचय देते हुए उस भूमिका दर्शन कराया।

इस प्रकार अत्यन्त विशाल और रमणीय कोसल देशकी सीमाको पार करके श्रीरामचन्द्रजीने अयोध्याकी ओर अपना मुख किया और लक्ष्मणके सहित हाथ जोड़कर बोले—'इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंसे पालित अयोध्यापुरी! तुम पुरियोंमें श्रेष्ठ हो। मैं तुमसे तथा जो-जो देवता तुम्हारी रक्षा करते और तुम्हारे भीतर निवास करते हैं, उन सबसे भी वन जानेकी आज्ञा चाहता हूँ। वनवाससे लौटकर मैं फिर तुम्हारा दर्शन करूँगा।' इसके बाद श्रीरामने दोनों नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए अपनी दाहिनी भुजा उठाकर उस प्रान्तके रहनेवाले लोगोंसे कहा—'आपने मुझपर यथावत् अनुग्रह किया और बड़ी दया दिखायी। अधिक देरतक दुःखमें पड़े रहना अच्छा नहीं है, इसलिये अब आपलोग अपना-अपना कार्य करनेके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये जाइये।' उन मनुष्योंने महात्मा श्रीरामको प्रणाम किया, उनकी प्रदक्षिणा की और वे जहाँ-तहाँ खड़े होकर जोर-जोरसे विलाप करने लगे। उनकी आँखें अभी श्रीरामके दर्शनसे तृप्त नहीं हुई थीं; किन्तु श्रीरामचन्द्रजी आगे बढ़कर उनकी दृष्टिसे ओझल हो गये। फिर अनेकों सामन्त नरेशोंके राज्योंमें होते हुए वे यात्रा करने लगे। मार्गमें उन्हें देवनदी गङ्गाजीका दर्शन हुआ। जो स्वर्ग, मृत्यु और पाताल—तीनों लोकोंके पथपर प्रवाहित होती हैं, जिनका जल अत्यन्त शीतल है, तटके पास ही बने हुए अनेकों ऋषियोंके सुन्दर आश्रम जिनकी शोभा बढ़ाते रहते हैं, भगवान् विष्णुके चरणोंसे जिनका आविर्भाव हुआ है, जिनमें पापका लेश भी नहीं है, जो दूसरोंके पापोंका नाश करनेवाली हैं तथा सगरकुलमें उत्पन्न राजा भगीरथकी तपस्याद्वारा जिनका शङ्करजीके जटा-जूटसे भूमिपर अवतरण हुआ था, उन भगवती भागीरथी-के तटपर जाकर महाबाहु श्रीराम शृङ्गवेरपुरमें पहुँच गये। वहाँ श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रसे कहा—'सारथे! गङ्गाजीके समीप यह जो सघन पत्तों और फूलोंसे सुशोभित महान् इङ्गुदीका वृक्ष दिखायी देता है, इसीके नीचे आज रातमें हम निवास करेंगे।' लक्ष्मण और सुमन्त्रने भी उनके कथन-का समर्थन किया और घोड़ोंको हाँककर उस वृक्षके पास ले गये। तदनन्तर सीता और लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजी रथसे उतर गये; फिर सुमन्त्रने भी उतरकर घोड़ोंको खोल दिया और वृक्षके नीचे बैठे हुए श्रीरामके पास जाकर वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

शृङ्गवेरपुरमें गुह नामका राजा राज्य करता था। वह श्रीरामचन्द्रजीका प्राणोंके समान प्रिय मित्र था। उसका जन्म निषादकुलमें हुआ था। वह अत्यन्त बलवान् और निषादोंका राजा था। उसने जब सुना कि नरश्रेष्ठ राम मेरे राज्यमें पधारे हैं तो वह बूढ़े मन्त्रियों और बन्धु-बान्धवोंको साथ लेकर उनके पास आया। निषादराजको दूरसे आते देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ आगे बढ़कर उससे मिले। उन्हें इस रूपमें देखकर गुहको बड़ा दुःख हुआ और उसने उनको छातीसे लगाकर कहा—'राम! आपके लिये जैसे अयोध्याका राज्य है, उसी प्रकार इस राज्यको भी आप अपना ही समझें और आज्ञा दें, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप-जैसा प्यारा अतिथि किसको सुलभ होगा?' फिर वह भाँति-भाँतिका उत्तम अन्न तैयार कराकर ले आया और बड़ी फुर्तीके साथ अर्घ्य-पाद्य आदि सेवामें निवेदन करके बोला—'महाबाहो!

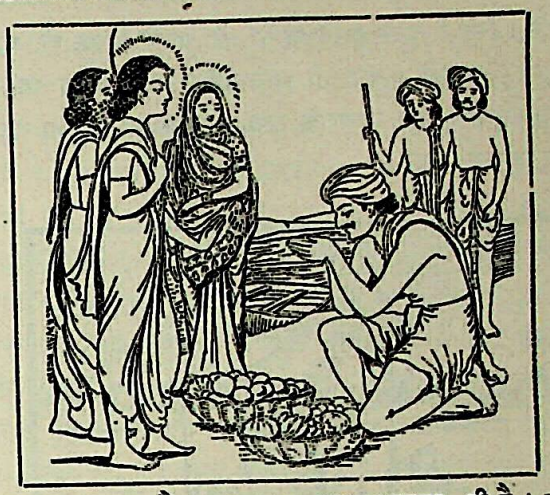

आपका स्वागत है। यह सारा राज्य आपका ही है। हम आपके सेवक हैं और आप हमारे स्वामी। आजसे आप ही हमारे राज्यका शासन कीजिये। भक्ष्य, भोज्य, पेय और लेह्य—ये चार प्रकारके खाद्य पदार्थ, उत्तम शय्या तथा घोड़ोंके खानेके लिये चने और घास आदि सब सामग्री आपकी सेवामें उपस्थित है; इसे स्वीकार करें।'

गुहके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी बोले—'सखे! तुम्हारे यहाँतक पैदल आने और स्नेह दिखानेसे ही हमारी भलीभाँति पूजा हो गयी। तुमसे मिलकर हमलोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई है।' फिर रामने अपनी दोनों भुजाओंसे उसका आलिङ्गन करके कहा—'गुह! सौभाग्यकी बात है कि आज तुम्हें बन्धु-बान्धवों-के साथ स्वस्थ एवं सानन्द देख रहा हूँ। कहो, तुम्हारे राज्यमें, मित्रोंके घर तथा वनोंमें सर्वत्र कुशल तो है? तुमने प्रेमवश यह जो कुछ सामग्री प्रस्तुत की है, मैं सब स्वीकार करता हूँ। किन्तु इस समय दूसरोंकी दी हुई कोई भी वस्तु मैं ग्रहण नहीं करता—अपने उपयोगमें नहीं लाता। वल्कल और मृगचर्म पहनना, फल-मूलका भोजन करना तथा तपस्वीकी भाँति धर्ममें स्थित होकर वनमें निवास करना—यही आजकल मेरा नियम है। इसलिये तुम घोड़ोंके खानेके लिये जो कुछ लाये हो, उसीकी आवश्यकता है; और कोई वस्तु हमें नहीं चाहिये। घोड़ोंको खिला-पिला देने मात्रसे ही तुम्हारे द्वारा मेरा भी पूर्ण सत्कार हो जायगा।' यह सुनकर गुहने सेवकोंको आज्ञा दी 'तुमलोग घोड़ोंके खिलाने-पिलानेका तुरंत प्रबन्ध करो।' तदनन्तर, चीर-वस्त्रधारी श्रीरामने सायंकालकी सन्ध्योपासना की और भोजनके नामपर लक्ष्मण-का लाया हुआ केवल जल ही पीया। फिर वे पत्नीके साथ भूमिपर ही सो गये। उस समय लक्ष्मणने उनके दोनों चरण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोये। फिर वे दूसरे वृक्षके पास, जो वहाँसे निकट ही था, जाकर बैठ गये। गुह भी सावधानीके साथ धनुष धारण करके सुमन्त्र और लक्ष्मणके साथ बातचीत करता हुआ रात-भर जागता रहा।

लक्ष्मणको अपने भाईके लिये स्वाभाविक अनुरागके साथ जागते देख निषादराज गुहको बड़ा सन्ताप हुआ। उसने उनसे कहा—'तात! तुम्हारे लिये यह आराम देनेवाली शय्या तैयार है। इसपर सुखपूर्वक सोकर विश्राम कर लो। मैं तुमसे सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, इस भूमण्डलपर मुझे रामसे बढ़कर प्रिय दूसरा कोई नहीं है। अतः मैं अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ हाथमें धनुष लेकर सीता-सहित सोये हुए प्रिय सखा श्रीरामकी सब प्रकार रक्षा करूँगा। इस वनमें सदा विचरते रहनेके कारण मुझसे यहाँकी कोई बात छिपी नहीं है।' यह सुनकर लक्ष्मणने कहा—'निषाद-राज! तुम धर्मपर ही दृष्टि रखते हुए हमारी रक्षा करते हो, इसलिये इस स्थानपर हमें कोई भय नहीं है; फिर भी जब महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र सीताके साथ भूमिपर शयन कर रहे हैं, तो मेरे लिये उत्तम शय्यापर सोना, जीवन-धारणके लिये स्वादिष्ट अन्न भक्षण करना अथवा दूसरे-दूसरे सुखोंको भोगना कैसे सम्भव हो सकता है? देखो, सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी युद्धमें जिनके वेगको नहीं सह सकते, वे ही श्रीराम इस समय सीताके साथ तिनकोंके ऊपर सुखसे सो रहे हैं। इनके वनमें आ जानेसे राजा दशरथ अब अधिक कालतक जीवन धारण नहीं कर सकते। जान पड़ता है, पृथ्वी शीघ्र ही विधवा होनेवाली है। क्या पिता दशरथजी हमारे आनेतक जीवित रहेंगे? क्या वनवास-से लौटकर उन उत्तम व्रतधारी महात्माका हम फिर दर्शन कर सकेंगे?' इस प्रकार दुःखसे आर्त होकर लक्ष्मण विलाप करने लगे; वह सारी रात उन्हें जागते ही बीती। प्रजाके हितमें संलग्न रहनेवाले लक्ष्मणने भाईके स्नेहवश जो यथार्थ बातें कहीं, उन्हें सुनकर निषादराज गुहको भी बड़ा दुःख हुआ और वह शोकसे आँसू बहाने लगा।

सबेरा होनेपर श्रीरामने उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मणसे कहा—'भगवती रात्रिका अवसान हो गया, अब सूर्योदय होनेवाला है; अतः हमें गङ्गाजीके पार उतरना चाहिये।' श्रीरामचन्द्रजीके कथनका अभिप्राय समझकर लक्ष्मणने गुह और सुमन्त्रको बुलाकर पार उतरनेकी व्यवस्था करनेके लिये कहा और स्वयं भाईके सामने आकर खड़े हो गये। निषादराज गुहने श्रीरामका वचन सुना और उसका तात्पर्य समझकर मन्त्रियोंको शीघ्र नाव ले आनेकी आज्ञा दी। जब नाव आ गयी, तो उसने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! यह नौका उपस्थित है; बताइये इस समय आपकी और क्या सेवा करूँ।' श्रीरामने कहा—'सखे! तुमने मेरा सारा मनोरथ पूर्ण कर दिया, अब शीघ्र ही नावपर चढ़ाओ।' यह कहकर श्रीराम और लक्ष्मणने कवच धारण किया, तरकस एवं तलवार बाँधी तथा धनुष लेकर वे दोनों भाई जिस मार्गसे सब लोग घाटपर जाया करते थे, उसीसे सीताके साथ गङ्गाके तटपर गये।

उस समय धर्मके ज्ञाता भगवान् श्रीरामके पास जाकर सारथि सुमन्त्रने विनीत भावसे हाथ जोड़कर पूछा—'अब मेरे लिये क्या आज्ञा होती है?' तब श्रीरामने सुमन्त्रको दाहिने हाथसे स्पर्श करते हुए कहा—'अब आप शीघ्र ही महाराजके पास लौट जाइये और वहाँ सावधान होकर रहिये। इतनी ही दूरतक मुझे रथपर आनेकी आवश्यकता थी, सो पूरी हो गयी; अब हमलोग रथ छोड़कर पैदल ही महान् वनकी यात्रा करेंगे, अतः आप जाइये।' 'मुझे लौट जानेकी आज्ञा मिल गयी' यह देखकर सुमन्त्र शोकसे व्याकुल हो उठे और पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामसे बोले—'रघुनन्दन! जिसकी प्रेरणासे तुम्हें भाई और स्त्रीके साथ साधारण मनुष्योंकी भाँति वनमें रहनेको विवश होना पड़ा है, उस दैवका इस संसारके किसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पुरुषने उल्लङ्घन नहीं किया ।' आत्माके समान प्रिय श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसी बात कहकर उन्हें दूर जानेको उद्यत देख सुमन्त्र दुःखसे आकुल होकर देरतक रोते रहे । तब श्रीरामने उनसे बारंबार मधुर वाणीमें कहा—'सुमन्त्र ! इक्ष्वाकु-वंशियोंका आपके समान दूसरा कोई हितैषी नहीं दिखायी देता । आप ऐसा यत्न करें, जिससे महाराज दशरथको मेरे लिये शोक न हो । वे कैकेयीका प्रिय करनेकी इच्छासे आपको जिस कामके लिये भी आज्ञा दें उसका निःशंक होकर पालन कीजियेगा । आप महाराजको मेरी ओरसे प्रणाम करके कहियेगा कि अयोध्यासे निकल आने

अथवा वनमें रहनेके कारण मुझको या लक्ष्मणको कोई शोक नहीं है । चौदह वर्ष समाप्त हो जानेपर हम शीघ्र ही लौट आयेंगे और उस समय आप सीता तथा लक्ष्मणसहित मुझे देख सकेंगे । राजासे ऐसा कहकर मेरी माता कौसल्यासे, अन्य माताओंसे और कैकेयीसे भी बारंबार हमलोगोंका कुशल-समाचार कहियेगा तथा उन सबसे मेरा, लक्ष्मणका एवं सीताका चरणवन्दन भी कह दीजियेगा । मेरी ओरसे महाराजसे निवेदन कीजियेगा वे भरतको शीघ्र ही बुला लें और आते ही उन्हें युवराज-पदपर अभिषिक्त कर दें । भरतसे भी मेरा यह सन्देश कह देना उचित होगा कि महाराजके प्रति जैसा तुम्हारा बर्ताव है, वैसा ही समानरूपसे सभी माताओंके प्रति होना चाहिये । तुम्हारी दृष्टिमें कैकेयी-का जो स्थान है, वही सुमित्रा और मेरी माता कौसल्याका भी होना उचित है; इनमें कोई अन्तर न रखना । पिताजीका प्रिय करनेकी इच्छासे युवराज-पदको स्वीकार करके यदि तुम राजकार्यकी देख-भाल करते रहोगे तो इहलोक और परलोकमें सदा ही सुख पाओगे ।'

श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रको लौटाते हुए जब इस प्रकार समझाया तो उन्होंने उनकी सारी बातें सुनकर स्नेहपूर्वक कहा—'तात ! सेवकका स्वामीके प्रति जो नम्रतापूर्ण बर्ताव होना चाहिये, उसका यदि मैं आपसे बात करते समय पालन न कर सकूँ, यदि मेरे मुँहसे स्नेहवश कोई धृष्टतापूर्ण बात निकल जाय, तो 'यह मेरा भक्त है' ऐसा समझकर मुझे क्षमा कीजियेगा । आपके वियोगसे सारी अयोध्यापुरी शोक-सन्तप्त हो रही है । मैं आपको साथ लिये बिना वहाँ कैसे लौटकर जा सकूँगा ? आप दूर रहकर भी प्रजाके हृदयमें निवास करनेके कारण सदा उसके सामने ही उपस्थित रहते हैं । निश्चय ही, इस समय प्रजावर्गके सब लोगोंने आपका ही चिन्तन करते हुए अन्न-जल त्याग दिया होगा । जिस समय आप वनको आने लगे, उस समय आपके शोकसे व्याकुल प्रजाने जैसा क्षोभ प्रकट किया था, उसे तो आपने देखा ही था । अयोध्यासे निकलते समय पुरवासियोंने जैसा आर्तनाद किया था, मुझे खाली रथ लिये लौटा देखकर वे उससे भी सौगुना हाहाकार करेंगे । कौसल्या देवीके पास जाकर उन्हें यह अप्रिय सत्य कैसे सुना सकूँगा कि मैं आपके पुत्रको वनमें पहुँचा आया ? ये उत्तम घोड़े इस समय आपसे सूने रथको कैसे खींच सकेंगे ? अतः अब मैं आपके बिना अयोध्या लौटकर नहीं जा सकता । मुझे भी वनमें ही चलनेकी आज्ञा दीजिये । यदि इतनी याचना करनेपर भी आप मुझे त्याग ही देंगे, तो मैं रथसहित अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा । प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिये, मैं वनमें आपके पास ही रहना चाहता हूँ । ये घोड़े भी यदि वनमें रहकर आपकी सेवा करेंगे, तो इन्हें उत्तम गति प्राप्त होगी । मेरी अभिलाषा है कि जब वनवासकी अवधि समाप्त हो जाय तो फिर इसी रथपर बिठाकर आपको अयोध्या-पुरी ले चलूँ । आपके साथ वनमें रहनेसे ये चौदह वर्ष चौदह क्षणोंके समान बीत जायँगे, अन्यथा चौदह सौ वर्षोंके समान भारी जान पड़ेंगे । प्रभो ! आप मेरे स्वामीके पुत्र और सेवकोंपर दया करनेवाले हैं; आप जिस मार्गपर चल रहे हैं, उसीपर आपकी सेवाके लिये मैं भी चलनेको तैयार हूँ । मैं आपके प्रति भक्ति रखता हूँ, आपका भृत्य हूँ और भृत्यजनोचित मर्यादाके भीतर स्थित हूँ; अतः आप मेरा परित्याग न करें ।'

सारथिकी बात सुनकर भृत्योंपर दया करनेवाले श्रीरामने कहा—'सुमन्त्रजी ! आप स्वामीपर स्नेह करनेवाले हैं, आपकी मेरे प्रति जो उत्कृष्ट भक्ति है, उसे मैं जानता हूँ;

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


फिर भी जिस कामके लिये मैं आपको अयोध्यापुरीमें भेज रहा हूँ, वह सुनिये। जब आप नगरको लौट जायँगे, तो आपको देखकर मेरी छोटी माता कैकेयीको यह विश्वास हो जायगा कि राम वनको चले गये। इसके विपरीत यदि आप नहीं गये, तो उसे सन्तोष नहीं होगा। मेरे वनवासी हो जाने-पर भी वह धर्मपरायण महाराज दशरथके प्रति मिथ्यावादी होनेका सन्देह करे, ऐसा मैं नहीं चाहता। आपको भेजनेका मुख्य उद्देश्य यही है कि मेरी छोटी माता भरतद्वारा सुरक्षित समृद्धिशाली राज्यको पा जाय। मेरा तथा महाराजका प्रिय करनेके लिये आप अवश्य पुरीको पधारिये और आपको जिनके लिये जो सन्देश दिया गया है, वह सब वहाँ जाकर उन लोगोंसे कह दीजिये।' यह कहकर श्रीरामने सुमन्त्रको बारंबार आश्वासन दिया।

इसके बाद उन्होंने गुहसे उत्साहपूर्वक यह युक्तियुक्त वचन कहा—'निषादराज! इस समय मैं उन्हीं नियमोंको धारण करके रहना चाहता हूँ, जो तपस्वीजनोंको शोभा देते हैं, अतः सीता और लक्ष्मणकी अनुमति लेकर पिताका हित करनेकी इच्छासे अपने केशोंको जटाका रूप देकर यहाँसे जाऊँगा। इसके लिये तुम बड़का दूध ला दो।' गुहने तुरंत ही बड़का दूध लाकर राजकुमार श्रीरामको दिया। श्रीरामने उसके द्वारा अपनी तथा लक्ष्मणकी जटाएँ बनायीं। उस समय वे दोनों भाई वल्कल-वस्त्र और जटा धारण करके ऋषियोंके समान शोभा पाने लगे। तदनन्तर वानप्रस्थ-मार्गका आश्रय लेकर लक्ष्मणसहित श्रीरामने ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनका निश्चय किया और अपने सहायक गुहसे कहा—'निषादराज! तुम सेना, खजाना, किला और राज्यके विषयमें सदा सावधान रहना; क्योंकि राज्यकी रक्षाका काम बड़ा कठिन माना गया है।' गुहको इस प्रकार आज्ञा देकर इक्ष्वाकुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी पत्नी और लक्ष्मणके साथ तुरंत ही वहाँसे चल दिये। इस समय उनके चित्तमें तनिक भी उद्वेग नहीं था। फिर नदीके तीरपर लगी हुई नावको देखकर गङ्गाके पार जानेकी इच्छासे उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'नरव्याघ्र! यह सामने नाव खड़ी है, इसपर धीरेसे चढ़ जाओ।' भाईका आदेश सुनकर लक्ष्मणने पहले मिथिलेश-कुमारी श्रीसीताको नावपर बिठाया, फिर स्वयं उसपर आरूढ़ हुए। तत्पश्चात् महातेजस्वी श्रीराम नावपर चढ़कर ब्राह्मण और क्षत्रियके जपने योग्य 'दैवीं नावम्' इत्यादि वेदोक्त मन्त्रका जप करने लगे। फिर शास्त्रविधिके अनुसार आचमन करके सीता और महारथी लक्ष्मणके साथ उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर गङ्गाजीको प्रणाम किया। इसके बाद श्रीरामने सुमन्त्रको तथा सेनासहित गुहको जानेकी आज्ञा दे मल्लाहोंको नाव चलानेका आदेश दिया। आज्ञा पाकर मल्लाहोंने नाव चलायी। उनका कर्णधार बड़ा सावधान था।

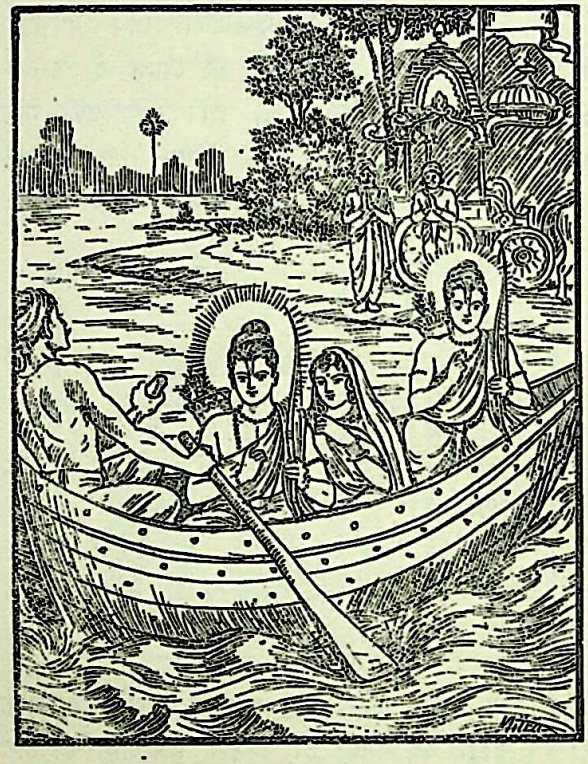

वेगसे डाँड़ चलानेके कारण वह नाव बड़ी तेजीसे पानीपर बढ़ने लगी। बीच धारामें पहुँचनेपर साध्वी सीताने हाथ जोड़-कर गङ्गाजीसे यह प्रार्थना की—'भगवती गङ्गे! ये महाराज दशरथके पुत्र आपके द्वारा सुरक्षित होकर अपने पिताकी आज्ञाका पालन करें। चौदह वर्षोंतक वनमें रहकर जब ये मुझे और भाई लक्ष्मणको लेकर पुनः इसी मार्गसे लौटेंगे, उस समय सबके साथ कुशलपूर्वक आकर मैं बड़ी प्रसन्नतासे आपकी पूजा करूँगी तथा आपके किनारे जो-जो देवता, तीर्थ और मन्दिर हैं उन सबका पूजन करूँगी।' इस प्रकार गङ्गाजीसे प्रार्थना करती हुई श्रीसीताजी बात-की-बातमें दक्षिण तटपर जा पहुँचीं। किनारे पहुँचकर लक्ष्मण और सीताके सहित श्रीरामने नाव छोड़ दी और आगेको प्रस्थान किया।

उस समय महाबाहु श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रा-नन्दन! सीताकी रक्षाके लिये सावधान हो जाओ, तुम आगे-आगे चलो, सीता तुम्हारे पीछे चलें और मैं तुम दोनोंकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा करता हुआ सबसे पीछे चलूँगा।' यह सुनकर लक्ष्मण आगे बढ़े, उनके पीछे सीता चलने लगीं। सबसे पीछे राम थे। श्रीरामचन्द्रजी गङ्गाजीके उस पार पहुँचकर भी जबतक दिखायी दिये, तबतक सुमन्त्र निरन्तर उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये देखते रहे। जब बहुत दूर निकल जानेके कारण वे दृष्टिसे ओझल हो गये, तो सुमन्त्रके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई और उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

## श्रीराम आदिका भरद्वाजके आश्रमपर निवास तथा यमुनाके पार होकर श्यामवट आदिका दर्शन करते हुए चित्रकूट पहुँचना

तदनन्तर राम, लक्ष्मण और सीताने मार्गमें एक महान् वृक्षके नीचे रात्रि बितायी और सूर्योदय होनेपर वहाँसे आगेको प्रस्थान किया। जहाँ भागीरथी गङ्गासे यमुनाका सङ्गम होता है, उस स्थानपर जानेके लिये वे महान् वनके भीतरसे होकर यात्रा करने लगे। मार्गमें उन्होंने अनेकों भू-भाग और मनोहर प्रदेश, जो पहले कभी देखनेमें नहीं आये थे, देखे। वे फूलोंसे सुशोभित भाँति-भाँतिके वृक्षोंको देखते चल रहे थे। इस प्रकार वह दिन समाप्त होनेपर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! वह देखो, प्रयागके पास अग्निदेवकी ध्वजारूप पवित्र धूम उठ रहा है। मालूम होता है, मुनिवर भरद्वाज यहीं हैं।' इस प्रकार बातचीत करते दोनों धनुर्धर वीर श्रीराम और लक्ष्मण सूर्यास्त होते-होते गङ्गा-यमुनाके सङ्गमके समीप मुनिवर भरद्वाजके आश्रमपर जा पहुँचे। आश्रममें प्रवेश करके उन्होंने तपस्याके प्रभावसे सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले एकाग्रचित्त महात्मा भरद्वाज ऋषिके दर्शन किये, जो अग्निहोत्र करके शिष्योंसे घिरे हुए आसनपर विराजमान थे। महर्षिके दर्शन करके महाभाग श्रीरामने सीता और लक्ष्मणके साथ हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार अपना परिचय दिया—'मुनिवर! हम दोनों राजा दशरथके पुत्र हैं। मेरा नाम राम और इनका लक्ष्मण है तथा ये विदेहराज जनककी पुत्री और मेरी कल्याणमयी पत्नी सीता हैं, जो निर्जन तपोवनमें भी मेरा साथ देनेके लिये आयी हैं। पिताकी आज्ञासे मुझे वनकी ओर आते देख मेरे प्रिय अनुज सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी वनमें ही रहनेका व्रत लेकर मेरे साथ हो लिये हैं। इस प्रकार पिताके आदेशसे हम तीनों तपोवनमें जायेंगे और वहाँ फल-मूल भोजन करते हुए धर्मका आचरण करेंगे।'

श्रीरामके वचन सुनकर धर्मात्मा भरद्वाज मुनिने उनका स्वागत-सत्कार किया। उन्हें पाद्य और अर्घ्य निवेदन करके तीनों अतिथियोंके लिये नाना प्रकारके अन्न, रस और जंगली फल-

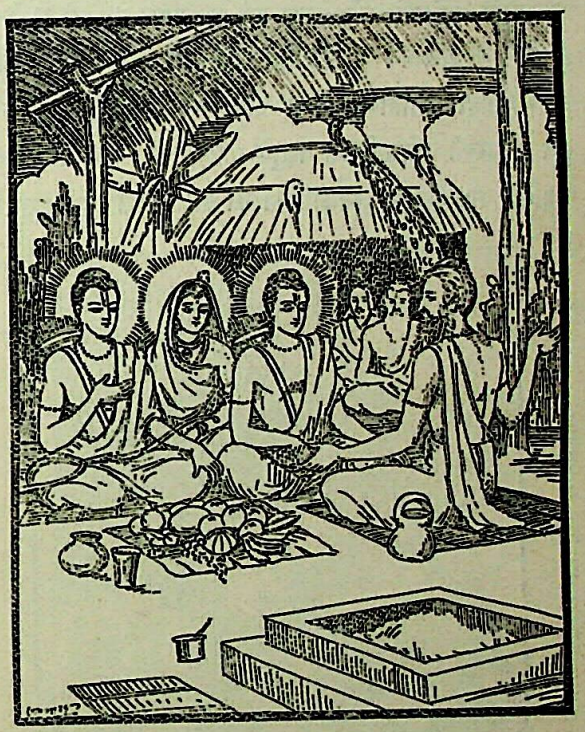

मूल प्रस्तुत किये। तत्पश्चात् उन सबके रहनेके लिये स्थानकी व्यवस्था की। उनका आतिथ्य स्वीकार करके जब श्रीरामचन्द्रजी आसनपर विराजमान हुए, तो भरद्वाजजीने यह धर्मयुक्त वचन कहा—'रघुनन्दन! मैं तुम्हारी इस आश्रमपर बहुत समयसे राह देख रहा हूँ। यह भी मैंने सुना है कि बिना किसी अपराधके ही तुम्हें वनवास दिया गया है। गङ्गा और यमुना—इन दोनों महानदियोंके सङ्गमके पासका यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्थान बड़ा ही पवित्र और एकान्त है। यहाँकी प्राकृतिक छटा भी मनोरम है। अतः यहीं तुम सुखपूर्वक निवास करो।' भरद्वाजजीके ऐसा कहनेपर सर्वहितकारी भगवान् श्रीरामने इन शुभ वचनोंके द्वारा उन्हें उत्तर दिया—'मुने! मेरे नगर और प्रान्तके निवासी यहाँसे समीप पड़ते हैं; अतः मैं समझता हूँ इस आश्रमपर मुझसे और सीतासे मिलनेके लिये लोग प्रायः आते-जाते रहेंगे। इस कारण यहाँ निवास करना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता। अतः किसी एकान्त प्रदेशमें आश्रमके योग्य उत्तम स्थान सोचकर बताइये।' महामुनि भरद्वाजने रामका शुभ वचन सुनकर उनकी उद्देश्यसिद्धिके अनुकूल बात कही—'तात! यहाँसे दस कोसकी दूरीपर चित्रकूट नामसे विख्यात एक परम पवित्र एवं सुन्दर पर्वत है, जो गन्धमादनके समान है। वहाँ बहुत-से ऋषि-महर्षि रहते हैं। वहीं जाकर तुम निवास करो अथवा वनवासके उद्देश्यसे मेरे साथ इस आश्रमपर ही रहो।' ऐसा कहकर भरद्वाजजीने अपने प्रिय अतिथि रामका सीता और लक्ष्मणसहित आतिथ्य किया और उन्हें सन्तुष्ट करनेके लिये सब प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुएँ अर्पण कीं। श्रीरामचन्द्रजी महर्षिके पास बैठकर अनेकों प्रकारकी बातें करते रहे, इतनेमें

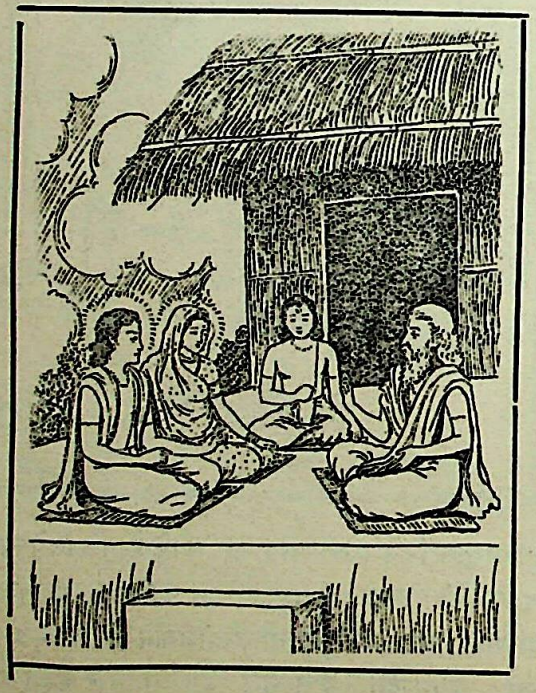

पुण्यमयी रात्रिका आगमन हुआ। वे बहुत थके हुए थे, इसलिये मुनिके उस मनोहर आश्रमपर सीता और लक्ष्मणसहित उन्होंने वह रात्रि व्यतीत की।

तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर वे दोनों राजकुमार महर्षिको प्रणाम करके चित्रकूट पर्वतपर जानेको उद्यत हुए। उन्हें प्रस्थान करते देख महर्षि भरद्वाजने स्वस्तिवाचन किया। फिर सत्यपराक्रमी रामसे कहा—'नरश्रेष्ठ! गङ्गा और यमुनाके सङ्गमपर पहुँचकर वहाँसे थोड़ी दूर पश्चिम यमुनाके किनारे-किनारे जाना। वहीं तीर्थस्थान है, जहाँ लोगोंका विशेष आना-जाना रहता है। जबतक इच्छा हो, उसका दर्शन करना और फिर एक बेड़ा बनाकर उसीके द्वारा सूर्यकन्या यमुनाके उस पार उतर जाना। वहाँसे आगे जानेपर एक बहुत बड़ा बरगदका वृक्ष मिलेगा, जिसके पत्ते हरे रंगके हैं। उसके चारों ओर और भी अनेकों प्रकारके वृक्ष हैं। वह महान् वृक्ष श्यामवटके नामसे प्रसिद्ध है। उसकी छायाके नीचे बहुत-से सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। वहाँ जानेपर सीता हाथ जोड़कर श्यामवटसे आशीर्वादकी याचना करें। यात्रीकी इच्छा हो तो उस वृक्षके पास पहुँचकर कुछ काल-तक वहाँ निवास करे या आगे बढ़ जाय। श्यामवटसे एक कोस दूर जानेपर तुम्हें नीलवनका दर्शन होगा। वहाँ यमुनातटवर्ती जंगली वृक्षोंके साथ-साथ शल्लकी और बेरके भी पेड़ हैं। वहींसे चित्रकूटको रास्ता जाता है। मैं उस मार्गसे कई बार गया हूँ। वहाँकी भूमि कोमल और दृश्य रमणीय है। उधर कभी दावानलका भय नहीं होता।' इस प्रकार मार्ग बताकर महर्षि भरद्वाज लौटने लगे। भगवान् श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'अब आप आश्रमको लौट जाइये।'

उनके चले जानेपर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रा-नन्दन! तुम्हारा कल्याण हो; ये मुनि हमारे ऊपर जो इतनी कृपा रखते हैं, इससे जान पड़ता है हमलोगोंने पहले कभी महान् पुण्य किया है।' इस प्रकार बातचीत करते वे दोनों मनस्वी नरश्रेष्ठ सीताको आगे करके यमुनातटपर गये। वहाँ कालिन्दीका स्रोत बड़ी तीव्र गतिसे प्रवाहित हो रहा था। वे तुरंत ही नदीके पार जाना चाहते थे, इसलिये थोड़ी देर-तक विचारमें पड़े रहे। इसके बाद जंगलके सूखे काठ बटोरकर उन्हींके द्वारा दोनों भाइयोंने एक बहुत बड़ा बेड़ा तैयार किया और उसपर खस बिछा दिया। फिर लक्ष्मणने बेंत और जामुनकी टहनियोंको काटकर सीताके बैठनेके लिये एक सुखद आसन तैयार किया। श्रीरामने लक्ष्मीके समान अचिन्त्य ऐश्वर्यवाली अपनी प्रिया सीताको, जो कुछ लज्जित-सी हो रही थीं, उस बेड़ेपर चढ़ा दिया और उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बगलमें वस्त्र एवं आभूषण रख दिये। फावड़े और खाँचीको भी बेड़ेपर ही रखा। फिर दोनों भाई उस बेड़ेको पकड़कर सावधानी और प्रसन्नताके साथ उसे खेने लगे। यमुनाकी बीच धारामें आनेपर सीताने उन्हें प्रणाम करके कहा—'देवि! मैं आपको पार कर रही हूँ। मेरे पति कुशल-पूर्वक अपनी वनवासविषयक प्रतिज्ञाको पूर्ण करें। यदि श्रीरामचन्द्रजी सुखपूर्वक अयोध्याको लौटेंगे तो मैं आपका पूजन करूँगी।' इस प्रकार सीता हाथ जोड़कर यमुनाजीसे प्रार्थना कर रही थीं कि इतनेमें ही वे दक्षिण तटपर जा पहुँचीं। पार उतरकर उन लोगोंने बेड़ेको तटवर्ती वृक्षोंके पास छोड़ दिया; फिर यमुना-वनसे चलकर वे हरे-हरे पत्तोंसे सुशोभित शीतल छायावाले श्यामवटके पास पहुँचे। वटके समीप जाकर सीताने प्रणाम किया और कहा—'महावृक्ष! आपको नमस्कार है। [ आप ऐसी कृपा करें, जिससे ] मेरे पतिदेव अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करें तथा हम सब लोग वनसे सकुशल लौटकर यशस्विनी सुमित्रा और कौसल्या देवीका दर्शन कर सकें।' इस प्रकार प्रार्थना करके सीता उस वृक्षकी परिक्रमा करने लगीं। यह देखकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'नरश्रेष्ठ! तुम सीताको साथ लेकर आगे-आगे चलो और मैं धनुष धारण किये पीछेसे तुम लोगोंकी रक्षा करता हुआ चलूँगा। जनकदुलारी सीता जो-जो फल या फूल माँगें अथवा जिस वस्तुको पाकर इनका मन प्रसन्न रहे, वह सब इन्हें देते रहो।' सीता एक-एक वृक्ष, झाड़ी, अथवा फूलोंसे सुशोभित अद्भुत लताको देखकर उसके विषयमें श्रीरामचन्द्रजीसे पूछतीं तथा लक्ष्मण सीताके कथनानुसार भाँति-भाँतिके वृक्षोंकी मनोहर शाखाएँ और फूलोंके गुच्छे ला-लाकर उन्हें देते थे।

सायंकालमें दोनों भाइयोंने नदीके किनारेकी समतल भूमिपर निवास किया; फिर सबेरा होते ही वे उठे और नदीके शीतल जलमें स्नान करके ऋषि-मुनियोंद्वारा सेवित चित्रकूटके पथपर आगे बढ़ने लगे। सीताके साथ दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण पैदल ही यात्रा करते हुए यथासमय मनोहर पर्वत चित्रकूटपर जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन तीनोंने महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें प्रवेश करके उन्हें प्रणाम किया। धर्मको जाननेवाले महर्षि उनके आगमनसे बहुत प्रसन्न हुए और 'आपलोगोंका स्वागत है; आइये, बैठिये।' ऐसा कहते हुए उन्होंने उनका आदर-सत्कार किया। भगवान् श्रीरामने महर्षिको अपना यथावत् परिचय दिया और लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! तुम जंगलसे अच्छी-अच्छी लकड़ियाँ ले आओ और रहनेके लिये एक कुटी तैयार करो। यहाँ निवास करनेको जी चाहता है।' श्रीरामकी बात सुनकर लक्ष्मणने अनेकों प्रकारके काठ एकत्रित किये और उनके द्वारा एक पर्णशाला बनायी। फिर शुभ मुहूर्तमें देवताओंकी पूजा करके सबने उस सुन्दर कुटीमें प्रवेश किया। वह कुटी बहुत उपयुक्त स्थानपर बनी थी, उसे वृक्षोंके पत्तोंसे छाया गया था और उसके भीतर हवा आदिसे बचनेका पूरा प्रबन्ध था। चित्रकूट पर्वत अत्यन्त रमणीक था तथा वहाँ उत्तम तीर्थोंसे सुशोभित माल्यवती ( मन्दाकिनी ) नदी बह रही थी। उनका सान्निध्य पाकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## सुमन्त्रका अयोध्यामें लौटना और पुरवासी मनुष्यों, राजा दशरथ तथा कौसल्याका शोकाकुल होना

इधर जब श्रीराम गङ्गाके दक्षिण तटपर उतर गये तो गुह दुःखसे व्याकुल होकर बड़ी देरतक सुमन्त्रके साथ बातचीत करता रहा; इसके बाद वह अपने घर चला गया। श्रीरामचन्द्रजीका प्रयागमें भरद्वाजके आश्रमपर जाना, मुनिके द्वारा सत्कार पाना तथा चित्रकूट पर्वतपर पहुँचना—ये सब वृत्तान्त उसे अपने शृङ्गवेरपुरनिवासी दूतोंसे मालूम हुए। गुहके मुखसे सुमन्त्रको भी वे बातें मालूम हुईं। फिर वे गुहसे बिदा होकर बहुत उदास हो घोड़ोंको रथमें जोतकर अयोध्यापुरीकी ओर चल दिये। मार्गमें अनेकों सुगन्धित वन, नदी, सरोवर, गाँव और नगरोंको देखते हुए वे दूसरे दिन सन्ध्याके समय अयोध्यामें पहुँचे। सुमन्त्रको देखकर सैकड़ों और हजारों पुरवासी 'राम कहाँ हैं ?' यह पूछते हुए उनकी ओर दौड़े। उस समय सुमन्त्रने उन लोगोंसे कहा—'भाइयो! मैं गङ्गाके किनारेतक उनके साथ गया था। वहाँसे उन धर्मनिष्ठ महात्माने मुझे लौट आनेकी आज्ञा दी। अतः मैं उनसे बिदा लेकर यहाँ लौट आया हूँ। वे सब गङ्गाके उस पार चले गये,' यह जानकर सबके नेत्रोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं तथा 'अहो, हमें धिक्कार है !' ऐसा कहकर वे लंबी साँसें खींचते और 'हा राम !' की पुकार मचाते जोर-जोरसे विलाप करने लगे। सुमन्त्रने उनकी बातें सुनीं, वे झुंड-के-झुंड खड़े होकर कह रहे थे—'हाय ! हमलोग मारे गये, अब यहाँ श्रीरामचन्द्रजीको नहीं देख पायेंगे। अमुक पुरुषके लिये क्या उचित है, क्या करनेसे उसका प्रिय होगा और कैसे किस-किस वस्तुसे उसे सुख मिलेगा—इत्यादि बातोंका विचार करते हुए श्रीरामचन्द्रजी पिताकी भाँति इस नगरका पालन करते थे।' बाजारके बीचसे निकलते समय सारथिके कानोंमें स्त्रियोंके रोनेकी आवाज सुनायी दी, जो महलोंकी खिड़कियोंमें बैठकर श्रीरामके लिये ही सन्तप्त होकर विलाप कर रही थीं। राजमार्गके बीचसे जाते हुए सुमन्त्रने कपड़ेसे अपना मुँह ढँक लिया। वे रथ लेकर उसी भवनकी ओर गये, जहाँ राजा दशरथ मौजूद थे। राजमहलके पास पहुँचकर वे शीघ्र ही रथसे उतर पड़े और भीतर प्रवेश करके बहुत-से मनुष्योंसे भरी हुई सात ड्योढ़ियोंको पार कर गये। आठवीं ड्योढ़ीमें पहुँचनेपर उन्होंने देखा—राजा एक श्वेत भवनमें बैठे हैं और पुत्र-शोकसे मलिन, दीन एवं आतुर दिखायी देते हैं। सुमन्त्रने निकट जाकर महाराजको प्रणाम किया और उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी कही हुई बातें सुनायीं। राजाने उन्हें चुपचाप सुना। किन्तु इससे उनका हृदय व्याकुल हो उठा और वे रामके शोकसे अत्यन्त पीडित हो मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। उस समय सुमित्राकी सहायतासे कौसल्याने अपने गिरे हुए पतिको उठाया और इस प्रकार कहा—'महाभाग ! ये सुमन्त्रजी दुष्कर कर्म करनेवाले रामके दूत होकर—उनका सन्देश लेकर वनवाससे आये हैं, आप इनसे बात क्यों नहीं करते ?' इतना कहते-कहते कौसल्याका गला भर आया, आँसुओंके कारण उनसे बोला न गया और वे शोकसे व्याकुल होकर धरतीपर गिर पड़ीं। विलपती हुई कौसल्याको भूमिपर पड़ी देख तथा अपने पतिकी मूर्छित दशापर दृष्टिपात करके सभी रानियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर रोने लगीं।

मूर्च्छा दूर होनेपर जब राजाको चेत हुआ तो उन्होंने रामका वृत्तान्त सुननेके लिये सारथिको सामने बुलाया। सुमन्त्र हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उनका सारा शरीर धूलसे भरा था, मुख आँसुओंसे भीग रहा था और वे अत्यन्त दीन दिखायी देते थे। राजाने अत्यन्त दुखी होकर पूछा—'सूत ! धर्मात्मा रामचन्द्र वृक्षकी जड़का सहारा लेकर कहाँ रहेंगे ? क्या भोजन करेंगे ? वनमें पहुँचनेपर राम, लक्ष्मण और सीताने तुमसे क्या कहा था ? तुम रामके बैठने, सोने और खाने-पीनेसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें बताओ।' राजाके इस प्रकार पूछनेपर सारथियोंने गद्गद वाणीमें कहा—"महाराज! श्रीरामचन्द्रजीने धर्मका पालन करते हुए दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक झुकाकर कहा है—'सूत ! तुम मेरी ओरसे पूज्य पिताजीके चरणोंमें प्रणाम कहना तथा अन्तःपुरमें सभी माताओंको मेरे आरोग्यका समाचार देते हुए उनसे मेरा सादर नमस्कार निवेदन करना। इसके बाद माता कौसल्यासे मेरा प्रणाम कहकर बताना कि मैं कुशलसे हूँ और धर्मपालनमें सावधान रहता हूँ। फिर उनको मेरा यह सन्देश सुनाना कि 'माँ ! तुम सदा धर्ममें तत्पर रहकर ठीक समयपर अग्निहोत्र करती रहना। पिताजीको देवताके समान मानकर उनके चरणोंकी सेवा करना। अभिमान और मानको त्यागकर सभी माताओंके साथ हिल-मिलकर रहना। आर्या कैकेयीके प्रति महाराजका स्नेह और सद्भाव बढ़ानेका प्रयत्न करना। कुमार भरतके साथ राजोचित बर्ताव करना।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा छोटी उम्रके हों तो भी वे आदरणीय ही होते हैं—इस राजधर्मको याद रखना।' कुमार भरतसे भी मेरी कुशल सुनाकर कहना—तुम सभी माताओंके साथ न्यायोचित बर्ताव करते रहना। युवराज-पदपर अभिषिक्त होनेके बाद भी पिताजीकी रक्षा और सेवापर ध्यान देना। कुमार! महाराजकी अवस्था बहुत अधिक हो गयी है। उनका कभी विरोध न करना—उनकी आज्ञा भंग न होने देना, पिताजीकी आज्ञाके अधीन रहकर ही युवराज-पदका उपभोग करना तथा मेरी पुत्रवत्सला माताको अपनी ही माताके समान समझना।' इतना कहकर वे अपने नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे। इसके बाद कुमार लक्ष्मणने अत्यन्त क्रोधमें भरकर लंबी साँस खींचते हुए कहा—'राजकुमार श्रीरामको किस अपराधके कारण वनवास दिया गया है? राजाने कैकेयीका आदेश सुनकर झटसे उसे पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली। उनका यह कार्य उचित हो या अनुचित, परन्तु हमलोगोंको तो वनवासका कष्ट भोगना ही पड़ता है। श्रीरामको वनवास देना कैकेयीके लोभके कारण हुआ हो अथवा राजाके दिये हुए वरदानके कारण, मेरी दृष्टिमें यह कार्य सर्वथा अनुचित हुआ है।' महाराज! जिन्होंने कभी ऐसा संकट आँखोंसे भी नहीं देखा था, वे राजकुमारी सीता खड़ी-खड़ी सिसकियाँ भरती रहीं, मुझसे कुछ कह न सकीं। मुझे जानेके लिये उद्यत देख आँसू बहाती हुई सहसा रो पड़ीं। जब श्रीरामचन्द्रजी वनकी ओर जाने लगे, तो मैंने उन दोनों राजकुमारोंको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनके वियोगके दुःखको हृदयमें धारण करके रथपर चढ़कर अयोध्याके लिये प्रस्थान किया। लौटते समय मेरे घोड़े गरम-गरम आँसू बहाते थे, रास्ता चलनेमें उनका मन ही नहीं लगता था। आपके राज्यमें वृक्षोंपर भी इस महान् संकटका प्रभाव पड़ा है। वे भी पीड़ित होकर फूल, अंकुर और कलियोंसहित मुरझा गये हैं। नदियों और छोटे-बड़े तालाबोंके जल गरम हो गये हैं। वनों और उपवनोंके पत्ते सूख गये हैं। अयोध्यामें पहुँचनेपर किसीने मुझसे प्रसन्न होकर बात नहीं की, बहुतेरे मनुष्य तो श्रीरामको न देखकर बारंबार लंबी साँसें खींचने लगे। राजाका रथ श्रीरामके बिना ही लौटा है, यह देखकर सब लोग दूरसे ही आँसू बहाते हुए सड़कपरसे लौट गये। अट्टालिकाओं, विमानों तथा प्रासादोंपर बैठी हुई स्त्रियाँ वहाँसे रथको सूना ही लौटा देखकर श्रीरामको न देखनेके कारण व्यथित हो उठीं और हाहाकार मचाने लगीं।"

सुमन्त्रके वचन सुनकर राजाने बड़ी दीन वाणीमें कहा—'सूत! कैकेयी पापी कुल और पापपूर्ण देशमें उत्पन्न हुई है, उसके विचार भी पापसे भरे हैं; उसीके कहनेमें आकर मैंने राय देनेमें कुशल वृद्ध पुरुषोंके साथ बैठकर इस विषयमें परामर्श भी नहीं किया। सुहृदों, मन्त्रियों और वेदवेत्ताओंसे सलाह लिये बिना ही मोहवश स्त्रीकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये सहसा यह कार्य कर डाला। होनहारवश यह भारी विपत्ति निश्चय ही इस कुलका विनाश करनेके लिये उपस्थित हुई है। सुमन्त्र! यदि मैंने तुम्हारा थोड़ा भी उपकार किया हो, तो मुझे तुरंत श्रीरामके पास पहुँचा दो; मेरे प्राण अब निकलनेके लिये छटपटा रहे हैं। अथवा श्रीरामको ही लौटा लाओ, उनके बिना एक मुहूर्त भी मैं जीवित नहीं रह सकूँगा। किन्तु महाबाहु श्रीराम अबतक दूर चले गये होंगे; इसलिये मुझे ही रथपर बिठाकर ले चलो और शीघ्र रामका दर्शन कराओ। आज मेरे राम कहाँ हैं? यदि प्राण रहे, तो मैं अवश्य ही उन्हें सीताके साथ देखूँगा। इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या होगी कि मैं इस मरणासन्न अवस्थामें पहुँचकर रामको नहीं देख रहा हूँ। हा राम! हा लक्ष्मण! हा विदेहराजकुमारी तपस्विनी सीते! तुम्हें पता नहीं होगा, मैं दुःखसे अनाथकी भाँति मर रहा हूँ। कौसल्ये! मैं रामके बिना शोकके समुद्रमें डूब गया हूँ। अब जीते-जी इसके पार होना मेरे लिये कठिन है। मैं लक्ष्मणसहित रामको देखना चाहता हूँ, पर इस समय उन्हें देख नहीं पाता—यह मेरे बहुत बड़े पापका फल है।' इस तरह विलाप करते हुए महायशस्वी राजा दशरथ तुरंत ही मूर्च्छित होकर शय्यापर गिर पड़े।

तदनन्तर, निर्जीवकी भाँति पृथ्वीपर पड़ी हुई कौसल्या सारथिसे बोली—'सुमन्त्र! जहाँ राम हैं, जहाँ सीता और लक्ष्मण हैं, वहीं मुझे भी पहुँचा दो। मैं उनके बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। जल्दी रथ लौटाओ और मुझे भी दण्डकारण्यमें ले चलो। यदि मैं उनके पास न जा सकी तो यमलोककी यात्रा करूँगी।' कौसल्याकी बात सुनकर सुमन्त्रने हाथ जोड़कर उन्हें समझाते हुए कहा—'देवि! इस दुःखजनित शोक, मोह और उद्वेगको छोड़ो। श्रीरामचन्द्रजी इस समय सब संताप भूलकर वनमें निवास करते हैं। जितेन्द्रिय लक्ष्मण भी वहाँ रामके चरणोंकी सेवामें लगे रहते हैं। सीताका मन भगवान् श्रीराममें लगा हुआ है, इसलिये वे निर्जन वनमें भी घरकी ही भाँति प्रसन्न और निर्भय रहती हैं। वनमें रहनेके कारण उनके मनमें तनिक भी दुःख नहीं दिखायी देता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे तो ऐसा जान पड़ता है मानो सीताको परदेशमें रहनेका अभ्यास है । जैसे यहाँ नगरके उपवनोंमें जाकर घूमा करती थीं, उसी प्रकार वे वनमें भी सानन्द विचरती हैं । सीताका चित्त राममें ही लगा हुआ है । उनका जीवन रामके ही अधीन है, अतः रामके बिना अयोध्या भी उनके लिये वनके ही समान है [ और रामके साथ रहनेपर वे वनमें भी अयोध्याके ही सुखका अनुभव करती हैं । ] रामचन्द्रजीके बाहु-बलका भरोसा करके वे वनमें रहती हैं और हाथी, बाघ अथवा सिंहको भी देखकर कभी भय नहीं मानतीं । अतः तुम राम, लक्ष्मण और सीताके लिये शोक न करो । अपने और महाराजके लिये भी शोक छोड़ो । रामचन्द्रका यह चरित्र संसारमें सदा ही स्थिर रहेगा । ये तीनों ही शोक छोड़कर प्रसन्नचित्त हो महर्षियोंके मार्गपर दृढ़तापूर्वक स्थित हैं और वनमें रहकर फल-मूलका भोजन करते हुए पिताकी उत्तम प्रतिज्ञाका पालन कर रहे हैं ।' इस प्रकार सूतने युक्तिसंगत बातें कहकर पुत्र-शोकसे पीड़िता कौसल्याको चिन्ता करनेसे रोका ।

## मुनिकुमारके वधका प्रसङ्ग सुनाकर राजा दशरथका प्राण त्यागना और कौसल्या आदिका शोक

राजा दशरथ दो घड़ीके बाद मूर्च्छासे जागे । उस समय श्रीरामचन्द्रजीको वनमें गये छठी रात बीत रही थी । जब आधी रात हुई तो उन्हें अपने पहलेके किये एक पापका स्मरण हो आया और उन्होंने पुत्र-शोकसे पीड़ित कौसल्यासे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"कल्याणी ! मनुष्य शुभ या अशुभ जो भी कर्म करता है, उसीका फल सुख या दुःखके रूपमें कर्ताको प्राप्त होता है । कुमार-अवस्थामें ही मुझे धनुर्विद्याका पूरा अभ्यास हो गया था । लोगोंमें मेरी ख्याति फैल गयी थी । लोग कहा करते—'राजकुमार दशरथ शब्दवेधी बाण चलाना जानते हैं, केवल शब्द सुनकर लक्ष्यको बींध देते हैं ।' इसी प्रसिद्धिसे फूलकर मैंने अज्ञानवश जो पाप कर डाला, उस अपने ही किये हुए कुकर्मका फल मुझे इस महान् दुःखके रूपमें प्राप्त हुआ है । देवि ! तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ था और मैं अभी युवराज ही था; उन्हीं दिनोंकी बात है । वर्षाऋतुका सुहावना समय था । मैं धनुष-बाण लेकर रथपर सवार हो शिकार खेलनेके लिये सरयू नदीके तटपर गया । मेरा विचार था कि रातमें पानी पीनेके घाटपर भैंसा, हाथी या सिंह-व्याघ्र आदि दूसरा कोई शिकारी जन्तु जल पीनेके लिये आयेगा तो उसे मारूँगा । वहाँ चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था । इसी समय पानीमें घड़ा भरनेकी आवाज सुनायी पड़ी । मेरी दृष्टि तो वहाँतक पहुँचती नहीं थी, वह शब्द मुझे हाथीकी चिग्घाड़के समान मालूम पड़ा । अतः मैंने यह समझकर कि हाथी ही मेरे बाणका निशाना बनेगा, एक तीर निकाला और उस शब्दको लक्ष्य करके चला दिया ।

"उस समय रात बीत चली थी । मुझे पानीमें गिरते हुए किसी वनवासीका हाहाकार सुनायी पड़ा । मेरे बाणसे उसके मर्ममें बड़ी चोट पहुँचती थी । तुरंत ही यह मानवी शब्द कानमें पड़ा—'आह ! मेरे-जैसे तपस्वीपर शस्त्रका प्रहार कैसे हुआ ? मैं तो नदीके इस एकान्त तटपर रातमें जल लेने आया था, किसने मुझे तीर मारा ? मैं वनमें रहता और जंगली फल-मूलोंसे ही जीविका चलाता था; मुझ-जैसे निरपराधका शस्त्रसे वध क्यों किया गया ? मैं वल्कल और मृगचर्म पहननेवाला जटाधारी तपस्वी हूँ, मुझे मारनेसे किसने अपना लाभ सोचा ? मैंने मारनेवालेका क्या अपराध किया था ? मेरी हत्याका प्रयत्न व्यर्थ ही किया गया—इससे किसीको कुछ लाभ नहीं होगा, केवल अनर्थ ही हाथ लगेगा । मुझे अपने जीवनके नष्ट होनेकी उतनी चिन्ता नहीं है । मेरी मृत्युसे मेरे माता-पिताको जो कष्ट होगा, उसीके लिये मुझे अधिक शोक हो रहा है । उन दोनों वृद्धोंका मैंने बहुत समयसे पालन-पोषण किया है । अब मेरे शरीरके न रहनेपर वे किस प्रकार जीवन-निर्वाह करेंगे ? घातकने एक ही बाणसे मुझे और मेरे बूढ़े माता-पिताको भी मौतके घाट उतार दिया ।'

"ये करुणाभरे वचन सुनकर मेरे हाथसे धनुष और बाण छूटकर जमीनपर गिर पड़े । मैं शोकके आवेगसे घबरा उठा । मेरी चेतना लुप्त-सी होने लगी, साहस घट गया और मनकी बड़ी बुरी दशा हो गयी । सरयूके किनारे उस स्थानपर जाकर मैंने देखा—एक तपस्वी घायल होकर पड़े हैं, उनकी जटाएँ बिखरी हुई हैं, घड़ेका जल गिर गया है, सारा शरीर धूल और खूनमें सना है तथा वे बाणसे बिंधे हुए हैं । उनकी अवस्था देखकर मैं थर्रा उठा, मेरे होश-हवास उड़ गये । ऋषिने अपनी दोनों आँखोंसे मेरी ओर देखकर कठोर वाणीमें कहा—'राजन् ! मैं तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनवासी हूँ; मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो तुमने मुझे मार डाला। मैं माता-पिताके लिये पानी लेनेकी इच्छासे यहाँ आया था। तुमने एक ही बाणसे मेरा मर्म विदीर्ण करके मेरे अंधे और बूढ़े माता-पिताको भी मार डाला। वे दोनों बहुत दुर्बल और अंधे हैं। प्याससे पीड़ित होकर मेरी प्रतीक्षामें बैठे होंगे। पिताजी इस बातको नहीं जानते कि मैं यहाँ जमीनपर पड़ा हूँ; जान भी लें तो क्या कर सकते हैं? वे असमर्थ हैं, चल-फिर नहीं सकते; इसलिये जल्दीसे तुम्हीं जाकर मेरे पिताको यह समाचार सुना दो। [ स्वयं कह दोगे तो ] प्रज्वलित अग्नि जैसे समूचे वनको जला डालती है, उस प्रकार वे क्रोधमें भरकर तुम्हें भस्म नहीं करेंगे। यह पगडंडी उधर ही गयी है, जहाँ मेरे पिताका आश्रम है। तुम जाकर उन्हें प्रसन्न करो, जिससे कुपित होकर वे तुम्हें शाप न दें। राजन्! मेरे शरीरसे इस बाणको निकाल दो, यह तीखा बाण मेरे मर्मस्थलको बड़ी पीड़ा पहुँचा रहा है।'

"मुनिकुमारकी बात सुनकर मेरे मनमें यह चिन्ता हुई कि यदि बाण नहीं निकालता हूँ तो इन्हें क्लेश होता है और निकाल देता हूँ तो ये अभी प्राणोंसे भी हाथ धो बैठते हैं। यह सोचकर मैं बड़ा दुखी, दीन और शोकाकुल हो गया। मुनिकुमारने मेरी चिन्ताको लक्ष्य किया और बड़ दुःखसे कहा—'राजन्! मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। मेरे शरीरकी अवस्था बदल गयी है, मुझसे कोई चेष्टा नहीं होती—हाथ-पैर नहीं उठते। अब मैं मृत्युके समीप हूँ, फिर भी धैर्यके द्वारा शोकको रोककर अपने चित्तको स्थिर करता हूँ। मेरी बात सुनो—'मुझसे ब्रह्महत्या हो गयी' इस चिन्ताको अपने हृदयसे निकाल दो; क्योंकि मैं ब्राह्मण नहीं, वैश्यका पुत्र हूँ।' बाणसे मर्ममें आघात पहुँचनेके कारण वे बड़े कष्टसे इतना ही कह सके। इसके बाद मैंने उनके शरीरसे बाण निकाल दिया। उस समय वे कभी लोटते, कभी चेष्टाहीन होते, कभी काँपने लगते और कभी व्यथासे सिकुड़ जाते थे। अन्तमें उन्होंने प्राण त्याग दिये। पानीमें गिरनेके कारण उनका सारा शरीर भीग गया था। उस अवस्थामें सरयूके तटपर मरे पड़े मुनिपुत्रको देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ।

"कौसल्ये! अनजानमें वह महान् पाप कर डालनेके कारण मेरी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही थीं। मैं अकेला ही बुद्धि लगाकर सोचने लगा, किस उपायसे कल्याण हो। तदनन्तर उस घड़ेको उठाकर मैंने सरयूके स्वच्छ जलसे भरा और उसे लेकर मुनिकुमारके बताये हुए मार्गसे उनके आश्रमपर गया। वहाँ पहुँचकर मैंने उनके दुबले, अंधे और बूढ़े माता-पिताको देखा, जिनका दूसरा कोई सहायक नहीं था तथा जो पुत्रकी ही चर्चा करते हुए उसके आनेकी आशा लगाये बैठे थे। मेरा हृदय पहलेसे ही शोकके कारण घबराया हुआ था तथा भयके मारे होश ठिकाने नहीं था। मुनिके आश्रमपर जानेसे वह शोक और अधिक हो गया। मुनिने जब मेरे पैरोंकी आहट सुनी तो वे बोले—'बेटा! देर क्यों लगा रहे हो, शीघ्र पानी ले आओ। हम असहाय हैं, तुम्हीं हमारे सहायक हो। हम अंधे हैं, तुम्हीं हमारे नेत्र हो। हमलोगोंके प्राण तुम्हींमें लगे हुए हैं। बताओ, तुम बोलते क्यों नहीं हो?' मुनिको देखते ही मुझपर आतङ्क-सा छा गया, मेरी जबान लड़खड़ाने लगी। कितने ही अक्षरोंका उच्चारण नहीं हो पाता था। इस प्रकार अस्पष्ट वाणीमें मैंने बोलनेका प्रयास किया। मानसिक भयको बाहरी चेष्टाओंसे दबाकर कुछ कहनेकी क्षमता प्राप्त की और मुनिपर पुत्रकी मृत्युसे जो संकट आ पड़ा था, वह उनपर प्रकट कर दिया। मैंने कहा—'महात्मन्! मैं आपका पुत्र नहीं, दशरथ नामका एक क्षत्रिय हूँ। धनुष-बाण लेकर सरयूके तटपर आया था। मेरे आनेका उद्देश्य यह था कि कोई जंगली हिंस्र पशु अथवा हाथी पानी पीनेके लिये आये तो उसे मारूँ। थोड़ी देर बाद मुझे जलमें घड़ा भरनेका शब्द सुनायी पड़ा। मैंने समझा कोई हाथी आकर पानी पी रहा है, इसलिये बाण चला दिया। फिर सरयूके तीरपर जाकर देखा कि मेरा बाण एक तपस्वीकी छातीमें लगा है और वे मृतप्राय होकर धरतीपर पड़े हैं। उस बाणसे उन्हें बड़ी पीड़ा हो रही थी, अतः उन्हींके कहनेसे मैंने सहसा वह बाण उनके मर्मस्थानसे निकाल दिया। बाण निकलनेके साथ ही वे तत्काल स्वर्ग सिधार गये। मरते समय उन्होंने आप दोनोंके लिये बड़ा शोक और विलाप किया था। इस प्रकार अनजानमें मेरे हाथसे आपके पुत्रका वध हो गया है।' मैंने अपने मुँहसे अपना पाप प्रकट किया था, इसलिये मेरी क्रूरतासे भरी बात सुनकर भी ऋषिने मुझे कठोर शाप नहीं दिया। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली और वे शोकसे मूर्छित होकर दीर्घ निःश्वास लेने लगे। मैं उनके सामने हाथ जोड़े खड़ा था। उन तेजस्वी मुनिने मुझसे कहा—'राजन्! यदि अपना यह पापकर्म तुम स्वयं आकर न बताते तो तुम्हारे मस्तकके सैकड़ों-हजारों टुकड़े हो जाते। यदि क्षत्रिय जान-बूझकर किसी वानप्रस्थीका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वध कर डाले तो वह वज्रधारी इन्द्र ही क्यों न हो, अपने स्थानसे भ्रष्ट हो जाता है। तुमने अनजानमें यह पाप किया है, इसीलिये अभीतक जीवित हो। अन्यथा समस्त रघुवंशियोंका नाश हो जाता, तुम्हारी तो बात ही क्या।' उन्होंने मुझसे यह भी कहा—'राजन्! तुम हम दोनोंको उस स्थानपर ले चलो, जहाँ हमारा पुत्र मरा पड़ा है। इस समय हम उसे देखना चाहते हैं, यह उसका अन्तिम दर्शन होगा।'

"तब मैं अकेला ही उन दोनोंको उस स्थानपर ले गया। वे अत्यन्त दुखी हो रहे थे। मैंने मुनि और उनकी पत्नीको उनके पुत्रके शरीरका स्पर्श कराया। वे पुत्रका स्पर्श करके उसके शरीरपर गिर पड़े। फिर पिताने पुत्रको लक्ष्य करके कहा—'बेटा! आज तुम मुझे प्रणाम नहीं करते, मुझसे बात भी नहीं करते और धरतीपर सोये हुए हो। क्या बात है, रूठ तो नहीं गये? आज अपनी माताके हृदयसे क्यों नहीं लग जाते? अब पिछली रातमें कौन मधुर स्वरसे शास्त्र या पुराणादि अन्य किसी ग्रन्थका स्वाध्याय करेगा? किसके मुँहसे मैं मनोरम शास्त्र-चर्चा सुनूँगा? अब कौन स्नान, सन्ध्योपासना तथा अग्निहोत्र करके मेरे पास बैठकर पुत्रशोकसे पीड़ित मुझको सान्त्वना देगा? मैं कोई भी काम करनेमें असमर्थ, संग्रहरहित और असहाय हूँ। अब कौन ऐसा है, जो कन्द, मूल और फल लाकर प्रिय अतिथिकी भाँति मुझे भोजन करायेगा? बेटा! तुम्हारी तपस्विनी माता अंधी, बूढ़ी, दीन तथा पुत्रके लिये उत्कण्ठित रहनेवाली है। मैं स्वयं अंधा होकर इसका भरण-पोषण कैसे करूँगा? इसलिये ठहरो, आज तुम यमराजके घर न जाओ; कल मेरे और अपनी माताके साथ चलना। हम दोनों शोकसे आर्त, अनाथ और दीन हैं। तुम्हारे न रहनेपर हम तुरंत ही यमलोकको चले जायँगे। पुत्र! तुम पापरहित हो; मेरे सत्यके प्रभावसे तुम उन लोकोंमें जाओ, जो युद्धमें पीठ न दिखानेवाले शूरवीरोंको प्राप्त होते हैं। राजा सगर, शैव्य, दिलीप, जनमेजय, नहुष और धुन्धुमारने जिस गतिको प्राप्त किया है, वही तुम्हें भी मिले। स्वाध्याय और तपस्यासे जो गति प्राप्त होती है, भूमिदाता, अग्निहोत्री, एकपत्नीव्रतका पालन करनेवाले, एक हजार गौ देनेवाले, गुरुकी सेवा तथा पालन-पोषण करनेवाले पुरुषोंको जो गति मिलती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो।'

"इस प्रकार वे दीनभावसे बारंबार विलाप करने लगे। इसी समय वे धर्मवेत्ता मुनिकुमार अपने पुण्यकर्मोंके प्रभावसे दिव्यरूप धारण करके इन्द्रके साथ स्वर्गको जाने लगे। उन्होंने अपने बूढ़े माता-पिताको आश्वासन देकर कहा—'मैं आप दोनोंकी सेवासे उत्तम स्थानको प्राप्त हुआ हूँ। आप लोग भी जल्दी ही मेरे पास आ जाइयेगा। यह कहकर वे जितेन्द्रिय मुनिकुमार दिव्य विमानके द्वारा तत्काल स्वर्ग

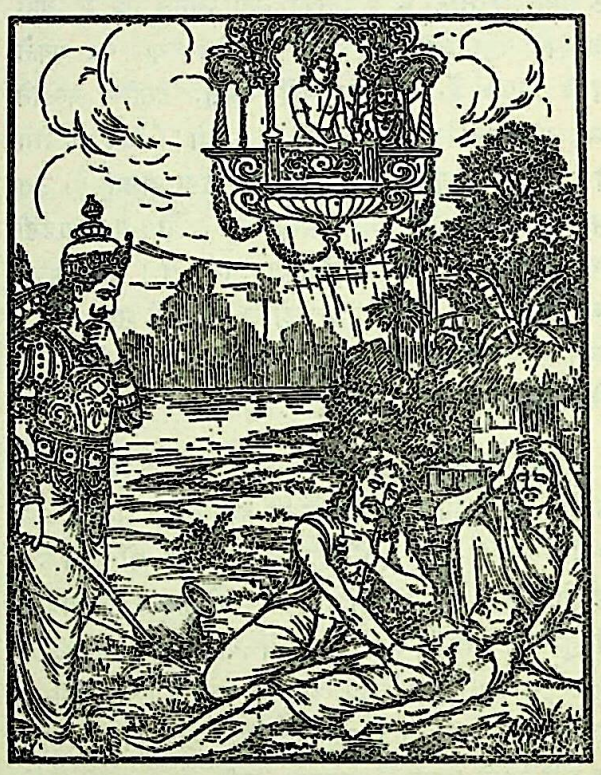

सिधारे। तपस्वी मुनिने अपनी पत्नीके साथ सरयूके जलमें प्रवेश करके पुत्रको जलाञ्जलि दी और मुझसे कहा—'राजन्! तुम आज ही मुझे भी मार डालो, मरनेमें अब मुझे तनिक भी कष्ट नहीं होगा। मेरे एक ही पुत्र था, जिसे तुमने अपने बाणका निशाना बनाकर मुझे पुत्रहीन कर दिया। तुमने अज्ञानवश मेरे बालककी हत्या की है, इसलिये तुम्हें भी मैं अत्यन्त भयंकर एवं दुःखदायी शाप दूँगा। इस समय पुत्रके वियोगसे मुझे जैसा कष्ट हो रहा है, ऐसा ही तुम्हें भी होगा। तुम भी पुत्रशोकसे ही कालके गालमें जाओगे। क्षत्रिय होकर अनजानमें तुमने वैश्यजातीय मुनिका वध किया है; इसलिये यद्यपि तुम्हें ब्रह्महत्याका पाप तो नहीं लगेगा, तथापि ऐसी ही भयानक और प्राण लेनेवाली अवस्था तुम्हें भी प्राप्त होगी।'

"इस प्रकार मुझे शाप देकर वे बहुत देरतक करुण स्वरसे विलाप करते रहे और फिर अपने शरीरोंको जलती हुई चिता-में डालकर स्वर्गको चले गये। देवि! इस प्रकार बाल-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

स्वभावके कारण शब्दवेधी बाण मारकर मैंने जो पाप किया था, वह आज इस चिन्ताके समय मुझे स्वयं ही स्मरण हो आया है। अपथ्य वस्तुओंके साथ अन्न ग्रहण करनेपर जैसे रोग पैदा हो जाता है, वैसे ही उस पापकर्मका यह फल उपस्थित हुआ है। उन उदार मुनिवरका वचन आज सफल हो रहा है।"

इतना कहकर राजा दशरथ भयभीत होकर रोने लगे और अपनी पत्नीसे बोले—'कौसल्ये! अब मैं पुत्रशोकसे प्राणत्याग करूँगा। इस समय मैं तुम्हें अपनी आँखोंसे देख नहीं पाता हूँ, तुम मेरा स्पर्श करो। मरणासन्न मनुष्योंको कुछ दिखायी नहीं देता। यदि रामचन्द्र आकर एक बार मेरा स्पर्श करें अथवा यह वैभव और युवराजपद स्वीकार कर लें, तो मेरा विश्वास है कि मैं जी सकता हूँ। मैंने रामके साथ जो बर्ताव किया है वह मेरे योग्य नहीं था; किन्तु रामने मेरे साथ जो व्यवहार किया है, वह सर्वथा उन्हींके योग्य है। देवि! अब मेरी आँखें तुम्हें नहीं देख पातीं, स्मरणशक्ति लुप्त होती जा रही है। इससे बढ़कर दुःख मेरे लिये और क्या हो सकता है कि मैं प्राणान्तके समय सत्य-पराक्रमी धर्मज्ञ रामको नहीं देख रहा हूँ। जिनकी समता करनेवाला संसारमें दूसरा कोई नहीं है, उन प्रिय पुत्र रामचन्द्र-के न देखनेका शोक मेरे प्राणोंको सुखाये डालता है। वे मनुष्य नहीं, देवता हैं—जो आजके पंद्रहवें वर्ष वनसे लौटनेपर रामका सुन्दर कुण्डलोंसे सुशोभित मुख देखेंगे, जो कमलके समान नेत्र, सुन्दर भौंहें, स्वच्छ दाँत और मनोहर नासिकासे शोभायमान रामके मुख-चन्द्रका दर्शन करेंगे, वे धन्य हैं। कौसल्ये! मेरे चित्तपर मोह छा रहा है, हृदय विदीर्ण होता जा रहा है, इन्द्रियोंसे संयोग होनेपर भी मुझे शब्द, स्पर्श और रस आदि विषयोंका अनुभव नहीं होता। जैसे तेल समाप्त हो जानेपर दीपककी अरुण ज्योति विलीन हो जाती है, उसी प्रकार चेतनाके नष्ट होनेसे मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी शक्तिका भी नाश हो गया है। जिस प्रकार नदीका वेग अपने ही किनारेको काटकर गिराता है उसी तरह मेरा अपना ही उत्पन्न किया हुआ शोक मेरी चेतनाका लोप कर रहा है। हा महाबाहु रघुनन्दन! हा मेरे दुःख दूर करनेवाले राम! हा पितृवत्सल! हा नाथ! हा पुत्र! तुम कहाँ चले गये?'

इस प्रकार राममाता कौसल्या और सुमित्राके निकट विलाप करते हुए महाराज दशरथने अत्यन्त दुःखसे पीड़ित होकर आधी रातके समय अपने प्राणोंको त्याग दिया। कौसल्या और सुमित्राने राजाको देखा, उनके शरीरका स्पर्श किया और 'हा नाथ!' की पुकार मचाती वे दोनों रानियाँ पृथ्वीपर गिर पड़ीं। कौसल्या जमीनपर पड़ी-पड़ी छटपटाने लगीं। उनका धूलिधूसरित शरीर श्रीहीन दिखायी देने लगा। महाराजकी कैकेयी आदि अन्य रानियाँ भी शोकसे सन्तप्त होकर रोने लगीं और अचेत होकर गिर पड़ीं। उनके

आर्तनादसे सारा राजमहल गूँज उठा। वहाँ बहुत-से मनुष्योंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी। चारों ओर करुणक्रन्दनकी तुमुलध्वनि सुनायी देने लगी। राजाके बन्धु-बान्धव सन्तापसे पीड़ित हो गये। दिवंगत महाराजका वह भवन तत्काल आनन्दशून्य हो गया। उसकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी। उसकी ओर देखनेसे भी दुःख होता था। राजा दशरथका शरीर प्रभाहीन सूर्यकी भाँति निस्तेज हो गया। उसे देखकर कौसल्याकी आँखोंमें आँसू भर आये। वे राजाके मस्तकको गोदमें ले शोकाकुल होकर कहने लगीं—'राम मुझे छोड़कर वनमें चले गये और मेरे स्वामी स्वर्ग सिधारे; अब मैं साथियों-से बिछुड़कर दुर्गम पथमें पड़े हुए पथिककी भाँति जीवित नहीं रह सकती। आज मैं विधवा और अनाथ हो गयी। यह बात मेरे धार्मिक पुत्र रामको मालूम नहीं है। वे तो यहाँसे ऐसी जगह चले गये, जहाँ जीवित रहते हुए भी उनका दर्शन होना दुर्लभ है। अतः मैं भी आज ही देहत्याग करूँगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मैं पतिव्रता हूँ, पतिके शरीरको गोदमें लेकर चिताकी आगमें प्रवेश कर जाऊँगी।'

इस तरह तपस्विनी कौसल्या दुःखसे आतुर होकर राजाके शरीरको पकड़े विलाप कर रही थीं; उस समय मन्त्रियोंने उनको वहाँसे हटाया और महाराजके शरीरको तेलसे भरे हुए कड़ाहमें रख दिया। तदनन्तर वे वसिष्ठ आदिकी आज्ञासे आगेका काम देखने लगे। राजाके मन्त्री शास्त्रकी सब बातें जानते थे; उन्होंने पुत्रके बिना उनके शरीरका दाह-संस्कार करना उचित नहीं समझा, इसलिये उसे सुरक्षित रख दिया। जब सचिवोंने राजाके शरीरको तैलपूर्ण कड़ाहमें सुलाया तो सब रानियाँ हाहाकार करके विलाप करने लगीं। उनके नेत्र आँसुओंके झरने-से हो गये। वे हाथ उठाकर दीनभावसे रोने लगीं। उनका हृदय शोकसे सन्तप्त हो उठा। वे कहने लगीं—'हा महाराज! हम सत्यप्रतिज्ञ एवं सदा प्रिय बोलनेवाले अपने पुत्र रामसे तो बिछुड़ी ही थीं, अब आप भी क्यों हमारा परित्याग कर रहे हैं? जो हमारे और आपके भी रक्षक तथा प्रभु थे, वे मनस्वी रामचन्द्र राजलक्ष्मी छोड़कर वनको चले गये। वीरवर राम और आपके भी न रहनेसे हमारे ऊपर बड़ा भारी संकट आ गया, जिससे हम मोहित हो रही हैं। अब कैकेयीके साथ हम कैसे रह सकेंगी? जिसने राजाका तथा राम, लक्ष्मण और सीताका भी त्याग कर दिया, वह दूसरे किसका परित्याग नहीं करेगी?'

इस प्रकार राजा दशरथकी स्त्रियाँ अत्यन्त शोकाकुल हो आँसू बहा-बहाकर विलाप कर रही थीं। उनका आनन्द लुट गया था। नक्षत्रहीना रात्रि और पतिविहीना नारीकी भाँति अयोध्यापुरी भी महामना महाराज दशरथके बिना श्रीहीन हो गयी। नगरके सभी मनुष्य आँसू बहा रहे थे। समस्त कुलाङ्गनाएँ हाहाकार कर रही थीं। इस तरह शोकमें ही सारा दिन बीत गया। सूर्य अपनी किरणोंको समेटकर अस्त हो गये और रात्रिका अन्धकार फैल गया। नगरकी सड़कों और चौराहोंपर आँसू बहाते हुए मनुष्योंकी भीड़ एकत्रित दिखायी देने लगी। झुंड-के-झुंड स्त्री और पुरुष एक साथ खड़े होकर भरतकी माता कैकेयीको कोसने लगे। राजाके मरनेसे सभी शोकार्त हो रहे थे। किसीके मनमें शान्ति नहीं थी।

## भरतका अपने मामाके यहाँसे अयोध्यामें आना

अयोध्यावासियोंकी वह रात्रि भी रोते-कलपते ही बीती। सूर्योदय होनेपर राज्यका प्रबन्ध करनेवाले ब्राह्मण-लोग दरबारमें एकत्रित हुए। मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम और महायशस्वी जाबालि—ये सभी ब्राह्मण राजपुरोहित वसिष्ठजीके सामने बैठकर मन्त्रियोंके साथ अपनी अलग-अलग राय देने लगे। वे बोले—'महाराज दशरथ स्वर्गगामी हो गये, श्रीरामचन्द्रजी वनमें निवास करते हैं, तेजस्वी लक्ष्मण भी रामके ही साथ चले गये और भरत-शत्रुघ्न केकय-देशमें अपने नानाके घर विराज रहे हैं। इन इक्ष्वाकुवंशी राजकुमारोंमेंसे किसीको आज ही राजा बनाया जाय; क्योंकि राजाके बिना हमारे इस राज्यका नाश हो जायगा। जहाँ कोई राजा नहीं होता, उस देशके खेतोंमें बीज नहीं बोये जा सकते तथा पुत्र पिताके और स्त्री पतिके वशमें नहीं रह सकती। राजहीन देशमें न धन अपना होता है, न स्त्री; फिर सत्य तो रह ही कैसे सकता है? अराजक देशमें मनुष्योंकी कोई पंचायत नहीं रहती, राष्ट्रको उन्नतिशील बनानेवाले उत्सव और सङ्घ भी बढ़ने नहीं पाते, कृषि और गोरक्षासे जीविका चलानेवाले धनवान् मनुष्य सुरक्षित नहीं रह सकते, अपने घरका दरवाजा खोलकर नहीं सो सकते तथा दूर देशमें जाकर व्यापार करनेवाले बेचनेकी वस्तुएँ लेकर कुशलपूर्वक मार्ग तय नहीं कर सकते। अराजकता फैल जानेपर अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति और प्राप्तकी रक्षा नहीं हो सकती। राजाके न रहनेपर सेना भी शत्रुओंका सामना नहीं कर सकती। जैसे पानीके बिना नदी, घासके बिना वन और ग्वालेके बिना गौओंकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार राजाके बिना राज्य शोभा नहीं पाता। अराजक देशमें कोई भी मनुष्य किसी वस्तुको अपनी नहीं कह सकता। मछलियोंकी तरह सब एक-दूसरेको खाने लगते हैं। जैसे दृष्टि सदा शरीरके हितमें प्रवृत्त रहती है, उसी प्रकार राजा राज्यके भीतर सत्य और धर्मका प्रवर्तक होता है। राजा ही सत्य है, राजा ही धर्म है और राजा ही कुलवानोंका कुल है। मनुष्योंका माता-पिता और हितकारी भी राजा ही है। अपने उदार चरित्रके कारण राजा यम, कुबेर, इन्द्र और वरुणसे भी बढ़ जाता है। यदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

लोकमें साधु और असाधुका विभाग करनेवाला राजा न हो तो सारा संसार अन्धकारसे आच्छन्न-सा हो जाय, कुछ भी सूझ न पड़े।

मार्कण्डेय आदिके वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठने मित्रों, मन्त्रियों और समस्त ब्राह्मणोंको इस प्रकार उत्तर दिया—'राजा दशरथने जिनको राज्य दिया है, वे भरत इस समय अपने भाई शत्रुघ्नके साथ मामाके यहाँ सुखपूर्वक निवास करते हैं; अतः उन दोनों भाइयोंको बुलानेके लिये शीघ्र ही तेज चलनेवाले दूत घोड़ोंपर सवार होकर यहाँसे जायँ। इसके सिवा हमलोग और क्या विचार कर सकते हैं?' इसपर सबने कहा—'हाँ! अवश्य भेजे जायँ।' उनका कथन सुनकर वसिष्ठजीने दूतोंको सम्बोधित करके कहा—"सिद्धार्थ! विजय! जयन्त! अशोक! और नन्दन! तुम सब यहाँ आओ और तुम्हें जो काम करना है, उसे सुनो। तुम जहाँतक हो सके शीघ्र ही तेज घोड़ोंपर सवार होकर राजगृह नामके नगरको जाओ और किसी प्रकारका शोक प्रकट न करते हुए मेरी आज्ञाके अनुसार भरतसे इस प्रकार कहो—'कुमार! पुरोहित और समस्त मन्त्रियोंने आपसे कुशल-मङ्गल कहा है। अब आप यहाँसे शीघ्र ही चलिये। अयोध्यामें आपसे अत्यन्त आवश्यक काम है। भरतको श्रीरामचन्द्रके वनवास और पिताकी मृत्युका हाल मत बतलाना। केकयराज और भरतको भेंट देनेके लिये रेशमी वस्त्र और उत्तम आभूषण लेकर तुम यहाँसे तुरंत चले जाओ।"

केकय-देशको जानेवाले वे दूत रास्तेका खर्च ले उत्तम घोड़ोंपर सवार होकर तुरंत चल दिये और बहुत दूरका मार्ग तय करके बिना किसी क्लेशके गिरिव्रज नामके उत्तम नगरमें जा पहुँचे। जिस रात्रिके व्यतीत होनेपर दूतोंने उस नगरमें प्रवेश किया था, उसी रातमें भरतने एक अप्रिय स्वप्न देखा था। उस अशुभसूचक स्वप्नको देखनेके कारण भरतके मनमें बड़ी चिन्ता हुई, उन्हें चिन्तित जान अनेकों प्रियवादी मित्र एक गोष्ठी करके उनका क्लेश दूर करनेकी इच्छासे तरह-तरहकी बातें कहने लगे। मनोविनोदके कई साधन उपस्थित करनेपर भी जब भरतका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ, तो उनके एक मित्रने पूछा—'सखे! तुम मित्रोंकी मण्डलीमें बैठकर भी आज उदास क्यों दिखायी देते हो?

मित्रके इस प्रकार पूछनेपर भरतने उत्तर दिया—'सखे! मेरे दुःखका जो कारण है, उसे बताता हूँ; सुनो। मैंने आज सपनेमें पिताजीको देखा है। उनका मुख म्लान हो रहा था, बाल खुले थे और वे गोबरसे भरे हुए एक गंदे कुण्डमें पर्वतकी चोटीसे गिर पड़े थे। फिर उन्होंने तिल और भात खाया; इसके बाद उनके सारे शरीरमें तेल लगाया गया और उनका मस्तक नीचे करके बारंबार उन्हें तेलमें डुबाया गया। दूसरा स्वप्न मैंने यह देखा है कि समुद्र सूख गया है, चन्द्रमा पृथ्वीपर पड़े हैं, सारा जगत् उपद्रवसे आक्रान्त और अन्धकारसे आच्छन्न हो रहा है। पृथ्वी फट गयी है, नाना प्रकारके वृक्ष सूख गये हैं, पर्वत गिर पड़े हैं और उनसे धुआँ निकल रहा है। साथ ही यह भी देखा कि धर्मात्मा राजा दशरथ लाल रंगकी माला पहने और लाल चन्दन लगाये गदहे जुते हुए रथपर बैठकर बड़ी तेजीसे दक्षिणकी ओर चले जा रहे हैं। यही कारण है कि मैं दुखी हो रहा हूँ। मेरा गला सूख-सा रहा है, मन अस्वस्थ-सा हो चला है, आवाज बदल गयी है और कान्ति भी फीकी पड़ गयी है; किन्तु इसका कारण नहीं जान पड़ता। महाराजके सम्बन्धमें सोचता हूँ, तो मेरे हृदयका यह महान् भय दूर नहीं होता।'

इस प्रकार भरत जब अपने मित्रोंको स्वप्नका वृत्तान्त सुना रहे थे, उसी समय वे दूत उस रमणीय नगर राजगृहमें आकर केकयराजसे मिले। राजा और राजकुमारने उनका यथावत् सम्मान किया। फिर वे केकयनरेशके चरणोंमें प्रणाम करके भरतसे बोले—'कुमार! पुरोहित और समस्त मन्त्रियोंने आपसे कुशल-मंगल कहा है; अब आप यहाँसे शीघ्र ही चलिये, अयोध्यामें आपसे बहुत आवश्यक काम है। ये बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण आप स्वयं भी ग्रहण कीजिये और अपने मामाको भी दीजिये।' दूतोंकी बात सुनकर भरतने कहा—'मैं महाराजसे पूछता हूँ कि दूत मुझे यहाँसे शीघ्र अयोध्या चलनेके लिये कह रहे हैं, आपकी क्या आज्ञा है?' यों कहकर वे दूतोंकी प्रेरणासे अपने नानाके पास जाकर बोले—'राजन्! मैं दूतोंके कहनेसे पिताजीके पास जा रहा हूँ। पुनः जब आप मुझे याद करेंगे, यहाँ आ जाऊँगा।' भरतके इस प्रकार कहनेपर उनके नाना केकयनरेशने प्यारसे उनका मस्तक सूँघा और यह कल्याणमय वचन कहा—'तात! जाओ, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। तुम अपनी माता और पितासे यहाँकी कुशल कहना तथा पुरोहित वसिष्ठजी, अन्यान्य ब्राह्मण एवं महान् धनुर्धर श्रीराम और लक्ष्मणको भी हमारा कुशल-समाचार सुनाना।'

ऐसा कहकर केकयनरेशने भरतका सत्कार करके उन्हें बहुत-से उत्तम हाथी, चित्र-विचित्र कम्बल, मृगचर्म, बहुत-



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा धन, दो हजार सोनेकी मुहरें और सोलह सौ घोड़े प्रदान किये तथा अपने प्रिय, विश्वासपात्र एवं गुणवान् मन्त्रियोंको उनके साथ जानेके लिये आज्ञा दी। उस समय भरतके हृदयमें बड़ी भारी चिन्ता हो रही थी; इसके दो कारण थे—एक तो दूत वहाँसे चलनेके लिये जल्दी मचा रहे थे, दूसरे उन्हें दुःस्वप्न भी हुआ था। तदनन्तर वे अपने नाना तथा मामासे पूछकर शत्रुघ्नके साथ रथपर सवार हुए और राजगृहसे निकलकर पूर्व दिशाकी ओर चले। मार्गमें सात रात्रि व्यतीत करके आठवें दिन उन्होंने अयोध्यापुरीका दर्शन किया। सामने दिखायी देनेवाली पुरीकी ओर दृष्टि डालकर भरतने सारथिसे कहा—'सूत! पवित्र उद्यानोंसे सुशोभित यह यशस्विनी नगरी आज मुझे प्रसन्न नहीं मालूम होती, जंगल-सी जान पड़ती है। अब यहाँ पहलेकी भाँति घोड़ों, हाथियों तथा दूसरी-दूसरी सवारियोंसे आते-जाते मनुष्य नहीं दिखायी पड़ते। मतवाले मृगों और पक्षियोंका मनोहर शब्द अभीतक सुनायी नहीं पड़ता। भेरी, मृदङ्ग और वीणाकी ध्वनि, जो पहले यहाँ निरन्तर हुआ करती थी, आज क्यों बंद हो गयी है? मुझे अनेकों प्रकारके अनिष्ट-सूचक अपशकुन दिखायी दे रहे हैं। इससे मेरे बान्धवोंकी कुशल सर्वथा दुर्लभ जान पड़ती है और यही सोचकर मेरा हृदय बहुत दुखी हो रहा है।'

इस प्रकार बातें करते हुए भरतने अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। उस समय उनके मुखपर विषाद छाया हुआ था, हृदय खिन्न था, सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही थीं और वे मन-ही-मन डरे हुए थे। पुरीमें प्रवेश करके वे थके हुए अश्वपतिके सारथिसे बोले—'सूत! मैं बिना कारण ही इतनी उतावलीके साथ क्यों बुलाया गया, इस बातका विचार करके मेरे हृदयमें अशुभकी आशंका होती है। मेरा दीनता-रहित स्वभाव भी अपनी स्थितिसे भ्रष्ट-सा हो रहा है। अबसे पहले मैंने राजाओंके विनाशके जो-जो लक्षण सुन रखे हैं, वे सभी यहाँ मुझे दिखायी दे रहे हैं। गृहस्थोंके घरोंमें झाड़ू नहीं लगी है, वे रूखे और श्रीहीन दिखायी दे रहे हैं। देवमन्दिरोंकी पूर्ववत् शोभा नहीं रही, वे मनुष्योंसे शून्य हो रहे हैं। देवप्रतिमाओंकी पूजा नहीं होती, यज्ञशालाओंमें यज्ञ होने बंद हो गये हैं, फूल और मालाओंके बाजारमें आज बिकनेकी कोई वस्तु दिखायी नहीं देती। यहाँ पहलेके समान बनिये नहीं दृष्टिगोचर होते, चिन्तासे उनका हृदय उद्विग्न जान पड़ता है और अपना व्यापार नष्ट हो जानेके कारण वे संकुचित हो रहे हैं। नगरके सभी स्त्री-पुरुषोंका मुख मलिन है, उनकी आँखोंमें आँसू भरे हैं और सब-के-सब दीन, चिन्तित, दुर्बल एवं उत्कण्ठित दीख पड़ते हैं।' सारथिसे ऐसा कहकर भरत इन अनिष्टसूचक चिह्नोंको देखते हुए दुःखित हृदयसे राजमहलमें गये। उस नगरमें जो पहले कभी नहीं हुई थीं, ऐसी अप्रिय बातोंको देखकर उन्होंने अपना मस्तक नीचे झुका लिया और खिन्न चित्तसे पिताके भवनमें प्रवेश किया।

## कैकेयीके मुँहसे उसकी करतूत सुनकर भरतका उसे धिक्कारना

पिताके भवनमें जानेपर भी जब भरतको उनका दर्शन नहीं हुआ, तो वे माताके महलमें गये। धर्मात्मा भरतने भीतर प्रवेश करके देखा—वह सारा घर श्रीहीन हो रहा है; फिर उन्होंने माताके शुभ चरणोंका स्पर्श किया। कैकेयीने अपने यशस्वी पुत्र भरतको छातीसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा और उन्हें गोदमें बिठाकर बड़े प्यारसे पूछा—'बेटा! तुम्हें अपने नानाके घरसे चले आज कितने दिन हुए, मार्गमें कितनी रातें बीतीं? तुम्हारे नाना कुशलसे तो हैं? तुम्हारे मामा युधाजित् भी सकुशल हैं न? मुझे सब बातें बताओ।' माताके पूछनेपर कमललोचन भरतने कहा—'माँ! ननिहाल छोड़े आज मुझे सात रातें हो गयीं। मेरे नाना और मामा सब सकुशल हैं। केकयनरेशने मुझे जो धन और रत्न प्रदान किये हैं, उनके भारसे मार्गमें सब वाहन थक गये थे, इसलिये मैं दूतोंके कहनेसे पहले ही चला आया हूँ। माँ! अब मैं कुछ पूछना चाहता हूँ, उसका उत्तर दो। तुम्हारी यह शय्या—यह सुवर्णभूषित पलँग इस समय सूना है। महाराजके सेवक आज प्रसन्न नहीं जान पड़ते। पिताजी प्रायः तुम्हारे ही भवनमें रहा करते हैं, उनके दर्शनकी इच्छासे ही मैं यहाँ आया हूँ; पर आज उन्हें यहाँ नहीं देख रहा हूँ। बताओ, वे कहाँ हैं? मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करूँगा। मेरी बड़ी माता कौसल्याके घरमें तो वे नहीं हैं?'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैकेयी राज्यके लोभसे मोहित हो रही थी। वह भरतको मानो कोई प्रिय समाचार सुना रही हो, इस प्रकार अत्यन्त अप्रिय बात बोली—'बेटा ! तुम्हारे पिता महाराज दशरथ बड़े महात्मा, तेजस्वी, यज्ञशील और सत्पुरुषोंको शरण देनेवाले थे। एक दिन सब प्राणियोंकी जो गति होती है, वही उनकी भी हुई है।' भरत धार्मिक कुलमें उत्पन्न हुए थे और उनका हृदय शुद्ध था। माताकी बात सुनकर वे पिताके शोकसे पीड़ित होकर सहसा पृथ्वीपर गिर पड़े और 'हाय ! मैं मारा गया' इस प्रकार अत्यन्त दीन और दुःखमय वचन कहकर विलाप करने लगे। भरतको शोकाकुल होकर भूमिपर पड़े देख कैकेयीने उन्हें उठाते हुए कहा—'राजन् ! उठो, उठो; धरतीपर क्यों पड़े हो ? तुम्हारे-जैसे सत्पुरुष शोक नहीं करते। तुम्हारी बुद्धि सदाचार और वेद-वाक्योंका अनुसरण करनेवाली है, अतः उसे दान और यज्ञमें लगाना चाहिये।' भरत धरतीपर पड़े-पड़े बहुत देरतक रोते रहे, उसके बाद अत्यन्त शोकसे सन्तप्त होकर मातासे बोले—'मैंने तो यह सोचा था कि महाराज श्रीरामका राज्याभिषेक करेंगे और स्वयं यज्ञकी दीक्षा लेंगे। इसी विचारसे मैंने बड़े हर्षके साथ वहाँसे यात्रा की थी; किन्तु यहाँ आनेपर सब बात विपरीत दिखायी दी। आज सर्वदा मेरा प्रिय और हित करनेवाले पिताजीको मैं नहीं देखता हूँ, इससे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। माँ ! महाराजको ऐसा क्या रोग हो गया था, जिससे मेरे आनेके पहले ही वे चल बसे। श्रीराम आदि सब लोग धन्य हैं, जिन्होंने स्वयं उपस्थित रहकर पिताका अन्त्येष्टि-संस्कार किया। जिनका मैं परम प्रिय दास हूँ तथा जो अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीको तुम शीघ्र मेरे आनेकी सूचना दो; इस समय वे ही मेरे भ्राता, पिता और बन्धु हैं। धर्मके ज्ञाता श्रेष्ठ पुरुषके लिये बड़ा भाई पिताके समान होता है; मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करूँगा। अब वे ही मेरे आश्रय हैं। आर्ये ! धर्मका आचरण जिनका स्वभाव बन गया था तथा जो बड़ी दृढताके साथ उत्तम व्रतका पालन करते थे, वे मेरे सत्यपराक्रमी पिता महाभाग राजा दशरथ क्या कहकर मरे थे ? मैं उनका अन्तिम सन्देश सुनना चाहता हूँ।'

भरतके इस प्रकार पूछनेपर कैकेयीने सब बात ठीक-ठीक बता दी। वह कहने लगी—"बेटा ! बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ तुम्हारे महात्मा पिताने 'हा राम ! हा सीते ! हा लक्ष्मण !' इस प्रकार विलाप करते हुए परलोककी यात्रा की। उन्होंने अन्तमें यही कहा था कि जो लोग सीताके साथ लौटकर आये हुए राम और महाबाहु लक्ष्मणको देखेंगे, वे ही कृतार्थ होंगे।" माताकी यह दूसरी अप्रिय बात सुनकर भरतका दुःख और भी बढ़ गया। उन्होंने विषादसे मलिन-वदन होकर मातासे पुनः प्रश्न किया—'माँ ! माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इस समय भाई लक्ष्मण और सीताके साथ कहाँ हैं ?' तब कैकेयी प्रियबुद्धिसे यह अप्रिय संवाद सुनाती हुई बोली—'पुत्र ! राजकुमार राम वल्कल-वस्त्र धारण करके सीताके साथ दण्डकवनमें चले गये हैं। लक्ष्मणने भी उन्हींका अनुसरण किया है। [ उनके वनमें जानेका कारण इस प्रकार है— ] मेरे सुननेमें आया था कि अयोध्यामें रामचन्द्रका राज्याभिषेक होने जा रहा है। तब मैंने तुम्हारे पितासे तुम्हारे लिये राज्य और रामके लिये वनवासकी प्रार्थना की। उन्होंने अपने सत्यप्रतिज्ञ स्वभावके अनुसार मेरी माँग पूरी की। फिर अपने प्रिय पुत्रको न देखनेके कारण यशस्वी राजाने शोकसे पीडित होकर प्राण त्याग दिये। धर्मज्ञ ! अब तुम राजपद स्वीकार करो। तुम्हारे लिये ही मैंने यह सब कुछ किया है। शोक-संताप छोड़कर धैर्यका आश्रय लो। अब यह नगर और अकण्टक राज्य तुम्हारे ही अधीन है। अतः विधि-विधानके ज्ञाता वसिष्ठ आदि प्रमुख ब्राह्मणोंके साथ तुम महाराजका अन्तिम संस्कार करके इस पृथ्वीके राज्यपर अपना अभिषेक कराओ।'

पिताके मरण और भाइयोंके वनवासका हाल सुनकर भरत दुःखसे सन्तप्त हो उठे और इस प्रकार बोले—'पापिनी! तेरे कारण मैं हर तरहसे मारा गया। पितासे तो वञ्चित हुआ ही, पिताके समान बड़े भाईसे भी विलग हो गया। अब मैं शोकमें डूब रहा हूँ। मुझे राज्य लेकर क्या करना है ? तूने दुःख-पर-दुःख दिया, घावपर नमक छिड़क दिया; मेरे इस कुलका विनाश करनेके लिये तू कालरात्रि बनकर यहाँ आयी है। मेरे पिता तुझे पहचान न सके, उन्होंने अनजानमें आगके अंगारे पकड़ लिये। पापपर ही दृष्टि रखनेवाली तुझे पाकर मेरे सत्यप्रतिज्ञ एवं महान् यशस्वी पिता राजा दशरथको भयंकर शोकाग्निमें झुलसकर प्राण त्यागने पड़े। बता, तूने मेरे धर्मवत्सल पिताका विनाश क्यों किया ? बड़े भाई श्रीरामको क्यों घरसे निकाला ? आर्य श्रीरामचन्द्रजी धर्मात्मा हैं। गुरुजनोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसे वे अच्छी तरह जानते हैं; इसलिये उनका अपनी माताके प्रति जैसा बर्ताव था, वैसा ही उत्तम व्यवहार वे तेरे साथ भी करते थे। मेरी बड़ी माता कौसल्या भी धर्मपर दृष्टि रखकर तेरे साथ बहिनका-सा व्यवहार करती हैं। उनके महात्मा पुत्रको चीर और वल्कल पहनाकर तूने वनमें भेज दिया, फिर भी तुझे शोक क्यों नहीं हो रहा है ? मैं समझता हूँ तू लोभके वशमें होनेके कारण अबतक यह जान न सकी कि मेरा श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कैसा भाव है। तभी तूने राज्यके लिये इतना बड़ा अनर्थ कर डाला। यदि श्रीराम तुझे सदा अपनी माताके समान नहीं देखते होते तो तेरी-जैसी पापिनीका त्याग करनेमें मुझे तनिक भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हिचक न होती। तू उत्तम चरित्रसे गिर गयी है। मेरे पूर्वजोंने जिसकी सदा निन्दा की है, वह पापपर ही दृष्टि रखनेवाली बुद्धि तुझमें कैसे उत्पन्न हो गयी? इस कुलमें जो सबसे बड़ा होता है, उसीका राज्याभिषेक होता है; दूसरे भाई सावधानीके साथ बड़ेकी आज्ञाके अधीन रहकर कार्य करते हैं। इस नियमका सभी राजाओंके यहाँ समानरूपसे पालन होता है; किन्तु इक्ष्वाकु-कुलके राजाओंमें इसका विशेष आदर है। जिनकी एकमात्र धर्मसे ही रक्षा होती आयी है और जो कुलोचित सदाचारके पालनसे ही सुशोभित हुए हैं, उनका वह चरित्रविषयक अभिमान आज तेरे कारण दूर हो गया। तूने भी महान् ऐश्वर्यशाली केकयराजके वंशमें जन्म लिया है, फिर भी तेरे हृदयमें यह निन्दित मोह कैसे उत्पन्न हो गया? तेरा विचार बड़ा ही पापपूर्ण है। मैं तेरी इच्छा कदापि पूर्ण न करूँगा। तूने मेरे लिये उस विपत्तिकी नींव डाल दी है, जो मेरे प्राणतक ले सकती है। मैं श्रीरामको लौटा लाऊँगा और उन तेजस्वी महापुरुषका दास बनकर शान्तचित्तसे जीवन

व्यतीत करूँगा। क्रूरहृदया कैकेयी! तू राज्यसे भ्रष्ट हो जा। धर्मने तेरा त्याग कर दिया है, इसलिये नरकमें जा। पिताका लोक तुझे न मिले। तूने इस भयंकर कर्मके द्वारा जो इतना बड़ा पाप किया है, उसने मेरे लिये भी भय उपस्थित कर दिया है। तेरे कारण मेरे पिताकी मृत्यु हुई, श्रीरामको वनमें जाना पड़ा और मुझे समस्त संसारकी दृष्टिमें अपयशका भागी बनना पड़ा। राज्यके लोभमें पड़कर क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाली पापिनी! तू माताके रूपमें मेरी दुश्मन है। अब मुझसे न बोल, कौसल्या, सुमित्रा तथा जो मेरी अन्य माताएँ हैं, वे सब तुझ कुलकलंकिनीके कारण ही महान् दुःखमें पड़ गयी हैं। अरी पापिनी! धर्मपरायणा माता कौसल्याको पति और पुत्रसे वञ्चित करके तू किस लोकमें जायगी? कौसल्याके पुत्र श्रीराम मेरे बड़े भाई और पिताके समान हैं। वे जितेन्द्रिय और बन्धुओंके आश्रयदाता हैं। क्या तू उन्हें अबतक समझ नहीं सकी? मैं कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रको यहाँ बुलाकर स्वयं मुनिजन-सेवित वनमें निवास करूँगा, किन्तु तुम्हारे द्वारा सञ्चित किये हुए पापके बोझको नहीं ढो सकूँगा। अब तू जलती हुई आगमें प्रवेश कर जा या स्वयं दण्डकारण्यमें चली जा अथवा गलेमें फाँसी लगाकर प्राण दे दे। इसके सिवा तेरे लिये दूसरी कोई गति नहीं है। सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी जब अयोध्याकी भूमिपर पदार्पण करेंगे, तभी मेरा कलंक दूर होगा और तभी मैं कृतार्थ हो सकूँगा।'

यह कहकर भरत तोमर और अङ्कुशसे पीड़ित हाथीकी भाँति मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और क्रोधमें भरकर फुफकारते हुए साँपकी तरह लंबी साँस खींचने लगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## भरतका कौसल्याके आगे शपथ खाना, दशरथका दाह-कर्म और श्राद्ध करना तथा शत्रुघ्नका मन्थराको दण्ड देना

बहुत देरके बाद जब भरतको चेत हुआ तो वे उठे और आँसूभरे नेत्रोंसे माताकी ओर देखकर मन्त्रियोंके सामने ही उसकी निन्दा करते हुए कहने लगे—'मन्त्रिवरो ! मैं राज्य नहीं चाहता और न मैंने इसके लिये कभी मातासे बातचीत ही की है। महाराजने जिस अभिषेकका निश्चय किया था, उसका भी मुझे पता नहीं था; क्योंकि उस समय मैं शत्रुघ्नके साथ दूर देशमें था। इसी प्रकार महात्मा श्रीरामके वनवास और सीता तथा लक्ष्मणके निर्वासनकी भी मुझे खबर नहीं थी।'

जिस समय भरतजी इस प्रकार अपनी माताको बुरा-भला कह रहे थे, उनकी आवाज पहचानकर कौसल्याने सुमित्रासे कहा—'कैकेयीके पुत्र भरत आ गये हैं; वे बड़े दूरदर्शी हैं; मैं उन्हें देखना चाहती हूँ।' यह कहकर कौसल्या काँपती हुई भरतके पास चलीं। उधरसे राजकुमार भरत शत्रुघ्नको साथ लिये कौसल्याके घरकी ओर चले आ रहे थे। उन्होंने देखा—माता कौसल्या दुःखसे व्याकुल एवं मूर्च्छित होकर मार्गमें पड़ी हैं। उनकी दशा देखकर दोनों भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ। वे उनकी गोदीसे लगकर फूट-फूटकर रोने लगे। कौसल्या भी रो पड़ीं और उन्हें छातीसे लगा अत्यन्त दुःखित होकर बोलीं—'कैकेयीने मेरे बेटेको वल्कल-वस्त्र पहनाकर वनमें भेज दिया, उसे वनवासी बना दिया; न जाने उसने ऐसा करनेमें क्या लाभ देखा है ? अब कैकेयी मुझे भी जल्दी ही वनमें भेज दे। जहाँ मेरे यशस्वी पुत्र राम हैं, वहीं मैं भी रहूँगी; अथवा सुमित्राको साथ लेकर मैं स्वयं ही जिस मार्गसे राम गये हैं, उसीसे वनको चली जाऊँगी। अथवा तुम्हीं आज मुझे जहाँ मेरा बेटा तप कर रहा है, वहाँ पहुँचा दो। धन-धान्यसे सम्पन्न तथा हाथी, घोड़े और रथोंसे भरा हुआ यह विशाल साम्राज्य कैकेयीने [ राजासे लेकर ] तुम्हींको दिया है।'

कौसल्याजी अत्यन्त शोकाकुल होकर इस प्रकार तरह-तरहसे विलाप करने लगीं। तब उनसे भरतने हाथ जोड़कर

कहा—'आर्ये ! यह जो कुछ हुआ है, इसकी मुझे बिल्कुल जानकारी नहीं थी; मैं सर्वथा निरपराध हूँ। आप जानती हैं कि श्रीरामचन्द्रजीमें मेरा कितना प्रगाढ़ प्रेम है। जिसकी सलाहसे आर्य श्रीरामचन्द्र वनमें गये हैं, उसको वही पाप लगे जो सेवकसे भारी काम कराकर उसे वेतन न देनेवाले स्वामीको लगता है। प्रजासे उसकी आमदनीका छठा भाग लेकर भी उसकी रक्षा न करनेवाले राजाको जो पाप होता है, यज्ञमें कष्ट सहनेवाले ऋत्विजोंको दक्षिणा देनेकी प्रतिज्ञा करके पीछे इनकार कर देनेवाले लोगोंको जिस पापका भागी होना पड़ता है तथा हाथी, घोड़े और रथोंसे भरे एवं अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे व्याप्त संग्राममें सत्पुरुषोंके धर्मका पालन न करनेवाले योद्धाओंको जो पाप लगता है, वह सारा पाप उस मनुष्यको प्राप्त हो जिसकी अनुमतिसे आर्य श्रीरामचन्द्रको वनमें भेजा गया हो। जिस दुष्टात्माने आर्यके वनवासमें परामर्श दिया हो, उसे बुद्धिमान् गुरुके द्वारा यत्नपूर्वक प्राप्त हुआ शास्त्रके सूक्ष्म विषयका उपदेश भूल जाय। राजा, स्त्री, बालक और वृद्धोंका वध करने तथा भृत्योंको त्याग देनेमें जो पाप होता है, वही श्रीरामके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वनं जानेमें सलाह देनेवालेको भी लगे। जिसके परामर्शसे आर्यको वनमें जाना पड़ा है, वह सायंकाल और प्रातः-कालमें नींद लेनेवालेके पापका भागी हो। आग लगाने-वाले, गुरुस्त्रीगामी और मित्रद्रोही पुरुषको जिस पापकी प्राप्ति होती है, वही उसे भी प्राप्त हो। वह सज्जनोंके लोकसे, सज्जनोंकी कीर्तिसे तथा सज्जनोंके द्वारा सेवित आचरणसे भी भ्रष्ट हो जाय। जो पानीको गंदा करता है, दूसरोंको जहर देता है और मार्गमें खड़ा होकर लड़ते हुए मनुष्योंका झगड़ा देखा करता है—उन्हें शान्त करनेकी चेष्टा नहीं करता, ऐसे पुरुषको जो-जो पाप लगते हैं, वे सभी पाप उसको भी लगें जिसकी सलाहसे आर्य श्रीरामचन्द्रजीको वनमें भेजा गया हो।'

इस प्रकार पति और पुत्रसे बिछुड़ी हुई कौसल्याको शपथके द्वारा आश्वासन देते हुए राजकुमार भरत दुःखसे आतुर होकर गिर पड़े। उनकी ऐसी दशा देखकर कौसल्या-ने कहा—'बेटा! तुमने शपथ खाकर मेरे निकलते हुए प्राणोंको रोक दिया। तुम्हारा चित्त धर्मसे विचलित नहीं हुआ, तुम सत्यप्रतिज्ञ हो; इसलिये तुम्हें सत्पुरुषोंके लोक प्राप्त होंगे।' यह कहकर कौसल्याने भ्रातृभक्त भरतको गोदमें उठा लिया और उन्हें गलेसे लगाकर वे बिलख-बिलखकर रोने लगीं। महात्मा भरत भी दुःखसे आर्त होकर विलाप कर रहे थे। उनका मन अत्यन्त शोकाकुल हो गया था और वे बारंबार दीर्घ निःश्वास ले रहे थे। इस तरह बड़े कष्टके साथ उनकी वह रात बीती।

तदनन्तर शोकमग्न कैकेयीकुमार भरतसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठने कहा—'राजकुमार! शोक छोड़ो और समयो-चित कर्तव्यपर ध्यान दो। अब राजा दशरथके शवको दाह-संस्कारके लिये ले चलनेका यथोचित प्रबन्ध करो।' महर्षि वसिष्ठके वचन सुनकर धर्मज्ञ भरतने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और मन्त्रियोंके द्वारा राजाके प्रेत-कृत्यका सारा प्रबन्ध कराया। राजा दशरथका शरीर तेलसे निकालकर भूमिपर उत्तम बिछौनेके ऊपर रखा गया। उस समय उनका चेहरा कुछ पीला पड़ गया था। उनको इस अवस्थामें देखकर भरतको बड़ा दुःख हुआ और वे इस प्रकार विलाप करने लगे—'राजन्! मैं परदेशमें था। आपके पास पहुँचने भी नहीं पाया था, तबतक ही धर्मज्ञ राम और महाबली लक्ष्मणको वनमें भेजकर आपने यह क्या किया? हाय! पुरुषश्रेष्ठ रामसे हीन मुझ दुखियाको छोड़कर आप कहाँ चले गये? हा तात! आपके स्वर्ग सिधारने और श्रीरामचन्द्र-जीके वनवासी हो जानेपर अब इस नगरमें प्रजाके योग-क्षेमका निर्वाह कौन करेगा? आपके बिना यह पृथ्वी विधवाके समान हो गयी। अब यह तनिक भी शोभा नहीं पाती।'

भरतको इस प्रकार व्याकुल चित्तसे विलाप करते देख महामुनि वसिष्ठने फिर कहा—'महाबाहो! राजाके लिये जो कुछ भी प्रेतकार्य करने हैं, उन्हें शान्तचित्त होकर करो!' भरतने 'तथास्तु' कहकर ऋत्विकी आज्ञा शिरोधार्य की और राजाकी अग्निशालासे जो अग्नि बाहर निकाली गयी थी, उसमें उन्होंने ऋत्विजों और याजकोंके द्वारा विधिपूर्वक हवन कराया। तत्पश्चात् महाराज दशरथके प्राणहीन शरीरको पालकीमें बिठाकर परिचारकगण उन्हें श्मशानभूमिको ले चले। मार्गमें शवके आगे-आगे राजकीय मनुष्य सोने-चाँदी तथा तरह-तरहके वस्त्र लुटाते चलते थे। श्मशानभूमिमें पहुँच-कर चिता तैयार की जाने लगी। किसीने चन्दन लाकर रखा तो किसीने अगर। कोई-कोई गुग्गुल तथा कोई सरल, पद्मक तथा देवदारुकी लकड़ी ला-लाकर चितामें डालने लगे। कुछ लोगोंने तरह-तरहके सुगन्धित पदार्थ लाकर छोड़े। इसके बाद ऋत्विजोंने राजाके शवको चितापर रखा तथा अग्निमें हवन करके वेदोक्त मन्त्रोंका जप किया। सामगान करनेवाले विद्वान् शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार सामश्रुतियोंका गायन करने लगे। तदनन्तर चितामें आग लगाकर भरतसहित ऋत्विजों तथा शोकमग्न कौसल्या आदि रानियोंने राजाके शवकी परिक्रमा की। उस समय दुःखित होकर विलाप करती हुई हजारों स्त्रियोंका आर्तनाद वहाँ सुनायी देता था। दाहकर्म समाप्त होनेपर भरतके साथ सब रानियों तथा मन्त्री और पुरोहितने भी सरयूतटपर जाकर राजाके लिये जलाञ्जलि दी। फिर सब-के-सब नेत्रोंसे आँसू बहाते नगरमें आये और दस दिनोंतक भूमिपर शयन करते हुए उन्होंने बड़े दुःखसे अपना समय व्यतीत किया।

दस दिन बीत जानेपर राजकुमार भरतने ग्यारहवें दिन आत्मशुद्धिके लिये एकादशाह-श्राद्धका अनुष्ठान किया। फिर बारहवें दिन द्वादशाह-श्राद्धकी विधि पूरी की। उसमें उन्होंने ब्राह्मणोंको धन, रत्न, पर्याप्त अन्न और बहुत-सी गौएँ दान कीं। राजाके पारलौकिक हितके लिये उन्होंने अनेकों प्रकारकी सवारियाँ तथा बड़े-बड़े घर ब्राह्मणोंको अर्पण किये। तदनन्तर तेरहवें दिन प्रातःकाल महाबाहु भरत शत्रुघ्नको साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## कौसल्याका भरतको आश्वासन

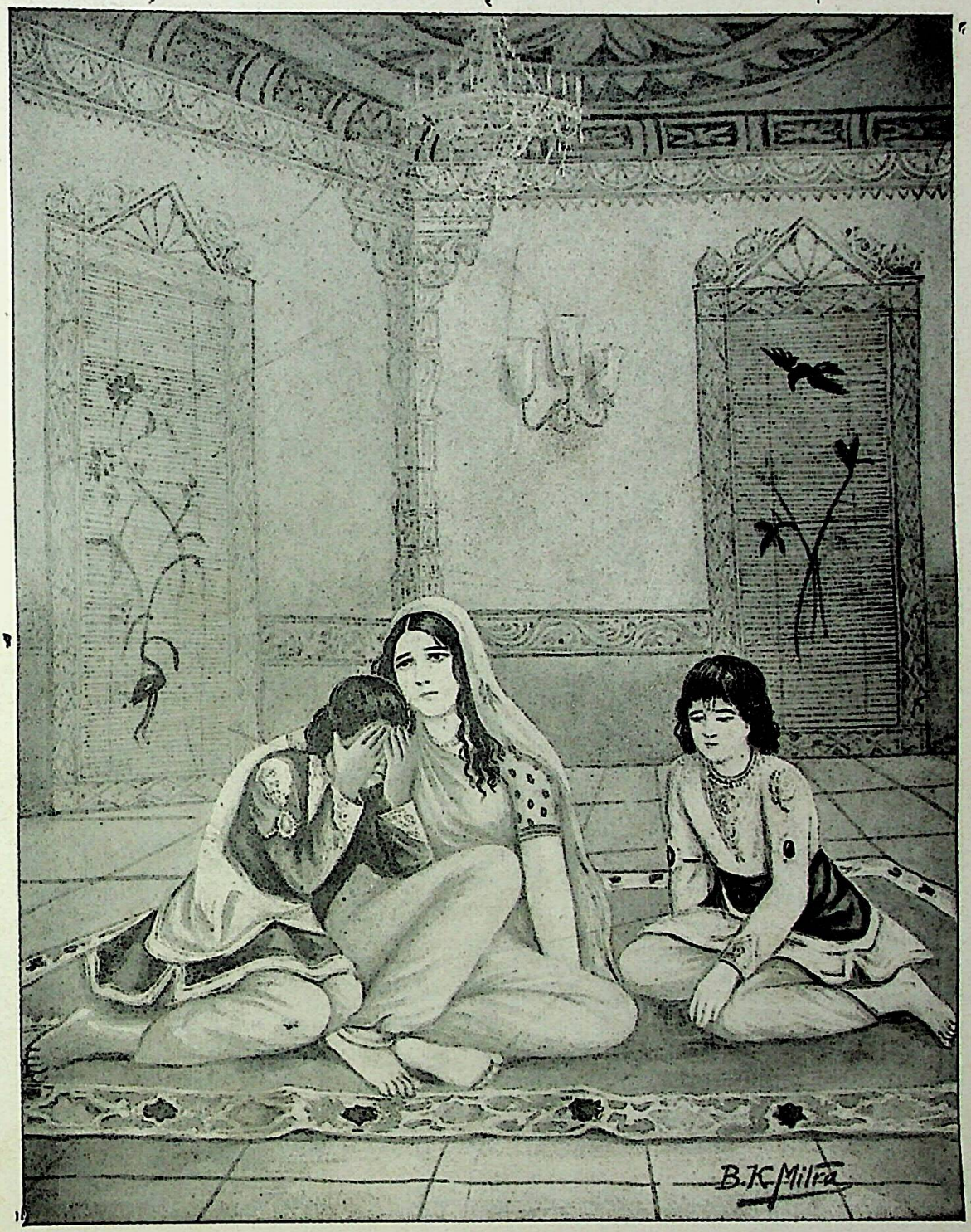


एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्त्तोऽनुपपात ह । विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः ॥
तदा तं शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम् । भरतं शोकसंतप्तं कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥
(अयोध्या० ७५ । ५९-६० )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर पिताका अस्थिसञ्चय करनेके लिये चिताके पास आये और बहुत दुखी होकर विलाप करने लगे। उस समय वसिष्ठने भरतको और सुमन्त्रने शत्रुघ्नको समझा-बुझाकर शान्त किया। तब मन्त्रियोंकी प्रेरणासे उन दोनों भाइयोंने अस्थि-चयनका कृत्य पूरा किया।

श्राद्ध आदिसे निवृत्त हो जानेपर भरत शोकसे सन्तप्त हो श्रीरामचन्द्रजीके पास जानेका विचार करने लगे। उसी समय शत्रुघ्नने उनसे कहा—'आर्य! जो दुःखमें पड़नेपर आत्मीय व्यक्तियोंकी कौन कहे, समस्त प्राणियोंको सहारा देनेवाले हैं, वे ही सत्त्वगुणसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी स्त्रीके साथ वनमें भेज दिये गये। [ यह कितने दुःखकी बात है! ] लक्ष्मण तो बड़े बलवान् और पराक्रमी हैं, उन्होंने पिताजीको कैद करके भी श्रीरामको इस संकटसे क्यों नहीं मुक्त किया? जब महाराजने स्त्रीके वशमें होकर नीतिविरुद्ध मार्गपर पैर बढ़ाया, उस समय न्याय-अन्यायका विचार करके उन्हें पहले ही कैद कर लेना उचित था।'

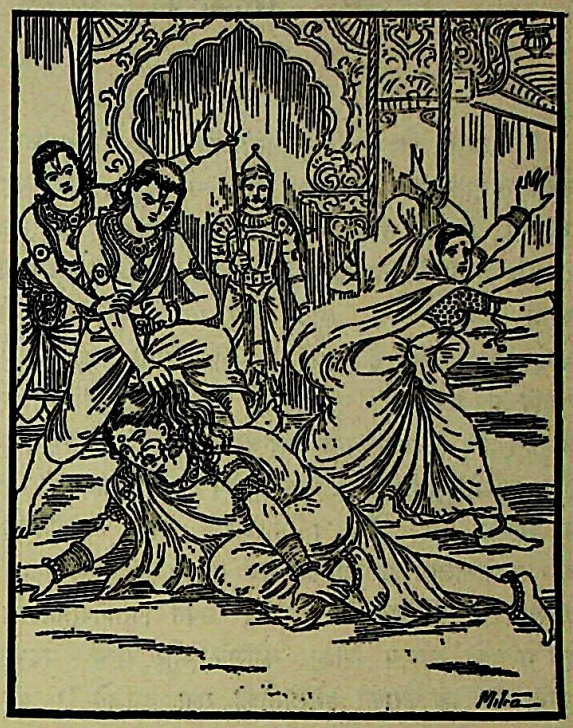

लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न इस प्रकार क्रोधसे भरकर बोल रहे थे, इतनेहीमें रानियोंके पहनने योग्य वस्त्र धारण करके और सब प्रकारके आभूषणोंसे सज-धजकर कुब्जा महलके पूरबी द्वारपर आकर खड़ी हुई। वह सारी बुराइयोंकी जड़ थी। उसपर दृष्टि पड़ते ही द्वारपालने उसे पकड़ लिया और निर्दयतापूर्वक घसीटते हुए शत्रुघ्नके पास ले जाकर कहा—'कुमार! जिसके कारण श्रीरामको वनमें जाना पड़ा और आपके पिताका देहावसान हुआ, वह क्रूर कर्म करने-वाली पापिनी यही है; आप इसके साथ जैसा बर्ताव उचित समझें, करें।' शत्रुघ्न बहुत दुखी थे। द्वारपालकी बात सुन-कर उन्होंने अन्तःपुरमें रहनेवाले सब लोगोंको सुनाकर कहा—'इस पापिनीने मेरे भाई और पिताको बड़ा कष्ट पहुँचाया है, अतः आज यह अपने क्रूर कर्मोंका फल भोगे।' यों कहकर शत्रुघ्नने सखियोंसे घिरी हुई कुब्जाको इतने जोरसे घर दबाया कि उसकी चिल्लाहटसे सारा महल गूँज उठा। शत्रुघ्नको कुपित जानकर उसकी सखियाँ चारों ओर भाग गयीं और वे रोषमें भरकर मन्थराको जमीनपर घसीटने लगे। उस समय वह जोर-जोरसे चीत्कार कर रही थी। धरतीपर घसीटी जानेके कारण उसके भाँति-भाँतिके विचित्र आभूषण टूट-टूटकर बिखर गये। उसकी दशा देखकर कैकेयीको बड़ा कष्ट हुआ और वह शत्रुघ्नसे भयभीत होकर अपने पुत्र भरतकी शरणमें गयी। भरतने शत्रुघ्नको क्रोधसे भरा देखकर कहा—'स्त्रियाँ सब प्राणियोंके लिये अवध्य हैं, इसलिये अब तुम इसे क्षमा कर दो। यदि मुझे यह भय न होता कि धर्मात्मा राम मातृघाती समझ-कर मुझसे घृणा करने लगेंगे, तो मैं भी इस दुष्ट आचरण-वाली पापिनी कैकेयीको मार डालता। उन्हें तो यदि इस कुब्जाके भी मारे जानेका पता लग जाय तो वे तुमसे और मुझसे बोलना भी छोड़ देंगे। भरतकी बात सुनकर शत्रुघ्न मन्थराके वधसे निवृत्त हो गये और उसे मूर्च्छित-अवस्थामें ही छोड़ दिया। मन्थराको बेहोश देखकर भरतकी माता कैकेयी धीरे-धीरे उसे होशमें लानेकी चेष्टा करने लगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## भरतकी वनमें श्रीरामसे मिलनेके लिये जानेकी तैयारी

तदनन्तर चौदहवें दिन प्रातःकाल समस्त राजकर्मचारी एकत्रित होकर गये और कहने लगे—'राजकुमार! आप बड़े यशस्वी हैं। देखिये, हमारे परमश्रद्धास्पद महाराज दशरथ तो अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम और महाबली लक्ष्मणको वनमें भेजकर स्वयं स्वर्गको चले गये; अब इस राज्यका कोई स्वामी नहीं है। इसलिये आप हमारे राजा हों। यद्यपि आप उनके ज्येष्ठ पुत्र नहीं हैं, तथापि बड़े भाईके मौजूद न रहने और पिताकी आज्ञा प्राप्त होनेके कारण आपका राजा होना न्यायानुकूल ही है। ऐसा करनेसे आपको किसी प्रकारका अपराध नहीं होगा। ये मन्त्री आदि आत्मीयजन और पुरवासीलोग अभिषेककी सब सामग्री एकत्रित करके आपकी राह देख रहे हैं। आप अपने पिता-पितामहोंके इस राज्यको अवश्य स्वीकार कीजिये और राजाके पदपर अपना अभिषेक कराकर हमलोगोंकी रक्षा कीजिये।' यह सुनकर भरतने अभिषेकके लिये रखी हुई सब सामग्रीकी प्रदक्षिणा की और वहाँ उपस्थित सब लोगोंको इस प्रकार उत्तर दिया—'सज्जनो! आपलोग बुद्धिमान् हैं, आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। हमारे कुलमें सदा ज्येष्ठ पुत्र ही राज्यका अधिकारी होता आया है और यही उचित भी है। श्रीरामचन्द्रजी हमलोगोंके बड़े भाई हैं, वे ही राजा होंगे। आपलोग महाबली वीरोंकी एक बहुत बड़ी चतुरङ्गिणी सेना तैयार कीजिये। अभिषेकके लिये जितनी सामग्रियाँ एकत्रित की गयी हैं, उन सबको आगे करके मैं श्रीरामचन्द्रजीसे मिलनेके लिये वनमें चलूँगा और वहीं उनका अभिषेक करके उन्हें अयोध्यामें लौटा लाऊँगा। मेरी माता कहलानेवाली इस कैकेयीको मैं कदापि सफलमनोरथ नहीं होने दूँगा। श्रीराम यहाँके राजा होंगे और मैं दुर्गम वनमें निवास करूँगा। कारीगर आगे जाकर रास्ता बनायें, ऊँची-नीची भूमिको बराबर करें तथा मार्गमें दुर्गम स्थानोंकी जानकारी रखनेवाले रक्षक भी साथ-साथ चलें।' राजकुमार भरतके ये उत्तम वचन सुनकर वहाँ बैठे हुए सभी सत्पुरुषोंकी आँखोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे। उस सभाके सभी सदस्य और मन्त्री शोकहीन एवं प्रसन्न होकर बोले—'नरश्रेष्ठ! आपकी आज्ञाके अनुसार प्रेमी कारीगरों और रक्षकोंको मार्ग ठीक करनेके लिये भेज दिया है।'

तत्पश्चात् ऊँची-नीची तथा सजल-निर्जल भूमिका ज्ञान रखनेवाले, सूत्रकर्म (छावनी आदि बनानेके लिये सूत धारण करने) में कुशल, यन्त्रक (नदी आदि पार करनेके लिये तुरंत साधन उपस्थित करनेवाले अथवा जलके प्रवाहको रोकनेवाले), वेतनभोगी कारीगर, रथ और यन्त्र आदि बनानेवाले शिल्पी, मार्गरक्षक, पेड़ काटनेवाले तथा रास्तेकी विशेष जानकारी रखनेवाले मनुष्योंने पहले प्रस्थान किया। मार्ग-निर्माणमें निपुण कारीगर नाना प्रकारके साधन साथ लेकर आगे चल दिये। वे लताएँ, बेलें, झाड़ियाँ, खूँटे तथा पत्थरोंको हटाते और नाना प्रकारके वृक्षोंको काटते हुए मार्ग तैयार करने लगे। जो स्थान ऊँचे-नीचे होनेके कारण दुर्गम जान पड़ते थे, उन्हें खोदकर बराबर कर देते थे। लंबे-चौड़े गड्ढोंको मिट्टीसे पाट देते थे। उन्होंने जहाँ पुल बाँधनेके योग्य पानी देखा, वहाँ पुल बाँध दिया। जहाँ कँकरीली जमीन दिखायी दी, वहाँ उसे ठोंक-पीटकर मुलायम कर दिया और जहाँ पानी बहनेके लिये मार्ग बनाना आवश्यक समझा, वहाँ बाँध काट दिया। छोटे-छोटे सोतोंको, जिनका पानी बह जाया करता था, चारों ओरसे बाँधकर अधिक जलवाला बना दिया। इस तरह थोड़े ही समयमें भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारके बहुत-से सरोवर तैयार हो गये। निर्जल स्थानोंपर अच्छे-अच्छे कुएँ खुदवाये गये, जो चारों ओर बनी हुई उत्तम जगतोंसे सुशोभित थे। इस प्रकार वह मार्ग देवताओंके मार्गकी तरह सुशोभित हो गया। जहाँ स्वादिष्ट फलोंकी अधिकता थी, उन सुन्दर प्रदेशोंमें भरतकी इच्छाके अनुसार छावनियाँ बनायी गयीं। महात्मा भरतके ठहरनेके लिये जो-जो स्थान बने, उनकी उत्तम मुहूर्तमें प्रतिष्ठा की गयी तथा उन्हें ध्वजा-पताकाओंसे सजाया गया। इस तरह अयोध्यासे लेकर गङ्गाके किनारेतक उत्तम कारीगरोंद्वारा बनाये हुए उस राजमार्गकी बड़ी ही शोभा हुई।

इधर अयोध्यामें रात्रि व्यतीत होनेपर सूत और मागधोंने मङ्गलमयी स्तुतियोंके द्वारा भरतका स्तवन आरम्भ किया। दुन्दुभिकी ध्वनि होने लगी और शंख तथा सैकड़ों प्रकारके दूसरे-दूसरे बाजे बज उठे। नाना प्रकारके वाद्योंका वह अत्यन्त तुमुल नाद समस्त आकाशमें गूँज उठा। इससे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोकसन्तप्त भरतका कष्ट और भी बढ़ गया। वे जाग उठे और 'मैं राजा नहीं हूँ' ऐसा कहकर उन्होंने उन बाजोंका बजना बंद करा दिया। तत्पश्चात् शत्रुघ्नसे कहा—'सुमित्रानन्दन! देखो, महाराज दशरथ मुझपर कितने दुःखका भार डालकर स्वर्गको चले गये। आज उन धर्मात्माकी धर्ममूला राजलक्ष्मी पानीमें पड़ी हुई बिना नाविककी नौकाके समान इधर-उधर डगमगा रही है। जो हमलोगोंके स्वामी और बड़े ही महानुभाव हैं, उन श्रीरामको भी मेरी माताने धर्मको तिलाञ्जलि देकर वनमें भेज दिया। भरत जब इस प्रकार विलाप कर रहे थे, उसी समय राजधर्मके ज्ञाता महर्षि वसिष्ठने राजा दशरथके सभाभवनमें प्रवेश किया। वे सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता थे। उन्होंने सुवर्णमय आसनपर विराजकर दूतोंको आज्ञा दी—'तुम ब्राह्मणों, क्षत्रियों, योद्धाओं, मन्त्रियों तथा सेनापतियोंको शीघ्र बुला लाओ। राजकुमार भरत और शत्रुघ्नको, मन्त्री युधाजित् एवं सुमन्त्रको तथा और भी जो-जो हितैषी पुरुष हों, उन सबको बुलाओ। हमें बहुत ही आवश्यक काम है।'

तदनन्तर घोड़े, हाथी और रथोंसे आनेवाले लोगोंका महान् कोलाहल आरम्भ हुआ। भरतके आनेपर सबने उनका अभिनन्दन किया। दशरथ-पुत्रसे सुशोभित होनेके कारण वह सभा राजा दशरथसे युक्त-सी जान पड़ने लगी। श्रेष्ठ पुरुष मर्यादाके अनुसार अपने-अपने आसनोंपर बैठे थे। उस समय धर्मके ज्ञाता पुरोहित वसिष्ठजीने राजाकी सम्पूर्ण प्रकृतियोंको उपस्थित देख भरतसे यह मधुर वचन कहा—'तात! राजा दशरथ यह धन-धान्यसे सम्पन्न समृद्धिशालिनी वसुधा तुम्हें देकर स्वयं धर्मका आचरण करते हुए स्वर्गवासी हुए हैं। सत्यपूर्ण बर्ताव करनेवाले श्रीरामचन्द्रने सत्पुरुषोंके धर्मकी ओर देखकर पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया। इस प्रकार पिता और ज्येष्ठ भ्राता दोनोंने ही तुम्हें यह अकण्टक राज्य प्रदान किया है; अतः तुम मन्त्रियोंको प्रसन्न रखते हुए इसका पालन करो और शीघ्र ही अपना अभिषेक करा लो, जिससे उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, पूर्व और अपरान्त देशके निवासी राजा तथा समुद्रमें जहाजोंके द्वारा व्यापार करनेवाले व्यवसायी आज तुम्हें असंख्य रत्न भेंट करें।'

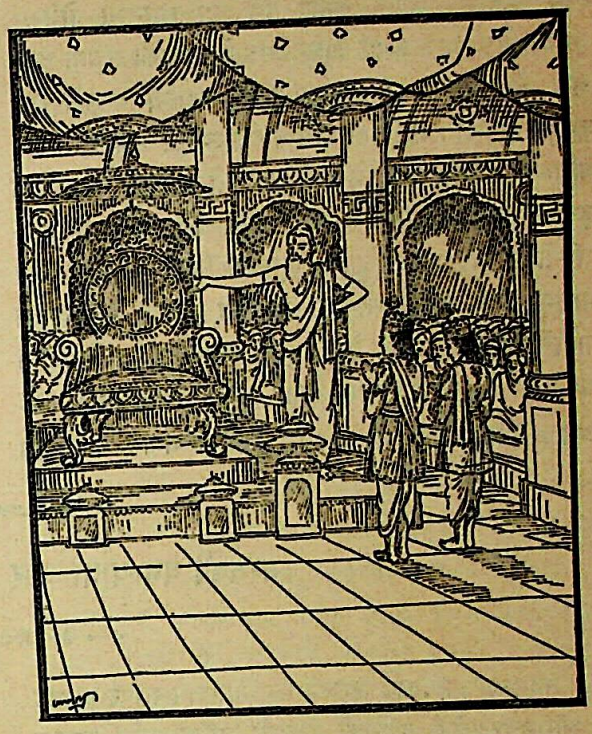

यह सुनकर धर्मज्ञ भरत शोकमें डूब गये और धर्म-पालनकी इच्छासे उन्होंने मन-ही-मन भगवान् श्रीरामका स्मरण किया। फिर भरी सभामें विलाप करते हुए बोले—'जिन्होंने ब्रह्मचर्यका पालन किया, जो सम्पूर्ण विद्याओंमें निष्णात हुए तथा जो सदा ही धर्मके लिये प्रयत्नशील रहते हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीके राज्यका मेरे-जैसा कौन मनुष्य अपहरण कर सकता है? राज्य और मैं दोनों ही श्रीरामके हैं, अतः आप हमें धर्मका उपदेश दीजिये। धर्मात्मा श्रीराम मुझसे अवस्थामें बड़े और गुणोंमें भी श्रेष्ठ हैं, अतः वे ही इस राज्यको पानेके अधिकारी हैं। पापका आचरण तो नीच पुरुष करते हैं और वह मनुष्यको निश्चय ही नरकमें डालता है; यदि श्रीरामचन्द्रजी-का राज्य लेकर मैं भी पापाचरण करूँ, तो मैं संसारमें इक्ष्वाकु-वंशका कलंक समझा जाऊँगा। माताने जो पाप किया है, उसे मैं कभी पसंद नहीं करता। इसलिये वहाँ रहकर भी मैं दुर्गम वनमें निवास करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। मैं श्रीरामका ही अनुसरण करूँगा। वे तीनों लोकोंके राजा होने योग्य हैं।'

उनके धर्मयुक्त वचन सुनकर सभी सभासद् हर्षके आँसू बहाने लगे। भरतने फिर कहा—'यदि मैं आर्य श्रीरामको वनसे न लौटा सकूँगा तो स्वयं भी लक्ष्मणकी तरह वहीं निवास करूँगा।' भ्रातृभक्त धर्मात्मा भरत सभासदोंसे


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ऐसा कहकर अपने समीप बैठे हुए सुमन्त्रसे बोले—'सुमन्त्रजी ! आप जल्दी जाकर सबको यात्राकी सूचना दे दें और सेनाको भी शीघ्र बुला लें ।' महात्मा भरतके ऐसा कहनेपर सुमन्त्रने बड़ी प्रसन्नतासे सबको उनकी आज्ञा सुना दी। श्रीरामचन्द्रजीको लौटानेके लिये जानेवालोंके साथ सेनाको भी कूच करनेकी आज्ञा मिली है—यह जानकर समस्त प्रजा और सेनापतियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई । सैनिकोंकी स्त्रियोंको जब यह बात मालूम हुई कि उनके पतियोंको श्रीरामको बुलानेके लिये वनकी यात्रामें जाना है तो वे बहुत प्रसन्न हुईं और सभी अपने-अपने पतिको जल्दी तैयार होनेके लिये प्रेरित करने लगीं । सेनापतियोंने घोड़ों और तेज चलनेवाले रथोंसहित सम्पूर्ण सेनाको शीघ्र तैयार हो जानेकी आज्ञा दी । सेनाको कूचके लिये उद्यत देख सत्यपरायण भरतने कहा—'सुमन्त्रजी ! आप शीघ्र उठकर सेनापतियोंके पास जाइये और उनसे कहकर सेनाको आगे बढ़ानेका प्रबन्ध कीजिये । मैं संसारके हितके लिये वनवासी श्रीरामको प्रसन्न करके अयोध्यामें ले आना चाहता हूँ ।' भरतकी आज्ञा पाकर सुमन्त्रने अपना मनोरथ सफल समझा और उन्होंने प्रजावर्गके प्रधान व्यक्तियों, सेनापतियों तथा सुहृदोंको भरतका आदेश सुना दिया । तब प्रत्येक घरके लोग—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि उठ-उठकर घोड़े, हाथी तथा ऊँटगाड़ी आदि सवारियोंको जोतने लगे ।

## भरतकी वन-यात्रा और शृङ्गवेरपुरमें रात्रि-वास

तदनन्तर प्रातःकाल उठकर भरतने उत्तम रथपर आरूढ़ हो श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान किया । उनके आगे-आगे मन्त्री और पुरोहित घोड़े जुते हुए रथोंपर बैठकर यात्रा कर रहे थे और पीछे नौ हजार हाथी, साठ हजार रथ तथा एक लाख घुड़सवार चल रहे थे । कैकेयी, सुमित्रा और यशस्विनी कौसल्या भी कान्तिमान् रथपर बैठकर प्रसन्नताके साथ जा रही थीं । अयोध्याके नागरिक हर्षसे भरकर एक-दूसरेका आलिङ्गन करते हुए यात्रा कर रहे थे । वे आपसमें कहते थे—'हमलोग दृढ़ताके साथ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तथा संसारका दुःख दूर करनेवाले मेघके समान श्यामवर्ण श्रीरामचन्द्रजीको कब देखेंगे ? आँखोंके सामने पड़ते ही वे हमारा सब शोक-सन्ताप हर लेंगे ।' इस प्रकार रथ, पालकी, घोड़े और हाथियोंके द्वारा बहुत दूर-तकका मार्ग तय कर लेनेके बाद वे सब लोग क्रमशः गङ्गाके किनारे शृङ्गवेरपुरमें पहुँचे, जहाँ श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय मित्र निषादराज गुह अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ निवास करता था । गङ्गा-तटपर जाकर भरतके पीछे चलनेवाली सेना ठहर गयी । पुण्यसलिला भागीरथीका दर्शन करके भरतने अपने सब सचिवोंसे कहा—'आपलोग मेरे सैनिकोंको यहाँ सब ओर ठहरा दीजिये । जिसकी जहाँ इच्छा हो, वह वहीं ठहर जाय । आज रातमें यहाँ विश्राम कर लेनेके बाद कल सबेरे हमलोग गङ्गाजीको पार करेंगे । उस पार उतरकर मैं स्वर्गीय महाराजके पारलौकिक कल्याणके लिये जलाञ्जलि देना चाहता हूँ ।' सचिवोंने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और सैनिकोंको उनकी इच्छाके अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानोंपर ठहरा दिया । फिर भरतने भी महात्मा श्रीरामके लौटनेके सम्बन्धमें विचार करते हुए वहीं डेरा डाल दिया ।

उधर निषादराज गुहने गङ्गा नदीके तटपर ठहरी हुई भरतकी सेनाको देखकर अपने भाई-बन्धुओंसे कहा—'भाइयो ! यह सेना समुद्रके समान बड़ी भारी दिखायी दे रही है । निश्चय ही इसमें भरत भी आया हुआ है । यह कोविदारके चिह्न-वाली विशाल ध्वजा उसीके रथपर फहरा रही है । कैकेयीका पुत्र भरत राजा दशरथकी सम्पन्न एवं सुदुर्लभ राजलक्ष्मीको अकेले हड़प लेना चाहता है, इसीलिये वह श्रीरामचन्द्रको वनमें मार डालनेके लिये जा रहा है । परन्तु दशरथकुमार श्रीराम मेरे स्वामी और सखा हैं, इसलिये उनके हितकी कामना रखकर तुमलोग अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो गङ्गाके तटपर मौजूद रहो । अपने पास पाँच सौ नावें हैं । उनमेंसे एक-एक नावपर मल्लाहोंके सौ-सौ जवान युद्ध-सामग्रीसे लैस होकर बैठे रहें । यदि भरतका भाव श्रीरामके प्रति सन्तोषजनक होगा, तभी वह सेना आज कुशलपूर्वक गङ्गाके पार जा सकेगी ।' ऐसा कहकर निषादराज गुह भेंटकी सामग्री लेकर भरतके पास गया । उसे आते देख सुमन्त्रने भरतसे कहा—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

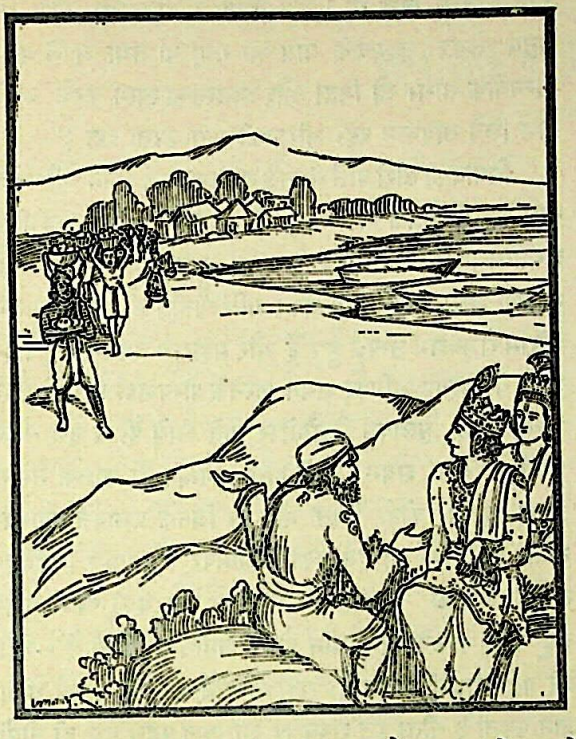

'राजकुमार ! यह बूढ़ा निषादराज गुह है, यह अपने हजारों भाई-बन्धुओंके साथ यहाँ निवास करता है। इसे दण्डकारण्यके मार्गकी विशेष जानकारी है तथा यह तुम्हारे भाई श्रीरामचन्द्रजीका मित्र है। निश्चय ही इसे राम-लक्ष्मणके निवास-स्थानका पता होगा; अतः इसे मिलनेके लिये अपने पास आने दो।'

सुमन्त्रके उत्तम वचन सुनकर भरतने कहा—'निषादराज गुहको मुझसे मिलनेके लिये शीघ्र बुलाया जाय।' आज्ञा पाकर गुह अपने भाई-बन्धुओंके साथ वहाँ प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित हुआ और बड़ी नम्रताके साथ बोला—आपने अपने आगमनकी सूचना न देकर हमें धोखेमें रख दिया—हम आपके स्वागतकी कोई तैयारी न कर सके। हमारे पास जो कुछ है, वह सब आपकी सेवामें अर्पित है। यह निषादोंका घर आपका ही है। आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें। निषादोंका लाया हुआ यह फल-मूल प्रस्तुत है, इसे ग्रहण करें। हमारी प्रार्थना है कि यह सेना आजकी रात यहीं निवास करे। हमलोग अपनी इच्छाके अनुसार आज विविध वस्तुओंसे आपका सत्कार करेंगे, फिर कल सबेरे आप सेना-सहित अन्यत्र जाइयेगा।'

निषादराज गुहके ऐसा कहनेपर भरतने उत्तर दिया—'भाई ! तुम मेरे परम गुरु श्रीरामके सखा हो। मेरी इतनी बड़ी सेनाका सत्कार करना चाहते हो, यह तुम्हारा मनोरथ बहुत ही ऊँचा है। तुम इसे पूर्ण ही समझो—तुम्हारे इन वचनोंसे ही हम सब लोगोंका सत्कार हो गया।' यह कहकर भरतने पूछा—'मुझे भरद्वाजके आश्रमपर किस रास्तेसे जाना होगा ? गङ्गाके किनारेका यह प्रदेश तो बड़ा गहन मालूम पड़ता है। इसमें प्रवेश पाना कठिन है।' बुद्धिमान् भरतके वचन सुनकर वनमें विचरनेवाले गुहने हाथ जोड़कर कहा—'राजकुमार ! आपके साथ कई मल्लाह जायँगे, जो इस प्रदेशसे भलीभाँति परिचित और खूब सावधान रहनेवाले हैं; इनके सिवा मैं भी आपके साथ चलूँगा। किन्तु एक बात बताइये, अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके प्रति आप कोई दुर्भावना लेकर तो नहीं जा रहे हैं ? आपकी यह विशाल सेना मुझे सन्देहमें डाल रही है।' गुहकी ऐसी बात सुनकर भरतने मधुर वाणीसे कहा—'निषादराज ! रघुकुलभूषण श्रीराम मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, मैं उन्हें पिताके समान मानता हूँ। वे वनमें निवास करते हैं, अतः उन्हें लौटानेके लिये जा रहा हूँ। मैं तुमसे सच कहता, हूँ मेरे मनमें और कोई बात नहीं है; तुम मेरे प्रति दूसरा कोई विचार न करो।'

भरतकी बात सुनकर निषादराजका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वह हर्षसे भरकर भरतसे बोला—'आप धन्य हैं, बिना प्रयत्नके अपने हाथमें आये हुए राज्यको त्याग देना चाहते हैं; अतः आपके समान धर्मात्मा मुझे इस भूमण्डल-पर दूसरा कोई नहीं दिखायी देता। कष्टप्रद वनमें निवास करनेवाले श्रीरामको आप लौटा लाना चाहते हैं, इससे समस्त संसारमें आपकी अक्षय कीर्तिका प्रसार होगा।'

गुह और भरतमें इस प्रकार बातें हो रही थीं कि इसी समय सूर्यदेव छिप गये और रात्रिका अन्धकार सब ओर फैल गया। गुहके बर्तावसे भरतको बड़ा सन्तोष हुआ और वे सेनाको विश्राम करनेकी आज्ञा दे शत्रुघ्नके साथ शयन करनेके लिये गये। धर्मपर दृष्टि रखनेवाले भरतके मनमें श्रीरामचन्द्रजीके सम्बन्धकी चिन्तासे बड़ा दुःख हुआ। शोकाग्निसे सन्तप्त होनेके कारण उनके सारे अङ्गोंसे पसीना निकलने लगा और वे सहसा मूर्च्छित हो गये। यह देख निषादराजके चेहरेका रंग उड़ गया। शत्रुघ्न भरतके पास ही थे। उनकी ऐसी अवस्था देख वे उन्हें पकड़कर जोर-जोरसे रोने लगे और शोकसे पीड़ित होकर अपनी चेतना खो बैठे। तदनन्तर भरतकी सभी माताएँ वहाँ आ पहुँचीं। वे पति-वियोगके दुःखसे दुखी, उपवास करनेके कारण दुर्बल एवं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दीन हो रही थीं। भूमिपर पड़े हुए भरतको चारों ओरसे घेरकर वे रोने लगीं। कौसल्याका हृदय तो दुःखसे और भी कातर हो गया। उन्होंने भरतके पास जाकर उन्हें गोदीमें उठा लिया और बड़े प्यारसे पूछा—'बेटा! तुम्हारे शरीरको कोई रोग तो कष्ट नहीं पहुँचा रहा है? अब इस राजवंशका जीवन तुम्हारे ही अधीन है। तुम्हींको देखकर मैं जी रही हूँ। राम लक्ष्मणके साथ वनमें चले गये, महाराज स्वर्गवासी हो गये; अब तुम्हीं हमलोगोंके रक्षक हो। बेटा! सच बताओ, तुमने लक्ष्मणके अथवा सीतासहित मेरे पुत्र रामके विषयमें कोई अप्रिय बात तो नहीं सुनी है?'

थोड़ी देर बाद जब महायशस्वी भरतका चित्त स्वस्थ हुआ तो उन्होंने रोते-रोते ही कौसल्याको सान्त्वना दी [ और कहा—माँ! घबराओ मत, मैंने कोई अप्रिय बात नहीं सुनी है ]। फिर निषादराज गुहसे पूछा—'उस दिन रातमें मेरे भाई श्रीरामने सीता और लक्ष्मणके साथ यहाँ किस स्थानपर निवास किया तथा क्या भोजन करके कैसे बिछौनेपर शयन किया था? ये सब बातें मुझे बताओ।' भरतके इस प्रकार पूछनेपर निषादराज गुह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने प्रिय एवं हितकारी अतिथि श्रीरामके आनेपर उनके प्रति जैसा बर्ताव किया था, वह सब बताते हुए कहा—'मैंने भाँति-भाँतिके अन्न, अनेकों प्रकारके खाद्य पदार्थ और कई तरहके फल श्रीरामचन्द्रजीके पास भोजनके लिये पहुँचाये। सत्यपराक्रमी श्रीरामने मेरी दी हुई सब वस्तुएँ स्वीकार तो कीं, किन्तु उन्हें ग्रहण नहीं किया—मुझे आदरपूर्वक लौटा दिया। फिर उन महात्माने हम सब लोगोंको समझाते हुए कहा—'सखे! हम-जैसे क्षत्रियोंको किसीसे कुछ लेना नहीं चाहिये, अपि तु सदा देना ही चाहिये।' सीतासहित श्रीरामने उस रात उपवास ही किया। लक्ष्मण जो जल ले आये थे, केवल उसीको उन्होंने पीया। उनके पीनेसे बचा हुआ जल लक्ष्मणने ग्रहण किया। [ जलपानके पहले ] उन्होंने मौन होकर सन्ध्योपासना की थी। तदनन्तर लक्ष्मणने स्वयं कुश लाकर श्रीरामचन्द्रजीके लिये सुन्दर बिछौना बिछाया। जब सीताके साथ राम उसपर विराजमान हुए तो लक्ष्मणने उन दोनोंके चरण पखारे; उसके बाद वे वहाँसे अलग हट आये। यही वह इङ्गुदी वृक्षकी जड़ है और यही वह तृण है, जहाँ श्रीराम और सीता दोनोंने रात्रिमें शयन किया था। लक्ष्मण अपनी पीठपर बाणोंसे भरे दो तरकस बाँधे, दोनों हाथोंकी अँगुलियोंमें दस्ताने पहने और महान् धनुष चढ़ाये इधर-उधर घूमकर पहरा देते हुए रातभर खड़े रहे। उस समय मैं भी उत्तम बाण और धनुष लेकर लक्ष्मणके पास आ गया था तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ, जो निद्रा और आलस्यका त्याग करके धनुष-बाण लिये सावधान रहे, श्रीरामकी रक्षा करता रहा।'

निषादकी सारी बातें ध्यानसे सुनकर भरत अपने मन्त्रियोंके साथ इङ्गुदी वृक्षके पास आये और उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी शय्याका निरीक्षण किया। फिर सब माताओंसे कहा—'यहीं महात्मा श्रीरामने भूमिपर सोकर रात्रि व्यतीत की थी। महाभाग श्रीराम राजवंशमें उत्पन्न हुए हैं और महाराज दशरथके पुत्र हैं; अतः वे कदापि भूमिपर शयन करनेके योग्य नहीं हैं। जो सदा अच्छे-अच्छे मुलायम बिछौनोंपर सोते आये हैं, वे इस समय पृथ्वीपर कैसे शयन करते होंगे? निश्चय ही कालके समान प्रबल दूसरा कोई देवता नहीं है, जिसके प्रभावसे दशरथ-कुमार श्रीरामको भी इस प्रकार जमीनपर सोना पड़ा। विदेह-राजकी लाड़ली कन्या और महाराज दशरथकी प्यारी पुत्र-वधू सीता कालके ही अधीन होकर जमीनपर सोती हैं। यही मेरे बड़े भाईकी शय्या है, यहीं उन्होंने करवटें बदली थीं। जान पड़ता है सीता इस शय्यापर आभूषण पहने हुए ही सोयी थीं; क्योंकि यहाँ स्थान-स्थानपर सोनेके तारे दिखायी देते हैं। यहाँ सीताकी चादर उलझ गयी थी, यह बात साफ दिखायी दे रही है; क्योंकि यहाँ कई रेशमके तागे कुशोंमें उलझे हुए हैं। हाय! मैं बड़ा क्रूर हूँ, मेरा जीवन व्यर्थ है, जिसके कारण सीतासहित श्रीरामको अनाथकी भाँति ऐसी शय्यापर सोना पड़ता है। जो सम्राट्के वंशमें उत्पन्न, सम्पूर्ण संसारको सुख देनेवाले तथा सबका प्रिय करनेवाले हैं, जिनका शरीर नीले कमलके समान श्याम और दर्शन सबको प्रिय लगनेवाला है, तथा जो किसी तरह भी दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं, वे ही श्रीराम धरतीपर सो रहे हैं। उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मण ही धन्य एवं बड़भागी हैं, जो संकटके समयमें बड़े भाई श्रीरामके साथ रहकर उनकी सेवा करते हैं। आजसे मैं भी जमीन या तिनकोंपर सोऊँगा, फल-मूलका भोजन करूँगा और सदा वल्कल-वस्त्र तथा जटा धारण किये रहूँगा। वनवासके जितने दिन बाकी हैं, उतने दिनोंतक मैं ही वहाँ सुखपूर्वक निवास करूँगा। ऐसा होनेसे आर्य श्रीरामचन्द्रजीकी की हुई प्रतिज्ञा झूठी नहीं होगी। मैं उनके चरणोंपर मस्तक रखकर उन्हें मनानेकी चेष्टा करूँगा। यदि मेरे बहुत कहनेपर भी वे लौटनेको राजी न होंगे तो उन वनवासी श्रीरामके साथ मैं भी दीर्घ काल-तक वहीं निवास करूँगा। वे मेरी उपेक्षा नहीं करेंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## भरतका सेनासहित गङ्गा पार करके भरद्वाजके आश्रमपर जाना और मुनिका आतिथ्य ग्रहण करके वहाँसे प्रस्थित होना

शृङ्गवेरपुरमें गङ्गातटपर रात्रि व्यतीत करके भरत प्रातःकाल उठे और शत्रुघ्नसे बोले—'सुमित्रानन्दन! उठो, निषादराज गुहको शीघ्र बुलाओ; वे हमारी सेनाको गङ्गाके पार उतारें।' शत्रुघ्नने कहा—'भैया! मैं जाग रहा हूँ, आर्य श्रीरामका ही चिन्तन कर रहा था।' उन दोनों बन्धुओंमें इस प्रकार बातचीत हो रही थी; इतनेमें ही गुह समयपर आ पहुँचा और हाथ जोड़कर बोला—'रघुनन्दन! इस नदीके तटपर आपकी रात सुखसे बीती है न? सेनाके साथ यहाँ आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ?' गुहके स्नेहपूर्ण वचन सुनकर भरतने कहा—'निषादराज! हम सब लोगोंकी रात बड़े सुखसे बीती है, तुमने हमारा बड़ा सत्कार किया। अब अपने मल्लाहोंसे कह दो, वे बहुत-सी नौकाएँ लाकर हमें गङ्गाके पार उतार दें।' भरतका आदेश सुनकर गुह तुरंत अपने नगरमें गया और भाई-बन्धुओंसे बोला—'उठो, जागो; तुम्हारा कल्याण हो। नावें घाटपर लाओ, सेनाको पार उतारूँगा।' राजाकी आज्ञा पाकर सभी मल्लाह शीघ्र ही उठ खड़े हुए और चारों ओरसे इकट्ठी करके पाँच सौ नावें ले आये। इन सबके अतिरिक्त कुछ स्वस्तिक नामसे प्रसिद्ध नौकाएँ थीं, जिनपर स्वस्तिकके चिह्न बने हुए थे। उन्हीं चिह्नोंसे वे पहचानी जाती थीं। उन्हींमेंसे एक नाव गुह स्वयं लेकर आया, जिसमें सुन्दर बिछौने बिछे थे और माङ्गलिक शब्द हो रहा था। उसपर सबसे पहले पुरोहित, गुरु और ब्राह्मण बैठे। तत्पश्चात् भरत, शत्रुघ्न, कौसल्या, सुमित्रा तथा राजा दशरथकी अन्य रानियाँ सवार हुईं। तदनन्तर राजपरिवारकी दूसरी स्त्रियाँ बैठीं। गाड़ियाँ तथा अन्य सामग्रियाँ दूसरी-दूसरी नावोंपर लादी गयीं। सभी नावोंपर पताकाएँ फहरा रही थीं, सबके ऊपर खेनेवाले कई मल्लाह बैठे थे। वे सब नौकाएँ चढ़े हुए मनुष्योंको तीव्र गतिसे पार ले जाने लगीं। बहुत-सी नौकाएँ केवल स्त्रियोंसे भरी थीं। कुछ नावोंपर घोड़े थे और कुछपर बहुमूल्य रत्न लादे गये थे। कितने ही मनुष्य नावोंपर बैठे थे और कितने ही बाँस और तिनकोंसे बने हुए बेड़ोंपर सवार थे। कुछ लोग घड़ोंके सहारे पार हो रहे थे और कुछ अपनी बाहुओंसे तैर रहे थे। इस प्रकार मल्लाहोंकी सहायतासे सारी सेना गङ्गाके पार उतरकर प्रयाग-वनके लिये प्रस्थित हुई। वहाँ पहुँचकर महात्मा भरत सेनाको विश्रामके लिये आज्ञा दे स्वयं ऋत्विजों तथा राजसभाके सदस्योंके साथ मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजका दर्शन करनेके लिये गये।

नरश्रेष्ठ भरतने अपनी सारी सेनाको आश्रमसे एक कोस इधर ही ठहराया था और अपने भी अस्त्र-शस्त्र तथा राजोचित वस्त्र वहीं उतारकर रख दिये थे। केवल दो रेशमी वस्त्र धारण करके मन्त्री और पुरोहितके साथ वहाँ गये थे। मुनिवर भरद्वाजको दूरसे ही देखकर उन्होंने मन्त्रियोंको वहीं खड़ा कर दिया और पुरोहित वसिष्ठजीको आगे करके ऋषिके पास गये। महातपस्वी भरद्वाज महर्षि वसिष्ठको देखते ही आसनसे उठ खड़े हुए और उन्होंने शिष्योंसे शीघ्रतापूर्वक अर्घ्य लानेको कहा। फिर वे वसिष्ठसे मिले। भरतने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। महातेजस्वी भरद्वाज समझ गये कि ये राजा दशरथके पुत्र हैं। धर्मज्ञ ऋषिने क्रमशः वसिष्ठ और भरतको अर्घ्य, पाद्य और फल आदि निवेदन करके उन

दोनोंकी कुशल पूछी। इसके बाद अयोध्या, सेना, खजाना, मित्रवर्ग तथा मन्त्रिमण्डलका समाचार पूछा। राजा दशरथकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मृत्युका हाल वे जानते थे, इसलिये उनके विषयमें उन्होंने कुछ नहीं पूछा। वसिष्ठ और भरतने भी महर्षिके शरीर, अग्निहोत्र, शिष्य, पेड़-पत्ते तथा मृग-पक्षी आदिका कुशल-समाचार पूछा। महायशस्वी भरद्वाजने कहा 'सब ठीक है।' फिर वे रामके स्नेहवश भरतसे बोले—'तुम तो राज्य कर रहे हो न? तुम्हें यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ गयी? यह सब मुझे बताओ। तुम्हारे पिताने स्त्रीके कारण जिस महायशस्वी पुत्रको चौदह वर्षोंके लिये वनमें रहनेकी आज्ञा दी है, उस निरपराध श्रीराम और लक्ष्मणका तुम कोई अनिष्ट तो नहीं करना चाहते?'

भरद्वाजके ऐसा कहनेपर दुःखके कारण भरतकी आँखें डबडबा आयीं। वे लड़खड़ाती हुई वाणीमें बोले—'मुने! आप सर्वज्ञ हैं; यदि आप भी मुझे इतना अधम समझते हैं, तब तो मैं हर तरहसे मारा गया। मुझसे कोई अपराध नहीं हुआ है, यह बात मैं निश्चितरूपसे कह सकता हूँ; अतः आप मुझसे ऐसी कठोर बात न कहें। मेरी अनुपस्थितिमें मेरी माताने जो कुछ कहा या किया है, वह मुझे अभीष्ट नहीं है। मैं उससे तनिक भी प्रसन्न नहीं हूँ और न माताकी उस बातको मैंने स्वीकार ही किया है। मैं तो उन नरश्रेष्ठ श्रीरामको प्रसन्न करके अयोध्यामें लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ; अतः आप मुझे कृपा करके बतायें कि इस समय श्रीरामचन्द्रजी कहाँ हैं।' तब महर्षि भरद्वाजने प्रसन्न होकर कहा—'भरत! तुम रघुकुलमें उत्पन्न हुए हो। तुममें गुरुजनोंकी सेवा, दुष्टोंके दमन तथा साधु पुरुषोंकी शुश्रूषाका भाव होना उचित ही है। मैंने तुम्हारी कीर्तिका अधिक विस्तार करनेके लिये ही तुमसे इस तरहका प्रश्न किया है। मुझे सीता और लक्ष्मणके साथ धर्मज्ञ श्रीरामका पता मालूम है। वे इस समय चित्रकूट पर्वतपर निवास करते हैं। अब कल तुम वहाँकी यात्रा करना। आज अपने मन्त्रियोंके साथ इस आश्रममें ही रहो। मेरी इस अभिलाषा-को पूर्ण करो।' तदनन्तर भरतने 'तथास्तु' कहकर महर्षिकी आज्ञा शिरोधार्य की और रात्रिमें वहाँ निवास करनेका विचार किया।

तब मुनिवर भरद्वाजने भरतसे आतिथ्य स्वीकार करनेका आग्रह किया। भरतने कहा—'मुने! वनमें जैसा आतिथ्य-सत्कार सम्भव है, वह तो आप पाद्य-अर्घ्य और फल-मूलादि देकर कर ही चुके।' यह सुनकर भरद्वाजजी हँसते हुए-से बोले—'भरत! मैं जानता हूँ मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम है; अतः तुम्हें जो कुछ दूँगा, उसीसे सन्तुष्ट हो जाओगे। किन्तु इस समय मैं तुम्हारी सेनाको भोजन कराना चाहता हूँ; इससे मुझे प्रसन्नता होगी और जिसमें मेरी प्रसन्नता हो, वह कार्य तुम्हें अवश्य करना चाहिये [ अतः मेरा अनुरोध स्वीकार करो ]। नरश्रेष्ठ! बताओ तो, तुम अपनी सेनाको उतनी दूर क्यों छोड़ आये?' भरतने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'भगवन्! राजा और राजपुत्रको तपस्वियोंके आश्रमसे दूर ही रहना चाहिये [ क्योंकि उनके द्वारा उन्हें कष्ट पहुँचनेकी सम्भावना रहती है ] मेरे साथ बहुत-से घोड़े, मनुष्य और मतवाले हाथी हैं। वे आश्रमके वृक्ष, जल, भूमि और पर्णशालाओंको हानि न पहुँचायें—इसलिये मैं यहाँ अकेला ही आया हूँ।' तब मुनिने आज्ञा दी—'सेनाको यहीं ले आओ।' भरतने ऐसा ही किया।

इसके बाद मुनिवर भरद्वाजने अग्निशालामें प्रवेश करके जलका आचमन किया और मार्जन करके कहा—'मैं भरतका आतिथ्य करनेके लिये शिल्पके देवता विश्वकर्माका, इन्द्र आदि लोकपालोंका, यम, वरुण और कुबेरका तथा पृथ्वी और आकाशमें पूर्व एवं पश्चिमकी ओर प्रवाहित होनेवाली नदियोंका आवाहन करता हूँ; सब यहाँ उपस्थित होकर भरतके आतिथ्यका प्रबन्ध करें।' ऐसा कहकर मुनि पूर्वाभिमुख हो हाथ जोड़े मन-ही-मन ध्यान करने लगे। उनके स्मरण करते ही वे सभी देवता एक-एक करके वहाँ आ पहुँचे। फिर तो वहाँ मलयका स्पर्श करके बहनेवाली प्रिय और सुखदायिनी हवा चलने लगी। मेघगण दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। चारों ओर देवताओंकी दुन्दुभिका मधुर शब्द सुनायी देने लगा, देव-गन्धर्व गाने लगे और सब ओर वीणाकी स्वरलहरी फैल गयी। वह कानोंको सुख देनेवाला दिव्य शब्द हो ही रहा था कि इतनेमें भरतकी सेनाको विश्वकर्माका निर्माण-कौशल दिखायी पड़ा। चारों ओर पाँच योजनतककी भूमि समतल हो गयी, उसपर नीलम और वैदूर्यके समान नाना प्रकारकी घास जमी थी। स्थान-स्थानपर बेल, कटहल, आँवला तथा आमके वृक्ष लगे थे, जो फलोंसे सुशोभित हो रहे थे। हाथी और घोड़ोंके रहनेके लिये उपयोगी घर तथा मनुष्योंके लिये अट्टालिका और महल आदि बनकर तैयार थे। राजपरिवारके लिये बना हुआ सुन्दर भवन श्वेत बादलोंके समान शोभा पा रहा था। उसे सफेद फूलोंकी मालाओंसे सजाया और दिव्य सुगन्धसे सींचा गया था। वह महल चौकोना तथा बहुत बड़ा था—उसमें संकीर्णताका अनुभव नहीं होता था। उसमें सोने, बैठने और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवारियोंके रहनेके लिये अलग-अलग स्थान थे। वहाँ सब प्रकारके दिव्य रस, दिव्य भोजन और दिव्य वस्त्र प्रस्तुत थे। सब तरहके अन्न और धुले हुए स्वच्छ पात्र रखे हुए थे। कहीं बैठनेके लिये सब प्रकारके साधन उपस्थित थे और कहीं सोनेके लिये सुन्दर-सुन्दर शय्याएँ बिछी थीं। महर्षि भरद्वाजकी आज्ञासे कैकेयीपुत्र भरतने नाना प्रकारके रत्नोंसे भरे हुए महलमें प्रवेश किया। उनके साथ-साथ पुरोहित और मन्त्री भी गये। राजभवनकी रचना-चातुरी देखकर उन सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। भरतने वहाँ दिव्य राजसिंहासन, चँवर और छत्र भी देखे तथा उनमें राजाकी भावना करके मन्त्रियोंके साथ उन सबकी प्रदक्षिणा की। 'सिंहासनपर श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं' ऐसी धारणा बनाकर उन्होंने श्रीरामको प्रणाम किया और उस सिंहासनकी भी पूजा की। फिर अपने हाथमें चँवर ले, वे मन्त्रीके आसन-पर जा बैठे। तदनन्तर पुरोहित और मन्त्री भी क्रमशः योग्य आसनोंपर विराजमान हुए। फिर सेनापति और प्रशास्ता (छावनीकी रक्षा करनेवाले) भी बैठ गये।

तत्पश्चात् भिन्न-भिन्न वाहनोंकी रक्षामें नियुक्त मनुष्योंने हाथी, घोड़े, ऊँट तथा बैलोंको भलीभाँति भोजन कराया। इक्ष्वाकुकुलके योद्धाओंकी सवारीमें आनेवाले वाहनोंको ऊख और मधु मिला हुआ लावा खानेको दिया। भरतके साथ आये हुए हजारों मनुष्य वहाँका वैभव देखकर हर्षके मारे फूले नहीं समाते थे और जोर-जोरसे कहते थे—'यह स्थान स्वर्ग है। अमृतके समान स्वादिष्ठ अन्नका भोजन कर चुकने-पर भी उनकी उन दिव्य पदार्थोंको देखकर पुनः भोजन करनेकी इच्छा हो जाती थी। हाथी, घोड़े, ऊँट, बैल, मृग तथा पक्षी भी पूर्ण तृप्त हो गये। उस समय वहाँ कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जिसके कपड़े सफेद न हों तथा जो भूखा और मलिन रह गया हो। सबने आश्चर्यके साथ देखा वहाँ हजारों सोनेके पात्र स्वच्छ अन्नसे भरे रखे हैं। वनके आसपास जितने कुएँ थे, उनमेंसे स्वादिष्ठ खीर निकलती थी। वहाँकी गौएँ कामधेनु (सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली) हो गयी थीं और उस जंगलके वृक्ष मधुकी वर्षा करते थे। रायते, सफेद दही और दूधके कई तालाब भरे थे। शक्करोंकी अनेकों ढेरियाँ लगी थीं। स्नान करनेवाले मनुष्योंको नदीके घाटोंपर भिन्न-भिन्न पात्रोंमें पीसा हुआ आँवला, सुगन्धित चूर्ण तथा और भी अनेकों स्नानोपयोगी पदार्थ रखे दिखायी देते थे। हाथी, घोड़े और ऊँटोंके पानी पीनेके लिये कई जलाशय भरे थे, जिनके घाट बहुत सुन्दर थे। उनका जल आकाशके समान स्वच्छ था तथा उनमें सुखपूर्वक तैरा जा सकता था। पशुओंके खानेके लिये नील वैदूर्यके समान हरी एवं कोमल घासकी ढेरियाँ लगी थीं। महर्षि भरद्वाजका किया हुआ यह अद्भुत आतिथ्य-सत्कार देखकर सभी मनुष्योंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे नन्दन-वनमें विहार करनेवाले देवताओंकी भाँति महर्षिके उस रमणीय आश्रममें यथेष्ट विहार करते रहे। इस प्रकार उन्होंने बड़े सुखसे वह रात्रि व्यतीत की।

भरतजीने मुनिका आतिथ्य ग्रहण करके अपने परिवार-सहित आश्रममें ही रात्रि व्यतीत की और फिर वे जानेकी आज्ञा लेनेके लिये महर्षिके पास गये। उन्हें हाथ जोड़े अपने पास आया देख भरद्वाजजी अग्निहोत्रका कार्य पूर्ण करके बोले—'भरत! क्या इस आश्रममें तुम्हारी रात सुखसे बीती? तुम्हारे साथ आये हुए सब लोगोंका सन्तोषजनक सत्कार हुआ या नहीं?' तब भरतने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'मुनिश्रेष्ठ! आपने सेना और सवारियोंसहित मुझे पूर्णरूपसे तृप्त किया है। साधारण सेवकों-से लेकर बड़े लोगोंतक सभी बड़े सुखसे रहे। सबको उत्तम भोजन और उत्तम निवासस्थान प्राप्त हुआ। अब मैं आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। अपने भाईके समीप जाना चाहता हूँ। आप मुझपर कृपादृष्टि रखियेगा। धर्मपरायण महात्मा श्रीरामके आश्रमको जानेके लिये कौन-सा मार्ग है? और वह यहाँसे कितनी दूर है?' उनके इस प्रकार पूछनेपर महातेजस्वी भरद्वाजने उत्तर दिया—'भरत! यहाँसे ढाई योजन (दस कोस) की दूरीपर एक निर्जन वन है, जिसमें चित्रकूट नामका पर्वत है; वहाँके झरने और वन बड़े ही रमणीय हैं। उसके उत्तरी किनारेसे मन्दाकिनी नदी बहती है, जो फूलोंसे लदे सघन वृक्षोंसे आच्छादित रहती है। उसके आसपास-का वन बड़ा ही रमणीय और नाना प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित है। मन्दाकिनी नदीके उस पार चित्रकूट पर्वतपर श्रीराम और लक्ष्मणकी पर्णशाला है। वहीं वे दोनों भाई निश्चितरूपसे निवास करते हैं। तुम यहाँसे हाथी-घोड़ोंसे भरी अपनी सेना लेकर पहले यमुनाके दक्षिणी किनारेसे जो मार्ग है, उससे जाओ। आगे जाकर दो रास्ते मिलेंगे; उनमेंसे जो रास्ता बायें दाबकर दक्षिण दिशाकी ओर गया है, उसीसे जाना। उस मार्गसे चलकर तुम शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन पा सकोगे।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अब यहाँसे प्रस्थान करना है—यह सुनकर महाराज दशरथकी स्त्रियोंने महामुनि भरद्वाजकी प्रदक्षिणा की और उनको प्रणाम करके भरतके पास ही खड़ी हो गयीं। तब महर्षिने भरतसे कहा—'रघुनन्दन! मैं तुम्हारी माताओंका विशेषरूपसे परिचय पाना चाहता हूँ।' भरतने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! आप जिन्हें शोक और उपवासके कारण अत्यन्त दुर्बल एवं दुखी देख रहे हैं, ये श्रीरामकी माता कौसल्या हैं। इनकी बायीं भुजाका सहारा लिये जो मन मारे खड़ी हैं, ये माता सुमित्रा हैं; सत्यपराक्रमी कुमार लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन्हींके पुत्र हैं। तथा यह मेरी माता कैकेयी है, जिसके कारण नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण वनमें गये हैं एवं राजा दशरथ स्वर्गवासी हुए हैं। यह स्वभावसे ही क्रोध करनेवाली और राज्यके लोभमें फँसी हुई है। इसके विचार पापपूर्ण हैं और हृदय पाषाणके समान कठोर है। इसीके कारण मैं अपने ऊपर महान् संकट आया देख रहा हूँ।'

भरतके ये वचन सुनकर महर्षि भरद्वाजने कहा—'भरत! तुम कैकेयीपर दोषदृष्टि न करो। श्रीरामके इस वनवासका अन्त बड़ा ही सुखद होगा। उनके वनमें जानेसे देवताओं, दानवों तथा आत्मज्ञानी महर्षियोंका बड़ा हित होनेवाला है।' भरतने मुनिको प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया और उनकी प्रदक्षिणा करके जानेकी आज्ञा ले सेनाको कूचके लिये तैयार होनेका आदेश दिया। तदनन्तर हाथी-घोड़ोंसे भरी हुई वह विशाल वाहिनी दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ी और गङ्गाके उस पार पर्वतों तथा नदियोंके निकटवर्ती वनोंको, जो मृग और पक्षियोंसे भरे थे, पार करती आगे बढ़ गयी। धर्मात्मा भरत चतुरङ्गिणी सेनाके साथ बड़ी प्रसन्नतासे यात्रा कर रहे थे। दूरतकका रास्ता तय कर लेनेपर जब सवारियाँ बहुत थक गयीं तो भरतने मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीसे कहा—'ब्रह्मन्! मैं जैसा सुन रखा था, वैसा ही इस देशका स्वरूप दिखायी पड़ता है। भरद्वाजजीने जहाँ पहुँचनेका आदेश दिया था, निश्चय ही उस देशमें हमलोग पहुँच गये हैं। जान पड़ता है यही चित्रकूट पर्वत है और वह मन्दाकिनी नदी बह रही है। यह पर्वतके पासका वन दूरसे नील मेघके समान दिखायी दे रहा है।' इसके बाद भरत शत्रुघ्नसे कहने लगे—'भाई! यह देश मुझे बड़ा ही मनोहर प्रतीत होता है। तपस्वियोंका यह निवासस्थान वास्तवमें स्वर्गीय पथ-सा जान पड़ता है। सैनिकोंको चाहिये कि वनमें जाकर चारों ओर तलाश करें, जिससे नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मणका पता लग जाय।'

भरतके वचन सुनकर शूरवीर पुरुषोंने हाथोंमें हथियार लेकर वनमें प्रवेश किया। आगे जानेपर उन्हें धुआँ उठता दिखायी दिया। उस धूमशिखाको देखकर वे लौट आये और भरतसे बोले—'जहाँ कोई मनुष्य नहीं होता, वहाँ आग नहीं रहती। यहाँ धुआँ दिखायी दे रहा है, अतः श्रीराम और लक्ष्मण अवश्य यहीं होंगे।' उनकी बातें सुनकर भरतने कहा—'तुम सब लोग सावधान होकर यहीं ठहरो।' आज्ञा पाकर समस्त सैनिक वहीं खड़े हो गये और भरतने जहाँ धुआँ उठ रहा था उस ओर अपनी दृष्टि स्थिर की।

## श्रीरामका सीतासे चित्रकूट और मन्दाकिनीकी शोभाका वर्णन, भरतके प्रति लक्ष्मणका रोष, रामका उन्हें समझाना तथा भरतको रामके आश्रमका दर्शन

इधर श्रीरामचन्द्रजी बहुत दिनोंसे चित्रकूट पर्वतपर निवास कर रहे थे। एक दिन अपने मनोरञ्जन और सीताकी प्रसन्नताके लिये वे उन्हें वहाँकी विचित्र शोभा दिखाने लगे—'कल्याणी! जरा इस पर्वतपर दृष्टि तो डालो, यह बहुत ही रमणीय जान पड़ता है। इसे देखते ही सारी चिन्ता दूर हो जाती है—मन प्रसन्न हो जाता है। नाना प्रकारके पक्षी यहाँ कलरव कर रहे हैं। आम, जामुन, असन, लोध्र, प्रियाल, कटहल, धव, अँकोल, भव्य, तिनिश, बेल, तिन्दुक, बाँस, काश्मीर, अरिष्ट (नीम), वरण, महुआ, तिलक, बेर, आँवला, कदम्ब, बेत, धन्वन और बीजक (अनार) आदि घनी छायावाले वृक्षोंसे, जो फल और फूलोंके कारण भले मालूम होते हैं, इस पर्वतकी बड़ी शोभा हो रही है। इसके ऊपर कहीं ऊँचेसे झरने गिर रहे हैं, कहीं जमीनके भीतरसे सोते निकले हैं और कहीं छोटे-छोटे स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं। इन सबके कारण यहाँ मेरा मन बहुत लगता है। इस वनवाससे मुझे दो लाभ हुए हैं—एक तो धर्मानुसार पिताकी आज्ञारूप ऋण चुक गया और दूसरा भरतका प्रिय हुआ। विदेहकुमारी! क्या चित्रकूट पर्वतपर मेरे साथ मन, वाणी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शरीरको प्रिय लगनेवाले भाँति-भाँतिके पदार्थोंको देखनेसे तुम्हें सुख मिलता है ? रानी! मेरे प्रपितामह राजर्षि मनु आदिने नियमपूर्वक वनवास करनेको ही अमृत बतलाया है। इससे शरीरत्यागके पश्चात् परम कल्याणकी प्राप्ति होती है। बहुत-से मूल, फल और जलसे सम्पन्न यह चित्रकूट पर्वत कुबेरकी नगरी अलका, इन्द्रपुरी अमरावती और उत्तरकुरुको भी अपनी शोभासे मात कर रहा है। सीते! अपने उत्तम नियमोंका पालन करते हुए, सत्पुरुषोंके मार्गपर स्थित रहकर यदि मैं तुम्हारे और लक्ष्मणके साथ इन चौदह वर्षोंको सुखपूर्वक व्यतीत कर सका तो मुझे वह सुख प्राप्त होगा, जो कुलधर्मको बढ़ानेवाला है।

'अब तनिक मन्दाकिनी नदीकी शोभा देखो। हंस और सारसोंसे सेवित होनेके कारण यह कितनी सुन्दर जान पड़ती है। इसका किनारा बड़ा ही विचित्र है। नाना प्रकारके पुष्प इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। फल और फूलोंके भारसे लदे हुए भाँति-भाँतिके तटवर्ती वृक्षोंसे घिरी हुई यह मन्दाकिनी कुबेरके सौगन्धिक सरोवर-सी सुशोभित हो रही है। इसके मनोहर घाट देखकर मेरे मनको बड़ी प्रसन्नता होती है। प्रिये! वह देखो—जटा, मृगचर्म और वल्कल धारण करनेवाले महर्षि उपयुक्त समय जानकर मन्दाकिनीमें स्नान कर रहे हैं। दूसरी ओर ये उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनि शास्त्रीय विधिके अनुसार दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर सूर्यदेवका उपस्थान कर रहे हैं। कल्याणी! निरन्तर तुम्हारे साथ रहनेके कारण यह चित्रकूट और मन्दाकिनीका दर्शन मुझे नगरमें रहनेकी अपेक्षा अधिक अच्छा जान पड़ता है। इस नदीमें प्रतिदिन तपस्या, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रहसे सम्पन्न अनेकों निष्पाप सिद्ध महात्मा गोता लगाते हैं। चलो, तुम भी मेरे साथ स्नान करो। इस वनके निवासियोंको पुरवासी समझो, चित्रकूट पर्वतको अयोध्या मानो और मन्दाकिनी नदीमें ही सरयूकी भावना करो। धर्मात्मा लक्ष्मण सदा ही मेरी आज्ञाके अधीन रहते हैं और तुम भी मेरे मनके अनुकूल चलती हो; इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।'

इस प्रकार धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ बातें कर रहे थे; इतनेमें ही भरतके साथ आनेवाली सेनाकी धूल आकाशमें उड़ती दिखायी दी तथा सैनिकोंका तुमुल कोलाहल समस्त आकाशमें गूँज उठा। उस शब्दसे भयभीत होकर कितने ही हाथियोंके यूथपति अपने-अपने यूथके साथ सब दिशाओंमें भाग गये। श्रीरामचन्द्रजी उन हाथियोंको भागते देख और उस महाभयानक शब्दको सुनकर अत्यन्त तेजस्वी लक्ष्मणसे बोले—'सुमित्रानन्दन! देखो तो यह मेघगर्जनाके समान भयंकर आवाज कहाँसे आ रही है ? कोई राजा या राजकुमार यहाँके जंगलमें शिकार तो नहीं खेल रहा है ? तुम जाकर ठीक-ठीक पता लगाओ।' भगवान् श्रीरामकी आज्ञा पाकर लक्ष्मण तुरंत ही फूलोंसे लदे एक साल वृक्षपर चढ़ गये और चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगे। इसी समय उत्तरकी ओरसे उन्हें बहुत बड़ी सेना आती दिखायी दी, जो

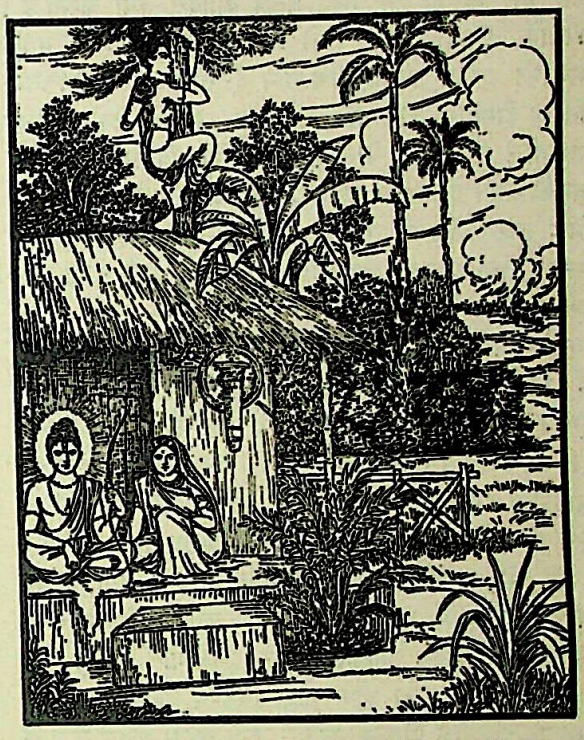

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल—चारों अङ्गोंसे युक्त थी। लक्ष्मणने श्रीरामको उस भारी सेनाके आगमनकी सूचना देते हुए कहा—'आर्य! यह निश्चय ही कैकेयीका पुत्र भरत है, जो अयोध्यामें अभिषिक्त होकर अब समूचे राज्यपर दखल जमाना चाहता है। इस समय यह हम दोनों भाइयोंको मार डालनेके लिये आ रहा है। सामनेकी ओर यह जो बहुत बड़ा वृक्ष दिखायी देता है, उसीके पास रथ खड़ा है और उसकी ध्वजामें कोविदारका चिह्न दृष्टिगोचर हो रहा है। अब हमलोगोंको धनुष लेकर पर्वतके शिखरपर चलना चाहिये अथवा कवच बाँधकर अस्त्र-शस्त्र धारण किये यहीं डटे रहना चाहिये। रघुनन्दन! जिसके कारण आपको, सीताको और मुझको महान् सङ्कटका सामना करना पड़ा है तथा आप अपने सनातन राज्याधिकारसे वञ्चित किये गये हैं, वही हमारा शत्रु भरत यहाँ आ पहुँचा है। वह अवश्य ही वध करनेके योग्य है, उसको मारनेमें मुझे कोई दोष नहीं दिखायी देता। राज्यका लोभ करनेवाली कैकेयी आज युद्धमें अपने पुत्रको मेरे हाथसे मरा हुआ देखेगी। इसके मारे जानेपर आप सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य करें। मैं कैकेयी और उसके बन्धु-बान्धवोंको भी जीवित नहीं छोड़ूँगा। इस महान् वनमें आज सेनासहित भरतको मौतके घाट उतारकर मैं अपने धनुष और बाणसे उऋण हो जाऊँगा।


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इस प्रकार लक्ष्मणजी भरतके प्रति अत्यन्त क्रोधसे भर गये, तब उन्हें श्रीरामचन्द्रजीने समझाकर शान्त किया। वे कहने लगे—'लक्ष्मण! महान् उत्साही भरत जब स्वयं यहाँ आ ही रहे हैं, तो हमें धनुष आदिसे क्या करना है? पिताके सत्यकी रक्षाके लिये प्रतिज्ञा करके यदि मैं युद्धमें भरतको मारकर उनका राज्य छीन लूँ, तो संसारमें मेरी कितनी निन्दा होगी? फिर उस कलङ्कित राज्यको लेकर मैं क्या करूँगा? अपने बन्धु-बान्धवों या मित्रोंका विनाश करके जिस धनकी प्राप्ति होती हो, उसे मैं नहीं लेना चाहता। वह विष मिले हुए भोजनके समान त्याग देने योग्य है। सुमित्रा-नन्दन! तुमसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि धर्म, अर्थ, कामोपभोग और पृथ्वीका राज्य भी मैं तुम्हीं लोगोंके लिये चाहता हूँ।* समुद्रसे घिरी हुई यह पृथ्वी मेरे लिये दुर्लभ नहीं है; परन्तु मैं अधर्मसे इन्द्रका पद भी नहीं प्राप्त करना चाहता। भरतको, तुमको और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो, तो उसे अग्निदेव जलाकर खाक कर डालें।† भरत बड़े भ्रातृभक्त हैं, वे मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है, भरतने अयोध्यामें आनेपर जब सुना है कि मैं तुम्हारे और जानकीके साथ जटा तथा वल्कल धारण करके वनमें आ गया हूँ तो वे कुलधर्मका विचार करके स्नेह एवं शोकसे आकुल होकर हमलोगोंसे मिलने आये हैं। उनके आगमनका और कोई उद्देश्य नहीं हो सकता। वे माता कैकेयीके प्रति कुपित हो, उन्हें कठोर वचन सुनाकर और पिताजीको प्रसन्न करके मुझे राज्य देनेके लिये आये हैं। इस समय भरतका हमलोगोंसे मिलनेके लिये आना सर्वथा उचित है। वे मिलनेके योग्य हैं। हमलोगोंके अहितका विचार तो वे कभी मनमें भी नहीं ला सकते। भरतने तुम्हारा कब और क्या अपराध किया है, जो तुम आज उनसे ऐसा भय, इस तरहकी आशङ्का कर रहे हो? भरतके आनेपर तुम उनसे कोई कठोर या अप्रिय वचन न बोलना। यदि तुमने उनके साथ कोई प्रतिकूल बर्ताव किया तो वह मेरे ही साथ किया समझा जायगा। लक्ष्मण! कितनी ही बड़ी आपत्ति क्यों न आ जाय, पुत्र अपने पिताको कैसे मार सकते हैं? भाई अपने प्राणोंके समान भाईकी हत्या कैसे कर सकता है? यदि तुम राज्यके लिये ऐसी कठोर बात कहते हो, तो मैं भरतसे मिलनेपर उन्हें कह दूँगा कि यह राज्य लक्ष्मणको दे डालो। वे अवश्य मेरी बात मान लेंगे।' अपने धर्मपरायण भाईके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मण लज्जासे गड़ गये। उन्हें लज्जित देखकर श्रीरामने फिर कहा—'लक्ष्मण! अब तुम पेड़से नीचे उतर आओ।' आज्ञा पाकर लक्ष्मण साल वृक्षसे नीचे उतरे और श्रीरामचन्द्रजीके पास जा हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

उधर भरतने सेनाको आज्ञा दी कि यहाँ किसीको हमलोगोंके द्वारा बाधा नहीं पहुँचनी चाहिये। उनका आदेश पाकर समस्त सैनिक पर्वतके चारों ओर नीचे ही ठहर गये। उस समय हाथी, घोड़े और मनुष्योंसे भरी हुई उस सेनाने पर्वतके पास डेढ़ योजनतककी भूमि घेर रखी थी। इस प्रकार सेना-को ठहराकर भरतने पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले रामचन्द्रजीके पास जानेका विचार किया। उन्होंने अपने भाई शत्रुघ्नसे कहा—'सौम्य! तुम बहुत-से मनुष्यों और व्याधोंको साथ लेकर शीघ्र ही इस वनमें जाओ और चारों ओर आर्य श्रीरामचन्द्रजीकी खोज करो। निषादराज गुह भी धनुष, बाण और तलवार लिये अपने हजारों बन्धु-बान्धवोंके साथ श्रीराम और लक्ष्मणकी तलाश करें। मैं भी मन्त्री, पुरवासी, गुरु और ब्राह्मणोंको साथ ले पैदल ही समूचे वनमें चक्कर लगाऊँगा। जबतक महाबली लक्ष्मणको, सौभाग्यशालिनी सीताको तथा अपने पूज्य भ्राता श्रीरामके कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले मुखचन्द्रको न देख लूँगा, मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। जबतक भ्राताके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम न करूँगा, जबतक राज्यके सच्चे अधिकारी भगवान् श्रीराम अभिषेकके जलसे सिञ्चित होकर अपने पिता-पितामहोंके साम्राज्यपर प्रतिष्ठित न हो जायँगे, तबतक मेरे मनको शान्ति नहीं मिलेगी। विदेहराजकुमारी सीताका ही जीवन सफल है, जो अपने समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके स्वामी पतिदेवका अनुसरण कर रही हैं। यह चित्रकूट पर्वत, जिसपर स्वयं श्रीरामचन्द्रजी निवास करते हैं, गिरिराज हिमालयके समान शोभा पा रहा है। यह दुर्गम वन भी आज धन्य हो गया; जिसे महाराज श्रीरामने अपना आश्रय बनाया है।'

ऐसा कहकर महातेजस्वी भरतने उस महान् वनमें पैदल ही प्रवेश किया। आगे जाकर वे बड़ी तेजीसे चित्रकूट पर्वतके एक साल वृक्षपर चढ़ गये और वहाँसे उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमपर सुलगती हुई आगका धुआँ देखा। उस धूमको देख-कर भरतको भाईसहित बड़ी प्रसन्नता हुई और यहीं श्रीराम हैं, यह जानकर उन्हें अथाह जलसे पार हो जानेके समान सन्तोष हुआ। इस प्रकार उस पर्वतपर पुण्यात्मा महर्षियोंसे युक्त श्रीरामका आश्रम देखकर महात्मा भरतने ढूँढ़नेके लिये आयी हुई सेनाको पुनः पूर्व स्थानपर ठहरा दिया और वे स्वयं गुहके साथ शीघ्रतापूर्वक आश्रमकी ओर चल दिये।

---

* धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते॥ (९७। ५)

† नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागराम्बरा।
न हीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण॥
यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद् भस्म तत् कुरुतां शिखी॥ (९७। ७-८)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भरत और शत्रुघ्नकी श्रीरामसे भेंट

सेनाके ठहर जानेपर भरत भाईको देखनेके लिये उत्कण्ठित होकर शत्रुघ्नको आश्रमके चिह्न दिखाते हुए उसकी ओर चले। महर्षि वसिष्ठको यह सन्देश देकर कि आप मेरी माताओंको साथ लेकर शीघ्र ही आइये, वे तुरंत आगे बढ़ गये। सुमन्त्र भी शत्रुघ्नसे थोड़ी ही दूर पीछे-पीछे चल रहे थे। चलते-चलते ही परम कान्तिमान् महाबाहु भरतने शत्रुघ्न और मन्त्रियोंसे हर्षमें भरकर कहा—'जान पड़ता है महर्षि भरद्वाजने जिस स्थानका पता बताया था, वहाँ हमलोग आ गये हैं। मैं समझता हूँ मन्दाकिनी नदी यहाँसे अधिक दूर नहीं है। ऊँचे वृक्षोंमें ये चीर बँधे दिखायी दे रहे हैं; इन्हें लक्ष्मणने ही बाँधा होगा, जिससे कभी असमयमें आने-जाने-पर रास्तेकी पहचान हो सके। मेरे ही कारण महाराज राम इस

निर्जन वनमें आकर धरतीके ऊपर वीरासनसे बैठते हैं, मेरे जन्म और जीवनको धिक्कार है! आज मैं श्रीरामके चरणोंमें गिरकर उन्हें प्रसन्न करूँगा। सीता और लक्ष्मणके भी पैरों पड़ूँगा।' इस प्रकार विलाप करते हुए दशरथकुमार भरतने एक बहुत बड़ी पर्णशाला देखी, जो परम पवित्र और चित्ता-कर्षक थी। वह साल, ताल और अश्वकर्ण नामक वृक्षोंके पत्तोंसे छायी हुई थी। वहाँ इन्द्रधनुषके समान अनेकों धनुष रखे थे, जिनके पृष्ठभाग सोनेसे मढ़े थे और जो बहुत ही भारी, मजबूत तथा शत्रुओंको पीड़ा पहुँचानेवाले थे। इन धनुषोंके सिवा वहाँ कई तरकसोंमें बहुत-से बाण भरे थे, जो सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले और भयंकर थे। सोनेकी म्यानोंमें रखी हुई दो तलवारें तथा स्वर्णमय विन्दुओंसे विभूषित दो ढालें भी उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रही थीं। गोहके चमड़ेसे बने कई स्वर्णजटित दस्ताने वहाँ रखे थे।

भरतने देखा, आश्रमके सामने एक बहुत बड़ी वेदी बनी है, जो ईशान कोणकी ओर कुछ नीची है। उस पवित्र वेदीपर आग जल रही है। फिर आश्रममें दृष्टि डालनेपर उन्हें भगवान् श्रीराम बैठे दिखायी दिये, जो कृष्णमृगचर्म और वल्कल-वस्त्र धारण किये हुए थे। उनके मस्तकपर जटाएँ शोभा पा रही थीं। उनके सिंहके समान कंधे, बड़ी-बड़ी भुजाएँ और कमलके समान नेत्र थे। समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके स्वामी एवं धर्मपरायण राम एक चबूतरेपर जिसके ऊपर कुश बिछे थे, सीता और लक्ष्मणके साथ विराजमान थे। उन्हें इस अवस्थामें देख धर्मात्मा भरत शोक और मोहमें डूब गये तथा श्रीरामचन्द्रजीकी ओर बड़े वेगसे दौड़े। भाईकी ओर दृष्टि पड़ते ही वे आर्तभावसे विलाप करने लगे और आँसू बहाते हुए गद्गदवाणीसे बोले—'हाय! जो राजसभामें बैठकर प्रजा और मन्त्रिवर्गके द्वारा सम्मान पानेके योग्य हैं, वे ही मेरे बड़े भ्राता यहाँ जंगली पशुओंसे घिरे हुए बैठे हैं। जो महात्मा पहले कई हजार वस्त्रोंका उपयोग करते थे, वे आज धर्माचरण करते हुए केवल दो मृगचर्म धारण किये दिखायी देते हैं। जिनके लिये शास्त्रोक्त यज्ञोंके अनुष्ठानद्वारा धर्मका संग्रह करना उचित है, वे इस समय शरीरको कष्ट देनेसे प्राप्त होनेवाले धर्मका अनुसन्धान कर रहे हैं। हाय! जो सर्वथा सुखके योग्य हैं। वे राम मेरे ही कारण इतना दुःख उठा रहे हैं। ओह! मैं कितना क्रूर हूँ। मेरे इस लोकनिन्दित जीवनको धिक्कार है!'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri

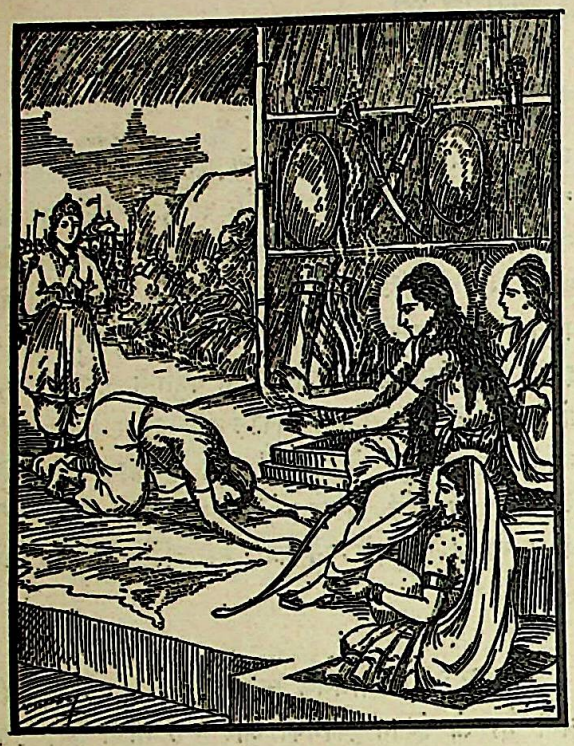

इस प्रकार विलाप करते-करते भरत अत्यन्त दुखी हो गये, उनके मुखपर पसीना आ गया और वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंतक पहुँचनेके पहले ही रोते हुए गिर पड़े। अत्यन्त दुःखसे सन्तप्त होकर महाबली राजकुमार भरतने एक बार अत्यन्त दीन वाणीमें 'आर्य!' कहकर पुकारा। इससे आगे वे कुछ न बोल सके। फिर शत्रुघ्नने भी रोते-रोते श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया। श्रीरामने भी उन दोनों-को उठाकर छातीसे लगा लिया और आँसुओंकी धारा बहाने लगे। तत्पश्चात् राजकुमार श्रीराम तथा लक्ष्मण सुमन्त्र और निषादराज गुहसे मिले। महान् गजराजपर बैठकर यात्रा करनेयोग्य उन राजकुमारोंको उस महान् वनमें आया देख समस्त वनवासी आँसू बहाने लगे।

## श्रीरामका भरतको कुशल-प्रश्नके बहाने राजनीतिका उपदेश

जटा और चीर धारण किये भरतको हाथ जोड़कर पृथ्वी-पर पड़े देख श्रीरामने उन्हें जैसे-तैसे पहचाना। उनका चेहरा पीला पड़ गया था और वे अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। श्रीरामचन्द्रजीने भाई भरतको अपने हाथसे पकड़कर उठाया और उनका मस्तक सूँघकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। इसके बाद भरतको गोदमें बिठाकर श्रीरामने बड़े आदरसे पूछा—'तात! पिताजी कहाँ हैं, जो आज तुम इस वनमें आये हो। उनके जीते-जी तो तुम वनमें नहीं आ सकते थे। महाराज जीवित हैं न? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वे अत्यन्त दुखी होकर सहसा परलोकवासी हो गये हों और इसीलिये तुम्हें स्वयं यहाँ आना पड़ा हो? सौम्य! तुम अभी बालक हो, इसलिये परम्परासे चला आता हुआ तुम्हारा राज्य नष्ट तो नहीं हो गया? पिताकी सेवा-शुश्रूषा तो करते हो न? धर्मपर अटल रहनेवाले सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथ कुशलसे हैं न? तात! क्या तुम सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले, विद्वान्, ब्रह्मवेत्ता और इक्ष्वाकु-कुलके आचार्य परमतेजस्वी वसिष्ठजीकी यथावत् पूजा करते हो? क्या माता कौसल्या, सुमित्रा तथा आर्या कैकेयी सुखी एवं प्रसन्न हैं? तुम देवताओं, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, पिताके समान आदरणीय वृद्धों, वैद्यों और ब्राह्मणोंका सम्मान तो करते हो न? क्या तुमने अपने ही समान शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन और बाहरी चेष्टाओंसे ही मनकी बात समझ लेनेवाले सुयोग्य व्यक्तियोंको ही मन्त्री बनाया है? अच्छी मन्त्रणा ही राजाओं-की विजयका साधन है। नीतिशास्त्रके ज्ञाता एवं मन्त्रको गुप्त रखनेवालोंमें श्रेष्ठ अमात्योंके द्वारा ही राजा भलीभाँति सुरक्षित रहता है। तुम समयपर जाग जाते हो न? रातके पिछले पहरमें अर्थसिद्धिके उपायपर विचार करते हो न? तुम अकेले या अधिक आदमियोंके साथ तो किसी गुप्त विषयपर विचार नहीं करते? तुम्हारा विचारा हुआ गुप्त मन्त्र समूचे राष्ट्र-में फैल तो नहीं जाता? जिसका साधन बहुत छोटा और फल बहुत बड़ा हो, ऐसे कार्यका निश्चय करनेके बाद तुम उसे शीघ्र प्रारम्भ कर देते हो न? उसमें विलम्ब तो नहीं करते? तुम्हारे सब कार्य पूर्ण हो जानेपर अथवा पूरे होनेके समीप पहुँचनेपर ही दूसरे राजाओंको ज्ञात होते हैं न? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारे भावी कार्यक्रमको वे पहले ही जान जाते हों? तुम्हारे निश्चित किये हुए विचारोंको तुम्हारे या मन्त्रियोंके प्रकट न करनेपर भी दूसरे लोग तर्क और युक्तियोंके द्वारा जान तो नहीं लेते? तथा तुमको और तुम्हारे अमात्योंको दूसरेके गुप्त विचारोंका पता लगता रहता है न? क्या तुम्हें हजारों मूर्खोंका परित्याग करके एक विद्वान्को अपने पास रखनेकी इच्छा होती है? क्योंकि अर्थसंकटके समय विद्वान् पुरुष बड़ा हित कर सकता है। परन्तु यदि राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

# श्रीरामके चरणोंमें भरत

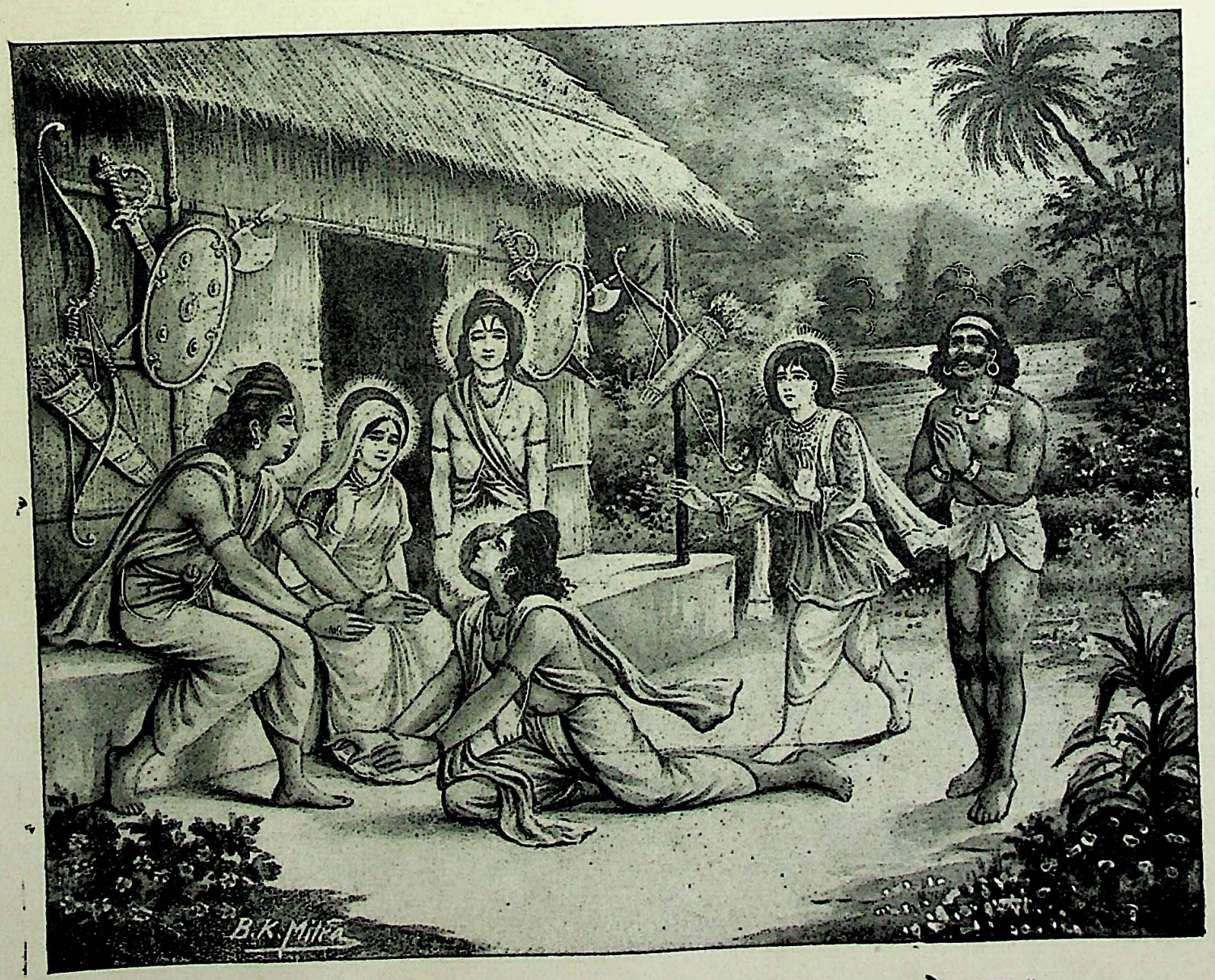


इत्येवं विलपन् दीनः प्रखिन्नमुखपङ्कजः । पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन् ॥
दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः । उक्त्वाऽऽर्येति सकृद्दीनं पुनर्नोवाच किञ्चन ॥
(अयोध्या० ९९ । ३७-३८)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

हजार या दस हजार मूर्खोंको अपने पास रख ले, तो भी उनसे अवसरपर कोई अच्छी सहायता नहीं मिलती। मेधावी, शूर-वीर, चतुर एवं नीतिज्ञ अमात्य यदि एक भी हो तो वह राजा या राजकुमारको बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त करा सकता है। तात! तुमने प्रधान व्यक्तियोंको प्रधान, मध्यम श्रेणीके मनुष्योंको मध्यम और छोटी श्रेणीके लोगोंको छोटे कामोंमें ही नियुक्त किया है न? जिनकी भलीभाँति परीक्षा कर ली गयी है, जो बाप-दादोंके समयसे ही काम करते आ रहे हैं तथा जो बाहर-भीतरसे पवित्र एवं श्रेष्ठ हैं, ऐसे अमात्योंको तुम उत्तम कार्योंमें नियुक्त करते हो न? तुम्हारे राज्यकी प्रजा कठोर दण्डसे उद्विग्न होकर तुम्हारे मन्त्रियोंका तिरस्कार तो नहीं करती? क्या तुमने सदा संतुष्ट रहनेवाले, शूरवीर, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, पवित्र, कुलीन एवं अपनेमें अनुराग रखनेवाले दक्ष पुरुषको सेनापति बनाया है? तुम्हारे प्रधान-प्रधान योद्धा बलवान्, युद्धकुशल और पराक्रमी तो हैं न? क्या तुमने उनके शौर्यकी परीक्षा कर ली है तथा क्या वे तुम्हारे द्वारा सत्कार एवं सम्मान पाते रहते हैं? सैनिकोंको देनेके लिये नियत किया हुआ समुचित वेतन और भत्ता तुम समयपर दे देते हो न? देनेमें विलम्ब तो नहीं करते? यदि समय बिताकर भत्ता और वेतन दिये जाते हैं तो सैनिक अपने स्वामीपर बहुत असन्तुष्ट रहते हैं और इसके कारण बड़ा अनर्थ हो जाता है। क्या तुम्हारे कुलके प्रधान-प्रधान पुरुष तुमसे प्रेम रखते हैं? क्या वे तुम्हारे लिये सावधानीके साथ अपने प्राण त्यागनेको उद्यत रहते हैं? तुमने जिसे राजदूतके पदपर नियुक्त किया है, वह पुरुष अपने ही देशका निवासी, विद्वान्, कुशल और प्रतिभाशाली तो है न? जो बात उससे कही जाय, उसको यथार्थरूपसे दूसरोंके सामने रखनेवाला और पण्डित तो है न? जिन शत्रुओंको तुमने राज्यसे निकाल दिया है, वे यदि फिर लौटकर आते हैं तो तुम उन्हें दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करते? तुम कभी नास्तिक ब्राह्मणोंका संग तो नहीं करते? क्योंकि वे बुद्धिको परमार्थकी ओरसे विचलित करनेमें कुशल होते हैं तथा वास्तवमें अज्ञानी होते हुए भी अपनेको बहुत बड़ा पण्डित समझते हैं। उनका ज्ञान वेदके विरुद्ध होनेके कारण दूषित होता है और वे प्रमाणभूत प्रधान-प्रधान धर्म-शास्त्रोंके होते हुए भी कोरी तार्किक बुद्धिका आश्रय लेकर व्यर्थ बकवाद किया करते हैं।

'तात! अयोध्या हमारे वीर पूर्वजोंकी निवास-भूमि है, उसका जैसा नाम वैसा ही गुण है। उसके दरवाजे सब ओरसे सुदृढ़ हैं। वह हाथी, घोड़े और रथोंसे परिपूर्ण है। अपने-अपने कर्मोंमें लगे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हजारोंकी संख्यामें वहाँ निवास करते हैं। वे सब-के-सब महान् उत्साही, जितेन्द्रिय और श्रेष्ठ हैं। नाना प्रकारके महल उसकी शोभा बढ़ाते हैं, तथा वह अनेकों विद्वानोंसे भरी है। ऐसी उन्नतिशील और समृद्धिशालिनी नगरी अयोध्याकी तुम भलीभाँति रक्षा तो करते हो न? जहाँ नाना प्रकारके यज्ञ होते रहते हैं, जिसमें प्रतिष्ठित मनुष्य अधिक संख्यामें निवास करते हैं, अनेकों देवस्थान, पौसले और तालाब जिसकी शोभा बढ़ाते हैं, जहाँके स्त्री-पुरुष सदा प्रसन्न रहते हैं, जो सामाजिक उत्सवोंसे सदा शोभासम्पन्न दिखायी देता है, जहाँ खेत जोतनेमें समर्थ पशुओंकी अधिकता है, जहाँ किसी प्रकारकी हिंसा नहीं होती, जहाँ खेतीके लिये वर्षाके जलपर निर्भर नहीं रहना पड़ता, जो बहुत ही सुन्दर और हिंसक पशुओंसे रहित है, जहाँ किसी तरहका भय नहीं है, नाना प्रकारकी खानें जिसकी शोभा बढ़ाती हैं, जहाँ पापी मनुष्योंका सर्वथा अभाव है तथा हमारे पूर्वजोंने जिसकी भलीभाँति रक्षा की है, वह कोसल देश धन-धान्यसे सम्पन्न एवं सुखी तो है न? कृषि और गोरक्षासे आजीविका चलानेवाले सभी वैश्य तुम्हारे प्रीतिपात्र हैं न? इस समय व्यापार आदिमें लगे हुए लोग सुखी तो हैं? उन्हें इष्टकी प्राप्ति कराकर तथा उनके अनिष्टोंका निवारण करके तुम उन सब लोगोंका पालन करते हो न? क्योंकि राजाको अपने राज्यमें रहनेवाले सब लोगोंका धर्मानुसार पालन करना चाहिये। क्या तुम अपनी स्त्रियोंको सन्तुष्ट रखते हो? क्या वे तुम्हारे द्वारा भलीभाँति सुरक्षित हैं? तुम उनपर अधिक विश्वास तो नहीं करते? उनसे अपनी गुप्त बात तो नहीं कहते? जहाँ हाथी उत्पन्न होते हैं, वे जंगल तुम्हारे द्वारा अच्छी तरह सुरक्षित हैं न? जंगली हाथियोंको फँसानेवाली हथिनियोंकी तो तुम्हारे पास कमी नहीं है? हथिनी, घोड़े और हाथियोंके संग्रहसे तुम्हें कभी तृप्ति तो नहीं होती? क्या तुम प्रतिदिन पूर्वाह्णकालमें वस्त्राभूषणोंसे भूषित हो सड़कपर जा-जाकर नगरवासियोंको दर्शन देते हो? काम-काजमें लगे हुए सभी मनुष्य निडर होकर तुम्हारे सामने तो नहीं आते अथवा सदा तुमसे दूर तो नहीं रहते? मध्यम स्थितिका अवलम्बन करना ही अर्थसिद्धिका कारण होता है। क्या तुम्हारे सभी दुर्ग धन-धान्य, अस्त्र, जल, यन्त्र, शिल्पी तथा धनुर्धर वीरोंसे भरे हैं? तुम्हारी आमदनी अधिक और खर्च कम है न? तुम्हारे खजानेका धन अपात्रोंके काममें तो नहीं आता? देवता, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योद्धा तथा मित्रोंके लिये ही तुम्हारा धन खर्च होता है न? कभी ऐसा तो नहीं होता कि कोई मनुष्य किसी श्रेष्ठ, निर्दोष और शुद्धात्मा पुरुषपर भी दोष लगा दे और शास्त्र-ज्ञानमें कुशल विद्वानोंद्वारा उसके विषयमें विचार कराये बिना ही लोभ आदिके कारण उसे दण्ड दे दिया जाय? जो चोरीमें पकड़ा गया हो, जिसे किसीने चोरी करते समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा हो, पूछ-ताछसे भी जिसके चोर होनेका प्रमाण मिल गया हो तथा जिसके विरुद्ध [ चोरीका माल बरामद होना आदि ] और भी बहुत-से सबूत हों, ऐसे चोरको भी तुम्हारे राज्यमें धनके लालचसे छोड़ तो नहीं दिया जाता ? यदि धनी और गरीबमें कोई विवाद छिड़ा हो और वह राज्यके न्यायालयमें निर्णयके लिये आया हो, तो तुम्हारे बहुज्ञ मन्त्री धन आदिके लोभको छोड़कर उस मामलेपर विचार करते हैं न ? निरपराध होनेपर भी जिनको मिथ्या दोष लगाकर दण्ड दिया जाता है, उन मनुष्योंकी आँखोंसे जो आँसू गिरते हैं, वे पक्षपातपूर्ण शासन करनेवाले राजाके पुत्र और पशुओंका नाश कर डालते हैं। क्या तुम वृद्ध पुरुषों, बालकों और प्रधान-प्रधान वैद्योंका दान, आन्तरिक अनुराग एवं मधुर वचनोंसे सम्मान करते हो ? गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, देवताओं, अतिथियों, चैत्यवृक्षों और पूर्णकाम ब्राह्मणोंको नमस्कार करते हो न ? तुम अर्थके द्वारा धर्मको हानि तो नहीं पहुँचाते अथवा आसक्ति और लोभरूप कामके द्वारा धर्म और अर्थमें बाधा तो नहीं आने देते ? क्या तुम समयका विभाग करके धर्म, अर्थ और कामका योग्य समयमें सेवन करते हो ? सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले ब्राह्मण पुरवासी और देशवासी मनुष्योंके साथ तुम्हारे कल्याणकी कामना करते हैं न?

नास्तिकता, असत्यभाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानी पुरुषोंका संग न करना, आलस्य, नेत्र आदि पाँचों इन्द्रियोंके वशीभूत होना, राज्यकार्योंके विषयमें अकेले ही विचार करना, विपरीत बुद्धिवाले मूर्खोंसे सलाह लेना, निश्चित किये हुए कार्योंका शीघ्र प्रारम्भ न करना, गुप्त मन्त्रणाको प्रकट कर देना, मांङ्गलिक कार्योंका अनुष्ठान न करना तथा सब शत्रुओंपर एक ही साथ चढ़ाई कर देना—ये राजाके चौदह दोष हैं। तुम इनसे दूर रहते हो न ? भरत ! दशवर्ग[1], पञ्चवर्ग[2], चतुर्वर्ग[3], सप्तवर्ग[4], अष्टवर्ग[5], त्रिवर्ग[6], तीन विद्या[7], बुद्धिके द्वारा इन्द्रियोंको जीतना, छः गुण[8], दैवी और मानुषी बाधाएँ[9], राजाके नीतिपूर्ण कार्य[10], विंशतिवर्ग[11], प्रकृतिमण्डल[12], यात्रा ( शत्रुपर आक्रमण ), दण्डविधान (व्यूह

१. कामसे उत्पन्न होनेवाले दस दोषोंको दशवर्ग कहते हैं। ये राजाके लिये त्याज्य हैं। मनुजीने उनके नाम इस प्रकार गिनाये हैं—आखेट, जुआ, दिनमें सोना, दूसरोंकी निन्दा करना, स्त्रीमें आसक्त होना, मद्यपान, नाचना, गाना, बाजा बजाना और व्यर्थ घूमना। २. जलदुर्ग, पर्वतदुर्ग, वृक्षदुर्ग, ईरिणदुर्ग और धन्वदुर्ग—ये पाँच प्रकारके दुर्ग पञ्चवर्ग कहलाते हैं। इनमें आरम्भके तीन तो प्रसिद्ध ही हैं। जहाँ किसी प्रकारकी खेती नहीं होती, ऐसे प्रदेशको ईरिण कहते हैं। बालूसे भरी मरुभूमिको धन्व कहते हैं। गर्मीके दिनोंमें वह शत्रुओंके लिये दुर्गम होती है। इन सब दुर्गोंका यथासमय उपयोग करके राजाको आत्मरक्षा करनी चाहिये। ३. साम, दान, भेद और दण्ड—इस चार प्रकारकी नीतिको चतुर्वर्ग कहते हैं। ४. राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किला, खजाना, सेना और मित्रवर्ग—ये परस्पर उपकार करनेवाले राज्यके सात अङ्ग हैं। इन्हींको सप्तवर्ग कहा गया है। ५. चुगली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दोषदर्शन, अर्थदूषण, वाणीकी कठोरता और दण्डकी कठोरता—ये क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले आठ दोष अष्टवर्ग माने गये हैं। किसी-किसीके मतमें खेतीकी उन्नति करना, व्यापारको बढ़ाना, दुर्ग बनवाना, पुल निर्माण कराना, जंगलसे हाथी पकड़कर मँगवाना, खानोंपर अधिकार प्राप्त करना, अधीन राजाओंसे कर लेना और निर्जन प्रदेशको आबाद करना—ये राजाके लिये उपादेय आठ गुण ही अष्टवर्ग हैं। ६. धर्म, अर्थ और कामको अथवा उत्साहशक्ति, प्रभुशक्ति तथा मन्त्रशक्तिको त्रिवर्ग कहते हैं। ७. त्रयी, वार्ता और दण्डनीति—ये तीन विद्याएँ हैं। इनमें तीनों वेदोंको त्रयी कहते हैं, कृषि और गो-रक्षा आदि वार्ताके अन्तर्गत हैं तथा नीतिशास्त्रका नाम दण्डनीति है। ८. सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—ये छः गुण हैं। इनमें शत्रुसे मेल रखना सन्धि, उससे लड़ाई छेड़ना विग्रह, आक्रमण करना यान, अवसरकी प्रतीक्षामें बैठे रहना आसन, दुरंगी नीति वर्तना द्वैधीभाव और अपनेसे बलवान् राजाकी शरण लेना समाश्रय कहलाता है। ९. आग लगना, बाढ़ आना, बीमारी फैलना, अकाल पड़ना और महामारीका प्रकोप होना—ये पाँच दैवी बाधाएँ हैं। राज्यके अधिकारियों, चोरों, शत्रुओं और राजाके प्रिय व्यक्तियोंसे तथा स्वयं राजाके लोभसे जो भय प्राप्त होता है, उसे मानवी बाधा कहते हैं। १०. शत्रु राजाओंके सेवकोंमेंसे जिनको वेतन न मिला हो, जो अपमानित किये गये हों, जो अपने मालिकके किसी बर्तावसे कुपित हों तथा जिन्हें भय दिखाकर डराया गया हो—ऐसे लोगोंको मनचाही वस्तु देकर फोड़ लेना राजाका कृत्य ( नीतिपूर्ण कार्य ) माना गया है। ११. बालक, वृद्ध, दीर्घकालका रोगी, जातिच्युत, डरपोक, भीरु मनुष्योंको साथ रखनेवाला, लोभी, लालची लोगोंको आश्रय देनेवाला, मन्त्री-सेनापति आदि प्रकृतियोंको असन्तुष्ट रखनेवाला, विषयोंमें आसक्त चञ्चलचित्त मनुष्योंसे सलाह लेनेवाला, देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला, दैवका मारा हुआ, भाग्यके भरोसे पुरुषार्थ न करनेवाला, दुर्भिक्षसे पीड़ित, सैनिक कष्टसे युक्त ( सेनारहित ), स्वदेशमें न रहनेवाला, अधिक शत्रुओंवाला, अकाल ( क्रूरग्रह-दशा आदि ) से युक्त और सत्य-धर्मसे रहित—ये बीस प्रकारके राजा सन्धिके योग्य नहीं माने गये हैं; इन्हींको विंशतिवर्गके नामसे कहा गया है। १२. राज्यके स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना—राज्यके इन सातों अङ्गोंको ही प्रकृतिमण्डल कहते हैं। किसी-किसीके मतमें मन्त्री, राष्ट्र, किला, खजाना और दण्ड—ये पाँच प्रकृतियाँ अलग हैं और बारह राजाओंके समूहको मण्डल कहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना)तथा सन्धि और विग्रह—इन सबकी ओर तुम यथार्थरूप-से ध्यान देते हो न ? इनमेंसे त्यागनेयोग्य दोषोंको त्यागकर ग्रहण करनेयोग्य गुणोंको ग्रहण करते हो न ? क्या तुम नीति-शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार चार या तीन मन्त्रियोंके साथ—सबको एकत्रित करके अथवा सबसे अलग-अलग मिलकर सलाह करते हो ? क्या तुम वेदोंकी आज्ञाके अनुसार काम करते हो ? क्या तुम्हारी क्रियाएँ, स्त्रियाँ तथा शास्त्र-ज्ञान सफल हैं ? मैंने जो कुछ कहा है, तुम्हारी बुद्धिका भी वैसा ही निश्चय है न ? क्योंकि यह विचार आयु और यश-को बढ़ानेवाला तथा धर्म, काम और अर्थकी सिद्धि करनेवाला है। हमारे पिता और पितामहोंने जिस आचरणका पालन किया है, सत्पुरुष भी जिसका सेवन करते हैं और जो कल्याणका मूल है, उसीका तुम पालन करते हो न ? स्वादिष्ठ भोजन अकेले ही तो नहीं खा लेते ? धनकी अभिलाषा रखनेवाले मित्रोंको यथेष्ट धन प्रदान करते रहते हो न ? इस प्रकार धर्मके अनुसार दण्ड धारण करनेवाला राजा प्रजाओंका पालन करके समूची पृथ्वीको अपने अधिकारमें कर लेता है तथा देहत्याग करनेके पश्चात् स्वर्गलोकमें जाता है।'

## भरत-राम-संवाद तथा श्रीराम आदिका पिताके लिये जलदान एवं पिण्डदान

श्रीरामचन्द्रजीने अपने गुरुभक्त भाई भरतको अच्छी तरह समझाकर, उन्हें अपना अनुगत जानकर, उनसे पुनः इस प्रकार पूछा—'भाई ! मैं तुम्हारे मुँहसे यह सुनना चाहता हूँ कि तुम किस कारणसे राज्य छोड़कर वल्कल, कृष्णमृग-चर्म और जटा धारण करके इस देशमें आये हो ? तुम्हारे आनेका जो कुछ उद्देश्य हो, वह सब मुझसे कहो।' उनके इस प्रकार पूछनेपर भरतने हाथ जोड़कर कहा—'आर्य ! मेरी माता कैकेयीकी प्रेरणासे पिताजीने ऐसा कठोर कार्य कर डाला, जो दूसरेके लिये अत्यन्त दुष्कर है। परन्तु फिर ये पुत्र-शोकसे पीड़ित हो, हमलोगोंको छोड़कर स्वर्ग-लोकमें सिधार गये। कैकेयीने अपने सुयशको नष्ट करने-वाला बड़ा भारी पाप किया है; अतः उसे राज्यरूपी फल भी नहीं मिलेगा और शोकसे क्षीण होकर विधवा-जीवन व्यतीत करती हुई वह अन्तमें भयंकर नरकमें पड़ेगी। यह सारी प्रजा और सभी विधवा माताएँ आपके पास आयी हैं, आप इन सबपर कृपा करें। ज्येष्ठ होनेके नाते आप ही राज्यके अधिकारी हैं; अतः न्यायतः प्राप्त इस राज्यको आप धर्मानुसार ग्रहण करके अपने सुहृदोंका मनोरथ सफल करें। मैं आपका छोटा भाई, शिष्य और दास हूँ। इन सचिवोंके साथ आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रार्थना करता हूँ; मुझपर कृपा करें। यह सारा मन्त्रिमण्डल अपने यहाँ कुल-परम्परासे चला आ रहा है। ये सभी सचिव पिताजीके समयमें भी थे, हम सदासे इनका सम्मान करते आये हैं; अतः आप इनकी प्रार्थना न ठुकरायें।' कैकेयीपुत्र महाबाहु भरत ऐसा कहकर नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुनः श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े।

तब श्रीरामने भाई भरतको उठाकर हृदयसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—'सौम्य ! तुम्हीं बताओ, उत्तम कुलमें उत्पन्न, सत्त्वगुणसम्पन्न, तेजस्वी और श्रेष्ठ व्रतोंका पालन करनेवाला मेरे-जैसा मनुष्य राज्यके लिये पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घनरूप पाप कैसे कर सकता है ? मैं तुम्हारे अंदर थोड़ा-सा भी दोष नहीं देखता। अज्ञानवश माताकी भी तुम्हें निन्दा नहीं करनी चाहिये। गुरुजनोंका अपने पुत्रों और स्त्रियोंपर पूरा अधिकार होता है, वे उन्हें चाहे जैसी आज्ञा दे सकते हैं। हम भी महाराजके पुत्र और शिष्य हैं, अतः हमें भी उन्हें सब तरहकी आज्ञा देनेका अधिकार था। धर्मात्माओंकी विश्ववन्द्य पितामें जितनी गौरव-बुद्धि होती है, उतनी ही मातामें भी होती है; अतः धर्मशील माता और पिता दोनोंने ही जब मुझे वन जाने-की आज्ञा दी है, तो मैं उसके विरुद्ध आचरण कैसे कर सकता हूँ। तुम्हें समस्त जगत्‌के लिये आदरणीय अयोध्याका राज्य मिलेगा। और मुझे चीर एवं वल्कल धारण करके दण्ड-कारण्यमें रहना होगा—इस प्रकार महाराज दशरथ बहुत लोगोंके सामने हम दोनोंके लिये पृथक्-पृथक् दो आज्ञाएँ देकर स्वर्गको सिधारे हैं। उनकी आज्ञा तुम्हारे लिये भी माननीय है। मेरे महात्मा पिताने मुझे जो वनवासकी आज्ञा दी है, मैं उसीको अपने लिये परम हितकारी समझता हूँ; उनकी आज्ञाके विरुद्ध ब्रह्माका पद ग्रहण करना भी मेरे लिये श्रेयस्कर नहीं है।'

भरतकी बातोंसे पिताकी मृत्युका समाचार जानकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा दुःख हुआ, वे अचेत-से होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर होशमें आनेपर वे नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे और भरतसे धर्मयुक्त वचन बोले—'हाय ! पिताजी मेरे ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शोकसे मृत्युको प्राप्त हुए और मैं उनका दाह-संस्कार भी न कर सका। भरत! तुम्हीं कृतार्थ हो—तुम्हारा ही जीवन सफल है; क्योंकि तुमने और शत्रुघ्नने महाराजके प्रत्येक पारलौकिक कृत्यमें सम्मिलित होकर उनका पूर्ण सत्कार किया है। अब तो मुझे वनवासकी अवधि समाप्त हो जानेके बाद भी अयोध्यामें चलनेका उत्साह नहीं होता। पिताके परलोकवासी हो जानेपर अब कौन मुझे वहाँ शिक्षा देगा? पहले जब मैं उनकी किसी आज्ञाका पालन करता था तो वे मेरे सद्व्यवहारको देखकर मेरा उत्साह बढ़ानेके लिये कई बातें सुनाया करते थे। वे कानोंको सुख पहुँचानेवाली बातें अब मुझे कहाँ सुननेको मिलेंगी!, भरतसे ऐसा कहकर शोकसन्तप्त श्रीरामने अपनी पत्नीके पास आकर कहा—'सीते! तुम्हारे श्वशुर चल बसे। लक्ष्मण! तुम पितृहीन हो गये! भरत पिताजीके स्वर्गवास-का दुःखदायी समाचार सुना रहे हैं।' अपने श्वशुर महाराज दशरथकी मृत्यु सुनकर सीताकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये। वे अपने प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख न सकीं। तदनन्तर रोती हुई जनककुमारीको समझा-बुझाकर शोकमग्न श्रीराम अत्यन्त दुखी हुए। लक्ष्मणसे कहा—'भाई! तुम इङ्गुदीका पिसा हुआ फल और चीर एवं उत्तरीय ले आओ। मैं महात्मा पिताको जल देने जाऊँगा। सीता आगे-आगे चलें, इनके पीछे तुम चलो और तुम्हारे पीछे मैं चलूँगा। शोकके समयकी यही परिपाटी है, जो अत्यन्त दारुण होती है।

तत्पश्चात् महामति सुमन्त्र, जो राजकुलके परम्परागत सेवक, आत्मज्ञानी, कोमल स्वभाववाले, जितेन्द्रिय, कान्तिमान् और श्रीरामके अत्यन्त भक्त थे, सब राजकुमारोंके साथ श्रीरामको धैर्य बँधाकर उन्हें हाथका सहारा दे कल्याणमयी मन्दाकिनीके तटपर ले गये। वहाँ एक उत्तम घाटपर जाकर उन सबने महाराजको जलाञ्जलि दी। श्रीरामचन्द्रजीने दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके अञ्जलिमें जल भरकर रोते हुए कहा—'पूज्य पिताजी! मेरा दिया हुआ यह निर्मल जल आपकी दिवंगत आत्माको अक्षयरूपसे प्राप्त हो।' तदनन्तर मन्दाकिनीके जलसे किनारेपर आकर अत्यन्त तेजस्वी भगवान् श्रीरामने अपने भाइयोंके साथ पिताका पिण्डदान किया। उन्होंने इङ्गुदीके गूदेमें बेर मिलाकर उसका पिण्ड तैयार किया और बिछे हुए कुशोंपर उसे रखकर अत्यन्त दुखी हो रोते हुए कहा—'महाराज! प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार कीजिये; क्योंकि आजकल यही हमलोगोंका भोजन है। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही उसके देवता भी ग्रहण करते हैं।'

इसके बाद उसी मार्गसे मन्दाकिनी-तटके ऊपर आकर वे सुन्दर शिखरवाले चित्रकूट पर्वतपर चढ़े और पर्णकुटीके द्वारपर पहुँचकर शोकसे रोने लगे। जानकीसहित उन चारों भाइयोंके रुदनका तुमुल नाद सुनकर भरतके सैनिक [ किसी भयकी आशङ्कासे ] डर गये। फिर आवाजको पहचानकर एक दूसरेसे बोले—'निश्चय ही भरत श्रीरामचन्द्रजीसे मिले हैं, अपने परलोकवासी पिताके लिये शोक करनेवाले उन चारों भाइयोंके रोनेका ही यह महान् शब्द है।' यों कहकर उन सबने अपनी सवारियोंको तो वहीं छोड़ दिया और जिस स्थानसे वह आवाज आ रही थी, उसी ओर मुँह किये एकचित्त होकर दौड़ पड़े। वे सबलोग श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छा-से सहसा उनके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा, श्रीरामचन्द्रजी वेदीपर बैठे हैं। उनके पास जानेपर सबके मुख आँसुओंसे भींग गये। उस समय सभी मन्थरासहित कैकेयीकी निन्दा करने लगे। धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ आये हुए सभी मित्रों और बन्धु-बान्धवोंका यथायोग्य सम्मान किया। उन्होंने कुछ लोगोंको हृदयसे लगाया और कुछने उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

## वसिष्ठजीके साथ माताओंका आगमन तथा श्रीराम-भरत-संवाद

महर्षि वसिष्ठ भी महाराज दशरथकी रानियोंको आगे करके श्रीरामचन्द्रको देखनेकी इच्छासे उनके आश्रमकी ओर चले। राजरानियाँ मन्दगतिसे चलती हुई जब मन्दाकिनीके तटपर पहुँचीं तो उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणके स्नान करनेका घाट देखा। उसे देखकर रानी कौसल्याको बड़ा दुःख हुआ। उस समय उनकी सौतें उन्हें समझा-बुझाकर आगे ले गयीं और आश्रमपर पहुँचकर सबने श्रीरामको देखा। भोगोंका परित्याग करके तपस्वी-जीवन व्यतीत करते हुए श्रीरामको देख-कर उनकी माताएँ शोकसे कातर हो गयीं और आर्तभावसे आँसू बहाती फूट-फूटकर रोने लगीं। सत्यकी रक्षा करनेवाले नरश्रेष्ठ श्रीराम माताओंको देखते ही उठकर खड़े हो गये और उन सबके चरणोंका स्पर्श किया। माताएँ स्नेहवश अपने कोमल हाथोंसे उनकी पीठकी धूल पोंछने लगीं। दुःखसे विकल लक्ष्मणने भी सब माताओंको उपस्थित देख बड़ी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिके साथ धीरे-धीरे उनके चरणोंमें प्रणाम किया। माताओंने श्रीरामके साथ जो बर्ताव किया था, वही उत्तम लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणके साथ भी किया। तत्पश्चात् दुःखिनी सीताने भी सभी सासुओंके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और वे दोनों आँखोंमें आँसू भरकर उनके सामने खड़ी हो गयीं। माता कौसल्याने वनवासके कारण दयनीय दशाको प्राप्त हुई सीताको अपनी पुत्रीकी भाँति छातीसे लगा लिया और दुःखसे आर्त होकर कहा—'बेटी जानकी! तुम्हारा मुख घामसे तपे हुए कमलकी भाँति मुरझा गया है, बादलोंसे छिपे हुए चन्द्रमाकी भाँति श्रीहीन दिखायी दे रहा है। तुम्हारे इस उदास मुखको देखकर शोक मेरे हृदयको दग्ध किये डालता है।' दुःखिनी माता जब इस प्रकार कह रही थीं, उसी समय श्रीरामचन्द्रजी आगे बढ़कर महर्षि वसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम करके उन्हींके साथ बैठ गये। तब धर्मात्मा भरत मन्त्रियों, प्रधान-प्रधान पुरवासियों, सैनिकों तथा धर्मज्ञ पुरुषोंको साथ लेकर अपने बड़े भाईके पास, उनसे नीचे स्थानपर जा बैठे।

अपने सुहृदोंके बीचमें बैठे हुए पुरुषश्रेष्ठ श्रीराम आदि चारों भाइयोंकी वह रात्रि पिताकी मृत्युके दुःखसे शोक करते हुए ही व्यतीत हुई। सबेरा होनेपर भरत आदि तीनों भाई अपने मित्रोंके साथ मन्दाकिनीके तटपर गये और स्नान, होम एवं जप आदि करके पुनः श्रीरामके पास लौट आये। उस समय सुहृदोंके बीचमें बैठे हुए भरतने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'आर्य! पिताजीने वरदान देकर मेरी माताको सन्तुष्ट कर दिया और माताने यह राज्य मुझे दे दिया; अब मैं अपनी ओरसे इसे आपकी ही सेवामें समर्पित करता हूँ, आप ही इसका पालन कीजिये। अयोध्याके इस विशाल साम्राज्यका पालन आपके सिवा और किसीसे होना कठिन है। जैसे अन्य साधारण पक्षी गरुड़की चाल नहीं चल सकते, उसी प्रकार मुझमें आपकी गतिका—आपकी पालन-पद्धतिका अनुकरण करनेकी शक्ति नहीं है। आप सबसे श्रेष्ठ हैं, सबका पालन करनेकी शक्ति रखनेवाले स्वामी हैं।' इस प्रकार श्रीरामसे राज्य-ग्रहणके लिये प्रार्थना करते हुए भरतजीकी बात सुनकर नगरके भिन्न-भिन्न मनुष्योंने उसका भलीभाँति अनुमोदन किया। तब अत्यन्त धीर एवं पवित्र अन्तःकरणवाले भगवान् श्रीरामने भरतको दुखी देखकर इस प्रकार समझाया—'भाई! मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार कुछ नहीं कर सकता; क्योंकि यह पराधीन होनेके कारण असमर्थ है। काल इसे इधर-उधर खींचता रहता है। संयोगका अन्त वियोग और जीवनका अन्त मरण है। जिस प्रकार मजबूत खंभेवाला मकान भी पुराना होनेपर गिर जाता है, उसी प्रकार जरा और मृत्युके वशमें पड़े हुए मनुष्य भी नष्ट हो जाते हैं। दिन-रात लगातार बीत रहे हैं और संसारमें सभी प्राणियोंकी आयुका तीव्र गतिसे नाश कर रहे हैं। लोग सूर्योदय होनेपर प्रसन्न होते हैं, सूर्यास्त होनेपर भी खुश होते हैं; किन्तु यह नहीं जानते कि प्रतिदिन अपने जीवनका नाश हो रहा है।* जैसे महासागरमें बहते हुए दो काठ कभी एक दूसरेसे मिल जाते हैं और कुछ कालके बाद अलग भी हो जाते हैं, उसी प्रकार स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब और धन भी मिलकर बिछुड़ जाते हैं। इनका वियोग अवश्यंभावी है। इस जगत्में कोई भी प्राणी भावीवश प्राप्त होनेवाले जन्म-मरणका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। हमारे पूर्वज पिता-पितामह आदि जिस मार्गसे गये हैं, उसपर जाना अनिवार्य है। जिसको लाँघनेका कोई उपाय नहीं है, उस मार्गपर स्थित हुआ मनुष्य किसीके लिये शोक क्यों करे? अवस्था दिन-दिन ढल रही है, वह लौटकर आ नहीं सकती—यह सोचकर आत्माको कल्याणके साधन धर्ममें लगाना चाहिये; क्योंकि सभी लोग अपना कल्याण चाहते हैं। तात! हमारे पिता धर्मात्मा थे, उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देकर अनेकों श्रेष्ठ यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। वे सत्पुरुषोंद्वारा सम्मानित थे, अतः स्वर्गवासी हो जानेपर भी वे शोक करने योग्य नहीं हैं। उन्होंने जराजीर्ण मानव-शरीरका परित्याग करके दैवी सम्पत्ति प्राप्त की है, जिससे वे ब्रह्मलोकमें विहार कर रहे हैं। कोई भी विद्वान्, जो तुम्हारे या मेरे समान शास्त्रोंका ज्ञाता और बुद्धिमान् है, वह पिताजीके लिये शोक नहीं कर सकता। धीर एवं प्रज्ञावान् पुरुषको प्रत्येक अवस्थामें ये नाना प्रकारके शोक, विलाप तथा रोदन त्याग देने चाहिये। इसलिये तुम शान्त हो जाओ, शोक न करो और यहाँसे जाकर अयोध्यामें निवास करो; क्योंकि तुम्हारे लिये पिताजीकी ऐसी ही आज्ञा है। पुण्यकर्मा पिताजीने मुझे भी जहाँ रहनेका आदेश दिया है, वहीं रहकर मैं उनकी आज्ञाका पालन करूँगा। पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन मेरे लिये कदापि उचित नहीं है। वे तुम्हारे लिये भी सर्वदा सम्मानके योग्य हैं; क्योंकि वे ही हमारे हितैषी, बन्धु और जन्मदाता थे। भरत! मैं इस वनवासरूपी कर्मके द्वारा पिताजीके ही वचनका, जो धर्मात्माओंको भी मान्य है, पालन करूँगा। जो परलोकपर विजय पाना चाहता हो, उस पुरुषको

* नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमितेऽहनि।
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम्॥(१०५।२४)


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक, क्रूरतासे रहित और गुरुजनोंका आज्ञाकारी होना चाहिये। नरश्रेष्ठ! पिता दशरथके शुभ आचरणोंपर दृष्टि-पात करके तुम अपने धार्मिक स्वभावके द्वारा आत्माकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करो।' महात्मा श्रीरामचन्द्रजी अपने छोटे भाई भरतसे पिताकी आज्ञाका पालन करानेके उद्देश्यसे ये अर्थयुक्त वचन कहकर चुप हो गये।

तब धर्मात्मा भरतने धर्मपरायण श्रीरामसे यह अद्भुत वचन कहा—'रघुनन्दन! इस जगत्‌में आपकी बराबरी करनेवाला कौन है? कोई भी दुःख आपको व्यथित नहीं कर सकता। कितनी ही प्रिय बात हो जाय, आप हर्षसे फूल नहीं उठते। वृद्ध पुरुषोंके सम्माननीय होकर भी आप उनसे सन्देहकी बातें पूछते हैं। जैसे मरे हुए जीवका अपने शरीर आदिसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता, उसी प्रकार जीते-जी भी वह उसके सम्बन्धसे रहित है; जैसे वस्तुके अभावमें उसके प्रति राग-द्वेष नहीं होता, वैसे ही उसके रहनेपर भी मनुष्यको राग-द्वेषसे शून्य होना चाहिये। जिसे ऐसी विवेकयुक्त बुद्धि प्राप्त हो गयी है, उसको संताप क्यों होगा? जिसे आपके समान आत्मा और अनात्माका ज्ञान है, वह संकट पड़नेपर भी विषाद नहीं कर सकता। आप देवताओंकी भाँति सत्त्वगुणसे युक्त, महात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, सर्वज्ञ, सबके साक्षी और बुद्धिमान् हैं; ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त और जन्म-मरणके रहस्यको जाननेवाले आपके पास असह्य दुःख नहीं आ सकता। मैं जब परदेशमें था, उस समय नीच विचार रखनेवाली मेरी माताने मेरे लिये जो पाप कर डाला, वह मुझे अभीष्ट नहीं है। अतः आप उसे क्षमा करके मुझपर प्रसन्न हों। मैं धर्मके बन्धनमें बँधा हुआ हूँ, इसीलिये इस पाप करनेवाली एवं दण्डनीय माताको मैं कठोर दण्ड देकर मार नहीं डालता। कौन ऐसा मनुष्य है, जो धर्मको जानते हुए भी स्त्रीका प्रिय करनेकी इच्छासे ऐसा निन्दित कर्म कर सकता है? लोकमें एक प्राचीन किंवदन्ती है कि अन्तकालमें सब प्राणी मोहित हो जाते हैं—उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। राजा दशरथने ऐसा कठोर कर्म करके उस किंवदन्तीको सत्य कर दिया। पिताजीने क्रोध, मोह और साहसके कारण ठीक समझकर जो धर्मका उल्लङ्घन किया है, उसे आप पलट दें—उसका संशोधन कर दें। आप पिताके सत्पुत्र हैं। अतः उनके अनुचित कर्मका समर्थन न कीजिये। उन्होंने इस समय जो कुछ किया है, वह धर्मकी सीमासे बाहर है; संसारमें धीर पुरुष उसकी निन्दा करते हैं। कैकेयी, मैं, पिताजी, मित्रगण, बन्धु-बान्धव, पुरवासी तथा राष्ट्रकी प्रजा—इन सबकी रक्षाके लिये आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। कहाँ वनवास और कहाँ क्षात्र-धर्म, कहाँ जटा-धारण और कहाँ प्रजाका पालन—ऐसे परस्पर विरोधी कर्म आपको नहीं करने चाहिये। क्षत्रियके लिये पहला धर्म यह है कि उसका राज्यपर अभिषेक हो, जिससे वह प्रजाकी भलीभाँति रक्षा कर सके। यदि आप क्लेशसाध्य धर्मका ही आचरण करना चाहते हैं, तो धर्मानुसार चारों वर्णोंका पालन करते हुए ही कष्ट उठाइये। धर्मज्ञ पुरुष चारों आश्रमोंमें गार्हस्थ्यको ही श्रेष्ठ और उत्तम बतलाते हैं, फिर आप उसे क्यों त्यागना चाहते हैं? मैं बुद्धि और गुण दोनोंसे हीन हूँ, बालक हूँ तथा मेरा स्थान आपसे बहुत छोटा है; अतः आपके बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता। पिताके इस समूचे श्रेष्ठ राज्यका आप बन्धु-बान्धवोंके साथ धर्मानुसार पालन कीजिये। मन्त्रों-के ज्ञाता महर्षि वसिष्ठ आदि ऋत्विज तथा मन्त्री, सेना और प्रजा आदि समस्त प्रकृतियाँ भी यहाँ उपस्थित हैं। ये सब लोग यहीं आपका राज्याभिषेक करें और आप अयोध्याको लौट चलें। वहाँ देवता, ऋषि और पितरों-का ऋण चुकायें, दुष्टोंका भलीभाँति दमन करें तथा मित्रोंकी इच्छाएँ पूर्ण करते हुए मुझे धर्मकी शिक्षा देते रहें। भैया! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, मेरा और मेरी माताका कलंक धोकर पूज्य पिताजीको भी निन्दासे बचाइये। मैं आपके चरणोंमें माथा टेककर याचना करता हूँ, मुझपर दया कीजिये। जैसे महादेवजी सब प्राणियोंपर अनुग्रह करते हैं, उसी प्रकार आप भी अपने बन्धु-बान्धवोंपर कृपा कीजिये। यदि आप मेरी प्रार्थना ठुकराकर यहाँसे वनको ही जायँगे तो मैं भी आपके साथ चलूँगा।' भरतके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण ऋत्विज, पुरवासी, भिन्न-भिन्न समुदायोंके नेता और माताएँ अचेत-सी होकर आँसू बहाती हुई उनकी प्रशंसा करने लगीं और सबने योग्यताके अनुसार श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके उनसे लौटनेकी प्रार्थना की।

जब भरतने उपर्युक्त बातें कहीं तो कुटुम्बीजनोंके द्वारा सम्मानित श्रीरामने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—'भाई! तुम नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथसे उत्पन्न हुए हो तथा केकयराजकी कन्या कैकेयीके गर्भसे तुम्हारा जन्म हुआ है; अतः तुमने जो ऐसे उत्तम वचन कहे हैं, वे सर्वथा तुम्हारे योग्य हैं। आजसे बहुत पहलेकी बात है—पिताजीका जब तुम्हारी मातासे विवाह हुआ था; तभी उन्होंने तुम्हारे नानासे [कैकेयीके पुत्रको]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य देनेकी शर्त की थी। इसके बाद देवासुर-संग्राममें तुम्हारी माताने महाराजकी बड़ी सेवा की, इससे सन्तुष्ट होकर राजाने उन्हें वरदान दिया। उसीकी पूर्तिके लिये प्रतिज्ञा कराकर तुम्हारी यशस्विनी माता कैकेयीने पिताजीसे दो वर माँगे—तुम्हारा राज्य और मेरा वनवास। पिताजीने उनकी प्रेरणासे वे दोनों वर पूरे कर दिये, अतः उनकी ओरसे मुझे चौदह वर्षोंतक वनमें रहनेका आदेश प्राप्त हुआ है। यही कारण है कि मैं लक्ष्मण और सीताके साथ निर्जन वनमें चला आया और अब यहाँ पिताके सत्यकी रक्षामें स्थित रहूँगा। तुम भी उनकी आज्ञा मानकर उन्हें सत्यवादी बनाओ और जहाँतक सम्भव हो, शीघ्र राज्यपर अपना अभिषेक करा लो। भरत! तुम मेरे कहनेसे पूज्य पिता राजा दशरथको ऋणसे मुक्त करके उनकी रक्षा करो और माताका भी आनन्द बढ़ाओ। सुना है, गय देशमें यज्ञ करते हुए परम यशस्वी राजा गयने पितरोंसे एक कहावत कही थी—'बेटा 'पुम्' नामक नरकसे पिताका उद्धार करता है, इसलिये वह 'पुत्र' कहलाता है।'*

'अतः नरश्रेष्ठ भरत! तुम भी अपने पिताका नरकसे उद्धार करो। शत्रुघ्न तथा सब ब्राह्मणोंको साथ लेकर अयोध्या जाओ और प्रजाको सुख दो। अब मैं भी लक्ष्मण और सीताके साथ शीघ्र ही दण्डकारण्यमें प्रवेश करूँगा। तुम मनुष्योंके राजा बनो और मैं जंगली पशुओंका सम्राट् बनूँगा। अतुलित बुद्धिवाले शत्रुघ्न तुम्हारी सहायतामें रहें और लक्ष्मण मेरे प्रधान सहायक हैं ही। हम चारों पुत्र अपने पिता राजा दशरथके सत्यकी रक्षा करें। तुम विषाद मत करो।'

## जाबालि और भगवान् श्रीरामका संवाद

जब धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी भरतको इस प्रकार समझा रहे थे, उसी समय जाबालि नामके एक ब्राह्मणने उनसे धर्मके विरुद्ध वचन कहना आरम्भ किया—'रघुनन्दन! आपकी बुद्धि श्रेष्ठ है, आप तपस्वी हैं; अतः आपको गँवार मनुष्यकी तरह ऐसा निरर्थक विचार मनमें नहीं लाना चाहिये। राजा दशरथ आपके कोई नहीं थे और आप भी उनके कोई नहीं हैं। राजा दूसरे थे और आप भी दूसरे हैं; इसलिये मैं जो कहता हूँ, वही कीजिये। पिता जीवके जन्ममें निमित्तमात्र होता है। वास्तवमें ऋतुमती माताके द्वारा गर्भमें धारण किये हुए वीर्य और रजके संयोगसे ही पुरुषका जन्म होता है। राजाको जहाँ जाना था, वहाँ चले गये; यह प्राणियोंके लिये स्वाभाविक बात है। आप तो व्यर्थ ही कष्ट उठा रहे हैं। जो लोग [ शरीरको कष्ट देकर ] अर्थ और धर्मके उपार्जनमें ही लगे रहते हैं, उन सबके लिये मुझे शोक होता है। अष्टका आदि जितने श्राद्ध हैं, उनके देवता पितर हैं—श्राद्धका दान पितरोंको मिलता है, यही सोचकर लोग श्राद्धमें प्रवृत्त होते हैं; किन्तु विचार करके देखिये, तो इसमें अन्नका नाश ही होता है। भला मरा हुआ मनुष्य क्या खायेगा? यदि दूसरेका खाया हुआ अन्न दूसरेके शरीरमें चला जाता हो तो परदेशमें जानेवालोंके लिये भी श्राद्ध ही करना चाहिये। उनको रास्तेके लिये भोजन बाँधनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। 'देवताओंकी पूजा करो, दान दो, यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करो, तपस्या करो और घर छोड़कर संन्यासी बनो' इत्यादि बातें बतलानेवाले ग्रन्थ बुद्धिमान् मनुष्योंने दानकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति करानेके लिये बनाये हैं। महामते! आप अपने मनमें निश्चय कीजिये, इस लोकके सिवा दूसरा कोई लोक नहीं है। जो प्रत्यक्ष है, उसका आश्रय लीजिये। परोक्ष-पर विश्वास न कीजिये। सत्पुरुषोंकी बुद्धिको, जो सब लोगोंके लिये प्रमाणभूत है, आगे रखकर भरतके अनुरोधसे अयोध्याका राज्य ग्रहण कीजिये।'

जाबालिके ये वचन सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीने अपनी संशयरहित बुद्धिके द्वारा श्रुतिसम्मत सदुक्तिका आश्रय लेकर कहा—'विप्रवर! आपने मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे जो बातें कही हैं, वे स्वीकार करने योग्य नहीं हैं। जो पुरुष धर्म अथवा वेदकी मर्यादाको त्याग बैठता है, वह पाप-कर्ममें प्रवृत्त हो जाता है; उसके आचार और विचार दोनों ही भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिये वह सत्पुरुषोंमें कभी सम्मान नहीं पाता। आपका उपदेश चोला तो धर्मका पहने हुए है, किन्तु वास्तवमें है अधर्म। इससे संसारमें वर्णसङ्करताका प्रचार होगा। यदि मैं इसे स्वीकार करके वेदोक्त शुभ कर्मोंका

* पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यः पाति सर्वतः॥ ( १०७। १२ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुष्ठान छोड़ दूँ और विधिहीन कर्मोंमें लग जाऊँ, तो कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान रखनेवाला कौन समझदार मनुष्य मुझे भला समझेगा ? फिर तो यह सारा संसार ही स्वेच्छाचारी हो जायगा; क्योंकि राजाओंके जैसे आचरण होते हैं, प्रजा भी वैसा ही आचरण करने लगती है। सत्यका पालन ही राजाओंका दयाप्रधान धर्म है—सनातन आचार है, अतः राज्य सत्यस्वरूप है। सत्यमें ही सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है। ऋषियों और देवताओंने सत्यको ही आदर दिया है। इस लोकमें सत्यभाषण करनेवाला मनुष्य सबसे उत्तम अक्षय लोक—ब्रह्मधामको प्राप्त होता है। झूठ बोलनेवाले मनुष्यसे सब लोग उसी तरह डरते हैं जैसे साँपसे। संसारमें सत्य ही धर्मकी पराकाष्ठा है, वही सबका मूल कहा जाता है। जगत्में सत्य ही ईश्वर है। सर्वदा सत्यके ही आधार-पर धर्मकी स्थिति रहती है। सत्य ही सबकी जड़ है। सत्यसे बढ़कर कोई दूसरी उत्तम गति नहीं है*। दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद—इन सबका आश्रय सत्य ही है। इसलिये सबको सत्यपरायण होना चाहिये। मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ और सत्यकी शपथ करके पिताके सत्य आदेशका पालन स्वीकार कर चुका हूँ। ऐसी दशामें उसका पालन क्यों न करूँ ? पहले सत्यपालनकी प्रतिज्ञा करके अब लोभ, मोह अथवा अज्ञानसे विवेकशून्य होकर मैं पिताके सत्यकी मर्यादा भङ्ग नहीं करूँगा। सुना है कि जो अपनी प्रतिज्ञा झूठी करनेके कारण धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है, उस चञ्चल चित्तवाले पुरुषके दिये हुए हव्य-कव्यको देवता और पितर स्वीकार नहीं करते। मैं सत्यरूपी धर्मको सबके लिये आवश्यक और स्थिर समझता हूँ, इसलिये श्रेष्ठ पुरुषोंके स्वीकार किये हुए सत्यपालनरूप भारका आदर करता हूँ। आपने अच्छी समझकर तर्कपूर्ण वचनोंके द्वारा मुझसे जो यह बात कही है कि राज्य ग्रहण करनेमें ही कल्याण है, इसे अवश्य स्वीकार करो—वह सज्जनोंद्वारा आचरणमें लाने योग्य नहीं है। पिताजीके सामने मैं वनमें रहनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, अब उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके मैं भरतकी बात कैसे मान लूँ ? गुरुके समीप की हुई मेरी वह प्रतिज्ञा अटल है—किसी तरह तोड़ी नहीं जा सकती। आपकी बुद्धि विषम मार्गमें स्थित है—वेद-विरुद्ध पथका आश्रय लिये हुए है। आप घोर नास्तिक और धर्मके रास्तेसे कोसों दूर हैं। ऐसी पाखण्ड-मयी बुद्धिके द्वारा अनुचित विचारका प्रचार करनेवाले आपको मेरे पिताजीने जो अपना याजक बना लिया, उनके इस कार्यकी मैं निन्दा करता हूँ। जैसे चोर दण्डनीय होता है, उसी प्रकार नास्तिकको भी समझना चाहिये।'

महात्मा राम स्वभावसे ही दैन्यरहित थे, उनके रोषपूर्वक ऐसा कहनेपर विप्रवर जाबालिने विनयपूर्वक यह आस्तिकता-पूर्ण, हितकारी और सत्य वचन कहा—'रघुनन्दन ! मैं न तो नास्तिक हूँ और न नास्तिकोंकी बातें ही करता हूँ। 'परलोकादि कुछ भी नहीं है' ऐसा मेरा मत नहीं है। इस समय जो मेरे मुखसे ऐसी बात निकली है, उसमें मेरा उद्देश्य यही था कि किसी तरह आपको अयोध्या लौटनेके लिये तैयार कर लूँ।'

## भरतका धरना देनेको तैयार होना और श्रीरामका उन्हें पादुका देकर विदा करना

श्रीरामचन्द्रजीको रुष्ट जानकर महर्षि वसिष्ठ बोले—'जगदीश्वर ! महर्षि जाबालि भी जानते हैं कि इस लोकके प्राणियोंका परलोकमें जाना और आना होता रहता है; अतः ये नास्तिक नहीं हैं। इस समय तुम्हें लौटानेकी इच्छासे ही इन्होंने वैसी बातें कही थीं। नरश्रेष्ठ ! पिता पुरुषके शरीरको उत्पन्न करता है और आचार्य उसे ज्ञान देता है, इसलिये दोनों ही गुरु कहलाते हैं। मैं तुम्हारे पिताका और तुम्हारा भी आचार्य हूँ, अतः मेरी बात माननेसे तुम सज्जनोंके पथका त्याग करनेवाले नहीं समझे जाओगे ! ये तुम्हारे सभासद्, बन्धु-बान्धव तथा सामन्त राजा पधारे हुए हैं। इनके प्रति धर्मानुकूल बर्ताव करनेसे भी तुम्हारे द्वारा सन्मार्ग-का त्याग नहीं होगा। अपनी धर्मपरायणा बूढ़ी माताकी

* ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे। सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परं गच्छति चाक्षयम्॥
उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः। धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते॥
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः। सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥
( १०९। ११-१३ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात तो तुम्हें कभी टालनी ही नहीं चाहिये। उनकी आज्ञाका पालन करनेसे तुम श्रेष्ठ पुरुषोंके आश्रयभूत धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले नहीं माने जाओगे। रघुनन्दन! तुम सत्यधर्मके रक्षक और पराक्रमी हो। भरत तुमसे याचना कर रहे हैं, इनकी बात न टालो।'

गुरु वसिष्ठजीने सुमधुर वचनोंमें जब इस प्रकार कहा, तो श्रीरामचन्द्रजीने यों उत्तर दिया—'माता और पिता पुत्रके प्रति जो सर्वदा स्नेहपूर्ण बर्ताव करते हैं—अपनी शक्तिके अनुसार उत्तम खाद्य पदार्थ देने, अच्छे बिछौनेपर सुलाने, उबटन आदि लगाने, सदा मीठी बातें बोलने तथा पालन-पोषण करने आदिके द्वारा जो उपकार करते हैं, उसका बदला सहज ही नहीं चुकाया जा सकता। अतः मेरे जन्मदाता पिता महाराज दशरथने मुझे जो आज्ञा दी है वह मिथ्या नहीं होगी।' श्रीरामके ऐसा कहनेपर भरतका मन बहुत उदास हो गया। वे सुमन्त्रसे बोले—'आप इस वेदीपर शीघ्र ही कुश बिछा दीजिये। जबतक आर्य मुझपर प्रसन्न नहीं होंगे, तबतक यहीं इनके सामने धरना दूँगा। बिना खाये-पीये कुटीके आगे पड़ा रहूँगा।' सुमन्त्र श्रीरामचन्द्रजीका मुँह ताकने लगे। यह देखकर भरतके मनमें बड़ा दुःख हुआ और वे स्वयं ही कुशकी चटाई बिछाकर जमीनपर बैठ गये।

तब राजर्षियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी श्रीरामने कहा—'तात भरत! मैं तुम्हारी क्या बुराई करता हूँ, जो मेरे आगे धरना दे रहे हो? ब्राह्मण एक करवटसे सोकर—धरना देकर मनुष्योंको अन्यायसे रोक सकता है; परन्तु राजतिलक ग्रहण करनेवाले क्षत्रियोंके लिये इस प्रकार धरना देनेका विधान नहीं है; अतः इस कठोर व्रतका परित्याग करके उठो और शीघ्र ही अयोध्यापुरीको जाओ। इसी समय उठकर मेरा तथा जलका स्पर्श करो।' यह सुनकर भरत उठकर खड़े हो गये और जलका स्पर्श करके बोले—'मेरे सभासद् और मन्त्री सब लोग सुनें—न तो मैंने पिताजीसे राज्य माँगा था और न मातासे ही कभी इसके लिये कुछ कहा था। साथ ही परमधर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीके वनवासमें मेरी तनिक भी सम्मति नहीं है। फिर भी यदि पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए इनका वनमें रहना अनिवार्य हो तो इनके बदले मैं ही चौदह वर्षोंतक वनमें निवास करूँगा।' भरतकी इस बातसे धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने पुरवासी तथा राज्यनिवासी लोगोंकी ओर देखकर कहा—'पिताजीने अपने जीवनमें जो वस्तु किसीको दे दी है, उसे मैं या भरत—कोई भी पलट नहीं सकता। मुझे वनवासके लिये किसीको प्रतिनिधि नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि ऐसा करना बड़ी निन्दाकी बात होगी। मैं जानता हूँ भरत बड़े क्षमाशील और गुरुजनोंका सत्कार करनेवाले हैं। इन सत्यप्रतिज्ञ महात्मामें सभी कल्याणकारी गुण मौजूद हैं। वनवासकी अवधि समाप्त करके जब मैं लौटूँगा तो मैं अपने इन धर्मशील भाईके साथ इस पृथ्वीका राजा होऊँगा। कैकेयीने राजासे वर माँगा और मैंने उसका पालन स्वीकार कर लिया; अतः भरत! अब तुम मेरा कहना मानकर पिताको असत्यके बन्धनसे मुक्त करो।'

उन दोनों अतुलित तेजस्वी भ्राताओंका वह रोमाञ्चकारी समागम देखकर वहाँ आये हुए महर्षि बहुत विस्मित हुए। अन्तरिक्षमें अदृश्यभावसे खड़े हुए मुनि तथा वहाँ प्रत्यक्ष रूपमें बैठे हुए महर्षि उन सौभाग्यशाली बन्धुओंकी इस प्रकार प्रशंसा करने लगे—'ये दोनों राजकुमार श्रेष्ठ, धर्मके ज्ञाता और धर्ममार्गपर चलनेवाले हैं। इन दोनोंकी बातचीत सुनकर हमें उसे सुनते ही रहनेकी इच्छा होती है।' इसी समय रावणके वधकी अभिलाषा रखनेवाले ऋषियोंने सम्मिलित होकर भरतसे कहा—'महाप्राज्ञ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो। तुम्हारा आचरण बहुत उत्तम और यश महान् है। यदि तुम अपने पिताकी ओर देखो—उन्हें सुख पहुँचाना चाहो तो तुम्हें श्रीरामचन्द्रजीकी बात मान लेनी चाहिये। हमलोग श्रीरामको पिताके ऋणसे सदा उऋण देखना चाहते हैं। कैकेयीका ऋण चुका देनेके कारण ही राजा दशरथ स्वर्गमें पहुँचे हैं।' इतना कहकर वहाँ आये हुए गन्धर्व, महर्षि और राजर्षि—सब अपने-अपने स्थानको चले गये। जिनके दर्शनसे जगत्का कल्याण हो जाता है, वे भगवान् श्रीराम महर्षियोंके वचनसे बहुत प्रसन्न हुए। उनका मुख हर्षोल्लाससे खिल उठा और उन्होंने उनकी बड़ी प्रशंसा की। परन्तु भरतका सारा शरीर थर्रा उठा। वे लड़खड़ाती हुई जबानसे हाथ जोड़कर बोले—'आर्य! हमारे कुल-धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला जो ज्येष्ठ पुत्रका राज्यस्वीकार और प्रजा-पालनरूप धर्म है, उसकी ओर दृष्टि डालिये और मेरी तथा माताकी याचना सफल कीजिये। मैं इस महान् राज्यकी रक्षा नहीं कर सकता। जैसे किसान मेघकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, उसी प्रकार बन्धु-बान्धव, योद्धा-मित्र और सुहृद्—सब लोग आपकी ही बाट जोहते हैं। आप इस राज्यको स्वीकार करके दूसरे किसीको इसके पालनका भार सौंप दीजिये। वह जगत्के पालनमें समर्थ हो सकता है।' ऐसा कहकर भरत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने भाईके चरणोंपर गिर पड़े। तब श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें उठाकर गोदमें बिठा लिया और मधुर स्वरमें कहा—'तात! तुम्हें जो यह स्वाभाविक विनयशील बुद्धि प्राप्त हुई है, इसके द्वारा तुम सारी पृथ्वीकी रक्षा करनेमें पूर्णतया समर्थ हो। कितने ही बड़े कार्य क्यों न हों, सबको अमात्यों, सुहृदों और बुद्धिमान् मन्त्रियोंसे सलाह लेकर करना। चन्द्रमासे उसकी प्रभा अलग हो जाय, हिमालय हिमका परित्याग कर दे अथवा समुद्र अपनी सीमाको लाँघकर आगे बढ़ जाय; किन्तु मैं पिताकी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।* माता कैकेयीने कामनासे अथवा लोभवश तुम्हारे लिये यह जो कुछ किया है, उसको मनमें न लाना और उसके प्रति सदा वैसा ही बर्ताव करना, जैसा अपनी पूजनीया माताके प्रति करना उचित है।'

सूर्यके समान तेजस्वी कौसल्यानन्दन श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर भरतने कहा—'आर्य! ये दो सुवर्णभूषित पादुकाएँ आपके चरणोंमें अर्पित हैं। आप इनपर अपने चरण रखें। ये ही सम्पूर्ण जगत्के योगक्षेमका निर्वाह करेंगी।' नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने वे पादुकाएँ पैरोंके नीचे रखकर फिर हटा दी और उन्हें महात्मा भरतको दे दिया। उन पादुकाओंको प्रणाम करके भरतने श्रीरामसे कहा—'रघुनन्दन! मैं भी चौदह वर्षोंतक जटा और चीर धारण करके फल-मूलका भोजन करूँगा और आपके आनेकी बाट जोहता हुआ नगरसे बाहर ही रहूँगा। इतने दिनोंतक राज्यका सारा भार आपकी इन चरण-पादुकाओंपर ही रहेगा। चौदहवाँ वर्ष पूरा होनेके दूसरे ही दिन मुझे आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो मैं जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा।' श्रीरामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकृति दे दी और बड़े आदरके साथ भरतको हृदयसे लगाया। तत्पश्चात् शत्रुघ्नको छातीसे लगाकर कहा—'भाई! मैं तुम्हें अपनी और सीताकी शपथ दिलाकर कहता हूँ कि तुम माता कैकेयीका लिहाज रखना, उनके ऊपर कभी क्रोध न करना।' इतना कहते-कहते उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। तदनन्तर उन्होंने क्रमशः गुरु, मन्त्री, प्रजा तथा भाइयोंका यथायोग्य सत्कार करके उन्हें बिदा किया और सब माताओंको प्रणाम करके वे रोते-रोते अपनी कुटीमें चले गये।

## भरतका भरद्वाजजीसे मिलते हुए अयोध्यामें जाना और नन्दिग्राममें निवास करना

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीकी दोनों चरण-पादुकाओंको अपने मस्तकपर रखकर भरत बड़ी प्रसन्नतासे शत्रुघ्नके सहित रथपर बैठे। वसिष्ठ, वामदेव और उत्तम व्रत धारण करनेवाले जाबालि आदि सब मन्त्री आगे-आगे चले। वे सब लोग चित्रकूट नामक महान् पर्वतकी परिक्रमा करते परम रमणीय मन्दाकिनी नदीको पार करके पूर्व दिशाकी ओर प्रस्थित हुए। भरत अपनी सेनाके साथ सहस्रों प्रकारकी रमणीय धातुओंको देखते चित्रकूटके किनारेसे होकर निकले और थोड़ी ही दूर जानेके बाद उन्हें वह आश्रम दिखायी दिया, जहाँ मुनिवर भरद्वाजजी निवास करते थे।† अपने कुलके आनन्दको बढ़ानेवाले परम पराक्रमी भरत महर्षि भरद्वाजके उस आश्रमपर पहुँचकर रथसे उतर पड़े और उन्होंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उनके आनेसे महर्षिको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने पूछा—'तात! क्या तुम्हारा कार्य सिद्ध हुआ? श्रीरामचन्द्रजी तुम्हें मिले?' उनके इस प्रकार पूछनेपर धर्मानुरागी भरतने उत्तर दिया—'महर्षे! भगवान् श्रीराम अपने पराक्रमपर दृढ़ रहनेवाले हैं। मैंने उनसे बहुत प्रार्थना की। गुरुजीने भी अनुरोध किया। तब उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नताके साथ गुरुदेव वसिष्ठजीसे कहा—'मैं चौदह वर्षोंतक वनमें रहूँ, इसके लिये मेरे पिताजी प्रतिज्ञा कर चुके हैं; अतः मैं उनकी उस प्रतिज्ञाका ही यथार्थरूपसे पालन करूँगा।' यह सुनकर उनकी आज्ञासे मैं लौट आया हूँ और उनके चरणोंकी इन

* लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्। अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥ (११२। १८)

† यह आश्रम यमुनासे दक्षिण दिशामें चित्रकूटके कुछ निकट था; गङ्गा और यमुनाके बीचवाला आश्रम, जहाँ वनमें आते समय श्रीरामचन्द्रजी तथा भरत आदिने विश्राम किया था, इससे भिन्न जान पड़ता है। तभी इस आश्रमपर भरद्वाजसे मिलनेके बाद भरत आदिके यमुना पार करनेका उल्लेख मिलता है—'ततस्ते यमुनां दिव्यां नदीं तीर्त्वोर्मिमालिनीम्।' इस द्वितीय आश्रमसे राम और भरतके समागमका समाचार शीघ्र प्राप्त हो सकता था, इसीलिये भरद्वाजजी भरतके लौटनेके समय यहीं मौजूद थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

उत्तम पादुकाओंको ही लेकर अयोध्याको जा रहा हूँ।'' महात्मा भरतके ये उत्तम वचन सुनकर मुनिवर भरद्वाजजीने कहा—नरश्रेष्ठ! तुम शील और सदाचारके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ हो। तुम्हारे अंदर उत्तम गुणोंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। तुम्हारे पिता महाबाहु राजा दशरथ सब प्रकारसे उऋण हो गये, जिनके तुम्हारे-जैसा धर्मप्रेमी एवं धर्मात्मा पुत्र है।'

ऋषिके ऐसा कहनेपर भरतने हाथ जोड़कर उनके चरणोंका स्पर्श किया और जानेकी आज्ञा माँगी। तत्पश्चात् वे बारंबार मुनिकी प्रदक्षिणा करके मन्त्रियोंसहित अयोध्याकी ओर चल दिये। आगे जाकर उन सब लोगोंने तरङ्गमालाओंसे सुशोभित दिव्य नदी यमुनाको पार करके पुनः पुण्यसलिला गङ्गाका दर्शन किया। फिर बन्धु-बान्धवों और सैनिकोंके साथ मनोहर जलसे भरी हुई गङ्गाके भी पार होकर वे परम रमणीय शृङ्गवेरपुरमें जा पहुँचे। वहाँसे प्रस्थान करनेपर उन्हें पुनः अयोध्यापुरीका दर्शन हुआ, जो उस समय पिता और भाई दोनोंसे विहीन थी। उसे देखकर भरतने दुःखसे संतप्त होकर कहा—'सुमन्त्रजी! देखिये, अयोध्याकी सारी शोभा नष्ट हो गयी, अब यह पहलेकी भाँति श्रीसम्पन्न नहीं दिखायी देती। इसका वह सुन्दर रूप, वह आनन्द जाता रहा। इस समय यह अत्यन्त दीन और निस्तब्ध हो रही है।

इसके बाद महायशस्वी भरतने अयोध्यामें प्रवेश किया। उस समय वहाँ बिलाव और उल्लू विचर रहे थे, घरोंके किवाड़ बंद थे, सारे नगरमें अन्धकार छा रहा था। प्रकाशका कोई प्रबन्ध न होनेके कारण वह पुरी काली रात-सी जान पड़ती थी। रथपर बैठे हुए भरत सारथि सुमन्त्रसे फिर कहने लगे—'अब अयोध्यामें पहलेकी भाँति गाने-बजानेका गम्भीर शब्द नहीं सुनायी पड़ता। अच्छी-अच्छी सवारियोंकी आवाज, घोड़ोंका हींसना, मतवाले हाथियोंकी चिग्घार और रथोंकी घरघराहट भी नहीं सुनायी देती। श्रीरामचन्द्रजीके निर्वासित होनेके कारण ही इस नगरकी यह दुरवस्था हो गयी है। श्रीरामके चले जानेसे यहाँके नवयुवक बहुत ही संतप्त हैं, ये चन्दन और अगरकी सुगन्धका सेवन नहीं करते तथा सुन्दर वनमालाएँ भी नहीं धारण करते। अब इस पुरीके लोग विचित्र फूलोंके हार पहनकर बाहर घूमनेके लिये नहीं निकलते। समूचा नगर श्रीरामके विरह-शोकसे पीड़ित है, इसलिये कहीं कोई उत्सव नहीं हो रहा है। निश्चय ही अयोध्याकी सारी शोभा मेरे भाईके साथ चली गयी।' इस प्रकार सारथिके साथ बातचीत करते दुखी भरत सिंहसे हीन गुफाकी भाँति राजा दशरथसे रहित राजमहलमें गये। जैसे [ घटा आदि घिर आनेपर ] सूर्यके छिप जानेसे दिनकी शोभा नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार उस समय वह अन्तःपुर श्रीहीन हो रहा था। उसकी दशा देखकर भरत धैर्यवान् होनेपर भी अत्यन्त दुखी होकर आँसू बहाने लगे।

तदनन्तर सब माताओंको अयोध्यामें रखकर दृढ़प्रतिज्ञ भरतने शोकसे संतप्त हो गुरुजनोंसे कहा—'अब मैं नन्दिग्रामको जाऊँगा, इसके लिये आप सब लोगोंकी आज्ञा चाहता हूँ। महाराज स्वर्गको सिधार गये और मेरे परम पूज्य भगवान् श्रीराम वनमें निवास करते हैं; अतः मैं भी नन्दिग्राममें रहकर राज्यके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी ही प्रतीक्षा करूँगा; क्योंकि महायशस्वी श्रीराम ही हमलोगोंके राजा हैं।' महात्मा भरतके ये उत्तम वचन सुनकर सब मन्त्री और पुरोहित वसिष्ठजी बोले—'भरत! भ्रातृभक्तिसे प्रेरित होकर तुमने जो वचन कहा है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। वास्तवमें वह तुम्हारे ही योग्य है। तुम अपने भाईके दर्शनके लिये सदा लालायित रहते हो और उन्हींके हितमें संलग्न हो, साथ ही अत्यन्त उत्तम मार्गपर जा रहे हो; अतः कौन पुरुष तुम्हारे विचारका अनुमोदन नहीं करेगा? मन्त्रियोंके प्रिय वचन सुनकर भरतने सारथिसे कहा—'मेरा रथ जोतकर तैयार किया जाय।' फिर उन्होंने प्रसन्नवदन होकर सब माताओंसे आज्ञा ली और शत्रुघ्नके साथ रथपर सवार हुए। तत्पश्चात् मन्त्री और पुरोहितोंके सहित उन दोनों भाइयोंने प्रस्थान किया। आगे-आगे वसिष्ठ आदि सभी गुरुजन चल रहे थे। उन सब लोगोंने अयोध्यासे पूर्वाभिमुख होकर यात्रा की और वह मार्ग पकड़ा, जो नन्दिग्रामकी ओर जाता था। भरतके जानेपर हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई सारी सेना भी बिना बुलाये ही उनके पीछे-पीछे चल दी। समस्त पुरवासी भी उनके साथ हो लिये। भ्रातृप्रेमी धर्मात्मा भरत अपने मस्तकपर भगवान् श्रीरामकी चरण-पादुकाएँ लिये रथपर बैठकर बड़ी शीघ्रतासे नन्दिग्रामकी ओर चले और तुरंत ही वहाँ जा पहुँचे। फिर रथसे उतरकर वे गुरुजनोंसे बोले—'मेरे भाईने यह राज्य मुझे धरोहरके रूपमें दिया है। उनकी ये सुवर्णभूषित चरणपादुकाएँ ही सबके योगक्षेमका निर्वाह करनेवाली हैं। मैं इन्हें आर्य श्रीरामचन्द्रजीके साक्षात् चरण मानता हूँ। मेरे गुरुकी इन चरण-पादुकाओंसे ही इस राज्यमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


धर्मकी स्थापना होगी। उन्होंने प्रेमके कारण ही यह धरोहर मुझे सौंपी है, अतः मैं उनके लौटनेतक इसकी भलीभाँति रक्षा करूँगा। इसके बाद इन्हें पुनः उनके चरणोंसे संयुक्त कर इन पादुकाओंसे सुशोभित आर्यके चरणोंका दर्शन करूँगा। श्रीरामचन्द्रजीके आते ही उनकी सेवामें यह राज्य समर्पित कर दूँगा। फिर मेरा भार हलका हो जायगा और मैं उनकी आज्ञाके अधीन रहकर उन्हींकी सेवामें लग जाऊँगा। मेरे पास धरोहरके रूपमें रखी हुई इन उत्तम पादुकाओंको, इस राज्यको और अयोध्याको भी श्रीरामकी सेवामें समर्पित करके मैं सब प्रकारके दुःख और चिन्ताओंसे मुक्त हो जाऊँगा।'

यों कहकर वल्कल और जटा धारण किये, मुनिका वेष बनाये परम धैर्यवान् भरत सेनासहित नन्दिग्राममें रहने लगे। वे राज्य-शासनका समस्त कार्य भगवान्‌की चरण-पादुकाओंको निवेदन करके करते थे तथा स्वयं ही उनके ऊपर छत्र लगाते और चँवर डुलाते थे। उन्होंने बड़े भाईकी उन पादुकाओंको राज्यपर अभिषिक्त किया और स्वयं सदा उनके अधीन रहकर वे राज्यका सब कार्य देखने लगे। जो कोई भी कार्य उपस्थित

होता, जो भी बहुमूल्य भेंट आती, वह सब पहले उन पादुकाओंको निवेदन करके पीछे भरतजी उसका यथावत् प्रबन्ध करते थे।

## श्रीराम आदिका अत्रिमुनिके आश्रमपर होते हुए दुर्गम वनमें प्रवेश तथा अनसूयाद्वारा सीताका सत्कार

भरतके लौट आनेपर श्रीरामचन्द्रजी पहलेकी भाँति वनमें निवास करने लगे। उस समय बहुत-से ऋषि अपना-अपना आश्रम छोड़कर अन्यत्र चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने इसपर विचार किया तो उन्हें बहुत-से ऐसे कारण ज्ञात हुए, जिनसे उन्होंने स्वयं भी वहाँ रहना उचित न समझा। अतः दूसरे

स्थानपर जानेकी बात सोचकर वे सीता और लक्ष्मणके साथ वहाँसे चल दिये। वहाँसे अत्रिके आश्रमपर पहुँचकर महायशस्वी श्रीरामने उन्हें प्रणाम किया। महर्षि अत्रिने भी उनके साथ पुत्रकी भाँति बर्ताव किया। उन्होंने स्वयं ही श्रीरामका आतिथ्य-सत्कार करके महाभाग लक्ष्मण और सीताको भी सत्कारपूर्वक सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् वे धर्म और तपस्यामें लगी रहनेवाली अपनी पत्नी महाभागा अनसूयासे बोले—'देवि! तुम सीताका सत्कार करो। फिर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको धर्मपरायणा तपस्विनी अनसूयाका परिचय देते हुए कहा—'एक समय दस वर्षतक वृष्टि नहीं हुई। सारा जगत् निरन्तर दग्ध होने लगा। उस दुर्भिक्षके समय जिन्होंने उग्र तपस्यासे युक्त होकर कठोर नियमोंका पालन किया और अपने तपके प्रभावसे फल-मूल उत्पन्न करके यहाँ मन्दाकिनीकी पवित्र धारा बहायी तथा जिन्होंने दस हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या करके अपने उत्तम व्रतोंके प्रभावसे ऋषियोंके समस्त विघ्नोंका निवारण किया था, ये वे ही अनसूया-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी हैं। श्रीराम ! ये तुम्हारे लिये माताकी भाँति पूजनीया हैं। विदेहराजकुमारी सीता इनके पास जायँ, ये सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये वन्दनीय हैं।' महर्षिके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीरामने सीतासे कहा—'राजकुमारी ! महर्षिके वचन तो तुमने सुन ही लिये; अब तुम शीघ्र ही अपने कल्याणके लिये इन तपस्विनी देवीके पास जाओ।'

श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर यशस्विनी सीता धर्मको जाननेवाली अत्रिपत्नी अनसूयाके पास गयीं। अनसूया वृद्धावस्थाके कारण शिथिल हो गयी थीं, उनके शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी थीं तथा सिरके बाल सफेद हो गये थे। निकट पहुँचकर सीताने शान्तभावसे उन्हें प्रणाम किया और अपना नाम बतलाया। फिर हाथ जोड़कर बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्होंने उन तपस्विनी देवीका कुशल-समाचार पूछा। धर्मका आचरण करनेवाली महाभागा सीताको देखकर बूढ़ी अनसूया देवी उन्हें सान्त्वना देती हुई बोलीं—'सीते ! यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है कि तुम सदा धर्मपर दृष्टि रखती हो। बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर और उनसे प्राप्त होनेवाली मान-प्रतिष्ठाका परित्याग करके तुम वनमें भेजे हुए रामका अनुसरण कर रही हो, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अपने स्वामी नगरमें रहें या वनमें, भले हों या बुरे—जिन स्त्रियोंको ये प्रिय होते हैं; उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकोंकी प्राप्ति होती है। पति बुरे स्वभावका, मनमाना बर्ताव करनेवाला अथवा धनहीन ही क्यों न हो—वह उत्तम स्वभाववाली नारियोंके लिये श्रेष्ठ देवताके समान है।* वैदेही ! मैं बहुत विचार करनेपर भी पतिसे बढ़कर कोई हितकारी बन्धु नहीं देखती। तपस्याके अविनाशी फलकी भाँति वह इस लोक और परलोकमें—सर्वत्र सुख पहुँचानेमें समर्थ होता है। जो अपने पतिपर भी शासन करती हैं, वे असाध्वी स्त्रियाँ इस प्रकार पतिका अनुसरण नहीं करतीं। उन्हें गुण-दोषोंका ज्ञान नहीं होता। ऐसी नारियाँ अनुचित कर्ममें फँसकर धर्मसे भ्रष्ट हो जाती हैं और संसारमें उन्हें अपयशकी प्राप्ति होती है। किन्तु जो तुम्हारे समान लोक-परलोकको जाननेवाली साध्वी स्त्रियाँ हैं, वे उत्तम गुणोंसे युक्त होकर पुण्यकर्मोंमें संलग्न रहती हैं। अतः तुम इसी प्रकार अपने पतिदेव श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें लगी रहो। सती-धर्मका पालन करो, पतिको प्रधान देवता समझो और प्रत्येक समय उनका अनुसरण करती हुई उनकी सहधर्मिणी बनो। इससे तुम्हें धर्म और सुयश दोनोंकी प्राप्ति होगी।'

अनसूयाके ऐसा कहनेपर असूया-दोषसे रहित विदेह-कुमारी सीताने उनके वचनोंकी प्रशंसा की और धीरे-धीरे इस प्रकार कहा—'देवि ! आप संसारकी स्त्रियोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, आपके मुँहसे ऐसी बातोंका सुनना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मेरे पतिदेव यदि अनार्य और चरित्रहीन होते तो भी मैं बिना किसी दुविधाके इनकी सेवामें लगी रहती। फिर जब कि ये अपने गुणोंके कारण ही सबकी प्रशंसाके पात्र हैं तब तो इनकी सेवाके लिये कहना ही क्या है ? मेरे पति महाबली श्रीरामचन्द्रजी परम दयालु, जितेन्द्रिय, दृढ़ अनुराग रखने-वाले और धर्मात्मा हैं। इनका अपनी माता कौसल्याके साथ जैसा बर्ताव है, वैसा ही महाराज दशरथकी दूसरी रानियोंके साथ भी है। जब मैं पतिके साथ निर्जन वनमें आने लगी, उस समय मेरी सास कौसल्याने मुझे जो कर्तव्यका उपदेश दिया था, वह मेरे हृदयमें ज्यों-का-त्यों अङ्कित है। पहले मेरे विवाहकालमें अग्निके समीप माताने मुझे जो शिक्षा दी थी वह भी याद है। इसके सिवा मेरे अन्य स्वजनोंने अपने वचनोंद्वारा जो-जो उपदेश दिया है, वह भी मुझे भूला नहीं है। स्त्रीके लिये पतिकी सेवाके अतिरिक्त दूसरा कोई तप नहीं है। सत्यवान्‌की पत्नी सावित्री पतिकी सेवा करके ही स्वर्गलोकमें पूजित हो रही है। सम्पूर्ण स्त्रियोंमें श्रेष्ठ यह स्वर्गकी देवी रोहिणी पतिसेवाके प्रभावसे ही एक मुहूर्त्तके लिये भी चन्द्रमासे विलग होती नहीं देखी जाती। इस प्रकार दृढ़तापूर्वक पातिव्रत्य-धर्मका पालन करनेवाली बहुत-सी साध्वी स्त्रियाँ अपने पुण्यकर्मके बलसे देवलोकमें आदर पा रही हैं।'

सीताके वचन सुनकर अनसूयाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उनका मस्तक सूँघा और फिर उनका हर्ष बढ़ाते हुए कहा—'विदेहनन्दिनी ! मैंने अनेकों प्रकारके नियमोंका पालन करके बहुत बड़ी तपस्या की है, उसीका आश्रय लेकर मैं तुमसे कहती हूँ। तुमने बहुत ही युक्तियुक्त और उत्तम वचन कहा है। उसे सुनकर मुझे बड़ा संतोष हुआ है; अतः बताओ मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?' उनका कथन सुनकर सीताको आश्चर्य हुआ। वे तपोबलसम्पन्न अनसूयासे

---

* नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः॥
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः॥
(११७। २३-२४)


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कुछ मुसकराकर बोलीं—'आपने अपने वचनोंद्वारा ही मेरा प्रिय कर दिया, अब और कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है।' यह सुनकर धर्मको जाननेवाली अनसूया देवीकी प्रसन्नता और भी बढ़ गयी और उन्होंने कहा—'सीते ! [ तुम्हें आवश्यकता हो या न हो ] तुम्हारी निर्लोभतासे जो मुझे विशेष हर्ष हुआ है, उसे मैं अवश्य सफल करूँगी। ये दिव्य हार, वस्त्र, आभूषण, अङ्गराग और उत्तम अनुलेपन मैं तुम्हें देती हूँ। इनसे तुम्हारे अङ्गोंकी शोभा होगी। ये सब तुम्हारे योग्य हैं और नित्य उपयोगमें लानेपर भी इनमें कोई विकार नहीं आयेगा। जानकी ! इस दिव्य अङ्गरागको अङ्गोंमें लगाकर तुम अपने पतिको उसी प्रकार सुशोभित करोगी, जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुकी शोभा बढ़ाती हैं।' अनसूयाकी आज्ञासे सीताने वस्त्र, अङ्गराग, आभूषण और हारको उनकी प्रसन्नताका उत्तम उपहार समझ-

कर ले लिया। तत्पश्चात् अनसूयाने फिर कहा—'सीते ! अब रात हो गयी, आकाशमें उदित हुए चन्द्रमा दिखायी दे रहे हैं; अतः मैं तुम्हें जानेकी आज्ञा देती हूँ। जाओ, श्रीरामकी सेवा करो। बेटी ! पहले मेरे सामने ही इन दिव्य वस्त्र और आभूषणोंको धारण कर लो और इनसे सुशोभित होकर मुझे प्रसन्न करो।' तब सीताने उनसे अपनेको अलंकृत किया, जिससे वे देवकन्याके समान शोभा पाने लगीं। फिर अनसूयाके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले वे श्रीरामचन्द्रजीके पास गयीं। उन्हें देखकर राम बहुत प्रसन्न हुए। उस समय मिथिलेशकुमारीने तपस्विनी अनसूयाके हाथसे वस्त्र, आभूषण और हार आदिका प्रीति-पुरस्कार जिस प्रकार प्राप्त हुआ था, वह सब श्रीरामचन्द्रजीसे कह सुनाया। भगवान् श्रीराम और महारथी लक्ष्मण सीताका वह सत्कार, जो मनुष्योंके लिये सर्वथा दुर्लभ है, देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने तपस्वियोंके द्वारा सत्कृत होकर उस आश्रमपर ही वह पुण्यमयी रात्रि व्यतीत की। सबेरा होनेपर जब सभी वनवासी मुनि अग्निहोत्रसे निवृत्त हो गये, तो नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मणने उनसे जानेके लिये आज्ञा माँगी। तब वे धर्मपरायण वनवासी तपस्वी उनसे इस प्रकार बोले—'इस वनके मार्गमें राक्षसोंका उपद्रव होता रहता है, नाना प्रकारके नरभक्षी राक्षस इस घोर जंगलके भीतर निवास करते हैं। खूखार जन्तुओंकी भी यहाँ कमी नहीं है। जो तपस्वी और ब्रह्मचारी अपवित्र या असावधान होते हैं, उन्हें वे राक्षस और हिंसक जन्तु इस वनमें खा जाते हैं। अतः रघुनन्दन! आप उनकी बाधा दूर करें। यही मार्ग है जिससे महर्षिलोग वनके भीतर फल-मूल लेने जाते हैं। इसीसे आपको भी इस दुर्गम वनमें प्रवेश करना चाहिये।' तपस्वियोंने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे ये बातें कहीं और उनकी मङ्गलयात्राके लिये स्वस्त्ययन किया। तत्पश्चात् शत्रुओंको ताप देनेवाले भगवान् श्रीरामने लक्ष्मण और सीताके साथ वनमें प्रवेश किया।

अयोध्याकाण्ड समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## विराध-वध

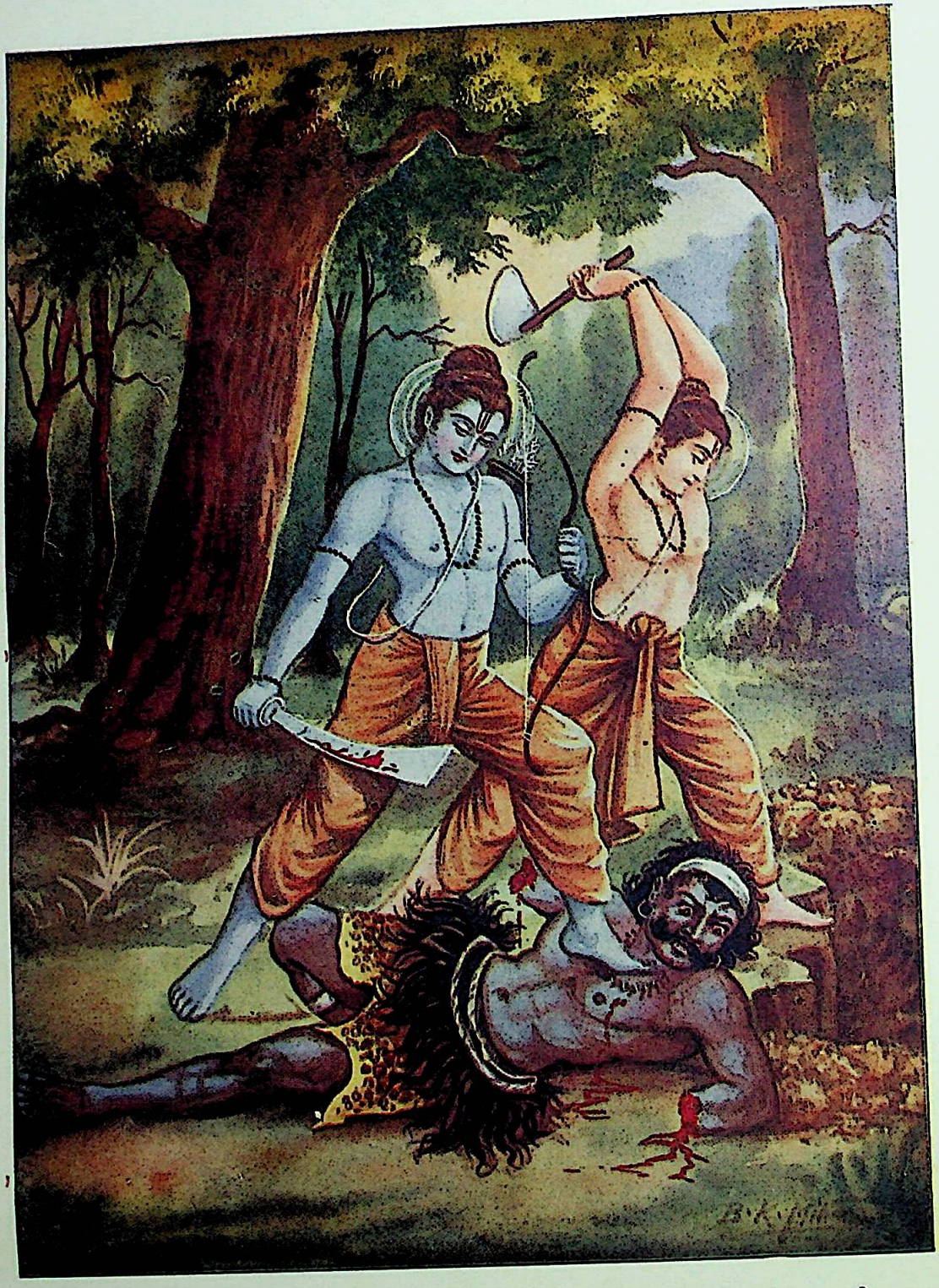

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति । तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान् ॥
ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम् । अखनत् पार्श्वतस्थस्य विराधस्य महात्मनः ॥
(अरण्य० ४ । २६-२७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण

## अरण्यकाण्ड

### विराधका वध

उस दण्डकारण्य नामक महान् वनमें प्रवेश करके मनको वशमें रखनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने तपस्वियोंके बहुत-से आश्रम देखे, जहाँ कुश और वल्कल वस्त्र फैले हुए थे। अनेकों सौभाग्यशाली ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण उन आश्रमोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। महातेजस्वी श्रीराम अपने महान् धनुषकी प्रत्यञ्चा उतारकर आश्रममें गये। वहाँ रहनेवाले महर्षि दिव्यज्ञानसे सम्पन्न थे। वे धर्मात्मा राम, लक्ष्मण एवं यशस्विनी सीताको देखकर उनके सत्कारमें लग गये। उनका सुन्दर शरीर, कान्ति, सुकुमारता और भव्य वेष देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। सभी वनवासी उन तीनोंकी ओर एकटक नेत्रोंसे देखने लगे। सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले उन महाभाग महर्षियोंने अपने प्रिय अतिथि भगवान् श्रीरामको पर्णशालामें ले जाकर ठहराया और विधिवत् सत्कार करके उन्हें जल लाकर दिया। फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ मङ्गलसूचक आशीर्वाद देते हुए उन्हें फल-मूल और फूल समर्पित करके ठहरनेके लिये स्थान दिया। इसके बाद वे हाथ जोड़कर बोले—'रघुनन्दन! आप धर्मके पालक, महान् यशस्वी और हमलोगोंको शरण देनेवाले हैं। हम आपके राज्यमें निवास करते हैं; अतः आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये। आप नगरमें रहें या वनमें, हमलोगोंके राजा ही हैं। हमने जीवमात्रको दण्ड देना छोड़ दिया है। क्रोध और इन्द्रियोंको जीत लिया है। अब तपस्या ही हमारा धन है। जैसे माता गर्भस्थ बालककी रक्षा करती है, उसी प्रकार आपको हर तरहसे हमारी रक्षा करनी चाहिये।' यों कहकर उन तपस्वियोंने वनमें उत्पन्न होनेवाले फल, मूल, फूल तथा अन्य अनेकों प्रकारके आहारोंसे लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका सत्कार किया।

रात्रिमें उन महर्षियोंका आतिथ्य ग्रहण करके सबेरे सूर्योदय होनेपर सबसे आज्ञा ले श्रीरामचन्द्रजी पुनः वनमें ही आगे बढ़ने लगे। जाते-जाते बीच जंगलमें उनकी दृष्टि एक ऐसे स्थानपर पड़ी, जहाँके वृक्ष, लता और झाड़ियाँ नष्ट-भ्रष्ट हो गयी थीं। वहाँ किसी जलाशयका दर्शन होना भी कठिन हो रहा था। भयंकर जंगली पशुओंसे भरे हुए उस दुर्गम वनमें सीताके साथ श्रीरामने एक मनुष्यभक्षक भयानक राक्षस देखा, जो पर्वतशिखरके समान ऊँचा था और उच्च स्वरसे गर्जना कर रहा था। उसकी आँखें गहरी, मुँह बहुत बड़ा, आकार विकट और उदर विशाल था। वह देखनेमें बड़ा ही डरावना था। सम्पूर्ण प्राणियोंको त्रास पहुँचानेवाला वह राक्षस यमराजके समान मुँह बाये खड़ा था और एक लोहेके शूलमें तीन सिंह, चार बाघ, दो भेड़िये, दस चितकबरे हरिन और हाथीका एक बहुत बड़ा मस्तक गाँथकर जोर-जोरसे दहाड़ रहा था। राम, लक्ष्मण और सीताको देखते ही वह भैरव-नाद करके पृथ्वीको कम्पायमान करता हुआ क्रोधसे भरकर उनकी ओर दौड़ा और सीताको गोदमें ले कुछ दूरपर जाकर खड़ा हो गया। फिर उन दोनों भाइयोंसे बोला—'तुमलोग जटा और वल्कल-वस्त्र धारण करके हाथमें धनुष-बाण और तलवार लिये दण्डकारण्यमें आये हो। तुम दोनों तो तपस्वी जान पड़ते हो, फिर तुम्हारा युवती स्त्रीके साथ रहना कैसे सम्भव हुआ? मैं विराध नामका राक्षस हूँ और प्रतिदिन मुनियोंका मांस भक्षण करता, अस्त्र-शस्त्र लिये इस दुर्गम वनमें विचरता रहता हूँ। यह स्त्री बड़ी सुन्दरी है, यह तो मेरी भार्या बनेगी और तुम दोनोंका मैं रुधिर-पान करूँगा।'

दुरात्मा विराधकी ये दुष्टतापूर्ण घमंडयुक्त बातें सुनकर जनकनन्दिनी सीता घबरा गयीं और भयसे थर-थर काँपने लगीं। सीताको विराधके पंजेमें पड़ी देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले—'सौम्य! वह देखो, राजा जनककी कन्या विराधके चंगुलमें फँस गयी है। विदेहनन्दिनीका दूसरा कोई स्पर्श

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे, इससे बढ़कर दुःखकी बात मेरे लिये दूसरी कोई नहीं है।' श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणने कुपित होकर कहा—'आर्य ! मैं अभी इस राक्षसको अपने बाणोंका निशाना बनाता हूँ। अब यह पृथ्वी मरे हुए विराधका ही रक्तपान करेगी।'

तब विराधने पुनः उस वनको गुँजाते हुए कहा—'अरे! मैं पूछता हूँ, तुम दोनों कौन हो और कहाँ जाओगे ?' श्रीरामचन्द्रजी बोले—'हमलोग सदाचारका पालन करनेवाले क्षत्रिय हैं और कारणवश इस समय वनमें निवास करते हैं। अब हम तेरा परिचय जानना चाहते हैं। तू कौन है, जो दण्डक वनमें स्वेच्छासे विचर रहा है ?' विराधने कहा—'मैं जव नामक राक्षसका पुत्र हूँ, मेरी माताका नाम शतह्रदा है। भूमण्डलके सब राक्षस मुझे विराधके नामसे पुकारते हैं। मैंने तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीको प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त किया है कि किसी शस्त्रसे मेरा वध न हो, संसारमें कोई भी मेरे शरीरको न छेद सके और न इसके टुकड़े कर सके। अतः अब तुम इस स्त्रीको यहीं छोड़कर इसकी ओरसे निराश होकर जैसे आये हो, उसी प्रकार तुरंत यहाँसे भाग जाओ; मैं तुम्हारे प्राण नहीं लूँगा।'

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वे उस विकट आकारवाले पापी राक्षस विराधसे बोले—'नीच ! तुझे धिक्कार है, तेरा अभिप्राय बड़ा ही खोटा है। निश्चय ही तू अपनी मौत ढूँढ़ रहा है और वह तुझे युद्धमें मिलेगी। ठहर, अब तू मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकता।' यह कहकर भगवान् श्रीरामने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और तुरंत ही तीखे बाणोंका संधान करके उसे बींधना आरम्भ किया। उन्होंने विराधके ऊपर लगातार सात बाण छोड़े, जो अग्निके समान प्रज्वलित थे। वे विराधके शरीरको छेदकर पृथ्वीपर गिर पड़े। घायल हो जानेपर उस राक्षसने विदेहकुमारी सीताको तो छोड़ दिया और स्वयं शूल हाथमें लिये अत्यन्त कुपित होकर श्रीराम तथा लक्ष्मणपर टूट पड़ा। उस समय वह काल, अन्तक और यमराजके समान भयंकर दिखायी दे रहा था। उन दोनों भाइयोंने विराधके ऊपर प्रज्वलित बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। तब वह भयानक राक्षस खड़ा हो गया और हँसकर जँभाई लेने लगा। जँभाई लेते ही उसके शरीरसे वे सारे बाण निकलकर धरतीपर गिर पड़े। वरदानके प्रभावसे उस राक्षसने प्राणोंको रोक लिया और शूल उठाकर श्रीराम एवं लक्ष्मणपर आक्रमण किया। उसका वह शूल वज्रके समान प्रज्वलित हो रहा था। शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने दो बाण मारकर उसे काट डाला; फिर दोनों भाई काले सर्पके समान दो तलवारें लेकर तुरंत उसके पास पहुँच गये और बलपूर्वक उसपर प्रहार करने लगे। परन्तु अत्यन्त घायल हो जानेपर भी उसने अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें पकड़कर बालकोंकी तरह कंधोंपर बिठा लिया और भयङ्कर गर्जना करता वनकी ओर चल दिया।

रघुकुलके श्रेष्ठ वीर श्रीराम और लक्ष्मणको राक्षस लिये जा रहा है—यह देखकर सीता जोर-जोरसे रोने-कलपने लगीं। तब वे दोनों भाई उस दुरात्मा राक्षसका वध करनेमें शीघ्रता करने लगे। सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उसकी बायीं भुजा तोड़ डाली। दूसरी ओर भगवान् श्रीरामने बलपूर्वक उसकी दाहिनी बाँह उखाड़ ली। भुजाओंके खण्डित हो जानेसे वह राक्षस व्याकुल हो गया और मूर्च्छित होकर वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब श्रीराम और लक्ष्मण विराधको दोनों भुजाओंसे, मुक्कोंसे और लातोंसे मारने लगे तथा उसे उठा-उठाकर पटकने और धरतीपर रगड़ने लगे। इतनेपर भी उसकी मृत्यु नहीं हुई। यह देखकर भयके समय अभय देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—'नरश्रेष्ठ ! यह राक्षस तपस्यासे [ वर पाकर ] अवध्य हो गया है, इसे शस्त्रके द्वारा युद्धमें नहीं जीता जा सकता; इसलिये अब हमलोग गड्ढा खोदकर इसे गाड़ दें। तुम इस राक्षसके लिये वनमें एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदो।' लक्ष्मणसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी एक पैरसे विराधका गला दबाकर खड़े हो गये। उनकी बात सुनकर विराधने विनीत भावसे कहा—'पुरुषोत्तम ! मैं आपके द्वारा मारा गया। मोहवश पहले मैं आपको पहचान न सका; किन्तु अब जान गया कि आप ही श्रीरामचन्द्रजी हैं, ये महाभागा विदेहनन्दिनी सीता हैं और ये अत्यन्त यशस्वी लक्ष्मण हैं। मुझे शापके कारण इस भयंकर राक्षस-शरीरमें आना पड़ा था। मैं तुम्बुरु नामका गन्धर्व हूँ। रम्भा अप्सरामें आसक्त होनेके कारण कुबेरने मुझे शाप दे दिया था। उस समय मैंने प्रार्थना करके जब उन्हें प्रसन्न किया तो वे बोले—'जब दशरथकुमार श्रीराम युद्धमें तुम्हारा वध करेंगे, तब तुम अपने पहले स्वरूपको प्राप्त होकर स्वर्गलोकमें जाओगे।' आज आपकी कृपासे मैं उस भयंकर शापसे छुटकारा पा गया। आपका कल्याण हो, अब मैं अपने लोकको जाऊँगा। आप मेरे शरीरको गड्ढेमें गाड़कर कुशलपूर्वक चले जाइये; क्योंकि जो राक्षस गड्ढेमें गाड़े जाते हैं, उन्हें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है।'

ऐसा कहकर बाणोंसे पीड़ित हुआ महाबली विराध देह त्यागकर स्वर्गको चला गया। उसकी बात सुनकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणको गड्ढा खोदनेका आदेश दिया। तब लक्ष्मणने फावड़ा लेकर विशालकाय विराधके पास ही एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदकर तैयार किया। फिर दोनों भाइयोंने प्रसन्न होकर उस राक्षसको उस गड्ढेमें डाल दिया और ऊपरसे पत्थर डालकर उसे पाट दिया। फिर सीताको साथ लेकर वे दोनों उस विशाल वनमें आनन्दपूर्वक विचरने लगे।

## श्रीराम आदिका शरभङ्गके आश्रमपर जाना, शरभङ्गका ब्रह्मलोक-गमन तथा अन्य महर्षियोंका राक्षसोंके वधके लिये श्रीरामसे प्रार्थना करना

तदनन्तर वनमें विचरते हुए भगवान् श्रीराम शरभङ्गके आश्रमकी ओर गये। मुनिवर शरभङ्ग देवताओंके समान प्रभावशाली थे। तपस्यासे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था। उनके आश्रमके समीप जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने एक बड़ी अद्भुत बात देखी। वहाँ पृथ्वीसे कुछ ऊपर आकाशमें देवराज इन्द्रका रथ खड़ा था और वे उसमें विराजमान थे। अपने तेजस्वी शरीरसे सूर्य और अग्निके समान उनकी शोभा हो रही थी। उनके पीछे बहुत-से देवता खड़े थे। इन्द्रके रथमें हरे रंगके घोड़े जुते थे और उसकी सफेद बादलोंके समान श्वेत कान्ति थी। रामने निकटसे देखा कि देवराजके ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ है और दो देवाङ्गनाएँ सोनेकी डाँडियोंसे सुशोभित सुन्दर चँवर लेकर उनके मस्तकपर डुला रही हैं तथा गन्धर्व, देवता, सिद्ध और अनेकों महर्षि अन्तरिक्षमें स्थित देवराज इन्द्रकी उत्तम वचनोंद्वारा स्तुति कर रहे हैं। उस समय इन्द्र शरभङ्गके साथ वार्तालाप कर रहे थे। श्रीरामने अपने भाई लक्ष्मणको इन्द्रका अद्भुत रथ दिखाया और उसका वर्णन करते हुए कहा—'लक्ष्मण! आकाशमें वह अद्भुत रथ तो देखो। वह सूर्यके समान तप रहा है। देखो, उसमें कितनी चमक है, वह कैसी शोभा पा रहा है! इस रथके दोनों ओर सौ-सौ युवक खड़े हैं। इनके हाथोंमें खड्ग और कानोंमें कुण्डल शोभा पा रहे हैं। ये सभी देवता पचीस वर्षकी अवस्थाके जान पड़ते हैं। कहते हैं, देवताओंकी सदा ऐसी ही अवस्था रहती है, जैसी कि इस समय इनकी प्यारी-प्यारी झाँकी दिखायी देती है।'

श्रीरामको आते देख इन्द्रने देवताओंसे कहा—'रामचन्द्रजी यहाँ आ रहे हैं। अब तुमलोग मुझे यहाँसे दूसरे स्थानपर ले चलो। इस समय श्रीरामसे मेरी मुलाकात नहीं होनी चाहिये। इन्हें बहुत-से ऐसे कार्य करने हैं, जिनका दूसरोंसे होना बहुत कठिन है। जब ये रावणको जीतकर देवताओंका कार्य पूरा कर लेंगे, उसी समय मैं इनसे मिलूँगा।' यह कहकर इन्द्रने तपस्वी शरभङ्गका सत्कार किया और उनकी अनुमति लेकर वे घोड़े जुते हुए रथसे स्वर्गलोकको चल दिये। देवराजके चले जानेपर श्रीरामचन्द्रजी अपनी पत्नी और भाईके साथ शरभङ्ग मुनिके पास आये, जो अग्निके समीप बैठकर अग्निहोत्र कर रहे थे। राम, सीता और लक्ष्मणने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे वहाँ बैठ गये। शरभङ्गने उन्हें आतिथ्यके लिये निमन्त्रण दे ठहरनेके लिये स्थान दिया। तदनन्तर श्रीरामने इन्द्रके आनेका कारण पूछा, तब शरभङ्गने उनसे सब बातें निवेदन करते हुए कहा—'राम! ये वर देनेवाले इन्द्र मुझे ब्रह्मलोक ले जाना चाहते हैं। मैंने अपनी उग्र तपस्यासे उस लोकपर विजय पायी है। जिनकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, उन पुरुषोंके लिये वह अत्यन्त दुर्लभ है। किन्तु जब मुझे मालूम हुआ कि आप इस आश्रमके निकट आ गये हैं, तो मैंने निश्चय किया कि आप-जैसे प्रिय अतिथिका दर्शन किये बिना मैं ब्रह्मलोकको नहीं जाऊँगा, आपसे मिलकर ही उस उत्तम लोककी यात्रा करूँगा। मैंने ब्रह्मलोक आदि अनेकों अक्षय लोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है; वे सब आपको अर्पण करता हूँ, स्वीकार कीजिये।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरभङ्ग मुनिके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'महामुने ! मैं ही आपको उन सब लोकोंकी प्राप्ति कराऊँगा। इस समय तो मैं इस वनमें आपके बताये हुए स्थानपर निवासमात्र करना चाहता हूँ।' श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर अत्यन्त बुद्धिमान् शरभङ्ग मुनि फिर बोले—'तात ! थोड़ी देर यहीं ठहरिये और जबतक मैं अपना शरीर न त्याग दूँ, तबतक मेरी ही ओर देखते रहिये।' यों कहकर मुनिने विधिवत् अग्निकी स्थापना करके उसे प्रज्वलित किया और मन्त्रपाठपूर्वक घीकी आहुति देकर वे स्वयं भी उस अग्निमें प्रविष्ट हो गये। अग्निने महात्मा शरभङ्गके रोम, केश, चमड़ी, हड्डी, मांस और रक्त—सबको जलाकर भस्म कर डाला और वे उससे निकलकर अग्निके समान तेजस्वी कुमारके रूपमें प्रकट हुए। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। फिर वे अग्निहोत्रियों, महात्मा ऋषियों और देवताओंके लोकोंको लाँघते हुए ब्रह्मलोकमें चले गये। उन पुण्यकर्मा ब्रह्मर्षिने वहाँ जाकर पार्षदोंसहित ब्रह्माजीका दर्शन किया और ब्रह्माजीने भी उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए उनका पूर्णरूपसे स्वागत किया।

शरभङ्ग मुनिके ब्रह्मलोक चले जानेपर अत्यन्त तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीके पास बहुत-से महर्षि पधारे। उनमें वैखानस[1], बालखिल्य[2], सम्प्रक्षाल[3], मरीचिप[4], अश्मकुट्ट[5], पत्राहार[6], दन्तोलूखली[7], उन्मज्जक[8], गात्रशय्य[9], अशय्य[10], अनवकाशिक[11], सलिलाहार[12], वायुभक्षी[13], आकाशनिलय[14], स्थण्डिलशायी[15], ऊर्ध्ववासी[16], दान्त[17], आर्द्रपटवासा[18], सजप[19], तपोनिष्ठ[20] और पञ्चाग्निसेवी[21]—सभी श्रेणीके महात्मा थे। वे सभी ब्रह्मतेजसे सम्पन्न थे और सुदृढ़ योगके अभ्याससे सबका चित्त एकाग्र हो चुका था। वे सब तपस्वी शरभङ्ग मुनिके आश्रमपर भगवान् श्रीरामके समीप आये और धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ परम धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'रघुनन्दन ! आप इक्ष्वाकुवंशके साथ-ही-साथ समस्त भूमण्डलके भी स्वामी हैं, संसारके प्रधान महारथी वीर हैं। जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप मनुष्यलोकके रक्षक हैं। आप अपने यश और पराक्रमके द्वारा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। आपमें पिताकी आज्ञाके पालनका व्रत, सत्यभाषण तथा धर्म—ये सभी पूर्णरूपसे विद्यमान हैं। नाथ ! आप महात्मा, धर्मके ज्ञाता तथा धर्मपर अनुराग रखनेवाले हैं। हम आपके पास आकर अर्थी होकर कुछ निवेदन करना चाहते हैं। जो राजा प्रजाकी रक्षाके लिये यत्नशील होकर अपने देशके निवासियोंको प्राणोंके समान अथवा प्राणोंसे भी अधिक प्रिय पुत्रोंके समान समझकर सदा उनकी रक्षा करता रहता है, उसे संसारमें दीर्घ कालतक अक्षय कीर्ति प्राप्त होती है और वह अन्तमें

१. ऋषियोंका एक समुदाय, जो ब्रह्माजीके नखसे उत्पन्न हुआ है। २. ब्रह्माजीके बाल ( रोम ) से प्रकट हुए महर्षियोंका समूह। ३. जो भोजनके पश्चात् अपने बर्तन धो-पोंछकर रख देते हैं, दूसरे वक्तके लिये कुछ नहीं बचाते। ४. सूर्य अथवा चन्द्रमाकी किरणोंका पान करके रहनेवाले। ५. कच्चे अन्नको पत्थरसे कूटकर खानेवाले। ६. पत्तोंका आहार करनेवाले। ७. दाँतोंसे ही ऊखलका काम करनेवाले। ८. कण्ठतक पानीमें डूबकर तपस्या करनेवाले। ९. शरीरसे ही शय्याका काम लेनेवाले अर्थात् बिना बिछौनेके ही भुजाओंपर सिर रखकर सोनेवाले। १०. शय्याके साधनोंसे रहित। ११. निरन्तर सत्कर्ममें लगे रहनेके कारण कभी अवकाश न पानेवाले। १२. जल पीकर रहनेवाले। १३. हवा पीकर जीवन-निर्वाह करनेवाले। १४. खुले मैदानमें रहनेवाले। १५. वेदीपर सोनेवाले। १६. पर्वत-शिखर आदि ऊँचे स्थानोंमें निवास करनेवाले। १७. मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले। १८. सदा भीगे कपड़े पहननेवाले। १९. निरन्तर जप करनेवाले। २०. तपस्या अथवा परमात्म-तत्त्वके विचारमें स्थित रहनेवाले। २१. गर्मीके मौसिममें ऊपरसे सूर्यका और चारों ओरसे अग्निका ताप सहन करनेवाले।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

## श्रीरामके द्वारा राक्षस-वधकी प्रतिज्ञा

भवतामर्थसिद्ध्यर्थमागतोऽहं यदृच्छया । तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः ॥
तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान् । पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः ॥
(अरण्य० ६ । २४-२५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलोकमें जाकर वहाँ भी बड़ा सम्मान प्राप्त करता है। मुनि फल-मूलका भोजन करते हुए जिस उत्तम धर्मका अनुष्ठान करता है, उसका चौथा भाग धर्मके अनुसार प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाको प्राप्त होता है। राम! इस वनमें रहनेवाला वानप्रस्थी महात्माओंका यह महान् समुदाय, जिसमें ब्राह्मणोंकी ही संख्या अधिक है तथा जिसके रक्षक आप ही हैं, राक्षसोंके द्वारा अनाथकी तरह मारा जा रहा है—इसका बहुत अधिक मात्रामें संहार हो रहा है। देखिये, ये भयंकर राक्षसोंके मारे हुए अनेकों पवित्रात्मा मुनियोंके कंकाल दिखायी दे रहे हैं। इस वनमें अनेकों स्थानोंपर उनकी लाशें पड़ी हैं। पम्पा सरोवर और उसके निकट बहनेवाली तुङ्गभद्रा नदीके तटपर जिनका निवास है, जो मन्दाकिनीके किनारे रहते हैं तथा जिन्होंने चित्रकूट पर्वतपर अपना निवासस्थान बना लिया है, उन सभी ऋषि-महर्षियोंको राक्षसलोग बुरी तरहसे मार रहे हैं। इन भीमकर्मा राक्षसोंने जो इस वनमें तपस्वियोंका ऐसा भयङ्कर विध्वंस मचा रखा है, वह हमलोगोंसे सहा नहीं जाता; इसलिये इनसे त्राण पानेके लिये हम आपके पास उपस्थित हुए हैं। आप शरणागतवत्सल हैं; अतः हमारी रक्षा कीजिये। वीरवर! इस भूमण्डलमें हमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई सहारा देनेवाला नहीं दिखायी देता।'

तपस्वी ऋषियोंकी ये बातें सुनकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—'मुनिवरो! आपलोग मुझसे इस प्रकार प्रार्थना न करें। मैं तो आपका आज्ञापालक हूँ। राक्षसोंके द्वारा जो आपको कष्ट पहुँच रहा है, उसे दूर करनेके लिये ही मैं पिताके आदेशका पालन करके इस वनमें आया हूँ। यद्यपि मुझे केवल अपने कर्तव्यपालनकी दृष्टिसे ही वनमें प्रवेश करना है [ तथापि इससे आपलोगोंका कष्ट भी निवृत्त हो जायगा ] मैं तो स्वयं ही तपस्वियोंसे शत्रुता रखनेवाले राक्षसोंका युद्धमें संहार करना चाहता हूँ।' इस प्रकार उन तपोधनोंको वर देकर धर्ममें मन लगानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और तपस्वियोंके साथ सुतीक्ष्णके आश्रमको गये।

## सुतीक्ष्णद्वारा श्रीराम आदिका सत्कार तथा राक्षसोंको मारनेके विषयमें सीता और श्रीरामचन्द्रजीका संवाद

शत्रुओंको ताप पहुँचानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण, सीता तथा उन ब्राह्मणोंके साथ सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमकी ओर चले। मार्गमें अगाध जलसे भरी हुई अनेकों नदियोंको पार करके बहुत दूर जानेपर उन्हें एक अत्यन्त ऊँचा सुन्दर पर्वत दिखायी दिया। वहाँसे आगे बढ़कर दोनों भाई अनेकों प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए एक वनमें पहुँचे। वहीं एकान्तमें एक आश्रम था, जहाँ वस्त्रोंके टुकड़े फैलाये हुए थे। वहाँ तपस्वी सुतीक्ष्ण मुनि कमलोंके आसनपर विराजमान थे। श्रीरामचन्द्रजी वहाँ पहुँचकर उनसे विधिपूर्वक बोले—'भगवन्! मैं राम हूँ, आपका दर्शन करनेके लिये आया हूँ।' धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीरामका दर्शन करके धीर महर्षि सुतीक्ष्णने अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें आलिङ्गन किया और इस प्रकार कहा—'सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ राम! आपका स्वागत है। इस समय आपके पदार्पण करनेसे यह आश्रम सनाथ हो गया। यशस्वी वीर! मैं दीर्घकालसे आपके आनेकी बाट जोहता था। और आपकी ही प्रतीक्षाके कारण इस भूतलपर अपना शरीर त्यागकर अभीतक ब्रह्मलोकमें नहीं गया। मैंने तपस्यासे जिन लोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है और जहाँ देवर्षिगण विचरते रहते हैं, उन्हीं लोकोंमें आप सीता और लक्ष्मणके साथ विहार करें। मैं बड़ी प्रसन्नतासे वे लोक आपको समर्पित करता हूँ।'

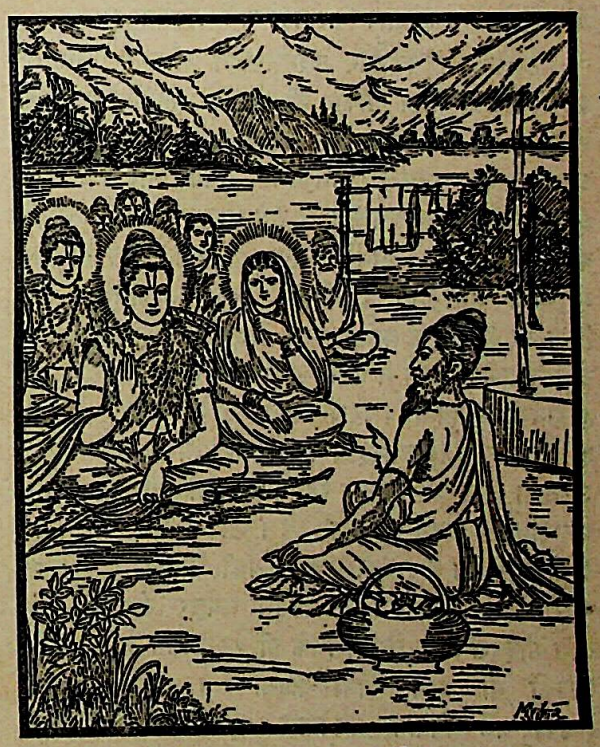

तब श्रीरामचन्द्रजीने उन सत्यवादी महर्षिको इस प्रकार उत्तर दिया—'महामुने! वे लोक तो मैं स्वयं आपको प्राप्त कराऊँगा। इस समय तो मुझे इस वनमें निवास करनेकी इच्छा है;

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताइये, मैं कहाँ रहूँ ?' तब महर्षिने अत्यन्त प्रसन्न होकर मधुर वाणीमें कहा—'रघुनन्दन ! यही आश्रम सब प्रकारसे अच्छा है, आप यहीं सुखपूर्वक निवास कीजिये । यहाँ ऋषियोंका समुदाय बराबर आता-जाता रहता है और सर्वदा फल-मूल प्राप्त होते रहते हैं ।'

तब सुतीक्ष्णके द्वारा भलीभाँति पूजित होकर श्रीराम और लक्ष्मणने उनके आश्रममें ही रात व्यतीत की । फिर प्रातः-काल सीता और श्रीरामचन्द्रजीने उठकर ठीक समयपर स्नान किया तथा तीनोंने ही मिलकर विधिपूर्वक अग्नि और देवताओं-की प्रभातकालीन पूजा की । तत्पश्चात् वे सुतीक्ष्णके पास जाकर मधुर वचनोंमें बोले—'भगवन् ! आपने पूजनीय होनेपर भी हमलोगोंकी पूजा की है । हम आपके आश्रममें बड़े सुखसे रहे हैं, अब यहाँसे जायँगे; इसके लिये आपकी आज्ञा चाहते हैं ।' यह कहकर फिर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीताके सहित मुनिके चरणोंमें मस्तक झुकाया । राम-लक्ष्मणको चरणस्पर्श करते देख मुनिवर सुतीक्ष्णने उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया और बड़े स्नेहसे कहा—'राम ! सीता तो छायाकी भाँति आपका अनुसरण करनेवाली हैं, आप इन्हें और लक्ष्मणको साथ लेकर जाइये । आपका मार्ग विघ्न-बाधाओंसे रहित—परम मङ्गलमय हो । दण्डकारण्यके आश्रमोंको देखकर आप फिर यहीं चले आइयेगा ।'

उनके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणसहित श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और फिर महर्षिकी प्रदक्षिणा करके तरकस और धनुष लेकर वहाँसे जानेके लिये दोनों भाई आश्रमसे बाहर निकले । उस समय वनकी ओर चलते हुए अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीसे सीताने स्नेहभरी मनोहर वाणीमें कहा—'आर्यपुत्र ! कामसे उत्पन्न होनेवाले तीन ही दोष मनुष्यको प्राप्त होते हैं—मिथ्याभाषण, परस्त्री-संसर्ग और बिना वैर क्रूरतापूर्ण बर्ताव करना । इनमेंसे मिथ्याभाषणरूप दोष तो आपके द्वारा न पहले कभी घटित हुआ है और न आगे ही होनेकी सम्भावना है । परस्त्री-विषयक अभिलाषा तो आपको हो ही कैसे सकती है ? इस तरहका भाव तो कभी आपके मनमें भी नहीं उठता । आप धर्ममें स्थित रहनेवाले, सत्यप्रतिज्ञ और पिता-की आज्ञाका पालन करनेवाले हैं । आपमें धर्म और सत्य दोनोंकी स्थिति है । आपमें ही सबकी प्रतिष्ठा है । किन्तु दूसरोंके प्राण लेनारूप जो तीसरा भयङ्कर दोष है, उसे लोग मोहवश बिना वैर-विरोधके ही कर डालते हैं; वही दोष आपको भी प्राप्त होना चाहता है । वीरवर ! आपने दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले ऋषियोंकी रक्षाके लिये युद्धमें राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की है । आपके प्रति जो मेरे मनमें स्नेह है, आदर है, उसके कारण मैं केवल आपको यह याद दिलाना चाहती हूँ—शिक्षा नहीं देती—कि बिना अपराध आपको इनके वधका विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि बिना अपराध किसीको मारना संसारके लोग अच्छा नहीं समझते । अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले क्षत्रिय वीरोंके लिये वनमें धनुष धारण करनेका इतना ही प्रयोजन है कि वे सङ्कटमें पड़े हुए प्राणियोंकी रक्षा करें । कहाँ शस्त्रधारण और कहाँ वनवास, कहाँ क्षत्रियका हिंसामय कठोर कर्म और कहाँ सब प्राणियोंपर दया करनारूप तप ! ये तो परस्पर विरुद्ध जान पड़ते हैं । अतः हम-लोगोंको देश-धर्मका ही आदर करना चाहिये [ इस समय हम तपोवनरूप देशमें निवास करते हैं, अतः यहाँके अहिंसा-मय धर्मका पालन करना ही हमारा कर्तव्य है ] । केवल शस्त्र-का सेवन करनेसे मनुष्यकी बुद्धि कृपण पुरुषोंके समान कलुषित हो जाती है, अतः आप अयोध्यामें चलनेपर ही क्षात्र-धर्मका अनुष्ठान करें । राज्य त्यागकर वनमें आ जानेपर यदि आप सदा मुनि-धर्मका ही पालन करें, तो इससे मेरे श्वशुर और सासको अक्षय प्रसन्नता होगी । प्रतिदिन शुद्ध-चित्त होकर तपोवनमें धर्मका अनुष्ठान कीजिये । आपको तो सभी कुछ मालूम है । मैंने नारी-जातिकी स्वाभाविक चपलता-के कारण ही ये बातें आपकी सेवामें निवेदन कर दी हैं ! वास्तवमें किसमें इतनी सामर्थ्य है, जो आपको धर्मका उपदेश दे सके । आप अपने भाईके साथ इस विषयपर बुद्धिपूर्वक विचार कर लें । उसके बाद आपको जो अच्छा लगे, वही करें ।

पतिव्रता सीताके इन वचनोंको सुनकर सर्वदा धर्ममें स्थित रहनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने उत्तर दिया —'देवि ! तुम्हारा मेरे ऊपर स्नेह है, इसलिये तुमने मेरे हितकी ही बात कही हैं । ये बातें सर्वथा तुम्हारे योग्य हैं; क्योंकि तुम धर्मको जाननेवाली और राजा जनककी पुत्री हो । मैं तुम्हें क्या उत्तर दूँ ; तुम्हीं पहले कह चुकी हो कि क्षत्रियलोग इसलिये धनुष धारण करते हैं कि किसीको दुखी होकर हाहाकार न करना पड़े [ यदि कोई दुखी हो, संकटमें पड़ा हो, तो उसकी रक्षा की जाय ] । सीते ! दण्डकारण्यमें रहकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले मुनिजन बहुत दुखी हैं । ये क्रूरकर्म करनेवाले राक्षसोंके कारण कहीं सुखसे नहीं रहने पाते । भयानक राक्षस इन्हें मारकर खा जाते हैं । उनके ग्रास बननेवाले मुनियोंने हम-लोगोंके पास आकर अपनी कष्ट-कथा सुनायी और मैंने उनके वचन सुनकर कहा—'आपलोग प्रसन्न हों ।' किन्तु मुझे यह सोचकर बड़ी लज्जा हुई कि जिनके पास हमें स्वयं चलना चाहिये था, वे ही ब्राह्मण मेरे समीप उपस्थित हुए । मैंने उनसे पूछा—'ब्राह्मणो ! मैं क्या करूँ ?' तब उन सबने मिल-कर एक स्वरसे यही बात कही कि 'दण्डकारण्यमें इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बहुत-से राक्षस रहते हैं, हमें उनसे बड़ा कष्ट पहुँच रहा है; आप उनके भयसे हमारी रक्षा कीजिये ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

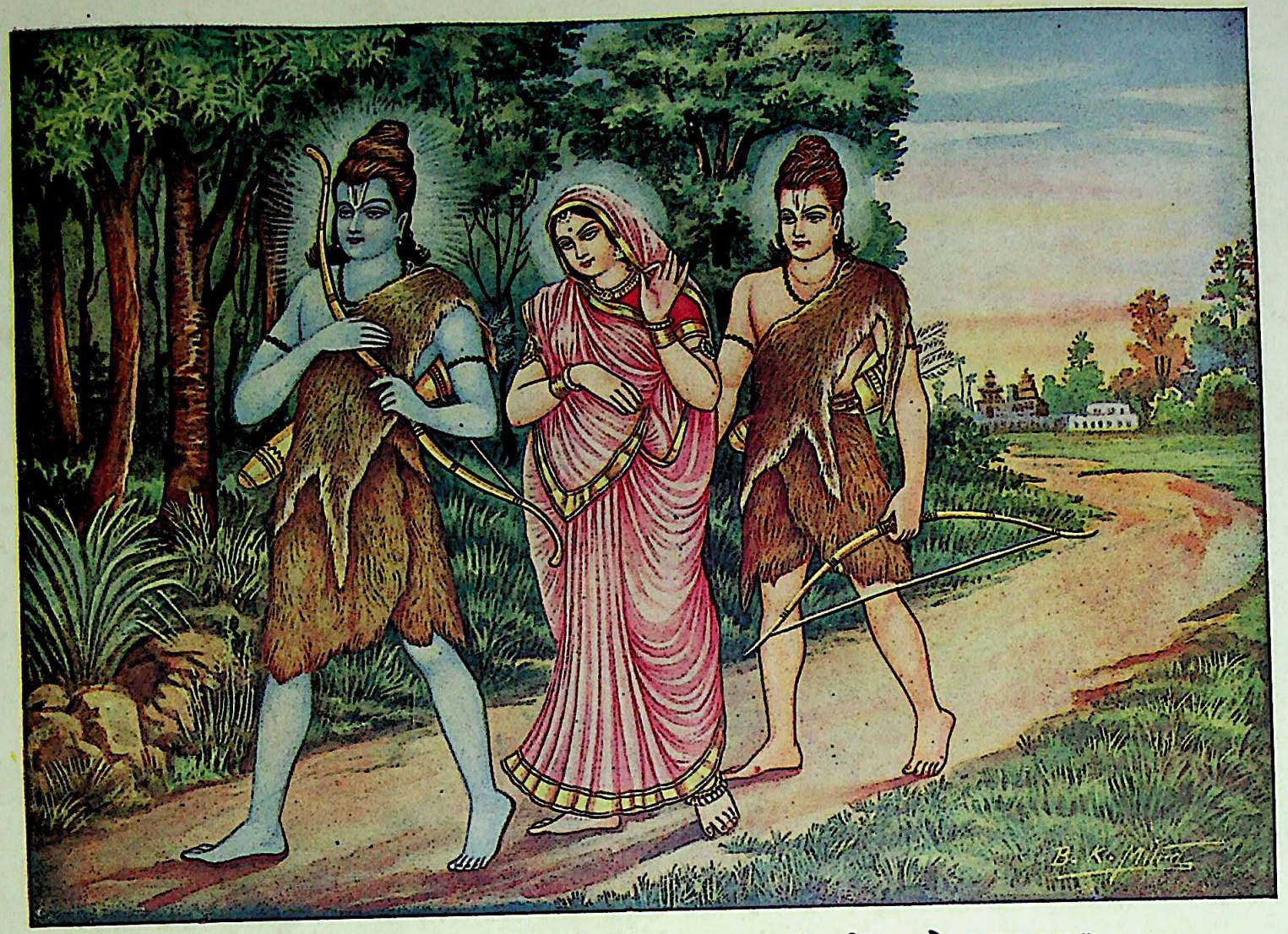

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना । पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिलक्ष्मणोऽनुजगाम ह ॥
(अरण्य० ११।१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


निशाचरोंसे पीड़ित तपस्वी अपने लिये सहारा ढूँढ़ रहे हैं। आप ही हमारे सबसे बड़े आश्रय हैं। यद्यपि हम अपनी तपस्याके प्रभावसे उन राक्षसोंका वध करनेमें पूर्ण समर्थ हैं, तथापि दीर्घकालसे उपार्जित तपस्याको खण्डित करना नहीं चाहते। अतः इस वनमें अब आप ही हमारे रक्षक हैं।' मुनियोंकी यह बात सुनकर मैंने पूर्णरूपसे उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की है। जनककुमारी! प्रतिज्ञा करके अब मैं जीते-जी उसे मिथ्या नहीं कर सकता; क्योंकि सत्यका पालन मुझे सदा ही अभीष्ट है। सीते! मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, तुम्हारा और लक्ष्मणका भी परित्याग कर सकता हूँ; किन्तु अपनी प्रतिज्ञाको, विशेषतः ब्राह्मणोंके लिये की हुई प्रतिज्ञाको, मैं कदापि नहीं तोड़ सकता। इसलिये ऋषियोंकी रक्षा करना मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक है। ऋषियोंके बिना कहे भी मुझे उनकी रक्षा करनी चाहिये थी; फिर जब उन्होंने स्वयं कहा और मैंने प्रतिज्ञा भी कर ली, तो अब उनकी रक्षासे कैसे मुँह मोड़ सकता हूँ? तुमने स्नेह और अनुरागवश जो मुझसे ये बातें कही हैं, इससे मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। कल्याणी! तुम्हारा कथन तुम्हारे कुलके सर्वथा अनुरूप है। तुम मेरी सहधर्मिणी हो और मुझे अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो।' महात्मा श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्रिया मिथिलेशकुमारी सीतासे ऐसा कहकर हाथमें धनुष ले रमणीय तपोवनोंमें आगे बढ़ने लगे।

## श्रीरामचन्द्रजीका अगस्त्यके भाई और अगस्त्यमुनिके आश्रमपर जाना और वहाँ सत्कार ग्रहण करके पञ्चवटीको प्रस्थान करना

आगे-आगे श्रीरामचन्द्रजी, बीचमें सुन्दरी सीता और सबसे पीछे लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये चल रहे थे। सीताके सहित दोनों भाई भाँति-भाँतिके पर्वतीय शिखरों, वनों तथा अनेकों रमणीय नदियोंको देखते हुए जा रहे थे। दूरतकका रास्ता तय करनेके बाद जब सूर्य अस्ताचलको जाने लगे तो उन्होंने एक बड़ा ही सुन्दर तालाब देखा, जो एक-एक योजन लंबा और चौड़ा था। तत्पश्चात् उन्हें एक आश्रम-मण्डल दिखायी दिया, जहाँ सब ओर कुश और वल्कल-वस्त्र फैले हुए थे। वह आश्रम ब्राह्मी सम्पत्तिसे सुशोभित था। श्रीरामचन्द्रजीने सीता और लक्ष्मणके साथ उस शोभायमान आश्रममण्डलमें प्रवेश किया। वहाँ महर्षियोंने उनका भली-भाँति स्वागत-सत्कार किया। वहाँ सुखपूर्वक निवास करनेके बाद वे बारी-बारीसे सभी तपस्वियोंके आश्रमोंपर गये। महान् अस्त्रवेत्ता श्रीरामचन्द्रजी जिनके यहाँ पहले रह चुके थे, उनके पास भी [ उनकी भक्ति देख ] दुबारा जाकर रहे। कहीं दस महीने, कहीं सालभर, कहीं चार, पाँच या छः महीने, कहीं इससे अधिक समयतक, कहीं डेढ़, कहीं तीन और कहीं आठ-आठ महीनेतक वे सुखपूर्वक टिके रहे। इस प्रकार मुनियोंके आश्रमोंपर निवास करते और अपनी रुचिके अनुकूल घूमते-फिरते उन्हें दस वर्ष व्यतीत हो गये। धर्मके ज्ञाता भगवान् श्रीराम सीताके साथ सब ओर घूम-फिरकर फिर सुतीक्ष्णके आश्रमपर लौट आये। वहाँ आनेपर आश्रमवासी ऋषियोंने उनका यथावत् सत्कार किया। कुछ कालतक वहाँ निवास करके एक दिन उन्होंने महामुनि सुतीक्ष्णके पास जाकर विनीत भावसे कहा—'भगवन्! मैंने सुना है—इस वनमें मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी रहते हैं। उन बुद्धिमान् महर्षिका सुन्दर आश्रम कहाँ है? मैं लक्ष्मण और सीताके साथ उन्हें प्रणाम करनेके लिये जाना चाहता हूँ।'

धर्मात्मा श्रीरामके ये वचन सुनकर सुतीक्ष्ण मुनि बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'रघुनन्दन! मैं भी आपसे और लक्ष्मणसे यही कहना चाहता था कि आप सीताके साथ महर्षि अगस्त्यके पास भी जायँ। सौभाग्यकी बात है कि इस समय आप स्वयं ही मुझसे वहाँ जानेके विषयमें पूछ रहे हैं। महामुनि अगस्त्यजी जहाँ रहते हैं, उस आश्रमका पता मैं आपको बताये देता हूँ। इस आश्रमसे चार योजन दक्षिण चले जाइये, वहाँ आपको अगस्त्यके भाईका बहुत बड़ा एवं सुन्दर आश्रम मिलेगा। वहाँके वनकी भूमि प्रायः समतल है तथा पिप्पलीका वन उस आश्रमकी शोभा बढ़ाता है। आप एक रात उस आश्रममें ठहरकर सबेरे उस वनके किनारे-किनारे दक्षिणकी ओर जायँ। इस प्रकार एक योजन आगे जानेपर आपको अनेकों वृक्षोंसे सुशोभित वनके रमणीय भागमें महर्षि अगस्त्यका आश्रम मिलेगा। वह बड़ा सुन्दर स्थान है।' मुनिकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने भाई लक्ष्मणके साथ उन्हें प्रणाम किया और फिर अगस्त्यजीके आश्रमकी ओर चल दिये। मार्गमें वे विचित्र-विचित्र वनों, मेघमालाके समान पर्वत-श्रेणियों, सरोवरों और नदियोंको देखते जा रहे थे। इस प्रकार सुतीक्ष्णके बताये हुए मार्गसे चलते-चलते श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त हर्षित होकर लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! निश्चय ही यह पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


महात्मा अगस्त्य मुनिके भाईका आश्रम दिखायी दे रहा है; क्योंकि सुतीक्ष्णने जैसा बतलाया था, उसके अनुसार यहाँ वनके मार्गमें फूल और फलोंके भारसे लदे हुए हजारों परिचित वृक्ष दीख पड़ते हैं। यह देखो, जंगलके बीचमें आश्रमकी अग्निका धुआँ उठ रहा है। सौम्य! सुतीक्ष्णके कथनानुसार अवश्य ही यह अगस्त्यके भ्राताका आश्रम होना चाहिये।'

श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, इतनेमें ही सूर्यदेव अस्त हो गये। सन्ध्याका समय हो गया। तब भाईके साथ विधिपूर्वक सायंसन्ध्या करके श्रीरामने आश्रममें प्रवेश किया और वहाँ ऋषिके चरणोंमें मस्तक झुकाया। मुनिने उनका यथावत् सत्कार किया और वे फल-मूल भोजन करके एक रात उस आश्रममें रहे। रात बीतनेपर जब सूर्योदय हुआ तो श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्यके भाईसे कहा—'भगवन्! यहाँ रातभर मैं बड़े सुखसे रहा। अब आपके बड़े भाई अगस्त्यजीका दर्शन करने जाऊँगा। इसके लिये आपसे आज्ञा चाहता हूँ।' इस प्रकार महर्षिसे आज्ञा लेकर भगवान् श्रीराम सुतीक्ष्णके बताये हुए मार्गसे वनकी शोभा निहारते आगे चले। कुछ दूर जानेपर वे वीरवर लक्ष्मणसे बोले—'यहाँके मृग और पक्षी बहुत शान्त हैं; इससे जान पड़ता है शुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षि अगस्त्यका आश्रम यहाँसे अधिक दूर नहीं है। अपने कर्मके कारण ही वे संसारमें अगस्त्यके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं*। यह उन्हींका आश्रम दिखायी देता है, जो थके-माँदे पथिकोंकी थकावटको दूर करनेवाला है। उन पुण्यात्मा महर्षिने जबसे इस दक्षिण दिशामें पदार्पण किया है, तबसे यहाँके राक्षस शान्त हो गये हैं। उन्होंने दूसरोंसे वैर-विरोध करना छोड़ दिया है। महर्षिके प्रभावसे वे दक्षिण दिशाकी ओर भयभीत होकर देखते हैं। यह दिशा महर्षि अगस्त्यके नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। यहाँ क्रूरकर्मा राक्षसोंका जोर नहीं चलता। एक बार विन्ध्यपर्वत सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये बढ़ा था; किन्तु महर्षि अगस्त्यके कहनेसे वह नम्र हो गया। तबसे आजतक उनके आदेशका पालन करता हुआ वह कभी नहीं बढ़ता। महात्मा अगस्त्यजी सम्पूर्ण लोकोंके द्वारा पूजित और सदा सज्जनोंके हितमें लगे रहनेवाले हैं। यहाँ रहकर मैं उन महामुनिकी आराधना करूँगा और वनवासके बाकी दिन यहीं बिताऊँगा। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण नियमित आहार करते हुए सदा अगस्त्यकी उपासना करते हैं। वे ऐसे प्रभावशाली महात्मा हैं कि उनके आश्रममें कोई झूठ बोलनेवाला, क्रूर, शठ, नृशंस अथवा पापाचारी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। उनके पास धर्मकी आराधना करनेके लिये देवता, यक्ष, नाग और पक्षी नियमित आहार करते हुए निवास करते हैं। इस आश्रमपर शरीर त्याग कर अनेकों सिद्ध महात्मा नूतन देह धारण करके सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। अब हम लोग आश्रमपर आ पहुँचे। तुम आगे जाकर महर्षिको सीतासहित मेरे आगमनकी सूचना दो।'

लक्ष्मणने आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यसे भेंट की और उससे कहा—'मुने! राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र महाबली श्रीरामचन्द्रजी अपनी पत्नी सीताके साथ महर्षिका दर्शन करने आये हैं। मैं उनका छोटा भाई, हितैषी और अनुगत भक्त हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है। सम्भव है, यह नाम कभी आपके कानोंमें पड़ा हो। हमलोग पिताकी आज्ञासे इस भयङ्कर वनमें आये हैं और भगवान् अगस्त्यजीका दर्शन करना चाहते हैं। आप उनसे यह समाचार निवेदन कीजिये।' लक्ष्मणकी बात सुनकर उस तपस्वीने 'बहुत अच्छा' कहकर महर्षिको समाचार देनेके लिये अग्निशालामें प्रवेश किया और लक्ष्मणकी कही हुई बातें अगस्त्यजीसे कह सुनायीं। भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और महाभागा विदेहनन्दिनी सीताके आगमनका समाचार पाकर महर्षिने शिष्यसे कहा—'मैं तो बहुत दिनोंसे उनका दर्शन करना चाहता था। सौभाग्यकी बात है कि आज श्रीरामचन्द्रजी स्वयं ही मुझसे मिलने आ गये। मेरे मनमें बड़ी इच्छा थी कि वे एक बार मेरे आश्रमपर पधारते। तुम उन्हें यहाँ ले क्यों नहीं आये? जाओ, लक्ष्मण और सीताके साथ श्रीरामको सत्कारपूर्वक मेरे पास ले आओ।'

धर्मके जाननेवाले महात्मा अगस्त्य मुनिके इस प्रकार कहनेपर शिष्य वहाँसे आया और उन तीनोंका यथावत् सत्कार करके उसने आश्रममें पधारनेके लिये कहा। तब श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणके साथ आश्रममें गये। वहाँ उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, भग, कुबेर, धाता, विधाता, वायु, वरुण, गायत्री, वसु, नागराज अनन्त, गरुड़, कार्तिकेय तथा धर्मराजके पृथक्-पृथक् स्थानोंका निरीक्षण किया। इसी समय मुनिवर अगस्त्य भी शिष्योंसे घिरे हुए अग्निशालासे बाहर निकले। उन्हें सामनेसे आते देखकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'भगवान् अगस्त्य बाहर आ रहे हैं।' यों कहकर वे सीता और लक्ष्मणके साथ महर्षिके

* अगं पर्वतं स्तम्भयति इति अगस्त्यः—जो अग अर्थात् पर्वतको स्तम्भित कर दे, उसे अगस्त्य कहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये। महर्षिने भगवान् श्रीरामको हृदयसे लगाया और आसन तथा जल ( पाद्य, अर्घ्य आदि ) देकर उनका यथावत् सत्कार किया। फिर कुशल-समाचार पूछकर उन्हें बैठनेको कहा। तत्पश्चात् वानप्रस्थ धर्मके अनुसार तीनोंको [ फल-मूल आदिका ] भोजन दिया। धर्मके ज्ञाता मुनिवर अगस्त्यजी पहले स्वयं बैठे, उनके बाद धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर विराजमान हुए। तब महर्षिने उनसे कहा—'रघुनन्दन! जो तपस्वी अतिथिका विधिवत् सत्कार नहीं करता, उसे झूठी गवाही देनेवालेकी भाँति परलोकमें अपने ही शरीरका मांस खाना पड़ता है। आप सम्पूर्ण लोकके राजा और धर्मका आचरण करनेवाले हैं तथा मेरे प्रिय अतिथिके रूपमें इस आश्रमपर पधारे हैं; अतएव आप हमलोगोंके पूजनीय एवं माननीय हैं।' यों कहकर महर्षि अगस्त्यने फल-मूल और फूलोंसे इच्छानुसार भगवान् श्रीरामका पूजन किया। तत्पश्चात् वे इस प्रकार बोले—'नरश्रेष्ठ! यह महान् दिव्य धनुष

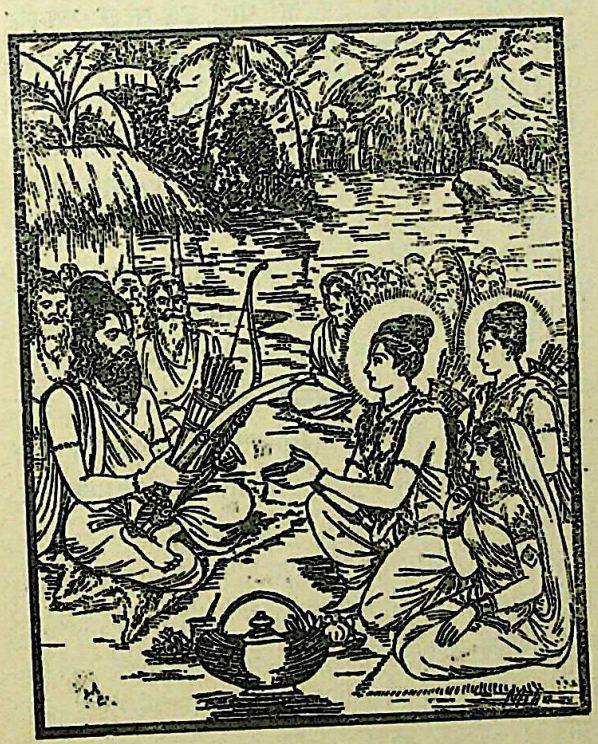

विश्वकर्माजीने बनाया है। इसमें सुवर्ण और हीरे जड़े हैं। यह भगवान् विष्णुका दिया हुआ है और यह अमोघ बाण, जो सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा है, ब्रह्माजीका दिया हुआ है। इनके सिवा इन्द्रने ये दो तरकस दिये हैं, जिनमें सदा बाण भरे रहते हैं, कभी खाली नहीं होते। इसके सिवा यह तलवार भी है, जिसकी मूठमें सोना जड़ा है। इसकी म्यान भी सोनेकी ही बनी हुई है। राम! पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने इसी धनुषसे युद्धमें बड़े-बड़े असुरोंका संहार करके देवताओंकी उद्दीप्त लक्ष्मीको उनके अधिकारसे लौटाया था। अतः आप यह धनुष, ये दोनों तरकस, यह बाण और यह तलवार [ राक्षसोंपर ] विजय पानेके लिये ग्रहण कीजिये।' ऐसा कहकर महान् तेजस्वी भगवान् अगस्त्यने वे सभी श्रेष्ठ आयुध श्रीरामचन्द्रजीको सौंप दिये।

इसके बाद उन्होंने फिर कहा—'राम! आप दोनों भाई मुझे प्रणाम करनेके लिये यहाँतक आये, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। लक्ष्मण! मैं तुमपर भी बहुत संतुष्ट हूँ। मिथिलेशकुमारी सीता सुकुमारी है। इससे पहले इसको ऐसे दुःखोंका सामना नहीं करना पड़ा है। वनमें अनेकों प्रकारके कष्ट होते हैं, फिर भी यह आपके प्रति अनुरागसे प्रेरित होकर यहाँ आयी है। जिस प्रकार सीता यहाँ प्रसन्न रह सके, वही कार्य आपको करना चाहिये। यह परम प्रशंसनीय और पतिव्रताओंमें अरुन्धतीकी भाँति अग्रगण्य है। आजसे इस देशकी शोभा बढ़ गयी, जहाँ सीता और लक्ष्मणके साथ आप निवास करेंगे।' मुनिके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर विनीत भावसे कहा—'मुनिवर! पत्नी और भाईसहित मेरे गुणोंसे आप-जैसे गुरुजनको विशेष सन्तोष हुआ, इसलिये मैं अपनेको धन्य और अनुगृहीत मानता हूँ। अब आप मुझे ऐसा कोई स्थान बताइये, जहाँ अनेकों वन हों, जलकी भी सुविधा हो तथा जहाँ आश्रम बनाकर मैं सुखपूर्वक रह सकूँ।'

श्रीरामका कथन सुनकर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने थोड़ी देरतक सोचा-विचारा। उसके बाद वे इस प्रकार बोले—'तात! यहाँसे दो योजनकी दूरीपर पञ्चवटी नामसे विख्यात एक बहुत ही सुन्दर स्थान है, जहाँ फल, मूल और जलका बहुत सुभीता है। वहीं जाकर लक्ष्मणके साथ आश्रम बनाइये और पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए सुखपूर्वक निवास कीजिये। आपका सारा वृत्तान्त मुझे मालूम है। आपका हार्दिक अभिप्राय भी मैंने अपनी तपस्यासे जान लिया है; इसीलिये कहता हूँ, आप पञ्चवटीमें जाइये।

'वह स्थान गोदावरीके तटपर है। वहाँकी वनस्थली बड़ी ही मनोरम है। वहाँ सीताका मन खूब लगेगा। आप सदाचारी हैं और ऋषियोंकी रक्षा करनेकी शक्ति रखते हैं; अतः वहाँ रहकर तपस्वी मुनियोंका पालन कीजियेगा। वीरवर! यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने महुआका बहुत बड़ा वन दिखायी दे रहा है। इसके उत्तरसे होकर जाना चाहिये। आगे जानेपर एक बरगदका वृक्ष मिलेगा। उससे आगे कुछ दूरतक ऊँचा मैदान है। उसे पार करनेके बाद एक पर्वत दिखायी देगा। उस पर्वतसे थोड़ी ही दूरपर पञ्चवटी नामसे प्रसिद्ध सुन्दर वन है।' महर्षि अगस्त्यके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीने उनका बड़ा सम्मान किया और उन सत्यवादी ऋषिसे जानेकी आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलनेपर दोनों भाई मुनिको प्रणाम करके धनुष और बाणोंसे भरे तरकस लिये सीताके साथ पञ्चवटीकी ओर प्रस्थित हुए।

## भगवान् श्रीराम आदिका पञ्चवटीमें निवास और शूर्पणखाका अङ्ग-भङ्ग

पञ्चवटी जाते समय बीचमें श्रीरामचन्द्रजीको एक महाकाय गृध्र मिला, जो बड़ा ही पराक्रमी था। उसे वनके बीचमें बैठा देखकर महाभाग श्रीराम और लक्ष्मणने पक्षीके रूपमें राक्षस ही समझा और पूछा—'आप कौन हैं?' पक्षीने बड़ी मधुर एवं कोमल वाणीमें उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा—'बेटा! मुझे अपने पिताका मित्र समझो।' पिताका मित्र जानकर श्रीरामचन्द्रने गृध्रका आदर किया और शान्तभावसे उसका नाम एवं कुल पूछा। तब उस पक्षीने अपना नाम और कुल इस प्रकार बताया—'रघुनन्दन! महर्षि कश्यपकी पत्नी विनताके गर्भसे दो पुत्र हुए थे। उनमेंसे एकका नाम था गरुड़ और दूसरेका अरुण। मैं अरुणका पुत्र हूँ। हम दो भाई हैं। बड़ेका नाम सम्पाति है और मैं जटायुके नामसे प्रसिद्ध हूँ। यदि तुम चाहो, तो मैं यहाँ तुम्हारे रहनेमें सहायता कर सकता हूँ।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने जटायुका सम्मान किया और प्रसन्नतापूर्वक उसके गले लगकर बड़ी नम्रता दिखायी। फिर पिताके साथ जिस प्रकार उसकी मित्रता हुई थी, वह प्रसंग उन्होंने जटायुके मुँहसे बारंबार सुना। तत्पश्चात् वे सीताको साथ लेकर लक्ष्मण और महाबली पक्षी जटायुके साथ पञ्चवटीकी ओर गये। वहाँ पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने अपने अत्यन्त तेजस्वी भाई लक्ष्मणसे कहा—'सौम्य! मुनिवर अगस्त्यने हमें जिस स्थानका परिचय दिया था, वहाँ हमलोग आ गये। यही पञ्चवटी नामका स्थान है। तुम इस वनमें चारों ओर दृष्टि डालो; क्योंकि इस कार्यमें तुम निपुण हो। देखकर निश्चय करो, किस स्थानपर आश्रम बनाना अच्छा होगा, जहाँ जानकीका भी मन लगे और तुमको तथा मुझको भी सन्तोष हो। ऐसी जगह देखो, जहाँसे जलका स्थान निकट हो, जहाँ वन और जल दोनोंका रमणीय दृश्य हो तथा जहाँ समिधा, फूल, कुश और जल—सब पास ही मिल जायँ।'

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैं तो आपके अधीन हूँ। आपको स्वयं ही जो स्थान सुन्दर जान पड़े, वहाँ आश्रम बनानेके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।' लक्ष्मणके इस वचनसे अत्यन्त तेजस्वी भगवान् श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने स्वयं ही सोच-विचारकर एक स्थान पसंद किया, जो सब प्रकारके गुणोंसे युक्त एवं आश्रमके उपयुक्त था। उस सुन्दर स्थानपर जाकर श्रीरामने लक्ष्मणका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—'सुमित्रानन्दन! यह स्थान समतल और सुन्दर है। यहाँ तुम्हें आश्रम बनाना चाहिये। पवित्रात्मा मुनि अगस्त्यने जिसके विषयमें कहा था, वह फूले हुए वृक्षोंसे सुशोभित परम रमणीय गोदावरी नदी यही है। वे ऊँचे-ऊँचे पर्वत दिखायी दे रहे हैं, जिनमें अनेकों सुन्दर गुफाएँ हैं। इन पर्वतोंपर साल, ताड़, तमाल, खजूर, कटहल, आम, अशोक, तिलक, केवड़ा, चम्पा, स्यन्दन, चन्दन, कदम्ब, लकुच, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, पलाश और गुलाब आदिके अनेकों वृक्ष, शोभा पा रहे हैं। यह बहुत ही पवित्र और बड़ा ही रमणीय स्थान है। हमलोग यहीं जटायुके साथ निवास करें।'

भगवान् श्रीरामकी ऐसी आज्ञा पाकर महाबली लक्ष्मणने अपने पूज्य भ्राताके लिये शीघ्र ही आश्रम बनाकर तैयार किया। वह पर्णशाला बहुत विस्तृत थी। उन्होंने पहले मिट्टी एकत्रित करके दीवार खड़ी की। फिर उसमें सुन्दर एवं सुदृढ़ खंभे लगाये। खंभोंके ऊपर बड़े-बड़े बाँस तिरछे करके रखे। बाँसोंके ऊपर शमीवृक्षकी शाखाएँ फैला दीं और उन्हें मजबूत रस्सियोंसे कसकर बाँध दिया। इसके बाद ऊपरसे कुश-काश, सरकंडे और पत्ते बिछाकर उसे भलीभाँति छा दिया तथा नीचेकी भूमिको बराबर करके महाबली लक्ष्मणने बड़ी रमणीय कुटी बना दी। भगवान् श्रीरामके लिये बना हुआ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह निवासस्थान अत्यन्त सुन्दर और देखने ही योग्य था। उसे तैयार करके लक्ष्मणने गोदावरीमें स्नान किया और कमल-के फूल लाकर देवताओंके लिये पुष्पोंकी बलि दी। फिर शास्त्रीय विधिके अनुसार वास्तु-शान्ति करके उन्होंने अपना बनाया हुआ आश्रम श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया। भगवान् श्रीराम सीताके साथ उस सुन्दर आश्रमको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कुछ कालतक उन्होंने सबके साथ वहीं निवास किया।

महात्मा श्रीरामको उस आश्रममें रहते हुए शरद्ऋतु बीत गयी और हेमन्तका आगमन हुआ। एक दिन प्रातः-काल श्रीरामचन्द्रजी स्नान करनेके लिये परम रमणीय गोदावरी नदीके तटपर गये। उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी, जो बड़े ही विनीत और पराक्रमी थे, हाथमें घड़ा लेकर सीताके साथ-साथ उनके पीछे गये। जाते-जाते वे श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'नरश्रेष्ठ! इस समय धर्मात्मा भरत आपके लिये बहुत दुखी हैं और आपमें भक्ति रखते हुए नगरमें ही तपस्या कर रहे हैं। ये राज्य, मान तथा नाना प्रकारके भोगोंका परित्याग करके तपस्यामें संलग्न हैं और नियमित आहार करते हुए इस जाड़ेकी मौसिममें भी पृथ्वीपर ही शयन करते हैं। निश्चय ही भरत भी इसी वेलामें स्नानके लिये उद्यत होकर मन्त्री एवं प्रजाजनोंके साथ प्रतिदिन सरयू नदीके तटपर जाते होंगे। अत्यन्त सुखमें पले हुए सुकुमार भरत जाड़ेका कष्ट सहते हुए इस शेष रात्रिके समय कैसे सरयूजीमें डुबकी लगाते होंगे? वे धर्मज्ञ, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, प्रिय वचन बोलनेवाले, मधुरभाषी और दीर्घबाहु हैं। उन्होंने सब प्रकार-के सुखोंको त्यागकर सर्वथा आपका ही आश्रय ग्रहण किया है। वे भी तपस्यामें स्थित होकर आपके वनवासी जीवनका अनुसरण कर रहे हैं। 'मनुष्य प्रायः माताके गुणोंका अनुवर्तन करते हैं', इस लौकिक उक्तिको भरतने अपने बर्तावसे मिथ्या प्रमाणित कर दिया है। [ उन्होंने माताके गुण न लेकर पिताके गुणोंको ही अपनाया है। ] महाराज दशरथ जिसके पति हैं और भरत-जैसा साधु जिसका पुत्र है, वह माता कैकेयी ऐसे क्रूरतापूर्ण विचारवाली कैसे हुई?'

धर्मपरायण लक्ष्मण जब स्नेहवश इस प्रकार कह रहे थे, उस समय श्रीरामचन्द्रजीसे माता कैकेयीकी निन्दा नहीं सही गयी। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'तात! तुम्हें मझली माता कैकेयीकी कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये। [ यदि कुछ कहना हो तो ] पहलेकी भाँति इक्ष्वाकुवंशके स्वामी भरतकी ही चर्चा करो।* मुझे भरतकी वे बातें याद आती हैं, जो अत्यन्त ही प्रिय, मधुर, मनको भानेवाली और अमृतके समान हृदयको आनन्द देनेवाली हैं। लक्ष्मण! वह दिन कब आयेगा, जब मैं तुम्हारे साथ चलकर महात्मा भरत और वीरवर शत्रुघ्नसे मिलूँगा?' भगवान् श्रीराम इस प्रकार विलाप करते हुए लक्ष्मण और सीताके साथ गोदावरीतटपर पहुँचे। वहाँ स्नान करके उन्होंने गोदावरीके जलसे देवताओं और पितरोंका तर्पण किया। तत्पश्चात् जब सूर्योदय हुआ, तो भगवान् सूर्यका उपस्थान करके अन्य देवताओंका भी स्तवन किया। स्नान करके वे तीनों ही गोदावरीतटसे अपने आश्रमपर लौट आये। वहाँ आकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणके साथ पूर्वाह्णकालके हवन-पूजन आदि कार्य पूर्ण किये। फिर वे दोनों भाई पर्ण-शालामें आकर बैठे। वहाँ सीताके साथ विराजमान श्रीराम-चन्द्रजीका महर्षियोंने आकर सत्कार किया। इसके बाद वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ तरह-तरहकी बातें करने लगे।

उस समय, जब कि श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ बात-चीतमें लगे हुए थे, एक राक्षसी अकस्मात् उस स्थानपर आ पहुँची। वह रावणकी बहिन शूर्पणखा थी। वहाँ आकर उसने देवताके समान मनोहर रूपवाले श्रीरामचन्द्रजीको

* न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥
(१६। ३७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा। उनका मुख तेजस्वी, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और नेत्र कमलदलके समान विशाल थे, उन्हें देखते ही वह राक्षसी कामसे मोहित हो गयी और श्रीरामके पास आकर बोली—'तपस्वीके वेषमें मस्तकपर जटा धारण किये, साथमें स्त्रीको लिये और धनुष-बाणसे सुशोभित होकर इस राक्षसोंके देशमें तुम कैसे चले आये? यहाँ तुम्हारे आगमनका क्या प्रयोजन है? ये सब बातें मुझे बताओ।' राक्षसी शूर्पणखाके इस प्रकार पूछनेपर शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने अपने सरल स्वभावके कारण सब कुछ बताना आरम्भ किया। 'देवि! देवताओंके समान पराक्रमी एक दशरथ नामसे प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। मैं उन्हींका ज्येष्ठ पुत्र हूँ। लोग मुझे राम कहते हैं। ये मेरे छोटे भाई लक्ष्मण हैं और ये मेरी पत्नी सीता हैं। पिता और माताकी आज्ञासे प्रेरित होकर मैं धर्मपालनकी इच्छासे इस वनमें निवास करनेके लिये आया हूँ। अब तुम्हारा परिचय पानेकी इच्छा हो रही है; बतलाओ तुम कौन हो?'

श्रीरामकी बात सुनकर वह राक्षसी कामातुर होकर बोली—'राम! मैं इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली राक्षसी हूँ, मेरा नाम शूर्पणखा है। विश्रवाके पुत्र रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण मेरे भाई हैं। युद्धमें जिनका पराक्रम विख्यात है, वे खर और दूषण भी मेरे भाई ही हैं। मैं बलमें अपने सभी भाइयोंसे बढ़कर हूँ। तुम्हारे प्रथम दर्शनसे ही मेरा मन तुममें आसक्त हो गया है। तुम पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो और मैं तुममें पतिकी भावना रखकर तुम्हारे पास आयी हूँ। अब तुम सदाके लिये मेरे पति बन जाओ। यह कुरूपा सीता तुम्हारे योग्य नहीं है, मैं ही तुम्हारे अनुरूप हूँ। तुम्हारे इस भाई और मनुष्यकन्या सीताको तो मैं खा जाऊँगी। फिर तुम पर्वतीय शिखरों और अनेक प्रकारके वनोंको देखते हुए मेरे साथ दण्डकवनमें भ्रमण करना।'

शूर्पणखाके ऐसा कहनेपर बोलनेमें चतुर श्रीरामचन्द्रजी-ने उससे हँसकर कहा—'सुन्दरी! यह मेरी प्यारी पत्नी मौजूद है। तुम-जैसी स्त्रियोंके लिये सौतका रहना अत्यन्त दुःखका कारण होता है। मेरे छोटे भाई लक्ष्मण सुशील, सुन्दर और पराक्रमी हैं; अतः तुम उन्हींको अपना पति बनाओ।' वह राक्षसी कामसे मोहित हो रही थी। श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर उन्हें छोड़कर वह सहसा लक्ष्मणके पास पहुँची और कहने लगी—'तुम्हारे इस रूपके योग्य मैं ही हूँ, अतः मैं ही तुम्हारी भार्या हो सकती हूँ; मुझे स्वीकार कर लेनेपर तुम मेरे साथ समूचे दण्डकवनमें सुखपूर्वक विचरण कर सकोगे।' शूर्पणखाकी बात सुनकर लक्ष्मणने हँसकर उत्तर दिया—'मैं तो दास हूँ, अपने बड़े भाई भगवान् श्रीरामके अधीन हूँ। मेरी स्त्री होकर तुम दासी बनना क्यों चाहती हो? मेरे बड़े भाईको सब प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त हैं, उनके पास रहनेसे तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी; इसलिये तुम उन्हींकी छोटी स्त्री बनो।' यह सुनकर शूर्पणखा पर्णशालामें सीताके साथ बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीके पास लौट आयी और कामसे मोहित होकर बोली—'इस स्त्रीको अपने पास बिठाकर तुम मेरा आदर नहीं करते, इसलिये आज तुम्हारे देखते-देखते मैं इसे खा जाऊँगी और सौतके न रहनेपर तुम्हारे साथ सुखपूर्वक विचरण करूँगी।'

यों कहकर क्रोधमें भरी हुई शूर्पणखा सीताके ऊपर झपटी। महाबली श्रीरामने मृत्युके पाशकी तरह आक्रमण करती हुई उस राक्षसीको रोककर लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! क्रूर कर्म करनेवाले अनार्योंसे किसी तरहका परिहास भी नहीं करना चाहिये। देखो, आज सीताके प्राण बड़ी मुश्किलसे बचे हैं। तुम इस कुरूपा, कुलटा और मतवाली राक्षसीका रूप विकृत कर दो—इसे किसी अङ्गसे हीन बना दो।' लक्ष्मण भी क्रोधमें भरे थे। भाईकी आज्ञा पाकर उन्होंने तलवार उठायी और उनके सामने ही शूर्पणखाके नाक-कान काट लिये। नाक और कान कट जानेपर वह भयंकर राक्षसी चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी और जिधरसे आयी थी, उसी ओर वनमें

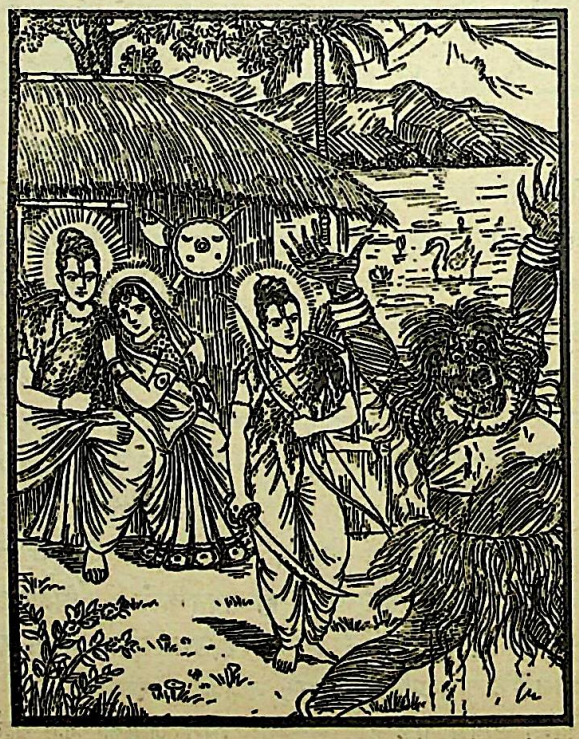

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग गयी। उसका सारा शरीर खूनसे लथपथ हो रहा था और वह वर्षाकालके मेघके समान नाना प्रकारके स्वरोंमें जोर-जोरसे चीत्कार करने लगी। वह पञ्चवटीसे भागकर अपने भाई खरके पास पहुँची, जो राक्षसोंकी सेनाके साथ जनस्थानमें निवास करता था। उसके सामने जाकर वह धरतीपर गिर पड़ी।

## श्रीरामके द्वारा चौदह राक्षसोंका वध, खर और दूषणका आक्रमण तथा श्रीरामका उनसे युद्धके लिये तैयार होना

अपनी बहिनको अङ्गहीन एवं खूनसे लथपथ होकर इस प्रकार जमीनमें पड़ी देख खर क्रोधसे जल उठा और बोला—'बहिन! उठो और अपना हाल बताओ। मूर्च्छा और घबराहट छोड़कर साफ-साफ कहो—किसने तुम्हें इस तरह रूपहीन बनाया है? संसारमें तो मैं किसीको ऐसा नहीं देखता, जो मेरा अप्रिय करनेका साहस कर सके। देवताओंमें इन्द्रकी भी इतनी हिम्मत नहीं है। आज मैं इन प्राणान्तकारी बाणोंसे तुम्हारे अपराधीके प्राण ले लूँगा। धीरे-धीरे होशमें आकर तुम उसका नाम बताओ, जिस उद्दण्डने वनमें तुम्हारी ऐसी दुर्दशा की है।' क्रोधसे भरे हुए भाईके ये वचन सुनकर शूर्पणखाने आँसू बहाते हुए कहा—'वनमें दो तरुण पुरुष आये हैं, जो देखनेमें बड़े ही सुकुमार, रूपवान् और महाबली हैं। उन दोनोंके कमल-जैसे नेत्र हैं। दोनों ही वल्कलवस्त्र और मृगचर्म पहने हैं। वे फल-मूलका भोजन करनेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्वी और ब्रह्मचारी हैं। अपनेको राजा दशरथका पुत्र बतलाते हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं। उनके साथ एक तरुण अवस्थाकी रूपवती स्त्री भी देखी है, जो सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित है। उस स्त्रीके ही कारण उन दोनोंने मिलकर मेरी ऐसी दुर्गति की है। मैं युद्धमें उस स्त्रीका और उन दोनों पुरुषोंका रक्त पान करूँ—यही मेरी प्रधान इच्छा है; इसे तुम पूर्ण करो।'

शूर्पणखाके ऐसा कहनेपर खरने कुपित होकर अत्यन्त बलवान् चौदह राक्षसोंको, जो यमराजके समान भयङ्कर थे, आदेश दिया—'वीरो! इस भयङ्कर दण्डकारण्यके भीतर चीर और काला मृगचर्म धारण किये दो शस्त्रधारी मनुष्य आये हैं। उनके साथ एक युवती स्त्री भी है। तुमलोग वहाँ जाकर पहले उन दोनों मनुष्योंको मार डालो; फिर उस दुराचारिणी स्त्रीके भी प्राण ले लो। मेरी यह बहिन उन तीनोंका रुधिर पान करेगी। राक्षसो! तुमलोग इसका यह प्रिय मनोरथ पूरा करो!' खरकी ऐसी आज्ञा पाकर वे चौदहों राक्षस शूर्पणखाके साथ पञ्चवटीको गये। तदनन्तर भयानक राक्षसी शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमपर आयी और अपने साथ आये हुए राक्षसोंको सीतासहित उन दोनों भाइयोंकी पहचान करायी। राक्षसोंने देखा, महाबली राम सीताके साथ पर्णशालामें बैठे हैं और लक्ष्मण उनकी सेवामें खड़े हैं। इधर भगवान् श्रीरामने शूर्पणखाके साथ उन राक्षसोंको आये देख अपने तेजस्वी भ्राता लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! तुम थोड़ी देरतक सीताके पास खड़े हो जाओ। मैं इस राक्षसीके हिमायती बनकर आये हुए इन निशाचरोंको अभी मारे डालता हूँ।' श्रीरामचन्द्रजीकी बात सुनकर लक्ष्मणने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। तब धर्मात्मा रघुनाथजीने अपने सुवर्णमण्डित धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और उन राक्षसोंसे कहा—'हम दोनों भाई राजा दशरथके पुत्र राम और लक्ष्मण हैं; सीताके साथ इस दण्डकवनमें रहकर तपस्या करते हैं। तुम सब-के-सब पापी और ऋषियोंके अपराधी हो। उन ऋषियोंकी आज्ञासे ही मैं धनुष-बाण लेकर युद्धमें तुम्हें मारनेके लिये आया हूँ। निशाचरो! यदि तुम्हें युद्धसे प्रेम हो तो खड़े रहो; भाग मत जाना। और यदि प्राणोंका लोभ हो, तो एक क्षणके लिये भी न रुको; लौट जाओ।'

श्रीरामचन्द्रजीकी बातें सुनकर वे चौदहों राक्षस क्रोधसे आग-बबूले हो उठे और हाथोंमें शूल लिये बोले—'अरे! तूने हमारे स्वामी खरको क्रोध दिलाया है, अतः हमलोगोंके हाथसे युद्धमें मारा जाकर तू स्वयं ही अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। तू अकेला है और हम बहुत हैं। तेरी क्या बिसात, जो तू हमारे सामने खड़ा भी रह सके? युद्ध करना तो दूरकी बात है।' यों कहकर वे चौदहों राक्षस तरह-तरहके आयुध और तलवारें लिये क्रोधसे भरकर श्रीरामचन्द्रजीपर टूट पड़े। उन लोगोंने दुर्जय वीर भगवान् श्रीरामके ऊपर शूल चलाये। श्रीरामचन्द्रजीने उतने ही सुवर्णभूषित बाण चलाकर उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौदहों शूलोंको काट गिराया। तदनन्तर उन्होंने चौदह बाण हाथमें लिये और उन्हें धनुषपर चढ़ाकर राक्षसोंको लक्ष्य करके छोड़ दिया, मानो इन्द्रने वज्रका प्रहार किया हो। वे बाण राक्षसोंकी छाती छेदकर रुधिरमें डूबे हुए पृथ्वीपर गिर पड़े तथा वे राक्षस भी हृदय विदीर्ण हो जानेके कारण जड़से कटे हुए वृक्षोंकी भाँति धराशायी हो गये। उन्हें पृथ्वीपर पड़े देख राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छित हो गयी और खरके पास जाकर पुनः आर्तभावसे जमीनपर गिर पड़ी। शूर्पणखाको पुनः भूमिपर गिरी देख खर कुपित होकर बोला—'मैंने तुम्हारा प्रिय करनेके लिये अनेकों वीर राक्षसोंको नियुक्त कर दिया है। फिर भी तुम क्यों रो रही हो? क्या कारण है कि तुम 'हा नाथ' की पुकार मचाती हुई साँपकी तरह भूमिपर लोट रही हो?

खरके इस प्रकार समझानेपर शूर्पणखा अपने आँसूभरे नेत्र पोंछकर बोली—'भाई! तुमने मेरा प्रिय करनेके लिये

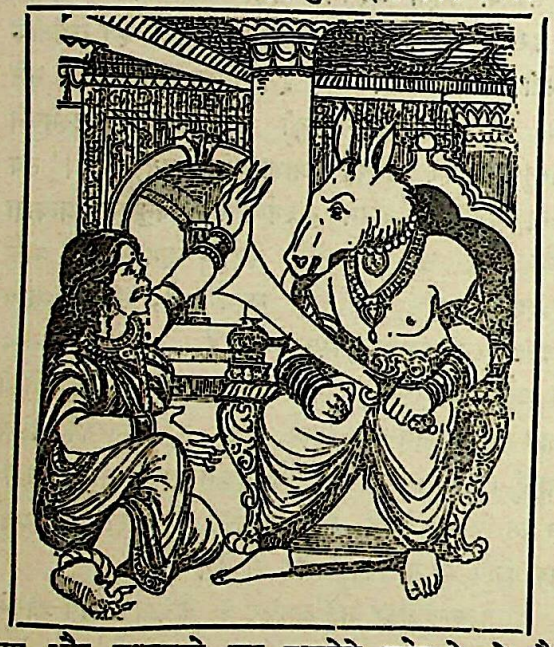

राम और लक्ष्मणको मार डालनेके उद्देश्यसे जो चौदह शूरवीर राक्षस भेजे थे, वे सब युद्धमें रामके मर्मभेदी बाणोंद्वारा मारे गये। उन महान् वेगशाली राक्षस-वीरोंको एक ही क्षणमें धराशायी होते देख रामके महान् पराक्रमपर दृष्टि डालकर मुझे बड़ा भय हो गया है। इसीसे पुनः तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। यदि मुझपर और उन मरे हुए राक्षसोंपर तुम्हें तनिक भी दया आती हो, यदि रामके साथ लोहा लेनेकी तुम्हारी शक्ति हो, तो उन्हें मार डालो; क्योंकि वे राक्षसोंके लिये कण्टक हैं। यदि तुम आज रामका वध नहीं करोगे, तो तुम्हारे सामने ही मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। राम और लक्ष्मण मनुष्य हैं; यदि उन्हें मारनेकी भी तुममें शक्ति नहीं है, तो तुम्हारे-जैसे बल और पराक्रमसे हीन राक्षसका यहाँ रहना कैसे सम्भव हो सकता है!' अपने भाईके समीप इस प्रकार विलाप करके वह राक्षसी शोकसे मूर्च्छित हो गयी और अपने हाथोंसे छाती पीटती, बहुत दुखी होकर रोती-कलपती रही।

शूर्पणखाके द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत होकर शूरवीर खरने राक्षसोंके बीच अत्यन्त कठोर वाणीमें कहा—'बहिन! तुम्हारे अपमानके कारण मुझे बेहद क्रोध चढ़ आया है। मैं पराक्रमकी दृष्टिसे रामको कुछ भी नहीं गिनता। अपने आँसुओंको रोको और घबराहट छोड़ दो। मैं अभी उसे उसके भाईसहित यमलोक भेजता हूँ। आज मेरे फरसेकी मारसे धरतीपर पड़े हुए रामका गरम-गरम रक्त तुम्हें पीनेको मिलेगा।' खरके मुँहसे निकली हुई यह बात सुनकर शूर्पणखाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उस समय खरने अपने सेनापति दूषणसे कहा—'मेरी इच्छाके अनुकूल चलनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको युद्धके लिये तैयार करो और मेरा रथ भी शीघ्र ही जोतकर ले आओ। उसपर अनेकों धनुष, बहुत-से बाण, विचित्र-विचित्र खड्ग और नाना प्रकारकी तीखी शक्तियाँ भी रहनी चाहिये।' उसके आज्ञा देते ही चितकबरे रंगके अच्छे घोड़ोंसे जुता हुआ एक विशाल रथ सुसज्जित होकर आ गया। उसमें सूर्यके समान चमक थी। क्रोधसे भरा खर उस रथपर सवार हुआ। फिर खर और दूषणने रथ, ढाल, अस्त्र-शस्त्र तथा ध्वजासे युक्त समस्त राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेनाको तैयार देख उसे कूच करनेकी आज्ञा दी।

निशाचरोंकी वह भयंकर सेना जोर-जोरसे गरजती हुई जनस्थानसे बड़े वेगके साथ आगे बढ़ी। सेनाके कूच करते समय आकाशमें गदहेके समान धूसर रंगवाले बादलोंकी भयंकर घटा घिर आयी। उसकी तुमुल ध्वनि सुनायी पड़ने लगी तथा सैनिकोंके ऊपर घोर अमङ्गल-सूचक रक्तमय जलकी वर्षा होने लगी। खरके रथमें जुते हुए वेगवान् घोड़े समतल भूमिमें सड़कपर चलते-चलते अकस्मात् गिर पड़े। सूर्यमण्डलके चारों ओर अलातचक्रके समान गोलाकार घेरा दिखायी देने लगा, जिसका रंग काला और किनारेका भाग लाल था। खरके रथकी ध्वजापर एक महाकाय गीध आकर बैठ गया, जो देखनेमें बड़ा ही भयङ्कर था। साथ ही उस राक्षसके मस्तकमें पीड़ा भी होने लगी,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी वह मोहवश पीछे नहीं हटा। उस समय ऐसे बड़े-बड़े उत्पात हुए, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाले थे। खर उन्हें देखकर हँसता हुआ बोला—'इन भयंकर उत्पातोंके दीखनेपर भी मुझे चिन्ता नहीं होती। मैं अपने तीखे तीरोंसे तारोंको भी आकाशसे नीचे गिरा सकता हूँ तथा कुपित होनेपर मौतको भी मार सकता हूँ; अतः अब बलका घमंड रखनेवाले राम और उसके भाई लक्ष्मणको इन तीखे बाणोंसे मृत्युके मुखमें पहुँचाये बिना मैं लौट नहीं सकता। उन दोनोंका रक्त पीकर आज मेरी बहिनकी इच्छा पूर्ण हो। आजतक किसी भी युद्धमें मेरी पराजय नहीं हुई है। वज्र हाथमें लिये हुए देवराज इन्द्रको भी मैं युद्धमें मौतके घाट उतार सकता हूँ, फिर उन दो मनुष्योंकी तो बात ही क्या है।'

खरकी गर्जना सुनकर राक्षसोंकी वह विशाल सेना अपार हर्षसे भर गयी। उस समय युद्ध देखनेके लिये अनेकों ऋषि, देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण एकत्रित हुए। वे सभी मिलकर एक-दूसरेसे कहने लगे—'गौओं और ब्राह्मणोंका कल्याण हो तथा जो लोकप्रिय महात्मा हैं, वे भी कल्याणके भागी बनें। भगवान् श्रीराम असुरोंको परास्त करनेवाले चक्रधारी विष्णुकी भाँति पुलस्त्य-कुलमें उत्पन्न हुए इन निशाचरोंको युद्धमें पराजित करें।' इस प्रकार शुभाशंसा करते हुए देवताओं और ऋषियोंने राक्षसोंकी सेनाको देखा। जैसे ग्रहोंकी पङ्क्ति चन्द्रमा और सूर्यको घेरे रहती है, उसी प्रकार राक्षस-वीरोंकी वह भयंकर वेगवाली दारुण सेना, जो युद्धकी इच्छासे आ रही थी, सहसा राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मणके समीप जा पहुँची।

प्रचण्ड पराक्रम दिखानेवाले खरने जब आश्रमपर धावा किया तो श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले—'महाबाहो! मेरी दाहिनी भुजा बारंबार फड़ककर इस बातकी सूचना देती है कि कुछ ही देरमें बहुत बड़ा युद्ध होनेवाला है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। किन्तु इस संग्राममें हमारी विजय और शत्रुओंकी पराजय होगी; क्योंकि तुम्हारा मुख कान्तिमान् एवं प्रसन्न दिखायी दे रहा है। युद्धके लिये उद्यत होनेपर जिन मनुष्योंका मुख उदास हो जाता है, उनकी आयु समाप्त हो जाती है। गर्जते हुए राक्षसोंकी भयंकर ध्वनि सुनायी पड़ती है। अपना कल्याण चाहनेवाले विद्वान् पुरुषको उचित है कि आपत्तिकी आशंङ्का होनेपर पहलेसे ही उससे बचनेका उपाय कर ले। इसलिये तुम धनुष-बाण लेकर सीताके साथ पर्वतकी गुफामें चले जाओ। इसमें सन्देह नहीं कि तुम शूरवीर और बलवान् हो तथा इन राक्षसोंको मार डालनेकी भी शक्ति रखते हो; तथापि मैं स्वयं ही समस्त निशाचरोंका वध करना चाहता हूँ। [ इसलिये तुम सीताकी रक्षाके लिये उसे गुफामें ले जाओ। ]'

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण धनुष-बाण ले सीताके साथ पर्वतकी दुर्गम गुफामें चले गये। इधर महा-

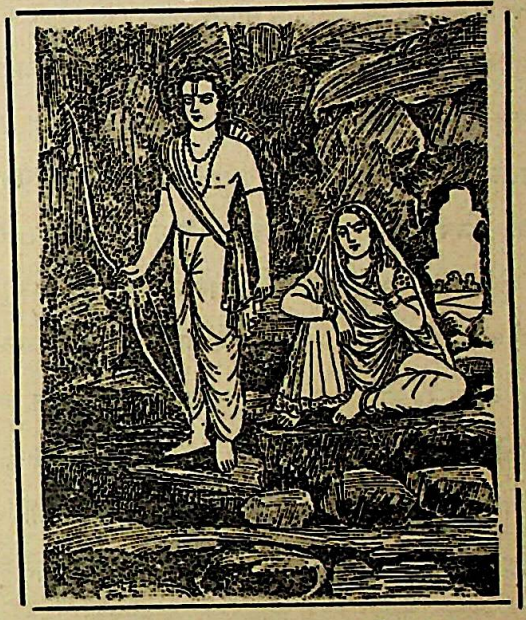

पराक्रमी भगवान् श्रीराम कवच धारण करके महान् धनुष एवं बाण हाथमें लेकर युद्धके लिये तैयार हो गये और धनुषकी टङ्कारसे सारी दिशाओंको गुँजाने लगे। उस समय भगवान् श्रीरामके तेजस्वी स्वरूपको देखकर समस्त प्राणी भयसे व्याकुल हो गये। इतनेमें ही भयानक आवाज करनेवाली राक्षसोंकी सेना चारों ओरसे श्रीरामचन्द्रजीके पास आ पहुँची। युद्ध-कलाके विद्वान् श्रीरामने खरकी विशाल सेनापर दृष्टि डाली और वे युद्धके लिये उसके सामने बढ़ गये। फिर उन्होंने तरकससे अनेकों बाण निकाले और अपने भयंकर धनुषको खींचकर सम्पूर्ण राक्षसोंका वध करनेके लिये अत्यन्त क्रोध प्रकट किया। उस समय वे प्रलयकालीन अग्निके समान प्रज्वलित होने लगे। उनका वह स्वरूप दक्ष-यज्ञका नाश करनेके लिये उद्यत महादेवजीके समान दिखायी देने लगा।


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा दूषणसहित चौदह हजार राक्षसोंका वध

खरने अपने अग्रगामी सैनिकोंके साथ आश्रमके पास पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीको देखा और सारथिसे कहा—'मेरा रथ रामके सामने ले चलो।' आज्ञा पाकर सारथिने घोड़ोंको उधर ही बढ़ाया, जहाँ महाबाहु श्रीराम अकेले खड़े होकर अपने धनुषकी टङ्कार कर रहे थे। खरको श्रीरामके समीप पहुँचा देख उसके राक्षस मन्त्री भी भयंकर सिंहनाद करते उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। तब खरने अमिततेजस्वी श्रीरामको अपने हजारों बाणोंसे पीड़ित करके विकट गर्जना की। साथ ही दूसरे-दूसरे निशाचर भी उनपर नाना प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, मानो बड़े-बड़े मेघ गिरिराजके ऊपर जलकी धारा बरसा रहे हों। उस समय श्रीरामचन्द्रजीको उन सभी राक्षसोंने चारों ओरसे घेर रखा था। उनके अस्त्र-शस्त्रोंसे यद्यपि श्रीरामका शरीर क्षत-विक्षत हो गया था, तथापि वे तनिक भी घबराये नहीं। अब श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त कुपित होकर धनुषको इतना खींचा कि वह गोलाकार दिखायी देने लगा और उससे सैकड़ों तथा हजारों तीखे बाण छूटने लगे, जिन्हें निवारण करना अत्यन्त कठिन था। वे बाण शत्रुओंके लिये बहुत ही दुःसह और कालपाशके समान भयंकर थे। वे राक्षसोंके शरीरोंको छेदकर रक्तमें लथ-पथ हो जब अन्तरिक्षमें पहुँचते थे तो प्रज्वलित अग्निके समान दीप्तिमान् जान पड़ते थे। ऐसे असंख्य बाण छोड़कर भगवान् श्रीरामने शत्रुओंकी सैकड़ों-हजारों ध्वजाएँ, धनुष, ढाल, कवच, आभूषणोंसहित भुजाएँ और हाथीकी सूँड़के समान जाँघें काट गिरायीं। उनके नालीक[1], नाराच[2] और विकर्णीय[3] नामके तीखे

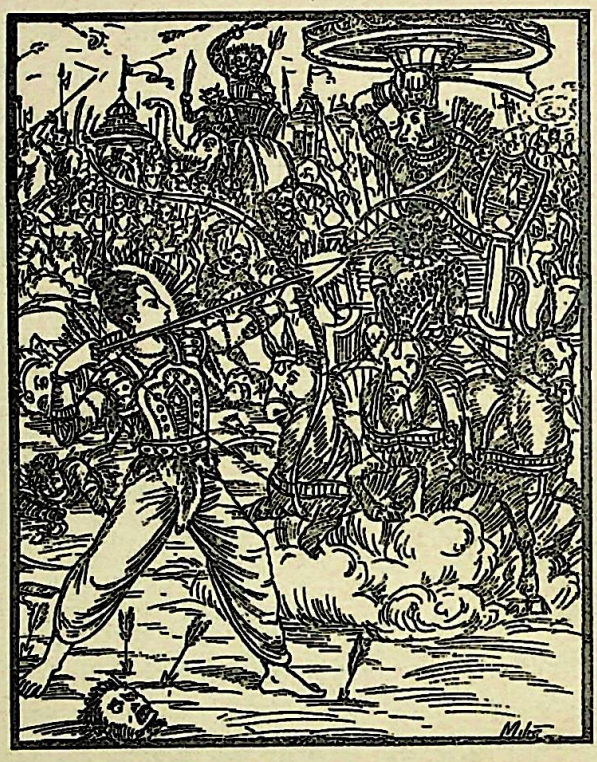

बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर निशाचर भयंकर आर्तनाद करने लगे। बहुतेरे राक्षस अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे। जो बचे वे श्रीरामके बाणोंसे आहत होकर रक्षाके लिये खरके पास दौड़े गये; किन्तु बीचमें ही दूषणका सहारा मिल जानेसे वे सब-के-सब निर्भय होकर लौट आये और साल, ताड़ आदिके वृक्ष तथा पत्थर लेकर पुनः श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर टूट पड़े। कोई वृक्षोंकी वर्षा करने लगे और कोई पत्थरोंकी। उस समय बड़ा ही अद्भुत और रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ। तब महाबली भगवान् श्रीरामने भैरवनाद करके राक्षसोंपर परम तेजस्वी गान्धर्व अस्त्रका प्रयोग किया। फिर तो उनके धनुषसे हजारों बाण छूटने लगे। उनके द्वारा दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। बाणोंसे पीड़ित राक्षस यह नहीं देख पाते थे कि श्रीरामचन्द्रजी कब भयंकर बाण हाथमें लेते हैं और कब उन्हें छोड़ते हैं।

---

१. जिनका अग्रभाग लोहेका हो। २. जो नीचेसे ऊपरतक लोहेके ही बने हों। ३. जिनका अग्रभाग अंकुशकी भाँति मुड़ा हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे केवल उनको धनुष खींचते देखते थे। श्रीरामचन्द्रजीके बाण-समूहरूपी अन्धकारने सूर्यसहित सारे आकाश-मण्डलको ढक दिया। जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती थी, हजारों राक्षस मरे, गिरे, कटे और विदीर्ण हुए दिखायी देते थे। श्रीरामके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए घोड़े, हाथी, रथ, चँवर, व्यजन, छत्र और नाना प्रकारकी ध्वजाओंसे वह रणभूमि पट गयी तथा अत्यन्त भयावनी दिखायी देने लगी।

महाबाहु दूषणने देखा मेरी सेना बुरी तरहसे नष्ट हो रही है तो उसने युद्धसे पीछे पैर न हटानेवाले भयंकर वेगशाली पाँच हजार राक्षसोंको, जिन्हें जीतना बड़ा ही कठिन था, आगे बढ़नेकी आज्ञा दी। वे श्रीरामपर चारों ओरसे लगातार शूल, पट्टिश, तलवार, पत्थर, वृक्ष और बाणोंकी वर्षा करने लगे। यह देख धर्मात्मा रघुनाथजीने उन सबको अपने तीखे तीरोंसे मारकर रोक दिया और दूषणके साथ ही समस्त सेनापर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। इससे सेनापति दूषणको बड़ा क्रोध हुआ और उसने वज्रके समान बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको रोका। तब उन्होंने अत्यन्त क्रोधमें भरकर क्षुर नामक बाणसे दूषणके विशाल धनुषको काट डाला और चार तीखे तीरोंसे उसके चारों घोड़ोंको मौतके घाट उतारकर एक अर्द्धचन्द्राकार बाणसे सारथिका भी सिर उड़ा दिया तथा तीन बाणोंसे उस राक्षसकी छातीमें भी चोट पहुँचायी। यह देख दूषणने पर्वत-शिखरके समान एक भयानक परिघ उठाया, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला तथा देवताओंकी सेनाको भी कुचल डालनेवाला था। उसमें लोहेकी तीखी कीलें लगी थीं तथा उसका स्पर्श हीरे और वज्रके समान कठोर था। उस भयंकर परिघको लेकर क्रूरकर्मा दूषण भगवान् श्रीरामकी ओर झपटा। उसे अपने ऊपर आक्रमण करते देख श्रीरामचन्द्रजीने दो बाणोंसे उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। बाँह कट जानेसे वह महाकाय राक्षस संग्राम-भूमिमें गिर पड़ा तथा वह परिघ भी उसके सामने जा पड़ा। दूषणको धराशायी देख समस्त प्राणियोंने 'साधु-साधु' कहकर भगवान् श्रीरामकी प्रशंसा की। इसी समय सेनाके आगे चलनेवाले महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबली प्रमाथी—ये तीन राक्षस मौतके फंदेमें फँसकर कुपित हो श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर टूट पड़े। महाकपालने एक विशाल त्रिशूल लिया, स्थूलाक्षने पट्टिश उठाया और प्रमाथीने फरसा सँभाला। उन तीनोंको अपनी ओर आते देख भगवान् श्रीरामने तीखे बाणोंसे उनका स्वागत किया। उन्होंने महाकपालका कपाल उड़ा दिया, प्रमाथीको असंख्य बाणोंसे मथ डाला और स्थूलाक्षकी स्थूल आँखोंमें अनेकों तीर चुभो दिये। ये तीनों ही कटे हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधसे भरकर दूषणके पाँच हजार सेवकोंको उतने ही बाणोंका निशाना बनाकर क्षणभरमें मृत्युके मुखमें पहुँचा दिया।

दूषण और उसके अनुयायी मारे गये—यह सुनकर खरको बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने महाबली सेनापतियोंको आज्ञा दी—'वीरो! यह दूषण अपने सेवकोंसहित मारा गया। अब तुम सभी राक्षस बहुत बड़ी सेनाके साथ जाकर इस दुष्ट मनुष्य रामके साथ लोहा लो और नाना प्रकारके शस्त्रोंसे इसका वध कर डालो।' क्रोधमें भरा हुआ खर अपने सैनिकोंसे ऐसा कहकर स्वयं भी श्रीरामपर टूट पड़ा। उसी समय उसके महान् पराक्रमी बारह सेनापति अपने सैनिकोंके साथ तीखे तीरोंकी वर्षा करते श्रीरामचन्द्रजीपर चढ़ आये। तब अत्यन्त तेजस्वी श्रीरामने अग्निके समान उज्ज्वल बाणोंसे उस सेनाके बचे-खुचे सिपाहियोंका भी सफाया कर डाला। कुशोंसे ढकी हुई विस्तृत वेदीकी भाँति युद्धमें मरकर गिरे हुए निशाचरोंसे सारी रणभूमि पट गयी। राक्षसोंके मरनेसे उस भयंकर वनमें रक्त और मांसकी कीचड़ जम गयी। अतः उस समय वह नरकके समान प्रतीत होने लगा। मानवस्वरूपधारी श्रीरामचन्द्रजी अकेले और पैदल थे, तो भी उन्होंने भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको मौतके घाट उतार दिया। उस समूची सेनामें केवल महारथी खर और त्रिशिरा—ये दो ही राक्षस बच रहे। इधर शत्रु-संहारक भगवान् श्रीराम ज्यों-के-त्यों डटे रहे। उपर्युक्त दो राक्षसोंको छोड़कर शेष सभी निशाचर—जो महान् पराक्रमी, भयंकर और दुर्धर्ष थे—युद्धमें काम आ गये। महाबली श्रीरामके द्वारा अपनी भयंकर सेनाको धर्मपूर्वक मारी गयी देख खर एक विशाल रथपर सवार होकर वज्रधारी इन्द्रके समान श्रीरामका सामना करनेके लिये आया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## त्रिशिरा और खरका वध

खरको भगवान् श्रीरामके सम्मुख जाता देख सेनापति त्रिशिरा तुरंत उसके पास आ पहुँचा और बोला—'आप इस साहसपूर्ण कार्यसे अलग रहें। इसका भार आप मुझे सौंप दें, मैं बड़ा पराक्रमी हूँ। आप चुपचाप देखिये, मैं अभी महाबाहु रामको युद्धमें मार गिराता हूँ। मैं आपके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ, अपने हथियार छूकर शपथ खाता हूँ कि राक्षसोंके शत्रु रामका मैं अवश्य ही वध करूँगा। यदि मेरे द्वारा राम मारे गये, तो आप प्रसन्नतापूर्वक जनस्थानको लौट जाइयेगा और यदि रामने ही मुझे मार दिया, तो फिर आप आगे बढ़कर इनसे लोहा लीजियेगा।' यह सुनकर खरने कहा—'अच्छा जाओ, युद्ध करो।' आज्ञा पाकर त्रिशिरा युद्धके लिये श्रीरामचन्द्रजीके सामने उपस्थित हुआ। वह तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान जान पड़ता था। उसने आते ही बड़े भारी मेघकी तरह बाणरूपी धाराओंकी वर्षा आरम्भ कर दी तथा वह जलसे भीगे नगारेकी भाँति विकट गर्जना करने लगा। भगवान् श्रीरामने अपने धनुषसे अनेकों तीखे तीरोंकी वर्षा करके उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। तब त्रिशिराने तीन बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीके ललाटको बींध डाला। यह देख उन्होंने भी त्रिशिराकी छातीमें चौदह बाण मारे, जो सर्पके समान भयंकर थे। फिर चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार गिराया और आठ बाणोंके प्रहारसे उसके सारथिको भी रथपर ही सुला दिया। इसके बाद उन्होंने एक बाणसे उसकी ऊँची ध्वजा काट डाली और तीन वेगशाली बाणोंसे उसके तीनों मस्तक उड़ा दिये।

त्रिशिरा और दूषण दोनोंको रणभूमिमें मारा गया देख महारथी खरने बाणोंकी झड़ी लगाकर समस्त दिशाओं और विदिशाओंको ढक दिया। तब श्रीरामचन्द्रजीने भी अपने महान् धनुषको खींचकर जलकी वृष्टि करनेवाले मेघकी भाँति दुःसह बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। वे बाण चिनगारियोंसहित अग्निके समान जान पड़ते थे। उनसे सारा आकाशमण्डल भर गया। उस बाण-जालसे आच्छादित होकर सूर्यदेव भी छिप गये। तदनन्तर पतिंगा जैसे आगके पास जाता है, उसी प्रकार खर अपने सूर्यके समान तेजस्वी विशाल रथके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके पास गया। वहाँ जाकर उस राक्षसने अपने हाथकी सफाई दिखाते हुए महात्मा श्रीरामके बाणसहित धनुषको बीचसे काट डाला। फिर इन्द्रके वज्रकी भाँति प्रज्वलित दूसरे सात बाण लेकर क्रोधसे भरे हुए खरने श्रीरामके मर्ममें आघात किया। तत्पश्चात् उन्हें हजारों बाणोंसे पीड़ित कर वह जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। श्रीरामचन्द्रजीका कवच, जो सूर्यके समान दमक रहा था, खरके बाणोंसे कटकर जमीनपर जा पड़ा। उनके सम्पूर्ण शरीरमें बाण धँस गये थे। उस समय समरभूमिमें खड़े हुए श्रीराम धूमरहित प्रज्वलित अग्निकी भाँति शोभा पा रहे थे। तब शत्रुओंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीरामने अपने विपक्षीका प्राण लेनेके लिये एक दूसरे विशाल धनुषपर, जिसकी ध्वनि बहुत ही गम्भीर थी, डोरी चढ़ायी। महर्षि अगस्त्यने जो महान् वैष्णव धनुष प्रदान किया था, उसीको लेकर उन्होंने खरपर धावा किया और अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने बाणोंसे उस निशाचरकी ध्वजाको काट गिराया। तब खरको भी बड़ा क्रोध हुआ और उसने चार बाणोंसे भगवान् श्रीरामकी छातीमें प्रहार किया। इससे उनका शरीर लहूलुहान हो गया। यह देख महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने भी कुपित होकर सूर्यके समान दमकते हुए चौदह नाराचोंसे उस राक्षसको घायल किया। फिर एक बाणसे उसके रथका जुआ काट दिया। चार बाणोंसे चारों चितकबरे घोड़े मार डाले और छठे बाणसे सारथिका मस्तक काट गिराया। तत्पश्चात् तीन बाणोंसे जुएके आधारदण्ड और दोसे रथके धुरेको खंडित करके उन्होंने बारहवें बाणसे खरके धनुषके भी दो टुकड़े कर दिये। इसके बाद श्रीरघुनाथजीने हँसते-हँसते तेरहवें बाणका प्रयोग करके खरको भी घायल कर डाला। इस प्रकार धनुष, रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर खर हाथमें गदा लेकर पृथ्वीपर कूद पड़ा। उसे रथहीन होकर गदा धारण किये सामने उपस्थित देख अत्यन्त तेजस्वी भगवान् श्रीराम बोले—'निशाचर! आज मेरे छोड़े हुए सुवर्णभूषित बाण तेरे शरीरको विदीर्ण करके पृथ्वीपर गिरेंगे। तूने दण्डकारण्यमें रहनेवाले जिन-जिन धर्मपरायण ऋषियोंका भक्षण किया है, आज युद्धमें मारा जाकर सेनासहित तू भी उन्हींका अनुसरण करेगा। पहले तूने जिनका वध किया है, वे महर्षि विमानपर बैठकर आज तुझे मेरे बाणोंसे मरा हुआ देखें। कुलाधम! तेरी जितनी इच्छा हो, प्रहार कर; जितना सम्भव हो, मुझे परास्त करनेका प्रयत्न कर। आज मैं अवश्य तेरे मस्तकको ताड़के फलकी भाँति काट गिराऊँगा।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामकी बातें सुनकर खरकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उसने हँसते हुए उत्तर दिया—'दशरथकुमार ! तुम साधारण राक्षसोंको युद्धमें मारकर अपनी इतनी प्रशंसा क्यों करते हो ? मैं अकेला ही पाशधारी यमराजकी भाँति हाथमें गदा लेकर तुम्हारे और तीनों लोकोंके प्राण लेनेकी शक्ति रखता हूँ । तुमने चौदह हजार राक्षसोंका संहार किया है । आज तुम्हारा भी विनाश करके मैं उन सबके आँसू पोछूँगा—उनकी मौतका बदला चुकाऊँगा ।' यों कहकर अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए खरने वज्रके समान प्रज्वलित उस भयंकर गदाको श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर चलाया । वह विशाल गदा वृक्षों और लताओंको भस्म करती उनके समीप जा पहुँची । मृत्युपाशके समान उस गदाको अपने ऊपर आती देख श्रीरामचन्द्रजीने अनेकों बाण मारकर आकाशमें ही उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और वह चूर-चूर होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी । धर्मप्रेमी भगवान् श्रीरामने खरकी गदाको नष्ट करके हँसते हुए कहा—'राक्षसाधम ! यही तेरा सारा बल है, जिसे तूने इस गदाके साथ दिखाया है ? अब मैं अपने बाणोंसे तेरा शरीर छिन्न-भिन्न कर गला काट डालूँगा और यह पृथ्वी फेन तथा बुद्बुदोंसे युक्त तेरे गरम-गरम खूनको पान करेगी । तेरी भुजाएँ कटकर गिर जायँगी और तू इस पृथ्वीका आलिङ्गन करके सदाके लिये सो जायगा । तेरी मृत्यु हो जानेपर यह दण्डकवन शरणार्थियोंको शरण देनेवाला हो जायगा । मेरे बाणोंसे जनस्थानमें बने हुए तेरे निवासस्थानके नष्ट हो जानेपर मुनिगण इस वनमें सब ओर निर्भयतापूर्वक विचर सकेंगे ।'

यह सुनकर खरने रोषसे भरकर कठोर वाणीमें कहा—'तुम बड़े घमंडी जान पड़ते हो। भयके अवसरपर भी निर्भय बने हुए हो । सच है, कालकी फाँसीसे जकड़े हुए मनुष्योंको कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान नहीं रहता ।' ऐसा कहकर उस निशाचरने एक बार श्रीरामकी ओर भौंहें टेढ़ी करके देखा और उनपर प्रहार करनेके लिये वह चारों ओर दृष्टिपात करने लगा । इतनेमें अपने पास ही उसे एक बहुत बड़ा सालका वृक्ष दिखायी दिया । उसने तुरंत उस वृक्षको उखाड़ लिया और दोनों भुजाओंसे उठाकर विकट गर्जना करते हुए श्रीरामपर दे मारा । साथ ही यह भी कहा—'लो, अब तुम मारे गये । परम प्रतापी भगवान् श्रीरामने अपने ऊपर आते हुए उस वृक्षको अनेकों बाणोंसे काट गिराया और खरको मार डालनेके लिये अत्यन्त क्रोध प्रकट किया । वे हजारों बाण मारकर खरको घायल करने लगे । श्रीरामके बाणोंसे उस निशाचरके शरीरमें बहुतेरे घाव हो गये । उन घावोंसे फेनयुक्त रुधिरकी धारा बहने लगी, मानो पर्वतसे पानीका झरना गिर रहा हो । इतनेपर भी खरका साहस कम न हुआ, वह उन्मत्त होकर श्रीरामकी ही ओर दौड़ा । अस्त्रविद्याके ज्ञाता श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि यह राक्षस खूनसे लथपथ होनेपर भी कुपित होकर मेरी ही ओर बढ़ा आ रहा है, तो उसका वध करनेके लिये उन्होंने एक अग्निके समान तेजस्वी बाण हाथमें लिया, जो दूसरे ब्रह्मदण्डके समान भयंकर था । वह बाण देवराज इन्द्रका दिया हुआ था । धर्मात्मा श्रीरामने उसे धनुषपर रखा और खरको लक्ष्य करके छोड़ दिया । उसके छूटते ही वज्रपातके समान भयानक आवाज हुई । वह महान् बाण खरकी छातीमें लगा और वह निशाचर उसकी आगमें जलता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ।

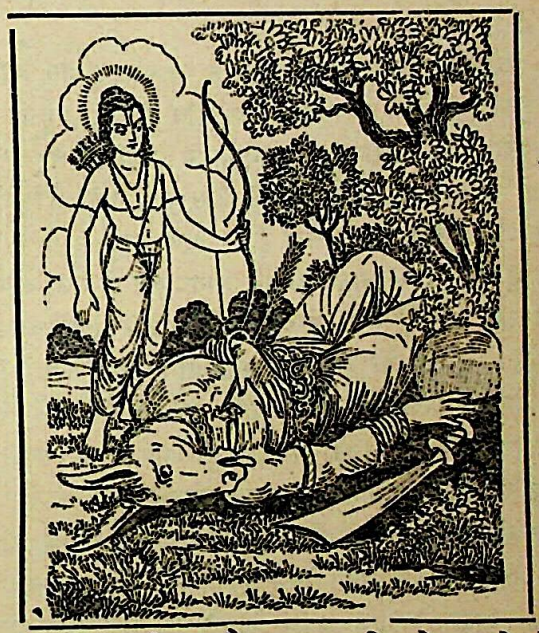

इसी समय देवता और चारण एकत्रित होकर आये और दुन्दुभि बजाते हुए सब ओर फूलोंकी वर्षा करने लगे । वे आपसमें बोले—'अहो ! आत्मतत्त्वके ज्ञाता भगवान् श्रीरामका यह महान् पराक्रम बड़ा ही अद्भुत है । इन्होंने इस महासंग्राम-में तीन ही घड़ीके भीतर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले खर-दूषण आदि चौदह हजार राक्षसोंका अपने तीखे बाणोंसे संहार कर डाला । इनका अद्भुत शौर्य और धैर्य भगवान् विष्णुके समान दिखायी देता है । यों कहकर सब देवता जैसे आये थे वैसे ही अपने-अपने स्थानको चले गये । तत्पश्चात् राजर्षि और महर्षि एकत्रित हुए । उनके साथ अगस्त्यजी भी थे । उन सबने बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीराम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रजीका सत्कार करके कहा—'रघुनन्दन ! महातेजस्वी इन्द्र इसी कार्यके लिये शरभङ्ग मुनिके पवित्र आश्रमपर आये थे। इन पापी राक्षसोंका वध करनेके लिये ही महर्षिगण अनेकों उपाय करके आपको इस देशमें ले आये हैं। दशरथनन्दन ! आपने हमलोगोंका यह बहुत बड़ा कार्य किया है। अब दण्डकारण्यके ऋषि-मुनि बेखटके अपने धर्मका अनुष्ठान करेंगे।'

श्रीरामके साथ महर्षियोंकी इस प्रकार बात हो रही थी, इतनेमें सीताके साथ लक्ष्मण भी पर्वतकी कन्दरासे निकलकर प्रसन्नतापूर्वक आश्रममें आ गये। विजयी वीर भगवान् श्रीरामने भी ऋषि-मुनियोंसे प्रशंसित होकर आश्रममें प्रवेश किया। वहाँ महर्षियोंको सुख देनेवाले शत्रुहन्ता श्रीरामचन्द्रजीकी लक्ष्मणने पूजा की। राक्षसगण मारे गये, यह देखकर विदेहनन्दिनी सीताको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने हर्षसे भरकर अपने स्वामीका आलिङ्गन किया। श्रीरामको कोई क्षति नहीं पहुँची है—यह जानकर जानकीको बहुत सन्तोष हुआ।

## रावणका अकम्पनकी सलाहसे सीताका हरण करनेके लिये जाना और मारीचके कहनेसे लङ्काको लौट आना

तदनन्तर जनस्थानसे अकम्पन नामका राक्षस बड़ी उतावलीसे लङ्काकी ओर चला और शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर रावणसे बोला—'राजन् ! जनस्थानमें रहनेवाले बहुत-से राक्षस मार डाले गये। युद्धमें खरकी भी मृत्यु हो गयी। मैं किसी तरह जान बचाकर यहाँ आया हूँ।' अकम्पनके मुँहसे ऐसी बात सुनकर दशमुख रावण क्रोधसे आगबबूला हो उठा और लाल-लाल आँखें करके बोला—'कौन मौतके मुखमें जाना चाहता है, जिसने मेरे भयंकर जनस्थानका विनाश किया है ? मेरा अपराध करके इन्द्र, कुबेर, यम और विष्णु भी चैनसे नहीं रह सकते; मैं कालका भी काल हूँ, अग्निको भी खाकमें मिला सकता हूँ तथा मौतको भी मार डालनेकी शक्ति रखता हूँ ! यदि क्रोधमें भर जाऊँ तो अपने वेगसे वायुकी गतिको भी रोक सकता हूँ और अपने तेजसे सूर्यको भी भस्म कर सकता हूँ।' रावणको इस प्रकार क्रोधसे भरा देख भयके मारे अकम्पनकी बोलती बंद हो गयी और उसने हाथ जोड़कर अभयकी याचना की। राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावणने उसे अभयदान दिया। तब अकम्पनको अपने प्राण बचनेका विश्वास हुआ और वह कहने लगा—'महाराज ! राजा दशरथके नवयुवक पुत्र श्रीराम आये हैं। उनके शरीरकी गठन सिंहके समान है, कंधे ऊँचे और भुजाएँ गोल एवं लंबी हैं तथा शरीरका रंग साँवला है। वे बड़े यशस्वी और तेजस्वी दिखायी देते हैं। उनके बल और पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं है। उन्हींने जनस्थानमें रहनेवाले दूषण और खरका वध किया है।'

अकम्पनकी बात सुनकर राक्षसराज रावणने गजराजकी भाँति लंबी साँस लेकर कहा—'अकम्पन ! बताओ तो सही, क्या राम सम्पूर्ण देवताओं तथा देवराज इन्द्रके साथ जनस्थानमें आये हैं ?' उसका प्रश्न सुनकर अकम्पनने पुनः महात्मा श्रीरामके बल और पराक्रमका वर्णन किया—'राजन् ! जिनका नाम राम है, वे संसारके समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और अत्यन्त तेजस्वी जान पड़ते हैं। उन्हें दिव्यास्त्रोंके प्रयोगका भी अच्छा ज्ञान है। युद्धकी कलामें तो वे पराकाष्ठाको पहुँचे हुए हैं। श्रीरामके साथ उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी हैं, जिनका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मनोहर, आँखें कुछ ललाई लिये हुए और स्वर दुन्दुभिके समान गम्भीर है। कोई देवता या महात्मा उनके साथ नहीं हैं; इस विषयमें आप कोई दूसरे प्रकारका विचार न करें। श्रीरामचन्द्रजीके छोड़े हुए बाण ही पाँच मुखवाले सर्प बनकर राक्षसोंको खा जाते थे। राक्षसलोग भयसे व्याकुल होकर जिस-जिस मार्गसे भागते थे, वहाँ-वहाँ वे श्रीरामको ही अपने सामने खड़ा देखते थे। इस प्रकार अकेले श्रीरामने ही आपके जनस्थानका विनाश किया है।'

यह सुनकर रावणने कहा—'मैं अभी लक्ष्मणसहित रामका वध करनेके लिये जनस्थानको जाऊँगा।' तब अकम्पनने कहा—'राजन् ! श्रीरामचन्द्रका बल और पराक्रम जैसा है, उसका यथावत् वर्णन मुझसे सुनिये। महायशस्वी श्रीराम यदि क्रोधसे भर जायँ, तो अपने पराक्रमके द्वारा कोई उन्हें काबूमें नहीं कर सकता। वे तारा, ग्रह और नक्षत्रोंसहित सम्पूर्ण आकाशमण्डलको नष्ट कर सकते हैं। अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाणोंसे समुद्र और वायुका वेग भी रोक सकते हैं तथा अपने पराक्रमसे सम्पूर्ण संसारका संहार करके पुनः नये सिरेसे उसकी सृष्टि कर सकते हैं। दशग्रीव ! जैसे पापी पुरुष स्वर्ग-पर अधिकार-नहीं प्राप्त कर सकते, उसी प्रकार समस्त राक्षसों-को साथ लेकर भी आप युद्धमें श्रीरामको नहीं जीत सकते। मेरी समझमें सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी उन्हें नहीं मार सकते। मुझे उनके वधका जो उपाय सूझा है, वह बताता हूँ; ध्यान देकर सुनिये। उनकी स्त्री सीता संसारकी सर्वोत्तम सुन्दरी है, अभी उसने यौवनके मध्यमें पदार्पण किया है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर एवं सुडौल हैं। वह सब प्रकार-के रत्नमय आभूषणोंसे सजी रहती है। सीता स्त्रियोंमें एक रत्न है। देवकन्या, गन्धर्वकन्या, अप्सरा अथवा नागकन्या—कोई भी रूपमें उसकी समानता नहीं कर सकती। अतः आप उस महान् वनमें श्रीरामचन्द्रको धोखा देकर उनकी स्त्रीका अपहरण कर लें। सीताके बिना श्रीराम जीवित नहीं रह सकते।'

राक्षसराज रावणको अकम्पनकी बात पसंद आ गयी। उसने कुछ सोचकर कहा—'ठीक है, कल प्रातःकाल सारथिके साथ मैं अकेला ही जाऊँगा और विदेहकुमारी सीताको प्रसन्नतापूर्वक इस नगरमें ले आऊँगा।' ऐसा कहकर रावण रथपर सवार हो ताटकाके पुत्र मारीचके आश्रमपर गया। मारीचने अपने राजाका भलीभाँति सत्कार किया। आसन और जल ( पाद्य-अर्घ्य आदि ) देकर उसकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् अर्थयुक्त वाणीमें पूछा—'राक्षसराज ! तुम्हारे राज्यमें कुशल तो है ? तुम बड़ी उतावलीके साथ आ रहे हो, इसीसे मेरे मनमें कुछ खटका हुआ है।' मारीचके ऐसा कहनेपर महान् तेजस्वी रावण बोला—'तात ! अनायास ही महान् पराक्रम दिखानेवाले रामने मेरे राज्यकी सीमाके रक्षक खर-दूषण आदिको मार डाला है, अतः [ इसका बदला लेनेके लिये ] मैं उनकी स्त्रीका अपहरण करना चाहता हूँ। तुम इस कार्यमें मेरी सहायता करो।' राक्षसराजकी यह बात सुनकर मारीच बोला—'किसने तुम्हें सीताका अपहरण करनेकी सलाह दी है? जिसने यह बात कही है, वह मित्रके रूपमें तुम्हारा घोर शत्रु है। किसने तुमको ऐसी खोटी सम्मति देकर कुमार्गपर पहुँचाया है। तुम युद्धमें श्रीराम-चन्द्रजीकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते। लङ्केश्वर ! मेरी बात मानो और लङ्काको लौट जाओ। तुम अपनी ही स्त्रियोंसे अनुराग करते हुए सुखी रहो और श्रीराम भी अपनी पत्नीके साथ वनमें सानन्द निवास करें।' मारीचके ऐसा कहनेपर दशमुख रावण लङ्काको लौट गया और अपने सुन्दर महलमें जा बैठा।

## शूर्पणखाके उत्तेजित करनेपर रावणका पुनः मारीचके पास जाना और उससे सहायता माँगना

इधर शूर्पणखाने जब देखा कि श्रीरामने अकेले ही चौदह हजार राक्षसोंका सफाया कर डाला और दूषण, खर तथा त्रिशिराको भी मौतके घाट उतार दिया, तो वह शोकके कारण घोर चीत्कार करने लगी और अत्यन्त उद्विग्न होकर लङ्कापुरीमें गयी। वहाँ पहुँचकर उसने महान् तेजस्वी रावणको अपने मन्त्रियोंके साथ सतमहलेकी छतपर बैठे देखा। वह सोनेके सिंहासनपर विराजमान था। देवता, गन्धर्व, भूत तथा महात्मा ऋषिगण भी उसे जीतनेमें असमर्थ थे। उसका स्वरूप मुँह फैलाकर खड़े हुए यमराजकी भाँति भयंकर जान पड़ता था। देवताओंके साथ असुरोंका संग्राम होनेके समय उसके शरीरमें वज्रके प्रहारसे पड़े हुए अनेकों घावोंके निशान अब भी दिखायी पड़ते थे। उसकी छातीमें ऐरावत हाथीके दाँतोंके गड़नेका चिह्न था। उसके बीस भुजाएँ और दस मस्तक थे तथा वक्षःस्थल विशाल था। वह दर्शनीय वस्त्राभूषणोंसे विभूषित और राजोचित चिह्नोंसे युक्त दिखायी देता था। वह पर्वत-शिखरके समान आकार धारण करके उदय होते हुए चन्द्रमा और सूर्यको अपने हाथोंसे रोक देता था। रावणने घोर वनमें दस हजार वर्षोंतक तपस्या करके ब्रह्माजीको अपने मस्तकोंकी बलि दी थी तथा उसके प्रभावसे उसने देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और सर्पोंसे अभय प्राप्त किया था। युद्धमें मनुष्यके सिवा और किसीके हाथसे उसे मृत्युका भय नहीं था। शूर्पणखा-ने अपने उस क्रूर स्वभाववाले महाबली भाई रावणको राजसिंहासनपर विराजमान देखा। वह प्रलयकालमें प्रकट हुए महाकालके समान जान पड़ता था। राक्षसी शूर्पणखा भयसे विह्वल हो रही थी। उसने मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावणके पास जाकर इस प्रकार कहा—'राक्षसराज ! तुम

स्वेच्छाचारी और निरंकुश होकर विषयभोगोंमें मतवाले हो रहे हो। तुम्हारे सिरपर भारी भय उपस्थित हुआ है, किन्तु तुम्हें उसका पता नहीं है । जो राजा उचित समयपर अपने कार्योंको स्वयं नहीं करता, वह राज्य और उन कार्योंके साथ ही नष्ट हो जाता है। जो राज्यकी देख-भालके लिये गुप्तचरोंको नियुक्त नहीं करता, प्रजाओंको दर्शन नहीं देता और भोगासक्त रहनेके कारण अपनी स्वाधीनता खो बैठता है, ऐसे राजाको प्रजा दूरसे ही त्याग देती है। मैं समझती हूँ तुम्हारे मन्त्री भी पूरे गँवार हैं, तभी तो तुमने राज्यके भीतर गुप्तचर तैनात नहीं किये हैं । तुम्हारे स्वजन मारे गये और जनस्थान उजाड़ हो गया; फिर भी तुम्हें इसकी खबर नहीं लगी। अकेले रामने भयंकर कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको यमलोक पहुँचा दिया। खर और दूषणके भी प्राण ले लिये। ऋषियोंको अभय-दान कर दिया और दण्डकारण्य-की सारी विघ्न-बाधाएँ दूर कर दीं। जनस्थानको तो उन्होंने चौपट ही कर डाला है। इस प्रकार तुम्हारे राज्यपर बहुत बड़ा संकट आ गया है; किन्तु तुम्हें उसकी बिल्कुल जानकारी नहीं है। जो राजा संकटसे डरकर सावधान नहीं रहता, समयपर अपनी रक्षाका कार्य नहीं करता, वह शीघ्र ही राज्यसे भ्रष्ट होकर तिनकोंके समान दीन हो जाता है। परन्तु जो सदा सावधान रहता, राज्यके समस्त कार्योंकी जानकारी रखता, इन्द्रियोंको वशमें किये रहता, कृतज्ञ और धर्ममें लगा रहता है तथा दूसरोंके किये हुए उपकारको मानता है, वह राजा बहुत दिनोंतक राज्य करता है। जो बाह्य नेत्रोंसे सोया रहनेपर भी नीतिकी आँखोंसे सदा जागता रहता है, जिसके क्रोध और अनुग्रहका फल प्रत्यक्ष प्रकट हो जाता है, उसी राजाकी लोग पूजा करते हैं। रावण ! तुम्हारी बुद्धि दूषित है और तुम इन सभी गुणोंसे वञ्चित हो; अतः शीघ्र ही स्वयं तो विपत्तिमें पड़ोगे ही साथ ही अपने राज्यको भी संकटमें डालोगे।'

शूर्पणखाको इस प्रकार कठोर बातें कहते देख मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए रावणने क्रोधसे भरकर पूछा—'राम कौन है ? उसका रूप, बल और पराक्रम कैसा है ? उस दुर्गम दण्डक वनमें वह किसलिये आया है ? उसके पास कौन-सा हथियार है, जिससे उसने राक्षसोंका विनाश कर दिया तथा खर, दूषण और त्रिशिराको भी मार डाला ? ठीक-ठीक बताओ, तुम्हें विरूप किसने बनाया—तुम्हारी नाक और कान किसने काट डाले ?' यह सुनकर उस राक्षसीने क्रोधसे मूर्च्छित होकर श्रीरामका यथावत् परिचय देना आरम्भ किया—'श्रीरामचन्द्र राजा दशरथके पुत्र हैं। उनकी भुजाएँ लंबी, आँखें बड़ी-बड़ी और रूप कामदेवके समान है। वे चीर और काला मृगचर्म धारण करते हैं तथा इन्द्रधनुषके समान अपने विशाल धनुषको खींचकर उसके द्वारा विषैले बाणोंकी वर्षा करते हैं । उन्होंने तीन ही घड़ीके भीतर खर और दूषणसहित चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला। आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामने स्त्रीका वध हो जानेके भयसे मुझे केवल अपमानित करके ही छोड़ दिया। उनका एक बड़ा ही तेजस्वी भाई है, जो गुण और पराक्रममें उन्हींके समान है; उसका नाम है लक्ष्मण। वह अपने बड़े भाईका बड़ा ही प्रेमी और भक्त है। उसकी बुद्धि बड़ी और पराक्रम महान् है। उसको परास्त करना बहुत ही कठिन है। श्रीराम-का तो वह दाहिना हाथ और बाहरी प्राण है। श्रीरामकी धर्मपत्नी सीता भी उनके साथ रहती है। वह पतिको बड़ी प्यारी है और सदा अपने स्वामीका प्रिय तथा हित करनेमें ही लगी रहती है। उसकी आँखें विशाल और मुख पूर्णचन्द्रके समान मनोरम है। उसका सुन्दर शरीर तपाये हुए सुवर्णकी कान्ति धारण करता है। वह विदेहराज जनककी कन्या है और सीता उसका नाम है। उसका शील-स्वभाव बड़ा ही उत्तम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उसके रूपकी समानता करनेवाली भूमण्डलमें दूसरी कोई स्त्री नहीं है। वही तुम्हारे योग्य स्त्री है। मैं उस सुन्दरीको तुम्हारी पत्नी बनानेके लिये लानेकी चेष्टामें थी। यह जानकर निर्दयी लक्ष्मणने मेरी ऐसी दशा कर दी। यदि सीताको अपनी पत्नी बनानेकी तुम्हारी इच्छा हो तो शीघ्र ही श्रीरामको जीतनेके लिये अपना दाहिना पैर आगे बढ़ाओ।'

शूर्पणखाकी ये रोंगटे खड़े कर देनेवाली बातें सुनकर रावण मन्त्रियोंसे सलाह ले अपने कर्तव्यका निश्चय करके वहाँसे चल दिया। उसने पहले सीता-हरणरूपी कार्यपर मन-ही-मन विचार किया। फिर उसके दोषों और गुणोंका भलीभाँति विवेचन किया। तत्पश्चात् बलाबलका निश्चय करके अन्तमें यह स्थिर किया कि इस कामको करना ही चाहिये। जब इस बातपर उसकी बुद्धि जम गयी तो रथशाला-में जाकर उसने सारथिको रथ जोतकर लानेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही सारथि गया और एक ही क्षणमें उसके मनके अनुकूल उत्तम रथ जोत लाया। वह रथ इच्छानुसार चलनेवाला तथा सोने और रत्नोंसे विभूषित था। उसमें सोनेके गहनोंसे सजे हुए गधे जुते थे, जिनका मुख पिशाचोंके समान था। राक्षसराज रावण उस रथपर सवार हो समुद्रकी ओर चल दिया। समुद्रके तटपर पहुँचनेपर उसने देखा कि कहीं तमालके फूल खिले हुए हैं और कहीं गोल मिरचकी झाड़ियाँ शोभा पा रही हैं तथा जलके किनारे ढेर-के-ढेर मोती सूख रहे हैं। पर्वतमालाएँ, मूँगोंकी राशियाँ, सोने और चाँदीके शिखर, सुन्दर, अद्भुत एवं स्वच्छ पानीके झरने तथा धन-धान्यसे सम्पन्न, स्त्री-रत्नोंसे भरे हुए एवं हाथी, घोड़े और रथ आदिसे युक्त नगर भी उसकी दृष्टिमें पड़े। इन सब दृश्योंके कारण वह सागर-तटवर्ती प्रदेश स्वर्गकी शोभाको भी मात कर रहा था। वहाँ रावणने एक मेघके समान श्याम एवं सघन वटवृक्ष देखा, जिसे चारों ओरसे घेरकर अनेकों मुनि बैठे थे। उसकी शाखाएँ सब ओर सौ-सौ योजन दूरतक फैली हुई थीं। उस वृक्षका नाम सुभद्रवट था। गरुड़के बैठनेसे उसकी एक शाखा टूट चुकी थी, जिसका चिह्न उसमें अभीतक मौजूद था। यह सब देखते हुए रावणने नदियोंके स्वामी समुद्रको पार करके एक परम पवित्र, रमणीय वनके भीतर पदार्पण किया। वहाँ एकान्त स्थानमें उसे एक आश्रम दिखायी दिया, जिसमें कृष्णमृग-चर्म एवं जटा धारण किये, नियमित आहार करनेवाला मारीच नामका राक्षस रहता था। रावण उससे मिला और मारीचने अलौकिक भोग-सामग्रियोंके द्वारा अपने राजा रावणका विधिवत् पूजन किया। अन्न और जलसे उसका पूर्ण सत्कार करके मारीचने प्रयोजनकी बातें पूछते हुए कहा—'राक्षसराज! तुम्हारी लङ्कामें कुशल तो है? किस कामके लिये तुम पुनः इतनी जल्दी यहाँ आये हो?'

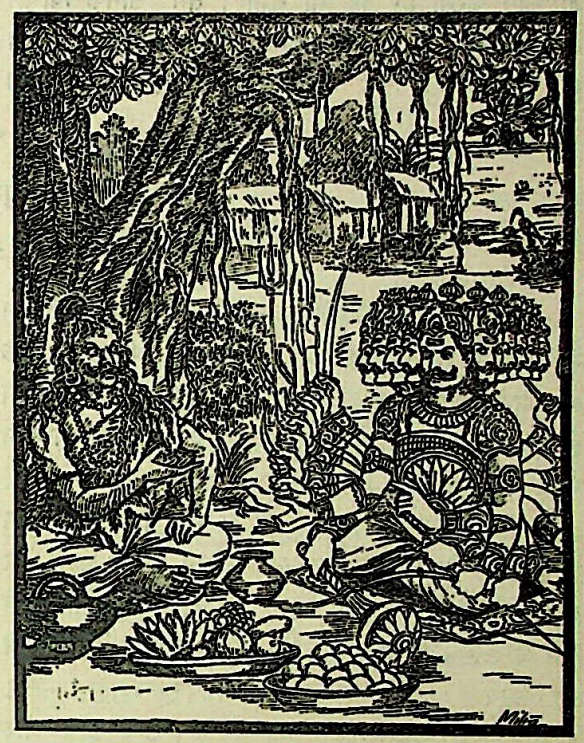

मारीचके इस प्रकार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल महातेजस्वी रावणने कहा—'तात मारीच! मेरी बात सुनो, मैं बहुत दुखी हूँ। तुम्हीं मुझे सबसे बढ़कर सहारा देनेवाले हो। तुम जनस्थानको जानते हो, जहाँ मेरा भाई खर, दूषण, बहिन शूर्पणखा, महाबाहु त्रिशिरा तथा और भी बहुत-से शूरवीर निशाचर रहा करते थे। इस समय वहाँ जितने महाबली राक्षस थे, वे सभी युद्धमें रामके साथ भिड़ गये; किन्तु रामने अकेले और पैदल होनेपर भी अपने तेजस्वी बाणोंसे उन चौदह हजार राक्षसोंका विनाश कर डाला तथा खर, दूषण और त्रिशिराको भी मौतके घाट उतारकर समूचे दण्डक वनको निर्भय बना दिया। इतना ही नहीं, उसने बिना किसी वैर-विरोधके मेरी बहिनके नाक-कान काटकर उसका भी रूप बिगाड़ दिया। अतः मैं भी [ बदला लेनेके लिये ] उसकी देवकन्याके समान सुन्दरी धर्मपत्नी सीताको जनस्थानसे बलपूर्वक हर लाऊँगा। तुम इस कार्यमें मेरी सहायता करो। पराक्रममें, युद्धमें और वीरोचित


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमानमें तुम्हारे समान कोई नहीं है। नाना प्रकारके उपाय बतानेमें भी तुम बड़े बहादुर हो। बड़ी-बड़ी मायाओंका प्रयोग करनेमें तुमने विशेष कुशलता प्राप्त की है; इसीलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हें मेरी सहायताके लिये जो काम करना है, वह भी सुनो। तुम सोनेके विचित्र मृग बनकर रामके आश्रमपर सीताके सामने विचरो। मुझे विश्वास है कि मृगके रूपमें तुम्हें देखकर सीता अपने स्वामी राम तथा देवर लक्ष्मणसे उसे पकड़ लानेके लिये कहेगी। जब वे दोनों तुम्हें पकड़नेके लिये दूर निकल जायँगे, तब मैं बिना किसी विघ्न-बाधाके सूने आश्रमसे सुखपूर्वक सीताको हर लाऊँगा। उसके बाद स्त्रीका अपहरण हो जानेसे जब राम अत्यन्त दुखी और दुर्बल हो जायगा, उस समय मैं निर्भय होकर उसके ऊपर प्रहार कर सकूँगा।'

## मारीचका रावणको समझाना

रावणके मुँहसे श्रीरामके सम्बन्धकी बातें सुनकर मारीचका मुँह सूख गया, वह थर्रा उठा। उसे श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमका ज्ञान था, इसलिये वह अत्यन्त भयभीत और दुखी हो हाथ जोड़कर यथार्थ वचन बोला। वह बात रावण तथा मारीच दोनोंके लिये हितकर थी। उसने कहा—'राजन्! हमेशा प्रिय वचन बोलनेवाले पुरुष तो बहुत मिलते हैं; किन्तु जो अप्रिय होनेपर भी हितकर हो, ऐसी बातके कहने और सुननेवाले दोनों ही दुर्लभ हैं।* तुम कोई गुप्तचर तो रखते नहीं और स्वयं तुम्हारा हृदय बहुत ही चञ्चल है; इसलिये यह निश्चय है कि तुम श्रीरामचन्द्रजीको बिल्कुल नहीं जानते। वे पराक्रमोचित गुणोंमें बहुत बढ़े-चढ़े हैं। उन्हें इन्द्र और वरुणके समान समझो। जनकनन्दिनी सीता कहीं तुम्हारी मृत्युके लिये ही तो नहीं उत्पन्न हुई हैं? कहीं ऐसा न हो कि सीताके कारण तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा संकट आ जाय। तुम-जैसे स्वेच्छाचारी और उच्छृङ्खल राजाको पाकर लङ्कापुरी तुम्हारे और राक्षसोंके सहित नष्ट न हो जाय। तुम्हारे समान दुराचारी तथा पापपूर्ण विचार रखनेवाला खोटी बुद्धिका शासक अपना, अपने स्वजनोंका तथा समूचे राष्ट्रका भी विनाश कर डालता है। श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण प्राणियोंके हितकारी हैं। कैकेयीद्वारा ठगे गये अपने पिताको सत्यवादी बनाने तथा कैकेयी और राजा दशरथका प्रिय करनेके लिये ही वे राज्य और भोगोंका परित्याग करके दण्डक वनमें आये हैं। श्रीरामचन्द्रजी धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। वे सज्जन और सत्यपराक्रमी हैं। जैसे इन्द्र समस्त देवताओंके अधिपति हैं, उसी प्रकार राम भी सम्पूर्ण जगत्के राजा हैं। विदेहराजकुमारी सीता उन भगवान् रामके तेजसे सुरक्षित हैं। उन्हें बलपूर्वक हर लानेका हौसला कैसे करते हो? क्या तुम सूर्यसे उसकी प्रभाको छीन लाना चाहते हो? श्रीरामचन्द्रजी प्रज्वलित अग्नि और यमराजके समान हैं। वे युद्धमें बड़े ही कठोर और शत्रु-सेनाका नाश करनेवाले हैं। तुम अपने राज्य, सुख और प्यारे प्राणोंका मोह छोड़कर उनके पास जानेका साहस न करो। जनककन्या सीता रामका ही अप्रमेय तेज हैं। वे उनके धनुषके आश्रयमें रहती हैं। तुममें इतनी शक्ति नहीं है कि उनका अपहरण कर सको। राक्षसराज! यह व्यर्थका उद्योग करनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? जिस दिन युद्धमें तुम्हारे ऊपर रामकी दृष्टि पड़ जाय, उसी दिन तुम अपने जीवनका अन्त समझना! विभीषण आदि धर्मात्मा मन्त्रियोंके साथ बैठकर तुम अपने जीवन, सुख और अत्यन्त दुर्लभ राज्यकी रक्षाके विषयमें भलीभाँति सलाह कर लो तथा दोष और गुणोंको, अपनी प्रबलता और बलहीनताको अच्छी तरह समझ लो। इसके बाद अपने कर्तव्यका निश्चय करो। अपने और श्रीरामचन्द्रजीके बलको ठीक-ठीक जान लेनेके बाद जिसमें अपना हित हो, उस उपायका विचार करो। फिर तुम्हें जो उचित जान पड़े, वही कार्य करना चाहिये। मैं तो समझता हूँ कि कोसलराजकुमार श्रीरामचन्द्रजीके साथ तुम्हारा युद्ध करना उचित नहीं है।

'मेरी एक बात और सुनो। यह तुम्हारे लिये बहुत ही उत्तम और योग्य सिद्ध होगी। एक समयकी बात है, मैं अपने पराक्रमके अभिमानमें आकर पर्वतके समान शरीर धारण किये इस पृथ्वीपर चक्कर लगा रहा था। उस समय मुझमें एक हजार हाथियोंका बल था। मैं ऋषियोंका मांस खाता दण्डकारण्यमें विचरा करता था। उन दिनों धर्मपरायण

---

* सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता च दुर्लभः॥(३७।२)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


महामुनि विश्वामित्रको मुझसे विशेष भय हो गया था। वे स्वयं राजा दशरथके पास गये और उनसे श्रीरामचन्द्रको माँगकर अपने साथ ले आये। इसके बाद उन्होंने यज्ञकी दीक्षा ली और राम अपने अद्भुत धनुषको टङ्कारते हुए उनकी रक्षाके लिये डट गये। अभीतक उनमें [ मूँछ आदि ] जवानीके चिह्न प्रकट नहीं हुए थे। उनकी किशोरावस्था थी। शरीरका रंग साँवला और आँखें बड़ी सुन्दर थीं। वे एक वस्त्र धारण किये, हाथोंमें धनुष लिये सुन्दर शिखा और सोनेके हारसे सुशोभित थे। अपने तेजसे समूचे वनकी शोभा बढ़ाते हुए नवोदित बालचन्द्रके समान दीख पड़ते थे। मैं बड़े अहंकारके साथ विश्वामित्रके आश्रममें घुसा; क्योंकि मुझे यह वरदान मिल चुका था कि देवता मुझे मार नहीं सकेंगे। भीतर प्रवेश करते ही श्रीरामचन्द्रकी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। उन्होंने मुझे देखते ही सहसा धनुष उठा लिया और बिना किसी घबराहटके उसपर डोरी चढ़ा दी। मैं मोहवश श्रीरामचन्द्रको बालक समझकर उनकी अवहेलना करता बड़ी तेजीके साथ विश्वामित्रकी यज्ञवेदीकी ओर दौड़ा। इतनेमें रामने मेरे ऊपर एक तीखा तीर चलाया। उस बाणकी चोट खाकर मैं सौ योजन दूर समुद्रमें आकर गिरा। उस समय उन्होंने मुझे मारना नहीं चाहा था। इसीलिये मेरी जान बचा दी। उनके बाणके वेगसे मैं अचेत होकर दूर फेंक दिया गया और अगाध समुद्रके जलमें आ गिरा, फिर होशमें आनेपर मैं लङ्कापुरीमें गया। इस प्रकार अनायास ही महान् कर्म करनेवाले रामने अपनी बाल्यावस्थामें मुझे तो छोड़ दिया और मेरे सहायकोंको मार गिराया। इसीलिये मैं तुम्हें मना करता हूँ। यदि रामके साथ विरोध करोगे, तो तुरंत ही घोर आपत्तिमें पड़ जाओगे और अन्तमें अपने जीवनसे भी हाथ धो बैठोगे। राक्षसोंको बहुत बड़ा दुःख और हानि उठानी पड़ेगी तथा सीताके कारण नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित इस लङ्कापुरीका विनाश भी हमें अपनी आँखों देखना पड़ेगा। तुम्हारे सामने वह दृश्य भी आयेगा कि लङ्कापुरी बाणोंसे छा गयी है, उसमें आग लग गयी है और उसका एक-एक घर जलकर खाक हो गया है। परायी स्त्रीके संसर्गसे बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है। तुम्हारे अन्तःपुरमें हजारों युवती स्त्रियाँ हैं। उन अपनी ही स्त्रियोंसे अनुराग करो, कुलकी रक्षा करो, राक्षसोंके प्राण बचाओ तथा अपनी मान-प्रतिष्ठा, उन्नति, राज्य और प्यारी जिंदगीको नष्ट न होने दो। यदि तुम अपनी सुन्दरी स्त्रियों तथा मित्रोंका सुख अधिक कालतक भोगना चाहते हो तो रामका अपराध न करो। मैं तुम्हारा हितैषी मित्र हूँ। यदि मेरे बारंबार मना करनेपर भी तुम सीताका बलपूर्वक अपहरण करोगे, तो तुम्हारी सारी सेना नष्ट हो जायगी और तुम रामके बाणोंसे अपने प्राण गवाँकर बन्धु-बान्धवोंके साथ यमलोककी यात्रा करोगे।

'इस प्रकार उस समय तो मैं युद्धमें किसी प्रकार श्रीरामचन्द्रके हाथसे जीवित बच गया। उसके बाद इन दिनोंमें भी जो घटना घटी है, उसे सुन लो। एक दिन मृगरूपधारी दो राक्षसोंके साथ मैं दण्डक वनमें गया और अत्यन्त भयंकर रूप धारण करके अग्निशालामें, जलाशयोंके घाटपर तथा देववृक्षोंके नीचे बैठे हुए तपस्वियोंको तिरस्कृत करता हुआ सब ओर विचरने लगा। धर्मानुष्ठानमें लगे हुए तापसोंको मारकर उनका रक्त पीना और मांस खाना—यही हमारा काम हो गया था। इस प्रकार दण्डक वनमें घूमते हुए हम धर्मका पालन करनेवाले तपोनिष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके पास भी जा पहुँचे। विदेहनन्दिनी महाभागा सीता और महारथी लक्ष्मण भी उनके साथ ही थे। वे भी तपस्वी वेषमें रहकर नियमित आहार करते हुए सब प्राणियोंके हितमें संलग्न हैं। मैं रामको तपस्वी-वेषमें पहचान गया। उस समय पहलेके वैरका स्मरण करके मुझे बड़ा क्रोध हुआ। यद्यपि उनका पहला प्रहार मुझे भूला नहीं था, तथापि अपनी बुद्धि शुद्ध न होनेके कारण मैं तीखे सींगोंवाले मृगका रूप धारण किये रामको मार डालनेकी इच्छासे उनकी ओर दौड़ा। तब उन्होंने अपने महान् धनुषको तानकर तीन बाण हमपर चलाये। वज्रके समान भयंकर और रक्त पीनेवाले वे तीनों बाण एक ही साथ हमारी ओर चले। मैं तो रामके पराक्रमको जानता था और एक बार उनके भयका सामना कर चुका था, इसलिये निकल भागा। भाग जानेसे मैं तो बच गया; किन्तु मेरे दोनों साथी राक्षस मारे गये। रामके बाणसे छुटकारा पाकर किसी तरह मुझे नया जीवन मिला और तबसे बुरे कर्मोंका परित्याग करके एकाग्रचित्त होकर मैं योग-साधन एवं तपस्यामें लग गया हूँ। मुझे एक-एक वृक्षमें चीर, कृष्णमृगचर्म तथा धनुष धारण किये राम ही दिखायी देते हैं। मैं भयभीत होकर हजारों रामोंको अपने सामने खड़ा देखता हूँ। यह सारा जंगल ही मुझे राममय प्रतीत हो रहा है। राक्षसराज! जब मैं एकान्तमें बैठता हूँ, तो मुझे रामके ही दर्शन होते हैं। सपनेमें रामको देखकर मैं जाग्रत्-अवस्थाकी भाँति घबरा उठता हूँ। रत्न और रथ आदि जितने रकारादि नाम हैं, वे मेरे कानोंमें पड़ते ही अत्यन्त भय उत्पन्न कर देते हैं। इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार मैं निरन्तर रामसे डरता रहता हूँ। मैं उनके प्रभावको जानता हूँ। इसीलिये कहता हूँ कि रामके साथ तुम्हारा युद्ध करना कदापि उचित नहीं है। रावण! तुम्हारी इच्छा हो तो रामसे युद्ध करो अथवा उन्हें क्षमा कर दो; किन्तु यदि मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरे सामने रामकी चर्चा न करो। मैं इस काममें तुम्हारा साथ नहीं दे सकता। तुम मेरे बन्धु हो, तुम्हारा हित करनेकी इच्छासे ही मैं ये बातें कह रहा हूँ। यदि नहीं मानोगे तो युद्धमें रामके बाणोंसे घायल होकर तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित प्राण-त्याग करना पड़ेगा।'

## रावणका मारीचको मृत्युकी धमकी देना, मारीचका कपटमृगके वेषमें सीताको लुभाना और श्रीरामका उसे मारनेके लिये जाना

मारीचकी बातें मानने योग्य और उचित थीं; तो भी जैसे मृत्यु चाहनेवाला मनुष्य दवा नहीं लेता, उसी प्रकार रावणने उन्हें ग्रहण नहीं किया। उसने यथार्थ और हितकी बात बतानेवाले मारीचसे कठोर और अनुचित वचन कहा—'मारीच! तुम जो अनाप-शनाप बातें बक रहे हो, ये मेरे लिये बिल्कुल व्यर्थ हैं, ऊसरमें बोये हुए बीजके समान हैं। एक स्त्रीके मूर्खतापूर्ण वचन सुनकर जो राज्य, मित्र, माता और पिताको छोड़कर सहसा जंगलमें चला आया है, उस रामचन्द्रकी प्राणोंसे भी प्यारी भार्या सीताका मैं अवश्य हरण करूँगा। यह मेरे हृदयका निश्चित विचार है। इसे इन्द्र आदि देवता और असुर—कोई नहीं बदल सकते। यदि इस कार्यका निर्णय करनेके लिये तुमसे दोष-गुण अथवा उपाय और उनके विघ्नोंके दूर करनेके विषयमें प्रश्न किया जाता, तो तुम्हें ऐसी बातें कहनी चाहिये थीं। जो अपना कल्याण चाहता हो, उस बुद्धिमान् मन्त्रीको उचित है कि वह राजाके पूछनेपर ही अपना अभिप्राय प्रकट करे और वह भी हाथ जोड़कर—नम्रताके साथ। राजाके सामने ऐसी बात कहनी चाहिये जो सर्वथा अनुकूल, मधुर, उत्तम, हितकारी और आदरसे युक्त हो। राजा सम्मानका भूखा होता है; उसकी बातका खण्डन करके आक्षेपपूर्ण भाषामें यदि हितकर वचन भी कहा जाय, तो वह उसे पसंद नहीं करता। अपार तेजस्वी राजा अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और वरुण—इन पाँच देवताओंके स्वरूपको धारण किये रहते हैं; इसलिये उनमें इन पाँचोंके गुण—प्रताप, पराक्रम, सौम्यभाव, दण्ड और प्रसन्नता—विद्यमान रहते हैं। अतः सभी अवस्थाओंमें राजाओंका सदा सम्मान और पूजन करना चाहिये। तुम तो अपने धर्मको न जाननेके कारण केवल मोहके वशीभूत हो रहे हो। मैं तुम्हारा अभ्यागत—अतिथि हूँ और तुम दुष्टतावश मुझसे ऐसी कठोर बातें कह रहे हो। मैं तुमसे अपने कर्तव्यके गुण-दोष नहीं पूछता और न यही जानना चाहता हूँ कि मेरे लिये क्या उचित है। मैंने तो इतना ही कहा था कि तुम्हें इस कार्यमें मेरी सहायता करनी चाहिये। अच्छा, अब तुम्हें जिस रूपमें सहायता करनी है, उसे सुनो। तुम सोनेका विचित्र मृग बनकर रामके आश्रमपर जाओ और सीताके सामने विचरो। एक बार जानकीको लुभाकर जिधर तुम्हारी इच्छा हो, उस ओर चले जाना। सोनेका मृग देखकर मिथिलेशकुमारी सीताको बड़ा आश्चर्य होगा और वह उसे पकड़ लानेके लिये रामसे कहेगी। जब राम तुम्हें पकड़नेके लिये आश्रमसे दूर चले जायँ तो तुम उन्हींके स्वरमें 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकारना। इन शब्दोंको सुनकर सीताकी प्रेरणासे लक्ष्मण भी स्नेहवश घबराया हुआ अपने भाईके पीछे चला जायगा। फिर तो मैं सुखपूर्वक सीताको हर लाऊँगा। बस, इसी प्रकार यह काम करके तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चले जाना। मारीच! इस कार्यके लिये मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दे दूँगा। सौम्य! अब कार्यकी सिद्धिके लिये प्रस्थान करो, तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो। मैं रथपर बैठकर दण्डक वनतक तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा। रामको धोखा देकर बिना युद्ध किये ही सीताको अपने हाथमें करके कृतार्थ हो तुम्हारे साथ ही लङ्काको लौट आऊँगा। यदि तुम यह काम करनेसे इन्कार करोगे तो तुम्हें अभी मार डालूँगा। मेरा यह कार्य तुम्हें अवश्य करना पड़ेगा। भले ही इसके लिये मुझे तुम्हारे ऊपर बल-प्रयोग करना पड़े। रामके सामने जानेपर तुम्हारे प्राण जानेका सन्देह मात्र है; किन्तु मेरे साथ विरोध करनेपर तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। इन सब बातोंपर बुद्धि लगाकर भलीभाँति विचार कर लो। उसके बाद जो हितकर जान पड़े, वैसा ही करो।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावणके द्वारा ऐसी प्रतिकूल आज्ञा पाकर मारीचने निःशङ्क होकर उससे कहा—'निशाचर! पुत्र, राज्य और मन्त्रियोंके साथ तुम्हारे विनाशका यह मार्ग किस पापीने बतलाया है? आज यह बात साफ तौरपर मालूम हो गयी कि तुम्हारे दुर्बल शत्रु तुम्हें किसी बलवान्‌से भिड़ाकर नष्ट होते देखना चाहते हैं। राजन्! यह निश्चित समझो कि श्रीरामके सामने पड़ते ही मैं मारा जाऊँगा और यदि तुमने सीताका हरण किया तो तुम भी नहीं बचोगे, न लङ्का रहने पायेगी और न वहाँके निवासी राक्षस ही। मैं तुम्हारा हितैषी हूँ, इसीलिये तुम्हें रोक रहा हूँ; किन्तु तुम्हें मेरी बात सहन नहीं होती। सच है, जिनकी आयु समाप्त हो जाती है, वे मरणासन्न पुरुष अपने मित्रोंकी कही हुई हितकर बातें ग्रहण नहीं करते। राजन्! मेरे वधके लिये जिनका हथियार सदा उठा ही रहता है, उन धनुष-बाण एवं तलवार धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने यदि फिर मुझे देख लिया, तो मेरे प्राणोंकी खैर नहीं है। अच्छा, जो भी हो, अब मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो।' मारीचके इस वचनसे रावणको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उसे छातीसे लगाकर कहा—'मारीच! यह रत्नोंसे विभूषित मेरा आकाशगामी रथ तैयार है। इसमें पिशाचोंके-से मुखवाले गधे जुते हुए हैं। इसपर मेरे साथ जल्दीसे बैठ जाओ। तुम्हारे जिम्मे एक ही काम है—सीताको लुभाना। उसके बाद तुम जहाँ चाहो, जा सकते हो। आश्रम सूना हो जानेपर मैं सीताको जबर्दस्ती उठा लाऊँगा।' मारीचने रावणकी बात मान ली। तदनन्तर वे दोनों विमानाकार रथपर बैठकर शीघ्र ही उस आश्रमसे चल दिये। मार्गमें अनेक पर्वतों, नदियों, राष्ट्रों और नगरोंको देखते हुए दोनोंने दण्डक वनमें प्रवेश किया और वहाँ श्रीरामचन्द्रजीका आश्रम देखा। तब उस सुवर्णभूषित रथसे उतरकर रावणने मारीचका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—'सखे! यह केलोंसे घिरा हुआ रामका आश्रम दिखायी दे रहा है। अब शीघ्र ही वह काम करो, जिसके लिये हमलोगोंका यहाँ आना हुआ है।'

रावणकी बात सुनकर मारीच मृगका रूप धारण करके श्रीरामके आश्रमके सामने विचरने लगा। उस समय उसने बड़ा ही अद्भुत रूप बनाया। उसके सींगोंके ऊपरी भाग इन्द्रनील मणिके बने हुए जान पड़ते थे। मुँखपर कहीं काला और कहीं सफेद रंग था। उसके कान नील कमलके समान और गर्दन कुछ ऊँची थी। उदरका भाग इन्द्रनील मणिकी कान्ति धारण कर रहा था। उसके खुर वैदूर्य मणिके समान, जाँघें पतली और पूँछ ऊपरसे इन्द्र-धनुषके रंगकी थी। उसकी देह बड़ी ही मनोहर और चिकनी थी। वह नाना प्रकारकी रत्नमय बुँदकियोंसे विभूषित दिखायी देता था। सीताको लुभानेके लिये भाँति-भाँतिकी धातुओंसे चित्रित, दर्शनीय एवं लुभावना रूप बनाकर वह राक्षस श्रीरामके आश्रम तथा उस रमणीय वनकी शोभा बढ़ाने लगा और हरी-हरी घास चरता हुआ विचरने लगा। वनमें रहनेवाले दूसरे-दूसरे मृग उसे देखकर पास आते और उसे सूँघकर दिशा-विदिशाओंमें भाग जाते थे। मारीच भी यद्यपि मृगोंका घातक ही था, तथापि अपने भावको छिपानेके लिये उन जंगली मृगोंका स्पर्श करके भी उन्हें खाता नहीं था।

इसी समय सुन्दर नेत्रोंवाली विदेहनन्दिनी सीता, जो फूल तोड़नेमें लगी थीं, कनेर, अशोक और आमके पौधोंको लाँघती उधर आ निकलीं। उन्होंने उस रत्नमय मृगको देखा, जिसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग मोती और मणियोंसे चित्रित-सा जान पड़ता था। उसके दाँत और ओठ बड़े सुन्दर थे तथा शरीरके रोएँ चाँदीके समान थे। उसके ऊपर दृष्टि पड़ते ही जानकीकी आँखें आश्चर्यसे खिल उठीं और वे बड़े स्नेहसे उसकी ओर निहारने लगीं। उन्होंने वैसा मृग पहले कभी नहीं देखा था। वह नाना प्रकारके रत्नोंका ही बना हुआ जान पड़ता था। उसे देखकर जनककिशोरी सीताको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने अपने पति भगवान् श्रीरामको तथा लक्ष्मणको भी पुकारा। उनकी आवाज सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई वहाँ आ पहुँचे तथा उन्होंने भी उस मृगको देखा। उसे देखकर लक्ष्मणके मनमें सन्देह हुआ और वे बोले—'आर्य! मैं तो समझता हूँ इस मृगके रूपमें वह मारीच नामक राक्षस ही आया है। स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले इस पापीने कपट-वेष बनाकर वनमें शिकार खेलनेको आये हुए अनेकों राजाओंका वध किया है। यह अनेकों प्रकारकी मायाएँ जानता है, इसीने आज यह मायामय मृगका रूप बनाया है। पृथ्वीनाथ! भूमण्डलमें ऐसा विचित्र रत्नमय मृग कहीं नहीं है, अतः इसके माया होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर सीताने उन्हें रोककर बड़े हुलाससे कहा—'आर्यपुत्र! यह मृग बड़ा ही सुन्दर है, आप इसे ले आइये। यह हमलोगोंके मन-बहलावके लिये रहेगा। हमारे इस आश्रमपर अनेकों पवित्र एवं दर्शनीय मृग एक साथ चरने आते हैं किन्तु आजके पहले मैंने दूसरा कोई भी मृग ऐसा नहीं देखा। यह रंग-बिरंगा होनेके कारण विचित्र दिखायी दे रहा है। ऐसा जान पड़ता है मानो रत्नोंका ही बना हुआ हो। यह निर्भय होकर समूचे वनको प्रकाशित करता फिरता है। इसका रूप, इसकी शोभा अद्भुत है। इसकी ध्वनि भी बड़ी सुन्दर है! यह विचित्र रंगोंसे सुशोभित अद्भुत मृग मेरे मनको मोहे लेता है। यदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यह जीवित ही पकड़ लिया जाय तो एक कौतुककी वस्तु होगा और सबको आश्चर्यमें डाला करेगा। जब हमारे वनवासकी अवधि पूरी हो जायगी और हम पुनः अपना राज्य पा लेंगे, तो उस समय यह मृग अन्तःपुरकी शोभा बढ़ायेगा। यदि कदाचित् जीते-जी न पकड़ा जा सका, तो भी इसका चमड़ा ही बहुत सुन्दर होगा।'

उस मृगके रोएँ सुनहरे रंगके थे और सींग इन्द्रनील मणिकी शोभाको मात कर रहे थे। वह अपने स्वर्णमय शरीरपर बालसूर्यकी कान्ति धारण किये था। उसका अद्भुत रूप देखकर और सीताकी बातें सुनकर भगवान् श्रीरामका भी मन आश्चर्यमग्न हो गया। उन्होंने हर्षमें भरकर लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा—'सुमित्रानन्दन! देखो, सीताके मनमें इस मृगको पानेके लिये कितनी प्रबल इच्छा जाग उठी है। वास्तवमें यह मृग है भी बहुत ही सुन्दर। देवराज इन्द्रके नन्दनवनमें और कुबेरके चैत्ररथ वनमें भी ऐसा मृग नहीं होगा; फिर पृथ्वीपर तो हो ही कहाँसे सकता है। नाना रत्नोंसे विभूषित इसके सुवर्णमय दिव्य रूपको देखकर किसके मनमें विस्मय नहीं होगा। इस श्रेष्ठ मृगके सुनहरे चमड़ेपर विदेहनन्दिनी सीता मेरे साथ विराजमान होंगी। यदि तुम्हारे कथनानुसार यह राक्षसकी माया हो, तो भी मुझे इसका वध करना ही चाहिये; क्योंकि दुष्ट चित्तवाले इस क्रूरकर्मा मारीचने वनमें विचरते समय पहले अनेकों श्रेष्ठ मुनियोंकी हत्या की है। शिकार खेलनेके लिये आये हुए बहुत-से धनुर्धारी राजाओंका इसके द्वारा विनाश हुआ है, अतः यह अवश्य ही वध करनेके योग्य है। तुम अस्त्र और कवच आदिसे सुसज्जित होकर यहाँ सावधानीके साथ जानकीकी रक्षा करो। मैं अभी जाकर इस मृगको मार डालूँगा अथवा जीता ही पकड़ लाऊँगा। देखो, मृगका चमड़ा हस्तगत करनेके लिये वैदहीको कितनी उत्कण्ठा हो रही है। इसलिये मैं इस मृगको ले आनेके लिये तुरंत जा रहा हूँ। तुम आश्रमपर रहकर सावधानीके साथ सीताकी देखभाल करना। बुद्धिमान् पक्षी गृध्रराज जटायु बड़े ही बलवान् और समर्थ हैं; उनके साथ होशियारीसे रहकर सीताकी रखवाली करना और राक्षसोंकी ओरसे हर समय चौकन्ने रहना।'

## मारीचका वध और सीताकी प्रेरणासे लक्ष्मणका श्रीरामके पास जाना

भाई लक्ष्मणको इस प्रकार आदेश देकर रघुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले महातेजस्वी भगवान् श्रीरामने सोनेकी मूँठवाली तलवार उठायी और धनुष हाथमें लेकर दो तरकस बाँधे तथा तीव्र गतिसे मृगकी ओर चल दिये।

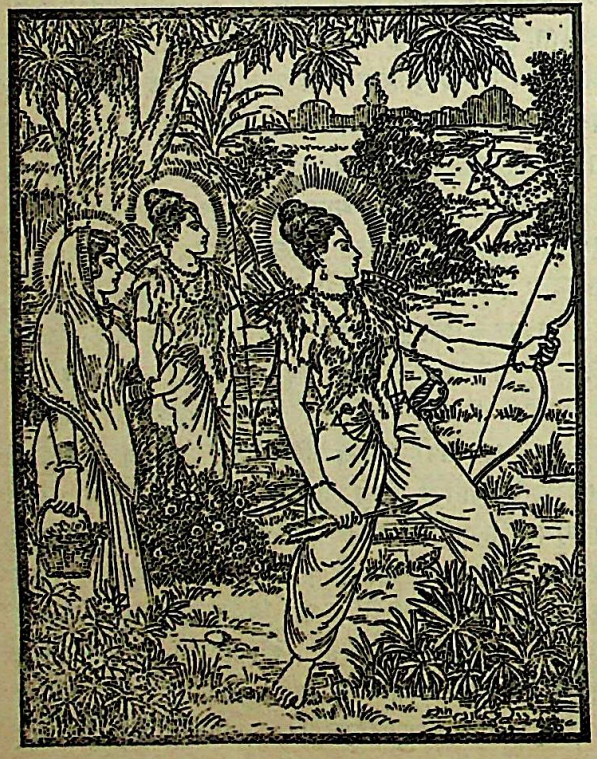

उन्हें आते देख वह मृग डरके मारे छिप गया, किन्तु फिर तुरंत ही सामने आ गया। श्रीरामचन्द्रजी धनुष लिये उस मृगकी ओर दौड़े। उन्होंने देखा वह अपने रूपसे सामनेकी दिशाको प्रकाशित कर रहा है। वह कभी बाण लगनेकी आशङ्कासे भागकर बहुत दूर निकल जाता और कभी इतना निकट आ जाता कि उसे हाथसे पकड़ लेनेको जी चाहता। उसको इस प्रकार देखते-देखते भगवान् श्रीराम धनुष उठाये, उसका पीछा करने लगे। इस तरह वह मृग बना हुआ मारीच कभी छिपता और कभी प्रकट होता श्रीरामचन्द्रजीको आश्रमसे दूर ले गया। वे थककर एक जगह छायामें खड़े हो गये। इतनेमें वह मृग दूसरे मृगोंके साथ पास ही दिखायी दिया। अतः वे पुनः उसे पकड़नेके लिये आगे बढ़े। यह देखकर वह भयके कारण तुरंत ही छिप गया। फिर थोड़ी ही देरमें दूरके वृक्षोंके बीचसे होकर निकला। तब महातेजस्वी श्रीरामने उसे मार डालनेका ही निश्चय किया और सूर्यकी किरणोंके समान एक प्रज्वलित बाण निकालकर उसे धनुषपर रखा। फिर धनुषको जोरसे खींचकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

उस ब्रह्माके बनाये बाणको मृगके ऊपर छोड़ दिया। वह वज्रके समान तेजस्वी उत्तम बाण उस मृगके शरीरको विदीर्ण करता उसके हृदयमें घुस गया। उसकी चोटसे आतुर होकर वह राक्षस ताड़के बराबर उछलकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और रावणके वचनका स्मरण करके श्रीरामचन्द्रजीके-से स्वरमें उसने 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकारा। श्रीरामके अनुपम बाणसे उसका मर्म बिंध गया था। अतः प्राण-त्याग करते समय मृगका रूप छोड़कर वह अपने राक्षसरूपमें प्रकट हो गया। उस समय उसने बहुत बड़ा शरीर बना लिया। उसे भूमिपर पड़ा देख श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्मणकी बात याद आ गयी और वे मन-ही-मन सीताके सम्बन्धमें सोचने लगे—वास्तवमें यह मारीचकी माया ही थी। लक्ष्मणने जो बात पहले ही कह दी थी, वह बिल्कुल ठीक निकली। आज मेरे हाथसे यह मारीच मारा गया; किन्तु 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए जो इसने प्राण-त्याग किया है, उसे-सुनकर सीताकी कैसी दशा हुई होगी और महाबाहु लक्ष्मण किस अवस्थाको पहुँचे होंगे।' यह सोचकर धर्मपरायण भगवान् श्रीरामके रोंगटे खड़े हो गये और वे बड़ी उतावलीके साथ आश्रमकी ओर लौटे।

उस समय वनमें जो आर्तनाद हुआ, उसे अपने स्वामीकी आवाज-से मिलता-जुलता देखकर श्रीसीताजी लक्ष्मणसे बोलीं—'जाओ, भगवान् श्रीरामकी खबर लो। उन्होंने बड़े आर्तस्वरसे हमलोगोंको पुकारा है। मैंने उनकी आवाज स्पष्ट सुनी है। इससे मेरे प्राण घबरा उठे हैं। मेरा हृदय अस्थिर हो उठा है। तुम्हारे भाई वनमें पुकार रहे हैं, वे किसीकी मदद चाहते हैं। दौड़ो, उन्हें बचाओ; शीघ्रता करो। जैसे बैल सिंहोंके पंजेमें फँस जाय, उसी प्रकार तुम्हारे भाई राक्षसोंके फंदेमें पड़ गये हैं। [ अतः जल्दी जाकर

उनकी सहायता करो। ]' सीताके इतना कहनेपर भी लक्ष्मण नहीं गये। वे अपने भाईकी आज्ञापर विचार कर सीताकी ही रक्षामें खड़े रहे। यह देख जनककुमारी क्षुब्ध होकर बोलीं—'सुमित्रानन्दन! तुम मित्ररूपमें अपने भाईके शत्रु ही जान पड़ते हो। मेरी समझसे श्रीरामका संकटमें पड़ना ही तुम्हें प्रिय मालूम होता है। अपने भाईमें तुम्हारा तनिक भी प्रेम नहीं है, इसीलिये यहाँ निश्चिन्त खड़े हो। महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीको देखने —उनकी सुध लेने नहीं जाते। हाय! यदि उन्हींके जीवनपर आ बनी तो मेरी रक्षासे ही क्या लाभ होगा? जो तुम्हारे बड़े भाई हैं—पूज्य हैं, जिनकी रक्षाके लिये तुम यहाँ आये हो, उन्हींके प्राणोंपर यदि संकट आ गया तो मैं सुरक्षित या जीवित रहकर भी क्या करूँगी?'

सीताकी दशा डरी हुई मृगीके समान हो रही थी। उन्होंने शोकमें डूबकर आँसू बहाते हुए जब लक्ष्मणसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त बातें कहीं, तो उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया—'देवि ! आप विश्वास करें; नाग, असुर, गन्धर्व, देवता, दानव और राक्षस—इनमेंसे कोई भी आपके स्वामीको परास्त नहीं कर सकता । भगवान् श्रीराम युद्धमें अवध्य हैं, अतएव आपको ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये । श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपस्थितिमें इस वनके भीतर मैं आपको अकेली नहीं छोड़ सकता । आप अपने हृदयको शान्त करें । संताप छोड़ दें । आपके पतिदेव उस सुन्दर मृगको मारकर शीघ्र ही लौट आयेंगे । वह आवाज उनकी नहीं थी । उस राक्षसकी झूठी माया थी । महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने मुझपर आपकी रक्षाका भार सौंपा है, इस समय आप मेरे पास धरोहरके रूपमें हैं; अतः आपको अकेली छोड़कर मैं नहीं जा सकता । आप तनिक भी चिन्ता न करें ।' लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर सीताको बड़ा क्रोध आया और वे उनसे कठोर बातें कहने लगीं—'निर्दयी ! मैं समझ गयी; श्रीरामपर कोई बहुत बड़ा संकट आ पड़े, इसीमें तुम्हें प्रसन्नता है । इसीसे श्रीरामका कष्ट देखकर भी तुम ऐसी बातें बना रहे हो । लक्ष्मण ! तुम्हारे-जैसे क्रूर एवं छिपे हुए शत्रुओंके मनमें इस तरहका पापपूर्ण विचार होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । तुम बड़े दुष्ट हो । श्रीरामको वनमें अकेले आते देखकर तुम इनके पीछे-पीछे मुझे प्राप्त करनेके लिये ही यहाँतक आये हो; किन्तु कमलनयन भगवान् श्रीरामकी भार्या होकर मैं दूसरे किसीको अपना पति बनानेकी इच्छा कैसे कर सकती हूँ ? निश्चय समझो, तुम्हारे सामने ही मैं अपने प्राण त्याग दूँगी; किन्तु श्रीरामके बिना एक क्षण भी इस भूतलपर जीवित नहीं रह सकूँगी ।'

सीताके ये कठोर एवं रोंगटे खड़े कर देनेवाले वचन सुनकर जितेन्द्रिय लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा—'देवि ! मैं आपकी बातका जवाब नहीं दे सकता; क्योंकि आप मेरे लिये आराधनीया देवीके समान हैं । ऐसी अनुचित बातें मुँहसे निकालना स्त्रियोंके लिये कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि संसारमें नारियोंका ऐसा स्वभाव बहुधा देखा जाता है । स्त्रियाँ प्रायः विनय आदि धर्मोंसे रहित, चञ्चल, कठोर तथा आपसमें फूट डालनेवाली होती हैं । वैदेही ! आपकी यह बात मेरे दोनों कानोंमें तपाये हुए बाणके समान लगी है । मैं ऐसी बात नहीं सह सकता । वनमें रहनेवाले सभी प्राणी साक्षी होकर मेरा कथन सुनें । मैंने न्याययुक्त वचन कहा है, तो भी आपने मुझे इतनी कठोर बात सुनायी है । निश्चय ही आज आपकी बुद्धि मारी गयी है; धिक्कार है ! जो आप मुझपर ऐसा सन्देह करती हैं । मैं अपने बड़े भाईका आज्ञापालन कर रहा हूँ और आप स्त्री होनेके कारण दुष्ट स्वभावके वशीभूत हो मेरे प्रति ऐसी आशङ्का कर रही हैं । अच्छा, अब मैं जहाँ भगवान् श्रीराम हैं, वहीं जाता हूँ । आपका कल्याण हो । वनके सम्पूर्ण देवता आपकी रक्षा करें । इस समय बड़े भयंकर अपशकुन हो रहे हैं । क्या मैं श्रीरामचन्द्रजीके साथ लौटकर पुनः आपको सकुशल देख सकूँगा ?' यों कहकर लक्ष्मणने हाथ जोड़कर सीताको प्रणाम किया और बारंबार उनकी ओर देखते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पास चल दिये ।

## रावण-सीता-संवाद और सीता-हरण

लक्ष्मणके चले जानेपर रावणको मौका मिल गया और वह भिक्षुका रूप धारण करके शीघ्र ही सीताके समीप गया । वह शरीरपर साफ-सुथरा गेरुए रंगका वस्त्र लपेटे हुए था; उसके मस्तकपर शिखा, हाथमें छाता और पैरोंमें जूते थे । उसने बायें कंधेपर डंडा रखकर उसमें कमण्डलु लटका रखा था । उस भयंकर पापीको देखकर जनस्थानके वृक्षोंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिलना बंद कर दिया, हवाका वेग रुक गया और तीव्र गतिसे बहनेवाली गोदावरी भी भयके मारे धीरे-धीरे बहने लगी। सीताको देखते ही वह काम-बाणसे पीडित हो वेदमन्त्रका उच्चारण करने लगा और उनकी प्रशंसा करता हुआ बोला—'सुन्दरी ! तुम श्री, ह्री, कीर्ति, लक्ष्मी, अप्सरा अथवा भूति—इनमेंसे कौन हो ? स्वेच्छापूर्वक विहार करनेवाली कामदेवकी पत्नी रति तो नहीं हो ? देवता, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर-जातिकी स्त्रियोंमें भी तुम्हारी-जैसी सुन्दरी नारी मैंने आजसे पहले कभी नहीं देखी। पृथ्वीपर ऐसी रूपवती स्त्री दूसरी कोई नहीं है। कहाँ तो तुम्हारा यह विश्वभरमें सबसे उत्तम रूप, यह सुकुमारता तथा यह नयी अवस्था और कहाँ इस दुर्गम वनका निवास ? यह सब देखकर मेरे मनमें बड़ी व्यथा हो रही है। तुम्हारा कल्याण हो, यहाँ-से चली जाओ; तुम यहाँ रहनेके योग्य नहीं हो। यह तो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले भयंकर राक्षसोंके रहनेकी जगह है। तुम्हें तो रमणीय राजमहलों, समृद्धिशाली नगरों और सुगन्धयुक्त उपवनोंमें निवास करना चाहिये। देवि ! बताओ, तुम कौन हो ? किसकी हो ? और कहाँसे आकर किस कारण इस भयंकर दण्डकारण्यमें अकेली रहती हो ?'

रावणने जब विदेहकुमारीकी इस प्रकार प्रशंसा की, तो उन्होंने उसे ब्राह्मणके वेषमें आया देख अतिथि-सत्कारके लिये उपयोगी सभी सामग्रियोंद्वारा उसका पूजन किया। पहले बैठनेको आसन दे पाद्य ( पैर धोनेके लिये जल ) निवेदन किया। उसके बाद नम्रतापूर्वक कहा—'भोजन तैयार है, पाइये।' तदनन्तर सीता शिकार खेलनेके लिये गये हुए लक्ष्मणसहित अपने सुन्दर पति श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतीक्षा करने लगीं। उन्होंने चारों दिशाओंमें दृष्टि दौड़ायी; किन्तु उन्हें सब ओर हरा-हरा विशाल वन ही दिखायी दिया, राम और लक्ष्मण नहीं दीख पड़े। रावण सीताको हरनेकी इच्छासे भिक्षुका वेष बनाकर आया था। उसके पूछनेपर सीताने स्वयं ही अपना परिचय दिया। उसे ब्राह्मण और अतिथि समझकर वे बोलीं—'ब्रह्मन् ! मैं मिथिलानरेश राजा जनककी पुत्री हूँ। मेरा नाम सीता है। अयोध्याके राजा श्रीरामचन्द्र-जी मेरे पति हैं। मैं उनकी प्यारी महारानी हूँ। ब्याहके बाद बारह वर्षोंतक इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथके महलमें रहकर मैंने अपने पतिके साथ सभी मानवोचित भोग भोगे हैं। तेरहवें वर्षके प्रारम्भमें महाराज दशरथने राज-मन्त्रियोंके साथ सलाह की और श्रीरामचन्द्रजीका युवराज-पदपर अभिषेक करनेका निश्चय किया। उस समय मेरे महातेजस्वी पतिकी अवस्था पचीस सालसे ऊपर थी और मैं लगभग अठारह वर्षकी हो चुकी थी। जब राज्याभिषेककी तैयारी होने लगी तो मेरी सास रानी कैकेयीने महाराज दशरथसे भरतका राज्याभिषेक और रामका वनवास—ये दो वर माँगे। महाराजने सत्यके बन्धनमें बँधकर कैकेयीको प्रसन्न करनेके लिये श्रीरामका अभिषेक रोककर उन्हें वनवास दे दिया। श्रीरामके सौतेले भाई लक्ष्मण बड़े पराक्रमी, शत्रुओंका वध करनेवाले, ब्रह्मचारी और उत्तम व्रतका दृढ़तासे पालन करने-वाले हैं। वे सदा श्रीरामकी सहायता किया करते हैं। जब श्रीराम मेरे साथ वन आने लगे, तो वे भी धनुष हाथमें लेकर उनके पीछे हो लिये। इस प्रकार पिताकी आज्ञासे मुझे और अपने छोटे भाईको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारण्यमें आये हैं। वे दृढ़प्रतिज्ञ हैं तथा जटा धारण करके तपस्वीके वेषमें रहते हुए सदा धर्मका पालन किया करते हैं। द्विजश्रेष्ठ ! यदि आप ठहर सकें तो थोड़ी देरतक विश्राम करें। मेरे स्वामी बहुत-से जंगली फल-मूल लेकर आते ही होंगे। अब आप अपने नाम, गोत्र और कुलका यथार्थ परिचय दीजिये। इस दण्डकारण्यमें किस उद्देश्यसे अकेले विचर रहे हैं ?'

रामपत्नी सीताके ऐसा कहनेपर महाबली राक्षसराज रावणने अत्यन्त कठोर शब्दोंमें उत्तर दिया—'सीते ! जिसके


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामसे देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण संसार थर्रा उठता है, वह राक्षसोंका राजा रावण मैं ही हूँ। तुम्हारे शरीरकी कान्ति वैसे ही सुवर्णके समान है। उसपर तुमने पीले रंगकी रेशमी साड़ी धारण कर रखी है। तुम्हें देखकर अब मेरा मन अपनी स्त्रियोंकी ओर नहीं जाता—वे मुझे तनिक भी नहीं भातीं। मैं इधर-उधरसे बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंको हर लाया हूँ। उन सबमें तुम मेरी पटरानी बनो। मेरी राजधानीका नाम लङ्का है। वह समुद्रसे घिरी और पर्वतके शिखरपर बसी हुई है। उस पुरीका घेरा बहुत बड़ा है। यदि तुम मेरी स्त्री बन जाओगी, तो सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित पाँच हजार दासियाँ सदा तुम्हारी सेवा किया करेंगी।'

रावणकी बात सुनकर जनकनन्दिनी सीताको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने उस राक्षसका तिरस्कार करते हुए कहा—'मेरे पतिदेव भगवान् श्रीराम महान् पर्वतके समान अचल हैं। वे इन्द्रके तुल्य पराक्रमी हैं—उन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता तथा वे महासागरके समान प्रशान्त हैं। उन्हें कोई क्षुब्ध नहीं कर सकता। मैं तन, मन, प्राणसे उन्हींकी भक्त हूँ। श्रीरामचन्द्रजी समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, वटवृक्षकी भाँति सबको अपनी छायामें आश्रय देनेवाले, सत्यप्रतिज्ञ और महान् सौभाग्यशाली हैं। मैं उन्हींकी अनन्य अनुरागिणी हूँ। अभागे! तू सियार है और मैं सिंहनी हूँ। मैं तेरे लिये सर्वथा दुर्लभ हूँ। क्या तू मुझे पानेका हौसला रखता है? जैसे सूर्यकी प्रभापर कोई हाथ नहीं लगा सकता, उसी प्रकार तू मुझे छू भी नहीं सकता। तेरी इतनी हिम्मत? तू श्रीरामकी प्यारी पत्नीका अपहरण करना चाहता है? क्या अपने गलेमें पत्थर बाँधकर समुद्रको पार करना चाहता है? सूर्य और चन्द्रमाको दोनों हाथोंसे पकड़नेकी अभिलाषा करता है? श्रीरामचन्द्रकी प्यारी पत्नीपर यदि तू बलात्कार करना चाहता है, तो निश्चय ही जलती हुई आगको देखकर भी उसे कपड़ेमें बाँध ले जानेकी इच्छा रखता है। वनमें रहनेवाले सिंह और सियारमें तथा समुद्र और छोटी नदीमें जो अन्तर है, वही श्रीरामचन्द्रजीमें और तुझमें है।'

सीताके ऐसा कहनेपर रावण रोषमें भर गया और उसने भौंहें टेढ़ी करके कठोर शब्दोंमें उत्तर दिया—'सुन्दरी! मैं कुबेरका सौतेला भाई और परम प्रतापी दशग्रीव रावण हूँ। मेरे भयसे कुबेरने अपनी समृद्धिशालिनी पुरी लङ्काका परित्याग करके इस समय पर्वतश्रेष्ठ कैलासकी शरण ली है। उनका पुष्पक नामक सुन्दर विमान, जो चढ़नेवालेकी इच्छाके अनुसार चलता है, मैंने पराक्रमसे छीन लिया है और उसीपर बैठकर मैं आकाशमें विचरा करता हूँ। मिथिलेशकुमारी! जब मुझे क्रोध आता है, उस समय इन्द्र आदि देवता मेरा मुँह देखकर ही भयसे थर्रा उठते और इधर-उधर भाग जाते हैं। जहाँ मैं खड़ा होता हूँ, वहाँ हवा डरती-डरती धीमी चालसे चलने लगती है तथा मेरे भयसे प्रचण्ड किरणोंवाला सूर्य भी आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति शीतल हो जाता है। जिस स्थानपर मैं ठहरता या भ्रमण करता हूँ, वहाँ वृक्षोंके पत्तेतक नहीं हिलते और नदियोंका प्रवाह रुक जाता है। मेरी लङ्कापुरीमें महलोंके दालान, फर्श और सहन आदि सोनेके हैं तथा उसके बाहरी दरवाजे वैदूर्यमणिके बने हुए हैं। राजकुमारी! तुम मेरे साथ चलकर उस रमणीय पुरीमें निवास करो।'

रावणकी ये बातें सुनकर विदेहनन्दिनी सीताकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे राक्षसराज रावणसे कठोर वचन बोलीं—'अरे! भगवान् कुबेर तो सम्पूर्ण देवताओंके वन्दनीय हैं, तू उन्हें अपना भाई बताकर ऐसा पापकर्म कैसे करना चाहता है? रावण! जिनका राजा तेरे समान कर्कश, दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय है, उन सब राक्षसोंका विनाश अवश्यम्भावी है। वज्रधारी इन्द्रकी अनुपम रूपवती भार्या शचीका तिरस्कार करके कदाचित् कोई जीवित रह सकता है; परन्तु मेरी-जैसी स्त्रीका अपमान करके, यदि तू अमृत पान कर ले, तो भी तुझे जीते-जी छुटकारा नहीं मिल सकता। सीताके इस वचनको सुनकर प्रतापी रावणने अपने हाथ-पर-हाथ मारकर शरीरको बहुत बड़ा बना लिया और सीतासे कहा—'तुम पागल हो गयी हो, इसीलिये मेरे वीर्य और पराक्रमकी बातें तुमने अनसुनी कर दी हैं। अरी! मैं आकाशमें खड़ा होकर इन दोनों भुजाओंपर समूची पृथ्वीको उठा सकता हूँ, समुद्रको पी जा सकता हूँ और युद्धमें मौतको भी मार डालनेकी शक्ति रखता हूँ। यदि चाहूँ तो अपने तीखे बाणोंसे सूर्यको भी व्यथित कर दूँ और इस भूतलको भी विदीर्ण कर डालूँ। मैं इच्छानुसार रूप धारण कर सकता हूँ। तुम मेरी ओर देखो।' ऐसा कहते-कहते क्रोधसे भरे हुए रावणकी आँखें लाल हो गयीं। वह नील मेघके समान काला दिखायी देने लगा। वह भिक्षुका रूप त्यागकर दस मुख और बीस भुजाओंसे युक्त महाकाय निशाचर बन गया। इस प्रकार अपने असली रूपमें आकर उसने पुनः सीतासे कहा—'सुन्दरी! यदि तुम तीनों लोकोंमें विख्यात पुरुषको अपना पति बनाना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहती हो, तो मेरा आश्रय लो; मैं तुम्हारे योग्य पति हूँ। कल्याणी! मैं कभी तुम्हारे प्रतिकूल कोई काम नहीं करूँगा।'

दुष्टात्मा रावण कामसे मोहित हो रहा था। वह उपर्युक्त बातें कहकर सीताके निकट चला गया और उसने बायें हाथसे सीताके मस्तक तथा दाहिने हाथसे उनकी जाँघोंको

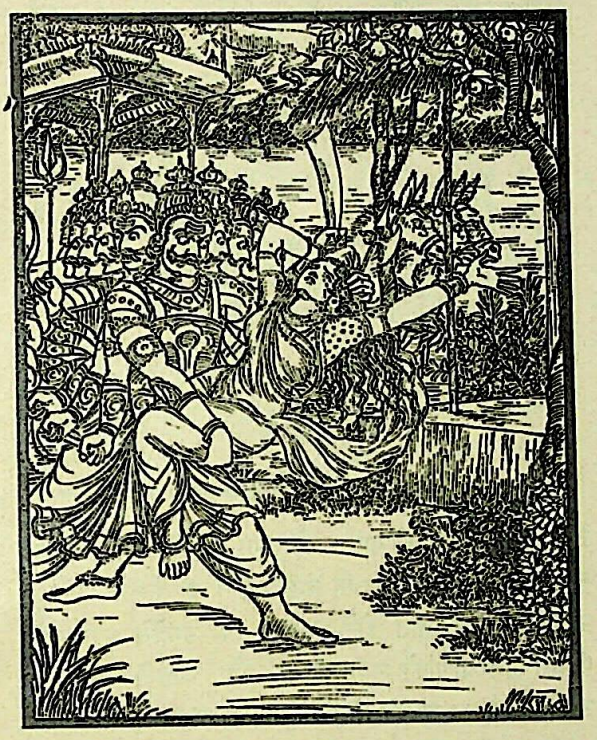

पकड़ा। उसका विकट रूप देखकर वनके समस्त देवता भयभीत होकर भाग गये। इतनेमें ही रावणका सुवर्णमय विशाल रथ दिखायी दिया। उस राक्षसने अपने कठोर वचनोंसे सीताको धमकाया और उन्हें गोदमें लेकर रथपर बिठा दिया। रावणके द्वारा पकड़ी जानेपर यशस्विनी सीता दुःखसे व्याकुल हो गयीं और वनमें दूर गये हुए श्रीरामचन्द्रजीको 'हे राम!' कहकर पुकारने लगीं। बेचारी सीता चोट खायी हुई नागिनकी तरह छटपटाती रहीं और कामपीडित रावण उन्हें लेकर आकाशमें उड़ गया। राक्षसराज उन्हें हरकर ऊपर-ही-ऊपर ले चला। उस समय सीताका चित्त भ्रमित हो उठा। वे पगली-सी हो गयीं और दुःखसे आतुर होकर इस प्रकार विलाप करने लगीं—'रघुनन्दन! आपने धर्मके लिये प्राणोंका मोह, शरीरका सुख और धन—सब कुछ छोड़ दिया है। इस समय यह राक्षस मुझे अधर्मपूर्वक हरकर लिये जा रहा है; किन्तु आप नहीं देखते। परन्तप! आप तो कुमार्गमें चलनेवाले उद्दण्ड पुरुषोंको दण्ड देकर राहपर लानेवाले हैं; फिर ऐसे पापी रावणको क्यों नहीं ठीक करते? मैं हंस और सारसोंसे सेवित गोदावरी नदीको तथा इस वनके विभिन्न वृक्षोंपर निवास करनेवाले देवताओंको प्रणाम करती हूँ। आप सब लोग शीघ्र ही मेरे स्वामीको सूचना दे दें कि आपकी स्त्रीको राक्षस हर ले गया। यहाँ पशु-पक्षी आदि जो कोई भी प्राणी रहते हों, उन सबकी मैं शरण लेती हूँ। वे मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजीसे कहें कि जो आपको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय थी, वह जानकी हरी गयी। उसे असहाय अवस्थामें रावण हर ले गया। महाबाहु श्रीराम बड़े बलवान् हैं। मेरा समाचार जान लेनेपर वे अपने पराक्रमसे मुझे यमराजके घरसे भी लौटा लायेंगे।' इस प्रकार अत्यन्त दुखी होकर करुणाजनक विलाप करती हुई सीताने एक पेड़पर बैठे हुए गृध्रराज जटायुको देखा। रावणके हाथमें पड़ जानेके कारण वे अत्यन्त भयभीत हो रही थीं। जटायुको देखकर वे दुःखभरी वाणीमें विलाप करने लगीं—'आर्य जटायु! देखो, यह पापी राक्षस मुझे अनाथकी भाँति हरकर लिये जाता है। तुम इस क्रूर निशाचरको रोक नहीं सकते; क्योंकि यह अत्यन्त बलवान्, विजयी और अनेकों प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न है। इसकी बुद्धि बड़ी ही खोटी है। तुम इतना ही करो—श्रीराम और लक्ष्मणके पास जाकर उन्हें ठीक-ठीक मेरा सारा समाचार बता दो।'

## रावणके द्वारा जटायुका वध और सीताका तिरस्कारपूर्वक अपहरण

गृध्रराज जटायु उस समय सो रहे थे; फिर भी उन्होंने सीताकी करुण पुकार सुन ली और तुरंत आँख खोलकर रावण तथा सीताको देखा। पक्षियोंमें श्रेष्ठ जटायुका शरीर पर्वत-शिखरके समान ऊँचा था, उनकी चोंच बड़ी ही तीखी थी; वे पेड़पर बैठे-बैठे ही रावणको लक्ष्य करके उत्तम वचन बोले—'दशग्रीव! मैं सनातन धर्ममें स्थित, सत्यप्रतिज्ञ एवं महाबलिष्ठ गृध्रराज जटायु हूँ। भाई! तुम्हें इस समय ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिये। दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, इन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी तथा समस्त संसारके हितमें लगे रहनेवाले हैं। ये उन्हीं जगदीश्वर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की यशस्विनी धर्मपत्नी हैं। इनका नाम सीता है, जिन्हें तुम हरकर लिये जाना चाहते हो। अपने धर्ममें स्थित रहनेवाला कोई भी राजा भला परायी स्त्रीका स्पर्श कैसे कर सकता है; फिर राजाओंकी स्त्रियोंकी तो सभीको विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये। अतएव तुम शीघ्र ही विदेहकुमारी सीताको छोड़ दो, जिससे श्रीरामचन्द्रजी अपनी अग्निके समान भयंकर दृष्टिसे तुम्हें जलाकर भस्म न कर डालें। तुमने जहरीले साँपको कपड़ेमें बाँध लिया है; गलेमें मृत्युकी फाँसी डाल ली है। किन्तु यह सब तुम्हें सूझ नहीं पड़ता। रावण! मैं बूढ़ा हूँ, [ मेरे पास युद्धका कोई साधन नहीं है।] और तुम युवक हो; धनुष, कवच तथा बाणसे सुसज्जित होकर रथपर सवार हो। फिर भी तुम सीताको लेकर कुशलपूर्वक नहीं जा सकोगे। मेरे देखते-देखते इनका बलपूर्वक अपहरण नहीं कर सकते! यदि शूरवीर हो तो दो घड़ी ठहरो; मेरे साथ युद्ध करो। जैसे खर पहले रणभूमिमें प्राण त्याग चुका है, उसी प्रकार तुम भी मेरे हाथसे मरकर सदाके लिये भूमिपर सो जाओगे। जिन्होंने युद्धमें अनेकों बार दैत्यों और दानवोंका वध किया है, वे चीर-वस्त्रधारी भगवान् श्रीराम तुम्हारा भी शीघ्र ही नाश करेंगे। कमलके समान नेत्रोंवाली साध्वी सीता श्रीरामचन्द्रकी प्यारी पटरानी हैं। इन्हें मेरे जीते-जी तुम नहीं ले जाने पाओगे। मुझे अपने प्राण देकर भी महात्मा राम तथा राजा दशरथका प्रिय करना होगा। रावण! ठहरो, केवल दो घड़ी रुक जाओ। फिर देखो, जैसे डंठलसे फल गिरता है उसी प्रकार तुम्हें इस उत्तम रथसे नीचे गिराये देता हूँ। निशाचर! अपनी शक्तिके अनुसार युद्धमें मैं तुम्हारा पूरा आतिथ्य-सत्कार करूँगा।'

जटायुके ऐसा कहनेपर राक्षसराज रावण क्रोधसे आँखें लाल किये अत्यन्त अमर्षमें भरकर उनकी ओर दौड़ा। यह देख पक्षियोंमें श्रेष्ठ जटायुने अपने तीखे नखोंवाले पंजोंसे मारकर रावणके शरीरमें बहुत-से घाव कर दिये तथा उसने भी अनेकों तीक्ष्ण बाणोंसे जटायुको क्षत-विक्षत कर दिया। इतनेमें ही उनकी दृष्टि सीतापर पड़ी, जो राक्षसके रथपर बैठी आँसू बहा रही थीं। उन्हें देखकर गृध्रराजने अपने शरीरमें लगते हुए बाणोंकी परवा नहीं की और सहसा उस राक्षसपर आक्रमण किया। रावणका धनुष मोती और मणियोंसे विभूषित था। महातेजस्वी जटायुने बाणसहित उस धनुषको पंजे मारकर तोड़ दिया। यह देख रावण क्रोधसे मूर्छित हो उठा और दूसरा धनुष लेकर जटायुपर सैकड़ों

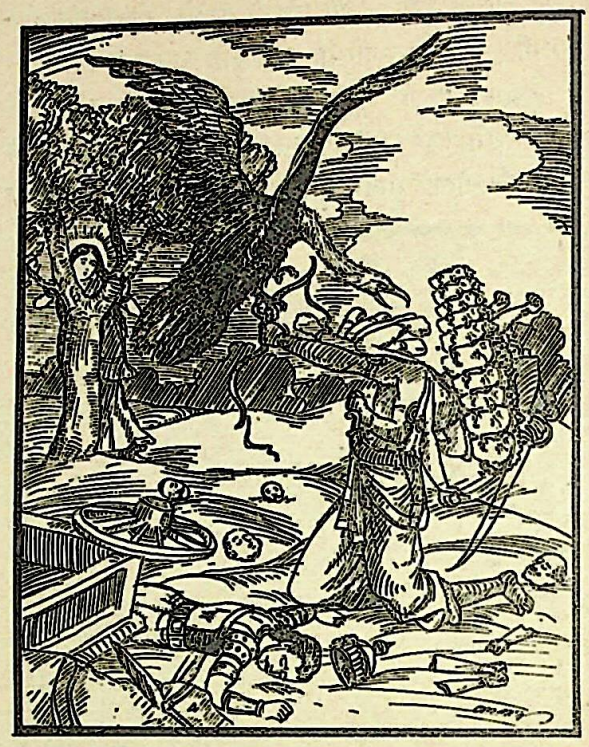

तथा हजारों बाणोंकी वर्षा करने लगा। उस समय गृध्रराजके चारों ओर बाणोंका जाल-सा तन गया। वे घोंसलेमें बैठे हुए पक्षीके समान प्रतीत होने लगे। तब उन्होंने अपने दोनों पंखोंसे उन बाणोंको उड़ा दिया और पंजोंकी मारसे पुनः उसके विशाल धनुषको तोड़ डाला। रावणका कवच अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। तेजस्वी पक्षिराजने उसे भी पंखोंकी चोटसे छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके बाद पिशाचके-से मुखोंवाले वेगशाली गधोंको, जिनकी छातीपर सोनेका कवच बँधा था, यमलोक पहुँचाया तथा अग्निकी भाँति देदीप्यमान, मणिमय सोपानसे चित्रित एवं इच्छानुसार चलनेवाले उसके विशाल रथको चकनाचूर कर डाला। फिर पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित छत्र और चँवरको उन्हें धारण करनेवाले राक्षसोंके सहित जमीनपर गिरा दिया और बड़े वेगसे चोंच मारकर रावणके सारथिका मस्तक भी धड़से अलग कर डाला। इस प्रकार रथ और धनुषके टूटने और सारथिसहित वाहनोंके मारे जानेपर रावण सीताको गोदमें लिये ही धरतीपर गिर पड़ा। उसे इस अवस्थामें देखकर सभी प्राणियोंने गृध्रराजकी प्रशंसा की। अन्य साधनोंके नष्ट हो जानेपर उसके पास केवल एक तलवार रह गयी थी। फिर भी जटायुको थका हुआ देख रावण बहुत प्रसन्न हुआ और सीताको गोदमें उठाकर वहाँसे चलने लगा। यह देख महातेजस्वी गृध्रराजने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उड़कर पुनः उसके ऊपर धावा किया और उसे रोककर कहा—'मूर्ख रावण ! जिनके बाणोंका आघात वज्रके समान होता है, उन भगवान् श्रीरामकी पत्नी सीताको जो तुम हरकर लिये जा रहे हो, इससे समस्त राक्षसोंका संहार होना निश्चित है। श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाई दुर्धर्ष वीर हैं। तुम्हारे द्वारा किया गया इस आश्रमका तिरस्कार वे कभी क्षमा नहीं करेंगे। तुम डरपोक हो। तुमने जो यह लोकनिन्दित कर्म किया है, यह चोरोंका काम है। वीर पुरुष ऐसे मार्गका अवलम्ब नहीं करते। यदि बहादुर हो तो दो घड़ी ठहरो और मेरे साथ युद्ध करो। अपने भाई खरकी भाँति तुम्हें भी मरकर जमीनपर सोना पड़ेगा। विनाशके समय मनुष्य जैसा काम करता है, तुमने भी वैसा ही अधर्मपूर्ण कार्य अङ्गीकार किया है। अतः तुम्हारा नाश भी अवश्यम्भावी है।'

इस प्रकार उत्तम वचन कहकर पराक्रमी जटायु दशमुख रावणकी पीठपर चढ़ गये और उसे पकड़कर अपने तीखे नखों-द्वारा चारों ओरसे छेदने लगे, जैसे कोई हाथीवान किसी दुष्ट हाथीके ऊपर सवार होकर उसे अंकुशसे छेदे। नख, पाँख और चोंच—ये ही जटायुके हथियार थे। वे नखोंसे खरोंचते थे, पीठपर चोंच मारते थे और बाल पकड़कर उखाड़ लेते थे। इस प्रकार जब गृध्रराजने बारंबार क्लेश पहुँचाया, तो राक्षसराज रावण काँप उठा। क्रोधके मारे उसके होठ फड़कने लगे और सीताको बायीं गोदमें करके उसने जटायुपर तमाचेका प्रहार किया; किन्तु उस वारको बचाकर गृध्रराजने चोंचसे मार-मारकर उसकी दस भुजाएँ उखाड़ लीं। बाँहोंके कटते ही बाँबीसे प्रकट होनेवाले विषैले साँपोंकी तरह तुरंत दूसरी नयी भुजाएँ उत्पन्न हो गयीं। तब पराक्रमी रावणने सीताको तो छोड़ दिया और गृध्रराजको मुक्कों और लातोंसे मारना शुरू किया। दोनों ही अतुलित पराक्रमी थे; एक राक्षसोंमें प्रधान था तो दूसरा पक्षियोंमें श्रेष्ठ। उन दोनोंमें दो घड़ीतक घोर युद्ध होता रहा। अन्तमें रावणने तलवार निकाली और श्रीरामचन्द्रजीके लिये युद्ध करनेवाले जटायुके दोनों पंख, पैर तथा पार्श्वभाग काट डाले। पंख कटते ही गृध्रराज पृथ्वीपर गिर पड़े। अब वे थोड़ी ही देरके मेहमान थे। अपने बान्धवके समान जटायुको खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़ा देख सीता दुःखसे आतुर हो उनकी ओर दौड़ीं और रावणके द्वारा उन्हें मारा गया देख शोकमग्न हो विलाप करने लगीं—'हा राम ! मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि जो मुझे कृपा करके बचानेके लिये आये थे, वे पक्षिराज जटायु अब मरणासन्न होकर जमीनपर पड़े हैं। हे रघुनन्दन ! हे लक्ष्मण ! आप दोनों आकर अब मुझे बचाइये !'

यों कहकर अत्यन्त डरी हुई सीता रोने लगीं, जिससे समीपवर्ती मनुष्य सुन सकें। वे लताकी भाँति बड़े-बड़े वृक्षोंसे लिपट जातीं और अनाथकी भाँति विलाप करने लगती थीं। तब राक्षसराज रावण 'इन वृक्षोंको छोड़ो-छोड़ो'—ऐसा कहता हुआ सीताके पास आ पहुँचा और उन्हें 'राम-राम' की रट लगाते देख उसने अपना ही विनाश करनेके लिये उनके केश पकड़ लिये। सीताका इस प्रकार तिरस्कार होनेपर समस्त चराचर जगत् अन्धकारसे आच्छन्न-सा हो गया, वायुकी गति रुक गयी और सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी। पितामह ब्रह्माजी दिव्यदृष्टिसे विदेहनन्दिनीका यह अपमान देखकर बोले—'बस, अब कार्य सिद्ध हो गया।' तथा समस्त महर्षि उस घटनासे प्रसन्न भी हुए और दुखी भी—रावण-का विनाश-काल निकट जानकर उन्हें प्रसन्नता हुई और सीताका दुःख देखकर वे दुखी हुए। दण्डकारण्यके निवासियोंने सीताके केशोंका खींचा जाना देख अनायास ही यह समझ लिया कि अब रावणके नाशका समय आ पहुँचा है। बेचारी सीता 'राम-राम' कहकर रो रही थीं, लक्ष्मणको पुकार रही थीं। उसी अवस्थामें राक्षसोंका राजा रावण उन्हें लेकर आकाशमार्गसे चल दिया। मिथिलेशकुमारी सीताका श्रीविग्रह सोनेके समान दमक रहा था और राक्षसराज रावणका शरीर बिल्कुल काला था। उसकी गोदमें वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो काले हाथीको सोनेकी करधनी पहनायी गयी हो। वह राक्षस सीताको हरकर लिये जा रहा था और उनके केशोंमें गुँथे हुए फूल बिखरकर सब ओर पृथ्वीपर गिर रहे थे। विदेहनन्दिनीका रत्नजटित नूपुर उनके चरणसे खिसककर गिरते समय ऐसा जान पड़ा, मानो आकाशसे पृथ्वीपर विद्युत्पात हुआ हो। सीताके शरीरपर अग्निके समान प्रकाशमान आभूषण थे। वे खन-खनकी आवाज करते एक-एक करके गिरने लगे। इससे उस समय आकाशसे तारोंके टूटनेका-सा भ्रम होता था। विदेहकुमारीके गलेसे गिरता हुआ चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार गगनमण्डलसे उतरती हुई भागीरथी गङ्गाकी भाँति मालूम हुआ। वायुके झकोरोंसे हिलते हुए वृक्षोंपर नाना प्रकारके पक्षी कोलाहल कर रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे वृक्ष अपनी हिलती हुई टहनियोंसे इशारा करते हुए सीतासे कह रहे हैं कि 'तुम डरो मत।' सीताका हरण देख सूर्यदेव दुखी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गये। उनकी प्रभा नष्ट-सी हो गयी। अपनी आँखोंसे वह दुःखद दृश्य देख-देखकर भयके मारे वनदेवताओंके अङ्ग थर-थर काँपने लगे। अपने ऊपर ऐसा भारी दुःख आया देख सीता श्रीराम और लक्ष्मणका नाम ले-लेकर जोर-जोरसे विलाप करने लगीं। उस समय भी उनके स्वरकी स्वाभाविक मधुरता दूर नहीं हुई थी। श्रीरामके आनेकी आशासे वे बार-बार पृथ्वीकी ओर देख रही थीं। उनके बँधे हुए केश खुल गये थे। ललाटकी बेंदी मिट गयी थी! ऐसी अवस्थामें मनस्विनी सीताको रावण अपने विनाशके लिये हरे ले जा रहा था।

## रावणका सीताको लङ्कामें ले जाकर काबूमें करनेकी चेष्टा करना और सीताका उसे फटकारना

मिथिलेशकुमारी सीता दुःखमें डूबकर अत्यन्त उद्विग्न हो रही थीं। वे बहुत बड़े संकटमें फँस गयी थीं। अतः रोती हुई कहने लगीं—'ओ नीच रावण! क्या तुझे अपने इस कुकर्मसे लज्जा नहीं आती, जो मुझे अकेली एवं असहाय जानकर चुराये लिये जाता है? दुरात्मन्! तू बड़ा ही कायर और डरपोक है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मुझे हर ले जानेकी इच्छासे तूने ही मायामृगके द्वारा मेरे स्वामीको आश्रमसे दूर हटाया था। हाय! तूने मेरे ससुरके मित्र बूढ़े जटायुको भी, जो मुझे बचानेके लिये तैयार हुए थे, मार गिराया। परायी स्त्रीको उसके सूने घरसे चुरा लाना कितना निन्दनीय कर्म है! इसे करके तुझे लाज क्यों नहीं आती? तू अपनेको शूरवीर समझता है; किन्तु तेरे इस कुत्सित कर्मको संसारके श्रेष्ठ पुरुष अत्यन्त क्रूरतापूर्ण और अधर्ममय बतलायेंगे। मेरा अपहरण करते समय तूने अपनी जिस शूरवीरता और साहसका वर्णन किया था, उसे धिक्कार है। ऐसे चरित्रको, जो जगत्में तेरे कुलको कलङ्कित करनेवाला है, मैं बारंबार धिक्कार देती हूँ। मेरे पति और देवर दोनों राजकुमारोंकी दृष्टिमें पड़ जानेपर तू सेनाके साथ रहे तो भी जीवित नहीं रह सकता। ऐसी हालतमें दो घड़ी भी जीना तेरे लिये कठिन हो जायगा। अतः रावण! तू अपने हितका विचार करके मुझे छोड़ दे। इसीमें तेरी भलाई है। यदि मुझे नहीं छोड़ेगा, तो मेरे पति तेरे विनाशकी चेष्टा करेंगे। नीच! तू जिस अभिप्रायसे मुझे जबर्दस्ती हरकर ले जाना चाहता है, तेरा वह सङ्कल्प सिद्ध नहीं होनेका। मैं अपने देवताके समान स्वामीको न देखनेपर शत्रुकी अधीनतामें अधिक कालतक जीवन धारण नहीं कर सकूँगी। निश्चय ही तू अपने कल्याण और हितका विचार नहीं करता। जैसे मरनेके समय मनुष्य स्वास्थ्यके विरोधी पदार्थोंका सेवन करता है, वही दशा तेरी भी है। निशाचर! मैं देखती हूँ, तेरे गलेमें कालकी फाँसी पड़ चुकी है। इसीसे भयके अवसरपर भी तू निर्भय बना हुआ है। महात्मा श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा अपराध करके विषपान किये हुए मनुष्यकी भाँति तू बहुत दिनोंतक नहीं जी सकता। मेरे स्वामीके कुपित होनेपर तुझे कहाँ जानेसे शान्ति मिलेगी। जिन्होंने अपने भाई लक्ष्मणकी सहायता लिये बिना ही पलक मारते-मारते चौदह हजार राक्षसोंका विनाश कर डाला, वे सम्पूर्ण अस्त्रोंका प्रयोग करनेमें कुशल बलवान् वीर रघुनाथजी अपनी प्यारी पत्नीका अपहरण करनेवाले तुझ-जैसे पापीको अपने तीखे तीरोंका निशाना क्यों नहीं बनायेंगे?' रावणके चंगुलमें फँसी हुई विदेहकुमारी सीताजी भय और शोकसे व्याकुल हो ऐसे तथा और भी बहुत-से कठोर वचन सुनाकर करुण स्वरमें विलाप करने लगीं।

उस समय जनकनन्दिनीको कोई भी अपना रक्षक दिखायी नहीं देता था। उन्होंने एक पर्वतके शिखरपर पाँच वानरोंको बैठे देखा। तब यह सोचकर कि शायद ये भगवान् श्रीरामको मेरा कुछ समाचार कह सकें, अपनी सुनहरे रंगकी रेशमी चादर उतारी और उसमें गहने रखकर उसे उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीचमें गिरा दिया । रावण बड़ी घबराहटमें था, इसलिये सीताके इस कार्यको वह समझ न सका । वे भूरी आँखोंवाले श्रेष्ठ वानर उस समय उच्च स्वरसे विलाप करती हुई सीताकी ओर एकटक नेत्रोंसे देखने लगे । पंपाको लाँघकर राक्षसराज रावण रोती हुई मिथिलेशकुमारीको लिये हुए लङ्कापुरीकी ओर चल दिया । जाते-जाते वह वरुणके अक्षय निवास समुद्रको, जो समस्त नदियोंका आश्रय है, लाँघ गया । जगन्माता जानकीका अपहरण हो रहा है, यह जानकर समुद्र भी भयभीत हो गया । उसकी उठती हुई लहरें शान्त हो गयीं । उसके भीतर रहनेवाली मछलियों और बड़े-बड़े सर्पोंकी गति रुक गयी । उस समय सिद्ध और चारणगण अन्तरिक्षमें स्थित होकर कहने लगे—'अब दशग्रीव रावणका अन्तकाल आ पहुँचा ।' सीता छटपटा रही थीं, रावणने अपनी साकार मृत्युकी भाँति उन्हें गोदमें लेकर लङ्कापुरीमें प्रवेश किया और अपने अन्तःपुरमें ले जाकर रख दिया । वहाँ जाते ही वे शोक और मोहमें डूब गयीं । तदनन्तर दशग्रीवने भयंकर आकारवाली पिशाचियोंको बुलाकर कहा—'[ तुम सब लोग सावधानीके साथ सीताकी रक्षा करो । ] कोई भी स्त्री या पुरुष मेरी आज्ञाके बिना इनसे मिलने न पाये । इन्हें मोती, मणि, सुवर्ण, वस्त्र और आभूषण आदि जिस-जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह तुरंत दी जाय । इसके लिये मेरी खुली आज्ञा है । तुमलोगोंमेंसे जो कोई जानकर या बिना जाने भी विदेहकुमारीसे कुछ अप्रिय बात कहेगी, मैं समझूँगा उसे अपनी जिंदगी प्यारी नहीं है ।'

राक्षसियोंको ऐसी आज्ञा दे प्रतापी राक्षसराज 'अब आगे क्या करना चाहिये ?' यह सोचता हुआ अन्तःपुरसे बाहर निकला और कच्चा मांस चबानेवाले आठ महापराक्रमी राक्षसोंसे उसी समय मिला; मिलकर उनके बल और पराक्रमकी प्रशंसा की और कहा—'वीरो ! तुमलोग नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र साथ लेकर शीघ्र ही जनस्थानको, जहाँ पहले खर रहता था, जाओ । वह स्थान इस समय उजाड़ पड़ा है । वहाँके सभी राक्षस मार डाले गये हैं । उस सूने जनस्थानमें तुमलोग अपने ही बल-पौरुषका भरोसा करके रहो और भयको दूर हटा दो । मैंने वहाँ बहुत बड़ी सेनाके साथ महापराक्रमी खर और दूषणको बसा रखा था, किन्तु वे सब-के-सब युद्धमें रामके बाणोंसे मृत्युको प्राप्त हो गये हैं । इससे रामके साथ मेरा भयंकर वैर ठन गया है । मैं उस शत्रुको संग्राममें मारे बिना चैनसे सो नहीं सकूँगा । रामने खर और दूषणका वध किया है; अतः मैं उन्हें मारकर बदला लूँगा । उनसे तभी मेरे चित्तको शान्ति मिलेगी । जनस्थानमें रहकर तुमलोग रामचन्द्र क्या करते हैं, इसका ठीक-ठीक पता लगाते रहो और जो कुछ मालूम हो, उसकी खबर यहाँ भेजा करो । तुम सभी निशाचर सावधानीके साथ वहाँ जाना और रामचन्द्रके वधके लिये सदा प्रयत्न करते रहना । मुझे अनेकों बार संग्राममें तुमलोगोंके बलका परिचय मिल चुका है । इसलिये जनस्थानमें मैं तुम्हीं लोगोंको रख रहा हूँ ।' रावणकी ये महान् प्रयोजनसे भरी हुई प्रिय बातें सुनकर उन आठों राक्षसोंने उसे प्रणाम किया और वे सब अदृश्य होकर एक ही साथ जनस्थानकी ओर चल दिये ।

इस प्रकार आठ भयंकर राक्षसोंको वहाँ जानेकी आज्ञा दे रावणने विपरीत बुद्धिके कारण अपनेको कृतार्थ समझ लिया । वह सीताका स्मरण करके कामबाणसे पीड़ित हो रहा था, अतः उन्हें देखनेके लिये उसने बड़ी उतावलीके साथ अपने रमणीय अन्तःपुरमें प्रवेश किया । वहाँ पहुँचकर देखा कि सीता राक्षसियोंके बीचमें बैठकर दुःख-शोकमें डूबी हुई आँसू बहा रही हैं । रावणका वह महल देवभवनकी शोभाको मात करता था । उसमें हजारों स्त्रियाँ भरी थीं । नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे थे । भाँति-भाँतिकी मणियोंके खंभे लगे थे । अन्तःपुरका बाहरी दरवाजा सोनेका बना हुआ था । वहाँ दिव्य दुन्दुभियोंकी मधुर ध्वनि होती रहती थी । राक्षसराज रावण सीताको जबर्दस्ती साथ लेकर महलकी सुवर्णमयी सीढ़ियोंपर चढ़ा । उसकी खिड़कियाँ हाथीदाँत तथा चाँदीकी बनी हुई थीं, जो देखनेमें बड़ी सुन्दर थीं । उनमें सोनेकी जाली लगी हुई थी । उस पापात्माने शोकमग्ना सीताको अपना सारा महल दिखाया और उन्हें लुभानेकी इच्छासे इस प्रकार कहा—'सीते ! मेरे अधीन बत्तीस करोड़ राक्षस हैं । इनमें बालकों और बूढ़ोंको नहीं गिना गया है । भयंकर कर्म करनेवाले इन समस्त निशाचरोंका मैं ही स्वामी हूँ । अकेले मेरी सेवामें एक हजार राक्षस रहते हैं । मेरा यह सारा राज्य और जीवन तुम्हारे अधीन है । विशालाक्षी ! तुम मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो । मेरा यह अन्तःपुर बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंसे परिपूर्ण है; तुम उन सबकी स्वामिनी बनो । समुद्रसे घिरी हुई इस लङ्काके राज्यका विस्तार सौ योजन है । इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी इसे ध्वस्त नहीं कर सकते । देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों तथा ऋषियोंमें भी मैं किसीको ऐसा नहीं देखता, जो पराक्रममें मेरी समानता कर सके, तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा वीर नहीं दिखायी देता,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जो मेरी भुजाओंसे सुरक्षित तुमको पराक्रम करके यहाँसे ले जा सके। लङ्काके इस विशाल साम्राज्यका तुम्हीं पालन करो। मेरे-जैसे राक्षस, देवता तथा सम्पूर्ण चराचर जगत् तुम्हारी सेवामें रहेंगे। यह सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाला पुष्पक विमान मेरे भाई कुबेरका है। इसे मैंने बलपूर्वक युद्धमें जीता है। यह अत्यन्त रमणीय, विशाल तथा मनके समान वेगसे चलनेवाला है। इसपर बैठकर मेरे साथ सुखपूर्वक विहार करो। तुम्हारे इन कोमल चरणोंपर मैं अपने दसों मस्तक झुकाता हूँ। मुझपर शीघ्र कृपा करो। मैं तुम्हारी आज्ञाके अधीन रहनेवाला दास हूँ।' रावण कालके अधीन हो चुका था; वह सीतासे उपर्युक्त बातें कहकर मन-ही-मन ऐसा समझने लगा कि अब ये मेरे अधीन हो गयीं।

विदेहकुमारी सीता शोकसे बहुत दुखी थीं। वे रावणके वचन सुनकर बीचमें तिनकेकी ओट करके बोलीं—'महाराज दशरथ धर्मके अचल सेतुके समान थे। वे अपनी सत्यप्रतिज्ञाके लिये सर्वत्र विख्यात थे। उनके पुत्र रघुकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी भी बहुत बड़े धर्मात्मा हैं। वे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। उनकी भुजाएँ लंबी और आँखें बड़ी-बड़ी हैं। वे ही मेरे देवता और पति हैं। उनका जन्म इक्ष्वाकु-कुलमें हुआ है। उनके कंधे सिंहके समान और तेज महान् है। वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ आकर तेरे प्राणोंके ग्राहक होंगे। यदि उनके सामने तू बलपूर्वक मेरा अपहरण करता, तो अपने भाई खरकी तरह युद्धमें प्राणोंसे हाथ धोकर जनस्थानमें ही सदाके लिये सो जाता। तूने जिन भयंकर रूपवाले महाबली राक्षसोंकी चर्चा की है, वे श्रीरामचन्द्रजीके सामने कुछ भी नहीं है। रावण! देवता और असुर तुझे भले ही न मार सकें; किन्तु भगवान् श्रीरामके साथ यह महान् वैर ठानकर तू किसी तरह जीता नहीं बच सकता। रघुनाथजी बहुत बड़े बलवान् हैं। वे तेरे जीवनका अन्त कर डालेंगे। श्रीरामचन्द्रजी यदि रोषभरी दृष्टिसे तुझे देख लें तो उसी समय तू जलकर खाक हो जायगा—ठीक उसी तरह, जैसे भगवान् शङ्करने कामदेवको भस्म किया था। जो चन्द्रमाको आकाशसे पृथ्वीपर गिराने या नष्ट करनेकी शक्ति रखते हैं तथा समुद्रको भी सुखा सकते हैं, वे भगवान् श्रीराम सीताको भी यहाँसे छुड़ा सकते हैं। तू अपने ही पापोंके कारण धन-सम्पत्ति, बल और इन्द्रिय-शक्तिका नाश करके अपने प्राणोंसे भी हाथ धो बैठेगा और यह लङ्का विधवा हो जायगी। तेरा यह पाप-कर्म तुझे भविष्यमें सुख नहीं भोगने देगा; क्योंकि तूने मुझे बलपूर्वक पतिके पाससे हटाया है। मेरे स्वामी महान् तेजस्वी हैं और मेरे देवरके साथ अपने ही पराक्रमका भरोसा करके सूने दण्डकारण्यमें निर्भयतापूर्वक निवास करते हैं। वे युद्धमें बाणोंकी वर्षा करके तेरे शरीरसे बल, पराक्रम, घमंड और अहंकार—सब निकाल बाहर करेंगे। जब कालकी प्रेरणासे प्राणियोंका विनाश निकट आता है, उस समय मृत्युके अधीन हुए प्राणी प्रत्येक कार्यमें प्रमाद करने लगते हैं। राक्षसाधम! मेरा अपहरण करनेके कारण तेरे लिये भी वैसा ही समय उपस्थित हुआ है। तेरा, तेरे अधीन रहनेवाले राक्षसोंका तथा तेरे अन्तःपुरका भी शीघ्र ही नाश होनेवाला है। यज्ञशालाके बीचकी वेदीको, जो द्विजातियोंके मन्त्रद्वारा पवित्र की गयी होती है तथा जिसे स्रुवा आदि यज्ञीय पात्र सुशोभित करते हैं, जैसे चाण्डाल नहीं छू सकता, उसी प्रकार मैं धर्मपरायण भगवान् श्रीरामकी धर्मपत्नी हूँ तथा पातिव्रत्य-धर्मका दृढ़तापूर्वक पालन करती हूँ; तू महापापी है, अतः मेरा स्पर्श भी नहीं कर सकता। मेरे चेतनारहित शरीरको तू चाहे बाँधकर रख या काट डाल; मैं स्वयं भी इस शरीर अथवा जीवनको रखना नहीं चाहती।' विदेहराजकुमारी क्रोधवश इतना कहकर चुप हो गयीं।

सीताके इन रोमाञ्चकारी एवं कठोर वचनोंको सुनकर रावणने भय दिखानेवाली बात कही—'मिथिलेशकुमारी! मैं जो कहता हूँ, सुनो। आजसे लेकर बारह महीनोंतक मैं तुम्हारी अनुमतिकी प्रतीक्षा करूँगा। यदि इतने दिनोंमें भी तुम मुझे स्वीकार नहीं करोगी तो मेरे रसोइये सबेरेका कलेवा तैयार करनेके लिये तुम्हारे शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।' ऐसा कहकर शत्रुओंको रुलानेवाला रावण क्रोधसे भरकर बोला—'राक्षसियो! तुमलोग शीघ्र ही इस सीताका अहंकार दूर करो। इसे अशोकवाटिकामें ले जाओ और चारों ओरसे घेरकर निरन्तर इसकी रक्षा करती रहो। वहाँ तुम सब इसे भय दिखाकर तथा मीठे-मीठे वचनोंसे समझा-बुझाकर वशमें लानेकी चेष्टा करो।' रावणकी ऐसी आज्ञा पाकर वे राक्षसियाँ मिथिलेशकुमारीको साथ लेकर अशोकवाटिकामें चली गयीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीरामका लौटना, मार्गमें लक्ष्मणसे उनकी भेंट होना तथा आश्रममें सीताको न देखकर उनका विलाप करना

इधर श्रीरामचन्द्रजी मृगके रूपमें विचरते हुए राक्षस मारीचका वध करके तुरंत ही आश्रमकी ओर लौटे। वे सीताको देखनेके लिये जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते आ रहे थे। इतनेमें ही उनके पीछेकी ओरसे एक गीदड़ने बड़ा कठोर शब्द किया। उसकी डरावनी आवाज सुनकर भगवान् श्रीरामके मनमें अनेकों प्रकारकी आशङ्का होने लगी। वे सन्देहमें पड़कर सोचने लगे—'यह गीदड़ जैसी आवाज कर रहा है, उससे मालूम होता है कोई अमङ्गलकी बात हो गयी है। कहीं राक्षसोंने जानकीको भक्षण न कर लिया हो। मृगरूपधारी मारीचने जान-बूझकर मेरे स्वरका अनुकरण करते हुए जो आर्त पुकार की थी, वह इसीलिये कि शायद यह लक्ष्मणके कानोंमें पड़ जाय। सुमित्रानन्दन लक्ष्मण उस स्वरको सुनते ही सीताकी प्रेरणासे उसे अकेली छोड़कर तुरंत मेरे पास आनेके लिये चल देंगे। राक्षसलोग तो सब-के-सब मिलकर सीताका वध करना ही चाहते हैं। इसी उद्देश्यसे यह मारीच राक्षस सोनेका मृग बनकर मुझे आश्रमसे दूर ले आया था।'

यही सब सोचते हुए श्रीरामचन्द्रजी शीघ्रतापूर्वक आश्रमकी ओर लौट रहे थे। वे शङ्कित चित्तसे जनस्थानमें आये। उस समय उनका मन बहुत दुखी था, उनकी दाहिनी ओरसे कितने ही मृग और पक्षी भयानक शब्द करते उनके पास आ गये। यह उनके लिये भयंकर अपशकुन था। इसे देखनेके बाद उनकी दृष्टि अपने पास आते हुए लक्ष्मणपर पड़ी, जो बहुत ही उदास दीख पड़ते थे। थोड़ी ही देरमें वे निकट आकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिले। राक्षसोंसे सेवित निर्जन वनमें सीताको अकेली छोड़कर आये हुए लक्ष्मणको देख श्रीरामचन्द्रजीने उनका बायाँ हाथ पकड़कर दुखी-से होकर कहा—'लक्ष्मण! तुमने यह बहुत बुरा किया, जो सीताको अकेली छोड़कर यहाँ चले आये। मुझे इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि वनमें विचरनेवाले राक्षसोंने जनककुमारी सीताको या तो सर्वथा नष्ट कर दिया होगा या वे उन्हें खा गये होंगे; क्योंकि मेरे आसपास बहुत-से अपशकुन हो रहे हैं। क्या हमलोग सीताको सकुशल देख सकेंगे? क्या जनककुमारी हमें वहाँ जीवित मिलेगी? ये मृगोंके झुंड जो [ दाहिनी ओरसे आकर ] अमङ्गलकी सूचना दे रहे हैं, ये गीदड़ जिस प्रकार भैरवनाद कर रहे हैं तथा जलती-सी प्रतीत होनेवाली दिशाओंमें पक्षी जिस तरहकी बोली बोल रहे हैं, इन सबसे यही अनुमान होता है कि राजकुमारी सीता शायद ही कुशलसे हों। मृगके समान रूप धारण करके आया हुआ यह राक्षस मुझे लुभाकर बहुत दूर ले गया और जब बड़े परिश्रमसे मैंने किसी तरह इसे मारा तो यह मरते-मरते राक्षस हो गया। अतः मेरा मन अत्यन्त दीन और अप्रसन्न हो रहा है। लक्ष्मण! निःसन्देह आश्रमपर सीता नहीं है। उसे कोई हर ले गया या वह मारी गयी अथवा [ किसी राक्षसके साथ ] मार्गमें होगी। देवकन्याके समान सुन्दरी और मेरे प्राणोंकी सहायिका सीता कहाँ है? तपाये हुए सोनेके समान कान्तिवाली जनकनन्दिनीके


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बिना मैं पृथ्वीका राज्य और देवताओंका आधिपत्य भी नहीं चाहता। जो मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है, वह विदेहराज-कुमारी सीता क्या जीवित होगी ? तुम्हारी असावधानीके कारण राक्षस उस तपस्विनीको खा तो नहीं गये ? उस कुटिल एवं दुरात्मा राक्षसने उच्च स्वरसे 'लक्ष्मण !' ऐसा पुकारकर तुम्हारे हृदयमें भी सर्वथा भय उत्पन्न कर दिया। जान पड़ता है वैदेहीने भी राक्षसकी पुकार सुन ली और उसकी आवाज मुझसे मिलती-जुलती होनेके कारण वह अत्यन्त भयभीत हो गयी; अतः उसीकी प्रेरणासे तुम मुझे देखनेके लिये जल्दीसे चले आये हो। जो भी हो, तुमने वनमें सीताको अकेली छोड़कर बड़ा अनर्थ कर डाला। क्रूर कर्म करने-वाले राक्षसोंको बदला लेनेका अवसर दे दिया। मांसभक्षी निशाचर मेरे हाथों खरके मारे जानेसे बहुत दुखी थे। निश्चय ही उन्होंने सीताको मार डाला होगा।'

इस प्रकार परम सुन्दरी सीताके विषयमें चिन्ता करते भगवान् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ बड़ी तेजीसे जनस्थानमें आये। उन्होंने बड़े दुःखके साथ पूछा—'लक्ष्मण ! जब मैंने तुम्हारे विश्वासहीपर वनमें सीताको छोड़ा था, तो तुम उसे छोड़कर क्यों चले आये ? जिस महान् अनिष्टकी आशङ्का करके मेरा मन व्यथित हो रहा था, वह तुम्हें देखते ही सत्य जान पड़ने लगा है; क्योंकि तुम मिथिलेशकुमारीको अकेली छोड़कर यहाँ चले आये हो। मेरी बायीं आँख और बायीं भुजा फड़क रही है तथा तुम्हें आश्रमसे दूर सीताके बिना ही मार्गपर आते देख मेरा हृदय धक-धक कर रहा है।' श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मण अत्यन्त दुखी होकर अपने शोकग्रस्त भाईसे बोले—"आर्य ! मैं स्वयं अपनी इच्छासे उन्हें छोड़कर यहाँ नहीं आया हूँ। उन्हींके कठोर वचनोंसे प्रेरित होकर मुझे आपके पास आना पड़ा है। आपके ही समान स्वरमें किसीने बड़े जोरसे पुकारा—'लक्ष्मण ! मुझे बचाओ !' यह वाक्य मिथिलेशकुमारीके कानोंमें पड़ा। उस आर्तनादको सुनकर वे आपके स्नेहवश भयसे व्याकुल हो गयीं और रोती हुई मुझसे बोलीं—'जाओ, जल्दी जाओ।' जब उन्होंने कई बार ऐसा कहकर यहाँ आनेके लिये मुझे प्रेरित किया, तब उन्हें विश्वास दिलाते हुए मैंने यह वाक्य कहा—'देवि ! मैं ऐसे किसी राक्षसको नहीं देखता, जो भगवान् श्रीरामको भी संकटमें डाल सके। आप शान्त रहें। यह उनकी आवाज नहीं है। किसी दूसरेने इस तरहकी पुकार की है। 'मुझे बचाओ' ऐसा निन्दित एवं नीच वचन आर्य श्रीरामचन्द्रजी कैसे कहेंगे ? वे तो सम्पूर्ण देवताओंकी भी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। किसी दूसरेने मेरे भाईके स्वरकी नकल करके किसी बुरे अभिप्रायसे 'लक्ष्मण ! मुझे बचाओ' यह वचन कहा है। शोभने ! तुम व्याकुल मत होओ, स्वस्थ हो जाओ, चिन्ता छोड़ दो। तीनों लोकोंमें ऐसा कोई पुरुष न तो उत्पन्न हुआ है और न होगा, जो युद्धमें श्रीरघुनाथजीको परास्त कर सके। संग्राममें इन्द्र आदि देवता भी उन्हें नहीं जीत सकते।' मेरे ऐसा कहनेपर विदेहकुमारीकी चेतना मोहसे आच्छन्न हो गयी। वे आँसू बहाती हुई मुझसे अत्यन्त कठोर वचन बोलीं—'तेरे मनमें मेरे प्रति अत्यन्त पापपूर्ण भाव भरा है। तू अपने भाईके मरनेपर मुझे प्राप्त करना चाहता है, किन्तु मुझे पा नहीं सकेगा। तू अपने भाईका छिपा हुआ शत्रु है; तभी तो वे अत्यन्त आर्तभावसे पुकार रहे हैं और तू उनके पास जानेका नाम नहीं लेता। तू केवल मेरे लिये ही श्रीरामचन्द्रजीके साथ आया है। इसीलिये तू उनकी अनुपस्थिति ढूँढ़ रहा है।' जानकीकी ये बातें सुनकर मुझे बड़ा क्रोध हुआ और मैं आश्रमसे चला आया।"

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी संतापसे मोहित हो गये और बोले—'सौम्य ! तुम सीताको छोड़कर जो यहाँ चले आये, यह तुमने बहुत बुरा किया। तुम जानते थे कि मैं राक्षसोंको मार भगानेमें समर्थ हूँ; फिर भी सीताके क्रोधयुक्त वचनसे उत्तेजित होकर निकल पड़े। तुम सीताको छोड़कर यहाँ चले आये—इससे मैं तुम्हारे ऊपर संतुष्ट नहीं हूँ। सीताकी प्रेरणासे क्रोधके वशीभूत होकर जो तुमने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है, तुम्हारा यह कार्य सर्वथा नीतिके विरुद्ध है। जो मृगका रूप धारण कर मुझे आश्रमसे दूर ले गया था, वह राक्षस मेरे बाणसे घायल होकर सदाके लिये सो गया है। जब धनुष चढ़ाकर मैंने उसे बाण मारा तो वह मृग-शरीरका परित्याग कर आर्तनाद करता राक्षसके आकारमें परिणत हो गया। बाणके लगते ही उसने मेरे स्वरकी नकल करके दूरतक स्पष्ट सुनायी पड़नेवाली आवाजमें वह आर्त एवं दारुण वचन कहा, जिसे सुनकर तुम जानकीको अकेली छोड़कर चले आये।'

आश्रमकी ओर आते समय श्रीरामचन्द्रजीके बायें नेत्रकी नीचेवाली पलक जोर-जोरसे फड़कने लगी। वे सीताको देखने-के लिये उत्कण्ठित हो बड़ी उतावलीके साथ आये। आकर देखा कि आश्रम सूना पड़ा है; इससे उनका मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। वह स्थान वृक्षों [की सनसनाहट] के द्वारा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Foundation Chennai and eGangotri

मानो रो रहा था। फूल मुरझा गये थे। मृग और पक्षी मन मारे बैठे थे। वहाँकी सम्पूर्ण शोभा नष्ट हो गयी थी। सारी कुटी उजाड़ दिखायी देती थी। वनके देवता वहाँ उस स्थानको छोड़कर चले गये थे। सब ओर कुश बिखरे हुए थे। मृगचर्म और चटाइयाँ अस्त-व्यस्त पड़ी थीं। पर्णशालाको सूनी देखकर भगवान् श्रीराम बारंबार विलाप करने

लगे—'हाय! सीताको किसीने हर तो नहीं लिया? उसकी मृत्यु तो नहीं हो गयी? अथवा वह खो तो नहीं गयी? या किसी राक्षसने उसे खा तो नहीं लिया? वह भीरु कहीं छिप तो नहीं गयी है? अथवा फल-फूल लानेके लिये वनके भीतर तो नहीं चली गयी है? सम्भव है, जल लानेके उद्देश्यसे तालाब अथवा नदीके तटपर गयी हो।' श्रीरामचन्द्रजीने प्रयत्नपूर्वक अपनी प्रिय पत्नी सीताको वनमें चारों ओर ढूँढ़ा; किन्तु कहीं भी पता न लगा। शोकके कारण उनकी आँखें लाल हो गयीं। वे पागलकी भाँति दिखायी देने लगे और एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके पास दौड़ते हुए पर्वतों, नदों और नदियोंके किनारे घूमने लगे। शोकके समुद्रमें डूबे हुए श्रीरामचन्द्रजी विलाप करते-करते वृक्षोंसे पूछने लगे—'कदम्ब! मेरी प्रिया सीताको तुमसे बहुत प्रेम था, क्या तुमने उसे कहीं देखा है? यदि जानते हो तो उस सुन्दरीका पता बताओ। चिकने पल्लवके समान उसके कोमल अङ्ग हैं तथा उसके शरीरपर पीले रंगकी रेशमी साड़ी शोभा पा रही है। बिल्व! यदि तुमने कहीं उसे देखा हो, तो बताओ। अर्जुन! तुम्हारे फूलोंपर मेरी प्रियाका विशेष अनुराग था। अतः तुम्हीं उसका कुछ समाचार बताओ। कृशाङ्गी जनककिशोरी जीवित है या नहीं? जामुन! सुवर्णके समान कान्तिवाली मेरी प्रिया यदि तुम्हारी दृष्टिमें पड़ी हो, यदि तुम उसके विषयमें कुछ जानते हो, तो निःशङ्क होकर मुझे बताओ। कनेर! आज तो फूलोंके लगनेसे तुम्हारी बड़ी शोभा हो रही है। साध्वी सीताको तुम्हारे ये फूल बहुत ही पसंद थे। यदि तुमने उसे कहीं देखा हो, तो मुझसे कहो।'

इसी प्रकार आम, कदम्ब, महाशाल, कटहल, कुरर और अनार आदि वृक्षोंको भी देखकर महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी उनके पास गये और मौलसिरी, पुन्नाग, चन्दन तथा केवड़े आदिके पेड़ोंसे भी पूछते फिरे। उस समय वे वनमें पागलकी तरह इधर-उधर भटकते दिखायी देने लगे। [ सामने हरिनको देखकर बोले— ] 'हरिन! क्या तुम अपने ही समान नेत्रोंवाली मिथिलेशकुमारीका पता जानते हो? मेरी प्रियाकी दृष्टि भी तुम हरिनोंकी-सी ही है। अतः वह हरिनियोंके ही साथ होगी।' [ फिर बाघको देखकर कहने लगे— ] 'बाघ! यदि मेरी चन्द्रमुखी पत्नी मिथिलेशकुमारी तुम्हारी दृष्टिमें पड़ी हो तो निःशङ्क होकर बता दो। मुझसे तुम्हें कोई भय नहीं होगा।' 'हा महाबाहु लक्ष्मण! क्या तुम्हें कहीं मेरी प्रिया दिखायी दे रही है? हा प्रिये! हा भद्रे! हा सीते! तुम कहाँ चली गयीं?' इस तरह बारंबार विलाप करते हुए श्रीरामचन्द्रजी एक वनसे दूसरे वनमें दौड़ने लगे। उन्हें कहीं सीताकी समानता पाकर और कहीं शोककी प्रबलताके कारण भ्रम हो जाता था—सीता मिल गयीं, यह सन्देह हो जाता था। अपनी प्रियतमाकी खोज करते हुए वे कभी-कभी पागलोंकी-सी चेष्टा करने लगते थे। उन्होंने बड़ी दौड़-धूप करके नदियों, वनों, पर्वतों और झरनोंके आसपास सीताकी तलाश की।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## सीताकी खोज, श्रीरामचन्द्रजीका विलाप तथा मृगोंके संकेतसे श्रीराम और लक्ष्मणका दक्षिण दिशामें जाकर युद्धके चिह्न देखना

चारों ओर ढूँढ़नेपर भी जब विदेहकुमारीका कहीं पता न लगा, तो श्रीरामचन्द्रजी अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर विलाप करते हुए बोले—'लक्ष्मण ! जानकी कहाँ है ? यहाँसे किस देशमें चली गयी ? उसे कौन ले गया ? अथवा किसने मेरी प्रियाको खा डाला ? सीते ! यदि तुम वृक्षोंकी ओटमें खड़ी होकर मुझसे हँसी करना चाहती हो, तो इस समय यह हँसी ठीक नहीं है। मैं बहुत दुखी हो रहा हूँ। तुम मेरे पास आ जाओ। तुम्हारे वियोगमें मैं अपने प्राण त्याग दूँगा।' इस प्रकार विलाप करते हुए श्रीरामचन्द्रजी सीताको देखनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये, किन्तु वे उन्हें दिखायी न पड़ीं। इससे उनको बड़ा दुःख हुआ। सीताके न मिलनेसे उन्हें शोकमग्न देख लक्ष्मणने उनके हितकी कामनासे कहा—'महामते ! आप विषाद न करें। मेरे साथ जानकीको ढूँढ़नेका प्रयत्न करें। यह सामने जो ऊँचा पहाड़ दिखायी देता है, अनेकों कन्दराओंसे सुशोभित है। मिथिलेशकुमारीको वनमें घूमना बहुत अच्छा लगता है; अतः वे वनमें गयी होंगी अथवा कमलके फूलोंसे भरे हुए तालाब या नदीके तटपर मौजूद होंगी। जहाँ-जहाँ जानकीके होनेकी सम्भावना हो, उन सभी स्थानोंपर वनमें हम दोनों उनकी खोज करें। आप शोक त्याग दें।' लक्ष्मणके द्वारा इस प्रकार प्रेमपूर्वक समझाये जानेपर श्रीरामचन्द्रजी सँभल गये और राजा दशरथके वे दोनों पुत्र वनोंमें, पर्वतोंपर तथा नदियों और सरोवरोंके किनारे घूम-घूमकर पूरी चेष्टाके साथ सीताकी तलाश करने लगे। उस पर्वतकी चोटियों, शिलाओं और घाटियोंमें उन्होंने अच्छी तरह जानकीको ढूँढ़ा; किन्तु कहीं भी उनका पता न लगा। पर्वतके चारों ओर खोजकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन ! सारा वन खोज डाला। विकसित कमलोंसे भरे हुए सरोवरोंमें भी देख लिया तथा अनेकों कन्दराओं और झरनोंसे सुशोभित इस पर्वतको भी सब ओरसे छान डाला; परन्तु मुझे अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी वैदेही कहीं दिखायी न पड़ी।'

इस प्रकार विलाप करते हुए श्रीरामचन्द्रजी सीता-हरणके दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो उठे। उनकी दशा बड़ी दीन दिखायी देने लगी और वे शोकके आवेशसे थोड़ी देरके लिये विह्वल हो गये। फिर विलाप करते हुए बोले—'लक्ष्मण ! मैं सीताके साथ वनमें आया था। अब उसे यहीं खोकर अपने सूने अन्तःपुरमें कैसे प्रवेश करूँगा ? संसारके लोग मुझे निर्बल और निर्दयी कहेंगे। सीताके अपहरणसे सर्वत्र मेरी कायरता सूचित होगी। जब वनवाससे लौटकर अयोध्याको जाऊँगा और मिथिलानरेश जनक मुझसे कुशल पूछने आयेंगे, तो मैं कैसे उनकी ओर आँख उठाकर देख सकूँगा ? विदेहराज जब मुझे सीतासे रहित देखेंगे तो अपनी पुत्रीके विनाशसे दुखी होकर निश्चय ही मूर्च्छित हो जायँगे। अतः अब मैं अयोध्यामें जाऊँगा ही नहीं। जानकीके बिना मुझे स्वर्ग भी सूना ही जान पड़ेगा। इसलिये अब तुम मुझे यहीं छोड़कर अयोध्यापुरीको चले जाओ। सीताके बिना मैं किसी तरह जी नहीं सकता। भरतका गाढ़ आलिङ्गन करके तुम उनसे मेरा संदेश कह देना—'कैकेयीनन्दन ! तुम सारी पृथ्वीका पालन करो, इसके लिये रामने तुम्हें आज्ञा दी है। मेरी माता कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्राको प्रतिदिन प्रणाम करते हुए उन सबकी रक्षा करना और सदा उनकी आज्ञाके अनुसार चलना।' सीताके विरहमें भगवान् श्रीराम जब इस तरह विलाप करने लगे, तो लक्ष्मणके मुखपर भयजनित व्याकुलताके चिह्न दिखायी देने लगे। उनका मन व्यथित हो उठा और वे अत्यन्त घबरा गये।

लक्ष्मण शोकके अधीन हो रहे थे। उनसे शोकमग्न श्रीराम अपने ऊपर पड़े हुए संकटके अनुरूप पुनः वचन बोले—'हाय ! मेरी श्रेष्ठ स्वभाववाली पत्नीको राक्षसने आकाशमार्गसे हर लिया। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। भयके मारे उसके मुँहसे आवाज नहीं निकली होगी। वह बारंबार भीतर-ही-भीतर घुट-घुटकर रोयी होगी। हाय ! उत्तम व्रतका पालन करनेवाली मेरी प्रियतमाका गला हर समय हारसे सुशोभित होने योग्य था, किन्तु राक्षसोंने सूने वनमें उसे फाड़कर उसका खून पीया होगा। मेरे न रहनेके कारण निर्जन वनमें राक्षसोंने उसे घसीटा होगा और वह विशाल नेत्रोंवाली जानकी अत्यन्त दीनभावसे कुररीकी भाँति विलाप करती रही होगी। लक्ष्मण ! यही वह शिला है, जिसपर उदारस्वभाववाली सीता एक दिन मेरे साथ बैठी हुई थी। उस समय उसने हँस-हँसकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमसे बहुत-सी बातें कही थीं। सरिताओंमें श्रेष्ठ यह गोदावरी नदी मेरी प्रियतमाको सदा ही प्रिय रही है। सोचता हूँ, शायद वह इसीके तटपर गयी हो; किन्तु वह अकेली तो वहाँ कभी जाती नहीं थी। सूर्यदेव! तुम संसारके कृत और अकृतको जाननेवाले हो। सम्पूर्ण जगत्‌के सत्य और अनृत—शुभ और अशुभ कर्मोंके साक्षी हो। बताओ, मेरी प्रिया सीता कहाँ चली गयी? उसे कौन हर ले गया? मैं उसके शोकसे पीड़ित हो रहा हूँ। मुझसे उसका सारा समाचार कहो। वायुदेव! समस्त विश्वमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो तुम्हें सदा ज्ञात न रहती हो। मेरी कुलपालिका सीताका पता बता दो। वह मर गयी, हर ली गयी अथवा अभी मार्गमें ही है।'

इस प्रकार शोकके अधीन होकर श्रीरामचन्द्रजी संज्ञाशून्य हो विलाप करने लगे। उनकी ऐसी अवस्था देख न्यायमार्गपर स्थित रहनेवाले धीरचित्त लक्ष्मणने उस समयके योग्य वचन कहा—'आर्य! आप शोक छोड़कर धैर्य धारण करें। सीताकी खोज करनेके लिये उत्साह रखें; क्योंकि उत्साही मनुष्य जगत्‌में कठिन-से-कठिन कार्य आ पड़नेपर भी कभी दुखी नहीं होते।' तब श्रीरामने कहा—'लक्ष्मण! तुम शीघ्र ही गोदावरी नदीके तटपर जाकर पता लगाओ। कहीं सीता वहीं तो नहीं चली गयी है।' श्रीरामकी आज्ञा पाकर लक्ष्मण तीव्र गतिसे पुनः गोदावरीके तटपर गये और उसके घाटोंपर ढूँढ़कर लौट आये। फिर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'मुझे गोदावरीके घाटोंपर विदेहकुमारीके दर्शन नहीं हुए।' यह सुनकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे स्वयं ही गोदावरी नदीके तटपर जाकर पूछने लगे—'सीता कहाँ हैं?' किन्तु गोदावरीने उनकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया। सीताके दर्शनके विषयमें जब नदीने उन्हें पूर्ण निराश कर दिया, तो वे दुखी होकर लक्ष्मणसे बोले—'सौम्य! यह गोदावरी नदी तो मुझे कोई उत्तर ही नहीं देती। अब मैं राजा जनकसे मिलनेपर उन्हें क्या जवाब दूँगा? जानकीकी माताको यह अप्रिय बात कैसे सुनाऊँगा? राज्यहीन होकर वनमें जंगली फल-मूलोंसे जीवन-निर्वाह करते समय भी जो मेरे साथ रहकर मेरे सभी दुःखोंको दूर किया करती थी, वह विदेहराजकुमारी कहाँ चली गयी? बन्धु-बान्धवोंसे तो मेरा बिछोह हो ही गया था। सीताके दर्शनसे भी वञ्चित होना पड़ा। उसकी चिन्तामें निरन्तर जागते रहनेके कारण अब मेरे लिये एक-एक रात बहुत बड़ी हो जायगी। मन्दाकिनी नदी, जनस्थान तथा प्रस्रवण पर्वत—इन सब स्थानोंपर मैं बारंबार भ्रमण करूँगा। शायद वहाँ सीताका पता लग जाय। ये विशाल मृग मेरी ओर बारंबार देख रहे हैं, मानो मुझसे कुछ कहना चाहते हैं। मैं इनकी चेष्टाओंको समझ रहा हूँ।' यों कहकर श्रीरामचन्द्रजीने उन मृगोंकी ओर देखते हुए कहा—'तुमलोग बताओ सीता कहाँ है।'

उनके इस प्रकार पूछनेपर वे मृग सहसा उठकर खड़े हो गये और ऊपरको देखकर आकाशमार्गकी ओर लक्ष्य कराते हुए सब-के-सब दक्षिण दिशाकी ओर मुँह किये दौड़े। मिथिलेशकुमारी सीता हरी जाकर जिस दिशामें गयी थीं, उसी ओरके मार्गसे जाते हुए वे मृग श्रीरामचन्द्रजीको बारंबार देखते जाते थे। साथ ही वे कुछ कहते हुए-से आकाशमार्ग तथा पृथ्वीकी ओर भी दृष्टिपात करते जाते थे। लक्ष्मणने उनकी चेष्टाओंको ध्यानसे देखा और उनके इशारोंका अभिप्राय समझ लिया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्रातासे

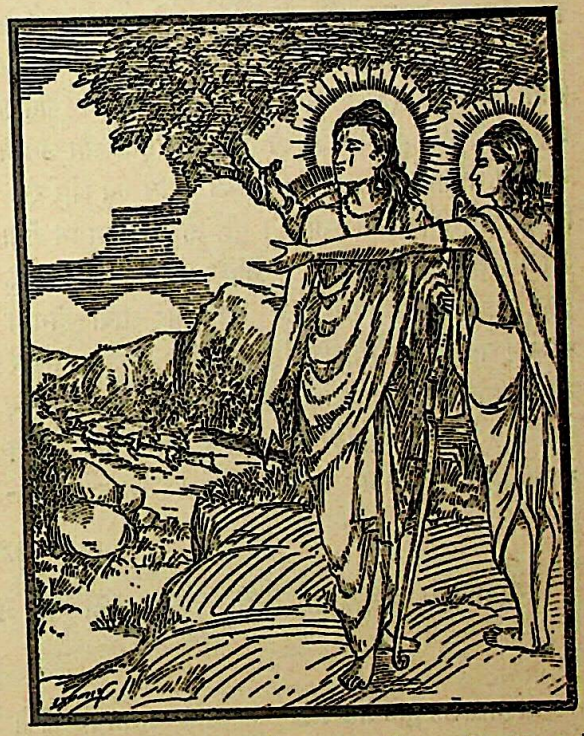

दुखी होकर कहा—'आर्य! जब आपने पूछा कि सीता कहाँ है, तो ये मृग सहसा उठकर खड़े हो गये और पृथ्वी तथा दक्षिण दिशाकी ओर हमारा लक्ष्य कराया। इसलिये देव! अब हम दोनों राक्षसोंकी निवासभूमि इस दक्षिण दिशाकी ओर ही चलें। सम्भव है, इधर चलनेसे आर्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीताका कुछ पता लगे अथवा वे स्वयं ही मिल जायँ।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'ठीक है,' और वे लक्ष्मणको साथ लेकर पृथ्वीकी ओर ध्यानसे देखते हुए दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये। दोनों भाई आपसमें इसी प्रकारकी बातें करते ऐसे मार्गपर जा पहुँचे, जहाँ कुछ फूल गिरे दिखायी देते थे। वह पुष्पवृष्टि देखकर श्रीरामचन्द्रजी बहुत दुखी हुए और शोकाकुल लक्ष्मणसे बोले—'सुमित्रानन्दन! मैं इन फूलोंको पहचानता हूँ। मैंने ही वनमें ये फूल सीताको दिये थे। मैं समझता हूँ सूर्य, वायु और यशस्विनी पृथ्वीने मेरा प्रिय करनेके लिये ही इन फूलोंको सुरक्षित रखा है।'

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसके पैरका बहुत बड़ा चिह्न पृथ्वीपर उभरा हुआ देखा। साथ ही राक्षसने जिनका पीछा किया था और जो भयसे थर्राकर इधर-उधर भागती फिरी थीं, उन विदेहराजकुमारी सीताके चरणचिह्न भी वहाँ दिखायी पड़े। सीता और राक्षसके पैरोंके निशान तथा टूटे धनुष, तरकस और छिन्न-भिन्न हुए रथको देखकर श्रीरामचन्द्रजीका हृदय घबरा उठा और उन्होंने अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्राकुमार! देखो, ये सीताके आभूषणोंमें लगे हुए सोनेके घुँघरू बिखरे पड़े हैं और उसकी बहुत-सी मालाएँ टूटी पड़ी हैं। यहाँकी जमीन सब ओर रक्त-बिन्दुओंसे रँगी दिखायी देती है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंने यहाँ सीताके टुकड़े-टुकड़े करके उसे आपसमें बाँटा और खाया होगा। सौम्य! यह मोती और मणियोंसे विभूषित अत्यन्त सुन्दर और विशाल धनुष किसका है, जो खण्डित होकर धरतीपर पड़ा है? पता नहीं, यह राक्षसोंका है या देवताओंका? यह मध्याह्नके सूर्यके समान चमक रहा है तथा इसके ऊपर वैदूर्य-मणिका काम किया हुआ है। उधर, पृथ्वीपर एक टूटा हुआ सोनेका कवच पड़ा है; जाने वह किसका है? दिव्य मालाओंसे सुशोभित यह सौ कमानियोंवाला छत्र किसका है? इसका डंडा टूट गया है। इधर ये पिशाचोंके समान मुखवाले भयंकर रूपधारी गधे पड़े हैं, जिनका शरीर बहुत ही विशाल है। ये युद्धमें मारे गये जान पड़ते हैं। इन सबकी छातीमें सोनेके कवच बँधे हैं। पता नहीं ये किसके थे? तथा संग्राममें काम देनेवाला यह किसका रथ पड़ा है? इसे किसीने उलटा गिराकर तोड़ डाला है। इसकी ध्वजा प्रज्वलित अग्निकी भाँति दमक रही है। ये भयंकर बाण, जो यहाँ टुकड़े-टुकड़े होकर पड़े हैं, किसके हैं? ये तपाये हुए सोनेसे विभूषित थे। उधर देखो—तीरोंसे भरे दो तरकस पड़े हैं, जो नष्ट कर दिये गये हैं। यह किसका सारथि मरा पड़ा है, जिसके हाथमें चाबुक और लगाम अभीतक मौजूद हैं? ये जो पदचिह्न दिखायी देते हैं, अवश्य ही किसी राक्षस पुरुषके हैं। लक्ष्मण! इन कठोर हृदयवाले कामरूपी राक्षसोंके साथ मेरा वैर सौगुना बढ़ गया है। यह उनके प्राण लेकर ही शान्त होगा। तपस्विनी सीता हरी गयी, मृत्युको प्राप्त हो गयी अथवा राक्षसोंने उसे खा लिया।'

तब लक्ष्मणने कहा—'भैया! मेरी समझमें भी नहीं आता कि यह किसका युद्धोपयोगी रथ टूटा पड़ा है। यह अस्त्र-शस्त्र आदि सभी सामग्रियोंसहित नष्ट हो गया है। पता नहीं किसने और किसलिये इस रथको तोड़ा है। यहाँकी भूमि खुरों और पहियोंसे खुदी हुई तथा रक्तबिन्दुओंसे सींची हुई है। इस स्थानपर भयंकर युद्ध हुआ जान पड़ता है। परन्तु यहाँकी भूमि एक ही पुरुषके पैरोंसे रौंदी गयी है। दो पुरुषोंके अथवा बहुत बड़ी सेनाके पैरोंके चिह्न नहीं दिखायी देते।'

## लक्ष्मणका श्रीरामको ढाढ़स देना, जटायुका प्राण-त्याग और श्रीरामद्वारा उनका दाह-संस्कार

तदनन्तर, सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने श्रीरामचन्द्रजीको ढाढ़स देकर शान्त किया और उनके चरण दबाते हुए इस प्रकार समझाया—'रघुनन्दन! यदि अपने ऊपर आये हुए इस दुःखको आप ही धैर्यपूर्वक नहीं सहेंगे तो दूसरे साधारण-पुरुष, जिनकी शक्ति बहुत अल्प है, कैसे सह सकेंगे? नरश्रेष्ठ! आप धैर्य धारण करें। संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जिसपर आपत्तियाँ नहीं आतीं? वे अग्निकी भाँति एक क्षणमें स्पर्श करती और दूसरे ही क्षणमें दूर हो जाती हैं। यही इस जगत्का स्वभाव है। महर्षि वसिष्ठके, जो हमारे पिताके भी पुरोहित रहे हैं, सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे; किन्तु जैसे उनकी उत्पत्ति हुई वैसे ही वे एक ही दिनमें विश्वामित्रके हाथसे मार भी डाले गये। यह जगन्माता पृथ्वी सभी लोकों-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा पूजित है; किन्तु इसमें भी कम्प देखा जाता है। जो धर्मके प्रवर्तक और संसारके नेत्र हैं, जिनके आधारपर ही सारा प्रपञ्च टिका है, वे महापराक्रमी सूर्य और चन्द्रमा भी राहुके द्वारा ग्रसे जाते हैं। इन्द्र आदि देवताओंको भी नीति और अनीतिके कारण सुख और दुःखोंकी प्राप्ति होती सुनी जाती है। इसलिये आप शोक न करें। आप-जैसे सर्वज्ञ पुरुष बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आनेपर भी कभी शोक नहीं करते। अपने विवेकको नष्ट नहीं होने देते। वीरवर! पहले अनेकों बार आप ही इस तरहकी बातें कहकर मुझे समझा चुके हैं। आपको कौन सिखा सकता है? साक्षात् बृहस्पति भी आपको उपदेश देनेकी शक्ति नहीं रखते। महाप्राज्ञ! देवता भी आपकी बुद्धिका पता नहीं पा सकते।'

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सब वस्तुओंका सार ग्रहण करनेवाले हैं। उन्होंने लक्ष्मणके कहे हुए अत्यन्त सारगर्भित उत्तम वचन सुनकर उन्हें स्वीकार किया। तत्पश्चात् वे इस प्रकार बोले—'वत्स! अब हमलोग क्या करें, कहाँ जायँ और किस उपायसे सीताको देखें—इसका विचार करो।' तब लक्ष्मण अपने शोकाकुल भ्रातासे कहने लगे—'भैया! आपको इस जनस्थानमें ही सीताकी खोज करनी चाहिये। नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे युक्त यह सघन वन अनेकों राक्षसोंसे भरा है। इसमें पर्वतके ऊपर अनेकों दुर्गम स्थान, शिलाओंको चूर्ण करनेवाले झरने तथा कन्दराएँ हैं। उनमें नाना प्रकारके पशु निवास करते हैं। वहाँ किन्नरों और गन्धर्वोंके भी रहनेके स्थान हैं। मेरे साथ चलकर आप उन सभी स्थानोंमें सीताको ढूँढ़ें।' लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी अपने धनुषपर भयंकर क्षुरनामक बाणका सन्धान करके समूचे वनमें विचरण करने लगे। उनके साथ लक्ष्मण भी थे। थोड़ी ही दूर आगे जानेपर उन्हें पर्वत-शिखरके समान विशाल शरीरवाले पक्षिराज जटायु दिखायी पड़े, जो खूनसे लथपथ हुए जमीनपर पड़े थे। उन्हें देखकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले—'यह गृध्रके रूपमें अवश्य ही कोई राक्षस जान पड़ता है, जो विशाल नेत्रोंवाली सीताको खाकर यहाँ सुखसे बैठा है। मैं अपने भयंकर बाणोंसे इसका वध करूँगा।' यह सुनकर पक्षिराज जटायु अपने मुँहसे फेनयुक्त रक्त वमन करते अत्यन्त दीन वाणीमें दशरथ-कुमार श्रीरामसे बोले—'आयुष्मन्! तुम इस महान् वनमें ओषधिके समान जिसे ढूँढ़ रहे हो, उस देवी सीताको तथा मेरे इन प्राणोंको भी रावणने हर लिया। तुम्हारे और लक्ष्मणके न रहनेपर महाबली रावण आया और सीताको हरकर ले जाने लगा। उस समय मेरी दृष्टि सीतापर पड़ी और मैं उसकी सहायताके लिये दौड़ा। रावणके साथ मेरा घोर युद्ध हुआ। मैंने उसके रथ और छत्र आदि सभी साधन नष्ट कर दिये तथा उसे भी घायल करके पृथ्वीपर गिरा दिया। ये उसीके टूटे हुए धनुष और बाण हैं तथा वह उसका युद्धमें काम आनेवाला रथ है, जो टूटा पड़ा है। वह रावणका सारथि है, जिसे मैंने अपने पंखोंसे मार डाला था। जब मैं युद्ध करते-करते थक गया तो रावणने तलवारसे मेरे पंख काट डाले और वह विदेहकुमारी सीताको लेकर आकाशमें उड़ गया। मैं उस राक्षसके हाथसे पहले ही मरा पड़ा हूँ, अब तुम मुझे न मारो।'

सीतासे सम्बन्ध रखनेवाली यह प्रिय वार्ता सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अपना महान् धनुष फेंक दिया और दौड़कर गृध्रराज जटायुको गलेसे लगा लिया। वे लक्ष्मणके

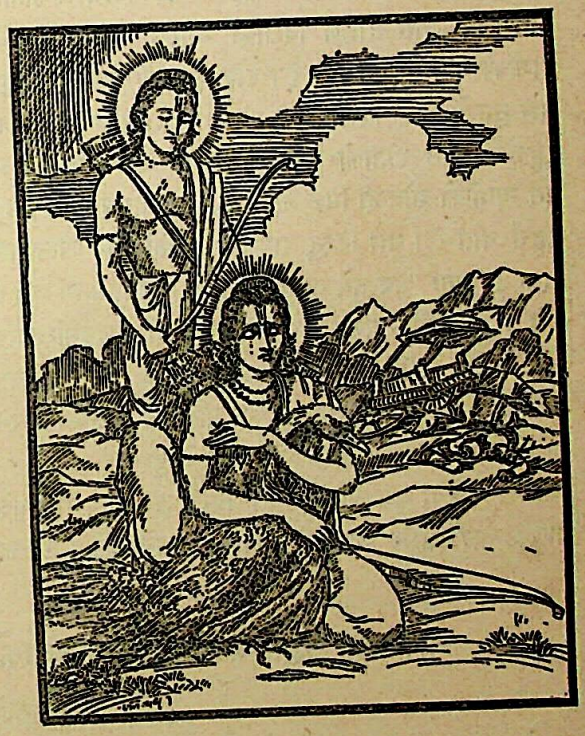

साथ ही रो पड़े। अत्यन्त धीर होनेपर भी उन्होंने उस समय दूने दुःखका अनुभव किया। मरणासन्न कष्टमें पड़े हुए जटायुको बारंबार लंबी साँस खींचते देख भगवान् श्रीराम लक्ष्मणसे बोले—'ये महाबली गृध्रराज पिताजीके मित्र थे, जो मेरे दुर्भाग्यवश मारे जाकर इस समय धरतीपर पड़े हैं।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर लक्ष्मणसहित रघुनाथजीने जटायुके शरीरपर हाथ फेरा और पिताके प्रति जैसा स्नेह होना चाहिये, वैसा ही उनके प्रति भी प्रदर्शित किया। पंख कट जानेके कारण जटायु लहू-लुहान हो रहे थे, उनके शरीरपर हाथ रखकर श्रीरामने पूछा—'तात! मेरी प्राणोंके समान प्रिया मिथिलेशकुमारी सीता कहाँ है? यदि आप बोल सकते हों तो बतायें, सीताके हरण तथा आपके वधका क्या कारण है? उस समय सीताने क्या-क्या बातें कही थीं? रावणका पराक्रम और रूप कैसा है? वह राक्षस क्या काम करता है तथा उसका निवासस्थान कहाँ है? ये सभी बातें मैं आपसे जानना चाहता हूँ, कृपया बतलाइये।'

यह सुनकर धर्मात्मा जटायुने एक बार श्रीरामकी ओर देखा और लड़खड़ाती हुई जबानमें कहा—'रघुनन्दन! राक्षसराज रावण बड़ा दुरात्मा है। उसने मायाके द्वारा आँधी और पानीकी सृष्टि करके सीताका हरण किया है। थक जानेपर मेरे दोनों पंख काटकर वह निशाचर सीताको साथ लिये यहाँसे दक्षिण दिशाकी ओर गया था। अब मेरे प्राणोंकी गति बंद हो रही है। दृष्टि घूम रही है। समस्त वृक्ष मुझे सुनहरे रंगके दिखायी दे रहे हैं। राक्षसराज रावण जिस मुहूर्त्तमें यहाँसे सीताको लेकर गया था, उसमें खोया हुआ धन स्वामीको शीघ्र ही मिल जाता है। उस समय विन्दनामक मुहूर्त्त बीत रहा था; किन्तु रावणने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। अतः अब तुम जानकीके लिये अपने मनमें खेद न करो। संग्राममें रावणको मारकर शीघ्र ही विदेहनन्दिनीके साथ विहार करोगे। रावण विश्रवाका पुत्र और साक्षात् कुबेरका भाई है।' इतना कहकर पक्षिराज जटायुने अपने प्राण त्याग दिये। श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़े कह रहे थे—'कहिये, कहिये; कुछ और कहिये।' किन्तु उस समय गृध्रराजके प्राण उनका शरीर छोड़कर आकाशमें चले गये। उनका मस्तक जमीनपर टिक गया और दोनों पैर फैल गये। यह देखकर अनेकों प्रकारके दुःखोंसे दुखी हुए श्रीराम लक्ष्मणसे कहने लगे—'सुमित्रानन्दन! देखो, गृध्रराज मेरे बड़े उपकारी थे; परन्तु आज ये भी चल बसे। सीताकी रक्षाके लिये इन्होंने महाबली रावणका सामना किया और मेरे लिये अपने प्राण त्याग दिये। शूर, शरणागतकी रक्षा करनेवाले और धर्मपरायण साधुपुरुष सभी जगह देखे जाते हैं। पशु-पक्षीकी योनियोंमें भी उनका अभाव नहीं है। इस समय मुझे सीताके हरणका उतना दुःख नहीं है जितना कि मेरे लिये प्राण-त्याग करनेवाले जटायुकी मृत्युसे हो रहा है। महायशस्वी श्रीमान् राजा दशरथ जैसे मेरे माननीय और पूज्य हैं, वैसे ही ये पक्षिराज जटायु भी हैं। अतः लक्ष्मण! तुम सूखी लकड़ियाँ एकत्रित करो; मैं मथकर आग निकालूँगा और मेरे लिये मृत्युको प्राप्त हुए इन गृध्रराजका दाह-संस्कार करूँगा। यज्ञ करनेवाले, अग्निहोत्री, युद्धमें पीठ न दिखानेवाले और भूमि दान करनेवाले पुरुषोंको जिस गतिकी—जिन उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है, महाबली गृध्रराज! तुम भी उन्हीं लोकोंमें जाओ।' ऐसा कहकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने दुःखित हो पक्षिराजके शरीरको चितापर रखा और उसमें आग लगाकर अपने बन्धुकी भाँति उनका दाह किया। ब्राह्मण-लोग परलोकवासी मनुष्यको स्वर्गकी प्राप्ति करानेके लिये जिन मन्त्रोंका जप आवश्यक बतलाते हैं, उन सबका भगवान् श्रीरामने जप किया। तदनन्तर दोनों राजकुमार गोदावरी नदीके तटपर गये और वहाँ स्नान करके उन्होंने शास्त्रीय विधिके अनुसार गृध्रराजको जलाञ्जलि दी। महर्षिकल्प श्रीरामके द्वारा दाह-संस्कार होनेके कारण गृध्रराज जटायुको आत्माका कल्याण करनेवाली परम पवित्र गति प्राप्त हुई। तर्पण करनेके पश्चात् वे दोनों भाई पक्षिराजका निरन्तर स्मरण करते सीताकी खोजके लिये वनमें आगे बढ़े।

## कबन्धका उद्धार तथा श्रीरामचन्द्रजीको सुग्रीवसे मैत्री करनेका परामर्श देते हुए उनके पास जानेका मार्ग बताना

वनमें सीताकी खोज करते हुए वे दोनों रघुवंशी वीर पच्छिम दिशाकी ओर प्रस्थित हुए। तत्पश्चात् क्रौञ्च वनको पार करके उन्होंने रास्तेमें ही मतङ्ग मुनिका आश्रम देखा। वहाँ पास ही एक पर्वत था, जिसके ऊपर पातालके समान गहरी एक बहुत बड़ी कन्दरा थी। वह सदा अन्धकारसे आच्छादित रहती थी। उसके समीप पहुँचकर नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मणने एक महाकाय राक्षसी देखी, जिसके मुखकी आकृति बड़ी भयानक थी। उसके बाल खुले थे। वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राक्षसी इन दोनों वीरोंके पास आयी और कहने लगी—'आओ, हमलोग रमण करें।' ऐसा कहकर उसने लक्ष्मणको पकड़ लिया। राक्षसीकी बात सुनकर लक्ष्मण क्रोधसे जल उठे और तलवार निकालकर उन्होंने उसके कान, नाक और स्तन काट डाले। कान और नाकके कट जानेपर वह भयंकर निशाचरी जोर-जोरसे चिल्लाने लगी और जहाँसे आयी थी,

उधर ही भाग गयी। उसके चले जानेपर वे दोनों भाई जाते-जाते एक सघन वनमें पहुँचे। वहाँ जाकर महान् तेजस्वी, धैर्यवान्, सुशील एवं पवित्र आचार-विचारवाले लक्ष्मणने हाथ जोड़कर अपने तेजस्वी भ्राता श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'आर्य! मेरी बाँह जोर-जोरसे फड़क रही है और मन उद्विग्न-सा हो रहा है। मुझे बार-बार बुरे शकुन दिखायी देते हैं, इसलिये आप [ भयका सामना करनेको ] तैयार हो जाइये।'

लक्ष्मणके इतना कहते ही उस वनमें बड़े जोरका शब्द हुआ। उससे सारा जंगल गूँज उठा। भाईके साथ तलवार हाथमें लिये भगवान् श्रीराम उस शब्दका पता लगाना ही चाहते थे कि एक चौड़ी छातीवाले विशालकाय राक्षसपर उनकी दृष्टि पड़ी, जिसके न मस्तक था न गला। कबन्ध ( धड़मात्र ) ही उसका स्वरूप था। उसके पेटमें ही मुँह बना हुआ था। वह पर्वतके समान ऊँचा था और उसके सारे शरीरमें तीखे रोएँ थे। वह देखनेमें बड़ा भयंकर एवं नील मेघके समान काला था तथा बादलकी भाँति गर्जता था। उसकी छातीमें एक ही भयानक आँख थी, जिससे वह भली-भाँति देख सकता था। उसकी दाढ़ें बहुत बड़ी थीं और वह लपलपाती हुई जीभसे अपने विशाल मुखको चाट रहा था। अत्यन्त भयंकर भालू, सिंह, मृग और पक्षी—ये ही उसकी खुराक थे। वह एक-एक योजन लंबी अपनी दोनों भुजाएँ फैलाता और नाना प्रकारके रीछ, पक्षी तथा मृगोंको हाथोंसे पकड़कर खींच लेता था। दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जब उसके निकट पहुँचे तो वह उनकी राह रोककर खड़ा हो गया। तब वे दोनों उससे दूर हट गये और उसे खूब गौरसे देखने लगे। उस समय वह एक कोश लंबा जान पड़ा। उसकी आकृति बड़ी ही भयानक और हृदय क्रूर था। कबन्ध ( धड़ ) मात्र होनेके कारण वह कबन्ध कहलाता और बड़ा डरावना दिखायी देता था। उसने अपनी लंबी भुजाएँ फैलाकर एक ही साथ श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको बलपूर्वक पकड़ लिया और उनसे कहा—'तुम दोनों कौन हो? तुम्हारे कंधे बैलके समान ऊँचे हैं। तुमने बड़ी-बड़ी तलवारें और धनुष धारण कर रखे हैं। इस भयंकर देशमें तुम-लोगोंका आना किस उद्देश्यसे हुआ है? मैं भूखसे पीड़ित था और तुम स्वयं ही मेरी आँखोंके सामने चले आये। अतः अब तुम्हारा जीना कठिन है।'

दुरात्मा कबन्धकी ये बातें सुनकर लक्ष्मणने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'आर्य! अब हमलोग इस राक्षसकी बड़ी-बड़ी बाँहें तुरंत अपनी तलवारोंसे काट डालें। यह महाकाय राक्षस बड़ा भीषण है। अपनी भुजाओंके ही बलसे समस्त संसारको जीत चुका है और अब हमलोगोंका भी वध करना चाहता है।' उन दोनोंकी बातचीत सुनकर उस राक्षसको बड़ा क्रोध हुआ और वह अपना भयंकर मुँह फैलाकर उन्हें खा जानेको उद्यत हुआ। इतनेमें ही अवसरका ज्ञान रखनेवाले दोनों राजकुमारोंने अत्यन्त प्रसन्न होकर तलवारोंसे उसके कंधोंपर प्रहार किया और दोनों बाँहें काट गिरायीं। श्रीरामचन्द्रजी उसके दाहिने भागमें खड़े थे और लक्ष्मण वाम भागमें; इसलिये उन्होंने बड़े वेगके साथ क्रमशः उसकी दाहिनी और बायीं भुजा तलवारसे उड़ा दी। भुजाएँ कट जानेपर वह राक्षस मेघके समान भयंकर गर्जनासे पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओंको गुँजाता हुआ जमीनपर गिर पड़ा। और खूनसे लथपथ होकर दीनवाणीमें पूछने लगा—'वीरो! तुम दोनों कौन हो?


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

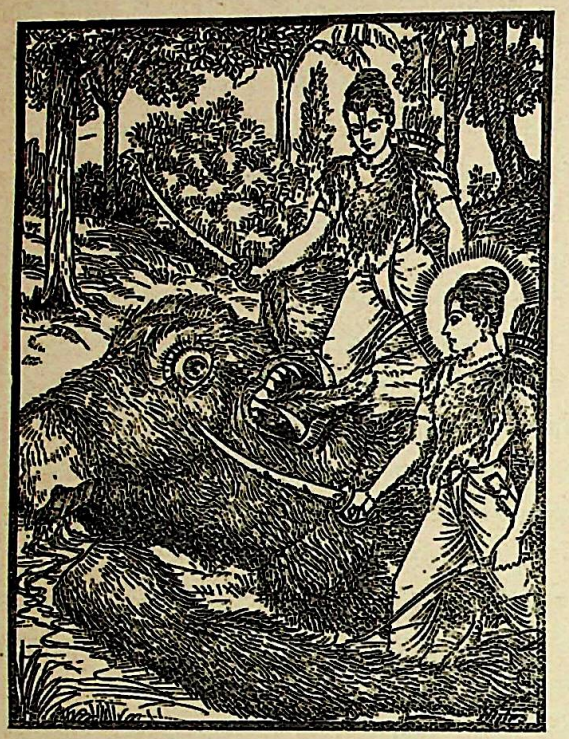

कबन्धके इस प्रकार प्रश्न करनेपर उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मणने उसे श्रीरामचन्द्रजीका परिचय देना आरम्भ किया—'ये इक्ष्वाकुवंशीय महाराज दशरथके पुत्र हैं। लोगोंमें इनकी श्रीरामके नामसे प्रसिद्धि है। मुझे इन्हींका छोटा भाई समझो। मेरा नाम लक्ष्मण है। माता कैकेयीकी प्रेरणासे श्रीरामचन्द्रजी वनवासके लिये यहाँ आये थे और इस महान् वनमें मेरे तथा अपनी धर्मपत्नी सीताके साथ विचरा करते थे। यहाँ किसी राक्षसने इनकी स्त्रीको हर लिया है, उसीकी खोज करते हुए हम दोनों भाई यहाँतक आये हैं। तुम कौन हो? और कबन्धके समान रूप धारण करके क्यों इस वनमें पड़े हो? छातीके नीचे मुँह और टूटी हुई जंघाएँ लिये किसलिये लुढ़कते फिरते हो।'

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर कबन्धने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनकी बातका जवाब दिया—"वीरो! आपका स्वागत है। आप दोनों समस्त मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। मेरे बड़े भाग्य थे, जो आपका दर्शन मिला। मेरी ये दोनों बाँहें बन्धनस्वरूप थीं। सौभाग्यकी बात है कि आपलोगोंने इन्हें काट डाला। यह जो मुझे ऐसा विकृत रूप प्राप्त हुआ है, मेरी ही उद्दण्डताका फल है। मैं आपको यह प्रसंग ठीक-ठीक सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनें। 'महाबाहो! पूर्वकालमें मैं बड़ा बली और पराक्रमी था। मेरा रूप तीनों लोकोंमें विख्यात तथा [ इच्छानुसार बदले जा सकनेके कारण ]अचिन्तनीय था। सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्रके समान मेरा शरीर भी मनोहर एवं तेजस्वी था। ऐसा होनेपर भी मैं लोगोंको भयभीत करनेवाले इस अत्यन्त भयंकर राक्षसरूपको धारण करके इधर-उधर घूमता और वनमें रहनेवाले ऋषियोंको डराया करता था। तदनन्तर एक दिन स्थूलशिरा नामक महर्षिको मैंने अपने बर्तावसे कुपित कर दिया। उन्होंने मुझे ऐसे विकट स्वरूपमें देखकर घोर शाप देते हुए कहा—'आजसे हमेशाके लिये तुम्हारा यही क्रूर और निन्दित रूप रह जाय।' यह सुनकर मैंने प्रार्थना की—'भगवन्! इस शापका अन्त होना चाहिये।' तब महर्षि बोले—'जब श्रीरामचन्द्र [ और लक्ष्मण ] तुम्हारी दोनों भुजाएँ काटकर तुम्हें निर्जन वनमें जलायेंगे, उस समय तुम अपना सुन्दर स्वरूप प्राप्त करोगे।' लक्ष्मण! मैं दनुका पुत्र हूँ। मुनिके शापसे राक्षस होनेके पश्चात् मैं कठोर तपस्या करके पितामह ब्रह्माजीको संतुष्ट किया और उन्होंने मुझे दीर्घ-जीवी होनेका वर दिया। इससे मेरे मनमें बड़ा अहंकार हो गया और एक दिन मैंने युद्धमें देवराज इन्द्रपर आक्रमण किया। उस समय इन्द्रने मुझपर सौ धारोंवाले वज्रका प्रहार किया, जिससे मेरी जाँघें और मस्तक मेरे ही शरीरमें घुस गये। मैंने बहुत प्रार्थना की, इसलिये उन्होंने मुझे यमलोक नहीं पठाया। तत्पश्चात् मैंने कहा—'देवराज! आपने अपने वज्रकी मारसे मेरी जाँघें, मस्तक और मुँह—सभी तोड़ डाले। अब मैं कैसे आहार ग्रहण करूँगा और उसके बिना दीर्घ कालतक किस प्रकार जी सकूँगा।' यह सुनकर इन्द्रने मेरी भुजाएँ एक-एक योजन लंबी कर दीं और मेरे पेटमें ही तीखे दाढ़ोंवाला मुख बना दिया। इस प्रकार मैं इन विशाल भुजाओंसे वनमें रहनेवाले सिंह, चीते, हरिन और बाघ आदि जन्तुओंको सब ओरसे समेटकर खाया करता था। इन्द्रने मुझे यह भी बता दिया था कि 'जब लक्ष्मणसहित श्रीराम युद्धमें तुम्हारी बाँहें काट देंगे, उस समय तुम स्वर्गमें जाओगे।' अतः अब आप दोनों जब अग्निके द्वारा मेरा दाह-संस्कार करेंगे, उस समय मैं आपको एक अच्छे मित्रका पता बताऊँगा।"

उस दानवके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके सामने ही उससे बोले—'मेरी यशस्विनी भार्या सीताको रावण हर ले गया है। उस समय मैं अपने भाई लक्ष्मणके साथ जनस्थानके बाहर चला गया था। हमें उस राक्षसका नाममात्र मालूम है। वह कहाँ रहता है और कैसा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका प्रभाव है, इस बातसे हमलोग सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इस विषयमें कुछ उपकार करके तुम हमारे ऊपर समुचित कृपा करो। फिर हम हाथियोंके द्वारा तोड़ी हुई सूखी लकड़ियाँ लाकर एक बहुत बड़ा गड्ढा तैयार करेंगे और उसके भीतर तुम्हारे शरीरको रखकर जला देंगे। अतः अब तुम हमें सीता-का पता बताओ, इस समय वह कहाँ है ?' श्रीरामकी बात सुनकर वह दानव बोला—'इस समय मुझे दिव्य ज्ञान नहीं है। शापके कारण मेरा महान् विज्ञान नष्ट हो गया है। अतः रघुनन्दन ! जबतक सूर्यदेव अस्त नहीं हो जाते, तभीतक मुझे गड्ढेमें डालकर शास्त्रीय विधिके अनुसार मेरा दाह-संस्कार कर दीजिये। आपके द्वारा विधिपूर्वक मेरा दाह हो जानेपर मैं ऐसे महापुरुषका पता बताऊँगा, जो उस राक्षसको जानते होंगे।'

कबन्धने जब ऐसा कहा, तो नरश्रेष्ठ वीरवर श्रीराम और लक्ष्मणने उसे एक पर्वतके गड्ढेमें डालकर उसमें आग लगा दी। लक्ष्मणने जलती हुई लुकारियोंके द्वारा चारों ओरसे उसकी चितामें आग लगा दी; फिर तो वह सब ओरसे प्रज्वलित हो उठी। तदनन्तर उस चितामें कुछ कम्पन हुआ और कबन्ध उसमेंसे धूमरहित अग्निकी भाँति तेजस्वी शरीर धारण किये प्रकट हुआ। उस समय उसके शरीर-पर दो उज्ज्वल वस्त्र और दिव्य हार शोभा पा रहे थे। वह हंसोंसे जुते हुए तेजस्वी विमानपर बैठकर अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। उसने अन्तरिक्षमें स्थित होकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन ! मैं जो कहता हूँ, उसे सुनिये। सुग्रीव नामके एक श्रेष्ठ वानर हैं, जिन्हें उनके भाई इन्द्रपुत्र वालीने कुपित होकर घरसे निकाल दिया है। वे इस समय पम्पा सरोवरके निकट शोभायमान ऋष्यमूक नामके उत्तम पर्वतपर चार वानरोंके साथ निवास करते हैं। वानरोंके राजा वीरवर सुग्रीव मनको वशमें रखने-वाले, महान् पराक्रमी, तेजस्वी, अनन्त कान्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, विनयशील, धैर्यवान् और परम बुद्धिमान् हैं। वे आपके मित्र होंगे और सीताकी खोज करनेमें आपकी सहायता करेंगे। इसलिये आप अपने मनमें तनिक भी शोक न करें। यहाँसे शीघ्र ही महाबली सुग्रीवके पास जाइये और उन्हें अपना मित्र बना लीजिये। वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, पराक्रमी तथा कृतज्ञ हैं और इस समय स्वयं ही अपने लिये सहायक ढूँढ़ रहे हैं। उनका जो अभीष्ट कार्य है, उसे आप दोनों भाई सिद्ध कर सकते हैं। सुग्रीवका मनोरथ पूर्ण हो या न हो, वे आपका कार्य अवश्य सिद्ध करेंगे। वे राक्षसोंके सभी स्थानोंको पूर्णरूपसे जानते हैं। संसारमें कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जो उन्हें ज्ञात न हो। जहाँतक सूर्यका प्रकाश पहुँचता है, वहाँतककी नदियों, बड़े-बड़े पर्वतों, पहाड़ी दुर्गम स्थानों और कन्दराओंमें वानरोंके साथ अन्वेषण करके वे आपकी पत्नीका पता लगा देंगे। इतना ही नहीं, मिथिलेशकुमारी सीताको वे रावणके घरमेंसे भी ढूँढ़ निकालेंगे। आपकी प्रियाको मेरु पर्वतके शिखरपर पहुँचाया गया हो या पातालमें रखा गया हो, वानरश्रेष्ठ सुग्रीव समस्त राक्षसोंका वध करके उसे आपके पास ला देंगे।

'श्रीराम ! यहाँसे पश्चिमकी ओर जो रास्ता गया है, जहाँ ये फूलोंसे लदे हुए मनोरम वृक्ष शोभा पा रहे हैं, वही आपके जाने लायक सुखद मार्ग है। उसपर चलते हुए आप दोनों भाई एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर तथा एक वनसे दूसरे वनमें पहुँचेंगे और इस प्रकार अनेकों पर्वतों एवं वनोंको लाँघकर आप पम्पा नामक सरोवरपर पहुँच जायँगे। वहाँकी जमीन ककरीली अथवा ऊबड़-खाबड़ नहीं है। उसके घाट सब ओरसे बराबर हैं। सेवारका तो उसमें नाम भी नहीं है। तालवके नीचेकी जमीन बालुकापूर्ण है। कमल और उत्पल उस सरोवरकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ पम्पाके जलमें विचरने-वाले हंस, कारण्डव, क्रौञ्च और कुरर आदि पक्षी मधुर स्वरमें कूजते रहते हैं। मनुष्योंको देखकर उन्हें भय नहीं होता; क्योंकि वे हिंसासे अपरिचित होते हैं। पम्पा सरोवरके फूल न तो मुरझाते हैं और न बिखरते हैं। कहते हैं वहाँ पहले मतङ्ग मुनिके शिष्य निवास करते थे, जो बड़े ही शान्तचित्त ऋषि थे। वे अपने गुरु मतङ्गमुनिके लिये जब जंगली फल-मूल ले आते और उनके भारसे थक जाते उस समय उनके शरीरसे पृथ्वीपर जो पसीनोंकी बूँदें गिरती थीं, वे ही उन मुनियोंकी तपस्याके प्रभावसे फूलके रूपमें परिणत हो जाती थीं। यही कारण है कि वे फूल नष्ट नहीं होते। वे सब-के-सब ऋषि तो अब चले गये; किन्तु उनकी सेवामें रहनेवाली शबरी आज भी वहाँ दिखायी देती है। वह चिरजीविनी होकर सदा धर्मके अनुष्ठानमें लगी रहती है। रघुनन्दन ! आप समस्त प्राणियोंके वन्दनीय और देवताके तुल्य हैं। आपका दर्शन करके शबरी स्वर्गलोकको सिधारेगी। आप पम्पाके पश्चिम तटपर जाकर एक अनुपम आश्रम देखेंगे, जो [ सर्वसाधारणकी पहुँचके बाहर होनेके कारण ] गुप्त है। उस आश्रमपर मतङ्ग ऋषिके प्रभावसे हाथी कभी आक्रमण नहीं कर सकते। वहाँका जंगल मतङ्गवनके नामसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रसिद्ध है। पम्पा सरोवरके सामने ऋष्यमूक पर्वत है, जहाँके वृक्ष फूलोंसे सुशोभित दिखायी देते हैं। उसके ऊपर चढ़नेमें बड़ी कठिनाई होती है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने उस पर्वतको उत्पन्न किया था। उसके ऊपर एक बहुत बड़ी गुफा शोभा पा रही है, जिसका द्वार पत्थरसे ढँका है। उसके भीतर प्रवेश करनेमें बड़ा कष्ट होता है। उस गुहाके पूर्वद्वारपर ठंढे जलका एक बहुत बड़ा कुण्ड है। वहाँ बहुत-से फल और मूल हैं तथा अनेकों प्रकारके वृक्षोंकी बहुतायत है। वह स्थान बड़ा ही रमणीय है। उसी गुफामें धर्मात्मा सुग्रीव वानरोंके साथ निवास करते हैं तथा कभी-कभी वे पर्वतके शिखरपर भी रहते हैं।' इस प्रकार श्रीराम और लक्ष्मणको सब बातें बताकर तथा उन दोनों भाइयोंकी आज्ञा लेकर कबन्ध स्वर्गको चला गया।

## श्रीराम और लक्ष्मणका शबरीके आश्रम एवं पम्पातटपर जाना और शबरीका परलोकगमन

तदनन्तर राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण कबन्धके बताये हुए पम्पाके मार्गका आश्रय ले पश्चिमकी ओर चले। रात्रिमें पर्वत-शिखरपर निवास करके वे पम्पा सरोवरके पश्चिमतटपर जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने शबरीका सुन्दर आश्रम देखा, जो अनेकों वृक्षोंसे घिरा होनेके कारण अत्यन्त रमणीय जान पड़ता था। उसकी शोभा निहारते हुए दोनों भाई आश्रमपर जाकर शबरीसे मिले। शबरी सिद्ध तपस्विनी थी। श्रीराम और लक्ष्मणको आश्रमपर आया देख, वह हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी तथा उसने उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर पाद्य आदि सब सामग्री अर्पण करके उनकी विधिपूर्वक पूजा की। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी धर्मपरायणा शबरीसे बोले—

'तपस्विनी! क्या तुमने सारे विघ्नोंपर विजय पा ली? क्या तुम्हारी तपस्या बढ़ रही है? तुमने जिन नियमोंको स्वीकार किया है, वे निभ तो जाते हैं न? तुम्हारे मनमें सुख और शान्ति है न? तथा तुमने जो गुरुजनोंकी सेवा की है, वह पूर्णरूपसे सफल हो गयी न?'

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर वह सिद्ध तपस्विनी बूढ़ी शबरी, जो सिद्धोंके द्वारा सम्मानित थी, सामने खड़ी होकर बोली—'रघुनन्दन! आज आपका दर्शन मिलनेसे ही मुझे अपनी तपस्यामें सिद्धि प्राप्त हुई है। आज मेरा जन्म सफल हुआ और गुरुजनोंकी पूजा भी सार्थक हो गयी।* सौम्य! आज आपकी करुणापूर्ण दृष्टि पड़नेसे मैं पवित्र हो गयी और आपके प्रसादसे ही अब मैं अक्षय लोकोंमें जाऊँगी।† जब आप चित्रकूट पर्वतपर पधारे थे, उसी समय मेरे गुरुजन, जिनकी मैं सदा सेवा किया करती थी, अतुल तेजस्वी विमानोंपर बैठकर यहाँसे दिव्यलोकको चले गये। धर्मके जाननेवाले उन महाभाग महर्षियोंने जाते समय मुझसे कहा था कि 'तेरे इस पवित्र आश्रमपर श्रीरामचन्द्रजी पधारेंगे और लक्ष्मणके साथ तेरे अतिथि होंगे। उन दोनोंका यथावत् सत्कार करना। उनका दर्शन करके तू अत्युत्तम अक्षय लोकोंमें जायेगी।' नरश्रेष्ठ! उन महात्माओंके मुखसे जब मैंने आपके पधारनेकी बात सुनी, तभीसे मैंने पम्पाके

* रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता॥
अद्य प्राप्ता तपःसिद्धिस्तव संदर्शनान्मया।
अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः॥
(७४। १०-११)

† तवाहं चक्षुषा सौम्य पूता सौम्येन मानद।
गमिष्याम्यक्षयाँल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिन्दम॥
(७४। १३)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# शबरीके अतिथि

मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ ॥
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसंभवम् ।
(अरण्य० ७४ । १७-१८)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तटपर उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके जङ्गली फल-मूलोंका संग्रह कर रखा है। वह सब आपकी सेवाके लिये प्रस्तुत है।'

शबरी [ जातिसे वर्णबाह्य होनेपर भी ] विज्ञानमें बहिष्कृत नहीं थी—उसे परमात्माके तत्त्वका पूर्ण ज्ञान था। उसकी बातोंको सुनकर धर्मात्मा श्रीरामने कहा—'तपोधने! मैंने कबन्धके मुखसे तुम्हारे महात्मा गुरुजनोंका बड़ा प्रभाव सुना है। यदि तुम स्वीकार करो तो मैं उनके प्रभावको प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।' श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर शबरीने उन दोनों भाइयोंको उस महान् वनका दर्शन कराते हुए कहा—'रघुनन्दन! मेघकी घटाके समान सघन और नाना प्रकारके पशु-पक्षियोंसे भरे हुए इस वनकी ओर दृष्टि डालिये। यह मतङ्गवनके नामसे विख्यात है। यहीं मेरे महात्मा गुरुजन निवास करते थे। इसी स्थानपर उन्होंने गायत्रीमन्त्रके जपसे विशुद्ध हुए अपने देहरूपी पञ्जरको मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्निमें होम दिया था। यह प्रत्यक्स्थली नामकी वेदी है, जहाँ मेरे द्वारा भलीभाँति पूजित हुए महर्षि [ वृद्धावस्थाके कारण ] अपने काँपते हुए हाथोंसे देवताओंको फूलोंकी बलि चढ़ाया करते थे। देखिये, उनकी तपस्याके प्रभावसे आज भी यह वेदी अपने तेजके द्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रही है। इस समय भी इसकी प्रभा अतुलनीय है। उपवास करनेसे दुर्बल होनेके कारण जब वे चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गये, तो उनके चिन्तनमात्रसे यहाँ सात समुद्रोंका जल प्रकट हो गया। वह सप्तसागर तीर्थ आज भी मौजूद है, उसे चलकर देखिये। उसमें स्नान करके उन्होंने वृक्षोंपर जो वल्कल वस्त्र फैला दिये थे, वे इस प्रदेशमें अबतक सूखे नहीं हैं। देवताओंकी पूजा करते हुए मेरे गुरुजनोंने कमलोंके साथ अन्य फूलोंकी जो मालाएँ बनायी थीं, वे आज भी मुरझायी नहीं हैं। भगवन्! आपने सारा वन देख लिया और यहाँके सम्बन्धमें जो सुनने योग्य बातें थीं, वे भी सुन लीं। अब मैं आपकी आज्ञा लेकर इस देहका परित्याग करना चाहती हूँ। जिनका यह आश्रम है और जिनके चरणोंकी मैं दासी हूँ, उन्हीं पवित्रात्मा महर्षियोंके समीप अब मेरी जानेकी इच्छा है।'

शबरीके धर्मयुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके मुँहसे निकल पड़ा—'आश्चर्य है!' तदनन्तर उन्होंने कठोर व्रतका पालन करनेवाली शबरीसे कहा—'भद्रे! तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया। अब तुम आनन्दपूर्वक अपने अभीष्ट लोकमें जाओ।' श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर मस्तकपर जटा और शरीरपर वल्कल-वस्त्र एवं काला मृगचर्म धारण करनेवाली शबरीने अपनेको आगमें होमकर प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी शरीर प्राप्त किया। वह दिव्य वस्त्र, आभूषण, माला और अनुलेपन धारण किये बड़ी मनोहर दिखायी देने लगी। बिजलीके समान अपनी दिव्य कान्तिसे वहाँका सारा प्रदेश उसने जगमग कर दिया और चित्तको एकाग्र करके वह उस पुण्यमय लोकको प्राप्त हुई, जहाँ उसके गुरु वे पुण्यात्मा महर्षि विहार करते थे।

शबरीके दिव्य लोकमें चले जानेपर धर्मात्मा श्रीरामने उन महात्मा महर्षियोंके प्रभावका चिन्तन करके अपने हितमें संलग्न रहनेवाले एकाग्रचित्त लक्ष्मणसे कहा—'सौम्य! मैंने उन पुण्यात्मा मुनियोंका यह पवित्र आश्रम देखा। यहाँ अनेकों आश्चर्यजनक बातें हैं। हरिन और बाघ एक दूसरेपर विश्वास करते हैं। नाना प्रकारके पक्षी यहाँ निवास करते हैं। इस आश्रमपर सातों समुद्रोंके जलसे भरे हुए जो तीर्थ हैं, उनमें स्नान करके मैंने पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण कर लिया। अब हमारे कल्याणका समय आया है। अतएव इस समय मेरा मन अधिक प्रसन्न जान पड़ता है। लक्ष्मण! मेरे हृदयमें कोई शुभ सङ्कल्प उठनेवाला है। इसलिये आओ, परम सुन्दर पम्पा सरोवरके तटपर चलें। वहाँसे ऋष्यमूक पर्वत थोड़ी ही दूरपर दिखायी देता है, जहाँ सूर्यके पुत्र धर्मात्मा सुग्रीव निवास करते हैं। वालीके भयसे सदा डरे रहनेके कारण वे चार वानरोंके साथ उस पर्वतपर रहते हैं। मैं वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे मिलनेके लिये उतावला हो रहा हूँ, क्योंकि सीताको ढूँढ़नेका कार्य उन्हींके अधीन है। श्रीरामकी यह बात सुनकर लक्ष्मणने कहा—'आर्य! मेरा मन भी वहाँ चलनेको उतावला हो रहा है, अतः हम दोनों शीघ्र ही यहाँसे चल दें।' इस प्रकार बातचीत करके भगवान् श्रीराम लक्ष्मणके साथ उस आश्रमसे निकलकर सब ओर फूलोंसे लदे हुए नाना प्रकारके वृक्षोंकी शोभा निहारते पम्पा सरोवरके तटपर आये।

**अरण्यकाण्ड समाप्त**

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## भक्त और भगवान्‌की भेंट

ततश्च हनुमान् वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया । विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च ॥
आवभाषे च तौ वीरौ यथावत् प्रशशंस च । संपूज्य विधिवद्वीरौ हनुमान् वानरोत्तमः ॥
(किष्किन्धा० ३ । ३-४)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण

## किष्किन्धाकाण्ड

### श्रीराम और लक्ष्मणका पम्पा सरोवर होते हुए ऋष्यमूककी ओर जाना और सुग्रीवका उनके पास हनुमान्‌जीको भेजना

कमल-पुष्पोंसे सुशोभित पम्पा सरोवरको देखकर श्रीरामचन्द्रजी [ सीताकी याद आ जानेसे ] व्याकुल हो उठे। फिर उसकी शोभापर दृष्टिपात करके उनके मनमें कुछ हर्ष भी हुआ और वे लक्ष्मणसे इस प्रकार कहने लगे—"सुमित्रानन्दन ! यह पम्पा कितनी सुन्दर मालूम होती है ! इसका जल वैदूर्य मणिके समान स्वच्छ है। इसमें बहुत-से पद्म और उत्पल खिले हुए हैं। तटपर उत्पन्न हुए नाना प्रकारके वृक्षोंसे इसकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी है। लक्ष्मण ! देखो तो सही, पम्पाके किनारेका वन कैसा मनोहर दिखायी दे रहा है। यहाँके ऊँचे-ऊँचे वृक्ष [ अपनी फैली हुई शाखाओंके कारण ] अनेकों शिखरोंसे युक्त पर्वतोंकी भाँति सुशोभित हो रहे हैं। परन्तु मैं इस समय भरतके दुःख और सीता-हरणकी चिन्तासे शोकमग्न हो रहा हूँ। मानसिक वेदनाएँ मुझे बहुत कष्ट पहुँचा रही हैं। सुमित्रानन्दन ! जरा उधर तो दृष्टि डालो—जो वृक्षोंसे झड़ गये हैं, झड़ रहे हैं तथा जो अभी डालियोंमें ही लगे हुए हैं, उन सभी फूलोंके साथ वायु खेल-सा कर रही है। पुष्पोंके भारसे झुकी हुई तरुओंकी विभिन्न शाखाओंको जब हवा अपने झोंकेसे हिला देती है, तब भ्रमर डालियोंसे उड़कर मानो उसका सुयश गान करने लगते हैं। मलयका स्पर्श करके बहनेवाली यह शीतल वायु कितनी सुखद जान पड़ती है। यह पवित्र सुगन्धका प्रसार करती और सारी थकावट हर लेती है। वसन्त ऋतुमें वनकी शोभा बड़ी मनोहर हो जाती है, सब ओर कोयलकी मधुर कूक सुनायी पड़ती है। सीताको यह समय बड़ा ही प्रिय लगता था। जहाँ मेरी प्रिया सीता निवास करती होगी, उस देशमें भी इसी तरह वसन्त छा रहा होगा। किन्तु उसे तो शत्रु पीड़ा देते होंगे; अतः वह बेचारी क्या कर सकेगी ! जिसकी अभी नयी अवस्था है और कमलके पत्तोंकी भाँति बड़े-बड़े नेत्र हैं, वह मीठी बोली बोलनेवाली मेरी प्राणवल्लभा जानकी वसन्तके आनेपर निश्चय ही अपने प्राण त्याग देगी। मेरे हृदयमें यह विचार दृढ़ होता जा रहा है कि साध्वी सीता मुझसे अलग होकर अधिक कालतक जीवित नहीं रह सकती। वास्तवमें विदेहकुमारीका हार्दिक अनुराग मुझमें और मेरा सम्पूर्ण प्रेम वैदेहीमें प्रतिष्ठित है। फूलोंकी सुगन्ध लेकर बहनेवाली यह शीतल एवं सुखदायिनी वायु सीताकी याद आनेपर मुझे आगकी भाँति तपाने लगती है। जानकीके साथ रहनेपर जो मुझे सदा सुखद जान पड़ती थी, वही वायु आज उसके विरहमें मेरा शोक बढ़ा रही है। लक्ष्मण ! धर्मके जाननेवाले सत्यवादी राजा जनक जब जनसमुदायमें बैठकर मुझसे सीताकी कुशल पूछेंगे, उस समय मैं उन्हें क्या जवाब दूँगा ? हाय ! पिताके द्वारा वनमें भेजे जानेपर जो धर्मका आश्रय ले मेरे पीछे-पीछे यहाँ चली आयी, वह मेरी प्रियतमा सीता इस समय कहाँ है ? लक्ष्मण ! जिसने राज्यसे भ्रष्ट हो जानेपर भी मेरा साथ नहीं छोड़ा, उसके बिना अत्यन्त दीन होकर मैं किस प्रकार जीवन धारण करूँगा ? जो कमलके समान बड़ी-बड़ी आँखोंसे मनोहर जान पड़ता है, जिससे मीठी-मीठी सुगन्ध निकलती रहती है, जो सुन्दर और बेदाग है, जनक-किशोरीका वह दर्शनीय मुख देखे बिना मेरी सुध-बुध खोयी जा रही है। वैदेहीके द्वारा कभी हँसकर और कभी मुसकराकर कही हुई वे मधुर, हितकर एवं लाभदायक बातें, जिनकी कहीं तुलना नहीं है, अब कब सुननेको मिलेंगी ? अयोध्यामें चलनेपर जब माता कौसल्या पूछेंगी कि 'मेरी बहूरानी कहाँ हैं ?' तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा ?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा श्रीरामको इस प्रकार अनाथकी भाँति विलाप करते देख लक्ष्मणने युक्तियुक्त वाणीमें कहा—'पुरुषोत्तम ! आप अपनेको सँभालिये, शोक न कीजिये । आप-जैसे पुण्यात्मा पुरुषोंकी बुद्धि उत्साहशून्य नहीं होती । तात ! यदि रावण पातालमें या उससे भी अधिक दूर चला जाय तो भी अब किसी तरह जीवित नहीं रह सकता । पहले उस पापी राक्षसका पता लगाइये; फिर या तो वह सीताको वापस करेगा या अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा । सीताको साथ लेकर वह निशाचर दितिके गर्भमें जाकर छिप जाय तो भी यदि मिथिलेशकुमारीको लौटा न देगा तो मैं वहाँ भी उसे मार डालूँगा । अतः आप स्वस्थ रहें—अपने स्वाभाविक धैर्यसे विचलित न हों । इस दीनतापूर्ण बुद्धिको त्याग दें । जिनका प्रयत्न और धन नष्ट हो गया है, वे पुरुष यदि उत्साहपूर्वक उद्योग न करें तो उनके कार्यकी सिद्धि अथवा अर्थकी प्राप्ति नहीं हो सकती । आर्य ! उत्साह ही बलवान् होता है, उत्साहसे बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं है । उत्साही पुरुषके लिये संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है । जिनके हृदयमें उत्साह होता है, वे पुरुष कठिन-से-कठिन काम आ पड़नेपर भी हिम्मत नहीं हारते । केवल उत्साहका आश्रय लेकर हमलोग जानकीको प्राप्त कर सकते हैं ।'* लक्ष्मणके इस प्रकार समझानेपर शोकसंतप्त श्रीरामचन्द्रजीने शोक और मोहका परित्याग करके धैर्य धारण किया । फिर शान्तभावसे वे पम्पा सरोवरको लाँघकर आगे बढ़े ।

महात्मा श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको श्रेष्ठ आयुध धारण किये वीर-वेषमें आते देख [ ऋष्यमूक पर्वतपर बैठे हुए ] सुग्रीवके मनमें बड़ी शङ्का हुई । वे उद्विग्न होकर चारों ओर देखने लगे । कहीं एक स्थानपर स्थिर न रह सके । वानरराज सुग्रीव धर्मात्मा थे—उन्हें राजधर्मका ज्ञान था । उन्होंने मन्त्रियोंके साथ मिलकर अपनी दुर्बलता और शत्रुपक्षकी प्रबलतापर विचार किया । फिर श्रीराम और लक्ष्मणकी ओर देखते हुए बहुत घबराकर अपने मन्त्रियोंसे कहा—'निश्चय ही ये दोनों वीर वालीके भेजे हुए इस दुर्गम वनमें आये हैं' सुग्रीवको वालीसे बुराईकी आशङ्का करके भयग्रस्त होते देख बातचीत करनेमें कुशल हनुमान्‌जी बोले—'आप सब लोग वालीकी ओरसे किसी अनिष्टकी आशङ्का न करें । यह मलय नामक श्रेष्ठ पर्वत है । दुष्टात्मा वाली यहाँ नहीं आ सकता । अतएव मैं आपके भयका कोई कारण नहीं देखता । आश्चर्य है कि आपका चित्त इतना चञ्चल हो रहा है, जिसके कारण आप अपनेको विचार-मार्गपर स्थिर नहीं रख पाते । बुद्धि और विज्ञानसे सम्पन्न होकर आप दूसरोंकी चेष्टाओंके द्वारा उनका मनोभाव समझें और उसीके अनुसार सभी आवश्यक कार्य करें । जो राजा बुद्धिबलका आश्रय नहीं लेता, वह सम्पूर्ण प्रजापर शासन नहीं कर सकता ।'

हनुमान्‌जीके उत्तम वचन सुनकर सुग्रीवने कहा—'इन दोनों वीरोंकी भुजाएँ लंबी और नेत्र बड़े-बड़े हैं । ये धनुष, बाण, तलवार धारण किये देवकुमारोंके समान शोभा पा रहे हैं । भला, इन्हें देखकर किसके मनमें भयका सञ्चार न होगा । मुझे तो अब भी यह सन्देह है कि ये दोनों नरश्रेष्ठ वालीके ही भेजे हुए हैं; क्योंकि राजाओंके अनेकों मित्र होते हैं, अतः उनपर विश्वास करना उचित नहीं है । कपट-वेषमें विचरनेवाले शत्रुओंको विशेषरूपसे पहचाननेकी चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि वे दूसरोंपर अपना विश्वास जमा लेते हैं । परन्तु स्वयं किसीका विश्वास नहीं करते तथा अवसर पाते ही प्रहार कर बैठते हैं । वाली इन सब कार्योंमें बड़ा कुशल है [ अतः उससे सदा सावधान रहना चाहिये ] । वानरश्रेष्ठ ! तुम एक तटस्थ पुरुषकी भाँति यहाँसे जाओ और उनकी चेष्टाओंसे, रूपसे तथा बातचीतके तौर-तरीकोंसे उन दोनोंका यथार्थ परिचय प्राप्त करो । उनके मनोभावोंको समझो और यदि वे प्रसन्नचित्त जान पड़ें तो बारंबार मेरी प्रशंसा करके मेरे प्रति उनका विश्वास उत्पन्न करो । तुम मेरी ही ओर अपना मुँह करके खड़े होना और उन धनुर्धर वीरोंसे इस वनमें आनेका कारण पूछना । यदि उनका हृदय शुद्ध जान पड़े, तो भी तरह-तरहकी बातों और आकृतिके द्वारा यह जाननेकी विशेष चेष्टा करना कि वे कोई दुर्भावना लेकर तो यहाँ नहीं आये हैं ।'

---

* उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात् परं बलम् ।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥
उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु ।
उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्याम जानकीम् ॥
( १ । १२१-१२२ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

# हनुमान्‌जीका श्रीराम-लक्ष्मणसे वार्तालाप और उन्हें लेकर ऋष्यमूक-पर्वतपर आना

वानरराज सुग्रीवके कथनका तात्पर्य समझकर वायुपुत्र हनुमान्‌जी ऋष्यमूक-पर्वतसे छलाँगें भरते हुए श्रीराम और लक्ष्मणके पास चल दिये। उन्होंने वानर-रूपका परित्याग करके भिक्षुका वेष बना लिया और उन दोनों रघुवंशी वीरोंके पास जाकर उन्हें विनीत भावसे प्रणाम किया, उनकी विधिवत् पूजा और प्रशंसा की तथा स्वच्छन्दरूपसे वार्तालाप आरम्भ किया—'वीरो! आप दोनों सत्यपराक्रमी, राजर्षि और देवताओंके समान प्रभावशाली, तपस्वी तथा कठोर व्रतका पालन करनेवाले जान पड़ते हैं। आपके शरीरकी कान्ति बड़ी सुन्दर है, आप दोनों धैर्यशाली दिखायी देते हैं। बताइये, चीरवस्त्र धारण करनेवाले आपलोग कौन हैं? आपकी दृष्टि सिंहके समान है, आपमें वीरता कूट-कूटकर भरी है, आपका बल और पराक्रम महान् है। इन्द्रधनुषके समान महान् शरासन धारण करके आप शत्रुओंको नष्ट करनेकी शक्ति रखते हैं। आप कान्तिमान् तथा रूपवान् हैं। साँड़ोंके समान आपकी मस्तानी चाल है। आपकी भुजाएँ हाथीकी सूँड़को मात कर रही हैं। आप मनुष्योंमें श्रेष्ठ और परम तेजस्वी हैं। आप दोनोंकी प्रभासे गिरिराज ऋष्यमूक जगमगा रहा है। आपलोग देवताओंके समान पराक्रमी और राज्य भोगनेके योग्य हैं। भला, इस दुर्गम वनप्रान्तमें आपका आना कैसे सम्भव हुआ? आप दोनों वीर देवलोकसे तो नहीं आये हैं? आपको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमा और सूर्य अकस्मात् इस पृथ्वीपर उतर आये हों। आप मनुष्यके रूपमें साक्षात् देवता-से प्रतीत हो रहे हैं। मेरा तो ऐसा विश्वास है—आप दोनों समुद्र, वन तथा विन्ध्य एवं मेरु आदि पर्वतोंसे विभूषित समूची पृथ्वीकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं।

'यहाँ वीरवर सुग्रीव नामक एक वानर रहते हैं, जो समस्त वानरोंमें श्रेष्ठ और धर्मात्मा हैं। उनके भाई वालीने उन्हें घरसे निकाल दिया है। इसीलिये वे अत्यन्त दुखी होकर सारे जगत्‌में मारे-मारे फिरते हैं। उन्हीं वानरराज सुग्रीवके भेजनेसे मैं यहाँ आया हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनोंसे मित्रता करना चाहते हैं। मुझे आप उनका मन्त्री समझिये। मैं वायु देवताका पुत्र हूँ। मेरी जहाँ इच्छा हो, जा सकता हूँ और जैसा चाहूँ, रूप धारण कर सकता हूँ। इस समय सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये भिक्षुके रूपमें अपनेको छिपाकर ऋष्यमूकसे यहाँ आया हूँ।'

वीरवर श्रीराम और लक्ष्मणसे ऐसा कहकर बोलनेमें चतुर हनुमान् चुप हो गये, फिर कुछ न बोले। उनकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे अपने बगलमें खड़े हुए छोटे भाई लक्ष्मणसे इस प्रकार कहने लगे—'सुमित्रानन्दन! ये वानरराज सुग्रीवके सचिव हैं और उन्हींके हितकी इच्छासे यहाँ मेरे पास आये हैं। तुम इनसे स्नेहपूर्वक मीठी वाणीमें बातचीत करो। जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेदका विद्वान् नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषामें वार्तालाप नहीं कर सकता। इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने समूचे व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोल जानेपर भी इनके मुँहसे कोई अशुद्धि नहीं निकली। संभाषणके समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य अङ्गोंसे भी कोई दोष प्रकट नहीं हुआ। इन्होंने थोड़ेमें ही बड़ी स्पष्टताके साथ अपना अभिप्राय निवेदन किया है। रुक-रुककर अथवा शब्दों या अक्षरोंको तोड़-मरोड़कर किसी वाक्यका उच्चारण नहीं किया है। बोलते समय इनकी आवाज न बहुत धीमी रही है, न बहुत ऊँची। मध्यम स्वरमें ही इन्होंने सब बातें कही हैं। ये संस्कार[1] और क्रम[2]से सम्पन्न, अद्भुत, अविलम्बित[3] तथा हृदयको आनन्द प्रदान करनेवाली कल्याणमयी वाणीका उच्चारण करते हैं। हृदय, कण्ठ और मूर्द्धा—इन तीनों स्थानोंद्वारा स्पष्टरूपसे अभिव्यक्त होनेवाली इनकी इस विचित्र वाणीको सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा? वध करनेके लिये तलवार उठाये हुए शत्रुका हृदय भी इस अद्भुत वाणीसे बदल सकता है। जिस राजाके पास इनके समान दूत न हो, उसके कार्योंकी सिद्धि कैसे हो सकती है। तथा जिसके कार्यसाधक दूत ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त हों, उस राजाके सभी मनोरथ दूतोंकी ही बातचीतसे सिद्ध हो जाते हैं।'

१. व्याकरणके नियमानुकूल शुद्ध वाणीको संस्कारसम्पन्न (संस्कृत) कहते हैं। २. शब्दोच्चारणकी शास्त्रीय परिपाटीका नाम क्रम है। ३. बिना रुके धाराप्रवाहरूपसे बोलना अविलम्बित कहलाता है।



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर सुमित्रानन्दन लक्ष्मण सुग्रीवके सचिव पवनकुमार हनुमान्‌जीसे बोले—'विद्वन्! सुग्रीवके गुण हमें ज्ञात हो चुके हैं। हमलोग वानरराज सुग्रीवकी ही खोजमें यहाँ आये हैं। उनके कथनानुसार यहाँ आकर जो तुम मैत्रीकी बात चला रहे हो, वह हमें स्वीकार है। हम तुम्हारे कहनेसे ऐसा कर सकते हैं। [ अब हम इस भयंकर वनमें अपने आनेका कारण बतलाते हैं, सुनो— ] इस पृथ्वीपर दशरथ नामसे प्रसिद्ध जो धर्मात्मा राजा थे, उन्हींके ये ज्येष्ठ पुत्र हैं। लोगोंमें श्रीरामके नामसे इनकी प्रसिद्धि है। ये सब प्राणियोंको शरण देनेवाले और पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं। महाराजके पुत्रोंमें ये सबसे अधिक गुणवान्, कृतज्ञ और बहुज्ञ हैं। मैं इनका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है। मैं अपने भाईके गुणोंके कारण इनका दास हूँ। [ ये पिताके सत्यकी रक्षाके लिये राज्य त्यागकर वनमें आये हैं। इनके साथ मैं और इनकी धर्मपत्नी सीता भी आयी थीं। ] एक दिन हमलोगोंके न रहनेपर सूने आश्रमसे स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले किसी राक्षसने इनकी पत्नीको हर लिया। उस राक्षसका कुछ पता नहीं चल रहा है। दितिनन्दन दनुके पुत्रने, जो शापसे राक्षस हो गया था, हमें बतलाया है कि वानरराज सुग्रीव परम शक्तिशाली हैं, उनका पराक्रम महान् है। वे आपकी पत्नीका अपहरण करनेवाले राक्षसका पता लगा देंगे।' इतना कहकर वह स्वर्गको चला गया। तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। जो धर्मात्मा और शरणागतवत्सल हैं, जो पहले सम्पूर्ण जगत्‌को आश्रय प्रदान करते थे तथा जिनके कृपाप्रसादसे ही संसारकी समस्त प्रजा निरन्तर प्रसन्न रह सकती है, वे ही भगवान् श्रीराम आज वानरराज सुग्रीवकी कृपा—उनकी प्रसन्नता चाहते हैं। अतः सुग्रीवको अपने सेनापतियोंके साथ इनके ऊपर प्रसन्न होना चाहिये।''

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर वार्तालापमें चतुर हनुमान्‌जी बोले—'वीरवरो! सुग्रीवको आप-जैसे क्रोधहीन, जितेन्द्रिय तथा बुद्धिमान् महापुरुषोंसे मिलनेकी आवश्यकता थी। सौभाग्यकी बात है कि आपने स्वयं ही दर्शन दिया। वे भी राज्यसे भ्रष्ट हैं, वालीके साथ उनकी शत्रुता हो गयी है; उनकी स्त्रीका भी अपहरण किया गया है और भाईने उन्हें घरसे निकाल दिया है, इस कारण वे अत्यन्त भयभीत होकर वनमें निवास करते हैं। सूर्यनन्दन सुग्रीव सीताका पता लगानेमें हमारे साथ स्वयं रहकर आप दोनोंकी पूर्ण सहायता करेंगे।' इस प्रकार मधुर वाणीमें अपना सुन्दर अभिप्राय प्रकट करके हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'अच्छा, अब हमलोग सुग्रीवके पास चलें।' हनुमान्‌जीकी बात सुनकर धर्मात्मा लक्ष्मणने उनका यथावत् सम्मान किया और रघुनाथजीसे कहा—'वानरश्रेष्ठ पवनकुमार अत्यन्त हर्षसे भरकर जैसी बात कह रहे हैं, उससे जान पड़ता है कि सुग्रीवको भी आपकी आवश्यकता है। ऐसी दशामें आप अपना कार्य सिद्ध ही समझें।' तदनन्तर महाबुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान्‌ने भिक्षुरूपका त्याग करके वानररूप धारण कर लिया और उन दोनों रघुवंशी वीरोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर वे ऋष्यमूक-पर्वतके ऊपर ले गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# श्रीराम और सुग्रीवकी मैत्री, सुग्रीवका सीताके आभूषण दिखाना और शोकग्रस्त श्रीरामको सान्त्वना देना

श्रीराम और लक्ष्मणको ऋष्यमूकपर बिठाकर हनुमान्‌जी वहाँसे मलय पर्वतपर [ जो ऋष्यमूकका ही एक शिखर था ] गये और वहाँ वानरराज सुग्रीवको उन दोनों वीरोंका इस प्रकार परिचय दिया—'महाप्राज्ञ ! जिनका पराक्रम अत्यन्त दृढ़ और अमोघ है, वे श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणके साथ पधारे हैं। इक्ष्वाकु-वंशमें इनका आविर्भाव हुआ है। ये महाराज दशरथके पुत्र और स्वधर्म-पालनके लिये संसारमें विख्यात हैं। अपने पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिये इस वनमें आये हैं। महात्मा श्रीराम [ मुनियोंकी भाँति ] नियम-का पालन करते हुए दण्डकारण्यमें निवास करते थे। एक दिन रावणने आकर इनकी स्त्री सीताका [ सूने आश्रमसे ] अपहरण कर लिया। ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण [ उन्हींकी खोज करते हुए यहाँ आये हैं और ] आपसे मैत्री करना चाहते हैं। आप चलकर इनसे मिलें और इनका यथोचित सत्कार करें; क्योंकि ये दोनों ही वीर हमलोगोंके परम पूजनीय हैं।'

हनुमान्‌जीके वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव रमणीय वेष-भूषासे सुसज्जित हो श्रीरामचन्द्रजीके पास गये और बड़े प्रेमसे बोले—'प्रभो ! आप धर्मके विषयमें भलीभाँति सुशिक्षित, परम तपस्वी और सबपर दया करनेवाले हैं। वायुपुत्र हनुमान्‌ने मुझसे आपके यथार्थ गुणोंका वर्णन किया है। मैं वानर हूँ। मेरे साथ जो आप मैत्री करना चाहते हैं, इसमें मेरा ही उत्तम लाभ और सत्कार है। यदि आप मेरे साथ मित्रता करना चाहते हैं, तो मेरा यह हाथ फैला हुआ है। आप इसे अपने हाथमें ले लें और परस्पर मैत्रीका अटूट सम्बन्ध स्थापित कर दें।' सुग्रीवकी बातें बड़ी सुन्दर थीं। उन्हें सुनकर भगवान् श्रीरामका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने अपने हाथसे उनका हाथ पकड़ लिया और सौहार्दवश बड़े हर्षके साथ उन्हें छातीसे लगाया। तत्पश्चात् हनुमान्‌जीने दो लकड़ियोंको रगड़कर आग पैदा की और उसके प्रज्वलित हो जानेपर फूलोंके द्वारा अग्निदेवका पूजन किया। फिर एकाग्रचित्त होकर उन्होंने श्रीराम और सुग्रीवके बीचमें प्रेम-पूर्वक उस आगको रख दिया। तब उन दोनोंने प्रज्वलित अग्निकी प्रदक्षिणा की [ और उसकी साक्षितामें ] दोनों एक दूसरेके मित्र बन गये। इससे श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीव दोनोंके हृदयमें बड़ा हर्ष हुआ। वे एक दूसरेकी ओर देखते हुए तृप्त नहीं होते थे। उस समय सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'आप मेरे प्रिय मित्र हैं। आजसे हम दोनोंके दुःख और सुख समान हैं।' यह कहकर सुग्रीवने अधिक पत्ते और फूलोंवाली साल वृक्षकी एक शाखा तोड़ी और उसे बिछाकर वे श्रीरामचन्द्रजीके साथ उसपर बैठे। तदनन्तर पवनपुत्र हनुमान्‌ने चन्दन-वृक्षकी एक डाली, जिसमें बहुत-से फूल लगे थे, तोड़कर लक्ष्मणको भी बैठनेके लिये दी।

इसके बाद सुग्रीव अत्यन्त हर्षमें भरकर भगवान् श्रीरामसे मधुर वाणीमें बोले—'रघुनन्दन ! मेरे मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ हनुमान्‌ने आपके इस निर्जन वनमें आनेका कारण बतलाया है। सुना है, भाई लक्ष्मणके साथ वनमें रहते समय आपकी पत्नी मिथिलेशकुमारी जानकीको राक्षस हर ले गया है। उस समय आप और बुद्धिमान् लक्ष्मण दोनों ही आश्रमसे दूर थे। सीता-को आपसे रहित अकेली देख उस राक्षसने मौका पाकर हर लिया और आपके सहायक जटायुका वध करके आपको पत्नी-वियोगका दुःख दिया। [ किन्तु चिन्ता न करें, ] आप शीघ्र ही इस दुःखसे छुटकारा पा जायँगे। मैं राक्षस-द्वारा हरी गयी वेद-वाणीके समान आपकी पत्नीको वापस ला दूँगा। आपकी भार्या सीता आकाशमें हों या पातालमें, उन्हें लाकर आपकी सेवामें अर्पण कर दूँगा। मेरी इस बातको आप सच मानें। आपकी पत्नी जहर मिलाये हुए भोजनकी भाँति दूसरोंके लिये अग्राह्य हैं। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी उन्हें पचा नहीं सकते। अतः महाबाहो ! आप शोक त्याग दें। एक दिन मैंने देखा, भयंकर कर्म करनेवाला कोई राक्षस किसी स्त्रीको लिये जा रहा है। मैं अनुमानसे समझता हूँ निःसन्देह वे सीता ही थीं; क्योंकि टूटे हुए स्वरमें 'हा राम ! हा लक्ष्मण !' पुकारती हुई रो रही थीं। रावणकी गोदमें वे नागवधूकी भाँति देदीप्यमान दिखायी देती थीं। मुझे चार वानरोंके साथ इस पर्वतपर बैठा देख उन्होंने अपनी चादर और कई सुन्दर आभूषण ऊपरसे गिराये। वे सब वस्तुएँ हम-लोगोंने लेकर रख ली हैं। मैं अभी उन्हें लाता हूँ। आप पहचानिये।'

तब श्रीरामने यह प्रिय संवाद सुनानेवाले सुग्रीवसे कहा—'सखे ! जल्दी लाओ।' उनकी आज्ञा पाकर सुग्रीव एक दुर्गम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


गुफामें गये और चादरसहित वे सभी आभूषण ले आये। फिर 'यह देखिये' कहकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको वे सब चीजें दिखायीं। उन वस्त्र और आभूषणोंको लेकर श्रीरामचन्द्रजी आँसू बहाने लगे और कई बार उन्हें छातीसे लगाकर क्रुद्ध सर्पके समान जोर-जोरसे श्वास लेने लगे। उनके आँसुओंका वेग रुकता ही न था। अपने पास बैठे हुए लक्ष्मणकी ओर देखकर वे दीनभावसे विलाप करने लगे—'सुमित्रानन्दन! देखो, जब राक्षस सीताको हरकर लिये जा रहा था, उस समय उसने यह चादर और ये गहने अपने शरीरसे उतारकर भूमिपर गिराये थे। सीताके द्वारा त्यागे हुए ये आभूषण निश्चय ही घासवाली जमीनपर गिरे थे; क्योंकि इनका रूप जैसा-का-तैसा दिखायी देता है—ये फूटे-टूटे नहीं हैं।' श्रीरामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण बोले—'मैं विदेहकुमारीके बाजूबंद और कुण्डलोंको तो नहीं जानता; किन्तु प्रतिदिन उनके चरणोंमें प्रणाम करनेके कारण इन दोनों नूपुरोंको अवश्य पहचानता हूँ *।' तब श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे कहा—'सखे! बताओ, वह भयंकर रूपधारी राक्षस मेरी प्राणप्यारी सीताको किस ओर ले गया है? तुमने उसे किधर जाते देखा था? वह किस देशमें रहता है? उसने मुझे बड़ी भारी विपत्तिमें डाल दिया है, उसीके कारण मैं समस्त राक्षसोंका संहार करूँगा। जिसने सीताका अपहरण करके मेरे क्रोधको भड़काया है, उसने अपने जीवनका विनाश करनेके लिये निश्चय ही मौतका दरवाजा खोल दिया है। वानरराज! जिस निशाचरने मुझे धोखेमें डालकर मेरी प्रियतमाका वनसे अपहरण किया है, वह मेरा घोर शत्रु है। तुम उसका पता बताओ। मैं अभी उसे यमराजके पास पहुँचाता हूँ।'

श्रीरामने जब दुःखके आवेगमें ऐसी बातें कहीं तो सुग्रीवकी आँखोंमें आँसू भर आये और वे हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे बोले—'प्रभो! नीच कुलमें उत्पन्न हुआ वह पापी राक्षस कहाँ रहता है अथवा किस वंशका है, यह मुझे मालूम नहीं है। उसकी शक्ति और पराक्रमसे भी मैं सर्वथा अपरिचित हूँ। किन्तु आपके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं ऐसा यत्न करूँगा, जिससे मिथिलेशकुमारी सीता आपको मिल जायँ। इसलिये आप शोकका त्याग करें। मैं रावणको उसके सैनिकोंसहित मारकर ऐसा पुरुषार्थ प्रकट करूँगा, जिससे आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जायँ। [आत्मीय जनोंके वियोग आदिसे होनेवाले] शोकमें, आर्थिक संकटमें और प्राणान्तकारी भय उपस्थित होनेपर जो अपनी बुद्धिसे दुःखनिवारणके उपायका विचार करते हुए धैर्य धारण करता है, उसे कष्ट नहीं उठाना पड़ता।† मैं हाथ जोड़ता हूँ, प्रेमपूर्वक आपसे अनुरोध करता हूँ, आप प्रसन्न हों और पुरुषार्थका आश्रय लें। शोकको अपने ऊपर प्रभाव डालनेका अवसर न दें। मैं मित्रताके नाते हितकी सलाह देता हूँ, उपदेश नहीं करता। आप मेरी मैत्रीको आदर देते हुए शोकका परित्याग करें।'

सुग्रीवने मधुर वाणीमें जब इस प्रकार सान्त्वना दी तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शोक छोड़कर शान्त हुए और सुग्रीवको हृदयसे लगाकर बोले—'सुग्रीव! एक स्नेही और हितैषी मित्रको जो कुछ करना चाहिये, वही तुमने किया है। तुम्हारा कार्य सर्वथा उचित और तुम्हारे योग्य है। सखे! तुम्हारे आश्वासनसे मेरी चिन्ता जाती रही, अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। तुम्हारे-जैसे बन्धुका, विशेषतः ऐसे संकटके समय, मिलना कठिन होता है। तुम मिथिलेशकुमारी सीता तथा रौद्ररूपधारी दुरात्मा राक्षस रावणका पता लगानेका प्रयत्न करो और मुझे भी जो कुछ करना आवश्यक हो, उसे बिना किसी संकोचके बताओ।'

## सुग्रीवका अपनी दुर्दशा तथा वालीसे वैर बँधनेका कारण बताना और श्रीरामका उन्हें आश्वासन देना

श्रीरामचन्द्रजीकी बात सुनकर सुग्रीवको बड़ा संतोष हुआ। वे हर्षसे भरकर बोले—'प्रभो! इसमें सन्देह नहीं कि देवताओंकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है—मैं सर्वथा उनके अनुग्रहका पात्र हूँ; क्योंकि आप-जैसे गुणवान् महापुरुष मेरे मित्र हैं। रघुनन्दन! आपकी सहायता मिलनेपर मुझे देवताओंका भी राज्य प्राप्त हो सकता है, फिर अपने राज्यको पाना कौन बड़ी बात है। अब मैं अपने सुहृदों और बन्धुओंके विशेष सम्मानका पात्र हो गया; क्योंकि आज रघुवंशके राजकुमार अग्निको साक्षी बनाकर मेरे मित्र हुए हैं। आप आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं। अपने चित्तको वशमें रखनेवाले

* नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले। नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥ (६। २२, २३)

† व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगे। विमृशंश्च स्वया बुद्धया धृतिमान्नावसीदति॥ (७। ९)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## आभूषणोंकी पहचान

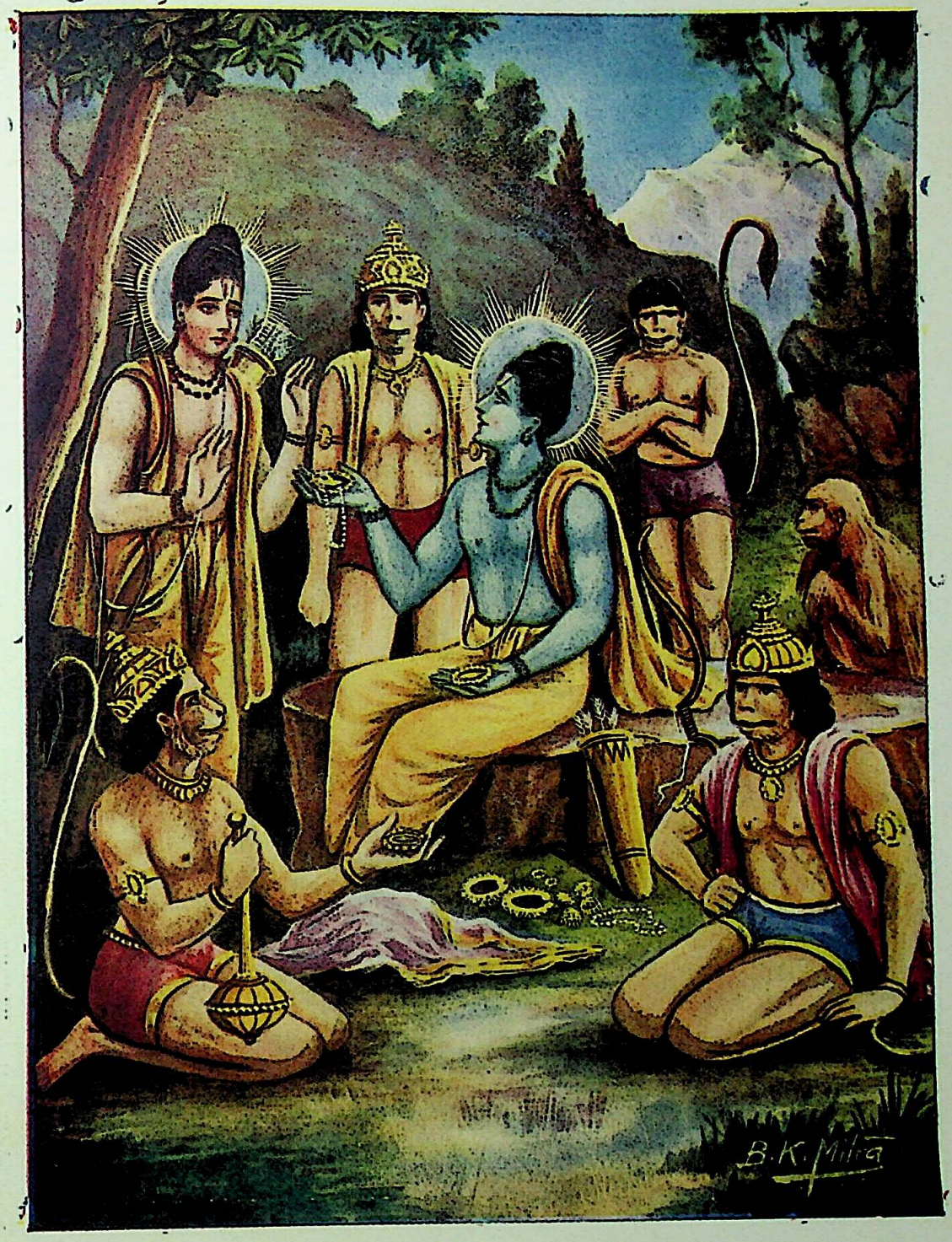


पश्य लक्ष्मण वैदेह्या संत्यक्तं ह्रियमाणया । उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराद्भूषणानि च ॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

(किष्किन्धा० ६ । २०, २२-२३)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आप-जैसे महात्मा पुरुषोंका प्रेम तथा धैर्य अविचल होता है। अच्छे स्वभाववाले मित्र अपने घरके सोने, चाँदी अथवा उत्तम आभूषणोंको अपने सन्मित्रोंसे अलग नहीं समझते। अतएव मित्र धनी हो या गरीब, सुखी हो या दुखी अथवा निर्दोष हो या सदोष, वह मित्रके लिये सबसे बड़ा सहायक होता है। साधु पुरुष अपने मित्रका अत्यन्त उत्कृष्ट प्रेम देख आवश्यकता पड़नेपर उसके लिये धन, सुख और देशका भी परित्याग कर देते हैं।'* यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणके सामने ही सुग्रीवसे कहा—'सखे! तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है।'

सुग्रीवने फिर कहा—'रघुनन्दन! मेरे भाईने मुझे घरसे निकाल दिया है और मेरी स्त्रीको भी छीन लिया है। मैं अपने भाईके भयसे पीड़ित एवं अत्यन्त दुखी होकर ऋष्यमूक-पर्वतपर विचरता रहता हूँ। मुझे बराबर उसका त्रास बना रहता है। मैं भयमें डूबा रहनेके कारण व्याकुलचित्त होकर वनमें भटकता फिरता हूँ। मुझे घरसे निकाल देनेके बाद भी वालीका वैरभाव दूर नहीं हुआ है। प्रभो! आप सम्पूर्ण लोकों-को अभय देनेवाले हैं। मैं वालीके भयसे दुखी और अनाथ हूँ, अतः आप मुझपर भी कृपा कीजिये।' भगवान् श्रीराम धर्मके ज्ञाता, धर्मप्रेमी और तेजस्वी थे। उन्होंने सुग्रीवकी बात सुनकर हँसते हुए इस प्रकार उत्तर दिया—'सखे! उपकार ही मित्रताका फल है और अपकार शत्रुताका लक्षण है; अतः मैं तुम्हारी स्त्रीका अपहरण करनेवाले उस वालीका वध करूँगा। महाभाग! मेरे इन बाणोंका तेज प्रचण्ड है। ये कङ्कपत्रसे युक्त और इन्द्रके वज्रकी भाँति अमोघ हैं। इनकी गाँठें सुन्दर और अग्रभाग तीखे हैं। ये रोषमें भरे भुजङ्गोंकी भाँति भयंकर हैं। इन बाणोंसे तुम अपने वाली नामक शत्रुको, जो भाई होकर भी तुम्हारी बुराई कर रहा है, विदीर्ण हुए पर्वतकी भाँति मरकर जमीनपर पड़ा देखोगे।'

श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर सेनापति सुग्रीवको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे साधुवाद देते हुए बोले—'श्रीराम! मैं शोकसे ग्रस्त हूँ और आप शोकाकुल प्राणियोंकी परम गति हैं। मित्र समझकर मैं आपसे अपना दुःख निवेदन करता हूँ। आपने मेरे हाथमें हाथ देकर अग्निदेवके सामने मुझे अपना मित्र बनाया है। इसलिये आप मुझे अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं; यह बात मैं सत्यकी शपथ करके कहता हूँ। आप मेरे सखा हैं; इसलिये आपपर पूर्ण विश्वास करके अपने भीतरका दुःख, जो मेरे मनको सदा व्यथित किया करता है, बता रहा हूँ।' इतना कहते-कहते सुग्रीवकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये। उनकी वाणी कुण्ठित-सी हो गयी और [ गद्गदकण्ठ होनेके कारण ] वे उच्च स्वरसे बोलनेमें असमर्थ हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने धैर्यपूर्वक आँसुओंके वेगको रोका और आँखें पोंछकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहना आरम्भ किया—'श्रीराम! पहलेकी बात है—वालीने कटु वचन सुनाकर बलपूर्वक मेरा तिरस्कार किया और अपने राज्यसे अलग कर दिया। इतना ही नहीं, मेरी स्त्रीको भी, जो मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, उसने छीन लिया और जितने मेरे सुहृद् थे, उन सबको कैदमें डाल दिया। इसके बाद भी वह दुरात्मा मेरे विनाशके लिये यत्न करता रहता है। उसके भेजे हुए अनेकों वानरोंको मैं मार चुका हूँ। आपको भी देखकर मेरे मनमें ऐसा ही सन्देह हुआ था। इसीलिये डर जानेके कारण मैं पहले आपके पास न आ सका; क्योंकि भयका अवसर आनेपर प्रायः सभी डर जाते हैं। केवल ये हनुमान् आदि वानर ही मेरे सहायक हैं, अतएव महान् संकटमें पड़कर भी मैं अभीतक प्राण धारण किये हूँ। इन लोगोंका मुझपर स्नेह है, अतः ये सब ओरसे मेरी रक्षा करते रहते हैं। जहाँ जाना होता है, वहाँ साथ-साथ जाते हैं और जहाँ रहना होता है, वहाँ सदा मेरे साथ रहते हैं। रघुनन्दन! यह मैंने संक्षेपसे अपनी हालत बतलायी है। वाली मेरा ज्येष्ठ भाई है, फिर भी इस समय मेरा शत्रु हो गया है। उसका पराक्रम सर्वत्र विख्यात है। मेरा सुख और जीवन उसके विनाशपर ही निर्भर है। यही मेरे शोकनाशका उपाय है। मैंने शोकसे पीड़ित होनेके कारण आपसे यह बात निवेदन की है; क्योंकि मित्र दुःखमें हो या सुखमें, वह अपने मित्रकी सदा ही सहायता करता है।'

यह सुनकर श्रीरामने सुग्रीवसे कहा—'तुम दोनों भाइयोंमें वैर पड़नेका क्या कारण है? मैं उसे ठीक-ठीक

---

* रजतं वा सुवर्णं वा शुभान्याभरणानि च।
अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः॥
आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा।
निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः॥
धनत्यागः सुखत्यागो देशत्यागोऽपि वानघ।
वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम्॥
(८। ७—९)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सुनना चाहता हूँ। तुम्हारी शत्रुताका कारण सुननेके पश्चात् ही मैं तुम्हें सुखी बनानेका प्रयत्न करूँगा। जैसे वर्षाकालमें [नदी आदिके] जलका वेग बहुत बढ़ जाता है, उसी प्रकार तुम्हारे अपमानित होनेकी बात सुनकर मेरा प्रबल रोष बढ़ता जा रहा है। यह हृदयको कँपाये डालता है। मेरे धनुष चढ़ानेके पहले ही तुम अपनी सब बातें प्रसन्नतापूर्वक कह डालो; क्योंकि जहाँ मैंने बाण छोड़ा, तत्काल ही तुम्हारा शत्रु नष्ट हो जायगा।' महात्मा श्रीरामके ऐसा कहनेपर सुग्रीवको अपने चारों वानरोंके साथ अपार हर्ष हुआ। उनके मुखपर प्रसन्नता छा गयी और वे वालीके साथ वैर होनेका यथार्थ कारण बताने लगे—"रघुनन्दन! वाली मेरे बड़े भाई हैं। पहले मेरे मनमें उनके प्रति बड़े आदरका भाव था। पिताकी मृत्युके पश्चात् मन्त्रियोंने उन्हें ज्येष्ठ समझकर वानरोंका राजा बनाया। सबकी सम्मतिसे उनका राज्यपर अभिषेक हुआ। वे पिता-पितामहोंके विशाल राज्यका शासन करने लगे और मैं हर समय विनीत भावसे दासकी भाँति उनकी सेवामें रहने लगा। उन दिनों मायावी नामका एक तेजस्वी दानव था, जो मय दानवका पुत्र और दुन्दुभिका बड़ा भाई था। उसके साथ वालीका स्त्रीके कारण बहुत बड़ा वैर हो गया था। एक दिन आधी रातके समय जब सब लोग सो गये, मायावी किष्किन्धापुरीके दरवाजेपर आया और क्रोधसे भरकर गर्जने तथा वालीको युद्धके लिये ललकारने लगा। उस समय मेरे भाई सो रहे थे। उसका भैरव नाद सुनकर उनकी नींद खुल गयी। उनसे उस राक्षसकी ललकार सही नहीं गयी। अतः वे बड़े वेगके साथ घरसे निकले। मैंने तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंने पैरों पड़कर उन्हें जानेसे रोका, किन्तु महाबली वाली सबको हटाकर निकल पड़े। तब मैं भी स्नेहवश उनके साथ ही बाहर निकला। उस असुरने मेरे भाईको देखा तथा कुछ दूरपर खड़े हुए मेरे ऊपर भी उसकी दृष्टि पड़ी। फिर तो वह भयसे थर्रा उठा और बड़े जोरसे भागा। उसे भयभीत होकर भागते देख हम दोनों भाइयोंने बड़ी तेजीके साथ उसका पीछा किया। कुछ दूर आगे जानेपर धरतीमें एक बहुत बड़ा बिल दिखायी दिया, जिसके भीतर घुसना बहुत ही कठिन था। उसका मुँह घास-फूससे ढका था। मायावी वेगके साथ उसमें जा घुसा। वहाँ पहुँचकर हम दोनों ठहर गये। शत्रुको बिलके अंदर घुसा देख वालीके क्रोधकी सीमा न रही। वे क्षुब्ध होकर बोले—'सुग्रीव! जबतक मैं इस बिलके भीतर प्रवेश करके युद्धमें शत्रुको मारूँ, तबतक तुम इसके दरवाजेपर सावधानीसे खड़े रहो।' यह सुनकर मैंने साथ जानेके लिये प्रार्थना की, किन्तु वे अपने चरणोंकी सौगंद दिलाकर अकेले ही बिलमें घुसे। उसके भीतर गये उन्हें एक सालसे कुछ अधिक समय बीत गया। तबतक मैं उस बिलके दरवाजेपर ही खड़ा रहा। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् उस बिलसे सहसा फेनसहित खूनकी धारा निकली और असुरोंके गर्जनेकी भी आवाज मेरे कानोंमें पड़ी। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरे भाई युद्धमें लिप्त थे और गर्जना भी करते थे, पर उनकी आवाज मुझे नहीं सुनायी पड़ी। इन सब चिह्नोंको देखकर बुद्धिद्वारा विचार करनेपर मैं इस निश्चयपर पहुँचा कि मेरे भाई मारे गये। फिर तो उस गुफाके दरवाजेपर मैंने पर्वतके समान एक पत्थरकी चट्टान रख दी और भाईको जलाञ्जलि दे शोकमें डूबा हुआ मैं किष्किन्धापुरीमें लौट आया। यद्यपि मैं इस बातको छिपाना चाहता था, तो भी मन्त्रियोंने चेष्टा करके सुन लिया। तब उन सबने मिलकर मुझे राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और मैं न्यायपूर्वक राज्यका सञ्चालन करने लगा।

"तदनन्तर उस दानवको मारकर जब वाली घर लौटे, तो मुझे राज्यपर अभिषिक्त देखकर उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। मेरे मन्त्रियोंको उन्होंने कैद कर लिया और उन्हें कठोर बातें सुनायीं। यद्यपि मैं स्वयं भी उस पापीको कैद करनेमें समर्थ था, तो भी भाईके प्रति आदर-बुद्धि होनेके कारण मेरे मनमें ऐसा विचार नहीं हुआ। मैंने वालीका सम्मान करते हुए उनके चरणोंमें मुकुट रखकर प्रणाम किया और कहा—'नाथ! सौभाग्यकी बात है कि आप सकुशल लौट आये और वह शत्रु आपके हाथसे मारा गया। मैं आपके बिना अनाथ हो रहा था, अब आप ही मेरे नाथ हैं। मैं स्वयं आपके मस्तकपर छत्र लगाता और चँवर डुलाता हूँ, आप इन्हें स्वीकार करें। मैं बहुत दुखी होकर एक वर्षतक उस बिलके दरवाजेपर खड़ा रहा। उसके बाद भीतरसे खूनकी धारा निकली। द्वारपर रक्त देखकर मेरा हृदय शोकसे घबरा गया और उस गुफाके द्वारको पर्वतके शिखरसे ढककर मैं चला आया। आपका यह राज्य मेरे पास धरोहरके रूपमें रखा था; अब इसे आपकी सेवामें लौटा रहा हूँ, आप क्रोध न कीजिये। राजन्! मैं इसके लिये मस्तक झुकाकर प्रार्थना करता हूँ, हाथ जोड़ता हूँ। मन्त्रियों तथा पुरवासियोंने मिलकर मुझे जबर्दस्ती राज्यपर बिठाया है; वह भी इसलिये कि राजा-रहित राज्य देखकर कोई शत्रु इसे जीतनेकी इच्छासे आक्रमण न कर बैठे।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैंने ये सारी बातें बड़े प्रेमसे कही थीं; किन्तु उस वानरने मुझे डाँटकर कहा—'तुझे धिक्कार है।' यों कहकर उसने मुझे और भी बहुत-सी कठोर बातें सुनायीं। तत्पश्चात् उसने प्रजाजनों और सम्मान्य मन्त्रियोंको बुलाया और सुहृदों-के बीचमें मेरे प्रति अत्यन्त निन्दित वचन कहा। फिर [वहाँ बैठे हुए सब लोगोंको सुनाते हुए] वह बोला—'आपलोगों-को मालूम होगा कि एक दिन रातमें मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छासे मायावी नामका महान् असुर यहाँ आया था। उसने क्रोधमें भरकर मुझे युद्धके लिये ललकारा। उसकी बात सुनकर मैं राजभवनसे निकल पड़ा। उस समय यह क्रूर स्वभाववाला मेरा भाई भी मेरे पीछे-पीछे गया। यद्यपि वह असुर बड़ा बलवान् था, तथापि मुझे एक सहायकके साथ देखकर भयभीत हो भाग खड़ा हुआ और बड़े वेगसे जाकर एक महान् बिलमें घुस गया। यह जानकर मैंने इस क्रूर भाईसे कहा—'जबतक मैं इसे मारकर लौटता हूँ, तुम गुफाके दरवाजेपर रहकर मेरी प्रतीक्षा करो। भीतर जाकर मैं उस दानवकी खोज करने लगा और इसीमें एक वर्ष व्यतीत हो गया। इसके बाद मैंने उस भयंकर शत्रुको देखा और समस्त बन्धु-बान्धवोंसहित उसे तत्काल मौतके घाट उतार दिया। मुझे स्वयं तनिक भी क्लेश नहीं पहुँचा। उसके शरीरसे इतने वेगके साथ खूनकी धारा निकली कि वह सारी गुफा भर गयी। उसे मारकर जब मैं लौटा तो मुझे निकलनेका कोई मार्ग ही नहीं मिलता था। देखता हूँ तो बिलका मुँह बंद किया हुआ है। मैंने 'सुग्रीव! सुग्रीव!' कहकर बारंबार पुकारा; किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। इससे मैं बहुत दुखी हुआ। कई बार लात मारकर मैंने किसी तरह उस पत्थरको पीछेकी ओर ढकेला। इसके बाद वहाँसे निकलकर मैं नगरमें आया। सुग्रीव इतना निर्दयी है कि इसने भ्रातृप्रेमको तिलाञ्जलि देकर सारा राज्य अपने हाथमें कर लेनेके लिये मुझे गुफाके अंदर बंद कर दिया।' ऐसा कहकर वालीने निर्भयतापूर्वक मुझे घरसे निकाल दिया। उस समय मेरे शरीरपर एक ही वस्त्र रह गया था। मेरी स्त्री भी छीन ली गयी, अतः मैं भार्या-हरणके दुःखसे दुखी होकर इस ऋष्यमूक-पर्वतपर चला आया; क्योंकि विशेष कारणवश यहाँ वालीका आक्रमण नहीं हो सकता। रघुनन्दन! यही वालीके साथ मेरे वैर पड़नेकी विस्तृत कथा है, यह सब मैंने आपको सुना दी। देखिये, बिना अपराधके ही मुझे यह संकट झेलना पड़ता है। वीरवर! आप सम्पूर्ण जगत्का भय दूर करनेवाले हैं; मुझपर कृपा कीजिये और वालीका दमन करके मुझे उसके भयसे बचाइये।"

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर धर्मके ज्ञाता परम तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी हँसते हुए यह धर्मयुक्त वचन बोले—'मित्र! सूर्यके समान तेजस्वी ये मेरे तीखे बाण अमोघ हैं, जो दुराचारी वालीको रोषपूर्वक अपना निशाना बनायेंगे। तुम शोक-समुद्रमें डूबे हुए हो, मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा। तुम राज्य और स्त्री—सभी कुछ प्राप्त करोगे।'

## दुन्दुभिके वध और मतङ्ग मुनिके शापका वृत्तान्त, श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमका प्रदर्शन तथा वाली-सुग्रीवके युद्धमें सुग्रीवकी पराजय

श्रीरामचन्द्रजीके वचन हर्ष और पुरुषार्थको बढ़ानेवाले थे। उन्हें सुनकर सुग्रीवने उनके प्रति आदर प्रकट किया और रघुनाथजीकी इस प्रकार प्रशंसा की—"आपके बाण प्रज्वलित, तीक्ष्ण और मर्मभेदी हैं। यदि आप क्रोधसे भर जायँ, तो इनके द्वारा प्रलयकालीन सूर्यकी भाँति समस्त संसार-को भस्म कर सकते हैं; इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है। किन्तु वालीका जैसा पुरुषार्थ है, जो बल है तथा जैसा धैर्य है, वह सब एकचित्त होकर सुन लीजिये। उसके बाद जैसा उचित हो, कीजियेगा। वाली सूर्योदयके पहले ही पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्रतक और दक्षिण सागरसे उत्तरतक घूम आता है, फिर भी वह थकता नहीं है। वह पर्वतोंकी चोटियोंपर चढ़कर बड़े-बड़े शिखरोंको बलपूर्वक उठा लेता और ऊपरको उछालकर फिर उन्हें हाथोंसे थाम लेता है। पहलेकी बात है, एक दुन्दुभि नामका असुर रहता था। उसकी ऊँचाई कैलास पर्वतके समान थी और उसमें एक हजार हाथियोंका बल था। भैंसेका रूप धारण किये, तीखे सींगोंके कारण वह बड़ा भयानक जान पड़ता था। एक दिन महाबली दुन्दुभि किष्किन्धापुरीके द्वारपर आकर पृथ्वीको कँपाता विकट गर्जना करने लगा। उस समय वाली अन्तःपुरमें था। दानवकी आवाज सुनकर वह क्रोधमें भरा हुआ बाहर निकला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


और उससे बोला—'महाबली दुन्दुभे ! मैं तुम्हें खूब जानता हूँ। तुम इस नगरका दरवाजा रोककर क्यों गरज रहे हो ? अपने प्राणोंकी रक्षा करो।' वानरराजकी बात सुनकर दुन्दुभिने क्रोधसे लाल आँखें करके कहा—'मुझे युद्धका अवसर दो, तब मैं तुम्हारा बल समझूँगा। तुम्हारा दर्प चूर्ण करनेके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ।' वाली हँस पड़ा और उस मूर्ख राक्षससे क्रोधपूर्वक बोला—'यदि तुम युद्धमें किसीसे नहीं डरते तो मुझे भी बेखबर न समझो।'

"यह कहकर वालीने उस पर्वताकार दानव दुन्दुभिके दोनों सींग पकड़ लिये और जोर-जोरसे गरजते हुए उसे घुमाना आरम्भ किया। घुमाते-घुमाते उसे पृथ्वीपर पटक दिया। अतः उसके दोनों कानोंसे खून गिरने लगा। वाली और दुन्दुभि दोनों अत्यन्त क्रोधसे भरकर एक दूसरेको जीतनेका उद्योग करने लगे। दोनोंमें घोर संग्राम होने लगा। वाली इन्द्रके समान पराक्रमी है। वह घूँसों, घुटनों, लातों, पत्थरों और वृक्षोंसे प्रहार करने लगा। परस्पर प्रहार करते हुए उन दोनोंमें वह असुर कमजोर पड़ने लगा और इन्द्रपुत्र वालीका बल बढ़ने लगा। उन दोनोंमें प्राणान्तकारी युद्ध छिड़ गया। उस समय वालीने दुन्दुभिको उठा लिया और उसे पृथ्वीपर दे मारा। साथ ही अपने शरीरसे दबाकर उसे रगड़ डाला। उस समय उसके शरीरके समस्त छिद्रोंसे बहुत-सा खून गिरा और वह मृत्युको प्राप्त हो गया। वालीने उसके निष्प्राण शरीरको दोनों हाथोंपर उठा लिया और उसे बड़े वेगसे चार कोस दूर फेंक दिया। वेगसे फेंके गये उस दानवके मुँहसे निकली हुई रक्तकी बूँदें हवाके साथ उड़कर मतङ्ग मुनिके आश्रमपर पड़ीं। उन रक्तविन्दुओंको देखकर मुनिको बड़ा क्रोध हुआ और वे सोचने लगे—'किसने यहाँ रक्तके छींटे डाले हैं।' मुनिने आश्रमसे बाहर निकलकर देखा कि एक पर्वताकार भैंसेके रूपमें कोई राक्षस निर्जीव हुआ धरतीपर पड़ा है। उन्होंने अपनी तपस्याके प्रभावसे जान लिया कि यह एक वानरकी करतूत है; अतः उस लाशको फेंकनेवाले वानरके प्रति उन्होंने बड़ा भयंकर शाप दिया—'जिसने खूनके छींटे डालकर मेरे आश्रमको अपवित्र किया है, वह आजसे इस वनमें प्रवेश न करे। यदि यहाँ आयेगा, तो उसकी मृत्यु हो जायगी। मेरे आश्रमके चारों ओर एक योजनतककी भूमिमें यदि वह पैर रखेगा तो अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। उसके कोई सचिव भी यदि मेरे इस वनमें रहते हों तो अब उन्हें यहाँका निवास त्याग देना चाहिये। वे मेरी आज्ञा सुनकर यहाँसे सुखपूर्वक चले जायँ। यदि रहेंगे, तो उन्हें भी निश्चय ही शाप दे दूँगा। आजभरके लिये मैं उन्हें छुट्टी देता हूँ। कलसे यहाँ जो कोई वानर मेरी दृष्टिमें पड़ जायगा, वह कई हजार वर्षोंके लिये पत्थर हो जायगा।'

"मुनिके इस वचनको सुनकर सभी वानर मतङ्ग-वनसे निकल गये। उन्हें देखकर वालीने पूछा—'मतङ्ग-वनमें निवास करनेवाले आप सभी वानर मेरे पास क्यों चले आये ? कुशल तो है न ?' तब वानरोंने अपने आनेका सब कारण बताया तथा वालीको जो शाप हुआ था, उसे भी कह सुनाया। यह सुनकर वाली महर्षि मतङ्गके पास गया और हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करने लगा; किन्तु महर्षिने उसका आदर नहीं किया। वे चुपचाप अपने आश्रममें चले गये और वाली शापके भयसे व्याकुल हो गया। तबसे वह इस महान् पर्वत ऋष्यमूकपर न तो कभी आना चाहता है और न इसे देखनेका ही विचार करता है। यहाँ उसका प्रवेश होना असम्भव है—यह जानकर मैं अपने मन्त्रियोंके साथ इस महान् वनमें विषादशून्य होकर विचरता हूँ। यह दुन्दुभिकी हड्डियोंका ढेर है, जो पर्वत-शिखरके समान जान पड़ता है। ये मोटे-मोटे सालके सात वृक्ष हैं, जिनकी शाखाएँ सब ओर फैली हुई हैं। वाली इनमेंसे एक-एक वृक्षको बलपूर्वक एक ही बाणसे छेद सकता है। रघुनन्दन ! यह मैंने वालीके अनुपम पराक्रमका वर्णन किया है। आप उसे युद्धमें किस प्रकार मार सकेंगे ?"

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणको बड़ी हँसी आयी। वे बोले—'कौन-सा काम करनेपर तुम्हें विश्वास होगा कि श्रीरामचन्द्रजी वालीका वध कर सकेंगे ?' सुग्रीवने कहा—'पूर्वकालमें वालीने सालके इन सातों वृक्षोंको एक-एक करके कई बार बींध डाला है; अतः श्रीरामचन्द्रजी भी यदि इनमेंसे किसी एक वृक्षको एक ही बाणसे छेद डालेंगे, तो इनका पराक्रम देखकर मुझे वालीके मारे जानेका विश्वास हो जायगा। इसके सिवा यदि इस महिषरूपधारी दुन्दुभिकी हड्डीको ये एक ही पैरसे उठाकर बलपूर्वक दो सौ धनुषकी दूरीपर फेंक सकें, तो भी मैं यह समझ लूँगा कि इनके हाथसे वालीका वध हो सकता है।' सुग्रीवकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मुसकराते हुए बोले—'वानर ! यदि तुम्हें इस समय हमारे पराक्रमपर विश्वास नहीं होता, तो युद्धके समय हम उसका पूर्ण विश्वास करा देंगे।' ऐसा कहकर सुग्रीवको दृढ़ता बँधाते हुए उन्होंने खिलवाड़में ही दुन्दुभिके शरीरको अपने पैरके अँगूठेमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


टाँग लिया और उसे दस योजन (चालीस कोस)की दूरीपर फेंक दिया। उसके बाद महातेजस्वी श्रीरामने अपना धनुष हाथमें लिया और एक भयंकर बाणका संधान करके उसे साल वृक्षकी ओर छोड़ दिया। उस समय उनके धनुषकी टंकारसे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं। महाबली भगवान् श्रीरामके द्वारा छोड़ा हुआ वह सुवर्णभूषित बाण उन सातों साल वृक्षोंको एक ही साथ बींधकर पर्वत तथा पृथ्वीके सातों तलोंको छेदता हुआ पातालमें चला गया। इस प्रकार एक ही मुहूर्तमें सबको बींधकर वह बाण पुनः उनके तरकसमें लौट आया। वानरराज सुग्रीव भगवान्‌के एक ही बाणके वेगसे उन सातों वृक्षोंको विदीर्ण हुए देखकर बड़े विस्मयमें पड़ गये और हाथ जोड़ बड़ी प्रसन्नताके साथ पृथ्वीपर माथा टेककर उन्होंने रघुनाथजीको प्रणाम किया। तदनन्तर वे सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीरामसे बोले—'प्रभो! आप इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंको भी अपने बाणोंसे मार डालनेकी शक्ति रखते हैं, फिर वालीको मारना आपके लिये कौन बड़ी बात है? जिन्होंने सात बड़े-बड़े साल वृक्ष, पर्वत और पृथ्वीको भी एक ही बाणसे विदीर्ण कर डाला, युद्धमें उनके सामने कौन ठहर सकता है? आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; रघुनन्दन! मैं हाथ जोड़ता हूँ। आप आज ही मेरा प्रिय करनेके लिये वालीका, जो भाईके रूपमें मेरा शत्रु है, वध कर डालिये।'

सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्मणके समान प्रिय हो गये थे। उनकी बात सुनकर श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया और इस प्रकार उत्तर दिया—'सुग्रीव! हमलोग शीघ्र ही यहाँसे किष्किन्धामें चलते हैं। तुम आगे जाकर वालीको युद्धके लिये ललकारो।' तदनन्तर सब लोग वालीकी राजधानी किष्किन्धा नगरीमें गये और वहाँ सघन वनके भीतर वृक्षोंकी ओटमें अपनेको छिपाकर खड़े हो गये। सुग्रीवने लँगोटसे अपनी कमर खूब कस ली और वालीको बुलानेके लिये भयंकर गर्जना की। उस भैरव नादसे आकाश फटता-सा जान पड़ा। अपने भाईकी विकट गर्जना सुनकर महाबली वालीको बड़ा क्रोध हुआ और वह अमर्षमें भरकर घरसे निकला। फिर तो वाली और सुग्रीवमें भयंकर युद्ध छिड़ गया। वे दोनों भाई क्रोधसे मूर्च्छित होकर एक-दूसरेपर वज्रके समान तमाचों और घूँसोंका प्रहार करने लगे। इसी समय श्रीरामचन्द्रजीने धनुष हाथमें लिया और उन दोनोंकी ओर देखा। वे दोनों वीर अश्विनीकुमारोंकी भाँति परस्पर मिलते-जुलते दिखायी दिये। पता नहीं चलता था कि कौन सुग्रीव है और कौन वाली। इसलिये श्रीरामने अपना प्राणान्तकारी बाण छोड़नेका विचार स्थगित कर दिया। इस बीचमें वालीने सुग्रीवको बेतरह चोट पहुँचायी। वे अपने रक्षक रघुनाथजीको न देखकर ऋष्यमूक-पर्वतकी ओर भागे। वे काफी थक गये थे। उनका सारा शरीर लहू-लुहान और प्रहारोंसे जर्जर हो रहा था। इतनेपर भी वालीने क्रोधपूर्वक उनका पीछा किया; किन्तु वे मतङ्ग मुनिके महान् वनमें घुस गये। यह देखकर महाबली वाली शापके भयसे वहाँ नहीं गया और 'जाओ, बच गये' ऐसा कहकर वहाँसे लौट आया। श्रीरामचन्द्रजी भी अपने भाई लक्ष्मण और हनुमान्‌जीके साथ उसी वनमें आये, जहाँ सुग्रीव भागकर गये थे। लक्ष्मणसहित श्रीरामको आया देख सुग्रीवको बड़ी लज्जा हुई और वे पृथ्वीकी ओर देखते हुए दीन वाणीमें उनसे बोले—'रघुनन्दन! आपने अपना पराक्रम दिखाया और मुझे यह कहकर भेज दिया कि 'जाओ, वालीका युद्धके लिये आवाहन करो।' यह सब हो जानेपर आपने मुझे शत्रुसे पिटवाया और स्वयं छिप गये। बताइये, इस समय आपने यह क्या किया? आपको उसी समय सच-सच बता देना चाहिये था कि 'मैं वालीको नहीं मारूँगा।' ऐसी दशामें मैं यहाँसे उसके पास जाता ही नहीं।''

सुग्रीवके ये करुणायुक्त दीन वचन सुनकर भगवान् श्रीरामने कहा—'तात! मेरी बात सुनो, क्रोधको अपने मनसे निकाल दो। मैंने क्यों नहीं बाण चलाया, इसका कारण बतलाता हूँ। वेष-भूषा, कद और चाल-ढालमें तुम और वाली दोनों एक-दूसरेसे मिलते-जुलते हो। स्वर, कान्ति, दृष्टि, पराक्रम और बोल-चालके द्वारा भी मुझे तुमलोगोंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता। तुम दोनोंकी इतनी समानता देखकर मेरे मनमें संदेह हो गया। इसीलिये मैंने अपना बाण नहीं छोड़ा। वानरराज! यदि अनजानमें या जल्दबाजीके कारण मेरे बाणसे तुम्हीं मारे जाते तो मेरी बालोचित चपलता और मूर्खता साबित होती। जिसको अभय-दान दे दिया गया हो, उसका वध करनेसे बड़ा भारी पाप होता है। इस समय मैं, लक्ष्मण और सीता सब तुम्हारे अधीन हैं; इस वनमें तुम्हीं हमलोगोंके आश्रय हो! इसलिये शङ्का न करो, पुनः चलकर युद्ध प्रारम्भ करो। तुम अभी वालीको मेरे एक ही बाणका निशाना बनकर धरतीपर लोटता देखोगे। तुम कोई चिह्न धारण कर लो, जिससे द्वन्द्वयुद्धमें प्रवृत्त होनेपर मैं तुम्हें पहचान सकूँ!' सुग्रीवसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीराम लक्ष्मणसे बोले—'सुमित्रानन्दन!



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उत्तम लक्षणोंसे युक्त गजपुष्पी लता फूल रही है। इसे उखाड़कर तुम सुग्रीवके गलेमें पहना दो।' आज्ञा पाकर लक्ष्मणने पर्वतके किनारे स्थित वह फूली हुई गजपुष्पी उखाड़कर सुग्रीवके गलेमें डाल दी। इससे उनकी शोभा बहुत बढ़ गयी और वे श्रीरामचन्द्रजीके साथ पुनः किष्किन्धामें आये।

## ताराके मना करनेपर भी वालीका सुग्रीवसे भिड़ना तथा श्रीरामके बाणसे घायल होकर गिरना

युद्धमें सफलता दिलानेवाले अपने बाण और महान् धनुष लेकर श्रीरामचन्द्रजी ऋष्यमूकसे किष्किन्धाको चले। उस समय महाबली लक्ष्मण और सुग्रीव महात्मा श्रीरामके आगे थे और वीरवर हनुमान्, नल, नील तथा महातेजस्वी तार आदि वानर-यूथपति उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। वे सब लोग फूलोंके भारसे झुके हुए वृक्षों, स्वच्छ जलवाली नदियों, कन्दराओं, पर्वतों, झरनों, मुख्य-मुख्य शिखरों तथा सुन्दर गुफाओंको देखते जा रहे थे। रास्तेमें उन्हें जलसे भरे हुए तालाब भी दृष्टिगोचर हुए। शीघ्रतापूर्वक चलते हुए वे सब-के-सब वालीकी किष्किन्धा नगरीमें जा पहुँचे और वहाँ सघन वनके भीतर वृक्षोंकी ओटमें अपनेको छिपाकर खड़े हो गये। सुग्रीवने वनमें चारों ओर दृष्टि दौड़ायी और वे मन-ही-मन अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। तदनन्तर अपने सहायकोंसे घिरे हुए उन्होंने भयंकर गर्जना की और वालीको युद्धके लिये ललकारा। सुग्रीवने कार्यकुशल श्रीरामचन्द्रजीको उपस्थित देखकर कहा—'भगवन्! हमलोग किष्किन्धामें आ पहुँचे हैं। वालिवधके लिये आप पहले जो प्रतिज्ञा कर चुके हैं, उसे अब शीघ्र पूर्ण कीजिये।' सुग्रीवके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी बोले—'आज मैं वालीसे उत्पन्न हुए तुम्हारे भय और वैर दोनोंको एक ही बाणसे नष्ट कर दूँगा। एक बार वालीको तुम दिखा दो; फिर थोड़ी ही देरमें मारा जाकर वह धूलमें लोटता दिखायी देगा। मेरी दृष्टिमें पड़ जानेपर भी यदि वह जीवित लौट जाय, तो तुम मुझे दोषी समझना और जी भरकर मेरी निन्दा करना। बहुत समयसे संकट झेलते रहनेपर भी मैं कभी झूठ नहीं बोला हूँ। मेरे मनमें धर्मका लोभ है; इसलिये किसी भी अवस्थामें मैं झूठ तो बोलूँगा ही नहीं और अपनी प्रतिज्ञाको अवश्य पूर्ण करूँगा। तुम अपना भय, अपनी घबराहट दूर करो। इस समय ऐसी गर्जना करो, जिससे वाली तुम्हारा सामना करनेके लिये नगरसे बाहर निकल आये। वह अनेकों युद्धोंमें विजय पा चुका है, सबपर विजय पानेकी इच्छा रखता है और उसने तुमसे कभी हार नहीं खायी है, इसके अलावे युद्धसे उसका बड़ा प्रेम है, अतः वह आयेगा अवश्य; क्योंकि अपने पराक्रमको जाननेवाले वीर पुरुष शत्रुओंके तिरस्कारपूर्ण शब्द सुनकर कभी सहन नहीं कर सकते।'

श्रीरामचन्द्रजीका वचन सुनकर सुग्रीवने आकाशको विदीर्ण-सा करते हुए बड़ी भयंकर गर्जना की। उस समय स्वभावतः क्रोधी वाली अन्तःपुरमें था। उसने अपने भाई सुग्रीवके उस भैरव नादको सुना, जो सम्पूर्ण प्राणियोंको कँपा देनेवाला था। उसे सुनते ही सुवर्णके समान पीले रंगवाले वालीका सारा शरीर क्रोधसे तमतमा उठा। उसकी आँखें प्रज्वलित अग्निकी भाँति लाल हो गयीं। सुग्रीवकी गर्जना उसके लिये असह्य थी। उसके कानमें पड़ते ही वह बड़े वेगसे बाहर निकला। यह देख उसकी स्त्री तारा भयसे थर्रा उठी, वह बड़ी घबराहटमें पड़ गयी। उसने वालीको अपनी दोनों भुजाओंसे आलिङ्गन करके बड़े स्नेहके साथ परिणाममें हित करनेवाली बात कही—'वीरवर! नदीके वेगके समान आये हुए इस क्रोधका परित्याग कीजिये। कल सवेरे सुग्रीवके साथ युद्ध छेड़ियेगा [ इस समय रुक जाइये ]। यद्यपि युद्धमें कोई शत्रु आपसे बढ़कर नहीं है, तथापि इस समय सहसा आपका घरसे बाहर निकलना मुझे अच्छा नहीं लगता। आपको रोकनेका एक विशेष कारण भी है; उसे बताती हूँ, सुनिये। सुग्रीव पहले क्रोधसे भरकर आये और आपको युद्धके लिये ललकारने लगे। उस समय आपने वहाँ पहुँचकर उन्हें परास्त किया और वे आपकी मार खाकर भाग खड़े हुए। इस प्रकार आपके द्वारा पराजित और विशेष पीड़ित होनेपर भी वे पुनः यहाँ आकर आपको युद्धके लिये बुला रहे हैं, इससे मेरे मनमें शङ्का हो रही है। इस समय उनका दर्प और उद्योग जैसा दिखायी दे रहा है तथा उनकी गर्जनामें जो उत्तेजना जान पड़ती है, उसका कोई छोटा-मोटा कारण नहीं होना चाहिये। निश्चय ही उन्हें कोई बलवान् सहायक मिल गया है, जिसके बलपर वे इस तरह गरज रहे हैं। एक दिन कुमार अङ्गद वनमें गये थे। वहाँ दूतोंने उनसे एक समाचार कहा था, जो उन्होंने यहाँ आकर मुझे भी सुनाया। वह इस प्रकार है—अयोध्यानरेशके दो वीर पुत्र जिनका जन्म इक्ष्वाकुवंशमें हुआ है तथा जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराम और लक्ष्मणके नामसे प्रसिद्ध हैं, यहाँ वनमें आये हुए हैं। उन्हें युद्धमें जीतना बड़ा ही कठिन है। वे ही इस संग्राममें आपके भाईके सहायक हैं। श्रीरामचन्द्रजी साधु पुरुषोंके आश्रयदाता और संकटमें पड़े हुए प्राणियोंको सहारा देनेवाले हैं। वे आर्त पुरुषोंके अवलम्ब, यशके भाजन, ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न तथा पिताकी आज्ञामें स्थित रहनेवाले हैं। गिरिराज हिमालय जैसे नाना धातुओंकी खान हैं, उसी प्रकार श्रीराम उत्तम गुणोंके बहुत बड़े भंडार हैं, अतएव उन महात्माके साथ आपका विरोध करना कदापि उचित नहीं है। मैं आपके हितकी बात कह रही हूँ; आप उसे ध्यानसे सुनिये और वैसा ही कीजिये। मेरे अनुरोधसे सुग्रीवको तुरंत ही युवराज-पदपर अभिषिक्त कर दीजिये। श्रीरामचन्द्रजीके साथ मैत्री कर लेना ही मैं आपके लिये उचित समझती हूँ। सुग्रीवके साथ भी वैरको दूर हटाकर प्रेम कीजिये। वे आपके छोटे भाई हैं, अतः आपका प्यार पाने योग्य हैं। किष्किन्धामें रहें या ऋष्यमूकपर, हैं वे सर्वथा आपके बन्धु ही। आप दान-मान आदि सत्कारोंके द्वारा उन्हें अपना अन्तरङ्ग बना लीजिये। इस समय भ्रातृप्रेमका सहारा लेनेके सिवा आपके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है। यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हों तथा मुझे अपनी हितकारिणी समझते हों तो मैं प्रेमपूर्वक याचना करती हूँ, आप मेरी यह नेक सलाह मान लीजिये।' ताराने वालीके लिये यह हितकी ही बात कही थी, किन्तु उसे पसंद न आयी; क्योंकि उसका विनाश-काल निकट था।

चन्द्रमुखी ताराको ऐसी बातें करते देख वालीने उसे फटकारकर कहा—'सुन्दरी! इस गर्जते हुए भाईकी, जो विशेषतः मेरा शत्रु है, यह उत्तेजनापूर्ण चेष्टा मैं कैसे सहन कर सकता हूँ। भीरु! जो कभी परास्त नहीं हुए, जिन्होंने युद्धमें कभी पीठ नहीं दिखायी, उन शूरवीरोंके लिये शत्रुकी ललकार सह लेना मृत्युसे भी बढ़कर दुःखदायी होता है। श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखकर भी तुम्हें मेरे लिये विषाद नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे धर्मज्ञ और कार्य-अकार्यके जाननेवाले हैं, पाप कैसे करेंगे? लौट जाओ इन स्त्रियोंके साथ; क्यों बार-बार मेरे पीछे आ रही हो? तुमने मेरे प्रति अपना स्नेह दिखाया, भक्तिका भी परिचय दिया; अब जाओ, घबराहट छोड़ो। मैं सुग्रीवका सामना करूँगा। उसके घमंडको चूर-चूर कर डालूँगा; किन्तु प्राण नहीं लूँगा। वृक्षों और घूँसोंकी मारसे पीड़ित होकर वह स्वयं ही भाग जायगा। मैं अपने उस भाईको युद्धमें जीतकर अभी लौटता हूँ।' अत्यन्त उदार स्वभाववाली प्रियवादिनी ताराने वालीका आलिङ्गन करके मंद स्वरमें रोते-रोते उसकी प्रदक्षिणा की। वह पतिकी विजय चाहती थी, उसे मन्त्रोंका भी ज्ञान था; इसलिये उसने वालीकी मङ्गल-कामनासे स्वस्तिवाचन किया और अन्य स्त्रियोंके साथ शोकमें डूबी हुई अन्तःपुरमें चली गयी।

तदनन्तर वाली क्रोधसे भरे हुए महान् सर्पकी भाँति फुफकार छोड़ता हुआ नगरसे बाहर निकला और शत्रुको देखनेके लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगा। इतनेमें ही उसकी दृष्टि सुवर्णके समान कान्तिमान् सुग्रीवपर पड़ी, जो लँगोट बाँधकर युद्धके लिये तैयार खड़े थे। उस समय उनकी कान्ति अग्निके समान उद्दीप्त दिखायी देती थी। सुग्रीवको उपस्थित देख महाबाहु वालीने भी अपना लँगोट मजबूतीके साथ कस लिया और घूँसा तानकर वह सुग्रीवकी ओर चला। सुग्रीव भी सुवर्णमालासे विभूषित वालीको देखकर क्रोधमें भर गये और बँधी हुई मुट्ठी तानकर उसकी ओर बढ़े। निकट आने-

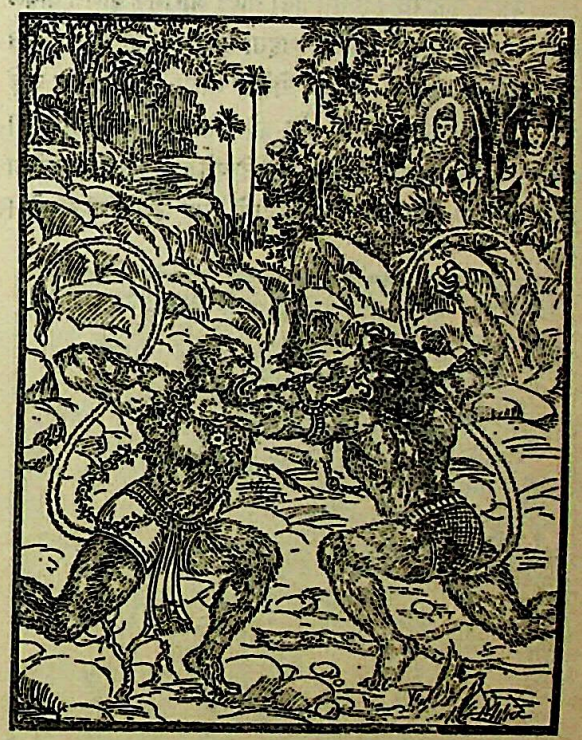

पर वालीने बड़े वेगसे मुक्का मारा। उस चोटसे घायल हुए सुग्रीव अपने मुँहसे रक्त वमन करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने भी एक सालका वृक्ष उखाड़ लिया और जिस प्रकार किसी महान् पर्वतपर वज्रकी चोट की जाय, वैसे ही निर्भय होकर उससे वालीके शरीरपर प्रहार किया। उस आघातसे वाली समुद्रमें डगमगाती हुई नौकाकी भाँति काँप उठा। उन दोनों भाइयों-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


का बल और पराक्रम भयंकर था। दोनों ही बड़े वेगसे युद्धमें लगे हुए थे और अपने शत्रुको मार डालनेकी इच्छासे एक दूसरेकी कमजोरी ढूँढ़ रहे थे। परन्तु वाली बल और पराक्रममें बढ़ा हुआ जान पड़ने लगा। उसने सूर्यपुत्र सुग्रीवका दर्प चूर्ण कर दिया। वे कमजोर पड़ने लगे। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको अपनी अवस्थाका लक्ष्य कराया और वालीके प्रति अपने प्रचण्ड क्रोधका परिचय दिया। उन दोनोंमें डालियोंसहित वृक्षों, पर्वतके शिखरों, वज्रके समान भयंकर नखों, घूँसों, घुटनों, लातों और हाथोंकी मारसे इन्द्र और वृत्रासुरकी भाँति भयंकर संग्राम होने लगा। वे दोनों वनवासी वानर लहू-लुहान होकर लड़ रहे थे। दो बादलोंकी तरह भयंकर गर्जना करते हुए एक दूसरेको डाँट रहे थे। श्रीरामचन्द्रजीने वानरराज सुग्रीवकी कमजोरीको लक्ष्य किया। उन्होंने देखा सुग्रीव बारंबार इधर-उधर दृष्टि दौड़ा रहे हैं। उन्हें दुखी देखकर श्रीरामने अपने धनुषपर सर्पके समान भयानक बाण रखा और उसे जोरसे खींचा। फिर प्रज्वलित वज्रके समान तेजस्वी एवं घोर शब्द करनेवाले उस बाणको वालीकी छातीमें मारा। वह बाण बड़े जोरसे चला और उसके आघातसे वानरराज वाली, जो महान् तेजस्वी और पराक्रमी था, धरतीपर गिर पड़ा। उसके शरीरसे पानीके समान खूनकी धारा बहने लगी। वह उससे नहा गया और फूले हुए पहाड़ी अशोककी भाँति दिखायी देने लगा।

## वाली और भगवान् श्रीरामका संवाद

युद्धमें कठोरता दिखानेवाला वाली श्रीरामके बाणसे घायल होकर कटे वृक्षकी भाँति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस अवस्थामें भी इन्द्रकी दी हुई सोनेकी माला, जिसमें रत्न जड़े थे, वालीके प्राण, तेज और शोभाकी रक्षा कर रही थी। श्रीराम और लक्ष्मणने अपनी ओर देखते हुए वीरवर वालीका सम्मान किया और धीरे-धीरे वे दोनों भाई उसके पास गये।

वालीने महाबली श्रीराम और लक्ष्मणकी ओर देखकर धर्म और विनयसे युक्त कठोर वचन कहा—'राजन्! मैं आपसे युद्ध करने नहीं आया था, तो भी आपने मुझे मारकर क्या लाभ उठाया? मैं दूसरेके साथ युद्धमें लगा था और आपके कारण मारा गया। संसारके समस्त प्राणी भूमण्डलपर आपके सुयशका इस प्रकार बखान करते हैं कि श्रीराम कुलीन, सत्त्वगुणसम्पन्न, तेजस्वी, उत्तम व्रतके पालक, करुणाका अनुभव करनेवाले, प्रजाके हितैषी, दयालु, महान् उत्साही, सदाचारके ज्ञाता और दृढ़प्रतिज्ञ हैं। रघुनन्दन! इन्द्रियनिग्रह, मनका निग्रह क्षमा, धर्म, धैर्य, वीरता, पराक्रम तथा अपराधियोंको दण्ड देना—ये राजाके गुण हैं। मैं आपमें इन सभी सद्गुणोंका विश्वास करके तथा आपके उत्तम कुलका खयाल करके ताराके मना करनेपर भी सुग्रीवसे लड़ने आ गया। मैंने आपके राज्य या नगरमें कोई उपद्रव नहीं किया तथा आपका भी अपमान नहीं किया; तो भी आपने मुझ निरपराधको क्यों मारा? मैं सदा फल-मूलका भोजन करनेवाला वानर हूँ और वनमें ही रहता हूँ। मैं आपसे युद्ध नहीं करता था, दूसरेके साथ मेरी लड़ाई हो रही थी; फिर भी आपने मुझे मारा है। आप राजाके पुत्र, विश्वासके योग्य और देखनेमें प्रिय हैं। आपमें धर्मका चिह्न भी दिखायी दे रहा है। क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न, शास्त्रका ज्ञाता, संशयरहित तथा धार्मिक चिह्न धारण करनेवाला होकर भी कौन मनुष्य ऐसा क्रूरतापूर्ण कर्म कर सकता है? महाराज रघुके कुलमें आपका प्रादुर्भाव हुआ है। आप धर्मात्माके नामसे प्रसिद्ध हैं [ तथापि बिना किसी अपराधके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आपने मेरा वध किया है ]। इतने क्रूर होकर भी आप ऊपरसे क्यों साधुका-सा रूप धारण किये फिरते हैं ? नीति और विनय, दण्ड और अनुग्रह—ये राजधर्म हैं; किन्तु इनके उपयोगके भिन्न-भिन्न अवसर हैं। अविवेकपूर्वक इनका उपयोग करना उचित नहीं है। राजाओंको स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिये। राम ! मैं बिल्कुल निरपराध था। मुझे बाणसे मारकर निन्दा-पूर्ण कार्य करके सत्पुरुषोंके बीचमें आप क्या कहेंगे ? राजकुमार ! यदि मेरे सामने आकर आप युद्ध करते तो अबतक मेरे द्वारा मारे जाकर सूर्यमण्डलमें प्रवेश किये होते। जैसे पापके अधीन हुए मनुष्यको सोतेमें साँप काट दे, उसी प्रकार आपने छिपकर मुझे मारा है; अन्यथा मुझे परास्त करना कठिन था। आपने-अपने मनमें जिस उद्देश्यको रखकर सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये मेरा वध किया है, उसे यदि पहले मुझसे कहा होता तो मैं एक ही दिनमें मिथिलेशकुमारी सीताको ला देता। आपकी स्त्रीका अपहरण करनेवाले दुरात्मा राक्षस रावणका गला बाँधकर जीते-जी उसे आपके पास उपस्थित कर देता। समुद्रके जल अथवा पातालमें भी यदि सीताका पता लगता तो मैं वहाँसे भी उन्हें ले आता। मेरे स्वर्ग चले जानेपर यह राज्य सुग्रीवको मिलेगा, यह तो उचित ही हुआ। परन्तु आपने जो अधर्मपूर्वक मेरा वध किया है, यह नितान्त अनुचित हुआ है। यदि आप इसे उचित समझते हों तो मेरी बातोंका उत्तर सोचकर दीजिये।' ऐसा कहकर वानर-राज वाली सूर्यके समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखकर चुप हो गया। उसका मुँह सूख गया था और बाणके आघातसे उसको बड़ी पीड़ा हो रही थी।

वालीके इस प्रकार आक्षेप करनेपर श्रीरामचन्द्रजी बोले—"वानर ! धर्म, अर्थ, काम और लौकिक सदाचारका स्वयं तुम्हींको ज्ञान नहीं है; फिर अज्ञानवश तुम मेरी निन्दा क्यों कर रहे हो ? आचार्योंद्वारा सम्मानित वृद्ध पुरुषोंसे पूछे बिना—उनका सत्संग किये बिना तुम चञ्चलतावश मुझे उपदेश देना चाहते हो ? पर्वत, वन और काननोंसे युक्त यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकुवंशी राजाओंकी है। अतः वे यहाँके पशु, पक्षी तथा मनुष्योंपर दया करने और उन्हें दण्ड देनेके भी अधिकारी हैं। धर्मात्मा राजा भरत इस पृथ्वीका पालन करते हैं। वे सत्यवादी, सरल तथा धर्म, काम और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले हैं। उनमें नीति, विनय, सत्य और पराक्रम आदि सभी राजोचित गुण पाये जाते हैं। वे देश-कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं। संसारमें धर्मका प्रसार हो, इस इच्छासे हमलोग सारी पृथ्वीपर भ्रमण करते हैं। राजाओंमें श्रेष्ठ भरत धर्मपर अनुराग रखनेवाले हैं। उनके शासनकालमें कौन धर्मके विरुद्ध आचरण कर सकता है ? हम सब लोग अपने श्रेष्ठ धर्ममें दृढ़तापूर्वक स्थित रहकर धर्ममार्गसे भ्रष्ट हुए पुरुषोंके सम्बन्धमें विधिपूर्वक विचार करते [ और उन्हें उचित दण्ड देते ] हैं। तुमने अपने जीवनमें कामको ही प्रधानता दे रखी थी। राजोचित मार्गपर तुम कभी स्थिर नहीं रहे। तुमने सदा ही धर्मको बाधा पहुँचायी और अपने बुरे कर्मके कारण तुम [ धर्मात्माओंकी दृष्टिमें ] निन्दित रहे हो। बड़ा भाई, पिता तथा विद्या प्रदान करनेवाला गुरु—ये तीनों धर्ममार्गपर स्थित रहनेवाले पुरुषोंके लिये पिताके तुल्य माननीय हैं। इसी प्रकार छोटा भाई, पुत्र और गुणवान् शिष्य—ये तीनों पुत्रके समान समझने योग्य हैं। उनके प्रति ऐसा भाव रखनेमें धर्म ही कारण है। सज्जनोंका धर्म सूक्ष्म होता है। वह सबकी समझमें नहीं आता। तुम स्वयं भी चपल हो और चञ्चल चित्तवाले वानरोंके साथ रहते हो; अतः उनसे परामर्श लेकर तुम धर्मकी सूक्ष्म बात कैसे जान सकते हो ? तुम पापी हो और सनातन धर्मका त्याग करके अपने छोटे भाईकी स्त्री रुमाका, जो तुम्हारी पुत्र-वधूके समान है, कामवश उपभोग करते हो। यही कारण है, जिससे मैंने तुम्हारा वध किया है। जो लोकाचारसे भ्रष्ट होकर लोकविरुद्ध आचरण करता है, उसे राहपर लानेके लिये मैं दण्डके सिवा और कोई उपाय नहीं देखता। मैं उत्तम कुलमें उत्पन्न क्षत्रिय हूँ, अतः तुम्हारे पापको क्षमा नहीं कर सकता। जो पुरुष अपनी कन्या, बहिन अथवा छोटे भाईकी स्त्रीके पास कामबुद्धिसे जाता है, उसका वध करना ही उसके लिये उपयुक्त दण्ड है। तुमने धर्मका उल्लङ्घन किया है, अतः तुम्हारी उपेक्षा कैसे की जा सकती है ? सुग्रीवके साथ मेरी मित्रता हो चुकी है। उनके प्रति मेरा वही भाव है, जो लक्ष्मणके प्रति है। मैं इन्हें स्त्री और राज्य दिलानेके लिये वानरोंके समीप प्रतिज्ञा कर चुका हूँ तथा ये भी मेरी भलाई—मेरी सहायता करनेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध हैं। ऐसी दशामें मेरे-जैसा मनुष्य अपनी प्रतिज्ञाकी ओरसे कैसे दृष्टि हटा सकता है ? ये सभी धर्मानुकूल महान् कारण एक साथ उपस्थित हो गये, जिनसे विवश होकर तुम्हें उचित दण्ड देना पड़ा है। तुम भी इसका अनुमोदन करो। धर्मपर दृष्टि रखनेवाले मनुष्यके लिये मित्रका उपकार करना धर्म ही माना गया है; अतः तुम्हें जो यह दण्ड दिया गया है, वह सर्वथा धर्मके अनुकूल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—ऐसा ही तुम्हें समझना चाहिये । यदि राजा होकर तुम धर्मका अनुसरण करते तो तुम्हें भी वही काम करना पड़ता, जो मैंने किया है । मनुने राजोचित सदाचारका प्रतिपादन करनेवाले दो श्लोक कहे हैं, जिन्हें धर्म-पालनमें कुशल पुरुषोंने सादर स्वीकार किया है । उन्हींके अनुसार इस समय मेरा बर्ताव हुआ है । [ उन श्लोकोंका भाव इस प्रकार है—] 'मनुष्य पाप करके यदि राजाके दिये हुए दण्ड-को भोग लेते हैं, तो वे शुद्ध होकर पुण्यात्मा पुरुषोंकी भाँति स्वर्गलोकमें जाते हैं । [ चोर आदि पापी जब राजाके सामने उपस्थित हों, उस समय ] राजा दण्ड दे अथवा दया करके छोड़ दे, पापी पुरुष अपने पापसे मुक्त हो जाता है । किन्तु यदि राजा पापीको उचित दण्ड नहीं देता, तो उसे स्वयं उसके पापका फल भोगना पड़ता है ।'* तुमने जैसा पाप किया है, वैसा ही प्राचीन कालमें एक श्रमणने किया था । उसे मेरे पूर्वज महाराज मान्धाताने बड़ा कठोर दण्ड दिया था । यदि राजा दण्ड देनेमें प्रमाद कर जायँ, तो उन्हें दूसरोंके किये हुए पाप भी भोगने पड़ते हैं तथा उसके लिये जब वे प्रायश्चित्त करते हैं, तभी उनका दोष शान्त होता है । अतः वानरराज ! पश्चात्ताप करनेसे कोई लाभ नहीं है । तुम्हारा वध सर्वथा धर्मके अनुसार किया गया है । यही कारण है कि इस कार्यके लिये मेरे मनमें न तो संताप है और न खेद ही है । राजालोग दुर्लभ धर्म, जीवन और लौकिक अभ्युदयके देनेवाले होते हैं । अतः उनकी हिंसा, निन्दा तथा उनके प्रति आक्षेप न करे । उनसे अप्रिय वचन न बोले; क्योंकि वे वास्तवमें देवता हैं, जो मनुष्यरूपसे इस पृथ्वीपर विचरते हैं । मैं सर्वदा अपने बाप-दादोंके धर्मपर स्थित रहता हूँ; तुम तो धर्मके स्वरूपको बिना समझे-बूझे केवल क्रोधके वश होकर ही मेरी निन्दा कर रहे हो ।'

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वालीको बड़ी व्यथा हुई । उसे धर्मके तत्त्वका निश्चय हो गया और श्रीरामके प्रति उसकी दोष-बुद्धि जाती रही । तब वह वानरराज हाथ जोड़कर भगवान् श्रीरामसे बोला—'नरश्रेष्ठ ! आप जो कुछ कह रहे हैं, वह बिल्कुल ठीक है । मैंने प्रमाद-वश पहले जो अनुचित तथा अप्रिय बात कह डाली, उसमें मेरा अपराध न मानियेगा । आप परमार्थ-तत्त्वके यथार्थ ज्ञाता और प्रजाके हितमें संलग्न हैं । आपकी बुद्धि कार्य-कारणके तत्त्वको समझनेमें निर्भ्रान्त और निर्मल है । मैं धर्मभ्रष्ट प्राणियोंमें सबसे अग्रगण्य हूँ और इसी रूपमें मेरी सर्वत्र प्रसिद्धि है [ फिर भी आपकी शरणमें आया हूँ ] । धर्मज्ञ ! आप अपनी धर्मयुक्त वाणीसे मेरी भी रक्षा कीजिये । इतना कहते-कहते आँसुओंसे वालीका गला भर आया और वह आर्तनाद करके श्रीरामकी ओर देखता हुआ धीरे-धीरे बोला—'भगवन् ! मुझे अपने लिये, ताराके लिये तथा बन्धु-बान्धवोंके लिये भी उतना शोक नहीं है, जितना अपने गुणवान् पुत्र अङ्गदके लिये है । बचपनसे ही मैंने उसका बड़ा दुलार किया है, अब मुझे न देखकर वह बहुत दुखी होगा । वह अभी बालक है, उसकी बुद्धि पकी नहीं है । मेरा एकलौता बेटा होनेके कारण तारकुमार अङ्गद मुझे बड़ा प्रिय है । आप उसकी रक्षा करें । सुग्रीव और अङ्गद दोनोंके प्रति आप सद्भाव रखें । अब आप ही इन लोगोंके रक्षक तथा इन्हें कर्तव्य-अकर्तव्यकी शिक्षा देनेवाले हैं । भरत और लक्ष्मणके प्रति आपका जैसा बर्ताव है, वही सुग्रीव तथा अङ्गदके प्रति भी होना चाहिये । बेचारी ताराकी बड़ी शोचनीय अवस्था हो गयी है । मेरे ही अपराधसे उसे भी अपराधिनी समझकर सुग्रीव उसका तिरस्कार न करे—इस बातकी भी व्यवस्था कीजियेगा । सुग्रीव आपका कृपापात्र होकर ही इस राज्यका यथार्थरूपसे पालन कर सकता है । आपके अधीन होकर सर्वथा आपके ही चित्तका अनुसरण करनेवाला पुरुष स्वर्ग और पृथ्वीका भी राज्य प्राप्त कर सकता है । मैं चाहता था कि आपके हाथसे मेरा वध हो; इसीलिये ताराके मना करनेपर भी अपने भाई सुग्रीवके साथ द्वन्द्वयुद्ध करनेको चला आया ।'

इतना कहकर वानरराज वाली चुप हो गया । उस समय उसकी ज्ञानशक्तिका विकास हो गया था । श्रीरामचन्द्र-जीने धर्मके यथार्थ स्वरूपको प्रकट करनेवाली साधु पुरुषों-द्वारा प्रशंसित वाणीमें उससे कहा—'वानरश्रेष्ठ ! तुम हमारे और अपने लिये भी चिन्ता न करो, क्योंकि हमलोगोंने सदासे ही धर्मानुकूल कार्य करनेका निश्चय कर रखा है । जो दण्डनीय पुरुषको दण्ड देता है तथा जो दण्डका अधिकारी होकर उसे

---

* ये दोनों श्लोक आजकलकी छपी हुई मनुस्मृति ( ८ । ३१८ तथा ८ । ३१६ ) में कुछ पाठान्तरके साथ उपलब्ध होते हैं । यहाँ रामायणका ही पाठ उद्धृत किया जाता है—

राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥
शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते ।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम् ॥
( १८ । ३१-३२ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार करता है, कार्य-कारणसे ही उन दोनोंके अभीष्ट अर्थकी सिद्धि हो जाती है; अतः वे दुखी नहीं होते। तुम इस दण्डको पाकर पापरहित हुए और इस दण्डके द्वारा ही तुम्हें अपने धर्मानुकूल शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति हो गयी। अब तुम शोक, मोह और हृदयका भय छोड़ दो। कुमार अङ्गद तुम्हारे जीवित रहनेपर जैसा सुखी था उसी तरह सुग्रीवकी और मेरी देख-रेखमें भी रहेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीका धर्ममार्गके अनुकूल मधुर वचन सुनकर वालीने यह समुचित वचन कहा—'प्रभो! मैं आपके बाणसे पीड़ित होनेके कारण अचेत हो गया था; इसलिये अनजानमें मैंने जो कठोर वचन कह डाला हो, उन्हें क्षमा कीजियेगा। भयंकर पराक्रम दिखानेवाले श्रीराम! मैं प्रार्थनापूर्वक आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। आप मेरे अपराधको क्षमा करें।'

## ताराका विलाप, हनुमान्‌जीका उसे समझाना तथा वालीका सुग्रीव और अङ्गदको सन्देश देकर प्राण त्यागना

वानरोंका राजा वाली बाणसे पीड़ित होकर भूमिपर पड़ा था। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा युक्तियुक्त वचनोंमें अपनी बातका उत्तर पाकर वह फिर कोई जवाब न दे सका। उसकी स्त्री ताराने सुना कि वानरश्रेष्ठ वाली श्रीरामके बाणसे घायल होकर जमीनपर पड़े हैं। स्वामीके वधका भयंकर एवं अप्रिय समाचार सुनकर वह उद्विग्न हो उठी और अपने पुत्र अङ्गदको साथ ले उस पर्वतकी कन्दरासे बाहर निकली। शोकसे पीड़ित होनेके कारण उसे मूर्च्छा आ जाती थी। वह रोती-कलपती बड़े वेगसे पतिके पास चली। आगे जानेपर उसने देखा, अपने तेजस्वी धनुषको धरतीपर टेककर उसके सहारे श्रीरामचन्द्रजी खड़े हैं। साथ ही उनके छोटे भाई लक्ष्मण तथा अपने पतिके भाई सुग्रीवपर भी उसकी दृष्टि पड़ी। उन सबको पार करके वह रणभूमिमें घायल पड़े हुए पतिके पास पहुँची। उन्हें देखकर उसके मनमें बड़ी व्यथा हुई और वह अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी; फिर मानो सोकर उठी हो—इस प्रकार 'हा आर्यपुत्र!' कहकर मृत्युपाशसे बँधे हुए पतिकी ओर देखती विलाप करने लगी। कुररीके समान रोती-विलखती तारा तथा उसके साथ आये हुए अङ्गदको देखकर सुग्रीवको बड़ा कष्ट हुआ। वे विषादमें डूब गये।

चन्द्रमुखी ताराने देखा, मेरे स्वामी आज श्रीरामचन्द्रजी-के धनुषसे छूटे हुए प्राणान्तकारी बाणसे घायल होकर धरतीपर पड़े हैं। जो अपने शरीरसे गजराज और गिरिराजको भी मात करते थे, वे ही इस समय तीरका निशाना बनकर जड़से उखड़े हुए वृक्षकी भाँति धराशायी हो रहे हैं। पतिको इस अवस्थामें पाकर वह उनके शरीरसे लिपट गयी और शोकसे सन्तप्त एवं आतुर होकर विलाप करने लगी—'रणमें भयंकर पराक्रम दिखानेवाले महान् वीर वानरराज! आज मुझे अपने सामने पाकर भी आप बोलते क्यों नहीं? वीरवर! आपने धर्मपूर्वक युद्ध करके स्वर्गके मार्गमें भी अवश्य ही किष्किन्धाकी भाँति रमणीय पुरी बना ली है। नाथ! आप बड़े-बड़े यूथपतियोंके भी स्वामी थे। आज आपके मरनेसे मेरा सारा आनन्द लुट गया। मैं सब प्रकारसे निराश होकर शोकके समुद्रमें डूब गयी हूँ। निश्चय ही मेरा हृदय बड़ा कठोर है, जो आपको पृथ्वीपर पड़े देखकर भी शोकसे सन्तप्त होकर फट नहीं जाता—इसके हजारों टुकड़े नहीं हो जाते। आपने जो सुग्रीवकी स्त्री छीन ली और उन्हें घरसे बाहर निकाल दिया, उसीका यह फल प्राप्त हुआ है। मैंने पहले कभी दुःख नहीं उठाया, दीनतापूर्ण जीवन नहीं बिताया; किन्तु आज आपके बिना मैं दीन हो गयी। अब अनाथकी भाँति मुझे शोक-संतापसे पूर्ण वैधव्य-जीवन व्यतीत करना होगा। आपने अपने वीर पुत्र अङ्गदका, जो सुख भोगनेयोग्य और सुकुमार है, बड़ा दुलार किया है। अब क्रोधसे भरे चाचाके वशमें पड़कर मेरे बेटेकी क्या दशा होगी? बेटा अङ्गद! अपने धर्मप्रेमी पिताको अच्छी तरह देख लो, अब तुम्हें इनका दर्शन दुर्लभ हो जायगा। प्राणनाथ! आप दूसरे देशको जा रहे हैं। अपने पुत्रका मस्तक सूँघकर इसे धैर्य बँधाइये और मेरे लिये भी कुछ संदेश दीजिये। श्रीरामने सुग्रीवसे जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी की। उन्होंने आपको मारकर अपना ऋण चुका दिया। सुग्रीव! तुम्हारे भाई, जिन्हें तुम अपना शत्रु समझते थे, मारे गये। अब तुम्हारा मनोरथ पूरा हो। बेखटके राज्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भोगो। रुमा भी तुम्हें मिल जायगी। [फिर वालीसे बोली—] वानरराज ! मैं आपकी प्यारी पत्नी हूँ और इतना विलाप कर रही हूँ; फिर भी आप मुझसे बोलते क्यों नहीं ?'

ताराका विलाप सुनकर और सब स्त्रियाँ भी दुःखसे व्याकुल हो गयीं और अङ्गदको सब ओरसे पकड़कर दीन-भावसे विलाप करने लगीं। [ताराने फिर कहा—]'वीरवर! आप अङ्गदको छोड़कर यह लंबी यात्रा क्यों कर रहे हैं ? ऐसे गुणवान् और सुन्दर पुत्रको छोड़कर जाना आपके लिये उचित नहीं है। नाथ ! यदि मैंने नासमझीके कारण आपका कोई अपराध किया हो, तो उसे क्षमा कीजिये। मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना करती हूँ।' इस प्रकार करुण विलाप करते हुए ताराने पतिके समीप बैठकर अन्न-जल त्याग प्राण दे देनेका निश्चय किया।

तारा पृथ्वीपर पड़ी थी। उसे इस अवस्थामें देखकर वानर-यूथपति हनुमान्‌जी धीरे-धीरे समझाने लगे—'देवि ! जीवके द्वारा गुण-बुद्धिसे अथवा दोष-बुद्धिसे किये हुए जो अपने कर्म हैं, वे ही सुख-दुःखरूप फलकी प्राप्ति करानेवाले हैं। परलोकमें जाकर प्रत्येक जीव अपने शुभ और अशुभ—सभी कर्मोंका फल भोगता है। तुम स्वयं शोचनीय हो, फिर दूसरे किसको शोचनीय समझकर शोक कर रही हो, स्वयं दीन होकर दूसरे किस दीनपर दया करती हो ? पानीके बुलबुलेके समान इस क्षणभङ्गुर देहमें रहकर कौन किसके लिये शोक करे ? तुम्हारे पुत्र कुमार अङ्गद जीवित हैं; अब तुम्हें इन्हींकी ओर देखना चाहिये और इनके लिये भविष्यमें जो उन्नतिके साधक श्रेष्ठ कार्य हों, उनका विचार करना चाहिये। यह तो तुम जानती ही हो कि प्राणियोंका जन्म और मृत्यु अनिश्चित है। सैकड़ों, हजारों और लाखों वानर जिनपर आशा लगाये जीवन-निर्वाह करते थे, वे ही वानरराज आज अपनी प्रारब्धनिर्मित आयुकी अवधि पूरी कर चुके। इन्होंने नीतिशास्त्रके अनुसार अर्थका साधन—राज-कार्यका सञ्चालन किया है। समय-समयपर साम, दान और क्षमाका व्यवहार किया है। अतः ये धर्मानुसार प्राप्त होनेवाले लोकमें गये हैं, तुम्हें इनके लिये शोक नहीं करना चाहिये। ये श्रेष्ठ वानर, तुम्हारे पुत्र अङ्गद तथा वानर और भालुओंका यह राज्य, सब तुमसे ही सनाथ हैं—तुम्हीं इन सबकी स्वामिनी हो। ये अङ्गद और सुग्रीव दोनों ही शोकसे सन्तप्त हो रहे हैं। इन्हें धीरे-धीरे समझाकर शान्त करो। तुम्हारे अधीन रहकर अङ्गद इस राज्यका पालन करें। शास्त्रमें सन्तान होनेका जो प्रयोजन बतलाया गया है तथा इस समय राजा वालीके पारलौकिक कल्याणके लिये जो कुछ कर्तव्य है, वही सब करो। यही वर्तमान समयके लिये उचित है। वानरराजका अन्त्येष्टि-संस्कार और कुमार अङ्गदका राज्याभिषेक करो। बेटेको राजसिंहासनपर बैठा देखकर तुम्हें शान्ति मिलेगी।'

तारा अपने स्वामीके विरह-शोकसे पीड़ित थी। वह हनुमान्‌जीके उपर्युक्त वचन सुनकर उनसे कहने लगी—'अङ्गदके समान सौ पुत्र एक ओर और मरे होनेपर भी इन वीरवर स्वामीके शरीरका आलिङ्गन [करके सती होना] दूसरी ओर। इन दोनोंमेंसे अपने वीर पतिके शरीरका आलिङ्गन ही मुझे श्रेष्ठ जान पड़ता है। मैं न तो वानरोंके राज्यकी स्वामिनी हूँ और न मुझे अङ्गदके लिये ही कुछ करनेका अधिकार है। इसके चाचा सुग्रीव ही सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। वानरराज वालीका अनुगमन करनेसे बढ़कर इस लोक या परलोकमें मेरे लिये कोई भी कार्य उचित नहीं है। युद्धमें शत्रुसे जूझकर मरे हुए अपने वीर स्वामीके द्वारा सेवित [चिता आदि] शय्यापर शयन करना ही मेरे लिये सर्वथा योग्य है।'

वालीके प्राणोंकी गति शिथिल पड़ गयी थी। वह धीरे-धीरे ऊर्ध्वश्वास लेता हुआ सब ओर देखने लगा। सबसे पहले उसकी दृष्टि सामने खड़े हुए अपने भाई सुग्रीवपर पड़ी। युद्धमें जीते हुए वानरराज सुग्रीवको सम्बोधित करके वालीने बड़े स्नेहके साथ स्पष्ट वाणीमें कहा—'सुग्रीव ! मैंने जो तुम्हारा अपराध किया था, उसका कारण यह है कि मोहने मेरी बुद्धिपर बलपूर्वक अधिकार जमा लिया था। तात ! मैं समझता हूँ, हम दोनोंके लिये एक साथ रहकर सुख भोगना नहीं बदा था। इसीलिये दो भाइयोंमें जो प्रेम होना चाहिये, वह न होकर हमलोगोंमें उसके विपरीत वैरभाव उत्पन्न हो गया। भाई ! तुम आज ही यह वानरोंका राज्य स्वीकार करो तथा मुझे अभी यमराजके घर जानेको तैयार समझो। मैं अपने जीवन, राज्य, विपुल सम्पत्ति तथा सुयशका भी तुरंत ही त्याग कर दूँगा। राजन् ! इस अवस्थामें मैं जो कुछ कहूँगा, वह यद्यपि करनेमें कठिन है तथापि तुम उसे अवश्य करना। देखो, मेरा बेटा अङ्गद धरतीपर पड़ा है; इसका मुँह आँसुओंसे भीगा है। यह सुखमें पला है और सुख भोगनेके योग्य है। बालक होनेपर भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इसमें बुद्धिकी कमी नहीं है। यह मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। मेरे न रहनेपर तुम इसे अपने सगे पुत्रकी भाँति मानना, इसके लिये किसी भी बातकी कमी न होने देना और सदा सब जगह इसकी रक्षा करते रहना। मेरे ही समान तुम भी इसके पिता, दाता, रक्षक और भयके समय त्राण देनेवाले हो। ताराका यह तेजस्वी पुत्र तुम्हारे ही समान पराक्रमी है। राक्षसोंके वधके समय यह सदा तुम्हारे आगे रहेगा। सुषेणकी पुत्री यह तारा सूक्ष्म विषयोंके निर्णय करने तथा नाना प्रकारके उत्पातोंके चिह्नोंको समझनेमें सर्वथा निपुण है। जिस कार्यको यह अच्छा बताये, उसे सन्देह-रहित होकर करना। ताराकी किसी भी सम्मतिका उलटा परिणाम नहीं होता। श्रीरामचन्द्रजीका कार्य भी तुम्हें निःशङ्क होकर करना चाहिये। उसको न करनेसे तुम्हें पाप लगेगा और अपमानित होनेपर श्रीराम तुमको मार भी डालेंगे। सुग्रीव! मेरी यह सोनेकी दिव्य माला तुम धारण कर लो। इसमें उदार लक्ष्मीका वास है। मेरे मर जानेपर इसकी श्री नष्ट हो जायगी, अतः अभी इसे पहन लो।'

वालीने भ्रातृ-स्नेहके कारण जब उपर्युक्त बातें कहीं, तो सुग्रीवका वैर-भाव शान्त हो गया। वे सावधान होकर उचित बर्ताव करने लगे। उन्होंने भाईकी आज्ञासे वह सोनेकी माला ग्रहण कर ली। सुग्रीवको वह सुवर्णमयी माला देनेके पश्चात् वालीने मरनेका निश्चय कर अपने सामने खड़े हुए पुत्र अङ्गदकी ओर देखा और स्नेहके साथ कहा—'बेटा! अब देश-कालको समझो—कब और कहाँ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसका निश्चय करके वैसा ही आचरण करो। प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख—जो कुछ आ पड़े, उसको सहो। अपने हृदयमें क्षमा-भाव रखो और हमेशा सुग्रीवकी आज्ञाके अधीन होकर रहो। महाबाहो! मेरा दुलार पाकर जिस प्रकार तुम रहते आये हो, यदि वैसा ही बर्ताव अब भी करोगे तो सुग्रीव तुम्हारा विशेष आदर नहीं करेंगे। इनके शत्रुओंका साथ मत दो तथा अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर अपने स्वामी सुग्रीवके कार्यसाधनमें संलग्न रहो। किसीके साथ अत्यन्त प्रेम न करो और प्रेमका सर्वथा अभाव भी न होने दो; क्योंकि ये दोनों ही महान् दोष हैं। अतः मध्यम स्थितिपर ही दृष्टि रखो।'

इतना कहते-कहते बाणके आघातसे अत्यन्त पीडित हुए वालीकी आँखें घूमने लगीं। उसके भयंकर दाँत खुल गये और प्राण-पखेरू उड़ गये। उस समय अपने यूथपतिकी मृत्यु हो जानेसे सभी वानर जोर-जोरसे रोने और विलाप करने लगे—'हाय! आज वानरराजके स्वर्ग चले जानेसे सारी किष्किन्धा सूनी हो गयी। उद्यान, पर्वत और वन भी शून्य हो गये। उन्होंने महाबाहु गोलभ नामक गन्धर्वके साथ महान् युद्ध किया था। वह युद्ध पंद्रह वर्षोंतक लगातार चलता रहा; न दिनमें बंद होता था न रातमें। इसके बाद सोलहवाँ वर्ष आरम्भ होनेपर गोलभ उनके हाथसे मारा गया। उस दुष्टका वध करके जिन्होंने हम सब लोगोंको त्राण दिया था, वे हमारे स्वामी वाली आज स्वयं कैसे धराशायी हो गये?' शोकके समुद्रमें डूबी हुई ताराने जब अपने मरे हुए स्वामीके मुखकी ओर दृष्टिपात किया तब वह उनका आलिङ्गन करके कटे हुए महान् वृक्षसे लिपटी हुई लताकी भाँति पृथ्वी-पर गिर पड़ी और रोती हुई बोली—'प्राणनाथ! निश्चय ही यह पृथ्वी आपको मुझसे भी बढ़कर प्रिय है; तभी तो आप इसका आलिङ्गन करके सो रहे हैं और मुझसे बाततक नहीं करते। मेरे प्रियतम! प्रधान-प्रधान भालू और वानर, जो अब महाबली वीरकी सेवामें रहा करते थे, इस समय बड़े दुःखसे विलाप कर रहे हैं। अङ्गद शोकमें पड़े हैं और मैं भी इतना अनुनय-विनय कर रही हूँ। यह सब सुनकर भी आप क्यों नहीं जागते? मैं शोकके अगाध महासागर-में डूबी हुई हूँ। अवश्य ही मेरा यह कठोर हृदय फौलादका बना हुआ है। तभी तो अपने स्वामीको मरा देखकर भी इसके सैकड़ों टुकड़े नहीं हो जाते। हाय! जो मेरे सुहृद्, स्वामी और स्वभावसे ही प्रिय थे, वे इस संसारसे चल बसे।'

उस समय नीलने वालीके शरीरसे उस बाणको निकाला। उसके निकलते ही खूनकी धारा बह चली, मानो पर्वतसे गेरूमिश्रित जलकी धार गिर रही हो। तारा अपने शूरवीर पतिके शरीरपर गिरकर धूल पोंछती उसे आँसुओंसे नहलाने लगी। बाणसे घायल होनेके कारण वालीका सारा शरीर रक्तसे नहा गया था। उसे देखकर कल्याणमयी तारा अपने पीले नेत्रवाले पुत्र अङ्गदसे बोली—'बेटा! देखो, तुम्हारे पिताकी अन्तिम अवस्था कितनी भयंकर है? ये तुम्हें बड़ा आदर देते थे। इनके चरणोंमें प्रणाम करो।' माताके ऐसा कहनेपर अङ्गदने उठकर पिताके चरण पकड़े और प्रणाम करते हुए कहा—'पिताजी! मैं अङ्गद हूँ।' तब तारा फिर कहने लगी—'आर्यपुत्र! कुमार अङ्गद पहलेकी ही भाँति आज भी आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं; किन्तु आप इन्हें 'चिरजीवी रहो, बेटा!' कहकर आशीर्वाद क्यों नहीं

 CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देते ? मैं पुत्रके साथ आपके शवके पास बैठी हूँ । आपने मेरी हितकर बात नहीं मानी और मैं भी आपको रोक न सकी । अब संग्राममें आपके मारे जानेसे मैं भी अपने पुत्र सहित मारी गयी ।'

## सुग्रीवका शोक, ताराका श्रीरामसे अपने वधके लिये अनुरोध करना और श्रीरामका उसे समझाना

ताराको शोकके महान् समुद्रमें डूबी देख सुग्रीवको अपने भाईके वधसे बड़ा सन्ताप हुआ । उनके मुँहपर आँसुओंकी धारा बह चली । उनका मन खिन्न हो गया और वे भीतर-ही-भीतर कष्टका अनुभव करते हुए अपने भृत्योंके साथ धीरे-धीरे श्रीरामचन्द्रजीके पास गये । उनके निकट जाकर वे इस प्रकार बोले—'राजन् ! आपने जैसी प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार काम कर दिखाया; किन्तु [ भ्रातृ-वधमें निमित्त बननेके कारण ] मेरे इस जीवनको धिक्कार है ! इसलिये अब मेरा मन भोगोंकी ओरसे हट गया । राजा वालीके मरनेसे ये महारानी तारा अत्यन्त विलाप कर रही हैं, सारा नगर दुःखसे सन्तप्त होकर चीख रहा है तथा कुमार अङ्गदका जीवन भी सन्देहमें पड़ गया है । इन सब कारणोंसे अब राज्यपर मेरी प्रीति नहीं रही । भाईने मेरा बहुत अधिक तिरस्कार किया था, इसीसे मेरा मन क्रोध और अमर्षसे भर गया था । अतएव पहले मैंने उसके वधके लिये अनुमति दे दी थी, परन्तु अब वानर-यूथपति वालीके मारे जानेपर मुझे बड़ा सन्ताप हो रहा है । अपनी जातीय वृत्तिके अनुसार जैसे-तैसे जीवन-निर्वाह करते हुए उस श्रेष्ठ पर्वत ऋष्यमूकपर रहना ही आज मुझे अच्छा जान पड़ता है; किन्तु अपने इन भाईका वध कराकर अब मुझे स्वर्गका राज्य भी मिल जाय, तो मैं उसे अच्छा नहीं समझता । बुद्धिमान् वालीने युद्धके समय मुझसे कहा था कि 'तुम चले जाओ, मैं तुम्हारे प्राण लेना नहीं चाहता ।' उनकी यह बात उन्हींके योग्य थी और मैंने जो आपसे कहकर उनका वध कराया, मेरा वह [ क्रूरतापूर्ण ] वचन और कर्म मेरे ही अनुरूप है । रघुनन्दन ! कोई कितना ही स्वार्थी क्यों न हो, यदि राज्यके सुख तथा भ्रातृवधसे होनेवाले दुःखकी प्रबलतापर विचार करेगा तो वह भाई होकर अपने गुणवान् भाईका वध कैसे अच्छा समझेगा ? वालीके मनमें मेरे वधका विचार नहीं था, क्योंकि इससे उन्हें अपनी मान-प्रतिष्ठामें बट्टा लगनेका डर था । मेरी ही बुद्धिमें दुष्टता भरी थी, जिसके कारण मैंने अपने भाईके प्रति ऐसा अपराध कर डाला, जो उनके लिये घातक सिद्ध हुआ । वालीने भ्रातृभाव, आर्यभाव और धर्मकी भी रक्षा की है; किन्तु मैंने केवल क्रोध, काम तथा वानरोचित चपलताका ही परिचय दिया है । अपने कुलका नाश करनेवाला ऐसा पाप-पूर्ण कर्म करके मैं प्रजाके सम्मानका पात्र नहीं रहा । राज्य पाना तो दूरकी बात है, मुझमें युवराज होनेकी भी योग्यता नहीं है । मैंने वह निन्दनीय पाप किया है, जो नीच पुरुषोंके योग्य तथा सम्पूर्ण जगत्को हानि पहुँचानेवाला है । यह दुःसह पाप मेरे हृदयस्थित सदाचारको भी नष्ट कर रहा है । मेरे कारण वालीका वध हुआ तथा अङ्गदका भी शोक-सन्ताप बढ़ गया, जिससे इन महाबली वानर-यूथपतियोंका समुदाय अधमरा-सा जान पड़ता है । पुत्र पाना तो कठिन नहीं है, किन्तु अङ्गदके समान सज्जन और गुरुजनोंकी आज्ञामें रत रहनेवाला पुत्र कहाँ मिलेगा ? अब वीरवर अङ्गद भी जीवित नहीं रह सकता । यदि जी सकता तो उसकी रक्षाके लिये उसकी माता भी जीवन धारण करती । वह बेचारी यों ही सन्तापसे दीन हो रही है । यदि पुत्र भी न रहा, तो उसके जीवनका अन्त हो जायगा—यह बिल्कुल निश्चित बात है । अब ऐसा कोई देश भी नहीं है, जहाँ जानेपर भाईसे संयोग हो सके । अतः मैं भाई और पुत्रका साथ देनेकी इच्छासे प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करूँगा । ये वानर वीर आपकी आज्ञामें रहकर सीताकी खोज करेंगे । रघुनन्दन ! मेरी मृत्यु हो जानेपर भी आपका सारा कार्य सिद्ध हो जायगा । मैं कुलकी हत्या करनेवाला और अपराधी हूँ । अतः संसारमें जीवन धारण करनेयोग्य नहीं हूँ । ऐसा जानकर मुझे प्राण-त्याग करनेकी आज्ञा दीजिये ।'

दुःखसे आतुर सुग्रीवके ऐसे वचन सुनकर भगवान् श्रीरामके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे और वे अत्यन्त उदास हो गये । रघुनाथजी पृथ्वीके समान क्षमावान् और सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाले हैं; उन्होंने बारंबार दृष्टि दौड़ानेपर शोकमग्ना ताराको विलाप करते देखा । वह अपने मृत पतिका आलिङ्गन करके पड़ी थी । उस समय प्रधान मन्त्रियोंने उसको वहाँसे उठाया । उठनेपर ताराने हाथमें धनुष-बाण धारण किये श्रीरामचन्द्रजीको देखा, जो अपने तेजसे सूर्यकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भाँति प्रज्वलित हो रहे थे। सुन्दर नेत्रोंसे युक्त उन पुरुषोत्तमको, जो पहले कभी देखनेमें नहीं आये थे, देखकर तारा समझ गयी कि ये ही श्रीराम हैं। फिर वह अत्यन्त दुःखित हो धीरे-धीरे उन महानुभावके निकट गयी। उस समय शोकके कारण उसे अपने शरीरकी भी सुध नहीं थी। शुद्ध सत्त्वमय भगवान्‌के पास पहुँचकर मनस्विनी तारा इस

प्रकार बोली—"रघुनन्दन! आप अप्रमेय—देश, काल और वस्तुकी सीमासे रहित हैं। आपको पाना बहुत कठिन है। आप जितेन्द्रिय तथा उत्तम धर्मका पालन करनेवाले हैं। आपकी कीर्ति कभी नष्ट नहीं होती। आप दूरदर्शी एवं पृथ्वीके समान क्षमाशील हैं। आपके हाथोंमें धनुष और बाण शोभा पा रहे हैं। आपका बल महान् है। आप मनुष्य-शरीरसे प्राप्त होनेवाले लौकिक सुखका परित्याग करके भी दिव्य शरीरके ऐश्वर्यसे युक्त हैं। [ अतः मैं प्रार्थना करती हूँ कि ] आपने जिस बाणसे मेरे प्यारे पतिका वध किया है, उसीसे मुझे भी मार डालिये; मैं मरकर उनके समीप चली जाऊँगी। स्वर्गमें भी वाली मेरे बिना शोक और विषादका अनुभव करेंगे, ठीक उसी तरह जैसे गिरिराज ऋष्यमूकके सुरम्य शिखरपर विदेहकन्या सीताके बिना आप दुखी रहते हैं। स्त्रीके बिना पुरुषको जो दुःख उठाना पड़ता है, उसे आप अच्छी तरह जानते हैं। इस तत्त्वको समझकर आप मेरा वध कीजिये, जिससे वालीको मेरे विरहका कष्ट न भोगना पड़े। आप महात्मा हैं; इसलिये यदि ऐसा चाहते हों कि मुझे स्त्री-हत्याका पाप न लगे, तो [ इसके लिये मैं उपाय बताती हूँ ]। यह वालीकी आत्मा है, ऐसा समझकर मेरा वध कीजिये। इससे आपको स्त्री-हत्याका पाप नहीं लगेगा। शास्त्रोक्त यज्ञ-यागादि कर्मोंमें पति और पत्नी दोनोंका संयुक्त अधिकार होता है—पत्नीको साथ लिये बिना पुरुष यज्ञ-कर्मका अनुष्ठान नहीं कर सकता। इसके सिवा नाना प्रकारकी वैदिक श्रुतियाँ भी पत्नीको पतिका आधा शरीर बतलाती हैं *। इससे स्त्रियोंका अपने पतिसे अभिन्न होना सिद्ध होता है। [ अतः मुझे मारनेसे आपको स्त्री-वधका दोष नहीं लग सकता। ] संसारमें ज्ञानी पुरुषोंकी दृष्टिमें स्त्री-दानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है। वीरवर! यदि धर्मकी ओर दृष्टि रखते हुए आप भी मुझे मेरे प्रियतम वालीके अर्पण कर देंगे तो इस दानके प्रभावसे मेरी हत्या करनेपर भी आपको पाप नहीं लगेगा। मैं दुःखिनी और अनाथा हूँ, पतिसे दूर की गयी हूँ; ऐसी अवस्थामें मुझे जीवित छोड़ना आपके लिये उचित नहीं है। मैं वानरश्रेष्ठ वालीके बिना अधिक कालतक जीवित नहीं रह सकूँगी।

ताराके ऐसा कहनेपर महात्मा श्रीरामने उसे आश्वासन देकर हितकी बात कही—'वीरपत्नी! तुम मृत्यु-विषयक विपरीत विचारका त्याग करो। सम्पूर्ण जगत्‌को विधाताने रचा है और उसीने सबको सुख-दुःखसे संयुक्त किया है। यह बात साधारण लोगोंके मुँहसे भी सुनी जाती है। तीनों लोकोंके प्राणी विधाताके विधानका उल्लङ्घन नहीं कर सकते; क्योंकि सभी उसके अधीन हैं। तुम्हें पहलेकी ही भाँति अत्यन्त सुख एवं आनन्दकी प्राप्ति होगी तथा तुम्हारा पुत्र युवराज पद प्राप्त करेगा। विधाताका ऐसा ही विधान है। शूरवीरोंकी स्त्रियाँ इस प्रकार विलाप नहीं करतीं, [ अतः तुम भी शोक छोड़कर शान्त हो जाओ ]।' परम प्रभावशाली भगवान् रामके इस प्रकार सान्त्वना देनेपर वीरपत्नी तारा चुप हो गयी—उसने विलाप करना छोड़ दिया।

---

* 'अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी,' 'आत्मा हि दाराः', 'स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।' —इत्यादि श्रुतियोंसे पति-पत्नीकी अभिन्नता सिद्ध होती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## वालीका दाह-संस्कार और सुग्रीवका राज्याभिषेक

श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीव, अङ्गद और ताराको सान्त्वना देते हुए कहा—'शोक-सन्ताप करनेसे मरे हुए जीवका कल्याण नहीं होता। अब आगेका जो कुछ कार्य है, उसको तुम्हें विधिपूर्वक सम्पन्न करना चाहिये। तुम सब बहुत आँसू बहा चुके, अब उसकी आवश्यकता नहीं है। लोकाचारका भी पालन होना चाहिये। मृत्युके बाद ऐसा कोई उपाय नहीं किया जा सकता, जो मरे हुए प्राणीको जिला दे। कोई भी पुरुष न तो स्वतन्त्रतापूर्वक किसी कामको कर सकता है और न किसी दूसरेको ही उसमें लगानेकी शक्ति रखता है। सारा जगत् स्वभावके अधीन है और स्वभावका आधार काल है। काल भी अपनी की हुई व्यवस्थाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। कालका किसीके साथ भाई-चारेका, मित्रताका अथवा बिरादरीका सम्बन्ध नहीं है। वह किसी जीवके वशमें नहीं रहता, इसलिये उसके विधानको पलटनेका न तो कोई कारण है और न उसपर किसीका कुछ जोर ही चल सकता है। अतः विवेकी पुरुषको सब कुछ कालका ही परिणाम समझना चाहिये। धर्म, अर्थ और काम भी कालक्रमसे ही प्राप्त होते हैं। [ मेरे द्वारा मारे जानेके कारण ] वानरराज वाली इस शरीरसे मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूपको प्राप्त हुए हैं। नीतिशास्त्रके अनुकूल साम, दान और अर्थके समुचित प्रयोगसे मिलनेवाले जो पवित्र कर्म-फल हैं, वे सभी उन्हें प्राप्त हो गये। अतः अब उनके लिये शोक करना व्यर्थ है। इस समय तुम लोगोंके सामने जो कर्तव्य है, उसे पूरा करना चाहिये।'

श्रीरामचन्द्रजीकी बात समाप्त होनेपर लक्ष्मणने कहा—'सुग्रीव! अब तुम अङ्गद और ताराके साथ वालीके दाह-सम्बन्धी प्रेत-कार्य करो। सेवकोंको आज्ञा दो, वे वालीके संस्कारके निमित्त प्रचुरमात्रामें सूखी लकड़ियाँ और दिव्य चन्दन ले आयें। अङ्गदका चित्त बहुत दुखी हो गया है, इन्हें धैर्य बँधाओ। माला, अनेक प्रकारके वस्त्र, घी, तेल, सुगन्धित पदार्थ तथा अन्य आवश्यक सामग्रियोंको स्वयं अङ्गद ले आयें। तार[1]! तुम शीघ्र जाकर एक पालकी ले आओ। उसे ढोनेके लिये कुछ बलवान् वानर तैयार हो जायँ और वालीको श्मशान-भूमिमें ले चलें।'

ऐसा कहकर लक्ष्मणजी अपने भाईके पास जाकर खड़े हो गये। उनकी बात सुनकर तार नामका वानर पालकी लानेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक किष्किन्धामें गया और ढोनेमें समर्थ शूरवीर वानरोंके द्वारा पालकी मँगाकर तुरंत लौट आया। वह दिव्य पालकी रथके समान बनी हुई थी। उसके बीचमें राजाके बैठनेयोग्य एक उत्तम आसन था। सुन्दर शिल्प और चित्रकारियोंके कारण उस शिबिकाकी बड़ी शोभा हो रही थी। उसकी निर्माण-कला सब ओरसे बड़ी सुन्दर दिखायी देती थी, मानो सिद्धोंका विमान हो। उसमें कई खिड़कियाँ बनी हुई थीं; जिनमें जालियाँ लगी थीं; कारीगरोंने पालकीको बहुत सुन्दर बनानेका प्रयत्न किया था। उसका एक-एक भाग बड़ा सुघड़ बनाया गया था। आकारमें भी वह बहुत बड़ी थी। उसपर लाल चन्दन चढ़ाया गया था। नाना प्रकारके फूलों और कमल-पुष्पकी सुन्दर मालाओंद्वारा वह सजायी गयी थी। ऐसी पालकीका अवलोकन करके श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणकी ओर देखते हुए कहा—'अब वालीको शीघ्र ही श्मशान-भूमिमें ले जाकर उसका प्रेत-संस्कार करना चाहिये।' तब अङ्गदसहित सुग्रीवने रोते-रोते वालीको उठाकर शिबिकामें रखा और नाना प्रकारके आभूषणों, मालाओं तथा वस्त्रोंसे उसके शवको विभूषित किया। तत्पश्चात् वानरोंके राजा सुग्रीवने आज्ञा दी—'मेरे बड़े भाईका और्ध्वदेहिक संस्कार शास्त्रविधिके अनुसार किया जाय। राजाओंके और्ध्वदेहिक संस्कार उनकी बढ़ी हुई समृद्धिके अनुसार जैसे धूम-धामसे होते हैं, उसी प्रकार अधिक धन लगाकर सब वानर अपने स्वामी महाराज वालीका अन्त्येष्टि-संस्कार करें।' सुग्रीवकी ऐसी आज्ञा पाकर वानरोंने वालीका अन्त्येष्टि-संस्कार उसी प्रकार धूम-धामसे करना आरम्भ किया। तार आदि सभी वानर अङ्गदको पकड़कर रोते-पीटते शवके साथ-साथ चले। उनके पीछे वालीके अधीन रहनेवाली तारा आदि सभी स्त्रियाँ 'हा वीर!' कहकर विलाप करती चल रही थीं। पहाड़ी नदी ( तुङ्गभद्रा ) के एकान्त तटपर, जो जलसे घिरा था, पहुँचकर अनेकों वानरोंने चिता तैयार की। फिर पालकी ढोनेवाले वानरोंने उसे अपने कंधेसे उतारा और वे सब शोकमग्न हो एकान्त स्थानमें जा बैठे। तदनन्तर ताराने शिबिकामें सुलाये हुए पतिका सिर अपनी गोदमें ले लिया

१. यह सुग्रीवके एक सचिवका नाम था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अत्यन्त दुःखित होकर वह विलाप करने लगी—'हा वानर-राज ! हा नाथ ! हा मेरे प्रियतम ! तनिक मेरी ओर तो देखो। सबको मान देनेवाले वीर ! प्राणोंके निकल जानेपर भी तुम्हारे मुखकी प्रसन्नता नष्ट नहीं हुई है।' पतिके शोकमें डूबी हुई तारा-को इस प्रकार विलाप करते देख दुःखसे व्याकुल हुई अन्य वानरियोंने उसे उठाया। इसके बाद सन्ताप-पीड़ित अङ्गदने रोते-रोते सुग्रीवकी सहायतासे पिताको चितापर रखा। फिर शास्त्रीय विधिके अनुसार उसमें आग लगाकर उन्होंने प्रदक्षिणा की। मेरे पिता लंबी यात्राके लिये प्रस्थित हुए हैं—यह सोचकर उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। इस प्रकार विधिपूर्वक वालीका दाह-संस्कार करके सभी वानर जलाञ्जलि देनेके लिये पवित्र जलसे भरी हुई नदीके तटपर आये और उन्होंने अङ्गदको आगे रखकर सुग्रीव एवं ताराके साथ वालीको जल-दान किया।

तदनन्तर वानर-समुदायके प्रधान-प्रधान वीर शोकसन्तप्त सुग्रीवको, जो इस समय गीले वस्त्र पहने थे, चारों ओरसे घेरकर चले और पुण्यकर्मा महाबाहु श्रीरामके पास आ इस प्रकार हाथ जोड़कर खड़े हो गये, जैसे ब्रह्माजीके सम्मुख महर्षिगण खड़े रहते हैं। उस समय सुवर्णमय पर्वतके समान सुन्दर एवं विशाल शरीरवाले वायुपुत्र हनुमान्‌जी दोनों हाथ जोड़कर बोले—'प्रभो ! आपकी कृपासे सुग्रीवको वानरोंका विशाल साम्राज्य प्राप्त हुआ, जो इनके बाप-दादोंके समयसे चला आ रहा है। यद्यपि इसका मिलना बहुत ही कठिन था, तो भी आपके प्रसादसे यह सुलभ हो गया। अब यदि आप आज्ञा दें तो ये अपने सुन्दर नगरमें प्रवेश करके सुहृदोंके साथ अपना सब राजकार्य सँभालें। ये शास्त्र-विधिके अनुसार नाना प्रकारके सुगन्धित पदार्थों और ओषधियोंसहित जलसे राज्यपर अभिषिक्त होकर मालाओं और रत्नोंद्वारा आपकी विशेष पूजा करेंगे; अतः आप इस किष्किन्धापुरीमें प्रवेश करें और इन्हें इस राज्यका स्वामी बनाकर वानरोंको आनन्द प्रदान करें।'

हनुमान्‌के ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी बोले—'सौम्य ! मैं पिताकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ, इसलिये चौदह वर्षोंके अंदर किसी ग्राम या नगरमें प्रवेश नहीं करूँगा। वानरश्रेष्ठ वीरवर सुग्रीव समृद्धिसे पूर्ण इस दिव्य नगरीमें जायँ और वहाँ शीघ्र ही इनका राज्याभिषेक कर दिया जाय।' हनुमान्‌से ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवसे बोले—'मित्र ! तुम [ लौकिक और शास्त्रीय ] सभी व्यवहार जानते हो। कुमार अङ्गद चरित्रवान् एवं वीर हैं, इसलिये तुम इनको भी युवराजके पदपर अभिषिक्त करो। ये तुम्हारे बड़े भाईके ज्येष्ठ पुत्र हैं, पराक्रममें उन्हींके समान हैं तथा इनका हृदय उदार है। अतः ये युवराज बनानेके सर्वथा योग्य हैं। सौम्य ! जिसे वर्षाकाल कहते हैं, वह चौमासा आ गया। उसका पहला महीना श्रावण आरम्भ हो गया, यह किसीपर चढ़ाई करनेका समय नहीं है। अतएव तुम अपनी सुन्दर नगरीमें जाओ। मैं लक्ष्मणके साथ इस पर्वतपर निवास करूँगा। कार्तिक आरम्भ होनेपर तुम रावणवधके लिये प्रयत्न करना—यही हमलोगोंका निश्चय रहा। अब तुम अपने महलमें जाओ और राज्यपर अभिषिक्त होकर सुहृदोंको आनन्दित करो।'

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव किष्किन्धा नगरीमें गये। उस समय उन्हें हजारों वानर घेरे हुए थे। उन सबने उनके साथ किष्किन्धामें प्रवेश किया। वानरराजको आते देख समस्त प्रजाने पृथ्वीपर माथा टेककर उन्हें प्रणाम किया। सुग्रीवने उन सबको उठनेकी आज्ञा दी और सबसे बातचीत करके वे भाईके अन्तःपुरमें गये। उस समय उनके सुहृद्‌गण सुवर्णभूषित श्वेत छत्र, सोनेकी डाँड़ीवाले दो सफेद चँवर, सब प्रकारके रत्न, बीज और ओषधियाँ, दूधवाले वृक्षों ( बड़ आदि ) की नीचेकी जटाएँ, श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्र, श्वेत अनुलेपन, जल और थलमें होनेवाले सुगन्धित फूलोंकी मालाएँ, दिव्य चन्दन, नाना प्रकारके सुगन्धित पदार्थ, अक्षत, सोना, प्रियङ्गु (कँगनी), मधु, घी, दही, व्याघ्र-चर्म, सुन्दर एवं बहुमूल्य जूते, अङ्गराग, गोरोचन, मैनसिल तथा सोलह कन्याओंको लेकर उपस्थित हुए। तत्पश्चात् मन्त्रवेत्ता पुरुषोंने वेदीपर अग्निकी स्थापना करके उसे प्रज्वलित किया और उसके चारों ओर कुश बिछाये। फिर [ अग्निका संस्कार करके ] मन्त्रपूत हविष्यके द्वारा अग्निमें हवन किया। तत्पश्चात् रंग-बिरंगी मालाओंसे सुशोभित रमणीय अट्टालिकापर एक सोनेका आसन रखा गया और सुन्दर बिछौना बिछाकर उसके ऊपर सुग्रीवको पूर्वाभिमुख करके विधिवत् मन्त्रोच्चारण करते हुए बिठाया गया। इसके बाद श्रेष्ठ वानरोंने नदियों, नदों, तीर्थों और सम्पूर्ण समुद्रोंसे लाये हुए निर्मल जलको सोनेके कलशोंमें रखा। तब गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान् और जाम्बवान्‌ने महर्षियोंकी बतायी हुई शास्त्रोक्त विधिके अनुसार सुवर्णमय कलशोंमें रखे हुए स्वच्छ और सुगन्धित जलसे साँडके सींगोंद्वारा सुग्रीवका अभिषेक किया, जैसे वसुओंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रका अभिषेक किया था। फिर वानरराज सुग्रीवने अङ्गद-को हृदयसे लगा लिया और श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन करते हुए उनको युवराजके पदपर अभिषिक्त किया। अङ्गदका अभिषेक होनेपर सभी वानर 'धन्य-धन्य' कहकर सुग्रीवकी प्रशंसा करने लगे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर महात्मा श्रीराम और लक्ष्मणका भी बारंबार गुण-गान किया। पर्वतकी कन्दरामें बसी हुई किष्किन्धा नगरी ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित होनेके कारण बड़ी सुन्दर जान पड़ती थी। उस समय वानर-सेनाके स्वामी सुग्रीवने भगवान् श्रीरामके पास आकर अपने अभिषेकका समाचार निवेदन किया और अपनी भार्या रुमाके साथ-साथ राज्यको भी प्राप्त किया।

## वर्षाके समय श्रीरामका प्रस्रवण-गिरिपर निवास और शरद्के प्रारम्भमें हनुमान्‌जीके समझानेसे सुग्रीवका सैन्य-संग्रहके लिये उद्योग करना

जब सुग्रीवका राज्याभिषेक हो गया और वे किष्किन्धामें जाकर रहने लगे, उस समय अपने भाई लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजी प्रस्रवण पर्वतपर चले गये। वहाँ चीतों और मृगोंकी आवाज गूँजती रहती थी। भयंकर गर्जना करने-वाले सिंहोंसे वह स्थान भरा था। नाना प्रकारकी झाड़ियाँ और लताएँ उस पर्वतको आच्छादित किये हुए थीं। घने वृक्षोंके द्वारा वह सब ओरसे व्याप्त था। रीछ, वानर, लंगूर और बिलाव आदि जन्तु वहाँ निवास करते थे। वह पर्वत बड़ा ही पवित्र और मङ्गलमय था। उसीके शिखरपर एक लंबी-चौड़ी गुफा देखकर उसे लक्ष्मणसहित श्रीरामने अपने रहनेके लिये पसंद किया। रघुकुलके आनन्द बढ़ानेवाले पापरहित श्रीराम वर्षाका अन्त होनेपर सुग्रीवके साथ रावणपर चढ़ाई करनेका निश्चय करके वहाँ आये। उन्होंने अपने विनययुक्त भ्राता लक्ष्मणसे यह समयोचित वचन कहा—'सुमित्रानन्दन! यह पर्वतकी गुफा बड़ी ही सुन्दर और विशाल है। यहाँ हवाके आने-जानेका भी मार्ग है। वर्षाकी रातमें हमलोगोंको इसी गुफामें निवास करना चाहिये। पर्वतका यह शिखर अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है। सफेद, काले और लाल—हर तरहके पत्थर इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। यहाँ अनेकों धातुओंकी खानें हैं। पास ही नदी बहती है। भाँति-भाँतिके वृक्षों और सुन्दर एवं विचित्र लताओंसे यह हरा-भरा दिखायी देता है। यहाँ नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे हैं तथा मोरोंकी मीठी बोली सुनायी पड़ती है। मालती और कुन्दकी झाड़ियाँ सिन्दुवार, शिरीष, कदम्ब, अर्जुन और सर्जके फूले हुए वृक्ष इस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वह देखो, इस गुफाके दूसरी ओर त्रिकूट पर्वतपर बहनेवाली मन्दाकिनी गङ्गाके समान [ तुङ्गभद्रा ] नदी बह रही है। उसकी धारा पश्चिमसे पूर्वकी ओर जाती है। उसमें कीचड़का नाम भी नहीं है। चन्दन, तिलक, साल, तमाल, अतिमुक्तक, पद्मक, सरल और अशोक आदि नाना प्रकारके वृक्षोंसे उस नदीकी कैसी शोभा हो रही है! उसके किनारे-किनारे अनेकों ऋषियोंका निवास है। अनेकों जल-पक्षियोंसे उसकी रमणीयता और भी बढ़ गयी है। वह देखो, चन्दनकी कतारें कितनी सुन्दर जान पड़ती हैं। उधर ककुभ नामक वृक्षोंकी पंक्तियाँ दिखायी दे रही हैं। लक्ष्मण! यह स्थान बड़ा ही मनोरम है, अतः यहीं रहना ठीक होगा। यहाँ हमारा मन खूब लगेगा। विचित्र वनोंवाली किष्किन्धा-पुरी, जो इस समय सुग्रीवकी सुन्दर राजधानी है, यहाँसे अधिक दूर नहीं होगी।'

यों कहकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ प्रस्रवण पर्वतपर रहने लगे। यद्यपि वहाँ सुखके अनेकों साधन थे, फल-फूल आदि आवश्यक पदार्थोंकी वहाँ बहुत अधिकता थी, फिर भी सीताकी याद आनेसे भगवान् श्रीरामका मन तनिक भी नहीं लगता था। रातको उन्हें नींद नहीं आती थी। उन्हें सदा शोकमग्न होकर चिन्ता करते देख उनके दुःखमें समान रूपसे भाग लेनेवाले लक्ष्मणने विनयपूर्वक कहा—'वीरवर! शोक करनेसे कोई लाभ नहीं है; अतः आपको शोक नहीं करना चाहिये। क्योंकि शोक करनेवाले पुरुषके सभी मनोरथ नष्ट हो जाते हैं, यह बात आपसे छिपी नहीं है। रघुनन्दन! आप धर्मात्मा और उद्योगी हैं; अतः शोकको जड़से उखाड़ फेंकिये और उद्योगके लिये दृढ़ विचार कर लीजिये। तभी आप उस राक्षसको परिवार-सहित नष्ट कर सकते हैं। आपमें समुद्र, वन और पर्वतोंसहित समूची पृथ्वीको भी उलट देनेकी शक्ति है; फिर उस रावणको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मारना आपके लिये कौन बड़ी बात है। वर्षा तो आ ही गयी है, अब शरदृतुकी प्रतीक्षा कीजिये। फिर राज्य और परिवारके सहित रावणका वध कीजियेगा। मैं आपकी सोयी हुई शक्तिको जगा रहा हूँ—भूले हुए पराक्रमकी याद दिला रहा हूँ।' अपने स्नेही और सुहृद् लक्ष्मणकी यह हितकारी और सुन्दर बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—'सुमित्राकुमार ! अनुरागी, स्नेही, हितैषी और सत्यपराक्रमी वीरको जैसी बात कहनी चाहिये, वैसी ही तुमने कही है। लो, सब तरहके काम बिगाड़नेवाले इस शोकको मैंने त्याग दिया। अब मैं पराक्रमविषयक अपने दुर्धर्ष तेजको सँभालता हूँ। तुम्हारी बात माने लेता हूँ। सुग्रीवकी सहायता प्राप्त होने तथा नदियोंका जल स्वच्छ होनेतक मैं शरत्कालकी प्रतीक्षा करूँगा।'

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी वर्षाऋतुकी शोभा देखकर लक्ष्मणसे कहने लगे—'सुमित्रानन्दन ! देखो, नदियाँ तीव्र गतिसे बह रही हैं, मेघ बरस रहे हैं, मतवाले हाथी गरज रहे हैं, वनके प्रान्त हरे-भरे होनेके कारण शोभा पा रहे हैं और वानर [ सुग्रीवको राज्य मिलनेसे ] सन्तुष्ट हो रहे हैं। भ्रमर-रूप वीणाकी मधुर झंकार हो रही है। मेढकोंकी आवाज कण्ठताल-सी जान पड़ती है। मेघोंकी गर्जनाके रूपमें मृदंग

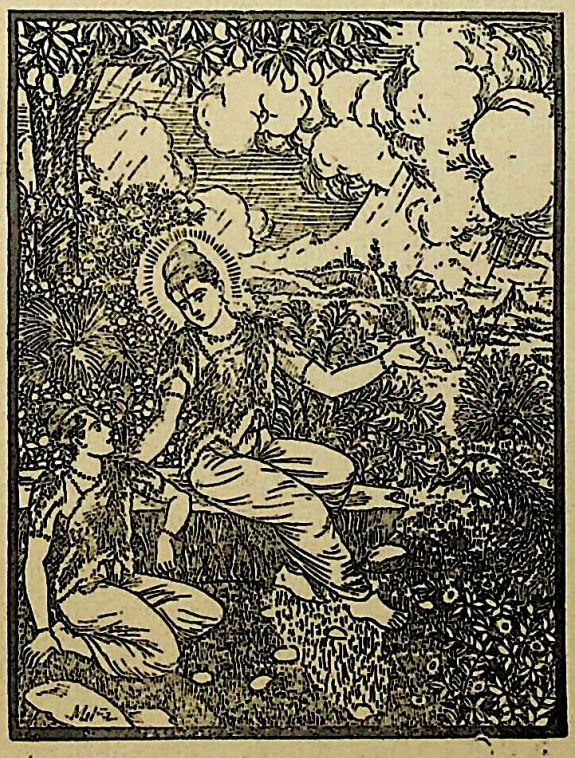

बज रहे हैं। मोर कहीं नाचते हैं और कहीं वृक्षोंकी डालियों-पर उच्च स्वरसे मीठे राग अलाप रहे हैं। मानो इन सबने मिल-कर वनमें सङ्गीत-सा छेड़ रखा है। ये मेघ नदी, तालाब, सरोवर, बावली और समूची पृथ्वीको अपनी जलकी धारासे परिपूर्ण कर रहे हैं। बड़े वेगसे वर्षा हो रही है। जोरोंकी हवा चल रही है और नदियाँ अपने करारोंको काटकर अत्यन्त तीव्र गतिसे जलकी धारा बहा रही हैं। उन्होंने अपने नियत मार्गको छोड़ दिया है। मेघोंकी घटासे समस्त आकाश आच्छादित हो गया है। न रातमें तारे दिखायी देते हैं न दिनमें सूर्य। नूतन जलराशि पाकर पृथ्वी पूर्ण तृप्त हो गयी है। दिशाएँ अन्धकारसे आच्छन्न हो रही हैं। उनमें प्रकाश नहीं दीख पड़ता। भादोंका महीना आ गया। यह वेदके स्वाध्यायकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मणोंके लिये उपाकर्मका समय है। साम-गान करनेवाले विद्वानोंके स्वाध्यायका भी यही समय है। कोसलदेशके राजा भरतने चार महीनोंके लिये आवश्यक वस्तुओंका संग्रह करके गत आषाढ़की पूर्णिमाको निश्चय ही किसी उत्तम व्रतकी दीक्षा ली होगी। लक्ष्मण ! यह वर्षा अनेकों गुणोंसे सम्पन्न है। इस समय सुग्रीव अपने शत्रुको परास्त करके महान् राज्यपर अभिषिक्त हो स्त्रीके साथ रहकर सुख भोग रहे हैं। किन्तु मेरी स्त्रीका अपहरण हो गया है, इसलिये मेरा शोक बढ़ा हुआ है। इधर, वर्षाके दिनोंको बिताना अत्यन्त कठिन हो रहा है और मेरा महान् शत्रु रावण भी मुझे अजेय-सा जान पड़ता है। एक तो यह यात्राका समय नहीं है, दूसरे मार्ग बहुत दुर्गम हैं। इसलिये इस समय मैं सुग्रीवसे कुछ कहना नहीं चाहता। ठीक समय आनेपर वे स्वयं ही मेरे उपकारको समझेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः सुग्रीवकी प्रसन्नता और नदियोंके जलकी स्वच्छता चाहता हुआ मैं शरत्कालकी प्रतीक्षा करता हूँ।' श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहने-पर लक्ष्मणने उनकी बातोंको हृदयमें धारण किया और हाथ जोड़कर उनकी प्रशंसा करके अपनी शुभ सम्मति प्रकट करते हुए कहा—'महाराज ! आपने जो कुछ कहा है, उसके अनुसार आपका सभी अभीष्ट कार्य वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही पूर्ण करेंगे। आप शत्रुको दण्ड देनेका निश्चय करके शरत्कालकी प्रतीक्षा करते हुए वर्षाकालके विलम्बको धैर्यपूर्वक सहन कीजिये।'

उधर [ वर्षा बीतनेपर ] वायुपुत्र हनुमान्‌जीने देखा, आकाश निर्मल हो गया है। अब उसमें न तो बिजली चमकती है और न बादल ही दिखायी देते हैं। अन्तरिक्षमें सब ओर सारस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उड़ रहे हैं और उनकी बोली सुनायी देती है। [ चन्द्रोदय होनेपर] आकाश ऐसा जान पड़ता है, मानो उसपर रमणीय ज्योत्स्नाका लेप चढ़ा दिया गया हो। सुग्रीवका मनोरथ पूर्ण हो जानेके कारण अब वे धर्म और अर्थके संग्रहमें शिथिलता दिखाने लगे हैं। उन्होंने राज-कार्यका भार मन्त्रियोंपर रख दिया है और स्वयं उनके कार्योंकी देख-भाल नहीं करते। [ मन्त्रियोंकी सज्जनताके कारण ] यद्यपि राज्यको किसी प्रकारकी हानि पहुँचनेका सन्देह नहीं है, तथापि स्वयं सुग्रीव ही स्वेच्छाचारी-से हो रहे हैं। यह सब सोचकर कर्तव्यके विषयमें सावधान, सम्पूर्ण पदार्थोंके तत्त्व-को जाननेवाले तथा समयोचित धर्मके विशेषज्ञ हनुमान्‌जी वानरराज सुग्रीवके पास गये और उन्हें युक्तियुक्त एवं मनोरम वचनोंके द्वारा प्रसन्न करके हितकर, सत्य, लाभदायक, साम, धर्म और अर्थनीतिसे युक्त तथा प्रेम और प्रसन्नतासे भरे निश्चित वचन बोले—'राजन्! आपने राज्य और यश प्राप्त कर लिया तथा कुल-परम्परासे आयी हुई लक्ष्मीको भी बढ़ाया; किन्तु अभी मित्रोंको प्रसन्न करनेका कार्य बाकी रह गया है, उसे आपको पूर्ण करना चाहिये। जो राजा कब प्रत्युपकार करना चाहिये, इस बातको जानता हुआ मित्रोंके प्रति सर्वदा साधुताका बर्ताव करता है, उसके राज्य, यश और प्रतापकी वृद्धि होती है*। आप सदाचारसे सम्पन्न और सनातन धर्मके मार्गपर स्थित हैं। अतः मित्रके कार्यको सफल बनानेके लिये यथावत् प्रयत्न कीजिये। जो अपने सब कामोंको छोड़कर मित्रका कार्य सिद्ध करनेके लिये विशेष उत्साह और शीघ्रताके साथ प्रयत्न नहीं करता, उसे अनर्थका भागी होना पड़ता है। कार्य-साधनका उपयुक्त अवसर बीत जानेके बाद जो मित्रके काममें लगता है, वह बड़े-से-बड़े कार्यको सिद्ध करके भी मित्रता निबाहनेवाला नहीं माना जाता।† भगवान् श्रीराम हमारे परम सुहृद् हैं, उनके कार्यका समय भी बीता जा रहा है। अतः विदेहराजकुमारी सीताकी खोज आरम्भ कर देनी चाहिये। परम बुद्धिमान् श्रीराम समयका ज्ञान रखते हैं और उन्हें अपने कार्यके लिये जल्दी भी है; तथापि वे आपके अधीन बने हुए हैं—संकोचवश आपसे नहीं कहते कि मेरे कार्यका समय बीत रहा है। रघुनाथजी चिरकालतक मित्रता निभानेवाले हैं। उनका प्रभाव अतुलनीय है। वे गुणोंमें अपना सानी नहीं रखते। अब आप उनका कार्य सिद्ध कीजिये। उन्होंने आपका काम पहले ही कर दिया। वानरराज! प्रधान-प्रधान वानरोंको इस कार्यके लिये आज्ञा दीजिये। श्रीरामचन्द्रजीके कहनेके पहिले ही यदि हमलोग कार्य प्रारम्भ कर दें तो समयका बीतना नहीं समझा जायगा। किन्तु यदि उन्हें इसके लिये प्रेरणा करनी पड़ी, तो यही माना जायगा कि हमने समय बिता दिया है—उनके कार्यमें बहुत विलम्ब कर दिया है। आप परम शक्तिमान्, अत्यन्त पराक्रमी और वानर तथा भालुओंके स्वामी हैं; फिर भी श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय कार्य करनेके लिये वानरोंको आज्ञा देनेमें क्यों आलस्य कर रहे हैं? इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम अपने बाणोंसे समस्त देवताओं, असुरों और बड़े-बड़े नागोंको भी वशमें कर सकते हैं; तथापि वे यह देख रहे हैं कि आप उनसे की हुई प्रतिज्ञा पूरी करते हैं या नहीं। उन्हें आपके लिये वालीके प्राणतक लेनेमें हिचक नहीं हुई। वे आपका बहुत बड़ा प्रिय कार्य कर चुके हैं। अब हमें पृथ्वी तथा आकाशमें भी विदेहकुमारीका पता लगाना चाहिये। देवता, दानव, गन्धर्व, असुर, मरुद्गण तथा यक्ष भी श्रीरामको भय नहीं पहुँचा सकते; फिर राक्षसोंकी तो बिसात ही क्या है। ऐसे शक्तिशाली तथा पहले ही उपकार करनेवाले भगवान् श्रीरामका प्रिय कार्य आपको अपनी सारी शक्ति लगाकर करना चाहिये। कपीश्वर! आपकी आज्ञा मिल जानेपर जलमें, थलमें, नीचे (पातालमें) तथा ऊपर (आकाशमें)—कहीं भी हमलोगोंकी गति रुक नहीं सकती। हममेंसे किसीके लिये भी कहीं रुकावट नहीं है। अतः आप आज्ञा दीजिये कि कौन, कहाँसे आपकी किस आज्ञाका पालन करनेके लिये उद्योग करे। आपके सामने करोड़ों ऐसे वानर मौजूद हैं, जिन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता।'

सुग्रीव सत्त्वगुणसे सम्पन्न थे, उन्होंने हनुमान्‌जीके द्वारा ठीक समयपर अच्छे ढंगसे कही हुई उपर्युक्त बातें सुनकर [ भगवान् श्रीरामका कार्य सिद्ध करनेके लिये ] अत्यन्त उत्तम निश्चय किया। वे परम बुद्धिमान् थे। अतः नित्य उद्यमशील नील नामक वानरको उन्होंने समस्त दिशाओंसे सम्पूर्ण वानर-सेनाओंको एकत्रित करनेके लिये आज्ञा दी और कहा—'तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे मेरी सारी सेना यहाँ

---

* यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते।
तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चापि वर्धते ॥(२९।१०-११)

† संत्यज्य सर्वकर्माणि मित्रार्थे यो न वर्तते।
संभ्रमाद् विकृतोत्साहः सोऽनर्थेनावरुध्यते ॥
यो हि कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते।
स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते ॥ (२९।१३-१४)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

इकट्ठी हो जाय; सभी यूथपति अपनी-अपनी सेना और सेनापतियोंके साथ आ जायँ। राज्य-सीमाकी रक्षामें रहनेवाले जो-जो उद्योगी और शीघ्रगामी वानर हैं, वे सब मेरी आज्ञासे शीघ्र यहाँ उपस्थित हो जायँ। जो वानर पंद्रह दिनोंके बाद पहुँचेगा, उसे प्राणान्त दंड दिया जायगा—इसमें तनिक भी अन्यथा विचारके लिये गुंजाइश नहीं है। यह मेरी निश्चित आज्ञा है। इसके अनुसार कुमार अङ्गदको साथ लेकर तुम स्वयं बड़े-बूढ़े वानरोंके पास जाओ।' ऐसी व्यवस्था करके महाबली वानरराज सुग्रीव अपने महलमें चले गये।

## शरद्-ऋतुका वर्णन और श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणका किष्किन्धामें जाना

सुग्रीव अपने महलमें थे और श्रीरामचन्द्रजी सीतासे मिलनेकी उत्कण्ठा लिये उनके विरहजन्य शोकसे पीडित होकर प्रस्रवण-गिरिपर वर्षाकी रातें बिता रहे थे। [ धीरे-धीरे वर्षा-काल बीत जानेपर ] उन्होंने देखा—आकाश निर्मल है, चन्द्र-मण्डल स्वच्छ है तथा शरद्-ऋतुकी रात्रिपर चाँदनीका रंग चढ़ा हुआ है। इधर उन्होंने देखा, सुग्रीव काममें आसक्त हो रहा है, जनककुमारी सीताका अबतक कुछ पता नहीं लगा है और [ रावणपर चढ़ाई करनेका ] समय भी बीता जा रहा है। यह सब सोचकर श्रीरामको बड़ा दुःख हुआ और वे मनमें बसी हुई विदेहनन्दिनी सीताका चिन्तन करने लगे। आसमान साफ था; न कहीं बिजलीकी गड़गड़ाहट थी न मेघोंकी घटा। सब ओर सारसोंकी आवाज गूँज रही थी। यह देखकर वे आर्त वाणीमें विलाप करने लगे—'हाय! मैं नदी, तालाब, बावली, कानन और वन—सब जगह घूमता हूँ; पर कहीं भी मृगनयनी सीताके बिना मुझे चैन नहीं पड़ती।' इन्द्रसे पानीकी याचना करनेवाले प्यासे पपीहेकी भाँति नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने अनेकों तरहकी बातें कहकर बहुत विलाप किया। उस समय लक्ष्मण फल लेनेके लिये गये थे। पर्वतके रमणीय शिखरोंपर घूम-फिरकर जब लौटे, तो उन्होंने अपने भाईकी अवस्थापर दृष्टिपात किया। वे दुःसह चिन्तामें डूबे हुए थे। भाईका दुःख देखकर सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी अत्यन्त दुखी हो गये और दीन वाणीमें बोले—'आर्य! अपने पौरुषका तिरस्कार करनेसे—पराक्रमको भूल जानेसे क्या लाभ होगा? इस लज्जाजनक शोकके कारण आपके चित्तकी एकाग्रता नष्ट हो रही है। क्या इस समय योगका सहारा लेनेसे—मनको एकाग्र करनेसे यह सारी चिन्ता दूर नहीं हो सकती? अपने पराक्रमकी वृद्धिके लिये सहायता और शक्तिको बढ़ानेका प्रयत्न कीजिये। वीरवर! आप जिनके स्वामी हैं, वे जनकनन्दिनी किसी दूसरेके अधीन नहीं हो सकतीं; क्योंकि धधकती हुई आगकी लपटके पास जाकर कोई भी दग्ध हुए बिना नहीं रह सकता।'

लक्ष्मण उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थे, उन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता था। भगवान् श्रीरामने उनसे स्वाभाविक बात कही—"कुमार! तुमने जो कुछ कहा है, वह वर्तमान समयमें हितकर, भविष्यमें भी सुख पहुँचानेवाला, राजनीतिके सर्वथा अनुकूल तथा सामके साथ-साथ धर्म और अर्थसे भी युक्त है। निश्चय ही सीताके अनुसन्धान-कार्यपर ध्यान देना चाहिये तथा उसके लिये विशेष उत्साह प्रकट करना चाहिये। लक्ष्मण! देखो, जो अत्यन्त गम्भीर स्वरसे गर्जना किया करते और पर्वतों, नगरों तथा वृक्षोंके सामनेसे होकर निकलते थे, वे मेघ अपना सारा जल बरसाकर शान्त हो गये हैं। बादलों, हाथियों, मोरों और झरनोंके शब्द सहसा बंद हो गये हैं। महान् मेघोंद्वारा बरसाये हुए जलसे धुल जानेके कारण ये विचित्र शिखरोंवाले पर्वत अत्यन्त निर्मल हो गये हैं। इन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमाकी किरणोंद्वारा इनके ऊपर सफेदी कर दी गयी हो। आज शरद्-ऋतु सप्तच्छद (छितवन)की डालियोंमें, सूर्य, चन्द्रमा और तारोंकी प्रभामें तथा बड़े-बड़े गजराजोंकी क्रीड़ाओंमें अपनी शोभा बाँटकर आयी है। इस समय आकाशका रंग शानपर चढ़े हुए शस्त्रकी धारके समान स्वच्छ दिखायी देता है। नदियोंका जल मन्दगतिसे प्रवाहित हो रहा है। श्वेत कमलकी सुगन्ध लेकर ठंडी हवा चल रही है, दिशाओंका अन्धकार दूर हो गया। अब उनमें पूर्ण प्रकाश छा रहा है। घाम लगनेसे धरतीका कीचड़ सूख गया है, अब उसपर बहुत दिनोंके बाद घनी धूल प्रकट हुई है। परस्पर वैर रखनेवाले राजाओंके लिये युद्धके निमित्त उद्योग करनेका अब समय आ गया है। नदी, मेघ, झरनोंके जल, प्रचण्ड वायु, मोर और हर्षरहित मेढकोंके शब्द इस समय शान्त हो



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हैं। कुमुदके फूलोंसे भरा हुआ उस महान् तालाबका जल, जिसमें एक हंस सोया हुआ है, ऐसा जान पड़ता है मानो रातके समय बादलोंके आवरणसे रहित आकाश सब ओर छिटके हुए तारोंसे व्याप्त होकर पूर्ण चन्द्रमाके साथ शोभा पा रहा हो। जलकी स्वच्छता, फूलोंका खिलना, क्रौञ्च पक्षीका बोलना, धानकी खेतीका पक जाना, वायुका मन्दगतिसे चलना और चन्द्रमाका आवरणशून्य होना—ये सब वर्षाकाल बीतनेकी सूचना दे रहे हैं। राजाओंकी विजय-यात्राका यह मुख्य काल है; किन्तु न तो मैं सुग्रीवको यहाँ देखता हूँ और न उनका कोई ऐसा उद्योग ही दिखायी देता है। सीताको न देखनेके कारण मैं शोकसे सन्तप्त हो रहा हूँ; इसलिये ये वर्षाके चार महीने मेरे सौ वर्षोंके समान बीते हैं। जैसे चकवी अपने स्वामीका अनुसरण करती है, उसी प्रकार कल्याणी सीता इस भयंकर दण्डकारण्यको उद्यान समझकर मेरे पीछे यहाँतक चली आयी थी। रावणने मेरा तिरस्कार किया है और मैं बहुत दुखी हूँ—इस कारण वानरोंका राजा दुरात्मा सुग्रीव भी मेरी अवज्ञा कर रहा है। उसने सीताकी खोज करनेके लिये समय निश्चित कर दिया था, तो भी अब काम निकल जानेपर उस मूर्खको अपनी प्रतिज्ञाका कुछ ख्याल ही नहीं है। इसलिये लक्ष्मण! तुम मेरे कहनेसे किष्किन्धापुरीमें जाओ और विषय-भोगोंमें आसक्त वानरराज सुग्रीवसे इस प्रकार कहो—'जो बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा पहले ही उपकार करनेवाले कार्यार्थी पुरुषोंको आशा देकर—उनका कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करके पीछे उसे तोड़ देता है, वह संसारके सभी पुरुषोंमें नीच है। जो अपने मुँहसे प्रतिज्ञाके रूपमें निकले हुए भले या बुरे—हर तरहके वचनोंको अवश्य पालनीय समझकर पालन करता है, वह वीर समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। जो अपना स्वार्थ सिद्ध हो जानेपर अपने मित्रोंके कार्यको पूरा करनेकी परवा नहीं करते, उन कृतघ्न पुरुषोंके मरनेपर मांसाहारी जन्तु भी उनका मांस नहीं खाते।* सुग्रीव! निश्चय ही तुम युद्धमें मेरे द्वारा चढ़ाये हुए सोनेकी पीठवाले धनुषका कौंधती हुई बिजलीके समान रूप देखना चाहते हो। संग्राममें कुपित होकर खैंची हुई मेरी प्रत्यञ्चाकी भयंकर टङ्कारको, जो वज्रकी आवाजको भी मात करनेवाली है; अब फिर तुम्हें सुननेकी इच्छा हो रही है।'

"लक्ष्मण! यदि ऐसी बात भी हो जाय—सुग्रीव मेरी सहायतासे मुँह मोड़ ले, तो भी जबतक तुम मेरे सहायक हो, मुझे कोई चिन्ता नहीं हो सकती; क्योंकि मुझे तुम्हारे और अपने पराक्रमका ज्ञान है। सीताकी खोजके लिये ही यह सारा आयोजन हुआ—वानरराज सुग्रीवसे मैत्री और वालीका वध किया गया; किन्तु उस शर्तको—सीताको खोजनेकी प्रतिज्ञाको इस समय वह भूल गया है; क्योंकि उसका अपना काम सिद्ध हो चुका है। सुग्रीवने यह प्रतिज्ञा की थी कि वर्षाका अन्त होते ही सीताकी खोज आरम्भ कर दी जायगी; किन्तु वह विहार करनेमें इतना तन्मय हो गया कि इन बीते हुए चार महीनोंका उसे कुछ पता ही नहीं है। हमलोग शोकसे व्याकुल हो रहे हैं, परन्तु सुग्रीवको हमपर दया नहीं आती। वीर लक्ष्मण! तुम जाकर सुग्रीवसे कहो; मेरे क्रोधका जो स्वरूप है, वह उसे बताओ और यह सन्देश सुनाओ—'सुग्रीव! वाली मारा जाकर जिस रास्तेसे गया है, वह रास्ता आज भी बंद नहीं हुआ है। इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञापर डटे रहो, वालीके मार्गपर न जाओ।' नरश्रेष्ठ! ऐसे अवसरपर और भी जो-जो बातें कहनी उचित हों—जिनके कहनेसे अपना हित हो, वे सब बातें कहना। जल्दी करो, समय बीता जा रहा है। उससे कहो—वानरराज! तुम सनातन धर्मपर दृष्टि रखकर अपनी की हुई प्रतिज्ञाको सत्य करो।"

लक्ष्मणका तेज बड़ा ही उग्र था, उन्होंने वानरराज सुग्रीवके प्रति कठोर भाव धारण किया और श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'आर्य! सुग्रीवकी बुद्धि मारी गयी है, इसलिये वह विषय-भोगोंमें आसक्त हो रहा है। आपकी कृपासे उसे राज्य मिला; किन्तु उस उपकारका बदला चुकानेकी उसकी नीयत नहीं है। अतः अब वह भी मारा जाकर अपने बड़े भाई वीरवर वालीका दर्शन करे। ऐसे गुणहीनको राज्य नहीं देना चाहिये। मेरा क्रोध बढ़ा हुआ है। मैं इसे रोक नहीं सकता, असत्यवादी सुग्रीवको आज ही मारे डालता हूँ। अब वालि-कुमार अङ्गद ही [ राजा होकर ] प्रधान वानरवीरोंके साथ राजकुमारी सीताकी खोज करेंगे।' यों कहकर लक्ष्मण धनुष-

---

* अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम्।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः॥
शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम्।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः॥
कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते॥ (३०।७१–७२)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण हाथमें लिये बड़े वेगसे चल पड़े। उस समय प्रतिपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी उन्हें शान्त करनेके लिये सोच-विचारकर निश्चित किये हुए वचन बोले—'लक्ष्मण ! तुम सदाचारी हो। तुम्हें इस प्रकार सुग्रीवके मारनेका निश्चय नहीं करना चाहिये। उसके प्रति पहले जो तुम्हारा प्रेम था, उसका निर्वाह करो। उसके साथ जो मित्रता की गयी है, उसका भी स्मरण रक्खो।'

अपने बड़े भाईके इस प्रकार समझानेपर वीर लक्ष्मण किष्किन्धापुरीकी ओर चल दिये। [ उन्होंने सुग्रीवको मारनेका विचार तो छोड़ दिया, पर उनका क्रोध कम न हुआ। ] उनके हाथमें इन्द्रधनुषके समान भयंकर धनुष था। वे भाईकी आज्ञाका पालन करनेवाले और बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। उस समय भाईका क्रोध देखकर उनकी भी क्रोधाग्नि भड़क उठी थी तथा वे असन्तुष्ट होकर वायुके समान वेगसे चले जा रहे थे। शीघ्रगामी हाथीके समान अपने पैरोंकी ठोकरसे शिलाओंको चूर-चूर करते हुए वे कार्यवश बड़ी तेजीके साथ चले। वे लंबी-लंबी डगें भर रहे थे। निकट जाकर उन्होंने वानरराज सुग्रीवकी किष्किन्धापुरी देखी, जो पहाड़ोंके बीचमें बसी हुई थी। वानरसेनासे व्याप्त होनेके कारण वह पुरी दुर्गम थी—उसमें दूसरोंका प्रवेश होना कठिन था। किष्किन्धाके बाहर उन्हें बहुत-से भयंकर वानर दिखायी दिये, जिनके शरीर हाथियोंके समान विशाल थे। उन्होंने नरश्रेष्ठ लक्ष्मणको देखते ही पर्वतके अंदरसे अनेकों शिखर और बड़े-बड़े वृक्ष उठा लिये। उन्हें हथियार उठाते देख लक्ष्मण दूने क्रोधसे जल उठे और क्षुब्ध हुए कालकी भाँति प्रतीत होने लगे। उस समय उनकी ओर देखकर वे सैकड़ों वानर भयसे थर्रा उठे और चारों दिशाओंमें भाग गये। तदनन्तर कई श्रेष्ठ वानरोंने सुग्रीवके महलमें जाकर लक्ष्मणके आगमन और क्रोधका समाचार निवेदन किया। उस समय कामके अधीन हुए वानरराज सुग्रीव ताराके साथ थे, इसलिये उन्होंने उन श्रेष्ठ वानरोंकी बातें नहीं सुनीं। तब सचिवकी आज्ञासे हाथी, पर्वत और मेघके समान विशालकाय वानर, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाले थे, नगरसे बाहर निकले। लक्ष्मण प्रज्वलित कालाग्निके समान दिखायी दे रहे थे। कुमार अङ्गद डरते-डरते उनके पास गये। वे बहुत दुखी हो रहे थे। महायशस्वी लक्ष्मणने क्रोधसे लाल आँखें करके अङ्गदको सन्देश दिया—'बेटा ! सुग्रीवको मेरे आनेकी सूचना दो। उनसे कहना—'श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मण अपने भ्राताके दुःखसे दुखी होकर नगरद्वारपर खड़े हैं। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उनकी आज्ञाका अच्छी तरह पालन करो।' बेटा अङ्गद ! बस इतना ही कहकर तुम शीघ्र मेरे पास लौट आओ।''

लक्ष्मणकी बात सुनकर अङ्गद चिन्तामें पड़ गये और अपने चाचाके पास जाकर बोले—'सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी पधारे हैं।' अङ्गदका तेज बड़ा ही उग्र था। महलमें जानेपर उन्होंने पहले पिता-तुल्य सुग्रीवके और फिर अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया। तत्पश्चात् रुमाके चरणोंका स्पर्श करके लक्ष्मणका सन्देश सुनाया। किन्तु सुग्रीव कामसे मोहित होकर पड़े थे, निद्राने उनके ऊपर पूरा अधिकार जमा लिया था; इसलिये वे जाग न सके। इतनेमें नगरके बाहर वानरोंकी भयंकर गर्जना हुई, इससे उनकी नींद खुल गयी। अङ्गदके साथ दो मन्त्री भी आये थे, जो वानरराज सुग्रीवके सम्मानपात्र थे। उनके नाम थे प्लक्ष और प्रभाव। वे अर्थ और धर्मके विषयमें राजाको ऊँच-नीच समझानेके लिये नियुक्त थे। उन दोनोंने सोच-विचारकर निश्चित किये हुए सार्थक वचनोंके द्वारा सुग्रीवको प्रसन्न किया तथा उन्हें लक्ष्मणके आगमनकी सूचना देते हुए कहा—'राजन् ! महाभाग श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाई सत्यप्रतिज्ञ हैं। [ वे वास्तवमें भगवत्स्वरूप हैं। ] उन्होंने स्वेच्छासे मनुष्य-शरीर धारण किया है। उन दोनोंने ही आपको राज्य प्रदान किया है। उनमेंसे लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये किष्किन्धाके दरवाजेपर खड़े हैं। उन्हींके डरसे काँपते हुए वानर जोर-जोरसे चीख मार रहे हैं। लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे यहाँ आये हैं। उन्होंने ताराके प्रिय पुत्र अङ्गदको बड़ी शीघ्रताके साथ आपके पास भेजा है। वे क्रोधसे लाल आँखें किये नगरद्वारपर उपस्थित हैं। वानरराज ! आप पुत्र और बन्धु-बान्धवोंके साथ शीघ्र चलकर उनके चरणोंमें मस्तक नवाइये और इस प्रकार उनका क्रोध शान्त कीजिये। धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी जो आज्ञा दें, उसका सावधानीके साथ पालन कीजिये। आप अपनी शर्त पूरी कीजिये और सत्यप्रतिज्ञ बनिये।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## हनुमान्‌जीका सुग्रीवको समझाना, लक्ष्मणका सुग्रीवके महलमें जाना, ताराका उन्हें सान्त्वना देना और अन्तःपुरमें लक्ष्मणका सुग्रीवको फटकारना

मन्त्रियों और अङ्गदकी बात सुनकर तथा लक्ष्मणको कुपित जानकर सुग्रीव आसन छोड़कर खड़े हो गये। वे श्रीरामचन्द्रजीकी महत्ता और अपनी लघुताका विचार करके मन्त्रियोंसे बोले—'मैंने न तो कोई अनुचित बात मुँहसे निकाली है और न कोई बुरा काम ही किया है; फिर लक्ष्मण मुझपर कुपित क्यों हैं? महात्मा श्रीरामने मेरा जो उपकार किया है, उसका बदला चुकानेकी मुझमें शक्ति नहीं है; इसलिये मैं और भी डर गया हूँ।' सुग्रीवके ऐसा कहनेपर वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमान्‌जी अपनी युक्तिका सहारा लेकर वानर-मन्त्रियोंके बीचमें बोले—'राजन्! मित्रके द्वारा अत्यन्त आत्मीयभावसे किये हुए उत्तम उपकारको जो आप किसी तरह भूल नहीं रहे हैं, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है [ क्योंकि अच्छे पुरुषोंका ऐसा स्वभाव ही होता है ]। वीरवर रघुनाथजीने भयको दूर हटाकर आपका प्रिय करनेके लिये इन्द्र-तुल्य पराक्रमी वालीका वध किया है, [ अतः वे वास्तवमें आपपर कुपित नहीं हो सकते ]। इस समय जो उन्होंने क्रोध किया है, उसमें भी सर्वथा उनका प्रेम ही कारण है। आप तनिक भी सन्देह न करें। स्नेहके कारण ही उन्होंने अपने भाई लक्ष्मणको आपके पास भेजा है। यद्यपि आप समयका ज्ञान रखनेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, तथापि सीताकी खोज करनेके लिये आपने जो समय निश्चित किया था, उसे इन दिनों प्रमादमें पड़ जानेके कारण आप भूल गये हैं। देखिये, शरद्-ऋतुका प्रारम्भ हो गया है। आकाशमें अब बादल नहीं रहे। ग्रह और नक्षत्र उज्ज्वल दिखायी देते हैं। सम्पूर्ण दिशाएँ निर्मल हो गयी हैं। तथा नदियों और सरोवरोंके जल पूर्ण स्वच्छ हो चुके हैं। [ राजाओंके लिये ] विजय-यात्राकी तैयारी करनेका समय आ गया है; किन्तु आपको कुछ पता ही नहीं है। इससे साफ जाहिर होता है कि आप गफलतमें पड़े हैं; इसीलिये लक्ष्मण यहाँ आये हैं। महात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नीका अपहरण हुआ है, इसके कारण वे बहुत दुखी हैं। अतः यदि लक्ष्मणके मुखसे उनका कठोर वचन भी सुनना पड़े, तो आपको चुपचाप सह लेना चाहिये। आपकी ओरसे अपराध हुआ है; अतः हाथ जोड़कर लक्ष्मणको प्रसन्न करनेके सिवा आपके लिये और कोई कर्तव्य मैं नहीं देखता। राज्यकी भलाईके कामपर नियुक्त हुए मन्त्रियोंका यह कर्तव्य है कि वे राजाको उसके हितकी बात अवश्य बतावें; अतएव मैं भय छोड़कर अपना निश्चित विचार बतला रहा हूँ। भगवान् श्रीराम यदि क्रोध करके धनुष हाथमें ले लें तो देवता, असुर और गन्धर्वों-सहित सम्पूर्ण जगत्‌को अपने वशमें कर सकते हैं। जिससे पीछे क्षमा माँगनी पड़े, ऐसे पुरुषको क्रोध दिलाना कदापि उचित नहीं है। विशेषतः उस पुरुषको, जो मित्रके किये हुए पहले उपकारको याद रखता हो और कृतज्ञ हो, इस बातका अधिक ध्यान रखना चाहिये। इसलिये आप पुत्र और मित्रोंके साथ मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम कीजिये और अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहकर पतिके वशमें रहनेवाली पत्नीकी भाँति सदा श्रीरामचन्द्रजीके अधीन रहिये।'

इधर किष्किन्धाके द्वारपर जो विशाल शरीरवाले महाबली वानर थे, वे सब लक्ष्मणको देख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। दशरथकुमारको क्रोधसे लंबी साँस खींचते देख उन्हें बड़ा भय हो गया था; अतः वे उनको रोक न सके। लक्ष्मणने द्वारके भीतर प्रवेश करके देखा—किष्किन्धापुरी एक बहुत बड़ी गुफाके रूपमें है। वह नाना प्रकारके रत्नोंसे भरी होनेके कारण दिव्य शोभासे सम्पन्न दिखायी देती थी। उसके भीतर चन्दन, अगर और कमलोंकी पवित्र सुगन्ध छा रही थी। वहाँकी लंबी-चौड़ी सड़कें भी सुगन्धसे भरी थीं। उस पुरीमें विन्ध्याचलके समान ऊँचे-ऊँचे महल बने थे, जिनमें कई मंजिल थे। अङ्गदका महल बड़ा ही सुन्दर था। उसके सिवा मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, शरभ, विद्युन्माली, सूर्याक्ष, हनुमान्, वीरबाहु, सुबाहु, नल, कुमुद, सुषेण, तार, जाम्बवान्, दधिमुख, नील, सुपाटल और सुनेत्र—इन प्रधान-प्रधान वानरोंके महल राजमार्गपर बने हुए थे, जो बड़े ही मजबूत थे। उन सबको लक्ष्मणने देखा। वे श्वेत बादलोंके समान सफेद रंगके, सुगन्धित मालाओंसे सुसज्जित, प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न तथा स्त्री-रत्नोंसे सुशोभित थे। वानरराज सुग्रीवका महल इन्द्र-भवनकी शोभाको मात कर रहा था। वहाँ इन्द्रके दिये हुए दिव्य फल-फूलोंसे सम्पन्न मनोहर वृक्ष लगाये गये थे—जो परम सुन्दर, नीले मेघके समान श्याम और शीतल छायासे युक्त थे। अनेकों बलवान् वानर हाथोंमें हथियार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Chennai and eGangotri

लिये उसकी ड्योढ़ीपर पहरा दे रहे थे। वह सुन्दर महल दिव्य मालाओंसे सजाया गया था और उसका बाहरी फाटक तपाये हुए सोनेका बना था। महाबली लक्ष्मणने सुग्रीवके उस रमणीय भवनमें प्रवेश किया। किसीने रोक-टोक नहीं की। उन्होंने सवारियों तथा शय्याओंसे सुशोभित महलकी सात ड्योढ़ियोंको पार करके बहुत ही गुप्त और विशाल अन्तःपुरको देखा। उसमें चाँदी और सोनेके पलँग तथा अनेकों उत्तम आसन रखे हुए थे। उन सबपर बहुमूल्य बिछौने बिछे थे। वहाँ प्रवेश करते ही लक्ष्मणके कानोंमें सङ्गीतकी मीठी तान सुनायी पड़ी। वीणाकी लयपर कोई कोमल कण्ठसे गा रहा था। प्रत्येक पद और अक्षरका उच्चारण स्वर-तालके साथ हो रहा था। सुग्रीवके उस अन्तःपुरमें नाना प्रकारकी वेष-भूषाओंसे सजी हुई बहुत-सी स्त्रियाँ भी उन्हें दिखायी पड़ीं, जिन्हें अपने रूप और जवानीपर बड़ा गर्व था। आभूषणोंकी झनकार सुनकर लक्ष्मण रोषके आवेगसे और भी कुपित हो उठे और उन्होंने अपने धनुषपर टङ्कार दी, जिसकी आवाजसे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं। महाबाहु लक्ष्मण यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीका क्रोध देखकर स्वयं भी सुग्रीवपर रुष्ट थे, तथापि मर्यादाका ध्यान रखते हुए वे [ भीतर स्त्रियोंके सामने नहीं गये, ] उस स्थानसे दूर हटकर एकान्तमें खड़े हो गये।

धनुषकी टङ्कार सुनकर वानरराज सुग्रीव समझ गये कि लक्ष्मण यहाँतक आ पहुँचे हैं। वे भयके मारे अपना सिंहासन छोड़कर खड़े हो गये। अङ्गदके द्वारा उनके आगमनका समाचार तो उन्हें पहले ही मिल चुका था। अब धनुषकी टङ्कार सुनकर उन्हें इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव हो गया। फिर तो उनका मुँह सूख गया। वे आतङ्कके कारण घबरा उठे [ और लक्ष्मणके सामने जानेकी उन्हें हिम्मत न हुई ]। अतः वे किसी तरह धैर्य धारणकर परम सुन्दरी तारासे हितकी बात बोले—'कल्याणी! तुम्हारे देखनेमें कुमार लक्ष्मणके रोषका क्या कारण हो सकता है? वे मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं, अतः बिना किसी कारणके कदापि क्रोध नहीं कर सकते। यदि हमलोगोंने उनका कोई अपराध किया हो और तुम्हें उसका पता हो, तो सोचकर शीघ्र ही बताओ। अथवा तुम स्वयं ही जाकर लक्ष्मणसे मिलो और सान्त्वनायुक्त बातें कहकर उन्हें प्रसन्न करो। उनका हृदय शुद्ध है। तुम्हारे सामने वे क्रोध नहीं करेंगे; क्योंकि महात्मा पुरुष स्त्रियोंके प्रति कभी कठोर बर्ताव नहीं करते। जब तुम उनके पास जाकर मीठे वचनोंसे उन्हें शान्त कर दोगी, जब उनका चित्त प्रसन्न हो जायगा, उस समय मैं कमललोचन लक्ष्मणका दर्शन करूँगा।'

तारा उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थी, उसका शरीर संकोच एवं विनयसे झुका हुआ था। वह लक्ष्मणके पास गयी। वानरराजकी पत्नी ताराको देखते ही महात्मा लक्ष्मण मुँह नीचा करके उदासीनभावसे खड़े हो गये। यह देख तारा बोली—'राजकुमार! आपके क्रोधका क्या कारण है? कौन ऐसा है, जो आपकी आज्ञाका पालन नहीं करता? कौन निडर होकर दावानलमें प्रवेश कर रहा है?' ताराकी बातोंमें सान्त्वना भरी थी, उसमें प्रेमपूर्वक हृदयका भाव प्रकट किया गया था। उसे सुनकर लक्ष्मणके हृदयकी आशङ्का जाती रही, वे कहने लगे—'अपने स्वामीके हितमें संलग्न रहनेवाली तारा! तुम्हारा यह पति विषय-भोगमें आसक्त होकर धर्म और अर्थकी ओरसे लापरवाह हो रहा है, तुम इसे समझाती क्यों नहीं? इसे सिर्फ अपने राज्यकी फिक्र लगी है। हमलोग शोकमें डूबे हुए हैं, परन्तु हमारी इसे तनिक भी चिन्ता नहीं होती। यह अपने मन्त्रियों तथा राजसभाके सदस्योंसहित केवल विषय-भोगोंका ही सेवन कर रहा है। सुग्रीवने चार महीनोंकी अवधि निश्चित की थी, वे कभी बीत गये; पर अभीतक इसे इस बातका पता नहीं लगा। मित्रके किये हुए उपकारका यदि [ अवसर आनेपर भी ] बदला न चुकाया जाय, तो धर्मकी हानि तो होती ही है, साथ ही गुणवान् मित्रके साथ मित्रताका नाता टूट जानेपर स्वार्थकी भी बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ती है। मित्र दो प्रकारके होते हैं—एक तो अपने मित्रके अर्थ-साधनमें तत्पर होता है और दूसरा सत्य एवं धर्मके परायण होता है। तुम्हारे स्वामीने मित्रके इन दोनों ही गुणोंका परित्याग कर दिया है। वह न तो मित्रका कार्य सिद्ध करता है और न स्वयं ही धर्ममें स्थित है। ऐसी स्थितिमें हमलोगोंको भविष्यमें क्या करना चाहिये? हमारे लिये जो समुचित कर्तव्य हो, उसे तुम्हीं बताओ; क्योंकि तुम कार्यके तत्त्वको जानती हो।'

लक्ष्मणका वचन धर्म और अर्थके निश्चयसे युक्त था, जिससे उनके मधुर स्वभावका परिचय मिल रहा था। उसे सुनकर तारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके विषयमें जिसका प्रयोजन उसे ज्ञात हो चुका था; पुनः विश्वासके योग्य बात बोली—'राजकुमार! यह क्रोध करनेका समय नहीं है। आत्मीय जनोंपर क्रोध करना भी नहीं चाहिये। सुग्रीवके मनमें सदा आपका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छा बनी रहती है; अतः उनसे यदि कोई भूल भी हो जाय, तो आपको क्षमा करना चाहिये। भगवान् श्रीरामके क्रोधका

GC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कारण मैं जानती हूँ। उनके कार्यमें जो विलम्ब हुआ है, उससे भी मैं अपरिचित नहीं हूँ। सुग्रीवका जो कार्य आपके अधीन था और जिसे आपलोगोंने पूरा किया है, उसका भी मुझे पता है; तथा इस समय जो आपका कार्य प्रस्तुत है, उसके विषयमें हमलोगोंका क्या कर्तव्य है—इसका भी मुझे अच्छी तरह ज्ञान है। नरश्रेष्ठ! इस शरीरमें उत्पन्न हुए कामका जो असह्य बल है, उसको भी मैं जानती हूँ तथा उस कामद्वारा आबद्ध होकर सुग्रीव जहाँ आसक्त हो रहे हैं, वह भी मुझे मालूम है। साथ ही इस बातसे भी मैं परिचित हूँ कि कामासक्तिके कारण ही इन दिनों सुग्रीवका मन दूसरे किसी काममें नहीं लगता। आप जो क्रोधके वशीभूत हो गये हैं, इससे जान पड़ता है कि कामके अधीन हुए पुरुषकी स्थितिका आपको बिल्कुल ज्ञान नहीं है। [ वानरकी तो बात ही क्या है,] कामासक्त मनुष्यको भी देश-काल और अर्थ-धर्मका ज्ञान नहीं रह जाता। वानरराज सुग्रीव विषय-भोगमें आसक्त होकर इस समय मेरे ही पास थे। कामके आवेशमें उन्होंने अपनी लज्जाका परित्याग कर दिया है, तो भी उन्हें अपना भाई समझकर आप क्षमा कीजिये। जो निरन्तर धर्म और तपस्यामें ही संलग्न रहते हैं, जिन्होंने मोहको दूर भगा दिया है, वे भी कभी-कभी विषयाभिलाषी हो जाते हैं; फिर सुग्रीव तो स्वभावसे ही चञ्चल वानर हैं, उसपर भी अब इन्हें राज्य मिल गया है; ऐसी दशामें ये सुखभोगमें क्यों न आसक्त होंगे? नरश्रेष्ठ! यद्यपि सुग्रीव इस समय कामके गुलाम हो रहे हैं, तथापि इन्होंने आपका कार्य सिद्ध करनेके लिये बहुत पहलेसे उद्योग प्रारम्भ करनेकी आज्ञा दे रखी है, जिसके फलस्वरूप इस समय विभिन्न पर्वतोंपर निवास करनेवाले लाखों और करोड़ों वानर, जो इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ तथा महान् पराक्रमी हैं, यहाँ उपस्थित हुए हैं। महाबाहो! [ दूसरेकी स्त्रियोंको देखना अनुचित समझकर जो आप भीतर नहीं आये, बाहर ही खड़े रह गये—इसके द्वारा ] आपने सदाचारकी रक्षा की है। अब भीतर आइये।'

ताराके आग्रह और जल्दी मचानेके कारण महाबाहु लक्ष्मण सुग्रीवके अन्तःपुरमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, एक सोनेके सिंहासनपर बहुमूल्य बिछौना बिछा है और वानरराज सुग्रीव सूर्यके समान तेजस्वी स्वरूप धारण किये उसके ऊपर विराजमान हैं। उस समय दिव्य आभूषणोंके कारण उनके शरीरकी विचित्र शोभा हो रही थी। वे दिव्य रूपमें दिखायी दे रहे थे। यशस्वी सुग्रीव दिव्य मालाओं और दिव्य वस्त्रोंसे सुशोभित थे तथा दिव्य आभूषणों और मालाओंसे अलंकृत युवती स्त्रियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरे खड़ी थीं। उनकी ओर देखते ही लक्ष्मणकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे बेरोक-टोक भीतर घुस आये थे। उन नरश्रेष्ठको क्रोधसे भरा देख सुग्रीवकी सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो उठीं और वे सुवर्णका सिंहासन छोड़कर कूद पड़े। उनके आसनसे उतरते ही रुमा आदि स्त्रियाँ भी उतरकर खड़ी हो गयीं। श्रीमान् लक्ष्मण आँखें लाल किये इधर-उधर टहलने लगे। सुग्रीव हाथ जोड़े उनके निकट जाकर खड़े हो गये। तब लक्ष्मणने सुग्रीवसे कहा—'वानरराज! धैर्यवान्, कुलीन,

दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और सत्यवादी राजाका ही संसारमें आदर होता है। जो राजा अधर्ममें स्थित होकर उपकारी मित्रोंके सामने झूठी प्रतिज्ञा करता है, उससे बढ़कर क्रूर कौन होगा। जो मित्रोंके द्वारा अपना कार्य सिद्ध करके बदलेमें उनका उपकार नहीं करता, वह कृतघ्न एवं सब प्राणियोंके लिये वध करने योग्य है। कृतघ्नको देखकर कुपित हुए ब्रह्माजीने सब लोगोंके लिये आदरणीय जो श्लोक कहा है, वह तुम्हें बता रहा हूँ; सुनो। गोहत्यारा, शराबी, चोर और व्रत-भंग करनेवालेके लिये सत्पुरुषोंने प्रायश्चित्तका विधान किया है; किन्तु कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं बताया है। * तुम अनार्य,

* गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा। निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥ (३४। १२)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतघ्न और मिथ्यावादी हो। श्रीरामचन्द्रजीकी सहायतासे तुमने पहले अपना काम तो बना लिया; किन्तु जब उनके लिये सहायता करनेका अवसर आया तो तुम कुछ नहीं करते। तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो चुका है, अतः अब तुम्हें सीताकी खोजके लिये प्रयत्न करना चाहिये; परन्तु तुम्हारी दशा यह है कि अपनी प्रतिज्ञाको झूठी करके विषय-भोगोंमें लिप्त हो रहे हो। महाभाग श्रीरामचन्द्रजी परम महात्मा और दयालु हैं, अतएव उन्होंने तुमको वानरोंका राज्य दे दिया। यदि तुम उनके उपकारको नहीं समझोगे, तो शीघ्र ही उनके तीखे बाणोंका निशाना बनकर वालीका दर्शन करोगे। सुग्रीव! वाली मारा जाकर जिस रास्तेसे गया है, वह आज भी बंद नहीं हुआ है; इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञापर डटे रहो, वालीके मार्गपर न जाओ।'

## ताराका लक्ष्मणको शान्त करना, सुग्रीवका क्षमा माँगना तथा पृथ्वीभरके वानरोंको एकत्रित करनेके लिये दुबारा दूत भेजना

लक्ष्मण अपने तेजके कारण प्रज्वलित-से हो रहे थे। उनके ऐसा कहनेपर चन्द्रमुखी तारा बोली—'कुमार लक्ष्मण! आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। सुग्रीव वानरोंके राजा हैं, अतः इनके प्रति कठोर वचन बोलना उचित नहीं है। विशेषतः आप-जैसे सुहृद्‌के मुखसे तो ये कदापि कटु वचन सुननेके अधिकारी नहीं हैं। वीरवर! कपिराज सुग्रीव न कृतघ्न हैं, न शठ हैं, न क्रूर हैं, न असत्यवादी हैं और न कुटिल ही हैं। इन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा किये हुए उपकारको, जो युद्धमें दूसरोंके लिये सर्वथा दुष्कर है, भुलाया नहीं है। भगवान् श्रीरामकी ही कृपासे सुग्रीवने वानरोंके अक्षय राज्यको, यशको और रुमा तथा मुझको भी प्राप्त किया है। पहले इन्होंने बड़ा दुःख उठाया है। अब इस उत्तम सुखको पाकर इन्हें समयका ज्ञान ही नहीं रहा। अबतक काम-भोगसे इनकी तृप्ति नहीं हुई है [ इसीलिये इनसे कुछ असावधानी हो गयी ]। अतः श्रीरामचन्द्रजीको इनका अपराध क्षमा करना चाहिये। तात लक्ष्मण! यथार्थ बातको जाने बिना साधारण मनुष्योंकी भाँति सहसा क्रोधके अधीन नहीं होना चाहिये। धर्मज्ञ! मैं हृदयसे सुग्रीवके लिये आपसे कृपाकी याचना करती हूँ। आप क्रोधसे उत्पन्न हुए इस महान् क्षोभका त्याग कीजिये। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये रुमाका, मेरा, कुमार अङ्गदका तथा धन-धान्य और पशुओंसहित सम्पूर्ण राज्यका भी परित्याग कर सकते हैं। ये उस अधम राक्षसका वध करके श्रीरामको सीतासे अवश्य मिलायेंगे। लङ्कामें सौ हजार करोड़, छत्तीस अयुत,* छत्तीस हजार और छत्तीस सौ राक्षस रहते हैं। वे सब-के-सब इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले तथा दुर्जय हैं। उन सबका संहार किये बिना रावणका, जिसने मिथिलेशकुमारी सीताका अपहरण किया है, वध नहीं हो सकता और अकेले उन राक्षसोंसे युद्ध करके उन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता। वानरराज वाली राक्षसोंकी इस संख्यासे परिचित थे। उन्होंने मुझे बताया था। रावणने इतनी सेनाका संग्रह कैसे किया—यह तो मुझे नहीं मालूम है; किन्तु इस संख्याको मैंने उनके मुँहसे सुना था। वही इस समय आपको बता रही हूँ। आपकी सहायताके लिये सुग्रीवने बहुतेरे श्रेष्ठ वानरोंको असंख्य वानर-वीरोंकी सेना एकत्रित करनेके लिये भेज रखा है। उन महाबली और पराक्रमी वीरोंके आनेकी ये प्रतीक्षा कर रहे हैं। अतएव भगवान् श्रीरामका कार्य सिद्ध करनेके लिये अभी नगरसे बाहर नहीं निकल सके हैं। सुग्रीवने उन सबके एकत्रित होनेके लिये पहलेसे ही जो अवधि निश्चित कर रखी है, उसके अनुसार उन समस्त महाबली वानरोंको आज ही यहाँ उपस्थित हो जाना चाहिये। दस अरब रीछ, एक अरब लंगूर जातिके वानर तथा और भी कई करोड़ तेजस्वी वानर आज आपकी सेवामें आ जायँगे। अतः आप अपने कोपका परित्याग करें। आपका मुख क्रोधसे तमतमा उठा है और आँखें लाल हो रही हैं, यह देखकर वानरराजकी स्त्रियोंको तनिक भी शान्ति नहीं मिलती है। हम सब लोगोंको वालीके वधकी भाँति ही भयकी आशङ्का हो रही है।'

ताराकी विनययुक्त धर्मानुकूल बातें सुनकर कोमल स्वभाववाले लक्ष्मणने उन्हें स्वीकार किया। तब वानरोंके राजा सुग्रीवका लक्ष्मणकी ओरसे भय जाता रहा और

* अयुत दस सहस्रको कहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे उन्हें प्रसन्न करते हुए नम्रतापूर्वक बोले—'सुमित्रानन्दन ! मेरी श्री, कीर्ति तथा सदासे चला आता हुआ वानरोंका राज्य—ये सब नष्ट हो चुके थे । भगवान् श्रीरामकी ही कृपासे मुझे पुनः इन सबकी प्राप्ति हुई है । वे अपने कर्मोंसे सर्वत्र विख्यात हैं, देवता हैं । उनके उपकारका अंशतः बदला भी कौन चुका सकता है ? धर्मात्मा श्रीराम अपने ही तेजसे रावणका वध करके सीताको प्राप्त करेंगे । मैं तो केवल सहायक रहूँगा । जिन्होंने एक ही बाणसे सात बड़े-बड़े वृक्ष, पर्वत और पृथ्वीको भी विदीर्ण कर दिया था, उनको किसी दूसरे सहायककी आवश्यकता भी क्या है ? जिनके धनुषकी टङ्कारसे पर्वतोंसहित पृथ्वी काँप उठती है, उन्हें सहायकोंसे क्या लेना है ? मैं तो वैरी रावणका वध करनेके लिये अग्रगामी सैनिकोंसहित यात्रा करनेवाले महाराज रामके पीछे-पीछे चलूँगा । विश्वास अथवा प्रेमके कारण यदि इस दाससे कुछ अपराध हो गया हो, तो आप उसे क्षमा करें; क्योंकि ऐसा कोई सेवक नहीं है, जिससे कभी कोई अपराध होता ही न हो ।'

महात्मा सुग्रीवके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण प्रसन्न हो गये और बड़े प्रेमसे बोले—'वानरराज ! तुम्हारा जो प्रभाव है और तुम्हारे हृदयमें जो इतना शुद्ध भाव है, इससे तुम वानरराजकी उत्तम लक्ष्मीका सदा ही उपभोग करनेके अधिकारी हो । परम प्रतापी भगवान् श्रीराम तुम्हारी सहायतासे शीघ्र ही अपने शत्रुओंका संहार करेंगे । इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है । किन्तु वीरवर ! अब तुम शीघ्र ही मेरे साथ इस पुरीसे बाहर निकलो । तुम्हारे मित्र अपनी पत्नीके अपहरणसे बहुत दुखी हैं । उन्हें चलकर सान्त्वना दो । सखे ! शोक-मग्न श्रीरामके वचनोंको सुनकर जो मैंने तुम्हारे प्रति कठोर वचन कहे हैं, उनके लिये मुझे क्षमा करो ।' महात्मा लक्ष्मणने जब ऐसा कहा, तो सुग्रीव अपने पास ही खड़े हुए हनुमान्‌जीसे इस प्रकार बोले—'महेन्द्र, हिमवान्, विन्ध्याचल, कैलास तथा श्वेत शिखरोंवाले मन्दराचल—इन पाँच पर्वतोंपर, समुद्रके उस पार पश्चिम दिशाके पर्वतोंपर, उदयगिरि और अस्त-गिरिपर, पद्माचलके वनमें, अञ्जनपर्वतपर, मेरुके आसपासकी पर्वतमालाओंपर, धूम्रगिरि और महारुण पर्वतपर तथा सुगन्धसे परिपूर्ण एवं तपस्वियोंके आश्रमोंसे सुशोभित बड़े-बड़े रमणीय वनोंमें—समूची पृथ्वीपर जो-जो महापराक्रमी और भयंकर वानर रहते हों, उन सबको साम-दान आदि उपायोंके द्वारा बुलवाओ । इस कार्यमें वेगशाली वानरोंकी सहायता लो । मेरी आज्ञासे पहले जो महान् वेगवाले वानर भेजे गये हैं, उनको जल्दी करनेके लिये तुम पुनः बहुत-से श्रेष्ठ वानर तैनात करो । जो मेरी आज्ञाके अनुसार दस दिनके भीतर यहाँ न आ जायँ, उन दुरात्माओंको मार डालना चाहिये; क्योंकि वे राजाज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले हैं ।'

वानरराज सुग्रीवकी बात सुनकर वायुपुत्र हनुमान्‌जीने सम्पूर्ण दिशाओंमें बहुत-से पराक्रमी वानरोंको भेजा । राजाकी आज्ञा पाकर वे सब वानर तत्काल आकाशमार्गसे चल दिये । उन्होंने समुद्रों, पर्वतों, वनों और सरोवरोंपर रहनेवाले सम्पूर्ण वानरोंसे श्रीरामचन्द्रजीका कार्य करनेके लिये चलनेको कहा । अपने सम्राट् सुग्रीवका, जो मृत्यु एवं कालके समान भयानक दण्ड देनेवाले थे, आदेश सुनकर वे सभी वानर भयभीत हो गये और तुरंत ही किष्किन्धाकी ओर प्रस्थित हुए । कज्जलगिरिसे तीन करोड़ वानर निकले, जो काजलके ही समान काले और महान् बली थे । जहाँ सूर्यदेव अस्त होते हैं, वहाँसे सोनेके समान रंगवाले दस करोड़ वानर चले । कैलास-पर्वतके शिखरोंसे सिंहके अयालकी भाँति सफेद रंगवाले दस अरब वानर आये । हिमालय-पर्वतपर रहकर फल-मूलसे जीविका चलानेवाले वानरोंकी एक नील सेना वहाँ उपस्थित हुई । विन्ध्याचल-पर्वतसे दस अरब वानर बड़ी तेजीके साथ किष्किन्धामें आये । उन सबके शरीर मङ्गल-ग्रहकी भाँति लाल थे । उनके रूप और कर्म दोनों ही भयंकर थे । क्षीरसमुद्रके किनारे और तमाल-वनमें नारियल खाकर रहने-वाले वानर इतनी संख्यामें आये कि उनकी गणना नहीं हो सकती थी । वनोंसे, गुफाओंसे और नदियोंके किनारोंसे असंख्य महाबली वानर एकत्रित हुए । जो वानर शीघ्र आनेके लिये प्रेरणा करनेको किष्किन्धासे दुबारा भेजे गये थे, वे सब भूमण्डलके सम्पूर्ण वानरोंको चलनेका आदेश देकर उनके पहुँचनेके पहले ही सुग्रीवके पास आ गये; क्योंकि उनकी चाल बड़ी तेज थी । उन्होंने सब प्रकारकी ओषधियाँ और फल-मूल लाकर सुग्रीवको भेंट किये और इस प्रकार कहा—'हमलोग सभी पर्वतों, नदियों और वनोंमें घूम आये । भूमण्डलके समस्त वानर आपकी आज्ञासे यहाँ आ रहे हैं ।' उनकी बात सुनकर वानरराज सुग्रीवको बड़ी प्रसन्नता हुई ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

# सुग्रीवका लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीके पास जाना, असंख्य वानरोंका समागम तथा सुग्रीवका पूर्व-दिशामें सीताकी खोजके लिये वानरोंको भेजना

तदनन्तर लक्ष्मण वानरश्रेष्ठ सुग्रीवको प्रसन्न करते हुए विनीत वचन बोले—'सौम्य ! यदि तुम्हारी रुचि हो तो अब हमलोग किष्किन्धासे बाहर निकलें [ और श्रीरामचन्द्रजीके पास चलें ]।' लक्ष्मणका उत्तम वचन सुन सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'अच्छा ऐसा ही हो । चलिये, चलें; मुझे तो आपकी आज्ञाका पालन करना है।' यों कहकर सुग्रीवने तारा आदि स्त्रियोंको विदा किया और उच्च स्वरसे पुकारकर श्रेष्ठ वानरोंको अपने पास बुलाया । उनकी आवाज सुनकर वे वानर, जिनसे अन्तःपुरकी स्त्रियोंको कोई पर्दा नहीं था, हाथ जोड़े सेवामें उपस्थित हुए । तब सूर्यके समान तेजस्वी राजा सुग्रीवने उनसे कहा—'वानरो ! शीघ्र मेरी पालकी ले आओ ।' आज्ञा पाकर तेज चलनेवाले वानर तुरंत गये और एक सुन्दर पालकी ले आये । शिविकाको उपस्थित देख वानरराजने कहा—'कुमार लक्ष्मण ! आप शीघ्र इसपर सवार होइये ।' ऐसा कहकर वे सूर्यके समान देदीप्यमान उस सोनेकी पालकीमें लक्ष्मणके साथ बैठे । फिर बहुत-से वानर पालकी ढोनेमें लग गये । सुग्रीवके ऊपर श्वेत छत्र लगाया गया । सब ओरसे सफेद चँवर डुलाये जाने लगे । शङ्ख और भेरीकी ध्वनिके साथ राजा सुग्रीव नगरसे बाहर निकले और उस स्थानको चले, जहाँ भगवान् श्रीराम निवास करते थे । वहाँ पहुँचकर वे लक्ष्मणसहित पालकीसे उतरे और श्रीरामके पास जा हाथ जोड़कर खड़े हो गये । उनके अनुयायी वानरोंने भी हाथ जोड़े । वानरोंकी विशाल सेनाको उपस्थित देख श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवपर बहुत प्रसन्न हुए । चरणोंमें मस्तक रखकर पड़े हुए वानरराजको उन्होंने हाथसे पकड़कर उठाया और बड़े आदर तथा प्रेमके साथ उन्हें हृदयसे लगाया । तत्पश्चात् धर्मात्मा श्रीरामने उन्हें बैठनेकी आज्ञा दी और कहा—'वानरश्रेष्ठ ! जो धर्म, अर्थ और कामका सदा उचित समयपर सेवन करता है, वही श्रेष्ठ राजा है; किन्तु जो धर्म और अर्थका त्याग करके केवल कामका ही सेवन करता है, वह वृक्षकी शाखापर सोये हुए मनुष्यके समान है, गिरनेपर ही उसकी आँख खुलती है । जो राजा शत्रुओंके वध और मित्रोंके संग्रहमें संलग्न रहकर योग्य समयपर धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता है, वह धर्मके फलका भागी होता है । यह हमलोगोंके लिये उद्योगका समय आया है । तुम इन वानरों और मन्त्रियोंके साथ इस विषयपर विचार करो ।'

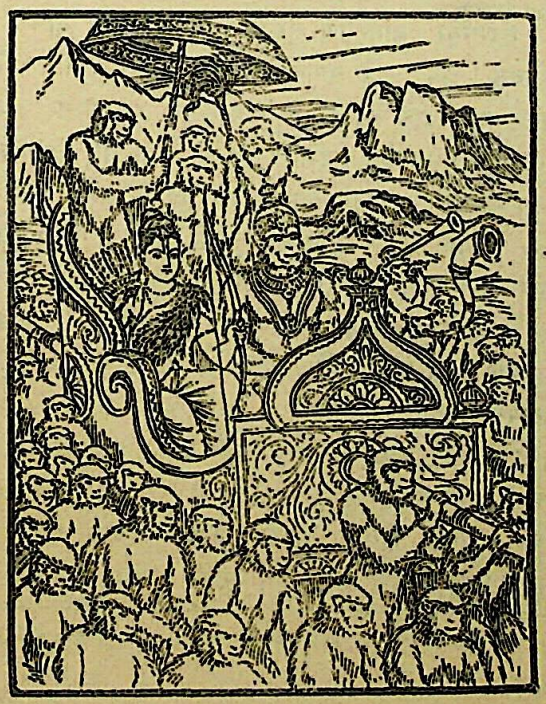

यह सुनकर सुग्रीवने भगवान् श्रीरामसे कहा—'महाबाहो! मेरी श्री, कीर्ति और सदासे चला आनेवाला वानरोंका राज्य—ये सब नष्ट हो चुके थे । आपकी ही कृपासे ये पुनः मुझे प्राप्त हुए हैं ।' सुग्रीवके ऐसा कहनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी उन्हें दोनों भुजाओंसे आलिङ्गन करके बोले—'सखे ! जैसे सहस्रों किरणोंसे शोभा पानेवाले सूर्यदेव आकाशका अन्धकार दूर कर देते हैं, चन्द्रमा अपनी प्रभासे अँधेरी रातको भी उज्ज्वल कर देते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे समान पुरुष भी यदि अपने मित्रोंका विषाद दूर करके उन्हें प्रसन्न कर दें तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । मैं जानता हूँ, तुम सदा प्रिय बोलनेवाले हो; तुम्हारी सहायता पाकर मैं संग्राममें अपने सम्पूर्ण शत्रुओंको जीत लूँगा । तुम्हीं मेरे हितैषी मित्र हो, तुम्हीं मेरी सहायता कर सकते हो । राक्षसाधम रावणने अपना नाश करनेके लिये ही मिथिलेशकुमारी सीताका अपहरण किया है । अब शीघ्र ही मैं उसे अपने तीखे बाणोंका निशाना बनाऊँगा ।'

श्रीराम और सुग्रीवमें इस प्रकार बातें हो रही थीं । इतनेमें ही बड़े जोरकी धूल उठी, जिसने आकाशमें फैलकर



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंको ढक दिया। फलतः सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धकार छा गया। पर्वत और वनोंके साथ समूची पृथ्वी डगमग होने लगी। थोड़ी ही देरमें पर्वतके समान शरीर और तीखी दाढ़ोंवाले असंख्य महाबली वानरोंसे वहाँकी सारी भूमि आच्छादित हो गयी। पलक मारते-मारते अरबों वानरोंसे घिरे हुए अनेकों यूथपति वहाँ आ पहुँचे। नदी, पर्वत, वन और समुद्र—सभी स्थानोंके महाबली वानर जुटे थे। कोई बालसूर्यके समान लाल रंगके थे तो कोई चन्द्रमाके समान उज्ज्वल। कितने ही वानर कमलके केसरोंकी भाँति पीले रंगके थे और कितने ही सफेद दिखायी देते थे। उस समय परम कान्तिमान् शतबलि नामका वीर वानर एक खरब वानरोंके साथ दृष्टिगोचर हुआ। तत्पश्चात् सुवर्णशैलके समान सुन्दर एवं विशाल शरीरवाले ताराके महाबली पिता कई हजार करोड़ वानरोंके साथ उपस्थित देखे गये। इसके बाद सुग्रीवके श्वशुर एवं रुमाके पिता वहाँ आये। उनके साथ भी दस अरब वानर थे। तदनन्तर हनुमान्‌जीके पिता श्रीमान् केसरी दिखायी पड़े। उनके शरीरका रंग कमलके केसरोंकी भाँति पीला था और वे कई हजार वानरोंसे घिरे हुए थे। फिर लंगूर जातिवाले वानरोंके महाराज गवाक्षका दर्शन हुआ, जो भयानक पराक्रम दिखानेवाले थे। उनके साथ दस अरब वानरोंकी सेना थी। शत्रुओंका नाश करनेवाले धूम्र भयंकर वेगशाली बीस अरब रीछोंकी सेना लेकर आये। महापराक्रमी यूथपति पनस तीन करोड़ वानरोंके साथ उपस्थित हुए। वे सब-के-सब बड़े भयंकर तथा पर्वताकार दिखायी देते थे। यूथपति नीलका शरीर भी बड़ा विशाल था, वे दस करोड़ कपियोंसे घिरे हुए थे। सेनापति गवय, जो बड़े ही पराक्रमी थे, पाँच करोड़ वानरोंके साथ उपस्थित हुए। महाबलवान् यूथपति दरीमुख दस अरब कपियोंके साथ आकर सुग्रीवसे मिले। मैन्द और द्विविद—ये दोनों भाई अश्विनीकुमारोंके पुत्र तथा बड़े बलवान् थे, वे दस-दस अरबकी सेनाके साथ वहाँ दिखायी पड़े। गज नामक बलवान् वीर तीन करोड़ वानरोंके साथ आया था। रीछोंके राजा जाम्बवान् बड़े ही तेजस्वी थे, ये दस करोड़ रीछोंकी सेना लेकर उपस्थित हुए। रुमण नामका तेजस्वी वानर एक अरब पराक्रमी वानरोंको साथ लिये बड़ी तीव्र गतिसे वहाँ आया। तदनन्तर यूथपति गन्धमादन उपस्थित हुए। उनके पीछे एक पद्म वानरोंकी फौज थी। इसके बाद युवराज अङ्गद आये, ये अपने पिताके ही समान पराक्रमी थे। इनके साथ एक हजार पद्म और सौ शङ्कु[1] वानरोंकी सेना थी। तत्पश्चात् तार नामक वानर पाँच करोड़ भयंकर पराक्रमी वीरोंके साथ दूरसे आता दिखायी दिया। इन्द्रभानु नामका वीर सेनापति, जो बड़ा ही बुद्धिमान् था, ग्यारह करोड़ वानरोंके साथ उपस्थित देखा गया। रम्भ नामका वानर ग्यारह हजार एक सौ वीरोंके साथ आया था। वीर सेनापति दुर्मुख दो करोड़ वानरोंसे घिरे दिखायी दिये। इसके बाद हनुमान्‌जीका दर्शन हुआ, उनके साथ कैलास-शिखरके समान श्वेत शरीरवाले भयंकर पराक्रमी वानर दस अरबकी संख्यामें मौजूद थे। फिर महापराक्रमी नल उपस्थित हुए, जो एक अरब, एक लाख बंदरोंसे घिरे हुए थे। दरीमुख नामके एक और सेनापति थे, उनके साथ दस करोड़ वानरोंका झुंड था। इनके सिवा शरभ, कुमुद, वह्नि आदि इतने यूथपतियोंका जमाव हुआ कि जिनकी कोई गणना नहीं की जा सकती। अपनी भुजाओंके बलसे शोभित होनेवाले बहुतेरे श्रेष्ठ वानरोंने [जो भीड़के कारण सुग्रीवके पासतक न पहुँच सके थे] अनेकों प्रकारकी बोली बोलकर तथा मस्तक झुकाकर वानरराजको अपने आगमनकी सूचना दी। कितने ही उनके पास गये और यथोचित रूपसे मिलकर लौटे तथा कई वानर सुग्रीवसे मिलनेके बाद उनके पास ही हाथ जोड़कर खड़े रहे। वानरराज सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको उन सभी वानरोंके आगमनका समाचार निवेदन किया और यथासम्भव सबका उन्हें परिचय दिया।

तदनन्तर वानरराज सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'भगवन्! अब इन्द्रके समान महाबली वानर-यूथपति यहाँ आकर पड़ाव डाले बैठे हैं। ये सब-के-सब इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हैं। इनमेंसे कई तो दैत्यों और दानवोंके समान भयंकर हैं। इनके साथ अनेकों देशोंमें भ्रमण करनेवाले, बलवान् तथा भयानक पराक्रमी वानर हैं। अनेकों युद्धोंमें इन वानर-वीरोंकी शूरवीरताका परिचय मिल चुका है। ये बलके भंडार हैं, युद्धसे थकते ही नहीं। ये अपने पराक्रमके लिये प्रसिद्ध और उद्योग करनेमें श्रेष्ठ हैं। अनेकों पर्वतोंपर निवास करनेवाले ये सभी वानर आपके सेवक हैं। इनके अंदर जल और थल दोनोंमें समान रूपसे चलनेकी शक्ति है। आप इनके गुरु—स्वामी हैं। ये सब आपकी आज्ञामें रहकर आपके हितका साधन करेंगे। इनमें आपका मनोरथ सिद्ध करनेकी शक्ति है। नरश्रेष्ठ! अब इस समय

१. एक शङ्कु दस लाख करोड़ अर्थात् एक नीलके बराबर माना जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आप जो भी कर्तव्य उचित समझते हों, उसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।'

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर दशरथ-नन्दन श्रीरामने उन्हें छातीसे लगाकर कहा—'सौम्य! पहले इस बातका पता लगाना चाहिये कि विदेहकुमारी सीता जीवित है या नहीं तथा वह देश, जिसमें रावण निवास करता है, कहाँ है। जब सीताके जीवित होनेका और रावणके निवासस्थानका निश्चित पता मिल जायगा, उस समय जो समयोचित कर्तव्य होगा, उसका मैं तुम्हारे साथ मिलकर निश्चय करूँगा। वानरराज! इस कार्यको सिद्ध करनेमें न तो मैं समर्थ हूँ और न लक्ष्मण ही। इसकी सिद्धि तुम्हारे ही हाथ है, तुम्हीं इसे पूर्ण करनेमें समर्थ हो। मेरे कार्यका भलीभाँति निश्चय करके तुम्हीं वानरोंको उचित आज्ञा दो। वीरवर! मेरा कार्य क्या है, इसे तुम ठीक-ठीक जानते हो—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। लक्ष्मणके बाद तुम्हीं मेरे दूसरे सुहृद् हो। तुम पराक्रमी, बुद्धिमान्, समयोचित कर्तव्यके ज्ञाता, हितमें संलग्न रहनेवाले, हितैषी बन्धु, विश्वासपात्र तथा मेरे प्रयोजनको अच्छी तरह समझनेवाले हो।'

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर सुग्रीवने उनके और लक्ष्मणके सामने ही विनत नामक यूथपतिको बुलाकर कहा—"वानरश्रेष्ठ! तुम देश और कालके अनुसार नीतिका प्रयोग करनेवाले और कार्यका निश्चय करनेमें चतुर हो। तुम्हारे साथ चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी वानर हैं। तुम एक लाख वेगवान् वानरोंके साथ पूर्व-दिशाकी ओर जाओ और वहाँ पर्वत, वन तथा काननोंमें विदेहकुमारी सीता तथा रावणके निवास-स्थानका पता लगाओ। पहाड़के दुर्गम प्रदेशोंमें, वनोंमें और नदियोंमें खोज करो। भागीरथी गङ्गा, सरयू, कौशिकी, कलिन्दपुत्री यमुना, सरस्वती, सिन्धु, शोणभद्र, मही तथा कालमही आदि नदियोंके किनारे ढूँढ़ो। ब्रह्ममाल, विदेह, मालव, काशी, कोसल, मगध, पुण्ड्र तथा अङ्ग आदि देशोंमें छान-बीन करो। समुद्रके भीतर प्रविष्ट हुए पर्वतोंपर, उसके अन्तर्वर्ती द्वीपोंके विभिन्न नगरोंमें तथा मन्दराचलकी चोटीपर बने हुए महलोंमें भी सीताका अनुसन्धान करो। जिन द्वीपोंमें पर्वतोंपर होकर जाना पड़ता है, जहाँ समुद्रको लाँघकर अथवा नाव आदिके द्वारा पहुँचा जाता है, उन सब स्थानोंमें तलाश करना चाहिये। इसके सिवा सात राज्योंसे सुशोभित यवद्वीप, सुवर्णद्वीप और रूप्यकद्वीपमें भी, जहाँ सोनेकी खानें हैं, तुम-लोग ढूँढ़नेका प्रयत्न करो। यवद्वीपको लाँघकर आगे जानेपर एक शिशिर नामका पर्वत मिलता है, जिसके ऊपर देवता और दानव निवास करते हैं। उस पर्वतकी दुर्गम गुफाओंमें, झरनोंके आस-पास तथा जंगलोंमें श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी पत्नी जानकीका अन्वेषण करो। तदनन्तर तुमलोग इक्षु समुद्रके भयंकर द्वीपोंको देखना। उस समुद्रमें हवाके वेगसे उत्ताल तरङ्गें उठती रहती हैं, जिनसे वह बड़ा डरावना जान पड़ता है। उसमें बहुत-से विशालकाय असुर निवास करते हैं। वे बहुत दिनोंके भूखे होते हैं और छाया पकड़कर ही प्राणियोंको अपने पास खींच लेते हैं। यही उनका नित्यका आहार है। इसके लिये ब्रह्माजीसे उन्हें अनुमति मिल चुकी है। वहाँसे लाल पानीवाले लोहित सागरके तटपर जाना। वहाँ [ शाल्मली द्वीपका चिह्नभूत] कूटशाल्मली नामक बहुत बड़ा वृक्ष दिखायी देगा। उसके पास ही विश्वकर्माका बनाया हुआ विनता-नन्दन गरुड़का एक सुन्दर भवन है, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित और कैलास पर्वतके समान विशाल एवं मनोरम है। उस द्वीपमें पर्वतके समान शरीरवाले मन्देह नामक राक्षस रहते हैं, जो बड़े भयानक हैं। शाल्मलीद्वीपसे आगे बढ़नेपर सफेद बादलोंकी-सी आभावाले क्षीरसमुद्रका दर्शन होगा। उस समुद्रके बीचमें ऋषभ नामसे प्रसिद्ध एक बहुत ऊँचा पर्वत है, जो सफेद रंगका है। उसके ऊपर सुदर्शन नामका सरोवर है, जिसमें चाँदीके रंगके कमल खिले हुए हैं। उनके केसर सुवर्णमय होते हैं, जो सदा दमकते रहते हैं। वह सरोवर राजहंसोंसे भरा रहता है। देवता, चारण, यक्ष, किन्नर और अप्सराएँ बड़ी प्रसन्नताके साथ जलविहार करनेके लिये वहाँ आया करती हैं। वानरो! क्षीरसागर लाँघकर जब तुमलोग आगे बढ़ोगे तो स्वादिष्ट जलसे भरा हुआ समुद्र दिखायी देगा। उसके उत्तर तेरह योजनकी दूरीपर सुवर्णमय शिलाओंसे सुशोभित कनककी कमनीय कान्ति धारण करने-वाले एक बहुत ऊँचा पर्वत मिलेगा। उसके शिखरपर इस पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् अनन्त बैठे दिखायी देंगे। उनका श्रीविग्रह चन्द्रमाके समान गौर वर्णका है तथा उनके हजार मस्तक हैं। पर्वतके ऊपर उनकी ताड़के चिह्नसे युक्त ध्वजा सुवर्णमय फहराती रहती है। उसके आगे परम सुन्दर उदयगिरि है। वह भी सुवर्णका ही है। उसका गगनचुम्बी शिखर सौ योजन लंबा है। वहाँके साल, ताड़, तमाल और फूलोंसे लदे कनेर आदि वृक्ष भी सुवर्णमय एवं दिव्य हैं। पूर्वकालमें वामन-अवतारके समय भगवान् विष्णुने अपना पहला पैर उदयगिरिपर रखा था और दूसरा मेरुगिरिके शिखरपर। सूर्यदेव उत्तरसे घूमकर जम्बूद्वीपकी परिक्रमा करते हुए जब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उदयगिरिपर आते हैं, तभी उनके दर्शन होते हैं। अतः उसका शिखर बहुत ही ऊँचा है। वहाँ वालखिल्य नामक वैखानस महर्षि रहते हैं। उदयगिरिके सामनेका द्वीप सुदर्शन नामसे प्रसिद्ध है। वहीं सूर्यदेवके आनेपर सम्पूर्ण लोकमें प्रकाश छा जाता है और समस्त प्राणियोंके नेत्र भलीभाँति देखनेमें समर्थ होते हैं। पहले वही इस पृथ्वी तथा सारे संसारका द्वार बना। उस पूर्व-द्वारमें ही सूर्यका उदय होता है। इसीलिये उसको पूर्व-दिशा कहते हैं। तुमलोग उदयगिरिके पृष्ठभागमें, कन्दराओंमें तथा झरनोंके आसपास विदेहकुमारी सीताके साथ रावणकी खोज करना। जिनको मैंने नहीं बतलाया है, उन पर्वतोंपर, कन्दराओंमें तथा नदियोंके किनारे भी पता लगाना। वानरो! उससे आगे पूर्व-दिशा अगम्य है, उधर देवता रहते हैं। केवल उदयगिरि-तक ही वानरोंकी पहुँच हो सकती है। उसके आगे न तो सूर्यका प्रकाश है और न देश आदिकी कोई सीमा ही है। अतः आगेकी भूमिके विषयमें मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। तुमलोग उदयाचलतक जाकर सीता और रावणके स्थानका पता लगाना और एक मास पूरा होते-होते लौट आना। एक महीनेसे अधिक न ठहरना। जो अधिक कालतक वहाँ रह जायगा, वह मेरे द्वारा मारा जायगा।'

## सुग्रीवका दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशामें वानरोंको भेजना

इस प्रकार वानरोंकी बहुत बड़ी सेनाको पूर्व दिशामें प्रस्थापित करके सुग्रीवने दक्षिण-दिशाकी ओर चुने हुए वानर-वीरोंको भेजा। अग्निपुत्र नील, वानरश्रेष्ठ हनुमान्, ब्रह्माजीके महापराक्रमी पुत्र जाम्बवान्, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मैन्द, द्विविद, गन्धमादन, उल्कामुख, अनङ्ग, हुताशनके दो पुत्र तथा अङ्गद आदि प्रधान-प्रधान वीरोंको, जो महान् वेग और पराक्रमसे सम्पन्न थे, वानरराजने दक्षिणकी ओर जानेकी आज्ञा दी। महाबली अङ्गद उन सब वानर-वीरोंके प्रधान बनाये गये। उस दिशामें जो-जो स्थान अत्यन्त दुर्गम थे, उनका भी सुग्रीवने उन्हें परिचय दिया।* फिर उन्होंने कहा—"तुमलोग सहस्रों शिखरोंसे सुशोभित विन्ध्यपर्वत, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णवेणी तथा महानदी आदि नदियों एवं मेखल, उत्कल, दशार्ण, अवन्ती, विदर्भ, ऋष्टिक, माहिषक, मत्स्य, कलिङ्ग तथा कौशिक आदि देशोंमें सब ओर देख-भाल करके पर्वत, नदी और गुफाओंसहित समूचे दण्डकारण्यमें छान-बीन करना। इसके बाद आन्ध्र, पौण्ड्र, चोल, पाण्ड्य तथा केरल आदि देशोंमें ढूँढ़ना। अनेकों धातुओंसे युक्त अगोमुख-पर्वतपर भी जाना। चन्दन-वनसे सुशोभित महागिरि मलयकी घाटियोंमें घूम फिरकर खोजना। तत्पश्चात् स्वच्छ जलवाली कावेरी नदीके आसपास ढूँढ़ना, फिर महागिरि मलयके शिखरपर बैठे हुए मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यका दर्शन करना और उन महात्माके प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देनेपर महानदी ताम्रपर्णीको पार करना। तत्पश्चात् समुद्रके तटपर जाकर [ उसे पार करनेके सम्बन्धमें ] तुमलोग अपने कर्तव्यका भलीभाँति निश्चय करना। वहाँ सागरके बीचमें अगस्त्यमुनिके द्वारा स्थापित किया हुआ एक सुवर्णमय सुन्दर पर्वत है, जो महेन्द्रगिरिके नामसे प्रसिद्ध है। देवता, ऋषि और यक्ष आदि उसकी शोभा बढ़ाया करते हैं। प्रत्येक पर्वके दिन वहाँ साक्षात् इन्द्र आया करते हैं। उसके सामने समुद्रके उस पार चार सौ कोसके विस्तारका द्वीप है। वहाँ मनुष्य नहीं जा सकते। वही वध करनेके योग्य दुरात्मा रावणका देश है। वहाँ पहुँचनेपर तुमलोग अपनी सारी शक्ति लगाकर सीताको ढूँढ़नेका विशेष प्रयत्न करना। दक्षिण-समुद्रके बीचमें अङ्गारका नामकी एक राक्षसी रहती है, जो छाया पकड़कर ही प्राणियोंको खींच लेती और उन्हें खा जाती है। वहाँसे आगे जानेपर सौ योजन विस्तृत समुद्रमें एक पुष्पितक नामका पर्वत मिलेगा, जो परम शोभासम्पन्न तथा सिद्ध-चारणोंसे सेवित है। उसके एक सुवर्णमय शिखरपर प्रतिदिन सूर्यदेव आया करते हैं। उस पर्वत-शिखरको कृतघ्न, निर्दयी और नास्तिक पुरुष नहीं देख पाते। वानरो! तुमलोग मस्तक झुकाकर उस पर्वतको प्रणाम करना और वहाँ सब ओर सीताको ढूँढ़ना। उससे आगे बढ़नेपर सूर्यवान् नामका पर्वत

* यहाँ दक्षिण दिशाका विभाग किष्किन्धासे न करके आर्यावर्तसे किया गया है। पूर्व-समुद्रसे पश्चिम-समुद्र और हिमालयसे विन्ध्य-पर्वतके बीचके भागको आर्यावर्त कहते हैं। सुग्रीवने दक्षिण-दिशाके जिन स्थानोंका परिचय दिया है, उनकी संगति आर्यावर्तसे ही दिशाका विभाजन करनेपर लगती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखायी देगा; वहाँ जानेका मार्ग बड़ा दुर्गम है और वह पुष्पितकसे छप्पन कोसकी दूरीपर है। सूर्यवान्‌को लाँघकर जब तुमलोग आगे जाओगे, तो तुम्हें वैद्युत नामका पर्वत मिलेगा। वहाँ उत्तम फल-मूल खाकर और मधु पीकर आगे जाना। फिर कुञ्जर नामक पर्वत दिखायी देगा, जहाँ विश्वकर्माका बनाया महर्षि अगस्त्यका एक सुन्दर भवन है, जिसका विस्तार एक योजन और ऊँचाई दस योजन है। वहीं सर्पोंकी भोगवती नामक नगरी है, जिसमें सर्पराज वासुकि निवास करते हैं। उस पुरीमें सीताकी अच्छी तरह खोज करना। वहाँसे आगे बढ़नेपर ऋषभ नामक महान् पर्वत मिलेगा, जहाँ दिव्य चन्दन उत्पन्न होता है। उससे आगे अत्यन्त भयानक पितृलोक है। वहाँ तुमलोग न जाना। वहाँ यमराजकी राजधानी है। बस, दक्षिण दिशामें इतनी ही दूर तुम्हें जाना और खोजना है, उससे आगे पहुँचना असम्भव है। वहाँ किसीकी गति नहीं है। इन सब स्थानोंमें तथा और जगहोंपर भी अच्छी तरह तलाश करके विदेहकुमारी सीताका पता लगाना। उसके बाद यहाँ लौट आना। जो एक महीनेमें लौटकर सबसे पहले यह कहेगा कि 'मैंने सीताजी-का दर्शन किया है,' वह मेरे समान वैभव पाकर भोग्य-पदार्थोंसे सम्पन्न हो सुखपूर्वक विहार करेगा। मुझे उससे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय न होगा। मैं उसे अपने प्राणोंसे भी बढ़कर मानूँगा।"

दक्षिण दिशाकी ओर वानरोंको भेजनेके पश्चात् सुग्रीवने ताराके पिता सुषेण नामक वानरके पास जा, उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—'आप सीताकी खोजके लिये पश्चिम दिशामें पधारें।' इसी प्रकार उन्होंने बुद्धि और पराक्रमसे सम्पन्न एवं गरुड़के समान तेजस्वी अर्चिष्मान् तथा अर्चिमाल्य आदि महाबली वानरोंको भी पश्चिम जानेकी आज्ञा दी और कहा—'कपिवरो! तुम सब लोग दो लाख वानरोंको साथ लेकर सुषेणजीकी प्रधानतामें विदेहनन्दिनी सीताका पता लगानेके लिये जाओ। सौराष्ट्र, बाह्लीक, चन्द्रचित्र तथा कुक्षि आदि देशोंमें, समृद्धिशाली प्रान्तोंमें तथा बड़े-बड़े नगरोंमें जा-जाकर खोजो। पश्चिमकी ओर बहनेवाली शीतल जलसे सुशोभित नदियों, तपोवनों, दुर्गम पर्वतों तथा जंगलोंमें भी ढूँढ़ो। पश्चिम दिशामें प्रायः मरुभूमि है। अत्यन्त ऊँची और ठंडी शिलाएँ हैं तथा पर्वतमालाओंसे घिरे हुए अनेकों दुर्गम प्रदेश हैं। उन सभी जगहोंपर सीताकी तलाश करके क्रमशः आगे बढ़ते हुए पश्चिम-समुद्रतक जाना और वहाँके प्रत्येक स्थानका निरीक्षण करना। सागरतटके पर्वतों और वनोंमें, मुरवीपत्तन और जटापुरमें, अवन्ती तथा अङ्गलेपा-पुरीमें, आलक्षित वनमें और बड़े-बड़े राज्यों तथा नगरोंमें पता लगाना। सिन्धु-नदी और समुद्रके सङ्गमपर सोमगिरि नामक एक महान् पर्वत है, जिसकी सौ चोटियाँ हैं। वह पर्वत ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे भरा है। उसकी चोटियोंपर सिंह नामक पक्षी रहते हैं, जो तिमि नामके विशालकाय मत्स्यों और हाथियोंको अपने घोंसलोंमें उठा लाते हैं। इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंको चाहिये कि वहाँके सब स्थान अच्छी तरह देख लें। वहाँसे आगे समुद्रके बीचमें पारियात्र पर्वतके सुवर्णमय शिखर दिखायी देंगे, जो सौ योजन विस्तृत हैं तथा जिनका दर्शन होना दूसरोंके लिये नितान्त कठिन है। वहाँ भी यत्नपूर्वक जानकीकी खोज करनी चाहिये। उसके पास ही वैदूर्य-मणिके रंगका और हीरेके समान कठोर एक बहुत ऊँचा पर्वत है, जो 'वज्रगिरि' के नामसे प्रसिद्ध है। अनेकों प्रकारके वृक्ष और लताएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। वह सुन्दर और चार सौ कोसके विस्तारका है। उसपर कई गुफाएँ हैं। उन सबमें प्रयत्नपूर्वक सीताका अनुसन्धान करना चाहिये। समुद्रके चतुर्थ भागमें चक्रवान् नामक पर्वत है, जहाँ विश्वकर्माने सहस्र अरोंवाले चक्रका निर्माण किया था। वहींसे पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु पञ्चजन और हयग्रीव नामक दानवोंका वध करके शङ्ख तथा चक्र ले आये थे। उससे आगे समुद्रकी अगाध जलराशिमें सुवर्णमय शिखरोंवाला वाराह नामक पर्वत है, जिसका विस्तार चौंसठ योजनकी दूरीमें है। वहाँ प्राग्ज्योतिष नामसे प्रसिद्ध सुवर्णमय नगर है, जिसमें दुष्टात्मा नरक नामक दानव निवास करता है। उस पर्वतके रमणीय शिखरोंपर तथा वहाँकी विशाल गुफाओंमें सीतासहित रावणकी तलाश करनी चाहिये। उस पर्वतको लाँघकर आगे जानेपर मेघगिरिका दर्शन होगा, जहाँ देवताओंने इन्द्रका अभिषेक किया था। देवराज इन्द्र सदा उस पर्वतकी रक्षा करते हैं। उससे आगे जानेपर सोनेके साठ हजार पर्वत मिलेंगे, जो सब ओरसे सूर्यके समान देदीप्यमान और फूलोंसे लदे सुवर्णमय वृक्षोंसे सुशोभित हैं। उन पर्वतमालाओंके बीचमें उनका राजा मेरुगिरि विराजमान है। वह पर्वतोंमें सबसे श्रेष्ठ है। पूर्वकालमें सूर्यदेवने प्रसन्न होकर मेरुगिरिको यह वर दिया था कि 'जो दिन-रात तुम्हारे आश्रयमें रहेंगे, वे मेरी कृपासे सुवर्णमय हो जायँगे। देवता, गन्धर्व और दानव—जो भी तुम्हारे ऊपर निवास करेंगे, वे सुवर्णके समान कान्तिमान् और मेरे भक्त हो जायँगे।' विश्वेदेव, वसु, मरुद्गण एवं अन्य देवता सायंकालके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समय मेरु-पर्वतपर आकर सूर्यदेवका उपस्थान करते हैं। उनके द्वारा भलीभाँति पूजित होकर भगवान् सूर्य सब प्राणियोंकी आँखोंसे ओझल होकर अस्ताचलको चले जाते हैं। मेरुसे अस्ताचल दस हजार योजनकी दूरीपर है; किन्तु सूर्यदेव आधे मुहूर्तमें ही वहाँ पहुँच जाते हैं। उसके शिखरपर विश्वकर्माका बनाया हुआ एक बहुत बड़ा दिव्य भवन है, जो सूर्यके समान देदीप्यमान दिखायी देता है। वह वरुणका निवास-स्थान है। मेरु और अस्ताचलके बीच एक स्वर्णमय ताड़का पेड़ है, जो बड़ा ही सुन्दर और बहुत ही ऊँचा है। उन सभी दुर्गम स्थानों, सरोवरों और नदियोंमें इधर-उधर सीतासहित रावणका अनुसन्धान करना चाहिये। मेरु-गिरिपर धर्मके ज्ञाता महर्षि मेरुसावर्णि रहते हैं, उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर तुमलोग मिथिलेशकुमारी सीताका पता पूछना। कपिवरो! पश्चिम दिशामें वहींतक वानर जा सकते हैं; उसके आगे न सूर्यका प्रकाश है और न किसी देश आदिकी सीमा ही। अतः वहाँसे आगेकी भूमिके विषयमें मुझे कोई जानकारी नहीं है। अस्ताचलतक जाकर रावणके स्थान और सीताका पता लगाओ तथा महीना पूरा होते-होते यहाँ अवश्य लौट आओ। एक महीनेसे अधिक न ठहरना। जो ठहरेगा, उसको मेरे हाथसे प्राणदण्ड मिलेगा। तुम्हारे साथ मेरे पूजनीय श्वशुरजी भी जायँगे। तुम सब लोग इनकी आज्ञाके अधीन रहना और इनकी सभी बातें ध्यानसे सुनना। ये सबसे बढ़कर बलवान् और मेरे श्वशुर हैं। अतः तुम सब लोगोंके लिये गुरुकी भाँति आदरणीय हैं। तुम सब इन्हें अपना प्रधान बनाकर पश्चिम दिशाकी राह लो।' सुग्रीवकी बातें अच्छी तरह सुनकर सुषेण आदि वानर उनकी अनुमति ले वरुणद्वारा सुरक्षित पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थित हुए।

इस प्रकार अपने श्वशुरको पश्चिम दिशाकी ओर जानेका सन्देश दे वानरराज सुग्रीव वीरवर शतबलिसे बोले—"वानरश्रेष्ठ! तुम अपने ही समान पराक्रमी एक लाख वानरोंकी सेना साथ लेकर मन्त्रियोंसहित उत्तर दिशाकी ओर, जो हिमालय पर्वतसे सुशोभित है, प्रस्थान करो और वहाँ सब ओर घूम-फिरकर श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी पत्नी सीताका पता लगाओ। महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने हमलोगोंका प्रिय कार्य किया है। उसका यदि कुछ बदला दिया जा सके, तो हमारा जीवन सफल हो जाय। तुम सब लोग बुद्धि और पराक्रमसे सम्पन्न हो, अतः अनेकों दुर्गम पर्वतों और नदियोंके तटपर जा-जाकर सीताकी खोज करो। उत्तरमें म्लेच्छ, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत[1], कुरु, मद्र, काम्बोज, यवन तथा शकोंके देशों और नगरोंमें अनुसन्धान करते हुए हिमालय पर्वतपर ढूँढ़ो। वहाँ लोध्र और पद्मककी झाड़ियों तथा देवदारके वनोंमें वैदेहीसहित रावणकी खोज करो। फिर देवता और गन्धर्वोंसे सेवित सोमाश्रममें होते हुए ऊँचे शिखरवाले कालनामक पर्वतपर जाओ। वहाँ सोनेकी खानें हैं। उस महान् पर्वतको पार करके तुमलोगोंको सुदर्शन नामक पर्वतपर जाना चाहिये। उससे आगे बढ़नेपर देवसखा नामका पहाड़ मिलेगा। उसके जंगलों, झरनों और गुफाओंमें सीतासहित रावणकी तलाश करनी चाहिये। वहाँसे आगे बढ़नेपर सौ योजनका मैदान मिलेगा, जहाँ नदी, पर्वत, वृक्ष और सब प्रकारके जीव-जन्तुओंका अभाव है। रोंगटे खड़े कर देनेवाले उस दुर्गम प्रान्तको शीघ्रतापूर्वक लाँघ जानेपर तुम्हें श्वेत वर्णका कैलास पर्वत मिलेगा। वहाँ पहुँचनेपर तुमलोगोंको बड़ी प्रसन्नता होगी। वहीं विश्वकर्माका बनाया हुआ कुबेरका रमणीय भवन है, जिसे सोनेसे सजाया गया है। उसके पास ही एक बहुत बड़ा सरोवर है, जिसमें कमल और उत्पल बहुत अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। वहाँ यक्षोंके राजा कुबेर गुह्यकोंके साथ विहार करते हैं। उन चन्द्रमाके समान उज्ज्वल पर्वतोंपर तुमलोग सीतासहित रावणकी खोज करना। वहाँकी गुफाओंमें भी अच्छी तरह छान-बीन करना। इसके बाद क्रौञ्चगिरिपर जाकर वहाँकी दुर्गम गुफामें सावधानीके साथ प्रवेश करना; क्योंकि उसके भीतर सूर्यके समान तेजस्वी महात्मा निवास करते हैं। उन देवस्वरूप महर्षियोंकी देवतालोग भी अभ्यर्थना करते हैं। क्रौञ्चपर्वतपर और भी बहुत-सी गुफाएँ हैं, उन्हें भी देखना। वहाँसे आगे वृक्षोंसे रहित मानस नामक शिखर है, जो [ कामदेवकी तपस्याका स्थान होनेके कारण ] कामशैलके नामसे विख्यात है। उससे आगे जानेपर मैनाक पर्वत मिलेगा, जहाँ मय दानवने स्वयं ही अपने रहनेके लिये घर बनाया है। उसके शिखरों, चौरस मैदानों और गुफाओंमें भी तुमलोगोंको सीताकी खोज करनी चाहिये। वहाँ यत्र-तत्र किन्नरियोंके निवासस्थान हैं। उस प्रदेशको लाँघ जानेपर सिद्धसेवित आश्रम मिलेगा। उसमें सिद्ध, वैखानस तथा वालखिल्य नामके तपस्वी निवास करते हैं। तपस्यासे उनके पाप धुल गये हैं। उन सिद्धोंको तुमलोग प्रणाम करना और

१. 'भरत' से भरतवंशी राजाओंकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) और हस्तिनापुर आदिके आस-पासके प्रान्तोंका ग्रहण होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनीत भावसे सीताका समाचार पूछना। उस आश्रमके पास सुवर्णमय कमलोंसे भरा हुआ वैखानस नामक सरोवर है, जहाँ तरुण सूर्यके समान [ सुनहरे रंगके ] सुन्दर हंस विचरते रहते हैं। उस सरोवरसे आगे जानेपर सूना आकाश दिखायी देगा। चन्द्रमा, सूर्य और तारोंके दर्शन नहीं होंगे। वहाँ न तो मेघोंकी घटा दिखायी देगी और न उनकी गर्जना ही सुनायी पड़ेगी; तथापि वहाँ अपनी ही प्रभासे प्रकाशित तपःसिद्ध देवोपम महर्षि विश्राम करते हैं। उनके शरीरसे सूर्यकी किरणोंके समान ज्योति निकलती रहती है, जिससे उस देशमें उजाला छाया रहता है। वहाँसे आगे बढ़नेपर शैलोदा नामकी नदीके दर्शन होंगे। वहीं उत्तर-कुरु देश है, जहाँ पुण्यात्मा पुरुष निवास करते हैं। उस देशमें सूर्यके समान देदीप्यमान अनेकों जलाशय शोभा पा रहे हैं। बहुमूल्य मणियोंके समान पत्तों और कनकके समान कान्तिमान् केसरोंवाले विचित्र-विचित्र नील कमलोंके द्वारा वहाँका प्रदेश सब ओरसे घिरा है। वहाँकी नदियोंके तट गोल मोतियों, बहुमूल्य मणियों और सुवर्णोंसे सुशोभित देखे जाते हैं। इतना ही नहीं, उन तटोंके आस-पास सम्पूर्ण रत्नोंसे युक्त विचित्र-विचित्र पर्वत भी उपलब्ध हैं। उनमेंसे कितने ही पर्वत सुवर्णमय हैं, जिनसे अग्निके समान प्रकाश निकलता है। वहाँके वृक्षोंमें सदा ही फल-फूल लगे रहते हैं। वे दिव्य गन्ध, दिव्य रस और दिव्य स्पर्श प्रदान करते हैं तथा उनसे हम जो कुछ चाहें वही देते हैं। इनके सिवा, दूसरे-दूसरे श्रेष्ठ वृक्ष नाना प्रकारके वस्त्र तथा मोती और वैदूर्यमणिसे चित्रित आभूषणोंको फलके रूपमें उत्पन्न करते हैं। वहाँ कोई भी अप्रसन्न नहीं रहता। किसीकी भी बुरे कर्मोंमें प्रीति नहीं होती। वहाँ रहनेसे दिन-प्रति-दिन मनोरम गुणोंकी वृद्धि होती है। वहाँसे आगे बढ़नेपर क्षीरसमुद्र मिलेगा, जिसके बीचमें सोमगिरि नामक बहुत ऊँचा सुवर्णमय पर्वत है। वह देश सूर्यसे रहित है, तो भी सोमगिरिकी प्रभासे सदा प्रकाशित रहता है। वहाँ विश्वात्मा भगवान् विष्णु, एकादश रुद्रोंके रूपमें प्रकट होनेवाले भगवान् शंकर तथा ब्रह्मर्षियोंसे घिरे हुए देवेश्वर ब्रह्माजी निवास करते हैं। तुमलोग किसी तरह उत्तर-कुरुसे आगे जानेका प्रयत्न न करना। दूसरे प्राणियोंकी भी वहाँ गति नहीं है। सोमगिरि देवताओंके लिये भी दुर्गम है। उसका दर्शन करके शीघ्र लौट आना। बस, उत्तर दिशामें इतनी ही दूरतक वानरोंका जाना सम्भव है। उसके आगे न तो सूर्यका प्रकाश है और न किसी देश आदिकी सीमा ही। अतः आगेकी भूमिके सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं जानता। मैंने जो-जो स्थान बतलाये हैं, उन सबमें सीताकी खोज करना और जिन स्थानोंका नाम नहीं लिया है, वहाँ भी ढूँढ़नेका प्रयत्न करना। वानरो! श्रीरामचन्द्रजीका कार्य करके लौटोगे तो मैं सर्वगुण-सम्पन्न एवं मनोऽनुकूल पदार्थोंके द्वारा तुम सब लोगोंका सत्कार करूँगा और तुमलोग अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ आनन्दपूर्वक विहार करोगे।"

## श्रीरामका हनुमान्‌जीको अँगूठी देकर भेजना, तीन दिशाओंके वानरोंका लौट आना और दक्षिणमें गये हुए वानरोंका सीताकी खोज आरम्भ करना

सुग्रीवको वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीके द्वारा ही कार्य सिद्ध होनेका दृढ़ विश्वास था; अतः वे अत्यन्त प्रसन्न होकर परम-पराक्रमी वायुपुत्र हनुमान्‌से बोले—'कपिश्रेष्ठ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, देवलोक अथवा जलमें भी तुम्हारी गतिका अवरोध नहीं देखा जाता। असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य, देवता, समुद्र तथा पर्वतोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका तुम्हें ज्ञान है। महाकपे! [ सर्वत्र अबाधित ] गति, वेग, तेज और फुर्ती—ये सभी सद्गुण तुममें अपने महापराक्रमी पिता वायुके ही समान हैं। इस भूमण्डलपर कोई भी प्राणी तुम्हारे तेजकी समानता करनेवाला नहीं है; अतः जिस प्रकार सीताका मिलना हो सके, वह उपाय तुम्हीं सोचकर बताओ। हनुमन्! तुम नीतिशास्त्रके पण्डित हो। एकमात्र तुम्हींमें बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुसरण तथा नीतिपूर्ण बर्ताव देखे [ एक साथ ] जाते हैं।'

सुग्रीवकी बात सुनकर महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने कार्य-साधनमें श्रेष्ठ हनुमान्‌जीकी ओर देखा। उन्हें देखते ही वे अपना कार्य सिद्ध हुआ समझने लगे और मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने अपने नामके अक्षरोंसे युक्त एक अँगूठी हनुमान्‌जीके हाथमें दी, जो राजकुमारी सीताको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

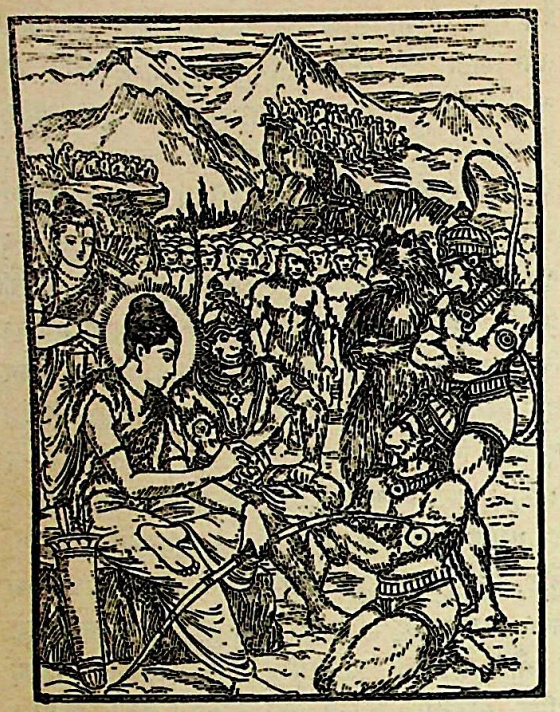

पहचानके रूपमें अर्पण करनेके लिये थी। अँगूठी देकर भगवान्‌ने कहा—'कपिश्रेष्ठ! इस चिह्नके द्वारा जनककुमारी सीताको यह विश्वास हो जायगा कि तुम मेरे पाससे ही गये हो। इससे वह भय त्यागकर तुम्हारी ओर देख सकेगी। वीरवर! तुम्हारा उद्योग, धैर्य, पराक्रम और सुग्रीवका सन्देश—ये सब मुझे इस बातकी सूचना दे रहे हैं कि तुम्हारे द्वारा कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी।' हनुमान्‌जीने वह अँगूठी ले ली और हाथ जोड़, भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक नवाकर वे वहाँसे प्रस्थित हुए। वे अपने साथ बहुत बड़ी सेना ले जा रहे थे। उसके द्वारा उनकी बड़ी शोभा हुई।

तदनन्तर वानरराज सुग्रीव समस्त वानरोंसे बोले—'कपिवरो! जैसा मैंने बताया है, उसके अनुसार तुम सब लोग सीताकी खोज करो। स्वामीकी कठोर आज्ञा पाकर सम्पूर्ण वानर टिड्डियोंके दलकी भाँति वहाँसे प्रस्थित हो समूची पृथ्वीपर फैल गये। केवल श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ प्रस्रवणगिरिपर ठहरे रहे और सीताका समाचार लानेके लिये जो एक मासकी अवधि निश्चित की गयी थी, उसकी प्रतीक्षा करने लगे। गिरिराज हिमालयसे घिरी हुई परम रमणीय उत्तर-दिशामें वीर शतबलिने शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान किया। वानर-यूथपति विनत पूर्व-दिशाकी ओर गया। तार और अङ्गद आदिके सहित पवनकुमार हनुमान्‌जी अगस्त्य-सेवित दक्षिण-दिशाकी ओर प्रस्थित हुए तथा वानरश्रेष्ठ सुषेणने वरुणद्वारा सुरक्षित पश्चिम-दिशाकी यात्रा की। इस प्रकार सम्पूर्ण दिशाओंमें यथायोग्य वानरोंको भेजकर वानर-सेनापति वीर राजा सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुए। उनकी आज्ञा पाकर सम्पूर्ण यूथपति अपनी-अपनी दिशाकी ओर बड़ी तीव्र गतिसे जाने लगे। वे भाँति-भाँतिके शब्द करते, गरजते, सिंहनाद करते और दौड़ते हुए जा रहे थे। यात्रा करते समय एक-एक वानर बलके अभिमानमें आ सुग्रीवके पास जाकर कहता था—'राजन्! आप निश्चिन्त होकर बैठिये, हमलोग रावणको मारकर सीताजीको वापस लायेंगे। यदि रावण युद्धमें सामने आ गया, तो मैं अकेला ही उसका वध कर डालूँगा और बलपूर्वक जानकीको उसके हाथसे छीन लाऊँगा। मैं सौ योजनतक कूद सकता हूँ। मैं इससे भी अधिक दूरतक जा सकता हूँ। पृथ्वी, समुद्र, पर्वत, वन अथवा पातालमें भी मेरी गति नहीं रुकती।'

वानरराजकी आज्ञाके अनुसार सभी श्रेष्ठ वानर सीताजीका पता लगानेके लिये अपनी-अपनी दिशाकी ओर चल दिये। वे सरोवरों, लतामण्डपों, खुले स्थानों, नगरों तथा नदी-किनारेके घिरे हुए दुर्गम प्रदेशोंमें सब ओर घूम-फिरकर खोजने लगे। उन्होंने पर्वतों, वनों और काननोंसहित सम्पूर्ण देशोंको छान डाला। वे सब लोग सीताकी प्राप्तिके लिये दिनभर इधर-उधर घूमते और रातके समय किसी नियत स्थानपर एकत्रित हो जाते थे। भिन्न-भिन्न देशोंमें सभी ऋतुओंमें फल देनेवाले वृक्षोंके पास जाकर वहीं रात्रिको विश्राम किया करते थे। जानेके दिनसे लेकर महीना पूरा होते-होते वे श्रेष्ठ वानर निराश हो, प्रस्रवणगिरिपर लौट आये और कपिराज सुग्रीवसे मिले। महाबली विनत अपने मन्त्रियोंके साथ पूर्वदिशामें खोज करके सीताका दर्शन किये बिना ही लौट आये। महाकपि शतबलिने भी समूची उत्तर-दिशा छान डाली। किन्तु सफलता न मिली; अन्तमें डरते-डरते वे सेनाके साथ वापस आ गये। इसी प्रकार सुषेण भी वानरोंके साथ पश्चिम-दिशामें अच्छी तरह अनुसन्धान करके महीना पूरा होनेपर सुग्रीवके पास चले आये। लौटे हुए सभी वानर प्रस्रवणगिरिपर श्रीरामचन्द्रजीके साथ बैठे हुए सुग्रीवको प्रणाम करके उनसे बोले—'राजन्! हमने समस्त पर्वत, घने जंगल, समुद्रपर्यन्त नदियाँ, सम्पूर्ण देश, आपकी बतायी हुई सारी गुफाएँ, झाड़ियाँ और लताभवन खोज डाले। बड़े-बड़े जंगलों, दुर्गम प्रदेशों और ऊबड़-खाबड़ स्थानोंमें भी ढूँढ़ा। जो-जो प्रदेश गहन एवं दुर्गम जान पड़े, वहाँ बारंबार तलाश की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ किन्तु कहीं भी सीताका पता न लगा ]। परम शक्तिमान् और कुलीन वायुनन्दन हनुमान्‌जी ही उनका ठीक-ठीक समाचार जान सकेंगे; क्योंकि वे उसी दिशामें गये हैं, जिधर सीता गयी हैं।

उधर तार और अङ्गदके साथ हनुमान्‌जी सुग्रीवके बताये हुए देशोंमें चले। उन सभी श्रेष्ठ वानरोंके साथ बहुत दूरका रास्ता तै कर लेनेपर वे विन्ध्याचलपर गये और वहाँकी गुफाओं, जंगलों, पर्वत-शिखरों, नदियों, दुर्गम स्थानों, बड़े-बड़े वृक्षों और झाड़ियोंमें सब ओर ढूँढ़ते फिरे, परन्तु कहीं भी उन्हें जनककुमारी सीताके दर्शन नहीं हुए। वे सभी दुर्धर्ष वीर थे; नाना प्रकारके फल-मूलका भोजन करते हुए सीताको खोजते और जहाँ-तहाँ ठहर जाया करते थे। विन्ध्य-पर्वतके आस-पासका देश बहुत बड़ा था और वहाँ बहुत-सी गुफाएँ तथा घने जंगल थे। इन सब कारणोंसे वहाँ जानकी-को ढूँढ़नेमें बड़ी कठिनाई होती थी। भयंकर सुनसान जंगलोंमें भी, जहाँ न तो पानी मिलता था और न कोई मनुष्य ही दिखायी देता था, उन वानरोंने बहुत कष्ट उठाकर खोज की। वे बड़ी सावधानीके साथ नदियोंके उद्‌गम-स्थानोंमें ढूँढ़ते फिरे, परन्तु वहाँ भी सीताको न पा सके। रावणका भी कुछ पता न चला। घूमते-घूमते वे एक भयानक लतामण्डपमें जा पहुँचे, जहाँ भयंकर कर्म करनेवाला एक असुर रहता था, जिसे देवताओंसे तनिक भी भय नहीं था। वानरोंने देखा, वह घोर निशाचर पहाड़के समान अविचल भावसे खड़ा है। उस पर्वताकार राक्षसको देखते ही वे सब-के-सब कमर कसकर उससे भिड़नेको तैयार हो गये। उधर वह बलवान् असुर भी वानरोंको देखकर बोला—'आज तुम सभी मारे गये।' इतना कहकर वह अत्यन्त क्रोधसे भर गया और मुक्का तानकर उनकी ओर दौड़ा। उसे आता देख वालिपुत्र अङ्गदने समझा कि यही रावण है; अतः सहसा आगे बढ़कर उसे एक तमाचा जड़ दिया। अङ्गदके मारनेपर वह असुर मुँहसे रक्त वमन करता हुआ फटकर गिरे हुए पहाड़की भाँति पृथ्वीपर जा पड़ा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। तत्पश्चात् विजयोल्लाससे सुशोभित वानर उस पर्वतकी प्रायः समस्त गुफाओंमें अनुसन्धान करने लगे। ढूँढ़ते-फिरते वे एक गुफासे दूसरी गुफामें चले गये, जो पहलेकी अपेक्षा और भी भयानक थी। उसमें भी तलाश करते-करते वे थक गये और निराश होकर निकल आये। फिर सब-के-सब एकान्त स्थानमें एक वृक्षके नीचे हतोत्साह होकर बैठ गये।

## वानरोंका एक गुफामें जाकर भूख-प्यास बुझाना और स्वयंप्रभाके प्रभावसे समुद्र-तटपर पहुँचना

तदनन्तर परिश्रमसे थके हुए बुद्धिमान् अङ्गद सम्पूर्ण वानरोंको आश्वासन देकर धीरे-धीरे कहने लगे—'हमलोगोंने वन, पर्वत, नदियाँ, दुर्गम स्थान, घने जंगल, कन्दरा और गुफाएँ भीतर प्रवेश करके अच्छी तरह देख डालीं; परन्तु उन स्थानोंमें न हमें जानकीके दर्शन हुए और न उनका अपहरण करनेवाला पापी राक्षस ही मिला; अतः आपलोग मिलकर पुनः सब ओर सीताकी खोज आरम्भ करें और आलस्य, शोक तथा निद्राका परित्याग कर दें। उत्साह, तत्परता और मनमें हिम्मत न हारना—ये कार्यकी सिद्धि करानेवाले गुण हैं। जो कर्मसे मुँह नहीं मोड़ते, उन्हें उस कर्मका फल अवश्य मिलता है; अतः उकताकर उत्साह छोड़ देना कदापि उचित नहीं है। आपलोगोंकी भलाईके लिये ही मैंने ये बातें कही हैं। यदि अच्छी जान पड़ें तो आप इन्हें स्वीकार करें।' अङ्गदकी बात सुनकर गन्धमादनने कहा—'वानरो! युवराज अङ्गदने जो बात कही है, वह आपलोगोंके योग्य, हितकर और अनुकूल है। अतः सब लोग इनके कथनानुसार कार्य करें। यह सुनकर वे महाबली वानर विन्ध्याचल पर्वतके जंगलोंसे व्याप्त दक्षिण दिशामें विचरने लगे।

हनुमान्‌जी तार और अङ्गदके साथ मिलकर विन्ध्य-गिरिकी गुफाओं और घने जंगलोंमें सीताका अन्वेषण करने लगे। उन्होंने सिंह और बाघोंसे भरी हुई कन्दराओं तथा उसके आसपासकी भूमिको भी छान डाला। गिरिराज विन्ध्यपर जो बड़े-बड़े झरने और दुर्गम स्थान थे, वहाँ भी भ्रमण किया। घूमते-फिरते वे उस पर्वतके नैर्ऋत्य-कोणवाले शिखरपर जा पहुँचे। फिर अलग-अलग एक दूसरेसे थोड़ी ही दूरपर रहकर गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान्, जाम्बवान्, युवराज अङ्गद और तार आदि वानर दक्षिण दिशाके देशोंमें, जो पर्वत-मालाओंसे घिरे हुए थे, सीताकी खोज करने लगे। खोजते-खोजते उन्हें एक गुफा दिखायी दी, जिसका द्वार बंद नहीं था। फिर भी उसमें प्रवेश करना बहुत कठिन था। वह गुफा ऋक्षबिल



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


(रीछोंकी गुफा) के नामसे प्रसिद्ध थी और एक दानव उसकी रक्षामें रहता था। वानरोंको भूख-प्यास सता रही थी। वे बहुत थक गये थे और जल पीना चाहते थे। अतः लता और वृक्षोंसे आच्छादित उस गुफाकी ओर बड़े ध्यानसे देखने लगे। इतनेमें उसके भीतरसे क्रौञ्च, हंस, सारस तथा जलसे भीगे हुए चक्रवाक पक्षी बाहर निकले। तब वायुपुत्र हनुमान्‌ने वानरोंसे कहा—'दक्षिण दिशाके देश प्रायः पर्वतोंसे घिरे हैं। इनमें सीताको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हम सब लोग बहुत थक गये, किन्तु कहीं भी हमें उनके दर्शन नहीं हुए। सामनेकी इस गुफासे हंस, क्रौञ्च, सारस और जलसे भीगे हुए चकवे निकल रहे हैं; अतः इसमें पानीका कुआँ अथवा कोई तालाब अवश्य होना चाहिये। तभी इस गुफाके द्वारवर्ती वृक्ष इतने हरे-भरे हैं।'

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर वे सभी वानर अन्धकारसे भरी हुई उस बिलमें, जहाँ चन्द्रमा और सूर्यकी किरणें भी नहीं पहुँच पाती थीं, घुस गये। प्यासके मारे उनकी चेतना लुप्त-सी हो रही थी, वे जलके लिये व्याकुल हो उठे थे। उस गुफाके भीतर एक दूसरेको पकड़े हुए लगातार चार कोसतक चले गये। जाते-जाते जब जीवनसे निराश हो उठे, तब उन्हें प्रकाशका दर्शन हुआ। फिर उस प्रदेशमें जाकर उन्होंने अन्धकाररहित वन देखा, जहाँके सभी वृक्ष सुवर्णमय थे और उनसे अग्निके समान प्रभा निकल रही थी। उस वनके साल, ताड़, तमाल, नागकेसर, अशोक, धव, चम्पा, नागवृक्ष और कनेर आदिके पेड़ फूलोंसे लदे थे। वहाँ कई तालाब भी देखनेमें आये, जो सुवर्णमय कमलोंसे सुशोभित और स्वच्छ जलसे भरे थे। वानरोंने उस गुफामें सोने-चाँदीके बने बहुत-से भवन भी देखे, जिनकी खिड़कियाँ मोतीकी जालियोंसे ढकी थीं तथा जिनमें रत्नजटित पलँग बिछे थे। साथ ही एक स्त्रीपर भी उनकी दृष्टि पड़ी, जो थोड़ी ही दूरपर दिखायी दे रही थी। वह वल्कल और काला मृगचर्म पहनकर नियमित आहार करती हुई तपस्यामें संलग्न थी तथा अपने तेजसे दिप रही थी। उसे देखकर वानरोंको बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर हनुमान्‌जीने चीर एवं कृष्णमृगचर्म धारण करनेवाली उस धर्मपरायणा वृद्धा तपस्विनीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पूछा—'देवि! तुम कौन हो? यह गुफा, ये भवन तथा ये रत्न किसके हैं? हमें बताओ। हम सब लोग भूख, प्यास और थकानसे कष्ट पा रहे थे; इसलिये सहसा इस अन्धकारपूर्ण गुफामें चले

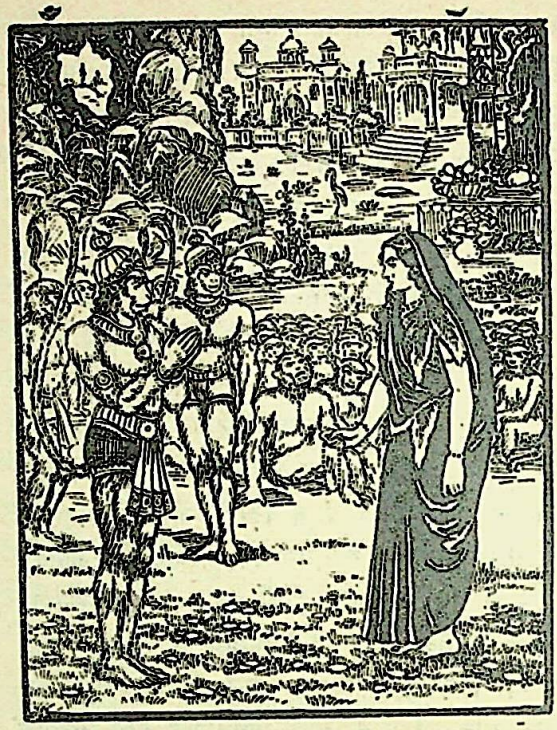

आये। यहाँके विविध पदार्थ हमें अद्भुत दिखायी दे रहे हैं। ये भोजनकी पवित्र वस्तुएँ, फल-मूल, सोनेके विमान, चाँदीके घर, मणियोंकी जालीसे ढकी हुई सोनेकी खिड़कियाँ तथा पवित्र सुगन्धसे युक्त एवं फल-फूलोंसे लदे हुए ये सुवर्णमय पावन वृक्ष किसके तेजसे प्रकट हुए हैं? यहाँके जलमें सोनेके कमल कैसे उत्पन्न हुए—यह सब तुम्हारे ही प्रभावसे हुआ है या और किसीके? यह किसकी तपःशक्तिका फल है? हम अनजान हैं, इसलिये पूछते हैं। सब बातें बतानेकी कृपा करो।'

हनुमान्‌जीके इस प्रकार पूछनेपर सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाली उस धर्मपरायणा तापसीने उत्तर दिया—'वानरश्रेष्ठ! दानवोंके विश्वकर्मा मायावी मयने पूर्वकालमें अपनी मायाके प्रभावसे इस समूचे स्वर्णमय वनका निर्माण किया था। यह सोनेका दिव्य भवन भी उसीका बनाया हुआ है। उसने एक हजार वर्षोंतक वनमें घोर तपस्या करके ब्रह्माजीसे वरदानके रूपमें शुक्राचार्यकी सारी शिल्प-विद्या तथा साधन-सामग्री प्राप्त की थी। यहाँकी सारी वस्तुओंका निर्माण करके इस महान् वनमें वह कुछ कालतक सुखपूर्वक निवास कर चुका है। आगे चलकर उसका हेमा नामकी अप्सराके साथ सम्पर्क हो गया था; अतः यह उत्तम वन, यहाँका अक्षय भोग तथा यह सोनेका भवन हेमाको प्राप्त हुआ। मैं मेरुसावर्णिकी कन्या हूँ, मेरा नाम स्वयंप्रभा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हेमा मेरी प्यारी सखी है, अतः मैं यहाँ रहकर उसके विशाल भवनकी रक्षा करती हूँ। तुमलोगोंका यहाँ क्या काम है? किस उद्देश्यसे तुम इन दुर्गम स्थानोंमें विचरते हो? इस वनमें आना तो बहुत कठिन है, तुमने कैसे इसे देख लिया? अच्छा, यह शुद्ध भोजन, फल-मूल आदि खाओ और जल पीकर मुझसे अपना सारा वृत्तान्त कहो।'

तत्पश्चात् जब सब वानर-यूथपति खा-पीकर विश्राम कर चुके तो धर्मका आचरण करनेवाली वह एकाग्रहृदया तपस्विनी इस प्रकार बोली—'वानरो! फल खानेसे यदि तुम्हारी थकावट दूर हो गयी हो और यदि तुम्हारा वृत्तान्त मेरे सुनने योग्य हो तो मैं उसे सुनना चाहती हूँ।' उसकी बात सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जी बड़ी सरलताके साथ यथार्थ बात कहने लगे—'देवि! सम्पूर्ण लोकोंके राजा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी, जो महाराज दशरथके पुत्र हैं, दण्डकारण्यमें पधारे थे। साथमें उनके छोटे भाई लक्ष्मण तथा उनकी धर्मपत्नी विदेहनन्दिनी सीता भी थीं। जनस्थानमें आनेपर रावणने उनकी स्त्रीका बलपूर्वक हरण कर लिया। वानरोंके राजा वीरवर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके मित्र हैं, उन्होंने इन अङ्गद आदि प्रधान वीरोंके साथ हमलोगोंको सीताकी खोज करनेके लिये दक्षिण दिशामें भेजा है। हमने यहाँका सारा जंगल छान डाला [ किन्तु कुछ सफलता न मिली ] और अन्तमें भूखसे पीड़ित होकर हम सब-के-सब एक वृक्षके नीचे बैठ गये। वहाँसे चारों ओर दृष्टि दौड़ानेपर हमको यह महान् बिल दिखायी पड़ी, जो लता और वृक्षोंसे सम्पन्न तथा अन्धकारसे भरी है। थोड़ी ही देरमें गुफाके भीतरसे हंस आदि पक्षी निकले, जिनके पंख जलसे भीगे थे और उनमें कीचड़ लगी हुई थी। यह देख हम सब लोग एक दूसरेका हाथ पकड़कर सहसा इस अन्धकारपूर्ण गुफामें घुस आये और भूखसे व्याकुल होकर हमने तुम्हारी शरण ली। तुमने आतिथ्यधर्मके अनुसार हमें फल और मूल अर्पण किये और हमने भी भूखसे पीड़ित होनेके कारण उन्हें भरपेट खाया। हम भूखसे मर रहे थे, तुमने हम सब लोगोंके प्राण बचा लिये। अतः बताओ, ये वानर तुम्हारे उपकारका क्या बदला दें?'

स्वयंप्रभा सब कुछ पहलेसे ही जानती थी। वह वानरोंके ऐसा कहनेपर बोली—'मैं तुम सब लोगोंपर यों ही बहुत सन्तुष्ट हूँ। धर्मानुष्ठानमें लगी रहनेके कारण मुझे किसीसे कोई प्रयोजन नहीं रह गया है।' तपस्विनीने जब इस प्रकार धर्मयुक्त उत्तम वचन कहा तब तो हनुमान्‌जी उससे बोले—'देवि! तुम धर्माचरणमें लगी हुई हो, अतः हम सब लोग तुम्हारी शरणमें आये हैं। महात्मा सुग्रीवने हमलोगोंके लौटनेके लिये जो समय निश्चित किया था, वह इस गुफाके अंदर घूमनेमें ही बीत गया; अब तुम कृपा करके हमें इस बिलसे बाहर निकाल दो।' हनुमान्‌की बात सुनकर तपस्विनी बोली—'जो एक बार इस गुफामें चला आता है, उसका जीते-जी यहाँसे लौटना बहुत कठिन हो जाता है; तथापि नियमोंके पालन और तपस्याके प्रभावसे मैं तुम सब लोगोंको बाहर निकाल दूँगी। अपनी-अपनी आँख बंद कर लो।' यह सुनकर उन वानरोंने वहाँसे निकलनेकी इच्छासे प्रसन्न होकर सहसा आँखें बंद कर लीं और हाथोंसे मुँह छिपा लिया। तब उस धर्मपरायणा तपस्विनीने पलक मारते-मारते उन सबको बिलसे बाहर निकाल दिया और सान्त्वना देते हुए कहा—'लो, यह समुद्र आ गया; अब मैं अपने स्थानपर जाती हूँ।' ऐसा कहकर स्वयंप्रभा उस सुन्दर गुफामें चली गयी।

## वानरोंका उपवास करके मरनेका निश्चय तथा सम्पातिसे उनकी बातचीत

तदनन्तर उन श्रेष्ठ वानरोंने वरुणकी निवासभूमि भयंकर महासागरको देखा, जिसका कहीं पार नहीं था और जो भयानक लहरोंसे व्याप्त होकर निरन्तर गर्जना कर रहा था। वे विन्ध्यपर्वतके नीचेके भागमें जहाँके वृक्ष फूलोंसे लदे थे, बैठकर चिन्ता करने लगे। वहाँके आम्र आदि वृक्षोंकी डालियाँ मञ्जरी एवं फूलोंके भारसे झुकी हुई थीं। उनमें वसन्त ऋतुके चिह्न प्रकट हो रहे थे। यह देखकर सब वानर भयभीत और शङ्कित हो उठे; उन्होंने एक दूसरेको वसन्त-ऋतुके आगमन-की बात बतायी और सुग्रीवका निश्चित किया हुआ समय बीत जानेके कारण वे व्याकुल होकर धरतीपर गिर पड़े। तब युवराज अङ्गद उन श्रेष्ठ वानरोंको यथावत् सम्मान देते हुए मधुर वाणीमें बोले—'हम सब लोग वानरराजकी आज्ञासे आश्विनके महीनेमें एक मासकी निश्चित अवधि स्वीकार करके सीताकी खोजके लिये निकले थे; वह समय तो बीत गया, अब आगे क्या करना चाहिये? आपलोग नीतिशास्त्रके विद्वान्, राजाके विश्वासपात्र और स्वामीके हितमें संलग्न रहनेवाले हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इसीलिये आपलोगोंको प्रायः सभी तरहके कार्योंमें नियुक्त किया जाता है। कार्य सिद्ध करनेमें आपलोगोंकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। आप अपने पुरुषार्थके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें विख्यात हैं। इस समय सुग्रीवकी आज्ञासे मुझे आगे करके आप सब लोग जिस कार्यके लिये निकले थे, उसमें सफलता नहीं मिली। ऐसी दशामें हमलोगोंकी मृत्यु निश्चित है। भला, वानरराजके आदेशका पालन न करके कौन सुखी रह सकता है? स्वयं सुग्रीवने जो समय निश्चित किया था, उसके बीत जानेपर हम सब वानरोंके लिये उपवास करके प्राण त्याग देना ही ठीक जान पड़ता है। सुग्रीव स्वभावसे ही कठोर हैं, फिर इस समय तो वे हमारे राजाके पदपर स्थित हैं। जब हम अपराध करके उनके पास जायँगे तब वे कभी क्षमा नहीं करेंगे, बल्कि सीताका समाचार न पानेपर हमारा वध ही कर डालेंगे। अतः हमें आज ही यहाँ स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति और घर-द्वारका मोह छोड़कर मरणान्त उपवास आरम्भ कर देना चाहिये। अनुचित वध-की अपेक्षा यहाँ मर जाना हमलोगोंके लिये श्रेयस्कर है।'

युवराज कुमार अङ्गदकी बात सुनकर सभी श्रेष्ठ वानर करुण स्वरमें बोले—'सचमुच सुग्रीवका स्वभाव बड़ा कठोर है। अवधि बिताकर यदि हम कार्य सिद्ध किये बिना ही वहाँ चलेंगे, तो वे हमसे सीताका पता न पाकर श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये निश्चय ही हमारे प्राण ले लेंगे।' अब वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी अङ्गदसे कहने लगे—'ताराकुमार! तुम युद्धमें अपने पिताके समान ही शक्तिशाली हो। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जैसे तुम्हारे पिताने वानर-राज्यका भार सँभाला था, उसी प्रकार तुम भी उसे दृढ़तापूर्वक धारण करनेमें समर्थ हो। तुम्हारे चाचा धर्मको ही अपना भूषण मानते हैं। वे सदा तुम्हारी प्रसन्नता चाहनेवाले, दृढ़व्रत, पवित्र और सत्यप्रतिज्ञ हैं। अतः कदापि तुम्हारा नाश नहीं कर सकते। उनके मनमें सदा तुम्हारी माताका प्रिय करनेकी इच्छा रहती है। उनकी प्रसन्नताके लिये ही वे जीवन धारण करते हैं। सुग्रीवके तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पुत्र भी नहीं है, इसलिये अङ्गद! तुम [ प्राण त्यागनेका विचार छोड़कर ] यहाँसे चलो।'

हनुमान्‌जीका वचन विनय, धर्म और स्वामीके प्रति सम्मानसे युक्त था। उसे सुनकर अङ्गदने कहा—'मन्त्रिवर! राजा सुग्रीवमें स्थिरता, शरीर और मनकी शुद्धि, क्रूरताका अभाव, सरलता, पराक्रम और धैर्यका होना सम्भव नहीं है। जिसने अपने बड़े भाईकी प्यारी महारानीको, जो धर्मतः उसकी माताके समान हैं, कुत्सित भावनासे ग्रहण किया, वह कैसे धर्मका ज्ञाता कहा जा सकता है। जिस दुरात्माने युद्धके लिये जाते हुए भाईके द्वारा बिलकी रक्षाके कार्यमें नियुक्त होनेपर भी पत्थरसे उसका मुँह बंद कर दिया, वह कैसे धर्मज्ञ हो सकता है। जिन्होंने सत्यको साक्षी देकर उसका हाथ पकड़ा और पहले ही उसका कार्य सिद्ध किया, उन महायशस्वी भगवान् श्रीरामको ही जब उसने भुला दिया तो दूसरे किसके उपकारको वह याद रख सकता है। जिसने अधर्मके भयसे नहीं, लक्ष्मणके डरसे ही हमलोगोंको सीताकी खोजके लिये भेजा है, उसमें धर्मकी सम्भावना कैसे हो सकती है। उस पापीपर कोई श्रेष्ठ पुरुष किस तरह विश्वास कर सकता है। उससे अलग रहनेका जो मेरा गूढ़ विचार था, वह आज प्रकट हो गया। साथ ही उसकी आज्ञाका पालन न करनेके कारण मैं अपराधी भी हूँ। इतना ही नहीं, मेरी शक्ति क्षीण हो गयी है, मैं अनाथ और दुर्बल हूँ; ऐसी दशामें किष्किन्धामें जाकर कैसे जीवित रह सकूँगा। सुग्रीव शठ, क्रूर और निर्दयी है, वह राज्यके लिये मुझे गुप्तरूपसे दण्ड देगा अथवा हमेशाके लिये कैद कर लेगा। अतः सभी वानर मुझे यहीं रहनेकी आज्ञा दें और स्वयं अपने-अपने घरको लौट जायँ। मैं आपलोगोंसे प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि किष्किन्धापुरीको नहीं जाऊँगा, यहीं मरणान्त उपवास करूँगा। मेरा मर जाना ही अच्छा है। आपलोग महान् बलके कारण शोभा पानेवाले दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणसे भी मेरा सादर प्रणाम निवेदन करके कुशल-समाचार कह दीजियेगा। मेरे छोटे पिता वानरराज सुग्रीव और माता रुमासे मेरी कुशल कहियेगा। मेरी माता तारा-को भी धैर्य बँधाइयेगा। वह बेचारी स्वभावसे ही दयालु और पुत्रपर प्रेम रखनेवाली है। यहाँ मेरी मृत्युका समाचार सुनकर निश्चय ही अपने प्राण त्याग देगी।' इतना कहकर अङ्गदने उन सभी श्रेष्ठ वानरोंको प्रणाम किया और धरतीपर कुश बिछाकर उदास मुँहसे रोते-रोते वे मरणान्त उपवासके लिये बैठ गये। उनके बैठनेपर सभी श्रेष्ठ वानर दुखी होकर नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू बहाने लगे। सुग्रीवकी निन्दा और वालीकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने भी अङ्गदको सब ओरसे घेरकर मृत्युपर्यन्त उपवास करनेका निश्चय किया। वालिकुमारके वचनोंपर विचार करके उन्होंने मरना ही उचित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## वानरोंका सम्पातिसे समागम

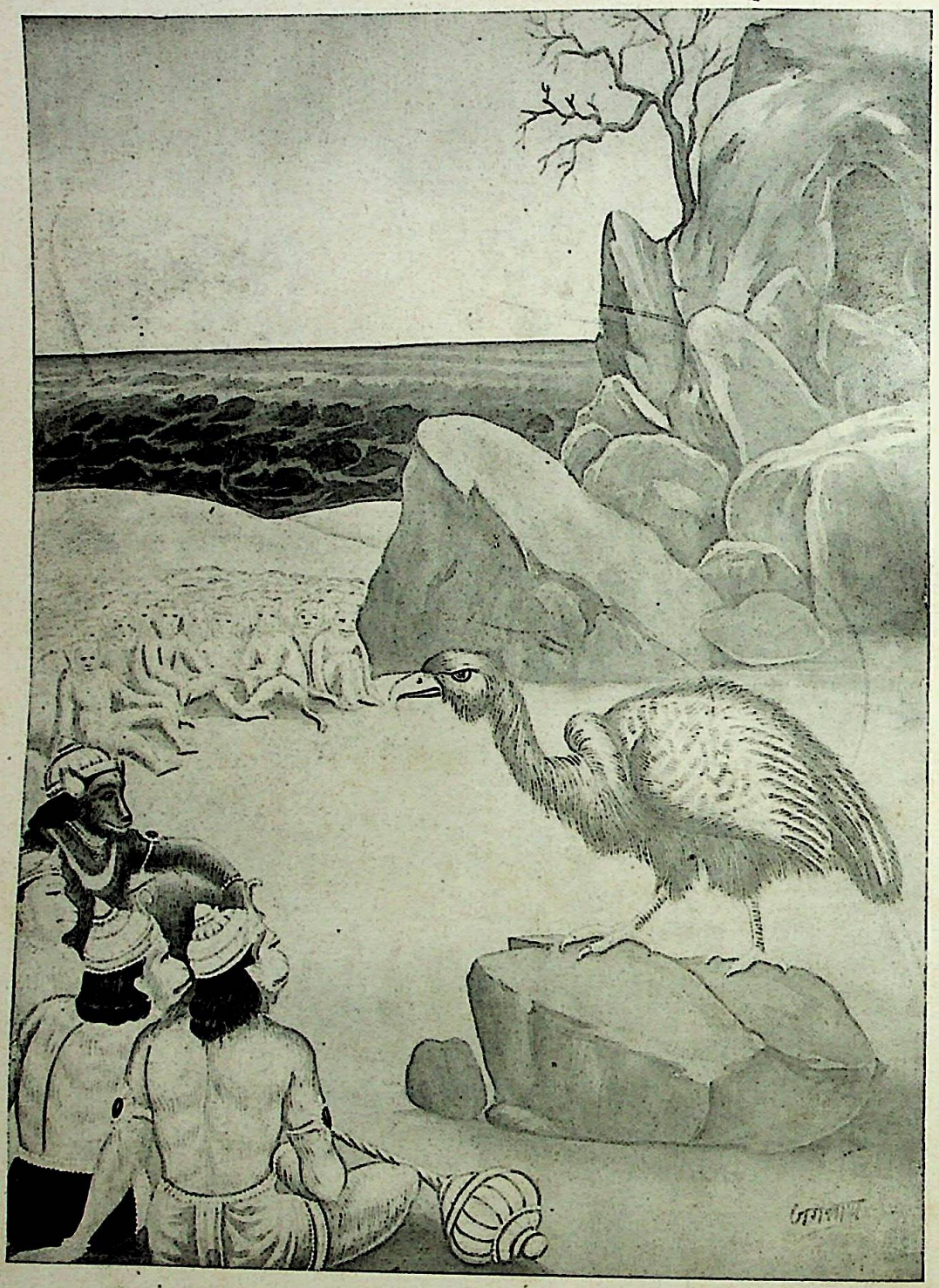

संपातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहङ्गमः । भ्राता जटायुषः श्रीमान् विख्यातबलपौरुषः ॥
कन्दरादभिनिष्क्रम्य स विन्ध्यस्य महागिरेः । उपविष्टान् हरीन् दृष्ट्वा हृष्टात्मा गिरमब्रवीत् ॥
( किष्किन्धा० ५६ । २-३ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझा और सब मृत्युकी इच्छासे आचमन करके समुद्रके किनारे दक्षिणाग्र कुश बिछाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये।

पर्वतके जिस शिखरपर वे वानर उपवासके लिये बैठे थे, वहाँ महागिरि विन्ध्यकी कन्दरासे निकलकर जटायुके भाई गृध्रराज सम्पाति आ पहुँचे, जो अपने बल और पराक्रमके लिये सर्वत्र प्रसिद्ध तथा चिरजीवी पक्षी थे। वानरोंको बैठे देख उनका चित्त प्रसन्न हो गया और वे हर्षसे भरकर कहने लगे—'जैसे लोकमें पूर्वजन्मके कर्मानुसार मनुष्यको उसके कियेका फल स्वतः प्राप्त होता है, उसी प्रकार आज दीर्घकालके पश्चात् यह भोजन मुझे मिल रहा है; अवश्य ही यह मेरे किसी कर्मका फल है। इन वानरोंमेंसे जो-जो मरता जायगा, उस-उसको क्रमशः मैं भक्षण करता जाऊँगा।' पक्षीके ये वचन सुनकर अङ्गदको बड़ा दुःख हुआ और वे हनुमान्‌जीसे बोले—'देखिये, सीताके निमित्त वानरोंको विपत्तिमें डालनेके लिये साक्षात् सूर्यपुत्र यम इस देशमें आ पहुँचे। हमलोगोंने न तो श्रीरामचन्द्रजीका कार्य किया और न राजाकी आज्ञाका पालन ही। इसी बीच वानरोंपर सहसा यह अज्ञात विपत्ति आ पड़ी। विदेहकुमारी सीताका प्रिय करनेकी इच्छासे गृध्रराज जटायुने जो साहसपूर्ण कार्य किया था, वह सब आपलोगोंने सुना ही होगा। समस्त प्राणी, चाहे पशु-पक्षियोंकी योनिमें ही क्यों न उत्पन्न हुए हों, प्राण देकर भी श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय कार्य करते हैं। हमलोग इस दुर्गम वनमें आये, किन्तु जानकीजीका दर्शन न कर सके। गृध्रराज जटायु ही सुखी हैं, जिन्होंने रावणके हाथों मारे जाकर परम गतिकी प्राप्ति की। जटायु और राजा दशरथके मरने तथा विदेहकुमारी सीताके अपहरणसे आज वानरोंके प्राणोंपर बन आयी। राम-लक्ष्मणका सीताके साथ वनवास, श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे वालीका वध और श्रीरामके क्रोधसे समस्त राक्षसोंका संहार—यह सारी आफत कैकेयीके वरदानसे ही आयी है।'

वानरोंका यह दुःखमय वचन सुनकर सम्पाति अत्यन्त चकित हुए और दीनतापूर्वक बोले—'यह कौन है, जो मेरे प्राणोंसे भी प्रिय भाई जटायुके वधकी बात कह रहा है? इसे सुनकर मेरा हृदय काँप उठा है। जनस्थानमें राक्षसका गृध्रके साथ किस प्रकार युद्ध हुआ था? अपने भाईका यह प्यारा नाम आज बहुत दिनोंके बाद मेरे कानोंमें पड़ा है। जटायु मुझसे छोटा, गुणज्ञ और पराक्रमके कारण अत्यन्त प्रशंसाके योग्य था। दीर्घकालके पश्चात् आज उसका नाम सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। कपिवरो! जनस्थाननिवासी अपने भाई जटायुके वधका वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ। गुरुजनोंके प्रेमी श्रीरामचन्द्रजी जिनके ज्येष्ठ एवं प्रिय पुत्र हैं, वे महाराज दशरथ मेरे भाई जटायुके मित्र थे। मेरे पंख सूर्यकी किरणोंसे जल गये हैं, इसलिये मैं उड़ नहीं सकता; किन्तु इस पर्वतसे नीचे उतरना चाहता हूँ।'

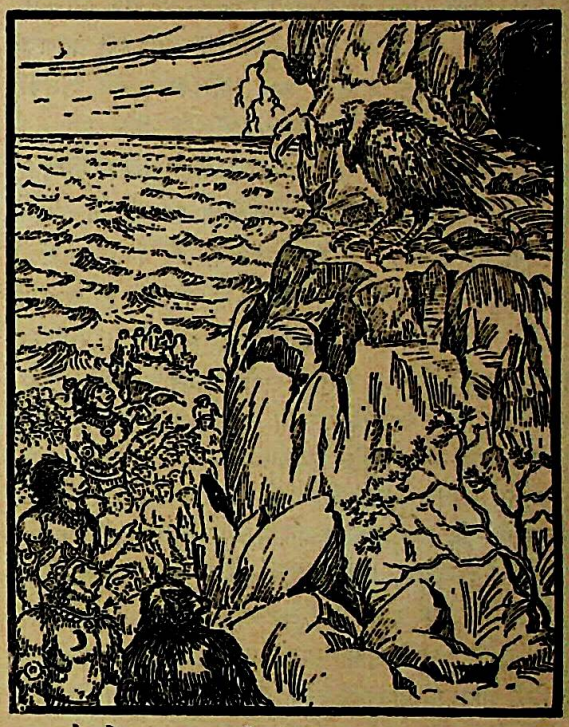

शोकके कारण सम्पातिकी आवाज बदल गयी थी। वानर यूथपतियोंने उनकी बात सुनी; किन्तु उनके कर्मसे शङ्कित होनेके कारण उन्होंने उसपर विश्वास नहीं किया। फिर सोचने लगे—'हम तो मरणान्त उपवासका व्रत लेकर बैठे ही थे; यदि यह पक्षी हमें खा लेगा तो हमारा काम ही बन जायगा। हमें शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो जायगी।' ऐसा निश्चय करके वानरोंने सम्पातिको पर्वत-शिखरसे नीचे उतारा। तब अङ्गदने कहा—'पक्षिराज! ऋक्षराज नामसे प्रसिद्ध एक वानरोंके राजा थे, जो बड़े प्रतापी हो गये हैं। वे मेरे पितामह थे। उनके दो धर्मात्मा पुत्र हुए, जिनकी सुग्रीव और वालीके नामसे प्रसिद्धि हुई। उनमें राजा वाली अपने पराक्रमके लिये संसारमें विख्यात थे। मैं उन्हींका पुत्र हूँ। आजसे कुछ वर्ष पहले इक्ष्वाकु-वंशके महारथी वीर दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी, जो सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं, अपने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये धर्म-मार्गका आश्रय ले दण्डकारण्यमें आये। साथमें उनके छोटे भाई लक्ष्मण तथा उनकी धर्मपत्नी विदेहकुमारी सीता भी थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जनस्थानमें आनेपर उनकी पत्नी सीताको रावणने बलपूर्वक हर लिया। उस समय गृध्रराज जटायुने, जो उनके पिताके मित्र थे, देखा—रावण आकाशमार्गसे विदेहकुमारीको लिये जा रहा है। देखते ही वे रावणपर टूट पड़े और उसके रथको नष्ट-भ्रष्ट करके मिथिलेशकुमारीको सुरक्षितरूपसे भूमिपर खड़ा कर दिया। किन्तु वे वृद्ध तो थे ही, युद्ध करते-करते थक गये और अन्तमें रावणके हाथसे मारे गये। इस प्रकार महाबली रावणके द्वारा जटायुका वध हुआ। स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने उनका दाह-संस्कार किया और वे परमगतिको प्राप्त हुए। तदनन्तर श्रीरघुनाथजीने मेरे चाचा महात्मा सुग्रीवसे मित्रता की। मेरे पिताने सुग्रीवको मन्त्रियोंसहित राज्यसुखसे वञ्चित कर दिया था; इसलिये श्रीरामचन्द्रजीने मेरे पिता वालीको मारकर सुग्रीवको राज्य दिला दिया। इन दिनों वे ही वानरोंके राजा हैं। उन्हींने हमलोगोंको यहाँ भेजा है। भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे हम सीताकी खोज करते हुए इधर-उधर घूम रहे हैं, किन्तु अबतक उनका पता नहीं लगा। सुग्रीवने लौटनेके लिये जो अवधि निश्चित की थी, वह बीत चुकी है। अतः उन्हींके भयसे हम यहाँ मरणान्त उपवास कर रहे हैं; क्योंकि यदि लक्ष्मणसहित श्रीराम और सुग्रीव कुपित होंगे, तो वहाँ लौट जानेके बाद भी हमारे प्राण नहीं बच सकते।'

वानरोंका यह दीन वचन सुनकर सम्पातिके नेत्रोंमें आँसू आ गये और उन्होंने उच्च स्वरसे उत्तर दिया—'कपिवरो! तुम जिसे महाबली रावणके द्वारा युद्धमें मारा गया बतलाते हो, वह जटायु मेरा छोटा भाई था। मैं बूढ़ा हुआ, मेरे पंख जल गये; इसलिये अब मुझमें अपने भाईके वैरका बदला लेनेकी शक्ति नहीं रह गयी है। यही कारण है कि अप्रिय बात सुनकर भी मैं चुपचाप सहे लेता हूँ।' जटायुके भाई सम्पातिके ऐसा कहनेपर युवराज अङ्गद बोले—'पक्षिराज! यदि तुम्हें उस राक्षसके निवासस्थानका पता हो तो हमें बता दो।' सम्पातिने कहा—'वानरो! मेरे पंख जल गये। अब मैं बेपरका गीध हूँ। मेरी शक्ति जाती रही, [अतः मैं शरीरसे तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता; तथापि] वचनमात्रसे भगवान् श्रीरामकी उत्तम सहायता अवश्य करूँगा। मैं वरुणके लोकोंको जानता हूँ। वामनावतारके समय भगवान् विष्णुने जहाँ-जहाँ अपने तीन पग रखे थे, उन स्थानोंका भी मुझे ज्ञान है। अमृत-मन्थन तथा देवासुर-संग्राम भी मेरी आँखों देखी घटनाएँ हैं। यद्यपि वृद्धावस्थाने मेरा तेज हर लिया है और मेरी प्राण-शक्ति शिथिल हो गयी है, तथापि श्रीरामचन्द्रजीका यह कार्य मुझे सबसे पहले करना है। एक दिन मैंने भी देखा, दुरात्मा रावण सब प्रकारके गहनोंसे सजी हुई एक रूपवती युवतीको हरकर लिये जा रहा था। वह सुन्दरी 'हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!' की रट लगाती हुई अपने गहने फेंकती और छटपटा रही थी। श्रीरामका नाम लेनेसे मैं समझता हूँ, वह सीता ही थी। अब मैं उस राक्षसके घरका पता बताता हूँ, सुनो। रावण नामका राक्षस महर्षि विश्रवाका पुत्र और साक्षात् कुबेरका भाई है। वह लङ्का नामकी नगरीमें रहता है। यहाँसे पूरे चार सौ कोसके अन्तरपर समुद्रमें एक द्वीप है, जहाँ विश्वकर्माने अत्यन्त रमणीय लङ्कापुरीका निर्माण किया है। उसके विचित्र दरवाजे, चबूतरे और बड़े-बड़े महल सोनेके बने हुए हैं। उस नगरीकी चहारदीवारी बहुत बड़ी है और सूर्यकी भाँति चमकती रहती है। उसीके भीतर पीले रंगकी रेशमी साड़ी पहने विदेहकुमारी सीता बड़े दुःखसे निवास करती हैं। वे रावणके अन्तःपुरमें नजरबंद हैं। बहुत-सी राक्षसियाँ उनके पहरेपर तैनात हैं। वहाँ पहुँचनेपर तुमलोग राजा जनककी कन्या सीताको देख सकते हो। वानरो! आकाशका पहला मार्ग गौरैयों तथा अन्न खानेवाले कबूतर आदि पक्षियोंका है। उससे ऊपरका दूसरा मार्ग कौओं तथा वृक्षोंके फल खाकर रहनेवाले दूसरे-दूसरे पक्षियोंका है। उससे भी ऊँचा जो आकाशका तीसरा मार्ग है; उससे चील, क्रौञ्च और कुरर आदि पक्षी जाते हैं। बाज चौथे और गृध्र पाँचवें मार्गसे उड़ते हैं। रूप, बल और पराक्रमसे सम्पन्न हंसोंका छठा मार्ग है तथा उससे भी ऊँची उड़ान गरुड़की है। हम सब लोगोंका जन्म गरुड़से ही हुआ है; किन्तु [पूर्वजन्ममें] हमसे कोई निन्दित कर्म बन गया है, जिससे हमें मांसाहारी होना पड़ा है। [तुम्हारी सहायता करके] मुझे रावणसे अपने भाईके वैरका बदला लेना है। मैं यहींसे रावण और जानकीको देखता हूँ। हमलोगोंमें भी गरुड़की भाँति दूरतक देखनेकी दिव्य शक्ति है। हम स्वभावसे ही सौ योजन तथा उससे आगेतक भी देख सकते हैं। खारे पानीके इस समुद्रको लाँघनेका कोई उपाय सोचो, फिर सीताके पास जा तुम सफल-मनोरथ होकर लौटोगे। अब मैं तुम्हारी सहायतासे समुद्रके किनारे चलना चाहता हूँ, वहाँ अपने स्वर्गवासी भाई महात्मा जटायुको जलाञ्जलि प्रदान करूँगा।' यह सुनकर महा-पराक्रमी वानरोंने जले पंखवाले सम्पातिको उठाकर समुद्रके किनारे पहुँचा दिया और जलाञ्जलि देनेके पश्चात् वे पुनः उनको वहाँसे उठाकर उनके रहनेके स्थानपर ले आये। उनके मुखसे सीताका यथार्थ समाचार जानकर उन सभी वानरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृध्रराज सम्पाति जब भाईको जलाञ्जलि देकर स्नान कर चुके तब उस पर्वतपर समस्त वानर उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। सम्पातिने युवराज अङ्गदसे कहा—"प्राचीन कालकी बात है, मैं सूर्यकी किरणोंसे झुलसकर अत्यन्त सन्तप्त हो विन्ध्यगिरिके शिखरपर गिर पड़ा। उस समय छः रात बीत जानेपर मुझे होश हुआ और मैं व्याकुल होकर सब ओर देखने लगा; किन्तु कुछ भी समझ न सका। धीरे-धीरे समुद्र, पर्वत, नदी, तालाब, वन और यहाँके विभिन्न प्रदेशोंपर दृष्टि डालनेके बाद मेरी स्मरणशक्ति लौटी तथा मैंने निश्चय किया कि यह दक्षिण-समुद्रके किनारेपर विन्ध्यपर्वत है, जिसमें अनेकों कन्दराएँ, गुफाएँ और शिखर हैं। तथा जहाँ हर्षसे भरे हुए बहुतेरे पक्षी निवास करते हैं। पूर्वकालमें यहाँ एक पवित्र आश्रम था, जिसका देवता भी सम्मान करते थे। उस आश्रममें निशाकर [ चन्द्रमा ] नामधारी एक ऋषि रहते थे, वे बड़े उग्र तपस्वी थे। मैं बहुत कष्टके साथ इस पर्वतके दुर्गम शिखरसे धीरे-धीरे नीचे उतरा तो तीखे कुशोंवाली पृथ्वीपर आ गया। फिर वहाँसे भी कष्ट सहन करता हुआ आगे बढ़ा। मेरे मनमें उन महर्षिके दर्शनकी इच्छा थी। इसके पहले मैं और जटायु दोनों उनसे कई बार मिल चुके थे। उनके आश्रमके पास सदा सुगन्धित हवा चलती थी। वहाँका कोई भी वृक्ष फल-फूलसे रहित नहीं देखा जाता था। उस पवित्र आश्रमपर पहुँचकर मैं एक वृक्षके नीचे ठहर गया और भगवान् निशाकर [चन्द्रमा] के दर्शनकी इच्छासे उनके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा। इतनेमें महर्षि मुझे दूरसे आते दिखायी पड़े। वे अपने तेजसे दिप रहे थे और स्नान करके उत्तरकी ओर लौटे आ रहे थे। उनका तिरस्कार करना किसीके लिये भी कठिन था। अनेकों रीछ, हरिन, सिंह, बाघ और नाना प्रकारके सर्प उन्हें इस प्रकार घेरे आ रहे थे, जैसे याचना करनेवाले प्राणी दाताको घेरकर चलते हैं। ऋषिको आश्रमपर आया जान वे सभी जीव लौट गये; जिस प्रकार राजाके महलमें चले जानेपर मन्त्रीसहित सेना अपने विश्रामस्थानको लौट जाती है। ऋषि मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए और अपने आश्रममें जाकर पुनः थोड़ी ही देरमें बाहर निकल आये; फिर मेरे पास आकर उन्होंने मेरे आनेका प्रयोजन पूछा और कहा—'सौम्य! तुम्हारे रोएँ गिर गये और दोनों पंख जल गये हैं; इसका कारण नहीं जान पड़ता। मैं तुम्हें पहचानता हूँ। तुम दो भाई पहले मुझसे मिला करते थे। सम्पाते! उनमें ज्येष्ठ तुम हो और जटायु तुम्हारा छोटा भाई था। तुम दोनों मनुष्यरूप धारण करके मेरा चरण-स्पर्श किया करते थे। यह तुम्हें कौन-सा रोग हो गया है? तुम्हारे दोनों पंख कैसे गिर गये? किसीने दण्ड तो नहीं दिया है? तुम सब बातें स्पष्टरूपसे कहो।'

"उनके इस प्रकार पूछनेपर मैंने बिना सोचे-समझे जो दुष्कर कार्य किया था, वह उन्हें बताया। मैंने कहा—'मुने! मैं और जटायु दोनों ही गर्वसे मोहित हो रहे थे, अतः अपने पराक्रमकी थाह लगानेके लिये हम दोनों आकाशमें दूरतक पहुँचनेके उद्देश्यसे उड़ने लगे। कैलासके शिखरपर मुनियोंके सामने हमने शर्त बदी थी कि सूर्य जबतक अस्ताचलपर जायँ, उसके पहले ही हम दोनोंको उनके पास पहुँच जाना चाहिये। यह निश्चय करके हम साथ ही आकाशमें जा पहुँचे। वहाँसे पृथ्वीके भिन्न-भिन्न नगर रथके पहियेके बराबर दिखायी पड़ते थे। उससे भी ऊँचे उड़कर हम तुरंत सूर्यके मार्गपर जा पहुँचे। वहाँसे नीचे दृष्टि डालनेपर यहाँके जंगल घासकी तरह दिखायी देते थे। पर्वतोंके कारण यह भूमि ऐसी जान पड़ती थी मानो इसपर पत्थर बिछाये गये हों और नदियोंको देखकर ऐसा अनुमान होता था मानो समूची पृथ्वीपर सूतके धागे लपेटे गये हों। भूतलपर हिमालय, विन्ध्य और मेरु आदि बड़े-बड़े पर्वत तालाबमें खड़े हुए हाथीके समान प्रतीत होते थे। उस समय हम दोनों भाइयोंके शरीरसे बहुत पसीना निकलने लगा। हमें बड़ी थकावट मालूम हुई। फिर तो हमारे ऊपर भय, मोह और भयानक मूर्च्छाने अधिकार जमा लिया। दक्षिण, पश्चिम अथवा अग्निकोण आदि दिशाओंका ज्ञान नहीं रहा। बड़ा प्रयत्न करके मैंने मन और नेत्रोंको सूर्यमें लगाया। बड़ी कोशिशके बाद सूर्यका दर्शन हुआ। वे हमें पृथ्वीके बराबर ही जान पड़ते थे। जटायु मुझसे पूछे बिना ही पृथ्वीपर उतर पड़ा। उसे नीचे जाते देख मैंने भी तुरंत अपनेको आकाशसे नीचेकी ओर छोड़ दिया। मैंने अपने दोनों पंखोंसे जटायुको ढक लिया था, इसलिये वह जल न सका। मैं ही असावधानीके कारण वहाँ जल गया। वायु-के पथसे नीचे गिरते समय मुझे ऐसा सन्देह हुआ कि जटायु जनस्थानमें गिरा है; परन्तु मैं इस विन्ध्यपर्वतपर गिरा था। मेरे दोनों पंख जल गये थे, इसलिये यहाँ जडवत् हो गया। राज्यसे भ्रष्ट हुआ, भाईसे बिछुड़ गया और पंख तथा पराक्रमसे भी हाथ धो बैठा। अब मैं सर्वथा मरनेकी ही इच्छासे पर्वतके शिखरसे नीचे गिरूँगा।'

"उन मुनिश्रेष्ठसे ऐसा कहकर मैं बहुत दुखी हो विलाप करने लगा। मेरी बात सुनकर थोड़ी देरतक ध्यान करनेके बाद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


महर्षि निशाकर [ चन्द्रमा ] ने कहा—'सम्पाते ! [ चिन्ता न करो, ] तुम्हारे छोटे और बड़े दोनों तरहके पंख फिर नये निकल आयेंगे। आँखें भी ठीक हो जायेंगी तथा खोयी हुई प्राणशक्ति, बल और पराक्रम—सब लौट आयेंगे। मैंने पुराणमें आगे होनेवाले अनेकों बड़े-बड़े कार्योंकी बात सुनी है। तपस्याके द्वारा भी मैंने उन सब बातोंको प्रत्यक्ष किया है। इक्ष्वाकु-वंशमें कोई दशरथ नामके राजा होंगे। उनके एक महातेजस्वी पुत्र होंगे, जिनकी श्रीरामके नामसे प्रसिद्धि होगी। सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञा पाकर [ अपनी पत्नी सीता और ] भाई लक्ष्मणके साथ वनमें जायँगे। उस समय राक्षसोंका राजा रावण, जो देवता और दानवोंके लिये भी अवध्य होगा, जनस्थानमें आकर उनकी पत्नी सीताको चुरा ले जायगा। मिथिलेशकुमारी सीता बड़ी ही सौभाग्यवती और यशस्विनी होगी। यद्यपि राक्षसकी ओरसे उसको तरह-तरहके भोगोंका और भक्ष्य-भोज्य आदिका प्रलोभन दिया जायगा, तथापि वह उन्हें स्वीकार नहीं करेगी और निरन्तर [ अपने पतिके लिये चिन्तित होकर ] दुःखमें डूबी रहेगी। सीता राक्षसका अन्न नहीं ग्रहण करती—यह मालूम होनेपर देवराज इन्द्र उसके लिये अमृतके समान खीर, जो देवताओंको भी दुर्लभ है, निवेदन करेंगे। उस अन्नको इन्द्रका दिया हुआ जानकर जानकी उसे स्वीकार कर लेगी और सबसे पहले उसमेंसे अग्रभाग निकालकर श्रीरामचन्द्रजीके उद्देश्यसे पृथ्वीपर रखकर अर्पण करेगी। उस समय वह इस प्रकार कहेगी—'मेरे पति भगवान् श्रीराम तथा देवर लक्ष्मण जीवित हों अथवा देवभावको प्राप्त हो गये हों—यह अन्न उनके लिये समर्पित है।' सम्पाते ! रघुनाथजीके भेजे हुए वानर यहाँ सीताका पता लगाते हुए आयेंगे, उन्हें तुम रामपत्नी सीताका पता बताना। यहाँसे कभी दूसरी जगह न जाना। देश और कालकी प्रतीक्षा करो, तुम्हारे पंख फिर आ जायँगे। यद्यपि मैं आज ही तुम्हें पंखयुक्त कर सकता हूँ, फिर भी इसलिये ऐसा नहीं करता कि यहाँ रहनेपर तुम संसारका अधिक कल्याण कर सकोगे। तुम भी उन दोनों राजकुमारोंके कार्यमें सहायता करना। इससे ब्राह्मणों, गुरुजनों, मुनियों और इन्द्रका भी कार्य हो जायगा। यद्यपि मैं भी उन दोनों भाइयोंका दर्शन करना चाहता हूँ, किन्तु अधिक दिनोंतक शरीर नहीं रख सकता।' उन तत्त्व-दर्शी महर्षिने इस प्रकारकी और भी बहुत-सी बातें कहकर मुझे समझाया तथा मेरी अनुमति लेकर वे अपने आश्रममें चले गये। मैं फिर धीरे-धीरे कन्दरासे निकलकर विन्ध्यपर्वतके शिखर-पर चढ़ आया और तबसे तुमलोगोंके आनेकी बाट देख रहा था। मेरे मनमें कई बार प्राण त्यागनेकी इच्छा हुई, किन्तु मुनिके वचनोंको याद करके मैंने उस सङ्कल्पको त्याग दिया।''

वानरोंके साथ इस प्रकार बातचीत करते हुए उस पक्षीके दोनों पंख निकल आये। वानरोंकी आँखोंके सामने ही यह घटना घटित हुई। अपने शरीरको लाल रंगके नये पंखोंसे युक्त देखकर सम्पातिको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे वानरोंसे बोले—'अमिततेजस्वी राजर्षि निशाकरके प्रसादसे सूर्य-किरणोंद्वारा दग्ध हुए मेरे दोनों पंख फिर उत्पन्न हो गये। युवावस्थामें मेरा जैसा पराक्रम और बल था, वैसे ही बल और पुरुषार्थका इस समय मैं अनुभव कर रहा हूँ। वानरो ! तुम सब प्रकारसे यत्न करो, निश्चय ही तुम्हें सीताका दर्शन होगा। मेरे पंखोंका फिरसे उत्पन्न होना तुमलोगोंकी कार्य-सिद्धिका विश्वास दिलानेवाला है।' यह कहकर पक्षियोंमें श्रेष्ठ सम्पाति अपने आकाश-गमनकी शक्तिका परिचय पानेके लिये उस पर्वत-शिखरसे उड़ गये।

## समुद्र लाँघनेके सम्बन्धमें विचार, वानरोंका अपनी-अपनी शक्तिका परिचय देना तथा जाम्बवान्‌के बढ़ावा देनेपर हनुमान्‌जीका पार जानेको कटिबद्ध होना

गृध्रराज सम्पातिके मुखसे सीताका समाचार सुनकर सिंहके समान पराक्रमी सभी वानर प्रसन्नतापूर्वक गरजने लगे। वे सब-के-सब महान् बली और वीर थे। उन्होंने [ रात्रिमें ] दक्षिण-समुद्रके उत्तर-तटपर जाकर डेरा डाला। वह सागर उन्हें आकाशकी भाँति अपार दिखायी दिया। इसे पार करना बहुत ही कठिन है—यह सोचकर सभी विषादग्रस्त हो गये और परस्पर कहने लगे—'अब कार्य कैसे होगा ?' वानरश्रेष्ठ अङ्गदने देखा, मेरी सेना समुद्रकी विशालता देखकर चिन्तित हो उठी है। तब उन्होंने भयभीत वानरोंको ढाढ़स देते हुए कहा—'वीरो ! तुम्हें अपने मनमें विषाद नहीं आने देना चाहिये, विषादमें बहुत बड़ा दोष है। जैसे क्रोधमें भरा हुआ साँप [ अपने पास आये हुए ] बालकको काट खाता है, उसी प्रकार विषाद पुरुषका नाश कर डालता है। जो पराक्रमका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

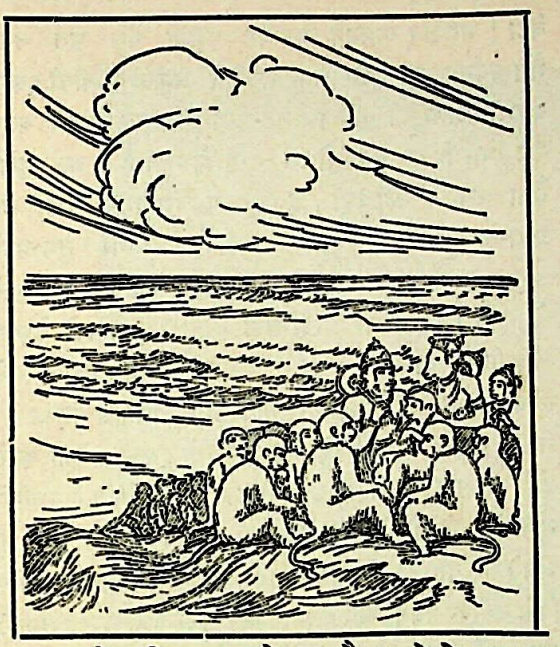

अवसर आनेपर विषादग्रस्त हो जाता है, उसके तेजका नाश होता है; फिर उससे पुरुषार्थ नहीं होता।'* उस रात्रिके बीत जानेपर अङ्गद बड़े-बूढ़े वानरोंके साथ मिलकर फिर विचार करने लगे। वानरोंकी वह सेना उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठी थी। शत्रुओंका दमन करनेवाले युवराज अङ्गदने वृद्ध वानरोंका सम्मान करके यह अर्थयुक्त बात कही—सज्जनो! तुमलोगोंमें कौन ऐसा वीर है, जो सौ योजनका समुद्र लाँघकर इन समस्त यूथपतियोंको महान् भयसे मुक्त कर सके? किसके प्रसादसे हमलोग सफलमनोरथ एवं सुखी होकर यहाँसे लौटने और घर-द्वार तथा स्त्री-पुत्रोंका मुँह देखनेकी आशा करें? भगवान् श्रीराम, महाबली लक्ष्मण तथा वानरराज सुग्रीवके पास हमलोग प्रसन्नतापूर्वक चल सकें—यह किस वीरके प्रसादसे सम्भव है? यदि तुमलोगोंमेंसे कोई वानर-वीर समुद्रको लाँघ जानेमें समर्थ हो, तो वह शीघ्र हमें परम पवित्र अभयदान दे। तुम सब लोग उत्कट पुरुषार्थ दिखानेवाले हो; इसके लिये तुम्हारी अनेकों बार प्रशंसा हो चुकी है। अतः कपिवरो! समुद्रको लाँघनेकी जिसमें जितनी शक्ति हो, वह उसे बताये।'

* न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः॥
यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्धयति॥ (६४। ९-१०)

अङ्गदकी बात सुनकर सभी श्रेष्ठ वानर लंबी छलाँग मारनेके सम्बन्धमें अपने-अपने उत्साहका—शक्तिका क्रमशः परिचय देने लगे। गजने कहा—'मैं दस योजनकी छलाँग मार सकता हूँ।' गवाक्ष बोले—'मैं बीस योजनतक चला जाऊँगा। शरभने तीस, ऋषभने चालीस, महातेजस्वी गन्धमादनने पचास, मैन्दने साठ, अत्यन्त तेजस्वी द्विविदने सत्तर और कपिश्रेष्ठ सुषेणने अस्सी योजनतक जानेकी प्रतिज्ञा की। इस प्रकार कहनेवाले सब वानरोंका सम्मान करके ऋक्षराज जाम्बवान्, जो सबसे बूढ़े थे, बोले—'पहले—युवावस्थामें मेरे अंदर भी दूरतक छलाँग मारनेकी कुछ शक्ति थी, किन्तु अब मैं उस उम्रको पार कर चुका। इस समय मैं नब्बे योजनतक जा सकूँगा; इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसके बाद परम बुद्धिमान् अङ्गद जाम्बवान्‌का आदर करके बोले—मैं सौ योजनतक तो जा सकता हूँ, किन्तु लौटनेकी शक्ति मुझमें रहेगी या नहीं, इसका मुझे निश्चय नहीं है। तब बोलनेमें चतुर जाम्बवान्‌ने अङ्गदसे कहा—'वानरश्रेष्ठ! तुम्हारी गमन-शक्तिसे हमलोग परिचित हैं, तुम इच्छा करते ही सौ योजन अथवा हजार योजन भी जाकर लौट सकते हो, तथापि तुम्हें भेजना हमारे लिये उचित नहीं होगा। तात! जो सबको आज्ञा देनेवाला स्वामी होता है, वह स्वयं किसी तरह आज्ञावाहक नहीं हो सकता। ये सब लोग तुम्हारे सेवक हैं, इन्हींमेंसे किसीको भेजो। तुम्हारा आश्रय लेकर ही हम सब लोग कार्य-साधनमें समर्थ हो सकते हैं।'

महाप्राज्ञ जाम्बवान्‌के ऐसा कहनेपर वालिकुमार अङ्गदने उत्तर दिया—'यदि मैं नहीं जाऊँगा और दूसरा भी कोई जानेको तैयार न होगा तो फिर हमलोगोंको मरणान्त उपवास ही करना होगा। वानरराज सुग्रीवकी आज्ञाका पालन किये बिना ही यदि किष्किन्धाको लौट चलें तो वहाँ भी अपने प्राणोंकी रक्षाका कोई उपाय नहीं दिखायी देता। उनके आदेशका उल्लङ्घन करके जानेपर विनाश अवश्यंभावी है। अतः जिस उपायसे इस सीता-दर्शनरूपी कार्यकी सिद्धिमें कोई रुकावट न पड़े, उसे आप ही सोचकर बताइये; क्योंकि आपको सब बातोंका अनुभव है।' अङ्गदके ऐसा कहनेपर जाम्बवान् बोले—'वीर! तुम्हारे कार्यमें कोई बाधा नहीं आने पायेगी। जो वीर इस कार्यको कर सकेगा, उसे मैं अभी प्रेरित करता हूँ।' यह कहकर जाम्बवान् वानर-सेनाके श्रेष्ठ वीर हनुमान्‌जीके पास गये, जो एकान्तमें जाकर मौजसे बैठे थे। उन्हें किसी बातकी चिन्ता नहीं थी।


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वे दूरतककी छलाँग मारनेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ थे। जाम्बवान्‌ने लाखों वानरोंकी सेनाको विषादमें पड़ी देख हनुमान्‌जीसे कहा—'सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा वानर-जगत्‌के अद्वितीय वीर हनुमान्! तुम कैसे एकान्तमें आकर चुपचाप बैठ गये? कुछ बोलते क्यों नहीं? तुम तो वानरराज सुग्रीवके समान पराक्रमी हो। तेज और बलमें भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणके समान हो। गमन-शक्तिमें विनताके पुत्र महाबली गरुड़की भाँति विख्यात हो। उनके पंखोंमें जो बल है, वही बल—वही पराक्रम तुम्हारी इन भुजाओंमें भी है। तेज और पुरुषार्थमें तुम किसी तरह उनसे कम नहीं हो। तुम्हारे अंदर समस्त प्राणियोंसे बढ़कर बल, बुद्धि, तेज और धैर्य हैं; फिर तुम इस कार्यके लिये क्यों नहीं कमर कसते? [तुम्हारे जन्मकी कथा इस प्रकार है—] पुञ्जिकस्थला नामकी अप्सरा शापवश वानर-श्रेष्ठ कुञ्जरकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण हुई थी, जो अञ्जनाके नामसे प्रसिद्ध हुई। वानर-योनिमें जन्म लेनेपर भी वह इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी। संसारमें उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। वही केसरी नामक वानरकी धर्मपत्नी हुई। उसने वायुदेवताके मानसिक सम्पर्कसे एक गुफाके भीतर तुम्हें उत्पन्न किया। बाल्यावस्थामें ही एक दिन उदय होते हुए सूर्यको देखकर तुमने समझा कि यह भी कोई फल है; अतः उसे लेनेके लिये तुम सहसा आकाशमें उछल पड़े। तीन सौ योजन ऊँचे जानेके बाद सूर्यके तेजसे आक्रान्त होनेपर भी तुम्हारे मनमें खेद या चिन्ता नहीं हुई। महाकपे! अन्तरिक्षमें जाकर जब तुरंत ही तुम सूर्यके पास पहुँच गये, तो इन्द्रने कुपित होकर तुम्हारे ऊपर वज्रका प्रहार किया। उस समय उदयगिरिके शिखरपर तुम्हारी ठोड़ीका बायाँ भाग वज्रकी चोटसे खण्डित हो गया। तभीसे तुम्हारा नाम 'हनुमान्' पड़ गया। तुमपर प्रहार किया गया है, यह देखकर वायु देवताको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने तीनों लोकोंमें बहना छोड़ दिया। इससे सम्पूर्ण देवता घबरा गये। तीनों लोकोंमें खलबली मच गयी। समस्त लोकपाल वायुदेवको मनाने लगे। उनके प्रसन्न होनेपर ब्रह्माजीने तुम्हें यह वरदान दिया कि युद्धमें शस्त्रोंद्वारा तुम्हें कोई मार नहीं सकेगा। फिर इन्द्रने भी प्रसन्न होकर तुमको यह वर दिया कि मृत्यु तुम्हारे अधीन होगी—तुम चाहोगे तभी मर सकोगे, अन्यथा नहीं। इस प्रकार तुम्हारा पराक्रम बड़ा भयंकर है। तुम केसरीके क्षेत्रज और वायु-देवताके औरस पुत्र हो; तेज और गमन-शक्तिमें भी तुम वायुके समान हो। बेटा! भगवान् वामनने जब पैर बढ़ाया था, उस समय मैंने पर्वत, वन और काननोंसहित समूची पृथ्वीकी इक्कीस बार प्रदक्षिणा की थी। समुद्र-मन्थनके समय मुझमें बहुत बल था, किन्तु अब तो मैं बूढ़ा हो गया हूँ। अब मुझमें वैसा पराक्रम नहीं रहा। इस समय हमलोगोंमें तुम्हीं सब प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न हो, अतः महापराक्रमी वीर! तुम अपने असीम बलका विस्तार करो। छलाँग मारनेवालोंमें तुम सबसे श्रेष्ठ हो। यह सारी वानर-सेना तुम्हारे पराक्रमको देखना चाहती है। वानरश्रेष्ठ हनुमान्! उठो और इस महासागरको लाँघ जाओ; क्योंकि तुम्हारी गति सभी प्राणियोंसे बढ़कर है। समस्त वानर चिन्तामें पड़े हैं! तुम क्यों इनकी उपेक्षा करते हो? तुम्हारा वेग महान् है। जैसे भगवान् विष्णुने [पृथ्वीको नापनेके लिये] तीन पग बढ़ाये थे, उसी प्रकार तुम भी अपने पैर बढ़ाओ।' जाम्बवान्‌के द्वारा इस प्रकार प्रेरित किये जानेपर पवनकुमार हनुमान्‌जीने वानर-वीरोंकी उस सेनाको अपार हर्ष प्रदान करते हुए अपने [विशाल] रूपको प्रकट किया।

सौ योजनका समुद्र लाँघनेके लिये हनुमान्‌जीको सहसा बढ़ते और वेगसे परिपूर्ण होते देख वानरोंका शोक तुरन्त दूर हो गया और सभी अत्यन्त हर्षसे भर गये। वे महाबली हनुमान्‌जीकी स्तुति करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे और प्रसन्न एवं चकित होकर उन्हें उसी प्रकार सब ओरसे देखने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## जाम्बवान्‌का हनुमान्‌को प्रोत्साहन

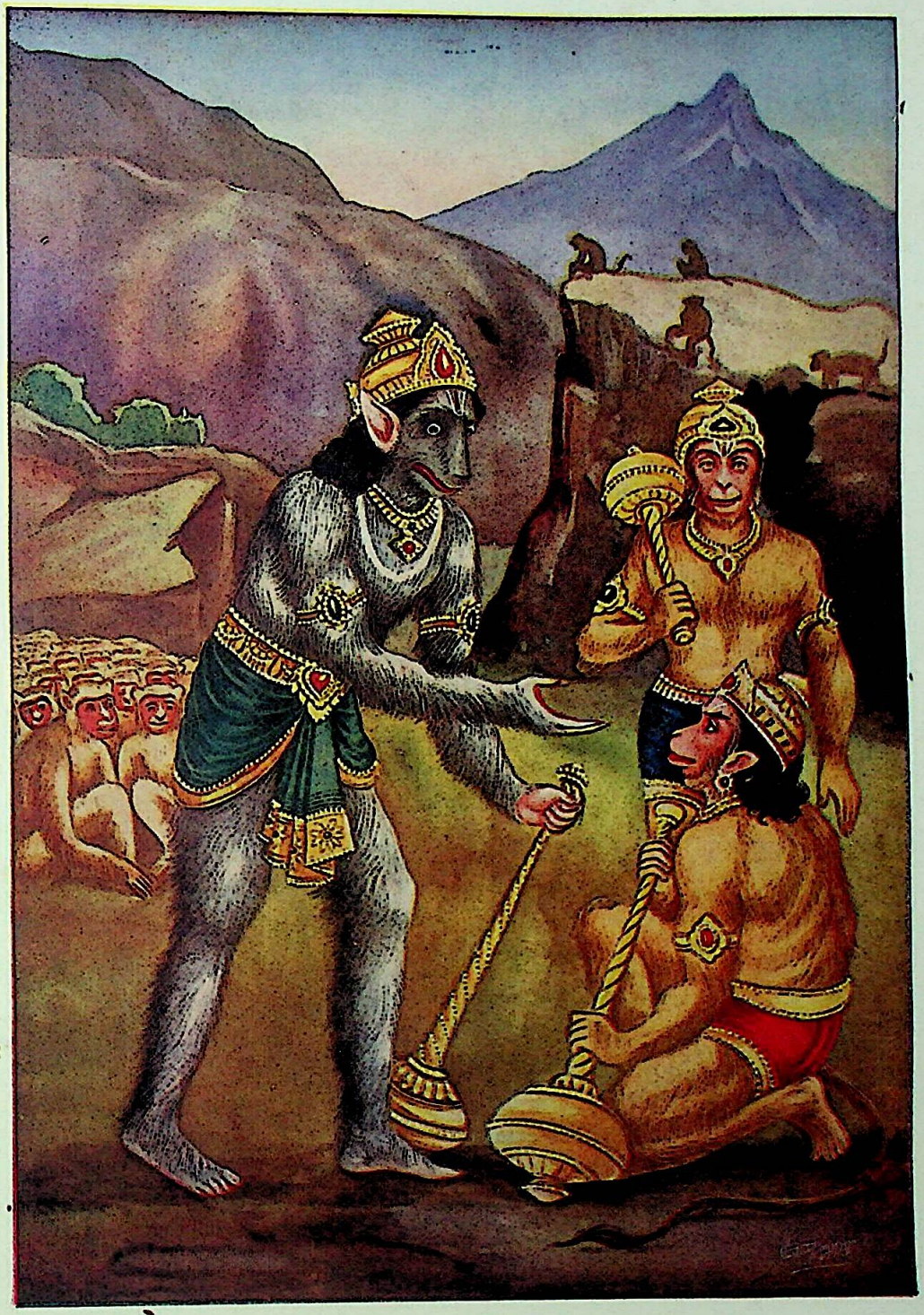

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम् । परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव ॥
विषण्णा हरयः सर्वे हनुमन् किमुपेक्षसे । विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन् विक्रमानिव ॥
(किष्किन्धा० ६६ । ३६-३७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

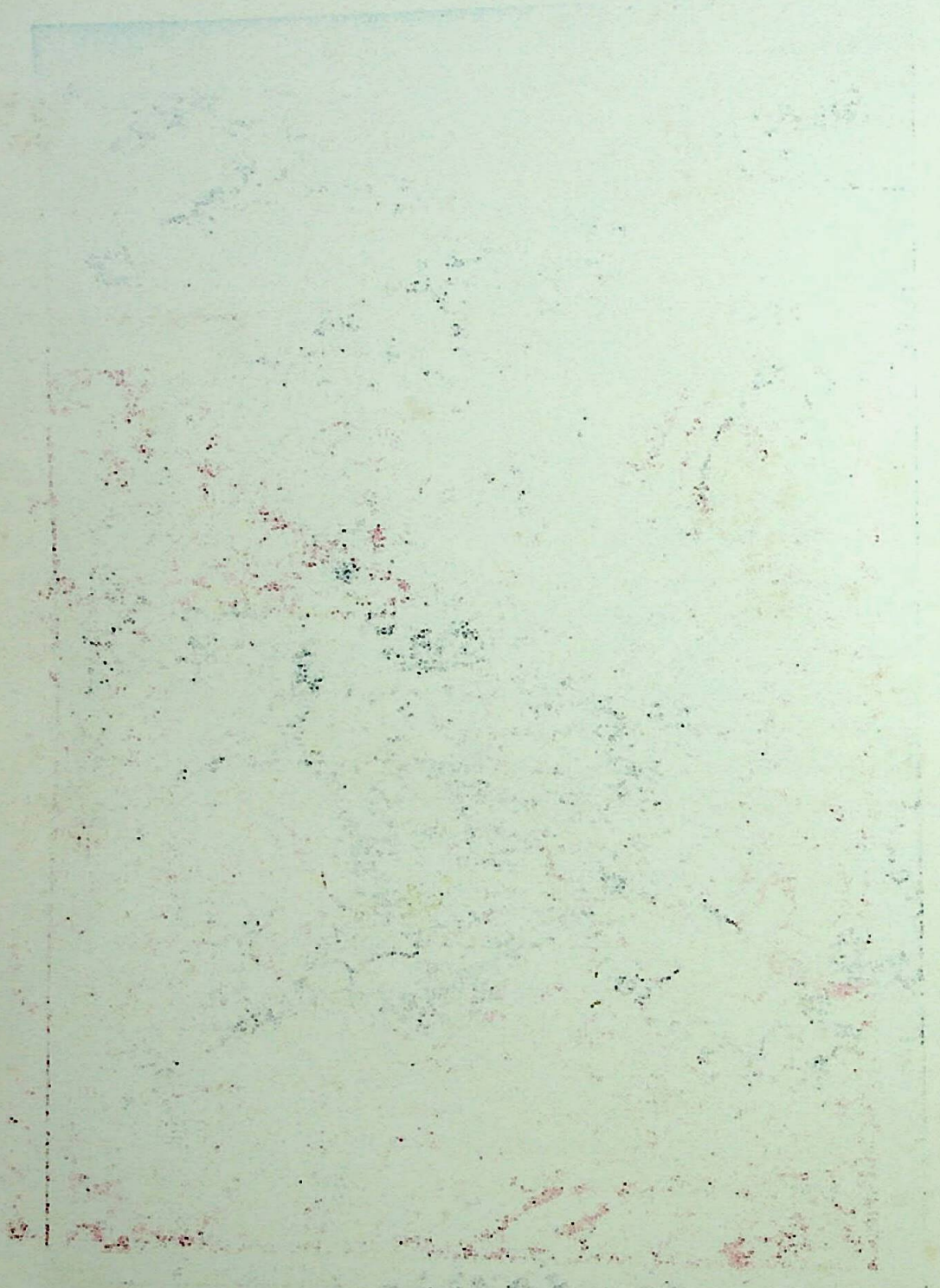

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लगे, जैसे उत्साहयुक्त नारायणावतार वामनजीको समस्त प्रजाने देखा था। अपनी प्रशंसा सुनकर महाबली हनुमान्‌ने शरीरको और भी बढ़ाना आरम्भ किया। उन्होंने पूँछको बारंबार पटककर बड़े हर्षके साथ अपने बलका स्मरण किया। बड़े-बूढ़े श्रेष्ठ वानरोंके स्तुति करनेपर हनुमान्‌जी अपार तेजसे भर गये; उस समय उनका रूप बहुत ही उत्तम—बड़ा सुन्दर हो गया। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। वे वानरोंके बीचमें खड़े होकर वृद्ध पुरुषोंको प्रणाम करके बोले—'आकाशमें विचरनेवाले वायु-देवता बड़े बलवान् हैं। उनकी शक्तिकी कोई सीमा नहीं है। वे अत्यन्त वेगवान् और शीघ्रगामी हैं। मैं उन्हीं महात्मा मारुतका औरस पुत्र हूँ और चलने तथा छलाँग मारनेमें उन्हींके समान हूँ। [कई हजार योजनोंतक ] फैले हुए मेरु गिरिकी, जो आकाशके बहुत बड़े भागको ढके हुए है, मैं बिना विश्राम लिये हजारों बार परिक्रमा कर सकता हूँ। वरुणका घर यह महासागर मेरी जाँघों और पिंडलियोंके वेगसे क्षुब्ध हो उठेगा। इसके भीतर रहनेवाले बड़े-बड़े ग्राह ऊपर आ जायँगे। समस्त पक्षी जिनकी सेवा करते हैं, वे विनतानन्दन गरुड़ आकाशमें उड़ते हों तो भी मैं हजारों बार उनके चारों ओर घूम सकता हूँ। उदयाचलसे चलकर अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए सूर्यदेवको मैं अस्त होनेके पहले ही छू सकता हूँ और वहाँसे पृथ्वीतक आकर यहाँ पैर रखे बिना ही पुनः उनके पासतक बड़े वेगसे जा सकता हूँ। मैं चाहूँ तो समुद्रको सोख लूँ, पृथ्वीको विदीर्ण कर दूँ और कूदकर पर्वतोंको चूर-चूर कर डालूँ। आज आकाशमें वेगपूर्वक जाते समय नाना प्रकारकी लताओं और वृक्षोंके फूल मेरे साथ-साथ उड़ते जायँगे। समस्त प्राणी और सभी वानर आज मुझे भयंकर आकाशमें सीधे जाते हुए, ऊपर उछलते हुए और नीचे उतरते हुए देखेंगे। वानरो! तुम-लोग देखोगे, मैं महागिरि मेरुके समान विशाल शरीर धारण करके आकाशको ढकता हुआ जाऊँगा, पक्षिराज गरुड़ अथवा महाबली वायु-देवताके सिवा और किसी प्राणीको मैं ऐसा नहीं देखता, जो यहाँसे छलाँग मारनेपर मेरे साथ जा सके। बादलसे उत्पन्न हुई बिजलीकी भाँति मैं पलक मारते-मारते सहसा निराधार आकाशमें उड़ जाऊँगा। समुद्रको लाँघते हुए मेरा वही रूप होगा, जो तीनों पगोंको बढ़ाते समय वामनरूपधारी भगवान् विष्णुका हुआ था। वानरो! तुमलोग खुशियाँ मनाओ, मैं निश्चय ही विदेहकुमारी सीताका दर्शन करूँगा। मैं बुद्धिसे ऐसा अनुभव कर रहा हूँ तथा मुझे अनुमान भी ऐसा ही हो रहा है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि इस समय मैं दस हजार योजनतक जा सकता हूँ। वज्रधारी इन्द्र अथवा स्वयम्भू ब्रह्माजीके हाथसे भी बलपूर्वक अमृत छीनकर सहसा यहाँ ला सकता हूँ। समूची लङ्काको भी जमीनसे उखाड़कर हाथपर उठाये चल सकता हूँ।'

अमिततेजस्वी वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी जब इस प्रकार सिंहनाद कर रहे थे, उस समय सम्पूर्ण वानर अत्यन्त हर्षमें भरकर चकित-भावसे उनकी ओर देख रहे थे। हनुमान्‌जीकी बातें भाई-बन्धुओंके शोकको नष्ट करनेवाली थीं। उन्हें सुनकर वानर-सेनापति जाम्बवान्‌को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे बोले—'वीर केसरीके सुपुत्र पवनकुमार! तुम बड़े वेगशाली हो। तात! तुमने अपने बन्धुओंका सारा शोक नष्ट कर दिया। यहाँ जो-जो श्रेष्ठ वानर एकत्रित हैं, ये सब तुम्हारी कल्याण-कामना करते हैं। अब ये कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे तुम्हारे लिये मङ्गलकृत्य—स्वस्तिवाचन आदिका अनुष्ठान करेंगे। ऋषियोंके प्रसाद, वृद्ध वानरोंकी अनुमति और गुरुजनोंकी कृपासे तुम महासागरके पार जाओ। हम सब लोगोंका जीवन तुम्हारे ही अधीन है।।' तदनन्तर वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌ने कहा—'जब मैं यहाँसे छलाँग मारूँगा, उस समय संसारमें कोई भी मेरे वेगको धारण नहीं कर सकेगा। केवल इस महेन्द्र-पर्वतके शिखर ही ऊँचे-ऊँचे और स्थिर हैं; अतः इन्हींपरसे मैं पूरे वेगके साथ कूद सकूँगा। ये ही सौ योजन दूर जानेके लिये कूदते समय मेरे वेगको धारण कर सकेंगे।' यह कहकर वायुके समान पराक्रमी हनुमान्‌जी पर्वतोंमें श्रेष्ठ महेन्द्रगिरिपर चढ़ गये।

किष्किन्धाकाण्ड समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण

## सुन्दरकाण्ड

### हनुमान्‌जीका समुद्र लाँघना तथा मैनाक, सुरसा और सिंहिकाके प्रसङ्ग

अब परम धीर महाबली श्रीहनुमान्‌जी वैदूर्य-मणि और समुद्रके जलके समान हरी-हरी घासपर आनन्दसे विचरने लगे। उस समय वे मतवाले सिंहके समान जान पड़ते थे। उन्होंने सूर्य, इन्द्र, पवन, ब्रह्मा तथा अन्य सब देवताओंको भी हाथ जोड़कर समुद्रके उस पार जानेका विचार किया। फिर पूर्वाभिमुख होकर अपने पिता पवनदेवको प्रणाम किया और दक्षिणकी ओर जानेको उद्यत हुए। जिस प्रकार पूर्णिमाके दिन समुद्रमें ज्वार आने लगता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीरामकी कार्यसिद्धिके लिये वे बढ़ने लगे। समुद्रको लाँघनेकी इच्छासे उन्होंने अपने शरीरको बेहद बढ़ा लिया और अपनी भुजा एवं चरणोंसे उस पर्वतको दबाया। कपिवर हनुमान्‌जीके दबाते ही वह पर्वत काँप उठा और उसपर जो फूले हुए वृक्ष लगे थे, उनके सभी फूल झड़ गये। मैनसिलके सहित उसकी बड़ी-बड़ी शिलाएँ भी गिरने लगीं। हनुमान्‌जीके पर्वत-पीडनसे पीडित होकर वहाँके समस्त जीव गुफाओंमें घुस गये और बुरी तरहसे चिल्लाने लगे। इस प्रकार पर्वतको दबानेसे उत्पन्न हुआ वह जीव-जन्तुओंका महान् कोलाहल पृथ्वी, उपवन और सम्पूर्ण दिशाओंमें भर गया। उस समय वहाँ रहनेवाले तपस्वी और विद्याधरोंने समझा कि इस पर्वतको भूतलोग तोड़ रहे हैं; इससे भयभीत होकर वे अपनी स्त्रियोंके सहित वहाँसे अन्तरिक्षमें चले गये। [ फिर आकाशमें खड़े होकर तपस्वीलोग कहने लगे—] 'अहा! ये पर्वतके समान विशालकाय, महान् वेगशाली पवननन्दन हनुमान्‌जी समुद्रको पार कर रहे हैं। समुद्रके उस पार पहुँचना तो बहुत ही कठिन है, तथापि श्रीराम और वानरोंकी कार्यसिद्धिके लिये दुष्कर कर्म करनेकी इच्छासे ये समुद्रके दूसरे तटपर पहुँचना चाहते हैं।' तपस्वियोंकी यह बात सुनकर विद्याधरोंने पर्वतके ऊपर अतुलित बलशाली हनुमान्‌जीको देखा।

उस समय हनुमान्‌जी अग्निके समान जान पड़ते थे। उन्होंने काँपकर अपने बालोंको झाड़ा तथा बड़े भारी बादलके समान जोरसे गर्जना की। फिर ऊपर उछलनेके लिये अपनी बालोंसे भरी पूँछको, जो गोलाकार लिपटी हुई थी; धीरे-धीरे फैलाया। उन्होंने अपनी परिघके समान भुजाओंको पर्वतपर जमाया, फिर पीठकी ओर खिंचकर अपनी भुजाओं और गर्दनको सिकोड़ लिया। इस समय उनमें तेज, बल और पराक्रम—सभीका आवेश हुआ। उन्होंने अपने लंबे मार्गपर नजर दौड़ानेके लिये आँखोंको ऊपर उठाया और आकाशकी ओर देखते हुए प्राणोंको हृदयमें रोका। इस तरह कूदनेकी तैयारी करते हुए पैरोंको अच्छी तरह जमाकर और कानोंको सिकोड़कर उन्होंने अन्य वानरोंसे इस प्रकार कहा—'जिस तरह श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ बाण वायु-वेगसे चलता है, उसी प्रकार मैं रावणद्वारा पालित लङ्कापुरीमें जाऊँगा। यदि वहाँ मुझे जानकीजी न मिलीं, तो ऐसे ही वेगसे स्वर्गलोकमें जाऊँगा। इस प्रकार परिश्रम करनेपर यदि स्वर्गमें भी सीताजी न मिलीं, तो राक्षसराज रावणको बाँधकर लाऊँगा। अथवा रावणके सहित लङ्काको ही उखाड़कर ले आऊँगा।' ऐसा कहकर वानरप्रवर श्रीहनुमान्‌जीने विघ्न-बाधाओंका कोई विचार न कर बड़े जोरसे छलाँग मारी। उस समय उन्होंने अपनेको साक्षात् गरुड़के समान ही समझा।

जिस समय वे कूदे, उस समय उनके वेगसे पर्वतपर उगे हुए सब वृक्ष इधर-उधर गिर गये तथा उनकी शाखाएँ भी झड़ गयीं। वे अनेकों फूले हुए वृक्षोंको खींचते हुए निर्मल आकाशमें चले। उनके महान् वेगसे झँझोड़े हुए साल तथा अन्यान्य वृक्ष इस प्रकार उनके पीछे चले, जैसे राजाके पीछे सेना चलती है। इस प्रकार अनेकों पुष्पित वृक्षोंके उनके पीछे उड़नेके कारण पर्वताकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हनुमान्‌जी बड़े ही अद्भुत दिखायी देते थे। जो वृक्ष उनके वेगसे उड़ते थे, वे अपने फूलोंको बरसाते हुए इस प्रकार

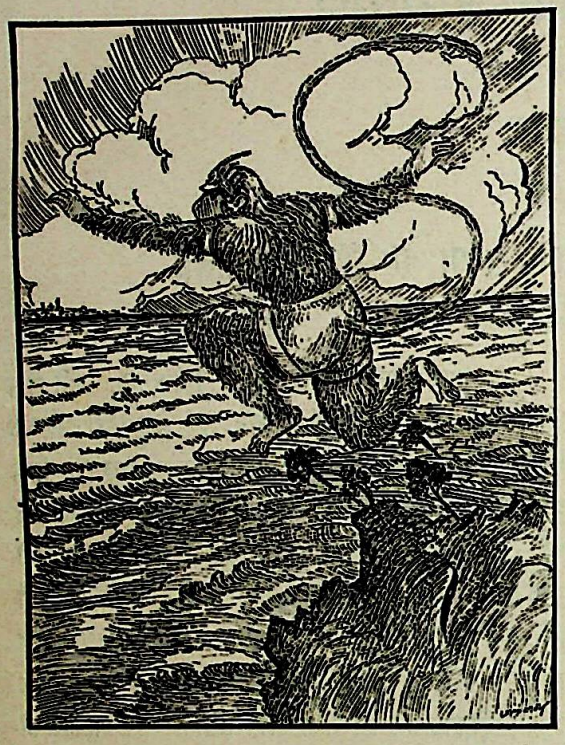

पानीमें डूब जाते थे, जैसे मित्रलोग अपने बन्धुको विदा करके लौट आते हैं। हनुमान्‌जीके वेगसे झड़े हुए फूलोंके कारण समुद्रका जल रमणीय तारोंसे खचित आकाशके समान जान पड़ता था। आकाशमें फैली हुई उनकी दोनों भुजाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो किसी पर्वतसे पाँच फनवाले दो सर्प निकले हों। उनकी गोल, बड़ी-बड़ी, पीले रंगकी आँखें चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित हो रही थीं। लाल-लाल नासिकाके कारण उनका सारा मुँह लाली लिये हुए था, वह सन्ध्याकालीन सूर्यमण्डल-सा दिखायी देता था। कूदते समय उनकी फैली हुई पूँछ आकाशमें उठी हुई इन्द्रकी ध्वजाके समान जान पड़ती थी। पवनपुत्र हनुमान्‌जीकी दाढ़ें सफेद थीं और पूँछ गोलाकार मुड़ी हुई थी। इससे वे मण्डलसे घिरे हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे। उनकी कमरके नीचेका भाग बहुत लाल था। इससे वे फटे हुए गेरूसे युक्त विशाल पर्वतके समान दिखायी देते थे। जिस समय वे कपि-केसरी समुद्रको पार कर रहे थे, उनकी बगलसे निकलती हुई हवा बादलके समान गरजती थी। वे समुद्रके जिस-जिस भागमें जाते थे, वहीं उनके अङ्गके वेगसे [ ऊँची-ऊँची तरंगें उठनेके कारण ] उन्मत्त-सा जान पड़ता था।

इस प्रकार महाकपि हनुमान्‌जी अपने वक्षःस्थलद्वारा समुद्रकी पर्वताकार तरङ्गोंको तोड़ते बड़े वेगसे आगे बढ़ रहे थे। उनके वेग और मेघोंसे उत्पन्न हुई हवाने भीषण गर्जना करनेवाले समुद्रको एकदम डावाँडोल कर दिया। उस समय जल हट जानेके कारण मगर, नाके, मछलियाँ और कछुए साफ़-साफ़ दिखायी देने लगते थे। कपि-केसरी हनुमान्‌जीकी दस योजन चौड़ी और तीस योजन लंबी छाया वेगके कारण बड़ी सुन्दर जान पड़ती थी। वे परम तेजस्वी महाकाय कपिवर आलम्बनहीन आकाशमें पंखवाले पर्वतकी भाँति जान पड़ते थे। पक्षिसमूहोंके उड़नेके मार्गमें गरुड़की भाँति बढ़ते हुए वे वायुके समान मेघमालाको अपनी ओर खींच लेते थे। हनुमान्‌जीके द्वारा खींचे हुए वे सफेद, गुलाबी, नीले और गहरे लाल रंगके महामेघ बड़े ही सुन्दर लगते जान पड़ते थे। उस समय उन कपिश्रेष्ठको ऐसी तेजीसे बढ़ते हुए देखकर देवता, गन्धर्व और दानवलोग उनपर फूल बरसाने लगे। भगवान् श्रीरामके कार्यकी सिद्धिके लिये उस समय सूर्यने उन्हें ताप नहीं पहुँचाया और पवनने भी उनकी सेवा की। ऋषियोंने उनकी स्तुति की तथा देवता और गन्धर्व उनकी प्रशंसाके गान गाने लगे।

जिस समय कपिवर हनुमान्‌जी समुद्र पार कर रहे थे, उस समय इक्ष्वाकु-कुलका सम्मान करनेकी इच्छासे समुद्रने विचार किया—'मुझे इक्ष्वाकुकुलके महाराज सगरने बढ़ाया था; इस समय ये भी इक्ष्वाकुवंशियोंकी सहायता कर रहे हैं, अतः इन्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होना चाहिये।' यह शुभ विचार करके समुद्रने अपने जलमें छिपे हुए सुवर्णमय मैनाक-पर्वतसे कहा—'देखो, ये पराक्रमी कपि-केसरी हनुमान् तुम्हारे ऊपर होकर जा रहे हैं। ये बड़ा भयङ्कर काम करनेवाले हैं। इस समय श्रीरामका कार्य सिद्ध करनेके लिये इन्होंने आकाशमें कुदान लगायी है। इनका परिश्रम देखकर तुम ऊपर उठ जाओ [ जिससे कुछ देर तुम्हारे ऊपर विश्राम करके ये आगे-का मार्ग तय कर सकें ]।' समुद्रकी यह बात सुनकर बड़े-बड़े वृक्ष और लताओंसे ढका हुआ सुवर्णमय मैनाक तुरंत ही जलसे बाहर निकल आया। उसे देखकर हनुमान्‌जीने समझा, यह कोई विघ्न उपस्थित हुआ है। अतः वायु जैसे बादलको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार महान् वेगशाली हनुमान्‌ने बहुत ऊँचे उठे हुए मैनाकको अपनी छातीसे दबा दिया! इस प्रकार उनके सम्पर्कमें आनेसे जब पर्वतश्रेष्ठ मैनाकको उनके वेगका पता लग गया, तब वह बड़ा प्रसन्न हुआ और गर्जना करने लगा। वह मनुष्यका रूप धारण करके अपने शिखरपर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## सुरसाके मुखमें हनुमान्‌जी

तद् दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं वायुपुत्रः स बुद्धिमान् । दीर्घजिह्वं सुरसया सुभीमं नरकोपमम् ।
स संक्षिप्यात्मनः कायं जीमूत इव मारुतिः । तस्मिन्मुहूर्त्ते हनुमान् बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः ॥
(सुन्दर० १ । १५५-१५६)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आया और उनसे कहने लगा—'कपिवर ! आपने यह बड़ा ही कठिन कार्य किया है। रघुनाथजीके पूर्वजोंने समुद्रकी वृद्धि की थी, इस समय आप उनका हित करनेमें लगे हैं; अतः समुद्र आपका सत्कार करना चाहता है; क्योंकि उपकारके बदलेमें उपकार करना तो सनातन-धर्म ही है। इसलिये आपको भी उसकी बात रख लेनी चाहिये। मुझे आपके सत्कारके लिये ही समुद्रने बड़े आदरसे नियुक्त किया है। कपिवर ! आप कुछ देर यहाँ ठहरिये। इस स्थानपर बहुत-से सुगन्धित और स्वादिष्ट कन्द, मूल, फूल लगे हैं। इन्हें खाकर और थोड़ी देर विश्राम करके आगे जाइयेगा। आप तीनों लोकोंमें विख्यात और बड़े गुणवान् हैं तथा आपके साथ हमारा भी कुछ सम्बन्ध है। पहले सत्ययुगमें सभी पर्वतोंके पंख होते थे। वे भी गरुड़के समान बड़े वेगसे सब दिशाओंमें उड़ा करते थे, जिससे देवता, ऋषि और समस्त प्राणियोंको उनके गिरनेकी आशङ्का सर्वदा बनी रहती थी। अतः इन्द्रने क्रोधसे भरकर अपने वज्रसे उनके पंखोंके सैकड़ों-हजारों टुकड़े कर दिये। उस समय देवराज कुपित होकर वज्र उठाये मेरी ओर भी आये; किन्तु पवनदेवने उसी समय मुझे इस समुद्रमें गिरा दिया। इस प्रकार आपके पिताने मेरे पंखोंको बचाकर मुझे अखण्डित रखा और मेरी रक्षा की। अतः मैं आपका आदर करता हूँ, आप मेरे लिये सब प्रकार आदरणीय हैं। कपिवर ! आपके साथ मेरा यही बड़ा गुणमय सम्बन्ध है। इस प्रकार मेरा और समुद्रका भी काम करके आप प्रसन्न होइये, हमें भी प्रसन्न कीजिये। यहाँ अपनी थकान उतारिये, हमारी पूजा ग्रहण कीजिये और मेरा प्रेम स्वीकार कीजिये। आपको मेरी बात मान लेनी चाहिये, मुझे भी आपके दर्शनोंसे बड़ी प्रसन्नता हुई है।' मैनाकके इस प्रकार कहनेपर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने उससे कहा—'मुझे भी आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई है, मेरा आतिथ्य हो गया। आप नाराज न हों। मेरे कामका समय बीता जा रहा है, दिन भी ढल चुका है। मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ; इसलिये यहाँ बीचमें ठहर नहीं सकता।' ऐसा कहकर महाबली हनुमान्‌जीने हँसते हुए मैनाकको हाथसे छू दिया और आकाशमें चढ़कर चलने लगे। उस समय पर्वत और समुद्र दोनोंने ही बड़े आदरसे उनकी ओर देखा, उनका सत्कार किया और यथोचित आशीर्वादोंसे उनका अभिनन्दन किया।

हनुमान्‌जीका यह दूसरा दुष्कर कार्य देखकर सारे देवता, सिद्ध और महर्षिगण उनकी प्रशंसा करने लगे। सुवर्णमय मैनाकका भी यह कार्य देखकर वहाँ आये हुए देवता और देवराज इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। फिर स्वयं शचीपति इन्द्रने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर गद्गद कण्ठसे कहा—'पर्वतराज मैनाक ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ और तुम्हें अभयदान करता हूँ; तुम प्रसन्नतासे जहाँ इच्छा हो जा सकते हो।' इस प्रकार वर पाकर मैनाक जलमें स्थित हो गया और हनुमान्‌जी पुनः समुद्रको लाँघने लगे। तब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंने सूर्यके समान तेजस्विनी नागमाता सुरसासे कहा—'ये पवननन्दन श्रीमान् हनुमान्‌जी समुद्रके ऊपर होकर जा रहे हैं। तुम थोड़ी देरके लिये इनके मार्गमें विघ्न डाल दो। तुम पर्वतके समान अत्यन्त भयंकर राक्षसीका रूप धारण करो। उसमें कराल दाढ़ें, पीले नेत्र और आकाशको स्पर्श करनेवाला विकट मुँह बनाओ। अभी एक बार और हमलोग इनके बलकी परीक्षा करना चाहते हैं।' देवताओंके सत्कारपूर्वक इस प्रकार कहनेपर देवी सुरसाने राक्षसीका रूप धारण किया और उनके सामने समुद्रमें प्रकट हुई। उसका शरीर बड़ा ही विकट, बेडौल और भयावना था। वह समुद्र पार जाते हुए हनुमान्‌जीका मार्ग रोककर इस प्रकार कहने लगी—'मैं तुम्हें खाऊँगी, तुम मेरे मुँहमें चले जाओ।' सुरसाके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जीने प्रसन्नमुखसे कहा—'दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताके सहित दण्डकारण्यमें आये थे। वहाँ राक्षसोंसे उनका वैर बँध गया और रावणने उनकी यशस्विनी भार्या सीताको हर लिया। अब श्रीरामजीकी आज्ञासे उनका दूत बनकर मैं सीताजीके पास जा रहा हूँ। अतः मैं सीताजीसे और उनके बाद पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे मिलकर तुम्हारे मुखमें आ जाऊँगा।' हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाली सुरसाने कहा—'मुझे बीचमें डाँककर कोई आगे नहीं जा सकता। इसलिये तुम एक बार मेरे मुँहमें घुसकर फिर आगे जा सकते हो। ब्रह्माजीने पहलेसे ही मुझे ऐसा वर दे रक्खा है।' ऐसा कहकर वह अपना विशाल मुँह खोलकर हनुमान्‌जीके आगे खड़ी हो गयी। तब हनुमान्‌जीने अपना दस योजनका विस्तार कर लिया। यह देखकर सुरसाने भी अपना मुँह बीस योजन फैला दिया। सुरसाके मुँहको इस प्रकार फैला देख तत्क्षण हनुमान्‌जी अँगूठेके बराबर हो गये और तुरंत ही उसके मुँहमें जाकर बाहर निकल आये। फिर उन्होंने आकाशमें खड़े होकर कहा—'दक्षसुते ! नमस्कार, मैं तुम्हारे मुँहमें प्रवेश कर चुका। लो; तुम्हारा वर भी सत्य हो गया; अब मैं सीताके पास जाता हूँ।' तब देवी सुरसा अपने असली रूपमें प्रकट होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बोली—'सौम्य ! तुम श्रीरामकार्यकी सिद्धिके लिये आनन्दसे जाओ और विदेहनन्दिनीको महात्मा श्रीरामसे मिला दो ।' हनुमान्‌जीका यह तीसरा दुष्कर कर्म देख सब प्राणी वाह-वाह कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ।

हनुमान्‌जी फिर अगरके समान काले तथा लाल, पीले और सफेद बादलोंको वायुके समान खींचते आगे बढ़े । उन्हें जाते देखकर सिंहिका नामकी राक्षसीने सोचा कि आज तो बहुत दिनोंके लिये मेरा पेट भर जायगा । वह राक्षसी बड़ी प्रबल और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली थी । उपर्युक्त विचार करके उसने हनुमान्‌की छाया पकड़ ली । उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मुझे सहसा किसीने पकड़ लिया है । इतनेमें ही उनकी दृष्टि समुद्रमें जलके ऊपर आये हुए एक विशालकाय प्राणीपर पड़ी । उस विकराल-वदना राक्षसी-को देखकर वे सोचने लगे—कपिराज सुग्रीवने जिस महापराक्रमी छायाग्राही अद्भुत जीवकी बात कही थी, वह निःसंदेह यही है । तब महामति हनुमान्‌जीने उसके कार्योंसे यह निश्चय करके कि यही सिंहिका है, अपने शरीरको बढ़ाना आरम्भ किया । उनके शरीरको बढ़ते देख सिंहिकाने अपना मुँह पाताल और आकाशके मध्यभागके समान बढ़ा लिया और वह मेघकी तरह गर्जना करती उनकी ओर दौड़ी । हनुमान्‌जीने जब उसका अत्यन्त विकराल और बढ़ा हुआ मुँह देखा, तब वे अपने शरीरको संकुचित करके उसके विकट मुँहमें जा गिरे । उनका शरीर वज्रके समान कठोर था । मुँहमें जाकर उन्होंने अपने तीखे नखोंसे उसके मर्मस्थलोंको फाड़ डाला । इसके पश्चात् वे बाहर निकल आये तथा उसे धैर्य और कुशलतासे मारकर फिर बढ़ गये । इस प्रकार हनुमान्‌जीके द्वारा मारी जाकर वह राक्षसी प्राणहीन हो जलमें गिर पड़ी । विधाताने उसकी मृत्यु हनुमान्‌जीके द्वारा ही निश्चित की थी । हनुमान्‌जी-के द्वारा सिंहिकाका वध हुआ देखकर आकाशमें विचरनेवाले प्राणियोंने कहा—'कपिवर ! तुमने यह बड़ा ही भयंकर कर्म किया है । अब तुम निर्विघ्न अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध करो । वानरेन्द्र ! जिस व्यक्तिमें तुम्हारे समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता—ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कार्यमें कभी असफलता नहीं होती ।'

इस प्रकार अपना कार्य सिद्ध हो जानेसे उन आकाशचारी प्राणियोंने श्रीहनुमान्‌जीका बड़ा सत्कार किया और फिर वे आकाशमें चढ़कर गरुड़के समान चलने लगे । चलते-चलते उन्हें अनेकों वृक्षोंसे सुशोभित लङ्का-द्वीप दीख पड़ा । उसमें चन्दनके वन थे तथा समुद्र, समुद्र-तटपर उगे हुए वृक्ष एवं समुद्रमें गिरती हुई नदियोंके मुहानोंसे उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी । फिर उन्होंने सोचा, मेरा यह विशाल शरीर और तीव्र वेग देखकर तो राक्षसोंको बड़ा कौतूहल होगा । अतः अपने शरीरको संकुचित करके उन्होंने फिर अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट किया । हनुमान्‌जी बड़े ही सुन्दर और तरह-तरहके रूप धारण कर लेते थे । वे समुद्रके दूसरे तटपर, जहाँ किसी औरका पहुँचना असम्भव था, पहुँचकर फल-पुष्पादिसे समृद्ध लम्ब-पर्वतके शिखरपर उतरे ।

## हनुमान्‌जीका लङ्का-प्रवेश और लङ्किनीकी पराजय

अब हनुमान्‌जीने त्रिकूट-पर्वतपर बैठकर बड़ी सावधानीसे लङ्कापुरीकी ओर दृष्टि डाली । वे बड़े ही पराक्रमी थे, बिना विश्राम किये सौ योजन लाँघनेपर भी उन्हें थकावट नहीं मालूम दी । फिर वे बड़े वेगसे लङ्काकी ओर चले । रास्तेमें हरी-हरी दूब, वृक्षोंसे भरे हुए सुगन्धित तथा तरुवरोंसे आच्छादित पर्वतोंको पार करते वे आगे बढ़े । उन्होंने सभी ऋतुओंके फल और पुष्पोंसे लदे हुए तरह-तरहके वृक्षोंसे युक्त अनेक रमणीय उपवन देखे । फिर वे रावणद्वारा पालित लङ्कापुरीके पास पहुँचे । उसके चारों ओर खाई सुशोभित थी, जिसमें उत्पल और पद्म आदि कई जातियोंके कमल खिले थे । सीताको हर लानेके कारण रावणने लङ्कापुरीकी रक्षाका विशेष प्रबन्ध कर रखा था । उसके चारों ओर प्रचण्ड धनुर्धर राक्षस घूमते रहते थे । वह विशाल नगरी सोनेके परकोटेसे घिरी थी तथा उसमें पर्वतके समान विशाल और शरद्-ऋतुके बादलोंकी तरह सफेद रंगके महल थे । उसमें सब ओर ऊँची सतहपर बनी हुई और सफेद रंगकी सड़कें थीं । इस प्रकार पर्वतके शिखरपर बसी हुई, पीले और सुन्दर सफेद भवनोंसे सुशोभित वह लङ्कापुरी उन्हें आकाशमें स्थित-सी जान पड़ी ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान्‌जी उस पुरीके उत्तरद्वारपर पहुँचे। वह दरवाजा

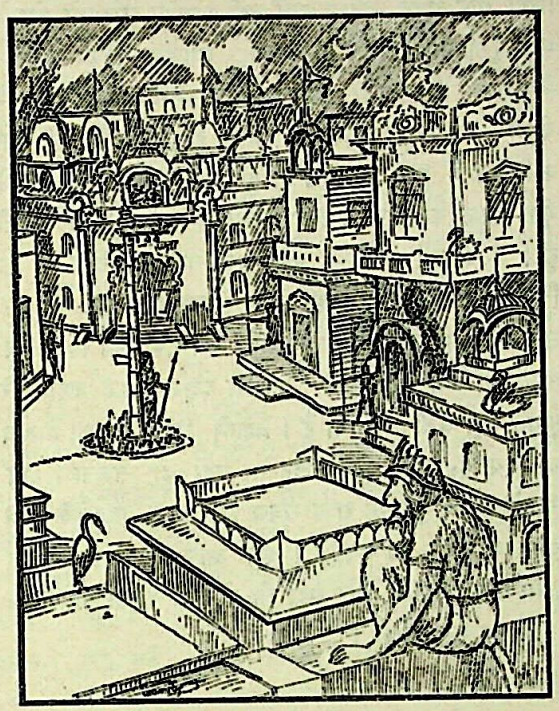

कैलासपर बसी हुई अलकापुरीके द्वारके समान था और ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशको छू रहा हो। अपने ऊपर बने हुए ऊँचे-ऊँचे भव्य भवनोंके द्वारा मानो उसने आकाशको धारण कर रखा था। सारी पुरी भयंकर राक्षसोंसे भरी थी। उस नगरकी बड़ी भारी चौकसी, उसके चारों ओर समुद्रकी खाई और रावण-जैसे भयानक शत्रुको देखकर हनुमान्‌जी विचारने लगे—'इस लङ्कामें तो अङ्गद, नील, महाराज सुग्रीव और मैं—केवल चार ही वानर प्रवेश कर सकते हैं। मैं भी इस रूपसे इसमें प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि अनेकों क्रूर और बलवान् राक्षस इसकी रक्षा कर रहे हैं। अतः मुझे रात्रिके समय ही नगरमें जाना चाहिये और ऐसा रूप धारण करना चाहिये, जिससे मैं पहचाना भी जा सकूँ और न भी पहचाना जाऊँ। किन्तु ऐसा कौन उपाय है, जिससे मैं तो जनकनन्दिनी सीताको देख लूँ और राक्षसराज दुरात्मा रावण मुझे न देख सके। कौन-सा उपाय किया जाय, जिससे जगद्विख्यात श्रीरामचन्द्रजीका काम भी न बिगड़े और मैं एकान्तमें अकेली सीताजीसे भेंट भी कर लूँ। कई बार अविवेकी दूतके हाथमें पड़कर देश और कालके अनुकूल व्यवहार न करनेके कारण बने-बनाये काम बिगड़ जाते हैं। अच्छा तो, मैं रघुनाथजीका कार्य सिद्ध करनेके लिये रातमें छोटा रूप बनाकर लङ्कापुरीमें प्रवेश करूँगा और सभी घरोंमें जाकर जानकीजीका पता लगाऊँगा।' ऐसा निश्चय करके सूर्यास्त होनेपर रात्रिके समय उन्होंने अपना छोटा रूप बनाया, वे बिल्लीके समान आकारके बनकर अत्यन्त अद्भुत दिखायी देने लगे। सायंकाल होनेपर वे कूदकर लङ्कापुरीमें गये, जो बड़ी ही सुन्दर और चौड़े-चौड़े राजमार्गोंसे सुशोभित थी। उसमें प्रासादोंकी लंबी कतारें थीं तथा सुनहरे खंभों एवं जालियोंके कारण वह गन्धर्वनगरके समान जान पड़ती थी। हनुमान्‌जीने उस विशाल नगरीको सतमहले-अठमहले मकानों और स्वर्णजटित स्फटिककी फर्शोंसे सुशोभित देखा। उन फर्शोंके कारण, वहाँ जो राक्षसोंके घर थे, बड़े सुन्दर जान पड़ते थे। उनके बड़े ही अद्भुत सोनेके फाटक थे, जो सब ओरसे सुसज्जित लङ्काको और भी देदीप्यमान कर रहे थे। ऐसी अचिन्त्य और अद्भुत आकारवाली लङ्कापुरीको देखकर जानकीजीके दर्शनोंके लिये लालायित हनुमान्‌जी उदास भी हुए और प्रसन्न भी।

लङ्कापुरीको सब ओरसे देखकर हनुमान्‌जीको बड़ा विस्मय हुआ। उसमें स्वर्णके द्वार और वैदूर्य-मणिके चबूतरे थे; मणियोंसे जड़े हुए फर्श थे, तथा तपाये हुए सोनेके हाथी थे। वहाँ वैदूर्य-मणिकी सीढ़ियाँ थीं तथा मकानोंके भीतरी भाग स्फटिकके बने हुए थे। जगह-जगह क्रौञ्च और मयूरोंका शब्द हो रहा था, राजहंस विचर रहे थे तथा बाजों और आभूषणोंके शब्दसे वह सारी नगरी मुखरित हो रही थी। अलकापुरीके समान वह आकाशमें टँगी हुई-सी जान पड़ती थी। उस नगरीको देखकर कपिवर हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए और मन-ही-मन सोचने लगे—'रावणके सैनिक हाथमें हथियार लिये इस पुरीकी रक्षा करते हैं। अतः बलपूर्वक तो इसे कोई काबूमें कर नहीं सकता। हाँ! कुमुद, अङ्गद, सुषेण, मैन्द, द्विविद, सुग्रीव, कुशपर्वा, जाम्बवान् और मेरा प्रवेश तो इसमें हो ही सकता है।' फिर महाबाहु श्रीराम और लक्ष्मणके पराक्रमका विचार करके उन्हें और भी प्रसन्नता हुई।

इतनेमें ही अपने अधिदेव रूपसे लङ्कापुरीने हनुमान्‌जी-को प्रवेश करते देखा। अतः वह उनके सामने आकर खड़ी हो गयी। उसका मुँह देखनेमें बड़ा भयानक था। उसने बड़ी गर्जना करते हुए कहा, 'वानर! तू कौन है और यहाँ किस कामसे आया है? देख, रावणकी सेना सब ओरसे इस पुरीकी रक्षा करती है; अतः तू इसमें प्रवेश नहीं कर सकता।' तब


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अपने आगे खड़ी हुई लङ्कासे हनुमान्‌ने कहा—'कुटिले ! तुम कौन हो, जो इस नगरके द्वारपर रहती हो ? तुम्हारी आँखें बड़ी विकट हैं। तुम इस प्रकार क्रोध करके मुझे क्यों डाँट रही हो ?' हनुमान्‌जीकी बात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली लङ्का बहुत कुपित हुई और उनसे कठोरतापूर्वक बोली—'मैं राक्षसराज रावणकी आज्ञामें रहती हुई इस पुरीकी रक्षा करती हूँ। मुझे कोई जीत नहीं सकता। मेरा तिरस्कार करके इस नगरमें जानेका साहस कोई नहीं कर सकता। वानर ! मैं स्वयं लङ्कापुरी ही हूँ और मैं ही सब ओरसे इसकी रक्षा करती हूँ।' हनुमान्‌जी बोले—'लङ्के ! मैं तो यहाँके वन, उपवन, कानन और प्रधान-प्रधान भवनोंको देखनेके लिये आया हूँ। इन्हें देखनेका मुझे बड़ा कुतूहल हो रहा है।' उनकी यह बात सुनकर कामरूपिणी लङ्काने फिर बड़ी कठोरतासे कहा—'अरे दुर्बुद्धि वानराधम ! राक्षसराज रावण मेरा पालन करते हैं। मुझे परास्त किये बिना तू इस पुरीको नहीं देख सकता।' ऐसा कहकर उसने भयंकर गर्जना की और बड़े जोरसे हनुमान्‌जीको तमाचा मारा। फिर तो वायुनन्दन वानरेन्द्र हनुमान्‌ने भी बड़े जोरसे सिंहनाद किया और अपने बायें हाथकी मुट्ठी बाँधकर उसे बड़े क्रोधसे एक घूँसा जमा दिया। इससे वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर गयी और बड़ी दीनतापूर्वक उनसे गद्‌गद वाणीमें बोली—'महाबाहो ! कपिवर ! प्रसन्न होइये और मेरी रक्षा कीजिये। मैं स्वयं लङ्कापुरी ही हूँ। आपने अपने पराक्रमसे मुझे परास्त कर दिया है। मैं आपसे एक सच्ची बात कहती हूँ। पहले स्वयं ब्रह्माजीने मुझे यह वरदान दिया था कि जिस समय कोई वानर तुझे अपने पराक्रमसे परास्त कर दे, उस समय यह समझ लेना कि अब राक्षसोंके लिये विपत्तिका समय आ गया है। सौम्य ! आपका दर्शन पाकर आज मेरे सामने वही घड़ी आ गयी है। ब्रह्माने जिस सत्यका निश्चय कर दिया है, उसमें कोई उलट-फेर नहीं हो सकता। अब सीताके कारण दुरात्मा राजा रावण और सभी राक्षसोंके लिये विनाशका समय आ गया है। अतः आप इस रावण-पालित पुरीमें प्रवेश कीजिये और यहाँ जो-जो काम करना चाहते हों, वे सब पूरे कर लीजिये।'

## हनुमान्‌जीका लङ्काके चौक, भवन और पुष्पक-विमान आदिको देखना

कपिराज सुग्रीवका हित करनेवाले हनुमान्‌जीने रात्रिके समय लङ्कामें प्रवेश किया। जिस राजमार्गसे वे आगे बढ़े, उसपर फूल बिखरे हुए थे। उस समय राक्षसोंके रमणीय भवनोंसे सारी लङ्कापुरी जगमगा रही थी। उसमें कई भवन सफेद बादलोंके समान थे और कई रंग-बिरंगे थे। हनुमान्‌जीने एक घरसे दूसरे घरपर जाकर कई प्रकारके भवन देखे तथा हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीन स्थानोंसे निकलनेवाले ( मन्द, मध्यम और उच्च ) स्वरसे विभूषित मनोहर गीत सुने। राक्षसोंके घरोंमें बहुतोंको तो उन्होंने मन्त्र जपते हुए सुना और अनेकों राक्षसोंको स्वाध्यायमें तत्पर देखा। कई राक्षसोंको उन्होंने रावणकी स्तुतिके साथ गर्जना करते और राक्षसोंकी एक बड़ी भीड़को राजमार्ग रोककर खड़ी देखा। नगरके मध्यभागमें उन्हें रावणके बहुत-से गुप्तचर दिखायी दिये; उनमें कोई योगकी दीक्षा लिये हुए, कोई जटा बढ़ाये, कोई मूँड़ मुड़ाये, कोई गोचर्म या मृगचर्म धारण किये और कोई नंग-धड़ंग थे। कोई मुट्ठीभर कुशोंको ही अस्त्ररूपसे धारण किये हुए थे, किन्हींका अग्निकुण्ड ही आयुध था; किन्हींके हाथमें कूट या मुद्गर था, कोई डंडा लिये थे; किन्हींके पास धनुष, खड्ग, शतघ्नी या मूसल था; कोई बढ़िया परिघ लिये थे और कोई विचित्र कवचोंसे जगमगा रहे थे। कोई बड़े कुरूप थे, कोई अनेक प्रकारके रूप धारण कर सकते थे; किन्हींका रूप सुन्दर था, कोई बड़े तेजस्वी थे तथा किन्हींके पास ध्वजा, पताका और तरह-तरहके आयुध थे। कोई शक्ति और वृक्षरूप आयुध धारण किये थे तथा किन्हींके पास पट्टिश, वज्र और गुलेल थे। किन्हींके गलेमें फूलोंके हार थे; कोई बहुमूल्य आभूषणोंसे सजे हुए थे; कोई अनेक प्रकारके वेष धारण करनेवाले थे और कोई स्वेच्छानुसार विचरते रहते थे। ऐसे एक लाख राक्षसोंको उन्होंने सावधान रहकर नगरके मध्यभागकी रक्षामें नियुक्त देखा।

इसके बाद हनुमान्‌जीने देखा कि जिस प्रकार गौओंके झुंडमें मतवाला साँड़ विचरता है, उसी प्रकार पृथ्वीके ऊपर अपनी चन्द्रिकाका विस्तार करते हुए चन्द्रदेव ताराओंके बीचमें विचर रहे हैं तथा उनके कारण महासागरमें ज्वार आ रहा है। उस समय राक्षसलोग मतवालोंकी तरह प्रलाप कर रहे थे। वे एक-दूसरेपर आक्षेप करते थे और उन्मत्तसे होकर आपसमें बुरा-भला कहने लगते थे। उन्हें कई बुद्धिप्रधान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


राक्षस भी दिखायी दिये। उनकी बातचीत बहुत सुन्दर थी, वे श्रद्धालु थे तथा राक्षस-जगत्‌में वे प्रधान माने जाते थे। इस प्रकार उस पुरीमें उन्होंने अनेक तरहके सुन्दर-सुन्दर नामोंवाले राक्षस भी देखे। उन सुन्दर रूपवाले, अनेक प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न, गुणोंके अनुसार ही आचरण करनेवाले, तेजस्वी एवं अनेकों कुरूप राक्षसोंको देखकर हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ उन्हें राक्षसोंकी स्त्रियाँ भी दिखायी पड़ीं। वे सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण करनेयोग्य थीं। उनका अन्तःकरण शुद्ध था, प्रभाव भी बहुत बढ़ा-चढ़ा था और स्वभावसे भी वे उदार थीं। अपने प्रियतम और मद्यपानमें उनका विशेष अनुराग था। वे ताराओंके समान तेजस्विनी थीं। इस प्रकार हनुमान्‌जीने अनेकों मनोहारिणी और सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं। परन्तु परम सुन्दरी, प्रफुल्लित लताके समान सुकुमारी अयोनिजा राजकुमारी सीताके उन्हें दर्शन नहीं हुए। वे पातिव्रत्यरूप सनातन मार्गमें स्थित रहनेवाली, श्रीरामचन्द्रके ध्यानमें तत्पर, पतिदेवके निर्मल मनमें निवास करनेवाली, अन्य सब स्त्रियोंसे श्रेष्ठ और भगवान् श्रीरामकी धर्मपत्नी थीं। उन्हें न देखकर हनुमान्‌जी बहुत दुखी हुए और बहुत देरके लिये शिथिल-से हो गये।

फिर वे इच्छानुसार रूप धारणकर बड़ी तेजीसे लङ्काके सतमहले मकानोंमें विचरने लगे। क्रमशः वे राक्षसराज रावणके महलमें पहुँचे। वह चारों ओर सूर्यके समान चमचमाती हुई दीवारसे घिरा था। अनेकों भयानक राक्षस उसकी रक्षा कर रहे थे। उस भवनको देखकर हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए। वह महल चाँदीसे मढ़े हुए चित्रों, सोनेके दरवाजों और बड़े अद्भुत अन्तर्द्वारोंसे सुशोभित था। वहाँ हाथी-दाँत और सोने-चाँदीके कामसे सुशोभित रथ घुमाये जा रहे थे। उसमें अनेक प्रकारके रत्न भी जड़े थे। वह महल विश्वासपात्र राक्षसोंसे सुरक्षित तथा सब ओर प्रधान-प्रधान रमणी-रत्नोंसे भरा था। वे रमणियाँ खूब प्रसन्न थीं तथा उनके आभूषणोंका प्रचुर शब्द हो रहा था। वह भवन राजोचित सामग्रीसे पूर्ण था, उसमें बहुमूल्य रत्नोंकी बहुलता थी तथा सब ओर हाथी-घोड़े और रथ खड़े थे। हनुमान्‌जीने उस भवनको लङ्काका आभूषण ही समझा और वे उसके आस-पास विचरने लगे। इस प्रकार वे एक घरसे दूसरे घर तथा राक्षसोंके बगीचोंको देखते हुए निर्भय होकर अटारियोंपर विचर रहे थे। वे बड़े पराक्रमी थे; बड़े वेगसे प्रहस्तके प्रासादसे उतरकर महापार्श्व-के महलपर चढ़ गये। इसके बाद वे मेघके समान कुम्भकर्णके महलपर और फिर विभीषणके भवनपर जा कूदे। इसी तरह वे महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व, विद्युन्माली, बहुदंष्ट्र, शुक, सारण, इन्द्रजित्, जम्बुमालि, सुमालि, रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु और वज्रकायके महलोंपर भी गये। फिर क्रमशः धूम्राक्ष, सम्पाति, विद्युद्रूप, महाभयानक घन और विघन, शुकनास, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, ह्रस्वदंष्ट्र, लोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल और शोणिताक्ष आदिके महलोंपर भी चक्कर लगाया। महाकपि हनुमान्‌जीने उन वैभवशाली भवनोंमें ऐश्वर्यवान् राक्षसोंकी विपुल सम्पत्ति देखी। अन्तमें उन सब भवनोंको लाँघकर वे फिर राक्षसराज रावणके महलपर आ गये।

वहाँ उन्होंने रावणके पलंगकी रक्षा करनेवाली राक्षसियाँ देखीं। वे शूल, मुद्गर, शक्ति और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र धारण किये थीं। इनके सिवा उन्हें हथियारोंसे लैस अनेकों विशालकाय राक्षस भी दिखायी दिये। रावणके घरमें उन्होंने तरह-तरहकी पालकियाँ, लतागृह, चित्रशालाएँ, क्रीडाभवन, क्रीडापर्वत, विलासभवन और दिनके विहारगृह भी देखे। वह महल मन्दराचलके समान ऊँचा, मोरोंके स्थानोंसे युक्त, ध्वजाओंसे व्याप्त, अनन्त रत्नोंका भंडार और खजानोंसे भरा था। उसमें धीर पुरुषोंने निधिरक्षाके उपयुक्त कर्माङ्गोंका अनुष्ठान किया था तथा वह साक्षात् कुबेरके भवनके समान जान पड़ता था। रत्नोंकी किरणों और रावणके तेजके कारण वह चम-चम कर रहा था। वहाँ उन्होंने पलंग, चौकी और पात्र—सभी बड़े उज्ज्वल और सुवर्णमय ही देखे। नूपुरोंकी झनकार, करधनियोंकी खनखनाहट और मृदङ्गके घोषसे वह मुखरित हो रहा था। उसमें अनेकों अटारियाँ थीं, वैदूर्य-मणियोंसे जड़ी हुई सोनेकी खिड़कियाँ थीं, अनेकों पक्षी किलोल कर रहे थे तथा उत्तम जातिके शङ्ख, शस्त्रास्त्र और धनुषोंकी शालाएँ थीं। उस पर्वतसदृश भवनमें अनेकों मनोहर और विशाल चौबारे थे। इस प्रकार तरह-तरहकी सम्पत्तियोंसे सुशोभित उसमें अनेकों भवन थे, जिनकी देवता और असुर—सभी प्रशंसा करते थे। उन भवनोंको बड़े प्रयत्नसे बनाया गया था। [ विश्वकर्माके द्वारा निर्मित होनेपर भी मायामय होनेके कारण ] वे मय-दानवके बनाये हुए जान पड़ते थे तथा गुणोंकी दृष्टिसे पृथ्वीभरमें वे सर्वश्रेष्ठ थे। उन महलोंमें भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रावणके राजप्रासादकी बराबरी कोई नहीं कर सकता था। वह सुवर्णके समान चमकीला, अनेक प्रकारके रत्नोंसे जड़ा हुआ तथा तरह-तरहके तरुवरोंके पुष्पोंसे सुसज्जित था।

उस महलमें, चन्द्रमा और तारागणसे चित्रित आकाशकी भाँति हनुमान्‌जीने अनेकों रत्नोंसे खचित एक विमान देखा। उस विमानकी भूमिपर पर्वतमाला बनी हुई थी, पर्वतोंपर वृक्षावली सुशोभित थी, वृक्ष पुष्पोंवाले बनाये गये थे और पुष्पोंको केसर और पँखुड़ियोंसे युक्त बनाया गया था। उस विमानमें सफेद रंगके कमरे बने हुए थे तथा चित्र-विचित्र वन और सरोवर भी थे। इस प्रकार उन्होंने रत्नोंकी प्रभासे देदीप्यमान, इधर-उधर घूमता हुआ और सब विमानोंमें श्रेष्ठ वह पुष्पक नामका विमान देखा। उस विमानमें वैदूर्य-मणि, चाँदी और मूँगेके पक्षी बनाये गये थे, तरह-तरहके रत्नोंसे सर्पोंकी रचना की गयी थी और सुन्दर घोड़े भी बनाये गये थे। उसमें सुन्दर सूँड़ोंवाले हाथी भी बने थे तथा कमलयुक्त सरोवरमें हाथमें कमल लिये वरदहस्ता कमला भी विराजमान थीं। जिस समय वह विमान वायुके मार्ग (आकाश) में चलता था, उस समय वह सूर्यके मार्गका चिह्न-सा जान पड़ता था। उसमें ऐसी कोई रचना नहीं थी, जो विशेषतायुक्त न हो और जिसमें बहुमूल्य रत्नोंका प्रयोग न किया गया हो। वह विमान स्वामीकी इच्छाके अनुसार धीरे अथवा तेज चलनेवाला, दूसरोंके लिये अप्राप्य और वायुके समान वेगशाली था। यह सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित पुष्पक नामका विमान विश्वकर्माने ब्रह्माजीके लिये बनाया था। कुबेरने बड़ी भारी तपस्या करके इसे ब्रह्माजीसे प्राप्त किया और फिर कुबेरको परास्त करके इसे रावणने अपने हाथमें कर लिया। इस विमानमें सुमेरु और मन्दराचलके समान ऊँचे अनेकों गुप्तगृह और मांगलिक भवन थे, जो अपनी ऊँचाईसे मानो आकाशको छू रहे थे। उनका प्रकाश अग्नि और सूर्यके समान था। विश्वकर्माने इसमें सोनेकी सीढ़ियाँ बनायी थीं, सोने और स्फटिककी जालियाँ और खिड़कियाँ लगायी थीं तथा इन्द्रनील और महानील मणियोंकी वेदियाँ रची थीं। इसका फर्श मूँगे, महामूल्य मणि और बेजोड़ मोतियोंसे सुशोभित था। सुवर्णके समान लाल रंगके सुगन्धित चन्दनसे बना होनेके कारण यह बाल-सूर्यके समान जान पड़ता था।

महाकपि हनुमान्‌जी इस दिव्य पुष्पक विमानपर

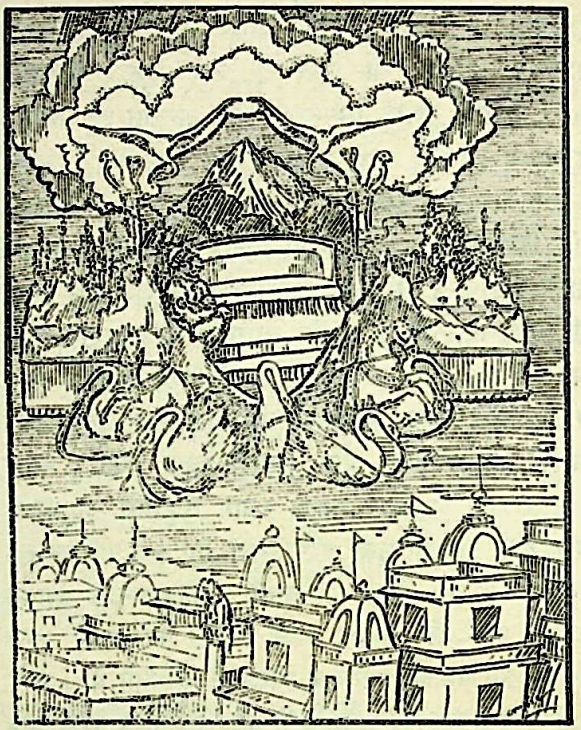

चढ़ गये। वहाँ बैठकर वे सब ओर फैली हुई नाना प्रकारके पेय, भक्ष्य और अन्नकी गन्ध सूँघने लगे। पवनके साथ आनेवाली यह गन्ध बड़ी ही दिव्य जान पड़ती थी। फिर उस विमानसे उतरकर उन्होंने एक सुन्दर और विशाल कमरा देखा। वह कमरा रावणको बहुत ही प्रिय था। उसमें मणियोंकी सीढ़ियाँ और सोनेकी जालियाँ सुशोभित थीं। उसमें स्फटिकका फर्श था जिसके जोड़ोंमें हाथी-दाँत जड़ा था। अनेकों मणिमय खंभोंसे, जो सीधे, चिकने और बहुत ऊँचे थे, उसकी बड़ी शोभा हो रही थी; उनमें मोती, हीरे, मूँगे, चाँदी और सोनेका काम किया हुआ था। उस कमरेमें बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे तथा स्वयं राक्षस-राज रावण उसमें निवास करता था। उसे देखकर हनुमान्‌जीने तो यही समझा कि यह स्वर्ग है, देवलोक है, इन्द्रकी पुरी है अथवा स्वयं ब्रह्मलोक ही है। दीपकोंके प्रकाश, रावणके तेज और आभूषणोंकी कान्तिसे वह सारा कमरा जगमगा रहा था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## हनुमान्‌जीद्वारा रावणके अन्तःपुरमें सीताजीकी खोज, परस्त्री-दर्शनके कारण धर्म-नाशकी शङ्का तथा सीताजीको न पानेसे उनका उदास होना

इसके पश्चात् हनुमान्‌जीने कालीनपर बैठी हुई सहस्रों सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं। वे रंग बिरंगे वस्त्र और पुष्पहार पहने थीं तथा अनेक प्रकारकी वेष-भूषाओंसे सुसज्जित थीं। आधी रात होनेपर जब क्रीडा समाप्त हुई, तब वे सब स्त्रियाँ मद्यके नशेमें बेहोश होकर सो गयीं। उन स्त्रियोंके कारण वह कमरा बड़ा ही सुन्दर जान पड़ता था, मानो तारोंसे सुशोभित शरद्-ऋतुका आकाश ही हो। उन स्त्रियोंके बीचमें राक्षसराज रावण तारोंसे घिरे चन्द्रमाके समान सुशोभित था। स्त्रियोंमेंसे किन्हीं-किन्हींके केश, फूलोंके मोटे-मोटे गजरे और मनोहर आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये थे। मद्यपान और नृत्यादि-जनित परिश्रमके कारण इस समय वे निद्रासे अचेत हो रही थीं।

अनेकों राजर्षियों, ब्राह्मणों, दैत्यों और गन्धर्वोंकी कन्याएँ कामासक्त होकर रावणकी स्त्रियाँ बन गयी थीं। उन सब स्त्रियोंको युद्धाभिलाषी रावण हर लाया था तथा कोई-कोई तो कामातुर होकर स्वयं ही उसके पास चली आयी थीं। वहाँ ऐसी कोई स्त्री नहीं थी, जिसे रावण उसकी इच्छाके विरुद्ध बलात्कारसे लाया हो। उनमें कोई भी स्त्री ऐसी नहीं थी जो अकुलीन, कुरूप, अकुशल, आभूषणादिसे रहित अथवा अपने प्रियतमको अप्रिय हो।

उस कमरेमें इधर-उधर दृष्टि डालनेपर हनुमान्‌जीने रत्नोंसे जड़ा एक स्फटिकका पलंग देखा। उसके एक ओर उन्होंने दिव्य मालाओंसे सुशोभित एक श्वेत छत्र देखा, जो साक्षात् चन्द्रमाके समान जान पड़ता था। अनेकों स्त्रियाँ छोटी-छोटी पंखियाँ लिये रावणको हवा कर रही थीं। वह अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंका लेप किये था तथा उसके पास सुन्दर धूप जल रही थी। रावण उस पलंगपर सोया था। वह नील मेघके समान श्यामवर्णका था। उसके कानोंमें चमचमाते हुए कुण्डल थे, उसकी आँखें लाल और भुजाएँ विशाल थीं तथा वह जरीके वस्त्र पहने था। उसके शरीरपर लाल रंगका सुगन्धित चन्दन लगा था, अंग-प्रत्यंगमें दिव्य आभूषण थे, देखनेमें वह बड़ा रूपवान् था और इच्छानुसार रूप धारण कर सकता था। पलंगपर सोया हुआ रावण हाथीकी तरह जोर-जोरसे साँस ले रहा था। हनुमान्‌जी उसके पासतक गये, किन्तु घबराकर बड़े भयभीत-से होकर लौट आये। फिर वे सीढ़ियोंके द्वारा एक ऊँचे चबूतरेपर चढ़ गये और वहींसे उस मदोन्मत्त राक्षसराजको देखने लगे। राक्षसराजके विशाल मुँहसे जो साँस निकलती थी, वह उस सारे कमरेमें भर जाती थी। उसमें आम, मौलसिरी, उत्तम अन्न और मदिराकी गन्ध मिली हुई थी। उसके मस्तकपर सोनेका मुकुट शोभायमान था, जिसपर तरह-तरहके मोती और मणियाँ जड़ी थीं। सोनेके कारण वह कुछ खिसक गया था। उसका मुँह कुण्डलोंकी कान्तिसे झिलमिला रहा था। उसका विशाल वक्षःस्थल लाल चन्दन और हारसे सुशोभित था। वह पीले रंगकी बहुमूल्य रेशमी चद्दर ओढ़े था। उस कमरेमें सोनेके चार दीपकोंसे सब ओर उजाला हो रहा था। इससे उसका सारा शरीर स्पष्ट दीख पड़ता था। हनुमान्‌जीने रावणके पैरोंके पास उसकी कुछ स्त्रियोंको पड़े देखा। उनके मुख चन्द्रमाके समान चमक रहे थे तथा उनकी मालाएँ कभी मुरझाती नहीं थीं। उनके कानोंमें हीरे और वैदूर्य-मणिसे जड़े हुए सोनेके कुण्डल थे तथा [ बाँहोंका तकिया लगाये होनेके कारण ] कानोंके पास ही उनके बाजूबंद दिखायी देते थे।

उन स्त्रियोंसे अलग एक दूसरे सुन्दर पलंगपर हनुमान्‌जीने एक परम सुन्दरी स्त्री सोयी देखी। वह मोती और मणियोंसे जड़े हुए आभूषणोंसे अलङ्कृत होकर अपनी कान्तिसे मानो उस उत्तम भवनको भी विभूषित कर रही थी। उसका सुवर्णके समान गौर वर्ण था। वह अन्तःपुरकी स्वामिनी एवं रावणकी प्रेयसी भार्या मन्दोदरी थी। उसका रूप-लावण्य बड़ा ही मनोहर था। वहाँ राक्षसराजके भवनमें कोई स्त्री साँवली, कोई गोरी, कोई काली और कोई सुनहले अङ्गोंवाली थी। इस प्रकार हनुमान्‌जीने रावणके अन्तःपुरका कोना-कोना छान डाला, परन्तु उन्हें जानकी कहीं दिखायी न दीं। उन स्त्रियोंको देखते-देखते हनुमान्‌जीके मनमें धर्म-भयसे बड़ी शंका हुई। वे सोचने लगे, 'इस प्रकार अन्तःपुरमें सोयी हुई परायी स्त्रियोंको देखना तो मेरे धर्मको एकदम नष्ट कर देगा। किन्तु इन परस्त्रियोंको मैंने काम-बुद्धिसे नहीं देखा है। मैंने रावणकी स्त्रियोंको देखा अवश्य है, किन्तु इससे मेरे मनमें तनिक भी विकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं हुआ। समस्त इन्द्रियोंकी शुभ या अशुभ क्रियाओंमें प्रवृत्तिका कारण मन ही है और मेरा मन निर्विकार है। इसके सिवा सीताजीको दूसरी जगह मैं ढूँढ़ भी नहीं सकता। स्त्रियोंको ढूँढ़ते समय स्त्रियोंके ही बीचमें देखा जाता है। मैंने शुद्धचित्तसे रावणका सारा अन्तःपुर छान डाला। यहाँ मैंने देवता, गन्धर्व और नागोंकी कन्याएँ तो देखीं, परन्तु जानकीजी नहीं दिखायी पड़ीं।' अन्तमें सीताजीको वहाँ न देखकर वे उन्हें और जगह ढूँढ़नेके विचारसे चल पड़े।

उस कमरेसे निकलकर उन्होंने लतागृह, चित्रगृह और निशागृहोंमें सीताजीकी खोज की। परन्तु वहाँ भी उनके दर्शन न हुए। इस प्रकार उनका वहाँ भी खोज न पाकर वे सोचने लगे, 'निश्चय ही अब सीता जीवित नहीं हैं। इसीसे ढूँढ़नेपर भी कहीं उनके दर्शन नहीं हो रहे हैं। सीताजीको बिना देखे और समुद्र-लङ्घनके पुरुषार्थका फल पाये बिना अब सुग्रीवके पास जानेका भी कोई उपाय नहीं है; क्योंकि वानरोंके साथ बहुत दिनोंतक घूमते रहकर उनकी निश्चित की हुई अवधिको भी हमने बिता दिया है और वानरराज सुग्रीव बड़े ही बलवान् एवं कड़ा दण्ड देनेवाले हैं। मैंने रावणका सारा अन्तःपुर छान डाला, उसकी सभी स्त्रियाँ देख लीं; किन्तु साध्वी सीता कहीं भी दिखायी नहीं दीं। मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया। अब यदि मैं लौटकर जाता हूँ, तो सारे वानर मिलनेपर मुझसे क्या कहेंगे? वे पूछेंगे—वीरवर! यह तो बताओ, वहाँ जाकर तुमने क्या किया?' किन्तु जानकीजीको बिना देखे मैं उन्हें इसका क्या उत्तर दूँगा? अब तो समय बीत जानेके कारण निश्चय ही मुझे मरणान्त उपवास करना पड़ेगा? बूढ़े जाम्बवान्, अङ्गद तथा दूसरे वानर मुझे क्या कहेंगे? किन्तु मुझे हताश नहीं होना चाहिये। हताश न होना ही सफलताका मूल है और यही परम सुख है। उत्साह ही मनुष्यको सर्वदा सब प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त करता है और वही उसे उसके कार्योंमें सफलता देता है *। अतः मैं निरुत्साह न होकर अभी और प्रयत्न करता हूँ। रावणसे सुरक्षित जिन स्थानोंको अभी मैंने नहीं देखा है, उन्हें भी देख लूँ। पानशाला, पुष्पगृह, चित्रशाला और क्रीडागृह—इन सबको तो मैं देख चुका।

ऐसा सोचकर उन्होंने फिर खोजना आरम्भ किया। वे तहखाने, मण्डप और एकान्तमें बनी हुई कुटियोंमें सीताजीकी तलाश करने लगे। वे किसी घरके ऊपर चढ़ जाते, किसीसे नीचे उतर आते, किसीके आगे खड़े होते, किसीको चलते-चलते ही देख लेते, किसीके किवाड़ खोलते, किसीका दरवाजा बंद कर देते और किसीके भीतर घुसकर देखते थे। परन्तु जानकी उन्हें उनमें भी दिखायी न दीं। उन्हें और तो बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ दिखायी दीं, परन्तु सीताजीको न देखकर वे बहुत उदास हो गये। वानरोंके उद्योग और अपने समुद्र-लङ्घनको व्यर्थ हुआ देखकर उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वे विमानसे नीचे उतर आये और बड़ी चिन्ता करने लगे। उस समय शोकसे उनकी चेतनाशक्ति शिथिल पड़ गयी।

वे विमानसे उतरकर महलके परकोटेपर आये और बड़ी तेजीसे इधर-उधर घूमने लगे। उन्होंने रावणके सभी घरोंमें चक्कर लगाया। फिर भी जब उन्हें सीताजी न मिलीं तो वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैंने श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये कई बार लङ्का छान डाली। तालाब, पोखरे, सरोवर, नदियाँ, नद, जलके आस-पासके जंगल तथा दुर्गम पहाड़—इस प्रकार सारी पृथ्वी टटोल ली; किन्तु सीता मुझे कहीं भी नहीं मिलीं। गृध्रराज सम्पातिने तो उन्हें यहाँ रावणके महलमें ही बताया था। फिर भी वे न जाने दिखायी क्यों नहीं देतीं। मैं तो समझता हूँ रावणके प्रबल वेग और उसकी भुजाओंके दृढ़ बन्धनसे पीडित होकर विशालाक्षी साध्वी सीताने प्राण दे दिये हैं। ऐसा न हुआ हो कि जिस समय रावण उन्हें समुद्रके ऊपर होकर लाया हो, वे छटपटाकर समुद्रमें गिर गयी हों। अथवा अपने धर्मकी रक्षा करनेवाली उस बन्धुहीना तपस्विनीको नीच रावण ही तो नहीं खा गया? अथवा राक्षसराज रावणकी इन दुष्ट-हृदया पत्नियोंने ही तो उस साध्वीको नहीं खा लिया? अथवा रावणके ही किसी गुप्तगृहमें रखकर उनका विशेष लाड़-दुलार तो नहीं किया जा रहा है? किन्तु कमलनयनी सीता रावणके वशमें तो कैसे आ सकती हैं? वे या तो मारी गयीं या मर गयीं। परन्तु श्रीराम तो अपनी पत्नीको बहुत प्यार करते हैं, उनसे यह बात कैसे कही जा सकती है।'

अब हनुमान्‌जी यह सोचने लगे कि 'ऐसी अनिश्चित अवस्थामें करना क्या चाहिये? यदि मैं सीताजीको देखे बिना ही यहाँसे किष्किन्धापुरी लौट जाता हूँ, तो मेरा पुरुषार्थ ही क्या हुआ। फिर तो मेरा यह समुद्र-लङ्घन, लङ्का-प्रवेश और राक्षसोंको देखना व्यर्थ ही हो जायगा। तथा किष्किन्धा पहुँचनेपर मुझसे मिलकर सुग्रीव, दूसरे वानर तथा दोनों दशरथकुमार भी क्या कहेंगे। इसलिये मैं यहाँसे किष्किन्धापुरीको तो

* अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः॥ (१२। ११)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं जाऊँगा। सीताजीसे मिले बिना मैं सुग्रीवका भी दर्शन नहीं कर सकूँगा। यदि मैं यहीं रहूँगा तो मेरी आशा लगाये वे दोनों धर्मप्राण महारथी प्राण धारण किये रहेंगे। जानकीजीके न मिलने-पर मैं वानप्रस्थ हो जाऊँगा और वृक्षोंके नीचे निवास करूँगा।' अथवा मैं प्राणत्यागके सङ्कल्पसे अन्न-जल छोड़ दूँगा और उस समय मेरे शरीरको कौए तथा मांसाहारी जीव खा जायँगे। अथवा यदि मुझे सीताजी न मिलीं तो मैं खुशी-खुशी जल-समाधि ले लूँगा। मेरे विचारसे तो मेरा यह प्राणत्याग ऋषियोंकी दृष्टिमें भी उचित ही होगा। अथवा मैं वृक्षके तले रहनेवाला तपस्वी हो जाऊँगा। जो कुछ भी हो, सीताको बिना देखे तो मैं यहाँसे जाऊँगा ही नहीं। फिर मरनेमें अनेकों दोष हैं, जीवित रहनेपर तो कभी-न-कभी मनुष्य अच्छे दिन देख ही लेता है। इसलिये मैं अवश्य प्राण धारण करूँगा; जीवित रहनेपर एक-न-एक दिन सीतासे भेंट हो ही सकती है।'

इस प्रकार हनुमान्‌जीके मनमें बहुत अधिक दुःख हुआ और उन्हें उस शोकसे पार होनेका कोई उपाय न सूझा। फिर धीर-वीर मारुतिके मनमें उत्साहका उदय हुआ और वे सोचने लगे—'इस महाबली रावणको ही मैं क्यों न मार डालूँ? इस तरह इससे सीता-हरणका बदला तो ले ही लिया जायगा। अथवा इसे समुद्रके ऊपर-ऊपर ले जाकर रघुनाथजीके हवाले कर दूँ।' इसी तरह सीताके न मिलनेसे चिन्तित होकर वे फिर सोचने लगे—'जबतक मुझे यशस्विनी सीताजी नहीं मिलतीं, तबतक मैं इस लङ्कापुरीमें बार-बार ढूँढ़ता रहूँगा। इधर यह बहुत बड़ी अशोक-वाटिका है। इसके वृक्ष भी बहुत बड़े-बड़े हैं। इसे मैंने अभीतक नहीं देखा है, अतः इसीमें चलता हूँ।' फिर थोड़ी देर सोचकर वे खड़े हुए और मन-ही-मन कहने लगे—'लक्ष्मणसहित श्रीरामको नमस्कार है; जनकनन्दिनी देवी सीताको नमस्कार है; रुद्र, इन्द्र, यम, वायु, चन्द्रमा, अग्नि और मरुद्गणको नमस्कार है।' इस प्रकार इन सबको और वानरराज सुग्रीवको नमस्कार कर तथा सब ओर दृष्टि डाल-कर वे मन-ही मन अशोक-वाटिकामें गये और आगामी कार्यके विषयमें सोचने लगे—'मैंने श्रीरामका काम करनेके लिये और रावणकी दृष्टिसे बचनेके लिये अपना शरीर छोटा बना लिया है। समस्त देवता और ऋषिगण मुझे इस कार्यमें सफलता प्रदान करें। स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा तथा अन्य समस्त देवगण, तपोनिष्ठ महर्षि, अग्निदेव, वायु, इन्द्र, वरुण, चन्द्रमा, सूर्य, अश्विनीकुमार, समस्त मरुद्गण, सारे भूत और भूतोंके स्वामी मुझे सफलता देंगे। यह क्षुद्र, नीच और निर्दयी रावण बलात्कारसे बेचारी अबला सीताको हर लाया है; अब मैं किस प्रकार उन्हें देख सकूँगा?'

## अशोक-वाटिकाको देखते-देखते हनुमान्‌जीको सीताजीके दर्शन होना

थोड़ी देरतक हनुमान्‌जी इसी प्रकार विचार करते रहे। उसके बाद वे रावणके महलसे उतरकर अशोक-वाटिकाके परकोटे-पर चढ़ गये। वहाँ बैठे-बैठे उनके सभी अंग पुलकित हो उठे और उन्होंने वसन्तादि ऋतुओंमें फूलनेवाले तरह-तरहके वृक्षोंपर दृष्टि दौड़ायी। उन्होंने साल, अशोक, भव्य, चम्पक, उद्दालक, नागवृक्ष और कपिमुख जातिके आम्रवृक्ष—इन सभीको छान डाला। वे धनुषसे छूटे हुए बाणके समान वाटिकाके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक चले गये। उस विचित्र वाटिकामें जाकर उन्होंने देखा कि उसमें सब ओर तरह-तरहके पक्षी बोल रहे हैं और वह सुनहरे एवं रुपहरे वृक्षोंसे भरी है। उसमेंके अनेक वृक्षोंपर फल-फूल भी थे। वहाँ बहुत-से मृग और पक्षी मस्त हुए विचर रहे थे। जगह-जगह मतवाले मोर बोल रहे थे और तरह-तरहके पक्षी उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँ घूमते-घूमते उन्हें मणि, चाँदी और सोनेकी भूमियाँ भी दिखायी दीं। उस वाटिकामें अनेकों आकारोंकी बावलियाँ थीं, जिनमें स्वच्छ जल भरा था और महामूल्य मणियोंकी सीढ़ियाँ बनी थीं। उनके आस-पास बालूकी जगह मोती और मूँगे फैलाये गये थे, उनके तले स्फटिकके थे तथा तीरपर उगे हुए सुनहले वृक्षोंसे वे अत्यन्त सुशोभित थीं। उनमें कमल खिले थे तथा हंस और सारस मनोहर बोली बोल रहे थे। उनके तटपर बड़े-बड़े वृक्ष थे, सैकड़ों प्रकारकी लताएँ थीं और कल्प-वृक्षके फूल खिले हुए थे। वहाँ उन्होंने एक मेघके समान ऊँचा और विचित्र शिखरवाला पर्वत देखा। उसके चारों ओर अनेकों दूसरे पर्वत-शिखर थे, जगह-जगह पत्थरोंकी गुफाएँ थीं और अनेकों वृक्ष उगे हुए थे। यह पर्वत संसारभरमें बड़ा रमणीय था। उस पर्वतसे हनुमान्‌जीने एक नदी गिरती देखी। उस पर्वतके पास ही कई एक सरोवर थे, जिनके तटोंपर तरह-तरहके पक्षी रहते थे। उसके सिवा हनुमान्‌जीने एक कृत्रिम तालाब भी देखा। वह शीतल जलसे भरा था, उसमें मणियोंकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीढ़ियाँ बनी थीं और किनारेपर मोतियोंकी रेत थी ।

इस वाटिकामें विश्वकर्माके बनाये हुए बड़े-बड़े महल सुशोभित थे तथा अनेकों कृत्रिम वाटिकाओंसे इसे सब ओरसे सुसज्जित किया गया था। वहाँ जितने वृक्ष थे, सभी फूल-फल देनेवाले थे तथा उनके नीचे सोनेकी वेदियाँ थीं। फिर उन्होंने एक सुनहरा अशोकका पेड़ देखा, जो अनेकों लताओंसे घिरा था। उसके भी चारों ओर सोनेकी वेदियाँ थीं। इसके सिवा उन्होंने और भी अनेकों खुले मैदान, पहाड़ी झरने और अग्निके समान देदीप्यमान सुवर्णमय वृक्ष देखे । सुमेरुके समान उन वृक्षोंकी प्रभाके कारण वीरवर हनुमान्‌जीने अपनेको भी सब ओरसे सुवर्णका ही समझा। वे सुवर्णमय वृक्ष वायुके कारण जब हिलते तो उनकी सैकड़ों घुँघुरुओंके समान अद्भुत झनकार सुनकर उन्हें बड़ा ही आश्चर्य होता। हनुमान्‌जी जल्दीसे उस अशोकके पेड़पर चढ़ गये और सोचने लगे—'दुरात्मा रावणकी यह अशोक-वाटिका बड़ी ही रमणीय है; यह चन्दन, चम्पा और मौलसिरीके वृक्षोंसे विभूषित है । यह पक्षियोंसे सुसेवित सरोवर भी बड़ा ही मनोहर है । राजरानी सीताजी यहाँ अवश्य आती होंगी । वे भगवान् श्रीरामके वियोगसे बड़ी सन्तप्त होंगी, वनवाससे भी उनका स्वाभाविक प्रेम है; अतः इस वनमें विचरनेके लिये वे नित्य ही आती होंगी । अपना सायंकालिक कृत्य करनेके लिये भी वे इस स्वच्छ जलवाली नदीपर अवश्य आयेंगी। राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेयसी भार्या सुन्दरी सीताके लिये यह अशोक-वाटिका सब प्रकार अनुकूल है ।' यह सब सोचकर हनुमान्‌जी उस अशोक-वृक्षके सघन पत्तोंमें छिप गये और सीताजीकी प्रतीक्षा करते हुए सारी वाटिकापर दृष्टि डालते रहे।

देखते-देखते उनकी दृष्टि पासके ही एक महलपर पड़ी, जो गोलाकार और बहुत ऊँचा था। वह कैलासके समान श्वेतवर्णका था । उसमें हजारों खंभे थे, मूँगेकी सीढ़ियाँ थीं तथा तपाये हुए सोनेकी वेदियाँ बनायी गयी थीं। वह निर्मल प्रासाद अपनी शोभासे देदीप्यमान हो रहा था और दर्शकोंके नेत्रोंको अपनी ओर खींच लेता था। बहुत ऊँचा होनेके कारण वह मानो आकाशको छू रहा था। इतनेमें ही उनकी दृष्टि राक्षसियोंसे घिरी हुई एक मलिनवसना सुन्दरीपर

पड़ी। वह उपवास करनेके कारण बहुत दुर्बल और दीन हो रही थी, बार-बार ठंडी साँसें लेती थी और एक अशोक-वृक्षके नीचे विराजमान थी । उसके शरीरपर केवल एक पीला वस्त्र ही था । वह बहुत ही दुर्बल, पीडित और दुःख-सन्तप्त जान पड़ती थी । उसका मुँह आँसुओंसे भरा था । वह निरन्तर शोक और चिन्तासे व्याप्त दिखायी देती थी । उसके सिरपर काले नागके समान एक ही वेणी थी, जो कमरके नीचेतक लटकी हुई थी। उस अत्यन्त मलिन, दुर्बल एवं बड़े-बड़े नेत्रोंवाली उस सुन्दरीको देखकर कई उपयुक्त कारणोंसे हनुमान्‌जीने निश्चय किया कि सीताजी ये ही हैं। मनमानी रूप धारण करनेवाला राक्षसराज रावण जिस स्त्रीको हरकर ले जा रहा था और उसका जैसा रूप उस समय देखा गया था वैसा ही इस देवीका भी रूप है। उसका मुख पूनोंके चन्द्रमाके समान था, अपनी कान्तिसे वह सब दिशाओंको देदीप्यमान कर रही थी । इन्द्र नील-मणिके आभूषणोंके कारण उसका गला नीला जान पड़ता था, ओठ बिम्बाफलके समान लाल थे। उसका कटिप्रदेश और चरण बड़े सुन्दर थे, नेत्र पद्मपत्रके समान विशाल थे तथा वह पूर्ण चन्द्रकी प्रभाके समान सारे संसारको प्रिय थी । वह संयमशीला तपस्विनीके समान पृथ्वीपर बैठी है । जिस प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


व्याकरणके नियमोंसे रहित होनेपर वाक्यका अर्थ दुर्बोध हो जाता है, उसी प्रकार शरीरकी सजावटसे रहित सीताजीको उन्होंने बड़ी कठिनतासे पहचाना। भगवान् श्रीरामने सीताजीके अङ्गोंमें जिन-जिन आभूषणोंकी चर्चा की थी, वे सब उन्होंने देखे। सुन्दर कर्णफूल और श्वदंष्ट्र अपने-अपने स्थानमें सुशोभित थे तथा हाथोंमें मणि और मूँगोंसे जड़े हुए आभूषण थे। बहुत दिनोंसे पहने हुए होनेके कारण वे काले पड़ गये थे। उन्हें देखकर हनुमान्‌जीने सोचा, 'मैं समझता हूँ ये वे ही आभूषण हैं, जिनकी चर्चा श्रीरामने की थी। इनमें केवल वे ही नहीं दिखायी दे रहे हैं, जो इन्होंने ऋष्यमूक-पर्वतपर गिरा दिये थे। जो नहीं गिराये गये थे उस समय जो इनके पास बच रहे थे। वे सब तो निःसन्देह ये ही हैं। उस समय ऋष्यमूकपर वानरोंने जो सोनेके रंगका सुन्दर पीला वस्त्र और बजनेवाले बड़े-बड़े उत्तम आभूषण देखे थे, वे इन्हींने गिराये थे। बहुत दिनोंसे पहना हुआ होनेके कारण यह वस्त्र मैला अवश्य हो गया है; परन्तु रंग और आबमें यह सचमुच वैसा ही है, जैसा कि ऋष्यमूकपर गिराया गया था। ये सोनेके-से अङ्गोंवाली देवी अवश्य श्रीरामकी प्रेयसी महारानी ही हैं, जो खो जानेपर भी उनके हृदयसे नहीं खोयी हैं। निश्चय, ये ही सीताजी हैं। इन देवीका जैसा रूप है—इनके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी जैसी सुन्दरता है, श्रीरामकी रूप-माधुरी भी वैसी ही है और श्रीरामकी जैसी रूप-माधुरी है, वैसी ही इनकी भी है। अतः ये अवश्य उन्हींकी अर्धाङ्गिनी हैं। इनका मन श्रीराममें लगा है और उनका इनमें लगा रहता है। इसीसे ये और धर्मात्मा श्रीराम जीवन धारण किये हुए हैं।' इस प्रकार सीताजीको देखकर पवननन्दन हनुमान् बड़े प्रसन्न हुए और मन-ही-मन श्रीरामके पास पहुँचकर उनकी सराहना करने लगे।

परम प्रशंसनीया सीता और गुणाभिराम श्रीरामकी प्रशंसाकर वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी फिर चिन्ताग्रस्त हो गये। कुछ देर सोच-विचार करनेपर उनकी आँखोंमें आँसू आ गये और वे सीताजीके लिये विलाप करने लगे—'अहो! जिन्होंने गुरुजनोंसे शिक्षा पायी है, उन लक्ष्मणजीके बड़े भाई श्रीरामकी माननीया भार्या होकर भी आज सीताजी इस प्रकार दुखी हो रही हैं—इससे निश्चय होता है कि कालकी गतिको कोई पलट नहीं सकता।' नवीन सुवर्णके समान दीप्तिमती और लोककान्ता श्रीलक्ष्मीजीके समान शोभामयी श्रीसीताजीको देखकर हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण किया और मन-ही-मन इस प्रकार कहने लगे—'इस विशाललोचना साध्वीके लिये ही श्रीरामने वालीको मारा है तथा पराक्रममें रावणके समान कबन्धका संहार किया है। इन्हींके लिये उन्होंने भयंकर पराक्रमी विराध और भीषण कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षस एवं खर-दूषण और त्रिशिराको पछाड़ा है। इनके लिये तो यदि श्रीरामचन्द्रजी समुद्रपर्यन्त पृथ्वी तथा सारे संसारको भी उलट देते, तो मेरे विचारसे वह उचित ही होता; क्योंकि यदि तीनों लोकोंके राज्य और जनकनन्दिनी सीताकी तुलना की जाय, तो त्रिलोकीका सारा राज्य सीताकी एक कलाके बराबर भी नहीं हो सकता। ये धर्मशील मिथिलाधिपति महात्मा जनककी कन्या और पातिव्रत-धर्ममें बहुत दृढ़ हैं। ये हल जोतते समय पृथ्वी फोड़कर कमलकी रजके समान खेतकी धूलमें लिपटी हुई प्रकट हुई थीं। और केवल पतिप्रेमके कारण ही सब प्रकारके भोगोंको लात मारकर विपत्तियोंका कुछ भी विचार न करके निर्जन वनमें चली आयी थीं। ये फल-मूलसे ही सन्तुष्ट रहकर पतिदेवकी सेवामें तत्पर रहती थीं और वनमें भी उसी प्रकार परम प्रसन्न रहती थीं जैसे कि राजमहलोंमें। ये बन्धुजनोंसे बिछुड़कर विषय-भोगोंको तिलाञ्जलि देकर केवल श्रीरामचन्द्रके समागमकी आशासे ही अपना शरीर धारण किये हुए हैं। ये न तो राक्षसियोंकी ओर देखती हैं और न इन फल-फूलवाले वृक्षोंपर ही दृष्टि डालती हैं; बस, एकाग्रचित्तसे केवल श्रीरामके ही ध्यानमें लगी हुई हैं। नारीकी तो भूषणोंकी अपेक्षा भी पतिसे ही अधिक शोभा होती है। सीता वास्तवमें सुख पाने योग्य हैं, इन्हें दुखी देखकर मेरे मनमें भी व्यथा हो रही है। अहो! जो पृथ्वीके समान क्षमाशीला और कमलके समान नेत्रोंवाली हैं तथा श्रीराम और लक्ष्मण जिनकी सर्वदा रक्षा करते हैं, आज उन्हीं सीताकी रखवाली इस वृक्षके तले ये विकट आँखोंवाली राक्षसियाँ कर रही हैं।' इस प्रकार विचार करके तथा ऐसा निश्चय करके कि ये ही सीताजी हैं, महाबली हनुमान्‌जी उसी वृक्षपर बैठे रहे।

इसके पश्चात् निर्मल आकाशमें श्वेत कमलके समान स्वच्छ चन्द्रमाका उदय हुआ। उस समय हनुमान्‌जीने सीताजीको अधिक बोझके कारण जलमें झुकी हुई नौकाकी भाँति शोकके भारसे दबी हुई देखा। उनके पास ही उन्हें भयंकर राक्षसियाँ दिखायी पड़ीं। उनमेंसे किसीके एक आँख थी, कोई एक कानवाली थी; किसीके कान, ललाट, उदर, स्तन, ओठ, मुँह और घुटने—सभी लंबे थे। कोई नाटी, कोई लंबी, कोई कुबड़ी, कोई टेढ़ी, कोई बौनी, कोई कठोर, कोई टेढ़ मुँहवाली, कोई पीली आँखोंवाली और



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई विकट मुँहवाली थी। किसीका मुँह सूअर, मृग, सिंह, भैंस, बकरी या लोमड़ीका-सा था तथा किसीके पैर हाथी, ऊँट या घोड़ेके पैरोंके समान थे। किन्हींके हाथोंमें त्रिशूल या मुद्गर था, कोई बहुत क्रोध करनेवाली थी, किन्हींका कलह करनेका स्वभाव था और कोई निरन्तर मद्यपान करती रहती थी। उनके शरीरमें मांस और रुधिर लिपटा हुआ था तथा मांस और रुधिर ही उनका भोजन था। उन्हें देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। ऐसी राक्षसियोंको हनुमान्‌जीने सीताकी रखवाली करते देखा। वे उस बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले वृक्षको घेरे हुए बैठी थीं और उसके नीचे ही अनिन्दिता राजकन्या सीताजी थीं। वे प्रभाहीन और शोकसे सन्तप्त थीं; उनके बालोंमें मैल जम गया था तथा वे पुण्य क्षीण होनेपर पृथ्वीपर गिरे हुए तारेके समान कान्तिहीन जान पड़ती थीं। उन्हें पतिदेवका दर्शन दुर्लभ हो गया था, तथापि अपने पातिव्रत्यके कारण उनकी बड़ी ख्याति थी। वे अशोक-वाटिकामें रहते हुए भी शोकके समुद्रमें डूबी रहती थीं। राक्षसियाँ उन्हें घेरे रहती थीं। हनुमान्‌जीने उन्हें पुष्पहीन लताके समान देखा और देखकर उनकी आँखोंसे हर्षके आँसू टपक पड़े। वे मन-ही-मन श्रीराम और लक्ष्मणको नमस्कार कर वहीं छिप रहे।

## अशोक-वाटिकामें रावणका आना और सीताजीको प्रलोभित न कर सकनेपर दो मासकी अवधि नियत करके घर लौट जाना

रात्रिके शेष भागमें हनुमान्‌जीको षडङ्ग वेदोंके ज्ञाता और यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले ब्रह्मराक्षसोंकी वेदध्वनि सुनायी दी। इतनेमें ही मङ्गलवाद्योंके श्रवण-मधुर घोषके साथ महाबली रावण जगा। उठते ही वह सीताजीके विषयमें विचार करने लगा। फिर सब प्रकारके आभूषण धारण कर अत्युत्तम शोभासे सम्पन्न हो वह अशोक-वाटिकामें गया, जहाँ सब प्रकारके फल-फूलोंसे सम्पन्न तरह-तरहके वृक्ष सुशोभित थे तथा अनेकों तालाब थे, तरह-तरहके फूल खिले थे और हर समय बड़े ही अद्भुत रंग-बिरंगे मतवाले पक्षी बोलते रहते थे। चलते समय सौ स्त्रियाँ उसके साथ हो लीं। उनमेंसे किन्हींने सोनेकी लालटेनें लीं, किन्हींने चँवर लिये, किन्हींने ताड़के पंखे लिये, कोई आगे-आगे सोनेकी झारियोंमें जल लेकर चलीं और कोई गोलाकार समेटे हुए आसन लेकर पीछे-पीछे चलीं। एक स्त्री सोनेके डंडेवाला श्वेत और प्रकाशमान छत्र लेकर रावणके पीछे चली। इसी समय हनुमान्‌जीको रावणकी स्त्रियोंकी करधनी और नूपुरोंकी झनकार सुनायी दी। फिर अचिन्त्य बल-पराक्रमवाले रावणको उन्होंने अशोकवाटिकाके द्वारपर आया देखा। जब वह और भी समीप आ गया, तब हनुमान्‌जी पत्तोंकी ओटमें छिपकर उसे पहचाननेका प्रयत्न करने लगे। देखते-देखते उन्हें रावणकी रूप-यौवनसे सम्पन्न सुन्दरी स्त्रियाँ दिखायी दीं। चन्द्रमा जिस प्रकार तारोंसे घिरा रहता है, उसी प्रकार रावण उन रमणियोंसे घिरा था। तब यह सोचकर कि यही महाबाहु रावण है, जो रातको लंकापुरीके उस भव्य भवनमें सोया हुआ था, वे उछलकर और भी ऊँची शाखापर जा बैठे तथा सघन पत्तोंकी ओटमें छिप गये।

उस समय जब अनिन्दिता राजपुत्री सीताने उत्तमोत्तम आभूषणोंसे विभूषित एवं रूप-यौवन-सम्पन्न रावणको देखा, तब वे वायुवेगसे कम्पित केलेके वृक्षके समान काँपने लगीं उन्होंने अपनी जाँघोंसे पेट और दोनों भुजाओंसे स्तन छिपा लिये तथा बैठी-बैठी रोने लगीं। राक्षसियोंके पहरेमें रहती हुई वे अत्यन्त दीन और दुखी थीं। बिना बिछौनेके खुली जमीनपर बैठी थीं और कठोर व्रतोंका पालन कर रही थीं। रावणने देखा कि उनके समस्त अङ्गोंमें आभूषणोंकी जगह मैल जम गया है, वे बराबर सूखती जा रही हैं, अकेली पड़ी-पड़ी रोती रहती हैं, शोकाकुल होकर श्रीरामका ही ध्यान करती रहती हैं, केवल श्रीराममें ही उनका अनुराग है और यहाँ उन्हें अपने दुःखका कोई अन्त दिखायी नहीं देता। उन्होंने सदाचारी और धार्मिक कुलमें जन्म लिया है तथा उनके विधिवत् संस्कार भी किये गये हैं; तथापि इस समय वे [ मलिन वेषमें होनेके कारण ] दूषित कुलमें उत्पन्न हुई-सी जान पड़ती हैं। वे शिथिल हुई कीर्ति, तिरस्कृत श्रद्धा, क्षीण प्रज्ञा, नष्ट हुई आशा, उपेक्षित आज्ञा, विधिहीन पूजा, विध्वस्त पद्मिनी, अन्धकारसे आच्छादित प्रभा और सूखी हुई नदीके समान हो रही हैं। उपवास, शोक, ध्यान और भयसे वे अत्यन्त क्षीण हो रही हैं। उनका आहार बहुत थोड़ा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रह गया है, तप ही उनका सर्वस्व है तथा वे दुःखातुर होकर देवीके समान मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा रावणकी पराजयकी प्रार्थना कर रही हैं।

यह देखकर रावणने राक्षसियोंसे घिरी हुई तपस्विनी सीताजीसे अभिप्राययुक्त मधुर वाणीमें कहा—'सर्वाङ्गसुन्दरी

सीते! मुझे देखकर तुम अपने स्तन और उदर छिपा रही हो। मालूम होता है तुम डरके मारे अपनेको अदृश्य कर देना चाहती हो। किन्तु विशालाक्षी! मैं तो तुमसे प्रेम करता हूँ, तुम भी मेरा आदर करो। तुम्हें मुझसे जो भय है, वह दूर हो जाना चाहिये। भीरु! परस्त्रियोंको बलात्कारसे हर लाना और उनसे सहवास करना तो राक्षसोंका स्वधर्म है। तथापि तुम्हारी इच्छा न होनेपर मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा। इसलिये तुम डरो मत, मुझपर विश्वास करो; अपना अनुचर समझकर मुझसे प्रेम करो और किसी प्रकारका शोक मत करो। एक वेणी धारण करना, पृथ्वीपर सोना, निरन्तर चिन्ता करना, मैले वस्त्र पहनना और अकारण उपवास करना—ये सब तुम्हारे योग्य नहीं हैं। तुम तो मुझे पाकर रंग-बिरंगी मालाएँ, चन्दन, अगर, तरह-तरहके वस्त्र, दिव्य आभूषण, बहुमूल्य पेय, शय्या, आसन, गान-वाद्य एवं नृत्यका उपभोग करो। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि तुम्हारी रचना करके सौन्दर्यकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीने भी इस कामसे छुट्टी ले ली है। सुन्दरी! तुम्हारे रूपकी कहीं तुलना नहीं है। मैथिली! तुम यह रामका मोह त्याग दो। मेरी अनेकों सुन्दरी भार्याएँ हैं, उन सबके ऊपर तुम मेरी पटरानी बनो। मैं लोक-लोकान्तरोंसे जिन रत्नोंको बलपूर्वक छीनकर लाया हूँ, वे सब और यह सारा राज्य मैं तुम्हें सौंपता हूँ। अनेकों नगरोंसे पूर्ण इस सारी पृथ्वीको जीतकर मैं तुम्हारी खातिर जनकको दे दूँगा। संसारमें मुझे ऐसा कोई नहीं दिखायी देता, जो मेरा सामना कर सके। तुम युद्धमें मेरा अत्यन्त महान् और बेजोड़ पराक्रम देखना। रामके जीतनेकी अब कोई सम्भावना नहीं रह गयी, उसकी शोभाका अन्त हो गया, अब वह एक साधारण वनवासी है। वह तो व्रत करता रहता है और जमीनपर सोता है। मुझे तो सन्देह है कि अब वह जीवित भी है या नहीं। अब रामको तो तुम्हारा दर्शन भी दुर्लभ है। देखो, तुमने यह मैला रेशमी वस्त्र पहन रखा है, तुम बहुत दुबली हो गयी हो, कोई अलंकार भी नहीं धारण करती। मुझे तो तुम्हारी यह दशा देखकर अपनी रमणियोंके साथ भी कोई सुख नहीं मिलता। सीते! मेरे अन्तःपुरमें रहनेवाली ये जितनी भी सर्वगुणसम्पन्न रमणियाँ हैं, तुम इन सबपर हुकूमत चलाओ। मेरे भवनमें तीनों लोकोंकी उत्तमोत्तम स्त्रियाँ हैं; वे सब तुम्हारी इसी प्रकार सेवा करेंगी, जैसे अप्सराएँ लक्ष्मीजीकी। कुबेरके पास जितना भी धन और सुन्दर-सुन्दर रत्न हैं, उन सबका और सम्पूर्ण लोकोंके ऐश्वर्यका तुम मेरे साथ रहकर आनन्दसे भोग करो। राम तो तपस्या, बल, पराक्रम, धन, तेज और यश—किसीमें मेरी बराबरी नहीं कर सकता; अतः तुम मुझसे ही प्रेम करो।'

इस समय सीता दुःखातुर होकर रो रही थीं, उनकी कँपकँपी बँधी थी और वे निरन्तर अपने पतिदेवका ध्यान कर रही थीं। उस भयानक राक्षसकी यह बात सुनकर उनका कण्ठ भर आया और वे तृणकी ओट करके कहने लगीं—'रावण! तुम मेरी ओरसे अपना मन हटा लो, इसे अपनी स्त्रियोंमें ही लगाओ। पापी पुरुष जिस प्रकार सिद्धिके लिये प्रार्थना करनेका अधिकारी नहीं होता उसी प्रकार तुम मेरी याचना करने योग्य नहीं हो। मैं पतिव्रता हूँ; कोई लोकनिन्दित, न करनेयोग्य कार्य मुझसे नहीं हो सकता। मैंने बड़े कुलमें जन्म लिया है और पवित्र कुलसे ही मेरा सम्बन्ध हुआ है। [ मैं ऐसा निन्दनीय आचरण कैसे कर सकती हूँ। ]' यशस्विनी सीताने ऐसा कहकर रावणकी ओर पीठ कर ली और फिर उससे इस प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—"रावण ! मैं परायी स्त्री हूँ, इसलिये न्यायानुसार तुम्हारी भार्या नहीं हो सकती। तुम जरा सद्धर्मपर दृष्टि दो और सत्पुरुषोंका-सा ही आचरण करो। राक्षसराज ! जिस प्रकार तुम अपनी स्त्रियोंकी रक्षा करते हो, उसी प्रकार तुम्हें दूसरोंकी स्त्रियोंका भी ध्यान रखना चाहिये। जो चञ्चलचित्त पुरुष अपनी ही स्त्रियोंसे सन्तुष्ट नहीं रहता, उस पापात्माकी परायी स्त्रियाँ बहुत फजीहत करती हैं। यहाँ क्या कोई सत्पुरुष हैं ही नहीं, या तुम्हीं सत्पुरुषोंके आचरणका अनुसरण नहीं करते, जिससे कि तुम्हारी बुद्धि सदाचारशून्य होकर ऐसी उल्टी हो गयी है ? अथवा बुद्धिमान् पुरुष जो तुम्हारे हितकी बात कहते हैं, उसे राक्षसोंके विनाशपर तुले रहनेके कारण तुम सुनना ही नहीं चाहते ? दुष्टबुद्धि और अन्यायी राजाके हाथमें पड़कर तो बड़े-बड़े समृद्ध राज्य और नगर नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार यह रत्न-राशिसे पूर्ण लङ्कापुरी तुम्हारे हाथमें आ जानेसे अब अकेले तुम्हारे ही अपराधसे बहुत जल्द नष्ट हो जायगी। रावण ! जब कोई पापी अपने कुकर्मोंसे मारा जाता है, तो उसको नष्ट हुआ देखकर सभी प्राणियोंको प्रसन्नता होती है। इसी प्रकार जिन लोगोंको तुमने कष्ट पहुँचाया है, वे तुम्हें पापी कहेंगे और 'बड़ा अच्छा हुआ जो इस आततायीको यह कष्ट प्राप्त हुआ' ऐसा कहकर हर्ष मनायेंगे। सूर्यसे जैसे प्रभा अलग नहीं होती, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजीसे मैं अभिन्न हूँ। ऐश्वर्य या धनके द्वारा तुम मुझे लुभा नहीं सकते। जगदीश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी भुजापर सिर रखकर अब मैं किसी दूसरेकी बाँहका तकिया कैसे लगा सकती हूँ। जिस प्रकार वेदविद्या आत्मज्ञानी स्नातक ब्राह्मणकी ही सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार मैं केवल उन पृथ्वीपति रघुनाथजीकी ही धर्मपत्नी हूँ। रावण ! तुम्हारे लिये अच्छा यही होगा कि तुम मुझ दुखियाको श्रीरामचन्द्रजीके पास ही पहुँचा दो। अपनी राजधानीकी रक्षाके लिये और अपनेको घोर बन्धनसे मुक्त रखनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीको मित्र बना लेनेमें ही तुम्हारा हित है। भगवान् श्रीराम समस्त धर्मोंके ज्ञाता और सुप्रसिद्ध शरणागतवत्सल हैं। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो उनसे तुम्हारी मित्रता हो जानी चाहिये। तुम सावधानीसे शरणागतवत्सल श्रीरामको प्रसन्न कर लो और मुझे भी उन्हींके पास पहुँचा दो। इस प्रकार मुझे उन्हें सौंप देनेसे ही तुम्हारा कल्याण हो सकता है। इससे विपरीत आचरण करनेपर तो तुम बड़ी विपत्तिमें पड़ जाओगे। तुम्हारे-जैसे मनुष्यको हाथसे छूटा हुआ वज्र और स्वयं काल तो छोड़ भी सकते हैं, परन्तु लोकनाथ श्रीराम नहीं छोड़ सकते। तुम इन्द्रके छोड़े हुए वज्रके समान श्रीरामके धनुषका शब्द सुनोगे। यहाँ जलते हुए मुँहवाले सर्पोंके समान श्रीराम और लक्ष्मणके छोड़े हुए गँठीले बाण गिरेंगे। इस नगरीमें निःसन्देह राक्षसोंका संहार होगा। यहाँ बरसते हुए बाण घमासान मचा देंगे। शत्रुओंका संहार करनेवाले मेरे पतिदेव मुझे शीघ्र ही तुम्हारे यहाँसे ले जायँगे। तुमने पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणके सूने आश्रममें घुसकर मेरा हरण किया—यह तुम्हारा बड़ा ही निन्दनीय कृत्य था। उस समय वे दोनों मायामृगको मारनेके लिये गये हुए थे। [नहीं तो, तभी तुम्हें इसका फल मिल जाता।] श्रीराम और लक्ष्मणकी तो गन्ध पाकर भी तुम उनके सामने नहीं ठहर सकते। कुत्ता क्या दो-दो बाघोंके सामने टिक सकता है ? अतः युद्धमें उनसे पार पाना तुम्हारे लिये असम्भव है। तुम भले ही कुबेरके कैलास-पर्वतपर जाओ अथवा वरुणकी सभामें जाकर छिप रहो; बड़ा भारी वृक्ष जैसे वज्र-पातसे नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तुम्हें दशरथ-नन्दन श्रीरामके हाथसे प्राण त्यागने पड़ेंगे—इसमें कोई संदेह नहीं है; क्योंकि अब काल तुम्हारे सिरपर मँडरा रहा है।"

सीताके ये कठोर वचन सुनकर राक्षसराज रावणने उन्हें यह अप्रिय उत्तर दिया—'लोकमें मनुष्य जैसे-जैसे स्त्रियोंसे अनुनय-विनय करता है, वैसे-वैसे वह उन्हें अपने काबूमें कर लेता है; परन्तु मैं तुमसे जैसे-जैसे मीठे वचन बोलता हूँ, वैसे-वैसे ही तुम मेरा तिरस्कार करती जा रही हो। तुम मुझसे जैसी-जैसी कठोर बातें कह रही हो, उनके बदले तो तुम्हें कठोर प्राणदण्ड देना ही उचित है। अतः याद रखो—यदि दो महीनेके भीतर तुम मुझे अपना पति बनाना स्वीकार नहीं करोगी, तो रसोइये मेरे कलेवेके लिये तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।' राक्षसराज रावणद्वारा सीताको इस प्रकार धमकायी जाती देख देवता और गन्धर्वोंकी कन्याओंको बड़ा दुःख हुआ। तब उनमेंसे किसीने ओठोंसे, किसीने नेत्रोंसे और किसीने मुँहके संकेतसे उन्हें धैर्य बँधाया। उनके धैर्य बँधानेपर सीताने कहा—'निश्चय ही इस नगरमें तुम्हारा कोई भला चाहनेवाला नहीं है, जो तुम्हें इस निन्दनीय कर्मसे रोक सके। शची जैसे इन्द्रकी धर्मपत्नी हैं, वैसे ही मैं धर्मात्मा भगवान् श्रीरामकी भार्या हूँ; त्रिलोकीमें तुम्हारे सिवा और ऐसा कौन है, जो मनसे भी मेरी कामना कर सके। राक्षसाधम ! तुमने अतुलित तेजस्वी श्रीरामकी भार्यासे जो पापकी बात कही है, उसके फलस्वरूप दण्डसे तुम कहाँ जाकर छुटकारा पाओगे ? अरे ! इक्ष्वाकुनाथ श्रीरामका तिरस्कार करते तुम्हें लज्जा भी नहीं आती।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जबतक तुम उनकी आँखोंके सामने नहीं जाते, तबतक भले ही बातें बना लो। अनार्य! मुझपर दृष्टि डालते हुए तुम्हारी ये क्रूर और विकारयुक्त काली-पीली आँखें पृथ्वीपर क्यों नहीं गिर पड़तीं? मुझसे ऐसी बातें करते हुए तुम्हारी जीभ क्यों नहीं गिर जाती? मेरा तेज ही तुम्हें भस्म करनेके लिये पर्याप्त है; केवल श्रीरामकी आज्ञा न होनेसे और अपनी तपस्याको सुरक्षित रखनेके विचारसे मैं तुम्हें भस्म नहीं कर रही हूँ। मैं मतिमान् श्रीरामकी भार्या हूँ, मुझे हरनेकी तुम्हारे अंदर सामर्थ्य नहीं थी। निःसन्देह तुम्हारे वधके लिये ही विधाताने यह विधान किया है।'

सीताकी ये बातें सुनकर राक्षसराज रावणने उनकी ओर आँखें तरेरकर देखा। उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उसने साँपकी तरह फुफकारते हुए कहा—'सीते! तुम अन्यायी और सारहीन रामके पीछे पड़ी हुई हो। [याद रखो—] सूर्य अपने तेजसे जैसे अन्धकारका नाश कर देता है, वैसे ही आज मैं तुम्हें नष्ट कर डालूँगा।' शत्रुओंको रुलानेवाले रावणने सीतासे इस प्रकार कहकर वहाँ जो भयंकर रूपवाली राक्षसियाँ थीं, उनकी ओर देखा और उनसे कहा—'राक्षसियो! तुम सब मिलकर ऐसा उपाय करो, जिससे सीता शीघ्र ही मेरे वशमें हो जाय। प्रतिकूल अथवा अनुकूल व्यवहारसे तथा साम, दान, भेद और दण्ड—सभी नीतियोंका प्रयोग करके तुम विदेहनन्दिनीको रास्तेपर ले आओ।' राक्षसियोंको बार-बार ऐसी आज्ञा देकर काम-क्रोधके वशीभूत हुए रावणने जानकीकी ओर देखकर मेघके समान गर्जना की। फिर वह हँसता-हँसता पृथ्वीको कँपाता हुआ अपने महलोंको चला गया। उसके साथ ही देवता, गन्धर्व और नागोंकी कन्याओंने भी रावणके भव्य भवनमें प्रवेश किया।

## राक्षसियोंका सीताजीको समझाना और धमकाना तथा त्रिजटाका राक्षसियोंको अपना स्वप्न सुनाना

राक्षसराज रावण जब अशोक-वाटिकासे निकलकर अन्तःपुरकी ओर चला गया, तब वहाँ जो भयानक राक्षसियाँ थीं, वे सीताके पास आयीं। वहाँ पहुँचकर वे क्रोधातुर होकर उनसे इस प्रकार कठोर वचन कहने लगीं—'सीते! तुम पुलस्त्य-वंशमें उत्पन्न हुए महाराज रावणकी भार्या बनना भी कोई बड़ी बात नहीं समझतीं?' इसके पश्चात् एकजटा नामकी राक्षसीने कहा—'पुलस्त्यजी छः प्रजापतियोंमें चौथे हैं और ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। पुलस्त्यजीके मानसपुत्र महर्षि विश्रवा हैं, वे भी प्रजापतिके समान ही हैं। महाराज रावण उन्हींके पुत्र हैं; तुम्हें इन राक्षसराजकी भार्या अवश्य बन जाना चाहिये। सुन्दरी! मेरी इस बातका तुम अनुमोदन क्यों नहीं करतीं?' फिर उनसे हरिजटा नामकी राक्षसीने आँखें फाड़कर कहा—'अजी! जिन्होंने तैंतीसों देवता और देवराज इन्द्रको भी परास्त कर दिया है, उन राक्षसराजकी रानी तो तुम्हें अवश्य बन जाना चाहिये। वे हजारों रमणियोंसे भरे हुए और अनेक प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित अन्तःपुरको छोड़कर तुम्हारे पास आयेंगे।' इतनेमें ही विकटा नामकी राक्षसी बोली—'देखो! जिन्होंने अपने भीषण पराक्रमसे नाग, गन्धर्व और दानवोंको भी संग्राममें बार-बार नीचा दिखाया है, वे ही राक्षसराज तुम्हारे पास आये; फिर भी तुम उनकी भार्या नहीं बनना चाहतीं।' फिर उनसे दुर्मुखीने कहा—'विशालाक्षी सीते! जिनसे भय मानकर सूर्य तपना छोड़ देता है, वायु बंद हो जाता है, वृक्ष फूल बरसाने लगते हैं, पर्वतोंसे जल चूने लगता है और मेघ जिनकी इच्छा होनेपर ही जल बरसाते हैं, उन राजराजेश्वर राक्षसराजकी भार्या बननेका विचार तुम क्यों नहीं करतीं? देवि! मैं तुमसे सच्ची बात कह रही हूँ। तुम या तो मेरी बात मान लो, नहीं तो तुम जीवित नहीं रह सकोगी।'

राक्षसियोंकी बातें सुनकर कमलनयनी सीताकी आँखोंमें आँसू भर आये और वे उनसे कहने लगीं—'तुम सब मिलकर मुझसे जो लोकविरुद्ध बातें कह रही हो, मेरे हृदयमें वे तनिक भी नहीं ठहरतीं। तुमलोग भले ही मुझे खा जाओ, तो भी मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती। जो मेरे पति हैं, वे दीन हों अथवा राज्यहीन हों; मेरे उपास्य तो वे ही हैं। मेरा अनुराग तो सर्वदा उन्हींमें रहेगा। जिस प्रकार सुवर्चला सूर्यकी, शची शक्रकी, अरुन्धती वसिष्ठकी, रोहिणी चन्द्रमाकी, लोपामुद्रा अगस्त्यकी, सुकन्या च्यवनकी, सावित्री सत्यवान्‌की, श्रीमती कपिलकी, मदयन्ती सौदासकी, केशिनी सगरकी और दमयन्ती नलकी अनुरागिणी है, उसी प्रकार मैं इक्ष्वाकुप्रवर भगवान् श्रीराममें अनुरक्त हूँ।'

सीताके वचन सुनकर राक्षसियाँ क्रोधातुर हो गयीं और रावणकी आज्ञाके अनुसार उन्हें कठोर वचन कहकर धमकाने लगीं। सीता भयसे काँप रही थीं; उनपर राक्षसियाँ कुपित होकर सब ओरसे टूट पड़ीं और अपने फरसे उठाकर कहने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगीं—'यह राक्षसराज रावणको पतिरूपसे पानेयोग्य है ही नहीं।' इस प्रकार जब राक्षसियोंने उन्हें बहुत धमकाया तो वे आँसू पोंछती उस अशोक-वृक्षके तले आ गयीं। वे शोक-सागरमें डूबी हुई थीं, बहुत ही दुर्बल और दीनवदन हो रही थीं तथा उनके शरीरका वस्त्र बहुत मैला था। राक्षसियाँ [ वहाँ आकर भी ] उन्हें सब ओरसे धमकाने लगीं। उनमें विकटा नामकी एक राक्षसीने क्रोधसे घूँसा तानकर कहा—'सीते! तुम बड़ी मूर्ख हो, हमने अपने कोमल स्वभावके कारण दयावश तुम्हारी बहुत-सी अनुचित बातें सह ली हैं। देखो, तुम्हें समुद्रके इस पार ले आया गया है, यहाँ दूसरा कोई भी नहीं आ सकता; फिर भी तुम हमारी समयोचित और हितकी बातोंपर ध्यान नहीं दे रही हो। तुम रावणके घरमें कैद हो और हम तुम्हारी चौकसी कर रही हैं। मैं तुम्हारे हितकी बात कह रही हूँ, तुम उसे मान लो। तुम राक्षसराजके साथ रमणीय बगीचों और पर्वतीय उपवनोंमें विचरो। ऐसा करनेसे सहस्रों स्त्रियाँ तुम्हारे अधीन रहेंगी। महाराज रावण सम्पूर्ण राक्षसोंके स्वामी हैं, उन्हें तुम अपना पति बना लो। यदि तुम मेरी बातका ठीक-ठीक पालन नहीं करोगी, तो मैं तुम्हारा कलेजा निकालकर खा जाऊँगी। इसके बाद प्रघसा नामकी राक्षसीने कहा—'मुझे तो बेमतलबका वाद-विवाद अच्छा नहीं लगता। आओ, इसे काट-कूटकर आपसमें बराबर-बराबर बाँट लें।'

जिस समय क्रूर राक्षसियाँ इसी प्रकारकी बहुत-सी कठोर और भयंकर बातें कह रही थीं, जनकनन्दिनी बराबर रो रही थीं। वे शोकाकुल होकर क्रोधसे अधीर हो गयीं और लंबी-लंबी साँस लेते हुए दुःखातुर होकर आँसू बहाती विलाप करने लगीं—'हा राम! हा लक्ष्मण! हा सासजी कौसल्ये! हा सुमित्रे! पण्डितोंने यह लोकोक्ति ठीक ही कही है कि किसी भी स्त्री या पुरुषकी मृत्यु बिना समय आये नहीं होती। नहीं तो मुझ दुखियाका इन क्रूर राक्षसियोंसे पीड़ित और भगवान् श्रीरामसे वियुक्त होकर दो घड़ी भी जीना कठिन था। मुझे पतिदेवके दर्शन नहीं हो रहे हैं, इन राक्षसियोंके चंगुलमें मैं फँस गयी हूँ और निरन्तर शोकसे पीड़ित हो रही हूँ। आज जिन लोगोंको सिंहके समान पराक्रमी और सिंहकी-सी चालवाले मेरे कमल-दल-लोचन, कृतज्ञ और प्रियवादी प्राणनाथके दर्शन हो रहे हैं, वे धन्य हैं। मैं तो बड़े भारी शोकमें डूबी हुई हूँ, [ इससे तंग आकर ] मैं अपने जीवनका अन्त कर देना चाहती हूँ। इस मानव-जीवन और परतन्त्रताको धिक्कार है, जहाँ अपनी इच्छासे प्राण भी नहीं त्यागे जा सकते। अवश्य ही मेरा यह हृदय पत्थरका है, अथवा यह अजर-अमर है; इसीसे ऐसे दुःखमें पड़कर भी यह फटता नहीं है। मैं बड़ी ही अनार्य और असती हूँ; मुझे धिक्कार है, जो उनसे अलग होकर मैं एक मुहूर्त्त भी इस पापी जीवनको धारण किये हुए हूँ। इस राक्षसको तो मैं बायें पैरसे भी नहीं छू सकती, फिर उसे चाहनेकी तो बात ही क्या है। हाय! अपने क्रूर स्वभावके कारण यह मेरे निषेधपर भी ध्यान नहीं देता। इसे अपना या अपने कुलका कोई विचार नहीं है। राक्षसियो! तुम्हारे बार-बार बकवाद करनेसे क्या लाभ है? मुझे छेदो, काटो, कूटो अथवा आगमें जला दो, तो भी मैं रावणके पास नहीं फटक सकती। रघुनाथजी जगद्विख्यात, परम चतुर, कृतज्ञ, कृपालु और सदाचारी हैं। उन्होंने जनस्थान-में अकेले ही चौदह हजार राक्षसोंको नष्ट कर डाला था। वे क्या मेरे पास नहीं आयेंगे? चारों ओर समुद्रसे घिरी होनेके कारण इस लङ्कापर किसी दूसरेका आक्रमण करना भले ही कठिन हो, किन्तु यहाँ श्रीरघुनाथजीके बाणोंका आना तो रुक नहीं सकता। मुझे तो यही जान पड़ता है कि लक्ष्मणजीके ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामजीको मेरे यहाँ होनेका पता नहीं है; वे बड़े तेजस्वी हैं, जाननेपर तो इस तिरस्कारको सह ही कैसे सकते थे। जो गृध्रराज रघुनाथजीको मेरे हरे जानेकी सूचना देते, उन्हें भी रावणने रणमें मार डाला। जटायु बूढ़े थे, तो भी मुझपर अनुग्रह करके रावणका वध करनेके लिये उन्होंने बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया था। यदि रघुनाथजीको मेरे यहाँ रहनेका पता लग जाता, तो वे कुपित होकर आज सारे संसारको राक्षसहीन कर डालते। वे लङ्कापुरीको जला डालते, समुद्रको भस्म कर देते और इस नीच रावणके नाम और यशका नाश कर देते। फिर तो निःसन्देह, अपने पतियोंका संहार हो जानेसे घर-घरमें राक्षसियोंका इसी प्रकार क्रन्दन होता, जैसे आज मैं रो रही हूँ। श्रीराम और लक्ष्मण लङ्काका पता लगाकर निश्चय ही राक्षसोंका संहार करेंगे। उनके नेत्रके सामने आने-पर शत्रु एक मुहूर्त्त भी जीता नहीं देखा गया। फिर तो तत्काल ही यह लङ्कापुरी श्मशानके समान हो जायगी। इसके रास्तोंमें चिताओंका धूआँ भर जायगा। मेरा यह मनोरथ बहुत जल्द सफल होगा। तुम सबकी यह विपरीत बुद्धि दुराचारपूर्ण जान पड़ती है। लङ्कामें जैसे अशुभ लक्षण दिखायी दे रहे हैं, उनसे मालूम होता है कि अब शीघ्र ही इसकी चमक-दमक नष्ट हो जायगी। आज जिस लङ्कामें दिव्य उत्सव होते हैं, वह राक्षसों-के सहित अपने स्वामीके नष्ट हो जानेसे विधवा स्त्रीके समान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहीन हो जायगी। भगवान् श्रीरामके बाणोंसे दग्ध हो जानेके कारण इसकी प्रभा नष्ट हो जायगी, इसमें अन्धकार छा जायगा और इसके सभी प्रधान-प्रधान राक्षस मारे जायँगे। भरतके बड़े भाई भगवान् श्रीरामको यह पता नहीं है कि मैं जीवित हूँ। यदि उन्हें इस बातका पता होता, तो ऐसा सम्भव नहीं था कि वे पृथ्वीमें मेरी खोज न करते। मालूम होता है मेरे ही शोकसे वे वीर लक्ष्मणाग्रज देह त्यागकर देवलोकको चले गये हैं। वे देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण धन्य हैं, जो मेरे वीर-शिरोमणि कमलनयन श्रीरामका दर्शन पा रहे हैं। मुझमें कोई दुर्गुण है अथवा मेरा भाग्य फूट गया है, जो आज मैं प्रियतम श्रीरामसे अलग हो गयी हूँ। भगवान् श्रीरामका चरित्र परम पवित्र है; वे महात्मा, शूरवीर और शत्रुओंका संहार करनेवाले हैं। उनसे अलग होकर जीवित रहनेकी अपेक्षा तो मेरा मरना ही अच्छा है। परन्तु मालूम होता है अभी मेरी मृत्यु लिखी नहीं है। वे ब्रह्मनिष्ठ, जितेन्द्रिय, महात्मा मुनिगण धन्य हैं, जिनका कोई प्रिय या अप्रिय नहीं है। जिन्हें प्रियके वियोगसे दुःख नहीं होता और अप्रियका संयोग होनेपर दुःखमें वृद्धि भी नहीं होती, इस प्रकार जो प्रिय-अप्रिय दोनोंसे परे हैं, उन महात्माओंको नमस्कार है। मैं प्रियतम भगवान् श्रीरामसे बिछुड़ गयी हूँ और पापी रावणके चंगुलमें आ फँसी हूँ। अतः अब इन प्राणोंको त्याग दूँगी।'

सीताने जब ऐसी भयंकर बात कही, तो वे राक्षसियाँ क्रोधसे अधीर हो गयीं और उनमेंसे कुछ दुरात्मा रावणसे यह संवाद कहनेके लिये चल दीं तथा कुछ भयंकर रूप-वाली राक्षसियाँ सीताके पास चली आयीं और उनसे एक स्वरसे ये कठोर बातें कहने लगीं—'सीते! आज इसी समय राक्षसियाँ तुम्हारा मांस खायेंगी।' तब उन दुष्ट राक्षसियोंके द्वारा सीताजीको इस प्रकार डरायी जाती देख उनसे त्रिजटा नामकी एक बूढ़ी और समझदार राक्षसीने कहा—'दुष्टाओ! तुम अपनेको ही खाओ, जनककी दुलारी बेटी सीताको तो खा नहीं सकोगी। आज मैंने राक्षसोंके नाश और इसके पतिके उत्कर्षकी सूचना देनेवाला एक बड़ा ही भयंकर और रोंगटे खड़े कर देनेवाला स्वप्न देखा है।'

त्रिजटाकी यह बात सुनकर सभी राक्षसियाँ डर गयीं और उससे बोलीं—'बताओ तो, आज रातमें तुमने कैसा स्वप्न देखा है?' तब त्रिजटा उनसे कहने लगी—'आज स्वप्नमें मैंने देखा है कि श्रीरामचन्द्रजी आकाशमें चलनेवाली हाथी-दाँतकी पालकीमें, जिसमें कि एक हजार घोड़े जुते हुए हैं, बैठकर और श्वेत वस्त्र धारण किये लक्ष्मणजीके सहित आये हैं। सीताजी भी श्वेत वस्त्र पहने समुद्रसे घिरे हुए एक श्वेत पर्वतपर बैठी हैं। फिर मैंने देखा कि लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजी पर्वतके समान ऊँचे एक चार दाँतोंवाले हाथीपर चढ़कर अपने प्रकाशसे सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहे हैं। वे दोनों भाई श्वेत वस्त्र धारण किये सीताजीके पास आये हैं। तब सीताजी पर्वतके शिखरसे उस आकाशस्थित हाथीके कंधे-पर आ गयी हैं। फिर वह हाथी लङ्कापर चढ़ आया है। इसके पश्चात् श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण किये लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचन्द्रजी आठ सफेद बैलोंसे जुते हुए रथपर चढ़कर यहाँ आये हैं। फिर एक दूसरे स्थानपर मैंने देखा कि भाई लक्ष्मण और सीताके सहित सत्यपराक्रमी श्रीराम सूर्यके समान देदीप्यमान दिव्य पुष्पक-विमानपर चढ़कर उत्तर दिशाकी ओर चले गये हैं। तथा रावणको मैंने मूँड़-मुँड़ाये और तेलमें भीगा देखा है। वे लाल कपड़े और करवीरकी माला पहने हैं, तेल पी रहे हैं, हँसते हैं, नाचते हैं, पागलोंकी तरह उनका चित्त और इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही हैं तथा गधेपर चढ़कर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहे हैं। फिर मैंने देखा कि राक्षसराज रावण भयभीत होकर सिर नीचा किये गधेसे पृथ्वीपर गिर पड़े हैं और फिर सहसा घबराकर भयभीत और मदसे विह्वल हो उठ बैठे हैं। उस समय वे उन्मत्त-से और नंग-धड़ंग दिखायी दे रहे हैं तथा तरह-तरहके दुर्वचन बोल रहे हैं। इसके बाद वे असह्य दुर्गन्धपूर्ण अन्धकारमय नरकके समान महान् मलकी कीचमें घुसकर उसीमें डूब गये हैं। इसी समय लाल वस्त्र पहने, कीचमें सनी हुई एक काली स्त्री उनका गला बाँधकर दक्षिणकी ओर खींचे लिये जा रही है। इसी प्रकार मैंने महाबली कुम्भकर्ण और महाराज रावणके सब पुत्रोंको भी मूँड़-मुँड़ाये और तेलमें भीगा देखा है। [ उस समय मुझे यह भी दिखायी दिया कि ] रावण सूअरपर मेघनाद सूँसपर और कुम्भकर्ण ऊँटपर चढ़कर दक्षिण दिशाको जा रहे हैं। एकमात्र विभीषणको ही मैंने श्वेत छत्र लगाये देखा है। वे अपने चार मन्त्रियोंके साथ आकाशमें स्थित हैं। फिर वहाँ लाल वस्त्र और लाल फूलोंकी माला पहने तैलादि पान करनेवाले राक्षसोंका बड़ा समाज जुड़ा है। इस रमणीय लङ्कापुरीके बाहरी और भीतरी दरवाजे टूट गये हैं यथा यह सब हाथी, घोड़े और रथोंके सहित समुद्रमें डूब गयी है। राखसे भरी हुई लङ्कामें राक्षस-रमणियाँ तेल पी-पीकर मतवाली हो रही हैं और ठहाका मारकर हँसती हैं। कुम्भकर्ण आदि जितने प्रधान-प्रधान राक्षस हैं, वे सब लाल वस्त्र पहनकर गोबरके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुण्डमें घुस गये हैं। इसलिये अब तुमलोग हट जाओ; थोड़े दिनोंमें ही तुम देखोगी कि श्रीरामचन्द्रजीने सीताको पा लिया है और उन्होंने राक्षसोंके सहित तुम सबको मार डाला है। जिसने वनवासमें भी उनका साथ दिया, ऐसी अपनी प्रिय और आदरणीय पत्नीका धमकाया या डराया जाना वे सह नहीं सकते। जिस दुःखिनीके विषयमें ऐसा स्वप्न देखा जाता है, वह अनेकों प्रकारके दुःखोंसे छूटकर उत्तम सुख प्राप्त करती है। राक्षसियो! तुमने सीताको बहुत धमकाया है, अब तुम इनसे क्षमा माँग लो; इन्हें बहुत कहने-सुननेसे क्या लाभ होगा? राक्षसोंके लिये रघुनाथजीकी ओरसे बड़े भारी भयका कारण उपस्थित हो गया है। जनकनन्दिनी सीता तो केवल प्रणाम करनेसे ही प्रसन्न हो जायँगी और ये ही तुम्हें उस महान् भयसे बचानेमें समर्थ भी हैं। मुझे तो अब सीताजीके मनोरथकी सिद्धि समीप ही जान पड़ती है तथा रावणका नाश और रघुनाथजीकी विजय भी पास ही दिखायी देती है। आजकल सीताजीकी आँख भी फड़क रही है। यह इस बातकी सूचना दे रही है कि इन्हें कोई अत्यन्त प्रिय संवाद सुननेको मिलेगा। इनकी बायीं भुजा कुछ रोमाञ्चित हो गयी है और अकस्मात् फड़क उठती है। तथा इनकी जो हाथीकी सूँड़के समान सुन्दर बायीं जङ्घा है, वह भी फड़ककर इस बातकी सूचना दे रही है कि श्रीरामचन्द्रजी बहुत शीघ्र इनके सामने आ जायँगे। देखो, सामने यह पक्षी शाखाके ऊपर अपने घोंसलेमें बैठकर बार-बार मीठी बोली बोल रहा है। यह भी मङ्गलमयी बोली बोलकर मानो सीताजीको किसी भावी शुभकी सूचना दे रहा है।'

## सीताजीका विलाप तथा हनुमान्‌जीका अपने कर्तव्यके विषयमें विचार करना

इस प्रकार पतिदेवकी विजयके संवादसे लज्जाशीला सीताजी प्रसन्न हो गयीं और बोलीं—'यदि ऐसा हुआ तो मैं तुम सबकी रक्षा करूँगी।' किन्तु फिर रावणके कठोर वचनोंकी याद आनेपर वे विलाप करने लगीं। वे बोलीं—'संतजन लोकमें यह बात ठीक ही कहते हैं कि बिना समय आये किसीकी मृत्यु नहीं होती। ऐसी बात न होती तो भला, मैं इस प्रकार धमकायी जानेपर क्षणभर भी जीवित रह सकती थी? मेरा हृदय सुखसे रहित और अनेक प्रकारके दुःखोंसे भरा हुआ होनेपर भी है बड़ा पक्का। मैं इस दुष्ट रावणके हाथसे मारी जानेवाली हूँ, इसलिये आत्मघात करनेसे भी मुझे कोई दोष नहीं लग सकता। कुछ भी हो, मैं इसे अपना हृदय तो दे नहीं सकती। लोकनाथ भगवान् श्रीरामके आनेसे पहले ही यह दुष्ट राक्षसराज अवश्य अपने तीखे बाणोंसे मेरे अङ्गोंको काट डालेगा। मैं बड़ी दुखिया हूँ, मेरी अवधिके ये दो महीने भी जल्दी ही समाप्त हो जायँगे। राजाके कारागारमें बंद और रात्रिके अन्तमें फाँसीकी सजा पानेवाले अपराधीकी जो दशा होती है, वही स्थिति मेरी भी है। हा राम! हा लक्ष्मण! हा सुमित्रे! हा कौसल्ये! हा मेरी माताओ! जिस प्रकार बवंडरमें पड़ी हुई नौका समुद्रमें डूब जाती है, उसी प्रकार मैं अभागिनी आज संकटमें पड़ी हुई हूँ। हा सत्यव्रत, महाबाहु, पूर्णचन्द्रके समान मुखवाले तथा सब जीवोंके हितकारी और प्रिय श्रीरामचन्द्र! आपको पता नहीं है कि मैं राक्षसोंके द्वारा मारी जानेवाली हूँ। मेरी यह अनन्योपासना, क्षमा, भूमिशयन, धर्मसम्बन्धी नियमोंका पालन और पातिव्रत विफल हो गये। राम! मैं तो केवल आपमें ही अनुराग रखती हूँ। मर जानेपर भी चिरकालतक मेरा तो आपमें ही प्रेम रहेगा। परन्तु अबतक मैंने तप और व्रत आदि जो कुछ भी किया है, उसका फल पाये बिना ही मुझे प्राण त्यागने होंगे। मुझ अभागिनीके जीवनको धिक्कार है। मैं विष या शस्त्रके द्वारा शीघ्र-से-शीघ्र अपने जीवनका अन्त कर देती। परन्तु इस राक्षसके घरमें मुझे कोई विष या शस्त्र देनेवाला भी तो नहीं है।'

शोकातुरा सीताने इसी प्रकार बहुत-कुछ विचार करके फिर अपनी चोटीसे फाँसी लगाकर मरनेका निश्चय किया। वे उस अशोक-वृक्षकी शाखा पकड़कर खड़ी हो गयीं। जिस समय वे [ इस प्रकार फाँसी लगानेके लिये तैयार होकर ] राम, लक्ष्मण और अपने कुलके विषयमें विचार कर रही थीं, उन्हें लोकमें प्रसिद्ध अनेकों शुभ शकुन हुए, जो शोककी निवृत्ति करनेवाले और उन्हें ढाँढ़स बँधानेवाले थे। उनकी शुभसूचक बायीं आँख, भुजा और जंघा फड़कने लगीं, जो स्पष्टतया उन्हें इस बातकी सूचना दे रही थीं कि रघुनाथजी बहुत जल्द मिलेंगे। इनसे तथा और भी कई शकुनोंसे उन्हें पहले भी मनोरथ-सिद्धिका परिचय मिल चुका था। अतः उनका चित्त प्रसन्न हो गया, शोक जाता रहा, सन्ताप नष्ट हो गया और हर्षसे हृदय खिल उठा तथा वे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लपक्षमें उदयकालीन चन्द्रमासे सुशोभित रात्रिके समान शोभा पाने लगीं।

परम पराक्रमी हनुमान्‌जीने भी सीताजीका विलाप, त्रिजटाकी स्वप्न-चर्चा और राक्षसियोंकी डाँट-डपट—ये सब प्रसङ्ग ठीक-ठीक सुन लिये। सीताजी ऐसी जान पड़ती थीं, मानो नन्दन-वनमें कोई देवी हों। उन्हें देखकर हनुमान्‌जी तरह-तरहकी चिन्ता करने लगे—'जिन सीताजीको हजारों-लाखों वानर दिशा-विदिशाओंमें ढूँढ़ रहे हैं, आज मैंने उन्हें पा लिया। मैं दूत बनकर गुप्तरूपसे शत्रुकी शक्तिका पता लगा रहा था। मैंने राक्षसोंकी विशेषताओंका, इस पुरीका और राक्षसराज रावणके प्रभावका निरीक्षण किया। श्रीसीताजी असीम प्रभाववाले और सब जीवोंपर दया करनेवाले भगवान् श्रीरामकी भार्या हैं तथा अपने पतिका दर्शन पानेके लिये उत्सुक हैं; अतः मैं उन्हें सान्त्वना दूँगा। ये शोकके कारण अचेत-सी हो रही हैं। यदि मैं इन्हें सान्त्वना दिये बिना ही चला जाऊँगा, तो मेरा जाना दोषयुक्त होगा। मेरे चले जानेपर अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखकर ये प्राणत्याग कर देंगी। परन्तु राक्षसियोंके सामने तो मेरा बात करना ठीक होगा नहीं; ऐसी अवस्थामें मेरे आगे सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि मैं इन्हें कैसे समझाऊँ। इधर इस रात्रिके रहते-रहते ही यदि मैं सीताजीको नहीं समझाता हूँ तो ये निःसन्देह अपने प्राण त्याग देंगी। यदि श्रीरामजीने भी मुझसे पूछा कि 'सीताने मेरे लिये क्या सँदेसा भेजा है?' तो इनसे बात किये बिना मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा? अच्छा तो, राक्षसियोंके रहते ही जब मुझे अवसर मिलेगा, तब धीरे-धीरे मैं इन्हें समझाऊँगा। उस समय यदि मैं द्विजातियोंके समान संस्कृत-भाषामें बोलूँगा, तो सीता मुझे रावण समझकर डर जायँगी, अतः मैं अर्थयुक्त मानवी भाषा ही बोलूँगा। इसी तरह मैं इन्हें समझा सकूँगा। नहीं तो, ये मेरा रूप देखकर और भाषा सुनकर मुझे मनमाना रूप धारण करनेवाला रावण समझेंगी और चिल्लाने लगेंगी। इनके चिल्लानेपर तुरंत ही ये कालरूपिणी राक्षसियाँ तरह-तरहके हथियार लेकर आ धमकेंगी। फिर मेरे विशाल रूपको देखकर राक्षसियाँ भी भयभीत होकर बुरी तरहसे चिल्लाने लगेंगी और राक्षसराज रावणके महलसे उसके नियुक्त किये हुए राक्षसोंको बुला लेंगी। इस हलचलमें वे राक्षस भी उद्विग्न होकर शूल, बाण, तलवार और तरह-तरहके शस्त्रास्त्र लेकर आ जायेंगे। ऐसी अवस्थामें यदि राक्षसोंने मुझे संग्राममें मार दिया या पकड़ लिया तो फिर मुझे श्रीरघुनाथजीके कार्यको पूर्ण करनेके लिये कोई दूसरा सहायक भी दिखायी नहीं देता। बस, सीतासे बातचीत करनेमें मुझे यही दोष जान पड़ता है; और यदि मैं बातचीत नहीं करता हूँ तो सीताका प्राणत्याग भी निश्चित है। देश-कालका विरोध होनेपर दूतकी असावधानीसे बने-बनाये काम बिगड़ जाते हैं; क्योंकि अपनेको बहुत बुद्धिमान् समझनेवाले दूत कार्यको नष्ट कर डालते हैं। फिर किस प्रकार यह काम न बिगड़े, किस प्रकार मुझसे कोई असावधानी न हो, किस प्रकार मेरा समुद्र लाँघना व्यर्थ न हो जाय और किस प्रकार सीताजी मेरी बात सुनकर घबराहटमें न पड़ें—इन सब प्रश्नोंपर विचार करके परम बुद्धिमान् श्रीहनुमान्‌जीने अपना यह कर्त्तव्य निश्चित किया कि मैं इक्ष्वाकु-कुल-भूषण श्रीरामचन्द्रजीके धर्मानुकूल सन्देशको मधुर वाणीमें व्यक्त करते हुए श्रीसीताजीको इस प्रकार सुनाऊँगा, जिससे वे मेरी सब बातोंपर विश्वास कर लें।'

## हनुमान्‌जीका प्रकट होना, सीताका सन्देह और हनुमान्‌का उन्हें विश्वास दिलाते हुए श्रीरामके गुणोंका वर्णन करना

इस प्रकार बहुत-सी बातें सोच-विचारकर महामति हनुमान्‌जीने सीताको सुनाते हुए मधुर वाणीमें इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'राजा दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक पुण्यात्मा राजा हो गये हैं। वे अहिंसा-धर्मके अनुरागी, दयालु, सत्यपराक्रमी और इक्ष्वाकु-वंशकी शोभा बढ़ानेवाले थे। इस भूमण्डलमें चारों ओर उनकी बड़ी ख्याति थी। उनके ज्येष्ठ पुत्रका नाम श्रीराम है। वे पिताके लाड़ले, धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ तथा शस्त्र-विद्याके विशेषज्ञ हैं। अपने सदाचारके, स्वजनोंके, इस जीव-जगत्‌के तथा धर्मके भी रक्षक हैं। वीरवर श्रीरामचन्द्रजी अपने सत्यप्रतिज्ञ बूढ़े पिता महाराज दशरथके वचनकी रक्षाके लिये पत्नी और भाईके साथ वनमें आये थे, वहाँ रहकर उन्होंने अनेकों राक्षसोंका वध किया। जनस्थानका विध्वंस और खर-दूषणका वध सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ और वह मायासे मृग बने हुए मारीचके द्वारा श्रीरामचन्द्र


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीको भुलावा देकर उनकी पत्नी जानकीको हर ले गया। भगवान् श्रीराम परम साध्वी सीतादेवीकी खोज करते हुए मातङ्ग-वनमें आकर सुग्रीव नामक वानरसे मिले और उन्हें अपना मित्र बना लिया। तत्पश्चात् वालीका वध करके उन्होंने वानरोंका राज्य सुग्रीवको दे दिया। वानरराज सुग्रीवकी आज्ञासे जानकीदेवीका पता लगानेके लिये चारों दिशाओंमें हजारों वानर निकले हैं। वे सब-के-सब मनमाना रूप धारण कर सकते हैं। उन्हींमेंसे एक मैं भी हूँ। सम्पातिके कहनेसे बड़े-बड़े नेत्रोंवाली भगवती सीताका दर्शन करनेके लिये सौ योजन चौड़े समुद्रको लांघकर यहाँ आया हूँ। मैंने रघुनाथजीके मुखसे जानकीका जैसा रूप, जैसा रंग और जैसी शोभा सुनी थी, वैसी ही इन्हें पाया है।' इतना कहकर वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी चुप हो गये।

उनकी बातें सुनकर जनकनन्दिनीको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने केशोंसे ढके हुए अपने मुँहको ऊपर उठाकर अशोक-वृक्षकी ओर देखा। कपिके वचन सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सम्पूर्ण वृत्तियोंसे भगवान् श्रीरामका स्मरण करती हुई ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगीं। अन्तमें उदयकालीन सूर्यके समान वर्णवाले वायुपुत्र हनुमान्‌जीपर उनकी दृष्टि पड़ी। उनका शरीर विद्युत्‌के समूहकी भाँति तेजस्वी एवं लाली लिये हुए पीले रंगका दिखायी दे रहा था। वे श्वेत वस्त्र धारण किये थे तथा उनके नेत्र तपाये हुए सुवर्णकी भाँति चमक रहे थे। विनीत भावसे बैठे हुए प्रियवादी वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको देखकर मिथिलेशकुमारी चकित हो गयीं और मन-ही-मन सोचने लगीं—'अहो! वानर-योनिका यह जीव तो बड़ा ही भयंकर है। इसको पकड़ना कठिन है। इसकी ओर तो आँख उठाकर देखनेका भी साहस नहीं होता।' ऐसा विचार कर वे दुःखसे आतुर हो 'हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!' कहती हुई सहसा रो पड़ीं और मन्द स्वरमें करुण विलाप करने लगीं। इतनेमें उन्होंने देखा, वह श्रेष्ठ वानर बड़ी विनयके साथ निकट आ बैठा है। इससे सीताजी और भी चिन्तामें पड़कर सोचने लगीं—'यह कोई स्वप्न तो नहीं है? सम्भव है, मेरे मनकी ही कोई भावना हो; किन्तु जब बुद्धिके द्वारा विचारती हूँ, तर्क-वितर्क करती हूँ, तब यह धारणा स्थिर नहीं रहने पाती। कारण यह है कि मनोरथ या मनकी भावनाका कोई स्थूल रूप नहीं होता; परन्तु इसका रूप तो स्पष्ट दिखायी दे रहा है तथा यह बातचीत भी करता है। मैं वाणीके स्वामी बृहस्पतिको, वज्रधारी इन्द्रको, स्वयम्भू ब्रह्माजीको तथा वाणीके अधिष्ठातृदेव अग्निको भी नमस्कार करती हूँ। इस वनवासी जीवने मेरे सामने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य हो; उसमें कुछ भी अन्यथा न हो।'

वायुपुत्र हनुमान्‌जी बड़े तेजस्वी थे, उन्होंने सीताजीको प्रणाम करके मधुर वाणीमें कहा—'कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाली देवी! मैला पीताम्बर धारण किये आप कौन हैं? आपकी आँखोंसे ये शोकके आँसू क्यों गिर रहे हैं? देवता, असुर, नाग, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किन्नर, रुद्र, मरुद्गण और वसुओंमेंसे आप कौन हैं—किसकी कन्या, अथवा पत्नी हैं? मुझे तो आप कोई देवता-सी जान पड़ती हैं। सुन्दरी! आपका पुत्र, पिता, भाई अथवा पति—कौन इस लोकसे चलकर परलोकवासी हो गया है, जिसके लिये आप शोक करती हैं? रोने, उसाँस भरने तथा पृथ्वीका स्पर्श करनेके कारण मैं आपको देवी नहीं मानता। आप बारंबार किसी राजाका नाम ले रही हैं तथा आपके चिह्न और लक्षण जैसे दिखायी दे रहे हैं, उन सबपर दृष्टिपात करनेसे यही अनुमान होता है कि आप किसी राजाकी महारानी तथा किसी नरेशकी कन्या हैं। [ दुःखके कारण ] आपमें जैसी दीनता आ गयी है, जैसा आपका अलौकिक रूप है तथा जैसा तपस्विनीका-सा वेष दिखायी देता है, इन सबके द्वारा आप निश्चय ही श्रीरामचन्द्रजी-की महारानी जान पड़ती हैं।'

विदेहकुमारी सीता श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चासे बहुत प्रसन्न थीं, अतः वृक्षका सहारा लेकर बैठे हुए हनुमान्‌जीके वचन सुनकर वे उनसे बोलीं—'कपिवर! भूमण्डलके श्रेष्ठ राजाओंमें अग्रगण्य महाराज दशरथकी मैं पुत्रवधू और विदेहराज महात्मा जनककी पुत्री हूँ। मेरा नाम सीता है, मैं परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामकी धर्मपत्नी हूँ। राजा दशरथ बड़े सत्यवादी थे। उन्होंने कैकेयी देवीको दो वरदान देनेके लिये कहा था। कैकेयीने वरदानके रूपमें श्रीरामका वनवास माँगा। श्रीरामने पिताके उस वचनका पालन राज्याभिषेकसे भी बढ़कर प्रिय समझा और उसे पूर्णतया स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने बहुमूल्य उत्तरीय-वस्त्र उतार दिये और राज्यका चिन्तन छोड़कर मुझे अपनी माताके हवाले कर दिया; परन्तु मुझे उनके बिना स्वर्गमें रहना भी अच्छा नहीं लगता। अतः मैं उनसे पहले ही वनमें जानेको तैयार हो गयी तथा सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी अपने बड़े भाईका साथ देनेके लिये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पहलेसे ही कुश तथा वल्कल धारण करके तैयार खड़े थे। इस प्रकार हम तीनोंने ही महाराजकी आज्ञाको आदर देकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करते हुए वनमें प्रवेश किया। अमिततेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी [ मेरे साथ ] दण्डकारण्यमें निवास करते थे। वहींसे दुरात्मा रावण मुझे हर लाया। आजसे दो महीनेतकके लिये उसने मेरे जीवनकी अवधि निश्चित कर दी है, अतः उतने समयके बाद मुझे प्राणत्याग करना पड़ेगा।'

दुःख-पीड़िता सीताके उपर्युक्त वचन सुनकर वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—'देवि! मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ और आपके लिये उनका सन्देश लेकर आया हूँ। विदेहनन्दिनी! भगवान् श्रीराम कुशलसे हैं और उन्होंने आपसे अपनी कुशल कहनेकी आज्ञा दी है। जिन्हें ब्रह्मास्त्र और वेदोंका भी पूर्ण ज्ञान है, वे दशरथनन्दन श्रीराम आपकी भी कुशल जानना चाहते हैं। महातेजस्वी लक्ष्मणने भी शोकसन्तप्त हो आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम कहलाया है।' नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मणके कुशल-समाचार सुनकर भगवती सीताके सम्पूर्ण शरीरमें हर्षके मारे रोमाञ्च हो आया और वे हनुमान्‌जीसे बोलीं—'यदि मनुष्य जीवित रहे, तो उसे सौ वर्ष बाद भी आनन्द प्राप्त होता है—यह लौकिक कहावत मुझे बिल्कुल सत्य जान पड़ती है।' सीता और हनुमान्‌के इस मिलाप ( परस्पर दर्शन ) से दोनोंको ही अद्भुत प्रसन्नता हुई। वे एक दूसरेके साथ हृदय खोलकर वार्तालाप करने लगे। शोकसंतप्त सीताकी बातें सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जी उनके कुछ निकट चले गये। वे ज्यों-ज्यों सीताके समीप जाते, त्यों-ही-त्यों सीताके हृदयमें यह सन्देह होता जाता था कि कहीं यह रावण न हो। अब वे शोकसे विकल होकर अशोकवृक्षकी शाखा छोड़ वहीं जमीनपर बैठ गयीं। महाबाहु हनुमान्‌जीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया; किन्तु वे भयभीत होनेके कारण फिर उनकी ओर देख न सकीं और लंबी साँस लेकर मधुर स्वरमें बोलीं—'यदि तुम मायावी रावण हो और मायामय शरीरमें प्रवेश करके फिर मुझे कष्ट दे रहे हो, तो यह तुम्हारे लिये अच्छी बात नहीं है। अथवा जिस बातकी मेरे मनमें शङ्का हो रही है, वह न भी हो; क्योंकि तुम्हें देखनेसे मेरे मनमें प्रसन्नता हुई है। वानरश्रेष्ठ! सचमुच ही यदि तुम भगवान् श्रीरामके दूत हो, तो तुम्हारा कल्याण हो! मैं तुमसे उनकी बातें पूछती हूँ, क्योंकि श्रीरामकी चर्चा मुझे बहुत ही प्रिय है। वानर! मेरे प्रियतम भगवान् श्रीरामके गुणोंका वर्णन करो।'

तब वायुनन्दन हनुमान्‌जी कानोंको सुख पहुँचानेवाले अनुकूल वचनोंद्वारा सीताको प्रसन्न करते हुए बोले—'भगवान् श्रीराम सूर्यके समान तेजस्वी, चन्द्रमाकी भाँति लोक-कमनीय तथा कुबेरकी भाँति सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं। महायशस्वी भगवान् विष्णुके समान पराक्रमी और सत्यवादी तथा बृहस्पतिजीकी भाँति मधुर वचन बोलनेवाले हैं। रूपवान् और सुन्दर तो वे इतने हैं, मानो मूर्तिमान् कामदेव हों। वे संसारके एक श्रेष्ठ महारथी हैं। सम्पूर्ण विश्व उन महात्माकी भुजाओंके आश्रयमें—उन्हींकी छत्र-छायामें विश्राम करता है। मैं उन्हींका भेजा हुआ दूत होकर आपके पास आया हूँ। सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ भगवान् श्रीराम प्रतिदिन आपका स्मरण करते हैं। विदेहनन्दिनि! राक्षसियोंके चंगुलमें फँसकर भी आप अभीतक जीवित हैं, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अब शीघ्र ही आपको महारथी श्रीराम और लक्ष्मणके दर्शन होंगे। साथ ही करोड़ों वानरोंसे घिरे हुए अमित तेजस्वी सुग्रीवको भी आप देखेंगी। मैं सुग्रीवका मन्त्री हूँ, मेरा नाम हनुमान् है। महासागरको लाँघकर मैंने इस लङ्कापुरीमें प्रवेश किया है। अपने पराक्रमका भरोसा करके आपका दर्शन करनेके लिये मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। देवि! जैसा आप मुझे समझ रही हैं, मैं वह नहीं हूँ। यह विपरीत आशङ्का छोड़ दीजिये और मेरी बातपर विश्वास करिये।'

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के मुखसे श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चा सुनकर विदेहकुमारी सीता शान्तिपूर्वक मधुर वाणीमें बोलीं—'कपिवर! तुम्हारा श्रीरामचन्द्रजीके साथ सम्बन्ध कहाँ हुआ? तुम लक्ष्मणको कैसे जानते हो? मनुष्यों और वानरोंका यह मेल किस प्रकार हुआ? श्रीराम और लक्ष्मणके जो चिह्न हैं, उनका फिरसे वर्णन करो, जिससे मेरे मनमें किसी प्रकारकी शङ्काके लिये अवकाश न रह जाय। बताओ, भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणकी आकृति कैसी है? उनका स्वरूप किस तरहका है? उनकी जाँघें और भुजाएँ कैसी हैं?' सीताके इस प्रकार पूछनेपर पवनकुमार हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका यथावत् वर्णन करना आरम्भ किया—'वैदेहि! बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि आप अपने पति श्रीराम और देवर लक्ष्मणके शरीरके विषयमें मुझसे प्रश्न करती हैं। मैंने उन दोनोंके जिन-जिन चिह्नोंका लक्ष्य किया है, उन्हें बताता हूँ; सुनिये। श्रीरामचन्द्रजीका मुख पूनोंके चन्द्रमाके समान मनोहर है, उनके नेत्र पद्मपत्रके समान विशाल हैं तथा उनमें रूप है, उदारता है। वे तेजमें सूर्य, क्षमामें पृथ्वी, बुद्धिमें बृहस्पति और यशमें इन्द्रके समान हैं। उनके द्वारा सम्पूर्ण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जीवोंकी और स्वजनोंकी भी रक्षा होती है। वे अपने सदाचार और धर्मके भी रक्षक हैं। संसारमें जो चारों वर्णोंकी व्यवस्था देखी जाती है, उसकी रक्षा करनेवाले भी वे ही हैं। वे संसारमें धर्मकी मर्यादा बाँधकर सब लोगोंसे उसका पालन कराते हैं। सर्वत्र अत्यन्त भक्तिभावसे उनकी पूजा होती है। वे परम प्रकाशस्वरूप हैं। ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते, साधुओं-का उपकार मानते और [ आचरणद्वारा ] सत्कर्मोंके प्रचारका ढंग जानते हैं। वे राजनीतिमें पूर्ण शिक्षित, ब्राह्मणोंके उपासक, ज्ञानी, शीलवान् और विनम्र हैं। यजुर्वेदकी भी उन्हें अच्छी शिक्षा मिली है। वेदवेत्ता विद्वानोंमें उनका बड़ा सम्मान है। वे धनुर्वेद, चारों वेद और [ व्याकरण आदि छहों ] वेदाङ्गोंके भी परिनिष्ठित विद्वान् हैं। उनके कंधे मोटे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी, गला शङ्खके समान और मुख सुन्दर है। गलेकी हँसली मांससे ढकी हुई है तथा नेत्रोंमें कुछ-कुछ लालिमा है। वे लोगोंमें 'श्रीराम' के नामसे प्रसिद्ध हैं। उनका स्वर दुन्दुभिके समान गम्भीर और शरीरका रंग सुन्दर एवं चिकना है। उनका प्रताप बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उनके सभी अङ्ग सुडौल और बराबर हैं, वे श्याम वर्णके हैं। उनके तीन अङ्ग ( जाँघ, कलाई और मुट्ठी ) मजबूत हैं, तीन ( भौंहें और दोनों भुजाएँ ) लंबे हैं, तीन ( बालोंके अग्रभाग और दोनों घुटने ) बराबर हैं, तीन ( वक्षःस्थल, नाभिके किनारेका भाग और उदर ) ऊँचे हैं, तीन ( नेत्रोंके कोने, नख और हाथ-पैरके तलवे ) लाल हैं, तीन ( दोनों पैरोंकी रेखाएँ और सिरके बाल ) चिकने हैं तथा तीन ( स्वर, चाल और नाभि ) गम्भीर हैं। उदरमें त्रिवलीका चिह्न है, [ तलवों-के मध्यभाग, पैरकी रेखाएँ और स्तनोंके अग्रभाग—ये ] तीन धँसे हुए हैं। चार अङ्ग ( गला, पीठ तथा दोनों फिल्लियाँ ) छोटे हैं, मस्तकमें तीन भँवर हैं, [ अँगूठे तथा ललाटमें ] चार-चार रेखाएँ हैं, वे चार हाथ ऊँचे हैं। उनके [ कपोल, भुजा, जाँघ और घुटने—ये ] चार अङ्ग बराबर हैं। शरीरमें जो दो-दोकी संख्यामें चौदह अ[1] होते हैं, वे भी उनके परस्पर सम हैं। उनकी [ चारों कोनोंकी ] चारों दाढ़ें ( ऊपर और नीचेकी पंक्तिके बगलवाले चार-चार दाँत ) शास्त्रीय लक्षणोंसे युक्त हैं। वे [ सिंह, बाघ, हाथी और साँड़के समान ] चार प्रकारकी चाल चलते हैं। उनके ओठ, ठोढ़ी और नासिका—सभी प्रशस्त हैं। [ केश, नेत्र, दाँत, त्वचा और पैरके तलुए—इन ] पाँचोंमें स्निग्धता भरी है। [ दोनों भुजाएँ, दोनों जाँघें, दोनों फिल्लियाँ, हाथ और पैरकी अंगुलियाँ—ये ] आठ उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। उनके [ चेहरा, नेत्र, मुँह, जीभ, ओठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर—इन ] दस अङ्गोंकी कमलके साथ समानता है। [ छाती, मस्तक, ललाट, गला, भुजाएँ, कंधे, नाभि, चरण, पीठ और कान—ये ] दस अङ्ग चौड़े हैं। वे श्री, यश और प्रतापसे व्याप्त हैं। उनकी माता और पिता—दोनोंके कुल अत्यन्त शुद्ध हैं। [ पार्श्वभाग, उदर, वक्षःस्थल, नासिका, कंधे और ललाट—ये ] छः अङ्ग ऊँचे हैं। श्रीरामचन्द्रजी सत्य-धर्ममें तत्पर, श्रीसम्पन्न, संग्रह और अनुग्रहमें परायण, देश और कालके विभागको समझनेवाले तथा सब लोगोंसे प्रिय वचन बोलनेवाले हैं। उनके सौतेले भाई सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी बड़े तेजस्वी हैं। अनुरागमें, रूपमें और गुणोंमें भी वे श्रीरामचन्द्रजीके ही समान हैं। परन्तु लक्ष्मणके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान गौर है और महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजीका विग्रह श्याम-सुन्दर है [ इतना ही उनमें अन्तर है ]। वे दोनों नरश्रेष्ठ आपको देखनेके लिये उत्कण्ठित होकर सारी पृथ्वीपर आपकी ही खोज करते हुए हमलोगोंसे मिले थे। शरीरपर वल्कल-वस्त्र तथा हाथमें धनुष धारण किये उन दोनों भाइयोंको आते देख वानरश्रेष्ठ सुग्रीव भय-से घबरा उठे और उन्होंने मुझे शीघ्र ही उन दोनोंके पास भेजा। मुझसे यथार्थ बातें जानकर उन दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर मैं उन्हें अपनी पीठपर चढ़ाकर सुग्रीवके पास ले गया और सुग्रीवको उनका यथार्थ परिचय दिया। परस्पर वार्तालाप करनेसे उन दोनोंमें बड़ा प्रेम हो गया। तत्पश्चात् परम यशस्वी महाराज श्रीराम और वानरराज सुग्रीवने एक दूसरेको अपने ऊपर बीती हुई पहलेकी घटनाएँ सुनायीं और दोनोंने दोनोंको आश्वासन दिया। तत्पश्चात् वानर-यूथपतियोंने आपके शरीरपर शोभा पानेवाले आभूषणोंको ले आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया। ये वे ही आभूषण थे, जिन्हें आप-ने उस समय पृथ्वीपर गिराया था जब कि राक्षस आपको हरकर लिये जा रहा था। उस समय वे गहने झन-झनकी आवाजके साथ जमीनपर गिरे थे और बिखर गये थे। मैं ही उन सबको बटोरकर ले आया था और उस दिन सुग्रीवने उन्हें श्रीरामचन्द्रजीको दिया था। उन दर्शनीय आभूषणोंको छातीसे लगाकर देवतुल्य आभावाले भगवान् श्रीरामने बहुत विलाप किया। उन्होंने बारंबार उन बहुमूल्य गहनोंको देखा और दिखाया; फिर लक्ष्मणसहित श्रीरामने वे सब सुग्रीवको दे दिये। आर्ये! आपको

१. भौंह, नथुने, नेत्र, कान, ओठ, कोहनी, कलाई, जाँघ, घुटने, कमर, हाथ, पैर, कंधे और कपोल।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

न देख पानेके कारण श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा दुःख हो रहा है। उन्हें नींदतक नहीं आती, शोक और चिन्ता जलाती रहती है। जनकनन्दिनी! पुरुषसिंह भगवान् श्रीराम रावणको उसके मित्र और बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर शीघ्र ही आपसे मिलेंगे। श्रीराम और सुग्रीव जब मित्रभावसे मिले, तब दोनोंने एक दूसरेकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की। श्रीरामने वालीको मारनेका और सुग्रीवने आपकी खोज करानेका वचन दिया। इसके बाद वानरराज सुग्रीव उन दोनों वीर राजकुमारोंके साथ किष्किन्धामें गये। वहाँ युद्धमें वालीका शीघ्रतापूर्वक वध करके श्रीरामने सुग्रीवको समस्त भालुओं और वानरोंका राजा बना दिया।

"देवि! श्रीराम और सुग्रीवमें इस प्रकार मित्रता हुई है। अपना राज्य पानेके अनन्तर सुग्रीवने बड़े-बड़े बलवान् वानरोंको बुलाया और उन्हें आपकी खोजके लिये दसों दिशाओंमें भेजा। उनकी आज्ञा पाकर हम तथा और भी बहुत-से वानर आपका पता लगानेके लिये पृथ्वीपर विचर रहे हैं। वालीके पुत्र महाबली अङ्गद एक तिहाई सेना साथ लेकर आपकी खोजके लिये निकले थे [उन्हींके दलमें मैं भी था]। पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्यमें खो जानेके कारण हमने बड़ा कष्ट उठाया और वहीं हमारे बहुत दिन बीत गये। अब हमें कार्यसिद्धिकी कोई आशा नहीं रह गयी। इधर निश्चित अवधि-से भी अधिक दिन बिता देनेके कारण वानरराज सुग्रीवका भी भय था। इसलिये हम सब लोग प्राण-त्याग देनेको तैयार हो गये और मरणान्त उपवासका निश्चय करके पर्वतके शिखरपर बैठ गये। उस समय आपका पता न लगने, वालीके मारे जाने, हमलोगोंके उपवास करने तथा जटायुके मरनेकी बातपर विचार करके कुमार अङ्गद शोकके समुद्रमें डूब गये और बहुत विलाप करने लगे। स्वामीके आज्ञापालनसे निराश होकर हम प्राण-त्याग करना ही चाहते थे; इतनेमें [ दैववश ] हमारा कार्य सिद्ध करनेके लिये गृध्रराजके बड़े भाई सम्पाति, जो बड़े पराक्रमी पक्षी हैं, वहाँ आ पहुँचे। वे हमारे मुँहसे अपने भाईके वधका समाचार सुनकर क्रोधित हो उठे और बोले—'कपिवरो! मेरे छोटे भाई जटायुका किसने वध किया है? वह कहाँ मारा गया है? यह सब वृत्तान्त मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ।' तब अङ्गदने उन्हें भयंकर राक्षसके द्वारा जटायुके वधका प्रसङ्ग कह सुनाया। उनकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर अरुणपुत्र सम्पातिको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने रावणके अन्तःपुरमें आपका पता बताया। तब सम्पातिके ही भेजनेपर अङ्गद आदि सभी वानर आपके दर्शनकी आशासे उत्साहित होकर समुद्रके तटपर आये। परन्तु समुद्रको देखकर वे पुनः विषादग्रस्त हो गये। यह देख मैंने उनके महान् भयको दूर किया और सौ योजन विस्तृत समुद्र लाँघकर राक्षसोंसे भरी हुई लङ्कामें रातके समय प्रवेश किया। यहाँ आनेपर मैंने रावणको भी देखा और शोकसे पीड़ित आपका भी दर्शन किया। देवि! यह सारा वृत्तान्त, जो कुछ जैसा हुआ है, आपकी सेवामें निवेदन कर दिया। मैं दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामका दूत हूँ, उन्हींकी कार्यसिद्धिके लिये मैंने यह सारा उद्योग किया है और आपके दर्शन करनेके ही उद्देश्यसे यहाँ आया हूँ। आप मुझे सुग्रीवका मन्त्री और वायुका पुत्र समझें। सबसे पहले आपके दर्शन करनेका यश मुझे ही मिलेगा, यह मेरे लिये सौभाग्यकी बात है। महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी अब शीघ्र ही आपसे मिलेंगे और राक्षसराज रावणका उसके पुत्र तथा बान्धवोंसहित नाश करके तुरंत आपको यहाँसे ले चलेंगे—यह बिल्कुल निश्चित बात है। आपको विश्वास दिलानेके लिये ही मैंने आपके स्वामीके गुणोंका वर्णन किया है।"

इस प्रकार विश्वसनीय कारणों और श्रीराम तथा लक्ष्मण-के शारीरिक चिह्नोंका वर्णन करके हनुमान्‌जीने शोकसे दुर्बल हुई सीताको अपना विश्वास दिलाया। अब उन्होंने हनुमान्‌-जीको श्रीरामका दूत समझा। इससे उन्हें अपार हर्ष हुआ और उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे। तदनन्तर हनुमान्‌ने फिरसे कहा—'मिथिलेशकुमारी! इस प्रकार जो कुछ आपने पूछा, वह सब मैंने आपको बता दिया; अब आप धैर्य धारण करें।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## हनुमान्-सीता-संवाद, हनुमान्‌जीका सीतासे अपने साथ चलनेका अनुरोध और सीताका अस्वीकार करना

इसके बाद महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्‌जी पुनः बोले—'देवि ! यह राम-नामसे अङ्कित मुँदरी लेकर देखिये ।

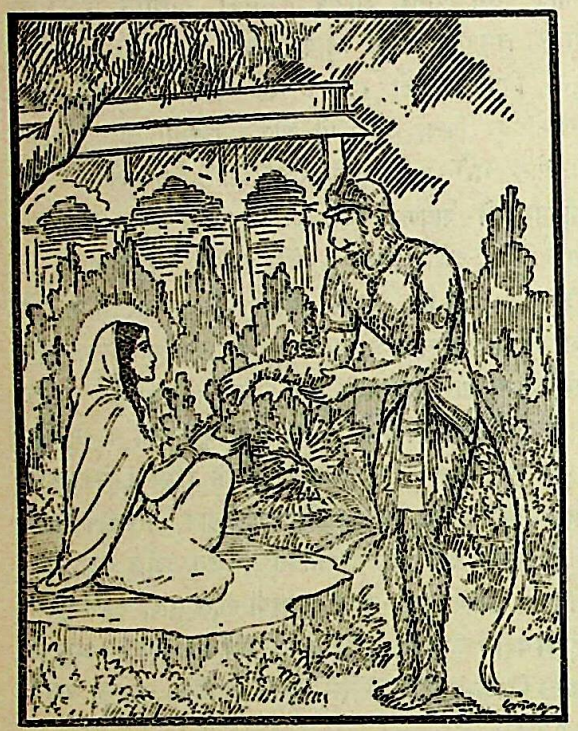

आपको विश्वास दिलानेके लिये ही मैं इसे लेता आया हूँ । महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं ही यह अँगूठी मेरे हाथमें दी थी ।' स्वामीके हाथका आभूषण लेकर सीता उसे देखने लगीं । उस समय उन्हें इतनी खुशी हुई, मानो स्वयं भगवान् श्रीराम ही मिल गये हों । उनका मनोहर मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और वे महाकपि हनुमान्‌जीका आदर करके उनकी प्रशंसा करने लगीं—'वानरश्रेष्ठ ! तुम बड़े पराक्रमी, शक्तिमान् और बुद्धिमान् हो; क्योंकि तुमने अकेले ही इस राक्षसपुरीमें पैर रखा है । तुम्हारा पौरुष प्रशंसाके योग्य है, तुमने मगर आदि जन्तुओंसे भरे हुए सौ योजन विस्तारवाले महासागरको लाँघते समय गायकी खुरीके समान समझा । मैं तुम्हें कोई साधारण वानर नहीं समझती; क्योंकि तुम्हारे मनमें रावण-जैसे राक्षससे भी न भय है, न घबराहट । सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्मात्मा भगवान् श्रीराम और महातेजस्वी लक्ष्मण कुशलसे हैं, यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है । वे दोनों भाई देवताओंको भी दण्ड देनेकी शक्ति रखते हैं । [ तो भी जो वे अबतक चुप बैठे हैं, इसमें उनका कोई दोष नहीं है । ] मेरे ही दुःखोंका अभी अन्त नहीं आया है । अच्छा, अब यह बताओ—पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके मनमें तो कोई व्यथा नहीं है ? वे सन्तप्त तो नहीं होते ? उन्हें आगे जो कुछ करना है, उसे वे करते हैं या नहीं ? क्या रघुनाथजी मुझे इस सङ्कटसे छुटकारा दिलायेंगे ? क्या उन्हें माता कौसल्या, सुमित्रा तथा भरतका कुशल-समाचार बराबर मिलता रहता है ? क्या अपने भाईपर अनुराग रखनेवाले भरत मेरे उद्धारके लिये मन्त्रियोंद्वारा सुरक्षित भीषण अक्षौहिणी सेना भेजेंगे ? क्या वानरराज सुग्रीव दाँत और नखोंसे प्रहार करनेवाले वानरोंको साथ लेकर मुझे छुड़ानेके लिये यहाँतक आयेंगे ? क्या सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले शूरवीर लक्ष्मण जो अनेक अस्त्रोंके ज्ञाता हैं, अपने बाणोंकी वर्षासे राक्षसोंका संहार करेंगे ? क्या मैं रावणको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित थोड़े ही दिनोंमें रघुनाथजीके द्वारा भयङ्कर अस्त्र-शस्त्रोंसे मारा गया देखूँगी ? धर्म-पालनके उद्देश्यसे स्वराज्यका त्याग करते और मुझे पैदल ही वनमें लाते समय जिन्हें तनिक भी शोक और भय नहीं हुआ, वे हृदयमें धैर्य तो धारण किये हुए हैं ? दूत ! मैं तभीतक जीवित रहना चाहती हूँ, जबतक यहाँ आनेके सम्बन्धमें अपने प्रियतमकी प्रवृत्ति सुन रही हूँ ।' भगवती सीता वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के प्रति इस प्रकार महान् अर्थसे युक्त मधुर वचन कहकर श्रीरामचन्द्रजीसे सम्बन्ध रखनेवाली उनकी मनोहर वाणी सुननेके लिये चुप हो गयीं ।

सीताकी बातें सुनकर भयंकर पराक्रम दिखलानेवाले हनुमान्‌जी मस्तक झुका, हाथ जोड़कर बोले—'देवि ! कमलनयन भगवान् श्रीरामको आपका लङ्कामें रहना मालूम ही नहीं है; इसीलिये वे आपको यहाँसे शीघ्र नहीं ले जाते । [ जब मैं यहाँसे लौटकर जाऊँगा, उस समय ] मेरी बात सुनते ही रघुनाथजी वानर और भालुओंकी विशाल सेना लेकर तुरंत वहाँसे चल देंगे तथा अगाध महासागरको अपने बाणोंसे बाँधकर लङ्काको राक्षसोंसे सूनी कर देंगे । उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गमें जो लोग बाधा डालनेको उपस्थित होंगे, उनका भी वे वध कर डालेंगे। उनका चित्त निरन्तर आपमें ही लगा रहता है; अतः उन्हें अपने शरीरपर चढ़े हुए डाँस, मच्छर और कीड़े-मकोड़ोंको हटानेकी भी सुध नहीं रहती। वे सदा आपका ही ध्यान करते और आपके ही शोकमें डूबे रहते हैं। आपको छोड़कर और कोई बात वे सोचते ही नहीं हैं। नर-श्रेष्ठ श्रीरामको [ आपकी चिन्ताके कारण ] कभी नींद नहीं आती। यदि कभी आँख लगी भी, तो 'सीता-सीता' कहते वे तुरंत जाग उठते हैं। जब कभी फल-फूल अथवा स्त्रियोंके मनको लुभानेवाली और कोई वस्तु देखते हैं तब लंबी साँस लेकर बारंबार 'हा प्रिये ! हा प्रिये !' कहते हुए आपको पुकारने लगते हैं। देवि ! राजकुमार महात्मा श्रीराम आपके लिये सदा दुखी रहते हैं। आपका ही नाम रटते हैं और उत्तम व्रतका पालन करते हुए आपकी प्राप्तिके ही प्रयत्नमें लगे हैं।' श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चासे सीताका अपना शोक तो दूर हो गया; किन्तु श्रीरामके शोककी बात सुनकर वे पुनः उन्हींके समान शोकमें निमग्न हो गयीं।

हनुमान्‌जीके धर्म और अर्थसे युक्त वचन सुनकर चन्द्रमुखी सीता कहने लगीं—'वानरश्रेष्ठ ! बताओ, राक्षसोंसहित रावणका वध और लङ्काका विध्वंस करके मेरे पतिदेव मुझसे कब मिलेंगे ? उनसे जाकर कहना वे शीघ्रता करें। यह वर्ष जबतक पूरा नहीं हो जाता, तभीतक मेरा जीवन शेष है। यह दसवाँ महीना चल रहा है, वर्ष पूरा होनेमें अब दो ही मास बाकी हैं। निर्दयी रावणने यही मेरे जीवनकी अवधि निश्चित की है। उसके भाई विभीषणने मुझे लौटा देनेके लिये उससे बहुत अनुनय-विनय की है; परन्तु वह उनकी बात नहीं मानता। मेरा लौटाना रावणको अच्छा नहीं लगता, क्योंकि वह कालके अधीन हो रहा है। मौत उसे खोजती फिरती है। विभीषणकी ज्येष्ठ पुत्रीका नाम कला है, वह अपनी माताके भेजनेसे स्वयं मेरे पास आयी थी। उसीके मुँहसे मुझे ये बातें मालूम हुई हैं। अविन्ध्य नामका एक राक्षस है, जो बड़ा ही बुद्धिमान्, विद्वान्, धीर, सुशील, वृद्ध तथा रावणका सम्मानपात्र है। उसने भी रावणको भगवान् श्रीरामके द्वारा राक्षसोंका विनाश होनेकी बात कहकर मुझे छोड़ देनेके लिये प्रेरित किया है, किन्तु वह दुष्टात्मा उसके हितकारी वचनको भी नहीं सुनता। कपिवर ! मुझे तो ऐसी आशा हो रही है कि मेरे पति मुझसे शीघ्र ही मिलेंगे; क्योंकि मेरी अन्तरात्मा शुद्ध है तथा रघुनाथजीमें उत्साह, पुरुषार्थ, बल, दयालुता, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव आदि बहुत-से गुण हैं। जिन्होंने जनस्थानमें चौदह हजार राक्षसोंको अपने भाईकी सहायता लिये बिना ही नष्ट कर डाला, उनसे कौन शत्रु भयभीत न होगा। श्रीरामचन्द्रजी पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, वे सङ्कटोंसे विचलित नहीं हो सकते। मैं उनके प्रभावको अच्छी तरह जानती हूँ, जैसे शची इन्द्रके प्रभावको जानती हैं। जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे जलको सोख लेते हैं, उसी प्रकार वे अपने बाणोंसे शत्रुओंके बलको सोख लेंगे।'

इतना कहते-कहते सीताके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। वे श्रीरामचन्द्रजीके लिये शोकसे पीडित हो रही थीं। उनकी बात सुनकर हनुमान्‌जीने कहा—'देवि ! [ आप धैर्य धारण करें। ] मेरा वचन सुनते ही रघुनाथजी वानर और भालुओंकी विशाल सेना लेकर तुरंत यहाँके लिये प्रस्थान करेंगे। अथवा मैं आज ही आपको राक्षसके दुःखसे मुक्त कर दूँगा, आप मेरी पीठपर बैठ जाइये। मैं आपको पीठपर लिये ही समुद्रको लाँघ जाऊँगा। मुझमें रावणसहित समूची लङ्काको भी उठा ले जानेकी शक्ति है। रघुनाथजी प्रस्रवण-गिरिपर रहते हैं, मैं आज ही आपको उनके पास पहुँचा दूँगा। दैत्यवधके लिये प्रयत्न करनेवाले भगवान् विष्णुकी भाँति राक्षसोंका संहार करनेके उद्योगमें लगे हुए लक्ष्मणसहित श्रीरामको आप आज ही देखेंगी। मेरी पीठपर सवार होकर श्रीरामचन्द्रजीसे बहुत शीघ्र मिल लीजिये। मेरे साथ आकाश-मार्गसे ही इस महासागरको पार कीजिये। मैं आपको लेकर जब यहाँसे चलूँगा, उस समय समूचे लङ्कानिवासी मिलकर भी मेरा पीछा नहीं कर सकेंगे। विदेहनन्दिनि ! जिस प्रकार मैं यहाँ आया हूँ, उसी तरह आपको लेकर आकाश-मार्गसे चला जाऊँगा; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। आप मेरा पराक्रम देखिये।'

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के ये अद्भुत वचन सुनकर मिथिलेश-कुमारीके सारे शरीरमें हर्ष और विस्मयके कारण रोमाञ्च हो आया। वे कहने लगीं—'हनुमान् ! तुम्हारा शरीर तो बहुत छोटा है, तुम मुझे मेरे स्वामी महाराज श्रीरामके पास ले जानेकी इच्छा कैसे करते हो ?' यह सुनकर वायुपुत्र हनुमान्‌ने सोचा—'विदेहकुमारी सीता मेरे बल और प्रभावको नहीं जानतीं; इसलिये आज मेरे उस रूपको, जिसे मैं इच्छानुसार धारण कर लेता हूँ, ये देख लें।' ऐसा विचार करके वे उस वृक्षसे कूद पड़े और सीताजीको विश्वास दिलानेके लिये बढ़ने लगे। बात-की-बातमें उनका शरीर मेरु-पर्वतके समान ऊँचा हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Foundation Chennai and eGangotri

गया, वे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी प्रतीत होने लगे। वज्रके समान नख और दाढ़ें, ताँबेके समान लाल मुख तथा पर्वताकार भयंकर स्वरूप धारण किये वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी सीताके सामने खड़े हो गये और बोले—'विदेहनन्दिनि! मुझमें पर्वत, वन, अट्टालिका, चहारदीवारी और नगरद्वार-सहित इस लङ्कापुरीको रावणके साथ ही उठा ले जानेकी शक्ति है; अतः आप मेरे साथ चलनेका निश्चय कर लीजिये। आपकी आशङ्का व्यर्थ है। [ शीघ्र चलकर ] लक्ष्मणसहित श्रीरामका शोक दूर कीजिये।' वायुके औरस पुत्र हनुमान्‌जीको पर्वतके समान विशाल शरीर धारण किये देख कमल-पत्र-जैसे बड़े-बड़े नेत्रोंवाली जनककिशोरीने कहा—'महाकपे! मैं तुम्हारी शक्ति और पराक्रमको जानती हूँ। वायुके समान तुम्हारी गति और अग्निके समान तुम्हारा अद्भुत तेज है। यूथपते! कोई साधारण वानर अगाध समुद्रके इस पार कैसे आ सकता है? मैं जानती हूँ तुम समुद्र पार करने और मुझे ले जानेमें भी समर्थ हो। तथापि मुझे अपने कार्यकी सिद्धिके विषयमें स्वयं भी भलीभाँति विचार कर लेना चाहिये। कपिश्रेष्ठ! तुम्हारा वेग वायुके वेगके समान है। ऐसे वेगसे चलोगे, तो मैं मूर्च्छित हो जाऊँगी; अतः तुम्हारे साथ मेरा जाना उचित नहीं है। समुद्रके ऊपर-ऊपर आकाश-मार्गसे जाते समय तुम्हारे अधिक वेगके कारण मैं पीठपरसे गिर भी सकती हूँ। [ तुम्हारे साथ न चल सकनेका एक प्रधान कारण और भी है—] पति-भक्तिकी ओर दृष्टि रखकर मैं भगवान् श्रीरामके सिवा दूसरे किसी पुरुषके शरीरका स्वेच्छासे स्पर्श करना नहीं चाहती। रावणके शरीरसे जो मेरा स्पर्श हो गया है, वह तो उसके बलात्कारके कारण हुआ है। उस समय मैं असमर्थ, अनाथ और बेबस थी, क्या करती?* यदि रघुनाथजी राक्षसोंसहित रावणको मारकर मुझे यहाँसे ले चलें, तो यह उनके योग्य पराक्रम होगा। मैंने युद्धमें शत्रुओंका मर्दन करनेवाले महात्मा श्रीरामके पराक्रम अनेकों बार देखे और सुने हैं। देवता, गन्धर्व, सर्प और राक्षस—कोई भी संग्राममें उनकी समानता नहीं कर सकते। अपने बाणके तेजसे प्रलयकालीन सूर्यके समान उद्दीप्त होनेवाले श्रीराम और लक्ष्मणका कौन सामना कर सकता है? इसलिये वानरवीर! तुम प्रयत्न करके यूथपति सुग्रीव और लक्ष्मणसहित मेरे प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीको शीघ्र यहाँ बुला लाओ। मैं अपने स्वामीके लिये बहुत दिनोंसे दुःख उठा रही हूँ। तुम मुझे हर्ष प्रदान करो।'

## सीताका हनुमान्‌जीको पहचानके रूपमें एक समूचा प्रसङ्ग सुनाना और चूड़ामणि देकर भगवान्‌को शीघ्र बुला लानेके लिये अनुरोध करना

सीताके इस वचनसे कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—'देवि! आपका कहना बिल्कुल ठीक है। यह बात स्त्री-स्वभावके, विनयके तथा पतिव्रता नारीके अनुरूप है। इसमें सन्देह नहीं कि आप अबला होनेके कारण मेरी पीठपर बैठकर सौ योजन चौड़े समुद्रके पार नहीं जा सकतीं। तथा दूसरा कारण बतलाते हुए आपने जो यह कहा है कि मेरे लिये श्रीरामचन्द्रजीके सिवा और किसी पुरुषका स्वेच्छापूर्वक स्पर्श करना उचित नहीं है, यह आपके ही योग्य है। महात्मा श्रीरामकी धर्मपत्नीके मुँहसे ही ऐसी बात निकल सकती है। आपको छोड़कर दूसरी कौन स्त्री ऐसा वचन कह सकती है। मेरे सामने आपने जो-जो पवित्र चेष्टाएँ कीं और जैसी-जैसी उत्तम बातें कही हैं, वे सब मेरे मुँहसे श्रीरामचन्द्रजी सुनेंगे। मैं आज ही रघुनाथजीके साथ आपको मिला देना चाहता था; किन्तु यदि आपके मनमें मेरे साथ चलनेका उत्साह नहीं है तो आप अपनी कोई पहचान ही दे दीजिये, जिससे श्रीरामचन्द्रजी इस बातको समझ लें कि मैंने आपका दर्शन किया है।'

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर सीता अश्रु-गद्गद कण्ठसे लड़खड़ाती हुई आवाजमें बोलीं—'वानरश्रेष्ठ! मैं तुम्हें एक उत्तम पहचान बताती हूँ। मेरे प्रियतमसे इस प्रकार कहना—'नाथ! चित्रकूट-पर्वतके उत्तर-पूर्ववाले भागपर, जो मन्दाकिनी नदीके समीप है तथा जहाँ फल-मूल

* भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर। नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम॥
यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात्। अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती॥
( ३७। ६२-६३ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## पर्वताकार मारुति

मेरुमन्दरसंकाशो बभौ दीप्तानलप्रभः । अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरर्षभः ॥
हरिः पर्वतसंकाशस्ताम्रवक्त्रो महाबलः । वज्रदंष्ट्रनखो भीमो वैदेहीमिदमब्रवीत् ॥
(सुन्दर० ३७ । ३७-३८)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जलकी अधिकता है, सिद्धसेवित प्रदेशमें तपस्वियोंके आश्रमके भीतर जब मैं निवास करती थी, उन्हीं दिनों एक कौवेने मुझे चोंच मार दी थी। उस समय मैं आपके पास आयी और थककर आपकी ही गोदमें बैठ रही। मैं कौवेपर कुपित-सी हो रही थी और आपने प्रसन्न होकर मुझे शान्त किया। मेरा मुँह आँसुओंसे भीगा था तथा मैं धीरे-धीरे अपनी आँखें पोंछ रही थी। उस अवस्थामें आपने मुझे देखा था। रघुनन्दन! मैं अधिक थकावटके कारण उस दिन आपकी गोदमें देरतक सोती रही; फिर जब उठी, तब आप मेरी गोदमें सिर रखकर सो गये। इतनेमें वह कौवा फिर आया और मुझे आपकी गोदसे सोकर उठी देख उसने सहसा झपटकर मेरे शरीरमें चोंच मार दी।'

"कपिश्रेष्ठ! वह कौवा बारंबार उड़-उड़कर मुझपर चोंचका प्रहार करने लगा। उस समय मेरे शरीरसे गिरी हुई रक्तकी बूँदोंसे श्रीरामचन्द्रजी जग पड़े। उन्होंने मेरे शरीरमें घाव देखकर बड़ा क्रोध किया और पूछा—'किसने तुम्हें चोट पहुँचायी है?' तदनन्तर इधर-उधर दृष्टि डालनेपर रघुनाथजीने स्वयं ही उस कौवेको देख लिया। वह मेरी ही ओर मुँह करके बैठा था। उसके पंजोंमें रक्त लगा था। वह इन्द्रका पुत्र था, जो कौवेका रूप धारण करके आया था। उसकी गति वायुके समान तीव्र थी। इसीलिये वह स्वर्गसे इस पृथ्वीपर तुरंत ही आ पहुँचा था। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने उस कौवेको कठोर दण्ड देनेका विचार किया। उन्होंने कुशकी चटाईमेंसे एक कुश निकाला और उसे ब्रह्मास्त्रके मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित किया। अभिमन्त्रित करते ही वह कालाग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। तत्पश्चात् उस प्रदीप्त अस्त्रको उन्होंने कौवेकी ओर चलाया। फिर तो वह आकाशमें काकरूपधारी इन्द्रपुत्रका पीछा करने लगा। वह कौवा कई प्रकारकी उड़ानें लगाता अपने प्राण बचानेके लिये सम्पूर्ण जगत्‌में भागता फिरा [ किन्तु कहीं भी उसे आश्रय न मिला ]। उसके पिता तथा समस्त महर्षियोंने उसका परित्याग कर दिया। तीनों लोकोंमें घूमकर अन्तमें वह पुनः भगवान् श्रीरामकी ही शरणमें आया। रघुनाथजी शरणागतवत्सल हैं। उनकी शरणमें आकर जब वह धरतीपर गिर पड़ा, तब उन्हें दया आ गयी। अतः वधके योग्य होनेपर भी उस कौवेको उन्होंने मारा नहीं। उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी और वह उदास होकर सामने गिरा था। इस अवस्थामें उसको लक्ष्य करके भगवान् बोले—'ब्रह्मास्त्रको तो व्यर्थ किया नहीं जा सकता।' यह कहकर उन्होंने उस अस्त्रसे उस कौवेकी दाहिनी आँख नष्ट कर दी। इस प्रकार दायाँ नेत्र देकर उसने अपने प्राण बचा लिये और वीरवर श्रीरामके आज्ञा देनेपर वह उन्हें प्रणाम करके अपने निवासस्थानको चला गया।

"[ कपिश्रेष्ठ! तुम मेरे स्वामीसे जाकर कहना—] 'प्राणनाथ! आपने मेरे लिये एक [ साधारण अपराध करनेवाले ] कौवेपर भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था; फिर जो आपके पाससे मुझे हर ले गया, उसको आप कैसे क्षमा कर रहे हैं? नरश्रेष्ठ! मेरे ऊपर उत्साहपूर्ण कृपा कीजिये। आप जिसके नाथ हैं, वह जानकी आज अनाथ-सी दिखायी देती है। दया करना सबसे बड़ा धर्म है, यह मैंने आपके ही मुखसे सुना है। मैं आपको अच्छी तरह जानती हूँ। आपका बल, पराक्रम और उत्साह महान् है। आप असीम, अजेय और गम्भीरतामें समुद्रके समान हैं; सागरपर्यन्त समूची पृथ्वीके स्वामी हैं। इस प्रकार अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, बलवान् और शूरवीर होते हुए भी आप राक्षसोंपर अपने अस्त्रोंका प्रयोग क्यों नहीं करते?' वायुनन्दन! नाग, गन्धर्व, देवता—कोई भी युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीका वेग नहीं सह सकते। वे महान् पराक्रमी हैं। यदि मेरे लिये उनके हृदयमें कुछ व्याकुलता है, तो वे अपने तीखे सायकोंसे इन राक्षसोंका संहार क्यों नहीं कर डालते? अथवा बड़े भाईकी आज्ञा ले वीरवर लक्ष्मण ही आकर क्यों नहीं मेरा उद्धार करते? वे दोनों नरश्रेष्ठ मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?"

विदेहकुमारी सीताने आँसू बहाते हुए जब ये करुणापूर्ण वचन कहे, तब इन्हें सुनकर महातेजस्वी वानर-यूथपति हनुमान्‌ने कहा—'देवि! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी आपके विरहसे बहुत दुखी हैं और उनके दुखी होनेसे लक्ष्मणके हृदयमें भी बड़ा सन्ताप होता है। किसी तरह आपका पता लग गया, अब शोक करनेका अवसर नहीं है। आप शीघ्र ही अपने दुःखोंका अन्त हुआ देखेंगी। वे दोनों राजकुमार बड़े बलवान् हैं तथा आपको देखनेके लिये उनके मनमें विशेष उत्साह है; अतः वे समस्त राक्षस-जगत्‌को भस्म कर डालेंगे। रघुनाथजी क्रूर रावणको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर आपको अपनी पुरीमें ले जायँगे। अब भगवान् श्रीराम, महाबली लक्ष्मण, तेजस्वी सुग्रीव तथा वहाँ एकत्रित हुए वानरोंके प्रति जो कुछ कहना हो, कहिये।'

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर भगवती सीता पुनः बोलीं—


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनस्विनी कौसल्या देवीने जिन्हें जन्म दिया है तथा जो सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं, उन रघुनाथजीसे मस्तक झुकाकर मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओरसे उनका कुशल-समाचार पूछना। तत्पश्चात्, समूची पृथ्वीमें भी जिसका मिलना असम्भव है, ऐसे दुर्लभ ऐश्वर्यका परित्याग कर, पिता-माताको सम्मानित एवं प्रसन्न करके जो श्रीरामचन्द्रजीके साथ वनमें चले आये, जिनका चित्त सदा धर्ममें लगा रहता है, जो भाईकी रक्षा करते हुए वनमें सदा उनके साथ विचरते हैं, जिनका श्रीरामके प्रति पिताके समान और मेरे प्रति माताके समान भाव तथा बर्ताव रहता है, जो गुरुजनोंकी सेवामें रहते और अपने ऊपर डाले हुए कार्य-भारको योग्यताके साथ वहन करते हैं तथा श्रीरघुनाथजीका जिनके ऊपर मुझसे भी अधिक प्रेम है—उन लक्ष्मणसे भी तुम मेरी ओरसे कुशल पूछना और ऐसी बातें कहना, जिन्हें सुनकर वे मेरा दुःख दूर करनेको तैयार हो जायँ। अधिक क्या कहूँ, इस कार्यके सिद्ध करनेका सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है। मेरे शूरवीर स्वामी श्रीरामसे तुम बारंबार कहना कि वे पापी रावणकी कैदमें अपमानपूर्वक पड़ी हुई मुझ दुखियाका उद्धार करें, जैसे विष्णुने इन्द्रकी लक्ष्मीका पातालसे उद्धार किया था।' तत्पश्चात् सीताने कपड़ेमें बँधी हुई दिव्य चूड़ामणिको खोलकर निकाला और 'इसे श्रीरामचन्द्रजीको दे देना' यह कहकर हनुमान्‌जीके हाथपर रख दिया। मणि लेकर उन्होंने सीताको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके विनीत भावसे उनके पास खड़े रह गये।

मणि देनेके पश्चात् सीता हनुमान्‌जीसे बोलीं—'मेरे इस चिह्नको भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भलीभाँति पहचानते हैं। इस मणिको देखकर उन्हें तीन व्यक्तियोंका—अपनी माताका, मेरा तथा महाराज दशरथका एक ही साथ स्मरण होगा। हनुमान्! तुम प्रयत्न करके मेरे दुःखोंका विनाश करनेमें सहायक बनो।' भयंकर पराक्रमी हनुमान्‌जीने 'बहुत अच्छा' कहकर सीताजीकी आज्ञाका पालन करनेकी प्रतिज्ञा की और उन्हें मस्तक झुकाकर वे जानेको तैयार हुए। पवनकुमारको प्रस्थान करते देख भगवती सीताका गला भर आया और वे गद्गद वाणीमें बोलीं—'हनुमान्! महाबाहु भगवान् श्रीराम इस दुःखके समुद्रसे जिस प्रकार मेरा उद्धार करें, वैसा ही उपाय करना। यशस्वी रघुनाथजीसे ऐसी बातें कहना, जिनसे वे मेरे जीते-जी आकर मुझसे मिलें। ऐसा करके तुम वाणीके द्वारा धर्मका उपार्जन करो। दशरथनन्दन श्रीराम सदा ही उत्साहयुक्त रहते हैं। मेरी कही हुई बातें सुनकर उनका पुरुषार्थ और भी बढ़ेगा। फिर मेरी प्राप्तिके लिये वे विशेष चेष्टा करेंगे। किन्तु मेरे मनमें इस बातका बड़ा सन्देह है कि वानर-भालुओंकी सेना तथा वे दोनों राजकुमार अपार महासागरको कैसे पार करेंगे? तुम, गरुड़ और वायु—इन तीन ही व्यक्तियोंमें समुद्र लाँघनेकी शक्ति है; ऐसी दशामें तुम कार्य-सिद्धिका क्या उपाय देखते हो?'

भगवती सीताकी उपर्युक्त बात अर्थयुक्त, स्नेहयुक्त तथा युक्तियुक्त थी। उसे सुनकर हनुमान्‌जीने इस प्रकार उत्तर दिया—'देवि! वानर और भालुओंकी सेनाके स्वामी सुग्रीव सत्यवादी हैं, वे आपके उद्धारके लिये दृढ़ निश्चय कर चुके हैं। वे राक्षसोंके संहारमें समर्थ हैं और अर्बों वानरोंकी सेना लेकर शीघ्र ही लङ्कापर चढ़ाई करेंगे [ आप समुद्र लाँघनेकी चिन्ता न करें ]। सुग्रीवके पास ऐसे-ऐसे वानर हैं, जिनकी ऊपर, नीचे तथा इधर-उधर—कहीं भी गति नहीं रुकती। वे बड़े से-बड़ा कार्य आ पड़नेपर भी कभी हिम्मत नहीं हारते। उनका तेज महान् है, उन्होंने अत्यन्त उत्साहसे पूर्ण होकर वायुके पथका अनुसरण करते हुए समुद्र और पर्वतोंसहित इस पृथ्वीकी अनेकों बार प्रदक्षिणा की है। सुग्रीवकी सेनामें मेरे समान तथा मुझसे भी बढ़कर पराक्रमी वानर मौजूद हैं। जब मैं ही यहाँ आ गया, तब अन्य महाबली वीरोंके आनेमें क्या सन्देह है। वानर-यूथपति एक ही छलाँगमें लङ्कामें पहुँच जायँगे। उदयकालीन सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति शोभा पानेवाले वे दोनों नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण मेरी पीठपर बैठकर विशाल सेनाके साथ आपके पास आ पहुँचेंगे और अपने बाणोंसे लङ्काका विध्वंस कर डालेंगे। रघुनाथजी रावणको उसके सैनिकोंसहित मारकर आपको साथ ले अपनी पुरीमें पदार्पण करेंगे। आप धैर्य धारण करें। अग्निके समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही आपको दर्शन देंगे। देवि! आप शोकके कारण रुदन न करें। आपके मनमें किसी प्रकारका भय नहीं होना चाहिये। राक्षसोंके इस भयंकर देशमें आपको अधिक दिनोंतक नहीं रहना पड़ेगा। आपके प्रियतमके आनेमें बहुत विलम्ब नहीं है। जबतक मेरी उनसे भेंट न हो, तबतकके लिये आप धैर्य धारण करें।'

महात्मा वायुपुत्रके वचन सुनकर देवकन्याके समान सीता अपने हितके विचारसे बोलीं—'कपिश्रेष्ठ! तुमने मुझे बड़ा ही प्रिय संवाद सुनाया है। तुम्हें देखकर हर्षके मारे मेरे शरीरमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## जानकीजीका चूडामणि-दान

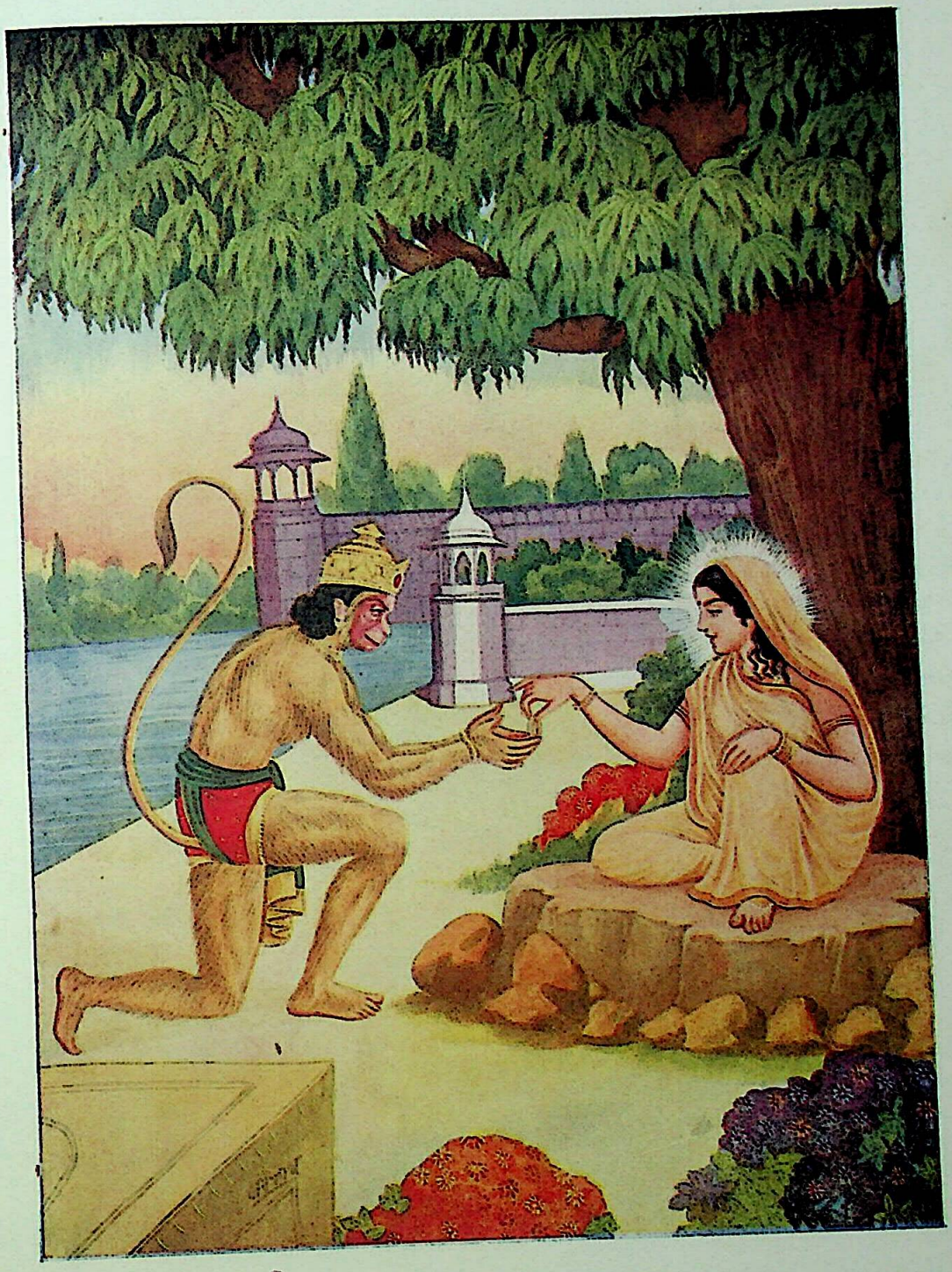

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ॥
(सुन्दर० ३८। ६६)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोमाञ्च हो आया है—ठीक उसी तरह जैसे वर्षाका पानी पड़नेसे आधी जमी हुई खेती हरी-भरी हो जाती है। मुझपर ऐसी दया करो जिससे मैं शोकके कारण दुर्बल हुए अपने अङ्गोंद्वारा नरश्रेष्ठ श्रीरामका प्रेमपूर्वक स्पर्श कर सकूँ। उन्होंने क्रोधवश सींकका बाण चलाकर जो कौवेकी एक आँख फोड़ डाली, उस प्रसङ्गकी तुम पहचानके रूपमें याद दिलाना। मेरे स्वामीसे यह भी कहना कि 'प्राणनाथ! पहलेकी उस बातको भी याद कीजिये, जब कि मेरे कपोलमें लगे हुए तिलकके मिट जानेपर आपने अपने हाथसे मैनसिलका तिलक लगाया था। दुःसह दुःख, हृदयको छेदनेवाली बातें और राक्षसोंके साथ निवास—यह सब कुछ मैं आपके लिये ही सह रही हूँ।' हनुमान्! मैंने तुम्हें उत्तम पहचान दी है। इस आभूषणको देखकर श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारी बातें विश्वासके योग्य मान लेंगे।' वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी उस चूड़ामणिको लेकर भगवती सीताको मस्तक झुका चलनेके लिये तैयार हो गये। उन्हें जानेके लिये उत्साहमें भरे देख जानकीजीके नेत्रोंमें आँसू भर आए और वे दीन होकर गद्गद कण्ठसे बोलीं—'वानरवीर! तुम सिंहके समान पराक्रमी दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण तथा मन्त्रियोंसहित सुग्रीवसे भी कुशल-मङ्गल कहना और ऐसा उपाय करना, जिससे महाबाहु रघुनाथजी इस दुःखके समुद्रसे मेरा उद्धार करें। मेरा दारुण दुःख और इन राक्षसोंकी डाँट-डपटका समाचार भी तुम श्रीरामके समीप जाकर कहना। जाओ, तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो।' राजकुमारी सीताके उक्त अभिप्रायको जानकर वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌ने अपनेको कृतार्थ समझा और प्रसन्नचित्त होकर उत्तरकी ओर जानेका विचार किया।

## हनुमान्‌जीके द्वारा अशोक-वाटिका ( प्रमदा-वन ) का विध्वंस और किङ्कर नामक राक्षसोंका वध

जानकीजीसे उत्तम वचनोंके द्वारा आदर पाकर हनुमान्‌जी जब जाने लगे तो उस स्थानसे दूसरी जगह हटकर उन्होंने विचार किया—'मैंने सीताजीका दर्शन तो कर लिया, अब थोड़ा-सा कार्य—शत्रुके बलका पता लगाना बाकी रह गया है। [ इसके लिये चार उपाय हैं—साम, दान, भेद और दण्ड ] यहाँ साम, दान, भेद—इन तीन उपायोंको छोड़कर केवल दण्डरूप चौथे उपायका प्रयोग ही उपयोगी दिखायी देता है। राक्षसोंके प्रति साम-नीतिका प्रयोग करनेसे कोई लाभ नहीं होता। इनके पास धनकी मात्रा भी अधिक है, अतः इन्हें दान देनेका भी कोई उपयोग नहीं है। इसके सिवा ये बलके अभिमानमें चूर रहते हैं, अतः इनके प्रति भेद-नीति भी काम नहीं दे सकती। ऐसी दशामें मुझे यहाँ पराक्रम दिखाना ही उचित जान पड़ता है। इस कार्यकी सिद्धिके लिये पराक्रमके सिवा और किसी उपायका अवलम्बन ठीक नहीं जँचता। यदि राक्षसोंके मुख्य-मुख्य वीर युद्धमें मारे जायँ, तो ये लोग कुछ नम्र हो सकते हैं। जो पुरुष अपने प्रयोजनकी सिद्धिके लिये अनेकों उपाय जानता हो, वही कार्य-साधनमें समर्थ हो सकता है। यदि इसी यात्रामें मैं इस बातको ठीक-ठीक समझ लूँ कि अपने तथा शत्रुपक्षमें युद्ध होनेपर कौन प्रबल सिद्ध होगा और कौन निर्बल, तत्पश्चात् भविष्यके कार्यका निश्चय करके यदि सुग्रीवके पास चलूँ तो मेरे द्वारा स्वामीकी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन हुआ समझा जायगा। आज राक्षसोंके साथ बलपूर्वक युद्ध करनेका अवसर मुझे सहज ही कैसे प्राप्त होगा? तथा दशमुख रावण अपनी प्रबल सेनाको मेरे साथ युद्ध करनेके लिये किस प्रकार ला सकेगा? उस युद्धमें मन्त्री, सेना और सहायकोंसहित रावणका सामना करके मैं उसके हार्दिक अभिप्राय तथा सैनिक-शक्तिका अनायास ही पता लगा लूँगा। उसके बाद यहाँसे जाऊँगा। इस निर्दयी राक्षसका यह सुन्दर उपवन नेत्रोंको आनन्द देनेवाला और मनोरम है। नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे सुशोभित होनेके कारण यह नन्दन-वन-सा प्रतीत होता है। जैसे आग सूखे वनको भस्म कर डालती है, उसी प्रकार मैं भी आज इस उपवनका विध्वंस कर डालूँगा। इनके नष्ट होनेपर राक्षसराज रावण मेरे ऊपर क्रोध करेगा और हाथी-घोड़े तथा विशाल रथोंसे युक्त, त्रिशूल, कालायस और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित बहुत-बड़ी सेना लेकर आयेगा! फिर तो महान् संग्राम छिड़ जायगा। उस युद्धमें मेरी गति रुक नहीं सकती। मैं प्रचण्ड पराक्रम दिखानेवाले राक्षसोंसे लोहा लूँगा और रावणकी भेजी हुई सारी सेनाका विनाश करके सुखपूर्वक सुग्रीवके निवास-स्थान किष्किन्धाको जाऊँगा।'

यह सोचकर भयानक पुरुषार्थ प्रकट करनेवाले पवनकुमार हनुमान्‌जी क्रोधसे भर गये और वायुके समान बड़े वेगसे वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगे। उन्होंने वृक्षोंको खण्ड-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


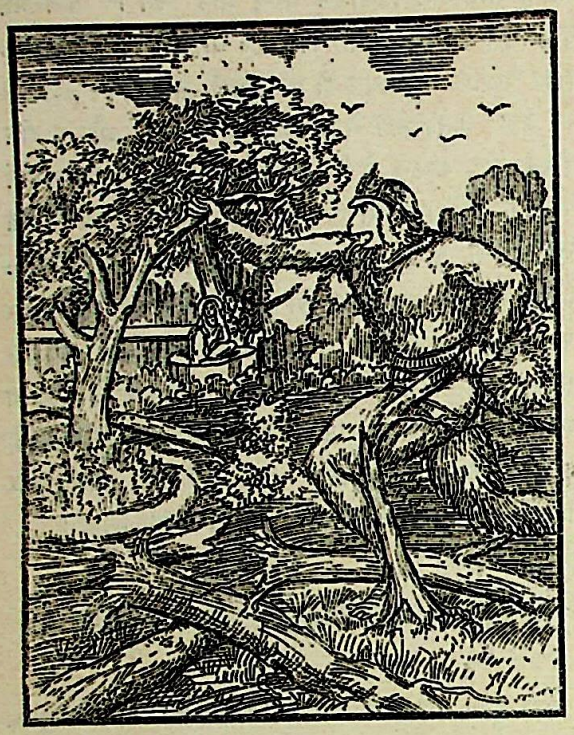

खण्ड कर दिया, जलाशयोंको मथ डाला और अनेकों दर्शनीय पर्वत-शिखरोंको चूर-चूर कर दिया। लतामण्डप और चित्रभवन उजाड़ हो गये। पाले हुए हिंस्र जन्तु तथा तरह-तरहके पक्षी आर्तनाद करने लगे। शिलानिर्मित प्रासाद तथा अन्य साधारण गृह भी तहस-नहस हो गये। इन सब कारणोंसे उस महान् प्रमदा-वनकी सारी शोभा नष्ट हो गयी। इस प्रकार राक्षसराज रावणके मनको विशेष कष्ट पहुँचानेवाला कार्य करके अकेले ही अनेकों महाबलियोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी प्रमदा-वनके फाटकपर आ गये। उस समय वे अपने अद्भुत तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे।

उधर, पक्षियोंके कोलाहल और वृक्षोंके टूटनेकी आवाज सुनकर समस्त लङ्कानिवासी भयसे उद्विग्न हो गये। प्रमदा-वनमें सोयी हुई विकराल मुखवाली राक्षसियोंकी नींद टूट गयी। उन्होंने उठनेपर समूचे वनको उजड़ा हुआ पाया और उस वीर वानरको भी देखा। महाबली, महान् साहसी एवं महाबाहु हनुमान्‌जीने जब उन राक्षसियोंको देखा तब उन्हें डरानेवाला विशाल रूप धारण कर लिया। पर्वतके समान बड़े शरीरवाले महाबली वानरको देख वे भयानक मुखवाली राक्षसियाँ दौड़कर रावणके पास गयीं और बोलीं—'राजन्! अशोक-वाटिकामें एक भयंकर शरीरवाला वानर आया है। उसने सीतासे बातचीत की है। वह महान् पराक्रमी जान पड़ता है। सम्भव है, वह इन्द्र या कुबेरका दूत हो अथवा रामने ही सीताकी खोजके लिये उसे भेजा हो। अद्भुत रूप धारण करनेवाले उस वानरने आपके मनोहर प्रमदा-वनको, जिसमें नाना प्रकारके पशु-पक्षी रहा करते थे, उजाड़ दिया। उसमें कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जिसको उसने नष्ट न कर डाला हो। केवल वह स्थान, जहाँ जानकी देवी रहती हैं, उसने बचा दिया है। मनोहर पत्तोंसे भरा हुआ केवल अशोकका वृक्ष, जिसके नीचे सीताका निवास है, नष्ट होनेसे बचा है। हम समझती हैं, जानकीकी रक्षाके लिये ही उसने जान-बूझकर उस स्थानकी रक्षा की है। उस उग्र रूपधारी वानरको आप कठोर दण्ड देनेकी आज्ञा दें। राक्षसराज! आपने जिनको अपने हृदयमें स्थान दिया है, उन सीता देवीसे कौन बातें कर सकता है। जिसे अपने प्राणोंका मोह है, वह उनसे वार्तालापका साहस कैसे कर सकता है।'

राक्षसियोंकी बातें सुनकर राक्षसोंका राजा रावण प्रज्वलित चिताकी भाँति क्रोधसे जल उठा। उसकी आँखें विकृत हो गयीं। उसके पास किङ्कर नामके बहुत-से राक्षस थे, जो उसीके समान वीर और पराक्रमी थे। महा-तेजस्वी रावणने हनुमान्‌जीको कैद करनेके लिये उन्हीं राक्षसोंको आज्ञा दी। [ राजाका आदेश पाकर ] अस्सी हजार वेगवान् किङ्कर हाथोंमें कूट और मुद्गर लिये महलसे बाहर निकले। उनकी दाढ़ें विशाल, पेट बड़ा और रूप भयानक था। वे सब-के-सब महान् बली, युद्धके अभिलाषी और हनुमान्‌जीको पकड़नेके लिये उत्सुक थे। प्रमदा-वनके फाटकपर खड़े हुए हनुमान्‌जीके पास पहुँचकर वे विचित्र गदाओं, सोनेसे मढ़े हुए परिघों, सूर्यके समान प्रज्वलित बाणों तथा मुद्गर, पट्टिश, शूल, प्रास और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये। तब पर्वताकार शरीर धारण किये महान् तेजस्वी वायुपुत्र हनुमान्‌जी भी पृथ्वीपर अपनी पूँछ पटकने और जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। उनकी भारी गर्जनासे समूची लङ्का गूँज उठी। तदनन्तर वे उच्चस्वरसे इस प्रकार बोले—'अत्यन्त बली भगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी जय हो। रघुनाथ-जीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो। मैं अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले कोशल-नरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। मैं वायुका पुत्र तथा शत्रु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनाका संहार करनेवाला हूँ। जब मैं हजारों वृक्ष और पत्थरोंसे प्रहार करने लगूँगा, उस समय सहस्रों रावण मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा मेरा सामना नहीं कर सकते। मैं लङ्कापुरीको तहस-नहस कर डालूँगा और मिथिलेशकुमारी सीताको प्रणाम करके सब राक्षसोंके देखते-देखते अपना कार्य सिद्ध करके जाऊँगा।'*

हनुमान्‌जीकी गर्जना सुनकर समस्त राक्षसोंपर आतङ्क छा गया। उन्होंने अपने स्वामीका नाम लेकर स्वयं ही अपना परिचय दे दिया था, इसलिये राक्षसोंको उन्हें पहचाननेमें कोई सन्देह न रहा। वे नाना प्रकारके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए हनुमान्‌पर टूट पड़े। महाबली हनुमान् जब चारों ओरसे घिर गये, तब उन्होंने फाटकपर रखा हुआ एक भयंकर लोहेका परिघ उठा लिया और उसीसे राक्षसोंका संहार आरम्भ किया। वह परिघ हनुमान्‌जीके हाथमें ऐसा जान पड़ता था, मानो गरुडके पंजेमें विशाल सर्प हो। वीरवर पवनकुमार परिघ लेकर आकाशमें विचरने लगे और इन्द्र जिस प्रकार वज्रसे दैत्योंका नाश करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने उन सारे राक्षसोंका संहार कर डाला। किङ्करोंका सफाया करके महावीर हनुमान्‌जी पुनः युद्धकी इच्छासे फाटकपर डट गये। तदनन्तर उस महान् भयसे जो थोड़े-से राक्षस बचे थे, उन्होंने रावणके पास जा किङ्करोंके वधका वृत्तान्त सुनाया। राक्षसोंकी उस विशाल सेनाके मारे जानेका समाचार सुनकर राक्षसराज रावणकी आँखें चढ़ गयीं और उसने प्रहस्तके पुत्रको, जिसके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं थी तथा युद्धमें जिसको परास्त करना नितान्त कठिन था, हनुमान्‌जीका सामना करनेके लिये भेजा।

## हनुमान्‌जीके द्वारा जम्बुमाली, सात मन्त्रिकुमार तथा पाँच सेनापतियोंका वध

राक्षसराजकी आज्ञा पाकर प्रहस्तका बलवान् पुत्र जम्बुमाली, जिसकी दाढ़ें बहुत बड़ी थीं, हाथमें धनुष लिये राजभवनसे बाहर निकला। वह विशालकाय, क्रोधी और युद्धमें दुर्जय था। आते ही उसने धनुषको टङ्कारा। उसकी भयंकर आवाजसे सहसा आकाश और समस्त दिशाएँ गूँज उठीं। उसे देखकर वेगशाली हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। महातेजस्वी जम्बुमालीने कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको फाटकके छज्जेपर खड़े देख उन्हें तीखे बाणोंसे बींधना आरम्भ कर दिया। उसने अर्धचन्द्र नामक बाणसे उनके मुखपर, कर्णीसे मस्तकपर और दस नाराचोंसे उनकी दोनों भुजाओंपर चोट की। राक्षसके बाणोंकी मारसे महाकपि हनुमान्‌जीको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपने पास ही पत्थरकी एक बहुत बड़ी चट्टान पड़ी देखी और उसे उठाकर बड़े वेगसे उस राक्षसकी ओर फेंका। राक्षस भी क्रोधसे भरा था। उसने दस बाण मारकर उस चट्टानको तोड़-फोड़ डाला। यह देख प्रचण्ड पराक्रमी हनुमान्‌जी एक सालका विशाल वृक्ष उखाड़कर उसे घुमाने लगे। तब महाबली जम्बुमालीने उनपर अनेकों बाणोंका प्रहार किया। उसने चार बाणोंसे साल-वृक्षको काट गिराया। पाँचसे हनुमान्‌जीकी भुजाओंमें, एकसे छातीमें और दससे उनके दोनों स्तनोंके मध्यभागमें चोट पहुँचायी। तब हनुमान्‌जीने वही परिघ उठाया और बड़े वेगसे घुमाकर उसे जम्बुमालीकी छातीपर दे मारा। उसके प्रहारसे उस राक्षसके शरीर, धनुष और रथ आदिकी धज्जियाँ उड़ गयीं और वह खण्ड-खण्ड हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। महाबली प्रहस्त-पुत्रके मारे जानेपर राक्षसराज रावणकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उसने अपने मन्त्रीके पुत्रोंको, जो बड़े बलवान् और पराक्रमी थे, तुरंत युद्धके लिये आज्ञा दी।

---

* जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः। राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः। हनूमान्‌शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्। शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्। समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥
(४१। ११—१६)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


राक्षसोंके स्वामीकी आज्ञा पाकर अग्निके समान तेजस्वी सात मन्त्रिकुमार उस राजमहलसे बाहर निकले । उनके साथमें बहुत बड़ी सेना थी । वे अत्यन्त बलवान्, धनुर्धर अस्त्र-शस्त्रके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ और परस्पर लाग-डाँट रखनेवाले थे । विशाल रथोंपर संवार हो अपने-अपने धनुषोंकी टङ्कार करते हुए आगे बढ़े और परस्पर होड़-सी लगाकर बाणोंकी वर्षा करते हुए फाटकके ऊपर बैठे हनुमान्‌पर टूट पड़े । राक्षसोंद्वारा की गयी उस बाण-वर्षासे हनुमान्‌जी आच्छादित-से हो गये । तब उन्होंने उस विशाल सेनाको आतङ्कित करते हुए भयंकर गर्जना की और उन राक्षसोंपर बड़े वेगसे आक्रमण किया । उनमेंसे किन्हींको थप्पड़ मारकर गिरा दिया, किन्हींको पैरोंसे कुचल डाला, किन्हींका घूँसोंसे काम तमाम किया और किन्हींको नखोंसे फाड़ डाला । कुछ लोगोंको छातीसे दबाकर उनका कचूमर निकाल दिया और किन्हीं-किन्हींको दोनों जाँघोंसे दबोचकर मसल डाला । कितने ही राक्षसोंका उनकी भयानक गर्जनासे ही प्राणान्त हो गया और वे वहीं ढेर हो गये । इस प्रकार जब मन्त्रियों-के सभी पुत्र मारे जाकर धराशायी हो गये, तब उनकी बची-खुची सारी सेना भयभीत होकर इधर-उधर भाग गयी । उस समय हाथी वेदनाके मारे चिग्घाड़ रहे थे । घोड़े धरतीपर पड़े थे और

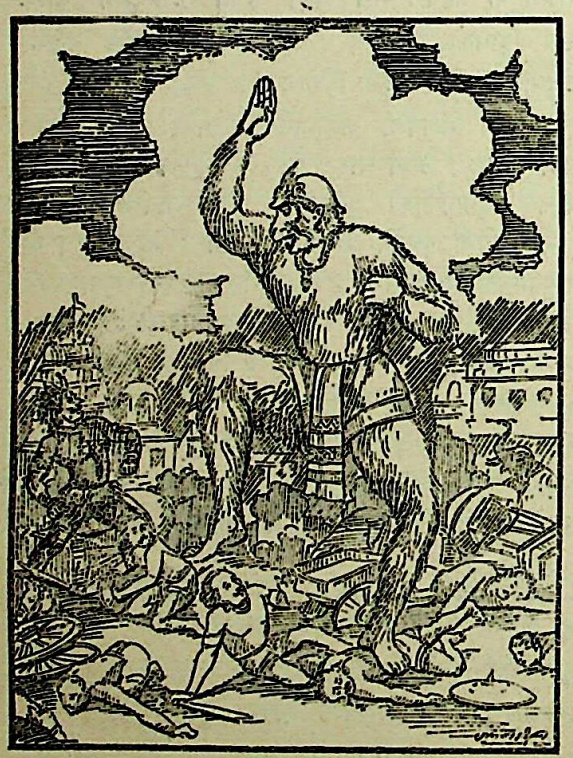

खण्ड-खण्ड हुए रथोंसे समूची रणभूमि पट गयी थी । मार्गमें खूनकी नदियाँ बहती दिखायी दीं तथा लङ्कापुरी राक्षसोंके विविध शब्दोंके कारण मानो विकृत स्वरमें चीत्कार कर रही थी । महाबली हनुमान्‌जी उन राक्षसोंको मौतके घाट उतारकर फिर दूसरोंके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे पुनः फाटकपर जा पहुँचे ।

वानरके द्वारा मन्त्रीके पुत्र भी मारे गये—यह जान-कर रावणने [ भयभीत होनेपर भी ] अपने आकारको प्रयत्न-पूर्वक छिपाया और उत्तम बुद्धिका आश्रय ले आगेके कर्तव्यका निश्चय किया । उसने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष[1], प्रघस और भासकर्ण—इन पाँच सेनापतियोंको, जो बड़े वीर, नीति-निपुण, धैर्यवान् और युद्धमें वायुके समान वेगशाली थे, हनुमान्‌जीको पकड़नेकी आज्ञा दी और कहा—'सेनाके अग्रगामी वीरो ! तुम सब लोग बड़ी भारी सेना साथ लेकर जाओ और उस वानरको बलपूर्वक पकड़कर उसे अच्छी तरह शिक्षा दो । वानर समझकर उनकी अवहेलना न करना, क्योंकि वह बड़ा धीर और पराक्रमी है । मैंने इससे पहले वाली, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान्, सेनापति नील तथा द्विविद आदि दूसरे कई महान् पराक्रमी वानर देखे हैं; किन्तु उनका वेग ऐसा भयंकर नहीं है । इसके समान तेज, पराक्रम, बुद्धि, बल, उत्साह और रूप बदलनेकी शक्ति उनमेंसे किसीमें नहीं है । वानरके रूपमें यह कोई बहुत बड़ा शक्तिशाली जीव आया है । तुमलोग महान् प्रयत्न करके उसे कैद कर लो । इन्द्रसहित देवता, असुर और मनुष्योंके साथ तीनों लोक उतर आयें तो भी रणभूमिमें तुम्हारे सामने ठहर नहीं सकते; तथापि विजयकी इच्छा रखनेवाले नीतिज्ञ वीरको युद्धमें यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि संग्राममें विजय अनिश्चित होती है ।'

स्वामीकी आज्ञा स्वीकार कर वे अग्निके समान तेजस्वी महान् वेगशाली तथा अत्यन्त बलवान् राक्षस तेज चलने-वाले घोड़ों, मतवाले हाथियों तथा विशाल रथोंपर बैठकर युद्धके लिये चल दिये । आगे जाकर उन्होंने देखा, महाकपि हनुमान्‌जी उदयकालीन सूर्यकी भाँति अपने तेजसे दमक रहे हैं । उनकी शक्ति, बल, वेग, बुद्धि, उत्साह, शरीर और भुजाएँ—सभी महान् थीं । उन्हें वाटिकाके द्वारपर बैठे देख वे सभी राक्षस भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए चारों ओरसे उनपर टूट पड़े । [ निकट पहुँचनेपर पहले ] दुर्धरने हनुमान्‌जीके मस्तकपर

१. इसका नाम दुर्धर भी था ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच बाण मारे। तब हनुमान्‌जी अपनी विकट गर्जनासे समस्त दिशाओंको गुँजाते हुए उछलकर आकाशमें चले गये। यह देख महाबली दुर्धर सैकड़ों बाणोंकी झड़ी लगाता हुआ अन्तरिक्षमें ही उन्हें घायल करने लगा। उसके द्वारा पीड़ित होनेपर परम पराक्रमी पवनकुमारने फिरसे विकट गर्जना की और अपने शरीरको बहुत बड़ा बना लिया। तत्पश्चात् वे बहुत दूरतक ऊँचे उछलकर अत्यन्त वेगके साथ सहसा दुर्धरके रथपर कूद पड़े, मानो पर्वतपर बिजलीका समूह गिर पड़ा हो। उनके भारसे रथके आठों घोड़ोंका कचूमर निकल गया। धुरी और कूबर (हरसा) टूट गये और दुर्धर प्राण-हीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसकी ऐसी अवस्था देख शत्रुओंका दमन करनेवाले दुर्धर्ष वीर विरूपाक्ष और यूपाक्षको बड़ा क्रोध हुआ और उन दोनोंने सहसा आकाशमें उछलकर महाबाहु हनुमान्‌जीकी छातीमें मुद्गरसे प्रहार किया। तब हनुमान्‌जी पुनः जमीनपर कूद पड़े और एक सालका वृक्ष उखाड़कर उसीके द्वारा उन्होंने उन दोनों राक्षसोंको मार डाला। उन तीनोंको वेगवान् वानरके द्वारा मारा गया देख महाबली प्रघसने पास जाकर तीखे पट्टिशसे और भासकर्णने शूलसे हनुमान्‌जीके ऊपर प्रहार किया। राक्षसोंके आघातसे घायल होकर उनका सारा शरीर रक्तसे भीग गया। फिर तो बालसूर्यके समान कान्तिवाले कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने मृग, सर्प और वृक्षोंसहित पर्वतका एक शिखर उखाड़ लिया और उसे ही उन दोनों राक्षसोंपर दे मारा। उसके आघातसे दोनों पिस गये और उनके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो गये। इस प्रकार पाँचों सेनापतियोंके नष्ट हो जानेपर हनुमान्‌जीने बची-खुची सेनाका भी नाश आरम्भ किया। उन्होंने घोड़ोंसे घोड़ोंका, हाथियोंसे हाथियोंका, योद्धाओंसे योद्धाओंका और रथोंसे रथोंका संहार कर डाला। मरे हुए हाथियों और घोड़ोंसे, टूटे हुए विशाल रथोंसे तथा मृत्युको प्राप्त हुए राक्षसोंसे वहाँकी सारी भूमि पट गयी थी। चारों ओरका रास्ता बंद हो गया था। इस तरह सेना और वाहनोंसहित उन पाँचों वीर सेनापतियोंको मौतके घाट उतारकर महावीर हनुमान्‌जी पहलेकी ही भाँति युद्धकी प्रतीक्षामें फाटकपर जा डटे।

## अक्षकुमारका वध तथा इन्द्रजित्‌के द्वारा बन्धनमें पड़कर हनुमान्‌जीका रावणके दरबारमें प्रवेश

हनुमान्‌जीके द्वारा अपने पाँच सेनापतियोंको सेवकों और वाहनोंसहित मारा गया सुनकर राजा रावणने अपने सामने बैठे हुए पुत्र अक्षकुमारकी ओर देखा, जो युद्धमें तेज तथा उसके लिये सदा उत्कण्ठित रहनेवाला था। पिताके दृष्टिपात-मात्रसे प्रेरित होकर वह प्रतापी वीर युद्धके लिये उत्साहपूर्वक उठा और रथपर सवार होकर हनुमान्‌जीके पास चल दिया। वह रथ उसे बड़ी तपस्यासे प्राप्त हुआ था। उसमें मनके समान वेगवाले आठ घोड़े जुते थे। देवता और असुर—कोई भी उस रथको नष्ट नहीं कर सकते थे। उसकी गति कहीं भी रुकती नहीं थी। वह आकाशमें भी चलता था और बिजलीके समान प्रकाशमान था। देवतुल्य पराक्रमी अक्षकुमार उसी रथपर बैठकर युद्धके लिये निकला। घोड़े, हाथी और बड़े-बड़े रथोंकी भयंकर आवाजसे पर्वतोंसहित पृथ्वी तथा आकाशको गुँजाता हुआ वह बड़ी भारी सेना साथ लेकर वाटिकाके द्वारपर बैठे हुए शक्तिशाली वीर हनुमान्‌जीके पास जा पहुँचा। उस समय उन दोनों वीरोंमें जो टक्कर हुई, उसकी कहीं तुलना नहीं थी। उनका युद्ध देवता और असुरोंके मनमें भी घबराहट पैदा कर देनेवाला था। कपिश्रेष्ठ हनुमान् और अक्षकुमारका वह वीरतापूर्ण संग्राम देखकर भूतलके सारे प्राणी चीख उठे। सूर्यका ताप कम हो गया, वायुकी गति रुक गयी, पर्वत हिलने लगे, आकाशमें शब्द होने लगा और समुद्रमें तूफान आ गया।

अक्षकुमार निशाना साधने, बाणको धनुषपर चढ़ाने और उसे लक्ष्यकी ओर छोड़नेमें बड़ा प्रवीण था। उसने हनुमान्‌जीके मस्तकपर विषैले साँपोंकी भाँति तीन भयंकर बाण मारे। उन तीनोंकी चोट एक ही साथ लगनेसे हनुमान्‌जीके मस्तकसे रक्तकी धारा बहने लगी, जिससे वे लहू-लुहान हो गये। राक्षसराजके पुत्रको अत्युत्तम विचित्र आयुध एवं अद्भुत धनुष धारण किये देख हनुमान्‌जी हर्ष और उत्साहसे भर गये तथा युद्धके लिये उत्कण्ठित हो अपने शरीरको बढ़ाने लगे। युद्धमें अक्षकुमारका पराक्रम बड़ा प्रचण्ड दिखायी देता था। उसका तेज, बल, वीर्य और बाण चलानेकी कला—सभी बढ़े-चढ़े थे। उस राक्षसकी ओर दृष्टिपात करके हनुमान्‌जीने मेघके समान भयानक गर्जना की। उन्हें आकाशमें उछलते देख प्रतापी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


राक्षस-वीरने बाणोंकी झड़ी लगाते हुए उनका पीछा किया उस समय मनके समान वेगवाले हनुमान्‌जी युद्धमें भयंकर पराक्रम प्रकट करने लगे। वे अक्षकुमारके बाणोंको व्यर्थ करते हुए वायुके पथपर विचरते और दो बाणोंके बीचसे हवाकी भाँति निकल जाते थे। इतनेमें ही कुमारने अपने बाणोंसे कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीकी छातीमें घात कर दिया। वे महाबाहु समयोचित कर्तव्यको जानते थे। उस आघातको सहकर सिंहनाद करते हुए सोचने लगे—'इस राक्षसके साथ युद्धमें कैसा पराक्रम करना चाहिये ? यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह मुझे परास्त किये बिना नहीं रहेगा; क्योंकि संग्राममें इसका पुरुषार्थ बढ़ता जा रहा है। अतः अब इसकी सत्ता मिटा देना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है; क्योंकि बढ़ती हुई आगकी अवहेलना करना कदापि उचित नहीं है।'

इस प्रकार शत्रुके वेगको समझकर उसके वधके लिये उचित उपायका निश्चय करके शूरवीर महाबली हनुमान्‌जीने अपना वेग बढ़ाया और शत्रुको मार डालनेका विचार किया। तत्पश्चात् आकाशमें विचरते हुए ही उन्होंने थप्पड़ मारकर अक्षकुमारके आठों घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया; फिर हाथसे ही पीटकर उन्होंने रथकी बैठक तोड़ डाली और उसके हरसेको उलट दिया। घोड़े तो पहले ही मर चुके थे, अतः वह विशाल रथ आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय महारथी अक्षकुमार धनुष और तलवार ले, रथ छोड़कर अन्तरिक्षमें ही उड़ने लगा। पक्षिराज गरुड़, वायु और सिद्धोंसे सेवित व्योम-मार्गमें विचरते हुए उस राक्षसके पास पहुँचकर हनुमान्‌जीने दृढ़तापूर्वक उसके दोनों पैर पकड़ लिये और गरुड़ जिस प्रकार बड़े-बड़े साँपोंको घुमाते हैं, उसी प्रकार उसे हजारों बार घुमाकर उन्होंने बड़े वेगसे पृथ्वीपर पटक दिया। नीचे गिरते ही उसकी भुजा, जाँघ, कमर और छातीके टुकड़े-टुकड़े हो गये। शरीरकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं, आँखें बाहर निकल आयीं और खूनकी धारा बह चली। इस तरह अक्षकुमारको पृथ्वीपर पटककर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने राक्षसराज रावणके हृदयमें बहुत बड़ा भय उत्पन्न कर दिया। उसके मारे जानेपर महर्षि, भूत, यक्ष, नाग तथा इन्द्र आदि देवताओंने बड़े विस्मयके साथ हनुमान्‌जीकी ओर देखा। युद्धमें लाल-लाल आँखोंवाले अक्षकुमारका काम तमाम करके वीरवर हनुमान्‌जी प्रजाका संहार करनेवाले कालकी भाँति पुनः युद्धकी प्रतीक्षा करते हुए वाटिकाके द्वारपर जा पहुँचे।

तदनन्तर राक्षसोंके स्वामी रावणने जब सुना कि हनुमान्‌के द्वारा अक्षकुमार भी मारा गया, तब वह क्रोधसे आग-बबूला हो उठा और उसने इन्द्रजित्‌को आज्ञा दी—'बेटा ! तुमने ब्रह्माजीकी आराधनासे अनेकों प्रकारके अस्त्रों-का ज्ञान प्राप्त किया है। इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले देवता भी युद्धमें तुम्हारे अस्त्र-बलके सामने नहीं ठहर सके हैं। तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा कोई भी ऐसा नहीं है, जो युद्धमें थकता न हो। तुम देश-कालका ज्ञान रखनेवालोंमें श्रेष्ठ और परम बुद्धिमान् हो। युद्धमें कोई भी कार्य तुम्हारे लिये असम्भव नहीं है। त्रिलोकीमें एक भी ऐसा वीर नहीं है, जो तुम्हारी शारीरिक शक्ति और अस्त्र-बलको न जानता हो। तुम्हारा तपोबल, अस्त्रबल और पराक्रम मेरे ही समान हैं। देखो, किङ्कर नामवाले समस्त राक्षस मारे गये। जम्बुमाली भी जीवित न रह सका। सात मन्त्रिकुमार और पाँच सेनापति भी घोड़े, हाथी और रथोंसे युक्त बड़ी भारी सेनाओंके साथ कालके गालमें चले गये और आज अक्षकुमार भी अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठा। इस प्रकार अपनी विशाल सेनाका संहार देखकर वानरके प्रभाव और पराक्रमको समझ लो; फिर अपनी शक्तिका भी विचार करके तुम अपने बलके अनुसार उद्योग करो। जिस किसी उपायसे शत्रुकी शक्ति क्षीण हो और वह काबूमें आ सके, वही करो; क्योंकि तुम अस्त्रधारी वीरोंमें सबसे श्रेष्ठ हो। वायुपुत्र हनुमान्‌के बलकी कोई सीमा नहीं है। वह अग्निके समान तेजस्वी है, उसे अस्त्र आदि साधनोंसे मारना असम्भव जान पड़ता है। अतः सावधान होकर जाओ और ऐसा पराक्रम करके दिखाओ, जो खाली न जाय।'

अपने पिता राक्षसराज रावणके वचन सुनकर इन्द्रजित्‌ने युद्धके लिये जानेका निश्चय करके शीघ्रतापूर्वक पिताकी परिक्रमा की और उत्साहसे भरकर राजभवनके बाहर निकला। रथपर सवार हो अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वह रथी वीर बड़ी तेजीके साथ उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ हनुमान्‌जी विराजमान थे। इन्द्रजित्‌के रथकी घरघराहट और धनुषकी टङ्कार सुनकर वानर-वीर हनुमान्‌जी हर्षसे पुलकित हो उठे। इन्द्रजित् युद्धकी कलामें प्रवीण था, वह धनुष और तीखे बाण लेकर हनुमान्‌को लक्ष्य करके आगे बढ़ा। उसे इन्द्रके चिह्नवाली ध्वजासे सुशोभित रथपर बैठकर आते देख कपि-श्रेष्ठ हनुमान्‌ने बड़े जोरसे गर्जना की और अपने शरीरको बढ़ाया। दिव्य रथपर बैठे हुए इन्द्रजित्‌ने भी बिजलीकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गड़गड़ाहटके समान भयंकर आवाज करनेवाले अपने धनुषपर टङ्कार दी। हनुमान् और इन्द्रजित् दोनों ही महाबली, असह्य वेगवान् तथा युद्धमें निर्भय थे। देवराज और दैत्यराजकी भाँति उन दोनोंमें वैर बँधा हुआ था, अतः वे एक दूसरेसे भिड़ गये। हनुमान्‌जी विशाल शरीर धारण करके अपने पिता वायुके मार्गपर विचरने और उस महारथी राक्षस-वीरके बाणोंको व्यर्थ करने लगे। इतनेमें ही इन्द्रजित्‌ने सोनेके पंखवाले अत्यन्त तीखे बाण, जो वेगमें वज्रके समान थे, हनुमान्‌जीको लक्ष्य करके चलाये; किन्तु उन कपिश्रेष्ठने बाणोंके बीचसे निकलकर अपनेको बचा लिया। लक्ष्यवेधके लिये चलाये हुए वे अमोघ बाण भी जब व्यर्थ होकर गिर पड़े, तब इन्द्रजित्‌के मनमें बड़ी चिन्ता हुई। उसने वानर-वीरको अवध्य समझकर सोचा कि इसे किस प्रकार कैद करना चाहिये। अन्तमें उस महातेजस्वी राक्षस-वीरने धनुषपर ब्रह्माजीके दिये हुए अस्त्रका सन्धान किया और हनुमान्‌जीको लक्ष्य करके छोड़ा। उससे वे बँध गये। ब्रह्मास्त्रसे बँध जानेपर हनुमान्‌जी निश्चेष्ट होकर धरतीपर गिर पड़े। अपनेको अस्त्रसे बँधा हुआ जानकर भी भगवान् ब्रह्माजीके वरदानके कारण उन्हें तनिक भी भय नहीं हुआ। उनको अपने प्रति ब्रह्माजीके अनुग्रहका स्मरण हो आया। वे सोचने लगे—'लोकगुरु ब्रह्माके प्रभावको मानकर मैं इस बन्धनको तोड़नेमें असमर्थ हूँ, अतः उनके सम्मानार्थ यह बन्धन मुझे स्वीकार कर लेना चाहिये।' कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने उस अस्त्रकी शक्ति, पितामहकी कृपा तथा अपनेमें उसके बन्धनसे छूट जानेकी शक्ति—इन तीनोंपर विचार किया और अन्तमें ब्रह्माजीकी आज्ञाका पालन करना ही उचित समझा। उनके मनमें यह बात आयी कि 'अस्त्रसे बँध जानेपर भी मुझे कोई भय नहीं है; क्योंकि ब्रह्मा, इन्द्र और वायु-देवता—तीनों मेरी रक्षा करते हैं। राक्षसोंद्वारा पकड़े जानेमें भी मेरा लाभ ही दिखायी देता है; क्योंकि इससे मुझे राक्षसराज रावणके साथ बातचीत करनेका अवसर मिलेगा। अतः शत्रु मुझे पकड़कर ले चलें।

ऐसा निश्चय करके हनुमान्‌जी निश्चेष्ट हो गये। फिर तो सभी शत्रु निकट आकर उन्हें बलपूर्वक पकड़ने और डाँट बताने लगे। उस समय हनुमान्‌जी, मानो कष्ट पा रहे हों, इस प्रकार चीखते और कटकटाते थे। राक्षसोंने देखा, अब यह हाथ-पैर नहीं हिलाता; तब वे सन और वल्कलके रस्सोंसे उन्हें बाँधने लगे। उनसे बँध जानेपर पराक्रमी हनुमान्‌जी

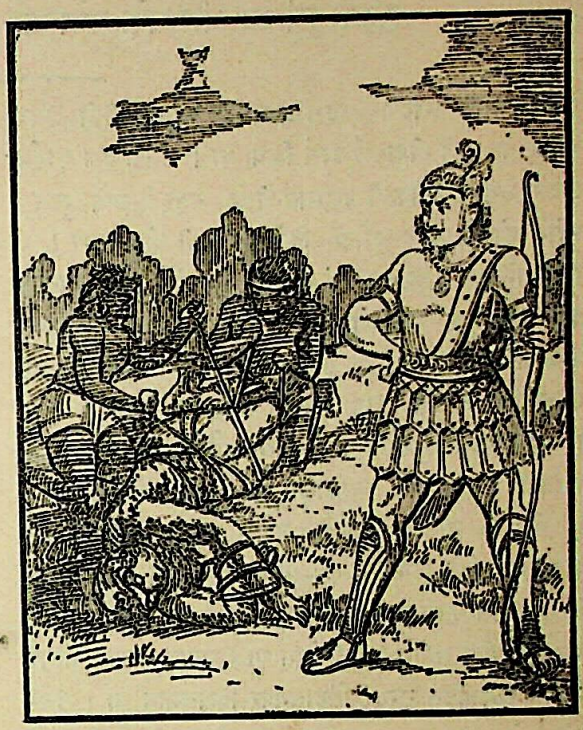

ब्रह्मास्त्रके बन्धनसे मुक्त हो गये; क्योंकि वह अस्त्र दूसरे बन्धनोंके साथ नहीं रहता। इन्द्रजित्‌ने जब देखा कि यह वानर केवल वल्कलसे बँधा है, दिव्यास्त्रके बन्धनसे मुक्त हो चुका है, तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा—'दूसरी वस्तुओंसे बँधा हुआ होनेपर भी यह अस्त्र-बन्धनमें बँधेकी भाँति बर्ताव कर रहा है। ओह! इन राक्षसोंने मेरा किया हुआ बहुत बड़ा काम चौपट कर दिया। इन्होंने मन्त्रकी शक्तिपर विचार नहीं किया। यह अस्त्र जब एक बार व्यर्थ हो जाता है, तब पुनः इसका प्रयोग नहीं हो सकता। अब तो हम सब लोगोंकी विजय सन्देहमें पड़ गयी।' हनुमान्‌जी यद्यपि अस्त्रके बन्धनसे मुक्त हो गये थे, तो भी उन्होंने ऐसा ही बर्ताव किया मानो वे इस बातको जानते ही न हों। क्रूर राक्षस उन्हें बन्धनोंसे पीड़ा देते हुए खींचकर ले चले। उनके मुक्कोंकी मार सहते हुए वे राक्षसराज रावणके पास पहुँचाये गये। उन्हें देखकर राक्षस-वीर आपसमें कहने लगे—'यह कौन है? किसका पुत्र या सेवक है? कहाँसे आया है? यहाँ इसका क्या काम है? तथा इसे सहारा देनेवाला कौन है?' कुछ दूसरे राक्षस, जो अत्यन्त क्रोधसे भरे थे, परस्पर इस प्रकार बोले—'इस वानरको मार डालो, जला डालो अथवा खा डालो।' महातेजस्वी रावणने विकट आकारवाले राक्षसोंके द्वारा इधर-उधर घसीटे जाते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको देखा।



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## हनुमान्‌जीका श्रीरामके प्रभावका वर्णन करते हुए रावणको समझाना

राक्षसराज रावणने इस प्रकारसे हनुमान्‌जीको बँधवा मँगाकर बड़ा ही नीतिपूर्ण कार्य किया था। उसके इस कार्यको देखकर भयंकर पराक्रमी हनुमान्‌जीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने क्रोधसे लाल आँखें किये रावणकी ओर देखा। वह सोनेके बने हुए बहुमूल्य एवं तेजस्वी मुकुटसे, जिसमें मोतीका काम किया हुआ था, शोभा पा रहा था। मणियोंके आभूषण उसके शरीरकी कान्ति बढ़ा रहे थे। वह रेशमी वस्त्र पहने और रक्त-चन्दन लगाये हुए विचित्र अङ्गरागोंसे सुशोभित हो रहा था। उसकी आँखें लाल-लाल और देखनेमें भयावनी थीं, दाढ़ें तीखी तथा चमकीली थीं। लंबे-लंबे ओठ लटक रहे थे। नाना प्रकारके सर्पोंसे भरे हुए शिखरोंद्वारा शोभा पानेवाले मन्दराचल पर्वतकी भाँति वह अपने दस मस्तकोंसे देदीप्यमान हो रहा था तथा वह देखनेमें नीले सुरमेकी ढेरीके समान प्रतीत होता था। रावण स्फटिक-मणिके बने हुए रत्नजटित सुन्दर सिंहासनपर विराजमान था। उसके चारों ओर सुन्दर शृङ्गारसे सजी हुई युवती स्त्रियाँ हाथमें चँवर लिये खड़ी थीं और निकटसे उसकी सेवा कर रही थीं। दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व और निकुम्भ—ये चार मन्त्री, जो मन्त्र-तत्त्वके ज्ञाता थे, उसे घेरकर बैठे हुए थे। यद्यपि भयंकर राक्षस हनुमान्‌जीको पीड़ा दे रहे थे, तो भी उन्होंने विस्मित होकर राक्षसराजको बड़े गौरसे देखा। फिर उसके तेजसे मोहित होकर मन-ही-मन सोचने लगे—'अहो! इसका रूप और धैर्य अद्भुत है। इसका साहस अनोखा और कान्ति निराली है। इस राक्षसराजमें सभी राजोचित लक्षणोंका होना महान् आश्चर्यकी बात है। यदि इसमें अधर्मकी प्रबलता न होती तो यह देवलोक और इन्द्रका भी रक्षक होता। किन्तु इसके कर्म इतने कठोर, निर्दयतापूर्ण और निन्दित हैं कि देवता और दानवोंसहित सम्पूर्ण जगत्‌के प्राणी इससे डरते रहते हैं।' इस तरह अमित-तेजस्वी राक्षसराजके प्रभावको देखकर परम बुद्धिमान् कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी नाना प्रकारकी चिन्ताएँ करने लगे।

महाबाहु रावणने भूरी आँखोंवाले हनुमान्‌जीको सामने उपस्थित देख मन-ही-मन महान् क्रोध किया। साथ ही तरह-तरहकी आशङ्काओंसे उसका दिल बैठ गया; अतः वह तेजस्वी वानरके विषयमें सोचने लगा—'क्या इस वानरके रूपमें साक्षात् भगवान् नन्दी यहाँ पधारे हुए हैं, जिन्होंने पूर्वकालमें कैलास-पर्वतपर, जब कि मैंने उनका उपहास किया था, मुझे शाप दे दिया था? वे ही तो वानरका स्वरूप धारण करके यहाँ नहीं आये हैं? अथवा इस रूपमें बाणासुरका आगमन तो नहीं हुआ है?' इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए राजा रावणने क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके मन्त्रिवर प्रहस्तसे समयानुकूल गम्भीर एवं अर्थयुक्त वचन कहा—'अमात्य! इस दुरात्मासे पूछो तो सही, यह कहाँसे आया है? इसके आनेका क्या कारण है? वनको उजाड़ने तथा राक्षसोंको मारनेमें इसका क्या उद्देश्य था?' रावणकी बात सुनकर प्रहस्तने हनुमान्‌जीसे कहा—'कपिश्रेष्ठ! तुम घबराओ मत। ठीक-ठीक बता दो। क्या तुम इन्द्रके भेजनेसे यहाँ आये हो? अथवा कुबेर, यम या वरुणके दूत हो? अथवा विजयके अभिलाषी विष्णुने तुम्हें भेजा है? तुम्हारा तेज वानरोंका-सा नहीं है। तुम केवल रूपसे वानर दिखायी देते हो। इस समय सच्ची बात कह दो, फिर तुम छोड़ दिये जाओगे। यदि झूठ बोलोगे तो तुम्हारा जीना असम्भव हो जायगा। अथवा तुम्हारा इस रावणके नगरमें आनेका जो उद्देश्य हो, वही बतलाओ।'

प्रहस्तके ऐसा कहनेपर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी उससे बोले—'मैं इन्द्र, यम अथवा वरुणका दूत नहीं हूँ; कुबेरके साथ भी मेरी मित्रता नहीं है और न भगवान् विष्णुने ही मुझे यहाँ भेजा है। मैं जन्मसे ही वानर हूँ और राक्षसराज रावणसे मिलनेके उद्देश्यसे मैंने वनको उजाड़ा है। इसके बाद तुम्हारे महाबली राक्षस युद्धकी इच्छासे मेरे पास गये हैं और मैंने अपने शरीरकी रक्षाके लिये उनका मुकाबला किया है। देवता और असुर भी मुझे अस्त्र अथवा पाशसे बाँध नहीं सकते; इसके लिये मुझे भी ब्रह्माजीसे वरदान मिल चुका है। केवल राक्षसराजको देखनेकी इच्छासे ही मैंने अस्त्रसे बँधना स्वीकार किया है। यद्यपि इस समय मैं अस्त्रसे मुक्त हूँ, तथापि ये राक्षस मुझे बँधा समझकर ही यहाँ ले आये हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका कुछ कार्य है, जिसके लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ। मैं अमित तेजस्वी रघुनाथजीका दूत हूँ,—ऐसा समझकर मेरे हितकारी वचनको सुनो।'

यह कहकर हनुमान्‌जी रावणसे बोले—'राक्षसराज!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी हालमें ही दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे पिताकी भाँति प्रजाके हितैषी और इन्द्रके समान तेजस्वी थे। उनके परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे धर्म-मार्गका आश्रय लेकर अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें आये थे। सीता विदेह-देशके राजा महात्मा जनककी पुत्री हैं। वे जनस्थानसे गायब हो गयी हैं। राजकुमार श्रीराम अपने भाईके साथ उन्हीं सीतादेवीकी खोज करते हुए ऋष्यमूक-पर्वतपर आकर सुग्रीवसे मिले हैं। सुग्रीवने उनसे सीताको ढूँढ़नेकी प्रतिज्ञा की और श्रीरामने सुग्रीवको वानरोंका राज्य दिलानेका वचन दिया। तत्पश्चात् राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमें वालीको मारकर सुग्रीवको वानर-भालुओंके राज्यपर बिठाया। वानरश्रेष्ठ वालीको तो तुम पहलेसे ही जानते हो, उन्हें रघुनाथजीने एक ही बाणसे यमपुरी भेज दिया। इस समय सत्यप्रतिज्ञ सुग्रीवके आदेशसे हजारों और लाखों वानर सम्पूर्ण दिशाओं तथा आकाश और पातालमें जाकर सीताको ढूँढ़ रहे हैं। उन वानरोंमें कोई गरुड़के समान वेगवान् हैं, तो कोई वायुके समान। उनकी गति कहीं नहीं रुकती। सभी वानर-वीर शीघ्रगामी और महान् बली हैं। मेरा नाम हनुमान् है। मैं वायु-देवताका औरस पुत्र हूँ। सीताका पता लगाने और तुमसे मिलनेके लिये सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघकर तीव्र गतिसे यहाँ आया हूँ। घूमते-घूमते तुम्हारे अन्तःपुरमें मुझे जानकीजीका दर्शन हुआ है। महामते! तुम धर्म और अर्थके तत्त्वको जानते हो। तुमने बड़ी भारी तपस्या की है, अतः दूसरेकी स्त्रीको अपने घरमें रोक रखना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। धर्मविरुद्ध कार्योंसे अनेकों अनर्थ उत्पन्न होते हैं। वे कर्ताका जड़-मूलसे नाश कर डालते हैं। अतः तुम-जैसे बुद्धिमान् पुरुष ऐसे कामोंमें नहीं प्रवृत्त होते। देवताओं और असुरोंमें भी कौन ऐसा वीर है, जो श्रीरामचन्द्रजीके क्रोध करनेपर लक्ष्मणके धनुषसे छूटे हुए बाणके सामने ठहर सके। राजन्! तीनों लोकोंमें एक भी ऐसा प्राणी नहीं है, जो भगवान् श्रीरामका अपराध करके सुखी रह सके। इसलिये मेरी धर्म और अर्थके अनुकूल बात, जो तीनों कालोंमें हितकर है, मान लो और जानकीको श्रीरामचन्द्रजीके पास लौटा दो। विष-मिश्रित भोजनकी भाँति सीताको पचाना देवताओंके लिये भी असम्भव है। तुमने तपस्या करके धर्मके फलस्वरूप जो यह ऐश्वर्यका संग्रह किया है तथा शरीर और प्राणोंको चिरकालतक धारण करनेकी शक्ति प्राप्त की है उसका विनाश करना उचित नहीं। [ तुम इस बातका अभिमान छोड़ दो कि मैं देवता आदिसे अवध्य हूँ; क्योंकि ] सुग्रीव और भगवान् श्रीराम न देवता हैं, न यक्ष हैं और न राक्षस ही हैं। रघुनाथजी मनुष्य हैं और सुग्रीव वानरोंके राजा। अतः उनके हाथसे तुम कैसे अपने प्राण बचा सकोगे? जनस्थानके राक्षसोंका संहार, वालीका वध और श्रीराम तथा सुग्रीवकी मैत्री—इन तीनों कार्योंको अच्छी तरह समझ लो। उसके बाद अपने हितका विचार करो। यद्यपि मैं अकेला ही हाथी, घोड़े और रथोंसहित समूची लङ्काका नाश करनेकी शक्ति रखता हूँ, परन्तु रघुनाथजीका यह विचार नहीं है—उन्होंने मुझे इस कार्यके लिये आज्ञा नहीं दी है। जिन लोगोंने सीताका तिरस्कार किया है, उन शत्रुओंका स्वयं ही संहार करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीने वानर और भालुओंके सामने प्रतिज्ञा की है। भगवान् श्रीरामका अपराध करके साक्षात् इन्द्र भी सुख नहीं पा सकते; फिर तुम्हारे-जैसे साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है? जिनको तुम सीताके नामसे जानते हो, जो इस समय तुम्हारे अन्तःपुरमें मौजूद हैं, उन्हें सम्पूर्ण लङ्काका विनाश करनेवाली कालरात्रि समझो। सीताका शरीर धारण करके तुम्हारे पास कालकी फाँसी आ पहुँची है। उसमें स्वयं गला फँसाना बुद्धिमानीकी बात नहीं है। अपने कल्याणकी चिन्ता करो। इन मित्रों, मन्त्रियों, कुटुम्बीजनों, पुत्रों, हितकारियों, स्त्रियों, सुख-भोगके साधनों तथा समूची लङ्काको मौतके मुखमें न झोंको। राक्षसराज! मैं भगवान् श्रीरामका दास हूँ, दूत हूँ और विशेषतः वानर हूँ। मेरी सच्ची बात सुनो। महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके फिर उनका नये सिरेसे निर्माण करनेकी शक्ति रखते हैं। वे भगवान् विष्णुके समान पराक्रमी हैं। देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, सर्प, विद्याधर, नाग, गन्धर्व, मृग, सिद्ध, किन्नर, पक्षी एवं अन्य समस्त प्राणियोंमें कहीं किसी समय कोई भी ऐसा नहीं है, जो रघुनाथजीके साथ लोहा ले सके। राजाओंमें श्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर श्रीरामका इतना बड़ा अपराध करके तुम्हारा जीवित रहना कठिन है। राक्षसराज! श्रीरामचन्द्रजी तीनों लोकोंके स्वामी हैं। देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, यक्ष, चार मुखोंवाले स्वयम्भू ब्रह्मा, तीन नेत्रोंवाले त्रिपुरनाशक रुद्र अथवा देवताओंके स्वामी इन्द्र भी युद्धमें उनके सामने नहीं ठहर सकते।'

वीरभावसे निर्भयतापूर्वक भाषण करनेवाले महाकपि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हनुमान्‌जीकी बातें बड़ी सुन्दर एवं युक्तियुक्त थीं, तथापि वे रावणको अत्यन्त अप्रिय जान पड़ीं। उन्हें सुनकर दशाननने क्रोधसे आँखें तरेर सेवकोंको आज्ञा दी—'इस वानरका वध कर डालो।'

## विभीषणकी सलाहसे रावणका दूतके वधसे निवृत्त होना और राक्षसोंका हनुमान्‌जीकी पूँछमें आग लगाकर उन्हें नगरमें घुमाना

दुरात्मा रावणके द्वारा दी हुई हनुमान्‌जीके वधकी आज्ञाका विभीषणने अनुमोदन नहीं किया, क्योंकि हनुमान्‌जी अपनेको श्रीरामका दूत बतला चुके थे। विभीषणने सोच-विचारकर समयोचित कर्तव्यका निश्चय किया और अपने पूजनीय ज्येष्ठ भ्रातासे बड़ी शान्तिके साथ हितकर बात कही—'राक्षसराज! क्षमा कीजिये, क्रोध त्यागकर प्रसन्न होइये और मेरी यह बात सुनिये। ऊँच-नीचका ज्ञान रखनेवाले श्रेष्ठ राजा दूतका वध नहीं करते। राजन्! इस वानरको मारना धर्मके विरुद्ध और लोकाचारकी दृष्टिसे भी निन्दित है। आप-जैसे वीरके लिये तो यह कदापि उचित नहीं है। आप धर्मके ज्ञाता, उपकारको माननेवाले और राजधर्मके विशेषज्ञ हैं। आप भले-बुरेका ज्ञान रखनेवाले और परमार्थके ज्ञाता हैं, अतः योग्य-अयोग्यका विचार करके दूतके लिये और किसी दण्डका निश्चय कीजिये।

विभीषणकी बात सुनकर राक्षसराज रावण अत्यन्त कुपित होकर बोला—'पापियोंका वध करनेमें पाप नहीं है। इस वानरने [ वाटिकाका विध्वंस करके ] पाप किया है, अतः अवश्य इसका वध करूँगा।' रावणका वचन अनेकों दोषोंसे युक्त और पापका मूल था। वह श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य नहीं था। उसे सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विभीषणने उत्तम कर्तव्यका निश्चय करानेवाली बात कही—'लङ्केश्वर! प्रसन्न होइये। राक्षसराज! मेरे धर्म और अर्थसे युक्त वचनपर ध्यान दीजिये। सत्पुरुषोंका कथन है कि दूत कहीं किसी समय भी वध करने योग्य नहीं होते। इसमें सन्देह नहीं कि यह बहुत बड़ा शत्रु है; क्योंकि इसने वह अपराध किया है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। तथापि सज्जन पुरुष दूतका वध करना उचित नहीं बतलाते। उनके लिये दूसरी तरहके बहुतसे दण्ड हैं। अङ्ग-भङ्ग कर देना, कोड़ेसे पिटवाना, सिर मुँड़वा देना तथा शरीरमें कोई चिह्न दाग देना—ये ही दण्ड दूतके लिये उचित बतलाये गये हैं। उसके लिये वधका दण्ड तो मैंने कभी नहीं सुना है। आपकी बुद्धि धर्म और अर्थकी शिक्षासे युक्त है। आप ऊँच-नीचका विचार करके कर्तव्यका निश्चय करनेवाले हैं। आप-जैसा नीतिज्ञ पुरुष क्रोधके अधीन कैसे हो सकता है? धर्मकी व्याख्या करने, लोकाचारका पालन करने अथवा शास्त्रीय सिद्धान्तको समझनेमें आपके समान दूसरा कोई नहीं है। आप सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंमें श्रेष्ठ हैं। इस वानरको मारनेमें मुझे कोई लाभ नहीं दिखायी देता। जिन्होंने इसे भेजा है, उन्हींको प्राणदण्ड देना चाहिये। यह भला हो या बुरा, शत्रुओंने इसे भेजा है; अतः यह उन्हींके स्वार्थकी बात करता है। दूत सदा पराधीन होता है, इसलिये वह वधके योग्य नहीं होता। इसके मारे जानेपर मैं दूसरे किसी प्राणीको ऐसा नहीं देखता, जो आपसे विरोध करनेवाले, युद्धप्रेमी एवं विनयसे रहित उन दोनों राजकुमारोंको युद्धके लिये तैयार कर सके। आपको परास्त करना देवता और असुरोंके लिये भी कठिन है। आपकी ही तरह इन राक्षसोंके हृदयमें भी पराक्रमपूर्ण उत्साह भरा है। इनके मनमें युद्ध करनेका बड़ा हौसला है। अतः आपके लिये [ इस दूतका वध करके ] राक्षसोंके मनको मारना—इनके युद्धविषयक उत्साहको भंग करना कदापि उचित नहीं है। मेरी राय तो यह है कि उन मूढ राजकुमारोंको कैद करके शत्रुओंपर आपका प्रभाव डालने—दबदबा जमानेके लिये आपकी आज्ञासे थोड़ी-सी सेनाके साथ कुछ ऐसे योद्धा यहाँसे यात्रा करें, जो हितैषी, शूरवीर, सावधान, उत्तम कुलमें उत्पन्न, मनस्वी, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा अधिक वेतन पानेवाले हों।' अपने छोटे भाई विभीषणके उत्तम वचन सुनकर निशाचरोंके स्वामी तथा देववृन्दके शत्रु महाबली रावणने सोच-विचारकर उन्हें स्वीकार कर लिया।

महात्मा विभीषणकी बात देश और कालके उपयुक्त थी। उसको सुनकर दशाननने इस प्रकार उत्तर दिया—'तुम्हारा कहना ठीक है, वास्तवमें दूतके वधकी बड़ी निन्दा की गयी है, परन्तु वधके अतिरिक्त दूसरा दण्ड इसे अवश्य देना चाहिये। वानरोंको अपनी पूँछ बड़ी प्यारी होती है, वही इनका आभूषण है; अतः जितना जल्दी हो सके, इसकी पूँछ जला दो। जली पूँछ लेकर ही यह अपने स्वामीके पास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय और वहाँ इसके मित्र, कुटुम्बी, भाई-बन्धु तथा हितैषी लोग इसे अंग-भंगके कारण पीड़ित एवं दीन अवस्थामें देखें।' रावणने यह भी आज्ञा दी कि 'राक्षसगण इसकी पूँछमें आग लगाकर इसे समूचे नगरकी सड़कों और चौराहोंपर घुमायें।' स्वामीका आदेश सुनकर क्रोधके कारण कठोरतापूर्ण बर्ताव करनेवाले राक्षस हनुमान्‌जीकी पूँछमें पुराने कपड़े लपेटने लगे। उस समय वनमें सूखी लकड़ी पाकर भभक उठनेवाली आगकी भाँति उनका शरीर बढ़कर बहुत बड़ा हो गया। राक्षसोंने वस्त्र लपेटनेके पश्चात् उनकी पूँछपर तेल छिड़क दिया और आग लगा दी। तब हनुमान्‌जीका हृदय रोषसे भर गया, उनका मुँह बाल-सूर्यके समान लाल दिखायी देने लगा और वे अपनी जलती हुई पूँछसे ही राक्षसोंको पीटने लगे। क्रूर राक्षसोंने मिलकर पुनः उन्हें कसकर बाँध दिया। तब वीरवर हनुमान्‌जी बँधे-बँधे ही उस समयके योग्य विचार करने लगे—'यद्यपि मैं बँधा हुआ हूँ, तो भी इन राक्षसोंका मुझपर जोर नहीं चल सकता। इन बन्धनोंको तोड़कर मैं पुनः इन्हें मार सकता हूँ। परन्तु एक बार सारी लङ्का मुझे फिरसे देखनी है; क्योंकि रातमें घूमनेके कारण मैंने दुर्ग-रचनाकी विधिपर दृष्टि रखते हुए इसका अच्छी तरह निरीक्षण नहीं किया था। इसलिये सबेरा हो जानेपर मुझे अवश्य ही लङ्का देखनी है। भले ही ये राक्षस मुझे बारंबार बाँधें और पूँछमें आग लगाकर पीड़ा पहुँचायें। मेरे मनमें इसके कारण तनिक भी कष्ट नहीं होगा।'

तदनन्तर क्रूरकर्मा राक्षस बड़ी प्रसन्नताके साथ महाकपि हनुमान्‌जीको पकड़कर ले चले और शङ्ख तथा भेरी बजाकर उनके अपराधोंकी घोषणा करते हुए उन्हें लङ्कापुरीमें घुमाने लगे। हनुमान्‌जी उस पुरीकी छोटी-बड़ी गलियों और घरोंके मध्यभागोंको बड़े गौरसे देखने लगे। राक्षस उन्हें चौराहोंपर, चार खंभेवाले मण्डपोंमें तथा सड़कोंपर घुमाने और दूत कहकर उनका परिचय देने लगे। जब उनकी पूँछमें आग लगायी जा रही थी, उसी समय भयंकर नेत्रोंवाली राक्षसियोंने भगवती सीताके पास जाकर यह अप्रिय समाचार कहा—'सीते! जिस लाल मुँहवाले बंदरने तुम्हारे साथ बातचीत की थी, उसे पूँछमें आग लगाकर सारे नगरमें घुमाया जा रहा है।' अपने हरणके समान यह क्रूरतापूर्ण बात सुनकर विदेहनन्दिनी सीता शोकसे संतप्त हो उठीं और ध्यानके द्वारा अग्निकी आराधना करती हुई शुद्ध चित्तसे प्रार्थना करने लगीं—'अग्निदेव! यदि मैंने पतिकी सेवा की है और यदि मुझमें कुछ भी तपस्या तथा पातिव्रत्यका बल है, तो तुम हनुमान्‌के लिये शीतल हो जाओ।।' इस प्रकार प्रार्थना करनेपर तीखी लपटोंवाले अग्निदेव मानो हनुमान्‌के मङ्गलकी सीताको सूचना देते हुए प्रज्वलित हो उठे। उधर पूँछमें आग लगाये जानेपर हनुमान्‌जी सोचने लगे—'क्या बात है? यह आग इस प्रकार प्रज्वलित होनेपर भी मुझे जलाती क्यों नहीं? इसमें इतनी ऊँची ज्वाला उठती दिखायी देती है; तथापि मुझे तनिक भी पीड़ा नहीं होती। मालूम होता है मेरी पूँछके अग्रभागमें बर्फका ढेर रख दिया गया हो। निश्चय ही भगवती सीताकी दया, रघुनाथजीके तेज तथा मेरे पिताकी मैत्रीके प्रभावसे अग्निदेव मुझे जला नहीं रहे हैं।' तदनन्तर महाकपि हनुमान्‌जी पर्वताकार होकर भी एक ही क्षणमें बहुत छोटे हो गये और बन्धनोंसे छूटकर उन्हें तोड़ डाला। फिर बड़े वेगसे उछलकर वे शैल-शिखरके समान ऊँचे नगर-द्वारपर जा पहुँचे और जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। उन्होंने फिर पहलेकी ही भाँति पर्वताकार रूप धारण कर लिया। फिर इधर-उधर दृष्टि डालनेपर उन्हें द्वारपर रखा हुआ परिघ दिखायी दिया, जो लोहेका बना हुआ था। महाबाहु पवनकुमारने उसे उठा लिया और उसीके द्वारा पुनः समस्त द्वार-रक्षकोंको यमलोक पहुँचा दिया। उन्हें मारकर वे पुनः लङ्कापुरीका निरीक्षण करने लगे। उस समय जलती हुई पूँछकी ज्वालाओंसे अलंकृत होनेके कारण वे अंशुमाली सूर्यकी भाँति शोभा पा रहे थे।

## लङ्का-दहन और सीताके लिये हनुमान्‌जीकी चिन्ता

हनुमान्‌जीके सभी मनोरथ पूर्ण हो चुके थे। उनका उत्साह बढ़ा हुआ था। अतः वे लङ्काका निरीक्षण करते हुए शेष कार्यके सम्बन्धमें विचार करने लगे—'अब इस समय लङ्कामें मेरे लिये कौन-सा ऐसा कार्य बाकी रह गया है, जो इन राक्षसोंका विशेष संताप बढ़ानेवाला हो? वनको तो मैंने उजाड़ डाला, बड़े-बड़े राक्षसोंको मौतके घाट उतार दिया और रावणकी सेनाके भी एक अंशका संहार कर डाला। अब किलेका ध्वंस करना बाकी रह गया है।' ऐसा सोचकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जलती हुई पूँछके कारण बिजलीसहित मेघकी भाँति शोभा पानेवाले कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी लङ्काके महलोंपर घूमने लगे। वे राक्षसोंके एक घरसे दूसरे घरपर पहुँचकर बगीचों और महलोंको देखते हुए निर्भय होकर विचरने लगे। घूमते-घूमते बड़े वेगसे कूदकर प्रहस्तके महलपर जा पहुँचे और उसमें आग लगाकर महापार्श्वके घरपर कूद पड़े। फिर वहाँ भी कालाग्निके समान प्रज्वलित होनेवाली आग फैलाकर उन्होंने वज्र-दंष्ट्र, शुक, बुद्धिमान् सारण तथा इन्द्रजित्‌के महलोंको जलाना आरम्भ किया। इसके बाद जम्बुमाली और सुमालीके घर फूँक डाले। फिर रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, छोटे-छोटे कानवाले दंष्ट्र, रोमश, रणोन्मत्त मत्त, ध्वजग्रीव, भयानक विद्युज्जिह्व, हस्तिमुख, विकराल, विशाल, शोणिताक्ष, कुम्भकर्ण, मकराक्ष, नरान्तक, कुम्भ, निकुम्भ, यज्ञशत्रु तथा ब्रह्मशत्रु आदि राक्षसोंके घरोंमें बारी-बारीसे जाकर आग लगायी। उस समय महातेजस्वी हनुमान्‌ने केवल विभीषणका घर टाल दिया। सबके घरोंको लाँघते हुए वे राक्षसराज रावणके महलपर पहुँचे, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित एवं मेरुगिरिके समान ऊँचा था। अपनी पूँछके अग्रभागमें जलती हुई आगको उस महलमें चारों ओर फैलाकर वे प्रलयकालीन मेघके समान भयानक गर्जना करने लगे। हवाका सहारा पाकर वह आग बड़े वेगसे बढ़ने लगी और कालाग्निकी भाँति प्रज्वलित हो उठी। मोती और मणियोंसे जड़ी हुई सोनेकी खिड़कियाँ, रत्नोंसे सुशोभित ऊँचे-ऊँचे प्रासाद और सतमहले भवन फट-फटकर पृथ्वीपर गिरने लगे। राक्षस अपने-अपने घरोंको बचाने—उनकी आग बुझानेके लिये इधर-उधर दौड़ने लगे। उनका उत्साह जाता रहा था, उनकी श्री नष्ट हो गयी थी। उन सबका तुमुल आर्तनाद चारों ओर गूँजने लगा। वे कहते थे, 'हाय! यह वानरके रूपमें साक्षात् अग्नि-देवता ही आ पहुँचा है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं जान पड़ता।' कितनी ही स्त्रियाँ गोदमें बच्चे लिये सहसा आगकी लपटमें पड़कर कराहती हुई अटारियोंसे नीचे गिर पड़ीं। हनुमान्‌जीने देखा—हीरा, मूँगा, वैदूर्य, मोती तथा सोने-चाँदी आदि विचित्र-विचित्र धातुओंकी राशि पिघल-पिघलकर बही जा रही है। जैसे भगवान् रुद्रने पूर्वकालमें त्रिपुरको दग्ध किया था, उसी प्रकार वानर-वीर महात्मा हनुमान्‌जीने समूची लङ्कापुरीको जलाकर खाक कर डाला।

तत्पश्चात् नगरके पर्वत-शिखरपर आग लगी। वहाँ उसका बड़ा भयंकर रूप प्रकट हुआ, चारों ओर ज्वालाएँ फैल गयीं। हवाका झकोरा पाकर वह आग इतनी बढ़ गयी कि प्रलयकालीन अग्निके समान दिखायी देने लगी। उसकी ऊँची लपटें मानो स्वर्गलोकका स्पर्श कर रही थीं। सम्पूर्ण लङ्कापुरीको अपनी लपटोंमें लपेटकर फैलती हुई वह भयंकर आग करोड़ों सूर्योंके समान प्रज्वलित हो रही थी। [ मकानों और पर्वतोंके फटने आदिसे होनेवाले ] नाना प्रकारके धड़ाकोंके शब्द बिजलीकी कड़कको भी मात करते थे। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो ब्रह्माण्ड फूट रहा हो। प्राणियोंके समुदाय, गृह और वृक्षोंसहित समस्त पुरीको सहसा दग्ध हुई देख बड़े-बड़े राक्षस झुंड-के-झुंड एकत्रित होकर

कहने लगे—'यह देवताओंका राजा वज्रधारी इन्द्र अथवा साक्षात् यमराज तो नहीं है? वरुण, वायु, रुद्र, अग्नि, सूर्य, कुबेर या चन्द्रमामेंसे तो कोई नहीं है? यह वानर नहीं, साक्षात् काल है। सम्पूर्ण जगत्‌के पितामह चतुर्मुख ब्रह्माजीका प्रचण्ड कोप वानरका रूप धारण करके राक्षसोंका संहार करनेके लिये यहाँ उपस्थित हुआ है क्या? अथवा विष्णुका महान् तेज, जो अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त और अद्वितीय है, अपनी मायासे वानरका शरीर ग्रहण करके राक्षसोंके विनाशके लिये तो इस समय नहीं आया है?' इस प्रकार घोड़े, हाथी, रथ, पशु, पक्षी, वृक्ष तथा कितने ही राक्षसोंसहित लङ्कापुरी सहसा दग्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गयी। वहाँके निवासी दीनभावसे तुमुल नाद करते हुए रोने लगे—'हाय रे बप्पा! हाय बेटा! हा स्वामिन्! हा मित्र! हा प्राणनाथ! हमारे सब पुण्य नष्ट हो गये।' इस तरह भाँति-भाँतिसे विलाप करते हुए राक्षसोंने भयंकर आर्तनाद किया। महात्मा हनुमान्‌जीने उत्तम-उत्तम वृक्षोंसे भरे हुए वनको उजाड़कर, युद्धमें बड़े-बड़े राक्षसोंको मारकर तथा सुन्दर महलोंसे सुशोभित समूची लङ्कापुरीमें आग लगाकर मन-ही-मन भगवान् श्रीरामका स्मरण किया। तदनन्तर सम्पूर्ण देवताओंने वानर-वीरोंमें प्रधान वायुपुत्र हनुमान्‌जीका स्तवन किया। उनके इस कार्यसे सभी देवता, मुनि, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस प्रकार लङ्काको जला-कर हनुमान्‌जीने समुद्रके जलमें अपनी पूँछकी आग बुझायी।

हनुमान्‌जीने जब देखा कि सारी पुरी जल रही है, वहाँके निवासियोंपर त्रास छा गया है और राक्षसगण अत्यन्त भयभीत हो गये हैं, तब उनके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'यदि समूची लङ्का जल गयी तो आर्या जानकी भी निश्चय ही उसमें दग्ध हो गयी होंगी। जिस कार्यकी सिद्धिके लिये यह सारा उद्योग किया गया था, वह कार्य ही मैंने नष्ट कर दिया; क्योंकि लङ्का जलाते समय मैंने सीताकी रक्षा नहीं की। लङ्काका कोई भी भाग ऐसा नहीं दिखायी देता, जहाँ आग न लगी हो। सारी पुरी ही मैंने भस्म कर डाली। यदि अपनी विपरीत बुद्धिके कारण मैंने सारा काम चौपट कर दिया, तो अब यहीं मुझे अपने प्राणोंका त्याग कर देना चाहिये। ऐसा करना ही अच्छा जान पड़ता है।' इस प्रकार विचार करते हुए उन्हें कई शुभ शकुन दिखायी पड़े। तब उनके हृदयमें यह भाव उत्पन्न हुआ—'सर्वाङ्गसुन्दरी सीता अपने तेजसे ही सुरक्षित होंगी। उनका विनाश नहीं हो सकता; क्योंकि अग्नि अग्निको नहीं जलाती। सीता अमित तेजस्वी धर्मपरायण भगवान् श्रीरामकी पत्नी हैं। वे अपने चरित्रके बलसे—पातिव्रत्यके प्रभावसे सुरक्षित हैं। आग उन्हें छू भी नहीं सकती। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीरामचन्द्रजीके प्रभाव तथा विदेहनन्दिनीके पुण्यके बलसे ही यह दाहक अग्नि मुझे और मेरी पूँछको नहीं जला सकी है। फिर यह साक्षात् माता जानकीको कैसे दग्ध कर सकती है? तपस्या, सत्यभाषण तथा पतिमें अनन्य भक्ति रखनेके कारण आर्या सीता ही अग्निको जला सकती हैं। आग उन्हें नहीं जला सकती।' इस प्रकार भगवती सीताकी धर्मपरायणताका विचार करते हुए हनुमान्‌जीने चारणोंके मुखसे निकली हुई ये बातें सुनीं—'अहो! हनुमान्‌जीने राक्षसोंके घरोंमें भयानक आग लगाकर बड़ा ही अद्भुत और दुष्कर कार्य किया है। घरमेंसे भागे हुए राक्षसों, स्त्रियों, बालकों और वृद्धोंसे भरी हुई सारी लङ्का जन-कोलाहलसे परिपूर्ण हो चीत्कार करती हुई-सी जान पड़ती है। पर्वतकी कन्दराओं, अटारियों, चहारदीवारियों और दरवाजोंसहित समूची नगरी दग्ध हो गयी; किन्तु सीता नहीं जलीं। यह हमारे लिये कितनी अद्भुत और आश्चर्यकी बात है!' चारणोंके कहे हुए ये अमृतके समान मधुर वचन सुनकर हनुमान्‌जीके हृदयमें तत्काल हर्षोल्लास छा गया। कई बारके आजमाये हुए शुभ शकुनों, धर्म-पालन आदि कारणों तथा ऋषियों ( चारणों )-के वचनोंसे सीताके जीवित होनेका निश्चय करके वे बहुत प्रसन्न हुए। राजकुमारी सीताको कोई क्षति नहीं पहुँची है, यह जानकर हनुमान्‌जीने अपना सम्पूर्ण मनोरथ सफल समझा और पुनः उनका प्रत्यक्ष दर्शन करके लौट जानेका विचार किया।

## हनुमान्‌जीका सीताको प्रणाम करके लौटना और समुद्रके पार आकर अपने सुहृदोंसे मिलना

तदनन्तर हनुमान्‌जी अशोक-वृक्षके नीचे बैठी हुई जानकीजीके पास गये और प्रणाम करके बोले—'आर्ये! सौभाग्यकी बात है कि इस समय मैं आपको सकुशल देख रहा हूँ।' सीता अपने पतिके स्नेहमें डूबी हुई थीं। वे हनुमान्‌जीको प्रस्थान करनेके लिये उद्यत जान उन्हें बारंबार देखती हुई बोलीं—'तात! यदि तुम उचित समझो तो एक दिन और यहीं किसी स्थानपर ठहर जाओ। आज विश्राम करके कल चले जाना। तुम्हारे रहनेसे मुझ मन्दभागिनीका अपार शोक भी थोड़ी देरके लिये कम हो जायगा। वानरश्रेष्ठ! जब तुम चले जाओगे, तब फिर तुम्हारे आनेतक मेरे प्राण रहेंगे या नहीं—इसका कोई निश्चय नहीं है। मुझपर दुःख-पर-दुःख पड़ते गये हैं। मैं मानसिक शोकसे दिन-दिन दुर्बल होती जा रही हूँ। शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी यदि लङ्कापर अपनी सेनाके साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


चढ़ाई करके मुझे यहाँसे ले चलें, तो यह उनके योग्य पराक्रम होगा। अतः तुम ऐसा उपाय करो, जिससे यहाँ युद्धवीर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीका उनके योग्य पराक्रम प्रकट हो।'

सीताकी यह बात, जो स्नेह, युक्ति तथा विशेष अभिप्रायसे भरी हुई थी, सुनकर वीरवर हनुमान्‌ने इस प्रकार उत्तर दिया—'देवि! वानर और भालुओंके स्वामी कपिश्रेष्ठ सुग्रीव बड़े शक्तिशाली पुरुष हैं। वे तुम्हारे उद्धारकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं। अतः कई अरब वानरोंकी सेना साथ लेकर तुरंत यहाँ आयेंगे। साथ ही वे दोनों वीर नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण भी आकर अपने बाणोंसे लङ्का-पुरीका विध्वंस कर डालेंगे। राक्षसराज रावणको उसके सैनिकोंसहित कालके गालमें भेजकर रघुनाथजी आपको साथ ले शीघ्र ही अपनी पुरीको पधारेंगे; इसलिये आप धैर्य रखकर समयकी प्रतीक्षा करें।' वायुपुत्र हनुमान्‌जीने सीताको इस प्रकार आश्वासन दे वहाँसे जानेके लिये उन्हें प्रणाम किया। वे बड़े-बड़े राक्षसोंको मारकर महान् बलका परिचय दे ख्याति प्राप्त कर चुके थे। रावणको चकमा देकर समूची लङ्काको व्याकुल करके घोर पराक्रम दिखा चुके थे। [ अब यहाँ उनके लिये कोई कार्य बाकी नहीं रह गया था। ] अतः अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये उत्सुक होकर उन्होंने समुद्रको पार करते हुए पुनः लौट जानेका विचार किया। सामने ही ऊँचे-ऊँचे पद्मक नामक वृक्षोंसे भरी हुई नीली वनस्थलियोंसे सुशोभित अरिष्ट-पर्वत दिखायी दे रहा था। शत्रुओंका दमन करनेवाले हनुमान्‌जी उसके उन्नत शिखरपर चढ़ गये। अनेकों झरने उस पर्वतकी शोभा बढ़ा रहे थे। राशि-राशि शिलाओंसे वह भरा था। महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और नागोंका वहाँ निवास था। लताओं और वृक्षोंके द्वारा वह सब ओरसे आच्छादित था। वहाँ स्वादिष्ट फलोंसे लदे हुए वृक्षों और कन्द-मूल आदिकी अधिकता थी।

हनुमान्‌जीको भगवान् श्रीरामके दर्शनकी जल्दी पड़ी थी। अतः वे हर्षमें भरकर बड़े वेगसे पैर आगे बढ़ाते जाते थे। उस समय उनके पैरोंकी धमकसे उस रमणीय शैल-शिखरकी शिलाएँ भारी आवाजके साथ टूटकर चूर-चूर हो जाती थीं। सबसे ऊपरकी चोटीपर चढ़कर महाकपि हनुमान्‌जीने अपने शरीरको बहुत बड़ा बना लिया और दक्षिणसे उत्तर-तटपर जानेके लिये भयंकर समुद्रकी ओर देखा। तत्पश्चात् वे पर्वतसे उछलकर वायुकी भाँति आकाशमें जा पहुँचे। उनके पैरोंसे दबाये जानेके कारण उस श्रेष्ठ पर्वतसे बड़ी भयंकर आवाज हुई और वह अपने काँपते हुए शिखरों, टूटकर गिरते हुए वृक्षों तथा भाँति-भाँतिके प्राणियोंसहित जमीनमें धँस गया। हनुमान्‌जीके महान् वेगसे कम्पित हो फूलोंसे लदे हुए अनेकों वृक्ष इस प्रकार धरतीपर गिर पड़े, मानो उन्हें वज्र मार गया हो। उस समय किन्नर, नाग, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर उस धँसते हुए पर्वतको छोड़कर अन्तरिक्षमें स्थित हो गये। अरिष्ट-पर्वत तीस योजन ऊँचा और दस योजन चौड़ा था, फिर भी महाबली हनुमान्‌जीके चरणोंसे दबकर भूमिके बराबर हो गया। जिसकी ऊँची-ऊँची तरङ्गें उठकर अपने किनारोंका चुम्बन करती हैं, उस खारे पानीके भयानक समुद्रको लीलापूर्वक लाँघ जानेकी इच्छासे हनुमान्‌जी आकाशमें उड़ने लगे। उनका वेग महान् था। वे पंखवाले पर्वतकी भाँति उड़ रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो वे आकाशको ग्रस लेंगे और नक्षत्रों-सहित सूर्यमण्डलको हड़प जायँगे।

हनुमान्‌जी बादलोंके समूहको खींचते हुए-से अपार महासागरके पार जा रहे थे। आसमानमें सफेद, काले, हरे और लाल रंगके बड़े-बड़े मेघ दिखायी दे रहे थे। वे कभी उनमें प्रवेश करते और कभी बाहर निकलते थे। इस प्रकार छिपते और प्रकाशित होते हुए वे चन्द्रमाकी भाँति दृष्टिगोचर होने लगे। अपने महान् सिंहनादसे मेघोंकी गर्जनाको भी मात करते हुए महातेजस्वी हनुमान्‌जी समुद्रके मध्यभागमें आ पहुँचे और पर्वतराज मैनाकका स्पर्श करके धनुषसे छूटे हुए बाणकी भाँति तीव्र वेगसे आगे बढ़ गये। उत्तर-तटके कुछ निकट पहुँचकर उन्होंने पुनः बड़े जोरसे गर्जना की, जिससे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं। फिर वे अपने मित्रोंको देखनेके लिये उत्सुक होकर उनके विश्रामस्थानकी ओर बढ़े और पूँछ हिलाते हुए सिंहनाद करने लगे। वायुपुत्र हनुमान्‌के दर्शनकी इच्छासे जो महाबली शूरवीर वानर उत्तर-तटपर पहलेसे बैठे थे, उन्होंने मेघकी गर्जनाके समान उनका सिंहनाद सुना। उसे सुनकर सभी वानर अपने सुहृद् हनुमान्‌जीको देखनेकी अभिलाषासे उत्कण्ठित हो गये। जाम्बवान्‌के हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे सब वानरों-को अपने पास बुलाकर इस प्रकार बोले—'इसमें सन्देह नहीं कि हनुमान्‌जी सब प्रकारसे अपना कार्य सिद्ध करके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

आ रहे हैं। कृतकार्य हुए बिना इनकी ऐसी गर्जना नहीं हो सकती।'

महात्मा हनुमान्‌जीकी भुजाओं और जाँघोंका महान् वेग देख तथा उनका सिंहनाद सुन सभी वानर हर्षमें भरकर इधर-उधर उछलने-कूदने लगे। वे हनुमान्‌जीको देखनेकी इच्छासे एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर तथा एक शिखरसे दूसरे शिखरपर चढ़ने लगे। वृक्षोंकी सबसे ऊँची शाखापर खड़े होकर वे अपने स्पष्ट दिखायी पड़नेवाले वस्त्र हिलाने लगे। पुनः उन महाकपिको नीचे उतरते देख सभी वानर हाथ

जोड़कर खड़े हो गये। पर्वताकार शरीर धारण करनेवाले अत्यन्त वेगशाली हनुमान्‌जी अरिष्ट-पर्वतसे उछलकर महेन्द्र-गिरिके शिखरपर, जो वृक्षोंसे भरा था, कूद पड़े। उस समय सभी श्रेष्ठ वानर प्रसन्नचित्त हो महात्मा हनुमान्‌जी-को चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये तथा भाँति-भाँतिके फल-मूलोंकी भेंटें लाकर उनका स्वागत-सत्कार करने लगे। हनुमान्‌जीने जाम्बवान् आदि वृद्ध गुरुजनों तथा कुमार अङ्गदको प्रणाम किया। फिर जाम्बवान् और अङ्गदने भी आदरके योग्य हनुमान्‌जीका सत्कार किया तथा दूसरे-दूसरे वानरोंने भी उन्हें स्वागत-सत्कारके द्वारा सन्तुष्ट किया। इसके बाद उन्होंने संक्षेपमें निवेदन किया—'मुझे सीतादेवीका दर्शन हो गया।' तदनन्तर वालिकुमार अङ्गदका हाथ अपने हाथमें लेकर हनुमान्‌जी महेन्द्रगिरिके रमणीय प्रदेशमें, जो वनस्थलीके बीचमें था, जा बैठे और सबके पूछनेपर बोले—'मैंने जानकीजीको अशोक-वाटिकाके भीतर देखा। अत्यन्त भयंकर आकारवाली राक्षसियाँ उनकी रखवाली करती हैं। साध्वी सीता भगवान् श्रीरामको देखनेके लिये बहुत उत्सुक हैं। वे उपवासके कारण बहुत थक गयी हैं। दुर्बल और मलिन हो रही हैं। उनके केश जटाके रूपमें बदल गये हैं।'

'सीताका दर्शन हो गया' यह वचन वानरोंको अमृतके समान मधुर प्रतीत हुआ। यह उनके महान् प्रयोजनकी सिद्धिका सूचक था। हनुमान्‌जीके मुखसे यह शुभ संवाद सुनकर वानर बड़े प्रसन्न हुए। कोई हर्षनाद करने लगे। कोई गरजने और कोई-कोई किलकारियाँ भरने लगे। कितने ही वानर हर्षमें भरकर छलाँगें मारते हुए दौड़कर हनुमान्‌जीको छूने लगे। हनुमान्‌जीकी उपर्युक्त बात सुनकर अङ्गदने समस्त वानर-वीरोंके बीचमें यह उत्तम बात कही—'कपिश्रेष्ठ! बल और पराक्रममें तुम्हारे समान कोई नहीं है; क्योंकि तुम इस विशाल सागरको लाँघकर फिर इस पार लौट आये। एकमात्र तुम्हीं हमलोगोंको जीवन प्रदान करने-वाले हो। तुम्हारे ही प्रसादसे हम सब लोग सफलमनोरथ होकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलेंगे। अपने स्वामीके प्रति तुम्हारी भक्ति, तुम्हारा पराक्रम और तुम्हारा धैर्य अद्भुत है; सौभाग्यकी बात है कि तुम रघुनाथजीकी यशस्विनी पत्नी सीतादेवीका दर्शन कर आये। अब भगवान् श्रीरामका सीताके वियोगसे उत्पन्न शोक दूर हो जायगा।' तत्पश्चात् सभी श्रेष्ठ वानर समुद्र-लङ्घन तथा लङ्का, रावण और सीताके दर्शनका समाचार सुननेके लिये एकत्रित हुए और अङ्गद, हनुमान् एवं जाम्बवान्‌को सब ओरसे घेरकर पर्वतकी बड़ी-बड़ी शिलाओंपर आनन्दपूर्वक बैठ गये। वे सब-के-सब हाथ जोड़े हुए थे और सबकी आँखें हनुमान्‌जीके मुखपर लगी थीं।

तदनन्तर जब सभी वानर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये, तब हर्षमें भरे हुए जाम्बवान्‌ने पवनकुमार हनुमान्‌जीसे कार्यसिद्धिका समाचार पूछा—'महाकपे! तुमने भगवती सीताको कैसे देखा? वे किस प्रकार वहाँ रहती हैं? क्रूर कर्म करनेवाले रावणका उनके प्रति कैसा बर्ताव है? तुमने किस तरह सीताको ढूँढ़ निकाला और उन्होंने तुमसे क्या कहा? ये सारी बातें ठीक-ठीक बताओ। यह सब सुन लेनेपर



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हमलोग आगेके कार्यका विचार करेंगे।' जाम्बवान्‌के इस प्रकार पूछनेपर हनुमान्‌जीके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने सीतादेवीको मस्तक झुकाकर मन-ही-मन प्रणाम किया और समुद्रको लाँघनेसे लेकर लङ्कामें प्रवेश करने, अशोक-वाटिकामें जाकर जानकीजीका दर्शन करने, रावणके साथ हुई उनकी बातचीत सुनने, फिर उन्हें श्रीरामका सन्देश सुनाकर मुद्रिका देने और बदलेमें उनसे चूड़ामणि प्राप्त करने, अशोक-वाटिकाको उजाड़ने, राक्षसोंका संहार करने, फिर इन्द्रजित्‌के द्वारा बाँधे जाकर रावणके दरबारमें ले जाये जाने और पूँछमें आग लगाये जानेपर उसी आगसे समस्त लङ्कापुरीको जलाने तथा पुनः जानकीजीका दर्शन करके समुद्र-पार लौट आनेतकका सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

## वानरोंका सीताको ले आनेके लिये उत्साह, जाम्बवान्‌की सम्मतिसे सबका किष्किन्धाकी ओर लौटना और मधुवनका यथेष्ट उपभोग करना

वायुपुत्र हनुमान्‌जीने फिर कहा—'कपिवरो! श्रीरामचन्द्रजीका उद्योग और सुग्रीवका उत्साह सफल हुआ। सीताजीका पातिव्रत्य देखकर मेरा मन प्रसन्न हो गया। आर्या सीताके समान जिस नारीका शील होगा, वह अपनी तपस्यासे सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर सकती है अथवा कुपित होनेपर सारे जगत्‌को जला सकती है। हाथसे छू जाने-पर आगकी लपट भी वह काम नहीं कर सकती, जो क्रोध दिलानेपर जनककिशोरी सीता कर सकती हैं। इस कार्यमें मुझे जहाँतक सफलता मिली है, वह सब आपलोगोंको मैंने बता दिया। अब जाम्बवान् आदि प्रमुख वानरोंकी सम्मति लेकर हमें सीताको साथ लेकर ही श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणका दर्शन करना चाहिये। मैं अकेला ही राक्षसोंसहित लङ्कापुरीका विध्वंस करने और सेवकोंसहित रावणको मार डालनेके लिये पर्याप्त हूँ; फिर यदि सम्पूर्ण अस्त्रोंको जाननेवाले आप-जैसे वीर, बलवान् एवं शक्तिशाली वानरोंकी सहायता मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है। आपलोगोंकी आज्ञा न होनेके कारण ही मेरा पुरुषार्थ मुझे रोक रहा है। समुद्र अपनी मर्यादाको छोड़ सकता है और मन्दराचल अपने स्थानसे हट सकता है; परन्तु जाम्बवान्‌को युद्धमें शत्रुसेना विचलित नहीं कर सकती। सम्पूर्ण राक्षसों एवं उनके पूर्वजोंको भी यमलोक पहुँचानेके लिये वालीके वीर पुत्र अङ्गद अकेले ही काफी हैं। महात्मा नीलके समान वेगसे मन्दराचल भी विदीर्ण हो सकता है, फिर युद्धमें राक्षसोंका नाश करना उनके लिये कौन बड़ी बात है? कोई बताये तो भला—देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व, नाग और पक्षियोंमें भी कौन ऐसा है, जो मैन्द अथवा द्विविदके साथ लोहा ले सके? दुरात्मा रावणकी अशोक-वाटिकामें शिंशपा-वृक्षके नीचे साध्वी सीता दीन-अवस्थामें बैठी हुई हैं। जैसे शचीका इन्द्रमें अनुराग है, उसी प्रकार विदेहनन्दिनी सीता अनन्य चित्तसे भगवान् श्रीराममें अनुरक्त हैं। वे एक वस्त्र धारण किये धूलसे मलिन हो रही हैं। राक्षसियोंके बीचमें रहती हैं और उन्हें बारंबार धमकाया जाता है। पृथ्वी ही उनकी शय्या है। रावणकी ओर उनके हृदयमें पूर्ण विरक्ति है। उन्होंने यह निश्चय कर लिया है कि मैं मर जाऊँगी, पर रावणको स्वीकार न करूँगी। श्रीराम और सुग्रीवकी मित्रताका समाचार सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। भगवती सीता एक तो स्वभावसे ही दुबली-पतली हैं, दूसरे श्रीरामचन्द्रजीके वियोगसे और भी कृश हो गयी हैं। जैसे प्रतिपदाके दिन स्वाध्याय करनेवाले विद्यार्थीकी विद्या क्षीण हो जाती है, उसी प्रकार उनका शरीर भी अत्यन्त दुर्बल हो गया है।* इस प्रकार सीता निरन्तर शोकमग्न रहती हैं। अब इस विषयमें जो कुछ करना हो, वह सब आपलोग करें।'

हनुमान्‌जीके वचन सुनकर वालिकुमार अङ्गदने कहा—'अश्विनीकुमारके पुत्र ये मैन्द और द्विविद दोनों ही अत्यन्त वेगशाली और बलवान् हैं। पूर्वकालमें लोक-पितामह ब्रह्माजीने इन्हें यह अनुपम वरदान दिया था कि तुम्हें कोई भी मार नहीं सकेगा। ये ही दोनों यदि क्रोधमें भर जायँ तो हाथी, घोड़े और रथोंसहित समस्त लङ्काका नाश कर सकते हैं, भले ही बाकी सब वानर बैठे रहें। वायुपुत्र हनुमान्‌जीने अकेले जाकर अपने पराक्रमसे ही लङ्काको फूँक डाला—यह बात हम सब लोगोंने सुन ही

* सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च कर्शिता।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता॥ (५९। ३१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ली। आप-जैसे ख्यातनामा पुरुषार्थी वीरोंके रहते हुए मुझे भगवान् श्रीरामके सामने ऐसा कहना उचित नहीं जान पड़ता कि 'हमने सीतादेवीका दर्शन तो किया, पर उन्हें साथ नहीं ला सके।' अतः निशाचर-समुदायके साथ लङ्काको जीतकर, युद्धमें रावणका वध करके, सीताको साथ ले, सफलमनोरथ एवं प्रसन्नचित्त होकर हमलोग श्रीरामचन्द्रजीके पास चलें।'

अङ्गदका ऐसा सङ्कल्प जानकर अर्थ-तत्त्वके ज्ञाता जाम्बवान्ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'महाकपे! तुमने अभी जो विचार प्रकट किया, वह मुझे ठीक नहीं जान पड़ा; क्योंकि वानरराज सुग्रीव तथा परम बुद्धिमान् भगवान् रामने हमें केवल दक्षिण-दिशामें सीताको ढूँढ़नेकी आज्ञा दी है, साथ ले आनेकी नहीं। यदि हमलोग किसी तरह सीताको जीतकर उनके पास ले भी चलें, तो वे अपने कुलके व्यवहारका स्मरण करते हुए हमारे इस कार्यको पसंद नहीं करेंगे। उन्होंने सभी श्रेष्ठ वानरोंके सामने स्वयं ही सीताको जीतकर लानेकी प्रतिज्ञा की है, अतः वे उसे मिथ्या कैसे करेंगे? ऐसी दशामें हमलोगोंका किया हुआ कार्य निष्फल हो जायगा। उससे रघुनाथजी सन्तुष्ट नहीं होंगे। अतएव जहाँ श्रीराम, लक्ष्मण और महातेजस्वी सुग्रीव मौजूद हैं, वहीं इस कार्यकी सूचना देनेके लिये हम सब लोगोंको चलना चाहिये। राजकुमार! जो कार्य तुमने सोचा है, वह हमलोगोंके लिये अशक्य नहीं है; तथापि इस विषयमें भगवान् श्रीरामका जैसा निश्चय हो, उसीके अनुसार तुम्हें कार्यसिद्धिका विचार करना चाहिये।'

तदनन्तर महाकपि हनुमान् और अङ्गद आदि सभी वीरोंने जाम्बवान्की बात मान ली। फिर वे सब लोग वायुपुत्र हनुमान्को आगे करके मन-ही-मन प्रसन्नताका अनुभव करते हुए महेन्द्र-पर्वतसे उछलते-कूदते चल दिये। वे विशालकाय वानर अपने शरीरसे मानो आकाशको आच्छादित करते हुए जा रहे थे। उस समय अत्यन्त वेगशाली महाबली हनुमान्की सिद्ध आदि भूतगण प्रशंसा कर रहे थे। कार्यसिद्धिका यश पाकर वानरोंका उत्साह बहुत बढ़ा हुआ था। सभी भगवान् श्रीरामको प्रिय संवाद सुनानेके लिये उत्सुक थे। सबके मनमें उनका कार्य सिद्ध करनेका दृढ़ निश्चय था। आकाशमें छलाँग मारते हुए वे श्रेष्ठ वानर सैकड़ों वृक्षोंसे भरे हुए एक सुन्दर वनमें पहुँचे, जो अपनी शोभासे नन्दनवनको भी मात कर रहा था। वह मधुवनके नामसे प्रसिद्ध था। महावीर दधिमुख, जो वानरश्रेष्ठ सुग्रीवके मामा थे, उस वनकी रक्षा किया करते थे। अङ्गद आदि सभी वानर सुग्रीवके उस मनोरम वनमें जाकर मधु पीनेके लिये उत्कण्ठित हो गये और इसके लिये उन्होंने अत्यन्त हर्षमें भरकर कुमार अङ्गदसे आज्ञा माँगी। कुमारने अपने बड़े-बूढ़े जाम्बवान् आदि मन्त्रियोंसे सलाह लेकर वानरोंको मधु पीनेका आदेश दे दिया। युवराजकी आज्ञा पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे इधर-उधर नाचने-कूदने लगे। कोई गाने, कोई हँसने; कोई प्रणाम करने और कोई कूदते हुए चारों ओर विचरने लगे। कोई दौड़कर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षको जाते थे, तो कोई पर्वत-शिखरसे जमीनपर कूदते थे। कितने ही प्रचण्ड वेगवाले वानर पृथ्वीसे दौड़कर बड़े-बड़े वृक्षोंकी चोटीतक पहुँच जाते थे।

उस समय कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने कहा—'वानरो! तुम सब लोग बेखटके मधुका पान करो। मैं तुम्हारे विरोधियोंको रोकूँगा।' उनकी बात सुन युवराज अङ्गद प्रसन्न होकर बोले—'वानरगण अपने इच्छानुसार मधुपान करें। हनुमान्जी इस समय कार्य सिद्ध करके लौटे हैं; अतः इनकी बात तो मुझे माननी ही पड़ेगी।' अङ्गदके मुँहसे ऐसी बात सुनकर सभी वानर 'धन्य-धन्य' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे। तत्पश्चात् वे मधुवनमें प्रवेश करके इच्छानुसार मधु पीने और रसीले फल खाने लगे। जो कोई रक्षक रोकने आते,

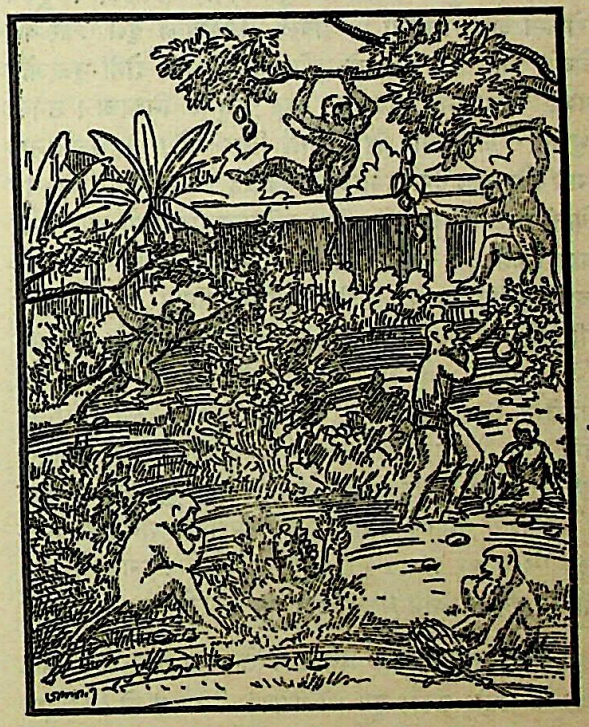

उन्हें वे उछल-उछलकर मारते थे। कोई वानर टोली बाँधकर एक-एक दोना मधु एकत्रित करके सन्तोषके साथ पीते थे। एक झुंड रखवारोंको पीटता, दूसरा दल मधु-पान करता तथा तीसरा समुदाय मधुको पी-पीकर फेंकता दिखायी देता था। कोई-कोई उन्मत्त होकर एक-दूसरेको मोमसे मारते थे। कितने ही वानर वृक्षोंके नीचे डालियाँ पकड़कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


खड़े हो गये थे। कुछ लोग पत्ते बिछाकर पृथ्वीपर सो रहे। मधुकी रक्षा करनेवाले वानर, जो दधिमुखके सेवक थे, इन भयंकर वानरोंद्वारा रोके जानेपर इधर-उधर भाग गये। उनमेंसे कई रखवालोंको अङ्गदके दलवालोंने जमीनपर पटककर घुटनोंसे खूब रगड़ा था और कितनोंको पैर पकड़कर आकाशमें उछाल दिया था। वे सब-के-सब अत्यन्त घबराये हुए दधिमुखके पास गये और कहने लगे—'हनुमान्‌के बढ़ावा देनेसे तमाम वानरोंने बलपूर्वक मधुवनका विध्वंस कर डाला है।'

मधुवनका विनाश देखकर उसके प्रधान रक्षक दधिमुखको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अपने सेवकोंको सान्त्वना देते हुए कहा—'आओ, चलो इन घमंडी वानरोंके पास, मैं बलपूर्वक इन्हें रोकूँगा। ये इस वनका उत्तम मधु पीये डालते हैं।' दधिमुखके इन वचनोंको सुनकर वे रक्षक वानर उनके साथ फिर मधुवनमें गये। दधिमुख एक बहुत बड़ा वृक्ष हाथमें लिये सबके बीचमें चल रहे थे और वे वानर भी शिला, पत्थर तथा वृक्ष लिये दौड़ रहे थे। वे सब-के-सब क्रोधमें भरे थे। वनमें पहुँचकर उन्होंने मधु पीनेवाले वानरोंको बलपूर्वक रोकना आरम्भ किया। महाबली दधिमुखको वृक्ष लेकर बड़े वेगसे आते देख अङ्गदने कुपित होकर उन्हें दोनों भुजाओंसे पकड़ लिया और पटककर खूब कचूमर निकाला। उनकी भुजाएँ, जाँघें और मुँह—सभी छिल गये। वे खूनसे नहा गये और कुछ देरतक मूर्च्छित पड़े रहे। उन वानरोंके हाथसे किसी तरह छुटकारा मिलनेपर दधिमुख एकान्तमें आये और वहाँ इकट्ठे हुए सेवकोंसे बोले—'आओ, चलो; जहाँ हमारे स्वामी सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके साथ विराजमान हैं, वहीं हम भी चलें। राजाके सामने जाकर सारा दोष अङ्गदके माथे मढ़ देंगे। सुग्रीव बड़े क्रोधी हैं, मेरी बात सुनकर वे इन सभी वानरोंको मरवा डालेंगे।' रक्षकोंसे ऐसा कहकर दधिमुख उन्हें साथ ले सहसा उड़ चले और थोड़ी ही देरमें सुग्रीवके पास जा पहुँचे। फिर श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवको देखकर वे आकाशसे समतल भूमिपर उतरे। महावीर दधिमुख समस्त रक्षकोंसे घिरकर उदास मुँह किये सुग्रीवके निकट गये और हाथ जोड़ उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उन्होंने प्रणाम किया।

उन्हें माथा टेककर प्रणाम करते देख वानरश्रेष्ठ सुग्रीव बोले—'उठो, उठो; तुम मेरे पैरोंपर कैसे पड़े हो? मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ, सच्ची बात बताओ—क्या तुम किसीके भयसे यहाँ आये हो?' सुग्रीवके आश्वासन देनेपर दधिमुखने कहा—'राजन्! वानरोंने आपके मधुवनका नाश कर डाला। मैंने इन रक्षकोंके साथ उन्हें रोकनेकी बहुत चेष्टा की, किन्तु वे मुझे कुछ भी न समझकर बड़ी मौजके साथ फल खाते और मधु पीते हैं। ये रक्षक वानर बड़े क्रोधमें भरकर उन्हें रोकनेके लिये गये, किन्तु उलटे उन्हीं लोगोंने उन्हें मारकर मधुवनसे बाहर निकाल दिया। यही नहीं, उन्होंने कितने ही रखवालोंको थप्पड़से मारा है, कितनोंको घुटनोंसे घायल किया है और बहुतोंको इच्छानुसार घसीट-घसीटकर आकाशमें उछाल दिया है। इस प्रकार आप-जैसे स्वामीके रहते हुए ये शूरवीर रक्षक पीटे गये और अपराधी वानर मनमाने ढंगसे समूचे मधुवनका उपभोग कर रहे हैं।' इस तरह दधिमुख जब वानरराज सुग्रीवसे मधुवनके लूटे जानेका समाचार कह चुके, तब परम बुद्धिमान् लक्ष्मणने पूछा—'राजन्! यह वनकी रक्षा करनेवाला वानर यहाँ किस लिये उपस्थित हुआ है? किस कार्यके लिये इतना दुखी होकर निवेदन करता था?'

महात्मा लक्ष्मणके इस प्रकार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल सुग्रीवने कहा—'आर्य लक्ष्मण! ये वीर वानर दधिमुख कह रहे हैं कि अङ्गद आदि वीरोंने मधुवनका सारा मधु पी डाला। यह सुनकर मुझे अनुमान होता है कि वे जिस कार्यके लिये गये थे, उसको अवश्य ही पूरा करके आये हैं। सिद्धकार्य हुए बिना वे ऐसी धृष्टता नहीं कर सकते थे। ये रक्षक जब रोकनेके लिये गये हैं, तब उन्होंने इन सबको गिरा-गिराकर घुटनोंसे रगड़ा है और बलवान् दधिमुखको भी कुछ नहीं गिना है। ये मेरे मधुवनके प्रधान रक्षक हैं। मैंने स्वयं ही इनको वहाँ नियुक्त कर रखा है। अब इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं रहा कि हनुमान्‌ने ही भगवती सीताका दर्शन किया है। उनके सिवा दूसरा कोई इस कार्यको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है। वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌में कार्य सिद्ध करनेकी शक्ति, बुद्धि, उद्योग, पराक्रम और शास्त्रीय ज्ञान—सभी कुछ मौजूद हैं। जिस दलके नेता जाम्बवान् और महाबली अङ्गद हों तथा अधिनायक कपिश्रेष्ठ हनुमान् हों, उसके द्वारा कभी न्यायके विपरीत आचरण नहीं हो सकता। दक्षिण-दिशासे सीताजीका पता लगाकर लौटे हुए अङ्गद आदि वीरोंने मधुवनको उजाड़ा है और उसका यथेष्ट उपभोग किया है। साथ ही रखवालोंको गिरा-गिराकर मारा भी है, जिसका समाचार देनेके लिये ये विख्यात पराक्रमी दधिमुख, जो बड़े मधुरभाषी हैं, यहाँ आये हैं। महाबाहु लक्ष्मण! निश्चय ही सीताका ठीक ठीक पता लग गया है; क्योंकि वे सभी वानर उस वनमें जाकर मधु पी रहे हैं। विदेहनन्दिनीको देखे बिना उस दिव्य वनका, जो देवताओंसे मेरे पूर्वजको वरदानके रूपमें प्राप्त हुआ है, वे कभी नाश नहीं कर सकते थे।'

सुग्रीवके मुखसे निकली हुई कानोंको सुख देनेवाली यह बात सुनकर धर्मात्मा लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीके साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत प्रसन्न हुए। सुग्रीवने हर्षमें भरकर वनकी रक्षा करनेवाले दधिमुखसे कहा—'उन वानरोंने मेरा कार्य सिद्ध करके मधुवनका उपभोग किया है, इसके लिये मैं उनपर प्रसन्न हूँ। मैंने उनका अपराध क्षमा कर दिया। अब तुम शीघ्र लौट जाओ और मधुवनकी रक्षा करो तथा हनुमान् आदि समस्त वानरोंको शीघ्र यहाँ भेज दो। मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।'

## मधुवनसे वानरोंका जाना और वहाँ हनुमान्‌जीका श्रीरामको सीताके समाचार तथा सन्देश सुनाना

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर दधिमुखने श्रीराम और लक्ष्मणसहित उन्हें प्रणाम किया और वानरोंके साथ वे आकाशमें उड़े। जितनी शीघ्रतासे वे पहले आये थे, उतनी ही तीव्र गतिसे गये और आकाशसे पृथ्वीपर उतरकर उस वनमें प्रविष्ट हुए। फिर उन वानरोंके पास जा, हाथ जोड़कर अङ्गदसे बोले—'सौम्य! इन रक्षकोंने अज्ञानवश आपलोगोंको रोका था, इसके लिये आप अपने मनमें क्रोध न करें। आप दूरसे थके-माँदे आये हैं, अतः फल खाइये और मधु पीजिये। यह सब आपका ही है। आप हमारे युवराज और इस वनके स्वामी हैं। मूर्खतावश पहले मैंने क्रोध प्रकट किया था, उसे आप क्षमा करें। मैंने यहाँसे जाकर आपके चाचासे इन सब वानरोंके वनमें पधारनेका हाल कहा था। वानरोंके साथ आपका आना सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। इस वनके उजाड़नेका हाल सुनकर उन्हें तनिक भी रोष नहीं हुआ। उन्होंने बड़े हर्षके साथ कहा है कि सबको शीघ्र यहाँ भेजो।' दधिमुखके वचन सुनकर अङ्गदने कहा—'वानरो! जान पड़ता है भगवान् श्रीरामने हमलोगोंके लौटनेका समाचार सुन लिया; क्योंकि ये बहुत प्रसन्न होकर वहाँकी बात सुना रहे हैं। अतः कार्य पूरा हो जानेपर अब हमलोगोंको यहाँ अधिक नहीं ठहरना चाहिये। जहाँ सुग्रीव हैं, वहीं चलना उचित है। यद्यपि मैं युवराज हूँ, तो भी आपलोगोंपर हुक्म नहीं चला सकता। आपलोगोंने बहुत बड़ा काम किया है, अतः बलपूर्वक आपपर शासन चलाना कदापि उचित नहीं है।' अङ्गदके ये वचन सुनकर हर्षमें भरे हुए वानरोंने कहा—'वानरश्रेष्ठ! स्वामी होकर भी अपने अधीन रहनेवाले लोगोंसे कौन इस तरहकी बात करेगा? प्रायः सब लोग ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त होकर अपनेको ही सर्वोपरि मानने लगते हैं। आपकी यह बात आपके ही योग्य है। दूसरे किसीके मुँहसे प्रायः ऐसी बात नहीं निकलती। यह नम्रता आपकी भावी उन्नतिका परिचय दे रही है।'

उनके ऐसा कहनेपर अङ्गदने कहा—'अच्छा, तो अब हमलोग चलें।' इतना कहते ही वे सब महाबली वानर-यूथपति अङ्गदके पीछे-पीछे आकाशमें उड़े। उनके द्वारा सारा आकाश आच्छादित-सा हो रहा था तथा वे गुलेलद्वारा फेंके हुए पत्थरोंकी भाँति तीव्र गतिसे जा रहे थे। अङ्गद और हनुमान्‌को आगे करके सभी वेगवान् वानर बड़े जोरसे गर्जना करते हुए सहसा किष्किन्धाके सामने आकाशमें जा पहुँचे। अङ्गदके पहुँचते ही वानरराज सुग्रीव शोकसन्तप्त श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'भगवन्! आप धैर्य धारण करें, निश्चय ही भगवती सीताका पता लग गया है। अन्यथा अवधि बीत जानेपर ये वानर यहाँ लौटकर नहीं आ सकते थे। अङ्गदकी अत्यन्त प्रसन्नतासे भी मुझे इसी बातकी सूचना मिल रही है। कार्य सिद्ध न होनेपर भी इस तरह वानरोंका लौटना हो तो सकता है, परन्तु उस दशामें अङ्गदका मुँह उदास होता। ये मन-ही-मन घबराये हुए होते। जनककिशोरीका दर्शन किये बिना ये मेरे पूर्वजोंद्वारा सुरक्षित पिता-पितामहोंके मधुवनका ध्वंस न करते। प्रभो! आपके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है। आप इस समय चिन्ता न करें। ये मेरे प्रिय वानर जो इतने अहङ्कारमें भरे आ रहे हैं, कार्य सिद्ध किये बिना इनका इस तरह आना सम्भव नहीं था। इनके मधु पीने और वन उजाड़नेसे मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है।'

इसी समय सुग्रीवको गर्जना करते हुए वानरोंकी किलकारियाँ सुनायी दीं, मानो वे किष्किन्धामें पहुँचकर अपनेद्वारा कार्यसिद्धिकी सूचना दे रहे हों। उनकी आवाज सुनकर सुग्रीवका हृदय हर्षसे भर गया तथा वे वानर भी अङ्गद और हनुमान्‌को आगे करके श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छासे नीचे उतरे और रघुनाथजी तथा सुग्रीवके पास गये। महाबाहु हनुमान्‌जीने भगवान् श्रीरामके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और कहा—'देवी सीता पातिव्रत्यके कठोर नियमोंका पालन करती हुई शरीरसे सकुशल हैं। मैं उनका दर्शन कर आया हूँ।' हनुमान्‌जीके मुखसे ये अमृतके समान वचन सुनकर श्रीराम और लक्ष्मणको बड़ा हर्ष हुआ तथा उन्होंने बड़े आदरके साथ उनकी ओर देखा। तब बातचीतका ढंग जाननेवाले पवनकुमार हनुमान्‌जीने पहले भगवती सीताके उद्देश्यसे दक्षिण-दिशाकी ओर मस्तक झुकाया तथा सीताजीका दर्शन जिस प्रकार हुआ था, वह सारा वृत्तान्त सुनाकर उनकी दी हुई दिव्य मणि भगवान्‌को अर्पण की। वह मणि अपने तेजसे दिप रही थी। उसे देनेके पश्चात् हनुमान्‌जीने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मैं जनककिशोरी सीताके दर्शनकी इच्छासे उनका पता लगाता हुआ सौ योजन चौड़े समुद्रको लाँघ गया । वहीं दुरात्मा रावणकी नगरी लङ्का है, जो समुद्रके दक्षिण-तटपर बसी हुई है । लङ्कामें पहुँचकर मैंने रावणके अन्तःपुरमें प्रमदा-वनके भीतर राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई भगवती सीताको देखा । वे अपनी सारी अभिलाषाओंको आपमें ही केन्द्रित करके किसी तरह जीवन धारण कर रही हैं । बड़ी भयंकर राक्षसियाँ उनपर पहरा देनेके लिये तैनात हैं । वे बारंबार उन्हें डराती-धमकाती रहती हैं । वीरवर ! भगवती सीता बड़े दुःखसे दिन बिता रही हैं । वे सदा आपकी ही चिन्तामें डूबी रहती और जमीनपर सोती हैं । जैसे जाड़ेके दिनोंमें पाला पड़नेके कारण कमलिनी सूख जाती है, उसी प्रकार उनका शरीर भी निस्तेज हो गया है । उन्होंने प्राण त्याग देनेका निश्चय कर लिया है । उनका मन निरन्तर आपमें ही लगा रहता है । मैंने बड़ा प्रयत्न करके किसी तरह उनका पता लगाया और धीरे-धीरे इक्ष्वाकुवंशकी कीर्तिका वर्णन करके किसी प्रकार उनके हृदयमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न किया । तत्पश्चात् वार्तालाप करके मैंने यहाँकी सब बातें उन्हें बतलायीं । आपकी सुग्रीवके साथ मित्रता सुनकर उन्हें बड़ी खुशी हुई । उनका पातिव्रत्य सुदृढ़ है, वे निरन्तर आपमें ही भक्ति रखती हैं । पुरुषोत्तम ! इस प्रकार जनकनन्दिनीको मैंने आपकी भक्तिसे प्रेरित होकर कठोर तपस्या करते देखा । उन्होंने आते समय मुझसे कहा था—'पवनकुमार ! तुम यहाँ जैसी मेरी हालत देख रहे हो, वह सब भगवान् श्रीरामको बताना और इस मणिको बड़े यत्नसे सुरक्षितरूपमें ले जाकर उनके हाथोंपर रखना ।' उनकी आज्ञाके अनुसार मैं इसे यत्नपूर्वक सुरक्षित रखकर लाया हूँ । उन्होंने यह भी कहा था कि 'आपने मेरे ललाटपर मैनसिलका जो तिलक किया था, उसका स्मरण कीजिये । आर्यपुत्र ! मैं एक मास और जीवन धारण करूँगी । उसके बाद राक्षसों-के वशमें पड़कर प्राण त्याग दूँगी ।' रघुनन्दन ! विशाल नेत्रोंवाली धर्मपरायणा सीताने आपसे निवेदन करनेके लिये जो बातें मुझसे कही थीं, वे सब मैंने आपको सुना दीं । अब आप शीघ्र ही समुद्र पार करनेका प्रयत्न कीजिये ।"

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर दशरथनन्दन श्रीरामने उस मणिको अपनी छातीसे लगा लिया और उसकी ओर देख-देखकर शोकसे व्याकुल हो आँखोंमें आँसू भरकर सुग्रीवसे

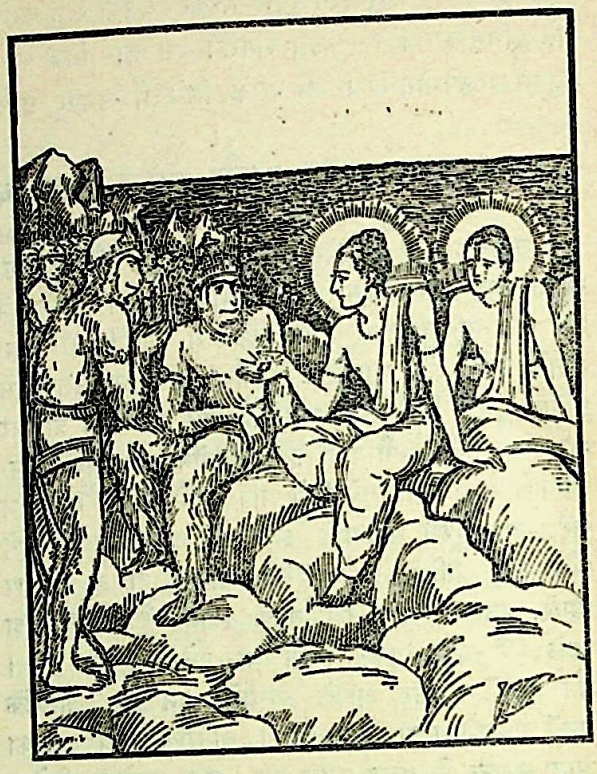

कहा—'मित्र ! इस मणिको देखकर आज मेरा हृदय द्रवीभूत हो रहा है । मेरे श्वशुरने विवाहके समय यह मणि सीताको दी थी । इसकी उत्पत्ति समुद्रसे हुई है । इन्द्रने किसी यज्ञमें सन्तुष्ट होकर राजा जनकको यह मणि अर्पित की थी । यह सदा मेरी प्रियाके सीमन्तपर शोभा पाती थी । आज इसे देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो सीता ही मुझे मिल गयी ।' [ फिर लक्ष्मणसे बोले—] 'सुमित्रानन्दन ! आज मैं सीतासे रहित इस मणिको देख रहा हूँ; इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या होगी ।' [ तत्पश्चात् हनुमान्‌से बोले—] 'वायुनन्दन ! जहाँ तुमने मेरी प्रियाको देखा है, वहीं मुझे भी ले चलो । उसका समाचार पाकर मैं अब एक क्षण भी यहाँ नहीं रुक सकता । हाय ! मेरी सती-साध्वी सीता बड़ी भीरु है; वह उन घोर-रूपधारी भयंकर राक्षसोंके बीचमें कैसे रहती होगी ? हनुमान् ! ठीक-ठीक बताओ, सीताने क्या-क्या कहा है ? जैसे रोगी दवा लेनेसे जीवन धारण करता है, उसी प्रकार मैं भी सीताके समाचार और सन्देश सुनकर जीवन धारण करूँगा । कहो, मेरे बिना दुःख-पर-दुःख उठाती हुई जनककिशोरी कैसे जी रही है ?' महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जीने सीताकी कही हुई सब बातें उनसे निवेदन कर दीं ।

॥ सुन्दरकाण्ड समाप्त ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण

## युद्धकाण्ड

### श्रीरघुनाथजीद्वारा हनुमान्‌जीकी प्रशंसा, लङ्का-विजयके लिये परामर्श और सेनाको प्रस्थान करनेका आदेश

हनुमान्‌जीके यथार्थ रीतिसे कहे हुए वाक्योंको सुनकर भगवान् श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने इस प्रकार कहा—'हनुमान्‌ने बड़ा भारी काम किया है, संसारमें ऐसा काम होना कठिन है। पृथ्वीमें कोई दूसरा तो ऐसा करनेकी बात सोच भी नहीं सकता। गरुड़, वायु और हनुमान्‌को छोड़कर मुझे ऐसा कोई नहीं दिखायी देता जो महासागरको लाँघ सके। फिर लङ्का भी रावणके द्वारा सुरक्षित है। उसपर आक्रमण करना देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—इनमेंसे किसीके भी वशकी बात नहीं है। भला, उसमें किसका प्रवेश हो सकता है। समुद्र-लङ्घन आदि कार्योंके द्वारा अपनी शक्तिके अनुसार पूरा पराक्रम करके हनुमान्‌ने एक सच्चे सेवकके योग्य सुग्रीवका बहुत बड़ा काम किया है। जो सेवक स्वामीके द्वारा किसी दुष्कर कार्यमें नियुक्त होनेपर उसे प्रेमपूर्वक करता है, वह सेवकोंमें श्रेष्ठ कहा जाता है। जो एक कार्यमें नियुक्त होकर योग्यता और सामर्थ्य होनेपर भी स्वामीके दूसरे प्रिय कार्यको नहीं करता, उस सेवकको मध्यम कोटिका कहते हैं। और जो मालिकके किसी काममें नियुक्त होकर योग्य और समर्थ होनेपर भी उसे सावधानीसे पूरा नहीं करता, उसे अधम सेवक कहा जाता है। हनुमान्‌ने स्वामीके कार्यमें नियुक्त होकर उसे पूरा कर दिखाया; उसे पूरा करनेमें अपनी स्थितिमें भी किसी प्रकारकी लघुता नहीं आने दी और सुग्रीवको भी सन्तुष्ट कर दिया। आज हनुमान्‌ने सीतासे मिलकर धर्मानुसार मेरी, रघुवंशकी और महाबली लक्ष्मणकी रक्षा की है। मैं दीन हूँ—असमर्थ हूँ, मेरे मनमें तो यही बात कसक रही है कि जिसने मुझे ऐसा प्रिय संवाद सुनाया, उसका मैं कोई वैसा ही प्रिय कार्य नहीं कर सका।' ऐसा कहते-कहते रघुनाथजीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्रेमसे पुलकित हो गये और उन्होंने अपनी आज्ञाके पालनमें सफलता पाकर लौटे हुए हनुमान्‌को हृदयसे लगा लिया। फिर थोड़ी देर विचार करके उन्होंने वानरराज सुग्रीवको सुनाकर कहा—'सीताकी खोजका काम तो सुचारुरूपसे सम्पन्न हो गया, किन्तु समुद्रकी बात सामने आनेपर मेरा मन फिर हताश हो जाता है। समुद्रको पार करना तो बड़ा ही कठिन काम है; फिर यहाँ जो वानर इकट्ठे हुए हैं, वे समुद्रके उस तीरपर कैसे पहुँचेंगे?'

तब शोकातुर रघुनाथजीसे सुग्रीवने कहा—'वीरवर! आप दूसरे सामान्य पुरुषोंकी भाँति क्यों सन्ताप कर रहे हैं? यह व्यर्थका सन्ताप छोड़िये। जब सीताका समाचार मिल गया और शत्रुके घरका ठिकाना मालूम हो गया, तो अब मुझे आपके दुःखका कोई कारण दिखायी नहीं देता। हमलोग बड़े-बड़े नाकोंसे भरे हुए समुद्रको लाँघकर लङ्कापर चढ़ जायँगे और आपके शत्रुको नष्ट कर डालेंगे। जो पुरुष निरुत्साह, दीन और शोकाकुल रहता है, उसके सब काम बिगड़ जाते हैं और वह बड़ी विपत्तिमें पड़ जाता है*। ये वानर-यूथपति सब प्रकार सामर्थ्यवान् और बड़े वीर हैं तथा आपका प्रिय करनेके लिये आगमें प्रवेश करनेका भी साहस रखते हैं। मैं यह बात इनका उत्साह देखकर और अपने विचारसे भी जानता हूँ। रघुनाथजी! अब आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे समुद्रपर सेतु बँध सके और हम उस नगरीको देख सकें। एक बार लङ्का दीख जाय; फिर तो आप यह समझिये कि रावण युद्धमें दिखायी दिया और मारा गया। हाँ, समुद्रपर पुल बाँधे बिना तो देवराज इन्द्रके सहित देवतालोग भी लङ्काका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। अतः जब लङ्कातक समुद्रपर सेतु बँध

---

* निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति॥ (२।६१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगा तो हमारी सारी सेना उस पार चली जायगी और फिर तो आप निश्चय मानें—विजय हमारी ही होगी। अतः आप यह घबराहट छोड़ दें; क्योंकि शोक सब कामोंको बिगाड़ देता है। आप बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं, अतः हम-जैसे मन्त्रियोंकी सहायतासे अवश्य ही शत्रुपर विजय प्राप्त कर सकते हैं। रघुनाथजी! मुझे तो तीनों लोकोंमें ऐसा कोई नहीं दिखायी देता, जो धनुष धारण कर लेनेपर आपके सामने ठहर सके। ये वानर संग्राममें बड़े शूरवीर हैं और इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं। ये पत्थर और पेड़ोंकी वर्षा करके ही उन सब शत्रुओंका संहार कर डालेंगे। यदि किसी प्रकार मैं इस वानर-सेनाको समुद्रके उस पार पहुँची देख सकूँ तो शत्रुको मैं संग्राममें मरा हुआ ही समझता हूँ। और अधिक क्या कहूँ? [ मुझे तो निश्चय है ] आप सब प्रकार विजयी होंगे; क्योंकि ऐसे ही शकुन हो रहे हैं और मेरे हृदयमें भी उल्लास है।'

सुग्रीवके ये युक्तियुक्त और सच्चे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने वैसा ही करनेका निश्चय किया और फिर हनुमान्‌जीसे कहा—'मैं तपस्याके द्वारा तो सेतु बाँधने, समुद्रको सोखने और इसे पार करनेमें सर्वथा समर्थ हूँ। लङ्कापुरी दुर्गम सुनी जाती है, सो उसमें कितने दुर्ग हैं? मैं देखे हुएके समान उसका पूरा विवरण स्पष्ट जानना चाहता हूँ। तुमने रावणकी सेनाका परिमाण, दरवाजोंको दुर्गम बनानेके साधन, लङ्काकी रक्षाके उपाय और राक्षसोंके भवन—ये सभी सावधानीसे ठीक-ठीक देखे हैं; अतः तुम इन सबका वर्णन करो।' रघुनाथजीके ये वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ हनुमान्‌जीने कहा—'सुनिये; मैं लङ्काके दुर्ग, उसकी रक्षाके साधन और जिस प्रकार सेनाके द्वारा वह सुरक्षित है, यह सब आपको सुनाता हूँ। लङ्काके चार बहुत बड़े दरवाजे हैं। उनमें बड़े मजबूत किवाड़ लगे हैं और मोटी-मोटी अर्गलाएँ हैं। उनपर बड़े विशाल और प्रबल उपलयन्त्र रखे हैं, जिनसे आक्रमण करनेवाली शत्रुकी सेनाको रोक दिया जाता है। वीर राक्षसोंने उन दरवाजोंपर काले लोहेकी सैकड़ों तोपें बनाकर रख दी हैं। उस पुरीके चारों ओर सोनेका परकोटा है, जिसे तोड़ना बड़ा ही कठिन काम है। उसमें मणि, मूँगे, वैदूर्य और मोतियोंका काम हो रहा है। फिर उसके सब ओर बड़ी भयानक और गहरी ठंडे जलकी खाई है। उसमें ग्राह और मछलियाँ भरी हैं। उस खाईपर द्वारोंतक पहुँचनेके लिये चार संक्रम[1] ( रास्ते ) हैं। उनमें यन्त्र लगे हैं और उनके आस-पास बड़े-बड़े मकानोंकी कतारें हैं। जब शत्रुकी सेना आती है, तब यन्त्रोंके द्वारा उन संक्रमोंकी रक्षा की जाती है तथा यन्त्रोंके द्वारा ही उन्हें सब ओर खाइयोंमें गिरा दिया जाता है। उनमें एक संक्रम तो बड़ा ही सुदृढ़ और अभेद्य है। वहाँ बहुत बड़ी सेना रहती है और वह सोनेके अनेकों खंभों एवं चबूतरोंसे सुशोभित है। रघुनाथजी! रावण स्वयं सावधान रहकर सेनाके निरीक्षणमें तत्पर रहता है। लङ्कापर चढ़नेके लिये कोई अवलम्ब नहीं है, वह देवताओंके लिये भी दुर्गम और बड़ी ही भयावनी है। उसके चारों ओर जल ( समुद्र ), पर्वत, वन और कृत्रिम ( खाई-परकोटा आदि )—चार प्रकारके दुर्ग हैं। वह बहुत दूरतक फैले हुए समुद्रके उस पार बसी हुई है; वहाँ जानेके लिये नौकाका भी रास्ता नहीं हैं; क्योंकि उसमें लक्ष्यका भी किसी प्रकार पता रहना सम्भव नहीं है। वह दुर्गम पुरी पर्वतके शिखरपर बसायी गयी है; देखनेमें वह देवपुरीके समान है, हाथी-घोड़ोंसे भरी हुई तथा अत्यन्त दुर्जय है। दुरात्मा रावणकी उस लङ्कापुरीको खाई, तोपें और तरह-तरहके यन्त्र सुशोभित करते हैं। लङ्काके मध्यभागमें सैकड़ों-हजारों राक्षस रहते हैं। उस नगरमें कुल मिलाकर पूरे एक करोड़ दुर्जय राक्षस हैं। किन्तु मैंने उन संक्रमोंको तोड़ दिया है, खाईको पाट दिया है, लङ्कापुरीको जला डाला है और उसके परकोटोंको गिरा दिया है। हम किसी-न-किसी उपायसे एक बार समुद्रको पार कर लें। फिर आप लङ्काको तो वानरोंके द्वारा नष्ट ही समझिये। अङ्गद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान्, पनस, नल और सेनापति नील—बस, इतने वानर लङ्का-विजय करनेके लिये पर्याप्त हैं; बाकी सेनाकी तो आपको आवश्यकता ही क्या है। ये सब तैरकर उस महानगरीमें पहुँच जायँगे और उसे पर्वत, वन, खाई, दरवाजे, परकोटे एवं मकानोंके सहित नष्ट करके सीताजीको ले आयेंगे। अतः आप शीघ्र ही आज्ञा दीजिये और उचित मुहूर्तमें सेनाके प्रस्थानका विचार कीजिये।'

हनुमान्‌जीके वचनोंको क्रमशः ध्यानपूर्वक सुनकर सत्यपराक्रमी महातेजस्वी भगवान् श्रीरामने कहा—'हनुमान्! मैं

१. मालूम होता है 'संक्रम' इस प्रकारके पुल थे, जिन्हें जब आवश्यकता पड़ती थी तब यन्त्रोंद्वारा गिरा दिया जाता था। इसीसे शत्रुकी सेना आनेपर उसे खाईमें गिरा देनेकी बात कही गयी है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमसे सच कहता हूँ—तुमने उस भयानक राक्षसकी जिस लङ्कापुरीका वर्णन किया है, उसे मैं शीघ्र ही नष्ट कर दूँगा। सुग्रीव! तुम इसी समय सेनाके प्रस्थानकी तैयारी करो। इस विजय-मुहूर्त्तमें हमारी यात्रा बहुत उपयुक्त होगी, इस समय सूर्य भी मध्य आकाशमें स्थित है। आज उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र है, कल चन्द्रमा हस्त-नक्षत्रपर आ जायगा। अतः हम सम्पूर्ण सेनाके साथ आज ही कूच करें। इस समय मेरे सामने जो शुभ शकुन हो रहे हैं, उनसे भी निश्चय होता है कि मैं रावणको मारकर सीताको ले आऊँगा। इनके सिवा मेरी यह आँख भी फड़क रही है, यह भी मानो मेरी विजय और मनोरथ-सिद्धि-को सूचित करती है।' इसपर वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणने उनके कथनका अनुमोदन किया। तब तत्त्वज्ञ और धर्मप्राण भगवान् श्रीरामने कहा—'इस सेनाके आगे सबसे पहले एक लाख वेगवान् वानरोंको लेकर सेनापति नील मार्ग देखनेके लिये चलें। नील! तुम सारी सेनाको ऐसे मार्गसे लेकर चलो, जिसमें फल-मूलकी अधिकता हो, शीतल जल मिल सके और मधु मिलनेका भी सुभीता हो। यदि दुष्ट राक्षस हमारे रास्तेके फल-मूल और जलको [ विष आदिसे ] दूषित करने लगें तो तुम सर्वदा सावधान रहकर उनसे इनकी रक्षा करना। वानरोंको चाहिये कि जहाँ गड्ढे, दुर्गम वन और साधारण जंगल हों, वहाँ कूद-कूदकर शत्रुओंकी छिपी हुई सेनाका पता लगायें। [ ऐसा न हो कि हम आगे निकल जायँ और शत्रु अकस्मात् पीछेसे आक्रमण कर दे।] पर्वतके समान विशालकाय गय, गवय और गवाक्ष भी सेनाके आगे-आगे चलें। वानरोंके सेनापति ऋषभ वानरी सेनाके दायें भागमें रहकर उसकी रक्षा करें तथा वेगवान् और दुर्जय गन्धमादन सेनाके बायें भागमें चलें। इन्द्र जैसे ऐरावतपर चढ़कर चलते हैं, उसी प्रकार मैं हनुमान्‌के कंधेपर सवार होकर सारी सेनाको प्रसन्न करता हुआ उसके बीचमें चलूँगा तथा लक्ष्मण साक्षात् यमराजके समान अङ्गदकी पीठपर चढ़कर चलें। ऋक्षराज जाम्बवान्, सुषेण और वेगदर्शी—ये तीन सेनाके पिछले भागकी रक्षा करें।'

## वानर-सेनाका प्रस्थान और समुद्र-तटपर उसका पड़ाव

श्रीरामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर महाबली सुग्रीवने सब वानरोंको यथोचित आज्ञा दी। तब वे सब-के-सब बड़ी फुर्तीसे गुफा और पर्वत-शिखरोंसे कूदकर चलने लगे। फिर वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणजीके निवेदन करनेपर धर्मात्मा श्रीरामने भी असंख्य वानरोंके साथ दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया। उनके पीछे-पीछे वानरोंकी वह विशाल सेना चली। उसमें कोई वानर उछलते-कूदते चल रहे थे, कोई गर्जना करते चलते थे, कोई मीठे और सुगन्धित फल खाते जाते थे और कोई मञ्जरियोंसे लदे बड़े-बड़े वृक्ष लेकर चल रहे थे। सबसे आगे ऋषभ, नील और कुमुद अनेकों वानरोंके साथ रास्ता ठीक करते जाते थे। उस सारी सेनाके बीचमें वानरराज सुग्रीव तथा श्रीराम और लक्ष्मण थे। शतबलि नामका एक वानर दस करोड़ वानरोंके साथ अकेला ही सारी सेनाकी देख-भाल कर रहा था। सौ करोड़ वानरोंके साथ केसरी और पनस सेनाके दक्षिण-भागकी तथा अनेकों वानरोंके सहित गज और अर्क उसके वाम-भागकी रक्षा करते थे। इसी प्रकार बहुत-से भालुओंके साथ सुषेण और जाम्बवान् सेनाके पिछले भागकी रक्षा कर रहे थे। बलीमुख, प्रजङ्घ, जम्भ और रभस—ये सब ओर वानरोंको शीघ्रता करनेके लिये कह रहे थे। इस प्रकार वे बलोन्मत्त वानर-वीर बराबर चले जा रहे थे। चलते-चलते उन्होंने पर्वतश्रेष्ठ सह्यगिरि देखा, जिसके आस-पास और भी करोड़ों पर्वत थे। श्रीरामजीकी आज्ञा थी कि रास्तेमें कोई किसी प्रकारका उपद्रव न करे। इससे डरकर वे सब वानर फूले हुए सरोवर, सुन्दर ताल तथा नगर और गाँवोंसे दूर हटकर चलते थे। इस प्रकार वानरोंकी वह विशाल सेना भयङ्कर शब्द करते हुए समुद्रके ज्वारके समान बड़े वेगसे चल रही थी।

लक्ष्मणजी अङ्गदके कंधेपर बैठे हुए थे। वे शकुनोंके द्वारा कार्य-सिद्धिकी बात अच्छी तरह जान लेते थे। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'राघव! मुझे पृथ्वी और आकाशमें बहुत अच्छे-अच्छे शकुन दिखायी दे रहे हैं। ये सब आपके मनोरथकी सिद्धिको सूचित करते हैं। इनसे निश्चय होता


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि आप शीघ्र ही रावणको मारकर हरी हुई सीताजीको प्राप्त करेंगे और अपने कार्यमें सफल होकर अयोध्याको पधारेंगे। देखिये, सेनाके पीछे-पीछे शीतल, मन्द और सुखमय पवन चल रहा है; ये मृग और पक्षी कानोंको प्रिय लगनेवाली मधुर बोली बोल रहे हैं; सब दिशाएँ प्रसन्न हैं; सूर्य निर्मल दिखायी दे रहे हैं तथा यह व्यूहबद्ध वानरी सेना बड़ी शोभासम्पन्न जान पड़ती है। आर्य! यह सब देखकर आपको प्रसन्न होना चाहिये।'

वानरोंकी सेना सारी पृथ्वीको घेरकर चल रही थी। नख और दाँत ही उनके शस्त्र थे। वे हाथ और पैरोंकी अँगुलियोंसे बड़ी धूल उछालते हुए चल रहे थे। उस धूलने सूर्यके प्रकाशको धुँधला करके सारे संसारको छिपा-सा दिया। जिस समय वह वानरी सेना किसी नदीको पार करती थी, उस समय कई योजनोंतक उसकी धारा उलटी बहने लगती थी। वह सेना निर्मल सरोवर, वृक्षोंसे लदे हुए पर्वत, समतल भूखण्ड और फलोंवाले वन—इन सभी स्थानोंके मध्यमें, इधर-उधर तथा ऊपर-नीचे सब ओर फैलकर चल रही थी। सब वानर बड़े प्रसन्न तथा वायुके समान वेगवाले थे। रघुनाथजीकी कार्य-सिद्धिके लिये उनका पराक्रम उबला पड़ता था और बलके उद्रेकमें वे एक-दूसरेको अपना उत्साह और पराक्रम दिखाते चलते थे। वे रास्तेमें दो प्रकारसे अपनी मस्ती प्रकट करते थे। उनमेंसे कोई तो बड़ी तेजीसे चलते थे और कोई उछलते जाते थे। वह विशाल सेना रात-दिन चलती रहती थी। सभी वानरोंको युद्धका बड़ा चाव था और वे बड़ी तेजीसे चल रहे थे। सीताजीको छुड़ानेकी लालसासे उन्होंने रास्तेमें दो घड़ी भी विश्राम नहीं लिया।

भगवान् श्रीराम वृक्षोंसे भरे हुए विचित्र वन तथा सह्य और मलय पर्वतोंकी नदियों और सोतोंको देखते चल रहे थे। महेन्द्र-पर्वतके समीप पहुँचनेपर वे उसके वृक्षोंसे सुशोभित शिखरपर चढ़ गये। फिर महेन्द्र-पर्वतसे उतरकर सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ समुद्रतटके रमणीय वनमें आये। वहाँका पथरीला किनारा निरन्तर उठनेवाली जलकी तरङ्गोंसे धुल गया था। उस लंबे-चौड़े समुद्रतटपर आकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'सुग्रीव! लो, हम समुद्रपर तो आ गये। अब हमारे आगे फिर वह पहली ही चिन्ता उपस्थित है। यहाँसे आगे तो यह सुन्दर तीरवाला समुद्र ही है; इसे बिना कोई उपाय किये पार करना सम्भव नहीं है। अच्छा तो, अब हम यहीं डेरा डालें और जिस प्रकार यह वानरी सेना समुद्रके उस पार पहुँच सके, उसके विषयमें विचार करें।' यही सब सोचकर महाबाहु श्रीरामने समुद्रतटपर सेनाको पड़ाव डालनेकी आज्ञा दी। उन्होंने कहा—'कोई भी सेनापति अपनी सेनाको छोड़कर अन्यत्र न जाय; क्योंकि हमें राक्षसोंकी ओरसे किसी गुप्त भयकी आशङ्का है। अतः वानर-वीरोंको अपने-अपने यूथकी रक्षाके लिये चला जाना चाहिये।'

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा सुनकर सुग्रीव और लक्ष्मणने सारी सेना समुद्रके तटपर वृक्षोंकी छायामें ठहरायी। समुद्रके पास वह विशाल सेना दूसरे समुद्रके समान जान पड़ती थी। उसके चलने-फिरनेसे इतना कोलाहल हो रहा था कि उसने समुद्रके गर्जनको भी दबा दिया था। भगवान् श्रीरामके कार्यमें तत्पर वह वानरी सेना तीन भागोंमें ठहरायी गयी। वहाँसे समुद्र बहुत दूरतक फैला हुआ दिखायी दे रहा था, उसके बीचमें कहीं भी ठहरनेका स्थान नहीं था और राक्षस भी उसमें रहते थे। प्रदीप्त फणोंवाले सर्प, विशालकाय जलचर और पर्वतोंसे वह भरा हुआ था। वह अगाध राक्षसालय सर्वथा दुर्गम था, उसे नौकादिकी सहायतासे भी पार करना सम्भव नहीं था। उसमें वायुकी प्रेरणासे मगर और नाकोंसे भरी हुई जलकी बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठ और गिर रही थीं तथा वह गहराईमें पातालतक चला गया था। [ दूसरा तट न दीखनेके कारण समुद्र और आकाश परस्पर मिले हुए जान पड़ते थे ] तथा आकाश समुद्रके समान और समुद्र आकाशके समान दिखायी देता था। वायुके वेगसे उसके जलमें बड़ी हलचल मची हुई थी। तरङ्गें उठनेके कारण उसमें बड़ा शब्द हो रहा था। यह सब दृश्य वानरलोग विस्मित होकर देख रहे थे।

नीलने अपनी रक्षामें समर्थ उस वानर-सेनाको बड़ी कुशलतासे समुद्रके उत्तर तटपर ठहराया। उसकी रक्षाके लिये द्विविद और मैन्द—ये दो वानर सब ओर चक्कर लगाते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते थे। इसी समय श्रीरामचन्द्रजीने अपने पास बैठे हुए लक्ष्मणकी ओर देखकर कहा—'लक्ष्मण! शोकका ऐसा

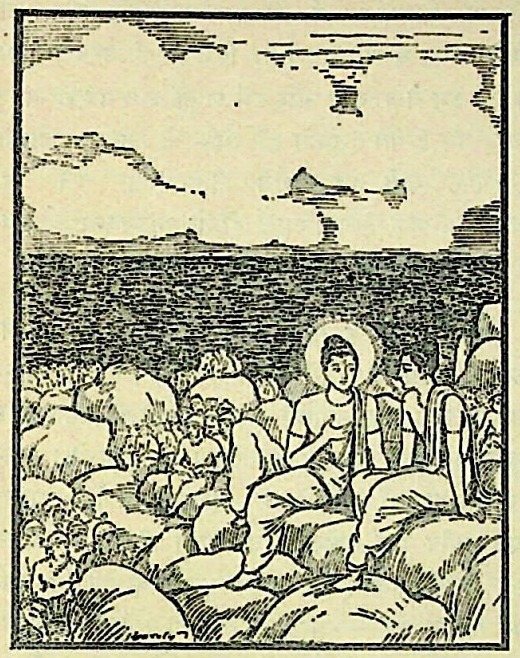

स्वभाव है कि समय बीतनेपर वह कम हो जाता है; परन्तु सीताको न देखनेसे मेरा शोक तो दिनों-दिन बढ़ रहा है। मैं सुनता हूँ कि सीता अभी जीवित है, इसीसे जी रहा हूँ। ऐसा कब होगा, जब शत्रुओंको परास्त करके मैं बढ़ी हुई राज-लक्ष्मीके समान कमलनयनी सुन्दरी सीताको देख सकूँगा! राजा जनककी दुलारी पुत्री, दशरथजीकी पुत्रवधू और मेरी प्रेयसी सीता राक्षसियोंके बीचमें कैसे सोती होगी? वह तो स्वभावसे ही दुर्बल है। अब देश कालकी विपरीतता तथा शोक और अनशन आदिके कारण वह और भी लट गयी होगी। मैं राक्षसराज रावणकी छातीमें बाणोंकी वर्षा करके अपना और सीताका मानसिक शोक कब दूर करूँगा? सीता साक्षात् देवकन्याके समान है, वह उत्कण्ठापूर्वक मेरे गलेसे लगकर कब आनन्दाश्रु बहायेगी? सीता-वियोग-जनित इस दारुण शोकको मैं कब त्याग सकूँगा?' मतिमान् श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार विलाप कर रहे थे कि इतनेमें ही सूर्य अस्ताचलपर जा पहुँचे। तब लक्ष्मणजीके ढाढ़स बँधानेपर उन्होंने कमलनयनी सीताका चिन्तन करते हुए सन्ध्योपासन किया।

## राक्षसोंके साथ रावणका परामर्श तथा विभीषणके समझानेके अनन्तर उस दिनकी सभा विसर्जित करना

इधर महात्मा हनुमान्‌जीने लङ्कामें जो अत्यन्त भयावह लीला की थी, उसे देखकर राक्षसराज रावणने सब राक्षसोंसे कहा—'वह अकेला बंदर इस दुर्धर्ष पुरीका तिरस्कार करके इसमें घुस आया और सीतासे भी भेंट की। यही नहीं, उसने अनेकों अच्छे-अच्छे राक्षसोंको मार गिराया और सारी लङ्कापुरीमें खलबली मचा दी; अतः आपलोग यह विचार करें कि अब हमें क्या करना चाहिये। वीरो! बुद्धिमानोंका कहना है कि विजयका मूल सत्परामर्श है, इसीसे मैं रामके विषयमें आपलोगोंसे सलाह करना चाहता हूँ। संसारमें उत्तम, मध्यम और अधम—तीन प्रकारके लोग होते हैं; मैं उन सबके गुण-दोषोंका वर्णन करता हूँ। जो पुरुष अपने योग्य मित्रों, समान-दुःखवाले बन्धुओं और इनसे भी बढ़कर अपने हितकारियोंके साथ सलाह करके कार्यका आरम्भ करता है, उसे उत्तम पुरुष कहते हैं। जो अकेला ही अपने कर्तव्यका विचार करता है, अकेला ही धर्ममें मन लगाता है और अकेला ही सब काम करता है, उसे मध्यम पुरुष कहते हैं तथा जो गुण-दोषका विचार न करके और दैवका भी आश्रय छोड़कर केवल 'करूँगा' इसी बुद्धिसे कार्य आरम्भ करता है और फिर उसकी उपेक्षा कर देता है, वह अधम पुरुष है। जिस प्रकार ये पुरुष उत्तम, मध्यम और अधम—भेदसे तीन प्रकारके हैं वैसे ही निश्चय भी उत्तम, मध्यम और अधम—तीन प्रकारके समझने चाहिये। जिसमें शास्त्रोक्त दृष्टिसे सब मन्त्री एकमत होकर प्रवृत्त होते हैं, उसे उत्तम निश्चय कहते हैं। जहाँ प्रारम्भमें कई प्रकारके मतभेद होनेपर भी अन्तमें सबका एकमत हो जाय, वह मध्यम निश्चय है और जहाँ अपनी-अपनी बुद्धिकी प्रधानता रखकर स्पर्धापूर्वक भाषण किया जाय और एकमत होनेपर भी जिससे कल्याणकी सम्भावना न हो, वह अधम निश्चय कहा जाता है; अतः आप सभी बुद्धिमान्‌लोग अच्छी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तरह सलाह करके कोई एक कार्य निश्चित करें उसीको मैं अपना कर्तव्य समझूँगा। [अब किसी-न-किसी प्रकारका निश्चय करना आवश्यक हो गया है;] क्योंकि सहस्रों धीर-वीर वानरोंके साथ राम हमपर चढ़ाई करनेके लिये आ रहे हैं। यह बात भी निश्चित है कि वे अपने सुयोग्य छोटे भाई और सारी सेनाके सहित आसानीसे समुद्रको पार कर लेंगे। वे या तो समुद्रको ही सुखा डालेंगे या अपने पराक्रमसे कोई दूसरा उपाय करेंगे। ऐसी स्थितिमें वानरोंसे विरोध आ पड़नेपर नगर और सेनाके लिये जो भी हितकर हो, वैसी सलाह आपलोग दीजिये।'

राक्षसोंको न तो नीतिका ज्ञान था और न वे शत्रुओंकी शक्तिके विषयमें ही कुछ जानते थे। अतः राक्षसराजके इस प्रकार कहनेपर वे हाथ जोड़कर बोले—'राजन्! हमारे पास परिघ, शक्ति, ऋष्टि, शूल, पट्टिश और भालोंसे लैस बहुत बड़ी सेना मौजूद है; फिर आप चिन्ता क्यों करते हैं? आपने तो भोगवती-पुरीमें जाकर नागोंको भी युद्धमें परास्त कर दिया था। महाबली लोकपाल कुबेरको आपने रुष्ट होकर संग्राममें नीचा दिखाया था और उनसे यह विमान छीन लिया था। महाबाहो! रसातलमें जाकर आपने वासुकि, तक्षक, शङ्ख और जटी आदि नागोंको जीतकर अपने अधीन कर लिया था। दानवलोग बड़े ही बलवान् और वर पाये हुए थे; किन्तु आपने उन्हें भी अपने पुरुषार्थसे वशमें कर लिया था। वरुणके बलवान् पुत्रोंको भी आपने युद्धमें जीत लिया था तथा यमलोकरूप महासमुद्रको मथकर यम और मृत्युपर भी बहुत बड़ी विजय प्राप्त की थी। फिर रामपर विजय पाना कौन बड़ी बात है? महाराज! आप आनन्दसे बैठे रहें, आपको परिश्रम करनेकी क्या आवश्यकता है। इन बंदरोंका तो अकेले ये इन्द्रजित् ही सफाया कर डालेंगे। इन्होंने अत्युत्तम माहेश्वर-यज्ञका अनुष्ठान करके भगवान् शिवसे वह वर प्राप्त किया है, जो संसारमें किसी दूसरेको मिलना बहुत ही कठिन है। इन्होंने समुद्रके समान देवसेनापर काबू करके देवराज इन्द्रको पकड़ लिया और उसे लङ्कामें कैद कर दिया था; अतः इस कामके लिये भी आप राजकुमार इन्द्रजित्को भेज दें। ये रामचन्द्रके सहित सारी वानर-सेनाको नष्ट कर डालेंगे। राजन्! एक साधारण मनुष्यके कारण प्राप्त हुई इस आपत्तिके विषयमें आपको चिन्ता नहीं होनी चाहिये। आप निश्चय ही रामका वध करेंगे।'

इसके बाद नील मेघके समान वर्णवाले, महान् शूरवीर सेनापति प्रहस्तने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! हमलोग तो देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और नाग आदि सभीको परास्त करनेमें समर्थ हैं; फिर इन दो मनुष्योंकी क्या बात है। हम बेखबर थे और हमें शत्रुके आक्रमणका खटका भी नहीं था, इसीसे हनुमान् हमें धोखा दे गया। नहीं तो, मेरे जीवित रहते वह यहाँसे जीता-जागता कैसे लौट सकता था। यदि आपकी आज्ञा हो तो समुद्रपर्यन्त पर्वत, वन और जंगलोंसे परिपूर्ण सारी पृथ्वीको वानरोंसे रहित कर दूँ।

फिर दुर्मुख नामके राक्षसने क्रोधपूर्वक कहा—'मैं अकेला ही जाकर इसी समय सारे वानरोंको भगा सकता हूँ। चाहे वे भयानक समुद्र, आकाश और पातालमें ही क्यों न घुसे हों।' इतनेमें ही महाबली वज्रदंष्ट्र अपना भयानक परिघ घुमाता हुआ बोल उठा—'मैं अकेला ही सारी वानर-सेनामें तहलका मचा दूँगा तथा इस परिघसे सुग्रीव और लक्ष्मणसहित रामका भी काम तमाम कर दूँगा।' इसके पश्चात् कुम्भकर्णके पुत्र महाबली निकुम्भने क्रोधमें भरकर कहा—'आप सब लोग तो यहीं महाराजके पास रहें, राम और लक्ष्मणको तो मैं अकेला ही मार आऊँगा। इतना ही नहीं, मैं सुग्रीव, हनुमान् और सब वानरोंको भी नष्ट कर डालूँगा।' फिर पर्वतके समान विशालकाय वज्रहनु नामके राक्षसने कहा—'आपलोग निश्चिन्त होकर अपना काम करें और आनन्दसे मद्यपान करें; मैं अकेला ही सुग्रीव, लक्ष्मण, राम, अङ्गद, हनुमान् और सब वानरोंको मार डालूँगा।'

फिर तो निकुम्भ, रभस, सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, अग्निकेतु, दुर्धर्ष, रश्मिकेतु, इन्द्रजित्, प्रहस्त, विरूपाक्ष, वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष और दुर्मुख आदि राक्षस परिघ, पट्टिश, शूल, प्रास, फरसा, धनुष और तलवार लेकर आगे आये और सब-के-सब अपने तेजसे तमक-तमककर कहने लगे—'हम आज ही राम, सुग्रीव और लक्ष्मणको मार डालेंगे तथा हनुमान्को भी नष्ट कर डालेंगे।' इतनेमें ही विभीषणने उन अस्त्र-शस्त्रधारी वीरोंको रोका और उन्हें बैठाकर रावणसे हाथ जोड़कर कहा—'तात! जो काम साम, दान और भेद—इन तीनों उपायोंसे सिद्ध न हो सके, उसीके लिये नीतिज्ञोंने बल-प्रयोग करनेका विधान किया है। देखिये, श्रीरामचन्द्रजी बेखबर नहीं हैं; वे विजयकी इच्छासे आ रहे हैं, और सेना भी उनके साथ है। इस प्रकार यद्यपि वे अजेय हैं, तो भी आपलोग उन्हें परास्त करना चाहते हैं। राक्षसो!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके पास अपार शक्ति और सेना हो, उन शत्रुओंकी सहसा कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। भला, यशस्वी श्रीरामने राक्षसराजका पहले क्या अपकार किया था, जो ये जनस्थानसे उनकी स्त्रीको हर लाये। खरने पहले उनपर आक्रमण किया था, इसलिये उन्होंने उसे युद्धमें मार डाला। प्राणियोंको यथाशक्ति अपने प्राणोंकी रक्षा तो करनी ही चाहिये। यदि इसी कारणसे सीताको हरकर लाया गया हो तो उसे जल्दी ही लौटा देना चाहिये। नहीं तो सीताके कारण ही हमपर बड़ी आपत्ति आनेवाली है। श्रीराम बड़े धर्मात्मा और पराक्रमी हैं, उनसे हमें व्यर्थ वैर नहीं बढ़ाना चाहिये। जबतक हाथी, घोड़े और अनेकों रत्नोंसे भरी हुई लङ्कापुरीको श्रीराम अपने बाणोंसे विध्वंस नहीं करते, जबतक वानरोंकी भयङ्कर सेना इसे नष्ट-भ्रष्ट नहीं करती, तभीतक उन्हें सीता वापस कर दो। यदि श्रीरामकी प्रेयसी पत्नी सीताको स्वयं ही न लौटाया गया, तो यह लङ्कापुरी और सब-के-सब शूरवीर राक्षस नष्ट हो जायँगे। आप मेरे भाई हैं, मैं आपसे विनय करता हूँ और आपके हितके लिये सच्ची बात कहता हूँ—आप श्रीरामचन्द्रको उनकी जानकी लौटा दें।' विभीषणकी बात सुनकर राक्षसराज रावणने उन सबको विदा कर दिया और अपने महलमें चला गया।

## विभीषणका एकान्तमें जाकर रावणको समझाना, रावणका सभामें विचार-विनिमय करना और विभीषणके समझानेपर उसका तिरस्कार करना

दूसरे दिन प्रातःकाल ही धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले विभीषण राक्षसराजके घर गये। रावणका घर पर्वत-शिखरके समान ऊँचा था; उसमें बड़े-बड़े विद्वान् रहते थे और बहुत-से विश्वसनीय राक्षस उसकी रक्षा करते थे। वह भवन गन्धर्व और देवताओंके निवासस्थानके समान था। महातेजस्वी विभीषणने वहाँ जाकर राजसिंहासनपर बैठे हुए रावणको प्रणाम किया। उस समय रावण अपने तेजसे दिप रहा था तथा अनेकों राक्षस उसकी सेवामें लगे हुए थे। विभीषण शिष्टाचारके नियमोंसे पूर्णतया परिचित थे; अतः राजाके द्वारा आँखके इशारेसे बताये हुए सुवर्णजटित सिंहासनपर बैठ गये। फिर उन्होंने बड़ी नम्रतासे एकान्तमें कुछ मन्त्रियोंके सामने रावणसे ये अत्यन्त हितकारी और युक्तियुक्त वचन कहे—'परन्तप! जबसे सीताजी यहाँ आयी हैं, तबसे हमलोगोंको अनेकों अपशकुन दिखायी दे रहे हैं। मन्त्रोंके द्वारा विधिवत् आहुति दिये जानेपर भी अग्नि अच्छी तरह प्रज्वलित नहीं होती, उससे चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। हवनकी सामग्रीमें चींटियाँ देखी जाती हैं। गायोंका दूध सूख-सा गया है। गधों और खच्चरोंके रोंगटे खड़े हो जाते हैं और उनकी आँखोंसे आँसू गिरने लगते हैं। कौवे झुंड-के-झुंड मिलकर बड़ा कर्कश शब्द करते और एकत्रित होकर महलोंपर आ बैठते हैं। गीध भी इकट्ठे होकर नगरके ऊपर मँडराते रहते हैं। दोनों सन्ध्याओंमें सियारिनें नगरके समीप आकर अमङ्गल शब्द करती हैं। ऐसी स्थितिमें मुझे तो यही प्रायश्चित्त अच्छा मालूम होता है कि सीता श्रीरामचन्द्रजीको लौटा दी जायँ। ये अपशकुन सारी जनता तथा राक्षस-राक्षसी, नगर और अन्तःपुर—सभीके लिये हैं। यह बात आपके कानोंतक पहुँचानेमें सभी मन्त्री सङ्कोच करते रहे हैं। परन्तु जो बात मैंने देखी या सुनी है, वह मुझे तो आपके आगे निवेदन कर ही देनी चाहिये। उसपर विचार करके आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।'

इस प्रकार विभीषणने सब मन्त्रियोंके सामने अपने भाई रावणसे ये हितकारी वचन कहे। विभीषणकी ये सार्थक, कोमल और युक्तियुक्त बातें सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ और उसने इस प्रकार उत्तर दिया—'मुझे तो कहीं भी भय नहीं दिखायी देता, राम सीताको कभी नहीं पा सकते; देवताओंके सहित इन्द्रकी सहायता प्राप्त कर लेनेपर भी वे मेरे सामने संग्राममें नहीं टिक सकते।' ऐसा कहकर उसने अपने यथार्थवादी भाई विभीषणको विदा कर दिया।

किन्तु पापी रावण विभीषण-जैसे हितैषी बन्धुओंका तिरस्कार करनेसे और सीताहरण-जैसे पापके कारण अत्यन्त श्रीहीन हो गया। वह सोनेकी जाली और मणि एवं मूँगोंसे विभूषित रथपर चढ़कर सभा-भवनकी ओर गया। उसके आगे-आगे ढाल-तलवार एवं सब प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित राक्षसलोग चले तथा अनेकों राक्षस उसे दायें, बायें और पीछेसे घेरकर चले। इस प्रकार राक्षसोंके द्वारा स्तुति, जयकार और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आशीर्वाद सुनता हुआ रावण राजसभामें पहुँचा। उस सभाके फर्शमें सोने-चाँदीका काम किया हुआ था तथा बीच-बीचमें स्फटिक भी जड़ा था। महातेजस्वी रावणने विश्वकर्मा-की बनायी हुई उस सभामें प्रवेश किया और एक बहुत सुन्दर विशाल सिंहासनपर बैठ गया। फिर उसने अपने फुर्तीले दूतोंको आज्ञा दी—'तुमलोग शीघ्र ही सब राक्षस-सभासदोंको बुला लाओ।' दूतलोग रावणकी आज्ञा पाकर लङ्काके महलों, विहार-स्थानों, शयनगृहों और उद्यानोंमें जा-जा-कर बड़ी निर्भयतासे सबको राजसभामें चलनेका आदेश सुनाने लगे। तब उन राक्षसोंमेंसे कोई रथपर, कोई घोड़ेपर और कोई हाथीपर चढ़कर तथा कोई पैदल ही सभाकी ओर चल दिये। फिर सब सवारियोंको बाहर छोड़कर उन्होंने पैदल ही सभा-भवनमें प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यथायोग्य राक्षसराजको अभिवादन किया। इस प्रकार उस सुवर्णमयी सभामें सैकड़ों शूरवीर पहुँच गये। वे सभी सलाह देनेमें निपुण और कार्योंकी सुगम व्यवस्था करनेमें कुशल थे। उसी समय यशस्वी विभीषण भी एक सुवर्ण-जटित रथपर बैठकर अपने बड़े भाईकी सभामें पहुँचे। उन्होंने अपना नाम लेते हुए बड़े भाईके चरणोंकी वन्दना की। इसी प्रकार प्रहस्त और शुकने भी अभिवादन किया तथा रावणने उन्हें यथायोग्य अलग-अलग आसन दिये। उस समय सभामें जितने राक्षस एकत्रित हुए थे, उनमें न तो कोई असत्यवादी था और न कोई चिल्लाकर बोलनेवाला ही था। वे सभी बड़े वीर थे और रावणके मुँहकी ओर ताकते रहते थे।

उस सारी सभाको देखकर रावणने सेनापति प्रहस्तसे कहा—'सेनापते! तुम ऐसी आज्ञा दो, जिससे तुम्हारे अस्त्र-विद्यामें पारंगत रथी, घुड़सवार, हाथीसवार और पैदल वीर नगरकी रक्षामें तत्पर रहें।' तब प्रहस्त सारी सेनाको लङ्कापुरी-की रक्षामें नियुक्त कर पुनः राक्षसराजके सामने आ बैठा और बोला—'श्रीमहाराजकी सेनाको मैंने नगरके बाहर और भीतर यथास्थान नियुक्त कर दिया है।' प्रहस्तकी बात सुनकर रावणने वहाँ आये हुए अपने सुहृदोंसे कहा—'सभासदो! धर्म, अर्थ और कामविषयक कठिनता उपस्थित होनेपर आप-लोग प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, लाभ-हानि और हिताहितका विचार करनेमें समर्थ हैं। आपलोगोंने परस्पर विचार करके जिन-जिन कार्योंका आरम्भ किया है, मेरे विचारसे उनमें कभी कोई निष्फल नहीं हुआ। मैंने जो काम किया है, उसे मैं पहले ही आप सबके सामने रखना चाहता था; परन्तु कुम्भकर्ण सोये हुए थे, इसलिये मैंने उसकी चर्चा नहीं चलायी। महाबली कुम्भकर्ण सभी शस्त्रधारियोंमें प्रधान हैं। ये छः महीनेसे सो रहे थे, अभी इनकी नींद खुली है। मैं दण्डकारण्यसे रामकी प्रिय पत्नी सीताको हर लाया हूँ। मेरी दृष्टिमें सीताके समान तीनों लोकोंमें कोई दूसरी स्त्री नहीं है। उसका मनोहर नेत्रोंवाला उज्ज्वल मुखमण्डल देखकर मैं कामासक्त हो गया हूँ। परन्तु यह काम कैसे बने—यह बात समझमें नहीं आती। आपलोग अपना-अपना विचार प्रकट करें। आप सबकी सहायतासे ही मैंने देवासुर-संग्राममें विजय प्राप्त की थी। आज भी आप मेरे उसी प्रकार सहायक हैं। वे दोनों राजकुमार सीताका पता पाकर सुग्रीव आदि वानरोंको साथ लिये समुद्रके उस तटपर पहुँच चुके हैं। अब आपलोग आपसमें सलाह करके कोई ऐसी युक्ति बतायें, जिससे वे राजकुमार तो मारे जायँ और सीताको लौटाना न पड़े।'

कामातुर रावणका यह खेदपूर्ण प्रलाप सुनकर कुम्भकर्णको क्रोध आ गया और उसने इस प्रकार कहा—'यह बात तो आपको उसी समय निश्चय कर लेनी चाहिये थी, जब एकाएकी विचार करके ही आप सीताको हर लाये थे। महाराज! आपने यह सब काम बहुत ही अनुचित किया है। इस विषयमें तो आपको हमसे पहले ही परामर्श करना चाहिये था। जो राजा सब कार्य न्यायपूर्वक करता है, उसकी बुद्धि निश्चयपूर्ण होनेके कारण उसे पीछे पछताना नहीं पड़ता। जो विपरीत काम बिना विचारे किये जाते हैं, उनका परिणाम तो दोषयुक्त ही होता है। आपने बिना विचार किये ही यह बहुत बड़ा काम कर डाला है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अभीतक रामने आपका वध नहीं किया। यद्यपि आपने यह काम अपनी योग्यतासे बढ़कर कर डाला है, तथापि आपके शत्रुओंका संहार करके मैं सब ठीक कर दूँगा। आपका शत्रु भले ही इन्द्र, सूर्य, अग्नि, पवन, कुबेर या वरुण ही क्यों न हो, मैं उसके साथ संग्राम करूँगा और इस प्रकार उन दशरथ-कुमारोंको मारकर आपकी विजयके लिये प्रयत्न करूँगा। बस, लक्ष्मणके सहित रामको तो मैं मृत्युके हवाले कर दूँगा और बंदरोंमें जो मुख्य-मुख्य हैं, उन्हें खा जाऊँगा। आप मौजसे विहार कीजिये, अब मेरे हाथसे रामके मारे जानेपर सीता सर्वदाके लिये आपके अधीन हो जायगी।'

तब रावणको कुपित जान महाबली महापार्श्वने कुछ देर सोचकर फिर हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! सीताके साथ आप बलात्कारसे रमण करें। हमलोगोंकी सहायतासे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

महाबली कुम्भकर्ण और इन्द्रजित् वज्रधारी इन्द्रको भी हटा सकते हैं। मुझे तो नीतिनिपुणोंके द्वारा प्रयुक्त साम, दान और भेदको छोड़कर केवल दण्डके द्वारा काम बना लेना ही अच्छा लगता है। यहाँ आपके जो भी शत्रु आयेंगे, उन्हें हम निःसन्देह अपने शस्त्रोंके बलसे काबूमें कर लेंगे।' महापार्श्वके इस प्रकार कहनेपर रावणने उसके वचनोंकी प्रशंसा की और फिर उससे कहा—"महापार्श्व! बहुत दिन हुए एक गुप्त घटना हुई थी, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। एक बार मैंने पुञ्जिकस्थला नामकी अप्सराको पितामहके यहाँ जाते देखा। वह मेरे भयसे लुकती-छिपती जा रही थी। तब मैंने बलात्कारसे उसके साथ भोग किया। उसके बाद जब वह ब्रह्माजीके यहाँ पहुँची तब उन्हें सब बातें मालूम हो गयीं। इसपर उन्होंने कुपित होकर मुझे शाप दिया कि 'आजसे यदि तुम किसी दूसरी स्त्रीके साथ बलात्कारसे समागम करोगे तो अवश्य ही तुम्हारे सिरके सौ टुकड़े हो जायँगे।' उस शापके भयसे ही मैं सीताको बलात्कारसे अपनी शय्यापर नहीं ले जाता। देखो, दाशरथि राम सेना लेकर मेरी ओर बढ़ रहा है; किन्तु मैं अपने धनुषसे छूटे हुए सैकड़ों वज्रसदृश बाणोंसे उसे भस्म कर दूँगा। साथ ही अपनी विशाल सेनाके साथ बढ़कर उसकी सारी सेनाका भी सफाया कर दूँगा। युद्धमें तो हजार नेत्रोंवाला इन्द्र और वरुण भी मेरा सामना नहीं कर सकते। अपने बाहुबलसे ही तो मैंने कुबेरसे सुरक्षित यह लङ्कापुरी जीती है।"

राक्षसराज रावणके ये वचन और कुम्भकर्णकी गर्जना सुनकर विभीषणने रावणसे ये सार्थक और हितकारी वचन कहे—'राजन्! यह सीता तो बड़ा भारी सर्प है, इसे किसने आपके गलेमें लपेट दिया है? जबतक पर्वत-शिखरके समान ऊँचे वानर, जिनके दाँत और नख ही आयुध हैं, लङ्कापर चढ़ाई नहीं करते तथा जबतक श्रीरामचन्द्रजीके वायुके समान वेगवाले वज्रतुल्य बाण राक्षसोंके सिरोंतक नहीं पहुँचते, तबतक आप उन्हें सीताजी सौंप दें। श्रीरामके सामने कुम्भकर्ण, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ या अतिकाय—कोई भी नहीं ठहर सकता। यदि सूर्य या वायु आपकी रक्षा करें, इन्द्र या यम आपको गोदमें छिपा लें अथवा आकाश या पातालमें जाकर आप छिप जायँ, तो भी श्रीरामके हाथसे आप जीवित नहीं बच सकते।'

विभीषणकी यह बात सुनकर प्रहस्तने कहा—'हम देवता या दानव—किसीसे भी कभी नहीं डरते। यक्ष, गन्धर्व, नाग और गरुड़से भी हमें कोई भय नहीं है। फिर एक राजाके छोकरे रामसे हमें संग्राममें क्या भय हो सकता है।' प्रहस्तके ये अहितकर वचन सुनकर धर्म, अर्थ और कामके विचारमें निपुण विभीषणने ये सारगर्भित वचन कहे—'प्रहस्त! महाराज रावण, महोदर, तुम और कुम्भकर्ण जो बातें कह रहे हो, श्रीरामके साथ वे सब होनेकी नहीं हैं। श्रीराम सब प्रकारके कार्यमें कुशल हैं; मेरे, तुम्हारे अथवा और सब राक्षसोंके द्वारा भी उनका वध कैसे हो सकता है? श्रीराम धर्मको ही प्रधान वस्तु मानते हैं, इक्ष्वाकु कुलमें उनका जन्म हुआ है और हैं भी वे महारथी। [ उन्होंने विराध, कबन्ध और वाली-जैसे वीरोंको बात-की-बातमें यमलोक भेज दिया था। ] ऐसे प्रसिद्ध पराक्रमी रघुनाथजीसे सामना पड़नेपर तो देवता भी चौकड़ी भूल जायँगे। प्रहस्त! अभीतक श्रीरामके वज्रतुल्य दुःसह बाण तुम्हारे शरीरको फोड़कर नहीं घुसे हैं, इसीसे तुम इतने बढ़-बढ़कर बोल रहे हो। युद्धमें श्रीरामके सामने ठहरनेकी शक्ति तो रावण, महाबली त्रिशिरा, कुम्भकर्णके पुत्र निकुम्भ, इन्द्रजित्, देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय या अकम्पन—किसीमें भी नहीं है। महाराज रावण तो व्यसनों[1]के वशीभूत हैं, इसलिये सोच-विचारकर काम नहीं करते और राक्षसोंके सत्तानाशके लिये तुम्हारे समान शत्रुतुल्य मित्र इनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। अतः तुम सबको मिलकर इनकी रक्षा करनी चाहिये। मैं तो राक्षसों-सहित इस सारे नगर और बन्धुओंसहित स्वयं महाराजके हितके लिये अपनी यही यथार्थ सम्मति देता हूँ कि वे श्रीरामचन्द्रजीको सीता लौटा दें। वास्तवमें सच्चा मन्त्री तो वही है जो अपनी और शत्रुकी शक्तिको समझकर तथा दोनों पक्षोंकी स्थिति, हानि और वृद्धिका विचार करके स्वामीके हितकी बात कहे।'

विभीषण बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। उनके इन शब्दोंको जैसे-तैसे सुनकर इन्द्रजित्ने कहा—'चाचाजी! बड़े भारी डरपोकोंकी तरह आप ये कैसी निरर्थक बातें कह रहे हैं। जिसने इस कुलमें जन्म न लिया होगा, वह पुरुष भी ऐसी बातें तो नहीं कहेगा। हमारे वंशमें तो एक ये

---

१. राजाओंमें सात व्यसन माने गये हैं।

वाग्दण्डयोस्तु पारुष्यमर्थदूषणमेव च।
पानं स्त्री मृगया द्यूतं व्यसनं सप्तधा प्रभो॥

वाणी और दण्डकी कठोरता, धनका अपव्यय, मद्यपान, स्त्री, मृगया और द्यूत—ये राजाके सात प्रकारके व्यसन हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे चाचा ही बल, वीर्य, पराक्रम, धैर्य, शूरवीरता और तेजसे रहित हैं। उन दोनों राजपुत्रोंको तो हमारा कोई सामान्य राक्षस ही मार डालेगा। फिर, डरपोकोंके सिरताज! आप हमें क्यों डरा रहे हैं? मैंने तीनों लोकोंके स्वामी महान् पराक्रमी इन्द्रको भी स्वर्गसे हटाकर कैद कर लिया था, जोर-जोरसे चिग्घारते हुए ऐरावतको भी पृथ्वीपर पटक दिया था और बलात्कारसे उसके दाँत उखाड़कर सब देवताओंको भयभीत कर डाला था। ऐसा वीर होकर भी भला, उन साधारण मानव-राजकुमारोंको मैं क्यों नहीं मार सकूँगा?'

महाबली इन्द्रजित्के ये वचन सुनकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणने ये गम्भीर अर्थसे युक्त वचन कहे—'भैया! अभी तुम बालक हो, तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। अतः तुम अभी कर्तव्य-अकर्तव्यका यथार्थ निर्णय नहीं कर सकते। इसीसे अपने नाशके लिये तुम बहुत-सी निरर्थक बातें बक गये हो। इन्द्रजित्! तुम पुत्र कहलाकर भी वास्तवमें मित्रके रूपमें रावणके शत्रु ही हो; इसीसे तुम रघुनाथजीके द्वारा अपने पिताके विनाशकी बातें सुनकर भी अज्ञानवश उनकी हाँ-में-हाँ मिला रहे हो। तुम बड़े ही दुष्टबुद्धि हो। तुम और जो तुम्हें यहाँ सलाहकारोंकी सभामें लाया है—दोनों ही वधके योग्य हैं। तुम मूर्ख हो, तुममें गम्भीरताका अभाव है, विनय तुम्हें छूतक नहीं गयी है, तुम्हारा स्वभाव बड़ा तीखा है और तुम्हारी बुद्धि बहुत ही दूषित है। इसीसे बालकोंकी भाँति तुम ऐसी बातें बना रहे हो। भगवान् श्रीरामके बाण साक्षात् ब्रह्मदण्ड, काल और यमदण्डके समान हैं। जब वे सामनेसे छोड़े जायँगे, उस समय किसकी सामर्थ्य है जो उन्हें सह सके। अतः हमलोग धन, रत्न, आभूषण, वस्त्र, दिव्य मणि और सीताजीको श्रीरामकी भेंट करके ही शोकरहित होकर इस नगरमें निवास कर सकते हैं।'

रावणके सिरपर काल मँडरा रहा था। इसलिये उसने विभीषणके ये हितकारी वचन सुनकर उससे कटुतापूर्वक कहा—"विभीषण! शत्रु और कुपित सर्पके साथ तो रहना सम्भव है, किन्तु मित्र कहलानेवाले शत्रुके पक्षपातीका साथ निभाना सम्भव नहीं है। मैं सजातीय बन्धुओंका स्वभाव अच्छी तरह जानता हूँ; जातिवाले सर्वदा दूसरे सजातियोंकी आपत्ति-में ही प्रसन्न हुआ करते हैं। यदि अपना ही कुटुम्बी राज्य प्राप्त कर ले, विद्वान् अथवा धर्मात्मा हो जाय तो कुटुम्बी ही उसका तिरस्कार करना चाहते हैं। जातिवाले बड़े ही दुष्ट होते हैं; इनका हृदय कभी साफ नहीं होता तथा इनसे सर्वदा ही भयकी आशङ्का बनी रहती है। कहते हैं, एक बार कुछ लोगोंको हाथमें फंदा लिये आते देखकर हाथियोंने कहा था कि 'हमें अग्नि, पाश या अन्य किसी दूसरे प्रकारके शस्त्रसे कोई खटका नहीं होता, हमारे लिये तो अपने ही स्वार्थी जाति-भाई भयंकर और खतरेकी चीज हैं। निःसन्देह ये ही हमारे पकड़े जाने-का उपाय बता देते हैं। अतः हम तो सबसे अधिक जातिभयको ही दुःखदायी समझते हैं।' आज सारा संसार मेरा सम्मान करता है; मैं ऐश्वर्यवान्, कुलीन और शत्रुओंके सिरपर स्थित हूँ। अतः ये सब बातें तुम्हें नहीं सुहातीं। जिस प्रकार कमलके पत्तेपर गिरी हुई जलकी बूँदें ठहरतीं नहीं, उसी प्रकार अनार्योंके चित्तसे सुहृदताका सम्पर्क नहीं हो सकता। जैसे हाथी पहले स्नान करके फिर सूँडसे धूल उछालकर अपने शरीरको गँदला कर लेता है, उसी प्रकार दुर्जनोंकी मैत्री कलुषित होती है। कुलकलङ्क राक्षस! तुझे धिक्कार है। यदि कोई दूसरा ऐसी बातें कहता तो इस समयतक जीता नहीं बचता।'

विभीषण न्यायानुकूल बातें कह रहे थे। जब रावणने उनसे ऐसे कठोर वचन कहे, तब वे हाथमें गदा लेकर अन्य चार राक्षसोंके साथ उसी समय उछलकर आकाशमें चले गये और क्रोधमें भरकर कहने लगे—'राजन्! आपकी बुद्धि भ्रममें पड़ी हुई है, आप धर्मपर स्थित नहीं हैं। यों

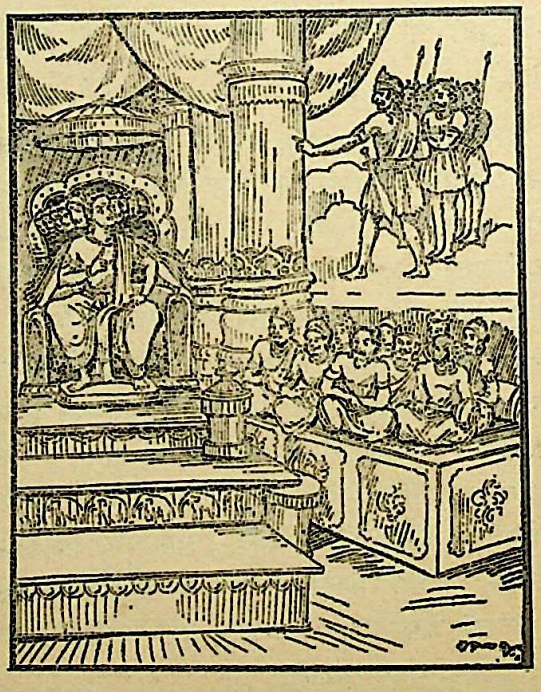

आप मेरे माननीय और बड़े भाई हैं, इसलिये जैसा चाहें कह सकते हैं। परन्तु आपके इन कठोर वचनोंको मैं नहीं सह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता। जो अजितेन्द्रिय पुरुष कालके वशीभूत हो जाते हैं, वे हितकी कामनासे कहे हुए नीतियुक्त वचनोंको भी ग्रहण नहीं करते। राजन्! निरन्तर मीठी-मीठी बातें बनानेवाले लोग तो सुगमतासे मिल सकते हैं, परन्तु कड़वी और हितभरी बात कहने और सुननेवाले दोनों ही कठिनतासे मिलते हैं। आप समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाले कालके पाशमें बँध चुके हैं। मैं श्रीरामके अग्निके समान देदीप्यमान तीखे बाणोंसे आपकी मृत्यु नहीं देखना चाहता। कालके वशीभूत होनेपर बड़े-बड़े शूरवीर, बलवान् और अस्त्रवेत्ता भी बालूकी भीतके समान नष्ट हो जाते हैं। राक्षसराज! मैं आपका हितैषी हूँ, मैंने आपको बार-बार रोका; परन्तु आपको मेरी बात अच्छी नहीं लगी। वास्तवमें जिन लोगोंकी आयु समाप्त हो जाती है, उन्हें मृत्युके समय अपने सुहृदोंकी बात अच्छी नहीं लगती; अतः आपको बड़ा समझकर आपकी हित-कामनासे मैंने जो कुछ कहा है, उसे क्षमा करें। आप अपनी और राक्षसोंके सहित इस पुरीकी रक्षा करें। आपका कल्याण हो। लीजिये, मेरे बिना आप आनन्दसे रहिये; मैं तो जाता हूँ।'

## विभीषणकी शरणागति

रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर विभीषण दो ही घड़ीमें उस स्थानपर आ गये, जहाँ लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचन्द्रजी विराजमान थे। विभीषणका शरीर सुमेरुके शिखरके समान था, वे आकाशमें चमचमाती हुई बिजलीके समान जान पड़ते थे। वानरलोग पृथ्वीपर खड़े-खड़े उनकी ओर देख रहे थे। उनके साथ जो चार अनुचर थे, वे भी बड़े ही पराक्रमी और कवच तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थे। इस प्रकार उन पाँचोंको देखकर वानरराज सुग्रीव दूसरे वानरोंके साथ विचार करने लगे। उन्होंने थोड़ी देर सोचकर फिर हनुमान् आदि सब वानरोंसे ये उत्तम वचन कहे—'देखो, चार राक्षसोंको साथ लिये यह सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित राक्षस निश्चय ही हमें मारनेके लिये आ रहा है।' सुग्रीवकी यह बात सुनकर उन वानरोंने साल-वृक्ष और पर्वतकी शिलाएँ उठा लीं तथा इस प्रकार कहने लगे—'महाराज! इन दुष्टोंका संहार करनेके लिये आप शीघ्र ही हमें आज्ञा दीजिये, जिससे ये मन्दमति मरकर ही पृथ्वीपर गिरें।' जिस समय वानरलोग आपसमें इस प्रकार बातें कर रहे थे, उस समय विभीषण समुद्रके उत्तरी तटपर आकर आकाशमें ही ठहर गये। फिर उन्होंने सुग्रीव तथा अन्य वानरोंको देखकर ऊँचे स्वरमें कहा—"रावण नामका जो महापापी राक्षसराज है, मैं उसीका छोटा भाई विभीषण हूँ। उसीने जटायुको मारकर जनस्थानसे सीताका हरण किया था और उसीने असहाय और दीन जानकीको रोक रखा है। मैंने तरह-तरहके युक्तियुक्त वाक्योंसे उसे बार-बार समझाया कि 'आप श्रीरामचन्द्रजीको सीता लौटा दें—इसीमें भला है।' यद्यपि मैंने यह बात उसके हितके लिये ही कही थी, तथापि कालसे प्रेरित होनेके कारण उसने मेरी बात नहीं मानी—ठीक उसी प्रकार जैसे मरणासन्न पुरुष औषध नहीं लेता। यही नहीं, उसने मुझे बहुत-सी कठोर बातें कहीं और मेरा अपमान भी किया। इसीसे मैं अपने स्त्री-पुत्रोंको छोड़कर श्रीरघुनाथजीकी शरणमें आया हूँ। भगवान् श्रीराम सबको शरण देनेवाले हैं; आपलोग उनसे जाकर निवेदन करें कि विभीषण आया है।"

विभीषणकी यह बात सुनकर सुग्रीवने तुरंत ही भगवान् श्रीरामके पास जाकर उनसे लक्ष्मणजीके सामने कुछ घबराहटके साथ कहा—'आज अकस्मात् शत्रुकी सेनाका एक योद्धा

हमारी सेनामें आ गया है, वह अवसर पाकर हमें मार डालेगा। ये राक्षसलोग मनमाना रूप धारण कर सकते हैं। इनमें अन्तर्धान होनेकी भी शक्ति होती है, शूरवीर और


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मायावी तो ये होते ही हैं; इसलिये इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। सम्भव है, यह रावणका कोई गुप्त दूत हो। यदि ऐसा हुआ तो हमलोगोंमें घुसकर यह निश्चय ही फूट पैदा कर देगा। मित्रोंकी, जंगली जातियोंकी तथा परम्परागत भृत्योंकी सेनाका संग्रह तो किया जा सकता है, किन्तु शत्रुपक्षीय सैनिकोंका संग्रह कभी नहीं करना चाहिये। प्रभो! यह स्वभावसे तो राक्षस है ही, उसपर शत्रुका भाई है। इस प्रकार यह तो स्वयं शत्रु ही आया है, इसका कैसे विश्वास किया जाय? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह राक्षस रावणके कहनेसे ही यहाँ आया है। इसकी बुद्धि कपटसे भरी है और यह मायासे छिपा रहकर आपका विश्वासपात्र हो जानेपर आपपर ही चोट करेगा। यह महाक्रूर रावणका भाई है; इसलिये इसे कठोर दण्ड देकर इसके मन्त्रियोंसहित मार डालना चाहिये।'

सेनापति सुग्रीव घबराहटके साथ भगवान् श्रीरामसे ये सब बातें कहकर चुप हो गये। तब महाबली श्रीरामने अपने पास बैठे हुए हनुमान् आदि वानरोंसे कहा—'कपिराज सुग्रीवने रावणके छोटे भाईके विषयमें जो युक्तियुक्त और सारगर्भित बातें कही हैं, वे सब आपलोग भी सुन चुके हैं। मित्रोंका उत्कर्ष चाहनेवाले बुद्धिमान् पुरुषोंको कर्त्तव्याकर्त्तव्यका प्रश्न उपस्थित होनेपर अवश्य ही अपनी सलाह देनी चाहिये।' रघुनाथजीके इस प्रकार पूछनेपर उनका प्रिय चाहनेवाले वे सब वानर उत्साहित होकर अपना-अपना विचार प्रकट करने लगे—'राघव! तीनों लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जिसे आप न जानते हों; तथापि अपने स्वभावके अनुसार आप मित्ररूप-से हमसे पूछ रहे हैं। आप सत्यव्रत, शूरवीर, धार्मिक, महान् पराक्रमी, सोच-विचारकर काम करनेवाले, बुद्धिमान् और मित्रोंपर विश्वास रखनेवाले हैं।' वानरोंके इस प्रकार कहनेपर सबसे पहले बुद्धिमान् अङ्गदने विभीषण-की परीक्षा लेनेकी बात कही। [ वे बोले— ] 'विभीषण शत्रुके पाससे आया है, इसलिये इसपर सहसा विश्वास नहीं करना चाहिये। अनेकों दुष्टबुद्धि पुरुष अपने आशयको गुप्त रखकर विचरते रहते हैं और जब मौका पाते हैं, चोट कर बैठते हैं। इससे कभी-कभी बहुत बड़ा अनर्थ हो जाता है। अतः कोई भी काम उसके गुण-दोषका विचार करके ही स्वीकार करना चाहिये। यदि उसमें गुण हो तो स्वीकार करे और दोष हो तो त्याग दे।' फिर शरभने सोच-विचारकर ये सारगर्भित शब्द कहे—'किसी सूक्ष्मबुद्धि दूतके द्वारा पहले उसके विषयमें सब बातें जान लें। इस प्रकार परीक्षा कर लेनेपर ही उसे यथायोग्य स्वीकार करना चाहिये।' इसके पश्चात् परम चतुर जाम्बवान्ने ये दोषसे रहित गुणयुक्त वचन कहे—'राक्षसराज रावण बड़ा पापी है, उससे हमारा वैर भी बँध गया है। और उसीके पाससे यह आ रहा है। वास्तवमें इसके आनेका न तो यह समय है और न स्थान ही। इसलिये इसके विषयमें सब प्रकार सन्देह करनेकी गुंजाइश तो है ही।' फिर परम वाग्मी मैन्दने सोच-समझकर यह युक्तियुक्त बात कही—'महाराज! यह विभीषण रावणका छोटा भाई ही तो है, इसलिये इससे नम्रतापूर्वक सब बातें पूछनी चाहिये। फिर इसके भावको समझकर आप बुद्धिपूर्वक निश्चय करें कि यह दुष्ट है या साधु; उसके बाद जैसा उचित हो वैसा करना चाहिये।

अन्तमें शास्त्र-संस्कारसे सम्पन्न सचिवश्रेष्ठ हनुमान्ने बड़ी नम्रतासे ये मधुर, सारगर्भित और संक्षिप्त वचन कहे—'भगवन्! आप बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, तत्त्वका निर्णय करनेमें समर्थ और श्रेष्ठ वक्ता हैं। बोलनेमें साक्षात् बृहस्पति भी आपसे बाजी नहीं ले सकते। अतः मैं जो कुछ निवेदन कर रहा हूँ, वह तर्क, स्पर्द्धा, बुद्धिके अभिमान अथवा किसी प्रकारकी कामनासे नहीं कह रहा हूँ। मैं तो कार्यके गौरवकी दृष्टिसे ही कुछ प्रार्थना करना चाहता हूँ। विभीषण आश्रय देनेके योग्य है या नहीं—इसका निर्णय उसे किसी काममें नियुक्त किये बिना नहीं हो सकता और एकाएकी उसे किसी काममें लगा देना भी मुझे उचित नहीं जान पड़ता। आपके मन्त्रियोंने जो दूत नियुक्त करनेकी बात कही है, उसका मुझे कोई प्रयोजन नहीं जान पड़ता; क्योंकि जब वह स्वयं ही यहाँ मौजूद है, तब उसका भेद लेनेके लिये दूत भेजनेकी क्या आवश्यकता है। इसके सिवा जो यह कहा गया है कि इसका आना देश-कालके अनुकूल नहीं है—इसके विषयमें अपनी बुद्धिके अनुसार मेरा यह निवेदन है कि इसने रावणकी अपेक्षा आपको श्रेष्ठ पुरुष समझकर और दोनोंके गुण-दोषोंका विचार करके देश-कालके अनुसार जो उचित था, वही किया है। इसके सम्भाषणसे भी इसका कोई दूषित भाव नहीं जान पड़ता। इसका मुख भी प्रसन्न है; दुष्ट पुरुष कभी शङ्कारहित और प्रफुल्लित होकर नहीं आ सकता। इसके सिवा इसकी वाणी भी दोषयुक्त नहीं है। अतः मुझे इसके विषयमें कोई सन्देह नहीं है। मनुष्यका भीतरी अभिप्राय प्रयत्न करनेपर भी नहीं छिपाया जा सकता और वह बरबस प्रकट हो ही जाता है। अतएव इसने जो कुछ किया है, वह देश-कालके अनुरूप ही है; क्योंकि आपके उद्योग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रावणके दुर्व्यवहार, वालीके मरण और सुग्रीवकी राज्यप्राप्तिका समाचार सुनकर राज्य पानेकी इच्छासे यह समझ-बूझकर ही आपके पास आया है। इन सब बातोंको देखते हुए तो इसे आश्रय देना ही उचित जान पड़ता है। इस प्रकार इस राक्षसकी निर्दोषताके विषयमें मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार निवेदन कर दिया। इसे सुनकर आगे जैसा आप उचित समझें, वैसा करें।'

भगवान् श्रीराम वायुपुत्रके मुँहसे अपने मनकी बात सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार कहने लगे—'विभीषणके विषयमें कुछ मैं भी कहना चाहता हूँ। आप सब लोग मेरे हितचिन्तक हैं, इसलिये मैं चाहता हूँ आप भी उसे सुन लें। विभीषण मित्रभावसे मेरे पास आया है, इसलिये मैं उसे त्याग नहीं सकता। सम्भव है, उसमें कोई दोष भी हो; परन्तु दोषीको आश्रय देना भी सत्पुरुषोंके लिये निन्दनीय नहीं है।'

श्रीरामकी बात सुनकर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने ये शुभ वचन कहे—'यह दुष्ट है या अदुष्ट—इससे क्या? है तो यह राक्षस ही। फिर जो पुरुष ऐसे सङ्कटके समय अपने भाईको छोड़ सकता है, उसका और ऐसा कौन सम्बन्धी होगा जिसे वह न त्याग सके।' सुग्रीवकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मुसकराये और लक्ष्मणकी ओर देखकर इस प्रकार कहने लगे—'इस समय वानरराजने जैसी बात कही है, वैसी कोई भी पुरुष शास्त्रोंका अध्ययन और गुरुजनोंकी सेवा किये बिना नहीं कह सकता। परन्तु सुग्रीवजी! ये बातें तो सभी राजाओंमें प्रत्यक्ष देखी जाती हैं और लोकमें भी प्रसिद्ध हैं ही। समयके फेरसे अपने ही कुटुम्बी और पड़ोसी शत्रु बन जाया करते हैं और आपत्तिके समय उल्टे प्रहार करनेवाले बन जाते हैं। इसी नियमके अनुसार यह भी आया है। और लोग तो अपने निर्दोष कुटुम्बियोंको अपना हितैषी समझते हैं, परन्तु राजाओंकी दृष्टिमें ऐसे लोग शङ्कास्पद बन जाते हैं। किन्तु हम तो इसके कुटुम्बी नहीं हैं और इसे राज्यकी इच्छा भी है। ऐसे लोग चतुर भी होते हैं, इसलिये इसे ग्रहण करना ही चाहिये। हमसे मिल जानेपर ये विभीषणादि निश्चिन्त और प्रसन्न हो जायँगे। इनकी जो यह शरणप्राप्तिके लिये चिल्लाहट है, उससे मालूम होता है राक्षसोंमें एक-दूसरेसे भय बना हुआ है। अतः इनमें विरोध भी होना ही चाहिये और इसीसे विभीषण यहाँ आया है। मित्र! भरतके समान सब भाई नहीं होते, मेरे समान पिताके सब पुत्र नहीं होते और तुम्हारे समान सब मित्र नहीं होते।'*

भगवान् श्रीरामके इस प्रकार कहनेपर सुग्रीव फिर बोले—'राम! आप परम समर्थ हैं। परन्तु इस राक्षसको तो आप रावणका भेजा हुआ ही समझें। यह रावणके कहनेसे मनमें कपट रखकर ही यहाँ आया है और अपना विश्वास जम जानेपर आपपर, मुझपर अथवा लक्ष्मणजीपर प्रहार करना चाहता है। इसलिये महाबाहो! इसे तो इसके मन्त्रियोंसहित मार डालना ही अच्छा है।'

सुग्रीवका यह वचन सुनकर श्रीरामने उसपर विचार किया और फिर ये श्रेष्ठ वचन कहे—'यह राक्षस भला हो अथवा बुरा, क्या यह किसी भी प्रकार मेरा कुछ भी अहित कर सकता है? वानरनाथ! यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वीमें जितने भी पिशाच, दानव, यक्ष या राक्षस हैं, उन्हें एक उँगलीकी नोकसे मार सकता हूँ।† सुना जाता है कि किसी कबूतरने अपनी शरणमें आये हुए अपने शत्रु एक व्याधका विधिवत् सत्कार किया था और अपने ही मांसका उसे भोजन कराया था। इस प्रकार अपने यहाँ आनेपर जब उस कबूतरने अपनी पत्नीका हरण करनेवाले व्याधका भी आदर किया तो मेरे-जैसे मनुष्यके विषयमें तो कहना ही क्या है। पूर्वकालमें कण्व ऋषिके पुत्र महर्षि कण्डुने एक शिक्षाकी बात कही है, उसे आप श्रवण करें—'यदि शत्रु भी शरणमें आये और दीनतापूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना करे तो उसपर चोट नहीं करनी चाहिये। शत्रु दुखी हो अथवा अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षीकी शरणमें जाय तो सत्पुरुषको अपने प्राणोंका मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिये।‡ यदि भय, मोह या किसी कामनासे वह न्यायानुसार अपनी शक्तिभर उसकी रक्षा नहीं करता तो उसका वह पाप लोकमें निन्दनीय होता है। यदि शरणमें आया हुआ पुरुष रक्षकके सामने ही नष्ट हो जाय तो वह उसके सारे पुण्यको ले जाता है। इस प्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें बड़ा भारी दोष है; उससे स्वर्ग और सुयशकी

---

* न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः॥ (१८। १५)

† पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥ (१८। २३)

‡ आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः।
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना॥ (१८। २८)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति रुक जाती है तथा बल और वीर्यका नाश हो जाता है।' इसलिये मैं तो महर्षि कण्डुके यथार्थ और उत्तम वचनोंका ही पालन करूँगा; क्योंकि ये परिणाममें धर्म, यश और स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले हैं। मेरा यह नियम है कि जो एक बार शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। अतः कपिवर सुग्रीव! वह विभीषण हो अथवा स्वयं रावण ही क्यों न हो, तुम उसे ले आओ; मैं उसे अभयदान देता हूँ।"*

भगवान् श्रीरामके ये वचन सुनकर वानरराज सुग्रीवने सौहार्दसे भरकर कहा—'धर्मज्ञ! आप राजाओंमें शिरोमणि हैं। आपने जो धर्मानुकूल बात कही है, उससे हमें तनिक भी आश्चर्य नहीं होता; क्योंकि आप सामर्थ्यवान् और सन्मार्गपर स्थित हैं। अतः विभीषण अब शीघ्र ही हमारे-जैसे होकर यहाँ रहें और हमारी मित्रता प्राप्त करें।'

इस प्रकार श्रीरघुनाथजीके अभय देनेपर विनयी विभीषण अपने अनुचरोंसहित प्रसन्न होकर पृथ्वीपर उतर आये। फिर चारों राक्षसोंके साथ वे भगवान् श्रीरामके चरणोंपर गिर पड़े और उनसे धर्मानुकूल, युक्तियुक्त, समयोचित एवं प्रसन्नता-जनक वचन कहने लगे—'मैं रावणका छोटा भाई हूँ, उसने मेरा अपमान किया है। आप समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं, अतः मैंने आपकी शरण ली है। अपने सभी मित्र, धन और लङ्काको मैं छोड़ आया हूँ। अब मेरा राज्य, सुख और जीवन आपके ही अधीन है।'†

विभीषणके ये वचन सुनकर श्रीरामने उन्हें धीरज बँधाया और नेत्रोंसे मानो उन्हें पी जायँगे—इस प्रकार प्रेमपूर्वक उनकी ओर देखते हुए कहा—'विभीषण! तुम मुझे ठीक-ठीक राक्षसोंका बलाबल बतलाओ।' पुण्यकर्मा श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर विभीषणने रावणकी शक्तिका वर्णन करना आरम्भ किया। [वे बोले—] 'राजपुत्र! ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे रावण गन्धर्व, नाग या पक्षी—किसी भी प्राणीके द्वारा मारा नहीं जा सकता। रावणसे छोटा और मुझसे बड़ा भाई कुम्भकर्ण है, वह बड़ा ही बलवान् और तेजस्वी है तथा युद्धमें साक्षात् इन्द्रके समान है। आपने शायद सुना हो, रावणके सेनापतिका नाम प्रहस्त है; उसने कैलासके युद्धमें शिवजीके प्रधान गण मणिभद्रको भी हरा दिया था। रघुनाथजी! रावणके पुत्रका नाम इन्द्रजित् है; उसने अग्निदेवको तृप्त करके ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है कि वह व्यूहबद्ध युद्धमें अन्तर्धान होकर शत्रुपर प्रहार करता है। महोदर, महापार्श्व और अकम्पन—ये भी रावणके सेनापति हैं और संग्राममें साक्षात् लोकपालोंके समान हैं। लङ्कामें जो मांस और रक्तका भोजन करनेवाले तथा मनमाना रूप बना लेनेवाले एक खरब राक्षस हैं, उन्हें साथ लेकर रावणने लोकपालोंसे युद्ध किया और देवताओंके सहित उन सबको परास्त कर दिया था।'

विभीषणका वक्तव्य सुनकर रघुश्रेष्ठ भगवान् श्रीरामने उसपर विचार किया और फिर इस प्रकार कहा—'विभीषण! तुमने रावणके जिन पराक्रमोंका वर्णन किया है, उन्हें मैं अच्छी तरह समझता हूँ। परन्तु सुनो, मैं सच कहता हूँ कि प्रहस्त और पुत्रोंके सहित रावणका वध करके तुम्हें लङ्काका राजा बनाऊँगा। रावण रसातलमें जाय, पातालमें जाकर छिप रहे अथवा ब्रह्माजीके पास चला जाय, तो भी मैं उसे जीवित नहीं छोड़ सकता। मैं पुत्र, भृत्य और बन्धुओंके सहित रावणका संग्राममें वध किये बिना अयोध्यामें प्रवेश नहीं करूँगा—यह बात अपने तीनों भाइयोंकी शपथ करके कहता हूँ।' पुण्यकर्मा श्रीरामचन्द्रके ये वचन सुनकर विभीषणने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया और फिर इस प्रकार कहा—'राक्षसोंका वध और लङ्काको विजय करनेमें प्राणपणसे आपकी सहायता करूँगा और [युद्ध करनेके लिये] रावणकी सेनामें भी प्रवेश करूँगा।' विभीषणके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीरामने उन्हें गले लगा लिया और प्रसन्न होकर लक्ष्मणजीसे कहा—'समुद्रका जल ले आओ और उससे तुरंत ही इन परम चतुर विभीषणका राक्षसों-के राजाके रूपमें अभिषेक कर दो, मैं इनपर बहुत प्रसन्न हूँ।'

---

* सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥ (१८। ३३-३४)

† पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः।
अब्रवीच्च तदा वाक्यं रामं प्रति विभीषणः॥
धर्मयुक्तं च युक्तं च सांप्रतं संग्रहर्षणम्।
अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः॥
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः।
परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च॥
भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च।
(१९। ३-६)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


महाराज श्रीरामकी आज्ञा पाकर लक्ष्मणजीने प्रधान-प्रधान वानरोंके सामने विभीषणका राज्याभिषेक किया ।

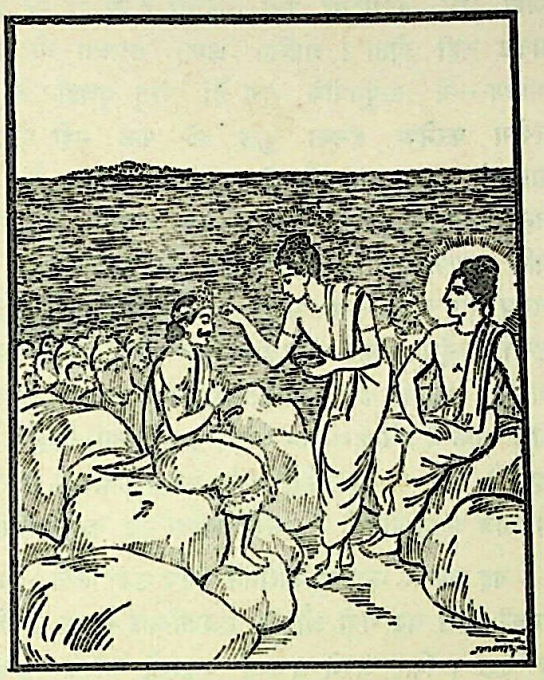

श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी तात्कालिकी कृपा देखकर वानरलोग हर्षध्वनि करने और महात्मा श्रीरामको साधुवाद भी देने लगे । अब हनुमान् और सुग्रीवने विभीषणसे पूछा कि 'हमलोग इस अक्षोभ्य समुद्रको किस प्रकार पार कर सकेंगे ?' इसपर विभीषणने कहा—'महाराज श्रीरामको समुद्रकी शरणमें जाना चाहिये । इस विशाल महासागरको राजा सगरने खुदवाया था । श्रीराम सगरके वंशज हैं, इसलिये समुद्रको इनका काम करना चाहिये ।' बुद्धिमान् विभीषणके इस प्रकार कहनेपर सुग्रीव श्रीराम और लक्ष्मणके पास आये और उन्हें विभीषणकी शुभ सम्मति सुनायी । श्रीराम स्वभावसे ही धर्मशील थे, उन्हें भी यह बात अच्छी लगी; अतः उन्होंने मुसकराकर लक्ष्मण और सुग्रीवसे कहा—'लक्ष्मण ! मुझे तो विभीषणकी यह सम्मति अच्छी जान पड़ती है । परन्तु सुग्रीव बड़े पण्डित हैं और तुम भी सलाह देनेमें बड़े कुशल हो । इसलिये तुम दोनों विचारकर जैसा उचित समझो, कहो ।' श्रीरामजीके इस प्रकार कहनेपर उन दोनों वीरोंने कहा—'भगवन् ! आप वीरवर विभीषणजीके कथनानुसार ही कार्य करें । अब अधिक विलम्ब न करके समुद्रसे ऐसी प्रार्थना कीजिये, जिससे हम सेनाके सहित रावणद्वारा पालित लङ्कापुरीमें पहुँच जायँ ।'

## शुकका दूतत्व, समुद्रका पराभव, सेतु-बन्धन तथा वानरी सेनाका समुद्रके पार होना

इसी समय शार्दूल नामके एक राक्षसने समुद्र-तटपर आकर वहाँ पड़ी हुई सुग्रीवद्वारा सुरक्षित वानरी सेनाको देखा । यह राक्षसराज दुरात्मा रावणका दूत था । सब ओरसे सुसज्जित उस विशाल सेनाको देखकर वह लौट गया और जल्दीसे लङ्कापुरीमें जाकर रावणसे कहने लगा—'महाराज ! लङ्काकी ओर वानर और भालुओंका एक प्रवाह-सा बढ़ा चला आ रहा है । वह दूसरे समुद्रके समान अगाध और असीम है । दशरथके पुत्र दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण बड़े ही रूपवान् हैं । इस समय वे दोनों भी समुद्र-तटपर आकर ठहरे हुए हैं । वानरोंकी सेना आकाशमें भी छायी हुई है और पृथ्वीपर सब ओर दस योजनतक फैली हुई है । इस बातको आप अच्छी तरह समझ लें और फिर जैसा उचित समझें, वैसा करें—चाहे उन्हें सीता लौटा दें, चाहे सन्धि कर लें और चाहे उनमें फूट डलवा दें ।'

शार्दूलके वचन सुनकर राक्षसराज रावण घबरा गया और अपना कर्त्तव्य निश्चय कर उसने शुक नामके राक्षससे कहा—"शुक ! तुम शीघ्र ही जाओ और मेरी ओरसे बड़े मधुर वचनोंमें वानरराज सुग्रीवसे कहो कि 'आप ऋक्षराजके पुत्र हैं और बड़े बलवान् भी हैं । मेरे भी आप भाईके समान हैं और मुझसे आपको न तो कोई हानि ही पहुँची है न लाभ ही । यदि मैं राजपुत्र रामकी स्त्रीको हर लाया हूँ तो उससे आपकी क्या हानि हुई ? इसलिये आप किष्किन्धाको लौट जाइये । वानरलोग किसी भी प्रकार लङ्कातक नहीं पहुँच सकते । यहाँ तो देवता और गन्धर्वोंका भी आना कठिन है, फिर वानरोंकी तो बात ही क्या है ।" रावणका यह सन्देश लेकर शुक पक्षीका रूप धारण करके उड़ा और समुद्रके ऊपर-ही-ऊपर बहुत लंबा रास्ता तय करके आकाशमें स्थित रहकर ही उसने सुग्रीवसे वे सब बातें कहीं। दुरात्मा रावणने उसे जो कुछ कहनेकी आज्ञा दी थी, वह सभी उसने कह डाला । जिस समय वह इस सन्देशको सुना रहा था, वानरोंने उछलकर उसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फुर्तीसे पकड़ लिया और लगे उसे घूँसोंसे मारने और उसके पंख नोचने। इस प्रकार वानरोंसे पीड़ित होनेपर उसने कहा—'रघुनन्दन! दूतोंको मारा नहीं जाता, कृपया वानरोंको रोकिये।' शुकके वचन और विलाप सुनकर भगवान् श्रीरामने वानरोंसे कहा—'इसे मत मारो।' इस तरह वानरोंसे अभय मिलनेपर वह पुनः आकाशमें स्थित होकर बोला—'महापराक्रमी सुग्रीव! कहिये, मैं रावणसे जाकर क्या कहूँ?' तब वानरनाथ सुग्रीवने उसे रावणका गुप्तचर समझकर ये छलहीन वाक्य कहे—'तुम न तो मेरे मित्र हो, न प्रिय हो, न दयापात्र हो और न मुझपर तुम्हारा कोई उपकार ही है। तुम अपने अनुयायियोंके सहित श्रीरामचन्द्रजीके शत्रु हो, इसलिये मेरे लिये तो तुम वालीके समान ही वध्य हो। राक्षसराज! मैं पुत्र, बन्धु और कुटुम्बियोंके सहित तुम्हारा संहार करूँगा तथा बड़ी भारी सेनाके सहित आकर सारी लङ्काको भस्म कर दूँगा। मूर्ख रावण! यदि इन्द्रादि समस्त देवता भी तुम्हारी रक्षा करें तो अब श्रीरामके हाथसे तुम्हारी खैर नहीं है। तुम अन्तर्धान हो जाओ, आकाशमें चले जाओ, पातालमें घुस जाओ अथवा श्रीमहादेवजीके चरणकमलोंका आश्रय लो; फिर भी अपने भाइयोंके सहित तुम अवश्य श्रीरामके बाणोंसे मारे जाओगे। तीनों लोकोंमें मुझे कोई भी पिशाच, राक्षस, गन्धर्व या असुर ऐसा नहीं दीखता, जो तुम्हारी रक्षा कर सके। तुमने बेचारे बूढ़े पक्षिराज जटायुका वध क्यों किया तथा श्रीराम और लक्ष्मणके यहाँसे तुम सीताजीको हरकर क्यों लाये? और उन्हें लाकर भी अबतक तुम अपने अपराधको समझ नहीं रहे हो। रघुश्रेष्ठ महात्मा श्रीराम महान् बलशाली और देवताओंके लिये भी अजेय हैं; परन्तु तुम अभीतक उन्हें समझ नहीं सके। वे अवश्य तुम्हारा वध करेंगे।' [ सुग्रीवका यह सन्देश लेकर शुक लङ्कापुरीको लौट गया। ]

इसके पश्चात् श्रीरघुनाथजी समुद्रके तटपर कुशा बिछाकर समुद्रको हाथ जोड़ पूर्वाभिमुख लेट गये। उस समय उन्होंने भुजाका ही तकिया लगाया। उनकी लंबी-लंबी भुजाएँ शत्रुओंके शोक और सुहृदोंके आनन्दको बढ़ानेवाली हैं। कभी वे अपनी बायीं भुजाको, जो परिघके समान विशाल और धनुष-की प्रत्यञ्चाके आघातोंसे चिह्नित थी, सिरके नीचे रख लेते और कभी अपनी दाहिनी भुजाको, जिसके द्वारा उन्होंने हजारों गौएँ दान की थीं। इस प्रकार लेटे-लेटे वे तीन राततक समुद्रकी उपासना करते रहे। तथापि उनके विधिवत् पूजन करनेपर भी मन्दमति समुद्र प्रकट नहीं हुआ। तब तो उन्हें समुद्रपर बड़ा क्रोध हुआ; उनकी आँखें लाल हो गयीं और वे अपने पास बैठे हुए लक्ष्मण-जीसे बोले—'समुद्रको बड़ा अहङ्कार है जो वह मेरे सामने प्रकट नहीं होता। शान्ति, क्षमा, सरलता और प्रिय-भाषण—ये सत्पुरुषोंके गुण हैं; परन्तु गुणहीनोंके प्रति प्रयोग करनेपर इनका कुछ भी फल नहीं होता। शान्तिके द्वारा संग्राममें विजय पाना असम्भव है। यह समुद्र क्षमायुक्त देखकर मुझे असमर्थ समझता है। ऐसोंके प्रति क्षमाका प्रयोग धिक्कारके योग्य है। लक्ष्मण! तुम मेरा धनुष और सर्पोंके समान भयङ्कर बाण ले आओ। मैं समुद्रको सुखा डालूँगा, फिर वानरलोग पैदल ही लङ्कापुरीमें पहुँच जायँगे। समुद्रको कोई विचलित नहीं कर सकता, परन्तु आज क्रोध करके मैं इसे क्षुब्ध कर दूँगा। इसमें हजारों तरङ्गें उठती रहती हैं, फिर भी यह सर्वदा अपने तटकी मर्यादामें ही रहता है; आज अपने बाणोंसे मैं इसकी मर्यादा नष्ट कर डालूँगा।'

यह कहकर भगवान् श्रीरामने धनुष उठा लिया। क्रोधसे उनकी त्यौरी चढ़ गयी और वे प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित हो उठे। फिर अपने प्रचण्ड धनुषको चढ़ाकर उन्होंने सारे संसारमें हलचल पैदा कर दी तथा इन्द्र जैसे वज्र छोड़ता है, उसी प्रकार बड़े उग्र बाण छोड़े। तेजसे प्रज्वलित वे उत्तम बाण बड़े वेगसे समुद्रके जलमें घुस गये। इससे समुद्रमें धुआँ उठने लगा, चमकीले फन और नेत्रोंवाले सर्प व्यथित हो उठे और पातालमें रहनेवाले महापराक्रमी दानव भी व्याकुल हो गये। समुद्रमें नाके और मकरोंके सहित हजारों तरङ्गें विन्ध्य और मन्दराचलके समान ऊँची उठने लगीं। अनेकों तरङ्गें चक्कर काटने लगीं, बड़े-बड़े ग्राह ऊपर उछलने लगे और समुद्रमें बड़ा शब्द होने लगा। पुनः श्रीरघुनाथजीको बड़े जोरसे धनुष खींचते देख लक्ष्मणजीने 'नहीं, नहीं' कहते हुए उसे जाकर पकड़ लिया [ और कहने लगे—] 'वीर-शिरोमणे! आपका कार्य तो समुद्रका नाश किये बिना भी हो सकता है।' इसी समय अन्तरिक्षमें अव्यक्तरूपसे स्थित देवर्षि और ब्रह्मर्षियोंने भी बड़े जोरसे हाहाकार करते हुए 'नहीं-नहीं' कहा।

तब श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रसे कठोर शब्दोंमें कहा—'सागर! आज मैं पातालसहित तुझे सुखा डालूँगा। तेरे भीतर रहनेवाले सब जीव नष्ट हो जायँगे और जलके स्थानमें घनी बालू पैदा हो जायगी। तब वानरलोग पैरों चलकर तेरे उस पार पहुँच जायँगे। तुम मेरे बल और पराक्रमको कुछ नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

ततो मध्यात्समुद्रस्य सागरः स्वयमुत्थितः । उदयाद्रिमहाशैलान्मेरोरिव दिवाकरः ॥
(युद्ध० २२ । १७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समझते। परन्तु [याद रखो] मेरे कारण तुम्हें बड़ा सन्ताप भोगना पड़ेगा।' फिर महाबली श्रीरामने एक ब्रह्मदण्डके समान बाणको ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके अपने उत्तम धनुषपर चढ़ाया। इस बार उन्होंने ज्यों ही धनुष खींचा कि सहसा आकाश और पृथ्वी मानो फटने लगी तथा पर्वत डगमगा उठे। सारे संसारमें अन्धकार छा गया, नदियों और सरोवरोंमें हलचल पैदा हो गयी, चन्द्रमा और सूर्य नक्षत्रोंसे टकरा उठे, आकाशमें सैकड़ों उल्काएँ चमकने लगीं तथा अन्तरिक्षसे बड़ी कड़कके साथ वज्रपात होने लगे और उनसे वैद्युत-अग्निकी वर्षा होने लगी। जो प्राणी दिखायी दे रहे थे और जो दिखायी नहीं देते थे, वे सब भयानक शब्द करने लगे। उनमेंसे कोई पड़ गये, कोई सहम गये, कोई डर गये, कोई घबरा उठे, कोई व्यथित हो गये और किन्हींने भयसे हिलना-डुलना छोड़ दिया। समुद्र [ अपने भीतर रहनेवाले ] प्राणियों, तरङ्गों, सर्पों और राक्षसोंसहित अकस्मात् बड़ा वेगवान् हो गया और प्रलयकालके बिना ही अपनी मर्यादासे एक-एक योजन इधर-उधर फैल गया। परन्तु समुद्रके बढ़ जानेपर भी श्रीरामचन्द्रजी अपने स्थानसे नहीं हटे। तब समुद्रके बीचसे सागर स्वयं मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उसके साथ चमकते हुए मुखोंवाले सर्प भी थे। उसका वर्ण स्निग्ध वैदूर्य-

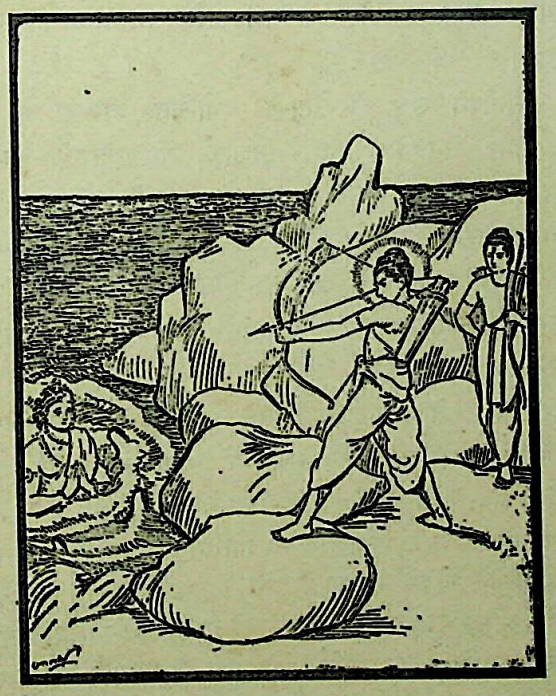

मणिके समान था और वह सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित था। उसके गलेमें रत्नोंकी मालाएँ और अङ्गोंमें वस्त्र थे, उसके नेत्र कमल-दलके समान विशाल थे, उसने सिरपर सब प्रकारके फूलोंकी एक दिव्य माला धारण कर रखी थी तथा वह समुद्रीय रत्नोंसे जड़े हुए सोनेके आभूषणोंसे विभूषित था। उसने भगवान् श्रीरामके पास जाकर उनसे हाथ जोड़कर कहा—'सौम्य! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज—ये सर्वदा अपने स्वभावमें स्थित रहते हैं, अपने सनातन मार्गको नहीं छोड़ते। मेरा भी अगाध और अपार होना स्वभाव ही है। यदि मेरी थाह मिल जाय तो वह मेरे स्वभावका व्यतिक्रम ही होगा। मगर आदिसे भरे हुए अपने जलको किसी भी कामना, लोभ या भयके कारण मैं स्तम्भित नहीं होने दूँगा। इसलिये मैं ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे मुझे कष्ट न हो, ग्राहादि बंदरोंको तंग न करें और आपकी सेना भी पार हो जाय।'

तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'समुद्र! मेरी बात सुनो। मेरा यह बाण अमोघ है; बताओ, इसे कहाँ छोड़ा जाय?' श्रीरामजीकी यह बात सुनकर और उस प्रचण्ड बाणको देखकर महातेजस्वी समुद्रने कहा—'मेरे उत्तरकी ओर द्रुमकुल्य नामसे विख्यात एक बड़ा ही पवित्र देश है। वहाँ आभीर आदि जातियोंके अनेकों दस्यु रहते हैं, जिनके रूप और कर्म बड़े ही भयानक हैं। वे सब मेरा जल पीते हैं। उन पापियोंका स्पर्श मैं नहीं सह सकता। अतः आप अपने इस बाणको वहीं सार्थक कीजिये।' समुद्रकी यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने वह प्रदीप्त बाण उसी स्थानपर छोड़ दिया। वह वज्रतुल्य बाण जिस स्थानपर गिरा था, वह पृथ्वीमें मरुभूमिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस बाणसे पीड़ित होकर पृथ्वी चीत्कार करने लगी तथा उसकी चोटसे जो छिद्र हुआ, उसमें होकर रसातलसे जल निकलने लगा। वह छिद्र कुएँके समान हो गया और 'व्रण' नामसे विख्यात हुआ। उस बाणके गिरनेसे वहाँकी पृथ्वीका सब जल सूख गया। तब दशरथनन्दन श्रीरामने उस देशको यह वर दिया कि 'यह मरुभूमि पशुओंके लिये हितकारी, थोड़े रोगोंवाली, फल-मूल और रसोंसे सम्पन्न, चिकने पदार्थोंवाली, अधिक दूधवाली और अनेकों सुगन्धित ओषधियोंसे पूर्ण होगी।' इस प्रकार श्रीरामका वर पाकर वह देश भी सब प्रकार मङ्गलमय हो गया। उस देशके जल जानेपर नदीनाथ समुद्रने सर्वशास्त्रज्ञ भगवान् श्रीरामसे कहा—'सौम्य! यह नल नामका वानर विश्वकर्माका पुत्र है, इसे पिताने वर दे रखा है और इसे आपके प्रति प्रेम भी है। यह परम उत्साही नल मेरे ऊपर पुल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बनाये, मैं उसे धारण करूँगा। शिल्प-विद्यामें यह अपने पिताके ही समान है।'

यह कहकर समुद्र चला गया। फिर वानरश्रेष्ठ नलने श्रीरामसे कहा—'मन्दराचल पर्वतपर विश्वकर्माजीने मेरी माताको यह वर दिया था कि 'देवि! तुम्हारे गर्भसे मेरे ही समान पुत्र उत्पन्न होगा।' इस प्रकार मैं विश्वकर्माजीका औरस पुत्र हूँ और उन्हींके समान हूँ। परन्तु बिना पूछे मैं अपने गुण नहीं कह सकता था।' मैं समुद्रपर सेतु बाँधनेकी शक्ति अवश्य रखता हूँ। अतः सब वानर आज ही पुल बाँधना आरम्भ कर दें।' तब भगवान् श्रीरामके कहनेसे सैकड़ों-हजारों वानर हर्षित होकर वनमें घुस गये। वे पर्वतोंके समान विशाल थे, अनेकों पर्वत और वृक्षोंको तोड़कर समुद्रमें डालने लगे। उन्होंने साल, अश्वकर्ण, धव, बाँस, कुटज, अर्जुन, नाल, तिलक, तिनिश, बिल्व, सप्तपर्ण, कर्णिकार, आम और अशोक आदि वृक्षोंसे समुद्रको पाट दिया। महाबली वानर हाथीके समान बड़ी-बड़ी शिलाओंको उखाड़कर यन्त्रोंके द्वारा समुद्र-तटपर ले आते थे। उन्होंने सब ओर पत्थर गिराकर समुद्रमें हलचल मचा दी। कुछ अन्य वानरोंने सौ योजन लंबा सूत पकड़ा। कोई नापनेके लिये दण्ड पकड़े हुए थे और कोई सामग्री जुटाते थे। उस समय पर्वतोंके समान शिलाएँ और पर्वत-शिखर लेकर दौड़ते हुए वानर दानवों-की तरह जान पड़ते थे। पत्थर और पहाड़ोंके गिरनेसे समुद्रमें बड़ा भीषण शब्द हो रहा था। हाथीके समान विशालकाय वानर बड़े उत्साह और तेजीसे काममें लगे हुए थे। पहले दिन उन्होंने चौदह योजन लंबा पुल बाँधा। फिर दूसरे दिन बीस योजन, तीसरे दिन इक्कीस योजन, चौथे दिन बाईस योजन और पाँचवें दिन सुबेल-पर्वततक तेईस योजन पुल बाँधकर उसे पूरा कर दिया। समुद्रके ऊपर नलका बनाया हुआ वह पुल बड़ा ही सुन्दर जान पड़ता था। उस समय इस अद्भुत कर्मको देखनेके लिये अनेकों देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण भी आ-आकर आकाशमें खड़े हो गये थे। उन्होंने नलका बनाया हुआ वह दस योजन चौड़ा और सौ योजन लंबा दुष्कर पुल देखा। वानरलोग भी इधर-उधर उछल-कूदकर उस अचिन्त्य, असह्य, अद्भुत और रोमाञ्चकारी पुलको देख रहे थे। इस प्रकार उन हजार करोड़ ( एक खरब ) उत्साही वानरोंका दल पुल बाँधते-बाँधते ही समुद्रके उस पार पहुँच गया। यह पुल बड़ा ही विशाल, सुन्दरतासे बनाया हुआ, शोभासम्पन्न, समतल और सुसम्बद्ध था। यह समुद्रकी चोटीके समान जान पड़ता था।

पुल तैयार हो जानेपर अपने सचिवोंके सहित विभीषण गदा हाथमें लेकर दूसरे तटपर खड़े हो गये, जिससे शत्रु आक्रमण करके उसे तोड़ न सकें। तब सुग्रीवने भगवान् श्रीरामसे कहा—'वीरवर! आप हनुमान्‌के कंधेपर चढ़ जाइये और लक्ष्मणजी अङ्गदकी पीठपर सवार हो लें, क्योंकि समुद्र बहुत लंबा-चौड़ा है। ये दोनों वानर आकाश-मार्गसे चलनेवाले हैं; अतः ये ही आपको ले चलेंगे।' इस प्रकार धनुर्धर भगवान् श्रीराम लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ उस सेनाके आगे-आगे चले। दूसरे वानर उनके पीछे और अगल-बगल रहकर चले। कोई जलमें कूद पड़े, कोई रास्तेसे चले और कोई गरुड़की तरह आकाश-मार्गसे चलने लगे। इस प्रकार पार जाती हुई उस वानर-सेनाने अपने तुमुल नादसे समुद्रकी भीषण गर्जनाको भी दबा दिया। धीरे-धीरे सारी सेना नलके बनाये हुए पुलसे समुद्रके उस पार पहुँच गयी। वहाँ सुग्रीवने फल, मूल और जलकी अधिकता देखकर समुद्र-तीरपर ही उसका पड़ाव डाला।

भगवान् श्रीरामका वह अद्भुत और दुष्कर कर्म देखकर वहाँ सिद्ध, चारण और महर्षियोंके सहित देवतालोग आये तथा उन्होंने अलग-अलग पवित्र जलोंसे उनका अभिषेक किया। फिर 'राजन्! तुम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करो और बहुत दिनोंतक समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका पालन करो' इत्यादि अनेक प्रकारके मङ्गल-वाक्योंसे उनका अभिनन्दन किया।

सुग्रीवने उस वीर-सेनाकी यथोचित व्यवस्था की। वह सेना समुद्रके समान विशाल थी। उसके वेगसे भयभीत होकर पृथ्वी डगमगाने लगती थी। उस समय वानरोंको लङ्कामें चिल्लाहटका शब्द सुनायी दिया, जो भेरी और मृदङ्गके शब्दोंसे मिलकर बड़ा ही गम्भीर और रोमाञ्चकारी जान पड़ता था। उस शब्दको सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा उसे सह न सकनेके कारण वे उससे भी बढ़कर कोलाहल करने लगे। राक्षसोंने गर्वीले वानरोंकी वह गर्जना सुनी, जो आकाशमें गरजते हुए मेघोंके शब्दके समान जान पड़ती थी। दशरथनन्दन श्रीरामने चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित लङ्कापुरीको देखकर लक्ष्मणजीसे कहा—'लक्ष्मण! जरा लङ्काकी ओर तो देखो। यह अपनी ऊँचाईसे मानो आकाशको छू रही है। मालूम होता है विश्वकर्माने अपने मनसे ही इसे इस पर्वत-शिखरपर बनाया है। यह पुरी अनेकों सतमंजिले मकानोंसे परिपूर्ण है। कुबेरके चैत्ररथ-वनके समान अनेकों पुष्पित वनोंसे इसकी शोभा हो रही है, जिनमें तरह-तरहके फल-फूल लगे हुए हैं।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लक्ष्मणसे ऐसा कहकर दशरथकुमार श्रीरामने युद्धके नियमानुसार सेनाका विभाग किया। उस विशाल सेनामेंसे थोड़ी-सी सेना अलग करके उन्होंने आज्ञा दी कि नीलके सहित अङ्गद इसके हृदयभागमें रहें, ऋषभ वानरी सेनाके दाहिने भागमें रहें, गन्धमादन बायीं ओर रहें, मैं लक्ष्मणके सहित सावधानीसे सेनाके शिरोभागमें रहूँगा, जाम्बवान्, सुषेण और वेगदर्शी—ये तीनों प्रधान ऋक्ष सेनाके मध्यभागकी रक्षा करें तथा कपिराज सुग्रीव सेनाके पीछेके भागकी देख-रेख रखें। इस प्रकार सुन्दरतासे विभक्त एवं मोर्चाबंदी करके खड़ी हुई वह वानरोंकी विशाल सेना मेघोंसे घिरे हुए आकाशके समान जान पड़ती थी। वानरलोग पर्वतोंके शिखर और बड़े-बड़े वृक्ष लेकर लङ्काका ध्वंस करनेके लिये तैयार हो गये।

इधर भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे छोड़ा हुआ शुक राक्षसराज रावणके पास पहुँचा। तब रावणने उससे हँसकर पूछा—'तुम्हारे सफेद पंख क्या हुए? तुम पंखकटे-से दिखायी दे रहे हो। कहीं उन बंदरोंके चंगुलमें तो नहीं पड़ गये?' राक्षसराजके इस प्रकार प्रश्न करनेपर भयसे घबराये हुए शुकने कहा—'मैंने समुद्रके उत्तर-तटपर पहुँचकर आपका सन्देश बड़े मधुर वचनोंमें वानरोंको सुनाया; किन्तु उन्होंने तो मुझे देखते ही उछलकर पकड़ लिया और फिर क्रोधमें भरकर मुझे घूँसोंसे मारने और नोचने लगे। महाराज! तब विराध, कबन्ध और खरका वध करनेवाले श्रीरामने ही मुझे छुड़ाया। वे सीताको खोजते-खोजते सुग्रीवके साथ यहाँ आ पहुँचे हैं। वे बड़े धनुर्धर हैं और समुद्रपर पुल बाँधकर यहाँ आ गये हैं। राक्षसोंको तो वे तृणके समान समझते हैं। पर्वत और मेघोंके समान विशालकाय वानरों और रीछोंकी बड़ी भारी सेना पृथ्वीको घेरे पड़ी है। देवता और दानवोंमें जैसे मेल होना असम्भव है, उसी प्रकार वानरों और राक्षसोंकी सेनामें सन्धि नहीं हो सकती। अतः जबतक वे लङ्कापुरीके परकोटेके पास पहुँचें, तबतक ही आप अपना कर्तव्य निश्चित कर लें। या तो तुरंत ही उन्हें सीता सौंप दें या फिर युद्धके लिये तैयार हो जायँ।' शुककी बातें सुनकर रावणने क्रोधसे आँखें लाल करके कहा—'यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझसे युद्ध करनेको तैयार हो जायँ अथवा सारा संसार मुझपर दबाव डालने लगे, तो भी सीताको तो मैं नहीं दे सकता। अभी रामने संग्रामभूमिमें समुद्रके समान मेरा वेग, वायुके समान बल और विषधर सर्पोंके समान मेरे बाण नहीं देखे हैं; इसीसे वह मेरे साथ युद्ध ठानना चाहता है।'

## रावणके गुप्तचर शुक और सारणका वानर-सेनामें जाना तथा रावणको उसका निरीक्षण कराते हुए प्रधान-प्रधान वानर-वीरोंका वर्णन करना

तदनन्तर जब सेनाके सहित भगवान् श्रीराम समुद्र पार कर चुके तब रावणने अपने मन्त्री शुक और सारणसे फिर कहा—'रामने समुद्रपर पुल बाँध दिया और उसपर होकर सारी वानर-सेनाने दुस्तर समुद्रको भी पार कर लिया—यह सब अपूर्व ही हुआ। अतः अब तुमलोग गुप्तरीतिसे वानरोंकी सेनामें जाओ और उनकी संख्या तथा शक्तिका पता लगाकर यह भी मालूम करो कि उस सेनामें मुख्य-मुख्य वानर कौन हैं, राम और सुग्रीवके साथ आये हुए उनके मन्त्री कौन हैं, सेनाके आगे कौन-कौन शूरवीर वानर रहते हैं, उन्होंने समुद्रपर पुल किस प्रकार बाँधा है और वानर-सेनाकी छावनी किस प्रकार डाली गयी है। इन सब बातोंका पता लगाकर तुमलोग तुरंत ही लौट आओ।'

ऐसा आदेश पाकर शुक और सारणने वानर-रूप धारण करके वानरोंकी सेनामें प्रवेश किया। वह सेना पर्वतके शिखरोंपर, झरनोंके पास और गुफाओंमें पड़ी हुई थी। उसका कुछ भाग समुद्र पार कर रहा था, कुछ पार कर चुका था और कुछ पार करनेकी तैयारीमें था। इस प्रकार दोनों राक्षस उस अजेय सेनाका निरीक्षण कर रहे थे। इसी समय महातेजस्वी विभीषणने वानररूपमें छिपे हुए उन राक्षसोंको देख लिया तथा उन्हें पकड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'ये दोनों राक्षसराज रावणके मन्त्री शुक और सारण हैं। ये गुप्तचर बनकर यहाँ लङ्कासे आये हैं।' तब उन दोनोंने हाथ जोड़कर भगवान् श्रीरामसे कहा—'सौम्य! हम दोनों रावणके भेजनेसे यहाँ आपकी सेनाका पता लगाने आये हैं।' उनकी यह बात सुनकर सर्वभूतहितकारी श्रीरामने हँसकर कहा—'यदि तुमने सेना देख ली हो, हमारी शक्तिका पता लगा लिया हो तथा रावणका बताया हुआ और सब काम भी कर लिया हो, तो अब तुमलोग प्रसन्नतासे जा सकते हो और यदि अभी कुछ देखना बाकी रह गया हो तो फिर देख लो। विभीषण तुम्हें सब कुछ अच्छी तरह दिखा देंगे। इस प्रकार पकड़ लिये जानेसे तुमलोग अपने जीवनके विषयमें किसी प्रकारका



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खटका मत रखो; क्योंकि शस्त्रहीन, पकड़े हुए दूत वधके योग्य नहीं होते। जब तुम लङ्कामें पहुँचो तो राक्षसराज रावणको मेरी ओरसे कहना—'जिस बलके भरोसे तुमने मेरी सीताका हरण किया है, उसे अब सेना और बन्धुजनोंके सहित आकर अच्छी तरह दिखाना। कल प्रातःकाल ही तुम परकोटे और दरवाजोंके सहित लङ्कापुरी तथा राक्षसी सेनाका मेरे बाणोंसे विध्वंस होता देखोगे।" भगवान् श्रीरामका यह सन्देश पाकर शुक और सारणने 'जय हो' ऐसा कहकर धर्मप्रेमी श्रीरघुनाथजीका अभिनन्दन किया। फिर उन्होंने लङ्कामें आकर राक्षसराज रावणसे कहा—'महाराज! हमें तो विभीषणने वध करनेके लिये पकड़ लिया था; किन्तु जब अतुलित तेजस्वी धर्मात्मा रामने देखा तब हमें छुड़वा दिया। दशरथनन्दन राम, श्रीमान् लक्ष्मण, विभीषण और देवोपम तेजस्वी सुग्रीव तो लोकपालोंके समान शूरवीर, पराक्रमी और अस्त्रनिपुण हैं। ये चारों पुरुषश्रेष्ठ यदि एक स्थानपर इकट्ठे हो जायँ, और सब वानर अलग रहें तो भी ये चार ही परकोटे और दरवाजोंके सहित सारी लङ्कापुरीको उखाड़कर फेंक सकते हैं तथा रामचन्द्रजीका जैसा रूप है और जैसे उनके अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे तो यही मालूम होता है कि वे अकेले ही लङ्काको नष्ट कर देंगे; भले ही बाकी तीन भी बैठे रहें। महाराज! राम, लक्ष्मण और सुग्रीवसे सुरक्षित वह वानरोंकी सेना तो समस्त देवता और असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय है। महात्मा वानर इस समय युद्ध करनेके लिये उत्सुक हैं, उनकी सेनाके सभी वीर बड़े प्रसन्न हैं; अतः आप उनसे विरोध न करके सन्धि कर लें और रामचन्द्रजीको सीता दे दें।'

[शुक और] सारणके ये सच्चे और खरे शब्द सुनकर रावणने कहा—'भैया! तुम्हें बंदरोंने बहुत तंग किया है, इसीसे आज तुम्हें सीताको लौटानेकी बात अच्छी लगने लगी है। भला बताओ तो, ऐसा कौन शत्रु है जो मुझे युद्धमें जीतनेकी शक्ति रखता है?' राक्षसराज रावण ऐसे कठोर वचन कहकर वानरोंकी सेनाको देखनेके लिये अपनी कई ताल ऊँची बर्फके समान सफेद अटारीपर चढ़ गया। वहाँसे उन दोनों दूतोंके साथ वह समुद्र, पर्वत और वनोंकी ओर देखने लगा। उसने सारी पृथ्वी वानरोंसे छायी हुई देखी। वह वानरोंकी विशाल सेना अपार और असह्य थी। उसे देखकर रावणने सारणसे पूछा—'इस सेनामें कौन-कौन वानर प्रधान हैं, कौन विशेष शूरवीर हैं और कौन बलमें बढ़े-चढ़े हैं? इनमें कौन आगे चलते हैं, कौन सब जगह उत्साह प्रकट करते हैं और कौन-कौन प्रधान सेनापति हैं? सारण! ये सब बातें मुझे बताओ और यह भी कहो कि इन वानरोंका प्रभाव कैसा है?'

रावणके इस प्रकार पूछनेपर सारणने कहा—'यह जो लङ्काकी ओर मुँह करके गरज रहा है और जिसके महान् गर्जनसे परकोटे, दरवाजे तथा पर्वत और वनोंके सहित सारी लङ्का दहल उठी है, वीर वानर नील है। यह वानरोंकी सारी सेनाका अध्यक्ष है और उसके आगे रहता है। जो वानर लङ्काकी ओर देखकर बार-बार क्रोधपूर्वक अँगड़ाई लेता है, जिसका शरीर पर्वतके समान विशाल और कमलकी केसरके समान पीला है, जो बार-बार क्रोधपूर्वक अपनी पूँछ पटक रहा है तथा जिसकी पूँछके शब्दसे दसों दिशाएँ गूँज उठती हैं, वह युवराज अङ्गद है। यह वालीका पुत्र अपने पिताके समान ही बलवान् है। अङ्गदके पीछे जो वीर बड़ी भारी सेनाके सहित युद्ध करनेके लिये डटा हुआ है, वह नल है। इसीने समुद्रपर पुल बनाया है। यह चाँदीके समान सफेद रंगका चञ्चल वानर, जो अपनी सेना लेकर लङ्काको मसल देना चाहता है तथा बार-बार बड़ी तेजीसे सुग्रीवके पास आकर फिर लौट जाता है, वानरी सेनाका विभाग करनेवाला है। इसका नाम श्वेत है। उधर वह कुमुद नामका सेनापति है; गोमती नदीके तीरपर जो अनेकों शिखरोंवाला संरोचन नामक पर्वत है, वहीं यह विचरता रहता है और उसी जगह इसका राज्य है। जिसके शरीरपर इधर-उधर फैले हुए लाल, पीले, भूरे और सफेद बाल देखनेमें बड़े भयानक जान पड़ते हैं, वह चण्ड नामका वानर है। यह बड़े उत्साहसे एक लक्ष सेनाका नेतृत्व करता है। यह सिंहके समान पीला वानर, जिसकी गर्दनमें लंबे-लंबे बाल हैं और जो ध्यान लगाकर इस प्रकार लङ्काकी ओर देख रहा है मानो इसे भस्म कर देगा, रम्भ नामका सेनापति है। यह निरन्तर विन्ध्य, कृष्ण और सह्य आदि दर्शनीय पर्वतोंपर रहता है। यह जो कानोंको फैलाता और बार-बार जँभाई लेता है, शरभ नामका सेनापति है। यह मृत्युसे भी नहीं डरता। देखिये, यह क्रोधसे काँप रहा है, तिरछी नजरसे देखता है और पूँछ फटकारकर खिलवाड़ कर रहा है। यह सर्वदा साल्वेय नामके रमणीय पर्वतपर रहता है। इसके एक लाख, चालीस हजार यूथपति हैं। यह बहुत बड़ा वानर, जो मेघके समान आकाशको घेरे हुए है तथा वानर-वीरोंमें ऐसा जान पड़ता है जैसे देवताओंमें इन्द्र हो,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पनस नामका सेनापति है। इसका शब्द भेरीनादके समान सुनायी पड़ रहा है, यह पारियात्र-पर्वतपर निवास करता है और युद्धमें सर्वथा असह्य है। जो इस उछलती-कूदती भीषण सेनाके मध्यमें स्थित होकर उसे सुशोभित कर रहा है, वह पर्वतके समान विशालकाय विनत नामका सेनापति है। यह जो गेरूके समान लाल रंगका वानर है, उसका नाम गवय है। यह अपने बलके अहंकारसे सर्वदा सब वानरोंका तिरस्कार किया करता है। देखिये, आपकी ओर यह किस क्रोधसे बढ़ रहा है। महाराज! ये सभी वानर युद्धमें असह्य हैं और इनकी गणना करना भी असम्भव है।

'इधर यह हर नामका वानर है। इसकी पूँछपर लाल, पीले, भूरे और सफेद रंगके लंबे-लंबे चिकने बाल हैं, जो इधर-उधर फैले होनेसे सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। इसके पीछे सैकड़ों-हजारों वानर वृक्ष उठाये लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये चल रहे हैं। उधर नील मेघके समान जिन वानरोंको आप बैठे देख रहे हैं, वे सुग्रीवके यूथपति और सेवकादि हैं। ये सच्चे वीर हैं, इनकी गणना नहीं की जा सकती; इसलिये इनका अलग-अलग परिचय देना भी सम्भव नहीं है। ये सब पर्वतों, भिन्न-भिन्न देशों और नदियोंके तटपर रहते हैं। वह सब भालुओंका राजा और सेनापति धूम्र है। यह ऋक्षवान् पर्वतपर रहता है, देखनेमें बड़ा भयानक है तथा इसके नेत्र भी बड़े डरावने हैं। देखिये, इधर इसका छोटा भाई है, जो पर्वतके समान विशालकाय है। इसका रूप भी अपने भाईके ही समान है, परन्तु पराक्रममें यह उससे बढ़ा हुआ है। इसका नाम जाम्बवान् है, यह अनेकों यूथपतियोंका भी अध्यक्ष है। यह बड़ा ही शान्त और गुरुजनोंका आज्ञाकारी है, परन्तु इसकी चोट बड़ी असह्य होती है। इसने देवासुर-संग्राममें इन्द्रकी बड़ी सहायता की थी। उस समय इसे अनेकों वर भी मिले थे। उस ओर जो एक योजन ऊँचा सन्नादन नामका वानर है, वह वानरोंका पितामह कहा जाता है। इस बुद्धिमान् वानरने इन्द्रके साथ संग्राम किया था, तो भी यह पराजित नहीं हुआ। यह अनेकों यूथपतियोंका स्वामी है। इधर, यह क्रथन नामका वानर है। यह देवासुर-संग्रामके समय देवताओंकी सहायताके लिये उत्पन्न हुआ था। यह वानरश्रेष्ठ आपके भाई कुबेरके विहार-स्थानमें क्रीडा करता है। युद्धके समय यह कभी अपनी बड़ाई नहीं करता। इसके साथ सर्वदा एक खरब वानर रहते हैं। वह वानर-सेनाका प्रधान सेनापति प्रमाथी है। यह युद्धमें अजेय है। वानर और हाथियोंके पुराने वैर[1]का स्मरण करके यह बहुत-से पेड़ उखाड़-उखाड़कर उनसे हाथियोंको रोक देता है। यह गङ्गाजीके किनारे घूमता-फिरता है तथा मन्दराचल-पर्वतके उशीरबीज नामक शिखरपर रहता है। ये काले मुँहवाले लंगूर जातिके वानर हैं। ये सब अपने सेनापति गवाक्षको घेरकर गरज रहे हैं। इस ओर यह वानरोंमें श्रेष्ठ केशरी नामका सेनापति है। यह परम रमणीय सुवर्णगिरिपर रहता है, सूर्यकी किरणोंका संसर्ग होनेपर वहाँ रहनेवाले मृग और पक्षी भी सुनहरे रंगके हो जाते हैं। महर्षिलोग भी उस पर्वत-शिखरको कभी नहीं छोड़ते; क्योंकि वहाँके सब वृक्ष फलोंसे लदे रहते और इच्छानुसार फल देते हैं। उन्हीं पर्वतोंमें जो अन्तिम शिखर है, उसपर भूरे, सफेद और लाल मुँहवाले मधुके समान पिङ्गलवर्ण वानर रहते हैं। वे सिंहके समान चार दाँतोंवाले, व्याघ्रके समान दुर्जय और अग्निके समान उग्र हैं। उनकी चेष्टाएँ मतवाले हाथियोंकी-सी है, शरीर पर्वतोंके समान ऊँचे हैं तथा गर्जना मेघोंके समान गम्भीर है। उनके चलनेसे बड़ा भीषण शब्द होता है। देखिये, उनके बीचमें वह उनका सेनापति है। यह बड़ा ही बलवान् है और विजय-प्राप्तिके लिये सूर्यकी उपासना करता है। यह पृथ्वीमें शतबलि नामसे विख्यात है तथा बड़ा ही शूरवीर, पराक्रमी और अपने बलका भरोसा रखनेवाला है। ये सभी वानर भगवान् श्रीरामका प्रिय करनेके लिये अपने प्राणोंपर भी रहम नहीं करते। गज, गवाक्ष, गवय, नल और नील—इनमेंसे प्रत्येक सेनापति दस-दस करोड़ योद्धाओंसे घिरा हुआ है। इसी प्रकार विन्ध्य-पर्वतपर रहनेवाले और भी अनेकों वानर हैं। अधिक होनेके कारण उनकी गणना नहीं की जा सकती। महाराज! ये सभी वानर बड़े प्रभावशाली हैं, सभीके शरीर पर्वतोंके समान विशाल हैं और सभी एक क्षणभरमें सारी पृथ्वीको उखाड़े हुए पर्वतोंसे भर सकते हैं।'

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी सेनाका परिचय देकर जब सारण चुप हो गया तब उसका कथन सुनकर शुकने राक्षसराज रावणसे कहा—'जिन्हें आप गङ्गातटके वट और हिमालयके सालवृक्षके समान बैठे देखते हैं, ये सर्वदा किष्किन्धामें रहनेवाले सुग्रीवके मन्त्री हैं। ये वानर इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं और देवता तथा गन्धर्वोंसे उत्पन्न हुए

१. हनुमान्‌जीके पिता वानरराज केशरीने शम्बसादन नामक राक्षसको, जो हाथीका रूप धारण करके आया था, मार डाला था। इसीसे पूर्वकालमें हाथियोंसे वानरोंका वैर बँध गया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं । राजन् ! संग्रामभूमिमें ये दैत्य और दानवोंके समान बलवान् एवं असह्य हैं तथा देवताओंके समान पराक्रमी हैं। इनमें देवताओंके समान रूपवान् जिन दो वानरोंको आप बैठे देख रहे हैं, वे मैन्द और द्विविद नामके वानर हैं। युद्धमें इनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है, ब्रह्माजीकी आज्ञासे इन दोनोंने अमृतका पान किया है, ये अपने पराक्रमसे लङ्काको मसल डालना चाहते हैं। वह आपका पहलेका देखा हुआ वानर है, जो लङ्कामें आपके पास आया था और सीता-जीसे भी मिलकर गया था। अब यह फिर आया है। यह केशरीका बड़ा पुत्र है, इसका नाम हनुमान् है; इसीने पहले समुद्र लाँघा था। यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकता है, इसकी गति कहीं नहीं रुकती और यह है भी बहुत बलवान्। एक बार बाल्यावस्थामें इसे भूख लगी थी। उस समय उगते हुए सूर्यको देखकर उसे ले आनेकी इच्छासे यह तीन हजार योजन ऊँचा उछल गया था। मैं पूर्वचरित्रके सहित इस वानरको पहलेसे ही जानता हूँ। इसके बल, रूप और प्रभावका वर्णन करना असम्भव है। यह अकेला ही सारी लङ्काको मसल देना चाहता है। इसने तो आपके तेजसे कुण्ठित हुई अग्निको प्रज्वलित करके लङ्कामें लगा दिया था। इस समय आप इसे भूल क्यों रहे हैं? हनुमान्‌के पास ही जो कमलके समान नेत्रोंवाले साँवले वीर बैठे हैं, वे इक्ष्वाकु-वंशके अतिरथी हैं। इनका पुरुषार्थ सम्पूर्ण लोकोंमें प्रसिद्ध है। धर्म इनसे कभी अलग नहीं होता। ये ब्रह्मास्त्र और वेदोंके ज्ञाता हैं, अपने बाणोंसे आकाश और पृथ्वीको भी विदीर्ण कर सकते हैं। इनका क्रोध मृत्युके समान है तथा इन्हींकी पत्नी सीताको आप जनस्थानसे हरकर लाये हैं। ये ही श्रीराम हैं, जो इस समय आपसे युद्ध करनेके लिये आये हैं। इनकी दायीं ओर लक्ष्मणजी हैं, जिनकी सुवर्णकी-सी आभा है, चौड़ी छाती है, अरुण नेत्र और काली घुँघराली जटाएँ हैं। ये सर्वदा अपने भाईका प्रिय और हित करनेमें तत्पर रहते हैं, नीति और युद्धमें कुशल हैं तथा सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं। ये बड़े ही अजेय, विजयी, पराक्रमी और बलवान् हैं। इन्हें आप श्रीरामका दायाँ हाथ या उनके बाह्य प्राण ही समझें। श्रीरघुनाथजीके कामके आगे ये अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं करते। ये अकेले ही युद्धमें सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार करनेका चाव रखते हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी बायीं ओर जो राक्षसोंसे घिरे बैठे हैं, वे राजा विभीषण हैं। श्रीमान् श्रीरामने इन्हें लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया है और अब ये आपपर कुपित होकर युद्ध करनेके लिये आये हैं, जिन्हें आप सब वानरोंके बीचमें निश्चलभावसे बैठे देखते हैं, वे समस्त वानरोंके राजा सुग्रीव हैं। ये बड़े ही पराक्रमी हैं तथा तेज, यश, बुद्धि, बल और कुलकी दृष्टिसे समस्त वानरोंमें श्रेष्ठ हैं। इनके गलेमें जो सौ कमलोंकी सुवर्णमयी माला सुशोभित है, इसमें सर्वदा लक्ष्मीदेवी रहती हैं। भगवान् श्रीरामने वालीको मारकर यह माला, तारा और वानरोंका राज्य सुग्रीवको दिया है। महाराज ! यह सेना एक क्रूर ग्रहके समान है, इसे आयी देखकर आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे आपकी विजय हो और शत्रुओंके सामने आपको नीचा न देखना पड़े।'

इस प्रकार शुकके दिखानेसे रावणने समस्त वानर-यूथ-पतियोंको देखा। भगवान् श्रीरामकी दायीं ओर महाबली लक्ष्मण-जी, उनके पास बैठे हुए अपने भाई विभीषण, समस्त वानरोंके राजा महापराक्रमी सुग्रीव, वालीके पुत्र महाबली अङ्गद, महापराक्रमी हनुमान्, दुर्जय जाम्बवान् तथा सुषेण, कुमुद, नील, नल, गज, गवाक्ष, शरभ, मैन्द और द्विविद आदि वानरश्रेष्ठोंको देखकर रावणका हृदय कुछ उद्विग्न हो गया और उसे क्रोध हो आया। बात समाप्त होनेपर उसने शुक और सारणको फटकारा। उन्होंने विनीत होकर मुख नीचा कर लिया। तब उसने क्रोधसे लड़खड़ाते हुए शब्दोंमें उनसे कहा—'राजा निग्रह और अनुग्रह करनेमें समर्थ होता है। उसके सहारे जीविका चलानेवाले मन्त्रियोंको ऐसी बातें कहनी उचित नहीं हैं। जो शत्रु अपने विरोधी हैं और युद्धके लिये आये हुए हैं, उनकी बिना ही प्रसङ्ग स्तुति करना क्या तुम्हें उचित था? तुमलोगोंने आचार्य, गुरु और वृद्धोंकी सेवा व्यर्थ ही की है; क्योंकि राजनीतिका जो सार है, उसे तुम ग्रहण नहीं कर सके। ऐसे मूर्ख मन्त्रियोंके रहते हुए केवल सौभाग्यसे ही मेरा राज्य बचा हुआ है। तुम दोनों अभी मेरे पाससे अपना मुँह काला करके चले जाओ। मैं तुम्हारे उपकारोंको सोचकर रह जाता हूँ, नहीं तो अभी मार डालता।' रावणके इस प्रकार कहनेपर शुक और सारण बहुत लज्जित हुए और जय-जयकारके द्वारा उसका अभिनन्दन करके वहाँसे चले गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## रावणका वानर-सेनाके निरीक्षणके लिये दूत भेजना, उनके मुखसे उसका समाचार जानकर सीताको श्रीरामचन्द्रजीका माया-रचित सिर दिखाना तथा सीताजीका विलाप

इसके पश्चात् रावणने अपने पास बैठे हुए महोदरसे कहा—'मेरे सामने शीघ्र ही दूतोंको हाजिर करो।' महोदरने तुरंत ही दूतोंको बुलाया। राजाकी आज्ञा सुनकर दूत उसी समय हाथ जोड़े उपस्थित हुए। तब रावणने उनसे कहा—'तुमलोग अभी वानर-सेनामें जाओ और इस बातका पता लगाकर लौट आओ कि रामका क्या विचार है, वे कैसे सोते हैं, कैसे जागते हैं और क्या करना चाहते हैं।' दूतोंने शार्दूलको आगे रखकर रावणकी परिक्रमा की और जहाँ श्रीराम एवं लक्ष्मण थे, वहाँ चल दिये। वानरोंकी सेनाको देखकर तो वे एकदम डर गये। इतनेमें ही दैवयोगसे विभीषणने उन्हें देख लिया और यह राक्षस बड़ा पापी है; यह सोचकर अकेले शार्दूलको पकड़वा लिया; किन्तु जब वानर उसे पीटने लगे, तब भगवान् श्रीरामने करुणावश उसे छुड़ा दिया। इसी प्रकार दूसरे राक्षसोंको भी उन्होंने वानरोंके चंगुलसे मुक्त कर दिया। बेचारे दूतोंके होश हवा हो गये थे, वे हाँफते-हाँफते लङ्कामें पहुँचे। वहाँ रावणके पास पहुँचकर उन्होंने सूचना दी कि श्रीरामचन्द्रजीकी सेना सुबेल-पर्वतपर आ गयी है और वह सर्वथा अजेय है। यह सुनकर रावण घबरा गया और उसने शार्दूलसे कहा—'तुम कुछ दुखी-से जान पड़ते हो, कहीं क्रोधमें भरे हुए शत्रुओंके हाथमें तो नहीं पड़ गये?' रावणके इस प्रकार पूछनेपर शार्दूलने मन्द स्वरमें कहा—'महाराज! उस सेनामें घुसते ही मुझे विभीषणके साथी राक्षसोंने पहचानकर पकड़ लिया और फिर चारों ओर घुमाकर श्रीरामचन्द्रजीके दरबारमें ले गये। वानरलोग मुझे बराबर पीट रहे थे, तब रघुनाथजीने ही उन्हें रोककर मेरी रक्षा की। श्रीरामचन्द्रजी पर्वत और शिलाओंद्वारा समुद्रको पाटकर लङ्काके दरवाजेपर आ धमके हैं। वे गरुड-व्यूह बनाकर वानरोंके बीचमें विराजमान हैं। मुझे छुड़ाकर अब वे लङ्काकी ही ओर बढ़ रहे हैं। जबतक वे लङ्काके परकोटेतक पहुँचें, तबतक आप दोमेंसे कोई एक काम कर लें—या तो उन्हें सीताजी लौटा दें या युद्धके लिये तैयार हो जायँ।'

यह सुनकर राक्षसराज रावणने कहा—'तुम तो उस सेनाको देख आये हो; बताओ, उनमें कौन-कौन वानर विशेष शूरवीर हैं।' रावणके इस प्रकार कहनेपर शार्दूलने कहा—'उस सेनामें जाम्बवान् नामका एक प्रसिद्ध वीर है। वह ऋक्षराजका औरस और गद्गदका क्षेत्रज पुत्र है। गद्गदका ही एक दूसरा पुत्र भी है [ उसका नाम धूम्र है ]। धर्मात्मा और महाबली सुषेण धर्मका पुत्र है। दधिमुख चन्द्रमासे उत्पन्न हुआ है। सेनापति नील अग्निका पुत्र है। सुप्रसिद्ध वीर हनुमान् वायुका पुत्र है। महाबली और दुर्जय वीर अङ्गद इन्द्रका नाती है, वह अभी युवावस्थामें ही है। मैन्द और द्विविद—ये दोनों वीर वानर अश्विनीकुमारके पुत्र हैं। गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन—ये पाँचों यमराजके पुत्र हैं और पराक्रममें साक्षात् कालके समान हैं। इस प्रकार देवताओंसे उत्पन्न हुए शूरवीर वानरोंकी ही संख्या दस करोड़ है। औरोंके विषयमें तो मैं कुछ कह ही नहीं सकता। दशरथपुत्र श्रीराम भी सिंहके समान वीर और युवा हैं; उन्होंने अकेले ही खर, दूषण और त्रिशिरा—तीनोंका संहार किया था। पृथ्वीमें श्रीरामके समान दूसरा कोई भी वीर नहीं है। उन्हींने विराध और कालके समान विकराल कबन्धका वध किया था। संसारमें ऐसा कोई नहीं है, जो उनके गुणोंका वर्णन कर सके। धर्मात्मा लक्ष्मण भी साक्षात् गजराजके समान हैं। उनके बाणका लक्ष्य बननेपर स्वयं इन्द्र भी जीता नहीं बच सकता। इनके सिवा उस सेनामें श्वेत और ज्योतिर्मुख सूर्यके पुत्र हैं तथा हेमकूट वरुणका, नल विश्वकर्माका और महापराक्रमी दुर्धर वसुका पुत्र है। आपके भाई विभीषण राक्षसोंमें श्रेष्ठ हैं ही। वे रघुनाथजीसे लङ्काका अधिकार पाकर उनके हितमें तत्पर हो गये हैं। इस प्रकार मैंने सुबेल-पर्वतपर ठहरी हुई वानर-सेनाका पूरा-पूरा वर्णन कर दिया। अब आगे जैसा आप उचित समझें, वैसा करें।'

दूतोंके मुखसे यह सब वृत्तान्त सुनकर रावणको कुछ उद्वेग हुआ। फिर उसने अपने मन्त्रियोंसे कहा—'सभी मन्त्री सावधान होकर यहाँ आयें; क्योंकि यह हमलोगोंके विशेष रूपसे सलाह करनेका समय है।' रावणकी आज्ञा सुनते ही सारे मन्त्री बड़ी फुर्तीसे चले आये। तदनन्तर उसने उनके साथ परामर्श करके उन्हें विदा किया और स्वयं अपने महलमें चला आया। फिर उसने विद्युज्जिह्व नामके एक मायावी राक्षससे कहा—'हम दोनों मायाद्वारा जनकनन्दिनी सीताको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहित करेंगे; तुम एक बाण चढ़ा हुआ धनुष और मायासे बना हुआ रामका मस्तक लेकर मेरे पास आओ।' विद्युज्जिह्वने 'जो आज्ञा' कहकर बड़ी कुशलतासे अपनी माया प्रकट की। इससे रावण बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे बहुत-से आभूषण दिये। फिर वह सीताजीको देखनेके लिये अशोक-वाटिकामें गया। उस समय सीताजी शोकातुर अवस्थामें सिर नीचा किये पृथ्वीपर बैठी थीं और अपने पतिदेवका ध्यान कर रही थीं। उनके आस-पास अनेकों भयंकर राक्षसियाँ बैठी थीं। रावणने उनके पास जाकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए उनसे कहा—'सीते! जिसकी आशासे तुम मेरा तिरस्कार कर रही थीं, वह तुम्हारा पति मारा गया। अब तुम्हारी जड़ कट गयी है। मूर्खे! यह कुबुद्धि छोड़ दो, अब मरे हुए रामसे तुम्हें क्या लेना है? तुम मेरी सब रानियोंकी स्वामिनी बनो। तुम अपनेको बड़ी बुद्धिमती समझती थीं; परन्तु मैं तो समझता हूँ यह तुम्हारे पुण्यकी ही कमी थी। परन्तु अब रामके मारे जानेसे तुम्हारा वह प्रयोजन भी जाता रहा। देखो, राम मुझे मारनेके लिये समुद्र-तटपर आया था; किन्तु प्रहस्तकी सजायी हुई मेरी विशाल सेनाने उसकी सारी सेनाको नष्ट कर दिया। राम उस समय सोया हुआ था, इसलिये महाबली प्रहस्तने एक बड़ी तलवारसे उसका सिर काट लिया। इतनेमें ही विभीषण आया, किन्तु दैवयोगसे वह भी पकड़ लिया गया। लक्ष्मण वानरोंकी सेनासहित किसी ओर भाग गया। वानरराज सुग्रीवका भी गला काट लिया गया है। हनुमान्‌को भी उसकी ठोड़ी तोड़कर राक्षसोंने मार डाला है। जाम्बवान्‌को भी युद्धमें मौतके घाट उतार दिया गया है। वानरोंमें श्रेष्ठ मैन्द और द्विविदको भी बीचसे काट डाला गया है। पनस नामका वानर [ पककर फटे हुए ] पनस (कटहल)के समान पृथ्वीपर पड़ा अन्तिम साँस ले रहा है। दरीमुख बहुत-से बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुआ किसी दरी ( गुफा ) में पड़ा है। परम तेजस्वी कुमुद और अङ्गदको भी राक्षसोंने बाणोंसे बींधकर मार डाला है। राक्षसोंके पीछा करनेपर बहुत-से वानर उनकी मारसे घबराकर भाग गये हैं। कोई समुद्रमें डूब गये हैं और कोई आकाशमें उड़ गये हैं। बहुत-से रीछ और वानर पेड़ोंपर चढ़ गये हैं। विकराल नेत्रोंवाले राक्षसोंने इन भूरे बंदरोंको समुद्र-तट, पर्वत और वनोंमें सभी जगह मारा है। इस प्रकार मेरी सेनाके द्वारा तुम्हारा पति तो अपनी फौजके साथ मारा गया। मेरे पास उसका धूल और खूनसे भरा हुआ सिर आया है।'

फिर रावणने सीताजीको सुनाते हुए राक्षसियोंसे कहा—'तुम विद्युज्जिह्व नामके राक्षसको बुला लाओ। वही तो संग्राम-भूमिसे रामका सिर लाया है।' विद्युज्जिह्व धनुष-बाणके सहित वह सिर लेकर उपस्थित हुआ और प्रणाम करके रावणके सामने खड़ा हो गया। तब रावणने उससे कहा—'तुम शीघ्र ही रामका सिर सीताके आगे रख दो। जरा यह भी अपने पतिकी अन्तिम दयनीय दशा देख ले।' आज्ञा पाते ही राक्षस विद्युज्जिह्व श्रीरामचन्द्रजीका वह सुन्दर [मायानिर्मित] सिर सीता-के सामने रखकर तुरंत ही वहाँसे अन्तर्धान हो गया। रावणने उसके हाथसे वह विशाल और चमचमाता हुआ धनुष भी ले लिया और सीतासे कहा—'लो, यही तुम्हारे रामका त्रिलोकीमें विख्यात महान् धनुष है। अब तो तुम मेरे अधीन हो जाओ।'

सीताजीने वह सिर और उत्तम धनुष देखा, उन्हें हनुमान्‌की कही हुई सुग्रीवके साथ सम्बन्ध होनेकी बात याद आयी और फिर अपने पतिके सिरको वैसे ही नेत्र, वैसे ही वर्ण, वैसे ही मुख, वैसे ही केश, वैसे ही ललाट और वैसे ही सुन्दर चूड़ामणि आदि चिह्नोंसे पहचानकर वे बहुत दुखी हुईं। फिर थोड़ी देरमें अपनेको सँभालकर वे उस सिरको लिये विलाप करने लगीं—'हा महाबाहो! मेरा सर्वनाश हो गया! आप वीर व्रतका पालन करनेवाले थे। मुझे आपकी यह अन्तिम अवस्था देखनी पड़ी। स्त्रीसे पहले पतिका मरना बड़े दोषकी बात है; अतः यह बड़ा ही अनर्थ हुआ जो मुझ सती-साध्वीके रहते आपका निधन हुआ। मैं तो बड़े भारी दुःखमें पड़कर शोक-समुद्रमें डूबी हुई थी, आप उससे मेरा निस्तार करनेका प्रयत्न कर रहे थे; किन्तु हाय! अब आप भी न रहे। सास कौसल्याजी भी आपके ही कारण स्नेह-सुखका अनुभव करती थीं, किन्तु आज वे भी बिना बछड़ेकी गौके समान बना दी गयीं। राघव! ज्योतिषियोंने तो आपको दीर्घायु बताया था, उनका वचन भी झूठा हो गया। आप तो नीतिज्ञ थे, दुःखोंको दूर करनेका उपाय भी आप जानते ही थे और उन्हें नष्ट करनेमें भी कुशल थे; फिर ऐसी अचिन्तित मृत्युके शिकार आप कैसे हो गये? कमलनयन! इस भीषण और अत्यन्त क्रूर कालरात्रिने आलिङ्गन करके आपको मुझसे छीन लिया। हाय! पुरुषश्रेष्ठ होकर भी आज मुझ तपस्विनीको छोड़कर आप अपनी प्रियतमाके समान पृथ्वीका आलिङ्गन किये पड़े हैं। वीर! जिसका मैं प्रयत्नपूर्वक गन्ध और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालादिके द्वारा नित्यप्रति पूजन करती थी, यह आपका वही सुवर्णभूषित धनुष है। आप तो गतिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, फिर मुझ दुःखिनीको इस लोकमें छोड़कर आप दूसरे लोकमें कैसे चले गये ? हम तीन व्यक्ति साथ-साथ वनमें आये थे, किन्तु अब शोकाकुल कौसल्या केवल लक्ष्मणजीको ही देख सकेंगी। उनके पूछनेपर जब लक्ष्मण उन्हें रात्रिके समय राक्षसोंके हाथसे आपके मित्रकी सेनाका, सोते हुए आपका और राक्षसोंके घरमें मेरा वध होनेका समाचार सुनायेंगे तो उनका हृदय फट जायगा और वे प्राण त्याग देंगी। हाय ! मुझ दुष्टाके लिये ही समुद्र-पार आकर राजकुमार श्रीराम मारे गये। रावण ! तुम श्रीरामके शवके पास ले जाकर मुझे भी मार डालो। इस प्रकार पत्नीको पतिसे मिलाकर तुम उसका कल्याण कर दो। मैं तो अब अपने पतिदेवका ही अनुगमन करूँगी।' विशालाक्षी सीताने दुःखित होकर इसी प्रकार बहुत विलाप किया।

इतनेमें ही वहाँ रावणकी सेनाका एक राक्षस आया। उसने 'महाराजकी जय हो' यह कहकर रावणका अभिवादन किया और प्रार्थना की कि 'सब मन्त्रियोंके सहित सेनापति प्रहस्त श्रीमहाराजकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। मालूम होता है, कोई बहुत आवश्यक कार्य है; अतः आप उन्हें दर्शन देनेकी कृपा करें।' राक्षसके इस प्रकार कहनेपर रावण अशोक-वाटिका छोड़कर मन्त्रियोंसे मिलने चला गया। उसने मन्त्रियोंसे अपने सारे कृत्यका समर्थन कराया और फिर श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमका पता लगाकर विचार करनेके लिये सभामें चला गया। रावणके जाते ही वह सिर और धनुष अन्तर्धान हो गये। राक्षसराजने अपने मन्त्रियोंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें अपना कर्त्तव्य निश्चित किया। फिर उसने पास बैठे हुए अपने हितैषी मन्त्रियोंसे कहा—'शीघ्र ही धौंसा बजाकर सब सैनिकोंको इकट्ठा करो, परन्तु उन्हें इसका कारण मत बताना।' दूतोंने रावणकी आज्ञा पाकर उसी समय बड़ी भारी सेना एकत्रित कर दी और फिर उसे इसकी सूचना दी।

## सरमाका सीताको सान्त्वना देना तथा उन्हें मन्त्रियोंके साथ रावणके परामर्शका वृत्तान्त सुनाना

सीताजीकी प्रिय सखी सरमाने जब देखा कि वे रावणकी मायासे मोहित हो रही हैं, तब वह उनके पास आयी। वह रावणकी आज्ञासे उनकी देख-भालके लिये नियुक्त थी, किन्तु अब उसका उनसे प्रेम हो गया था। वह बड़ी ही दयालु और दृढ़सङ्कल्प थी। उसने एक सखीके स्नेहसे साधु-चरित्रा सीताजीको सान्त्वना दी और उनसे कहा—'सीते ! रावणने तुमसे जो कुछ कहा है और तुमने उसे जो उत्तर दिया है, वह सब मैंने आकाशमें छिपे-छिपे सुन लिया है। साथ ही, जिस भयसे रावण यहाँसे घबराकर चला गया है, उसका भी मैं पता लगा चुकी हूँ। पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी-का निद्रावस्थामें वध होना असम्भव है। वानरलोग वृक्षोंके द्वारा युद्ध करते हैं तथा स्वयं श्रीरामचन्द्रजी उनके रक्षक हैं; इसलिये उन्हें भी कोई नहीं मार सकता। श्रीमान् राम बड़े प्रतापी, धनुर्धर, बली और भूमण्डलमें सुप्रसिद्ध धर्मात्मा हैं। वे नीतिशास्त्रमें कुशल और बड़े कुलीन हैं; अतः भाई लक्ष्मणकी सहायतासे वे अपनी तथा और सबकी रक्षा करनेमें पूर्णतया समर्थ हैं। उनका बल और पराक्रम अचिन्तनीय है तथा वे शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हैं; अतः सीते ! वे मारे नहीं गये हैं। रावणकी बुद्धि और कर्म दोनों ही बुरे हैं, वह बड़ा ही क्रूर और मायावी है, यह सब उसकी माया ही है। तुम्हारे शोकके दिन तो बीत गये, अब तो तुम्हारे मङ्गलका समय उपस्थित हुआ है। सुनो, तुम्हारे लिये एक प्रिय समाचार है—श्रीरामचन्द्रजी वानर-सेनाके सहित समुद्रके इस पार आ गये हैं और अब उन्होंने उसके दक्षिण-तटपर पड़ाव डाला है। मैंने स्वयं लक्ष्मणके सहित श्रीरघुनाथ-जीके दर्शन किये हैं। वे समुद्र-तटपर ठहरी हुई अपनी सेनाके सहित सकुशल हैं। रावणने जितने राक्षस भेजे थे, उन सबने यही समाचार दिया है कि रघुनाथजी समुद्रको पार करके आ गये हैं। इस समय इस समाचारको सुनकर रावण अपने मन्त्रियोंके साथ परामर्श कर रहा है।'

जिस समय सरमा सीतासे ये सब बातें कह रही थीं, उसी समय उन दोनोंको सैनिकोंका भीषण कोलाहल सुनायी दिया। डंकेकी चोटसे बजनेवाले धौंसेका शब्द सुनकर मधुरभाषिणी सरमाने सीतासे कहा—'भीरु ! यह भीषण भेरी-नाद युद्धकी तैयारीकी सूचना दे रहा है। मतवाले हाथी सजाये जा रहे हैं, रथमें घोड़े जोते जा रहे हैं और हजारों घुड़सवार हाथमें भाला लिये दिखायी दे रहे हैं। सारी सड़कें अद्भुत वेषमें सजे हुए सैनिकोंसे भर गयी हैं। राक्षसोंमें बड़ी घबराहट है; इससे जान पड़ता है उन्हें कोई बड़ा ही रोमाञ्चकारी भय उपस्थित हुआ है। शत्रुओंका संहार करनेवाले इन्द्रने उपेन्द्रकी सहायतासे जैसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शत्रुओंको नीचा दिखाया था, उसी प्रकार आपके पतिदेव लक्ष्मणजीके साथ राक्षसोंको अपना पराक्रम दिखायेंगे। इस प्रकार शत्रुओंका संहार हो जानेपर मैं शीघ्र ही तुम्हें यहाँ पधारे हुए श्रीरघुनाथजीकी गोदमें विराजमान देखूँगी। अब शीघ्र ही तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। उनका पूर्णचन्द्रके समान प्रकाशमान मुख देखकर तुम आँसू बहाना छोड़ दोगी। अब तुम मेरु-पर्वतके चारों ओर भ्रमण करनेवाले अपने कुलदेव भगवान् सूर्यकी शरण लो; क्योंकि वे ही सब जीवोंके उत्पत्तिस्थान हैं।

सरमाके इस प्रकार कहनेपर सीताजीने मधुर और कोमल स्वरमें कहा—'सरमे! तुम आकाश और पाताल—सभी जगह जानेमें समर्थ हो। अतः यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहती हो तो मैं यह जानना चाहती हूँ कि यहाँसे जाकर रावण क्या कर रहा है, उसके विषयमें जो भी बात हो अथवा जो कुछ वह निश्चय करे, वह सब तुम मुझे सुनाना।' सीताके ऐसा कहनेपर सरमा बोली—'अच्छा, यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं जाती हूँ।' यह कहकर वह रावणके पास गयी, वहाँ उसने मन्त्रियों तथा रावणकी बातें सुनीं तथा उस दुरात्माका निश्चय जानकर वह अशोक-वाटिकामें लौट आयी। सीताने उसका आलिङ्गन करके पूछा—'सरमे! कहो, उस दुष्टहृदय रावणका क्या विचार है?' तब सरमाने रावण और मन्त्रियोंकी सब बातें सुनाकर कहा—'सीते! तुम्हें छोड़नेके लिये रावणकी माताने उसे बहुत समझाया तथा एक बूढ़े मन्त्रीने भी बड़े स्नेहसे कहा कि 'आप मनुष्यश्रेष्ठ रामका सत्कार करके उन्हें सीता लौटा दें। जनस्थानमें जो अद्भुत काम हुआ है, वह उनकी शक्तिका अच्छा प्रमाण है। हनुमान्‌का समुद्रको लाँघना, सीताजीसे मिलना तथा युद्धमें अनेकों राक्षसोंको मार डालना क्या किसी मनुष्यका काम हो सकता है?' इस प्रकार यद्यपि माता और बूढ़े मन्त्रियोंने उसे बहुत समझाया है, तथापि वह युद्धमें मरे बिना तुम्हें छोड़नेका साहस नहीं कर सकता। इन राक्षसोंको मृत्यु हड़प जाना चाहती है, इसीसे इनका यह कुविचार बद्धमूल हो गया है। इसका परिणाम यही होगा कि भगवान् श्रीराम अपने पैने तीरोंसे सारी सेनाके सहित रावणका संहार करके तुम्हें अयोध्याको ले जायँगे।''

इसी समय भेरी और शङ्खके शब्दोंसे मिला हुआ सैनिकोंका कोलाहल सुनायी दिया। उससे सारी पृथ्वी डगमगाने लगी। वानर-सेनाका वह भीषण सिंहनाद रावणके सेवकोंने भी सुना। इससे उनका तेज नष्ट हो गया और उनकी चेष्टा उत्साहहीन हो गयी। रावणके पापसे उन्हें भी कल्याणका कोई उपाय नहीं दीख पड़ता था। वानर-सेनाके शब्दको सुनकर राक्षसराज रावणने कुछ देर विचार कर मन्त्रियोंकी ओर देखा। फिर उन सबको सम्बोधन कर सारी सभाको गुँजाते हुए कहा—'आपलोगोंने रामके पराक्रम, बल-पौरुष तथा समुद्रके इस पार आनेका जो वर्णन किया, वह मैंने सुन लिया। परन्तु मैं तो आपलोगोंको भी, जो इस समय रामके पराक्रमकी बातें जानकर चुपचाप एक-दूसरेका मुँह ताक रहे हैं, संग्रामभूमिमें सच्चा शूरवीर समझता हूँ।' रावणकी यह बात सुनकर माल्यवान् नामके एक परम चतुर राक्षसने, जो रावणका नाना था, कहा—'राजन्! जो राजा विद्वान्, नीतिका अनुसरण करनेवाला, समय देखकर शत्रुके साथ सन्धि या विग्रह करनेवाला तथा अपने पक्षकी वृद्धि करनेवाला होता है, वही बहुत दिनोंतक पृथ्वीका शासन कर सकता है। जिस राजाकी शक्ति क्षीण हो रही हो अथवा जो शत्रुके समान ही शक्ति रखता हो, उसे सन्धि कर लेनी चाहिये। ऐसे शत्रुका कभी अपमान न करे। हाँ, यदि स्वयं विशेष शक्ति रखता हो तो शत्रुके साथ युद्ध ठाने। देखिये—सभी देवता, ऋषि और गन्धर्व रामकी विजय चाहते हैं; अतः आप उनसे विरोध न करें, सन्धि कर लें। भगवान् ब्रह्माने देवता और दानव—ये दो ही पक्ष बनाये हैं। धर्म और अधर्म इनके आश्रय हैं। देवताओंका पक्ष धर्म है और राक्षस तथा असुरोंका अधर्म। जिस समय सत्ययुग होता है, उस समय धर्म बलवान् होकर अधर्मको ग्रस लेता है और जब कलियुग आता है तब अधर्म धर्मको दबा देता है। आपने दिग्विजयके लिये सब लोकोंमें भ्रमण करते हुए धर्मका नाश किया है और अधर्मको ही बढ़ाया है। अब आपकी भूलसे बढ़ा हुआ वह अधर्मरूप सर्प ही हमें डसना चाहता है और देवताओंका प्रिय धर्म उनके पक्षकी वृद्धि कर रहा है। तुमने विषयोंमें आसक्त होकर मनमाना आचरण किया है, इससे अग्निके समान तेजस्वी ऋषियोंको बड़ा ही उद्वेग हुआ है। उनका प्रभाव प्रज्वलित अग्निके समान दुर्धर्ष है। उन्होंने तपस्याके द्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध किया है और वे धर्म-सम्पादनमें ही अनुराग रखते हैं। ये ब्रह्मर्षिगण प्रधान-प्रधान यज्ञोंके द्वारा यजन करते रहते हैं, विधिवत् अग्निहोत्र करते हैं और उच्चस्वरसे वेद-पाठ करते हैं; इस प्रकार वे जिस तीव्र तपका अनुष्ठान करते हैं वही राक्षसोंको सन्तप्त कर रहा है। इसके सिवा आपने जो वर पाया है, वह भी देवता, दानव और गन्धर्वोंसे ही आपकी रक्षा कर सकता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। परन्तु यहाँ तो मनुष्य, वानर, भालू और लंगूर आकर गरज रहे हैं और ये सब हैं भी बड़े बलवान् और पराक्रमी। मुझे तो तरह-तरहके बहुत-से भयंकर उत्पातोंको देखकर सभी राक्षसोंका विनाश दिखायी दे रहा है। देखिये, भयंकर मेघ घोर गर्जना करते हुए लङ्कामें सब ओर गर्म खूनकी वर्षा कर रहे हैं, घोड़े-हाथी आदि वाहन रो-रोकर आँसू बहा रहे हैं, दिशाएँ धूल भर जानेसे मलिन हो गयी हैं, सियार और गीध भयानक शब्द करते हैं, घरोंमें जो बलि-वैश्वदेव किया जाता है उसका हविष्य कुत्ते खा जाते हैं, गौओंसे गधे और नेवलोंसे चूहे उत्पन्न होते हैं तथा घरोंमें पाले हुए पक्षी और मृग कलह करनेके लिये इकट्ठे हो जाते हैं और सूर्यकी ओर मुँह करके रुदन करने लगते हैं। इसी प्रकारके और भी अनेकों अपशकुन हो रहे हैं। [ इसलिये रामचन्द्रसे युद्ध ठाननेमें हमारा कोई हित होनेकी सम्भावना नहीं है। ] यह सब कहकर और रावणके मनोभावको समझकर मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ महाबली माल्यवान् चुप हो गया।

दुष्ट रावण कालके वश हो रहा था। इसलिये उसे माल्यवान्‌की बात अच्छी नहीं लगी। उसने क्रुद्ध होकर माल्यवान्‌से कहा—'तुमने शत्रुका पक्ष लेकर हित-बुद्धिसे जो मेरे अहितकी बात कही है, वह पूरी तौरसे मेरे कानोंतक नहीं पहुँची है। बेचारा राम एक मनुष्य ही तो है, उसे एक बंदरका सहारा मिल गया है तथा पिताके त्याग देनेसे वह वन-वनमें भटकता फिर रहा है। फिर भी न जाने तुम उसे क्यों ऐसा समर्थ समझ रहे हो। मैं तो राक्षसोंका स्वामी तथा सभी प्रकारके पराक्रमोंसे सम्पन्न हूँ; देवता भी मेरा भय मानते हैं। फिर भी मुझे उसकी अपेक्षा हीन क्यों समझते हो? तुमने जो मुझसे कठोर बातें कही हैं, उनके विषयमें मुझे तो यही शङ्का है कि तुम या तो मुझ-जैसे वीरसे द्वेष रखते हो, या शत्रुसे मिले हुए हो या मुझे युद्धके लिये प्रोत्साहित करना चाहते हो। मैं राजाके पदपर स्थित हूँ, शास्त्रके रहस्यको जाननेवाला कोई भी विद्वान् मुझ-जैसे प्रभावशाली पुरुषसे, प्रोत्साहनको छोड़कर और किसी उद्देश्यसे किस प्रकार ऐसी कड़वी बातें कह सकता है। सीता साक्षात् लक्ष्मीके समान सुन्दरी है, उसे वनसे लाकर अब केवल रामके भयसे कैसे लौटा दूँ। तुम देखना, इन करोड़ों बंदरोंसे घिरे हुए रामको लक्ष्मण और सुग्रीवके सहित मैं कुछ ही दिनोंमें मार डालूँगा। मेरे दो टुकड़े भले ही हो जायँ, परन्तु मैं झुकना तो जानता ही नहीं; यह मेरा स्वाभाविक दोष है और स्वभावसे पार पाना सर्वथा कठिन है। यदि दैववश रामने समुद्रपर सेतु बाँध लिया तो इसमें विस्मयकी कौन बात है, जो तुमलोग इतना डर रहे हो? मैं तुम्हारे आगे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि समुद्रके इस पार आकर अब राम अपनी वानर-सेनाके सहित जीवित नहीं लौट सकता।'

रावण जब क्रोधमें भरकर इस प्रकार कह रहा था तब माल्यवान्‌ने समझा कि यह अप्रसन्न हो गया है; इसलिये उसने लज्जित होकर उसे कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसने 'जय हो' यह आशीर्वाद देकर राजाको यथोचित बढ़ावा दिया और उससे आज्ञा लेकर अपने घर चला गया। फिर रावणने अपने मन्त्रियोंसे सलाह करके विचारपूर्वक लङ्काकी रक्षाका प्रबन्ध किया। उसने पूर्व-द्वारकी रक्षाका भार प्रहस्तको, दक्षिण-द्वारका मोर्चा महापार्श्व और महोदरको, पश्चिम-द्वारका प्रबन्ध इन्द्रजित्‌को और उत्तर-द्वारका भार शुक एवं सारणको सौंपा। साथ ही उसने उन मन्त्रियोंसे कहा कि मैं स्वयं भी उत्तर-द्वारपर रहूँगा। नगरके मध्यमें उसने अनेकों राक्षसोंके साथ महाबली विरूपाक्षको नियुक्त किया। इस प्रकार नगरकी रक्षाका प्रबन्ध करके उसने मन्त्रियोंको विदा किया और स्वयं भी अपने अन्तःपुरमें चला गया।

## वानर-सेनाकी व्यूह-रचना, सुग्रीव और रावणका मल्लयुद्ध तथा लङ्कापर वानरोंकी चढ़ाई

शत्रुके देशमें आकर नरनाथ श्रीराम, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, राक्षसेश्वर विभीषण, वायुपुत्र हनुमान्, ऋक्षराज जाम्बवान्, वालिपुत्र अङ्गद, शरभ, भाइयोंसहित सुषेण, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस—ये सब आपसमें मिलकर विचार करने लगे—'यही वह लङ्कापुरी है, जहाँ सर्वदा राक्षसराज रावण निवास करता है। अब आप-लोग इसकी विजयके उपायोंका निर्णय करनेके लिये सलाह करें।' सब लोगोंके इस प्रकार कहनेपर विभीषणने कहा—'मेरे मन्त्री अनल, पनस, सम्पाति और प्रमति पक्षी बनकर शत्रु-सेनामें गये थे। वहाँ जो व्यवस्था की गयी है, वह मैं आप-लोगोंको सुनाता हूँ; सुनिये। लङ्काके पूर्व-द्वारकी रक्षा सेनाके सहित प्रहस्त कर रहा है, दक्षिण-द्वार महाबली महापार्श्व और महोदरकी देख-रेखमें है, पश्चिम-द्वारपर अनेकों राक्षसोंके सहित इन्द्रजित् है, उत्तर-द्वारपर शुक-सारण आदि राक्षसोंके सहित



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रावण स्वयं डटा हुआ है तथा नगरके मध्यभागमें शूल, मुद्गर एवं धनुष आदिसे सुसज्जित अनेकों राक्षसोंके साथ विरूपाक्ष नियुक्त किया गया है। रावणकी सेनामें दस हजार हाथी, दस हजार रथ, बीस हजार घोड़े और एक करोड़से भी ऊपर राक्षस हैं। वे सभी बड़े वीर, पराक्रमी और संग्राममें प्रबलता दिखानेवाले हैं। इन राक्षसोंपर रावणका सदा ही बड़ा प्रेम रहता है। यहाँ यदि एक राक्षसके लिये भी युद्ध करना पड़ता है तो हजारों राक्षसोंका दल एकत्रित हो जाता है। जिस समय रावणने कुबेरसे युद्ध किया था, उस समय साठ लाख राक्षस उसके साथ निकले थे; अतः आप वानरोंकी इस सुविशाल सेनाका व्यूह बनाकर ही रावणको परास्त कर सकेंगे।'

विभीषणके इस प्रकार कहनेपर भगवान् श्रीरामने शत्रुओंका सामना करनेके लिये यह आज्ञा दी—'लङ्काके पूर्व-द्वारपर वानरश्रेष्ठ नील अनेकों वानरोंके साथ प्रहस्तका मुकाबला करें। वालिपुत्र अङ्गद बहुत-सी सेना लेकर दक्षिण-द्वारपर महापार्श्व और महोदरका दमन करें। वायुपुत्र हनुमान् अनेकों वानरोंके साथ पश्चिम-द्वारको तोड़कर प्रवेश करें तथा उत्तर-द्वारपर, जहाँ महात्मा ऋषियोंका अपकार करनेवाला और वरदानकी शक्तिसे सम्पन्न रावण चक्कर लगा रहा है, लक्ष्मणके सहित मैं जाऊँगा; क्योंकि उस राक्षसराजका वध मैंने स्वयं करनेका निश्चय किया है। महाबली सुग्रीव, जाम्बवान् और विभीषण—ये मध्यके मोर्चेपर आक्रमण करें। कोई भी वानर मनुष्यका रूप धारण न करे। इस युद्धमें वानरी सेनाका यही चिह्न रहेगा।* आपलोगोंमें स्वजनोंके परिचयके लिये वानररूप ही संकेतका काम करेगा। तेजस्वी भाई लक्ष्मणसहित मैं और अपने चार मन्त्रियोंसहित विभीषण—हम सात तो मनुष्यरूपसे ही शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे।' यह कहकर भगवान् श्रीराम शत्रुके वधका निश्चय कर बड़े उत्साहसे लङ्काकी ओर चले। उस समय सारी पृथ्वी उनकी विशाल सेनासे छायी हुई थी। सुवेल-पर्वतके समीप पहुँचकर वे उसके विचित्र शिखरपर चढ़ गये। उनके पीछे बड़ी सावधानीसे धनुष चढ़ाये लक्ष्मणजी और तत्पश्चात् सुग्रीव तथा मन्त्रियोंसहित विभीषण चढ़े। इनके सिवा और भी सैकड़ों वानर उस पर्वतपर चढ़ गये। शिखरपर चढ़कर उन्होंने लङ्कापुरीका निरीक्षण किया, जो आकाशसे लगी हुई-सी जान पड़ती थी। वह बड़ी ही सुन्दर थी, उसके

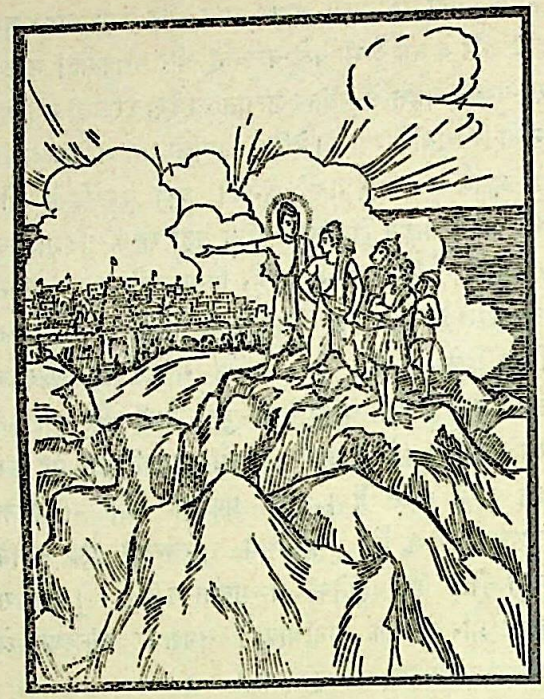

सुन्दर द्वार थे तथा एक सुन्दर चहारदीवारी उसकी शोभा बढ़ा रही थी। उस चहारदीवारीपर काले-काले राक्षस बैठे हुए थे। उन्हें युद्धके लिये तैयार देखकर सब वानर श्रीरामचन्द्रजीके सामने ही तरह-तरहके शब्द करने लगे। इतनेमें ही सन्ध्याकी लालीसे अनुरञ्जित होकर सूर्य अस्त हो गया तथा पूर्णचन्द्रसे आलोकित रात्रिका आगमन हुआ। तब लक्ष्मण तथा यूथपतियोंके साथ भगवान् श्रीरामने सुखपूर्वक सुवेलके ऊपर निवास किया।

वह रात वानर-सेनापतियोंने सुवेलपर ही बितायी तथा वहींसे उन्होंने लङ्काके बाग-बगीचे भी देखे। वे बड़े ही चौरस, शान्त, सुन्दर, विशाल और लंबे-चौड़े थे तथा देखनेमें अत्यन्त रमणीक जान पड़ते थे। कुछ वानर-वीर उनमें जा घुसे। जब वानरोंने उनमें प्रवेश किया, उस समय पुष्पोंके संसर्गसे सुगन्धित वायु चलने लगी। वानर-वीरोंके यूथसे निकलकर कुछ यूथपति सुग्रीवकी आज्ञासे लङ्कामें गये। त्रिकूट-पर्वतका एक शिखर बहुत ऊँचा था। वह ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशको छू रहा हो। उसपर सब ओर फूल छाये हुए थे, उनके कारण वह सोनेका-सा जान पड़ता था। उसीके ऊपर लङ्का बसी हुई थी। वह पुरी दस योजन लंबी और बीस योजन चौड़ी थी, उसके सफेद मेघोंके समान ऊँचे गोपुर थे। तथा वह सोने और चाँदीके परकोटेसे सुशोभित थी। उसमें ऊँचे ऊँचे महल, हवेलियाँ और देवालय थे। वहाँ जो राजमहल था, उसमें एक हजार खंभे लगे हुए थे

* न चैव मानुषं रूपं कार्यं हरिभिराहवे।
एषा भवतु नः संज्ञा युद्धेऽस्मिन् वानरे बले॥ (३७। ३३)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

तथा वह कैलासके शिखरके समान आकाशसे बातें करता जान पड़ता था। वह रावणका निवास-भवन लङ्काका भूषण ही था। इस प्रकार लङ्कापुरी बड़ी ही मनोहर, सुवर्णमयी, पर्वतोंसे मण्डित, अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्रित और बाग-बगीचोंसे सुशोभित थी। उस धन-धान्यसे पूर्ण स्वर्ग-तुल्य पुरीको देखकर श्रीमान् रामचन्द्र बड़े विस्मित हुए। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने अपनी विशाल सेनाके साथ अनेक प्रकारके रत्नोंसे पूर्ण, तरह-तरहकी रचनाओंसे सुसज्जित, ऊँचे-ऊँचे महलोंकी पङ्क्तिसे अलंकृत और यन्त्रयुक्त किवाड़ोंवाली वह अद्भुत पुरी देखी।

उस नगरके गोपुरकी छतपर उन्हें दुर्जय रावण बैठा दिखायी दिया। उसके दोनों ओर चँवर डुलाये जा रहे थे। सिरपर विजय-छत्र सुशोभित था, शरीरमें रक्तचन्दनका लेप किया हुआ था और अङ्ग-प्रत्यङ्गमें लाल रंगके आभूषण थे। वह काले मेघके समान जान पड़ता था। रावणको देखते ही सुग्रीव सहसा खड़े हो गये; वे क्रोधसे उद्विग्न हो उठे तथा शारीरिक और मानसिक बलसे प्रेरित होकर सुवेलके शिखरसे ही गोपुरकी छतपर कूद गये। वहाँ पहुँचकर वे कुछ देर तो रावणको देखते रहे, फिर निर्भय चित्तसे उसे तिनकेके बराबर समझकर कठोरतापूर्वक बोले—'राक्षस! मैं लोकनाथ भगवान् श्रीरामका सखा और दास हूँ, श्रीरामके तेजके प्रभावसे आज तू मेरे हाथसे छूट नहीं सकता।' ऐसा कहकर वे

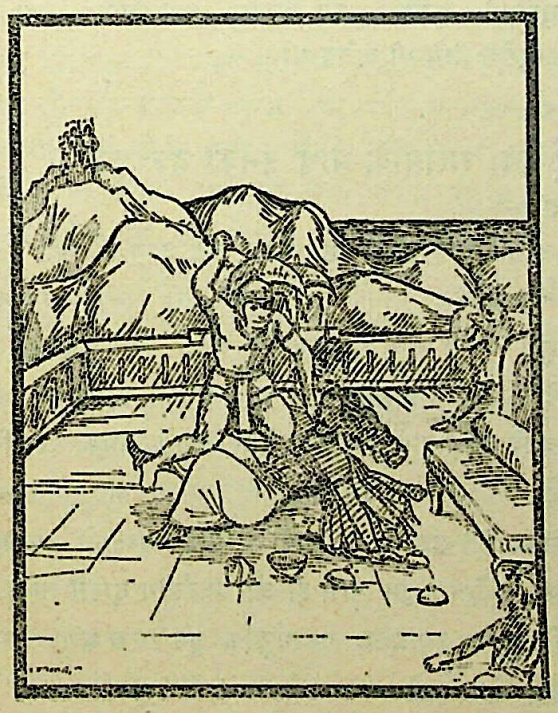

अकस्मात् उछलकर रावणके ऊपर जा कूदे और उसके विचित्र मुकुटोंको खींचकर पृथ्वीपर गिरा दिया। उन्हें इस प्रकार तेजीसे अपने ऊपर आया देखकर रावणने कहा—'तू जबतक मेरे सामने नहीं आया था तभीतक सुग्रीव* था, अब तो तू ग्रीवाहीन हो जायगा।' यह कहकर रावणने अपनी भुजाओंसे उठाकर सुग्रीवको पृथ्वीपर दे मारा। वानरराज सुग्रीवने भी गेंदकी तरह उछलकर रावणको पटक लगायी। अब वे दोनों आपसमें गुथ गये। दोनोंके ही शरीर पसीनेसे तर और खूनसे लथ-पथ हो गये। राक्षसराज और वानरराज दोनोंमें घूँसे, थप्पड़, कोहनी और पंजोंकी मारके साथ बड़ा असह्य युद्ध होने लगा। गोपुरके चबूतरेपर दोनों वीरोंका बड़ा विकट मल्लयुद्ध हुआ; फिर एक-दूसरेको उछालते हुए वे आपसमें गुथकर इतने झुक गये कि उस चबूतरेसे ही जा लगे। लड़ते-लड़ते वे किलेकी खाईंमें गिर गये, वहाँ कुछ देर पृथ्वीतलका स्पर्श किये पड़े रहे और उसके बाद साँस लेते हुए खड़े हो गये तथा एक-दूसरेको बाहुपाशमें जकड़कर आपसमें बँध-से गये। दोनों ही कसरती जवान तथा युद्धकी शिक्षा और बलसे सम्पन्न थे। वे एक-दूसरेका तिरस्कार करते हुए युद्धस्थलमें घूम रहे थे। उन्हें किसी प्रकारकी थकान नहीं जान पड़ती थी। वे कभी हटकर, कभी भिड़कर, कभी तिरछी टेढ़ी चालसे चलकर, कभी वार बचाकर, कभी दौड़कर और कभी आक्रमण करके, कभी झुककर, कभी निर्भय बैठकर, कभी उल्टे लौटकर, कभी बैठे-बैठे ही पीछे हटकर, कभी पकड़नेके लिये शरीरको सिकोड़े हुए बढ़कर, कभी पैर पकड़कर गिरानेके लिये झुककर, कभी विरोधीकी भुजाएँ पकड़नेके लिये अपनी बाँह फैलाकर और कभी विरोधीकी पकड़से बचनेके लिये बाँहोंको सिकोड़कर एक-दूसरेके साथ चक्कर लगा रहे थे। इतनेमें ही रावणने अपनी माया-शक्तिसे काम लेनेका विचार किया। जब सुग्रीवको इसका पता लगा तब वे ऊपर उठ गये और अत्यन्त विशाल आकाश-मार्गको पार करके वानरोंके बीचमें श्रीरघुनाथजीके पास आ पहुँचे। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे वानर-सेनामें प्रवेश किया। वहाँ सभी प्रधान-प्रधान वानरोंने उनका अभिनन्दन किया।

श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवके शरीरमें युद्धके चिह्न देखकर उन्हें गले लगा लिया और उनसे इस प्रकार कहा—'सुग्रीव!

* संस्कृतमें 'सुग्रीव' का अर्थ है—सुन्दर गर्दनवाला।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तुमने मुझसे सलाह लिये बिना ही यह बड़े साहसका काम कर डाला। राजाको ऐसा नहीं करना चाहिये। इससे मैं, विभीषण और सेना—सभी बड़े सन्देहमें पड़ गये थे। वीरवर! अब फिर ऐसा कभी न करना।' इसपर सुग्रीवने कहा—'राघव! अपने पराक्रमका ज्ञान रखते हुए मैं आपकी भार्याका हरण करनेवाले रावणको देखकर कैसे क्षमा कर सकता था।' तब श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवका अभिनन्दन करके लक्ष्मणजीसे कहा—'लक्ष्मण! किसी शीतल जल और फलादिसे सम्पन्न वनमें चलकर हम इस सेनाका विभाग करके व्यूह-रचना करें। रावणके द्वारा पालित यह लङ्कापुरी शत्रुओंके लिये दुर्दम्य है। तथापि हम शीघ्र ही वानरोंके साथ इसपर सब ओरसे जोरदार आक्रमण करेंगे।' महाबली श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे इस प्रकार कहते हुए उस पर्वतके शिखरसे नीचे उतर आये।

फिर सुग्रीवकी सहायतासे श्रीरामचन्द्रजीने उस विशाल सेनाको सुसज्जित कर युद्धके लिये उत्साहित किया। उसके पश्चात् उस भारी सेनाको साथ ले वे लङ्कापुरीकी ओर चले। उनके पीछे विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, नल, ऋक्षराज, नील और लक्ष्मणजी थे तथा इन सबके पीछे वानर और भालुओंकी भारी पलटन चली। उसने पृथ्वीके बहुत बड़े भागको छा रखा था। वानर हाथियोंके समान बड़े डील डौल-वाले थे तथा उन्होंने पर्वतोंके शिखर और बड़े-बड़े वृक्ष ले रखे थे। इस प्रकार शत्रुओंको सन्तप्त करनेवाले श्रीराम और लक्ष्मण थोड़ी ही देरमें लङ्कापुरीके पास पहुँच गये। उसके चारों ओर बड़ा ही अद्भुत और ऊँचा परकोटा था, जिसके ऊपर चढ़ना बड़ा ही कठिन था। लङ्कापर आक्रमण करना यद्यपि देवताओंके भी वशकी बात नहीं थी, तथापि रघुनाथजीकी आज्ञा होनेपर वानरोंने व्यवस्थाके अनुसार आक्रमण करनेके लिये अपने-अपने मोर्चे बना लिये। लङ्काके उत्तर-द्वारपर लक्ष्मण-जीके साथ स्वयं भगवान् श्रीराम धनुष लेकर डट गये। पूर्व-द्वारपर मैन्द और द्विविदके साथ वानरसेनाके अध्यक्ष नील आकर खड़े हो गये। महाबली अङ्गदने दक्षिण-द्वारको घेरा। ऋषभ, गवाक्ष, गज एवं गवयके साथ महाबली हनुमान्‌जी पश्चिम-द्वारपर डट गये तथा प्रजङ्घ, तरस एवं अन्य वीरोंके साथ सुग्रीवने बीचके मोर्चेपर आक्रमण किया। वानरोंकी सेनाके जो छत्तीस करोड़ सेनापति थे, उनमेंसे भी बहुत-से गरुड़ और वायुके समान वेगवान् वानरोंको साथ लिये सुग्रीवके ही पास रहे। श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विभीषणके सहयोगसे लक्ष्मणने प्रत्येक द्वारपर करोड़ों वानरोंको नियुक्त कर दिया। सुषेण और जाम्बवान् बहुत-सी सेनाके साथ श्रीराम-चन्द्रजीके पीछे थोड़ी ही दूरपर रहकर बीचके मोर्चेकी रक्षा करते रहे। ये वानर बाघोंके समान दाढ़ोंवाले थे, बहुत-से वृक्ष और पर्वतोंके शिखर लेकर बड़े उत्साहसे युद्धके लिये डट गये। इनमेंसे किन्हीं वानरोंमें दस हाथियोंका बल था, कोई उनसे भी दसगुने बलवान् थे और किन्हींमें हजार हाथियोंकी शक्ति थी। किन्हीं-किन्हींके बलका तो कोई परिमाण ही नहीं था। इस प्रकार श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवसे सुरक्षित वह विशाल सेना समस्त देवता और असुरोंके लिये भी अजेय थी।

## अङ्गदका दूत-कर्म, लङ्कापर वानरोंकी चढ़ाई तथा राक्षसोंके साथ उनका द्वन्द्वयुद्ध

श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसोंके वधके विषयमें अपने मन्त्रियोंसे सलाह करके अच्छी तरह अपनी सेनाकी मोर्चाबंदी कर ली। पुनः राजधर्मका विचार करके उन्होंने विभीषणकी सम्मतिसे अङ्गदको बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—"वीरवर! तुम रावणके पास जाकर मेरी ओरसे ये बातें कहो—'रावण! तुम्हारे शत्रु सहजमें ही समुद्रको लाँघकर निर्भयतासे लङ्कापुरीमें आ गये हैं। तुम्हारी श्री नष्ट हो चुकी है, ऐश्वर्य जाता रहा है और मौतके दिन निकट आ जानेसे बुद्धि बिगड़ गयी है। राक्षसराज! तुमने मोहवश ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष और राजाओंका बड़ा अपराध किया है। तुम बड़े ही अभिमानी हो; किन्तु ब्रह्माके वरके कारण तुम्हें जो अभिमान है उसके नष्ट होनेका अब समय आ गया है। मैं अपराधियोंका शासक हूँ। तुमने मेरी पत्नीका हरण करके मुझे बहुत कष्ट पहुँचाया है; अतः तुम्हें उसका दण्ड देनेके लिये मैं लङ्काके द्वारपर आ गया हूँ। राक्षसाधम! जिस बलके भरोसे तुमने मुझे धोखा देकर मायासे सीताका हरण किया है, उसे आज युद्धके मैदानमें दिखाओ। यदि तुम सीताको लेकर मेरी शरणमें न आये तो मैं इस पृथ्वीको राक्षसहीन कर डालूँगा। तुम पापी हो और मूर्खलोग तुम्हारे साथी हैं। किन्तु अब इस प्रकार अधर्मपूर्वक तुम एक क्षण भी राज्य नहीं भोग सकते।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुण्यकर्मा भगवान् श्रीरामके इस प्रकार कहनेपर तारा-कुमार अङ्गद देहधारी अग्निके समान आकाश-मार्गसे चले। एक मुहूर्त्तमें ही वे रावणके राजभवनमें पहुँच गये। वहाँ उन्होंने रावणको सावधान चित्तसे मन्त्रियोंके साथ बैठे देखा। उसके पास पहुँचकर उन्होंने पहले अपना परिचय दिया और फिर श्रीरघुनाथजीके शब्द ज्यों-के-त्यों सुना दिये। वे बोले—"मैं अयोध्यानाथ भगवान् श्रीरामका दूत और वालीका पुत्र हूँ। सम्भव है तुमने मेरा नाम सुना हो। कौसल्याका आनन्द बढ़ाने-वाले श्रीरामने तुम्हारे लिये कहा है—'क्रूर रावण! जरा मर्द बनो और लङ्कासे बाहर आकर दो हाथ दिखाओ। मैं मन्त्री, पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हारा वध करूँगा; क्योंकि तुम्हारे मारे जानेसे तीनों लोक निश्चिन्त हो जायँगे। तुम देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—सभीके शत्रु हो, ऋषियोंके लिये तो कंटकरूप ही हो; अतः यदि तुमने मेरे चरणोंमें गिरकर आदरपूर्वक सीताको न लौटाया तो मैं तुम्हें नष्ट कर दूँगा। इस प्रकार तुम्हारे मारे जानेपर लङ्काका सारा ऐश्वर्य विभीषणको प्राप्त होगा।"

अङ्गदजीके ऐसे कठोर वचन कहनेपर राक्षसराज रावण बहुत कुपित हुआ और बार-बार अपने मन्त्रियोंसे कहने लगा—'इस मूर्खको पकड़कर बाँध लो।' रावणकी आज्ञा सुनकर चार राक्षसोंने उन्हें पकड़ लिया। यद्यपि वे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी थे, तथापि अपना बल प्रकट करनेके लिये उन्होंने अपनेको पकड़ा दिया। फिर वे पक्षियोंकी तरह अपनी दोनों भुजाओंसे जकड़े हुए उन चारों राक्षसोंको लिये ही उछले और उस महलकी छतपर, जो पर्वत-शिखरके समान ऊँची थी, चढ़ गये। उनके उछलनेके वेगसे झटका खाकर चारों राक्षस रावणके सामने ही पृथ्वीपर गिर गये। फिर प्रतापी वालिनन्दन उस छतपर ही पैर पटकने लगे। इससे रावणके देखते-देखते वह छत फट गयी। इस प्रकार छत तोड़कर उन्होंने अपना नाम सुनाते हुए बड़ा भीषण नाद किया और वहींसे आकाश-मार्गद्वारा उड़कर सब वानरोंके बीचमें श्रीरामचन्द्रजीके पास आ गये। इससे सभी राक्षसोंको बड़ी व्यथा हुई और वानर बड़े प्रसन्न हुए। इस प्रकार महलके टूटनेसे रावणको बड़ा क्रोध हुआ तथा अपने विनाशकी घड़ी आयी देख वह निःश्वास छोड़ने लगा।

इसी समय पर्वतके समान विशालकाय महाबली सुषेणने सुग्रीवकी आज्ञासे अनेकों वानरोंके साथ लङ्काके दरवाजोंको

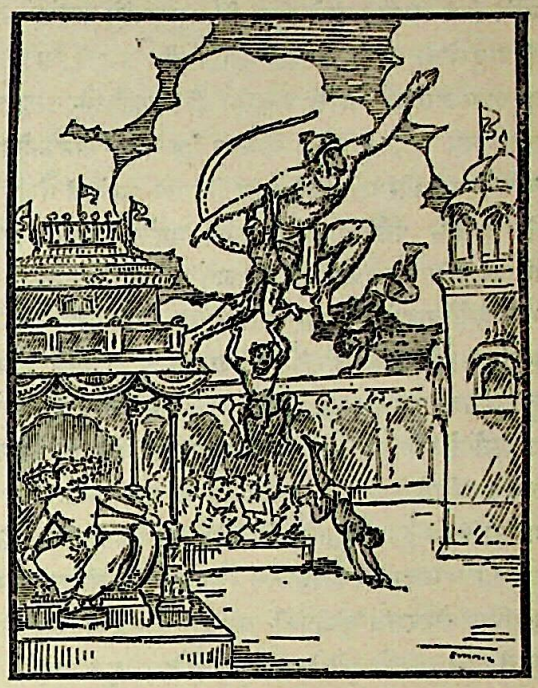

घेर लिया। राक्षसोंने जब देखा कि वानरोंकी सौ अक्षौहिणी सेना लङ्काको घेरे हुए है तथा समुद्रतक फैली हुई है—तब उन्हें बड़ा आश्चर्य और भय हुआ। उस समय लङ्काकी चहार-दीवारी और खाई पूरी तरह वानरोंसे पटी हुई थी। इस प्रकार चहारदीवारीको वानराकार हुई देख राक्षसलोग भयभीत होकर हाहाकार करने लगे और रावणके पास जाकर उन्होंने निवेदन किया कि वानरोंके साथ रामने लङ्काको घेर लिया है। लङ्काके घेरे जानेकी बात सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ और वह नगरकी रक्षाका पहलेसे भी दुगुना प्रबन्ध करके महलकी अटारीपर चढ़ गया। उसने देखा कि पर्वत और बाग-बगीचोंसहित सारी लङ्कापुरी चारों ओर युद्धाभिलाषी अगणित वानरोंसे घिरी हुई है। इस प्रकार वानरोंके द्वारा सारी पृथ्वीको भरी हुई देखकर वह यह सोचने लगा कि इन सबका नाश किस प्रकार किया जाय। बहुत देरतक सोचनेके बाद उसने धैर्य धारण करके श्रीराम और वानर-सेनाओंकी ओर पुनः देखा।

इधर श्रीरामचन्द्रजी भी अपनी सेनाके साथ लङ्काकी ओर गये। उन्होंने देखा कि लङ्का राक्षसोंसे भरी हुई है और उसकी रक्षाका बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया है। यह देखकर वे दुःखित चित्तसे सीताजीका चिन्तन करने लगे। उन्होंने सोचा—'मृगनयनी सीता मेरे लिये शोकाकुल होकर यहीं सन्तप्त हो रही है। वह बहुत कृश हो गयी है और पृथ्वीपर शयन करती है।' इस प्रकार राक्षसोंके द्वारा पीड़ित जनक-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नन्दिनीका चिन्तन करते हुए श्रीरामचन्द्रजीने वानरोंको तुरन्त ही शत्रुओंका संहार करनेकी आज्ञा दी। उनकी आज्ञा पाते ही वानरलोग पर्वत-शिखर, बड़ी-बड़ी शिलाएँ और तरह-तरहके वृक्ष लेकर खड़े हो गये। वे लाल मुँह और सोनेके-से शरीर-वाले वानर श्रीरामके लिये प्राण निछावर करनेको तैयार थे। वे वृक्षोंसे, पर्वत-शिखरोंसे और मुक्कोंसे असंख्य प्राकार-शिखर और दरवाजोंको तोड़ने लगे। उन्होंने स्वच्छ जलसे भरी हुई खाइयोंको धूल, पर्वत-शिखर, घास और लकड़ियोंसे भर दिया। फिर तो सहस्र कोटि तथा शत कोटि यूथोंको साथ लिये हुए अनेकों यूथपति लङ्काके किलेपर चढ़ गये तथा उसके सोनेके दरवाजोंको तोड़कर कैलासके शिखरतुल्य गोपुरोंको भी ढहाने लगे। हाथियोंके समान बड़े-बड़े अनेकों वानर उछल-कूद और गर्जना करते हुए लङ्काकी ओर दौड़े। वे 'महाबली श्रीरामकी जय हो' 'महाबली लक्ष्मणकी जय हो' 'भगवान् श्रीरामसे सुरक्षित वानरराज सुग्रीवकी जय हो' इस प्रकार जय-जयकार करते और गरजते हुए लङ्काके परकोटेपर टूट पड़े। इसी समय वीरबाहु, सुबाहु, नल और पनस—ये वानर-यूथपति लङ्काके परकोटेपर चढ़कर बैठ गये और अपना शिविर स्थापित करने लगे। महाबली कुमुद दस करोड़ विजयी वानरोंके साथ पूर्व-द्वारको घेरकर खड़ा हो गया। उसकी सहायताके लिये अन्य वानरोंके साथ प्रसभ और पनस नामके भी वानर आये। वीर शतबलिने दक्षिण-द्वारपर आकर बीस करोड़ वानरोंके साथ उसे घेर लिया। ताराका पिता सुषेण करोड़ों वानरोंके साथ पश्चिम-द्वारपर आया और उसे घेरकर खड़ा हो गया। भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव उत्तर-द्वारको घेरकर खड़े हो गये। गवाक्ष नामका विशाल-काय और भयंकर लंगूर करोड़ों वानरोंके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी एक बगलमें और भयंकर क्रोध करनेवाले भालुओंके साथ शत्रुसंहारक धूम्र उनकी दूसरी बगलमें खड़ा हो गया। महान् पराक्रमी विभीषण हाथमें गदा लिये अपने मन्त्रियोंके साथ महाबली रघुनाथजीके पास रहे तथा गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन सब ओर घूमकर वानर-सेनाकी रक्षा करने लगे।

इसी समय राक्षसराज रावणने कुपित होकर अपनी सारी सेनाको तुरन्त ही बाहर निकलनेकी आज्ञा दी। रावणकी आज्ञा सुनते ही राक्षसोंने अकस्मात् बड़ी भीषण गर्जना की तथा उनके शङ्ख और धौंसोंका बड़ा गम्भीर घोष होने लगा। तब वानर-सैनिकोंने भी सब ओरसे गर्जना की, जिससे छोटे-बड़े शिखर और कन्दराओंसहित मलयाचल भी गूँज उठा। इस प्रकार शङ्ख और दुन्दुभियोंके शब्द तथा वेगवान् वानरोंके सिंहनादसे पृथ्वी, आकाश और समुद्र निनादित हो उठे। बस, अब वानरों और राक्षसोंमें उसी प्रकार भीषण संग्राम छिड़ गया जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्राम हुआ था। राक्षसलोग अपने पराक्रमोंका बखान करते चमचमाती हुई गदाओं और शक्तियोंसे तथा शूल और फरसोंसे समस्त वानरोंपर प्रहार करने लगे। इसी तरह विशालकाय वानर भी वृक्षों, नखों और दाँतोंसे राक्षसोंपर चोट करने लगे। उस समय उनका 'वानरराज सुग्रीवकी जय' यह महान् शब्द हो रहा था। राक्षसलोग भी 'महाराज रावणकी जय हो' ऐसा कहकर अपने-अपने नामका उल्लेख कर रहे थे। दूसरे भयानक राक्षस, जो परकोटेके ऊपर चढ़े हुए थे, पृथ्वीपर खड़े हुए वानरोंको भिन्दिपाल और शूलोंसे विदीर्ण

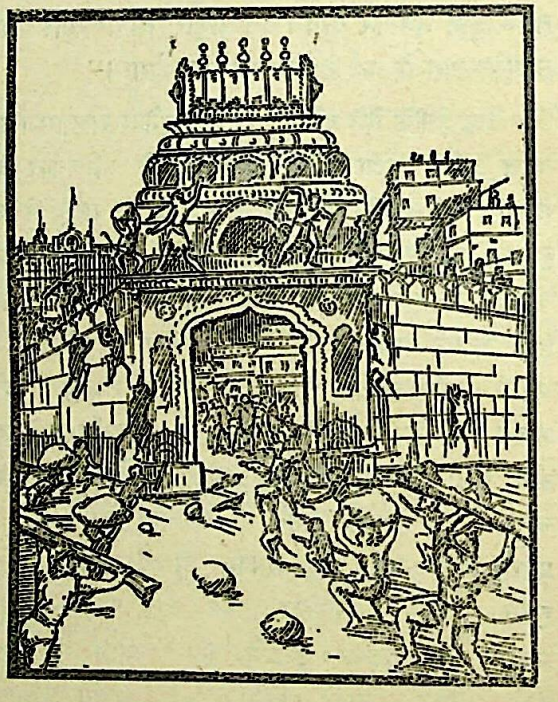

कर रहे थे। इससे वानरोंका भी क्रोध बढ़ गया और वे पृथ्वीपरसे उछलकर परकोटेपर बैठे हुए राक्षसोंको बाँह पकड़-पकड़कर गिराने लगे। इस प्रकार राक्षसों और वानरोंमें बड़ा ही अद्भुत और घमासान युद्ध हुआ और उसके कारण वहाँ रक्त और मांसकी कीच मच गयी।

इसी समय एक-दूसरेपर आक्रमण करते हुए वानर और राक्षसोंमें द्वन्द्व-युद्ध छिड़ गया। वालिपुत्र अङ्गदके साथ महातेजस्वी इन्द्रजित् भिड़ गया। प्रजङ्घके साथ सम्पातिका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जम्बुमालीके साथ हनुमान्‌का युद्ध होने लगा। रावणानुज विभीषण शत्रुघ्न नामके राक्षससे लड़ने लगे। राक्षस तपनके साथ महाबली गज और निकुम्भके साथ महातेजस्वी नीलका संग्राम छिड़ गया। वानरराज सुग्रीव प्रघसके साथ और श्रीमान् लक्ष्मण विरूपाक्षके साथ भिड़ गये। संग्राम-भूमिमें असह्य अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न और यज्ञकोप नामके राक्षस श्रीरामचन्द्रजीसे युद्ध करने लगे। वज्रमुष्टि मैन्दके साथ और अशनिप्रभ द्विविदके साथ संग्राम करने लगे। महाकपि सुषेण विद्युन्मालीके साथ लड़ने लगे। इसी प्रकार अन्यान्य वानर दूसरे-दूसरे राक्षसोंके साथ द्वन्द्व-युद्धमें भिड़ गये। वहाँ विजयाकांक्षी वानर और राक्षस-वीरोंका बड़ा ही घमासान और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। इससे उस युद्धक्षेत्रमें रक्तकी नदी बह चली।

इन्द्र जिस प्रकार वज्रका प्रहार करते हैं, उसी तरह इन्द्रजित् (मेघनाद)ने कुपित होकर शत्रुसेनाका संहार करनेवाले वीरवर अङ्गदपर गदाका वार किया। किन्तु फुर्तीले वीर अङ्गदने [उसका वार बचाकर] उसी गदासे इन्द्रजित्का सुवर्ण-खचित रथ सारथि और घोड़ोंसहित चूर-चूर कर डाला। प्रजङ्घने सम्पातिपर तीन बाण छोड़े और उसने प्रजङ्घपर अश्वकर्ण नामके वृक्षसे वार किया। महाबली जम्बुमाली रथपर चढ़ा हुआ था। उसने कुपित होकर एक रथ-शक्तिसे हनुमान्‌जी-की छातीपर चोट की; किन्तु पवननन्दन हनुमान् उसके रथपर चढ़ गये। और अपने थप्पड़ोंकी चोटसे उन्होंने उस राक्षसके साथ उसके रथको भी नष्ट कर डाला। प्रतपन भीषण गर्जना करता नलकी ओर दौड़ा और हाथकी सफाई दिखाते हुए उसने अपने तीखे बाणोंसे नलके शरीरको छलनी कर दिया; किन्तु नलने तुरंत ही उसकी आँखें निकाल लीं। एक ओर राक्षस प्रघस वानर-सेनाको नष्ट किये डालता था, उसे सुग्रीवने बड़ी फुर्तीसे सप्तपर्ण नामके वृक्षसे मार डाला। लक्ष्मणजीने भीषण दिखायी देनेवाले राक्षस विरूपाक्षको बाणोंकी वर्षासे पीड़ित करके फिर एक बाणसे उसका सफाया कर दिया। अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न और यज्ञकोपने बाणोंके द्वारा भगवान् श्रीरामके कोपको भड़का दिया। अतः उन्होंने अपने अग्नि-शिखाके समान प्रज्वलित बाणोंसे उन चारोंके सिर उड़ा दिये। वज्रमुष्टिको मैन्दने एक मुक्केसे मार डाला और वह अपने रथ और घोड़ोंसहित पृथ्वीपर जा गिरा। निकुम्भने नीलपर सौ बाणोंसे चोट की और फिर वह हँसने लगा। इसपर नीलने उसीके रथके पहियेसे उसका तथा उसके सारथिका सिर काट डाला। अशनिप्रभने द्विविदको वज्रतुल्य बाणोंसे बींध डाला। इससे द्विविदका क्रोध भड़क उठा और उसने एक साल-वृक्षसे रथ और घोड़ोंसहित उसे नष्ट कर डाला। वानरश्रेष्ठ सुषेणने विद्युन्मालीको रथपर चढ़ा देख एक भारी पर्वत-शिखरसे उसके रथको तोड़ डाला। विद्युन्माली तुरंत ही बड़ी फुर्तीसे गदा लेकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया और उसने उस गदासे ही सुषेणकी छातीपर चोट की; किन्तु सुषेणने उसकी कुछ भी परवा न करके विद्युन्मालीके वक्षःस्थलपर एक शिलासे प्रहार किया। इससे उसकी छाती कुचल गयी और वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर गया। इस प्रकार देवताओंने जैसे दैत्योंको नष्ट किया था, उसी प्रकार उन वानर-वीरोंने राक्षस शूरवीरोंको द्वन्द्व-युद्धमें मथ डाला। उस समय भालों, गदाओं, शक्तियों, तोमरों, बाणों, टूटे हुए रथों, फौजी घोड़ों, मरे हुए मतवाले हाथियों, वानरों, राक्षसों, पहियों तथा टूटे हुए जूओंसे वह युद्ध-भूमि बड़ी भयानक हो रही थी तथा उसमें सब ओर गीदड़ एवं वानर और राक्षसोंके मुण्डरहित धड़ घूम रहे थे।

## राक्षस और वानरोंका रात्रियुद्ध तथा इन्द्रजित्का अदृश्य होकर श्रीराम और लक्ष्मणको नाग-पाशमें बाँधकर अचेत कर देना

इस प्रकार वानर और राक्षसोंमें द्वन्द्व-युद्ध चल ही रहा था कि सूर्य अस्त हो गया और संहारकारिणी रात्रिका आगमन हुआ। अब दोनों सेनाओंमें रात्रियुद्ध होने लगा। अन्धकार बड़ा गहरा था, इसलिये वानरलोग 'तुम राक्षस हो।' और राक्षसलोग 'तुम वानर हो।' इस प्रकार पूछ-पूछकर प्रहार करते थे। सेनामें सब ओर 'मारो, काटो, आओ, भागे क्यों जाते हो?' ये भयंकर शब्द सुनायी दे रहे थे। काले-काले राक्षस सुवर्णमय कवचोंसे विभूषित होकर ऐसे जान पड़ते थे मानो चमकती हुई ओषधियोंसे युक्त पर्वत हों। वीर वानरोंने युद्धमें राक्षसी-सेनाको विचलित कर दिया। राक्षसलोग कभी प्रकट होकर युद्ध करते थे और कभी अदृश्य हो जाते थे, किन्तु श्रीराम और लक्ष्मण अपने सर्प-सदृश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बाणोंसे उन्हें दोनों ही अवस्थाओंमें मारने लगे। इस प्रकार उस रोमाञ्चकारी युद्धके कारण वहाँ बड़ी भयंकर खूनकी नदियाँ बहने लगीं। सारे युद्धस्थलमें रक्तकी कीच हो गयी, इसलिये उसके विभागोंको पहचानना और वहाँ ठहरना कठिन हो गया। वानर और राक्षसोंका संहार करनेवाली वह रात्रि बड़ी भयानक हो गयी; कालरात्रिके समान उसका कटना भी कठिन हो गया। फिर राक्षसलोग उस भीषण अन्धकारमें उत्साहित होकर बाणोंकी वर्षा करते हुए श्रीरामकी ओर बढ़े। उस समय क्रोधित होकर गर्जना करते हुए उन आक्रमणकारी राक्षसोंका शब्द प्रलयकालिक समुद्रकी ध्वनिके समान जान पड़ता था। तब एक क्षणमें ही श्रीरामचन्द्रजीने अपने अग्निकी ज्वालाके समान छः बाणोंसे यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, वज्रदंष्ट्र, महाकाय, शुक और सारण—इन छः राक्षसोंपर वार किया। उन बाणोंसे मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचनेके कारण वे राक्षस युद्ध छोड़कर चले गये। इसीसे उस समय उनकी जान बच गयी। उनके सिवा और जो राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके सामने डटे रहे, वे सब अग्निपर गिरनेवाले पतङ्गोंके समान नष्ट हो गये।

दूसरी ओर अङ्गद शत्रुओंका संहार करनेपर तुले हुए थे। उन्होंने जब सारथि और घोड़ोंको मारकर महामायावी इन्द्रजित्‌को बहुत तंग किया, तब वह वहीं अन्तर्धान हो गया। माननीय अङ्गदके उस कर्मकी सभी देवताओं, ऋषियों तथा श्रीराम-लक्ष्मणने भी प्रशंसा की। युद्धमें इन्द्रजित्‌का प्रभाव सभी प्राणी जानते थे; अतः उसका अङ्गदके द्वारा पराभव होते देख सुग्रीव, विभीषण तथा दूसरे वानर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उन्हें 'धन्य-धन्य' कहा। इन्द्रजित् ब्रह्मासे वर प्राप्त कर चुका था; अतः उस वीरने अन्तर्धान हो जानेपर अदृश्य रहकर ही श्रीराम और लक्ष्मणपर वज्रके समान तीखे और सर्पोंके समान भयंकर बाण बरसाने आरम्भ किये। फिर उसने नाग-पाशके द्वारा उन दोनों भाइयोंको बाँध दिया। जब वानरोंने उन्हें इस अवस्थामें देखा तब प्रतापी श्रीरामने सुषेणके दो पुत्र, नील, अङ्गद, शरभ, द्विविद, हनुमान्, सानुप्रस्थ, ऋषभ और ऋषभस्कन्ध—इन दस वानरोंको उसका पता लगानेकी आज्ञा दी। वे बड़े हर्षसे भयंकर वृक्ष उठाकर दसों दिशाओंमें खोजते हुए आकाश-मार्गसे चले; किन्तु अस्त्रविद्या-विशारद इन्द्रजित्‌ने बाणोंकी वर्षा करके उनका वेग रोक दिया। बाणोंसे क्षत-विक्षत हो जानेके कारण वे अन्धकारमें कुछ भी न देख सके।

इसके बाद युद्ध-विजयी इन्द्रजित् फिर श्रीराम-लक्ष्मणके शरीरोंको ही बाणोंसे बींधने लगा। उसने उन्हें अपने सर्प-सदृश बाणोंसे इतना बींधा कि उनके शरीरमें थोड़ा-सा भी स्थान बिना बींधा न रहा। उनके घावोंसे बहुत खून बहने लगा। इससे वे लाल-लाल फूलोंसे युक्त पलाश-वृक्षके समान दिखायी देने लगे। तब इन्द्रजित्‌ने अदृश्य रहते हुए ही कहा—'युद्धके समय अलक्ष्य हो जानेपर तो मुझे देवराज इन्द्र भी नहीं देख सकता। मैं तुम्हें अभी यमराजके घर भेजे देता हूँ।' धर्मज्ञ राम और लक्ष्मणसे ऐसा कहकर वह उन्हें फिर पैने बाणोंसे बींधने और हर्षपूर्वक गर्जना करने लगा। इस प्रकार बाणोंसे उनके सभी अङ्ग बिंधकर काँपने लगे। मनमाना रूप बना लेनेवाले उस क्रूर राक्षसके हाथसे घायल होकर दोनों भाइयोंके शरीरसे रक्तकी प्रबल धाराएँ बहने लगीं। वे दोनों खूनसे नहाकर पृथ्वीपर गिर गये। उनकी ऐसी दशा देखकर वानरोंको बड़ा सन्ताप हुआ और वे नाग-पाशसे बँधकर वीरशय्यापर पड़े हुए दोनों भाइयोंको घेरकर खड़े हो गये।

इसके पश्चात् जब उपर्युक्त दस वानर पृथ्वी और आकाश—सबको छानकर लौटे तब उन्होंने दोनों भाइयोंको बाणोंसे बिंधा पाया। इसी समय वहाँ सुग्रीवके साथ विभीषण भी आ पहुँचे। हनुमान्‌सहित नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद और अङ्गद आदि दोनों भाइयोंके लिये बहुत शोक करने लगे। इस समय वे खूनमें लथपथ हो रहे थे, बाणोंसे बिंधे थे तथा निश्चल होकर बाणोंकी शय्यापर पड़े थे। वे सर्पोंके समान दीर्घ निःश्वास ले रहे थे, उनकी सब चेष्टाएँ बंद हो गयी थीं और पराक्रम ढीला पड़ गया था। उनकी यह दशा देखकर विभीषण तथा सब वानर बहुत दुखी हुए। किन्तु आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें खोजनेपर भी उन्हें मायासे छिपा हुआ इन्द्रजित् दिखायी न पड़ा। तब तेज, यश और पराक्रमसे युक्त विभीषणने मायाके द्वारा ही वरदानके प्रभावसे छिपे हुए इन्द्रजित्‌को देखा। इस समय अपना अद्भुत कर्म और उन दोनों भाइयोंको संग्रामभूमिमें पड़े देखकर इन्द्रजित् बड़ी प्रसन्नतासे सब राक्षसोंको हर्षित करता हुआ कह रहा था—'देखो, खर और दूषणका वध करनेवाले दोनों भाई महाबली श्रीराम और लक्ष्मणको मैंने अपने बाणोंसे प्रायः समाप्त कर दिया है। इनके कारण चिन्तित और दुखी रहनेसे पिताजीको सारी रात शय्याका स्पर्श किये बिना ही बितानी पड़ती थी; आज हम सबकी जड़को काटनेवाले उस अनर्थको मैंने शान्त कर दिया है।' इन्द्रजित्‌के इस प्रकार कहनेसे कूट-युद्ध करनेवाले राक्षस बड़े चकित हुए और उस कार्यसे उन्हें हर्ष भी बहुत हुआ। वे सब मेघके समान घोर गर्जना करने लगे तथा यह समझकर कि श्रीराम मारे गये, उन्होंने इन्द्रजित्‌का बड़ा अभिनन्दन किया। इन्द्रजित्‌ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी यह देखकर कि श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई पृथ्वीपर निश्चेष्ट पड़े हैं तथा उनका श्वास भी नहीं चल रहा है, उन्हें मरा हुआ समझा। इससे युद्ध-विजयी इन्द्रजित्को बड़ा हर्ष हुआ और वह सब राक्षसोंको हर्षित करता लङ्कापुरीमें चला गया।

श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरोंको अङ्ग-प्रत्यङ्गसहित बाणोंसे विंधा देखकर वानरराज सुग्रीव बहुत डर गये। उनका चेहरा उतर गया और मुँह आँसुओंसे भीग गया। यह देखकर उनसे विभीषणने कहा—'सुग्रीव! डरो मत, आँसुओंको रोको। युद्धमें तो ऐसा होता ही है, उसमें विजय निश्चित नहीं हुआ करती। यदि हमारा भाग्य होगा तो इन्हें अवश्य चेत हो जायगा। जो लोग सत्यधर्ममें अनुराग रखते हैं, उन्हें मृत्युका भय नहीं होता।' फिर धर्मात्मा विभीषणने जल लिया और उसे मन्त्रपूत करके सुग्रीवके नेत्रोंसे लगाया तथा उनसे कहा—'कपिराज! यह समय घबरानेका नहीं है। घबराहट सब कामोंको बिगाड़ देती है; इसलिये आप इसे त्यागिये तथा श्रीरामचन्द्रजीका अनुसरण करनेवाले सैनिकोंके हितका विचार कीजिये। जबतक श्रीरामचन्द्रजीको चेत न हो तबतक आप ही इनकी रक्षा करें; चेत हो जानेपर तो ये दोनों रघुवंशीय वीर हमारे सारे भयको दूर कर देंगे। श्रीरामके लिये यह कोई खटकेकी बात नहीं है, वे मर नहीं सकते। आप अपनेको और अपनी सेनाको सँभालिये। वानर-वीर भयसे घबराये हुए हैं, अब इन्हें सब प्रकारका भय त्याग देना चाहिये।' इस प्रकार सुग्रीवको समझाकर फिर राक्षसराज विभीषणने छिन्न-भिन्न हुई वानर-सेनाको सान्त्वना दी।

## इन्द्रजित्का रावणको श्रीराम-लक्ष्मणके मारे जानेका समाचार सुनाना, रावणकी आज्ञासे सीताजीका पुष्पक-विमानद्वारा जाकर वह दृश्य देखना और विलाप करना तथा त्रिजटाका उन्हें धैर्य बँधाना

इधर महामायावी इन्द्रजित् सारी सेनाके साथ लङ्कापुरीमें लौटकर अपने पिताके पास आया। रावणके पास पहुँचकर उसने उसे हाथ जोड़कर प्रणाम किया और श्रीराम-लक्ष्मणके मारे जानेका प्रिय संवाद सुनाया। शत्रुओंके मारे जानेका समाचार पाकर रावण प्रसन्नतासे उछल पड़ा और उसने अपने पुत्रको गले लगाया तथा फिर उसका माथा सूँघकर उस घटनाका पूरा-पूरा विवरण पूछा। तब इन्द्रजित्ने जैसा-जैसा हुआ था और जिस प्रकार बाणोंके बन्धनमें बाँधकर श्रीराम-लक्ष्मणको निश्चेष्ट और निस्तेज किया गया था, वह सारा वृत्तान्त सुना दिया। महारथी इन्द्रजित्की बातें सुनकर रावणका चित्त हर्षके उद्रेकसे फूल उठा। उसे श्रीरामके कारण जो भय था, वह नष्ट हो गया तथा उसने प्रसन्नतापूर्ण वचनोंसे अपने पुत्रका अभिनन्दन किया। फिर उसने इन्द्रजित्को विदा करके सीताजीकी रखवाली करनेवाली राक्षसियोंको बुलाया। आज्ञा सुनते ही त्रिजटा तथा अन्य राक्षसियाँ रावणके पास आयीं। उनसे उसने हर्षित होकर इस प्रकार कहा—'तुम सब सीतासे जाकर कहो कि राम और लक्ष्मणको तो इन्द्रजित्ने मार डाला तथा उसे पुष्पक-विमानसे ले जाकर रणभूमिमें मरे हुए दोनों भाइयोंको दिखा लाओ। जिसके आश्रयसे गर्वित होकर यह मेरे पास नहीं आती थी, अब इसका वह पति तो भाईके सहित संग्राममें मारा गया। जब उन्हें मरा देखकर यह लौटेगी, उस समय कोई दूसरा उपाय न देखकर स्वयं ही मेरे पास चली आयेगी।'

दुरात्मा रावणकी यह बात सुनकर वे राक्षसियाँ पुष्पक-विमान लेकर अशोक-वाटिकामें सीताजीके पास आयीं। उन्होंने पति-वियोगसे शोकाकुल सीताको विमानपर चढ़ाया। त्रिजटाके साथ उस विमानसे जाकर सीताने देखा कि वानरों-की सारी सेना मारी गयी है तथा श्रीराम और लक्ष्मण भी बाणोंसे पीड़ित होकर संज्ञाशून्य हुए बाणोंकी शय्यापर पड़े हैं। उनके कवच टूट गये हैं और धनुष-बाण अलग पड़े हैं। उन दोनों पुरुषश्रेष्ठोंको इस प्रकार पड़े देखकर सीताजी बहुत दुखी हुईं और अत्यन्त विलाप करने लगीं। उन्हें मरा समझकर वे इस प्रकार कहने लगीं—'सामुद्रिक जाननेवालोंने मुझे सधवा और पुत्रवती बताया था; किन्तु आज वे और जिन्होंने मुझे यज्ञादि करनेवाले राजाकी पट-रानी तथा सौभाग्यवती बतलाया था, सभी लक्षणवेत्ता श्रीरामचन्द्रजीके मारे जानेसे झूठे हो गये। जिनके कारण कुल-कामिनियाँ अपने राजा पतियोंके साथ राजपदपर अभिषिक्त होती हैं, मेरे चरणोंमें वे कमलकी रेखाएँ भी हैं। इसके विपरीत जिन कुलक्षणोंके कारण हतभागिनी स्त्रियोंको वैधव्य प्राप्त होता है, उनमेंसे मुझे अपनेमें कोई भी नहीं दिखायी देता; फिर भी मेरा भाग्य फूट गया। लक्षणज्ञोंने स्त्रियोंके लिये कमलके चिह्न अमोघ बताये हैं, परन्तु आज श्रीरामके मारे जानेसे वे भी व्यर्थ हो गये। मेरे बाल बारीक, समान और काले हैं, भौंहें जुड़ी हुई नहीं हैं, दाँत सटे हुए हैं


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा आँखोंके पासवाले भाग, आँखें, हाथ, पैर, टखने और जङ्घाएँ—ये सब समान और उभरे हुए हैं। नख उतार-चढ़ाव-वाले और चिकने हैं तथा उँगलियाँ भी समान हैं। मेरी अङ्ग-कान्ति खरादी हुई मणिके समान उज्ज्वल है, शरीरके रोएँ कोमल हैं, [ तथा पैरोंकी दसों उँगलियाँ और तलवे ] ये बारहों पृथ्वीसे अच्छी तरह सट जाते हैं; इनके कारण भी लक्षणज्ञोंने मुझे शुभलक्षणा बताया था। मेरे हाथ-पैर लाल हैं और उनमें यवकी समूची रेखाएँ हैं तथा कन्याके लक्षणोंका ज्ञान रखनेवालोंने मुझे मन्द मुसकान करनेवाली बताया था। दैवज्ञ ब्राह्मणोंने कहा था कि मेरा पतिके साथ राज्यपदपर अभिषेक होगा; किन्तु अब वह सब निष्फल हो गया। इन दोनों भाइयोंने जनस्थानको खोज डाला तथा मेरा समाचार पाकर अक्षोभ्य समुद्रको पार किया; किन्तु हाय! [ इतना सब कर लेनेके बाद ] थोड़ी-सी राक्षससेनाके द्वारा, जिसे हराना इनके लिये गोपदको लाँघनेके समान था, ये मारे गये। इन दोनोंने वारुण, आग्नेय, ऐन्द्र, वायव्य और ब्रह्मशिरा आदि अस्त्रोंका प्रयोग क्यों नहीं किया? इन्द्रजित्‌ने अदृश्य रहकर ही मायाके द्वारा इन्हें मार डाला। युद्धस्थलमें इनकी आँखोंके सामने आकर तो कोई भी शत्रु, चाहे वह मनके समान वेगवान् ही क्यों न हो, जीवित नहीं लौट सकता। मुझे श्रीराम, लक्ष्मण तथा अपने और माताके लिये भी उतना शोक

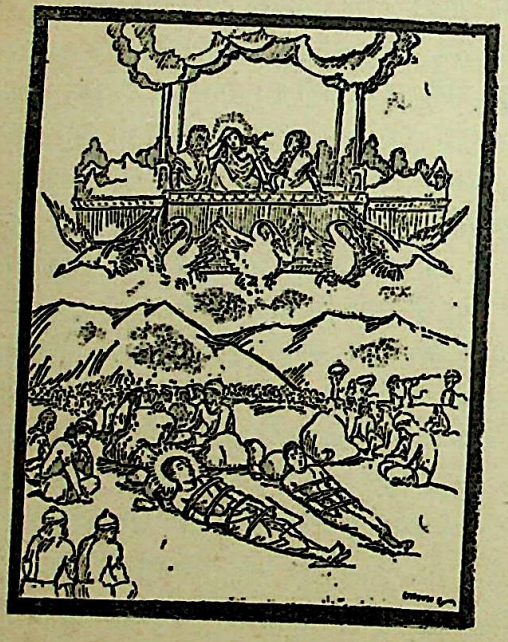

नहीं है, जितना अपनी तपस्विनी सासजीके लिये है। वे तो नित्यप्रति यही सोचती होंगी कि वह दिन कब होगा जब अवधि समाप्त होनेपर मैं वनसे लौटे हुए सीता, राम और लक्ष्मणको देख सकूँगी!'

सीताजीके इस प्रकार विलाप करनेपर राक्षसी त्रिजटाने कहा—'देवि! शोक न करो, मैं तुम्हें ऐसे कई महान् और उचित कारण बताती हूँ, जिनसे निश्चय होता है कि ये दोनों भाई जीवित हैं। युद्धमें स्वामीके मारे जानेपर योद्धाओंके मुख क्रोध और हर्षकी उत्सुकतासे युक्त नहीं रहते [ किन्तु यहाँ वे बातें पायी जाती हैं, इसलिये ये जीवित हैं ]। यह विमान भी दिव्य है, इसका नाम पुष्पक है; यदि इनके प्राण चले गये होते तो [ वैधव्यावस्थामें ] यह तुम्हें धारण न करता। इसके सिवा जब प्रधान वीर मारा जाता है तब सेना उत्साह-हीन और निरुद्यम हो जाती है। किन्तु इस सेनामें किसी प्रकारकी घबराहट या उद्वेग नहीं है तथा यह इन दोनोंकी रक्षा भी कर रही है; अतः इन शुभसूचक अनुमानोंसे तुम निश्चिन्त हो जाओ। तुम इन्हें जीवित ही समझो। यह बात मैं स्नेहवश तुमसे कह रही हूँ। मैथिली! मैंने तुमसे न तो पहले कभी झूठ कहा है और न आगे ही कहूँगी। तुम्हारे पवित्र चरित्रसे मुझे सुख मिलता है, इसलिये तुमने मेरे मनमें घर कर लिया है। इन दोनोंको तो इन्द्रके सहित देवता और असुर—कोई भी नहीं जीत सकते। ऐसे लक्षण देखकर ही मैं तुमसे ये बातें कह रही हूँ। सीते! देखो—यह कैसे आश्चर्यकी बात है कि बाणोंके लगनेसे इनकी चेतना तो जाती रही है परन्तु शोभा ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। प्रायः जो लोग मर जाते हैं अथवा जिनकी आयु पूरी हो जाती है, उनका चेहरा देखनेपर बहुत बुरा मालूम हुआ करता है। अतः जनक-नन्दिनि! तुम श्रीराम-लक्ष्मणके लिये शोक और मोह त्याग दो। इन लक्षणोंके रहते ये निष्प्राण नहीं हो सकते।'

त्रिजटाके ये वचन सुनकर देव-कन्याके सदृश सीताने हाथ जोड़कर कहा—'ऐसा ही हो।' फिर मनके समान वेगवाले पुष्पक-विमानको लौटाकर त्रिजटा सीताजीको लङ्कापुरीमें ले आयी। वे त्रिजटाके साथ विमानसे उतरीं और राक्षसियाँ उन्हें अशोक-वाटिकामें ले गयीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## श्रीरामचन्द्रजीका विलाप तथा गरुड़का नाग-पाश काटना

दशरथ-कुमार श्रीराम और लक्ष्मण भयंकर नाग-पाशसे बँधे थे। उन दोनों महात्माओंको सुग्रीवसहित सभी वानर शोकातुर होकर घेरे हुए थे। नाग-पाशसे बँधे होनेपर भी वीरवर श्रीराम अपनी स्थिरता और शक्तिमत्ताके कारण सचेत हो गये। उन्होंने देखा कि भाई लक्ष्मण बाणोंसे अत्यन्त बिंधकर खूनमें लथपथ हुए पड़े हैं तथा उनका चेहरा बहुत उतर गया है। अतः वे व्याकुल होकर विलाप करने लगे। [ वे बोले—] 'यदि मैं लक्ष्मणके बिना अयोध्या लौटकर गया तो पुत्रहीन होकर काँपती और कुररीके समान विलाप करती हुई सुमित्राको कैसे धैर्य बँधाऊँगा। यशस्वी भरत और शत्रुघ्नसे भी मैं यह बात कैसे कहूँगा कि लक्ष्मण मेरे साथ वनमें गये थे और अब मैं उनके बिना ही लौटा हूँ। माता सुमित्राका उलाहना तो मैं सहन नहीं कर सकूँगा। अतः अब मैं जीवित रहना नहीं चाहता। हाय! मेरे ही लिये आज लक्ष्मण प्राणहीन-से होकर बाणोंकी शय्यापर सो रहे हैं। भैया लक्ष्मण! मैं जब कभी उदास होता था, तब तुम्हीं मुझे समझाया करते थे; परन्तु आज तुम मुझ दुखियासे बात करनेमें भी असमर्थ हो। वीरवर! जिस रणभूमिमें आज तुमने अनेकों राक्षसोंका संहार किया, वहाँ तुम स्वयं खूनमें लथपथ हुए पड़े हो। मुझे ऐसा एक भी प्रसङ्ग याद नहीं है जब वीर लक्ष्मणने बहुत कुपित होनेपर भी मुझसे कोई कड़ी बात कही हो। बाण-विद्यामें तो ये सहस्रार्जुनसे भी बढ़कर थे। जो अपने अस्त्रोंसे इन्द्रके अस्त्रोंको भी नष्ट कर सकते थे, वे ही लक्ष्मण आज पृथ्वीपर पड़े हैं! मैं विभीषणको राक्षसोंका राजा न बना सका; अतः मेरा वह झूठा प्रलाप मुझे निःसन्देह जलाता रहेगा। सुग्रीव! तुम्हें इसी समय लौट जाना चाहिये; क्योंकि अब रावण तुम्हें भी परास्त कर देगा। तुम अङ्गदको आगे रखकर अपनी सेना, साज-सामान और नल-नीलके साथ समुद्रके पार चले जाओ। तुम सबने युद्धमें बड़ा भारी पुरुषार्थ दिखाया है, जो औरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर है। मैं ऋक्षराज और लंगूरोंके सेनापतिसे भी बहुत प्रसन्न हूँ। अङ्गद, मैन्द, द्विविद, केसरी, सम्पाति, गवय, गवाक्ष, शरभ, गज तथा अन्य वानरोंने भी प्राणोंकी बाजी लगाकर बड़ा दुर्धर्ष युद्ध किया है; किन्तु दैवके आगे किसीका कुछ वश नहीं चलता। अब मैं आज्ञा देता हूँ—तुम सब जहाँ इच्छा हो, वहाँ चले जाओ।'

भगवान् श्रीरामका यह विलाप जिन-जिन वानरोंने सुना, वे अपनी भूरी-भूरी आँखोंसे आँसू बहाने लगे। इसी समय विभीषण सारी सेनाको यथास्थान नियुक्त करके हाथमें गदा लिये बड़ी तेजीसे रघुनाथजीके पास आये। उन्हें जल्दी-जल्दी अपनी ओर आते देखकर सब वानर भागने लगे। वे समझे कि इन्द्रजित् ही हमारी ओर आ रहा है। इतनेमें ही विभीषणने आकर विजय-कामनाके द्वारा श्रीराम और सुग्रीवका अभिनन्दन किया। विभीषणको आये देख सुग्रीवने अपने पास बैठे हुए ऋक्षराजसे कहा—'देखो, विभीषणजी आये हैं, इन्हें इन्द्रजित् समझकर वानरलोग भयसे भाग गये हैं; अतः तुम शीघ्र ही उन्हें विभीषणजीके आनेका समाचार सुनाकर धीरज बँधाओ।' सुग्रीवके ऐसा कहनेपर ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने भागते हुए वानरोंको लौटाकर सान्त्वना दी। ऋक्षराजके वचन सुनकर और विभीषणको देखकर उनकी घबराहट दूर हो गयी और वे लौट आये। विभीषणने जब श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरको बाणोंसे बिंधा देखा तब वे बहुत दुखी हुए।

इसी समय पंखोंकी जोरदार हवासे सारे द्वीपके वृक्ष-डालियाँ टूट जानेके कारण उड़-उड़कर समुद्रमें गिरने लगे। वहाँ जो फणवाले सर्प रहते थे, वे भयभीत हो गये तथा जलके जीव डरकर समुद्रमें घुस गये। थोड़ी ही देरमें वानरोंको अग्निके समान देदीप्यमान विनता-पुत्र गरुड़ दिखायी दिये। उन्हें देखते ही वे सब नाग, जो बाण बनकर श्रीराम और लक्ष्मणको बाँधे हुए थे, भाग गये। गरुड़ने दोनों भाइयोंका स्पर्श करके अभिनन्दन किया और फिर अपने हाथोंसे उनके चन्द्रमाके समान निर्मल मुखोंको छुआ। गरुड़जीका स्पर्श पाते ही श्रीराम-लक्ष्मणके सब घाव भर गये और उनके शरीर तत्काल ही कान्तियुक्त एवं स्निग्ध हो गये। महातेजस्वी गरुड़ने दोनों भाइयोंको, जो साक्षात् इन्द्रके समान थे, उठाकर आलिङ्गन किया। तब श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'इन्द्रजित्‌के कारण हम बड़ी आपत्तिमें पड़ गये थे, आपकी कृपासे हम उससे पार हो गये। आप बड़े रूपवान्, दिव्य माला और चन्दनसे विभूषित तथा स्वच्छ वस्त्र और दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत हैं। हम जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं।'

यह कहते-कहते श्रीरामचन्द्रजीकी आँखें हर्षसे डबडबा आयीं। तब महातेजस्वी गरुड़ने प्रसन्न होकर कहा—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रघुनाथजी ! मैं आपका मित्र गरुड़ हूँ और आपके बाह्य प्राणोंके समान हूँ। इस समय आपकी सहायताके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ। क्रूरकर्मा इन्द्रजित्‌ने मायाके द्वारा जिन बाणोंसे आपको बाँधा था, वे कद्रूके पुत्र नाग ही थे। वे बड़े ही विषधर और तीखे दाँतोंवाले हैं। वे राक्षसकी मायाके बलसे ही बाण बनकर आपके पास आये थे। सत्यपराक्रमी श्रीराम ! जब मुझे मालूम हुआ कि शत्रु-संहारक इन्द्रजित्‌ने लक्ष्मणसहित आपकी यह दशा कर दी है, तब मैं स्नेहवश अपनी मित्रता निभानेके लिये बड़ी तेजीसे यहाँ चला आया। अब मैंने आपको उस भयंकर नागपाशसे तो छुड़ा दिया, किन्तु फिर भी आप दोनों भाई किसी प्रकारकी असावधानी न करें। ये राक्षसलोग स्वभावसे ही कपट-युद्ध करनेवाले होते हैं और आप-जैसे शुद्धस्वभाव शूरवीरोंका बल सरलता ही होती है; अतः आप युद्धस्थलमें राक्षसोंका कभी विश्वास न करें। मित्र रघुनाथजी ! आप धर्मज्ञ और शत्रुओंके भी प्रिय हैं, मैं अब जानेके लिये आपकी आज्ञा चाहता हूँ। आप अपने बाणोंकी वर्षासे लङ्कामें केवल बालक और वृद्धोंको ही जीवित छोड़ेंगे तथा अपने शत्रु रावणका संहार करके सीताजीको प्राप्त कर लेंगे।'

शीघ्रपराक्रमी गरुड़जीने यह कहकर तथा सब वानरोंके सामने ही श्रीरामचन्द्रजीको नीरोग करके उनकी प्रदक्षिणा की और फिर उनका आलिङ्गन करके आकाशमें उड़ गये। श्रीराम और लक्ष्मणको स्वस्थ देखकर वानर-सेनापति सिंहनाद करने लगे। फिर उन्होंने भेरी, मृदङ्ग और शङ्खोंकी ध्वनि की तथा प्रसन्न होकर पहलेकी ही तरह उछल-कूद करने लगे। उनमेंसे कोई-कोई वानर, जो पर्वतोंसे युद्ध कर सकते थे, तरह-तरहके वृक्ष उखाड़कर तैयार हो गये। वे युद्ध करनेके लिये अपनी भीषण गर्जनासे राक्षसोंको भयभीत करते हुए लङ्काके दरवाजोंपर पहुँच गये।

## धूम्राक्षका युद्ध और हनुमान्‌जीके हाथसे उसका वध

भीषण गर्जना करते हुए वानरोंका वह घनघोर शब्द राक्षसोंसहित रावणके कानोंमें पड़ा। तब रावणने अपने मन्त्रियोंसे कहा—'इस समय अनेकों सुप्रसन्न वानरोंका मेघकी गर्जनाके समान जो यह महान् कोलाहल सुनायी दे रहा है, इससे निःसन्देह उनकी प्रसन्नता प्रकट हो रही है। दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण तो तीखे बाणोंसे बँधे हुए हैं, किन्तु इस महान् कोलाहलसे मेरे मनमें शङ्का-सी हो रही है।'

मन्त्रियोंसे ऐसा कहकर राक्षसराज रावणने अपने पास बैठे हुए राक्षसोंसे कहा—'तुमलोग शीघ्र ही जाकर मालूम करो कि शोकका अवसर होनेपर भी इन वानरोंके हर्षका क्या कारण उपस्थित हुआ है ?' रावणके ऐसा कहनेपर उन्होंने तुरंत ही परकोटेपर चढ़कर सुग्रीवके द्वारा पालित वानर-सेनाको देखा। उन्हें जब मालूम हुआ कि श्रीराम और लक्ष्मण भीषण नाग-पाशसे छूट गये हैं, तब वे बहुत ही डरे। वे सभी परकोटेसे उतर आये और उदास-से होकर रावणके पास पहुँचे। उन वाक्य-विशारद राक्षसोंने दीनतापूर्वक वह सारा अप्रिय समाचार रावणको ज्यों-का-त्यों सुना दिया। [ वे बोले—] 'महाराज ! कुमार इन्द्रजित्‌ने जिन राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको नाग-पाशमें बाँधकर हाथ हिलानेमें भी असमर्थ कर दिया था, वे इस समय बन्धनसे छूटकर रणाङ्गणमें दिखायी दे रहे हैं।' राक्षसोंके ये वचन सुनकर महाबली रावण चिन्ता और रोषमें भर गया तथा उसका चेहरा उतर गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ वह कहने लगा— ] 'इन्द्रजित्‌ने तो उन दोनों भाइयोंको अत्यन्त पीड़ित करके सर्पके समान भयंकर बाणोंसे बाँध दिया था। यदि वे उस अस्त्र-बन्धनमें पड़कर भी उससे छूट गये, तो अब मुझे अपनी सारी सेनाकी ही स्थिति संशयग्रस्त जान पड़ती है।' ऐसा कहकर उसने धूम्राक्ष नामके राक्षससे कहा— 'धूम्राक्ष! तुम बड़े पराक्रमी हो। अतः शीघ्र ही बहुत बड़ी सेना लेकर वानरोंके सहित श्रीरामका वध करनेके लिये जाओ।'

राक्षसराजके इस प्रकार कहनेपर धूम्राक्षने उसकी परिक्रमा की और फिर तुरंत ही राजभवनसे निकलकर सेनापतिके पास पहुँचा। वहाँ उसने कहा—'शीघ्र ही सेना तैयार करो।' धूम्राक्षके कहनेसे सेनाध्यक्षने सेना तैयार की। अनेकों बली और भयानक रूपवाले राक्षस घंटा बाँधकर उत्साहसे गर्जना करते धूम्राक्षको घेरकर खड़े हो गये। उन्होंने अनेक प्रकारके शस्त्र ले लिये, शूल और मुद्गर उठाये तथा गदा, पट्टिश, दण्ड, आयस, मुद्गर, परिघ, भिन्दिपाल, भाले, पाश और फरसे आदिसे सुसज्जित होकर बादलोंके समान भीषण गर्जना करते नगरके बाहर निकले। इस प्रकार बहुत-से राक्षसोंके साथ नगरसे बाहर आकर धूम्राक्षने श्रीरामचन्द्रके बाहु-बलसे सुरक्षित वह वानरोंकी विशाल सेना देखी। इधर प्रबल पराक्रमी धूम्राक्षको आते देखकर युद्धोत्सुक वानर हर्षित होकर गर्जने लगे। बस, अब राक्षसों और वानरोंमें घमासान युद्ध छिड़ गया। राक्षसलोग शूल, मुद्गर आदिसे प्रहार करते थे और वानर उन्हें बड़े-बड़े वृक्षोंसे मार रहे थे। वानरोंने वृक्षोंसे कुचल-कुचलकर राक्षसोंको पृथ्वीपर बिछा दिया तथा राक्षसोंने भी कुपित होकर गदाओं, पट्टिशों, कूट-मुद्गरों, परिघों और त्रिशूलोंसे वानरोंको विदीर्ण कर डाला। इससे चिढ़कर महाबली वानर और भी उत्साहयुक्त हो गये और निर्भय होकर बड़े अद्भुत कर्म करने लगे। शूल और बाणोंसे घायल हो जानेपर वानरोंने अनेकों वृक्ष और पत्थर उठा लिये तथा वे बड़े वेगसे गर्जना करते जहाँ-तहाँ राक्षस-वीरोंको कुचलने लगे। इस प्रकार वानरोंकी मारसे अनेकों राक्षसोंका कचूमर निकल गया। कितने ही वृक्षोंकी चोट खाकर ढेर हो गये, किन्हींका पत्थरोंकी चोटोंसे चूरा हो गया और कोई दाँतोंसे फाड़ डाले गये। वानरोंकी शिलाओंसे मारे हुए पर्वताकार हाथियों, घोड़ों और घुड़सवारोंसे वह सारी रणभूमि पट गयी।

इस प्रकार जब वानरोंने मुक्कों, लातों, दाँतों और वृक्षोंकी मारसे अनेकों राक्षसोंको धराशायी कर दिया, तब राक्षसोंके सेनापति धूम्राक्षने क्रोधमें भरकर लड़ाके वानरोंका विध्वंस करना आरम्भ किया। अनेकों वानर प्रासोंसे और अनेकों मुद्गरोंसे मारकर पृथ्वीपर गिरा दिये गये। कोई परिघसे मसल दिये गये, किन्हींको भिन्दिपालसे चीर दिया गया, किन्हींको पट्टिशोंसे कुचल दिया गया और उन्होंने व्याकुल होकर प्राण त्याग दिये। इसी तरह बहुत-से वानर मार खाकर खूनमें लथपथ हो पृथ्वीपर लोट गये। धूम्राक्षने धनुष लेकर हँसते-हँसते अपने बाणोंकी वर्षासे अनेकों वानरोंको युद्धके मैदानसे भगा दिया। उसके हाथसे अनेकों सैनिकोंको पीड़ित और व्यथित देखकर पवननन्दन हनुमान्‌जी बड़े कुपित हुए और एक विशाल शिला लेकर उसकी ओर दौड़े। वह शिला उन्होंने धूम्राक्षके रथपर दे मारी। शिलाको अपनी ओर आती देख वह बड़ी फुर्तीसे गदा लेकर पृथ्वीपर कूद पड़ा। शिला रथको चूर-चूर करके पृथ्वीपर जा गिरी। अब वायुपुत्र हनुमान्‌ने शाखायुक्त वृक्षोंके द्वारा राक्षसोंका विध्वंस करना आरम्भ किया। इससे अनेकों राक्षसोंके सिर फूट गये और वे वृक्षोंकी चोटोंसे व्यथित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस तरह राक्षसी सेनाको छिन्न-भिन्न कर हनुमान्‌जी एक पहाड़की चट्टान लेकर धूम्राक्षकी ओर दौड़े। उन्हें अपनी ओर आते देख महाबली धूम्राक्षने क्रोधमें भरकर उनके मस्तकपर गदासे चोट की। परन्तु पवनके समान पराक्रमी हनुमान्‌ने उसकी कुछ भी परवा न कर वह चट्टान धूम्राक्षके सिरपर दे मारी। इससे उसका सारा शरीर चूर-चूर हो गया और वह फटे हुए पर्वतके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा। धूम्राक्षको मरा देख बचे-खुचे राक्षस भयभीत होकर लङ्कामें भाग गये। इस प्रकार शत्रुओंका संहार करके और खूनकी नदियाँ बहाकर हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए। उस समय वानरोंने भी उनका अभिनन्दन किया।

## वज्रदंष्ट्रका युद्ध और अङ्गदके हाथसे उसका वध

धूम्राक्षके वधका समाचार पाकर राक्षसराज रावण अत्यन्त क्रोधमें भर गया और उसने राक्षस वज्रदंष्ट्रसे, जो बड़ा ही क्रूर और बलवान् था, कहा—'वीरवर! तुम राक्षसोंके साथ जाओ और दशरथ-पुत्र राम तथा वानरोंसहित सुग्रीवको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नष्ट कर दो।' तब वह मायावी राक्षस 'जो आज्ञा' कहकर बहुत बड़ी सेनाके साथ चला। उसके साथ अनेकों राक्षस चले, जो ऋष्टि, तोमर, मुसल, भिन्दिपाल, धनुष, शक्ति, पट्टिश, तलवार, चक्र, गदा और फरसा आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थे। प्रस्थानके समय वह राक्षसी सेना इस प्रकार सुशोभित हो रही थी, जैसे वर्षाकालमें बिजलीसे युक्त गरजते हुए बादल जान पड़ते हैं। यह सेना दक्षिण-द्वारसे लङ्काके बाहर आयी। यहाँ वानर-सेनाके अध्यक्ष अङ्गदजी थे। राक्षसोंको अपनी ओर आते देख वानरोंने बड़ा भीषण कोलाहल किया, जिससे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। फिर राक्षसोंके साथ उनका घोर युद्ध छिड़ गया। कोई वानर अस्त्र-शस्त्र छोड़कर भुजाओंसे ही युद्ध करने लगते थे तथा कोई थप्पड़ों, लातों, घूँसों और वृक्षोंसे प्रहार करते थे। युद्धोन्मत्त वानरोंने कितने ही राक्षसोंको अपने घुटनोंसे मार डाला और कितनोंको शिलाओंसे चूर-चूर कर दिया।

यह सब देखकर वज्रदंष्ट्र पाशधारी यमराजके समान वानरोंको भयभीत करता विचरने लगा। अब दूसरे राक्षस भी क्रोधमें भरकर तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्रोंसे वानर-सेनाका संहार करने लगे। किन्तु प्रलय-कालमें अग्नि जैसे प्राणियोंका संहार करती है, वैसे ही वालिपुत्र अङ्गद और भी निर्भय होकर दूने क्रोधसे वृक्षोंद्वारा राक्षसोंको मारने लगे। अङ्गदजी इन्द्रके समान पराक्रमी थे, उन्होंने राक्षसोंका खूब ही संहार किया। उनकी मारसे सिर फट जानेके कारण राक्षसलोग कटे हुए वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिरने लगे। उस समय रथों, चित्र-विचित्र ध्वजाओं, घोड़ों, राक्षस और वानरोंके शरीरों तथा रक्तकी धाराओंसे भर जानेके कारण वह रणभूमि बड़ी ही भयानक जान पड़ती थी।

अपनी सेनाका संहार और अङ्गदका महान् बल देखकर महाबली राक्षस वज्रदंष्ट्र बड़े क्रोधमें भर गया तथा इन्द्रके वज्रके समान अपना भयंकर धनुष खींचकर वानरोंकी सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसके साथ अन्य प्रधान-प्रधान राक्षस भी तरह-तरहके हथियार लेकर संग्राम-भूमिमें युद्ध करने लगे। वानरोंमें भी जो विशेष शूरवीर थे, वे सब ओरसे इकट्ठे होकर हाथोंमें शिलाएँ लिये युद्ध करने लगे। उस समय राक्षसोंने रणभूमिमें मुख्य-मुख्य वानरोंपर हजारों अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा की तथा वीर वानरोंने भी राक्षसोंपर अनेकों पर्वत, वृक्ष और बड़ी-बड़ी चट्टानें गिरायीं। कुछ ही देरमें वानरोंके प्रहारोंसे वज्रदंष्ट्रके देखते-देखते सारी राक्षस-सेना छिन्न-भिन्न हो गयी। तब राक्षसोंको भयभीत हुआ देख प्रतापी वज्रदंष्ट्र क्रोधसे आँखें लाल करके हाथमें धनुष लिये वानर-सेनामें घुसा और उसे त्रस्त करने लगा। उसने अपने सीधे जानेवाले कङ्कपत्र-बाणोंसे अनेकों वानरोंको घायल कर दिया। बाणोंसे विदीर्ण होनेपर वे सभी वानर अङ्गदजी-की ओर दौड़ने लगे। उन्हें भयभीत जानकर अङ्गदजीने क्रोधमें भरकर वज्रदंष्ट्रकी ओर देखा। इस समय उसकी दृष्टि भी अङ्गदजीपर ही थी। बस, दोनों वीर एक-दूसरेसे भिड़ गये। वज्रदंष्ट्रने महाबली अङ्गदजीके मर्मस्थानोंपर सैकड़ों बाणोंसे प्रहार किया, जिससे उनका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया। वज्रदंष्ट्रका ऐसा भीषण पराक्रम देखकर कपिश्रेष्ठ अङ्गदने एक बड़ी-सी शिला उठाकर उसपर दे मारी और साथ ही सिंहनाद भी किया। वीर्यवान् वज्रदंष्ट्र उस पत्थरको अपनी ओर आता देख रथसे कूद पड़ा और गदा लेकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया। अङ्गदजीकी फेंकी हुई शिलाने पहिये, जोते और घोड़ोंके सहित उसके रथको चूर-चूर कर डाला। अब अङ्गदजीने एक दूसरी शिला लेकर फिर वज्रदंष्ट्र-के सिरपर मारी। उसकी चोटसे वह खून उगलता हुआ मूर्च्छित हो गया। होशमें आनेपर उस राक्षसने अत्यन्त कुपित होकर अङ्गदजीकी छातीमें गदा मारी। फिर वे आपसमें घूँसेबाजी करने लगे। इस प्रकार वानर और राक्षस एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे। लड़ते-लड़ते दोनों ही खून उगलने लगे। फिर दोनोंने ही ढाल-तलवारें ले लीं और दोनों तरह-तरहके पैंतरे बदलने लगे। अन्तमें, लड़ते-लड़ते दोनों वीर थककर घुटनोंके बल पृथ्वीपर बैठ गये। किन्तु दूसरे ही क्षण कपिवर अङ्गद खड़े हो गये और अपनी निर्मल एवं स्वच्छ तलवारसे उन्होंने वज्रदंष्ट्रका विशाल मस्तक काट डाला। वज्रदंष्ट्रको मरा देखकर राक्षसलोग भयसे घबरा उठे और लङ्कामें भाग गये। उस समय उन सबके मुखपर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वज्रदंष्ट्रको मारकर प्रतापी वालिनन्दन बड़े हर्षित हुए। उस समय वे वानर-सेनाके बीचमें इस प्रकार शोभा पा रहे थे, जैसे देवताओंसे घिरे हुए इन्द्र।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अकम्पनका युद्ध और हनुमान्‌जीके हाथसे उसका वध

अङ्गदजीके हाथसे वज्रदंष्ट्रके मारे जानेकी बात सुनकर रावणने अपने सेनापतिसे कहा—'अकम्पन सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता हैं, अतः अनेकों दुर्धर्ष राक्षस उन्हींके नेतृत्वमें जायँ। अकम्पनका युद्धसे बड़ा प्रेम है और वे सर्वदा मेरा उत्कर्ष चाहते हैं। वे निःसन्देह राम, लक्ष्मण और महाबली सुग्रीवको परास्त करेंगे तथा अनेकों भयानक वानरोंको भी मौतके घाट उतार देंगे।' रावणकी ऐसी आज्ञा पाकर सेनाध्यक्षने बहुत-सी सेना भेजी। अनेकों भयानक राक्षस तरह-तरहके हथियार लेकर निकले। उनके साथ अकम्पन भी एक सुवर्ण-जटित विशाल रथपर चढ़कर निकला। वह मेघके समान विशाल था, मेघके समान ही उसका रंग और मेघके समान ही उसकी गर्जना थी। संग्राममें देवतालोग भी उसे कम्पित नहीं कर सकते थे तथा अपने तेजके कारण वह उन राक्षसोंमें सूर्यके समान दमक रहा था। जिस समय वह राक्षसोंके साथ चला, उस समय ऐसा भीषण कोलाहल हुआ कि उससे समुद्रमें भी हलचल-सी मच गयी। उस शब्दसे वानरोंकी विशाल सेना भी भयभीत हो गयी। फिर पर्वत और वृक्षोंसे प्रहार करनेवाले तथा युद्धके लिये तैयार वानरोंके साथ राक्षसोंका भीषण युद्ध होने लगा। बात-की-बातमें सारी युद्धभूमि लाशोंसे भर गयी, खूनसे तर हो गयी और उसमें खूनकी ही कीच हो गयी। राक्षस और वानर-वीर जोशमें भरकर एक-दूसरेपर वृक्ष, शक्ति, गदा, प्रास, शिला, परिघ और तोमर आदिसे प्रहार करने लगे। भीमकर्मा वानर अपनी परिघके समान भुजाओंसे पर्वताकार राक्षसोंको मारने लगे तथा राक्षसलोग भी अत्यन्त कुपित होकर भयंकर शस्त्रोंसे वानरोंपर चोट करने लगे। इस समय राक्षसोंके सेनापति अकम्पनने भी अत्यन्त कुपित होकर राक्षसोंका उत्साह बढ़ाया। इधर कुमुद, नल और मैन्द नामके वानरोंने भी अपना बड़ा वेग दिखलाया। वे वृक्षोंके द्वारा लीलासे ही राक्षसोंका बड़ा विध्वंस करने लगे तथा और सब वानर भी तरह-तरहके आयुधोंसे राक्षसोंको कुचलने लगे।

प्रधान-प्रधान वानरोंका यह महान् पराक्रम देखकर अकम्पनको बड़ा भारी क्रोध हुआ और उसने अपने सारथि-से कहा—'सारथे! ये बलवान् वानर युद्धमें अनेकों राक्षसोंका संहार कर रहे हैं, इसलिये तुम मेरा रथ इन्हींके पास ले चलो।' इस प्रकार रथियोंमें श्रेष्ठ अकम्पन अपने घोड़ोंको हँकवाकर बाणोंकी वर्षा करता वानरोंके पास पहुँचा। तब उसके बाणोंसे व्यथित होकर सब वानर भाग गये। महाबली हनुमान्‌जीने जब अपने बन्धुओंको अकम्पनके बाणोंसे मृत्युके पंजेमें पड़ते देखा, तब वे उसके सामने आ गये। महावीरजीको देखकर सब वानर उन्हींके आस-पास एकत्रित हो गये और एक वीरका आश्रय पाकर उनमें भी बलका सञ्चार हो गया।

पर्वतके समान विशालकाय हनुमान्‌जीको अपने सामने उपस्थित देख अकम्पन उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। किन्तु हनुमान्‌जीने उस बाण-वर्षाकी कुछ भी परवा न कर अकम्पनको मारनेका निश्चय किया। अतः वे पृथ्वीको कँपाते हुए हँसते-हँसते अकम्पनकी ओर दौड़े। उन्होंने बड़ी फुर्तीसे एक पर्वत उखाड़ लिया और अपने एक हाथमें लेकर बड़ी भीषण गर्जनाके साथ उसे घुमाने लगे। अकम्पनने उसे अपनी ओर आता देखकर दूरसे ही एक अर्धचन्द्राकार बाणसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब हनुमान्‌जी क्रोधमें भरकर एक अश्वकर्ण वृक्षके पास गये, जो पर्वतके समान ऊँचा था, और बड़ी फुर्तीसे उसे उखाड़ लिया। उस वृक्षको वे बड़े चावसे घुमाने लगे। उसके द्वारा उन्होंने अनेकों हाथी, गजारोही, रथ, रथी और पैदल राक्षसोंको मौतके घाट उतार दिया। इस समय वे साक्षात् कालके समान जान पड़ते थे। उन्हें देखकर राक्षसलोग इधर-उधर भागने लगे। यह सब देखकर वीर अकम्पनको बड़ा क्षोभ हुआ और वह गर्जने लगा। फिर उसने शरीरको फोड़ डालनेवाले चौदह बाणोंसे महाबली हनुमान्‌जीको बींधा। तब हनुमान्‌जीने एक दूसरा वृक्ष उखाड़कर बड़ी फुर्तीसे राक्षस-सेनापति अकम्पनके सिरपर मारा। उस वृक्षके आघातसे अकम्पन पृथ्वीपर गिरा और मर गया। सेनापति अकम्पनको मरकर पृथ्वीपर गिरा देख सब राक्षस बड़े दुखी हुए और अस्त्र-शस्त्र छोड़कर लङ्कापुरीमें भाग गये। उनके लङ्कामें घुस जानेपर सब वानरोंने इकट्ठे होकर हनुमान्‌जीका अभिनन्दन किया तथा अपना पूरा बल लगाकर भीषण गर्जना की। उस समय देवता, महाबली श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीवादि वानर और महाबली विभीषण सभीने हनुमान्‌जीका यथायोग्य सत्कार किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## प्रहस्तका युद्ध और नीलके हाथसे उसका वध

अकम्पनके वधका समाचार पाकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ। वह कुछ देर सोचता रहा, फिर उसने मन्त्रियोंके साथ विचार किया और उसके बाद वह लङ्काके सब मोर्चों-का निरीक्षण करनेके लिये गया। लङ्काको शत्रुओंसे घिरी देखकर उसने अपने हितकारी और युद्ध-विद्यामें प्रवीण प्रहस्तसे कहा—'अब तो इस भारको मैं, कुम्भकर्ण, तुम, इन्द्रजित् या निकुम्भ ही उठा सकते हैं। अतः तुम शीघ्र ही सेना लेकर विजयके लिये प्रस्थान करो और जहाँ ये वानरलोग जुटे हुए हैं, वहाँ जाओ। वानरलोग बड़े ही चञ्चल, ढीठ और डरपोक होते हैं; ये तुम्हारे सिंहनादको सह नहीं सकेंगे। मुझे युद्धमें तुम्हारी विजय होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है।' इसपर प्रहस्तने कहा—'आपने दान, मान और सान्त्वनाके द्वारा सदा ही मेरा सत्कार किया है; फिर मैं आपका हित क्यों न करूँगा। मुझे अपने जीवन, पुत्र, स्त्री और धन आदिकी तनिक भी परवा नहीं है। आप देखेंगे कि मैं आपके लिये प्रसन्नतासे अपने प्राण होम दूँगा।' रावणसे यह कहकर सेनापति प्रहस्तने अपने पास खड़े हुए सेनाके व्यवस्थापकसे कहा—'तुरंत ही मेरे लिये राक्षसोंकी विशाल सेना तैयार करो।' उसकी आज्ञा सुनते ही महाबली सेना-नायकोंने सेना इकट्ठी की और थोड़ी ही देरमें सारी लङ्कापुरी तरह-तरहके हथियारोंसे सुसज्जित राक्षस-वीरोंसे भर गयी। सब राक्षस प्रहस्तके झंडेके नीचे इकट्ठे हो गये। फिर प्रहस्त राजाकी आज्ञा लेकर बड़ी सावधानीसे रथपर सवार हुआ। वह रथ चन्द्रमा और सूर्यके समान चमकीला था तथा मेघके समान शब्द करता था; उसमें सर्पके चिह्नवाली ध्वजा थी, उसकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध था तथा उसका सब साज-सामान भी सुन्दर था। इस समय मेघ-गर्जनके समान दुन्दुभि आदि बाजोंके घोषसे सारी रणभूमि गूँज उठी। राक्षसलोग भी भयंकर सिंहनाद करते हुए सेनापतिके आगे-आगे चले। प्रहस्तके मन्त्री नरान्तक, कुम्भहनु, महानद और समुन्नत उसे घेरकर चल रहे थे। इस प्रकार दुर्भेद्य व्यूह-रचना करके वह समुद्रके समान विशाल सेनाके साथ लङ्काके पूर्व-द्वारसे निकला। उस समय वह प्रलयकारी यमराजके समान जान पड़ता था। नगरसे बाहर आकर वह विजयकी अभिलाषासे कपिराज सुग्रीवकी सेनाकी ओर बढ़ा और जिस प्रकार पतङ्ग मरनेके लिये अग्नि-शिखापर टूटकर गिरता है, उसी प्रकार वह बड़े वेगसे उस सेनामें घुस गया।

प्रहस्तको युद्धकी तैयारी करके लङ्कासे बाहर आते देख श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर विभीषणसे पूछा—'विभीषण! यह बहुत बड़े शरीरवाला और बड़ी भारी सेनासे घिरा हुआ कौन आ रहा है? इसका वेग बहुत प्रबल जान पड़ता है। इसका रूप, बल और प्रभाव कैसा है?' तब विभीषणने कहा—'यह प्रहस्त नामका राक्षस रावणका सेनापति है। इस समय यह लङ्काकी एक तिहाई सेना अपने साथ लिये हुए है। यह बड़ा ही वीर्यवान्, शस्त्रज्ञ और शूरवीर है तथा अपने पराक्रमके लिये प्रसिद्ध है।' इसी समय बलवान् वानरोंकी विशाल सेनाने भी महापराक्रमी प्रहस्तको लङ्कासे बाहर आते देखा। इससे उनमें कोलाहल होने लगा और वे प्रहस्तकी ओर देखकर गरजने लगे। राक्षसलोग तलवार, शक्ति, ऋष्टि, शूल, बाण, मुसल, गदा, परिघ, प्रास, तरह-तरहके फरसे और चित्र-विचित्र धनुष लिये वानरोंकी ओर दौड़ रहे थे। तब वानरोंने भी युद्ध करनेकी इच्छासे वृक्ष, पर्वत और बड़े-बड़े पत्थर उठा लिये। फिर दोनों पक्षोंके वीरोंमें पत्थरों और बाणोंकी वर्षाके साथ आपसमें बड़ा घोर युद्ध छिड़ गया। अनेकों राक्षसोंने बहुत-से वानरोंका और बहुत-से वानरोंने अनेकों राक्षसोंका संहार कर डाला। वानरोंमेंसे कोई शूलोंसे, कोई चक्रोंसे, कोई परिघोंसे और कोई फरसोंसे मार डाले गये। तब तो वानरोंने भी क्रोधमें भरकर वृक्ष और चट्टानोंके द्वारा जहाँ-तहाँ राक्षसोंके झुंड-के-झुंड पीस डाले। वानरोंके वज्रतुल्य घूँसों और तमाचोंकी चोट खाकर राक्षसलोग खून उगलने लगते थे तथा उनके मुँह और नेत्र फट जाते थे।

एक ओर प्रहस्तके मन्त्री नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत भी वानरोंको मार रहे थे। यह देखकर द्विविदने एक गिरि-शिखरसे नरान्तकका काम तमाम कर डाला। दुर्मुखने एक बड़ा-सा वृक्ष लेकर समुन्नतको समाप्त कर दिया। जाम्बवान्‌ने अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक विशाल शिला उठायी और उसे महानादकी छातीपर दे मारा। रहा कुम्भहनु, वह तार नामक वानरसे भिड़ा और अन्तमें एक विशाल वृक्षकी चपेटमें आकर उसे भी अपने प्राणोंसे हाथ धोने पड़े। रथारूढ़ प्रहस्तसे वानरोंका यह अद्‌भुत पराक्रम नहीं देखा गया और वह हाथमें धनुष लेकर उनका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

संहार करने लगा। थोड़ी देरमें उसने देखा कि नील उसकी ओर आ रहे हैं। अतः वह धनुष खींचकर उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसके बाण नीलके शरीरको बींधकर पृथ्वीमें गिर जाते थे। तब महाकपि नीलने भी एक बड़ा-सा वृक्ष उखाड़ लिया और उससे अपनी ओर आते हुए प्रहस्तपर प्रहार किया। वृक्षकी चोट खाकर प्रहस्त बड़ा कुपित हुआ और गरज-गरजकर वानर-सेनापति नीलपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। तब महाबली नीलने एक सालके वृक्षसे प्रहस्तके घोड़ोंको मार डाला और अत्यन्त रोषमें आकर उसका धनुष भी तोड़ दिया। अब प्रहस्त एक मूसल लेकर रथसे कूद पड़ा और उससे नीलके मस्तकपर चोट की। इससे उनके मस्तकसे रक्त बहने लगा। तब महाकपि नीलने एक बड़ी-सी शिला उठायी और प्रहस्तके सिरपर दे मारी। उससे प्रहस्तके सिरके टुकड़े-टुकड़े हो गये और वह जड़से कटे हुए वृक्षके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा।

विजयी सेनापति महाबली नील अपने इस महान् कर्मके कारण प्रशंसित होते हुए श्रीराम और लक्ष्मणके पास आये। इससे उन्हें भी बड़ा हर्ष हुआ।

## रावणका वानरोंके साथ युद्ध करना और श्रीरामचन्द्रजीसे परास्त होकर लङ्कामें लौटना

वानर-सेनापति नीलके हाथसे राक्षस-सेनापति प्रहस्तका वध होनेपर राक्षसराज रावणकी उस भीषण सेनामें भगदड़ मच गयी। राक्षसोंने रावणके पास जाकर अग्निपुत्र नीलके हाथसे प्रहस्तके मारे जानेका समाचार सुनाया। उनकी बात सुनकर राक्षसराजको बड़ा क्रोध हुआ और उसका चित्त शोकाकुल हो गया। फिर उसने राक्षसोंके यूथपतियोंसे कहा—'अब मैं शत्रुओंके संहार और विजय-प्राप्तिके लिये स्वयं ही उस अद्भुत रण-भूमिमें जाऊँगा। आज अपनी बाणाग्निसे मैं राम-लक्ष्मण और सारी वानर-सेनाको भस्म कर दूँगा।' ऐसा कहकर वह एक अग्निके समान देदीप्यमान रथपर सवार हुआ। उसके प्रस्थान करते समय शङ्ख, भेरी और ढोलोंका शब्द होने लगा, योद्धालोग ताल ठोकने, उछलने, कूदने और सिंहनाद करने लगे तथा वन्दीजनोंने पवित्र स्तुति-वाक्योंसे उसका सम्मान किया। उसने शीघ्र ही बड़े उत्साहसे नगरके बाहर आकर वानरोंकी वह भयानक सेना देखी। वह समुद्र और मेघके समान गरज रही थी तथा सबके हाथोंमें वृक्ष और पत्थर थे।

इधर, राक्षसोंकी इस प्रचण्ड सेनाको देखकर भगवान् श्रीरामने विभीषणसे पूछा—'यह अजेय और भयहीन सेना किसकी है?' तब पराक्रमी विभीषणने राक्षसोंकी उस सर्वश्रेष्ठ सेनाका इस प्रकार परिचय दिया—'महाराज! यह जो बालसूर्यके समान लाल मुँहवाला है और हाथीपर चढ़ा हुआ है, इसे आप अकम्पन[1] समझें। जो रथपर चढ़ा हुआ है, जिसकी ध्वजापर सिंहका चिह्न है और जिसके दाँत हाथीके समान उग्र और बाहर निकले हुए हैं, वह इन्द्रजित् है। यह वरदानके प्रभावसे बड़ा प्रबल हो गया है। यह जो विन्ध्याचल और महेन्द्र-पर्वतके समान विशालकाय अतिरथी रथपर बैठा हुआ है और अपने अतुलनीय धनुषकी टंकार करता है, अतिकाय है। जिसकी आँखें बालसूर्यके समान लाल हैं और जो तीव्र स्वभाववाले हाथीपर चढ़कर गरज रहा है, उसका नाम महोदर है। जो सायङ्कालीन मेघ-युक्त पर्वतकी-सी आभावाला योद्धा सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित घोड़ेपर चढ़ा हुआ है, उसका नाम पिशाच है। इसका वेग वज्रके समान है। यह जो वज्रके वेगको भी कुण्ठित करनेवाला और बिजलीकी तरह चमचमाता हुआ तीखा त्रिशूल लिये हुए है तथा चन्द्रमाके समान सफेद साँड़पर चढ़ा आ रहा है, त्रिशिरा[1] है; यह बड़ा यशस्वी है। यह जो मेघके समान रूपवाला है, जिसका वक्षःस्थल उभरा हुआ, विशाल और सुन्दर है तथा जिसकी ध्वजापर सर्पराज वासुकिका चिह्न है, उसका नाम कुम्भ है; और जो सुवर्ण तथा हीरोंसे जड़ा हुआ देदीप्यमान परिघ लिये राक्षस-सेनाकी ध्वजाके समान आ रहा है, वह अद्भुत पराक्रमी निकुम्भ है। यह जो धनुष, खड्ग और बाण-समूहसे सुसज्जित, अग्निके समान देदीप्यमान तथा पताकावाले रथपर चढ़कर शोभा पा रहा है, वह नरान्तक[2] नामका प्रचण्ड

१. यह अकम्पन हनुमान्‌जीके द्वारा मारे गये अकम्पनसे भिन्न है।

१. यह त्रिशिरा जनस्थानमें मारे गये त्रिशिरासे भिन्न है। यह रावणका पुत्र है और वह भाई था।

२. यह नरान्तक रावणका पुत्र है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर है। यह पहाड़ोंकी चोटियोंसे युद्ध करता है। यह जो व्याघ्र, ऊँट, हाथी, हिरन और घोड़ेके-से मुँहवाले अनेक प्रकारके भयंकर भूतोंसे घिरा हुआ है, जिसकी आँखें चढ़ी हुई हैं और जिसके ऊपर चन्द्रमाके समान श्वेत छत्र सुशोभित है, वह राक्षसराज रावण है। यह सिरपर मुकुट धारण किये है, इसका मुँह हिलते हुए कुण्डलोंसे सुशोभित है; इसका शरीर हिमालय और विन्ध्याचलके समान विशाल है तथा यह इन्द्र और यमराजके भी अभिमानको चूर कर देनेवाला है। देखिये, यह राक्षसराज साक्षात् सूर्यके समान चमक रहा है।' यह सुनकर भगवान् श्रीरामने कहा—'अहो! राक्षसराज रावणका तेज तो बहुत ही बढ़ा-चढ़ा और देदीप्यमान है। जैसा इस राक्षसराजका शरीर शोभासम्पन्न है, वैसा तो देवता और दानव-वीरोंका भी नहीं है। अच्छा हुआ, आज यह पापी मेरी आँखोंके सामने आ गया।' ऐसा कहकर महाबली श्रीरामजी लक्ष्मणके साथ अपना धनुष और उत्तम-उत्तम बाण लेकर खड़े हो गये।

इधर राक्षसराज रावणने अपने महाबली राक्षसोंसे कहा—'तुमलोग सावधान और निःशङ्क होकर नगरके द्वारों तथा राजमार्गके मकानोंकी ड्योढ़ियोंपर खड़े हो जाओ; क्योंकि वानरलोग मेरे साथ तुम सबको यहाँ आये देख इस अवसरसे लाभ उठाकर सहसा सूने नगरमें घुस जायँगे और उसे नष्ट कर डालेंगे।' मन्त्रियोंको इस प्रकार समझाकर रावणने विदा कर दिया और फिर समुद्रके समान विशाल वानर-सेनाको विदीर्ण करने लगा। राक्षसराजको प्रचण्ड धनुष-बाण लिये अकस्मात् आते देख सुग्रीवने एक बड़ा भारी पर्वत-शिखर उखाड़ लिया और उसे लेकर रावणपर आक्रमण किया। रावणने उस शिखरको अपनी ओर आते देख अपने सोनेकी पाँखवाले बाणोंसे काट डाला। फिर उसने कुपित होकर सुग्रीवका वध करनेके लिये एक वज्रके समान वेगवाला और अग्निके समान देदीप्यमान बाण छोड़ा। उस बाणकी चोटसे वीर सुग्रीव अचेत हो गये और चीत्कार करते पृथ्वीपर जा पड़े। तब गवाक्ष, गवय, सुषेण, ज्योतिर्मुख और नल शिलाएँ लेकर रावणपर टूट पड़े। किन्तु रावणने सौ तीखे बाण छोड़कर उनकी चोटोंको व्यर्थ कर दिया और वानरोंको भी बींध डाला। वे विशालकाय वानर उसके बाणोंसे विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर गये। फिर तो उसने उस प्रचण्ड वानर-सेनाको बाणोंके जालसे ढँक-सा दिया। रावणके बाणोंसे पीड़ित और डरे हुए वानर चीत्कार करते शरणागतवत्सल श्रीरामकी शरणमें गये। तब धनुर्धर श्रीराम अपना धनुष लेकर उसी समय [ रावणसे टक्कर लेनेके लिये ] आगे बढ़ गये। इतनेमें ही लक्ष्मणजीने आगे आकर हाथ जोड़ उनसे ये यथार्थ वचन कहे—'आर्य! इस दुष्टको मारनेके लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं ही इसका वध कर डालूँगा।' परम तेजस्वी श्रीरामने कहा—'अच्छा, जाओ और संग्राममें पूरा प्रयत्न करो। रावण बड़ा वीर और युद्धमें अद्भुत पराक्रम दिखानेवाला है। इसमें सन्देह नहीं, कुपित होनेपर यह तीनों लोकोंके लिये भी असह्य है। तुम उसकी और अपनी कमजोरियोंपर ध्यान रखना। बहुत सावधान रहकर नेत्रोंसे और धनुषसे अपनी रक्षा करना।' रघुनाथजीके ये वचन सुनकर लक्ष्मणजीने उनका आलिङ्गन, पूजन और अभिवादन किया और फिर युद्धके लिये चल दिये।

इसी समय महातेजस्वी हनुमान्‌जी रावणको देख बाणोंकी उपेक्षा कर उसकी ओर बढ़े। उन्होंने रावणके रथके समीप पहुँचकर अपना दायाँ हाथ उठा उसे भयभीत करते हुए कहा—'तुमने देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंसे न मारे जानेका वर प्राप्त कर लिया है, परन्तु वानरोंसे तो तुम्हें भय है ही।' हनुमान्‌जीकी बात सुनकर महा पराक्रमी रावणके नेत्र लाल हो गये और उसने क्रोधमें भरकर कहा—'वानर! मुझे तुमसे किसी प्रकारका भय नहीं है, तुम शीघ्र ही प्रहार करके यश प्राप्त कर लो। उसके बाद तुम्हारा पराक्रम देखकर मैं तुम्हें नष्ट करूँगा।' रावणके वचन सुनकर हनुमान्‌जी बोले—'याद रखो, मैं पहले ही तुम्हारे बेटे अक्षको मार चुका हूँ।' इसपर महातेजस्वी राक्षसराज रावणने हनुमान्‌जीको एक थप्पड़ मारा। उस थप्पड़की चोटसे हनुमान्‌जी तिलमिला उठे। फिर उन्होंने भी गुस्सेमें भरकर रावणको एक चपत जमा दी। उनके तमाचेसे रावण काँप उठा, जैसे भूकम्प आनेपर पर्वत डगमगाने लगते हैं। संग्राम-भूमिमें रावणको चपत खाते देखकर ऋषि, सिद्ध, देवता, असुर और वानर हर्ष-ध्वनि करने लगे। फिर कुछ देरमें सँभलकर रावणने कहा—'शाबाश वानर! पराक्रमकी दृष्टिसे तुम हमारे प्रशंसनीय प्रतिद्वन्द्वी हो।' रावणके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जी बोले—'मेरे पराक्रमको धिक्कार है, जो तुम अब भी जीवित हो।' इससे रावणका क्रोध भड़क उठा, उसकी आँखें लाल हो गयीं और उसने बड़े जोरसे अपना दायाँ घूँसा तानकर हनुमान्‌जीकी छातीमें मारा। इससे हनुमान्‌जी विचलित हो गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब महाबली हनुमान्‌जीको विह्वल देख रावणने बड़ी तेजीसे अपने रथद्वारा नीलपर आक्रमण किया। वह अपने मर्ममेदी बाणोंसे वानर-सेनापति नीलको जलाने लगा। रावणकी बाण-वर्षासे व्यथित होकर सेनापति नीलने एक हाथसे पर्वतकी चट्टान उठाकर उसपर फेंकी। रावणने सात पैने बाण छोड़कर उस चट्टानको तोड़ डाला और वह टुकड़े-टुकड़े होकर पृथ्वीपर गिर गयी। यह देखकर सेनापति नील क्रोधसे कालाग्निके समान भड़क उठे और रावणपर अनेकों वृक्षोंकी वर्षा करने लगे। फिर वे छोटा-सा रूप बनाकर रावणके रथकी ध्वजापर चढ़ गये। नीलको कभी रावणकी ध्वजा, कभी धनुष और कभी मुकुटपर बैठे देखकर श्रीराम, लक्ष्मण एवं हनुमान्‌को बड़ा विस्मय हुआ। रावणने आग्नेय मन्त्रसे अभिमन्त्रित बाण लेकर ध्वजाके ऊपर बैठे हुए नीलसे कहा—'वानर! तुम बड़े फुर्तीले और पक्के मायावी हो। तुमने अपनी शक्तिके अनुसार अनेकों रूप धारण किये हैं। परन्तु अब यदि तुममें सामर्थ्य है तो अपने जीवनकी रक्षा करो।' राक्षसराज रावणने ऐसा कहकर वह बाण धनुषपर चढ़ाया और सेनापति नीलपर छोड़ दिया। उस बाणने नीलकी छातीपर चोट की और वे उससे जलते हुए सहसा पृथ्वीपर गिर पड़े। किन्तु पिताके माहात्म्य और अपने तेजके प्रभावसे उनके प्राण नहीं निकले।

वानर नीलको अचेत देखकर रणोत्सुक रावण लक्ष्मणजीकी ओर चला और अपने धनुषकी टङ्कार करने लगा तब लक्ष्मणजी बोले—'राक्षसराज! लो, मैं आ गया हूँ; इसलिये

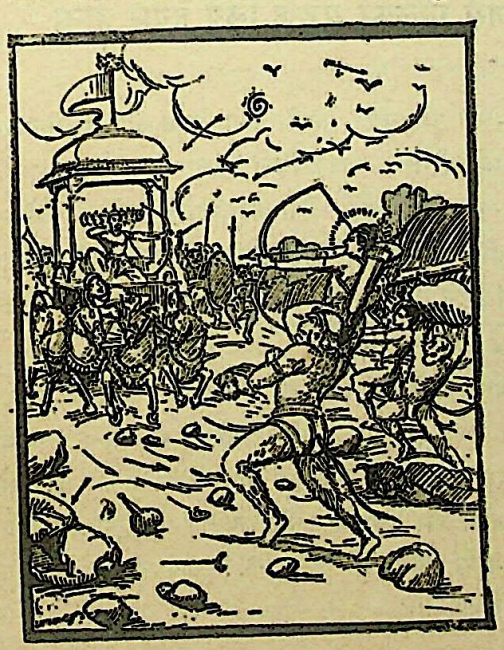

अब तुम्हें वानरोंसे युद्ध नहीं करना चाहिये।' यह सुनकर और लक्ष्मणजीको अपने सामने उपस्थित देखकर रावण रोषभरी वाणीमें बोला—'लक्ष्मण! अच्छा हुआ, तुम मेरे सामने आ गये; अब मेरे बाणोंसे पीड़ित होकर तुम इसी क्षण यमलोककी हवा खाओगे।' ऐसा कहकर उसने सात बाण छोड़े। उन्हें लक्ष्मणजीने सुवर्णकी पाँखोंवाले तीखे बाणोंसे काट डाला। इससे रावणको बड़ा क्रोध हुआ और उसने दूसरे तीखे बाण छोड़े। किन्तु लक्ष्मणजी इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए और बड़ी भीषण बाण-वर्षा करने लगे। उन्होंने क्षुर, अर्धचन्द्र एवं उत्तम कर्ण और भल्ल जातिके बाणोंसे रावणके छोड़े हुए सब बाणोंको काट डाला। फिर उन्होंने रावणके वधके लिये वज्रके समान भयंकर वेगवाले बाण धनुषपर चढ़ाये। रावणने भी उन सब बाणोंको काट दिया और फिर ब्रह्माजीके दिये हुए एक कालाग्निके समान देदीप्यमान बाणसे लक्ष्मणजीके ललाट-पर वार किया। उस बाणसे लक्ष्मणजी विचलित हो गये। किन्तु फिर उन्होंने रावणका धनुष काट डाला और तीन पैने बाणोंसे उसपर चोट की। उन बाणोंसे रावण व्याकुल हो गया और फिर बड़ी कठिनतासे उसे चेत हुआ। अब उसने ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति उठायी। वह अग्निके समान देदीप्यमान थी। उसे उसने लक्ष्मणजीपर छोड़ दिया। उसको अपनी ओर आते देख लक्ष्मणजीने बाणोंके द्वारा उसपर चोट की। फिर भी वह उनकी छातीमें घुस गयी। शक्तिसे आहत होनेपर लक्ष्मणजी पृथ्वीपर गिर गये और उनके सारे शरीरमें जलन होने लगी। तब रावण जल्दीसे उनके पास जाकर उन्हें अपनी भुजाओंसे उठाने लगा। परन्तु वे किसी प्रकार उसके उठाये न उठे। ब्रह्माकी शक्तिसे ताड़ित होनेपर भी लक्ष्मणजीने भगवान् विष्णुके अचिन्तनीय अंशरूपसे अपना चिन्तन किया। अतः देवशत्रु रावण उन्हें भुजाओंमें भरकर टस-से-मस भी नहीं कर सका। इसी समय वायुपुत्र हनुमान् कुपित होकर रावणकी ओर दौड़े और उसकी छातीमें अपने वज्र-तुल्य मुक्केसे प्रहार किया। उससे रावण तिलमिला उठा और पृथ्वीपर गिर गया। उसके मुँह, नेत्र और कानोंसे बहुत रक्त बहा और वह चक्कर खाकर निश्चेष्ट हो अपने रथपर जा बैठा। भीमपराक्रमी रावणको रणभूमिमें अचेत हुआ देखकर ऋषि, देवता, असुर और वानर 'धन्य-धन्य' कहने लगे। इसके पश्चात् तेजस्वी हनुमान् लक्ष्मणजीको उठाकर श्रीरामचन्द्रजीके पास ले आये। हनुमान्‌जीके सौहार्द और उत्कट भक्तिभावके कारण लक्ष्मणजी उनके लिये हल्के हो गये।

रावणकी छोड़ी हुई शक्ति लक्ष्मणजीको छोड़कर फिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रावणके रथपर आ गयी। थोड़ी देरमें चेत हो जानेपर महातेजस्वी रावणने अपना विशाल धनुष और पैने बाण उठाये। लक्ष्मणजी भी भगवान् विष्णुके अचिन्तनीय अंशरूपसे अपना चिन्तन करके स्वस्थ हो गये और उनके सब घाव भर गये। श्रीरघुनाथजीने देखा कि वानर-सेनाके बहुत-से वीर धराशायी कर दिये गये हैं। अतः वे स्वयं रावणकी ओर चले। इसी समय हनुमान्‌जीने उनके पास आकर कहा—'जिस प्रकार विष्णुभगवान् गरुड़पर चढ़कर दैत्योंका संहार करते हैं, वैसे ही आप मेरी पीठपर चढ़कर इस राक्षसको दण्ड दें।' हनुमान्‌की यह प्रार्थना सुनकर श्रीरामचन्द्रजी उनकी पीठपर चढ़ गये और रावणको देखकर उन्होंने उसपर आक्रमण किया। वे बड़ी गम्भीर वाणीमें उससे बोले—'रावण! अब तुम इन्द्र, यम, सूर्य, ब्रह्मा, अग्नि अथवा महादेव—किसीके भी पास जाओ अथवा दसों दिशाओंमें कहीं भी जाकर छिपो; तो भी मेरे हाथसे बच नहीं सकते। मैंने जनस्थानमें रहनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको, जो उत्तमोत्तम आयुधोंसे सुसज्जित थे, अपने इन्हीं बाणोंसे मौतके घाट उतार दिया था।' श्रीरामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर रावण बड़े भारी रोषमें भर गया और उसने पुराना वैर याद करके अपने कालाग्निके समान तीखे बाणोंसे हनुमान्‌जीपर वार किया। किन्तु उसके बाणोंसे ताड़ित होनेपर तेजस्वी हनुमान्‌जीका तेज और भी बढ़ गया। रघुनाथजीने जब देखा कि रावणने हनुमान्‌को घायल कर दिया है, तब उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने पहिये, घोड़े, ध्वजा, छत्र, पताका और सारथिके साथ उसके रथको अपने पैने बाणोंसे नष्ट कर दिया तथा उसमें रखे हुए वज्र, शूल और खड्ग-को भी काट डाला। इसके पश्चात् उन्होंने वज्रके समान प्रचण्ड बाणोंसे उसके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। उनकी चोटसे रावण अत्यन्त दीन और व्याकुल हो गया और उसके हाथसे धनुष भी छूट गया। उसे विह्वल देखकर श्रीरामचन्द्रजीने एक चमचमाता हुआ अर्धचन्द्र बाण लिया और उससे राक्षसराजका सूर्यके समान देदीप्यमान मुकुट काट डाला। तब श्रीरामचन्द्र-जीने श्रीहीन रावणसे कहा—'रावण! तुम बहुत थक गये हो, इसलिये अभी मैं तुम्हें अपने बाणोंसे मृत्युके हवाले नहीं करता हूँ। जाओ, कुछ देर लङ्कामें विश्राम करके फिर रथपर चढ़कर आना। उस समय तुम मेरा पुरुषार्थ देखोगे।'

श्रीरामके यह कहनेपर रावण लङ्कामें चला गया। उसका अभिमान मिट्टीमें मिल चुका था। धनुष काट दिया गया था, घोड़े और सारथि मार दिये गये थे, मुकुट काट दिया गया था और स्वयं भी बाणोंसे पीड़ित किया गया था। रावणके चले जानेपर लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामने वानरोंके शरीरोंसे बाण निकाले और उन्हें स्वस्थ किया। देवशत्रु रावणको युद्धस्थलसे भागते देखकर देवता, असुर, भूत, दिशाएँ, समुद्र, नाग तथा पृथ्वी और जलमें रहनेवाले प्राणी—सभी बहुत प्रसन्न हुए।

## राक्षसोंका कुम्भकर्णको जगाना और उसका रावणसे मिलकर युद्धके लिये तैयार होना

भगवान् श्रीरामके बाणसे पीड़ित हो राक्षसराज रावण लङ्कापुरीमें पहुँचा। और सुवर्णके दिव्य सिंहासनपर बैठकर राक्षसोंकी ओर देखते हुए कहा—'मैंने जो बहुत बड़ी तपस्या की थी, वह सब व्यर्थ हो गयी; क्योंकि आज मुझे एक मनुष्यने परास्त कर दिया। ब्रह्माजीने मुझसे कहा था कि तुम्हें मनुष्योंसे भय रहेगा; अतः इस समय उनका वह भयंकर वाक्य ही फल रहा है। मैंने तो देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्पोंसे ही न मारे जा सकनेका वर माँगा था; मनुष्योंके विषयमें तो कुछ कहा ही नहीं था। दशरथ-कुमार रामको तो मैं वही मनुष्य समझता हूँ, जिसके विषयमें पहले इक्ष्वाकु-कुलके राजा अनरण्यने कहा था कि मेरे ही वंशमें एक ऐसा पुरुष उत्पन्न होगा, जो तुझे पुत्र, मन्त्री, सेना, अश्व और सारथिके सहित संग्राममें मारेगा। उसके सिवा उमा, नन्दीश्वर, रम्भा और वरुण-कन्याने भी जैसा-जैसा कहा था, वे सब बातें मेरे सामने आ रही हैं।* सच है, ऋषियोंकी बात झूठी नहीं होती। अब इस संकटसे पाला पड़ गया है तो आपलोग इससे छुटकारा

* उमाने कैलास उठानेके समय भयभीत होनेसे रावणको शाप दिया था कि 'तेरी मृत्यु स्त्रीके कारण होगी।' नन्दीश्वरकी वानर-मूर्त देखकर रावण हँसा था, इसलिये उन्होंने कहा था—'मेरे समान रूप और पराक्रमवाले ही तेरे कुलका नाश करेंगे।' रम्भाके निमित्तसे नल-कूबरने और वरुण-कन्या पुञ्जिकस्थलाके निमित्तसे ब्रह्माजीने शाप दिया था कि 'अनिच्छासे किसी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेपर तेरी मृत्यु हो जायगी।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri

पानेका प्रयत्न करें। आपलोग लङ्काके द्वारोंकी रक्षाका प्रयत्न करें, परकोटेपर चढ़ जायँ तथा नींदमें पड़े हुए कुम्भकर्णको भी जगा लें। इस समय वह कैसा निश्चिन्त होकर सुखकी नींदमें सोया हुआ है। कुम्भकर्णके जग जानेपर तो इस कठोर संग्राममें रामके द्वारा नीचा देखनेका मेरा सारा शोक दूर हो सकता है। यदि इस घोर संकटके समय भी कुम्भकर्णकी सहायता न मिली तो फिर उससे मेरा प्रयोजन ही क्या है ?'

राक्षसराजके वचन सुनकर वे राक्षस बहुत घबरा उठे और कुम्भकर्णके घर गये। वे कुम्भकर्णकी रमणीय गुफामें पहुँचे, जिसका दरवाजा बहुत बड़ा था और जो सब ओर एक-एक योजन विस्तारवाली थी। कुम्भकर्णका श्वास उन महाबली राक्षसोंको दूर फेंक देता था, इसलिये वे बड़ी कठिनतासे पैर जमाते जैसे-तैसे गुफाके भीतर घुसे। उसकी फर्श सोने और रत्नोंसे जड़ी हुई थी। वहीं उन्होंने भयंकर पराक्रमी कुम्भकर्णको खुर्राटे लेते देखा। वह सर्पके समान साँस ले रहा था और अपने निःश्वासोंसे राक्षसोंको इधर-उधर ढकेल देता था। उसकी नाक बड़ी भयंकर थी, पातालके समान विशाल मुख था और उसका सारा शरीर शय्यापर पड़ा था। उसके शरीरसे चर्बी और रुधिरकी गन्ध आ रही थी। उन राक्षसोंने उसके आगे हरिनों, भैंसों, सूअरों और अन्नोंकी मेरु-पर्वतके समान ऊँची ढेरी लगा दी तथा खूनसे भरे घड़े और तरह-तरहके मांस भी उसके लिये रख दिये। फिर वे मृदङ्ग, ढोल, धौंसा और शंखोंका शब्द करने लगे। कुम्भकर्ण काले काजलकी ढेरीके समान पड़ा हुआ था। उसे एक साथ दस हजार राक्षसोंने घेरकर जगानेका प्रयत्न किया। परन्तु उसकी नींद न टूटी। तब उन्होंने और भी कठोर प्रयत्न आरम्भ किया। वे घोड़ों, ऊँटों, गधों और हाथियोंको डंडों, कोड़ों और अंकुशोंसे मारकर उसके ऊपर ठेलने लगे। पूरी शक्ति लगाकर भेरी, मृदङ्ग और शंखोंकी ध्वनि करने लगे। उसके शरीरमें लोहेकी कीलें चुभोने तथा उसे जोर-जोरसे मुगदरों और मूसलोंसे मारने लगे। इस भीषण नादसे सारी लङ्का भर गयी, वहाँके पर्वत और वन भी गूँज उठे; परन्तु कुम्भकर्ण टस-से-मस न हुआ। क्योंकि वह शापके अधीन था। सभी राक्षस बड़े पराक्रमी थे। अब वे उसे जगानेके लिये शस्त्र-प्रहार करने लगे। किन्हींने धौंसेपर चोट लगायी, कोई महान् कोलाहल करने लगे, कोई उसके बाल नोचने लगे, कोई कान कुतरने लगे, कोई उसके कानोंमें जलके सैकड़ों घड़े उड़ेलने लगे, किन्तु कुम्भकर्णने करवट नहीं बदली। अन्तमें जब उसे सब ओरसे रस्सियोंमें बँधी हुई शतघ्नियोंसे मारा गया और उसके शरीरपर हजारों हाथी दौड़ाये गये, तब उसे कुछ स्पर्श मालूम हुआ और वह उठा। उसने शिलाओं और वृक्षोंकी मारपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया; किन्तु नींद टूटने और भूखसे पीड़ित होनेके कारण वह जँभाइयाँ लेने लगा। जब वह जँभाई लेता था तब उसका पातालके समान गहरा मुख ऐसा जान पड़ता था मानो मेरु-पर्वतके शिखरपर सूर्यका उदय हुआ हो। उस समय नींदसे जगे हुए कुम्भकर्णका रूप प्रलयकालमें प्राणियोंका संहार करनेवाले कालके समान दिखायी देता था। उसकी आँखें प्रज्वलित अग्नि, चमचमाती हुई बिजली या दीप्तिशाली महाग्रहों ( शनि और मङ्गल ) के समान जान पड़ती थीं। अब राक्षसोंने उसे सब प्रकारकी खाने-पीनेकी चीजें दिखायीं। वह बात-की-बातमें अनेकों सूअर और भैंसोंको चट कर गया। उसे बड़ी भूख लगी थी; अतः उसने भरपेट मांस खाया और रक्त पीकर अपनी प्यास बुझायी। अन्तमें उसने मेद और मद्यके भी अनेकों घड़े साफ कर दिये।

अब उसे तृप्त समझकर राक्षस उसके सामने आये और उसको सिर झुकाकर प्रणाम करके उन्होंने सब ओरसे घेर लिया। कुम्भकर्णने सबको सान्त्वना दी और अपने जगाये जानेपर विस्मित होकर उन राक्षसोंसे पूछा—'आपलोगोंने इस प्रकार आदर करके मुझे क्यों जगाया है ? राक्षसराज रावण तो कुशलसे हैं न ? मैं तो समझता हूँ उन्हें अवश्य शत्रुओंसे भय उत्पन्न हुआ है। इसीसे आपलोगोंने जल्दी करके मुझे जगाया है। अच्छा तो, आज मैं राक्षसराजके भयको उखाड़ फेंकूँगा। मैं इन्द्रको चीर डालूँगा ? और अग्निको भी ठंडा कर दूँगा। मुझ-जैसे पुरुषको किसी साधारण कारणवश निद्रा-से नहीं जगाया जाता, अतः आपलोग ठीक-ठीक मुझे जगाने-का कारण बतायें।' जब शत्रुओंका संहार करनेवाले कुम्भकर्णने क्रोधमें भरकर ऐसी बातें कहीं, तब राजमन्त्री यूपाक्षने[1] हाथ जोड़कर कहा—'महाराज ! इस समय एक मनुष्यसे हमारे लिये जैसा भय उपस्थित हो गया है, वैसा तो कभी दैत्य और दानवोंसे भी नहीं हुआ था। इस लङ्कापुरीको सब ओरसे पर्वताकार वानरोंने घेर रखा है और सीता-हरणसे सन्तप्त रामसे हमें बड़ा भय हो रहा है। पहले एक ही वानरने यह

१. यह यूपाक्ष सुन्दरकाण्डमें हनुमान्‌जीके हाथसे मारे गये यूपाक्षसे भिन्न है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


महापुरी जला दी थी, और हाथी तथा साथियोंसहित राजकुमार अक्षको भी मार डाला था। राक्षसराज रावण यद्यपि देवताओंके लिये काँटेके समान हैं, तथापि सूर्यके समान तेजस्वी रामने उन्हें भी नीचा दिखा दिया और युद्ध-भूमिमें उनसे कहा कि 'जा, इस समय तुझे छोड़ देता हूँ।' महाराजकी जो दशा देवता, दानव और दैत्य भी नहीं कर सके थे, वह रामने कर दी। उनके प्राण बड़े संकटसे बचे हैं।'

यूपाक्षके मुखसे युद्धमें भाईके पराभवकी बात सुनकर कुम्भकर्णने आँखें फाड़कर कहा—'यूपाक्ष! मैं आज ही सारी वानर-सेना और लक्ष्मणके सहित रामको युद्धमें परास्त करके पीछे रावणके दर्शन करूँगा। मैं वानरोंके रक्त और मांससे तो राक्षसों-को तृप्त करूँगा और स्वयं राम और लक्ष्मणका खून पीऊँगा।' इतनेमें ही कुछ राक्षसोंने रावणकी आज्ञासे आकर कहा—'सब राक्षसोंके शिरोमणि महाराज रावण आपको देखना चाहते हैं। आप वहाँ चलकर उन्हें आनन्दित करनेकी कृपा करें।' भाईकी आज्ञा सुनकर दुर्दम्य कुम्भकर्ण शय्यासे उठा। उसने प्रसन्नतापूर्वक मुँह धोकर स्नान किया और फिर तुरंत ही पीनेकी इच्छासे पेय मँगाया। राक्षसलोग उसी समय मद्य और अनेक प्रकारके भक्ष्य-पदार्थ ले आये। दो हजार घड़े गटककर वह चलनेको तैयार हुआ। इससे उसमें कुछ ताजगी आ गयी तथा वह मतवाला, तेजस्वी और शक्ति-सम्पन्न हो गया। जिस समय वह राक्षसोंकी सेनाके साथ भाईके महलको चला, उस समय साक्षात् प्रलयकारी कालके समान जान पड़ता था। उसके पैर रखनेसे पृथ्वी डगमगाने लगती थी। राजमार्गपर चलते समय वह पर्वत-शिखरके समान जान पड़ता था। नगरके बाहर खड़े हुए वानर उस विशालकाय राक्षसको देखकर अपने सेनापतियोंके सहित सहम गये। उनमेंसे किन्हींने शरणागत-वत्सल श्रीरामकी शरण ली, कोई घबराकर गिर गये, कोई इधर-उधर भाग गये और कोई भयभीत होकर पृथ्वीपर पड़ गये।

तब महातेजस्वी श्रीरामने भी धनुष लेकर विशालकाय कुम्भकर्णको देखा। वह मुकुट धारण किये था और इस प्रकार डगें भर रहा था जैसे पूर्वकालमें त्रिविक्रम भगवान्‌ने आकाश नापनेके लिये भरी थीं। श्रीरामचन्द्रजीने अपनी सेनाको भागते और राक्षसोंको प्रबल होते देखकर विभीषणसे विस्मयपूर्वक पूछा—'यह पहाड़के समान कौन है? यह तो लङ्कामें बिजलीसहित मेघके समान जान पड़ता है। यह कोई राक्षस है या असुर? ऐसा प्राणी मैंने पहले तो कभी नहीं देखा था।' श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर परम बुद्धिमान् विभीषणने कहा—'यह विश्रवाका पुत्र महाप्रतापी कुम्भकर्ण है। इसके बराबर डील-डौलवाला कोई दूसरा राक्षस नहीं है। इसने देवता, दानव, यक्ष, नाग, राक्षस, गन्धर्व और विद्याधर आदिको हजारों बार युद्धमें भगाया है। यह स्वभावसे ही बड़ा बलवान् और तेजस्वी है। इसने उत्पन्न होते ही भूखके कारण हजारों प्रजाजनोंको खा डाला था। तब वे भयभीत होकर इन्द्रकी शरणमें गये और उनके आगे अपना दुःख निवेदन किया। वज्रधर इन्द्रने कुपित होकर इसपर अपना वज्र छोड़ा। उसकी चोटसे यह बिलबिला उठा और भारी गर्जना करने लगा। फिर इसने कुपित होकर ऐरावतका दाँत खींच लिया और उससे इन्द्रकी छातीपर चोट की। कुम्भकर्णके प्रहारसे इन्द्र व्याकुल हो गये और उनके शरीरमें जलन होने लगी। यह देखकर सब देवता, ब्रह्मर्षि और दानव विषाद करने लगे। तब देवराज इन्द्र प्रजाके साथ ब्रह्माजीके पास गये और बोले—'भगवन्! यदि यह नित्यप्रति इसी प्रकार प्रजाको खाता रहा तो कुछ ही समयमें सारा संसार सूना हो जायगा।' इन्द्रकी बात सुनकर पितामहने राक्षसोंको बुलाया और कुम्भकर्णको देखकर उससे कहा—'तुम आज ही मुर्दे-से होकर सो जाओगे।' इसपर रावणने बहुत घबराकर कहा—'आपका वचन झूठा नहीं होता, इसलिये इसे सोना तो पड़ेगा ही। परन्तु आप इसके सोने और जागनेका समय नियत कर दें।' तब ब्रह्माजी बोले—'यह छः महीने सोयेगा और एक दिन जागेगा। उस एक दिन ही यह भूखा होकर पृथ्वीपर घूमेगा और मुँह फाड़कर अनेकों लोगोंको खा जायगा।' महाराज! इस समय आपत्तिमें पड़कर और आपसे भयभीत होकर रावणने इसे जगाया है। इसे तो देखकर ही वानरलोग भाग रहे हैं, फिर ये युद्धमें इसका सामना कैसे कर सकेंगे?'' विभीषणकी बात सुनकर भगवान् श्रीरामने सेनापति नीलसे कहा—'अग्निपुत्र! जाओ, अपनी सारी सेनाकी व्यूह रचना करके तैयार हो जाओ तथा लङ्काके द्वार और राजमार्गोंपर अधिकार जमाकर वहीं डटे रहो। पर्वतोंके शिखर, वृक्ष और शिलाएँ इकट्ठी कर लो तथा तुम और सब वानर अस्त्र-शस्त्र एवं पत्थर लिये तैयार रहो।' श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर सेनापति नीलने वानर-सेनाकी यथावत् व्यवस्था की। उसके अनुसार गवाक्ष, शरभ, हनुमान् और अङ्गद पहाड़ोंकी चट्टानें लेकर लङ्काके द्वारोंपर जा डटे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापराक्रमी कुम्भकर्ण कच्ची नींदमें उठाये जानेसे कुछ अलसाया हुआ नगरके राजमार्गसे जा रहा था। वह हजारों राक्षसोंके साथ रावणके विशाल और रमणीय महलमें पहुँचा। उसके पैर रखनेसे पृथ्वी थर्रा उठती थी। महलमें पहुँचकर उसने अपने बड़े भाईको उद्विग्न अवस्थामें पुष्पक-विमानपर बैठे देखा। कुम्भकर्णको आया देखकर रावण जल्दीसे खड़ा हो गया और उसे अपने पास खींच लिया। कुम्भकर्णने भाईके चरणोंकी वन्दना की और रावणने उसका आलिङ्गन किया। फिर कुम्भकर्ण एक सुन्दर आसनपर बैठा और क्रोधसे आँखें लाल करके उसने रावणसे पूछा—'राजन्! आपने मुझे क्यों जगाया है? कहिये, आपको किससे भय है?' तब रावणने क्रोधसे त्यौरी बदलकर कहा—'वीरवर! तुम तो सोये पड़े थे; इसलिये इस समय रामसे मुझे जो भय प्राप्त हुआ है, उसका तुम्हें पता नहीं है। दशरथनन्दन राम बड़ा ही बलवान् और शोभा-सम्पन्न है। वह सुग्रीवके सहित समुद्रको लाँघकर हमारी जड़ काट रहा है। हमारे जो प्रधान-प्रधान राक्षस थे, वे सब वानरोंके हाथसे मारे गये। इस समय हमारे ऊपर यही संकट है; तुम इससे हमारी रक्षा करो और इन वानरोंका संहार करो। इसीलिये हमने तुम्हें जगाया है। हमारा सब खजाना खाली हो चुका है, अतः मेरी ओर देखकर तुम इस पुरीकी रक्षा करो; अब तो इसमें केवल बालक और बूढ़े ही बचे हैं। महाबाहो! भाईके लिये तुम यह दुष्कर कार्य करो, मैंने इससे पहले अपने किसी भी भाईसे ऐसी बात नहीं कही। तुमपर मेरा प्रेम है और तुमसे मुझे पूरी आशा भी है; देवासुर-संग्राममें तुम कई बार देवताओंके विरुद्ध मोर्चा लेकर उन्हें संग्राममें परास्त कर चुके हो; अतः इस समय भी तुम यह काम पूरा करो। प्राणियोंमें तुम्हारे समान बली मुझे कोई भी नहीं दिखायी देता। तुम युद्ध-प्रेमी और अपने बन्धुओंसे भी प्रेम करनेवाले हो। इस समय तुम मेरा यही प्रिय और हित करो तथा अपने तेजसे शत्रुकी सेनाको व्यथित कर दो।'

राक्षसराज रावणका यह विलाप सुनकर कुम्भकर्णने कहा—'पहले विचार करते समय हमने जो दोष समझा था और उस समय अपने हितकारियोंके प्रति आपने जो उपेक्षा दिखायी थी, उसीका फल आपके सामने आ रहा है। आपको जल्दी ही पापका फल मिल गया। आपने केवल बलके घमंडसे ही यह कुकर्म कर डाला है, इसके परिणामपर कुछ भी विचार नहीं किया। जो कार्य अनुकूल देश-काल न होनेपर विपरीत स्थितिमें किये जाते हैं, वे दुःखके ही कारण होते हैं। जो राजा नीतिशास्त्रके अनुसार समय देखकर काम करता है, मन्त्रियोंसे सलाह कर लेता है और अपने सच्चे सुहृद्को भी पहचानता है, वही कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका ठीक निर्णय कर सकता है। नीति-निपुण पुरुष धर्म, अर्थ और काम—इन तीनोंका यथासमय सेवन किया करता है। इन तीनोंमें भी जो सर्वश्रेष्ठ धर्म है, उसे आप्त पुरुषोंसे सुनकर जो नहीं समझता, वह राजा हो अथवा राजाके समान ही कोई पुरुष हो, उसका शास्त्र-श्रवण व्यर्थ है। जो मनस्वी राजा मन्त्रियोंसे सलाह करके समयके अनुसार साम, दान, भेद और पराक्रमका, पाँच[1] प्रकारके योगका, नय और अनयका तथा धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता है, वह कभी कष्टमें नहीं पड़ता। राजाको अर्थ-तत्त्वज्ञ और बुद्धिमान् मन्त्रियोंकी सलाह लेकर तथा परिणाममें हित देखकर ही कोई काम करना चाहिये। जो पुरुष धृष्टताके कारण अहितकी बातको हितका-सा रूप देकर कहते हैं, वे निश्चय ही सलाह लेने योग्य नहीं हैं। उन्हें इस कामसे हटा देना चाहिये; वे तो कामको बिगाड़नेवाले ही होते हैं। जो चञ्चलचित्त राजा शत्रुओंसे मिले हुए मन्त्रियोंकी सलाहका बिना सोचे-समझे अनुसरण करता है, उसके छिद्रको शत्रुलोग बहुत जल्द ताड़ लेते हैं और उससे पूरा लाभ उठाते हैं। जो राजा शत्रुकी उपेक्षा करके अपनी रक्षाका प्रबन्ध नहीं करता, उसे तरह-तरहके अनर्थोंका सामना करना पड़ता है और वह अपने स्थानसे भी भ्रष्ट हो जाता है। आपकी प्रिया मन्दोदरी और छोटे भाई विभीषणने आपसे जो कुछ कहा था, हमारे हितकी बात तो वही थी; यों, आपकी जो इच्छा हो करें।'

---

१. कार्यको आरम्भ करनेका उपाय, पुरुष और द्रव्यरूप सम्पत्ति, देश-कालका विभाग, विपत्तिको टालनेका उपाय और कार्यकी सिद्धि—ये पाँच प्रकारके योग हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कुम्भकर्णकी बातें सुनकर रावणने भौंहें चढ़ा लीं और उससे कुपित होकर कहा—'तुम गुरुके समान मुझे क्या उपदेश देते हो, इस तरह व्यर्थ झक-झक करनेसे क्या लाभ है। अब तो जो करना जरूरी है वही करो। मैंने भ्रमसे, मोहवश अथवा अपने बल-वीर्यके भरोसे तुमलोगोंकी बात नहीं मानी; परन्तु अब जिसकी चर्चा व्यर्थ है, उस बातको दुहरानेसे क्या लाभ है। इस समय तो उसी बातका विचार करो, जो हमें करनी चाहिये। यदि तुम्हारा मुझमें स्नेह है, अपने अंदर यथेष्ट पराक्रम समझते हो और मेरे इस कामको अपना भी प्रधान कर्त्तव्य मानते हो, तो अपने पुरुषार्थसे मेरे इस अपमान-जनित दुःखको शान्त करो।' तब भाईको अत्यन्त व्यथित जानकर कुम्भकर्णने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा—'राजन्! सन्ताप करना व्यर्थ है; आप रोष त्यागकर शान्त हों और सावधान होकर मेरी बात सुनें। मेरे जीवित रहते आपको घबराना नहीं चाहिये। आप जिसके कारण सन्तप्त हैं, उसे तो मैं नष्ट कर दूँगा। मुझे सब अवस्थाओंमें आपके हितकी ही बात कहनी चाहिये। अतः मैंने बन्धुभाव और भ्रातृस्नेहके कारण ही ये बातें कही हैं। किन्तु अब तो इस आपत्कालमें मुझे जो करना चाहिये, वही किया जायगा। महाबाहो! आज आप रणभूमिमें मेरे हाथसे भाईसहित रामका वध होनेपर इस वानर-सेनाको यहाँसे भागती देखेंगे। आज मैं संग्राम-भूमिसे रामका सिर लाऊँगा। उसे देखकर आप प्रसन्न हों। लङ्कामें जिन राक्षसोंके सगे-सम्बन्धी मारे गये हैं, वे भी आज रामका मरण देखकर छाती ठंडी करें। अपने बन्धुओंके वधसे जो अत्यन्त शोकाकुल हो रहे हैं, आज युद्धमें शत्रुका नाश करके मैं उनके आँसू पोछूँगा। युद्धके लिये मुझे किसी दूसरेकी सहायता अपेक्षित नहीं है। आपके शत्रुओंको—वे इन्द्र, यम, अग्नि अथवा वायु ही क्यों न हों—मैं अकेला ही निर्मूल कर दूँगा। राजन्! मेरे रहते आप चिन्तासे क्यों सन्तप्त होते हैं? लीजिये, आपके शत्रुका संहार करनेके लिये मैं जानेको तैयार हूँ। रामचन्द्रके कारण आपको जो भय हो रहा है, उसे त्याग दीजिये; मैं उन्हें युद्धमें मार डालूँगा। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, राक्षसोंको मारने और लङ्का जलानेवाले हनुमान् तथा अन्य सब वानरोंको मैं युद्ध-भूमिमें खा जाऊँगा। मैं यमको शान्त कर दूँगा, अग्निको खा जाऊँगा, नक्षत्रोंसहित सूर्यको गिरा दूँगा, इन्द्रको मार डालूँगा, समुद्रको पी जाऊँगा, पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँगा और पृथ्वीको फोड़ डालूँगा। मेरे आहारके लिये तो ये तीनों लोक भी पर्याप्त नहीं हैं। अतः लक्ष्मणसहित रामको मारकर मैं सब वानर-सेनापतियोंको खा जाऊँगा। महाराज! आप मौज कीजिये और आनन्दसे मद्यपान कीजिये। आज मेरे हाथसे रामके मारे जानेपर सीता सदाके लिये आपके अधीन हो जायगी।'

इसी समय महोदरने रावणसे कहा—"महाराज! सीताको वशमें करनेका मुझे एक उपाय सूझा है; आप उसे सुनें और अच्छा लगे तो वैसा ही करें। आप यह घोषित करा दें कि महोदर, द्विजिह्व, संह्रादी, कुम्भकर्ण और वितर्दन—पाँच राक्षस रामका वध करनेके लिये जा रहे हैं। हमलोग जाकर बड़े प्रयत्नसे युद्ध करेंगे। यदि हमने शत्रुको जीत लिया, तब तो आपको कोई उपाय करना नहीं होगा; और यदि वह जीता बच गया तो हम युद्ध-स्थलसे खूनमें लथपथ होकर यह कहते हुए लौटेंगे कि हमने राम और लक्ष्मणको खा लिया है। उस समय हम आपके चरण पकड़कर यह भी कहेंगे कि 'हमने शत्रुको मारा है, इसलिये आप हमारी इच्छा पूरी कीजिये।' तब आप हाथी घुमाकर सारे नगरमें यह घोषणा करा दें कि भाई और सेनाके साथ राम मारा गया। यही नहीं, आप प्रसन्नता दिखाते हुए अपने सेवकोंको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ और तरह-तरहकी भोग-सामग्रियाँ दें तथा प्रधान-प्रधान वीरोंको वस्त्रादि देकर स्वयं भी खुशी मनाते हुए मद्यपान करें। इस प्रकार जब लङ्कामें यह संवाद अच्छी तरह फैल जाय कि राक्षसोंने रामको उसके सखाओंसहित खा लिया है, तब आप सीताको समझानेके लिये एकान्तमें जायँ और उसे धन-धान्य, तरह-तरहके भोग और रत्नादिका लोभ दिखायें। इस उपायसे और शोकाकुल होनेके कारण सीता इच्छा न होनेपर भी आपके अधीन हो जायगी; क्योंकि अपने पतिकी मृत्युका समाचार सुन लेनेपर फिर उसके लिये कोई अन्य मार्ग नहीं रह जायगा।"

महोदरके ऐसा कहनेपर कुम्भकर्ण उसे डाँटकर अपने भाई रावणसे बोला—'राजन्! मैं दुरात्मा रामका वध करके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तुम्हारे दारुण भयको दूर कर दूँगा। तुम वैरकी चिन्ता छोड़कर सुखी हो जाओ। अपने ही मुँहसे अपनी तारीफ करना वीर पुरुषोंको सहन नहीं होता। वे बिना कहे ही दुष्कर कर्म कर दिखाते हैं।' [ इसके बाद वह महोदरकी ओर देखकर बोला—] 'महोदर! तुमलोग लड़नेमें कायर और राजाके सामने सदा चिकनी-चुपड़ी बातें बनानेमें होशियार हो। तुम्हारे-जैसे चापलूसोंने ही राजाकी हाँ-में-हाँ मिलाकर सारा काम चौपट किया है। अब लङ्कामें केवल राजा ही बच गये हैं। खजाना खाली हो गया और सेना मार डाली गयी। इस राजाको पाकर तुमलोगोंने मित्रके रूपमें शत्रुका काम किया है। अब मैं शत्रुको जीतनेके लिये उद्यत होकर युद्ध-भूमिमें जा रहा हूँ। तुमलोगोंने अपनी खोटी नीतिके कारण जो विषम परिस्थिति उत्पन्न कर दी है, उसको आज महासंग्राममें दूर करूँगा।'

कुम्भकर्ण बुद्धिमान् था, उसके वीरोचित वचन सुनकर राक्षसराज रावणने हँसते हुए कहा—'तात कुम्भकर्ण! महोदर निश्चय ही रामचन्द्रसे डर गया है, इसलिये यह युद्धको पसंद नहीं करता। मेरे आत्मीय व्यक्तियोंमें तुम्हारे समान स्नेही और बलवान् दूसरा कोई नहीं है। भाई! राक्षसों-के लिये यह बड़े संकटका समय उपस्थित है; अतः शत्रुका नाश करनेके लिये तुम्हें सोतेसे जगाया गया है। तुम पाशधारी यमराजकी भाँति शूल लेकर जाओ और सूर्यके समान तेजस्वी उन दोनों राजकुमारों तथा वानरोंको मारकर खा जाओ। वानर तुम्हारा रूप देखते ही भाग जायँगे तथा राम-लक्ष्मणके हृदय भी विदीर्ण हो जायँगे।'

## कुम्भकर्णकी रण-यात्रा और हतोत्साह वानरोंको अङ्गदका प्रोत्साहन देना

रावणके इस प्रकार कहनेपर कुम्भकर्ण बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बड़े वेगसे एक तीखा शूल हाथमें लिया, जो बड़ा ही चमकीला और लोहेका बना हुआ था। उसके सामने इन्द्रका वज्र भी मात था। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष और नाग—सभी उसके शिकार हो चुके थे। उससे आगकी लपटें निकल रही थीं। ऐसा महान् शूल हाथमें लेकर महातेजस्वी कुम्भकर्ण रावणसे बोला—'इस बड़ी भारी सेनाको यहीं रहने दो। मैं अकेला ही युद्धके लिये जाऊँगा। आज भूखा हूँ। क्रोधमें भरकर वानरोंको खा जाऊँगा।' उसकी बात सुनकर रावण बोला—'तुम शूल तथा मुगदरोंसे लैस हुई सेना साथ लेकर जाओ; क्योंकि वानर बड़े वीर और उद्योगी हैं; वे तुम्हें अकेले या असावधान देख दाँतोंसे काटकर नष्ट कर डालेंगे। अतः सेनासे सुरक्षित होकर यात्रा करो। उस दशामें तुम्हें कोई परास्त नहीं कर सकता। जाओ, हमारे शत्रु-पक्षका संहार करो।' यह कहकर रावण आसनसे उठा और एक सुन्दर हार, जिसके बीच-बीचमें मणियाँ पिरोयी हुई थीं, उसने कुम्भकर्णके गलेमें पहना दिया। तत्पश्चात् कुम्भकर्णने कवच धारण किया, जो सोनेका बना हुआ था। वह भारी-से-भारी चोट पड़नेपर भी कटनेवाला नहीं था। उसमें बिजलीके समान चमक थी। उसे पहनकर कुम्भकर्ण सन्ध्या-समयके मेघसे आच्छादित गिरिराजके समान शोभा पाने लगा। उसने सब अङ्गोंमें आभूषण धारण कर रखे थे। हाथमें शूल लेकर वह राक्षस जब आगे बढ़ा, उस समय त्रिलोकीको नापनेका उत्साह रखनेवाले भगवान् वामनके समान जान पड़ा। महाबली कुम्भकर्णने पहले अपने भाई-का आलिङ्गन और परिक्रमा करके उसे प्रणाम किया। उसके बाद वह रण-भूमिकी ओर चला। उस समय रावणने उत्तम आशीर्वाद देकर श्रेष्ठ आयुधोंसे सुसज्जित सेनाओंके साथ उसे युद्धके लिये विदा किया। यात्राके समय उसने शङ्ख और दुन्दुभी आदि बाजे भी बजवाये। घोड़े, हाथी, रथ, साँप, ऊँट, गधे, सिंह, मृग और पक्षियोंपर सवार हो-होकर अनेकों रथी वीर कुम्भकर्णके साथ गये। वे सब-के-सब कई व्याम[1] ऊँचे और कज्जल-राशिके समान काले थे। उनके

१. लंबाईका एक नाप। दोनों भुजाओंको दोनों ओर फैलानेपर एक हाथकी उँगलियोंके सिरेसे दूसरे हाथकी उँगलियोंके सिरेतक जितनी दूरी होती है, उसे व्याम कहते हैं।


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हाथोंमें शूल, तलवार, तीखी धारवाले फरसे, भिन्दिपाल, परिघ, गदा, मूसल, बड़े-बड़े ताड़के वृक्षोंके तने तथा गुलेल शोभा पा रहे थे। तदनन्तर कुम्भकर्णने बड़ा उग्र रूप धारण किया, जिसे देखनेपर भय मालूम होता था। वह छः सौ धनुषके बराबर ऊँचा और सौ धनुषके बराबर चौड़ा हो गया। उसकी आँखें गाड़ीके पहियेकी तरह जान पड़ती थीं। वह महान् पर्वतके समान प्रतीत होने लगा और हँसकर राक्षसोंसे बोला—'जैसे आग पतंगोंको जलाती है, उसी प्रकार मैं भी क्रोधमें भरकर आज प्रधान-प्रधान वानरोंके एक-एक झुंडको भस्म कर डालूँगा। लङ्कापुरीपर घेरा डालनेके प्रधान कारण हैं—लक्ष्मणसहित रामचन्द्र; अतः सबसे पहले मैं उन्हींको युद्धमें मारूँगा।' कुम्भकर्णके इस प्रकार कहनेपर राक्षसोंने अत्यन्त भयंकर गर्जना की, जो समुद्रको भी कँपा देनेवाली थी। उस राक्षसके रण-भूमिकी ओर पैर बढ़ाते ही चारों ओर घोर अपशकुन होने लगे। उल्कापात हुआ, बिजली गिरी, गधेके समान रंगवाले बादल दिखायी देने लगे और समुद्र तथा वनोंसहित समूची पृथ्वी काँप उठी। इस प्रकार रोंगटे खड़े कर देने-वाले अनेकों बड़े-बड़े उत्पात हुए; किन्तु उन्हें कुछ भी न समझकर कुम्भकर्ण कालकी प्रेरणासे युद्धके लिये निकल पड़ा।

वह महान् बली और पर्वत-शिखरके समान ऊँचा था। चहारदीवारी लाँघकर बड़ी तेजीके साथ नगरके बाहर निकला और पर्वतोंको कँपाता तथा समुद्रको गुँजाता हुआ उच्च स्वरसे गम्भीर नाद करने लगा। उसकी आवाज बिजलीकी कड़कको भी मात कर रही थी। उसके नेत्र बड़े भयंकर दिखायी देते थे। इन्द्र, वरुण अथवा यमराजके द्वारा भी उसका वध होना असम्भव था। उसे आते देख सभी वानर भाग खड़े हुए। यह देखकर राजकुमार अङ्गदने नल, नील, गवाक्ष और महाबली कुमुद-को सम्बोधित करके कहा—'वानर-वीरो! अपने उत्तम कुल और पराक्रमको भूलकर साधारण बंदरोंकी भाँति भयभीत हो कहाँ भागे जा रहे हो? लौट आओ, क्यों प्राणोंका मोह कर रहे हो? यह राक्षस हमलोगोंके सामने युद्धमें ठहर नहीं सकेगा।' अङ्गदके ऐसा कहनेपर वानरोंने बड़ी कठिनाईसे धैर्य धारण किया और हाथोंमें वृक्ष लेकर वे रणभूमिकी ओर चले। लौटनेपर सभी वानर मतवाले

हाथियोंकी भाँति अत्यन्त क्रोधमें भर गये और कुम्भकर्णके ऊपर ऊँचे-ऊँचे शिखरों, शिलाओं तथा फूले हुए वृक्षों-से प्रहार करने लगे। उनकी मार खाकर भी कुम्भकर्ण विचलित नहीं हुआ। उसके शरीरपर फेंके हुए पत्थर और शिलाएँ फूटकर चूर-चूर हो गयीं और वृक्षोंके टुकड़े-टुकड़े होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। तत्पश्चात् वह भी क्रोधमें भरकर अत्यन्त तेजस्वी वानरोंकी सेनाका विध्वंस करने लगा। कितने ही वानर खूनसे लथ-पथ होकर भूमिपर सो गये। जिन्हें उठाकर उसने ऊपर फेंक दिया था, वे लाल फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंकी भाँति जमीनपर गिर पड़े। कितने ही समुद्रमें जा पड़े और कई आकाशमें ही उड़ते रह गये। भयके मारे वानरोंका मुँह सूख गया। वे नीची जगह देखकर छिपने लगे। भालुओंमेंसे कुछ वृक्षोंपर और कुछ पर्वतोंपर चढ़ गये। कोई गिरे, कोई एक जगह-पर न ठहर सकनेके कारण भागे और कोई मुर्देकी भाँति पड़ गये। उन वानरोंको तितर-बितर होते देख अङ्गदने कहा—'वानरो! लौट आओ, हम सब मिलकर युद्ध करेंगे। यदि भाग भी जाओगे तो सारी पृथ्वी घूम आनेपर भी मैं ऐसा कोई स्थान नहीं देखता, जहाँ तुम्हारे प्राण बच सकें। अतः लौट आओ, क्यों जान बचानेकी फिक्रमें लगे हो। तुम्हारे वेग और पुरुषार्थको कोई रोकनेवाला नहीं है। यदि तुम हथियार डालकर भाग जाओगे तो तुम्हारी स्त्रियाँ ही तुमलोगोंका उपहास करेंगी और वह उपहास तुम्हें जीते-जी मृत्युके समान दुःखदायी होगा। तुम जन-समुदायमें बैठकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection and eGangotri

जो डींग मारा करते थे कि हम बड़े प्रचण्ड वीर हैं और स्वामीके हितैषी हैं, वे सब बातें आज कहाँ चली गयीं ? युद्धसे डरनेवाले कायरोंको अपनी निन्दा सुननी पड़ती है। जो साधु-पुरुषोंसे धिक्कृत होकर भी जीवन धारण करता है, वह धिक्कार पानेके योग्य है; इसलिये तुमलोग भयका परित्याग करो और सत्पुरुषोंके मार्गका आश्रय लो। यदि हमलोग मारे गये तो परम दुर्लभ ब्रह्मलोक प्राप्त करेंगे, अथवा यदि शत्रुको ही संग्राममें मार सके तो हमें उत्तम कीर्ति मिलेगी। रघुनाथजीके सामने जानेपर कुम्भकर्ण जीवित नहीं लौट सकता, ठीक उसी तरह जैसे प्रज्वलित अग्निके पास पहुँचकर पतंग भस्म हुए बिना नहीं रह सकता। हमलोग गिने-चुने वीर होकर भी यदि भागकर अपने प्राण बचायेंगे—अधिक संख्यामें होकर भी एकका सामना नहीं कर सकेंगे, तो हमारा यश मिट्टीमें मिल जायगा।'

## कुम्भकर्णका भयंकर युद्ध और श्रीरामके हाथसे उसका वध

अङ्गदके वचन सुनकर वे विशालकाय वानर अपनी बुद्धिको स्थिर करके युद्धकी इच्छासे लौट पड़े। महाबली अङ्गदने उनके बल-वीर्यका वर्णन करके उन्हें सुदृढ़ एवं साहसी बना दिया था। अब वे अपने पराक्रमका सहारा ले मरनेका निश्चय करके प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़े और जीवनका मोह छोड़कर भयंकर युद्धमें प्रवृत्त हो गये। उन्होंने वृक्ष तथा बड़े-बड़े पर्वत-शिखर लेकर तुरंत ही कुम्भकर्णपर धावा किया; किन्तु उसने गदा उठाकर अपने समस्त शत्रुओंको चारों ओर गिरा दिया। कुम्भकर्णकी मार खाकर आठ हजार, सात सौ वानर धराशायी हो गये। वह सोलह, आठ, दस, बीस और तीस-तीस वानरोंको अपनी भुजाओंसे समेट लेता और उन्हें भक्षण करता हुआ सब ओर दौड़ता फिरता था। उस समय वानर बड़ी कठिनाईसे धैर्य धारण कर इधर-उधरसे एकत्रित हुए और वृक्ष तथा पर्वत-शिखर हाथमें लिये संग्रामभूमिमें डटे रहे। वानरश्रेष्ठ द्विविदने एक पर्वत उखाड़कर कुम्भकर्णके ऊपर फेंका, किन्तु वह उस विशालकाय राक्षसतक न पहुँचकर उसकी सेनाके ऊपर जा पड़ा। उस पर्वतसे दबकर कितने ही श्रेष्ठ हाथी, रथ, घोड़े और राक्षस कुचल गये। तब राक्षस-सेनाके रथियोंने प्रलय-कालीन यमराजके समान भयंकर बाणोंसे गरजते हुए वानरोंका सिर उड़ाना आरम्भ किया। महात्मा वानर भी बड़े-बड़े पेड़ उखाड़कर शत्रुसेनाके रथ, घोड़े, हाथी, ऊँट तथा राक्षसोंका संहार करने लगे। हनुमान्‌जी आकाशमें पहुँचकर कुम्भकर्णके मस्तकपर पर्वत-शिखरों, शिलाओं और नाना प्रकारके वृक्षोंकी वर्षा करने लगे; परन्तु महाबली कुम्भकर्णने अपने शूलसे उन पर्वत-शिखरोंको फोड़ डाला और वृक्षोंको भी काट गिराया। इसके बाद उसने अपने तीक्ष्ण एवं भयंकर शूलको सँभालकर वानर-सेनापर आक्रमण किया। यह देख हनुमान्‌जी एक पर्वत-शिखर हाथमें लेकर उसका सामना करनेके लिये खड़े हो गये। उन्होंने क्रोधमें भरकर पहाड़के समान भयंकर आकारवाले उस राक्षसपर बड़े वेगसे प्रहार किया। उनकी मारसे कुम्भकर्ण व्याकुल हो उठा, उसके शरीरकी चर्बी दिखायी देने लगी और वह खूनसे नहा गया। तत्पश्चात् उसने भी बिजलीके समान चमकते हुए शूलको घुमाकर हनुमान्‌जीकी दोनों भुजाओंके बीच ( छाती ) में मारा। शूलकी चोटसे घायल होकर हनुमान्‌जी विकल हो गये, उनके मुँहसे रक्त निकल आया; तथापि वे भयंकर गर्जना करते रहे। उन्हें पीड़ित देख राक्षसोंकी खुशीका ठिकाना न रहा, वे जोर-जोरसे कोलाहल करने लगे। इधर कुम्भकर्णके भयसे व्याकुल होकर वानर लोग युद्धभूमि छोड़कर भागने लगे। यह देख महाबली नीलने सैनिकोंको धीरज बँधाया और कुम्भकर्णके ऊपर एक पर्वतका शिखर चलाया। उस शिखरको अपने ऊपर आते देख कुम्भकर्णने उसपर मुक्केसे आघात किया। उसकी चोटसे फूटकर उस पर्वत-शिखरके टुकड़े-टुकड़े हो गये और वह आगकी चिन-गारियाँ तथा लपटें निकालता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। इसके बाद ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष और गन्धमादन—इन पाँच प्रधान वानरोंने कुम्भकर्णपर धावा किया। वे चारों ओरसे घेरकर उस महाकाय राक्षसको पर्वतों, वृक्षों, थप्पड़ों, लातों और मुक्कोंसे मारने लगे। यद्यपि ये लोग बड़े जोरसे प्रहार करते थे, तथापि उसे ऐसा जान पड़ता था मानो कोई धीरेसे छू रहा हो। अतः इनकी मारसे उसे तनिक भी पीड़ा नहीं हुई।

कुम्भकर्णने महान् वेगशाली ऋषभको दोनों भुजाओंसे पकड़कर बड़े जोरसे दबाया। इससे पीड़ित होकर उनके मुँहसे खून निकलने लगा और वे व्याकुल होकर गिर पड़े।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब उसने शरभको घूँसेसे, नीलको घुटनेसे और गवाक्षको थप्पड़से मारा। उसके प्रहारसे व्यथित हुए वानर रक्त वमन करते हुए मूर्छित हो गये और कटे पलासकी भाँति जमीनपर गिर पड़े। उन प्रधान वानरोंके धराशायी हो जानेपर हजारों वानर कुम्भकर्णपर टूट पड़े और उसके पर्वताकार शरीरपर चढ़कर उसे नखों, दाँतों, घूँसों तथा हाथोंसे पीड़ित करने लगे। यह देख वह महाबली राक्षस क्रोधमें भर गया और जैसे गरुड़ साँपोंको खाता है, उसी प्रकार अपने दोनों हाथोंसे वानरोंको पकड़-पकड़कर भक्षण करने लगा। वह अपने पातालके समान मुखमें वानरोंको झोंकता जाता था और वे उसके कानों और नाकोंकी राहसे बाहर निकलते जाते थे। इस प्रकार भक्षण करते हुए उस राक्षसने बहुतेरे वानरोंको अङ्ग-भङ्ग कर डाला। शूल हाथमें लेकर संग्रामभूमिमें विचरता हुआ महाबली कुम्भकर्ण वज्रधारी इन्द्र और पाशधारी वरुणके समान प्रतीत होता था। उसकी मार खाकर समस्त वानर भयसे उद्विग्न हो उठे और विकृत स्वरमें चीत्कार करने लगे। उनका दिल टूट गया और वे व्यथित होकर श्रीरामचन्द्रजी-की शरणमें गये। वानरोंको भागते देख वालिकुमार अङ्गद बड़े वेगसे कुम्भकर्णकी ओर दौड़े। उन्होंने अपने हाथमें बहुत बड़ा पर्वत-शिखर ले रखा था तथा वे बारंबार गर्जना करते हुए कुम्भकर्णके अनुयायी राक्षसोंको भयभीत कर रहे थे। उन्होंने कुम्भकर्णके मस्तकपर वह पर्वत-शिखर दे मारा। उसके आघातसे उस राक्षसका सिर फूट गया और वह अत्यन्त क्रोधसे जलने लगा। फिर तो उसने बड़ी भयंकर गर्जना करके अङ्गदपर शूलका वार किया; किन्तु बलवान् अङ्गदने फुर्तीसे हटकर उसके प्रहारसे अपनेको बचा लिया और बड़े वेगसे उछलकर उसकी छातीमें थप्पड़ मारा। अङ्गदके आघातसे वह पर्वताकार राक्षस मूर्छित हो गया। थोड़ी ही देरमें जब होश हुआ, तब उसने भी मुक्का बाँध-कर अङ्गदपर चोट की, जिससे वे होश-हवास खोकर धरती-पर जा पड़े।

इसके बाद कुम्भकर्ण वही शूल लेकर सुग्रीवकी ओर दौड़ा। उसे अपनी ओर आते देख महाबली सुग्रीवने भी पर्वतका शिखर उठा लिया और बड़े वेगसे उसके ऊपर धावा किया। यह देख कुम्भकर्ण अपना सारा शरीर फैलाकर वानरराजके सामने खड़ा हो गया। तब सुग्रीवने कहा—'राक्षस! वानर-सेनाको छोड़ दो। इन साधारण बंदरोंसे लड़कर क्या करोगे। [ यदि शक्ति हो तो ] मेरे इस पर्वतके प्रहारको एक ही बार सह लो।' यह कहकर उन्होंने कुम्भकर्णकी छातीमें उस वज्र-तुल्य पर्वतसे प्रहार किया, परन्तु उसके विशाल वक्षःस्थलसे टकराकर वह पर्वत-शिखर चूर-चूर हो गया। तब उस राक्षसने बिजलीके समान चमकते हुए शूलको घुमाकर वानर-राज सुग्रीवका वध करनेके लिये फेंका। इतनेमें ही वायु-पुत्र हनुमान्‌जीने सहसा उछलकर उस शूलको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और वेगपूर्वक उसे तोड़ डाला। वह महान् शूल हजार भार[1] लोहेका बना हुआ था, जिसे हनुमान्‌जीने बड़े हर्षके साथ अपने घुटनोंमें लगाकर तोड़ दिया। यह देखकर वह राक्षस भयसे थर्रा उठा। उसके मुखपर उदासी छा गयी और वानर अत्यन्त प्रसन्न होकर सिंहनाद करने लगे। उन सबने हनुमान्‌जीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अपने शूलको इस प्रकार खण्डित देख राक्षसराज कुम्भकर्णको बड़ा क्रोध हुआ और उसने लङ्काके निकटवर्ती मलय-पर्वतका शिखर उठाकर सुग्रीवपर दे मारा। उससे आहत होकर वानरराज भूमिपर गिर पड़े और मूर्छित हो गये। उन्हें बेहोश होकर भूमिपर पड़े देख निशाचरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई तथा कुम्भकर्ण उनको उठाकर ले चला। उस समय वानरोंकी सेनाको इधर-उधर भागते देख हनुमान्‌जी उसे रोकनेका प्रयत्न करने लगे। उधर वह राक्षस वानरराजको लिये हुए लङ्कामें जा पहुँचा। उसकी भुजाओंमें दबे हुए सुग्रीवको जब किसी तरह होश हुआ, तब उन्होंने अपने हाथके तीखे नखोंसे राक्षसके दोनों कान और दाँतोंसे उसकी नाक काट ली। साथ ही अपने पैरोंके नखोंसे उसकी दोनों पसलियाँ विदीर्ण कर डालीं। नाक-कान कटने और शरीर विदीर्ण होनेसे कुम्भकर्ण लहू-लुहान हो गया और क्रोधसे आग-बबूला हो सुग्रीवको पृथ्वीपर पटककर रगड़ने लगा। इसी बीचमें मौका पाकर वे गेंदकी भाँति सहसा आकाशमें उछले और पुनः श्रीरामचन्द्रजीसे जा मिले। महाबली कुम्भकर्ण नाक-कानसे हीन एवं खूनसे लथपथ होकर देखनेमें बड़ा भयंकर हो गया और मुँहसे रक्त वमन करने लगा।

सुग्रीवके निकल भागनेपर वह राक्षस पुनः युद्धके लिये दौड़ा। उस समय यह सोचकर कि 'मेरे पास कोई हथियार नहीं है' उसने एक बड़ा भारी मुगदर ले लिया था। उसे भूख सता रही थी, अतः वानर-सेनामें प्रवेश करके अज्ञानवश उसने वानर-भालुओंके साथ-ही-साथ राक्षसों और पिशाचोंको भी

१. एक हाथी जितना बोझ ढो सके, उतने वजनको एक भार कहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाना आरम्भ कर दिया। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो प्रलय-कालमें साक्षात् मृत्यु-देवता प्रकट होकर प्राणियोंका संहार कर रहा हो। उस समय परम पराक्रमी सुमित्रा-कुमार लक्ष्मण क्रोधमें भरकर उस राक्षससे युद्ध करने लगे। उन्होंने कुम्भकर्णको सात बाण मारे, जो उसके शरीरमें धँस गये। तब उस भयंकर निशाचरने मेघके समान गर्जना करके लक्ष्मण-से तिरस्कारपूर्वक कहा—'सुमित्राकुमार! मैं संग्राम-भूमिमें यमराजको भी जीत सकता हूँ, अतः मेरे साथ निर्भय होकर युद्ध करनेके कारण तुमने अपनी अद्भुत वीरताका परिचय दिया; क्योंकि ऐरावतपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे हुए शक्तिशाली इन्द्र भी कभी युद्धमें मेरे सामने ठहर नहीं सके हैं। आज तुमने बालक होकर भी अपने पराक्रमसे मुझे सन्तुष्ट कर दिया। इस समय मैं केवल रामका ही वध करना चाहता हूँ; क्योंकि उनके मारे जानेपर यह सम्पूर्ण सेना मरी हुई समझी जायगी।' राक्षसकी इस बातपर लक्ष्मण हँस पड़े और प्रशंसा-मिश्रित कठोर वचन बोले—'वीर कुम्भकर्ण! तुम महान् बल पाकर इन्द्रादि देवताओंके लिये भी अजेय हो गये हो—यह बात बिल्कुल ठीक है; क्योंकि आज तुम्हारा पराक्रम मैंने अपनी आँखों देख लिया। ये हैं दशरथ-नन्दन भगवान् श्रीराम, जो पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हैं।'

यह सुनकर उस निशाचरने लक्ष्मणकी बातोंका कोई आदर नहीं किया और उन्हें वहीं छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीपर धावा किया। उस समय उसके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी काँप उठती थी। कुम्भकर्णको आते देख दशरथनन्दन श्रीरामने भयंकर अस्त्रका प्रयोग किया और उसकी छातीमें अनेकों तीखे बाण मारे। उनके सायकोंसे आहत होकर वह सहसा उनकी ओर टूट पड़ा। उस समय क्रोधमें भरे हुए उस राक्षसके मुखसे अङ्गार-मिश्रित आगकी लपटें निकल रही थीं। भगवान्‌के चलाये हुए बाण उसके हृदयमें धँस गये थे; अतः व्याकुलताके कारण उसके हाथकी गदा छूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ी थी और शरीरसे झरनोंकी तरह रक्तकी धारा बह रही थी। वह खूनसे लथपथ और अपार क्रोधसे व्याकुल होकर वानरों, भालुओं और राक्षसोंको खाता हुआ चारों ओर दौड़ने लगा। इसी बीचमें महाबली यमराजके समान दिखायी देनेवाले उस भयंकर निशाचरने एक पर्वतका शिखर उठाया और उसे श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्य करके चला दिया; परन्तु उन्होंने सात बाण मारकर उस पर्वत-शिखरको बीचमें ही तोड़-फोड़ डाला, अपने पासतक नहीं आने दिया। यह देख वह राक्षस श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दौड़ा। उसकी भुजाएँ नागराज वासुकिके समान विशाल और मोटी थीं और शरीर पर्वतके समान ऊँचा था। उसे आते देख रघुनाथजीने कहा—'राक्षसराज! आओ, विषाद न करो। मैं धनुष लेकर खड़ा हूँ। मुझे राक्षस-वंशका नाश करनेवाला समझो। अब तुम दो ही घड़ीमें अपने होश-हवास खो बैठोगे।'

ये ही राम हैं—यह जानकर उस राक्षसने भयंकर अट्टहास किया और रघुनाथजीसे कहा—'राम! मुझे विराध, कबन्ध और खर न समझना। मैं वाली और मारीच भी नहीं हूँ। यह कुम्भकर्ण तुमसे लड़ने आया है। लोहेके बने हुए मेरे इस विशाल एवं भयंकर मुद्गरपर दृष्टि डालो। मैंने पूर्वकालमें इसीसे सम्पूर्ण देवताओं और दानवोंपर विजय पायी है। तुम इक्ष्वाकु-वंशके वीर पुरुष हो। मेरे शरीरपर अपना पराक्रम दिखाओ। तुम्हारे बल और पुरुषार्थको देख लेनेके बाद ही तुम्हें खाऊँगा।' कुम्भकर्णके वचन सुनकर भगवान् श्रीरामने उसके ऊपर अनेकों बाणोंका प्रहार किया। वे सभी बाण वज्रके समान तीव्र वेगवाले थे; किन्तु उनसे आहत होनेपर भी वह राक्षस क्षुब्ध अथवा पीड़ित नहीं हुआ। इन्द्रशत्रु कुम्भकर्ण जलकी धाराके समान श्रीरामकी बाण-वर्षाको अपने शरीरसे पीने लगा और भयंकर वेगशाली मुद्गरको चारों ओर घुमा-घुमाकर उनके बाणोंको नष्ट करने लगा। तदनन्तर उसने वानरोंकी सेनाको भगाना आरम्भ किया। यह देख भगवान् श्रीरामने वायव्य नामक दूसरे अस्त्रका सन्धान करके उसे कुम्भकर्णपर चलाया और उसके द्वारा उस निशाचरकी मुद्गरसहित दाहिनी बाँह काट गिरायी। रघुनाथजीके बाणसे कटी हुई वह भुजा, जो पर्वत-शिखरको भी मात कर रही थी, मुद्गरके साथ ही वानरोंकी सेनामें गिरी। उसके नीचे दबकर कितने ही वानर सैनिक नष्ट हो गये। जो अङ्ग-भङ्ग होने या मरनेसे बचे, वे खिन्नचित्त हो किनारे जाकर खड़े हो गये। उनके शरीरमें बड़ी पीड़ा हो रही थी और वे चुपचाप श्रीराम तथा कुम्भकर्णके घोर संग्रामको देखने लगे। बाँह कट जानेसे कुम्भकर्ण शिखरहीन पर्वतकी भाँति प्रतीत होने लगा। उसने एक ही हाथसे एक ताड़का वृक्ष उखाड़ लिया और उसे लेकर महाराज श्रीरामपर आक्रमण किया। तब उन्होंने एक सुवर्ण-भूषित बाण निकालकर उसे ऐन्द्रास्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उसके द्वारा सर्पके समान उठी हुई राक्षसकी दूसरी बाँहको भी वृक्षसहित काट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


गिराया। वह कटी हुई भुजा पर्वतके समान जान पड़ती थी। उसने भूमिपर गिरते-गिरते अनेकों वृक्षों, पर्वत-शिखरों, शिलाओं, वानरों और राक्षसोंको भी चूर्ण कर डाला। दोनों भुजाओंके कट जानेपर भी वह निशाचर गर्जना करता हुआ सहसा श्रीरामपर टूट पड़ा; यह देख उन्होंने दो अर्धचन्द्राकार बाण लेकर उनके द्वारा राक्षसके दोनों पैर भी उड़ा दिये। वे दोनों पैर दिशा-विदिशा, पर्वतकी कन्दरा, महासागर, लङ्कापुरी और वानरों तथा राक्षसोंकी सेनाओंको भी शब्दायमान करते हुए जमीनपर जा पड़े। दोनों बाँहों और पैरोंके कट जानेपर उसने बड़वानलके समान अपने विकराल मुखको फैलाया और जैसे राहु आकाशमें चन्द्रमाको ग्रस लेता है, उसी प्रकार वह श्रीरामको ग्रसनेके लिये भयंकर गर्जना करता हुआ सहसा उनके ऊपर टूट पड़ा। तब श्रीरामचन्द्रजीने अपने तीखे बाणोंसे उसका मुँह भर दिया, इससे वह बोलनेमें असमर्थ हो गया। साथ ही उसे मूर्च्छा भी आ गयी। इसके बाद भगवान् श्रीरामने ब्रह्मदण्ड तथा यमराजके समान भयंकर बाण, जो सूर्य तथा अग्निकी तरह देदीप्यमान हो रहा था, हाथमें लिया और उसे उस निशाचरको लक्ष्य करके छोड़ दिया। भगवान्‌की भुजाओंसे प्रेरित होकर वह बाण अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ इन्द्रके वज्रकी भाँति भयंकर वेगसे चला। उसके लगते ही राक्षसराज कुम्भकर्णका मस्तक, जो पर्वत-शिखरके समान जान पड़ता था, कटकर धड़से अलग हो गया और लङ्कापुरीमें जाकर गिरा। उसके धक्केसे कितने ही मकान गिर पड़े, नगर-द्वार और ऊँची चहारदीवारी भी ढह गयी। इसी प्रकार उस राक्षसका विशाल धड़ भी बाणके वेगसे समुद्रमें जा पड़ा तथा बड़े-बड़े ग्राहों, मत्स्यों तथा साँपोंको पीसता हुआ पृथ्वीमें समा गया। महाबली कुम्भकर्ण ब्राह्मणों तथा देवताओंका शत्रु था। संग्राममें उसके मारे जानेपर पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत हिल गये और सम्पूर्ण देवता हर्षमें भरकर तुमुल नाद करने लगे। भगवान् श्रीरामका पराक्रम देख देवर्षि, महर्षि, नाग, देवता, भूतगण, गरुड, गुह्यक, यक्ष तथा गन्धर्वगण—सभी आकाशमें खड़े होकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे। कुम्भकर्णके वधसे राक्षसराज रावणके मनस्वी बन्धुओंको बड़ा दुःख हुआ; वे सभी रोने-कलपने लगे। अपने भयंकर शत्रुके मारे जानेसे वानर बहुत प्रसन्न हुए। उनका मुख विकसित कमलकी भाँति हर्षोल्लाससे खिल उठा तथा उन्होंने सफलमनोरथ भगवान् श्रीरामकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। जिसने बड़े-से-बड़े युद्धमें भी कभी हार नहीं खायी थी और जो देवताओंकी सेनाको भी कुचल डालनेवाला था, उस महान् राक्षस कुम्भकर्णको युद्धमें मारकर रघुनाथजीको वैसी ही प्रसन्नता हुई, जैसी वृत्रासुरका वध करके देवराज इन्द्रको हुई थी।

## रावणका शोक, उसके पुत्रोंका युद्धके लिये जाना और अङ्गदके हाथसे नरान्तकका वध

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा कुम्भकर्णको मारा गया देख निशाचरोंने अपने राजा रावणसे जाकर कहा—'राजन्! कालके समान कुम्भकर्ण वानर-सेनाको भगाकर तथा अनेकों वानरोंको भक्षण करके स्वयं भी कालके गालमें चले गये।' यह सुनकर रावण शोकसे सन्तप्त एवं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चाचाके निधनका समाचार पाकर देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय दुःखसे पीड़ित हो फूट-फूटकर रोने लगे। रामने भाई कुम्भकर्णको मार डाला—यह सुनकर [ रावणके सौतेले भाई ] महोदर और महापार्श्व शोकसे व्याकुल हो गये। राक्षसराज रावणको जब किसी तरह होश हुआ तब वह कुम्भकर्णके वधसे दुखी होकर विलाप करने लगा—'हा वीर! हा महाबली कुम्भकर्ण! मेरा तथा इन बन्धुओंका कण्टक दूर किये बिना तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये? तुम्हारे बिना इस समय मैं भी नहींके ही बराबर हूँ। आज मेरी दाहिनी बाँह कटकर गिर गयी, जिसका भरोसा करके मैं देवता और असुर—किसीसे भी नहीं डरता था। भाई! वज्रका प्रहार भी तुम्हें कष्ट नहीं पहुँचा सकता था, वही तुम आज रामके बाणोंसे पीड़ित होकर धरतीपर कैसे सो रहे हो? अब मुझे राज्यसे कोई प्रयोजन नहीं है, सीताको लेकर भी क्या करूँगा? कुम्भकर्णके बिना जीनेका मेरा मन नहीं है। मैंने महात्मा विभीषणकी कही हुई जिन उत्तम बातोंको अज्ञानवश स्वीकार नहीं किया था, वे आज मेरे ऊपर प्रत्यक्षरूपसे घटित हो रही हैं। विभीषण धर्मात्मा हैं, फिर भी मैंने उन्हें घरसे निकाल दिया। आज उसी कर्मका दुःखद परिणाम मुझे भोगना पड़ रहा है।'

दुरात्मा रावण शोकसे पीड़ित होकर जब इस प्रकार विलाप करने लगा तब त्रिशिराने कहा—"पिताजी! इसमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सन्देह नहीं कि हमारे मझले चाचा, जो इस समय युद्धमें मारे गये हैं, बड़े पराक्रमी थे; परन्तु आप जिस प्रकार रोते-कलपते हैं, उस तरह श्रेष्ठ पुरुष किसीके लिये विलाप नहीं करते। प्रभो! आप अकेले ही तीनों लोकोंसे लोहा लेनेमें समर्थ हैं। आपके पास ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति, कवच, धनुष तथा बाण हैं, साथ ही मेघ-गर्जनाके समान आवाज करनेवाला रथ भी है, जिसमें हजार गधे जोते जाते हैं। आपने देवताओं और दानवोंको एक ही शस्त्रसे अनेकों बार पछाड़ा है; अतः सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होनेपर आप रामको भी दण्ड दे सकते हैं। अथवा महाराज! आप यहीं रहें, मैं स्वयं युद्धके लिये जाऊँगा और आपके शत्रुओंको जड़से उखाड़ फेंकूँगा।' राक्षसराज रावण कालके अधीन हो रहा था, अतः त्रिशिराकी बात सुनकर उसने इतने सन्तोषका अनुभव किया मानो उसे नया जीवन मिला हो। भाईकी बातसे देवान्तक, नरान्तक तथा तेजस्वी अतिकाय भी युद्धके लिये उत्साहित हुए। वे सब-के-सब वीर आकाशमें विचरनेवाले और मायामें निपुण थे। युद्धमें जानेपर देवता, गन्धर्व, किन्नर तथा बड़े-बड़े नागोंसे भी कभी उनकी पराजय नहीं सुनी गयी थी। सबको अस्त्रविद्याका ज्ञान था, सभी युद्ध करनेमें कुशल थे और सबने तपस्याके द्वारा वरदान प्राप्त किया था।

रावणने अपने पुत्रोंको [युद्धके लिये उद्यत देख] छातीसे लगा लिया तथा उन्हें नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित करके उत्तम आशीर्वाद देते हुए संग्राम-भूमिमें भेजा। उस समय कालसे प्रेरित होकर त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर और महापार्श्व—ये छः राक्षस पुरीसे बाहर निकले। महोदर ऐरावतके कुलमें उत्पन्न हुए सुदर्शन नामक हाथीपर सवार हुआ। रावणकुमार त्रिशिरा एक उत्तम रथपर, जिसमें सभी प्रकारके अस्त्र-शस्त्र रखे गये थे, आरूढ़ हुआ। तेजस्वी अतिकाय भी रथपर ही बैठा, जिसमें धनुष, तरकस, प्रास, खड्ग और परिघ आदि आवश्यक सामग्री संगृहीत थी। नरान्तक उच्चैःश्रवाके समान वेगशाली सफेद रंगके घोड़ेपर सवार हुआ। उसके हाथमें उल्काके समान चमकता हुआ प्रास शोभा पा रहा था। देवान्तकने सुवर्ण-भूषित परिघ उठाया और महातेजस्वी महापार्श्व हाथमें गदा लेकर सुशोभित हुआ। वे सभी वीर लङ्कासे युद्धके लिये प्रस्थित हुए। उनके पीछे हाथी, घोड़े और रथोंपर सवार हो अच्छे-अच्छे अस्त्र-शस्त्र धारण किये राक्षसोंकी सेना भी चली। वे मरने अथवा शत्रुको परास्त करनेका निश्चय करके आगे बढ़े और गर्जने तथा सिंहनाद करने लगे। उनके कूदने और ताल ठोंकनेकी आवाजसे पृथ्वी काँपती-सी जान पड़ी। उन महाबली राक्षसोंने [ नगरकी सीमासे बाहर ] निकलकर देखा वानरोंकी सेना पर्वत-शिखर और बड़े-बड़े वृक्ष उठाये युद्धके लिये तैयार खड़ी है। वानरोंने भी राक्षस-सेनापर दृष्टिपात किया; वह हाथी, घोड़े और रथोंसे लैस थी तथा काले मेघोंकी घटा-जैसी दिखायी देती थी। उसमें प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी राक्षस मौजूद थे। उन सबने अपने हाथोंमें बड़े-बड़े हथियार धारण कर रखे थे। निशाचरोंकी सेनाको आते देख वानर महान् पर्वत-शिखर उठाये बारंबार गर्जना करने लगे। उनका गर्जन सुनकर राक्षसोंने भी भयंकर गर्जना की। उन्हें अपने शत्रुओंका उत्साह सहन नहीं हुआ।

अब वानर यूथपति राक्षसोंकी उस भयंकर सेनामें घुस गये। वे मोटी-मोटी शाखाओंवाले वृक्षोंको उखाड़कर शत्रु-सेनामें विचरण करने लगे। कुछ वानर आकाशमें उड़कर प्रहार करते थे और कुछ पृथ्वीपर ही खड़े होकर राक्षसोंसे लोहा लेते थे। इस प्रकार राक्षसों और वानरोंमें अत्यन्त भयंकर घमासान युद्ध होने लगा। भयानक पराक्रम करनेवाले वानर राक्षसोंके बाणोंसे रोके जानेपर भी उनपर वृक्षों, शिलाओं और पर्वत-शिखरोंकी वर्षा करते रहे। दोनों ही दलोंके सैनिक जोर-जोरसे सिंहनाद करते थे। वानरोंने पत्थरोंकी मारसे राक्षसोंको चूर-चूर कर डाला। वे हाथी, घोड़े और रथोंपर बैठे हुए राक्षसोंको भी सहसा मार गिराते थे। कितने ही राक्षस पर्वत-शिखरोंसे दब गये। वानरोंके घूँसोंकी मारसे कितनोंकी आँखें बाहर निकल आयीं। कोई भागे, कोई गिरे और कोई चीखने-चिल्लाने लगे। निशाचर भी अपने तीखे बाणोंद्वारा बड़े-बड़े वानरोंको विदीर्ण कर रहे थे। शूल, मुद्गर, खड्ग, प्रास और शक्तियोंके प्रहारसे शत्रुओंको गिरा रहे थे। इस प्रकार शत्रुओंके रक्तसे भीगे हुए वानर और राक्षस परस्पर विजय पानेकी इच्छासे एक-दूसरेको धराशायी करने लगे। उनके फेंके हुए पत्थरों और तलवारोंसे वहाँकी भूमि पट गयी, सब ओर रक्तकी धारा बह चली। राक्षस वानरोंको पकड़कर उन्हें दूसरे वानरोंपर पटक देते थे। इसी प्रकार वानर भी राक्षसोंसे ही राक्षसोंको मार रहे थे। राक्षस अपने शत्रुओंके हाथसे पत्थर छीनकर उसीसे उनपर प्रहार करने लगे तथा वानर भी राक्षसोंके हथियार छीनकर उन्हींके द्वारा उन्हें मौतके घाट उतारने लगे। इस तरह दोनों ही दलोंके योद्धा एक दूसरेको पर्वत-शिखरोंसे मारने, अस्त्र-शस्त्रोंसे छेदने और जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे। कितने ही वानर रथसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रथको, हाथीसे हाथीको और घोड़ेसे घोड़ेको मार गिराते थे। वानर-यूथपतियोंके चलाये हुए वृक्षों और शिलाओंको निशाचर-योद्धा तीखे क्षुरप्र, अर्द्धचन्द्र और भल्ल नामक बाणोंसे तोड़-फोड़-डालते थे। फूटे हुए पर्वतों, कटे हुए वृक्षों और मरे हुए वानरों तथा राक्षसोंकी लाशोंसे उस भूमिमें चलना-फिरना कठिन हो गया। भयंकर मार-काट मची थी। वानर प्रसन्न थे और राक्षसोंकी लाशें गिर रही थीं। यह देखकर महर्षि और देवता हर्षनाद करने लगे।

तदनन्तर, वायुके समान तीव्र वेगवाले घोड़ेपर बैठा हुआ वीर नरान्तक वानरोंकी भीषण सेनामें घुसा और अपने चमकते हुए प्राससे उसने अकेले ही सात सौ वानरोंको चीर डाला। वानरलोग जबतक वृक्ष और पर्वत-शिखरोंको उखाड़ते, तबतक ही उसके भालेकी चोट खाकर वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति लुढ़क जाते थे। बलवान् नरान्तक चमकते हुए भालेको ऊपर उठाये रणभूमिमें चारों ओर विचर रहा था। वानर-वीर कुछ बोलने या खड़े होने भी नहीं पाते थे कि उसका भाला उनके सिरपर पहुँच जाता था। वह पराक्रमी राक्षस खड़े हुए, चलते हुए और उछलते हुए वानरको भी छेद डालता था। उसका प्रास सूर्यके समान उद्दीप्त हो रहा था और यमराजके समान भयंकर जान पड़ता था। उस एक ही भालेकी मारसे घायल होकर झुंड-के-झुंड वानर धरतीपर सो गये। वज्रके आघातको भी मात करनेवाले उस प्रासके दारुण प्रहारको वानर नहीं सह सके; वे जोर-जोरसे चीत्कार करने लगे। वानरराज सुग्रीवने देखा, नरान्तक भाला लिये घोड़ेकी पीठपर बैठा हुआ आ रहा है और वानर-सेना उसके डरसे चारों ओर भाग रही है; तब उन्होंने वीरवर कुमार अङ्गदसे कहा—'बेटा! वह जो घोड़ेपर बैठकर वानर-सेनाका संहार कर रहा है, उस वीर राक्षसके पास जाओ और शीघ्र ही उसके प्राणोंका अन्त करो।'

स्वामीकी आज्ञा पाकर पराक्रमी अङ्गद शत्रुका सामना करनेके लिये कूद पड़े। उनके पास नख और दाढ़ोंके सिवा दूसरा कोई हथियार नहीं था। वे नरान्तकके पास पहुँचकर बोले—'ओ निशाचर! ठहर जा, इन साधारण बंदरोंको मारकर क्या करेगा? तेरे भालेकी चोट वज्रके समान असह्य है; किन्तु जरा इसे मेरी छातीपर तो मार!' अङ्गदका वचन सुनकर नरान्तकको बड़ा क्रोध हुआ और उसने वालिकुमारकी छातीपर सहसा अपने तेजस्वी भालेका प्रहार किया। अङ्गदका वक्षःस्थल वज्रके समान कठोर था। नरान्तकका भाला उसपर टकराकर टूट गया और जमीनपर जा पड़ा। तब वालिकुमारने उसके घोड़ेके मस्तकपर बड़े जोरसे थप्पड़ मारा। उनके प्रहारसे घोड़ेका सिर फट गया, उसकी आँखें फूट गयीं और जीभ बाहर निकल आयी। वह पर्वताकार अश्व प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देख नरान्तक क्रोधसे आग-बबूला हो उठा और घूँसा तानकर उसने वालिपुत्रके मस्तकपर मारा। मुक्केकी मारसे अङ्गदका मस्तक फूट गया, उससे रक्तकी धारा बहने लगी और वे मूर्च्छित हो गये। थोड़ी देरमें जब उन्हें होश हुआ तब उन्होंने भी मृत्युके समान वेगवाला मुक्का तानकर नरान्तककी छातीमें प्रहार किया। उस आघातसे नरान्तकका हृदय विदीर्ण हो गया और वह लहू-लुहान हो मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय आकाशमें देवताओंने और युद्धभूमिमें वानरोंने बड़े जोरसे हर्षनाद किया।

## हनुमान्‌जीके द्वारा देवान्तक और त्रिशिराका तथा लक्ष्मणके द्वारा अतिकायका वध

नरान्तकको मारा गया देख देवान्तक, त्रिशिरा और महोदर आदि राक्षस हाहाकार करने लगे। महोदरने मेघके समान गजराजपर बैठकर महाबली अङ्गदके ऊपर बड़े वेगसे आक्रमण किया। भाईकी मृत्युसे दुखी हुए देवान्तकने भयंकर परिघ लेकर और वीर त्रिशिराने तेजस्वी रथपर बैठकर वालिपुत्रपर धावा किया। उन तीनों निशाचरोंको अपनी ओर आते देख वीर अङ्गदने सहसा एक महान् वृक्ष उखाड़ लिया और उसे देवान्तकपर दे मारा, किन्तु त्रिशिराने अपने तीखे बाणोंसे उस वृक्षको काट गिराया। यह देख अङ्गद उछलकर ऊपर चले गये और वहाँसे राक्षसोंपर वृक्षों तथा पर्वतोंकी वर्षा करने लगे; परन्तु क्रोधमें भरे हुए त्रिशिराने अपने तीक्ष्ण सायकोंसे उनके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। महोदरने उन वृक्षोंको अपने परिघसे चूर्ण कर दिया। तत्पश्चात् त्रिशिराने बाणोंकी वर्षा करते हुए वीर अङ्गदपर धावा किया। साथ ही कुपित हुए महोदरने हाथीके द्वारा आगे बढ़कर वालिकुमारकी छातीमें वज्रके समान तोमरोंका प्रहार किया। इसी प्रकार देवान्तकने भी अङ्गदके निकट आकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक परिघके द्वारा उन्हें चोट पहुँचायी। इन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

तीनों राक्षसोंने एक ही साथ आक्रमण किया था, तो भी महातेजस्वी और प्रतापी वीर अङ्गदको तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उन्होंने बड़े वेगसे उछलकर महोदरके हाथीको थप्पड़से मारा। उनका चाँटा लगते ही हाथीकी आँखें निकल आयीं और वह तत्काल मर गया। तब महाबली वालिकुमारने उस हाथीका दाँत उखाड़ लिया और दौड़कर उसीके द्वारा देवान्तकपर चोट की। देवान्तक काँप उठा और अत्यन्त व्याकुल हो गया। उसके शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी; फिर बड़ी मुश्किलसे अपनेको सँभालकर उस महाबली राक्षसने परिघ उठाया और बड़े वेगसे घुमाकर उसे अङ्गदपर दे मारा। परिघकी चोटसे घायल हो वालिपुत्र अङ्गद घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर तुरंत ही उठकर वे ऊपरकी ओर उछले। उछलते समय त्रिशिराने तीन बाणोंसे वालिपुत्र अङ्गदके ललाटको बींध डाला। इस प्रकार अङ्गदको तीन राक्षसोंसे घिरा जान हनुमान् और नील भी वहाँ आ पहुँचे। नीलने आते ही एक पर्वतका शिखर उठाकर त्रिशिराके ऊपर चलाया; किन्तु रावणकुमारने तीखे बाणोंसे मारकर उसे तोड़-फोड़ डाला। अपने भाईका पराक्रम बढ़ता देख देवान्तकको बड़ा हर्ष हुआ और उसने परिघ लेकर हनुमान्‌जीपर धावा किया। यह देख हनुमान्‌जीने वज्रके समान घूँसा तानकर उसके सिरपर मारा और अपनी भयंकर गर्जनासे राक्षसोंको कम्पित कर दिया। उनके मुष्टि-प्रहारसे देवान्तकका मस्तक फट गया, दाँत और आँखें बाहर निकल आयीं और वह प्राणोंसे हाथ धोकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

देवान्तकके मारे जानेपर त्रिशिराके क्रोधकी सीमा न रही। उसने धनुष उठाकर तीखे सायकोंसे हनुमान्‌जीको बींधना आरम्भ किया। तब पवनकुमारने कुपित होकर राक्षसके ऊपर पर्वतका शिखर चलाया; परन्तु बलवान् त्रिशिराने अपने तीखे तीरोंसे उसके अनेकों टुकड़े कर डाले। यह देख हनुमान्‌जीने वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ की; किन्तु प्रतापी त्रिशिराने उन वृक्षोंको भी काट गिराया और बड़े जोरसे गर्जना की। तब हनुमान्‌जी कूदकर त्रिशिराके पास जा पहुँचे और रोषमें भरकर उन्होंने उसके घोड़ेको अपने नखोंसे विदीर्ण कर डाला। यह देख रावणकुमारने उनके ऊपर शक्तिका प्रहार किया, परन्तु हनुमान्‌जीने उस शक्तिको अपने शरीरमें लगनेके पहले ही हाथसे पकड़ लिया और उसके दो टुकड़े करके विकट गर्जना की। अब उस राक्षसने तलवार उठायी और कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌की छातीपर उसकी भरपूर चोट की। तलवारसे घायल होनेपर पवनकुमारने त्रिशिराकी छातीमें एक तमाचा जड़ दिया। उनका थप्पड़ लगते ही त्रिशिराके होश-हवास गुम हो गये और वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते समय उसके हाथसे तलवार छीनकर महाकपि हनुमान्‌जी भीषण गर्जना करने लगे। उसे सुनकर समस्त राक्षसोंका दिल दहल गया। त्रिशिरासे वह गर्जना नहीं सही गयी, अतः उसने सहसा उठकर हनुमान्‌जीको घूँसेसे मारा। यह देख पवनपुत्र हनुमान्‌जी क्रोधमें भर गये और उन्होंने किरीट तथा कुण्डलोंसहित उस राक्षसके तीनों मस्तकोंको तीखी तलवारसे काट डाला। इन्द्रके समान पराक्रमी हनुमान्‌जीके द्वारा देवशत्रु त्रिशिराके मारे जानेपर वानर हर्षनाद करने लगे, पृथ्वी काँप उठी और राक्षस चारों ओर भागने लगे।

अपनी सेनाको पीड़ित देख पर्वताकार निशाचर अतिकाय, जिसने ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त किया था, बहुत कुपित हुआ। उसने हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी रथपर बैठकर वानरोंपर आक्रमण किया। त्रिलोकीको नापते समय विशालरूपधारी वामनकी भाँति उसके भयंकर रूपको देखकर समस्त वानर भयभीत हो इधर-उधर भागने लगे; अतिकायसे सामना पड़नेपर वानरोंके होश उड़ गये और वे शरणागत-वत्सल भगवान् श्रीरामकी शरणमें गये। रघुनाथजीने दूरसे ही पर्वतके समान विशाल शरीरवाले अतिकायको देखकर विभीषणसे पूछा—'महाबाहो! हजार घोड़ोंसे जुते हुए विशाल रथपर बैठा हुआ वह पर्वताकार निशाचर कौन है? इसके तेज किये हुए शूल, तीखे प्रास एवं तोमरोंसे आगकी लपटें निकल रही हैं। इसके रथपर बीस तरकस, दस धनुष और आठ प्रत्यञ्चाएँ रखी हुई हैं। दोनों बगलमें दो तलवारें हैं, जिनकी मूँठें चार हाथकी और लंबाई दस हाथकी है। यह राक्षस पहाड़के समान ऊँचा और काले रंगका दिखायी दे रहा है। इसका मुख कालके समान विकराल है और यह बादलमें छिपे हुए सूर्यके समान प्रतीत हो रहा है। विभीषण! तुम इसका परिचय दो—यह कौन है, जिसे देखते ही समस्त वानर भयसे व्याकुल हो इधर-उधर भाग खड़े हुए हैं?'

महातेजस्वी भगवान् श्रीरामके पूछनेपर विभीषणने कहा—'भगवन्! यह रावणकी पत्नी धान्यमालिनीका पुत्र है, लोगोंमें इसकी अतिकायके नामसे प्रसिद्धि है। इसीके बाहुबलका सहारा लेकर लङ्कापुरी निर्भय रहती है। ब्रह्माजीने इसे देवताओं और असुरोंसे न मारे जानेका वरदान दिया है। साथ ही उन्होंने यह सूर्यके समान तेजस्वी रथ और दिव्य



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कवच भी प्रदान किये हैं। इसने देवताओं और दानवोंको सैकड़ों बार परास्त किया है। इसके बाणोंसे इन्द्रका वज्र भी कुण्ठित हो चुका है, इसने संग्राममें वरुणके पाशको भी विफल कर दिया है। राक्षसोंमें श्रेष्ठ यह रावणकुमार अतिकाय बड़ा बलवान् है। पुरुषोत्तम! अपने सायकोंसे यह समूची वानर-सेनाका संहार कर डाले, इसके पहले ही आप इस राक्षसको परास्त करनेका प्रयत्न कीजिये।' विभीषण और भगवान् श्रीराममें इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि महाबली अतिकाय वानरोंकी सेनामें घुस आया और बारंबार गर्जना करता हुआ अपने धनुषपर टङ्कार देने लगा। रथियोंमें श्रेष्ठ और भयंकर शरीरवाले उस राक्षसको रथपर धावा करता देख कुमुद, द्विविद, मैन्द, नील और शरभ आदि प्रधान-प्रधान वानर वृक्ष तथा पर्वत-शिखर धारण किये एक ही साथ उसपर टूट पड़े। अतिकाय बड़ा तेजस्वी था, उसने अपने सायकोंसे वानरोंके चलाये हुए वृक्षों और पर्वत-शिखरोंको काट गिराया। साथ ही उस भीमकाय निशाचरने सामने आये हुए सभी वानरोंको लोहेके बाणोंसे बींध डाला। उसकी बाण-वर्षासे सबके शरीर क्षत-विक्षत हो गये, सबने हार मान ली, कोई भी अतिकायके साथ लोहा लेनेमें समर्थ न हो सका।

तदनन्तर अतिकाय श्रीरामके निकट जा पहुँचा और बड़े गर्वसे बोला—'मैं धनुष और बाण लेकर रथपर बैठा हूँ। किसी साधारण प्राणीसे युद्ध करनेका मेरा विचार नहीं है। जिसके अंदर शक्ति हो, साहस और उत्साह हो, वह शीघ्र यहाँ आकर मुझे युद्धका अवसर दे।' उसके ये अहंकारपूर्ण वचन सुनकर शत्रुहन्ता लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ। उसकी बातोंको सहन न कर सकनेके कारण वे आगे बढ़ आये और किञ्चित् मुसकराकर उन्होंने अपना धनुष हाथमें उठाया। लक्ष्मणके धनुषकी टङ्कार समूची पृथ्वी, आकाश, समुद्र और सम्पूर्ण दिशाओंमें गूँज उठी। उसे सुनकर समस्त निशाचर थर्रा उठे। महातेजस्वी अतिकाय भी चकित हो गया। लक्ष्मण मेरा सामना करनेके लिये खड़े हैं—यह देख वह राक्षस क्रोधमें भर गया और एक तीखा बाण हाथमें लेकर बोला—'सुमित्राकुमार! तुम अभी बालक हो, लौट जाओ। मैं तुम्हारे कालके समान हूँ, मुझसे क्यों लड़ना चाहते हो? मेरे हाथसे छूटे हुए बाणोंका वेग गिरिराज हिमालय भी नहीं सह सकता। अथवा तुम बड़े अहंकारी हो, इसीलिये लौटना नहीं चाहते। अच्छा थोड़ी देर ठहरो, अभी अपने प्राणोंसे हाथ धोकर यमलोककी यात्रा करोगे। शत्रुओंका दर्प चूर्ण करनेवाले मेरे इन तीखे बाणोंको देखो, ये भगवान् शङ्करके त्रिशूलकी समानता करते हैं।'

अतिकायके रोष और गर्वसे युक्त वचन सुनकर राजकुमार लक्ष्मण क्रोधमें भरकर बोले—'दुरात्मन्! केवल बातें बनानेसे तू बड़ा नहीं हो सकता। सिर्फ डींग हाँकनेसे कोई श्रेष्ठ पुरुष नहीं कहलाता। मैं हाथमें धनुष और बाण लेकर तेरे सामने खड़ा हूँ; तुझमें जितना बल हो, उसे दिखा। पराक्रमके द्वारा अपनी वीरताका परिचय दे, झूठी शेखी न बघार। जो पुरुषार्थसे युक्त होता है, वही वीर कहलाता है। तेरे पास सब तरहके हथियार मौजूद हैं। तू बाणों अथवा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंके द्वारा पहले अपना पराक्रम दिखा ले। उसके बाद मैं अपने तीखे बाणोंसे तेरा मस्तक काट गिराऊँगा। मुझे बालक जानकर तू मेरी अवहेलना न कर। मैं बालक होऊँ या वृद्ध—संग्राममें तू मुझे अपना काल समझ। वामनरूपधारी भगवान् विष्णु [ देखनेमें ] बालक ही थे, किन्तु अपने तीन ही पगोंसे उन्होंने समूची त्रिलोकी नाप ली थी।'

लक्ष्मणकी ये बातें सत्य होनेके साथ ही युक्तियुक्त भी थीं। उन्हें सुनकर अतिकायको बड़ा क्रोध हुआ और उसने एक उत्तम बाण लेकर उसे लक्ष्मणपर चलाया; किन्तु लक्ष्मणने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसे काट गिराया। यह देख अतिकायका क्रोध और भी बढ़ गया तथा उसने पाँच बाणोंका सन्धान करके पुनः लक्ष्मणको ही उनका निशाना बनाया। परन्तु वे बाण उनके समीप अभी आने भी नहीं पाये थे कि लक्ष्मणने तीखे तीरोंसे फिर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसके बाद सुमित्राकुमारने एक प्रज्वलित बाण हाथमें लेकर उसे धनुषपर रखा और बड़े वेगसे खींचकर उसे राक्षसके ललाटको लक्ष्य करके चलाया। लक्ष्मणका बाण उस भयंकर राक्षसके ललाटमें धँस गया और वह अत्यन्त पीड़ित होकर काँपने लगा। तत्पश्चात् उसने क्रमशः एक, तीन, पाँच और सात बाण लेकर उन्हें धनुषपर चढ़ाया और वेगपूर्वक खींचकर चला दिया। परन्तु लक्ष्मणने बिना किसी घबराहटके उन सभी बाणोंको अपने तीक्ष्ण तीरोंसे काट दिया। तब उस निशाचरने सहसा एक पैने बाणके द्वारा सुमित्राकुमारकी छातीमें प्रहार किया। उससे उनकी छातीमेंसे तीव्र गतिसे रक्तकी धारा बहने लगी। परन्तु लक्ष्मणने शीघ्र ही अपनेको सँभाल लिया और एक तीखा बाण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर उसे आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित किया। अभिमन्त्रित होते ही वह भयंकर अस्त्र प्रज्वलित हो उठा। फिर जिस प्रकार यमराज कालदण्डका प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार लक्ष्मणने भी अतिकायके ऊपर उस आग्नेयास्त्रको चलाया। जब निशाचरने देखा कि लक्ष्मणका बाण आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित है, तब उसने सूर्यास्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित भयंकर बाणका प्रयोग किया। वे दोनों बाण परस्पर टकराकर एक-दूसरेको नष्ट करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े।

तदनन्तर अतिकायने क्रोधमें भरकर त्वष्टा देवताके मन्त्रसे अभिमन्त्रित सींकके बाणका प्रयोग किया। परन्तु महाबली लक्ष्मणने उसे ऐन्द्रास्त्रसे काट डाला। यह देख रावणकुमारने याम्यास्त्रका सन्धान किया और लक्ष्मणको लक्ष्य करके उसे चलाया; किन्तु सुमित्राकुमारने वायव्यास्त्रके द्वारा उसको शान्त कर दिया और अत्यन्त कुपित होकर निशाचरके ऊपर बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी। अतिकायने एक दिव्य कवच बाँध रखा था, जिसमें हीरे जड़े हुए थे। लक्ष्मणके बाण अतिकायतक पहुँचकर उसके कवचसे टकराते और नोक टूट जानेके कारण सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ते थे। अतः नरश्रेष्ठ लक्ष्मण उस निशाचरके शरीरको बींध न सके। तब वायु देवताने उनके पास आकर कहा—'सुमित्रानन्दन! इस राक्षसको ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त हुआ है। इसका कवच अभेद्य है, अतः इसको ब्रह्मास्त्रसे विदीर्ण कर डालो; क्योंकि दूसरे किसी अस्त्रसे इस निशाचरका वध होना असम्भव है।' लक्ष्मण इन्द्रके समान पराक्रमी थे, उन्होंने वायु-देवताका वचन सुनकर एक भयंकर वेगवाले बाणको ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित किया। उस समय दिशाएँ, चन्द्रमा, सूर्य आदि बड़े-बड़े ग्रह तथा अन्तरिक्ष-लोकके प्राणी थर्रा उठे। भूमण्डलमें कोलाहल मच गया। लक्ष्मणने उस अभिमन्त्रित बाणको, जो यमदूतके समान भयंकर और वज्रको भी मात करनेवाला था, धनुषपर रखा और उसे रावणकुमार अतिकायपर छोड़ दिया। वायुके समान भयंकर वेगवाले उस बाणको आते देख अतिकायने शक्ति, ऋष्टि, गदा, कुठार, शूल तथा बाणोंसे नष्ट करनेका प्रयत्न किया; किन्तु उन अद्भुत अस्त्रोंको व्यर्थ करके अग्निके समान प्रज्वलित हुए उस बाणने अतिकायके मुकुट-मण्डित मस्तकको काट डाला। लक्ष्मणके बाणसे कटा हुआ राक्षसका वह मस्तक हिमालयके शिखरकी भाँति सहसा धरतीपर जा पड़ा। सेना-नायकके मारे जानेपर निशाचरोंका युद्धविषयक उत्साह जाता रहा। वे भयभीत होकर लङ्कापुरीकी ओर भाग चले। इधर वानरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे विजयी वीर लक्ष्मणकी प्रशंसा करने लगे।

## इन्द्रजित्‌के ब्रह्मास्त्रद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणसहित वानर-सेनाका मूर्च्छित होना तथा हनुमान्‌जीकी लायी हुई ओषधिसे सबका जाग्रत् होना

संग्राम-भूमिमें जो निशाचर मरनेसे बच गये थे, उन्होंने तुरंत जाकर रावणको देवान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय आदि श्रेष्ठ राक्षसोंके मारे जानेका समाचार सुनाया। उनके वधकी बात सुनकर राक्षसराजके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। पुत्रों और भाइयोंके भयंकर विनाशसे उसको बड़ी चिन्ता हुई। यह देख राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजित्‌ने कहा—'तात! जबतक इन्द्रजित् जीवित है तबतक आप चिन्ता न कीजिये। अभी देखिये, मैं राम और लक्ष्मणके शरीरको बाणोंसे छिन्न-भिन्न करके उन्हें धरतीपर सुलाता हूँ। उनके सारे अङ्गोंको तीखे सायकोंसे भर दूँगा। आज उनकी आयु समाप्त हो जायगी। आप मेरी इस प्रतिज्ञाको निश्चित जानिये। आज इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र, साध्य, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा मेरे अपार पराक्रमको देखेंगे।' ऐसा कहकर वह इन्द्रशत्रु निशाचर पिताकी आज्ञा ले वायुके समान वेगवाले रथपर, जिसमें अच्छे गधे जुते हुए थे तथा युद्धकी आवश्यक सामग्रियाँ रखी थीं, सवार हुआ और बड़ी तेजीके साथ युद्धभूमिकी ओर चल दिया। उसे प्रस्थान करते देख महाबली राक्षस हाथी, घोड़े, बाघ, गधे, ऊँट, सर्प, सूअर और सिंह आदि वाहनोंपर आरूढ़ हो प्रास, मुद्गर, तलवार, फरसे और गदा आदि अस्त्र धारण किये पीछे-पीछे चले। रणभूमिमें पहुँचकर महातेजस्वी इन्द्रजित्‌ने अपने रथके चारों ओर राक्षसोंको खड़ा कर दिया और बीचमें [ धरतीपर उतरकर अग्निकी स्थापना करके ] चन्दन, फूल तथा लावा आदिके द्वारा अग्नि-देवताका पूजन किया। तत्पश्चात् वह हविष्यका हवन करने लगा। यह देख सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह तथा नक्षत्रोंके साथ अन्तरिक्ष-लोकके सभी प्राणी भयभीत हो गये।

अग्निके समान तेजस्वी इन्द्रजित्‌ने हवन करनेके पश्चात् धनुष, बाण, तलवार, शूल, रथ और घोड़ोंसहित अपनेको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आकाशमें अदृश्य कर लिया। इसके बाद वह राक्षसोंके साथ रहकर युद्धमें नालीक, नाराच, गदा और मूसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे वानरोंका संहार करने लगा। उनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये और वे राक्षसके बाणोंसे पीड़ित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कितने ही अचेत हो गये और कितने ही खूनसे लथपथ हो बड़ा कष्ट पाने लगे। फिर भी वे सब-के-सब राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये दौड़ रहे थे। वानरोंने भगवान् श्रीरामके लिये अपने जीवनका मोह छोड़ दिया था। वे पराक्रमपूर्वक गर्जना करते हुए हाथमें शिलाएँ लिये सब ओरसे लौटकर इन्द्रजित्पर चढ़ आये तथा युद्धमें डटे रहकर रावणकुमार-की सेनापर वृक्षों, शिखरों और शिलाओंकी वर्षा करने लगे। वृक्षों और शिलाओंकी वह भारी वृष्टि राक्षसोंके प्राण लेनेवाली थी; परन्तु समर-विजयी रावणपुत्रने उसे अपने बाणोंद्वारा शान्त कर दिया। तदनन्तर उसने अग्निके समान तेजस्वी और विषैले सर्पोंकी भाँति भयंकर बाणोंद्वारा वानर-सैनिकोंको विदीर्ण करना आरम्भ किया। महापराक्रमी इन्द्रजित्ने अठारह तीखे बाणोंसे गन्धमादनको, नौ बाणोंसे नलको, सात मर्मभेदी सायकोंसे मैन्दको, पाँचसे गजको, दससे जाम्बवान्को और तीनसे नीलको बींध डाला। फिर सुग्रीव, ऋषभ, अङ्गद तथा द्विविदको वरदानमें मिले हुए घोर बाणोंका निशाना बनाकर प्राणहीन-सा कर दिया। इसी प्रकार अन्यान्य प्रधान वानरोंको भी उसने अनेकों बाणोंसे पीड़ित किया। उस समय वह क्रोधमें भरकर कालाग्निकी भाँति प्रज्वलित हो रहा था। उसने सूर्यके समान तेजस्वी और निशाना साधकर चलाये हुए शीघ्रगामी बाणोंद्वारा वानर-सेनाको मथ डाला—व्याकुल और पीड़ित कर दिया। समस्त वानर रक्तसे नहा गये थे और इन्द्रजित् बड़े हर्षमें भरकर उन्हें देख रहा था। राक्षसराजका वह पुत्र बड़ा तेजस्वी और बलवान् था। उसने पुनः भिन्न-भिन्न शस्त्रों और बाणोंकी भयंकर वृष्टि आरम्भ की और वानरोंकी सेनाको चारों ओरसे रौंद डाला। जैसे काला मेघ जलकी वृष्टि करता है, उसी प्रकार इन्द्रजित् बाणोंकी झड़ी लगा रहा था। अन्तर्धान हो जानेके कारण वह किसीको दिखायी नहीं देता था। उसके बाणोंसे वानरोंके शरीर क्षत-विक्षत हो रहे थे। वे विकृत स्वरमें चीखने-चिल्लाने लगे। उन्हें केवल तीखे बाण ही दिखायी देते थे। मायासे छिपे हुए उस निशाचरको वे नहीं देख पाते थे।

इन्द्रजित्ने हनुमान्, सुग्रीव, अङ्गद, गन्धमादन, जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, द्विविद, नील, गवाक्ष, गवय, केसरी, हरिलोमा, विद्युद्दंष्ट्र, सूर्यानन, ज्योतिर्मुख, दधिमुख, पावकाक्ष, नल तथा कुमुद—इन सभी प्रधान वानरोंको अभिमन्त्रित किये हुए प्रासों, शूलों और तीखे बाणोंद्वारा घायल किया। इस प्रकार सुवर्णके समान चमकते हुए बाणों और गदाओंसे वानर-यूथपतियोंको भारी चोट पहुँचाकर उसने लक्ष्मणसहित श्रीरामपर भी सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी बाणोंकी वर्षा आरम्भ की। तब श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले—'सुमित्रानन्दन ! राक्षसराज इन्द्रजित् ब्रह्मास्त्रका सहारा लेकर वानर-सेनाको गिरा चुका है और अब हम दोनोंको अपने तीखे बाणोंसे पीड़ित कर रहा है। युद्धमें इसका शरीर तो दिखायी ही नहीं देता, पर यह अस्त्रोंका प्रयोग करता जा रहा है। ऐसी दशामें हमलोग इसे किस तरह मार सकते हैं। भगवान् ब्रह्माका प्रभाव अचिन्त्य है। वे ही इस जगत्के आदि कारण हैं। उन्हींका यह अस्त्र है। अतः मेरे साथ चुपचाप खड़े होकर बिना किसी घबराहटके इन बाणोंकी मार सहो। तदनन्तर वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण इन्द्रजित्के बाणोंसे बहुत घायल हो गये। उन दोनों भाइयोंको पीड़ित करके उस राक्षसने बड़े हर्षके साथ गर्जना की। इस प्रकार संग्राममें वानरोंकी सेना तथा लक्ष्मण-सहित श्रीरामको मूर्च्छित करके इन्द्रजित् रावण-पालित लङ्का-पुरीमें गया। उस समय समस्त राक्षस उसकी स्तुति कर रहे थे। वहाँ जाकर उसने अपने पितासे बड़ी प्रसन्नताके साथ सब बातें कह सुनायीं।

भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण युद्धके मुहानेपर निश्चेष्ट होकर पड़े थे। उनकी ऐसी अवस्था देख वानर-यूथपतियोंका दल किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। सुग्रीव, नील, अङ्गद तथा जाम्बवान्को भी कुछ नहीं सूझता था। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विभीषणने सबको विषादमें पड़ा देख वानर-वीरोंको सान्त्वना देते हुए कहा—'कपिवरो ! आपलोग भयभीत न हों। यह खेद करनेका समय नहीं है। ये दोनों राजकुमार केवल मूर्च्छित हुए हैं। इन्होंने ब्रह्माजीके वचनोंका पालन करते हुए जान-बूझकर हथियार नहीं उठाये हैं। तभी इन्द्रजित् इन्हें बाणोंसे आच्छादित करनेमें सफल हो सका है। स्वयम्भू ब्रह्माजीने यह उत्तम अस्त्र इन्द्रजित्को दिया था। ब्रह्मास्त्रके नामसे इसकी प्रसिद्धि है और इसका बल अमोघ है। संग्राममें उसका आदर—उसकी मर्यादाकी रक्षा करते हुए ही ये दोनों राजकुमार धराशायी हुए हैं। अतः इसमें खेदकी कौन-सी बात है।' विभीषणकी बात सुनकर हनुमान्जीने ब्रह्मास्त्रका आदर करते हुए कहा—'इस अस्त्रसे घायल हुए वानर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैनिकोंमें जो-जो प्राण धारण करते हों, उन-उनको हमें चलकर आश्वासन देना चाहिये। उस समय रात हो गयी थी, इसलिये हनुमान् और विभीषण दोनों वीर अपने-अपने हाथमें मशाल लिये एक ही साथ रणभूमिमें विचरने लगे। पर्वताकार वानरोंके गिरनेसे वहाँकी सारी भूमि पट गयी थी। सुग्रीव, अङ्गद, नील, शरभ, गन्धमादन, गवाक्ष, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, नल, ज्योतिर्मुख तथा द्विविद—इन सभी वानरोंको हनुमान् और विभीषणने युद्धमें घायल होकर पड़ा देखा। ब्रह्माजीके प्रिय अस्त्रद्वारा सरसठ करोड़ वानर मारे गये थे। समुद्रके समान विशाल सेनाको बाणोंसे पीड़ित देख हनुमान् और विभीषण जाम्बवान्की खोज करने लगे। ब्रह्माजीके पुत्र जाम्बवान् बूढ़े तो थे ही, उसपर भी उनके शरीरमें सैकड़ों बाण धँसे हुए थे। उन्हें देख विभीषणने निकट जाकर पूछा—'आर्य! इन तीखे बाणोंके प्रहारसे आपका प्राणान्त तो नहीं हो गया?' विभीषणकी बात सुनकर ऋक्षराज जाम्बवान् बड़ी कठिनाई-से बोले—'महाबली राक्षसराज! मैं आवाजसे तुम्हें पहचान रहा हूँ; मेरे सभी अङ्ग बाणोंसे बिंधे हुए हैं, अतः मैं आँख खोलकर देख नहीं सकता। वानरश्रेष्ठ हनुमान्के प्राण बचे हैं या नहीं?' जाम्बवान्के ऐसा कहनेपर विभीषण बोले—'आर्य! आप दोनों महाराजकुमारोंको छोड़कर केवल वायु-पुत्र हनुमान्जीको ही क्यों पूछ रहे हैं? राजा सुग्रीव, अङ्गद तथा भगवान् श्रीरामपर भी आपने वैसा स्नेह नहीं दिखाया, जैसा पवन-कुमारके प्रति आपका प्रगाढ़ प्रेम लक्षित हो रहा है।' विभीषणका वचन सुनकर जाम्बवान्ने कहा—'राक्षस-राज! सुनो, पवनकुमार हनुमान्के विषयमें पूछनेका एक कारण है। वीरवर हनुमान् यदि जीवित हों तो यह मरी हुई सेना भी जी सकती है और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हमलोग जीते हुए भी मृतकके ही तुल्य हैं।'

तदनन्तर पवनपुत्र हनुमान्जीने निकट जा जाम्बवान्के चरणोंका स्पर्श करके बड़ी विनयके साथ उन्हें प्रणाम किया। उस समय जाम्बवान्की सारी इन्द्रियाँ पीड़ित थीं, तो भी हनुमान्जीके वचन सुनकर उन्होंने पुनः अपनेको नया जीवन मिला समझा। उन महातेजस्वीने हनुमान्जीसे कहा—'कपिवर! आओ, सम्पूर्ण वानरोंकी रक्षा करो। यह समय तुम्हारे पराक्रमका है। मैं दूसरे किसीको इसके योग्य नहीं देखता। भालू और वानरोंकी सेनाको हर्ष प्रदान करो और निश्चेष्ट पड़े हुए दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणके भी बाण निकालकर उन्हें स्वस्थ बनाओ। समुद्रके ऊपर-ऊपर उड़कर पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर जाओ। वहाँ पहुँचनेपर तुम्हें ऊँचे स्वर्णमय पर्वत ऋषभका तथा कैलास-शिखरका दर्शन होगा। उन दोनोंके बीचमें ओषधियोंका पर्वत दिखायी देगा। उसके शिखरपर उत्पन्न चार ओषधियाँ हैं, जो अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित किये रहती हैं। उनके नाम ये हैं—मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानी। उन चारोंकी ही महौषधियोंमें गणना है। उन सबको लेकर शीघ्र लौट आओ और इन वानरोंके प्राण बचाकर इन्हें आश्वासन दो।'

जाम्बवान्के वचन सुनकर वायुनन्दन हनुमान्जी असीम बलसे भर गये। वे एक पर्वतके शिखरपर खड़े हो गये और उसे पैरोंसे दबाते हुए द्वितीय पर्वतके समान दिखायी देने लगे। उनके चरणोंके भारसे पीड़ित हो वह पर्वत जमीनमें धँसने लगा। उसके शिखर तथा उसके ऊपरके वृक्ष और पत्थर टूट-टूटकर गिरने लगे। सारा पर्वत काँपने लगा। अतः वानर वहाँ ठहर न सके। लङ्काका ऊँचा द्वार भी हिल गया। मकान और दरवाजे ढह गये। समूची नगरी भयसे व्याकुल हो उस रातमें नाचती-सी जान पड़ी। पर्वताकार शरीर धारण करनेवाले हनुमान्जीने उस पर्वतको दबाकर पृथ्वी और समुद्रमें भी हलचल पैदा कर दी। फिर वे जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। उनका निनाद सुनकर लङ्कावासी राक्षस स्तब्ध हो गये। उनके शरीरमें हिलने-डुलनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी। तत्पश्चात् भयंकर पराक्रमी हनुमान्जीने समुद्रको नमस्कार करके श्रीरामचन्द्रजीके लिये महान् पुरुषार्थ करनेका निश्चय किया। वे अपनी सर्पाकार पूँछको ऊपर उठाकर, पीठको झुकाकर, दोनों कान सिकोड़कर तथा पातालके सदृश अपना मुँह फैलाकर प्रचण्ड वेगसे आकाशमें उड़े। हनुमान्जी अपने तीव्र वेगसे कितने ही वृक्षों, पर्वत-शिखरों, शिलाओं और वहाँ रहनेवाले छोटे-छोटे वानरोंको भी साथ-साथ उड़ाते गये। वे वृक्ष आदि वेग शान्त होनेपर समुद्रके जलमें गिर पड़े। हनुमान्जी अनेकों पर्वतों, पक्षियों, सरोवरों, नदियों, तालाबों, नगरों और समृद्धिशाली देशोंको देखते हुए बड़े वेगसे जाने लगे। उनमें पिताके समान ही पराक्रम था, वीरता थी; वे सूर्यके मार्गका आश्रय ले बड़ी तीव्र गतिसे जा रहे थे। फिर भी उन्हें थकावटका अनुभव नहीं होता था। जाम्बवान्के वचनोंका स्मरण करते हुए भयंकर पराक्रमी महाकपि हनुमान्जीने सहसा पहुँचकर हिमालय-पर्वतका दर्शन किया। वहाँ अनेकों सोते बह रहे थे। बहुत-सी कन्दराएँ और झरने उसकी शोभा बढ़ा रहे थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका ऊपरी शिखर सुवर्णमय दिखायी देता था। अत्यन्त ऊँचे गिरिराज हिमालयपर पहुँचकर हनुमान्‌जीने वहाँ परम पवित्र बड़े-बड़े आश्रम देखे, जिनमें देवर्षियोंका समुदाय निवास करता था। उस शिखरपर उन्हें इन्द्र, हयग्रीव, अग्नि, कुबेर, सूर्यदेव तथा ब्रह्माजी आदिके भी स्थान दिखायी दिये। साथ ही उन्होंने शिवके बाण पिनाकका और पृथ्वीकी नाभिका भी दर्शन किया। तत्पश्चात् कैलास-पर्वत, हिमालय-शिला, शिवजीके वाहन वृषभ तथा सुवर्णमय श्रेष्ठ पर्वत ऋषभको भी देखा। इसके बाद उनकी दृष्टि ओषधियोंके पर्वतपर पड़ी, जो सब प्रकारकी प्रभापूर्ण ओषधियोंसे जगमगा रहा था। हनुमान्‌जी कूदकर उस पर्वत-शिखरपर चढ़ गये और ओषधियोंको खोजने लगे।

उस श्रेष्ठ पर्वतपर रहनेवाली सम्पूर्ण महौषधियाँ यह जानकर कि कोई हमें लेनेके लिये आ रहा है, तुरंत अदृश्य हो गयीं। उन्हें न देखनेके कारण महात्मा हनुमान्‌जी कुपित हो उठे और रोषमें भरकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। ओषधियोंका छिपना उनके लिये असह्य हो गया; अतः उन्होंने वेगसे पकड़कर सहसा वृक्षों, हाथियों, सुवर्ण तथा अन्य सहस्रों प्रकारकी धातुओंसे भरे हुए उस पर्वत-शिखरको ही उखाड़ लिया। वेगसे उखाड़े जानेके कारण उसकी बहुत-सी चोटियाँ बिखरकर गिर पड़ीं। उस पर्वतका ऊपरी भाग अत्यन्त प्रकाशमान हो रहा था। उसे उखाड़कर, साथ ले हनुमान्‌जी गरुड़के समान भयंकर वेगसे आकाशमें उड़े। उन्हें देखकर इन्द्रादि देवताओंसहित सम्पूर्ण लोक थर्रा उठे तथा अनेकों आकाशचारी प्राणी उनकी स्तुति करने लगे। सूर्यके समान चमकते हुए उस शिखरको हाथमें लेकर हनुमान्‌जी सूर्यके ही मार्गसे लौटे! उस समय सहस्र धारोंसे सुशोभित एवं अग्निके समान प्रज्वलित चक्र धारण किये भगवान् विष्णुकी भाँति उनकी शोभा हुई। उन्हें आते देख वानरोंने गर्जना की तथा वे भी वानरोंको देखकर हर्षनाद

करने लगे। तदनन्तर हनुमान्‌जी उस उत्तम पर्वतपर [ जहाँ-से उड़कर वे गये थे ] कूद पड़े और वानर-सेनाके मध्यमें आकर सभी श्रेष्ठ वानरोंको प्रणाम करके विभीषणसे गले लगकर मिले। इसके बाद दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण महौषधियोंकी सुगन्ध लेकर स्वस्थ हो गये—उनके शरीरका घाव भर गया। इसी प्रकार जितने वानर-वीर मारे गये थे, ये सभी उन उत्तम ओषधियोंकी गन्धसे क्षणभरमें नीरोग हो गये, उनकी पीड़ा जाती रही। ऐसा जान पड़ा मानो वे रातमें आरामसे सोकर उठे हों। लङ्कामें जबसे वानर और राक्षसोंकी लड़ाई शुरू हुई, उसी दिनसे वानरोंद्वारा युद्धमें मारे गये राक्षस रावणकी आज्ञाके अनुसार समुद्रमें फेंक दिये जाते थे [ इसीलिये उन ओषधियोंसे उन्हें कोई लाभ नहीं पहुँचा ]। तत्पश्चात् प्रचण्ड वेगवाले पवनकुमार हनुमान्‌जी पुनः ओषधियोंके उस पर्वतको हिमालयपर ही रखकर श्रीरामचन्द्रजीसे आ मिले।

## राक्षस और वानरोंके युद्धमें कम्पन, प्रजङ्घ, यूपाक्ष, शोणिताक्ष, कुम्भ और निकुम्भका वध

तदनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीवने हनुमान्‌जीसे कहा—'कुम्भकर्ण मारा गया, राक्षसराजके पुत्रोंका भी प्रायः संहार हो गया है; अतः इस समय रावण नगरकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता। इसलिये अपनी सेनामें जो-जो महाबली और शीघ्रगामी वानर हों, वे सब-के-सब मशाल ले-लेकर शीघ्र ही लङ्कापुरीपर धावा करें।'

सुग्रीवकी आज्ञा पाकर प्रधान-प्रधान वानर जलती हुई मशाल हाथमें लेकर नगर-द्वारपर जा डटे। यह देखकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावणको बड़ा क्रोध हुआ और उसने कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भ तथा निकुम्भको बहुत-से राक्षसोंके साथ भेजा। रावणकी आज्ञासे यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कम्पन भी कुम्भकर्णके पुत्रोंके साथ-साथ युद्धके लिये निकले। उन सभी राक्षसोंके हाथमें चमकीले हथियार मौजूद थे। वे बारंबार गर्जना करते हुए लङ्कापुरीसे बाहर आये। राक्षसोंकी सेना ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित तथा भयंकर घोड़े, रथ, हाथी एवं नाना प्रकारके पैदल सैनिकोंसे लैस थी। चमकते हुए शूल, गदा, तलवार, प्रास, तोमर और धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र धारण किये राक्षसोंकी वह विशाल सेना बड़ी भयंकर दिखायी देती थी। उसे आते देख वानर-सेना उच्च स्वरसे गर्जना करती हुई आगे बढ़ी तथा राक्षस-सेना भी बड़े वेगसे शत्रुओंका सामना करनेके लिये दौड़ी। उस समय वानर-योद्धा वृक्षों, पत्थरों तथा मुक्कोंसे निशाचरोंको मारते थे और भयंकर पराक्रमी निशाचर भी अपने तीखे बाणोंसे सामने आये हुए वानरोंके सिर सहसा उड़ा देते थे।

उस समय अङ्गद युद्धके लिये उत्सुक होकर वीर निशाचर कम्पनसे भिड़ गये। कम्पनने क्रोधपूर्वक अङ्गदको ललकारा और बड़े वेगसे उनके ऊपर गदाका प्रहार किया। इससे उनको बड़ी चोट पहुँची और वे काँपकर बेहोश हो गये। फिर चेत होनेपर तेजस्वी वीर अङ्गदने एक पर्वतका शिखर उठाकर उसे राक्षसपर दे मारा। शिलाके आघातसे पीड़ित होकर कम्पन पृथ्वीपर गिर पड़ा—उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। कम्पनको युद्धमें मारा गया देख शोणिताक्षने रथपर बैठकर तुरंत ही अङ्गदपर धावा किया। वीर प्रजङ्घ और महाबली यूपाक्षने भी उसका साथ दिया। वे भी रथपर बैठकर महाबली वालिकुमारपर चढ़ आये। इधर, मैन्द और द्विविद—ये दोनों वीर अङ्गदकी रक्षा करते हुए उनके पास आ डटे। इन तीन वानर-सेनापतियोंका उन तीनों निशाचरोंके साथ रोंगटे खड़े कर देनेवाला भयंकर युद्ध छिड़ गया। इसी बीचमें प्रजङ्घ तलवार उठाये बड़े वेगसे वालिकुमारकी ओर झपटा। उसको निकट आया देख अङ्गदने उसकी बाँहपर एक घूँसा मारा। आघात पाकर तलवार उसके हाथसे छूटकर जमीनपर जा पड़ी। यह देख प्रजङ्घने महाबली अङ्गदके मस्तकपर बड़े जोरसे मुक्का मारा, जिससे अङ्गदको दो घड़ीतक चक्कर आता रहा। इसके बाद होशमें आनेपर महाप्रतापी वालिकुमारने प्रजङ्घको ऐसा घूँसा मारा कि उसका सिर धड़से अलग हो गया। अपने चाचाके मारे जानेपर यूपाक्षकी आँखोंमें आँसू भर आये और वह हाथमें तलवार ले तुरंत रथसे कूद पड़ा। उसे आते देख द्विविद क्रोधमें भरकर दौड़े और उन्होंने सहसा उसकी छातीमें प्रहार किया, साथ ही उसे बलपूर्वक पकड़ भी लिया। अपने महाबली भाईको पकड़ा गया देख महातेजस्वी शोणिताक्षने द्विविदकी छातीमें गदासे चोट पहुँचायी। उससे आहत होकर द्विविद विचलित हो उठे। तत्पश्चात् जब पुनः उसने गदा उठायी तब द्विविदने झपटकर उसे छीन लिया। इतनेमें ही मैन्द भी द्विविदके पास आ गये। फिर तो शोणिताक्ष और यूपाक्ष युद्धमें उन दोनों वानरोंके साथ बड़ी तेजीसे छीना-झपटी और पटका-पटकी करने लगे। द्विविदने अपने नखोंसे शोणिताक्षका मुँह नोच लिया और उसे पृथ्वीपर पटककर पीस डाला। इसी प्रकार वानरश्रेष्ठ मैन्दने भी अत्यन्त क्रोधमें भरकर यूपाक्षको अपनी दोनों भुजाओंसे दबा डाला और वह निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

इन प्रमुख वीरोंके मारे जानेपर राक्षसराजकी सेना घबरा उठी और जहाँ कुम्भकर्णका पुत्र युद्ध कर रहा था, वहाँ जा पहुँची। अपनी सेनाको वेगसे भागकर आते देख कुम्भने उसे ढाढस बँधाया। दूसरी ओर महापराक्रमी वानर युद्धमें सफल होनेके कारण जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। अपनी सेनाके मुख्य-मुख्य वीरोंको मारा गया देख तेजस्वी कुम्भने धनुष उठाया और सर्पके समान विषैले बाणोंकी बरसाना आरम्भ किया। तब अङ्गद उस राक्षसके मस्तकपर शिलाओं और वृक्षोंकी वर्षा करने लगे; किन्तु कुम्भने उनके फेंके हुए समस्त वृक्ष काटकर शिलाओंको भी फोड़ डाला। यह देख अङ्गदने पास ही खड़े हुए एक सालके वृक्षको छातीसे दबाकर एक ही हाथसे उखाड़ लिया। वह वृक्ष इन्द्रकी ध्वजा और मन्दराचलके समान ऊँचा था। अङ्गदने सब राक्षसोंके देखते-देखते उसे कुम्भके ऊपर बड़े वेगसे चलाया। तब राक्षसने शरीरका भेदन करनेवाले सात तीखे बाणोंसे अङ्गदको बींध डाला। इससे उन्हें बड़ी व्यथा हुई और वे मूर्छित होकर धरतीपर गिर पड़े।

अङ्गदको इस अवस्थामें देखकर वानरराज सुग्रीव अश्वकर्ण आदि बड़े-बड़े वृक्ष उखाड़कर उस राक्षसपर फेंकने लगे, परन्तु कुम्भकर्णके पुत्रने अपने तीखे बाणोंसे उन सारे वृक्षोंको काट डाला। यह देख सुग्रीवने कुम्भके [ रथपर चढ़कर उसके ] हाथसे धनुष छीन लिया और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तत्पश्चात् वे नीचे कूद पड़े। यह दुष्कर कर्म करनेके बाद वे कुपित होकर कुम्भसे बोले—'कुम्भ! तुम्हारा पराक्रम, तुम्हारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बाणका वेग अद्भुत है। तुम प्रह्लाद, बलि, इन्द्र, कुबेर और वरुणके समान हो। तुमने वह पराक्रम किया है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। तुम्हारी अस्त्र-सञ्चालनकी कुशलता देखी गयी। तुमने इन भयंकर पराक्रमी वानर-वीरोंको धराशायी कर दिया। वीर! अब तुम मेरा बल भी देखो।' यह सुनकर कुम्भने अपनी दोनों भुजाओंसे सुग्रीवको पकड़ लिया। फिर तो दोनों मतवाले हाथियोंकी भाँति बारंबार साँस खींचते हुए एक दूसरेसे गुथ गये। दोनों दोनोंको रगड़ने लगे, दोनोंके ही मुखसे परिश्रमके कारण धूम्रयुक्त ज्वाला-सी निकलने लगी। उनके पैरोंकी धमकसे धरती नीचेको धँसने लगी। इतनेमें ही सुग्रीवने कुम्भको उठाकर बड़े वेगसे लवण-समुद्रके जलमें फेंक दिया। गिरते ही वह पानीके भीतर जमीनपर पहुँच गया। इसके बाद वह पुनः उछलकर बाहर आया और क्रोधपूर्वक सुग्रीवको पटककर उनकी छातीपर उसने वज्रके समान घूँसेसे प्रहार किया। इससे वानरराजका कवच टूट गया और उनकी छातीसे रक्त बहने लगा। तब महाबली सुग्रीवने भी अपना मुक्का सँभाला और कुम्भकी छातीमें बलपूर्वक आघात किया। उसकी चोटसे कुम्भको बड़ी पीड़ा हुई और वह व्याकुल होकर बुझी हुई आगकी तरह गिर पड़ा। भयंकर पराक्रमी वानरराज सुग्रीवके द्वारा युद्धमें उस निशाचरके मारे जानेपर पर्वत और वनोंसहित सारी पृथ्वी काँपने लगी और राक्षसोंके हृदयमें अत्यन्त भय समा गया।

सुग्रीवके द्वारा अपने भाईको मारा गया देख निकुम्भने वानरराजकी ओर इस प्रकार देखा; मानो उन्हें क्रोधसे भस्म कर डालेगा। उसने महेन्द्र-पर्वतके शिखर-जैसा एक विशाल परिघ हाथमें लिया, जो यमदण्डके समान भयंकर तथा इन्द्रध्वजके समान तेजस्वी था। उसे घुमाता हुआ वह भयानक पराक्रमी राक्षस मुख फैलाकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। निकुम्भके परिघ घुमानेसे अलकापुरी, गन्धर्व-भवन, तारे, नक्षत्र, चन्द्रमा तथा बड़े-बड़े ग्रहोंके साथ समस्त आकाशमण्डल घूमता-सा प्रतीत होता था। उस समय वानर और राक्षस भयके मारे हिलने-डुलनेमें भी समर्थ न हो सके। केवल महाबली हनुमान्‌जी अपनी छाती खोलकर उस राक्षसके सामने खड़े हो गये। यह देख परिघके समान मोटी भुजाओं-वाले निकुम्भने सूर्यके समान चमकते हुए उस परिघको उन्हींकी छातीपर दे मारा। हनुमान्‌जीकी छाती बड़ी सुदृढ़ और विशाल थी। उसकी टक्कर लगते ही सहसा उस परिघके सैकड़ों टुकड़े हो गये और आकाशमें चारों ओर बिखरकर सैकड़ों उल्काओंके समान जान पड़े। महाकपि हनुमान्‌जी परिघसे आहत होनेपर भी उस प्रहारसे विचलित नहीं हुए, पर्वतके समान अचल भावसे खड़े रहे। तत्पश्चात् उन महाबलीने बलपूर्वक मुट्ठी बाँधी और निकुम्भकी छातीमें वेगसे प्रहार किया। इससे निकुम्भका कवच फट गया, उसकी छातीसे रक्त बहने लगा और उसका शरीर काँप उठा। फिर थोड़ी देरमें सँभलकर उसने महाबली हनुमान्‌जीको पकड़ लिया और उन्हें उठाकर ले जाने लगा। यह देख पवनकुमारने अपने वज्रतुल्य घूँसेसे उसपर चोट की और अपनेको उसके चंगुलसे छुड़ाकर वे पृथ्वीपर खड़े हो गये। इसके बाद उन्होंने निकुम्भको जमीनपर दे मारा और खूब जोर-जोरसे रगड़ा। फिर बड़े वेगसे उछलकर वे उसकी छातीपर चढ़ बैठे और दोनों हाथोंसे उसका गला मरोड़कर उन्होंने उसके मस्तकको उखाड़ लिया। निकुम्भके प्राणत्याग करनेपर सभी वानर हर्षमें भरकर गर्जने लगे। सम्पूर्ण दिशाएँ कोलाहलसे भर गयीं, पृथ्वी हिलती-सी जान पड़ी और राक्षसोंके भीतर भयने अधिकार जमा लिया।

## मकराक्षका वध

निकुम्भ और कुम्भके मारे जानेका समाचार सुनकर रावण क्रोध और शोकसे व्याकुल हो गया तथा विशाल नेत्रों-वाले मकराक्षसे, जो खरका पुत्र था, बोला—'बेटा! मेरी आज्ञासे सेना साथ लेकर जाओ और वानरोंसहित राम-लक्ष्मणको मार डालो।' रावणकी बात सुनकर मकराक्ष प्रसन्नतापूर्वक बोला—'बहुत अच्छा।' फिर उसने दशाननको प्रणाम करके उसकी प्रदक्षिणा की और पुनः राक्षसराजकी आज्ञा ले वह बलवान् वीर अपने सुन्दर महलसे बाहर निकला। पास ही सेनाध्यक्ष खड़ा था, उसे देखकर खरके पुत्रने कहा—'सेनापते! शीघ्र ही रथ और सेना ले आओ।' आज्ञा पाकर सेनाध्यक्षने रथ और सेना उसके पास लाकर खड़ी कर दी। निशाचर मकराक्षने रथकी प्रदक्षिणा की और [ उसपर आरूढ़ हो ] सारथिको सम्बोधित करके कहा—'रथको शीघ्रतापूर्वक ले चलो।' इसके बाद उसने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त राक्षसोंसे कहा—'निशाचरो! तुम सब लोग मेरे आगे रहकर युद्ध करो। मैं राम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा अन्य वानरोंको अपने उत्तम बाणोंका निशाना बनाऊँगा।' मकराक्षका वचन सुनकर वे सभी बलवान् निशाचर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो युद्धके लिये सावधान हो गये। उन सबमें इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति थी और सबके शरीर विशाल थे। वे सभी राक्षस महाकाय मकराक्षको चारों ओरसे घेरकर पृथ्वीको कँपाते हुए रणभूमिकी ओर चले। प्रधान-प्रधान वानरोंने जब देखा कि मकराक्ष नगरसे निकला आ रहा है तब वे सहसा उछल-उछलकर युद्धके लिये खड़े हो गये। फिर तो वानरोंका निशाचरोंके साथ भयंकर युद्ध छिड़ गया, जो देव-दानव-संग्रामके समान रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। निशाचरगण शक्ति, खड्ग, गदा, भाला, तोमर, पट्टिश, भिन्दिपाल, बाणप्रहार, पाश, मुद्गर, दण्ड तथा अन्य प्रकारके शस्त्रोंके आघातसे वानरोंका संहार करने लगे। खरपुत्र मकराक्षने अपने सायकोंसे वानरोंको अत्यन्त घायल कर दिया। वे बड़ी घबराहटमें पड़ गये और भयसे पीड़ित हो इधर-उधर भागने लगे। इस प्रकार वानरोंको तितर-बितर होते देख श्रीरामचन्द्रजीने बाणोंकी वृष्टि करके राक्षसोंको रोका। यह देख मकराक्षकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और वह इस प्रकार कहने लगा—'राम! ठहरो, मेरे साथ तुम्हारा द्वन्द्वयुद्ध होगा। आज मैं अपने धनुषसे छोड़े हुए तीखे बाणोंके द्वारा तुम्हारे प्राण हर लूँगा। उस समय दण्डकारण्यके भीतर जो तुमने मेरे पिताका वध किया था, तभीसे अबतक राक्षस-वधके काममें लगे हुए तुम्हारा स्मरण करके मेरा रोष बढ़ता जाता था। सौभाग्यकी बात है, जो आज तुम मेरी आँखोंके सामने पड़ गये। जो-जो वीर निशाचर तुम्हारे हाथों मारे गये हैं, उन्हींके साथ तुम्हें भी निवास करना पड़ेगा।'

बढ़-बढ़कर बातें बनानेवाले मकराक्षके ये वचन सुनकर दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने हँसकर कहा—'राक्षस! क्यों व्यर्थ डींग हाँकता है? तेरी ये बहुत-सी बातें वीर पुरुषोंके कहनेयोग्य नहीं हैं। संग्राममें युद्ध किये बिना कोरी बकवादके बलसे विजय नहीं मिल सकती। [ हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ ] दण्डकारण्यमें चौदह हजार राक्षसोंके साथ तेरे पिताको तथा त्रिशिरा और दूषणको भी मैंने ही मारा था।' श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर महाबली मकराक्षने समराङ्गणमें रघुनाथजीपर बाणोंका प्रहार आरम्भ किया; परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने बाणोंकी झड़ी लगाकर राक्षसके एक-एक बाणके अनेकानेक टुकड़े कर दिये और वे सभी छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। दशरथनन्दन श्रीराम और खरपुत्र मकराक्ष—इन दोनोंमें बलपूर्वक द्वन्द्वयुद्ध हुआ। दोनोंके शरीर बिंध गये थे; फिर भी उनका बल दुगुना बढ़ता जाता था। वे दोनों संग्रामभूमिमें एक-दूसरेके अस्त्रोंको काटते हुए लड़ रहे थे। सम्पूर्ण दिशा और विदिशाएँ बाण-समूहोंसे आच्छादित हो गयी थीं। सारी पृथ्वी ढक गयी थी। तदनन्तर महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधमें भरकर राक्षसके धनुषको काट डाला और आठ नाराचोंके द्वारा उसके सारथिको बींध दिया। फिर अनेकों बाणोंसे रथको छिन्न-भिन्न करके उन्होंने घोड़ोंको भी मार गिराया। रथहीन हो जानेपर मकराक्षने पृथ्वीपर खड़े होकर अपने हाथमें शूल लिया, जो प्रलयकालीन अग्निके समान देदीप्यमान हो रहा था। वह महान् शूल भगवान् शंकरका दिया हुआ था। उसे देखकर सम्पूर्ण देवता भयसे पीड़ित हो सब दिशाओंमें भाग गये। निशाचरने उस महान् शूलको घुमाकर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर क्रोधपूर्वक चलाया। खरपुत्रके हाथसे छूटे हुए उस प्रज्वलित शूलको अपनी ओर आते देख श्रीरामने चार बाणोंसे उसे काट दिया और वह कई टुकड़ोंमें होकर पृथ्वीपर बिखर गया। शूलके टुकड़े-टुकड़े हुए देख निशाचर मकराक्षने घूँसा तानकर रघुनाथजीसे कहा—'अरे, जरा खड़ा तो रह।' भगवान्‌ने उसे आते देख अपने धनुषपर आग्नेयास्त्रका सन्धान किया और उसके द्वारा उस राक्षसको मार डाला। बाणके आघातसे राक्षसका हृदय विदीर्ण हो गया और वह मरकर गिर पड़ा। उसका गिरना देखकर सभी राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंके भयसे व्याकुल हो लङ्कामें भाग गये और देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

## इन्द्रजित्‌का युद्ध और उसके द्वारा मायामयी सीताका वध

मकराक्षके मारे जानेका समाचार सुनकर युद्धविजयी रावणने अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने पुत्र इन्द्रजित्‌को युद्ध करनेके लिये आज्ञा दी और कहा—'वीर! तुम महापराक्रमी राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको छिपकर या प्रत्यक्ष रूपसे मार डालो; क्योंकि तुम बलमें सर्वथा बढ़े-चढ़े हो। तुमने अनुपम पराक्रमी इन्द्रपर भी विजय पायी है, फिर उन मनुष्योंको


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


संग्राममें सामने पाकर क्या तुम नहीं मार सकोगे।' अपने पिता राक्षसराजके ऐसा कहनेपर इन्द्रजित्ने उसकी आज्ञा स्वीकार की और यज्ञभूमिमें जाकर विधिपूर्वक अग्निमें हवन करना आरम्भ किया। उस समय तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् अग्निदेवने स्वयं प्रकट होकर हविष्य ग्रहण किया। उनकी ज्वाला दक्षिणावर्त होकर निकल रही थी। हवनके द्वारा देवता-दानव और राक्षसोंको तृप्त करनेके पश्चात् इन्द्रजित् अन्तर्धान होनेकी शक्तिसे सम्पन्न सुन्दर रथपर आरूढ़ हुआ तथा सूर्यके समान तेजस्वी ब्रह्मास्त्रसे सुरक्षित हो वह महाबली वीर लङ्कापुरीसे बाहर निकलकर बोला—'आज राम और लक्ष्मणको मारकर मैं समूची पृथ्वीको वानरोंसे सूनी कर दूँगा और ऐसा करके अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त करूँगा।' यह कहकर वह अदृश्य हो गया।

रावणकी आज्ञाके अनुसार इन्द्रजित् कुपित होकर रणभूमिमें आया; वह स्वयं जैसा कठोर था वैसे ही कठोर धनुष और बाण भी उसने धारण कर रखे थे। वहाँ पहुँचकर रावणकुमारने देखा कि महापराक्रमी वीर राम और लक्ष्मण वानर-सेनाके बीचमें विराजमान हैं। फिर उसने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और श्रीराम-लक्ष्मणके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उसका रथ आकाशमें खड़ा था और श्रीराम तथा लक्ष्मण युद्धभूमिमें विराजमान थे। उन दोनोंकी दृष्टिसे ओझल होकर वह राक्षस उन्हें तीखे बाणोंसे बींधने लगा। तब उन दोनों भाइयोंने भी अपने-अपने धनुषपर बाणोंका सन्धान करके दिव्य अस्त्र प्रकट किये और बाणोंका जाल-सा तानकर आकाशको आच्छादित कर दिया। यह देख महाबाहु इन्द्रजित्ने पत्थरोंकी वर्षाके समान नाराचों और बाणोंकी वृष्टि प्रारम्भ की। वह वरदानमें प्राप्त हुए तेजस्वी बाणोंके द्वारा क्रोध-पूर्वक श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें प्रहार करने लगा। इधरसे श्रीराम और लक्ष्मण भी तीखे बाण छोड़ने लगे। वे बाण आकाशमें इन्द्रजित्को घायल करके रक्तमें डूबकर पृथ्वीपर गिरते थे। जिस ओरसे तीखे बाण आते दिखायी देते, उसी ओर वे दोनों भाई भी अपने उत्तम अस्त्रोंको चलाया करते थे।

इन्द्रजित्की गति, रूप, धनुष और बाणोंको कोई नहीं जान पाता था। मेघोंकी घटामें छिपे हुए सूर्यकी भाँति उसकी कोई भी बात किसीको ज्ञात नहीं हो पाती थी। उसके द्वारा घायल और आहत होकर कितने ही वानर अपने प्राण खो बैठे। सैकड़ों योद्धा मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े। यह देख लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अपने भाईसे कहा—'आर्य! अब मैं सम्पूर्ण राक्षसोंका वध करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करूँगा।' उनकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'महाबाहो! जो युद्ध न करता हो, छिपा हो, हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, युद्धसे भाग रहा हो अथवा पागल हो गया हो—ऐसे व्यक्तिका वध करना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। अब मैं इस इन्द्रजित्के ही वधका प्रयत्न करता हूँ। आओ, हमलोग विषैले सर्पोंकी भाँति भयंकर तथा अत्यन्त वेगशाली अस्त्रोंका प्रयोग करें। यह मायावी राक्षस बड़ा नीच है, इसने अपने रथको छिपा लिया है। यदि दीख जाय तो वानर-यूथपति भी इसके प्राण ले सकते हैं।' यों कहकर महात्मा श्रीरामचन्द्रजी क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले उस भयंकर राक्षसका शीघ्रतापूर्वक वध करनेके विषयमें विचार करने लगे।

रघुनाथजीके हार्दिक अभिप्रायको इन्द्रजित् ताड़ गया; इसलिये युद्धसे निवृत्त होकर वह लङ्कापुरीमें चला गया। वहाँ जानेपर बलवान् राक्षसोंके वधका स्मरण हो आनेसे उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं, अतः राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर वह नगरके पश्चिम-द्वारसे पुनः बाहर निकला। दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको युद्धके लिये अत्यन्त उत्साहित देख इन्द्रजित्ने [ उन्हें भ्रममें डालनेके लिये ] अपनी माया प्रकट की। उसने मायाकी सीताका निर्माण करके उसे अपने रथपर बिठा लिया। उस राक्षसकी बुद्धि बड़ी खोटी थी, उसने सबको मोहमें डालनेका विचार करके मायासे बनी हुई सीताको मारनेका निश्चय किया। इसी अभिप्रायसे वह वानरों-के सामने गया। उसे देखकर सभी वानर क्रोधमें भर गये और हाथमें शिला उठाये युद्धकी इच्छासे उसके ऊपर टूट पड़े। कपि-श्रेष्ठ हनुमान्जी पर्वतका एक बहुत बड़ा शिखर, जिसको उठाना दूसरे किसीके लिये नितान्त कठिन था, हाथमें लिये सबके आगे चल रहे थे। उन्होंने इन्द्रजित्के रथपर सीताको देखा। उनकी खुशी मारी गयी थी। वे एक वेणी धारण किये अत्यन्त दीन दिखायी देती थीं। उनके शरीरपर एक ही मलिन वस्त्र था, धूल और मैलसे उनके सारे अङ्ग भरे थे। हनुमान्जी कुछ देरतक उनकी ओर देखते रहे, अन्तमें यह निश्चय किया कि ये मिथिलेशकुमारी ही हैं। शोकसे आकुल, आनन्दशून्य, दीन एवं तपस्विनी सीताको इन्द्रजित्के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रथपर बैठी देख वे सोचने लगे कि 'आखिर इस राक्षसका अभिप्राय क्या है ?' फिर वे मुख्य-मुख्य वानरोंको साथ लेकर रावण-पुत्रकी ओर दौड़े।

वानरोंकी उस सेनाको अपनी ओर आते देख रावणकुमारके क्रोधकी सीमा न रही। उसने तलवारको म्यानसे बाहर निकाला और सीताके सिरके बाल पकड़कर उसे घसीटा। मायासे रथपर बिठायी हुई वह स्त्री 'राम-राम' कहकर चिल्लाने लगी और राक्षस इन्द्रजित् उन वानरोंके देखते-देखते उसे पीटने लगा। सीताको उस अवस्थामें

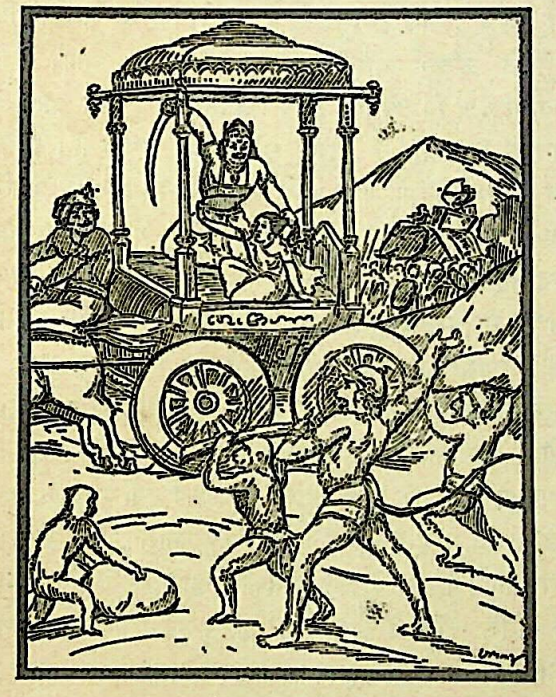

देख हनुमान्‌जी क्रोधमें आकर राक्षसराजके पुत्रसे कठोर वचन बोले—'दुरात्मन्! तू अपने विनाशके लिये तुला हुआ है, तभी सीताके केशोंका स्पर्श कर रहा है। ब्रह्मर्षियोंके कुलमें उत्पन्न होकर भी तूने राक्षसी-योनिका आश्रय लिया है। धिक्कार है तुझ पापाचारीको! ओह! तेरी बुद्धि ऐसी बिगड़ी हुई है। निर्दयी! दुराचारी! पापी! क्या यह नीच काम करते तुझे लज्जा नहीं आती? सीताने तेरा क्या अपराध किया है, जो इन्हें इतनी निर्दयताके साथ मार रहा है? सीताको मारकर तू अधिक कालतक जीवित नहीं रह सकेगा। सब लोगोंके द्वारा वध करनेके योग्य महापापी भी जिनकी निन्दा करते हैं, वे ही लोक स्त्रीहत्यारोंको प्राप्त होते हैं। तू प्राण त्यागकर उन्हीं लोकोंमें जायगा।' यह सुनकर इन्द्रजित्‌ने कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीसे कहा—'वानर! तुम, सुग्रीव और राम जिसके लिये यहाँतक आये हैं, उस विदेहकुमारीको मैं अभी तुम्हारे सामने ही मार डालूँगा। इसके बाद राम, लक्ष्मण और सुग्रीवका, तुम्हारा तथा नीच विभीषणका भी वध करूँगा। इसके सिवा तुम जो यह कह रहे हो कि स्त्रियोंको मारना नहीं चाहिये, उसका उत्तर यह है कि जिस कार्यके करनेसे शत्रुओंको अधिक कष्ट पहुँचे, वह कर्त्तव्य ही माना गया है।' यह कहकर इन्द्रजित्‌ने रोती हुई मायामयी सीताका मस्तक तीखी धारवाली तलवारसे काट डाला और वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। इस प्रकार उस स्त्रीकी हत्या करके इन्द्रजित्‌ने हनुमान्‌जीसे कहा—'देखो, मैंने रामकी प्यारी पत्नी सीताको तलवारसे मौतके घाट उतार दिया। अब उसके लिये तुमलोगोंका परिश्रम व्यर्थ है।' रावणका पुत्र बड़ा दुष्ट था। उसने इस प्रकार मायामयी सीताका वध करके अपने मनमें बड़ी प्रसन्नताका अनुभव किया। उसे हर्षमें भरा देख वानर विषादग्रस्त हो भाग खड़े हुए।

## सीताके लिये श्रीरामचन्द्रजीका शोक, विभीषणद्वारा भ्रम-निवारण तथा लक्ष्मणका इन्द्रजित्‌से युद्ध करनेके लिये प्रस्थान

वानरोंको दीन एवं भयभीत होकर भागते देख वायुपुत्र हनुमान्‌जीने उन सबको पुकारकर कहा—'भाइयो! तुम क्यों भागे जा रहे हो। मैं युद्धमें आगे-आगे चलता हूँ। तुम सब लोग मेरे पीछे आ जाओ।' पवनकुमारके ऐसा कहनेपर वानरोंका चित्त प्रसन्न हो गया और वे राक्षसोंके प्रति अत्यन्त कुपित होकर पर्वत-शिखर तथा वृक्ष उठाये लौट पड़े। महाकपि हनुमान्‌जीने प्रलयकालीन यमराजके समान रूप धारण किया और वानर-सेनासे घिरकर वे राक्षसोंका संहार करने लगे। [ सीताके वधसे ] उनके मनमें बड़ा शोक हो रहा था और [ इन्द्रजित्‌का अत्याचार देखकर ] उनका क्रोध भी बहुत बढ़ गया था। इसलिये उन्होंने रावणकुमारके रथपर एक बहुत बड़ी शिला फेंकी। उसे अपने ऊपर आते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


देख सारथिने सधाये हुए घोड़ोंको हाँककर रथ दूर हटा दिया। अतः सारथिसहित रथपर बैठे हुए इन्द्रजित्‌के पास-तक न पहुँचकर वह शिला पृथ्वीपर गिर पड़ी, परन्तु गिरते-गिरते उसने बहुतेरे राक्षसोंको कुचल डाला। इसके बाद सैकड़ों वानर गर्जना करते हुए दौड़े और इन्द्रजित्‌के ऊपर वृक्षों और पर्वत-शिखरोंकी भारी वर्षा करने लगे। भीमकाय वानरोंद्वारा बलपूर्वक चलाये हुए वृक्षोंकी मार खाकर घोर निशाचर रणभूमिमें छटपटाने लगे। यह देख दृढ़पराक्रमी इन्द्रजित् शूल, वज्र, तलवार, पट्टिश तथा मुद्गरोंसे प्रधान-प्रधान वानरोंको चोट पहुँचाने लगा। इधरसे महाबली हनुमान्‌जी भी तनों और शाखाओंवाले वृक्षों, पर्वत-शिखरों तथा शिलाओंके द्वारा राक्षसोंका संहार करने लगे। उन्होंने शत्रुओंका वेग रोक दिया और वानरोंसे कहा—'बन्धुओ! श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेकी इच्छा रखनेवाले हम सब लोग जिनके लिये प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करते हैं, वे भगवती जनककिशोरी मारी गयीं। इस बातको भगवान् श्रीराम और सुग्रीवसे कह देना चाहिये। फिर वे लोग जैसा इसके लिये प्रतीकार सोचेंगे, वैसा ही हम भी करेंगे।' यह कहकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने वानरोंको युद्धसे मना कर दिया और धीरे-धीरे सारी सेनाके साथ वे निर्भय होकर लौट आये। हनुमान्‌जीको श्रीरामचन्द्रजीके पास जाते देख दुरात्मा इन्द्रजित् होम करनेकी इच्छासे निकुम्भिला देवीके मन्दिरमें गया। वहाँ जाकर उस निशाचरने राक्षसोंके अभ्युदयके लिये विधिपूर्वक अग्निमें हवन करना आरम्भ किया।

इधर महायशस्वी हनुमान्‌जी उस सेनाके साथ भगवान् श्रीरामके निकट आये और अत्यन्त दुखी होकर बोले—'भगवन्! हमलोग युद्ध करनेमें लगे थे, उसी समय रावणकुमार इन्द्रजित्‌ने हमारे देखते-देखते रोती हुई सीताको कत्ल कर डाला है। उनकी यह अवस्था देख मेरा चित्त व्याकुल हो गया है और मैं दुखी होकर यह समाचार आपको सुनानेके लिये यहाँ आया हूँ।' हनुमान्‌जीके वचन सुनकर रघुनाथजी शोकसे मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े। यह देख श्रेष्ठ वानर कमल और उत्पलकी सुगन्धसे युक्त जल ले आकर उनके ऊपर छिड़कने लगे। भाईकी वह अवस्था देखकर लक्ष्मणको बड़ा दुःख हुआ, वे उन्हें दोनों भुजाओंसे पकड़कर बैठ गये तथा प्रयोजनभरी बात बोले—'आर्य! आप [ चिन्ता छोड़कर ] उठिये, इन्द्रजित्‌ने हमलोगोंको जो दुःख दिया है, उसे मैं अपने पराक्रमसे दूर करूँगा। महाबाहो! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ और उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हैं। [ अतः शोकका परित्याग करें। ] आज मैं बाणोंकी वर्षा करके रथ, हाथी, घोड़े और राक्षसराज रावणसहित समूची लङ्काको पस्त कर दूँगा।'

भ्रातृभक्त लक्ष्मण जब श्रीरामको इस प्रकार आश्वासन दे रहे थे, उसी समय विभीषण वहाँ आ पहुँचे। नाना प्रकारके अस्त्रोंका प्रहार करनेवाले चार निशाचर-वीर सब ओरसे उनकी रक्षा कर रहे थे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, महात्मा लक्ष्मण शोकमें मग्न हैं तथा वानरोंके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए हैं। साथ ही मूर्च्छित हुए श्रीरामपर भी उनकी दृष्टि पड़ी, वे लज्जित और शोकसे सन्तप्त थे। उनकी ऐसी अवस्था देख विभीषणका हृदय आन्तरिक दुःखसे अत्यन्त दीन हो गया और वे पूछने लगे—'यह क्या बात है?' तब लक्ष्मणने विभीषणकी ओर देखकर धीरे-धीरे आँसू बहाते हुए कहा—'सौम्य! हनुमान्‌जीके मुँहसे यह सुनकर कि इन्द्रजित्‌ने सीताको मार डाला, रघुनाथजी मूर्च्छित हो गये हैं।' इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणको विभीषणने रोका और अचेत पड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे यह निश्चित बात कही—'महाराज! हनुमान्‌जीने दुखी होकर आपको जो समाचार सुनाया है, उसे मैं समुद्रको सोख लेनेके समान असम्भव मानता हूँ। महाबाहो! सीताके प्रति दुरात्मा रावणका क्या भाव है, यह मुझे अच्छी तरह मालूम है। वह विदेहकुमारीका वध कदापि नहीं करेगा। मैंने उसका हित करनेकी इच्छासे अनेकों बार प्रार्थना की थी कि 'सीताको छोड़ दो।' परन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी। राक्षस इन्द्रजित् वानरोंको मोहमें डालकर चला गया है। [ जिसका उसने वध किया है ] उसे आप मायामयी सीता समझें। इस समय वह निकुम्भिला-मन्दिरमें जाकर होम करेगा तथा उसको पूर्ण करके जब वह लौटेगा तब इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी उसे संग्राममें परास्त करना कठिन होगा। अतः उसने हमलोगोंको मोहमें डालनेके लिये ही यह माया रची थी—यह बिल्कुल निश्चित बात है। उसने सोचा होगा—वानरोंके साथ युद्ध करते रहनेपर मेरे इस कार्यमें विघ्न पड़ेगा।' [ इसीलिये उसने ऐसा किया है। ] राजन्! बिना किसी कारणके आपको सन्तप्त होते देख हम सब लोगोंको बड़ा खेद हो रहा है। आपकी यह चिन्ता शत्रुओंका हर्ष बढ़ानेवाली है; अतः इसे छोड़िये तथा इस निरर्थक शोक-सन्तापका त्याग कीजिये। वीरवर! यदि आप सीताको पाना और निशाचरों-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वध करना चाहते हैं तो उद्योग कीजिये, हर्ष और उत्साहका सहारा लीजिये। रघुनन्दन! रावणकुमार इन्द्रजित् निकुम्भिलाके स्थानपर गया है, अतः सुमित्राकुमार लक्ष्मण भारी सेना साथ लेकर अभी उसपर आक्रमण करें—यही अच्छा होगा। उस वीरने तपस्या करके ब्रह्माजीसे वरदानमें ब्रह्मशिर नामक अस्त्र और मनचाही गतिसे चलनेवाले घोड़े प्राप्त किये हैं। निश्चय ही इस समय सेनाके साथ वह निकुम्भिलामें गया है। वहाँसे अपना हवन-कर्म समाप्त करके यदि वह उठेगा तो हम सब लोगोंको उसके हाथसे मरा ही समझिये। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीने उसे वरदान देते हुए कहा था—'इन्द्रशत्रो! निकुम्भिलाके स्थानपर पहुँचने और वहाँ हवन-सम्बन्धी कार्य पूर्ण करनेके पहले ही जो शत्रु तुम्हें मारनेके लिये आक्रमण करेगा, उसीके हाथसे तुम्हारा वध होगा।' इस प्रकार उसकी मृत्युका विधान किया गया है। अतः रघुनन्दन! आप इन्द्रजित्का वध करनेके लिये महाबली लक्ष्मणको आज्ञा दीजिये। उसके मारे जानेपर रावणको अपने सुहृदोंसहित मरा ही समझिये।'

विभीषणके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी [ शोकका परित्याग करके ] बोले—'उस भयंकर राक्षसकी मायाको मैं जानता हूँ। वह ब्रह्मास्त्रका ज्ञाता, बुद्धिमान् और बहुत बड़ा मायावी होनेके साथ ही महान् बली भी है। वरुणसहित सम्पूर्ण देवताओंको भी वह युद्धमें अचेत कर सकता है। इन्द्रजित् जब रथसहित आकाशमें विचरने लगता है, उस समय बादलोंमें छिपे हुए सूर्यकी भाँति उसकी गतिका कुछ पता-ही नहीं चलता।' विभीषणसे यह कहकर भगवान् श्रीरामने परम यशस्वी लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! वानरराज सुग्रीवकी सेनाको, हनुमान् आदि यूथपतियोंको और दल-बलसहित ऋक्षराज जाम्बवान्को साथ लेकर जाओ और माया-शक्तिसे सम्पन्न रावणपुत्र इन्द्रजित्का वध करो। महात्मा विभीषण उसकी मायाओंसे अच्छी तरह परिचित हैं। अतः ये भी अपने मन्त्रियोंके साथ तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे।' रघुनाथजीका आदेश सुनकर भयानक पराक्रम करनेवाले लक्ष्मण विभीषणके साथ कवच, खड्ग, बाण तथा धनुष आदि धारण करके युद्धमें जानेके लिये उद्यत हुए। उन्होंने बड़े हर्षके साथ श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'इस विशाल धनुषसे छूटे हुए मेरे बाण आज ही उस भयंकर राक्षसके शरीरको छिन्न-भिन्न कर डालेंगे।' अपने भाईके सामने ऐसा कहकर परम कान्तिमान् लक्ष्मणने तुरंत वहाँसे प्रस्थान किया। जानेके पहले उन्होंने अपने गुरु भगवान् श्रीरामके चरणोंमें पुनः प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा की। इसके बाद वे रावणद्वारा सुरक्षित निकुम्भिला-मन्दिरकी ओर गये। उनके साथ हजारों वानरोंसहित हनुमान् और मन्त्रियोंसहित विभीषण भी चले। मार्गमें जाम्बवान्की सेना भी साथ जानेके लिये तैयार खड़ी दिखायी दी। कुछ दूर जानेपर लक्ष्मणने दूरसे ही देखा, राक्षसराजकी सेना मोर्चा बाँधे खड़ी है। शत्रुओंका दमन करनेवाले लक्ष्मण हाथमें धनुष लेकर ब्रह्माजीके निश्चित किये हुए विधानके अनुसार उस मायावी राक्षसको जीतनेके लिये निकुम्भिला नामक स्थानपर गये और एक जगह खड़े हो गये।

## विभीषण-इन्द्रजित्-संवाद तथा लक्ष्मणका इन्द्रजित्के साथ युद्ध

तदनन्तर, विभीषणने लक्ष्मणसे अभीष्ट अर्थ सिद्ध करनेवाला वचन कहा—'सुमित्रानन्दन! यह सामने जो मेघोंकी काली घटाके समान राक्षसोंकी सेना दिखायी देती है, उसके साथ वानर लोग पत्थरोंका प्रहार करते हुए शीघ्र युद्ध प्रारम्भ करें। आप भी इस विशाल सेनाका मोर्चा तोड़नेकी कोशिश कीजिये। इसके टूटनेपर राक्षसराजका पुत्र इन्द्रजित् भी हमें दिखायी देगा। अतएव आप इस हवन-कर्मकी समाप्तिके पहले ही वज्रतुल्य बाणोंकी वर्षा करते हुए शीघ्र धावा कीजिये। वीर! यह दुरात्मा रावणकुमार बड़ा ही मायावी, अधर्मी, क्रूर कर्म करनेवाला और सम्पूर्ण लोकोंके लिये भयंकर है। अतः इसका वध कीजिये।' विभीषणके वचन सुनकर उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मणने राक्षसराजके पुत्रको लक्ष्य करके बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। साथ ही बड़े-बड़े वृक्ष लेकर युद्ध करनेवाले वानर और भालू भी वहाँ खड़ी हुई राक्षस-सेनापर टूट पड़े। उधरसे राक्षस भी वानर-सेनाको नष्ट करनेकी इच्छासे तीखे बाणों, तलवारों, शक्तियों और तोमरोंका प्रहार करते हुए उनका सामना करने लगे। इस प्रकार वानर और राक्षसोंमें घमासान युद्ध होने लगा। उसके महान् कोलाहलसे समूची लङ्कापुरी गूँज उठी। वानरोंने वृक्षों और पर्वत-शिखरोंसे आघात करते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हुए युद्धमें सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार आरम्भ किया। वानर और भालुओंके शरीर विशाल थे, उनमें बलकी अधिकता थी; अतः युद्धमें प्रवृत्त हुए राक्षसोंके लिये उनसे महान् भय उत्पन्न हो गया।

रावणकुमार इन्द्रजित् बड़ा दुर्धर्ष वीर था। उसने जब सुना कि मेरी सेना शत्रुओंद्वारा पीड़ित होकर बड़े दुःखमें पड़ गयी है, तब अनुष्ठान समाप्त होनेके पहले ही वह युद्धके लिये उठ खड़ा हुआ। उस समय उसके मनमें बड़ा क्रोध भरा था। वह उस स्थानसे निकला और पहलेसे जोतकर तैयार किये हुए रथपर आ बैठा। उसके हाथमें भयंकर धनुष और बाण थे। शरीर काजलकी ढेरी-सा जान पड़ता था। आँख और मुँह लाल-लाल दिखायी देते थे। वह भयंकर राक्षस साक्षात् यमराजके समान प्रतीत होता था। तत्पश्चात् विभीषण लक्ष्मणको साथ लेकर बड़े वेगसे आगे बढ़े। थोड़ी ही दूर जानेपर दोनोंने एक महान् वनमें प्रवेश किया। वहाँ एक बरगदका वृक्ष था, जो श्याम मेघके समान सघन तथा देखनेमें भयंकर था। विभीषणने लक्ष्मणको वहाँकी सब वस्तुएँ दिखाकर कहा—'सुमित्रानन्दन! यह बलवान् रावणकुमार प्रतिदिन यहीं आकर पहले भूतोंको बलि देता, उसके बाद युद्धमें प्रवृत्त होता है। इसीसे संग्रामभूमिमें यह सम्पूर्ण भूतोंके लिये अदृश्य हो जाता है और उत्तम बाणोंसे शत्रुओंको मारता तथा बाँध लेता है। अतः जबतक यह इस बरगदके नीचे आये उसके पहले ही आप अपने तेजस्वी बाणोंद्वारा उसे रथ, घोड़े और सारथि-सहित मार डालिये।' यह सुनकर महातेजस्वी लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर विभीषणकी बात मान ली और वहीं खड़े होकर वे अपने विचित्र धनुषपर टङ्कार देने लगे। इतनेमें ही बलवान् रावणकुमार इन्द्रजित् अग्निके समान तेजस्वी रथपर बैठा हुआ कवच, खड्ग और ध्वजाके साथ दिखायी पड़ा। तब महातेजस्वी लक्ष्मणने कभी भी परास्त न होनेवाले इन्द्रजित्से कहा—'राक्षसकुमार! मैं तुम्हें समरभूमिमें ललकारता हूँ। तुम अच्छी तरह सँभलकर मेरे साथ युद्ध करो।'

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर महातेजस्वी रावणकुमारने वहाँ विभीषणको उपस्थित देख कठोर शब्दोंमें कहा—'राक्षस! यहीं तुम्हारा जन्म हुआ और यहीं बढ़कर तुम इतने बड़े हुए। मेरे पिताके सगे भाई और मेरे चचा हो; फिर तुम अपने पुत्रसे—मुझसे क्यों द्रोह करते हो? तुम्हारी बुद्धि बड़ी खोटी है; तुममें न तो कुटुम्बके प्रति अपनापन है, न आत्मीय जनोंके प्रति स्नेह है और न अपनी जातिका अभिमान ही है। तुम कर्तव्य-अकर्तव्यकी मर्यादा, भ्रातृप्रेम और धर्म—सब कुछ छोड़ चुके हो। दुर्बुद्धे! तुमने स्वजनोंका परित्याग करके दूसरोंकी गुलामी स्वीकार की है, अतः तुम शोकके योग्य और निन्दाके पात्र हो। दूसरे लोग कितने ही गुणवान् क्यों न हों, उनकी अपेक्षा गुणहीन होनेपर भी स्वजन ही श्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि दूसरा दूसरा ही होता है [ वह कभी अपना नहीं हो सकता ]। जो अपना पक्ष छोड़कर दूसरे पक्षके लोगोंका सेवन करता है, वह अपने पक्षके नष्ट हो जानेपर फिर उन्हींके द्वारा मार डाला जाता है।'

भतीजेके ऐसा कहनेपर विभीषणने उत्तर दिया—'राक्षस! तू आज ऐसी शेखी क्यों बघारता है? जान पड़ता है तुझे मेरे स्वभावका पता ही नहीं है। बड़ोंके गौरवका ख्याल करके तू इस कठोरताका परित्याग कर। यद्यपि मैं क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, तथापि कठोर कर्मोंसे मेरा प्रेम नहीं है। अधर्ममें मेरा मन नहीं लगता। जो धर्मसे भ्रष्ट हो गया हो, जिसने पाप करनेका दृढ़ निश्चय किया हो, ऐसे व्यक्तिका त्याग करके प्रत्येक पुरुष उसी प्रकार सुखी होता है, जैसे हाथपर बैठे हुए जहरीले साँपको त्याग देनेसे मनुष्य निर्भय हो जाता है। जो दूसरोंका धन लूटता हो, परायी स्त्रीपर हाथ लगाता हो, उस दुरात्माको जलते हुए घरकी भाँति त्याग देने योग्य बताया गया है। पराये धनका अपहरण, परस्त्रीके साथ संसर्ग और अपने हितैषी सुहृदोंपर अविश्वास—ये तीन दोष घातक माने गये हैं।* महर्षियोंका भयंकर वध, सम्पूर्ण देवताओंके साथ विरोध, अभिमान, रोष, सबसे वैर बाँधना और धर्मके प्रतिकूल चलना—ये दोष मेरे भाईमें मौजूद हैं, जो प्राण और ऐश्वर्य दोनोंका नाश करनेवाले हैं। इन्हीं दोषोंके कारण मैंने अपने भाई—तेरे पिताका त्याग किया

* धर्मात् प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम्।
त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा॥
परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम्।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा॥
परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्।
सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः॥
( ८७। २१-२३ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तू रहेगा और न तेरे पिता ही रह जायँगे। तू अत्यन्त अभिमानी, उद्दण्ड और बालक है, कालके पाशमें बँधा हुआ है। अतः तेरी जो भी इच्छा हो, बका कर। नीच राक्षस! अब तू बरगदके नीचे नहीं आ सकता। नरश्रेष्ठ लक्ष्मणके साथ युद्ध कर, इनका तिरस्कार करके तू जीवित नहीं रह सकता।

विभीषणकी बात सुनकर रावणकुमारके क्रोधकी सीमा न रही। वह रोषमें भरकर कठोर वचन कहने लगा और सामने आ पहुँचा। काले घोड़ोंसे युक्त सजे-सजाये विशाल रथपर बैठा हुआ इन्द्रजित् यमराजके समान जान पड़ता था। उसने देखा, सुमित्राकुमार लक्ष्मण हनुमान्‌की पीठ-पर आरूढ़ होकर उदयगिरिके शिखरपर आये हुए सूर्यकी भाँति दमक रहे हैं। उनपर दृष्टि पड़ते ही उस निशाचरका क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने विभीषणसहित लक्ष्मण तथा मुख्य-मुख्य वानरोंसे कहा—'शत्रुओ! आज अपने शूल, शक्ति, ऋष्टि तथा तीखे बाणोंके द्वारा विदीर्ण करके तुम सब लोगोंको यमलोग पहुँचा दूँगा। युद्धमें मेरे हाथ बड़ी फुर्तीसे अस्त्र चलाते हैं। जब मैं मेघके समान गर्जता हुआ बाणोंकी वर्षा आरम्भ करूँगा, उस समय कौन मेरे सामने ठहर सकेगा।' राक्षसराजकी वह गर्जना सुनकर लक्ष्मणने निर्भय होकर क्रोधपूर्वक कहा—'निशाचर! तुम्हारे अभीष्टकी सिद्धि तुमसे कोसों दूर है। दुर्मते! जो कार्य किसीके द्वारा भी सिद्ध होना कठिन है, उसे वाणीसे कहकर तुम अपनेको कृतार्थ मान रहे हो? उस दिनके संग्राममें अपनेको छिपाकर तुमने जैसा बर्ताव किया है, वह चोरोंका मार्ग है। वीर पुरुष उसका अनुसरण नहीं करते। इस समय मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, तुम अपना तेज दिखाओ। केवल बातें क्यों बना रहे हो?'

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर युद्ध विजयी महाबली इन्द्रजित् अपने भयंकर धनुषको दृढ़तापूर्वक पकड़कर तीखे बाणोंकी वृष्टि करने लगा। उसके छोड़े हुए वेगशाली बाण साँपके विषकी तरह जहरीले थे। वे फुफकारते हुए सर्पके समान लक्ष्मणके शरीरपर पड़ने लगे। उन बाणोंसे सुमित्राकुमारका शरीर अत्यन्त घायल हो गया। वे रक्तसे नहा उठे। इन्द्रजित् अपना यह पराक्रम देख लक्ष्मणके पास जा गर्जकर बोला—'सुमित्रानन्दन! मेरे धनुषसे छूटे हुए तेज धारवाले बाण शत्रुके प्राण लेनेवाले हैं। ये अवश्य ही आज तुम्हारे जीवनका नाश करेंगे।' इस प्रकार कठोर वचन बोलनेवाले रावणपुत्र इन्द्रजित्‌को लक्ष्मणने क्रोधपूर्वक युक्तियुक्त वचनोंमें उत्तर दिया—'क्रूर कर्म करने-

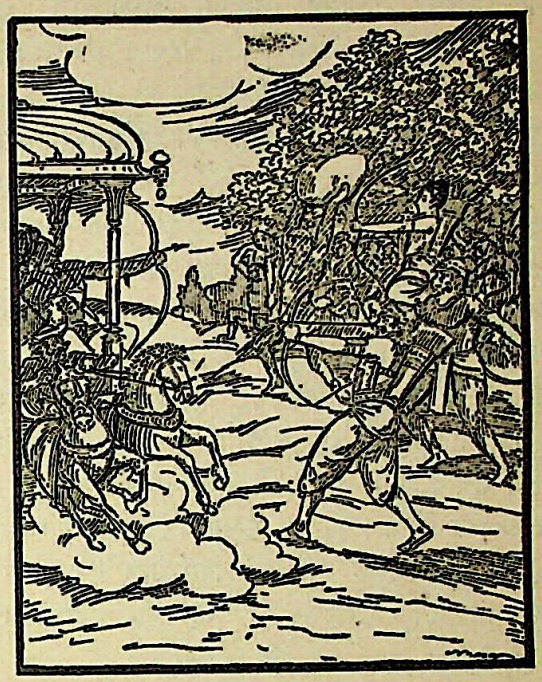

वाले मूर्ख निशाचर! बकवादका बल छोड़ दे। तू ये सब बातें कहता क्यों है? करके दिखा। जो काम अभी किया नहीं, उसके लिये व्यर्थ डींग क्यों हाँकता है? [ जिसके लिये कहता है ] उस कार्यको पूरा कर, जिससे मुझे तेरी बकवाद-पर विश्वास हो। मैं आत्मप्रशंसा किये बिना ही तेरा वध करूँगा।' यह कहकर लक्ष्मणने धनुषको कानतक खींचकर नाराच नामके पाँच बाणोंसे, जो बड़े ही वेगवान् थे, राक्षसकी छातीपर प्रहार किया। उनके बाणोंसे आहत होकर रावणकुमार क्रोधसे आगबबूला हो उठा और उसने तीन बाणोंसे लक्ष्मणको बींध डाला। इस प्रकार नरश्रेष्ठ लक्ष्मण और निशाचर-वीर इन्द्रजित्‌में बड़ा भयंकर सङ्घर्ष हुआ। दोनों अपनी-अपनी विजय चाहते थे। दोनोंमें बल और पराक्रम था तथा दोनों-को ही युद्धमें परास्त करना कठिन था। शत्रुओंका नाश करने-वाले दशरथकुमार लक्ष्मण क्रोधमें भरे सर्पकी भाँति फुफकारने लगे और उस निशाचरपर उन्होंने अनेकों बाणोंका प्रहार किया। उनके धनुषकी टङ्कार सुनकर इन्द्रजित्‌का मुँह उदास हो गया और वह [ चकित होकर ] लक्ष्मणकी ओर देखने लगा।

रावणकुमारको उदास देख विभीषणने युद्धमें लगे हुए लक्ष्मणसे कहा—'महाबाहो! इस समय इन्द्रजित्‌के जो-जो लक्षण मुझे दिखायी दे रहे हैं, उनसे जान पड़ता है कि निश्चय ही इसका उत्साह नष्ट हो गया है; अतः आप इसके वधके लिये शीघ्रता करें।' यह सुनकर लक्ष्मणने विषैले सर्पोंकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँति भयंकर बाणोंको धनुषपर चढ़ाया और उन्हें [ इन्द्रजित्‌को लक्ष्य करके ] चला दिया। वे बाण इन्द्रके वज्रकी भाँति आघात पहुँचानेवाले थे। उनकी चोट खाकर इन्द्रजित् थोड़ी देरके लिये मूर्च्छित हो गया। फिर होशमें आनेपर लक्ष्मणके सामने जा क्रोधसे लाल आँखें करके वह कठोर वचन बोला—'सुमित्रा-कुमार! पहले युद्धमें मैंने जो पराक्रम दिखाया था, क्या उसे तुम भूल गये? उस दिन तुमको और तुम्हारे भाईको भी मैंने बाँध लिया था। तुम दोनों भाई अपने अग्रगामी सैनिकोंके साथ मूर्च्छित होकर पड़े थे।' यह कहकर इन्द्रजित्‌ने तेज धारवाले सात बाणोंसे लक्ष्मणको और दससे हनुमान्‌जीको बींध डाला। साथ ही सौ बाण मारकर विभीषणको भी घायल कर दिया। यह देख लक्ष्मणने हँसते-हँसते कहा—'इससे अपना कुछ भी नहीं बिगड़नेका। निशाचर! रणभूमिमें आये हुए शूरवीर इस तरह प्रहार नहीं करते। तुम्हारे ये बाण बहुत हल्के और कमजोर हैं।'

यह कहकर लक्ष्मणने उस राक्षसके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ की। इससे इन्द्रजित्‌का महान् कवच, जो सोनेका बना हुआ था, टूटकर गिर पड़ा। उसके शरीरमें नाराचोंके प्रहारसे अनेकों घाव हो गये। तब रावणका पुत्र, जो भयंकर पराक्रमी था, क्रोधसे जल उठा और हजारों बाणोंसे लक्ष्मणको बींधने लगा। उसके बाणोंकी चोटसे लक्ष्मणका दिव्य एवं विशाल कवच छिन्न-भिन्न हो गया, दोनों बारंबार लंबी साँसें खींचते हुए भयानक युद्ध करने लगे। दोनोंके सम्पूर्ण अङ्गोंमें बाणोंसे घाव हो गये थे। दोनों ही लहू-लुहान हो गये थे। जैसे वर्षाकालके मेघ आकाशसे जलकी धारा बरसाते हैं, उसी प्रकार वे दोनों भयंकर गर्जना करते हुए बाणोंकी घोर वृष्टि करने लगे। दोनों ही बड़ी फुर्तीके साथ अद्भुत और सुन्दर ढंगसे बाणों-का प्रहार करते थे। उनके बाण चलानेकी कलामें कोई दोष नहीं दिखायी देता था। वे दोनों यशस्वी और विजयके लिये प्रयत्नशील थे। युद्धमें उन दोनोंके चलाये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाण एक-दूसरेके शरीरपर पड़ते, रक्तसे भीगकर निकलते और धरतीमें समा जाते थे तथा उनके हजारों बाण आकाशमें तीखे शस्त्रोंसे टकराते और उन्हें तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे। परस्पर जीतनेकी इच्छा रखनेवाले इन्द्रजित् और लक्ष्मण रह-रहकर भयंकर मार-काट मचाते थे। इस तरह उन दोनोंको युद्ध करते बहुत समय व्यतीत हो गया; परन्तु उनमेंसे न कोई युद्धसे विमुख हुआ और न किसीको थकावटका ही अनुभव हुआ।

## इन्द्रजित् और लक्ष्मणका भयंकर युद्ध तथा इन्द्रजित्‌का वध

लक्ष्मण और इन्द्रजित्‌को परस्पर विजय पानेकी इच्छासे युद्धमें संलग्न देख उत्तम धनुष धारण करनेवाले विभीषण, जो रावणके भाई और बलवान् वीर थे, युद्ध-भूमिमें आगे जाकर खड़े हुए। फिर महान् धनुषको हाथमें लेकर खींचा और राक्षसोंके ऊपर तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ की। उन बाणों-का स्पर्श आगके समान जलानेवाला था। जैसे वज्र बड़े-बड़े पर्वतोंको विदीर्ण कर डालता है, उसी प्रकार विभीषणके बाण राक्षसोंको चीरने लगे। विभीषणके अनुचर भी, जो श्रेष्ठ राक्षस थे, शूल, तलवार और पट्टिशोंके द्वारा वीर राक्षसोंका सफाया करने लगे। इसी समय निशाचरोंमें श्रेष्ठ विभीषणने वानरोंको, जिन्हें राक्षसोंका वध करना प्रिय था, उत्साहित करते हुए कहा—'कपिवरो! अब खड़े-खड़े क्या देखते हो? इस पापीके मारे जानेपर रावणके सिवा इसकी सारी सेनाको मरी समझो। वीर प्रहस्त, महाबली निकुम्भ, कुम्भकर्ण, कुम्भ, धूम्राक्ष, जम्बुमाली, महामाली, तीक्ष्णवेग, अशनिप्रभ, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, वज्रदंष्ट्र, संह्रादी, विकट, अरिघ्न, तपन, मन्द, प्रघास, प्रघस, प्रजङ्घ, जङ्घ, अग्निकेतु, रश्मिकेतु, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, सूर्यशत्रु, अकम्पन, सुपार्श्व, चक्रमाली, कम्पन, देवान्तक तथा नरान्तक—ये सभी बलवान् राक्षस मारे जा चुके हैं। इन सबको मारकर तुमने हाथोंसे समुद्र पार किया है। अब गायकी खुरीके बराबर यह छोटा-सा राक्षस बचा हुआ है। इसे भी शीघ्र ही लाँघ जाओ।'

विभीषणके इस प्रकार प्रेरित करनेपर वानर-यूथपति हर्ष और उत्साहसे भर गये और बारंबार उछलते-कूदते हुए नाना प्रकारसे गर्जना करने लगे। जाम्बवान् भी अपने दलके साथ वानरोंमें मिलकर युद्ध करने लगे। उन सबने पत्थरों, नखों और दाँतोंसे राक्षसोंको मारना आरम्भ किया। अनेकों प्रकारके आयुध धारण करनेवाले महाबली राक्षसोंने अपने ऊपर प्रहार करते हुए जाम्बवान्‌को चारों ओरसे घेर लिया और भय छोड़कर बाण, फरसे, पट्टिश, डंडे और तोमरोंसे उन्हें घायल करने लगे। इस तरह वानरों और राक्षसोंमें अत्यन्त भयंकर घमासान युद्ध छिड़ गया, जो देवासुर-संग्राम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


को भी मात करनेवाला था। महामना हनुमान्‌जीने भी लक्ष्मणको अपनी पीठपरसे उतार दिया और अत्यन्त कुपित हो पर्वतका शिखर उखाड़कर हजारों राक्षसोंका संहार करने लगे। उधर महाबली इन्द्रजित्‌ने अपने चाचा विभीषणसे घोर युद्ध करके पुनः लक्ष्मणपर धावा किया। वे दोनों बाणोंकी वर्षा करते हुए एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे। युद्धमें लगे हुए उन दोनों वीरोंके हाथोंमें इतनी फुर्ती थी कि तरकससे बाणोंका निकालना, उनको धनुषपर रखना, धनुषको इस हाथसे उस हाथमें लेना, उसे मुट्ठीमें दृढ़तापूर्वक पकड़ना, कानतक खींचना, बाणोंका विभाग करना, उन्हें छोड़ना और लक्ष्य बेधना आदि कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था। आकाश, दिशाएँ और विदिशाएँ—सभी बाणोंसे व्याप्त हो गयीं। सब ओर अन्धकार छा गया। बड़ा भयानक दृश्य दिखायी देने लगा। सूर्य अस्त हो गये। सब ओर अँधेरा फैल गया। खूनकी हजारों नदियाँ बह चलीं। महर्षि कहने लगे—'संसारका कल्याण हो।' गन्धर्वोंको बड़ा सन्ताप हुआ। वे चारणोंके साथ वहाँ पहुँचे।

तदनन्तर लक्ष्मणने इन्द्रके वज्रकी समानता करनेवाले भल्ल नामक तीखे बाणसे, जो कानतक खींचकर छोड़ा गया था, रणमें विचरते हुए इन्द्रजित्‌के सारथिका मस्तक धड़से अलग कर दिया। सारथिके मारे जानेपर मन्दोदरीका पुत्र स्वयं ही घोड़ोंको भी काबूमें रखता और धनुषको भी चलाता रहा। युद्धमें उसके द्वारा सारथिके कार्यका भी सम्पादन होना बड़ी अद्भुत बात थी। देखनेवाले चकित रह गये। इन्द्रजित् जब घोड़ोंको रोकनेके लिये हाथ बढ़ाता तब लक्ष्मण उसे तीखे बाणोंसे बींधने लगते और जब वह युद्धके लिये धनुष उठाता तब उसके घोड़ोंपर बाणोंका प्रहार करते थे। इस प्रकार लक्ष्मणने उसे बहुत पीड़ित किया। तत्पश्चात् प्रमाथी, रभस, शरभ और गन्धमादन—इन चार वानरोंने अमर्षमें भरकर बड़ा साहसपूर्ण कार्य किया। वे भयंकर पराक्रम दिखानेवाले वीर सहसा आसमानमें उछलकर उसके चारों घोड़ोंपर कूद पड़े। उन पर्वताकार वानरोंके भारसे दब जानेके कारण घोड़ोंके मुँहसे खून निकलने लगा। उनके अङ्ग भङ्ग हो गये और वे प्राणहीन होकर धरतीपर गिर पड़े। इस प्रकार घोड़ोंकी जान ले इन्द्रजित्‌के विशाल रथको तोड़-फोड़कर वे चारों वानर वेगसे उछले और फिर लक्ष्मणके पास आकर खड़े हो गये।

घोड़ोंके मारे जानेपर तेजस्वी निशाचर इन्द्रजित्‌का क्रोध बहुत बढ़ गया और वह भूमिपर खड़ा हो अपने तेजसे देदीप्यमान होने लगा। लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनों धनुर्धर बाणोंसे एक दूसरेको मार डालना चाहते थे; अतः दोनों विजय-प्राप्तिके उद्देश्यसे मैदानमें आ निकले। राक्षस और वानर परस्पर संहार करते हुए इधर-उधर दौड़ते रहे, परन्तु अपने स्वामीका साथ न छोड़ सके। उस समय रावण-कुमारने प्रसन्न होकर राक्षसोंको हर्ष प्रदान करते हुए कहा—'निशाचरो! चारों दिशाओंमें अन्धकार छा रहा है। मैं जाता हूँ, दूसरे रथपर बैठकर शीघ्र ही युद्धके लिये आऊँगा। तुमलोग ऐसा युद्ध करो, जिससे ये वानरगण नगरमें प्रवेश करते समय मेरा सामना करने न आयें।' ऐसा कहकर रावण-कुमार वानरोंको धोखेमें डालकर रथके लिये लङ्कापुरीमें चला गया और उसने एक सुवर्णभूषित रथको सब प्रकारसे अलङ्कृत करके उसके ऊपर प्रास, खड्ग तथा बाण आदि आवश्यक सामग्री रखी और अश्वविद्याके जानकार सुशिक्षित सारथिके द्वारा उसमें उत्तम घोड़े जुतवाकर उसके साथ ही वह भी आरूढ़ हुआ। तदनन्तर मन्दोदरीकुमार वीर इन्द्रजित् प्रधान-प्रधान राक्षसोंको साथ ले नगरसे बाहर निकला और वेगवान् घोड़ोंके द्वारा विभीषणसहित लक्ष्मणके पास आ पहुँचा। रावणकुमारको रथपर बैठा देख सुमित्राकुमार लक्ष्मण, महापराक्रमी वानर तथा राक्षस विभीषण—सब लोग बड़े विस्मयमें पड़े; सभी उसकी फुर्ती देखकर दंग रह गये।

अब इन्द्रजित् भी अत्यन्त क्रोधमें भर गया और सैकड़ों तथा हजारों वानर-यूथपतियोंको अपने बाण-समूहोंसे मार-मारकर रणभूमिमें गिराने लगा। उसने धनुषको इतना खींचा कि वह मण्डलाकार बन गया। फिर बड़ी शीघ्रताके साथ उस समर-विजयी वीरने वानरोंका संहार आरम्भ किया। उसके भयंकर नाराचोंसे घायल हुए वानर भागकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणकी शरणमें गये, जैसे प्रजा प्रजापतिकी शरणमें जाती है। तब लक्ष्मण क्रोधसे जल उठे और अपने हाथकी शीघ्रता दिखाते हुए उन्होंने इन्द्रजित्‌का धनुष काट दिया। यह देख उस निशाचरने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी; परन्तु लक्ष्मणने तीन बाण मारकर उसे भी काट डाला और विषधर सर्पके समान पाँच विषैले बाणोंसे उन्होंने रावणकुमारकी छाती छेद डाली। वे बाण इन्द्रजित्‌के शरीरको भेदकर पृथ्वीपर गिर पड़े। रक्तमें डूबे होनेके कारण वे लाल रंगके साँपोंकी भाँति जान पड़ते थे। धनुष कट जानेपर बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर इन्द्रजित् अपने मुँहसे


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रक्त वमन करने लगा। इसके बाद उसने एक मजबूत धनुष हाथमें लिया और लक्ष्मणको लक्ष्य करके, जल बरसानेवाले इन्द्रकी भाँति वह बाणोंकी वर्षा करने लगा; परन्तु लक्ष्मण इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने इन्द्रजित्की बाण-वर्षाको अनायास ही रोक दिया। उस समय उन्होंने इन्द्रजित्को जो पराक्रम दिखाया, वह अद्भुत था। रथियोंमें श्रेष्ठ लक्ष्मणने भल्ल नामक बाणसे इन्द्रजित्के सारथिका मस्तक काट डाला। सारथिके न रहनेपर भी वे घोड़े बिना किसी घबराहटके रथको खींचने और मण्डलाकार दौड़ने लगे, यह एक अद्भुत बात थी। रावणकुमार इन्द्रजित् लक्ष्मणके इस पराक्रमको नहीं सह सका। उसने अपनी अस्त्र चलानेकी फुर्ती दिखाते हुए क्रोधमें भरकर सुमित्राकुमारके ललाटको तीन बाणोंसे बींध डाला। राक्षसके द्वारा इस प्रकार पीड़ित होनेपर लक्ष्मणने अपने धनुषको खींचकर पाँच बाणोंसे उसके कुण्डलमण्डित मुखपर प्रहार किया।

लक्ष्मण तथा इन्द्रजित् दोनों वीर महान् बलवान् थे, उन दोनोंके धनुष बहुत बड़े थे। भयंकर पराक्रम करनेवाले वे दोनों योद्धा एक दूसरेको बाणोंसे घायल करने लगे। दोनोंका शरीर खूनसे लथपथ हो रहा था। रणभूमिमें वे दोनों वीर फूले हुए पलाशके वृक्षोंकी भाँति शोभा पा रहे थे। दोनोंके मनमें विजय पानेके लिये दृढ़ सङ्कल्प था, अतः वे आपसमें भिड़कर एक-दूसरेको भयंकर बाणोंका निशाना बनाने लगे। इसी बीचमें कुपित हुए रावणकुमारने विभीषणके मुखपर तीन बाणोंका प्रहार किया। इससे विभीषणको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने दुरात्मा इन्द्रजित्के घोड़ोंको गदासे मार डाला। उसका सारथि पहले ही काम आ चुका था। जब घोड़े भी नष्ट हो गये तब वह रथसे कूद पड़ा और हाथमें शक्ति लेकर उसने अपने चचापर प्रहार किया। विभीषणकी ओर आती हुई शक्तिको देखकर सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने अपने तीखे बाणोंसे उसके दस टुकड़े करके जमीनपर गिरा दिये; फिर सुदृढ़ धनुषवाले विभीषणने अत्यन्त क्रोधमें भरकर वज्रके समान आघात पहुँचानेवाले पाँच बाण इन्द्रजित्की छातीमें मारे। तब इन्द्रजित्के मनमें अपने चचाके प्रति बड़ा क्रोध हुआ और उसने यमराजका दिया हुआ उत्तम बाण, जो अत्यन्त सुदृढ़ था, हाथमें लिया। यह देख भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले लक्ष्मणने भी दूसरा बाण उठाया, जिसके प्रयोगकी शिक्षा स्वयं कुबेरने उन्हें स्वप्नमें प्रकट होकर दी थी। वह बाण इन्द्र आदि देवताओं तथा असुरोंके लिये भी असह्य एवं दुर्जय था। दोनोंके बाण एक ही साथ धनुषसे छूटे और आमने-सामने आकर आपसमें टकरा गये। उन भयंकर बाणोंकी टक्करसे भयानक आग प्रकट हो गयी, जिससे धुआँ उठने लगा और चिनगारियाँ उड़ती दिखायी दीं। वे दोनों बाण दो महान् ग्रहोंकी भाँति आपसमें टकराकर सैकड़ों टुकड़े हो पृथ्वीपर गिर पड़े। रणभूमिमें अपने-अपने बाणको व्यर्थ होता देख वे दोनों योद्धा लज्जित हो अत्यन्त क्रोधमें भर गये। फिर सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने वारुणास्त्र ग्रहण किया। यह देख इन्द्रजित्ने रौद्रास्त्रका प्रयोग किया। उसके अस्त्रके प्रभावसे लक्ष्मणका अद्भुत वारुणास्त्र शान्त हो गया। इसके बाद समर-विजयी इन्द्रजित्ने कुपित होकर आग्नेयास्त्रका सन्धान किया; परन्तु वीर लक्ष्मणने सूर्यास्त्रके प्रयोगसे उसे शान्त कर दिया। अब इन्द्रजित्ने आसुर नामक तीखे बाणका प्रयोग किया। उस समय उसके धनुषसे चमकते हुए कूट, मुद्गर, शूल, भुशुण्डी, गदा, खड्ग और फरसे निकलने लगे। वह अस्त्र बड़ा ही घोर एवं दारुण था। लक्ष्मणने उसे देखकर माहेश्वर अस्त्रके द्वारा रोक दिया। इस प्रकार उन दोनों वीरोंमें बड़ा अद्भुत और रोमाञ्चकारी संघर्ष हुआ। आकाशमें रहनेवाले प्राणी लक्ष्मणको घेरकर खड़े हो गये। ऋषि, पितर, देवता, गन्धर्व, गरुड़ और नाग भी इन्द्रको आगे करके रणभूमिमें सुमित्राकुमारकी रक्षा करने लगे।

तदनन्तर लक्ष्मणने दूसरा उत्तम बाण अपने धनुषपर रखा, जिसका स्पर्श आगके समान जलानेवाला था। उसमें रावणपुत्रको विदीर्ण कर डालनेकी शक्ति थी। उसको रोकना या उसके प्रहारको सह लेना किसीके लिये भी सहज नहीं था। उस बाणका नाम था ऐन्द्रास्त्र। पूर्वकालमें जब देवासुर-संग्राम हुआ था, उस समय महातेजस्वी इन्द्रने उसी अस्त्रसे दानवोंपर विजय पायी थी। उस उत्तम बाणको अपने श्रेष्ठ धनुषपर रखकर खींचते हुए लक्ष्मणने कहा—'दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम यदि धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ और पुरुषार्थमें अद्वितीय हों तो हे अस्त्र! तुम इस रावणकुमारको मार डालो।' यह कहते हुए उन्होंने कानतक खींचकर उस बाणको इन्द्रजित्की ओर चलाया। धनुषसे छूटते ही ऐन्द्रास्त्रने चमकते हुए कुण्डलोंसे सुशोभित इन्द्रजित्के किरीटयुक्त सुन्दर मस्तकको धड़से काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। तत्पश्चात् कवचसहित उसका धड़ भी भूमिपर लोट गया। धनुष हाथसे छूटकर अलग जा पड़ा। उस समय वानरगण राक्षसोंको मारने लगे। तब राक्षस अपने पट्टिश,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Foundation Chennai and eGangotri

तलवार और फरसे आदिको वहीं छोड़कर भयभीत हो सब ओर भागने लगे। वानरोंसे पीड़ित होकर कोई डरके मारे लङ्कामें घुस गये, कोई समुद्रमें कूद पड़े और कोई-कोई पर्वतकी चोटीपर चढ़ गये। इन्द्रजित् मरकर रणभूमिमें सो रहा है, यह देख हजारों राक्षसोंमेंसे एक भी वहाँ खड़ा नहीं दिखायी दिया। सबने भिन्न-भिन्न दिशाओंकी शरण ली। राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजित्के मारे जानेपर सारे संसारकी पीड़ा शान्त हो गयी, सबके शत्रुका नाश हो गया और सभी अपने हृदयमें प्रसन्न हो उठे। पापात्मा राक्षसकी मृत्युसे महर्षियों-सहित इन्द्रको बड़ा हर्ष हुआ, आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं, अप्सराओं और गन्धर्वोंके नृत्यका शब्द सुनायी देने लगा। फूलोंकी वर्षा होने लगी। इन्द्रजित्का वध वास्तवमें एक अद्भुत कार्य था। वह निशाचर सम्पूर्ण जगत्के लिये भयंकर था। उसकी मृत्युसे सभी देवता सन्तुष्ट हुए। वे सब मिलकर वहाँ आये और प्रसन्न होकर बोले—'अब निरपराध ब्राह्मण निश्चिन्त होकर विचरें।' तत्पश्चात् उस श्रेष्ठ निशाचरको मरा देख समस्त वानर-यूथपति, विभीषण, हनुमान् तथा जाम्बवान् आदि बहुत प्रसन्न हुए और उन सबने विजय पानेके कारण लक्ष्मणकी बड़ी सराहना की। इस प्रकार युद्धमें सफल होकर उछलते, कूदते, गर्जते, पूँछ कँपाते और ताल ठोंकते हुए वानर लक्ष्मणकी जय-जयकार करने लगे।

## श्रीरामकी प्रसन्नता, रावणका शोक तथा सुपार्श्वके समझानेसे उसका सीता-वधसे निवृत्त होना

उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मणका शरीर रक्तसे भीगा हुआ था। वे शत्रुविजयी इन्द्रजित्को मारकर बहुत प्रसन्न हुए और जाम्बवान्, हनुमान् तथा अन्य सब वानरोंको साथ लेकर शीघ्रतापूर्वक सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीके पास आये। उस समय उन्होंने विभीषण और हनुमान्जीका सहारा ले रखा था। वहाँ पहुँचकर सुमित्राकुमारने अपने भाई भगवान् श्रीरामको प्रणाम किया और उनके पास वे खड़े हो गये। विभीषणने बड़ी प्रसन्नताके साथ यह निवेदन किया कि महात्मा लक्ष्मणने रावणकुमार इन्द्रजित्का मस्तक काट दिया। यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे इस प्रकार बोले—'शाबाश! लक्ष्मण! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। आज तुमने बड़ा दुष्कर पराक्रम किया। इन्द्रजित्के मारे जानेसे ऐसा समझो कि अब हमलोग युद्धमें जीत गये।' अपनी प्रशंसा सुनकर लक्ष्मण लज्जित हो रहे थे। भगवान् श्रीरामने उन्हें बलपूर्वक खींचकर स्नेहवश गोदमें बिठा लिया और प्यारसे उनका मस्तक सूँघा। फिर छातीसे लगाकर वे अपने स्नेही बन्धु लक्ष्मणकी ओर बारंबार देखने लगे और उन्हें धैर्य देते हुए बोले—'वीर! अपने दुष्कर पराक्रमके द्वारा आज तुमने बड़ा कल्याणमय कार्य किया। पुत्रके मारे जानेसे रावणको भी अब मैं मरा ही समझता हूँ। विभीषण और हनुमान्ने भी युद्धमें बहुत बड़ा कार्य किया है। वीरवर इन्द्रजित्को तीन दिन और तीन रातोंमें तुमलोगोंने किसी तरह मार गिराया। आज मैं शत्रुहीन हो गया। अब रावण युद्धके लिये बहुत बड़ी सेना लेकर आयेगा। यद्यपि वह दुर्जय वीर है, तथापि मैं बलपूर्वक आक्रमण करके उसे मार डालूँगा।' इस प्रकार भाईको आश्वासन दे भगवान्ने उन्हें गले लगाया और सुषेणको बुलाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—'मित्रवत्सल! सुमित्राकुमार लक्ष्मण जिस तरह बाणकी पीड़ासे रहित और स्वस्थ हो सकें, वह उपाय करो। साथ ही वृक्षोंके द्वारा युद्ध करनेवाले ऋक्ष और वानर-योद्धाओंमें भी जिन्हें बाण लगे हों और जिनके शरीरमें घाव हो गये हों, उन सबको यत्नपूर्वक नीरोग करो।' भगवान् श्रीरामके यह कहनेपर वानर-यूथपति सुषेणने लक्ष्मणकी नाकमें उत्तम ओषधि डाली। उसकी गन्ध सूँघते ही लक्ष्मणके शरीरसे बाण निकल गये, उनकी पीड़ा और वेदना जाती रही तथा उनके घाव भर गये। इसके बाद सुषेणने श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विभीषण आदि सुहृदों तथा समस्त वानर-सेनापतियोंकी चिकित्सा की। उस समय लक्ष्मणको नीरोग होकर खड़ा देख भगवान् श्रीराम, वानरराज सुग्रीव, विभीषण तथा ऋक्षराज जाम्बवान् आदि सब लोग सेनाके साथ अत्यन्त प्रसन्न हुए।

रावणके मन्त्रियोंने जब इन्द्रजित्के वधका समाचार सुना तब उन्होंने तुरंत जाकर रावणसे सारा हाल कह सुनाया। वे बोले—'महाराज! युद्धमें विभीषणकी सहायतासे लक्ष्मणने आपके पुत्रको मार डाला।' अपने बेटे इन्द्रजित्के वधका यह दारुण समाचार सुनकर राक्षसराज रावण मूर्च्छित हो गया। फिर बहुत देरके बाद वह पुत्र-शोकसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकुल हो दीनतापूर्वक विलाप करने लगा—'हा पुत्र! तुमने इन्द्रको परास्त किया था। क्रोधमें भर जानेपर तुम अपने बाणोंसे काल और यमराजको भी मार सकते थे। मन्दराचलके शिखरोंको भी विदीर्ण कर सकते थे। फिर आज लक्ष्मणके वशमें कैसे पड़ गये? आज मैंने सूर्यपुत्र यमराजका महत्त्व विशेषरूपसे समझा है, जिसने तुमपर भी कालधर्म चला दिया। आज समस्त देवता, लोकपाल तथा महर्षि इन्द्रजित्का मारा जाना सुनकर निडर हो सुखकी नींद सो सकेंगे। तीनों लोक तथा जंगलोंसहित यह समूची पृथ्वी एक इन्द्रजित्के बिना मुझे सूनी जान पड़ती है। हाय! आज अन्तःपुरमें जानेपर मुझे राक्षस-कन्याओंका आर्तनाद सुनायी पड़ेगा। बेटा! तुम तो शत्रुओंको संताप देनेवाले थे। आज अपने युवराज-पदको, लङ्कापुरीको, समस्त राक्षसोंको, अपनी माँको, मुझको तथा अपनी स्त्रियोंको छोड़कर तुम कहाँ चले गये? हाय! राम, लक्ष्मण और सुग्रीव अभी जीवित हैं, मेरे हृदयका काँटा अभी दूर नहीं हुआ; तबतक ही हमें छोड़कर तुम कहाँ पधारे?'

इस प्रकार आर्तभावसे विलाप करते हुए राक्षसराज रावणके मनमें पुत्रके वधका स्मरण करके बड़ा क्रोध हुआ। एक तो वह स्वभावसे ही क्रोधी था, दूसरे पुत्रकी चिन्ताओंने उसे उत्तेजित कर दिया—जलते हुएको और भी जला दिया, जैसे सूर्यकी किरणें ग्रीष्म-ऋतुमें उसे अधिक प्रचण्ड बना देती हैं। वह राक्षसोंको युद्धमें स्थिर करनेकी इच्छासे उनके बीचमें खड़ा होकर बोला—'मैंने हजार वर्षोंतक कठोर तपस्या की है। उसके फलसे और ब्रह्माजीकी कृपासे मुझे देवता और असुर—किसीसे कभी भी भय नहीं है। मेरे पास ब्रह्माजीका दिया हुआ कवच है, जो सूर्यके समान दमकता रहता है। देवासुर-संग्राममें वज्रके प्रहारसे भी वह टूट नहीं सका था। यही कवच बाँधकर रथपर आरूढ़ हो जब मैं युद्धक्षेत्रमें जाऊँगा, उस समय साक्षात् इन्द्र भी मेरे सामने नहीं आ सकता; फिर दूसरा कौन मेरा सामना कर सकता है?'

रावण अपने पुत्रके वधसे बहुत दुखी था; इसलिये क्रोधके अधीन होकर उसने क्रूरभाव धारण किया और अपनी बुद्धिसे सोच-विचारकर सीताको मार डालनेका निश्चय किया। उस समय उसकी आँखें लाल और आकृति बड़ी भयावनी हो रही थीं। उसने सब ओर दृष्टि डालकर निशाचरोंसे कहा—'मैं क्षत्रियाधम राममें अनुराग रखनेवाली विदेहकुमारी सीताका नाश कर डालूँगा।' मन्त्रियोंसे ऐसा कहकर उसने तुरंत तलवार हाथमें ली और मन्त्रियों तथा स्त्रियोंके साथ सहसा उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ सीता मौजूद थीं। जानकीने देखा—राक्षस तलवार लिये आ रहा है; उसके हितैषी सुहृद् उसे रोकनेकी बहुत चेष्टा कर रहे हैं, फिर भी वह लौट नहीं रहा है। यह देख सीताको बड़ा दुःख हुआ और वे विलाप करती हुई कहने लगीं—'यह दुर्बुद्धि निशाचर जिस तरह क्रोधमें भरा हुआ यहाँ दौड़ा आ रहा है, इससे जान पड़ता है सनाथा होनेपर भी यह मुझे अनाथाकी भाँति मार डालेगा। पापपूर्ण विचार रखनेवाला यह भयंकर राक्षस पुत्रशोकसे सन्तप्त हो श्रीराम और लक्ष्मणको न मार सकनेके कारण मेरा ही वध करेगा।' सीताको इस प्रकार विलाप करते देख रावणका मन्त्री सुपार्श्व, जो बड़ा बुद्धिमान्, शीलवान् तथा शुद्ध आचार-विचारवाला था, राक्षसराजसे इस प्रकार बोला—'महाराज दशानन! आप साक्षात् कुबेरके

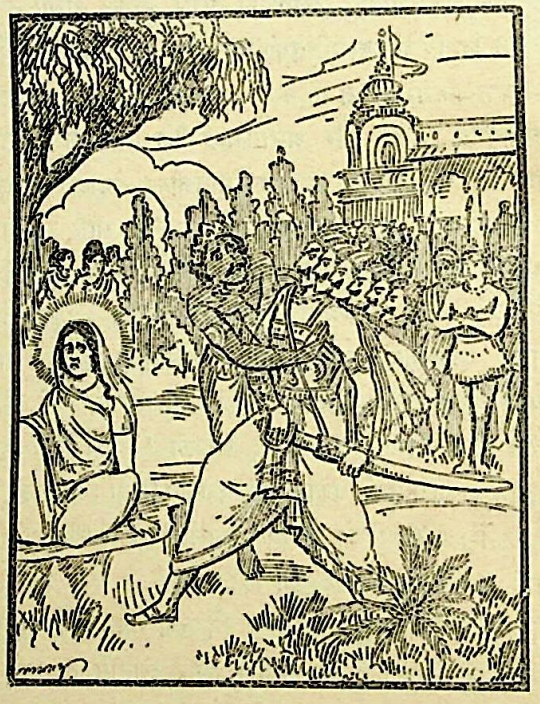

भाई हैं, फिर क्रोधवश धर्मका त्याग करके विदेहकुमारी सीताका वध कैसे करना चाहते हैं? आपने विधिवत् ब्रह्मचर्य-का पालन करते हुए वेद-विद्याका अध्ययन पूरा किया है तथा आप सदा अपने कर्तव्यके पालनमें लगे रहते हैं। इसके सिवा आप शूरवीर हैं, फिर भी अपने हाथसे स्त्रीका वध करनेपर आप कैसे उतारू हो रहे हैं? राजन्! मिथिलेशकुमारीके रूपकी ओर देखकर दया कीजिये और अपना यह क्रोध हमारे साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धमें चलकर रामपर ही उतारिये। आज कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है। आज ही युद्धकी तैयारी कीजिये और कल अमावस्याके दिन सेनाके साथ विजयके लिये यात्रा कीजिये।'

मित्रका यह धर्मानुकूल वचन स्वीकार करके दुरात्मा रावण महलमें लौट गया और वहाँसे फिर अपने सुहृदोंके साथ उसने राज-सभामें प्रवेश किया।

## श्रीरामद्वारा राक्षस-सेनाका संहार तथा रावणका युद्धभूमिमें जाकर वानरोंका विनाश करना

सभामें पहुँचकर निशाचरराज रावण अत्यन्त दुखी एवं दीन होकर सिंहासनपर बैठा। वह पुत्र-शोकसे पीड़ित हो रहा था, अतः अपनी सेनाके प्रधान-प्रधान योद्धाओंसे बोला—'वीरो! तुम सब लोग हाथी, घोड़े और रथ लेकर रणभूमिमें जाओ तथा केवल रामको घेरकर मार डालो। अथवा मैं ही कल तुम्हारे साथ रहकर अपने तीखे बाणोंसे रामचन्द्रके शरीरको छिन्न-भिन्न कर डालूँगा और उस महासमरमें सबके देखते-देखते उसे मार गिराऊँगा।' राक्षसराजकी आज्ञा स्वीकार करके वे निशाचर शीघ्रगामी रथों तथा नाना प्रकारकी सेनाओंसे युक्त होकर लङ्कासे निकले और वानरोंके ऊपर परिघ, पट्टिश, बाण, तलवार तथा फरसे आदि अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करने लगे। इसी प्रकार वानर भी राक्षसोंपर पेड़ और पत्थरोंकी वर्षा करने लगे। बड़ा भयानक संग्राम होने लगा। रणभूमिमें रक्तकी नदियाँ बह चलीं। समस्त वानर खूनसे लथपथ हो रहे थे। वे कूद-कूदकर राक्षसोंकी ध्वजा, कवच, रथ, घोड़े एवं नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका विनाश करने लगे। अपने तीखे दाँतों और नखोंसे उन्होंने निशाचरोंके केश, कान, ललाट और नथुने कुतर डाले। एक-एक राक्षसपर सौ-सौ वानर टूट पड़े। राक्षस भी पर्वतके समान विशालकाय थे। वे उन वानरोंको भारी गदाओं, भालों, तलवारों और फरसोंसे मारने लगे। राक्षसोंकी मार खाकर वानरोंकी वह विशाल सेना शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामकी शरणमें गयी।

तब महातेजस्वी भगवान् श्रीरामने अपना धनुष उठाया और राक्षस-सेनामें प्रविष्ट होकर बाणोंकी वर्षा आरम्भ की। निशाचरोंने देखा—श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे हमारी सेनाकी ध्वजियाँ उड़ रही हैं, समस्त योद्धा भस्म हो रहे हैं और शस्त्रोंके आघातसे पीड़ित हो सब-के-सब भाग रहे हैं। श्रीरामका यह कार्य तो उन्हें दिखायी देता था, परन्तु शीघ्रतापूर्वक युद्ध करनेवाले स्वयं श्रीराम उनके देखनेमें नहीं आते थे। वे युद्धक्षेत्रमें सबको रामके ही समान समझने लगे और रामके ही भ्रमसे क्रोधमें भरकर आपसमें ही एक दूसरेको मारने लगे। महात्मा श्रीरामने राक्षसोंको गान्धर्व नामक दिव्य अस्त्रसे मोहित कर दिया था, इसलिये वे श्रीरामको ठीक-ठीक नहीं देख पाते थे। कभी तो उन्हें हजारों राम दिखायी देते और कभी एक ही राम दृष्टिगोचर होते थे। लुकारीके समान घूमती हुई महात्मा श्रीरामके धनुषकी नोक ही राक्षसोंकी दृष्टिमें पड़ती थी, राम नहीं। जैसे काल-चक्र प्रजाका संहार करता है, उसी प्रकार रघुनाथजी राक्षसोंका विनाश कर रहे थे। अकेले श्रीरामचन्द्रजीने एक पहरके भीतर राक्षस-सेनाके दस हजार रथ, अठारह हजार हाथी, चौदह हजार सवारसहित घोड़े तथा दो लाख पैदलोंका सफाया कर डाला। मरनेसे बचे हुए निशाचर लङ्कापुरीमें भाग गये। तदनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंने 'साधुवाद' देकर भगवान् श्रीरामके इस कार्यकी प्रशंसा की। देवगण बड़े हर्षमें भरकर उनका स्तवन करने लगे।

अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा रावणके भेजे हुए हजारों हाथी, सवारसहित घोड़े, अग्निके समान देदीप्यमान रथ तथा कई हजार वीर राक्षस मारे गये। यह सब देख और सुनकर बचे हुए निशाचर घबरा गये। राक्षसियाँ भी स्थान-स्थानपर एकत्रित हुईं और दीन एवं चिन्तामग्न हो दुःखसे पीड़ित होकर विलाप करने लगीं। रावणने लङ्काके घर-घरमें शोकमग्न राक्षसियोंका करुणाजनक विलाप सुना और हँसकर क्रोधसे व्याकुल हो महोदर, महापार्श्व तथा विरूपाक्ष नामक राक्षसोंसे कहा—'आज अपने धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंद्वारा, जो प्रलयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी हैं, राम और लक्ष्मणको यमलोक पहुँचा दूँगा। शत्रुका वध करके खर, कुम्भकर्ण, प्रहस्त और इन्द्रजित्की मृत्युका भरपूर बदला चुकाऊँगा। मेरे बाण मेघोंकी घटाके समान सब ओर छा जायँगे। अन्तरिक्ष, दिशाएँ, आकाश तथा समुद्र—कुछ भी दिखायी न देगा। आज अपने धनुषसे बाणोंका जाल-सा बिछा दूँगा और वानर-सेनाओंके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। शत्रुओंको मौतके घाट उतारकर आज मैं उन लोगोंके आँसू पोछूँगा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जिनके भाई और पुत्र इस युद्धमें मारे गये हैं। जल्दी मेरा रथ तैयार करो, शीघ्र मेरा धनुष ले आओ। मरनेसे बचे हुए निशाचर युद्धमें मेरे पीछे-पीछे चलें।'

रावणका वचन सुनकर महापार्श्वने वहाँ खड़े हुए सेनापतियोंसे कहा—'सेनाको शीघ्र ही कूच करनेकी आज्ञा दो।' थोड़ी ही देरमें भयंकर आकारवाले राक्षस गर्जना करते वहाँ आ पहुँचे। उनके हाथोंमें नाना प्रकारके हथियार मौजूद थे। तलवार, पट्टिश, शूल, गदा, मूसल, हल, तीखी धारवाली शक्ति, बड़े-बड़े कूट, मुगदर, डंडे, भाँति-भाँतिके चक्र, तीखे फरसे, भिन्दिपाल, शतघ्नी तथा अन्य प्रकारके अस्त्र-शस्त्र उन्होंने ले रखे थे। रावणकी आज्ञासे चार सेनापति एक लाख रथ, तीन लाख हाथी, साठ करोड़ घोड़े, गदहे तथा ऊँट और असंख्य पैदल योद्धा लेकर आ पहुँचे। इस प्रकार यह विशाल सेना लाकर सेनाध्यक्षोंने राक्षसराज रावणके सामने खड़ी कर दी। इसी समय सारथिने एक रथ लाकर उपस्थित कर दिया, जिसपर उत्तम दिव्यास्त्र रखे थे तथा जो अनेकों प्रकारके अलङ्कारोंसे सजा हुआ था। रावण उसे देखते ही उठकर खड़ा हो गया और आठ घोड़ोंसे युक्त उस भयंकर रथपर, जो अपने तेजसे दमक रहा था, जा बैठा। तत्पश्चात् रावणकी आज्ञासे महापार्श्व, महोदर और विरूपाक्ष भी अपने-अपने रथपर सवार हुए। वे सभी राक्षस विजयकी इच्छासे प्रसन्नतापूर्वक गर्जन करते हुए पुरीके बाहर निकले। उनकी आवाज इतनी भयंकर होती थी, मानो वे इस पृथ्वीको विदीर्ण कर रहे हों।

तदनन्तर काल, मृत्यु और यमराजके समान भयंकर तेजस्वी रावण धनुष हाथमें ले राक्षसोंकी सेनासे घिरकर युद्धके लिये आगे बढ़ा। उसके रथके घोड़े बहुत तेज चलनेवाले थे। वह लङ्काके उसी द्वारसे बाहर निकला, जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण मौजूद थे। उस समय सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी, समस्त दिशाओंमें अन्धकार छा गया और धरती डोलने लगी। बादलोंसे रक्तकी वर्षा हुई, रावणकी ध्वजापर गीध बैठ गया। उसकी बायीं आँख और बायीं भुजा फड़कने लगी। इस प्रकार ऐसे-ऐसे अपशकुन हुए, जो युद्धमें रावणको उसकी मृत्युकी सूचना दे रहे थे। परन्तु रावणपर तो काल सवार था, अतः मोहवश उन भयंकर उत्पातोंकी ओर उसने बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। राक्षसोंके रथकी घरघराहट सुनकर वानरोंकी सेना भी युद्धके लिये तैयार हो गयी। फिर दोनों ओरके सैनिक क्रोधमें भरकर विजयकी इच्छासे एक दूसरेको ललकारने लगे। इतनेमें ही दशानन रावण सुवर्णभूषित बाणोंसे वानर-सेनाका भयंकर संहार करने लगा। उसने कितने ही वानरोंके मस्तक काट दिये, कितनोंकी छाती छेद डाली और बहुतोंके कान उड़ा दिये। कितनोंने घायल होकर प्राण त्याग दिये। किन्हीं-किन्हींको बगलमें चोट पहुँचाकर उसने फाड़ डाला। कितनोंके सिर फोड़ दिये और कितने ही वानरोंको अंधा कर दिया।

## विरूपाक्ष, महोदर और महापार्श्वका वध

इस प्रकार जब रावणने अपने बाणोंसे वानरोंको अङ्ग-भङ्ग कर डाला, तब घायल होकर गिरे हुए वानरोंसे वहाँकी सारी भूमि पट गयी। जैसे पतंगे जलती हुई आगकी आँच नहीं सह सकते, उसी प्रकार रावणकी उस असह्य बाण-वर्षाको वानर-योद्धा एक क्षण भी न सह सके। राक्षसराजके तीखे बाणोंकी मारसे पीड़ित हो वे चीखते-चिल्लाते भाग खड़े हुए। इस तरह वानरोंका वेगपूर्वक संहार करके रावण तुरंत श्रीरामचन्द्रजीके सामने जा पहुँचा। सुग्रीवने देखा, वानर-सैनिक युद्धभूमिसे भाग रहे हैं; तब उन्होंने सेनाको स्थिर रखनेका भार सुषेणपर रखकर स्वयं युद्ध करनेका विचार किया। सुषेणको अपने ही समान पराक्रमी वीर समझकर उन्होंने सेनाकी रक्षाका कार्य सौंपा और स्वयं वृक्ष लेकर शत्रुके सामने प्रस्थान किया। उनके दोनों बगलमें तथा पीछे समस्त वानर-यूथपति बड़े-बड़े पत्थर और नाना प्रकारके वृक्ष लेकर चले। उस समय सुग्रीवने युद्धमें उच्चस्वरसे गर्जना की और प्रलयकालमें बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ फेंकनेवाले वायुकी भाँति उन विशालकाय वानरराजने निशाचरोंको कुचल डाला। जैसे मेघ जंगलमें पक्षियोंपर ओले बरसाता है, उसी प्रकार उन्होंने राक्षस-सेनापर पत्थरोंकी वर्षा की। उससे राक्षसोंके मस्तक छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिरने लगे।

इस प्रकार जब सुग्रीवके द्वारा राक्षस-सेनाका सब ओरसे संहार होने लगा और निशाचर चीखते हुए भागने तथा गिरने लगे, तब विरूपाक्ष नामक धनुर्धर राक्षसने भयंकर स्वरमें गर्जना करते हुए हाथीपर चढ़कर धावा किया। उसने सुग्रीवपर भयंकर बाणोंकी वर्षा की। वानरराज उसके तीखे बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर गर्जना करने लगे। उस समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उनका क्रोध बहुत बढ़ गया और उन्होंने विरूपाक्षको मार डालनेका निश्चय किया। शूरवीर तो वे थे ही, एक वृक्ष उखाड़कर आगे बढ़े और अपने सामने खड़े हुए उसके विशाल हाथीपर उन्होंने उस वृक्षको दे मारा। सुग्रीवके प्रहारसे घायल हो वह गजराज एक धनुष पीछे हटकर बैठ गया और वेदनासे चिग्घारने लगा। विरूपाक्ष उस घायल हाथीकी पीठसे तुरंत कूद पड़ा और ढाल-तलवार ले सुग्रीवके सामने जा पहुँचा। यह देख सुग्रीवने एक बहुत बड़ी शिला उठाकर विरूपाक्षपर चलायी। वह राक्षस भी बड़ा पराक्रमी था, उसने शिलाको अपनी ओर आते देख हटकर अपनी रक्षा की और सुग्रीवपर तलवार चलायी। बलवान् निशाचरकी तलवारसे घायल होकर वानरराज सुग्रीव थोड़ी देरतक मूर्च्छित हो धरतीपर पड़े रहे। उसने उनका कवच भी काट गिराया था। थोड़ी ही देरमें पुनः उठकर उन्होंने राक्षसके ललाटपर कसकर तमाचा लगाया, जो इन्द्रके वज्रकी भाँति चोट पहुँचानेवाला था। उससे आहत होकर विरूपाक्ष पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके मुँह तथा नासिका आदिके छिद्रोंसे खूनकी धारा बहने लगी, जैसे झरनेसे जलकी अजस्र धारा गिरती रहती है। उस राक्षसकी आँखें फट गयीं। वानरोंने देखा, निशाचर खूनमें डूबा हुआ छटपटाता और करवटें बदलता है तथा करुणाजनक आर्तनाद कर रहा है। वानरराजके द्वारा महाबली विरूपाक्षका वध हुआ देख वानर और राक्षसोंकी सेनाएँ बढ़ी हुई गङ्गाके समान उद्वेलित हो गयीं। [ एक ओर हर्षका कोलाहल था और दूसरी ओर शोकके कारण आर्तनाद हो रहा था। ]

उस महासंग्राममें दोनों ओरकी सेनाएँ परस्परकी मार-काटसे गर्मीके दिनोंमें सूखते हुए तालाबोंकी तरह क्षीण होने लगीं। अपनी सेनाके विनाश और विरूपाक्षके वधसे राक्षसराज रावणका क्रोध दूना बढ़ गया। साथ ही उसके मनमें दुःख भी हुआ। उसने पास ही खड़े हुए महोदरसे कहा—'महाबाहो! इस समय मेरी विजयकी आशा तुम्हारे ही ऊपर अवलम्बित है। आज अपना पराक्रम दिखाओ और शत्रु-सेनाका विनाश करो। यही स्वामीके अन्नका बदला चुकानेका समय है।' इस प्रकार राजाकी आज्ञा पाकर महाबली महोदर वानर-सेनाका विनाश करने लगा। वानर भी बड़े शक्तिशाली थे, वे बड़ी-बड़ी शिलाएँ हाथमें लेकर शत्रुओंकी सेनामें जा घुसे और समस्त राक्षसोंका संहार करने लगे। महोदरने अत्यन्त क्रोधमें भरकर सुवर्णभूषित बाणोंसे वानरोंके हाथ, पैर और जाँघें काटनी आरम्भ कीं। फिर तो वानर दसों दिशाओंमें भाग चले। अपनी विशाल सेनाको तितर-बितर होते देख सुग्रीवने महोदरपर आक्रमण किया। वानरराज बड़े तेजस्वी थे। उन्होंने पर्वतके समान विशाल एवं भयंकर शिला उठाकर महोदरपर चलायी; किन्तु महोदर इससे विचलित न हुआ। उसने अपने बाणोंसे उस शिलाको तोड़-फोड़ डाला। यह देख सुग्रीवने एक सालका वृक्ष उखाड़कर उस राक्षसके ऊपर फेंका; किन्तु राक्षसने उसके भी अनेकों टुकड़े कर डाले। साथ ही उसने सुग्रीवको भी अपने बाणोंसे घायल किया। इतनेमें क्रोधमें भरे हुए सुग्रीवको वहाँ धरतीपर पड़ा हुआ एक परिघ दिखायी दिया। उन्होंने उसको उठा लिया और वेगपूर्वक घुमाकर उसके द्वारा राक्षसके उत्तम घोड़ोंको मार डाला। घोड़ोंके मरनेपर महोदर अपने विशाल रथसे कूद पड़ा और गदा लेकर आगे बढ़ा। तब सुग्रीवने जमीनपरसे एक लोहेका भयंकर मूसल उठाया और उसे राक्षसपर चला दिया। इतनेमें ही राक्षसने उनके ऊपर गदा फेंकी; गदा और मूसल आपसमें टकराकर टूट गये और पृथ्वीपर गिर पड़े। वे दोनों वीर तेजस्वी एवं बलवान् थे, अतः आयुधोंके टूट जानेपर घूँसोंसे एक-दूसरेको मारने तथा बारंबार गर्जने लगे। वे अपनी भुजाओंसे एक-दूसरेको धक्के देकर गिरानेकी भी चेष्टा करते थे। इस प्रकार बाहु-युद्ध करते-करते दोनों बहुत थक गये। तब राक्षस और सुग्रीव दोनोंने पास ही पड़ी हुई तलवारें उठा लीं और रोषमें भरकर दोनों दोनोंकी ओर गर्जते हुए दौड़े। महोदरने सुग्रीवके विशाल कवचपर तलवारका वार किया। तब वीरवर सुग्रीवने कुण्डल और किरीटसे सुशोभित उस निशाचरका सिर तलवारसे काट लिया और उसकी लाश धरतीपर गिर पड़ी। यह देख राक्षस विषादसे भर गये, सबका हृदय अत्यन्त दीन हो गया और वे सभी भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। इस प्रकार वानरराज सुग्रीवने उस युद्धमें विजय पायी। उस समय देवता, सिद्ध, यक्ष तथा भूतलनिवासी प्राणी बड़े हर्षसे उनकी ओर देखने लगे।

सुग्रीवके द्वारा महोदरके मारे जानेपर महाबली महापार्श्वकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वह अपने बाणोंसे मुख्य-मुख्य वानरोंके मस्तक काट-काटकर गिराने लगा। उसने कितनोंकी बाँहें काट दीं और कितने ही वानरोंके पार्श्वभागको विदीर्ण कर डाला। महापार्श्वकी बाण-वर्षासे पीड़ित होकर बहुत-से वानर विषादग्रस्त हो गये। सबकी चेतना जाती रही।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यह देखकर महावेगशाली अङ्गदने सूर्यकी किरणोंके समान दमकनेवाला परिघ उठाकर महापार्श्वपर दे मारा। उस प्रहार-से महापार्श्वकी सुध-बुध जाती रही और वह मूर्च्छित हो सारथि-सहित रथसे नीचे जा पड़ा। इसी समय ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने एक बहुत बड़ी शिला लेकर उस राक्षसके घोड़ोंको मार डाला और उसके रथको भी चूर्ण कर दिया। थोड़ी ही देरमें चेत होनेपर महाबली महापार्श्वने अङ्गदको अनेकों बाणोंसे घायल किया, तीन बाणोंसे जाम्बवान्‌की छातीमें चोट पहुँचायी तथा गवाक्षको भी अनेकों बाणोंसे आहत किया। गवाक्ष और जाम्बवान् दोनोंको बाणोंसे पीड़ित देख अङ्गदके हृदयमें उस राक्षसके प्रति बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने भयंकर परिघ उठाकर उसे महापार्श्वपर चलाया। परिघकी चोट खाकर निशाचरके हाथसे बाणसहित धनुष छूटकर गिर गया, साथ ही उसके माथेका मुकुट भी धरतीपर जा पड़ा। तब अत्यन्त तेजस्वी महापार्श्वने कुपित होकर एक बहुत बड़ा फरसा हाथमें लिया और उसे वालिकुमार अङ्गदपर चला दिया। उसने अङ्गदके बायें कंधेको लक्ष्य करके वह फरसा चलाया था; परन्तु अङ्गदने कतराकर अपनेको उसके प्रहारसे बचा लिया। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त क्रोधमें भरकर वज्रके समान मुट्ठी बाँधी और राक्षसकी छातीमें बड़े वेगसे आघात किया। उनका घूँसा लगते ही महापार्श्वका हृदय फट गया और वह मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

## राम-रावण-युद्ध, रावणकी शक्तिसे लक्ष्मणकी मूर्च्छा, श्रीरामका विलाप तथा सुषेणकी दवासे लक्ष्मणका सचेत होना

महाबली विरूपाक्ष तो मारा ही गया था, महोदर और महापार्श्व भी जीवित न रह सके—यह देख रावणके हृदयमें बड़ा क्रोध हुआ। उसने सारथिको रथ आगे बढ़ानेकी आज्ञा दी और कहा—'सूत! मेरे मन्त्री मारे गये और लङ्कापुरीपर चारों ओरसे घेरा डाला गया, इसके लिये मुझे बड़ा दुःख है। आज राम-लक्ष्मणको मारकर मैं अपने इस दुःखको दूर करूँगा।' ऐसा कहकर अतिरथी वीर रावण अपने रथकी घरघराहटसे दसों दिशाओंको गुँजाता हुआ बड़ी तेजीके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी ओर बढ़ा। रथकी आवाजसे नदी, पर्वत और जंगलोंसहित वहाँकी सारी पृथ्वी गूँज उठी। उस समय रावणने तामस नामवाले अत्यन्त भयंकर अस्त्रको*प्रकट करके वानर-सेनाको भस्म करना आरम्भ किया। चारों ओर वानरों-की लाशें गिरने लगीं, उनके पैर उखड़ गये और वे इधर-उधर भागने लगे। तामस साक्षात् ब्रह्माजीका बनाया हुआ अस्त्र था, इसलिये वानर-योद्धा उसके वेगको न सह सके। महातेजस्वी भगवान् श्रीराम सुमित्रानन्दन लक्ष्मणके साथ खड़े थे। उन्होंने देखा, वानर भागते हैं और रावण आगे बढ़ा आ रहा है। उसे देखकर रघुनाथजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अपने धनुषके मध्यभागको दृढ़ताके साथ पकड़ा। इतनेमें रावण उन दोनों राजकुमारोंके समीप आ गया। लक्ष्मण चाहते थे, पहले मैं ही रावणसे युद्ध करूँ; इसलिये धनुष तानकर वे अग्नि-शिखाके समान तेजस्वी बाण छोड़ने लगे। लक्ष्मणके बाणोंको धनुषसे छूटते ही रावण अपने बाणोंसे काट गिराता था। वह लक्ष्मणको छोड़कर श्रीराम-चन्द्रजीकी ओर बढ़ा और क्रोधसे लाल आँखें करके उनपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। रघुनाथजीने तीखे भल्लोंसे रावणके बाणोंको काट डाला। फिर श्रीरामने रावणको और रावणने श्रीरामको अपना लक्ष्य बनाया और दोनों ही एक दूसरेपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे। जैसे ग्रीष्म-ऋतु व्यतीत होने-पर आकाश बिजलीसहित मेघोंसे आच्छादित हो जाता है, उसी प्रकार भाँति-भाँतिके बाणोंसे उस समय सारा आसमान भर गया था। दो बड़े-बड़े मेघोंकी भाँति उठे हुए श्रीराम और रावणने पहले तो बाणोंके ही अन्धकारसे आकाशको ढक रखा था; सूर्यास्त होनेपर वह अँधेरा और भी घना हो गया। परस्पर वधकी इच्छा रखने-वाले उन दोनों योद्धाओंमें बड़ा भारी संग्राम हुआ। दोनों ही महान् धनुर्धर, युद्धकी कलामें निपुण तथा अस्त्र-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे; अतः बड़े उत्साहके साथ रणभूमिमें विचरने लगे। वे जिस-जिस मार्गसे जाते, उसी-उसीसे बाणोंकी लहर-सी उठने लगती थी। रावणने अत्यन्त भयंकर असुरास्त्रका प्रयोग किया। उससे सिंह, बाघ, कङ्क, चक्रवाक, गीध, बाज, सियार, भेड़िये, गदहे, सूअर, कुत्ते, मुर्गे, मगर और

* इस अस्त्रके देवता तमोग्रह राहु हैं, इसीलिये इस अस्त्रको 'तामस' कहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहरीले साँपके समान मुखोंवाले तीखे बाणोंकी वृष्टि होने लगी। तेजस्वी रावणने श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर उपर्युक्त बाणोंके सिवा और भी बहुत-से मायानिर्मित बाणोंका प्रयोग किया। इस प्रकार असुरास्त्रसे घिर जानेपर अग्निके समान तेजस्वी रघुनाथजीने आग्नेय-अस्त्र प्रकट किया। उससे अग्नि, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, उल्का तथा बिजलीके समान प्रज्वलित मुखोंवाले नाना प्रकारके बाण उत्पन्न हुए। भगवान् श्रीरामके इन अस्त्रोंद्वारा आहत होकर रावणके पूर्वोक्त भयंकर बाण आकाशमें विलीन हो गये।

अपने अस्त्रके नष्ट हो जानेपर राक्षसराज रावणको दूना क्रोध हुआ। अब उसने श्रीरामचन्द्रजीपर मयासुरके बनाये हुए भयंकर अस्त्रको छोड़नेका उपक्रम किया। उस समय रावणके धनुषसे वज्रके समान दृढ़ और दमकते हुए शूल, गदा, मूसल, मुद्गर, कूट, पाश तथा वज्र आदि भाँति-भाँतिके तीखे अस्त्र छूटने लगे। तब परम तेजस्वी श्रीरघुनाथजीने गान्धर्व अस्त्रके द्वारा रावणके उस अस्त्रको शान्त कर दिया। यह देख रावणकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उसने श्रीरामपर सूर्यास्त्रका प्रयोग किया। फिर तो उसके धनुषसे बड़े-बड़े तेजस्वी चक्र प्रकट होने लगे। युद्धक्षेत्रमें श्रीरामचन्द्रजीने अपने बाण-समूहोंसे रावणके उन विचित्र आयुधोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसके बाद उन्होंने क्रोध करके अनेकों बाणोंद्वारा रावणके समस्त शरीरको बींध डाला। इसी बीचमें श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई महाबली लक्ष्मणने सात बाणोंसे रावणकी ध्वजाके, जो मनुष्यके मस्तकके चिह्नसे सुशोभित थी, अनेकों टुकड़े कर डाले। साथ ही एक बाणसे उसके सारथिका सिर भी उड़ा दिया। फिर पाँच तीखे बाणोंसे उन्होंने रावणका धनुष भी काट दिया। तत्पश्चात् विभीषणने कूदकर उसके पर्वताकार घोड़ोंको गदासे मार डाला।

घोड़ोंके मारे जानेपर रावण अपने विशाल रथसे कूद पड़ा और उसने विभीषणके ऊपर बड़ा क्रोध किया। उस प्रतापी राक्षसने विभीषणको मारनेके लिये एक प्रज्वलित शक्ति चलायी; परन्तु अभी वह विभीषणतक पहुँचने भी नहीं पायी थी कि लक्ष्मणने तीन बाणोंसे उसको काट दिया। वह शक्ति तीन टुकड़े होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। तदनन्तर रावणने [विभीषणको मारनेके लिये] एक ऐसी विशाल शक्ति हाथमें ली, जिसके वेगको काल भी नहीं सह सकता था। वह शक्ति अपने तेजसे दिप रही थी। इतनेमें ही विभीषणके प्राण संकटमें पड़े देख वीर लक्ष्मण तुरंत रावणके सामने आ पहुँचे और उसके हाथमें शक्ति देख उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। मेरे भाईको लक्ष्मणने बचा लिया, यह देख रावण लक्ष्मणकी ओर मुँह करके खड़ा हो गया और इस प्रकार कहने लगा—'बलका अभिमान रखनेवाले राजकुमार! तुमने विभीषणको बचाया है; इसलिये अब यह शक्ति तुम्हारे ऊपर ही गिरायी जायगी और यह तुम्हारी छाती छेद प्राणोंको साथ लेकर ही निकलेगी।' यह कहकर मय दानवके द्वारा बनायी हुई वह अमोघ शक्ति रावणने लक्ष्मणपर बड़े वेगसे चलायी और वह वज्रके समान भयंकर आवाज करती हुई लक्ष्मणकी छातीमें घुस गयी। उस शक्तिने लक्ष्मणके हृदयको चीर डाला और वे अचेत होकर धरतीपर गिर पड़े। भगवान् श्रीराम पास ही खड़े थे। लक्ष्मणको उस अवस्थामें देखकर भ्रातृस्नेहके कारण वे मन-ही-मन बहुत दुखी हुए, परन्तु फिर यह सोचकर कि यह विषादका समय नहीं है, वे युद्धमें डटे रहे।

रावणकी चलायी हुई वह शक्ति लक्ष्मणका हृदय छेदकर धरतीतक पहुँच गयी थी। महाबली रघुनाथजीने उसे दोनों हाथोंसे पकड़कर निकाला और क्रोधपूर्वक तोड़ डाला। श्रीरामचन्द्रजी जब लक्ष्मणके शरीरसे शक्ति निकाल रहे थे, उस समय बलवान् रावण उनके शरीरपर मर्मभेदी बाणोंकी वर्षा करता रहा; परन्तु भगवान् श्रीरामने उसकी परवा नहीं की। उन्होंने लक्ष्मणको छातीसे लगाकर हनुमान् और सुग्रीवसे कहा—'कपिवरो! तुमलोग लक्ष्मणको घेरकर खड़े रहो, अब मेरे लिये पराक्रमका अवसर आया है। मैं तुम्हारे सामने सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, कुछ ही देरमें यह संसार तुम्हें रावणसे रहित दिखायी देगा या रामसे। जिसके लिये मैं वानरोंकी यह विशाल सेना साथ लाया हूँ तथा जिसके उद्देश्यसे समुद्रमें पुल बाँधकर मैंने उसे पार किया, वह पापी आज युद्धमें मेरी आँखोंके सामने उपस्थित है; अब यह जीवित नहीं रह सकता। ये दुर्धर्ष वानर-वीर पर्वतके शिखरोंपर बैठकर आरामके साथ मेरे और रावणके इस युद्धको देखें। आज संग्राममें गन्धर्व, सिद्ध और चारणोंसहित तीनों लोकोंके प्राणी रामका रामत्व देखें। आज मैं वह पराक्रम करूँगा, जिसकी जबतक यह पृथ्वी कायम रहेगी तबतक चराचर जगत्के जीव और देवता भी चर्चा करेंगे।' ऐसा कहकर भगवान् सावधान हो सुवर्ण-भूषित तीक्ष्ण बाणोंसे दशानन रावणको बींधने लगे तथा रावण भी जैसे मेघ जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजीपर नाराचों और मुसलोंकी वृष्टि करने लगा। श्रीराम तथा रावणके छोड़े हुए बाण जब आपसमें टकराते



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, उस समय बड़ा भयंकर शब्द होता था। महात्मा रघुनाथजीकी बाण-वर्षासे रावण बहुत पीड़ित हुआ और जिस प्रकार हवाके वेगसे बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार वह भी भयके मारे सेनासहित भाग गया।

महाबली रावणने शूरवीर लक्ष्मणको अपनी शक्तिसे युद्धमें धराशायी कर दिया था। वे खूनसे लथपथ होकर पड़े थे। यह देखकर भगवान् श्रीरामने सुषेणसे कहा—'ये वीर लक्ष्मण रावणके पराक्रमसे घायल हो पृथ्वीपर पड़े हैं और चोट खाये हुए साँपकी भाँति छटपटा रहे हैं। उन्हें इस अवस्थामें देखकर मेरा शोक बढ़ा जा रहा है। वीर सुमित्राकुमार मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। इन्हें लहू-लुहान देखकर मेरा मन व्याकुल हो रहा है। युद्धमें उत्साह रखनेवाला मेरा सुलक्षण भाई यदि मृत्युको प्राप्त हो गया तो मुझे इन प्राणोंके रखने और सुख भोगनेसे क्या लाभ है। अपने भाई लक्ष्मणको धूलसे भरी रणभूमिमें पड़ा देख श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा दुःख हुआ। वे व्याकुल होकर विलाप करने लगे—"अब संग्राममें विजय भी मिल जाय तो मुझे प्रसन्नता न होगी। इस युद्धसे और प्राणोंसे क्या लेना है। वनमें आते समय जैसे लक्ष्मण मेरे पीछे-पीछे चले आये थे, वैसे यमलोकमें जाते समय मैं भी इनके पीछे-पीछे जाऊँगा। हाय! जो सदा मुझमें अनुराग रखनेवाले और मेरे प्रिय बन्धु थे, छलसे युद्ध करनेवाले इन निशाचरोंने आज उनकी यह दशा कर दी। प्रत्येक देशमें स्त्रियाँ मिल सकती हैं; हर देशमें जाति-भाई प्राप्त हो सकते हैं; परन्तु ऐसा कोई देश नहीं दिखायी देता, जहाँ सहोदर भाई मिल सकता हो।* लक्ष्मणके बिना मुझे राज्यसे क्या काम है। पुत्रवत्सला माता सुमित्रा जब लक्ष्मणका हाल पूछेंगी तब मैं उनके सामने कैसे बात कर सकूँगा! माता कौसल्या और कैकेयीको क्या जवाब दूँगा। भरत और शत्रुघ्न जब पूछेंगे—'भैया! आप लक्ष्मणके साथ वनमें गये थे, उनके बिना ही कैसे लौट आये?' उस समय मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा। अतः मेरा यहीं मर जाना अच्छा है। हा भाई लक्ष्मण! मुझे छोड़कर अकेले क्यों परलोकमें जा रहे हो? मैं तुम्हारे बिना रो रहा हूँ। मुझसे बोलते क्यों नहीं। प्रिय बन्धु! उठो, मेरी ओर आँख खोलकर देखो। पर्वतों और वनोंमें जब मैं शोकसे पीड़ित हो विषादग्रस्त हो जाता था, उस समय तुम्हीं मुझे धैर्य बँधाते थे। [ इस समय क्यों नहीं मुझे सान्त्वना देते? ]"

श्रीरामको इस प्रकार शोकसे व्याकुल देख सुषेणने आश्वासन देते हुए कहा—'नरश्रेष्ठ! आपके भाई लक्ष्मण मरे नहीं हैं; देखिये, इनके मुखकी आकृति अभी बिगड़ी नहीं है। चेहरेपर कालापन भी नहीं आया है। इनका मुख प्रसन्न एवं कान्तिमान् दिखायी दे रहा है। हाथ कमल-जैसे कोमल हैं, आँखें साफ हैं। मरे हुए प्राणियोंका ऐसा रूप नहीं देखा जाता; अतः आप विषाद न करें। इनके शरीरमें प्राण हैं, हृदयकी गति बंद नहीं हुई है। उसमें बारंबार कम्प हो रहा है। ये सब बातें इनके जीवित होनेकी सूचना दे रही हैं।' रघुनाथजीसे इस प्रकार कहकर महाबुद्धिमान् सुषेण पास ही खड़े हुए महाकपि हनुमान्‌जीसे बोले—'भैया! तुम शीघ्र ही यहाँसे महोदय-पर्वतपर, जिसका पता जाम्बवान् पहले तुम्हें बता चुके हैं, जाओ और उसके दक्षिण शिखरपर उगी हुई विशल्यकरणी[1], सावर्ण्यकरणी[2], सञ्जीवकरणी[3] और सन्धानी[4] नामसे प्रसिद्ध महान् ओषधियोंको यहाँ ले आओ। उन्हींसे वीर लक्ष्मणके जीवनकी रक्षा होगी।'

सुषेणके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जी ओषधि-पर्वत (महोदयगिरि) पर गये, परन्तु उन महौषधियोंको न पहचाननेके कारण वे चिन्तामें पड़ गये। फिर उन्होंने सोचा कि मैं इस पर्वतके इस शिखरको ही ले चलूँ। इसीपर वह सुखदायिनी ओषधि है, जिसे सुषेणने बतलाया था। ऐसा विचारकर महाबली हनुमान् तुरंत पर्वत-शिखरके पास जा पहुँचे और उसे उखाड़कर साथ ले आकाश-मार्गसे उड़ चले। वे बड़े तीव्र वेगसे गये और लङ्कामें पहुँचकर उन्होंने उस पर्वत-शिखरको भूमिपर रख दिया। इसके बाद सुषेणसे कहा—'कपिवर! मैं ओषधियोंको पहचानता नहीं, इसलिये उस पर्वतका समूचा शिखर ही उठा लाया हूँ।' हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर सुषेणने उनकी प्रशंसा की और स्वयं ही पहचानकर वे ओषधियोंको उखाड़ लाये। हनुमान्‌जीके इस कार्यपर, जो देवताओंके लिये भी दुष्कर था, समस्त वानरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। तदनन्तर वानरश्रेष्ठ सुषेणने दवा पीसकर लक्ष्मणकी नाकके पास ले जाकर

---

* देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥ (१०१।१४)

१. शरीरमें धँसे हुए बाण आदिको निकालकर घाव भरने और पीड़ा दूर करनेवाली। २. शरीरमें पहलेकी-सी रंगत लानेवाली। ३. मूर्च्छा दूरकर चेतना प्रदान करनेवाली। ४. टूटी हुई हड्डियोंको जोड़नेवाली।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सुँघायी। उसे सूँघते ही लक्ष्मणकी सारी पीड़ा दूर हो गयी। उनका घाव भर गया और वे नीरोग हो शीघ्र ही पृथ्वीसे उठकर खड़े हो गये। लक्ष्मणको उठा देख सभी वानर 'साधु-साधु' कहकर उनका अभिनन्दन करने लगे। फिर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'भैया! आओ, मेरे पास आओ।' यों कहकर उन्होंने लक्ष्मणको छातीसे लगा लिया और नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए कहा—'वीरवर! बड़े सौभाग्यकी बात है, जो तुम्हें मृत्युके मुखसे लौटा हुआ देखता हूँ। तुम्हारे बिना मुझे जीवनकी रक्षासे, सीतासे अथवा विजयसे कोई मतलब नहीं है। जब तुम्हीं नहीं रहोगे तब मैं इस जीवनको रखकर क्या करूँगा।' महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मण खिन्न होकर धीरे-धीरे बोले—'आर्य! आप सत्यपराक्रमी हैं। मेरे लिये आपको इतना निराश नहीं होना चाहिये। आज रावणको मारकर आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये। आपके बाणोंका लक्ष्य बनकर शत्रु जीवित नहीं लौट सकता। सूर्य अस्त हों, उसके पहले ही जहाँतक सम्भव हो शीघ्र मैं उस दुरात्माका वध देखना चाहता हूँ। यदि आप युद्धमें रावणका वध करना चाहते हैं, यदि आपके मनमें अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेकी इच्छा है तथा यदि आप राजकुमारी सीताको पानेकी अभिलाषा रखते हैं तो आज शीघ्र ही रावणको मारकर मेरी प्रार्थना सफल करें।'

## इन्द्रके भेजे हुए रथपर बैठकर श्रीरामका रावणसे युद्ध करना, रावणके सारथिका रथको दूर हटाना और रावणकी आज्ञासे पुनः युद्धमें ले आना

लक्ष्मणके वचन सुनकर भगवान् श्रीरामने धनुष लेकर रावणको मारनेके उद्देश्यसे बाणोंका सन्धान किया। इतनेमें राक्षसराज रावण भी दूसरे रथपर सवार हो उनपर चढ़ आया और अपने वज्रतुल्य बाणोंसे उन्हें बींधने लगा। रघुनाथजी भूमिपर खड़े थे और राक्षस रथपर बैठा था। यह देखकर देवता, गन्धर्व और किन्नरोंने आपसमें चर्चा की—'यह बराबरका युद्ध नहीं है।' उनके अमृतके समान मधुर वचन सुनकर देवराज इन्द्रने मातलिको बुलाकर कहा—'सारथे! देखो, भगवान् श्रीराम भूमिपर खड़े हैं। मेरा रथ लेकर शीघ्र उनके पास जाओ और उन्हें आग्रहपूर्वक इसपर बिठाकर देवताओंके महान् हितका साधन करो।' देवराजके इस प्रकार कहनेपर उनके सारथि मातलिने उन्हें प्रणाम करके कहा—'देवेन्द्र! मैं हरे रंगके घोड़े जोतकर उत्तम रथ लिये शीघ्र वहाँ जाऊँगा और स्वयं ही भगवान् श्रीरामके सारथिका काम करूँगा।'

इन्द्रका वह रथ मध्याह्न-कालीन सूर्यके समान तेजस्वी था। उसमें सोनेके आभूषणोंसे अलंकृत उत्तम घोड़े जुते हुए थे, जो सूर्यके समान तेजस्वी और हरे रंगके थे। उनके शरीरपर जरीकी झूल पड़ी थी और सफेद चँवर लगे थे। उस रथकी ध्वजामें सोनेका डंडा लगा हुआ था। देवराजकी आज्ञासे मातलि रथपर सवार हुए और स्वर्गसे उतरकर भगवान् श्रीरामके पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'भगवन्! आप महान् पराक्रमी हैं। देवराज इन्द्रने शत्रुपर विजय पानेके लिये यह रथ आपकी सेवामें भेजा है। यह इन्द्रका महान् धनुष है, यह अग्निके समान तेजस्वी कवच है, ये सूर्यकी भाँति प्रकाशमान बाण हैं तथा यह कल्याणमयी उज्ज्वल शक्ति रखी है। वीरवर! आप इस रथपर बैठकर राक्षसराज रावणका वध कीजिये। मैं सारथि होकर आपके साथ रहूँगा।' मातलिकी

बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उस रथकी परिक्रमा की और उसे प्रणाम करके वे रथपर सवार हुए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अब महाबाहु श्रीराम और राक्षसराज रावणमें द्वैरथ युद्ध प्रारम्भ हुआ, जो बड़ा ही अद्भुत और रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। श्रीरामचन्द्रजी उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता थे, उन्होंने राक्षसराजके चलाये हुए गान्धर्व-अस्त्रको गान्धर्वसे और दैव-अस्त्रको दैव-अस्त्रसे नष्ट कर दिया। तब निशाचरोंके स्वामी रावणने अत्यन्त क्रोधमें भरकर पुनः राक्षसास्त्रका प्रयोग किया। फिर तो उसके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण विषैले साँप हो-होकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट पहुँचने लगे। उन सर्पोंको आते देख भगवान् श्रीरामने अत्यन्त भयंकर गारुडास्त्रको प्रकट किया। तब उनके धनुषसे निकले हुए अग्निके समान कान्तिमान् बाणोंने गरुड़का रूप धारण कर साँपके रूपमें प्रकट हुए समस्त बाणोंका विनाश कर डाला। इस प्रकार अपने अस्त्रके व्यर्थ हो जानेपर राक्षसराज रावण क्रोधसे जल उठा और रघुनाथजीपर भयंकर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। अनायास ही अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीरामको हजारों बाणोंसे पीड़ित करके रावणने मातलिको भी बींध डाला तथा एक बाणसे श्रीरामचन्द्रजीके रथकी ध्वजाको काट गिराया। इसके बाद उसने इन्द्रके घोड़ोंको भी अपने बाणोंसे घायल किया। उस समय दस मस्तक और बीस भुजाओंसे युक्त रावण हाथोंमें धनुष लिये मैनाक-पर्वतके समान दिखायी देने लगा।

तदनन्तर रघुनाथजीने क्रोधका भाव प्रकट किया। उनकी भौंहें तन गयीं और आँखें कुछ-कुछ लाल हो गयीं। ऐसा जान पड़ा मानो वे समस्त राक्षसोंको जला डालेंगे। क्रोधमें भरे हुए श्रीरामचन्द्रजीके मुँहकी ओर देखकर सब प्राणी थर्रा उठे। पृथ्वी काँपने लगी, पर्वत हिल गये और समुद्रमें तूफान आ गया। एक ओर श्रीरामचन्द्रजीका बढ़ा हुआ क्रोध और दूसरी ओर भयानक उत्पात। यह सब देखकर सम्पूर्ण प्राणियोंपर त्रास छा गया। स्वयं रावणको भी बड़ा डर मालूम हुआ। उस समय विमानपर बैठे हुए देवता, गन्धर्व, बड़े-बड़े नाग, ऋषि, दानव, दैत्य तथा गरुड़—ये सब आकाशमें स्थित होकर श्रीराम और रावणका युद्ध देखने लगे। प्रलयकालका दृश्य उपस्थित था। दोनों शूरवीर योद्धा नाना प्रकारके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए युद्ध कर रहे थे। इसी समय दुष्टात्मा रावणने क्रोधमें आकर श्रीरामचन्द्रजीपर प्रहार करनेकी इच्छासे एक बहुत बड़ा शूल उठाया, जो वज्रके समान सुदृढ़ और समस्त शत्रुओंका नाश करनेवाला था। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो प्रलयकालकी अग्नि राशि सञ्चित की हुई हो। कालके लिये भी उसका वेग सहना कठिन था। वह सम्पूर्ण जीवोंको त्रास देनेवाला तथा सबको छिन्न भिन्न करनेमें समर्थ था। उस शूलको हाथमें लेकर महाबली रावणने क्रोधपूर्वक गरजकर कठोर वाणीमें कहा—'राम! यह शूल वज्रके समान कठोर है, इसे मैंने रोषपूर्वक अपने हाथमें लिया है। यह लक्ष्मणसहित तुम्हारे प्राणोंका नाश करेगा। ठहरो, अभी इस शूलके द्वारा तुम्हें मौतके घाट उतारता हूँ।' यह कहकर राक्षसराजने रघुनाथजीके ऊपर उस शूलको चला दिया। उसके हाथसे छूटते ही शूल आकाशमें आकर चमक उठा। श्रीरामचन्द्रजीने देखा, रावणका चलाया हुआ शूल अत्यन्त प्रज्वलित और भयंकर है; तब उन्होंने धनुषको खींचकर बाणोंकी वृष्टि आरम्भ की। वे बाण रावणके शूलका स्पर्श होते ही जलकर खाक हो गये। यह देख रघुनाथजीने क्रोधमें भरकर मातलिकी लायी हुई इन्द्रकी शक्तिका प्रहार किया। वह शक्ति राक्षसराजके शूलपर पड़ी और वह महान् शूल तेजहीन एवं टूक-टूक होकर धरतीपर गिर पड़ा। इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने पैने बाणोंके द्वारा रावणके घोड़ोंको घायल किया; फिर अत्यन्त सावधान होकर उन्होंने तीन तीखे तीरोंके द्वारा रावणकी छातीमें और तीन बाणोंसे उसके ललाटमें प्रहार किया। बाणोंकी मारसे रावणके समस्त अङ्गोंमें घाव हो गये और उनसे रक्तकी धारा बहने लगी।

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा अत्यन्त पीड़ित होनेपर रावणको बड़ा क्रोध हुआ। उसके नेत्र अग्निके समान प्रज्वलित हो उठे। उसने रोषपूर्वक धनुष उठाया और श्रीरामचन्द्रजीको बाणोंसे पीड़ित करना आरम्भ किया; परन्तु भगवान् श्रीराम महान् पर्वतकी भाँति अटल थे, अतः विचलित नहीं हुए। वे समरभूमिमें अपने बाणोंसे रावणके बाणोंका निवारण करते हुए स्थिरभावसे खड़े थे। उस समय निशाचरने महात्मा रघुनाथजीकी छातीमें क्रोधपूर्वक हजारों बाण मारे। भगवान्का श्रीविग्रह रक्तसे भीगा दिखायी देने लगा। बाणोंके आघातसे कुपित होकर महातेजस्वी श्रीरामने प्रलयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंको हाथमें लिया और रावणसे कठोर वाणीमें कहा—'ओ नीच राक्षस! तू मेरे अनजानमें जनस्थानसे मेरी स्त्रीको हर लाया है। असहाय स्त्रियोंपर वीरता दिखानेवाले निशाचर! परायी स्त्रीका स्पर्श करके तूने कायरोंका काम किया है; क्या अब भी तू अपनेको वीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


समझता है ? धर्मकी मर्यादा भङ्ग करनेवाले पापी ! तू बड़ा निर्लज्ज और दुराचारी है। तेरा यह कार्य अहङ्कारसे पूर्ण और निन्दित है। उस पापकर्मका आज तुझे बड़ा भारी फल मिल रहा है, इसे भोग। यदि मेरी उपस्थितिमें तू सीताका बलपूर्वक अपमान करता तो अबतक मेरे बाणोंसे मारा जाकर अपने भाई खरका दर्शन करता। नीच ! आज तुझे अपने तीखे बाणोंसे अभी यमलोग पहुँचाता हूँ। सौभाग्यकी बात है कि इस समय तू मेरी आँखोंके सामने आ गया है।' शत्रुओंका नाश करनेवाले वीरवर श्रीरामचन्द्रजीने उपर्युक्त शब्द कहकर पास ही खड़े हुए राक्षसराज रावणपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ की। उस समय रघुनाथजीके सामने सभी अस्त्र अपने-आप प्रकट होने लगे तथा हर्ष और उत्साहके कारण भगवान्‌का हाथ बड़ी तेजीसे चलने लगा। अपने विषयमें होनेवाले इन शुभ लक्षणोंको देखकर राक्षसोंका अन्त करनेवाले भगवान् श्रीराम रावणको पुनः पीड़ित करने लगे। उनकी बाण-वर्षासे आहत होकर रावणका हृदय व्याकुल हो उठा। उसकी ऐसी अवस्था देख रावणका सारथि भयके मारे अपने रथको रणभूमिसे दूर हटा ले गया।

रावण कालसे प्रेरित हो रहा था, उसकी विवेक-शक्ति नष्ट हो गयी थी; अतः अत्यन्त क्रोधमें भरकर लाल आँखें किये उसने सारथिसे कहा—'मूढ़ ! क्या तूने मुझे बलहीन, असमर्थ, डरपोक, अधीर, तेजहीन और अस्त्रोंके ज्ञानसे शून्य समझ रखा है, जो मेरी अवहेलना करके तू अपनी बुद्धिसे मनमाना काम कर रहा है ? [ तूने मुझसे पूछा क्यों नहीं ? ] मेरा अभिप्राय जाने बिना ही तू शत्रुके सामनेसे मेरा रथ क्यों हटा लाया ? अनार्य ! तूने चिरकालके उपार्जित मेरे यश, पराक्रम, तेज और विश्वासपर पानी फेर दिया। शत्रुके सामने मुझे कायर सिद्ध किया। हित चाहनेवाले मित्रका यह काम नहीं है। यदि तू मेरे साथ बहुत दिनोंसे रहा है और यदि मेरे गुणोंका तुझे स्मरण है तो जल्दी रथको लौटा ले चल। कहीं ऐसा न हो कि मेरा शत्रु भाग जाय।' मूर्ख रावणने जब ऐसी कठोर बात कही तब सारथि बड़ी विनयके साथ हितकर वचन बोला—'महाराज ! मैं डरा नहीं हूँ, मेरा विवेक भी नष्ट नहीं हुआ है और न मुझे शत्रुओंने ही बहकाया है। आपके प्रति मेरा स्नेह कम नहीं हुआ है तथा आपने जो मेरा सत्कार किया है, उसे भी मैं नहीं भूला हूँ। मैं सदा आपके प्रिय और हितमें ही लगा रहता हूँ। यह कार्य भी मैंने आपके हितकी ही इच्छासे किया है, अतः आप किसी ओछे और अनार्य पुरुषकी भाँति मुझपर दोषारोपण न करें। मैं क्यों रथको लौटा लाया—इसका कारण बताता हूँ, सुनिये। उस समय मैंने यह समझा कि आप महान् युद्धके कारण थक गये हैं। शत्रुकी अपेक्षा मैंने आपकी प्रबलता, आपका अधिक पराक्रम नहीं देखा। मेरे घोड़े भी रथको खींचते-खींचते थक गये थे, इनमें शिथिलता आ गयी थी और ये धूपके कारण बहुत कष्ट पा रहे थे। साथ ही इस समय मेरे सामने जो-जो लक्षण प्रकट हो रहे हैं, उनपर विचार करनेसे यही जान पड़ता है कि हमलोगोंका अमङ्गल होनेवाला है। सारथिको देश-कालका, शुभाशुभ लक्षणोंका, रथकी चेष्टा, उत्साह-अनुत्साह तथा खेदका भी ज्ञान रखना चाहिये। शत्रुके पास जाने, दूर हटने, युद्धमें स्थिर रहने तथा युद्धभूमिसे अलग हो जानेका उपयुक्त अवसर कब आता है—इन सब बातोंको समझना सारथिका कर्तव्य है। आपको तथा इन रथके घोड़ोंको थोड़ी देरतक विश्राम देनेके और खेद दूर करनेके लिये मैंने जो कार्य किया है, वह सर्वथा उचित है। मैंने मनमानी करनेके लिये नहीं, स्वामीके स्नेहवश उनकी रक्षाके लिये इस रथको दूर हटाया है। अब आप आज्ञा दीजिये, जो कहियेगा वही करूँगा।'

सारथिकी यह बात सुनकर रावण बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसकी सराहना करता हुआ बोला—'सूत ! अब तुम इस रथको शीघ्रतापूर्वक रामके सामने ले चलो। रावण अपने शत्रुओंको मारे बिना नहीं लौटेगा।' यों कहकर राक्षसराजने सारथिको पुरस्कारके रूपमें हाथका एक सुन्दर आभूषण दिया। स्वामीकी आज्ञासे प्रेरित होकर सारथिने घोड़ोंको हाँका। फिर तो राक्षसराजका वह विशाल रथ एक ही क्षणमें रणभूमिपर श्रीरामचन्द्रजीके सामने जा पहुँचा।

## अगस्त्य-मुनिका श्रीरामको विजयके लिये 'आदित्यहृदय'* के पाठकी सम्मति देना

उधर श्रीरामचन्द्रजी युद्धसे थककर चिन्ता करते हुए-से रणभूमिमें खड़े थे। इतनेमें रावण भी युद्धके लिये उनके सामने उपस्थित हो गया। यह देखकर भगवान् अगस्त्य मुनि, जो देवताओंके साथ युद्ध देखनेके लिये आये थे,

* इस आदित्यहृदयनामक स्तोत्रका विनियोग इस प्रकार है—'अस्य स्तोत्रस्यागस्त्य ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, आदित्यहृदयभूतो भगवान् ब्रह्मा देवता निरस्ताशेषविघ्नतया ब्रह्मविद्यासिद्धौ सर्वत्र जयसिद्धौ च विनियोगः'। इसके अङ्गन्यास और करन्यास प्रणवसे अथवा 'रश्मिमते नमः' इत्यादि छः नाम-मन्त्रोंद्वारा करने चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्रीरामके पास जाकर बोले—"महाबाहो राम ! यह सनातन रहस्य सुनो, वत्स ! इसके जपसे तुम युद्धमें अपने समस्त शत्रुओंपर विजय पा जाओगे। इस रहस्यका नाम है 'आदित्य-हृदय'। यह परम पवित्र और सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश करनेवाला है। इसके जपसे सदा विजयकी प्राप्ति होती है। यह नित्य अक्षय और परम कल्याणमय स्तोत्र है। सम्पूर्ण मङ्गलोंका भी मङ्गल है। इससे सब पाप दूर हो जाते हैं। यह चिन्ता और शोकको मिटाने तथा आयुको बढ़ानेवाला उत्तम साधन है *।

"भगवान् सूर्य अपनी अनन्त किरणोंसे सुशोभित (रश्मिमान्) हैं। ये नित्य उदय होनेवाले (समुद्यन्), देवता और असुरोंसे नमस्कृत, विवस्वान् नामसे प्रसिद्ध, प्रभाका विस्तार करनेवाले (भास्कर) और संसारके स्वामी (भुवनेश्वर) हैं। तुम इनका [रश्मिमते नमः, समुद्यते नमः, देवासुरनमस्कृताय नमः, विवस्वते नमः, भास्कराय नमः, भुवनेश्वराय नमः—इन नाम-मन्त्रोंके ही द्वारा] पूजन करो। सम्पूर्ण देवता इन्हींके स्वरूप हैं। ये तेजकी राशि तथा अपनी किरणोंसे जगत्को सत्ता एवं स्फूर्ति प्रदान करनेवाले हैं। ये ही अपनी रश्मियोंका प्रसार करके देवता और असुरोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका पालन करते हैं। ये ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, प्रजापति, इन्द्र, कुबेर, काल, यम, चन्द्रमा, वरुण, पितर, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, मनु, वायु, अग्नि, प्रजा, प्राण, ऋतुओंको प्रकट करनेवाले तथा प्रभाके पुञ्ज हैं। इन्हींके नाम—आदित्य (अदितिपुत्र), सविता (जगत्को उत्पन्न करनेवाले), सूर्य (सर्वव्यापक), खग (आकाशमें विचरनेवाले), पूषा (पोषण करनेवाले), गभस्तिमान् (प्रकाशमान), सुवर्णसदृश, भानु (प्रकाशक), हिरण्यरेता (ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके बीज), दिवाकर (रात्रिका अन्धकार दूर करके दिनका प्रकाश फैलानेवाले), हरिदश्व (दिशाओंमें व्यापक अथवा हरे रंगके घोड़ेवाले), सहस्रार्चि (हजारों किरणोंसे सुशोभित), सप्तसप्ति (सात घोड़ोंवाले), मरीचिमान् (किरणोंसे सुशोभित), तिमिरोन्मन्थन (अन्धकारका नाश करनेवाले), शम्भु (कल्याणके उद्गमस्थान), त्वष्टा (भक्तोंका दुःख दूर करने अथवा जगत्का संहार करनेवाले), मार्तण्डक (ब्रह्माण्डको जीवन प्रदान करनेवाले), अंशुमान् (किरण धारण करनेवाले), हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), शिशिर (स्वभावसे ही सुख देनेवाले), तपन (गर्मी पैदा करनेवाले), अहस्कर (दिनकर), रवि (सबकी स्तुतिके पात्र), अग्निगर्भ (अग्निको गर्भमें धारण करनेवाले), अदितिपुत्र, शङ्ख (आनन्दस्वरूप एवं व्यापक), शिशिर-नाशन (शीतका नाश करनेवाले), व्योमनाथ (आकाशके स्वामी), तमोभेदी (अन्धकारको नष्ट करनेवाले), ऋग्, यजुः और सामवेदके पारगामी, घनवृष्टि (घनी वृष्टिके कारण), अपां मित्र (जलको उत्पन्न करनेवाले), विन्ध्य-वीथी-प्लवङ्गम (आकाशमें तीव्र वेगसे चलनेवाले), आतपी, (घाम उत्पन्न करनेवाले), मण्डली (किरण-समूहको धारण करनेवाले), मृत्यु (मौतके कारण), पिङ्गल (भूरे रंगवाले), सर्वतापन (सबको ताप देनेवाले), कवि (त्रिकालदर्शी), विश्व (सर्वस्वरूप), महातेजस्वी, रक्त (लाल रंगवाले), सर्वभवोद्भव (सबकी उत्पत्तिके कारण), नक्षत्र, ग्रह और तारोंके स्वामी, विश्वभावन (जगत्की रक्षा करनेवाले), तेजस्वियोंमें भी अति तेजस्वी तथा द्वादशात्मा (बारह स्वरूपोंमें अभिव्यक्त) हैं। [इन सभी नामोंसे प्रसिद्ध सूर्यदेव !] आपको नमस्कार है। †

---

* ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम्। रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम्॥ १॥
दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम्। उपगम्याब्रवीद्रामममगस्त्यो भगवांस्तदा॥ २॥
राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम्। येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे॥ ३॥
आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम्। जयावहं जपं नित्यमक्षयं परमं शिवम्॥ ४॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम्। चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम्॥ ५॥

† रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम्। पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम्॥ ६॥
सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः। एष देवासुरगणाँल्लोकान् पाति गभस्तिभिः॥ ७॥
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः। महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः॥ ८॥
पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः। वायुर्वह्निः प्रजाः प्राण, ऋतुकर्ता प्रभाकरः॥ ९॥
आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान्। सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः॥ १०॥
हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान्। तिमिरोन्मथनः शंभुस्त्वष्टा मार्तण्डकोऽंशुमान्॥ ११॥
हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनोऽहस्करो रविः। अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः॥ १२॥
व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुःसामपारगः। घनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथीप्लवङ्गमः॥ १३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पूर्वगिरि—उदयाचल तथा पश्चिमगिरि—अस्ताचलके रूपमें आपको नमस्कार है! ज्योतिर्गणों (ग्रहों और तारों) के स्वामी तथा दिनके अधिपति! आपको प्रणाम है! आप जयस्वरूप तथा विजय और कल्याणके दाता हैं। आपके रथमें हरे रंगके घोड़े जुते रहते हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। सहस्रों किरणोंसे सुशोभित भगवान् सूर्य! आपको बारंबार प्रणाम है। आप अदितिके पुत्र होनेके कारण आदित्य नामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है। उग्र (अभक्तोंके लिये भयंकर), वीर (शक्ति-सम्पन्न) और सारंग (शीघ्रगामी) सूर्यदेवको नमस्कार है। कमलोंको विकसित करनेवाले प्रचण्ड तेजधारी मार्तण्डको प्रणाम है। (परात्पर-रूपमें) आप ब्रह्मा, शिव और विष्णुके भी स्वामी हैं। सूर आपकी संज्ञा है। यह सूर्यमण्डल आपका ही तेज है, आप प्रकाशसे परिपूर्ण हैं, सबको स्वाहा कर देनेवाला अग्नि आपका ही स्वरूप है, आप रौद्ररूप धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आप अज्ञान और अन्धकारके नाशक, जड़ता एवं शीतके निवारक तथा शत्रुका नाश करनेवाले हैं; आपका स्वरूप अप्रमेय है। आप कृतघ्नोंका नाश करनेवाले, सम्पूर्ण ज्योतियोंके स्वामी और देवस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आपकी प्रभा तपाये हुए सुवर्णके समान है, आप हरि (अज्ञानका हरण करनेवाले) और विश्वकर्मा (संसारकी सृष्टि करनेवाले) हैं; तमके नाशक, प्रकाशस्वरूप और जगत्के साक्षी हैं; आपको नमस्कार है।*

"रघुनन्दन! ये भगवान् सूर्य ही सम्पूर्ण भूतोंका संहार, सृष्टि और पालन करते हैं। ये ही अपनी किरणोंसे गर्मी पहुँचाते और वर्षा करते हैं। ये सब भूतोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित होकर उनके सो जानेपर भी जागते रहते हैं, ये ही अग्निहोत्र तथा अग्निहोत्री पुरुषोंको मिलनेवाले फल हैं। [यज्ञमें भाग ग्रहण करनेवाले] देवता, यज्ञ और यज्ञोंके फल भी ये ही हैं। सम्पूर्ण लोकोंमें जितनी क्रियाएँ होती हैं, उन सबका फल देनेमें ये ही पूर्ण समर्थ हैं। विपत्तिमें, कष्टमें, दुर्गम मार्गमें तथा और किसी भयके अवसरपर जो कोई पुरुष इन सूर्यदेवका कीर्तन करता है, उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता। इसलिये महाबाहो! तुम एकाग्रचित्त होकर इन देवाधिदेव जगदीश्वरकी पूजा करो। इस आदित्यहृदयका तीन बार जप करनेसे तुम युद्धमें विजय पाओगे। इसी क्षण रावणका वध कर सकोगे।" यह कहकर अगस्त्यजी जैसे आये थे, उसी प्रकार चले गये। उनका उपदेश सुनकर महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीका शोक दूर हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर शुद्धचित्तसे आदित्यहृदयको धारण किया और तीन बार आचमन करके शुद्ध हो भगवान् सूर्यकी ओर देखते हुए इसका तीन बार जप किया। इससे उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। फिर परम पराक्रमी रघुनाथजीने धनुष उठाकर रावणकी ओर देखा और उत्साहपूर्वक विजय पानेके लिये वे आगे बढ़े। उन्होंने पूरा प्रयत्न करके रावणके वधका निश्चय किया। उस समय देवताओंके मध्यमें खड़े हुए भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखा और निशाचरराज रावणके विनाशका समय निकट जानकर हर्षपूर्वक कहा—"रघुनन्दन! अब जल्दी करो।"†

---

आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः। कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः॥ १४॥
नक्षत्रग्रहतारांणामधिपो विश्वभावनः। तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन्नमोऽस्तु ते॥ १५॥
* नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाद्रये नमः। ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः॥ १६॥
जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः। नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः॥ १७॥
नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः। नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते॥ १८॥
ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे। भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः॥ १९॥
तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने। कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः॥ २०॥
तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे। नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे॥ २१॥
† नाशयत्येष वै भूतं तदेव सृजति प्रभुः। पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः॥ २२॥
एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः। एष चैवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम्॥ २३॥
देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च। यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः॥ २४॥
एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च। कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव॥ २५॥
पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम्। एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि॥ २६॥
अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं हनिष्यसि। एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम्॥ २७॥
एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत्तदा। धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान्॥ २८॥
आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान्। त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान्॥ २९॥
रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा जयार्थं समुपागमत्। सर्वयत्नेन महता वृतस्तस्य वधेऽभवत्॥ ३०॥
अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः। निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति॥ ३१॥

(सर्ग १०५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## श्रीराम-रावणका युद्ध और रावणका वध

तदनन्तर नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसराज रावणके रथपर दृष्टिपात किया। उसकी ऊँची ध्वजा फहरा रही थी। उसके चलनेसे घरघराहटकी आवाज सुनायी पड़ती थी। काले रंगके घोड़े उस रथमें जुते थे और उसका तेज बड़ा भयानक जान पड़ता था। उससे सूर्यके समान ज्योति निकल रही थी तथा वह आकाशमें विमानकी भाँति दमक रहा था। जैसे मेघ जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार उस रथसे बाणोंकी बौछार हो रही थी। उसकी आवाज ऐसी मालूम होती थी मानो वज्रके आघातसे किसी पर्वतके फटनेका शब्द हो रहा हो। मेघके समान प्रतीत होनेवाले शत्रुके उस रथको आता देख श्रीरामचन्द्रजीने बड़े वेगसे अपने धनुषपर टंकार दी और इन्द्रके सारथिसे कहा—'मातले! देखो, रावणका रथ बड़े वेगसे आ रहा है; अतः तुम सावधान हो जाओ और आगे बढ़ो! जैसे हवा उमड़े हुए बादलोंको छिन्न-भिन्न कर डालती है, उसी प्रकार आज मैं शत्रुके रथका विध्वंस करना चाहता हूँ। भय तथा घबराहट छोड़कर मन और नेत्रोंको स्थिर रखते हुए घोड़ोंकी बागडोर काबूमें रखो और रथको तेज चलाओ। तुम्हें देवराज इन्द्रका रथ हाँकनेका अभ्यास है, अतः तुम्हें कुछ सिखानेकी आवश्यकता नहीं है। अब मैं एकाग्रचित्त होकर युद्ध करना चाहता हूँ। इसलिये तुम्हारे कर्तव्यका स्मरणमात्र करा रहा हूँ। तुम्हें शिक्षा नहीं देता।'

श्रीरामचन्द्रजीके वचनसे देवताओंके सारथि मातलि बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने अपने रथको आगे बढ़ाया। उसके पहिये-से इतनी धूल उड़ी कि रावण उसे देखकर काँप उठा। साथ ही उसके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और अपनी लाल-लाल आँखें फाड़कर देखता हुआ वह रथके सामने आये हुए श्रीरामपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। उसके आक्रमणसे श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा क्रोध हुआ; फिर रोषके साथ ही धैर्य धारण करके उन्होंने इन्द्रके धनुष और बाण हाथमें लिये, जो बड़े ही वेगशाली थे। वे बाण सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे थे। इसके बाद एक दूसरेके वधकी इच्छा रखनेवाले श्रीराम और रावणमें बड़ा भारी युद्ध प्रारम्भ हुआ। उस समय रावणके विनाशकी इच्छा रखने-वाले देवता, सिद्ध, गन्धर्व और महर्षि उन दोनोंके द्वैरथ-युद्धको देखनेके लिये वहाँ एकत्रित हो गये। युद्धके समय ऐसे भयंकर उत्पात होने लगे, जो रोंगटे खड़े कर देने-वाले थे। उनसे रावणके विनाश और श्रीरामचन्द्रजीके अभ्युदयकी सूचना मिलती थी। मेघ रावणके रथपर रक्तकी धारा बरसाने लगे। जिस-जिस मार्गसे उसका रथ जाता था, उसी-उसी ओर आकाशमें गीध मँड़राने लगते थे। वायु धूल उड़ाती हुई उल्टी दिशाकी ओर बहने लगी, जिससे राक्षस-राजकी आँखें बंद हो जाती थीं। उसकी सेनापर सब ओरसे बिना बादलके ही बिजली गिरने लगी। सम्पूर्ण दिशाएँ अन्धकारसे ढक गयीं। धूलकी अधिक वर्षा होनेके कारण आकाशका दिखायी देना कठिन हो गया। इस प्रकार अनेकों भयंकर उत्पात प्रकट हुए, जो रावणके विनाशकी सूचना दे रहे थे। रघुनाथजीके सामने भी अनेकों शकुन हुए, जो शुभ, मङ्गलमय और विजयकी सूचना देनेवाले थे। अपनी विजय सूचित करनेवाले सुन्दर शकुन देखकर भगवान् श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने रावणको मरा ही समझा।

तदनन्तर श्रीराम और रावणमें महान् द्वैरथ युद्ध आरम्भ हुआ। राक्षसों और वानरोंकी सेनाएँ हाथमें हथियार लिये रहनेपर भी निश्चेष्ट खड़ी रहीं—कोई किसीपर प्रहार नहीं करता था। दोनों ओरके सैनिक वह युद्ध देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे, इसलिये चुपचाप खड़े हो गये। उन्होंने परस्पर आक्रमण नहीं किया। राक्षसोंकी दृष्टि रावणकी ओर लगी थी और वानरोंकी श्रीरामचन्द्रजीकी ओर। अतः निस्तब्ध खड़े रहनेके कारण वे चित्र-लिखित-से जान पड़ते थे। श्रीराम और रावण दोनोंने वहाँ प्रकट होनेवाले निमित्तोंको देखकर उनके भावी फलका विचार करके अपने हृदयको स्थिर कर लिया था। श्रीरामचन्द्रजीको यह विश्वास था कि मेरी जीत होगी और रावणको भी यह निश्चय हो गया था कि मुझे मरना है; अतः वे दोनों संग्राममें अपना पूरा पराक्रम दिखाने लगे। उस समय दशाननने क्रोधमें भरकर बाणोंका सन्धान किया और श्रीरामचन्द्रजीके रथपर फहराती हुई ध्वजाको उनका निशाना बनाया; परन्तु उसके चलाये हुए बाण इन्द्रके रथकी ध्वजाका स्पर्श न कर सके, केवल रथशक्तिको[1] छूते हुए धरतीपर गिर पड़े। तब महाबली श्रीरामचन्द्रजीने भी कुपित होकर अपने धनुषको खींचा और रावणकी ध्वजा-

१. रथकी कलसीपरका वह बाँस, जिसमें लड़ाईके रथोंकी ध्वजाएँ लगायी जाती थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को लक्ष्य करके एक तीखा बाण छोड़ा। वह दशाननकी ध्वजाको काटकर पृथ्वीमें समा गया। यह देख महाबली रावण क्रोधसे जल उठा और बड़े आवेशमें आकर बाणोंकी बौछार करने लगा। उसने रघुनाथजीके घोड़ोंको अत्यन्त तेजस्वी बाणोंसे बींधना आरम्भ किया; किन्तु वे दिव्य लोकके अश्व थे, इसलिये न तो लड़खड़ाये और न अपने स्थानसे विचलित ही हुए। यह देख रावणका क्रोध और भी बढ़ गया तथा वह गदा, परिघ, चक्र, मूसल, पर्वत-शिखर, वृक्ष, शूल, फरसे और बाण आदि माया-निर्मित हजारों अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा। इस प्रकार उस संग्राममें भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्रोंकी बड़ी भयंकर वृष्टि हुई। यह देख श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर तीखे बाणोंका सन्धान किया और उन्हें सैकड़ों तथा हजारोंकी संख्यामें छोड़ा। इस तरह युद्धमें शस्त्र-वर्षा करते हुए श्रीराम और रावणके बाण आपसमें टकराकर पृथ्वीपर गिर पड़े। वे दोनों योद्धा दाहिने-बायें प्रहार करते हुए निरन्तर युद्धमें लगे रहे। उन्होंने अपने भयंकर बाणोंसे आकाशको ठसाठस भर दिया। श्रीराम और रावण दोनों ही क्रोधमें भरे थे, अतः अच्छे ढंगसे उत्साहके साथ लड़ रहे थे। दो घड़ीतक तो उन दोनोंमें ऐसा भयंकर युद्ध हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था।

इस प्रकार युद्धमें लगे हुए श्रीरामचन्द्रजी तथा रावणको सम्पूर्ण प्राणी चकित चित्तसे निहारने लगे। उन दोनोंके सारथि कभी रथको चक्कर काटते हुए ले जाते, कभी सीधे मार्गसे दौड़ाते और कभी आगे बढ़ाकर पीछेकी ओर लौटाते थे। इस तरह वे दोनों रथ हाँकनेमें अपने विविध प्रकारके ज्ञानका परिचय देने लगे। श्रीराम और रावण दोनोंके रथ भाँति-भाँतिकी गतिका प्रदर्शन करनेके बाद फिर आमने-सामने आकर खड़े हो गये। तत्पश्चात् रावणने इन्द्रके सारथि मातलिको लक्ष्य करके वज्रके समान शब्द करनेवाले बाण छोड़े। वे बाण बड़े वेगसे आकर मातलिके शरीरमें लगे, किन्तु उनसे मातलिको तनिक भी वेदना तथा व्याकुलता नहीं हुई। श्रीरामचन्द्रजीको मातलिके तिरस्कारसे जितना क्रोध हुआ उतना अपने तिरस्कारसे नहीं, अतः उन्होंने बाणोंका जाल-सा फैलाकर अपने शत्रु रावणको युद्धसे विमुख कर दिया। तब राक्षसराजने पुनः कुपित हो गदा और मूसलोंकी वर्षासे श्रीरामचन्द्रजीको पीड़ित किया। इससे उस युद्धने फिर बड़ा भयंकर रूप धारण किया। उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। गदा, मूसल और परिघोंकी भयंकर आवाजसे तथा बाणोंके पंखोंकी सन-सनाती हुई हवासे सातों समुद्रोंमें हलचल मच गयी। समुद्रोंके क्षुब्ध होनेपर पातालवासी सभी दानवों और हजारों सर्पोंको बड़ी पीड़ा हुई। पर्वत, वन और काननोंसहित समूची पृथ्वी काँप उठी। सूर्यकी प्रभा लुप्त हो गयी और हवाकी गति भी रुक गयी। देवता, गन्धर्व, सिद्ध, महर्षि, किन्नर और बड़े-बड़े नाग—सब चिन्तामें पड़ गये। सबके मुँहसे यही बात निकलने लगी—'गौ और ब्राह्मणोंका कल्याण हो। प्रवाहरूपसे सदा रहनेवाले इन लोकोंकी रक्षा हो और रघुनाथजी युद्धमें राक्षसराज रावणपर विजय पायें।' इस प्रकार कहते हुए वे श्रीराम और रावणके अत्यन्त भयंकर रोमाञ्चकारी युद्धको देखने लगे।

तदनन्तर महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीने अपने धनुषपर जहरीले सर्पके समान भयंकर बाण रखा और उसके द्वारा रावणके एक सुन्दर मस्तकको, जिसके कुण्डल जगमगा रहे थे, काट गिराया; परन्तु रावणके पहले ही-जैसा नया सिर उत्पन्न हो गया। श्रीरामचन्द्रजी बड़ी फुर्तीसे हाथ चला रहे थे। उन्होंने अपने बाणोंसे उसके दूसरे मस्तकको भी काट डाला; किन्तु उसके कटते ही पुनः नवीन मस्तक उत्पन्न दिखायी देने लगा। इस प्रकार बिजलीके समान चमक पैदा करनेवाले श्रीरामके बाणोंद्वारा रावणके सौ मस्तक काटे गये; किन्तु उनका कोई अन्त नहीं दिखायी दिया। उस राक्षसके प्राण-नाशका कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता था। तब सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता श्रीरामचन्द्रजी अनेकों बाणोंसे युक्त होनेपर भी इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'अहो! जिन बाणोंसे मैंने मारीच, खर और दूषणका वध किया, विराधको मारा, दण्डकारण्यमें कबन्धका प्राण लिया, साल-वृक्ष और पर्वतोंको विदीर्ण किया, वालीको मारा तथा समुद्रको भी क्षुब्ध कर दिया। अनेकों बारके संग्राममें आजमाये हुए वे मेरे सभी बाण आज रावणके ऊपर तेजहीन—कुण्ठित हो गये हैं, इसका क्या कारण हो सकता है?' इस तरह चिन्तामें पड़े हुए रघुनाथजी बड़ी सावधानीके साथ रावणकी छातीपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। यह देख रथपर बैठा हुआ राक्षसराज रावण भी गदा और मूसलकी वृष्टिसे श्रीरामको पीड़ित करने लगा। इस प्रकार अत्यन्त भयंकर और रोंगटे खड़े कर देनेवाला युद्ध हो रहा था। देवता, दानव, यक्ष, पिशाच, नाग और राक्षसोंके देखते-देखते वह महासंग्राम रातभर जारी रहा। श्रीराम और रावणका


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध न रातमें बंद होता था, न दिनमें। वह एक क्षणके लिये भी नहीं रुका। देवराजके सारथि मातलिने देखा कि इस युद्धमें रघुनाथजीकी विजयमें विलम्ब हो रहा है; तब उन्होंने संग्राममें लगे हुए श्रीरामको कुछ याद दिलाते हुए कहा—'प्रभो! इस राक्षसका वध करनेके लिये ब्रह्माजीके अस्त्रका प्रयोग कीजिये। देवताओंने इसके विनाश-का जो समय बताया है, वह अब आ पहुँचा।'

मातलिके इस वाक्यसे श्रीरामचन्द्रजीको उस अस्त्रका स्मरण हो आया; फिर तो उन्होंने फुफकारते हुए साँपकी भाँति एक तेजस्वी बाण हाथमें लिया। यह वही बाण था, जिसे पहले भगवान् अगस्त्य-ऋषिने रघुनाथजीको दिया था। वह अमोघ बाण ब्रह्माजीका दिया हुआ था। अमिततेजस्वी ब्रह्माजीने पूर्वकालमें उसे इन्द्रके लिये बनाया था और तीनों लोकोंपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले देवराजको अर्पण कर दिया था [ वही परम्परासे श्रीरामको मिला था ]। उस बाणके वेगमें वायुकी, धारमें अग्नि और सूर्यकी, शरीरमें आकाशकी तथा भारीपनमें मेरु और मन्दराचल-की प्रतिष्ठा की गयी थी। वह सम्पूर्ण भूतोंके तेजसे बनाया गया था। उससे सूर्यके समान ज्योति निकलती रहती थी। वह प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर तथा शीघ्रतापूर्वक लक्ष्यका भेदन करनेवाला था। उसमें वज्रके समान दृढ़ता थी और उसके छूटते समय बड़े जोरकी आवाज होती थी। युद्धमें वह यमराजके समान भयंकर रूप धारण करता था। महाबली भगवान् श्रीरामने धनुर्वेदमें बतायी हुई विधिके अनुसार उस बाणको अभिमन्त्रित किया और धनुषपर चढ़ाया। उसे धनुषपर रखते ही सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे और पृथ्वी काँपने लगी; फिर रघुनाथजीने अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने धनुषको खींचा और उस मर्मभेदी बाणको रावणपर छोड़ दिया। वह इन्द्रके हाथसे छूटे हुए वज्रके समान दुर्धर्ष तथा कालके समान अनिवार्य था। उस बाणने दुरात्मा रावणकी छातीपर चोट की और उसे विदीर्ण कर डाला। इस प्रकार रावणके प्राण लेकर सफल होनेके पश्चात् वह बाण पुनः श्रीरामचन्द्रजीके तरकसमें आ गया।

बाणकी चोट लगते ही रावणके हाथसे धनुष और बाण गिर गये तथा वह वज्रके मारे हुए वृत्रासुरकी भाँति प्राणहीन हो रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे भूमिपर पड़ा देख सम्पूर्ण निशाचर अपने स्वामीके मारे जानेसे भयभीत हो गये। उनका आश्रय नष्ट हो गया था; इसलिये वे शोकके आँसू बहाने लगे और वानरोंसे पीड़ित होकर डरके मारे लङ्कामें भाग गये। उस समय वानर विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित हो बड़े हर्षमें भर गये और श्रीरामचन्द्रजीकी जय-जयकार करते हुए रावणके वधकी घोषणा करने लगे; तत्पश्चात् आकाशमें मधुर स्वरसे देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। वायु दिव्य सुगन्ध बिखेरती हुई मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होने लगी। अन्तरिक्षसे रघुनाथजीके रथपर फूलोंकी वर्षा होने लगी, जो बड़ी मनोहर जान पड़ती थी। देवताओंके मुखसे निकली हुई श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुतिसे युक्त साधुवादकी वाणी सुनायी देने लगी। रावण सम्पूर्ण लोकोंके लिये भयंकर था। उसके मारे जानेसे देवताओं और चारणोंको बड़ा हर्ष हुआ। रघुनाथजीने राक्षसराजको मारकर सुग्रीव, अङ्गद तथा विभीषणको सफलमनोरथ किया और स्वयं भी उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उस समय देवताओंको शान्ति मिली, सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं—उनमें प्रकाश छा गया, पृथ्वीका काँपना बंद हुआ, हवा स्वाभाविक गतिसे चलने लगी तथा सूर्यकी प्रभा भी स्थिर हो गयी। सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद तथा लक्ष्मण अपने सुहृदोंके साथ युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीकी विजयसे बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद उन सबने मिलकर नयनाभिराम श्रीरामकी विधिवत् पूजा की। शत्रुको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके पश्चात् स्वजनोंसहित सेनासे घिरे हुए महान् तेजस्वी रघुकुल-राजकुमार श्रीराम रणभूमिमें देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति शोभा पाने लगे।

## विभीषण और मन्दोदरी आदिका विलाप तथा रावणके शवका दाह-संस्कार

भाईको मरकर धरतीपर पड़ा देख विभीषणका हृदय शोकके आवेगसे व्याकुल हो गया और वे विलाप करने लगे—'हा भाई! हा पराक्रमी वीर! तुम संसारमें विख्यात, कार्य-कुशल और नीतिज्ञ थे। तुम तो सदा बहुमूल्य बिछौनोंपर सोया करते थे; आज इस तरह जमीनपर क्यों पड़े हो? वीरवर! आज तुमपर वही संकट आकर पड़ा है, जिसके लिये मैंने तुम्हें पहलेसे ही आगाह कर दिया था; किन्तु उस समय काम और मोहके वशीभूत होनेके कारण तुम्हें मेरी बातें नहीं रुचीं। अहंकारके कारण प्रहस्त, इन्द्रजित्, अतिरथी कुम्भकर्ण, अतिकाय, नरान्तक तथा दूसरे लोगोंने भी उन्हें नहीं स्वीकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। औरोंकी बात तो अलग रहे, स्वयं तुमने भी मेरी बातोंको अधिक महत्त्व नहीं दिया। उसीका यह परिणाम आज उपस्थित हुआ है। तुम राक्षसोंमें सिंहके समान थे, किन्तु आज धूलमें पड़े हो। तुम्हारे न रहनेसे लङ्का-निवासियोंकी सारी शक्ति ही नष्ट हो गयी। अब यहाँ क्या बाकी रह गया? श्रीरामचन्द्रजीने प्रचण्ड आँधीका रूप धारण करके राक्षसराज रावण-जैसे महान् वृक्षको उखाड़ डाला—उसे डाल और पत्तोंसहित नष्ट कर दिया।'

विभीषणको इस प्रकार शोकसे व्याकुल देख श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'जो लोग अपने अभ्युदयकी इच्छासे युद्धमें प्रवृत्त होते और मारे जाते हैं, उनके लिये कदापि शोक नहीं करना चाहिये। जिसने इन्द्रसहित तीनों लोकोंको युद्धमें भयभीत कर रखा था, वही यदि इस समय कालके अधीन हुआ तो यह उसके लिये शोकका अवसर नहीं है। [आज रावणको जो गति प्राप्त हुई है] यह पूर्वकालीन महापुरुषोंकी बतायी हुई उत्तम गति है! क्षत्रियोंके लिये तो यह बड़े आदरकी वस्तु है। क्षत्रियवृत्तिका आश्रय लेनेवाले पुरुषकी यदि युद्धमें मृत्यु हो तो वह कभी शोकके योग्य नहीं है। यही शास्त्रका सिद्धान्त है, इसे समझकर तुम तात्त्विक बुद्धिका आश्रय ले अपने मनकी चिन्ता दूर करो और अब आगे जो कुछ—प्रेत-संस्कार आदि करना है, उसके सम्बन्धमें विचार करो।' परम पराक्रमी राजकुमार श्रीरामके इस प्रकार कहनेपर विभीषणने शोकसे संतप्त होकर कहा—'भगवन्! पूर्वकालमें जो सम्पूर्ण देवताओं तथा इन्द्रके द्वारा भी कभी परास्त नहीं हुआ था, वही वीर आज आपसे टक्कर लेकर सदाके लिये शान्त हो गया।'

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा रावणके मारे जानेका समाचार जानकर शोकसे व्याकुल हुई राक्षसियाँ अन्तःपुरसे निकल पड़ीं और लङ्काके उत्तरद्वारसे बाहर आयीं; फिर राक्षसोंके साथ भयंकर युद्धक्षेत्रमें प्रवेश करके वे अपने मरे हुए पतिको खोजने लगीं। वे 'हा आर्यपुत्र! हा नाथ!' की पुकार मचाती हुई लाशोंसे भरी और खूनसे तर हुई रणभूमिमें गिर-गिर पड़ती थीं। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे पतिके शोकसे बेसुध हो, यूथपतिके मारे जानेपर हथिनियोंकी तरह, करुण-क्रन्दन कर रही थीं। धूलमें पड़े हुए अपने मृतक पतिपर सहसा दृष्टि पड़ते ही वे कटी हुई लताओंकी भाँति उसके शरीरपर गिर पड़ीं। उनमेंसे कोई तो बड़े आदरके साथ उसका आलिङ्गन करके, कोई पैर पकड़कर और कोई गलेसे लगकर रोने लगी। कोई स्त्री अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठा पछाड़ खाकर गिरी और धरतीपर लोटने लगी। कोई मरे हुए स्वामीका मुँह देखकर मूर्च्छित हो गयी। कोई पतिका मस्तक गोदमें लेकर उसके मुँहको निहारती और आँसुओंसे नहलाती हुई रोने लगी। इस प्रकार अपने पतिको भूमिपर पड़ा देख रावणकी स्त्रियाँ शोकसे आर्त होकर नाना प्रकारसे विलाप करने लगीं—'हाय! जिन्होंने इन्द्र और यमराजको भी भयभीत कर रखा था, राजा कुबेरका पुष्पक विमान छीन लिया था तथा गन्धर्वों, ऋषियों और देवताओंको भी युद्धमें त्रास पहुँचाया था, वे ही हमारे प्राणनाथ आज इस रणभूमिमें मरे पड़े हैं। जो असुरों, देवताओं तथा नागोंसे भी भयभीत होना नहीं जानते थे, उन्हें आज मनुष्यसे भय हो गया। जिन्हें देवता भी नहीं मार सकते थे, उन्हें पैदल चलनेवाले मनुष्यने मार डाला। आर्यपुत्र! तुमने सदा हितकी बात कहनेवाले सुहृदोंके वचनोंपर ध्यान नहीं दिया और अपनी मृत्युके लिये सीताका अपहरण किया। इस प्रकार तुमने इन राक्षसोंको, हमको तथा अपनेको भी एक ही साथ विपत्तिमें डाल दिया। तुम्हारे प्रिय भ्राता विभीषण तुम्हें हितकी बात कह रहे थे, तो भी तुमने अपने वधके लिये मोहवश उन्हें कटु वचन सुनाये। उसीका यह प्रत्यक्ष फल मिला है। यदि तुम मिथिलेश-कुमारी सीताको श्रीरामचन्द्रजीके पास लौटा देते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तो जड़-मूलसहित हमारा विनाश करनेवाला यह घोर सङ्कट न आता। महाबाहो! इस युद्धमें वानरोंका, राक्षसोंका और तुम्हारा भी वध दैवयोगसे ही हुआ है। संसारमें फल देनेके लिये उन्मुख हुए दैवके विधानको कोई धन खर्च करके, इच्छा-मात्रसे, पराक्रमके द्वारा अथवा आज्ञासे नहीं पलट सकता।'* इस प्रकार राक्षसराजकी सभी स्त्रियाँ दुःखसे पीड़ित हो आँखोंमें आँसू भरकर कुररीकी भाँति विलाप करने लगीं।

उस समय रावणकी ज्येष्ठ पत्नी मन्दोदरीने अचिन्त्यकर्मा भगवान् श्रीरामके द्वारा जब अपने पति दशाननको मारा गया देखा तब उसे बड़ा दुःख हुआ और वह स्वामीकी ओर देख विलाप करती हुई बोली—"महाबाहो! जब आप क्रोध करते थे, उस समय इन्द्र भी आपके सामने खड़े होनेमें भय खाते थे। बड़े-बड़े ऋषि, यशस्वी गन्धर्व और चारण भी आपके डरसे चारों दिशाओंमें भाग गये थे। आपने तीनों लोकोंको जीतकर अपनेको सम्पत्तिशाली और पराक्रमी बनाया था तथा आपके वेगको सहन करना किसीके लिये भी सम्भव नहीं था। फिर आप-जैसे वीरको एक वनवासी मनुष्यने कैसे मार डाला। निश्चय ही ये श्रीरामचन्द्रजी महान् योगी एवं सनातन परमात्मा हैं। इनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। ये महान्‌से भी महान्, अज्ञानान्धकारसे परे तथा सबको धारण करनेवाले परमेश्वर हैं। जिनके हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा पाता है, भगवती लक्ष्मी जिनका कभी साथ नहीं छोड़तीं, जिन्हें परास्त करना सर्वथा असम्भव है तथा जो नित्य, स्थिर एवं सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर हैं, उन सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णुने ही जगत्‌का कल्याण करनेके लिये मनुष्यका रूप धारण करके वानररूपमें प्रकट हुए देवताओंके साथ आकर राक्षसोंसहित आपका वध किया है; क्योंकि आप देवताओंके शत्रु और समस्त संसारके लिये भयंकर थे। † नाथ! पहले आपने अपनी इन्द्रियोंको जीतकर ही इस त्रिभुवनपर विजय पायी थी। जब मैंने सुना कि जनस्थानमें बहुतेरे राक्षसोंसे घिरे होनेपर भी आपके भाई खरको श्रीरामने मार डाला है, उसी दिन मुझे विश्वास हो गया कि ये कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। जिस लङ्कामें देवताओंका प्रवेश होना भी कठिन था, वहीं जब हनुमान्‌जी बलपूर्वक घुस आये, उसी समय हमलोगोंको [ भावी अनिष्टकी आशङ्कासे ] बड़ा दुःख हुआ था। मैंने बारंबार कहा—'प्राणनाथ! रघुनाथजीसे वैर-विरोध न कीजिये।' परन्तु आपने नहीं माना। उसीका आज यह फल मिला है। भगवती सीता अरुन्धती और रोहिणीसे भी बढ़कर पतिव्रता हैं। वे वसुधाकी भी वसुधा और श्रीकी भी श्री[1] हैं। अपने स्वामीके प्रति अनन्य अनुराग रखनेवाली और सबकी पूजनीया उन सीतादेवीका तिरस्कार करके आपने बड़ा अनुचित कार्य किया था।* सर्वाङ्गसुन्दरी कल्याणी सीता निर्जन वनमें निवास करती थीं। आप छलसे उन्हें दुःखमें डालकर यहाँ हर लाये, यह आपके लिये बड़े कलङ्ककी बात हुई। मेरे नाथ! मुझे तो ऐसा विश्वास होता है कि पतिव्रता सीताकी तपस्याने ही आपको भस्म किया है। सीताका अपहरण करते समय ही आप जलकर खाक नहीं हो गये—यही आश्चर्यकी बात है। आर्यपुत्र इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि समय आनेपर कर्त्ताको उसके पाप-कर्मका फल अवश्य मिलता है। शुभ कर्म करनेवालेको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है और पापीको पापका फल—दुःख भोगना पड़ता है। [ अपने शुभ कर्मोंके कारण ही ] विभीषणको सुख प्राप्त हुआ है और आपको ऐसी बुरी दशा भोगनी पड़ी है। † संसारमें कभी किसी भी

---

* नैवार्थेन च कामेन विक्रमेण न चाज्ञया।
शक्या दैवगतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता॥ (१११।२५)

† व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः॥
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान्।
तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः॥
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः।
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः॥
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः।
सर्वलोकेश्वरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया॥
स राक्षसपरीवारं देवशत्रुं भयावहम्।
(१११।११-१५)

---

१. पृथ्वी सबको धारण किये हुए है परन्तु भगवती सीता आधार-शक्ति होनेके कारण उसको भी धारण करती हैं; इसलिये वे वसुधाकी भी वसुधा हैं तथा श्री ( लक्ष्मी या शोभा ) की सत्ता भी उन्हींसे है; अतः वे श्रीकी भी श्री हैं।

* अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते।
सीतां धर्षयता मान्यां त्वया ह्यसदृशं कृतम्।
वसुधाया हि वसुधां श्रियाः श्रीं भर्तृवत्सलाम्॥(१११।२०-२१)

† अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः।
भर्तुः पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः॥
शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते।
विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम्॥(१११।२५-२६)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

प्राणीकी मृत्यु अकारण नहीं होती। इसी नियमके अनुसार मिथिलेशकुमारी सीता आपकी मृत्युका कारण बन गयीं।

"हाय! मुझे भी एक दिन विधवा होना पड़ेगा, इस बातको मैंने कभी सोचा भी नहीं था। दानवराज मय मेरे पिता, राक्षसराज रावण मेरे पति तथा इन्द्रपर भी विजय प्राप्त करनेवाला मेरा पुत्र है—यह सोचकर मैं अत्यन्त गर्वसे फूली रहती थी। हा नाथ! यह स्वप्न है या सत्य? आप श्रीरामके द्वारा कैसे मारे गये? आप तो मृत्युकी भी मृत्यु थे। फिर स्वयं ही मृत्युके अधीन कैसे हो गये? आपने त्रिभुवनकी सम्पत्तिका भोग किया और तीनों लोकोंके प्राणियोंपर भारी आतङ्क जमाया। लोकपालोंपर विजय पायी। बड़े-बड़े अभिमानियोंको कैद करके आपने अपना पराक्रम प्रकट किया। संसारको क्षोभमें डाला, सज्जनोंको कष्ट पहुँचाया और शत्रुओंके सामने बलपूर्वक अहंकारपूर्ण बातें कहीं। भयंकर पराक्रम करनेवाले विपक्षियोंको मारकर अपने पक्षके लोगों और सेवकोंकी रक्षा की। दानवोंके सरदारों और हजारों यक्षोंको मौतके घाट उतारा तथा युद्धमें निवातकवचोंको भी परास्त किया। आपके द्वारा अनेकों यज्ञोंका विनाश हुआ है। आप स्वजनोंके रक्षक, धर्मकी व्यवस्थाको तोड़नेवाले तथा संग्राममें मायाकी सृष्टि करनेवाले थे। देवताओं, असुरों और मनुष्योंकी कन्याओंको आप इधर-उधरसे हरकर लाया करते थे। शत्रुकी स्त्रियोंको शोक देनेवाले, स्वजनोंके नेता, लङ्काद्वीपके पालक, भयङ्कर कर्म करनेवाले तथा हम सब लोगोंको कामोपभोगका सुख देनेवाले थे। ऐसे प्रभावशाली और रथियोंमें श्रेष्ठ अपने प्रियतम स्वामीको श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मारा गया देखकर भी जो अभीतक मैं इस देहको धारण किये हुए हूँ—यह मेरी पाषाण-हृदयताका परिचायक है।

"राक्षसराज! आप तो बहुमूल्य पलंगोंपर सोते थे। यहाँ धरतीपर धूलमें लिपटे हुए क्यों सो रहे हैं? राजन्! आज आप जिस विशाल एवं दुर्गम पथपर गये हैं, वहीं मुझ दुखियाको भी अपने साथ ले चलिये। मैं आपके बिना जीवित नहीं रह सकूँगी। मुझ असहायाको छोड़कर आप क्यों जाना चाहते हैं? मैं दीन, अभागिनी होकर आपके लिये रो रही हूँ, मुझसे बोलते क्यों नहीं? आज मेरे मुखपर घूँघट नहीं है, मैं नगरद्वारसे पैदल ही चलकर यहाँतक आयी हूँ; इस दशामें मुझे देखकर आप क्रोध क्यों नहीं करते? आप अपनी स्त्रियोंसे बड़ा प्रेम करते थे। आज ये सब-की-सब लाज छोड़कर, पर्दा हटाकर बाहर निकल आयी हैं। इन्हें देखकर आपको क्रोध क्यों नहीं होता? मैं अनाथ होकर विलाप कर रही हूँ। आप मुझे सान्त्वना क्यों नहीं देते? मेरा आदर क्यों नहीं करते? राजन्! आपने अनेकों कुल-ललनाओंको, जो गुरुजनोंकी सेवामें लगी रहनेवाली, धर्मपरायणा तथा पतिव्रता थीं, विधवा बनाया और उनका अपमान किया था; अतः उन्होंने शोकसे सन्तप्त होकर उस समय आपको शाप दिया था। उसीका यह फल है कि आपको शत्रुके अधीन होना पड़ा है। 'पतिव्रताओंके आँसू इस पृथ्वीपर व्यर्थ नहीं गिरते' यह कहावत आपके ऊपर प्रायः ठीक-ठीक घटी है।*

"महाराज! आप तो अपने तेजसे तीनों लोकोंको आक्रान्त करके अपनेको शूरवीर मानते थे, फिर भी परायी स्त्रीको चुरानेका यह नीच काम आपने कैसे किया? मृगके बहाने श्रीरामचन्द्रजीको दूर हटाया, लक्ष्मणको भी अलग किया, उसके बाद राम-पत्नी सीताको चोरी-चोरी हर लाये [ यह कितनी बड़ी कायरता है ]। युद्धमें कभी आपने कायरता दिखायी हो, यह मुझे याद नहीं पड़ता; किन्तु भाग्यके फेरसे उस दिन—सीताका हरण करते समय निश्चय ही आपमें कायरता आ गयी थी, जो आपके विनाशकी सूचना दे रही थी। मेरे देवर विभीषण सत्यवादी, भूत और भविष्यके जाननेवाले तथा वर्तमानको समझनेमें भी कुशल हैं। उन्होंने हरकर लायी हुई मिथिलेशकुमारी सीताको देखकर मन-ही-मन कुछ विचार किया और अन्तमें लंबी साँस छोड़कर कहा—'अब प्रधान-प्रधान राक्षसोंके विनाशका समय उपस्थित हो गया है।' काम और क्रोधसे उत्पन्न आपके आसक्ति-विषयक दोषके कारण यह सारा ऐश्वर्य नष्ट हो गया और जड़-मूलका नाश करनेवाला यह महान् अनर्थ प्राप्त हुआ। आज आपने समस्त राक्षस-कुलको अनाथ कर दिया।

---

* यास्त्वया विधवा राजन् कृता नैकाः कुलस्त्रियः॥
पतिव्रता धर्मरता गुरुशुश्रूषणे रताः।
ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशं गतः॥
त्वया विप्रकृताभिश्च तदा शप्तस्तदागतम्।
प्रवादः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप॥
पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले।
( १११। ६४–६७ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हित चाहनेवाले सुहृदों तथा बन्धुओंने जो आपसे हितकी बातें कहीं, उन्हें आपने अनसुनी कर दिया। विभीषणका कथन युक्ति और प्रयोजनसे पूर्ण तथा कल्याणकारी था; किन्तु आपने उसे नहीं माना। आप अपने बलके अभिमानमें उन्मत्त हो रहे थे; अतः मारीच, कुम्भकर्ण तथा मेरे पिताकी शिक्षा भी आपने नहीं मानी, उसीका आपको यह फल मिला है। प्रियतम! आपका नील मेघके समान वर्ण है; आप शरीरपर पीत वस्त्र और बाँहोंमें सुन्दर आभूषण धारण किये हुए हैं। आज खूनसे लथपथ हो अपने शरीरको सब ओर छितराकर यहाँ कैसे सो रहे हैं? मैं शोकसे व्याकुल हो रही हूँ, आप मुझसे बोलते क्यों नहीं? आपकी मृत्यु हो जानेपर भी मेरे इस शोक-पीड़ित हृदयके हजारों टुकड़े नहीं हो जाते, अतः मुझ-जैसी पाषाणहृदया नारीको धिक्कार है!''

मन्दोदरीका हृदय स्नेहसे द्रवीभूत हो रहा था। उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा बह रही थी। वह इस प्रकार विलाप करती हुई अपनी चेतना खो बैठी और मूर्च्छित होकर रावणकी छातीपर गिर पड़ी। उसकी सौतें भी बहुत व्याकुल थीं। उसे इस अवस्थामें देखकर उन्होंने उठाया और स्वयं भी रोती हुई वे सब-की-सब विलाप करती मन्दोदरीको सान्त्वना देने लगीं—'देवि! क्या आप नहीं जानतीं कि संसारका स्वरूप अस्थिर है? दशा बदलनेपर राजाओंकी लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती।' उनकी बातें सुनकर मन्दोदरी फूट-फूटकर रोने लगी। उसका उज्ज्वल मुख और स्तन आँसुओंसे भींग गये।

इसी समय श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणसे कहा—'इन स्त्रियोंको धैर्य बँधाओ और अपने भाईका दाह-संस्कार करो।' यह सुनकर बुद्धिमान् विभीषण बोले—'भगवन्! जिसने धर्म और सदाचारका त्याग कर दिया था, जो क्रूर, निर्दयी, असत्यवादी एवं परायी स्त्रीका स्पर्श करनेवाला था तथा जो सबके अहितमें संलग्न रहता था, उसका दाह-संस्कार करना मैं उचित नहीं समझता। वह भाईके रूपमें मेरा शत्रु था। यद्यपि ज्येष्ठ होनेसे गुरुजनोचित गौरवके कारण वह मेरा पूज्य था, तथापि वह मुझसे सत्कार पानेयोग्य नहीं है। मेरी यह बात सुनकर संसारके मनुष्य मुझे क्रूर अवश्य कहेंगे; परन्तु जब रावणके दुर्गुणोंको भी सुनेंगे तब सब लोग मेरे इस विचारको उचित ही बतलायेंगे।' यह सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बातचीतमें बड़े प्रवीण थे, अतः बातोंका अभिप्राय समझनेवाले विभीषणसे इस प्रकार बोले—'राक्षसराज! यह निशाचर भले ही अधर्मी और असत्यवादी रहा हो; परन्तु संग्राममें सदा ही तेजस्वी, बलवान् तथा शूरवीर रहा है। सुना जाता है—इन्द्र आदि देवता भी इसे परास्त नहीं कर सके थे। वैर मरनेतक ही रहता है, उसके बाद वह समाप्त हो जाता है। अब हमारा प्रयोजन भी सिद्ध हो चुका है। अतः इस समय यह जैसे तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेरा भी है; इसलिये इसका दाह-संस्कार करो। महाबाहो! धर्मके अनुसार तुम्हें शीघ्र ही रावणका दाह-संस्कार करना उचित है, इससे तुम यशके भागी बनोगे।'

श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर विभीषण अपने मरे हुए भाईके दाह-संस्कारकी शीघ्रतापूर्वक तैयारी करने लगे। उन्होंने लङ्कापुरीमें प्रवेश करके रावणकी अग्निहोत्रको विधिपूर्वक समाप्त किया। इसके बाद शकट, लकड़ी, अग्निहोत्रकी अग्नियाँ, यज्ञ करानेवाले पुरोहित, चन्दन-काष्ठ, अन्य प्रकारकी लकड़ियाँ, सुगन्धित अगर, भाँति-भाँतिके अन्य सुगन्धित पदार्थ, मणि, मोती और मूँगा आदि वस्तुओंको उन्होंने एकत्रित किया। फिर राक्षसोंसे घिरे हुए शीघ्र वहाँसे चले आये। तदनन्तर माल्यवान्के साथ मिलकर उन्होंने दाह-संस्कारकी तैयारीका सारा कार्य पूर्ण किया। राक्षसराज रावणके शवको रेशमी वस्त्रसे ढककर उसे सोनेके दिव्य विमानमें रखा गया। उस समय तरह-तरहके बाजे बजे और स्तुति करनेवाले लोगोंने उस शवका अभिनन्दन किया। विमानको भी विचित्र पताकाओं और फूलोंसे सजाया गया था। विभीषण आदि राक्षसोंने उसे उठाकर कंधेपर रखा और सब लोग लकड़ियाँ साथमें लेकर दक्षिण-दिशाकी ओर श्मशान-भूमिको चले। अग्निशालाकी आग, जो अत्यन्त प्रज्वलित हो रही थी, लेकर याजकगण शवके आगे-आगे चल रहे थे तथा अन्तःपुरकी सारी स्त्रियाँ रोती हुई शवके पीछे-पीछे जा रही थीं। फिर विमानको एक पवित्र स्थानमें रखकर अत्यन्त दुखी हुए राक्षसोंने चन्दन, पद्मक और खस आदिके द्वारा वैदिक विधिसे एक चिता तैयार की तथा उसपर एक मृगछाला बिछाकर सबने राक्षसराजका पितृमेध (दाह-संस्कार) उत्तम प्रकारसे किया। उन्होंने [चिताके] दक्षिण पूर्वमें (अग्निकोणमें) वेदी बनाकर उसपर यथास्थान अग्निको स्थापित किया। फिर दधिमिश्रित घीसे भरी हुई स्रुवा रावणके कंधेपर रखी। इसके बाद पैरोंपर शकट एवं जाँघोंपर ऊखल रखा; तथा काठके सभी पात्र, अरणि, उत्तरारणि और मूसल आदिको भी यथास्थान रख दिया। विभीषणके साथ-साथ अन्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राक्षसोंने भी चितापर नाना प्रकारके वस्त्र और लावा आदिकी वर्षा की। उस समय उन सबका मुँह आँसुओंसे भीगा था। फिर विभीषणने विधिके अनुसार चितामें आग लगायी। तदनन्तर स्नान करके भीगे वस्त्र पहने हुए ही उन्होंने तिल और कुशयुक्त जलसे विधिवत् अञ्जलि दी। उसके बाद विभीषणने रावणकी स्त्रियोंको बारम्बार सान्त्वना देकर उन्हें महलमें जानेकी आज्ञा दी। उनके कहनेसे वे सब-की-सब नगरमें चली गयीं। तत्पश्चात् राक्षसराज विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर विनीत भावसे खड़े हो गये। श्रीराम भी लक्ष्मण, सुग्रीव तथा समस्त सेनाके साथ अपने शत्रुको मारकर बहुत प्रसन्न थे—ठीक उसी तरह, जैसे वज्रधारी इन्द्रको वृत्रासुरके मारनेसे प्रसन्नता हुई थी। उन्होंने इन्द्रके दिये हुए धनुष, बाण तथा महान् कवचको त्याग दिया और शत्रुको परास्त कर चुकनेके कारण रोष छोड़कर शान्तभाव धारण किया।

## विभीषणका राज्याभिषेक और सीताकी अग्नि-परीक्षा

देवता, गन्धर्व और दानवगण रावणका वध देखकर उसीकी शुभचर्चा करते हुए अपने-अपने विमानसे यथास्थान लौट गये। रावणके भयंकर वध, श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रम, वानरोंके उत्तम युद्ध, सुग्रीवकी मन्त्रणा, लक्ष्मण और हनुमान्‌जीकी श्रीरामके प्रति भक्ति, उन दोनोंके पराक्रम, सीताके पातिव्रत्य तथा हनुमान्‌जीके पुरुषार्थकी बातें करते हुए जहाँसे आये थे, उस स्थानको प्रसन्नतापूर्वक चले गये। इसके बाद भगवान् श्रीरामने इन्द्रके दिये हुए दिव्य रथको, जो अग्निके समान देदीप्यमान हो रहा था, ले जानेकी आज्ञा देकर मातलिका बड़ा सम्मान किया। तब इन्द्र-सारथि मातलि श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे उस दिव्य रथपर बैठकर पुनः देवलोकको चले गये। इसके बाद रघुनाथजीने अपने समीप खड़े हुए सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे कहा—'भैया! अब तुम लङ्कामें जाकर विभीषणका राज्याभिषेक करो; क्योंकि ये मेरे प्रेमी, भक्त तथा पहले उपकार करनेवाले हैं। मेरी बड़ी इच्छा है कि रावणके छोटे भाई विभीषणको मैं लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त देखूँ।'

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर सुमित्राकुमार लक्ष्मणको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर सोनेका घड़ा हाथमें लिया और उसे मनके समान वेगवाले मुख्य-मुख्य वानरोंके हाथमें देकर समुद्रका जल लानेकी आज्ञा दी। वे वानर तुरंत ही गये और समुद्रसे जल लेकर लौट आये। तत्पश्चात् सुमित्राकुमारने विभीषणको एक उत्तम आसनपर बिठाया और उस घड़ेके जलसे श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार वैदिक विधिका अनुसरण करते हुए उन्हें लङ्काके राजपदपर अभिषिक्त किया। उस समय लक्ष्मण राक्षसोंके बीचमें खड़े थे और उनके सुहृद् भी उन्हें सब ओरसे घेरे हुए थे। उस अभिषेकमें राक्षस और

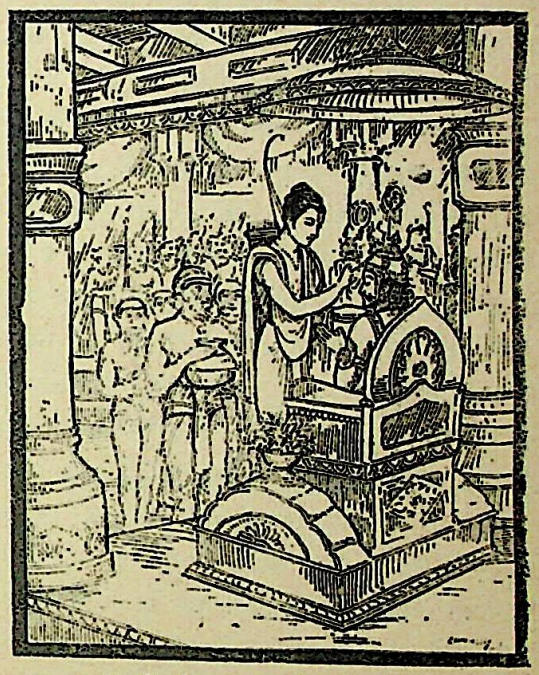

वानर—सभी सम्मिलित हुए। विभीषणको लङ्कामें राक्षसोंके राज्यपर अभिषिक्त देख उनके मन्त्री तथा प्रेमी राक्षस बहुत प्रसन्न हुए। विभीषण अपनी प्रजाको सान्त्वना दे श्रीरामचन्द्रजीके पास आये। उस समय हर्षमें भरे हुए नगरवासी निशाचर विभीषणको अर्पण करनेके लिये दही, अक्षत, मिठाई, लावा और फूल ले आये। वे सब वस्तुएँ देकर विभीषणने श्रीराम और लक्ष्मणको भेंट कीं। रघुनाथजीने विभीषणको सफल मनोरथ देख उनकी प्रसन्नताके लिये ही उन माङ्गलिक वस्तुओंको ले लिया। तत्पश्चात् उन्होंने हाथ जोड़कर विनीत भावसे खड़े हुए वीरवर हनुमान्‌जीसे कहा—'कपिश्रेष्ठ! तुम महाराज विभीषणकी आज्ञा ले लङ्कामें जाओ और मिथिलेशकुमारीसे कहो कि—मैं सुग्रीव तथा लक्ष्मण सब कुशलसे हैं और रावण संग्राममें मारा गया। यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रिय संवाद वैदेहीको सुना उनका सन्देश लेकर लौट आओ।'

भगवान्‌की यह आज्ञा पाकर वायुपुत्र हनुमान्‌जीने लङ्कामें प्रवेश किया। वहाँ निशाचरोंने उनकी बड़ी आवभगत की। तत्पश्चात् उन्होंने विभीषणसे आज्ञा माँगी और उनकी अनुमति मिल जानेपर वे अशोक-वाटिकामें गये। सीताजी वृक्षके नीचे राक्षसियोंसे घिरी बैठी थीं। हनुमान्‌जीने शान्त और विनीतभावसे उनके पास जाकर प्रणाम किया। महाबली हनुमान्‌को आया देख भगवती सीता उन्हें पहचानकर मन-ही-मन प्रसन्न हुईं परन्तु कुछ बोल न सकीं, चुपचाप बैठी रहीं। तब उन कपिश्रेष्ठने श्रीरामचन्द्रजीकी कही हुई सब बातोंको सुनाना आरम्भ किया—"विदेहनन्दिनी! श्रीरामचन्द्रजी सकुशल हैं, लक्ष्मण और सुग्रीव भी कुशलसे हैं। रघुनाथजीने विभीषणकी सहायतासे लक्ष्मण और वानर-वीरोंको साथ लेकर युद्धमें रावणका वध किया है। यह प्रिय संवाद मैं आपको सुना रहा हूँ। धर्मज्ञे! आपके ही प्रभावसे युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीको यह विजय प्राप्त हुई है। अब आप चिन्ता छोड़कर प्रसन्न हो जायँ। हमलोगोंका शत्रु रावण मारा गया और लङ्का भगवान् श्रीरामके अधीन हो गयी। श्रीरामचन्द्रजीने आपसे कहा है—'मैंने तुम्हारे उद्धारके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसके लिये निद्रा त्यागकर अथक प्रयत्न किया और समुद्रमें पुल बाँधकर उस प्रतिज्ञाका पालन किया है।' आप अपनेको रावणके घरमें समझकर भयभीत न हों, क्योंकि लङ्काका सारा ऐश्वर्य विभीषणके अधीन कर दिया गया है। अब आप अपने ही घरमें हैं—ऐसा जानकर धैर्य धारण करें।"

हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त हर्षके कारण भगवती सीताका गला भर आया, वे कुछ बोल न सकीं। उन्हें मौन देखकर कपिवर हनुमान्‌जी बोले—'देवि! आप क्या सोच रही हैं? मुझसे बोलती क्यों नहीं? उनके इस प्रकार पूछनेपर धर्मपरायणा सीता आनन्दके आँसू बहाती हुई गद्गद वाणीमें बोलीं—'कपिवर! अपने प्राणनाथकी विजयसे सम्बन्ध रखनेवाला यह प्रिय संवाद सुनकर मैं आनन्द-विभोर हो गयी थी; इसलिये कुछ देरतक मेरे मुँहसे कोई बात नहीं निकल सकी है। ऐसा प्रिय समाचार सुनानेके कारण मैं तुम्हें कुछ पुरस्कार देना चाहती हूँ, किन्तु बहुत सोचनेपर भी कोई वस्तु इसके योग्य नहीं दिखायी देती। इस भूमण्डलपर कोई वस्तु ऐसी नहीं जान पड़ती, जो इस प्रिय संवादके अनुरूप हो और जिसे तुम्हें देकर मैं सन्तुष्ट हो सकूँ। सोना, चाँदी, तरह-तरहके रत्न अथवा तीनों लोकोंका राज्य भी इस समाचारकी बराबरी नहीं कर सकता।' यह सुनकर हनुमान्‌जीको बड़ा हर्ष हुआ और हाथ जोड़ सीताके सामने खड़े होकर उन्होंने उत्तर दिया—'देवी! आप अपने स्वामीके प्रिय और हितमें लगी रहनेवाली तथा पतिकी विजय चाहनेवाली हैं। पतिव्रते! आपके ही मुँहसे ऐसा स्नेहपूर्ण वचन निकल सकता है। [ आपके इस वचनसे ही मैं सब कुछ पा गया। ]' हनुमान्‌जीके वचन सुनकर जानकी बोलीं—'वीरवर! तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न, माधुर्य-गुणयुक्त तथा बुद्धिके आठ[1] गुणोंसे भूषित है। ऐसा वचन तुम्हीं बोल सकते हो। तुम वायु-देवताके प्रशंसनीय पुत्र एवं परम धार्मिक हो। शारीरिक बल, शूरता, शास्त्रज्ञान, मानसिक बल, पराक्रम, दक्षता, तेज, क्षमा, धैर्य, स्थिरता, विनय तथा और भी बहुत-से उत्तम गुण केवल तुम्हींमें एक साथ विद्यमान हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

तत्पश्चात् हनुमान्‌जीने विनीत भावसे कहा—'देवि! यदि आपकी आज्ञा हो तो इन समस्त राक्षसियोंको, जो पहले आपको बहुत डराती-धमकाती तथा क्लेश पहुँचाती रही हैं, मैं मार डालना चाहता हूँ।' हनुमान्‌के इस प्रकार कहनेपर दीनोंपर दया करनेवाली सीताने कहा—'कपिवर! ये बेचारी राजाके आश्रयमें रहनेके कारण पराधीन थीं। दूसरोंकी आज्ञासे ही सब कुछ करती थीं। अतः अपने स्वामीकी आज्ञाके अनुसार काम करनेवाली इन दासियोंपर कौन क्रोध करेगा? तुम इन्हें मारनेकी बात न कहो। मुझे अपने भाग्यके ही दोषसे यह सब कुछ प्राप्त हुआ है। मेरे लिये दैवका ही ऐसा विधान था। मैं रावणकी दासियोंका अपराध क्षमा करती हूँ। उस राक्षसकी आज्ञासे ही ये मुझे धमकाया करती थीं। जबसे वह मारा गया है, तबसे ये बेचारी मुझे कुछ नहीं कहतीं; इन्होंने डराना-धमकाना छोड़ दिया है। इस विषयमें धर्मके उपदेशसे युक्त एक प्राचीन श्लोक प्रसिद्ध है—'श्रेष्ठ पुरुष दूसरोंकी बुराई करनेवाले पापियोंके अपराध नहीं ग्रहण करते—वे बदलेमें उनका अहित करना नहीं चाहते। इस

---

१. शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥

सुननेकी इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, स्मरण रखना, तर्क-वितर्कके द्वारा सिद्धान्तका निश्चय करना, अर्थका ज्ञान होना तथा तत्त्वको समझना—ये आठ बुद्धिके गुण हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उत्तम आचारकी सदा रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि उत्तम आचार ही सत्पुरुषोंका भूषण है*। पापी हों या पुण्यात्मा अथवा वधके योग्य अपराध करनेवाले ही क्यों न हों, उन सबके ऊपर श्रेष्ठ पुरुषको दया करनी चाहिये; क्योंकि ऐसा कोई भी नहीं है, जिससे कभी अपराध होता ही न हो। जो लोगोंकी हिंसामें ही सुख मानते और सदा पापका ही आचरण करते हैं, उन क्रूर स्वभाववाले पापियोंका भी कभी अहित नहीं करना चाहिये।'†

सीताके इस प्रकार कहनेपर बातचीत करनेमें कुशल हनुमान्‌जीने कहा—'देवि! आप भगवान् श्रीरामकी धर्मपत्नी हैं, अतः आपमें ऐसे सद्गुणोंका होना उचित ही है। अब आप मुझे अपनी ओरसे कोई सन्देश दें, मैं श्रीरामचन्द्रजीके पास जाऊँगा।' यह सुनकर जनकनन्दिनीने कहा—'कपिवर! मैं अपने भक्तवत्सल स्वामीका दर्शन करना चाहती हूँ।' सीताकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् हनुमान्‌जीने उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा—'देवि! आप आज ही पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले श्रीराम तथा लक्ष्मणका दर्शन करेंगी।' साक्षात् लक्ष्मीके समान शोभा पानेवाली भगवती सीतासे यों कहकर महातेजस्वी हनुमान्‌जी रघुनाथजीके पास लौट आये और उनसे जनकनन्दिनीकी कही हुई सारी बातें उन्होंने क्रमशः कह सुनायीं।

उन्होंने कहा—'भगवन्! जिनके लिये यह सारा उद्योग आरम्भ किया गया था, उन मिथिलेशकुमारी सीताको आप दर्शन दीजिये। वे विजयका समाचार सुनकर आपको देखनेके लिये उत्सुक हैं। उन्होंने आँखोंमें आँसू भरकर कहा है—मैं स्वामीका दर्शन करना चाहती हूँ।' हनुमान्‌जीकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सहसा ध्यानस्थ हो गये; उनकी आँखें डबडबा आयीं और वे दीर्घ उच्छ्वास लेकर पास ही खड़े हुए विभीषणसे बोले—'सीताको मस्तकपरसे स्नान कराकर दिव्य अङ्गराग तथा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके यहाँ ले आओ।' आज्ञा पाकर विभीषण अन्तःपुरमें गये और पहले अपनी स्त्रियोंको भेजकर उन्होंने सीताको अपने आनेकी खबर दी। इसके बाद राक्षसराजने भी स्वयं जाकर सीताका दर्शन किया और मस्तक झुका हाथ जोड़कर विनीत भावसे कहा—'देवि! [ स्नान करके ] दिव्य अङ्गराग तथा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर सवारीपर बैठिये। आपके स्वामी आपको देखना चाहते हैं।' यह सुनकर सीताने कहा—'राक्षसराज! मैं बिना स्नान किये ही अभी पतिदेवका दर्शन करना चाहती हूँ।' विभीषणने कहा—'देवि! आपके स्वामीने जैसी आज्ञा दी है, उसीके अनुसार आपको चलना चाहिये।'

मिथिलेशकुमारी सीता पतिको ही देवता माननेवाली थीं, पतिभक्तिसे ही सुरक्षित थीं। उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वामीकी आज्ञा स्वीकार की। इसके बाद विदेहकुमारीने सिरसे स्नान करके सुन्दर शृङ्गार किया तथा बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहनकर वे चलनेको तैयार हो गयीं। तब विभीषण उन्हें पालकीमें बिठाकर भगवान्‌के पास ले आये। उस समय शिविका ढोनेमें समर्थ राक्षस उनकी पालकी ढो रहे थे और बहुत-से निशाचर चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षामें जा रहे थे। भगवान् श्रीराम ध्यानस्थ थे, यह जानकर भी विभीषण उनके पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—

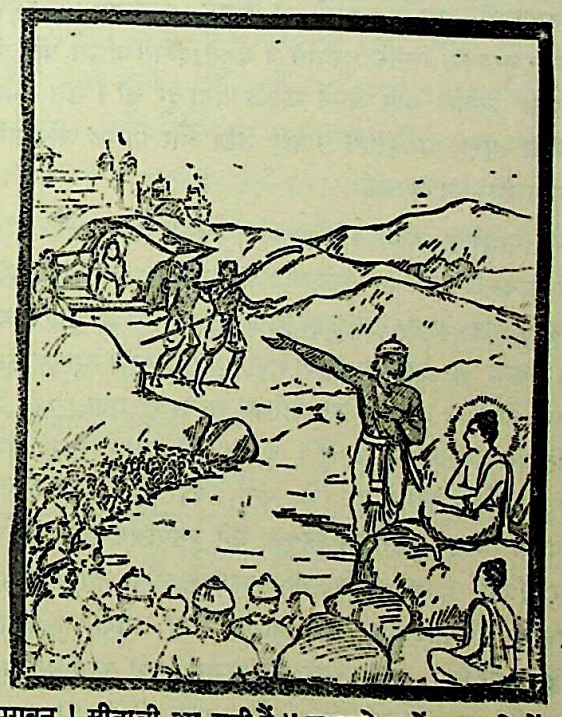

'भगवन्! सीताजी आ गयी हैं।' राक्षसके घरमें बहुत दिनोंतक निवास करनेके बाद आज सीता आयी हैं—इस बातपर विचार

---

* न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः॥ (११३।४२)

† पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥
लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम्॥ (११३।४३-४४)



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए श्रीरामचन्द्रजी विभीषणसे बोले—'राक्षसराज! तुम विदेहकुमारीसे कहो, वे शीघ्र मेरे पास आयें।' यह सुनकर धर्मके ज्ञाता विभीषण वहाँ खड़े हुए लोगोंको दूर हटाने लगे। पगड़ी बाँधे और अंगा पहने हुए बहुत-से सिपाही हाथमें छड़ी लिये सबको हटाते हुए चारों ओर घूमने लगे। रीछों, वानरों और राक्षसोंके समुदाय हटाये जानेपर बहुत दूर जाकर खड़े हो गये। जिन्हें हटाया जाता था, उन्हें बड़ा उद्वेग होता था। श्रीरामचन्द्रजीने इस बातको लक्ष्य किया और अपनी सहज उदारताके कारण हटानेवालोंको रोषपूर्वक रोका; फिर विभीषणसे कहा—'तुम किस लिये इन सब लोगोंको तंग कर रहे हो। रोक दो इस उद्वेगजनक कार्यको। यहाँ जितने लोग हैं, सब मेरे स्वजन ही तो हैं। सीता पालकीसे उतरकर पैदल ही मेरे पास आयें और ये सभी वानर उनका दर्शन करें।'

श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी आज्ञा पाकर विभीषण बड़ी नम्रताके साथ सीताको उनके पास ले आये। उस समय लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान्‌जीको श्रीरामकी बातसे बड़ा दुःख हुआ। आगे-आगे सीता थीं और पीछे विभीषण। वे लज्जासे गड़ी जा रही थीं। स्वामीके पास पहुँचकर विस्मय, हर्ष और स्नेहके साथ उन्होंने उनके मनोहर मुखका दर्शन किया। उदयकालीन पूर्ण चन्द्रमाको भी लज्जित करनेवाले प्रियतमके सुन्दर मुखको, जिसके दर्शनसे वे बहुत दिनोंसे वञ्चित थीं, जी भरकर निहारा और अपने मनकी पीड़ा दूर की। उस समय उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और निर्मल चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगा।

मिथिलेशकुमारीको विनयपूर्वक अपने समीप खड़ी देख श्रीरामचन्द्रजी बोले—'कल्याणी! संग्राममें शत्रुको परास्त करके मैंने तुम्हें उसके चंगुलसे छुड़ा लिया। पुरुषार्थसे जो कुछ किया जा सकता था, वह सब किया गया। आज सबने मेरा पराक्रम देख लिया। आज मेरा परिश्रम सफल हो गया। अब मैं प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त हूँ। चञ्चल चित्तवाला राक्षस मेरी अनुपस्थितिमें तुम्हें हर ले गया; यह दोष मेरे ऊपर दैववश प्राप्त हुआ था, जिसका मैंने पुरुषार्थके द्वारा मार्जन कर दिया। हनुमान्‌ने जो समुद्रको लाँघा तथा लङ्काका विध्वंस किया, वह सब सार्थक हो गया। सेना-सहित सुग्रीवने युद्धमें पराक्रम दिखाया तथा समय-समयपर मुझे हितकर सलाह देते रहे हैं; इनका परिश्रम भी सफल हुआ। ये विभीषण दुर्गुणोंसे भरे हुए अपने भाईका परित्याग करके स्वयं ही मेरे पास उपस्थित हुए थे। इनका परिश्रम भी व्यर्थ नहीं गया।'

इस तरह कहते हुए श्रीरामचन्द्रजीकी बातें सुनकर मृगनयनी सीताके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे अपने स्वामीकी हृदय-वल्लभा थीं। भगवान् श्रीराम उनको अपने पास देख रहे थे। परन्तु लोकापवादके भयसे उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था। वे काले-काले घुँघराले बालोंवाली कमललोचना सीतासे वानर और राक्षसोंकी भरी सभामें पुनः इस प्रकार कहने लगे—'अपने तिरस्कारका बदला चुकानेके लिये मनुष्यका जो कर्तव्य है, वह सब मैंने किया। अपने सम्मान-की रक्षाके लिये रावणका नाश कर डाला। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैंने जो यह युद्धका परिश्रम उठाया है तथा इन मित्रोंके पराक्रमसे जो इसमें विजय पायी है—यह सब तुम्हें पानेके लिये नहीं, सदाचारकी रक्षा करने, अपनेको अपवादसे मुक्त करने तथा अपने विख्यात वंशका कलङ्क मिटानेके लिये ही किया है। तुम्हारे चरित्रमें सन्देहका अवसर उपस्थित है, फिर भी तुम मेरे सामने खड़ी हो। जैसे आँखके रोगीको दीपककी ज्योति नहीं सुहाती, उसी प्रकार आज तुम अत्यन्त अप्रिय जान पड़ती हो; इसलिये जानकी! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ। मैं अपनी ओरसे तुम्हें अनुमति देता हूँ। ये दसों दिशाएँ तुम्हारे लिये खुली हैं। मुझे अब तुमसे कोई मतलब नहीं है। कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा, जो तेजस्वी होकर भी दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीको ग्रहण करेगा? अतः अब तुम जहाँ जाना चाहो, जा सकती हो।'

प्रियतमके मुखसे ऐसे कठोर और अप्रिय वचन सुनकर सीता आँसू बहाती हुई रो पड़ीं। इतने बड़े जन-समुदायमें अपने स्वामीके मुँहसे ऐसी भयंकर बात जो पहले कभी कानोंमें नहीं पड़ी थी, सुनकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे लाजसे गड़ गयीं; उन वाग्बाणोंसे पीड़ित होकर अपने अङ्गोंमें ही विलीन-सी होने लगीं। उनके नेत्रोंसे आँसूका अविरल प्रवाह जारी था। नेत्रोंके जलसे भीगे हुए मुखको अञ्चलसे पोंछती हुई विदेहकुमारी सीता अपने स्वामी रघुनाथजीसे गद्गद वाणीमें बोलीं—'प्राणनाथ! आप ऐसे अनुचित और कठोर वचन क्यों सुना रहे हैं? मुझपर विश्वास कीजिये। मैं अपने सदाचारकी ही शपथ खाकर कहती हूँ—आप मुझे जैसी समझ रहे हैं, वैसी मैं नहीं हूँ। नीच श्रेणीकी स्त्रियोंका आचरण देखकर यदि आप समूची स्त्री-जातिपर सन्देह करते हैं तो यह उचित नहीं है। यदि मेरे स्वभावको आपने अच्छी तरह परखा हो तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अपने मनके इस सन्देहको निकाल दीजिये। प्रभो! रावणके शरीरसे जो मेरे शरीरका स्पर्श हो गया है, उसमें मेरी विवशता ही कारण है। मैंने स्वेच्छासे ऐसा नहीं किया था। इसमें मेरे दुर्भाग्यका दोष है। परन्तु मेरा हृदय मेरे अधीन है और वह सदा आपमें ही लगा रहता है। हम दोनोंका परस्पर अनुराग सदा साथ-ही-साथ बढ़ा है तथा सदासे ही हम एक साथ रहते आये हैं। इतनेपर भी यदि आपने मुझे नहीं पहचाना तो मैं सदाके लिये मारी गयी। राजन्! लङ्कामें मुझे देखनेके लिये जब आपने महावीर हनुमान्‌को भेजा था, उसी समय मुझे क्यों नहीं त्याग दिया? उस समय वानर-वीर हनुमान्‌के मुखसे आपके द्वारा अपने त्यागकी बात सुनकर इनके सामने ही मैं अपने प्राण त्याग देती। फिर इस प्रकार अपने जीवनको सङ्कटमें डालकर आपको यह व्यर्थ परिश्रम नहीं करना पड़ता तथा आपके ये मित्र भी अकारण कष्ट नहीं उठाते। आप राजाओंमें श्रेष्ठ हैं, तो भी केवल क्रोधके वशीभूत होकर ओछे मनुष्योंकी तरह आपने— मेरे शील-स्वभावका विचार न करके साधारण स्त्रियोंकी भाँति मुझे कलङ्कित समझ लिया है। मेरे नामका सम्बन्ध जनकके साथ है। मैं यज्ञभूमिसे उत्पन्न हुई हूँ तथा मुझमें चरित्रका बल है। मेरा परित्याग करते समय आपने इन सब बातोंको महत्त्व नहीं दिया; बाल्यावस्थामें आपने मेरा पाणिग्रहण किया है, इसकी ओर भी ध्यान नहीं दिया तथा आपके प्रति मेरे हृदयमें जो भक्ति है और मुझमें जो शील है, वह सब कुछ आपने एक ही साथ भुला दिया।' इतना कहते-कहते सीताका गला भर आया। वे रोती और आँसू बहाती हुई दीन एवं चिन्तामग्न लक्ष्मणसे गद्गद वाणीमें बोलीं—'सुमित्राकुमार! मेरे लिये चिता तैयार कर दो। मेरे इस दुःखकी यही दवा है। मिथ्या-कलङ्कसे दूषित होकर मैं जीवित नहीं रह सकती। मेरे स्वामी मेरे गुणोंसे प्रसन्न नहीं हैं। इन्होंने भरी सभामें मेरा परित्याग कर दिया है; ऐसी दशामें मेरे लिये जो उचित मार्ग है, उसपर जानेके लिये मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी।' *

विदेहकुमारीके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणने श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखा। उन्हें जानकीजीका इस प्रकार अपमानित किया जाना सहन नहीं हुआ; किन्तु फिर इशारेसे उनका हार्दिक अभिप्राय जानकर उन्होंने चिता तैयार की। उस समय रघुनाथजी प्रलयकालीन यमराजके समान लोगोंके मनमें भय उत्पन्न कर रहे थे। उनका कोई भी मित्र उन्हें समझाने, उनसे कुछ कहने अथवा उनकी ओर देखनेका भी साहस न कर सका। वे सिर झुकाये खड़े थे। उसी अवस्थामें सीताने उनकी प्रदक्षिणा की। इसके बाद वे प्रज्वलित अग्निकी ओर बढ़ीं। अग्निके समीप पहुँचकर मिथिलेशकुमारीने देवताओं और ब्राह्मणोंको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'यदि मेरा हृदय कभी एक क्षणके लिये भी रघुनाथजीसे दूर न हुआ हो तो सम्पूर्ण जगत्‌के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें†। मेरा चरित्र शुद्ध है, फिर भी भगवान् राम मुझे दूषित समझ रहे हैं। यदि मैं सर्वथा निष्कलङ्क होऊँ तो सम्पूर्ण जगत्‌के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें।'

यों कहकर सीताने अग्निदेवकी परिक्रमा की और निःशङ्क होकर वे जलती हुई आगमें घुस गयीं। बालकों, वृद्धों तथा अन्य लोगोंने भी मिथिलेशकुमारीको प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करते देखा। उन्हें आगमें गिरते देख वहाँ आयी हुई सभी स्त्रियाँ चीख उठीं। जैसे यज्ञमें मन्त्रोंद्वारा संस्कार की हुई वसुधारा (घीकी अनवच्छिन्न धारा-रूप आहुति) तथा पूर्णाहुति अग्निमें डाली जाती है, उसी प्रकार सीता भी अग्निमें गिरती देखी गयीं। तीनों लोकोंके दिव्य प्राणी, ऋषि, देवता, गन्धर्व तथा दानवोंने भी भगवती सीताको अग्निमें प्रवेश करते देखा। उनके आगमें प्रवेश करते समय राक्षस और वानर जोर-जोरसे हाहाकार करने लगे। उनका अद्भुत आर्तनाद चारों ओर गूँज उठा।

---

* अपदेशो मे जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात्। मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु ते न पुरस्कृतम्॥
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये मम निपीडितः। मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम्॥
इति ब्रुवन्ती रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी। उवाच लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरायणम्॥
चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम्। मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे॥
अप्रीतेन गुणैर्भर्त्रा त्यक्ताया जनसंसदि। या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम्॥ (११६। १५—१९)

† यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्। तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥ (११६। २५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भगवान् श्रीरामके पास देवताओंका आगमन, ब्रह्माद्वारा उनकी भगवत्ताका वर्णन और अग्निदेवका सीताजीके सतीत्वकी साक्षी देना

धर्मात्मा श्रीराम हाहाकार करनेवाले वानर और राक्षसोंकी बातें सुनकर बड़े दुखी हुए और आँखोंमें आँसू भरकर कुछ देरतक विचार करते रहे। इसी समय यक्षराज कुबेर, पितरोंसहित यम, देवराज इन्द्र, जलाधीश वरुण, त्रिलोचन महादेव तथा सम्पूर्ण लोकोंके कर्ता वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी—ये सब देवता सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा लङ्कापुरीमें आकर श्रीरामचन्द्रजीके पास उपस्थित हुए। भगवान् श्रीराम उनके सामने हाथ जोड़े खड़े थे। आभूषणोंसे अलंकृत अपनी विशाल भुजाओंको उठाकर देवश्रेष्ठोंने कहा—'राम! आप सम्पूर्ण लोकोंके कर्ता, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और सर्वव्यापक हैं; फिर इस समय आगमें गिरी हुई सीताकी उपेक्षा कैसे कर रहे हैं?* आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णु ही हैं, इस बातको क्यों नहीं समझते? पूर्वकालमें वसुओंके प्रजापति जो ऋतधामा नामके वसु थे, वे आप ही हैं और आप तीनों लोकोंके आदिकर्ता स्वयंप्रभु हैं तथा आप ही रुद्रोंमें आठवें रुद्र और साध्योंमें पाँचवें साध्य हैं। अश्विनीकुमार आपके कान हैं तथा सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं। सृष्टिके आदि, अन्त और मध्यमें भी आप ही दिखायी देते हैं। फिर एक साधारण मनुष्यकी तरह सीताकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?'

देवताओंके इस प्रकार कहनेपर सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रने कहा—'मैं तो अपनेको मनुष्य और दशरथका पुत्र राम ही समझता हूँ। अतः मैं वस्तुतः जो कुछ हूँ और जहाँसे आया हूँ—वह आप मुझे बताइये।' रघुनाथजीके ऐसा कहनेपर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने कहा—'सत्यपराक्रम श्रीराम! आप मेरी सच्ची बात सुनिये। आप चक्र धारण करनेवाले भगवान् नारायण हैं, एक दाँतवाले वराह हैं और देवताओंके भूत एवं भावी शत्रुओंको जीतनेवाले हैं। आप अविनाशी परब्रह्म हैं, सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें सत्यरूपसे विद्यमान हैं। आप ही लोकोंके परमधर्म हैं एवं सबके नियामक विष्वक्सेन हैं। आप ही अन्तर्यामी हृषीकेश एवं आदिपुरुष पुरुषोत्तम हैं; आप ही शार्ङ्गधनुष एवं नन्दक खड्गको धारण करनेवाले चतुर्भुज विष्णु एवं महाबली अजेय श्रीकृष्ण हैं। आप ही सेनापति और आप ही मन्त्री हैं; आप ही बुद्धि, क्षमा, इन्द्रिय-निग्रह तथा सृष्टि एवं प्रलयके कारण हैं। आप ही वामन हैं; आप ही मधुदैत्यको मारनेवाले मधुसूदन, इन्द्रको भी उत्पन्न करनेवाले महेन्द्र और युद्धका अन्त करनेवाले शान्तस्वरूप पद्मनाभ हैं। दिव्य महर्षिगण आपको शरणदायक और शरणागतवत्सल बताते हैं। आप ही सहस्रों शाखारूप सींग तथा सैकड़ों विधिवाक्यरूप मस्तकोंसे युक्त वेदरूप महावृषभ हैं तथा आप ही तीनों लोकोंके आदिकर्ता और परम स्वतन्त्र हैं। आप सिद्ध और साध्योंके आश्रय तथा पूर्वज हैं। आप यज्ञ, वषट्कार, ओंकार और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ हैं। आपके प्राकट्य एवं तिरोभावको कोई नहीं जानता तथा आप कौन हैं—इसका भी किसीको पता नहीं है। समस्त प्राणियोंमें, गौओंमें और ब्राह्मणोंमें आप ही दिखायी देते हैं तथा समस्त दिशाओंमें, आकाशमें, पर्वतोंमें और नदियोंमें भी आपकी ही सत्ता है। आपके हजारों चरण, हजारों सिर और हजारों नेत्र हैं। आप सम्पूर्ण प्राणियोंको, पृथ्वीको और समस्त पर्वतोंको धारण करते हैं। पृथ्वीका अन्त हो जानेपर आप ही जलके ऊपर महान् सर्प—शेषनागके रूपमें दिखायी देते हैं, जो देवता, गन्धर्व और दानवोंके सहित तीनों लोकोंको धारण करता है। श्रीराम! मैं ब्रह्मा आपका हृदय हूँ, देवी सरस्वती जिह्वा हैं तथा मेरे बनाये हुए देवता आपके शरीरमें रोम हैं। रात्रि आपका आँख मूँदना है। दिन आँख खोलना है। वेद आपके संस्कार हैं, आपके बिना इस जगत्की स्थिति नहीं है। सम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है और पृथ्वी आपकी स्थिरता है। अग्नि आपका कोप है और चन्द्रमा प्रसन्नता है। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण करनेवाले विष्णु आप ही हैं। पूर्वकालमें [ वामनरूप धारणकर]

---

* ततो वैश्रवणो राजा यमश्च पितृभिः सह। सहस्राक्षश्च देवेशो वरुणश्च जलेश्वरः॥
षडर्धनयनः श्रीमान् महादेवो वृषध्वजः। कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः॥
एते सर्वे समागम्य विमानैः सूर्यसन्निभैः। आगम्य नगरीं लङ्कामभिजग्मुश्च राघवम्॥
ततः सहस्राभरणान् प्रगृह्य विपुलान् भुजान्। अब्रुवंस्त्रिदशश्रेष्ठा राघवं प्राञ्जलिं स्थितम्॥
कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः। उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने॥ ( ११७। २—६ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आपने अपने तीन पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे तथा महाबली बलिको बाँधकर इन्द्रको राजा बनाया था। सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं और आप भगवान् विष्णु एवं प्रजापति कृष्ण हैं। आपने रावणके वधके लिये ही इस लोकमें मानव-शरीर धारण किया है; सो हमारा यह काम तो आपने कर दिया। रावणका वध आप कर चुके, अब आप प्रसन्नता-पूर्वक अपने परमधामको पधारिये। देव! आपका बल और पराक्रम अमोघ हैं, आपके दर्शन और स्तवन भी अमोघ हैं तथा आपमें भक्ति रखनेवाले पुरुष भी पृथ्वीमें अमोघ ही होंगे। आप पुराण-पुरुषोत्तम हैं; आपमें जो लोग भक्ति रखेंगे वे इस लोक और परलोकमें अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे।' यह परमर्षि ब्रह्माका कहा हुआ दिव्य स्तोत्र और पुरातन इतिहास है। जो लोग इसका कीर्तन करेंगे उनका किसी प्रकार भी पराभव नहीं होगा।*

ब्रह्माजीके कहे हुए इन शुभ वचनोंको सुनकर मूर्तिमान् अग्निदेव उस चिताको फोड़कर सीताको गोदमें लिये प्रकट हुए। सीताजी मध्याह्नकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान, तपाये हुए सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित, लाल वस्त्र धारण किये, काली घुँघराली अलकावलीसे

सुशोभित, कभी न मुरझानेवाले फूलोंकी मालाओंसे विभूषित और सर्वथा अनिन्दिता थीं। सम्पूर्ण लोकोंके साक्षी अग्निदेवने अपनी गोदमें लाकर उन्हें श्रीरामचन्द्रजीको सौंप दिया और उनसे कहा—'श्रीरामचन्द्रजी! यह आपकी वैदेही है, इसमें किसी भी प्रकारका दोष नहीं है। इस सती-साध्वीने मन, वचन, बुद्धि और आँखोंसे भी आपके सिवा किसी दूसरेका सेवन नहीं किया। जिस समय इसे बलोन्मत्त राक्षस रावण हर ले गया था, उस समय यह बेचारी आश्रममें अकेली थी और आप भी इसके पास नहीं थे। रावणने कुपित होकर इसे अपने अन्तःपुरमें कैद कर दिया और इसपर भयंकर विचारोंवाली भीषण राक्षसियोंका पहरा बैठा दिया; तब भी इसका चित्त आपमें ही लगा रहा। इसे तरह-तरहके लोभ दिये गये और बहुत धमकाया भी गया; तथापि इसने रावणका एक बार भी विचार नहीं किया, इसका मन तो निरन्तर आपमें ही लगा रहा। अतः इसका भाव शुद्ध है और यह निष्पाप है, आप इसे स्वीकार करें। मैं आपको आज्ञा देता हूँ, अब आप इससे कुछ भी न कहें।'

अग्निदेवकी ये बातें सुनकर श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी आँखें हर्षसे डबडबा आयीं और वे कुछ देरतक विचार करते रहे। फिर उन्होंने अग्निदेवसे कहा—'सीताजीकी पवित्रताकी परीक्षा लोकदृष्टिसे आवश्यक थी, क्योंकि इन्हें बहुत दिनोंतक रावणके अन्तःपुरमें रहना पड़ा है। यदि मैं इनकी परीक्षा न करता तो संसार यही कहता कि दशरथ-पुत्र राम बड़ा ही मूर्ख और कामी है। यह बात मैं भी जानता हूँ कि जनकनन्दिनी सीताजीका मन मुझमें ही लगा रहता है और ये मेरी इच्छाओंका बहुत ध्यान रखती हैं। ये अपने ही तेजसे सुरक्षित थीं; अतः रावण इनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता था। रावणके अन्तःपुरमें भी इनका तिरस्कार नहीं हो सकता था। ये तीनों लोकोंमें पवित्र मानी गयी हैं, अतः मैं इन्हें कैसे त्याग सकता हूँ। आप सभी लोकपाल मेरे हितैषी हैं, और मुझपर बड़ा अनुराग रखते हैं। अतः आप सबके हितकारी वचनोंका मुझे अवश्य पालन करना चाहिये।' यह कहकर महाबली श्रीरामने सीताजीको स्वीकार कर लिया और उनसे मिलकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

* ब्रह्माजीकी मूल स्तुति टाइटलके चौथे पृष्ठपर देखनी चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## भगवान् श्रीरामके पास दशरथजीका आना तथा इन्द्रका मरे हुए वानरोंको जीवित करना

श्रीरघुनाथजीके कहे हुए इन शुभ वचनोंको सुनकर श्रीमहादेवजीने कहा—'महाबाहो ! आप धर्मनिष्ठोंमें श्रेष्ठ हैं । बड़े आनन्दकी बात है जो आपने यह महान् कर्म कर डाला । रावण सारे लोकोंके लिये बढ़े हुए अन्धकारके समान था, सो आपने युद्धमें उसे समाप्त कर दिया । अब बेचारे भरतको धीरज बँधाकर, यशस्विनी कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रासे मिलकर, अयोध्याका राज्य पाकर, सुहृदोंको आनन्द देकर, इक्ष्वाकु-कुलमें अपना वंश स्थापित करके, अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करके उत्तम यश कमाकर और ब्राह्मणोंको धन-दान करके आपको अपने परम धाममें जाना चाहिये । देखिये, ये आपके पिता महाराज दशरथ विमानपर चढ़े हुए हैं । इन्हें इन्द्रलोक प्राप्त हुआ है, आप-जैसे सुपुत्रने इन्हें तार दिया । आप भाई लक्ष्मणके सहित इन्हें नमस्कार करें।'

महादेवजीके ये वचन सुनकर लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामने विमानपर चढ़े हुए अपने पिताको प्रणाम किया ।

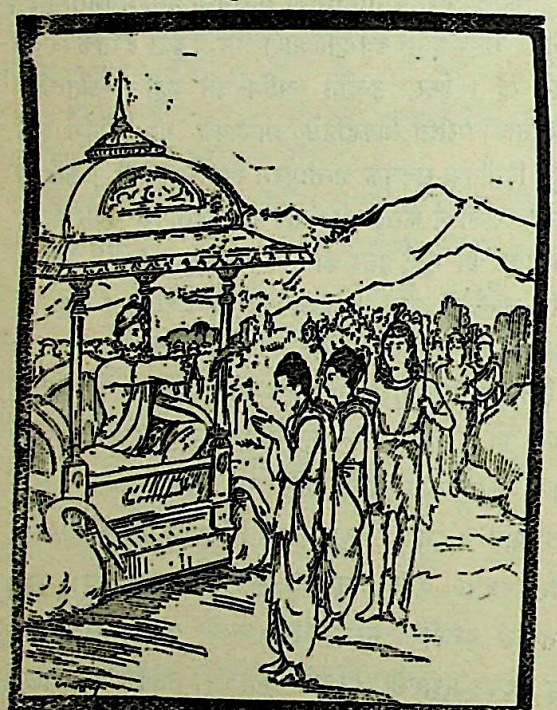

महाराज दशरथ अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने दोनोंको गोदमें उठा लिया और भुजाओंमें भरकर इस प्रकार कहा—'राम ! सच कहता हूँ, तुम्हारे बिना मुझे स्वर्ग और देवताओंसे सम्मान पाना अच्छा नहीं लगता । तुम्हें वनमें भेजनेके लिये कैकेयीने जो-जो बातें कही थीं, वे सब आज भी मेरे हृदयमें बैठी हुई हैं । आज लक्ष्मणसहित तुम्हें सकुशल देखकर और तुम्हारा आलिङ्गन करके मैं दुःखसे छूट गया हूँ । बेटा ! जैसे अष्टावक्रने अपने पिता धर्मात्मा कहोलको तार दिया था, वैसे ही तुम-जैसे महात्मा पुत्रने मेरा उद्धार कर दिया । सौम्य ! आज इन देवताओंके द्वारा मुझे मालूम हुआ कि रावणका वध करनेके लिये स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् ही तुम्हारे रूपमें अवतीर्ण हुए हैं । कौसल्या अवश्य ही बड़ी भाग्यवती है जो वनसे लौटनेपर तुम्हें अपने घरमें देखेगी । राम ! वे प्रजाजन धन्य हैं, जो अयोध्या पहुँचनेपर तुम्हें राज्यपर अभिषिक्त होते देखेंगे । भरत बड़ा ही धर्मात्मा, पवित्र और बलवान् है; वह तुममें सच्चा अनुराग रखता है । मैं उसके साथ तुम्हारा समागम देखना चाहता हूँ । सौम्य ! मेरी प्रसन्नताके लिये तुमने लक्ष्मण और सीताके साथ रहते हुए वनमें चौदह वर्ष बिता दिये । तुम्हारे वनवासकी अवधि पूरी हो गयी, मेरी प्रतिज्ञा भी तुमने पूरी कर दी तथा संग्राममें रावणको मारकर देवताओंको भी सन्तुष्ट कर दिया । इस प्रकार तुम सभी काम कर चुके । इससे तुम्हें यश भी अच्छा मिला है । अब तुम भाइयोंके साथ राज्यपर प्रतिष्ठित होकर दीर्घ आयु प्राप्त करो ।'

राजा दशरथके इस प्रकार कहनेपर भगवान् श्रीरामने हाथ जोड़कर कहा—"धर्मज्ञ ! आप कैकेयी और भरतपर प्रसन्न हों । आपने जो कैकेयीसे कहा था कि 'मैं पुत्रके सहित तेरा त्याग करता हूँ', सो आपका यह शाप कैकेयीको स्पर्श न करे ।" * महाराज दशरथने श्रीरामकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और फिर हाथ जोड़े खड़े हुए लक्ष्मणजीको हृदयसे लगाकर कहा—'धर्मज्ञ ! तुम्हें संसारमें धर्म और महान् यश प्राप्त हो तथा अन्तमें रामकी प्रसन्नतासे तुम स्वर्ग और महत्त्व प्राप्त करो । राम समस्त लोकोंके हितमें तत्पर रहते हैं ।

---

* इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च ॥
सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया ।
स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो ॥
( ११९ । २४-२५ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम सर्वदा इनकी सेवा करते रहना। इसीमें तुम्हारा हित है। देखो, इन्द्रके सहित ये तीनों लोक, सिद्ध और महर्षिगण भी पुरुषोत्तम रामको प्रणाम करके इनका पूजन कर रहे हैं। सौम्य! ये शत्रुसूदन राम देवताओंके हृदय और परमगुह्य हैं तथा जिन्हें अव्यक्त, अक्षर और वेद-प्रतिपाद्य कहा जाता है, वे भगवान् भी ये ही हैं।* तुमने जो सर्वदा सावधान रहकर जानकीसहित रामकी सेवा की है, उससे तुम्हें धर्म और महान् यशकी प्राप्ति हुई है।' लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर फिर राजा दशरथने हाथ जोड़े खड़ी हुई पुत्रवधू सीतासे कहा—'बेटी! तुम रामपर कुपित मत होना। ये तुम्हारे हितैषी हैं और संसारकी दृष्टिमें तुम्हारी पवित्रता प्रकट करनेके लिये ही इन्होंने ऐसा व्यवहार किया है। तुमने चरित्र-रक्षाके लिये जो दुष्कर कर्म किया है, उसके सामने अन्य स्त्रियोंका चरित्र फीका पड़ जायगा। पति-सेवाके विषयमें भले ही मुझे तुम्हें कुछ समझाना न हो, तथापि इतना तो मैं अवश्य कहूँगा कि ये ही तुम्हारे सबसे बड़े देवता हैं।' इस प्रकार दोनों पुत्र और सीताजीको समझा-बुझाकर राजा दशरथ विमानके द्वारा इन्द्रलोकको चले गये।

महाराज दशरथके लौट जानेपर इन्द्रने अत्यन्त प्रसन्न होकर रघुनाथजीसे कहा—'राम! तुम्हें जो हमारा दर्शन हुआ है, वह अमोघ है और हम तुमपर बहुत प्रसन्न हैं; अतः तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, हमसे कहो।' इसपर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'देवराज! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो जो वानर मेरे लिये युद्धमें मर जानेके कारण अपने स्त्री-पुत्रादिसे बिछुड़ गये हैं, उन सबको मैं प्रसन्नचित्त देखना चाहता हूँ। ये पराक्रमी और शूरवीर थे तथा मृत्युको कुछ भी नहीं गिनते थे। उन्होंने मेरे लिये बड़ा प्रयत्न किया है और आपत्ति भी उठायी है; अतः आप उन्हें जीवित कर दें। आपकी कृपासे वे सब मुझसे फिर मिलें—यह वर चाहता हूँ। मैं उन वानर, लंगूर और भालुओंको नीरोग, व्रणहीन और बल-पौरुषसे सम्पन्न देखना चाहता हूँ। ये वानर जिस स्थानपर रहें, वहाँ असमयमें भी फल, मूल और पुष्पोंकी भरमार रहे और निर्मल जलवाली नदियाँ बहती रहें।' महात्मा श्रीरामकी यह बात सुनकर इन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'राम! ऐसा ही होगा। जो वानर और भालू युद्धमें राक्षसोंके हाथसे मारे गये हैं तथा जिनके सिर और हाथ कट गये हैं, वे भी सोकर उठे हुएकी तरह नीरोग, व्रणहीन और बल-पौरुषसम्पन्न होकर उठ बैठेंगे। वे अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने सुहृद्, बन्धु, सजातीय और कुटुम्बियोंसे मिलेंगे। ये वानर जहाँ रहेंगे, वहाँ असमयमें भी वृक्ष फल-फूलोंसे लद जायँगे और नदियाँ जलसे भरी रहेंगी।'

इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर सब वानर निद्रासे जगे हुएके समान उठ खड़े हुए। उन्हें इस प्रकार जीवित होते देखकर दूसरे वानर बड़े चकित हुए। फिर रघुनाथजीको सफलमनोरथ देखकर सब देवताओंने प्रसन्न होकर कहा—'राम! अब तुम यहाँसे अयोध्याको जाओ और वानरोंको विदा कर दो। यशस्विनी मैथिली तुममें बड़ा अनुराग रखती है, इसे तुम सान्त्वना दो। भाई भरत तुम्हारे लिये व्रत कर रहा है, उससे जाकर मिलो। महात्मा शत्रुघ्न तथा अपनी सब माताओंसे भी भेंट करो, अपना राज्याभिषेक कराओ और पुरवासियोंको प्रसन्न करो।' श्रीराम और लक्ष्मणसे इस प्रकार कहकर देवराज इन्द्र सब देवताओंके साथ सूर्यके समान विमानोंपर चढ़कर चले गये। भगवान् श्रीरामने उन सब देवताओंको प्रणाम किया और फिर भाई लक्ष्मणसहित सबको विश्राम करनेकी आज्ञा दी। श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा सुरक्षित वानरोंकी उस विशाल सेनाकी उस समय ऐसी शोभा जान पड़ती थी, जैसी चन्द्रमाकी चाँदनीसे रात्रिकी शोभा होती है।

## भगवान् श्रीरामका विभीषणके द्वारा वानरोंका सत्कार कराना तथा पूरे दलके साथ पुष्पक-विमानपर चढ़कर अयोध्याके लिये प्रस्थान करना

उस रातको विश्राम करके दूसरे दिन प्रातःकाल ही रघुनाथजी उठे। उस समय विभीषणने कुशल-प्रश्नके पश्चात् हाथ जोड़कर कहा—'रघुनाथजी! स्नानके लिये जल, अङ्गराग, वस्त्र, आभूषण, चन्दन और तरह-तरहकी दिव्य मालाएँ

* रामं शुश्रूष भद्रं ते सुमित्रानन्दवर्धन। रामः सर्वस्य लोकस्य हितेष्वभिरतः सदा॥
एते सेन्द्राश्चयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः। अभिवाद्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम्॥
एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसंमितम्। देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परन्तपः॥ (११९। २८—३०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उपस्थित हैं। [ इन्हें स्वीकार कीजिये। ]' विभीषणके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'तुम सुग्रीवादि वानरोंसे स्नानके लिये अनुरोध करो। मेरे लिये तो इस समय धर्मात्मा भरत बहुत कष्ट सह रहे हैं। वे सुकुमार हैं और सुख पाने योग्य हैं। अतः उनके बिना मैं विधिवत् स्नान करना या वस्त्राभूषण धारण करना पसंद नहीं करता। देखो, मैं तो अब जल्दी-से-जल्दी अयोध्या लौट जाना चाहता हूँ। परन्तु यहाँसे वहाँतक लौटनेमें बड़ा ही दुर्गम मार्ग तय करना है।' इसपर विभीषण बोले—'महाराज! मैं एक दिनमें ही आपको उस पुरीमें पहुँचा दूँगा। रावणने मेरे भाई कुबेरको संग्राममें परास्त करके उनसे सूर्यके समान देदीप्यमान पुष्पक नामका विमान छीन लिया था। वह बड़ा ही उत्तम, दिव्य और इच्छानुसार चलनेवाला है। इस समय वह आपके ही लिये सुरक्षित रखा हुआ है। उसके द्वारा आप अनायास ही अयोध्या पहुँच जायँगे। यदि मुझे आप अपना कृपापात्र समझते हैं और मेरे प्रति आपका सौहार्द है तो अभी भाई लक्ष्मण और सीताजीके सहित कुछ दिन यहीं विराजिये। जब सब प्रकारकी सामग्रियोंसे मैं आपका सत्कार कर लूँ, तब जानेका विचार करें। मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। मैं केवल प्रेम, सम्मान और सौहार्दके कारण ही आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। आपको आज्ञा नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि मैं तो आपका सेवक हूँ।'

विभीषणके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सब राक्षस और वानरोंके सामने कहा—'वीरवर! मेरे परम सुहृद् और सचिव बनकर तुमने मेरा सब प्रकार बड़ा सम्मान किया है। परन्तु राक्षसराज! मैं तुम्हारी यह बात नहीं मान सकता, क्योंकि भाई भरतको देखनेके लिये मेरा मन बहुत उत्सुक है। वे मुझे लौटानेके लिये चित्रकूट-पर्वतपर आये तथा मुझसे सिर झुकाकर प्रार्थना भी की; परन्तु मैंने उनकी बात नहीं मानी। उनके सिवा कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी, मित्रवर गुह और पुरवासियोंको देखनेकी भी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है। अतः सौम्य! अब तो तुम मुझे जानेकी ही अनुमति दो, तुमने मेरा खूब सत्कार किया है। और मित्र! किसी प्रकारका बुरा मत मानना—इतनी तुमसे विनय करता हूँ। अब तुम जल्दी ही मेरे लिये विमान मँगाओ। मेरा यहाँका कार्य समाप्त हो चुका, इसलिये अब मेरा यहाँ ठहरना कैसे ठीक हो सकता है?' रामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर राक्षसराज विभीषणने बड़ी फुर्तीसे सूर्यके समान देदीप्यमान पुष्पक-विमान मँगाया। वह विमान सोनेसे जड़ा हुआ था, उसमें वैदूर्य-मणिकी वेदियाँ थीं, जहाँ-तहाँ गुप्तगृह बने हुए थे और वह चाँदीके समान चमकीला था। वह पीले रंगकी ध्वजा-पताकाओंसे सजा हुआ था, उसमें सोनेके कमलोंसे सुसज्जित सोनेकी ही अटारियाँ तथा मोती और मणियोंकी खिड़कियाँ थीं एवं सब ओर सुमधुर ध्वनिवाले घण्टे बँधे हुए थे। वह विश्वकर्माका बनाया हुआ विमान सुमेरुके शिखरके समान ऊँचा तथा मोती और चाँदीसे सुसज्जित बड़े-बड़े कमरोंसे विभूषित था। उसकी फर्श स्फटिकसे जड़ी हुई थी; उसमें वैदूर्यके सिंहासन थे तथा बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे। उसका मनके समान वेग था और उसकी गति कहीं भी रुकती नहीं थी। उसे भगवान् श्रीरामकी सेवामें उपस्थित करके विभीषण खड़े हो गये। श्रीरघुनाथजी पर्वतके समान ऊँचे और इच्छानुसार चलनेवाले विमानको देखकर बड़े विस्मित हुए तथा लक्ष्मणजीको भी उसे देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

अब राक्षसराज विभीषणने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे पूछा—'मेरे लिये क्या आज्ञा है?' तब परम तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने कुछ देर सोचकर उनसे प्रेमपूर्वक कहा—'इन सभी वानरोंने बड़ा उद्योग किया है। इसलिये तुम तरह-तरहके रत्न और धन आदिसे इनका सत्कार करो। ये प्राणोंका भय छोड़कर संग्राममें डटे रहे तथा इन्हींके उत्साहपूर्ण सहयोगसे तुमने लङ्का विजय की है। अतः इन्हें रत्न और धन आदि देकर तुम इनके इस कर्मको सफल करो।' श्रीरामचन्द्रजीकी यह आज्ञा पाकर विभीषणने रत्न और धन देकर उन सभी वानरोंका सत्कार किया।

इस प्रकार वानर-सेनापतियोंको रत्न और धनसे सम्मानित हुआ देखकर श्रीरामचन्द्रजी लज्जाशीला जानकीजीको लेकर भाई लक्ष्मणके सहित उस उत्तम विमानपर चढ़े। फिर उन्होंने महाबली सुग्रीव, विभीषण तथा सब वानरोंसे सम्मानपूर्वक कहा—'कपिवरो! आपलोगोंने यह कार्य मित्रोंके योग्य ही किया है। अब मेरी आज्ञा मानकर आप सब अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंको चले जायँ। एक स्नेहयुक्त और हितकारी मित्रको जो काम करना चाहिये, सुग्रीव! तुमने वह पूरा-पूरा कर दिखाया। अब तुम शीघ्र ही अपनी सेनाके साथ किष्किन्धापुरीको चले जाओ और विभीषण! तुम अपने राज्यपर रहो। अब इन्द्रके सहित देवतालोग भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। अब मैं अपने पिताकी राजधानी अयोध्याको जाना चाहता हूँ और आप सबसे इसके लिये अनुमति चाहता हूँ।' श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर सभी वानर, वानर-सेनापति और राक्षसराज विभीषण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ जोड़कर कहने लगे—'हम भी अयोध्याको चलना चाहते हैं, आप हम सबको ले चलिये। वहाँ हम प्रसन्नतासे वन और उपवनादिमें विचरेंगे। फिर आपका अभिषेक देखकर और माता कौसल्याजीको प्रणाम करके हम जल्दी ही अपने घर लौट आयेंगे।'

जब विभीषणके सहित सभी वानरोंने ऐसी प्रार्थना की, तब धर्मात्मा श्रीरामने उनसे कहा—'यह तो मेरे लिये प्रियसे भी प्रिय बात होगी, जो आप सभी सुहृदोंके साथ मैं अयोध्या लौटूँ। इससे मुझे बड़ी ही प्रसन्नता होगी। सुग्रीव! तुम शीघ्र ही सब वानरोंके साथ विमानपर चढ़ जाओ और विभीषण! तुम भी अपने मन्त्रियोंके साथ विमानपर आ जाओ।' तब वानरोंके सहित सुग्रीव और मन्त्रियोंके सहित विभीषण बड़ी प्रसन्नतासे दिव्य पुष्पक-विमानपर चढ़ गये तथा उसपर सभी रीछ-वानर और राक्षस सुभीतेसे फैलकर बैठ गये।

## अयोध्याकी यात्रा करते समय श्रीरामका सीताजीको मार्गके स्थान दिखलाना तथा भरद्वाजाश्रमपर पहुँचकर हनुमान्‌को भरतके पास भेजना

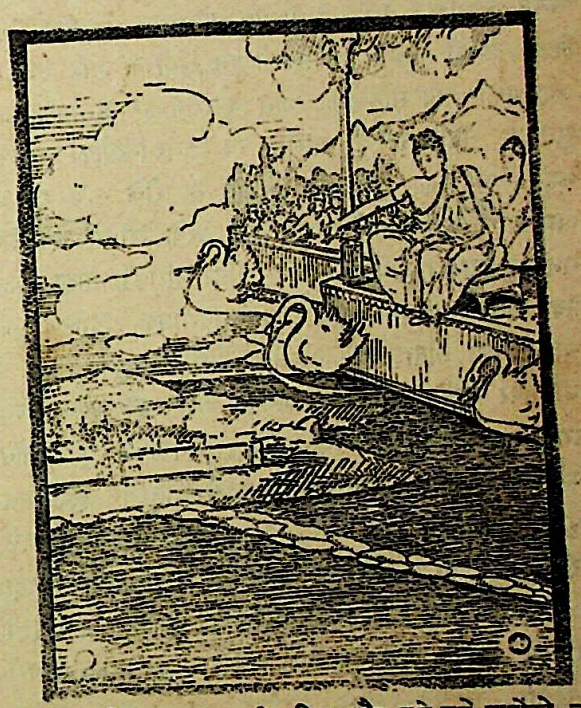

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर वह हंसोंवाला उत्तम विमान महान् शब्द करता हुआ आकाशमें चढ़ गया। तब श्रीरामने सब ओर दृष्टि डालकर जनकनन्दिनी सीताजीसे कहा—'वैदेही! त्रिकूट-पर्वतके शिखरपर स्थित विश्वकर्माकी बनायी हुई यह लङ्कापुरी देखो। इधर यह युद्धस्थल है। इसमें मांस और रक्तकी कीच मची थी तथा वानरों और राक्षसोंका घोर संहार हुआ था। विशालाक्षी! देखो, यहाँ तुम्हारे लिये मैंने रावणको मारा था। यहींपर मैंने कुम्भकर्णको, हनुमान्‌ने धूम्राक्षको और लक्ष्मणने रावणके पुत्र इन्द्रजित्‌को मारा था। विकट, विरूपाक्ष, दुष्प्रेक्ष, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक आदि बलवान् राक्षस यहीं मारे गये हैं। कुम्भकर्णके पुत्र निकुम्भ और कुम्भ तथा वज्रदंष्ट्र, दंष्ट्र, मकराक्ष, अकम्पन, शोणिताक्ष, यूपाक्ष, प्रजङ्घ, विद्युज्जिह्व, यज्ञशत्रु, सुप्तघ्न, सूर्यशत्रु और ब्रह्मशत्रु—ये सब महाबली निशाचर भी यहीं धराशायी हुए हैं। इसी स्थानपर अपनी हजारों सौतोंके साथ मन्दोदरीने रावणके लिये विलाप किया था। सुन्दरी! देखो, वह समुद्रका तट दिखायी दे रहा है। यहीं समुद्रको पार करके हमने वह रात बितायी थी। यह मैंने तुम्हारे लिये समुद्रके ऊपर नलके द्वारा सेतु बँधवाया है। ऐसा काम किसी दूसरेसे नहीं हो सकता। देखो, यह महान् समुद्रपर तीर्थ दिखायी दे रहा है। इस सेतु-बन्धनसे पहले यहाँ भगवान् शिवने कृपा की थी। यह तीर्थ 'सेतुबन्ध' नामसे विख्यात है, तीनों लोकोंमें पूजनीय है तथा बड़ा ही पवित्र और बड़े-बड़े पापोंको नष्ट करनेवाला है।*यहाँ हमें ये राक्षसराज विभीषण मिले थे। सीते! देखो, वह किष्किन्धापुरी दिखायी दे रही है। उसमें बड़े विचित्र-विचित्र वन हैं। यह सुग्रीवकी रमणीय राजधानी है, जहाँ मैंने वालीको मारा था।' वालीके द्वारा पालित किष्किन्धापुरीको देखकर सीताजीने प्रेमावेशसे विनयपूर्वक कहा—'महाराज! मैं तारा आदि सुग्रीवकी तथा अन्यान्य

* अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद् विभुः। एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः॥
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्। एतत् पवित्रं परमं महापातकनाशनम्॥ (१२३। २०-२१)


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वानरोंकी स्त्रियोंको लेकर आपके साथ अयोध्या जाना चाहती हूँ।'

सीताजीके इस प्रकार कहनेपर रघुनाथजीने कहा—'ठीक है।' फिर किष्किन्धा पहुँचनेपर उन्होंने विमान ठहराया और सुग्रीवकी ओर देखकर कहा—'वानरराज! तुम सब प्रधान-प्रधान वानरोंसे कहो कि वे अपनी-अपनी स्त्रियोंको लेकर सीताके साथ अयोध्या चलें तथा तुम भी अपनी इन स्त्रियोंको साथ ले चलो। सुग्रीव! जल्दी करो, हमें अभी आगे जाना है।' अतुलित तेजस्वी श्रीरामजीके इस प्रकार कहनेपर वानरराज सुग्रीव जल्दीसे उन सबके साथ अन्तःपुरमें गये और ताराको देखकर बोले—'प्रिये! सीताजीकी प्रसन्नताके लिये अन्य सब वानरोंकी स्त्रियोंके साथ तुम्हें श्रीरघुनाथजी अयोध्या चलनेकी आज्ञा देते हैं। अतः तुम सब वानर-पत्नियोंको साथ लेकर जल्दी चलो। तुम सबको हम अयोध्या और महाराज दशरथकी सब रानियोंके दर्शन करायेंगे।' सुग्रीवकी बात सुनकर सर्वाङ्गसुन्दरी ताराने सब वानर-स्त्रियोंको बुलाकर कहा—'महाराज सुग्रीवकी आज्ञासे वानरोंके साथ हम भी अयोध्या चलेंगी। अयोध्याका दर्शन करके मेरा तो एक प्रिय मनोरथ पूरा हो जायगा।' इस प्रकार ताराकी आज्ञा पाकर सब वानर-रमणियोंने शृङ्गार करके विमानकी प्रदक्षिणा की और फिर सीताजीको देखनेके लिये उत्सुक होकर वे विमानपर चढ़ीं। विमान उन सबको लेकर बड़ी तेजीसे चलने लगा। तब ऋष्यमूक-पर्वतके समीप पहुँचनेपर श्रीरघुनाथजीने फिर कहा—'सीते! देखो, यह सुनहरी धातुओंसे सुशोभित ऋष्यमूक-पर्वत दिखायी दे रहा है। यहाँ वानरराज सुग्रीवसे मेरी भेंट हुई थी। देखो, वह पम्पा-सरोवर दिखायी दे रहा है। उसके आस-पासका वन बड़ा ही विचित्र है। इसी सरोवरके तटपर मुझे धर्मका आचरण करनेवाली शबरी मिली थी। सीते! वह जनस्थानका वृक्ष दीख रहा है। उसीके पास मैंने एक-एक योजन लंबी भुजाओंवाले कबन्धको मारा था और वहीं तुम्हारे लिये पक्षियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी जटायु रावणके हाथसे मारा गया था। सुन्दरी! देखो, यह हमारा आश्रम है। यहाँ हमारी अद्भुत पर्णशाला दिखायी दे रही है। यहींसे तुम्हें राक्षसराज रावण बलपूर्वक हर ले गया था। यह स्वच्छ जलवाली रमणीय गोदावरी-नदी है। वह केलेके वृक्षोंसे घिरा हुआ अगस्त्यजीका आश्रम दिखायी दे रहा है और यह शरभङ्गजीका विशाल आश्रम है, जहाँ सहस्र नेत्रोंवाले देवराज इन्द्र आये थे। सुमध्यमे! देखो, ये सब वे ही तपस्वी दिखायी दे रहे हैं, यहाँके कुलपति अत्रिमुनि हैं, जो सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी हैं। इस स्थानपर मैंने विशाल शरीरवाले विराधको मारा था। उधर वह पर्वतराज चित्रकूट दिखायी दे रहा है। यहीं तुम धर्मचारिणी तपस्विनी अनसूयाजीसे मिली थीं और यहीं मुझे मनानेके लिये भरत आये थे। देखो, वे अद्भुत वनावलीसे सुशोभित यमुनाजी दिखायी दे रही हैं। यह भरद्वाज-मुनिका आश्रम है और ये परम पवित्र गङ्गाजी हैं। यह परम पवित्र शृङ्गवेरपुर है, जहाँ मेरा सखा गुह रहता है और वह मेरे पिताजीकी राजधानी अयोध्यापुरी दिखायी दे रही है। सीते! अब वनवाससे लौटकर तुम अयोध्याको प्रणाम करो।' तब वे सब वानर और विभीषणके सहित सभी राक्षस उछल-उछलकर बड़े उत्साहसे उस पुरीका दर्शन करने लगे।

श्रीरामचन्द्रजीने चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर पञ्चमी तिथिको भरद्वाज-आश्रममें पहुँचकर मुनिको प्रणाम किया। फिर उन्होंने पूछा—'भगवन्! आपने अयोध्यापुरीके विषयमें भी कुछ सुना है क्या? वहाँ सुकाल और कुशल-मङ्गल तो है न? भरत अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं न? मेरी माताएँ तो अभी जीवित हैं न?' श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर महामुनि भरद्वाजने प्रसन्नतासे मुसकराकर कहा—'भरत आपकी आज्ञाके अधीन हैं। उन्होंने जटाएँ धारण कर ली हैं और आपकी पादुकाओंको आगे रखकर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। पहले मैंने आपको चीर-वस्त्र धारण किये पिताकी आज्ञासे सर्वस्व त्यागकर केवल धर्म-पालनके लिये वनको पैदल जाते देखा था। इससे मुझे बड़ी करुणा हुई थी। अब आपको सफल-मनोरथ और मित्र तथा बान्धवोंके सहित देखकर बड़ा सुख मिला है। आपने जनस्थानमें रहकर जो सुख-दुःख उठाये हैं, वे सब मुझे मालूम हैं। वहाँ रहकर आप ब्राह्मणोंकी रक्षा कर रहे थे; उस समय रावण आपकी अनिन्दिता भार्याको हर ले गया। मारीचको देखना, सीताका हरा जाना, कबन्धका दीखना, पम्पा-सरपर पहुँचना, सुग्रीवसे मैत्री होना, वालीका आपके हाथसे मारा जाना, सीताकी खोज, हनुमान्‌का वह अद्भुत कर्म, सीताजीका पता लगनेपर नलका सेतु-बन्धन, पुत्र-बान्धव, मन्त्री-सेना और वाहनोंके सहित रावणका युद्धमें मारा जाना, देवताओंके साथ आपका समागम होना तथा उनसे वर पाना—ये सब बातें मुझे तपके प्रभावसे मालूम होती रही हैं। आप शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं, मैं भी आपको वर देना चाहता हूँ। आज मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिये, अयोध्याको कल जाइयेगा।' भगवान् श्रीरामने भरद्वाजजीकी आज्ञा शिरोधार्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


की और फिर उनसे यह वर माँगा—'भगवन्! यहाँसे अयोध्या जाते समय मार्गके सब वृक्षोंमें समय न होनेपर भी तरह-तरहके अमृत-तुल्य सुगन्धित फल लग जायँ।' भरद्वाजजीने कहा—'ऐसा ही होगा।' उनके यह कहते ही वहाँके वृक्ष स्वर्गीय वृक्षोंके समान हो गये; जिनमें फल नहीं थे, उनमें फल आ गये और पुष्पहीन पुष्पित हो गये। सूखे वृक्षोंमें पत्ते निकल आये। अयोध्या जानेका जो मार्ग था, उसके आस-पास तीन योजनतक यही स्थिति हो गयी। तब वानरलोग खूब प्रसन्न होकर इच्छानुसार वे दिव्य फल खाने लगे।

फिर परम तेजस्वी श्रीरामने हनुमान्‌जीसे कहा—"वानर-श्रेष्ठ! तुम शीघ्र ही अयोध्यामें जाकर मालूम करो कि राजमहलमें सब लोग कुशलसे तो हैं। शृङ्गवेरपुरमें पहुँचकर वनवासी गुहसे मिलना और मेरी ओरसे कुशल कहना। इससे उसे बड़ी प्रसन्नता होगी, क्योंकि वह मेरा मित्र है। वह प्रसन्न होकर तुम्हें अयोध्याका मार्ग और भरतका हाल बतायेगा। भरतसे तुम मेरी ओरसे कुशल कहना और सीता एवं लक्ष्मणके साथ सफलतापूर्वक लौटनेका समाचार सुनाना। उन्हें महाबली रावणके द्वारा सीताजीके हरे जानेका, सुग्रीवसे बातचीत होनेका, वालीके वधका, सीताकी खोजका, समुद्रके पास जानेका, उसपर पुल बनानेका, रावणके वधका, इन्द्रसे वर पानेका और पिताजीके दर्शन होनेका वृत्तान्त सुनाना। फिर यह भी कहना कि 'राम शत्रुपर विजय और बड़ा भारी यश पाकर सफलमनोरथ हो राक्षसराज विभीषण, वानरेन्द्र सुग्रीव एवं अपने अन्य महाबली मित्रोंके साथ आ रहे हैं।' यह बात सुनकर भरतकी जैसी मुखमुद्रा हो, उसपर ध्यान रखना और फिर वहाँका सब हाल मुझे सुनाना। वहाँकी सब बातोंका पता लगाना और मुखके वर्ण, दृष्टि तथा बातचीतसे भरतके भावोंको समझनेका प्रयत्न करना। यदि वे स्वयं राज्य चाहने लगे हों तो प्रसन्नतासे सारी पृथ्वीका शासन करें। अतः जबतक हम यहाँसे विशेष आगे न बढ़ें, तबतक तुम उनके मनोभाव और विचारोंका पता लगाकर लौट आओ।"

## हनुमान्‌जीका भरतजीको श्रीरामके आगमनकी सूचना देना, अयोध्यामें स्वागतकी तैयारियाँ होना तथा श्रीरामचन्द्रजीकी सब पुरवासियोंसे भेंट

पवननन्दन हनुमान्‌जी भगवान् श्रीरामसे ऐसा सन्देश पाकर बड़ी तेजीसे अयोध्याकी ओर चले। वे गङ्गा और यमुनाके सङ्गमको पार करके शृङ्गवेरपुरमें पहुँचे और गुहसे मिलकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'आपके सखा सत्यपराक्रमी भगवान् श्रीरामने सीता और लक्ष्मणके सहित अपनी कुशल कही है। वे प्रयागमें पहुँचे हैं। भरद्वाज-मुनिकी आज्ञा लेकर आ रहे हैं। आज यहीं आपको उनके दर्शन होंगे।' गुहसे इस प्रकार कहकर वे पुलकित हो वहाँसे बड़े वेगसे चले। रास्तेमें उन्हें रामतीर्थ, वालुकिनी, वरूथी एवं गोमती नदी तथा विशाल शाल-वनके दर्शन हुए। अन्तमें वे नन्दिग्रामके समीपवर्ती पुष्पित वृक्षोंके पास पहुँचे। भरत उन्हें अयोध्यासे एक कोस इधर मिले। वे चीर और कृष्ण मृगचर्म धारण किये थे, बड़े ही कृश और दीन दिखायी देते थे तथा आश्रम बनाकर रहते थे। उनकी जटाएँ बढ़ी हुई थीं, शरीरपर मैल जम गया था, भाईके [वनवासके] दुःखने उन्हें बहुत ही कृश कर दिया था। फल-मूल ही उनका भोजन था, वे इन्द्रियोंका दमन करके तपस्या-में लगे हुए थे और धर्मका आचरण करते थे। उनका जीवन बहुत नियमित और अन्तःकरण शुद्ध था। वे ब्रह्मर्षिके समान तेजस्वी जान पड़ते थे तथा रघुनाथजीकी पादुकाओंको आगे रखकर पृथ्वीका शासन करते थे। वे चारों वर्णोंकी प्रजाओंको सब प्रकारकी आपत्तियोंसे सुरक्षित रखते थे। उनके पास मन्त्री, पुरोहित और सेनापति भी योगयुक्त और गेरुए वस्त्र धारण करके रहते थे। धर्मप्रेमी पुर-वासियोंका भी भोग भोगनेका मन नहीं होता था। धर्मज्ञ भरत मानो देह धारण किये दूसरे धर्म ही थे। पवननन्दन हनुमान्‌-ने उनसे हाथ जोड़कर कहा—'देव! आप दण्डकारण्यमें चीर-वस्त्र धारण करके रहनेवाले जिन रघुनाथजीके लिये निरन्तर चिन्तित रहते हैं, उन्होंने आपसे अपनी कुशल कही है। आप यह दुःखदायी शोक त्यागिये, मैं आपको बड़ा प्रिय समाचार सुनाता हूँ। आपका इसी समय अपने भाई श्रीरामचन्द्रसे समागम होगा। भगवान् श्रीराम रावणको मारकर सफल-मनोरथ हो अपने महाबली मित्रोंके सहित आ रहे हैं। उनके साथ महातेजस्वी लक्ष्मण और यशस्विनी सीताजी भी हैं।'

हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर भरतजी सहसा हर्षित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। हर्षके कारण उन्हें मूर्च्छा हो आयी। फिर कुछ देरमें उठकर वे होशमें आये। उन्होंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियवादी हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया और उन्हें आनन्दाश्रुओंसे सींचते हुए बोले—'तुम कोई देवता हो या मनुष्य, जो कृपा करके यहाँ आये हो? मेरे प्रभु श्रीरामको वनमें गये बहुत वर्ष बीत गये। आज ही मैं उनका आनन्ददायक नाम सुन रहा हूँ। आज यह लोकोक्ति मुझे यथार्थ जान पड़ती है कि मनुष्य यदि जीता रहे तो आनन्दकी प्राप्ति हो ही जाती है, भले ही वह सौ वर्षमें हो। श्रीरामचन्द्रजीके साथ वानरोंका समागम कैसे, किस स्थानपर और किस निमित्तसे हुआ—यह मुझे ठीक-ठीक बताओ।' फिर भरतजीने उन्हें आसनपर बैठाया। तथा हनुमान्‌जीने उन्हें आरम्भसे ही भगवान् श्रीरामके वनवासका सारा वृत्तान्त सुनाकर अन्तमें कहा—'इस समय श्रीराम गङ्गातटपर आकर भरद्वाज मुनिके पास ठहरे हुए हैं।'

हनुमान्‌जीके ये मधुर वचन सुनकर भरत बड़े प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर बोले—'आज मेरा चिरकालका मनोरथ पूर्ण हुआ।' इसके बाद उन्होंने शत्रुघ्नको आज्ञा दी—'शुद्धाचारी पुरुष कुलदेवताओंका तथा नगरके सभी देवस्थानोंका सुगन्धित पुष्पों और गाजे-बाजेके साथ पूजन करें। स्तुति और पुराणोंके जानकार सूतलोग, भाट, बाजे बजानेवाले, रानियाँ, मन्त्री, सिपाहीलोग और उनकी स्त्रियाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय और भिन्न-भिन्न जातियोंके मुखियालोग रघुनाथजीका मुखचन्द्र देखनेके लिये नगरसे बाहर चलें।' भरतजीकी आज्ञा सुनकर शत्रुघ्नजीने कई हजार मजदूरोंकी अलग-अलग टोलियाँ बनाकर उनसे कहा—'ऊँची-नीची पृथ्वीको समतल बना दो। अयोध्यासे नन्दिग्रामतकका मार्ग साफ कर दो। आसपासकी सारी भूमिपर बर्फकी तरह ठंडे जलका छिड़काव कर दो। रास्तेमें लावा और फूल बखेर दो। नगरकी गलियोंपर झंडियाँ लगा दो। सूर्योदयसे पहले-पहले सब मकान सुनहरी मालाओं और पुष्पोंसे तथा पचरंगी चित्रकारीसे सजा दो एवं राजमार्गमें भीड़ न हो—इसका प्रबन्ध करनेके लिये सैकड़ों आदमी लग जायँ।'

भरतजीकी आज्ञा सुनकर धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रपाल और सुमन्त्र—ये आठों मन्त्री अत्यन्त हर्षित हो ध्वजा और आभूषणोंसे विभूषित मतवाले हाथियोंपर चढ़कर चले। अन्य कई लोग घोड़ों और रथोंपर सवार होकर निकले। फिर कौसल्या और सुमित्राको आगे करके दशरथजीकी सब रानियाँ सवारियोंपर चढ़कर चलीं। धर्मात्मा भरतके साथ मुख्य-मुख्य ब्राह्मण, भिन्न-भिन्न जातियोंके मुखिया, व्यापारी तथा माला और मिठाइयाँ लिये मन्त्रीलोग चले। धर्मज्ञ भरतने अपने बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजीकी पादुकाएँ सिरपर रख ली थीं। उनके साथ शङ्ख और भेरियोंका शब्द हो रहा था, वन्दीजन स्तुति-गान कर रहे थे। श्वेत मालाओंसे सुशोभित सफेद रंगका छत्र तथा राजाओंके योग्य सोनेसे मढ़े हुए दो सफेद चँवर भी उन्होंने अपने साथ ले रखे थे। भरतजी उपवासके कारण दीन और दुर्बल हो रहे थे तथा चीर-वस्त्र और कृष्णमृगचर्म धारण किये थे। भाईका आगमन सुनकर वे बड़े हर्षित हो रहे थे। फिर यह देखकर कि अयोध्यापुरीके सभी नागरिक नन्दिग्राममें आ गये हैं, उन्होंने हनुमान्‌से कहा—'कपिवर! अभीतक मुझे शत्रुओंको सन्तप्त करनेवाले रघुनाथजीके दर्शन नहीं हो रहे हैं। अभी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर भी नहीं दिखायी दे रहे हैं। [ इस विलम्बका क्या कारण हो सकता है? ],

भरतजीके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जीने कहा—'भरद्वाज-मुनिकी कृपासे रास्तेके सब वृक्ष सर्वदा फूलने-फलनेवाले हो गये हैं, उन्हें पाकर वानरलोग रुक गये हैं। देवराज इन्द्रने भी श्रीरामचन्द्रजीको ऐसा ही वरदान दिया था। भरद्वाजजीने सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीका सब प्रकार साङ्गोपाङ्ग आतिथ्य किया था। किन्तु देखिये, अब हर्षित वानरोंका भयङ्कर कोलाहल सुनायी दे रहा है। मालूम होता है, इस समय वानर-सेना गोमती-नदीको पार कर रही है। इधर इस साल-वनकी ओर देखिये, कैसी धूल उड़ रही है। और लीजिये, वह दूरसे ही चन्द्रमाके समान उज्ज्वलवर्णका पुष्पक-विमान दिखायी दे रहा है। इस दिव्य पुष्पक-विमानको ब्रह्माजीने मनसे ही रचा था। यह विमान मध्याह्नके सूर्यकी तरह प्रकाशमान है और मनके समान शीघ्रगामी है। इसीमें जानकीजीसहित दोनों भाई तथा महातेजस्वी सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण चढ़े हुए हैं।'

हनुमान्‌जीके यह कहते ही कि 'ये रामचन्द्रजी आ रहे हैं' स्त्री, बालक, युवा और वृद्ध—सभी पुरवासियोंकी हर्षध्वनिसे आकाश गूँज उठा। सब लोग हाथी, घोड़ों और रथोंसे उतर पड़े और पृथ्वीपर खड़े होकर विमानपर विराजमान श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करने लगे। भरतजी श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि लगाये हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने दूरसे ही बड़ी प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य-पाद्य आदिसे उनकी पूजा की और विनीत भावसे प्रणाम किया। इतनेमें ही श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



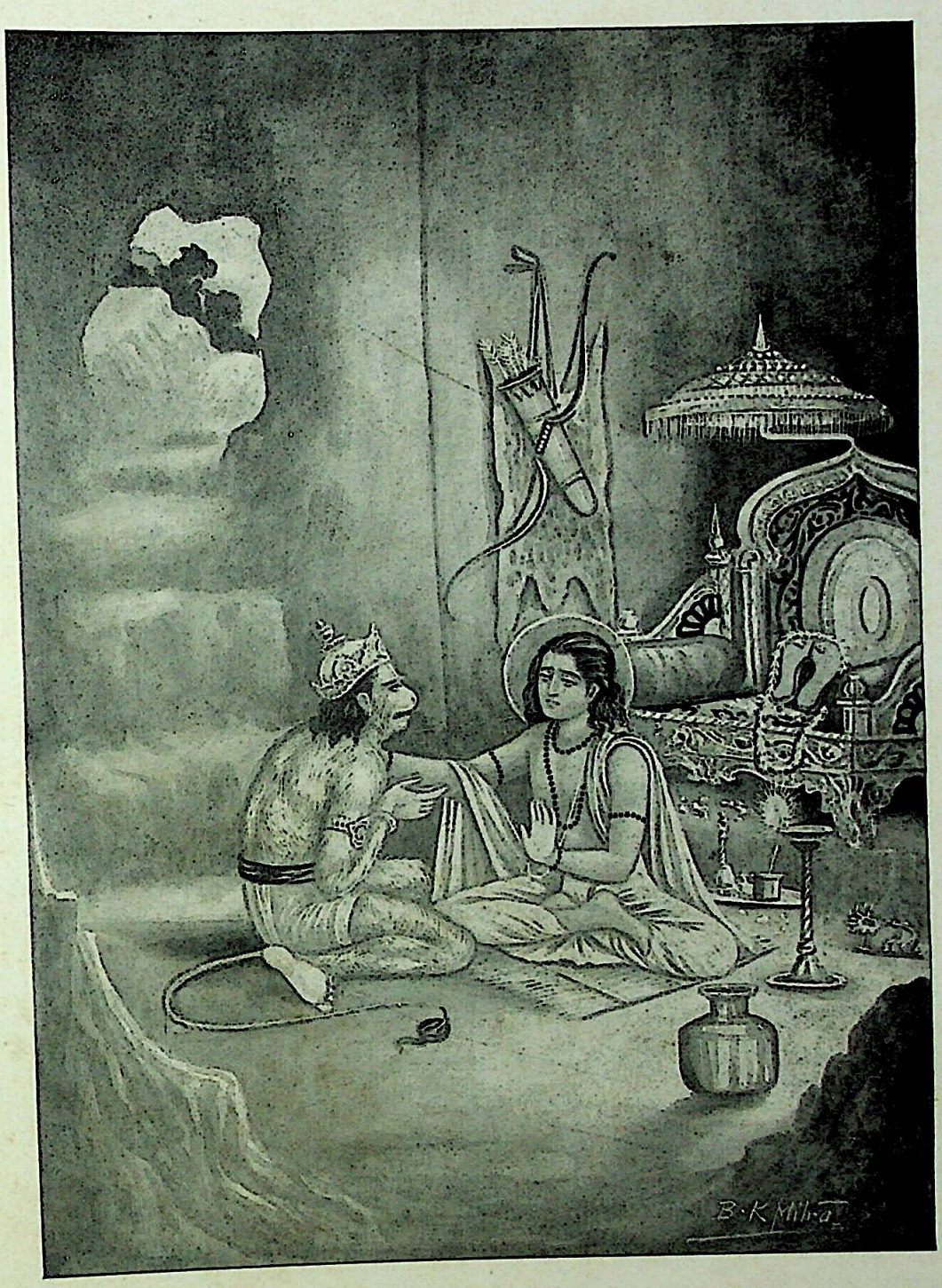


भरतका मारुतिसे मिलाप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकर वह हंसयुक्त उत्तम विमान पृथ्वीपर उतर आया। भगवान् श्रीरामने सत्यपराक्रमी भरतजीको विमानपर चढ़ा लिया और उन्होंने रघुनाथजीके पास पहुँचकर उन्हें पुनः प्रणाम किया। भरतजीको देखे हुए बहुत समय बीत चुका था। अतः रघुनाथजीने उन्हें उठाकर गोदमें बिठा लिया और फिर बड़े हर्षमें भरकर हृदयसे लगाया। तदनन्तर भरतजीने लक्ष्मण और सीताजीके पास जाकर उन्हें भी बड़े हर्षसे यथायोग्य

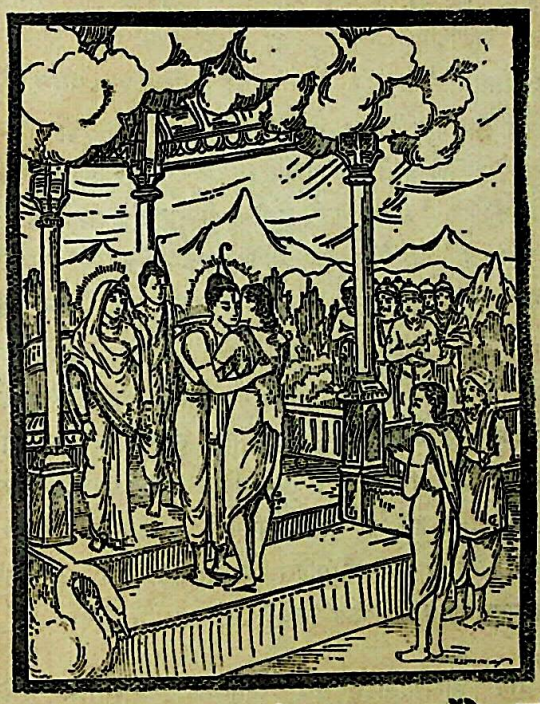

अभिवादन किया। इसके पश्चात् उन्होंने सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और पनसका भी आलिङ्गन किया। इच्छानुसार रूप धारण कर लेनेवाले उन वानरोंने मनुष्यरूप धारण करके प्रसन्नतापूर्वक भरतजीसे कुशल पूछी। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भरतने वानरराज सुग्रीवको हृदयसे लगाकर उनसे कहा—'सुग्रीव! तुम हम चारोंके पाँचवें भाई हो, क्योंकि मित्रताका नाता प्रेमसे ही होता है [ और प्रेम ही भ्रातृत्वका लक्षण है ]।' फिर उन्होंने विभीषणसे कहा—'बड़े आनन्दकी बात है कि आपकी सहायतासे रघुनाथजीने यह कठोर कार्य पूरा कर लिया।' इसी समय शत्रुघ्नजीने भी श्रीराम और लक्ष्मणको प्रणाम कर अत्यन्त विनयपूर्वक सीताजीके चरणोंमें नमस्कार किया। माता कौसल्याजी शोकके कारण बहुत दुर्बल और विवर्ण हो रही थीं। उनके पास आकर श्रीरामचन्द्रजीने दोनों चरण पकड़कर उन्हें हर्षित किया। फिर सुमित्रा, कैकेयी तथा अन्य माताओंको प्रणाम कर वे राजपुरोहित वसिष्ठजीके पास आये। उस समय सब अयोध्यावासियोंने हाथ जोड़कर कहा—'कौसल्याके आनन्दको बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीराम! आपका स्वागत है, आपका स्वागत है।' भगवान् श्रीरामने देखा कि खिले हुए कमलोंके समान नगर-निवासियोंकी हजारों अञ्जलियाँ उनकी ओर उठी हुई हैं।

फिर धर्मात्मा भरतने स्वयं ही श्रीरामचन्द्रजीके पैरोंमें उनकी पादुकाएँ पहना दीं और हाथ जोड़कर कहा—'आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा मनोरथ पूरा हुआ, जो अयोध्यानरेश आपको मैं पुनः अयोध्यामें लौटा हुआ देख रहा हूँ। आप राज्यका खजाना, कोठार और सेना सब देख लें; आपके प्रतापसे मैंने सभीको पहलेसे दसगुना कर दिया है।' भ्रातृवत्सल भरतको इस प्रकार कहते देखकर वानरलोग तथा राक्षसराज विभीषण आँसू बहाने लगे। इसके पश्चात् रघुनाथजी भरतको प्रेमपूर्वक गोदमें बैठाकर विमानके द्वारा ही सेनासहित उनके आश्रमपर गये। वहाँ पहुँचकर वे सेनाके साथ विमानसे उतर पड़े और जमीनपर ही बैठ गये। फिर उन्होंने उस दिव्य विमानसे कहा—'मैं आज्ञा देता हूँ, तुम यहाँसे कुबेरके ही पास चले जाओ।' श्रीरामजीकी यह आज्ञा पाकर वह उत्तम विमान उत्तर-दिशामें कुबेरजीके स्थानपर चला गया। रघुनाथजीने अपने परम हितकारी पुरोहित वसिष्ठजीके चरण छुए और उनके पास ही एक दूसरे आसनपर बैठ गये।

## राम-राज्याभिषेक, वानरोंकी विदाई और ग्रन्थका माहात्म्य

अब कैकेयीपुत्र भरतने हाथ जोड़कर भगवान् श्रीरामसे कहा—'आपने यह राज्य मुझे सौंपा था, सो अब मैं इसे आपको लौटाता हूँ। बलवान् बैल जिस बोझेको अकेला उठा लेता है, उसे बछड़ा नहीं उठा सकता; उसी प्रकार मैं भी इस भारी भारको उठानेमें असमर्थ हूँ। आप हमारे स्वामी हैं और हम आपके आज्ञापालक सेवक हैं। अब तो हमारी यही इच्छा है कि सब लोग आपका राज्याभिषेक देखें और जबतक नक्षत्र-मण्डल एवं पृथ्वीकी स्थिति है, तबतक आप इस संसारके स्वामी बने रहें।'

भरतजीके वचन सुनकर भगवान् श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


राज्य स्वीकार किया और वे एक सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हुए। फिर शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे निपुण नाई बुलाये गये। उनके हाथ हल्के और साफ थे। पहले भरत, लक्ष्मण, सुग्रीव और राक्षसराज विभीषणके स्नान कर लेनेपर फिर रघुनाथजीने जटाएँ कटवायीं और स्नान करके रंग-बिरंगे फूलोंकी मालाएँ, चन्दन और बहुमूल्य वस्त्र धारण किये। उस समय वे अपने तेजसे दिप रहे थे। इक्ष्वाकु-कुलकी वृद्धि करनेवाले श्रीमान् भरतजीने भगवान् राम और लक्ष्मणका शृङ्गार कराया तथा सीताजीका शृङ्गार दशरथजीकी रानियोंने स्वयं अपने हाथसे किया। पुत्रवत्सला कौसल्याजीने बड़े यत्न और उत्साहसे समस्त वानर-पत्नियोंका सुन्दर शृङ्गार किया। इसके पश्चात् शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे सुमन्त्रजी एक सर्वाङ्गसुन्दर रथ जोतकर ले आये। उस दिव्य रथको देखकर महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी उसपर सवार हुए। समस्त आभूषणोंसे विभूषित सुग्रीवकी पत्नियाँ और सीताजी भी [ दूसरे रथमें बैठकर ] उत्सुकता-पूर्वक नगर देखनेके लिये [ सवारियोंपर ] चलीं।

जिस समय भगवान् श्रीराम रथपर चढ़कर अयोध्याकी ओर चले, भरतजीने उनके घोड़ोंकी रास सँभाली, शत्रुघ्नजीने छत्र लगाया, लक्ष्मणजी पंखा लेकर झलने लगे तथा चन्द्रमाके समान सफेद चँवर राक्षसराज विभीषणने लिया। उस समय आकाशमें ऋषि, देवता और मरुद्गण भगवान् रामकी स्तुति कर रहे थे; उनकी मधुर ध्वनि स्पष्ट सुनायी देती थी। वानरलोग नौ हजार हाथियोंपर चढ़कर चले। वे उस समय मानवरूप धारण किये हुए थे और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थे। अयोध्यावासियोंने उनके साथ श्रीरघुनाथजीको आते देखा। उन सभीने श्रीरामचन्द्रजी-का अभिनन्दन किया और श्रीरामने उन्हें उसका उत्तर दिया। फिर वे सब उनके पीछे-पीछे हो लिये। मन्त्री, ब्राह्मण और प्रजाजनोंसे घिरे होनेके कारण श्रीरामचन्द्रजी नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे। सबसे आगे बाजेवाले थे; वे प्रसन्न होकर तुरही आदि माङ्गलिक बाजे बजाते जाते थे तथा भगवान् रामके आगे अक्षत और सोनेसे युक्त पात्र, गौ, ब्राह्मण, कन्याएँ और हाथमें मिठाई लिये अनेकों मनुष्य चल रहे थे। श्रीरामचन्द्रजी अपने मन्त्रियोंसे सुग्रीवकी मित्रता, हनुमान्‌जीके प्रभाव और वानरोंके अद्भुत पराक्रमकी चर्चा करते जा रहे थे। वानरोंके पुरुषार्थ और राक्षसोंके बलकी बातें सुनकर अयोध्यावासियोंको बड़ा विस्मय हुआ।

इस प्रकार बातें करते-करते परम तेजस्वी रघुनाथजीने वानरोंके सहित अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। उस समय पुरवासियोंने अपने-अपने घरपर लगी हुई पताकाएँ ऊँची कर दीं। फिर श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताजीके महलमें पहुँचे। वहाँ माता कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीको प्रणाम करके उन्होंने भाई भरतसे ये अभिप्रायपूर्ण मधुर वचन कहे—'मेरा जो अशोकवाटिकासे घिरा हुआ मुक्ता और वैदूर्य-मणियोंसे जटित विशाल भवन है, वह सुग्रीवको दे दो।' उनकी आज्ञा सुनकर भरतने सुग्रीवका हाथ पकड़कर उस भवनमें प्रवेश किया। फिर शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे अनेकों सेवक उसमें दीपक, पलँग और बिछौने ले गये। भरतजीने सुग्रीवसे कहा—'राजन्! भगवान् श्रीरामके अभिषेकके उपयोगी जल लानेके लिये आप अपने दूतोंको आज्ञा दीजिये।' तब सुग्रीवने उसी समय चार श्रेष्ठ वानरोंको सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित चार सोनेके घड़े देकर कहा—'वानरो! तुमलोग कल प्रातःकाल ही चारों समुद्रोंका जल लेकर यहाँ तैयार रहो!' सुग्रीवकी आज्ञा पाकर कई बड़े-बड़े वानर आकाशमें उड़े और अलग-अलग घड़ोंमें भरकर पाँच सौ नदियोंका जल ले आये। उनके सिवा सुषेण पूर्व-समुद्रका, ऋषभ दक्षिण-समुद्रका, गवय पश्चिम-समुद्रका और नील उत्तर-समुद्रका जल भर लाये। वानरोंके द्वारा लाये हुए उस जलको देखकर मन्त्रियोंसहित शत्रुघ्नजीने गुरु वसिष्ठजी तथा सुहृद्गणसे अभिषेक करनेके लिये प्रार्थना की।

तब ब्राह्मणोंसहित वृद्ध वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीको सीताजीके साथ एक रत्ननिर्मित पीढ़ेपर बैठाया। तथा वसुओंने जैसे इन्द्रका अभिषेक किया था, उसी प्रकार वसिष्ठ, विजय, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, गौतम और वामदेवने ऋत्विक्, ब्राह्मण, कन्या, मन्त्री, सैनिक, व्यापारीगण और आकाशमें स्थित समस्त देवता एवं चारों लोकपालोंके साथ स्वच्छ और सुगन्धित जल तथा सर्वौषधियोंके रससे भगवान् श्रीरामका अभिषेक किया। फिर ब्रह्माजीका रचा हुआ रत्नमय किरीट, जिसके द्वारा पहले-पहल मनुजीका और फिर क्रमशः उनके सभी वंशधर राजाओंका अभिषेक हुआ था, तरह-तरहके रत्नोंसे सुशोभित सुवर्णमय सभाभवनमें विधिपूर्वक एक रत्नोंसे बने हुए पीढ़ेपर रखा गया। महात्मा वसिष्ठजीने अन्य ब्राह्मणोंके साथ उस किरीटसे तथा अन्यान्य आभूषणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको सजाया। उस समय शत्रुघ्नजीने उनपर सुन्दर सफेद रंगका छत्र लगाया। वानरराज सुग्रीवने श्वेत चँवर लिया तथा एक दूसरा चँवर विभीषणने लिया। उस समय इन्द्रकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



श्रीरामका राज्याभिषेक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

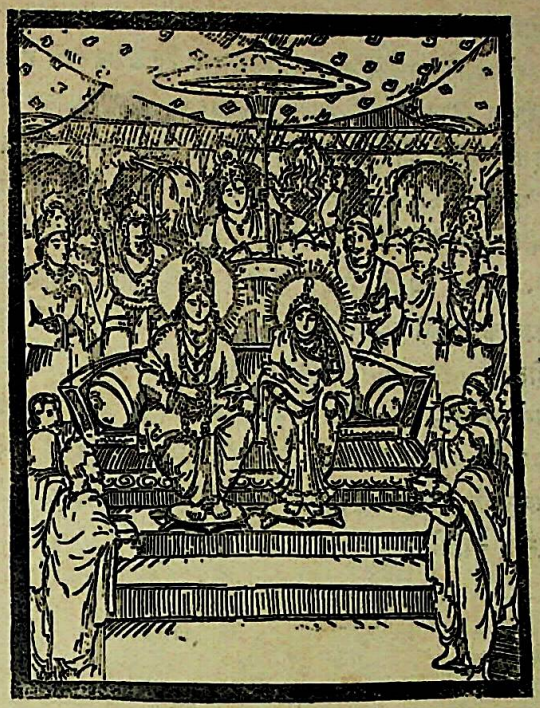

प्रेरणासे वायुदेवने उन्हें सब प्रकारके रत्न और मणियोंसे सुशोभित मोतियोंकी माला दी तथा देवता और गन्धर्व गाने लगे। श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेकके समय पृथ्वी खेतीसे हरी-भरी हो गयी, वृक्षोंमें फल आ गये और पुष्प गन्धयुक्त हो गये। महाराज श्रीरामने एक लाख घोड़े और सौ साँड़ोंसहित बहुत-सी दूध देनेवाली गौएँ और तीस करोड़ अशर्फियाँ ब्राह्मणोंको दान कीं।

फिर उन्होंने सुग्रीवको तरह-तरहके बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और एक मणि-जटित सोनेकी माला दी तथा अङ्गदको वैदूर्य-मणियोंसे जड़े हुए दो बाजूबंद दिये। इसके पश्चात् उन्होंने सीताजीको उत्तम मणियोंसे जड़ी हुई एक मोतियोंकी माला, कभी मैले न होनेवाले दो वस्त्र तथा अनेकों दिव्य आभूषण दिये। सीताजी उस मालाको अपने गलेसे निकालकर बार-बार हनुमान्‌जी तथा सब वानरोंकी ओर देखकर भगवान् श्रीरामकी ओर देखने लगीं। श्रीराम उनका इशारा समझ गये और उनसे बोले—'सुभगे! तुम जिसपर प्रसन्न हो, उसे यह हार दे दो।' तब सीताजीने वह चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल माला हनुमान्‌जीको दे दी; क्योंकि उन पवननन्दनमें तेज, धैर्य, यश, दक्षता, सामर्थ्य, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और बुद्धि—ये गुण सदा ही निवास करते हैं। इसी प्रकार सभी प्रधान-प्रधान वानरोंका वस्त्र और आभूषणोंद्वारा यथायोग्य सत्कार किया गया। तब विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् और जाम्बवान् आदि सभी प्रमुख वानर पुण्यकर्मा श्रीरामसे सब प्रकारके अभीष्ट पदार्थोंद्वारा सम्मानित हो प्रसन्नतासे अपने-अपने स्थानोंको चले गये। फिर पृथ्वीपति श्रीरामने द्विविद, मैन्द और नीलकी आवश्यकताओंपर ध्यान देकर उनके सब मनोरथ पूरे किये। इस प्रकार भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक देखकर और उनसे विदा होकर सब वानर किष्किन्धामें चले आये। तथा राक्षसराज धर्मात्मा विभीषण भी अपने साथी राक्षसोंसहित लङ्कामें आ गये।

अब परम उदार रघुनाथजी बड़े आनन्दसे राज्य-शासन करने लगे। उन्होंने एक बार लक्ष्मणसे कहा—'धर्मज्ञ! तुम युवराज-पदका भार स्वीकार करो और मेरे साथ इस पृथ्वीका शासन करो।' परन्तु जब श्रीरामचन्द्रजीके बहुत समझानेपर भी लक्ष्मणने उसे स्वीकार नहीं किया, तब उन्होंने भरतको अपना युवराज बनाया। महाराज श्रीरामने अनेकों पौण्डरीक और अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया। वे दस हजार वर्षोंतक राज्य करते रहे। उसमें उन्होंने दस अश्वमेध यज्ञ किये। इनमें बड़े उत्तम घोड़े छोड़े गये थे तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ दी गयी थीं। रघुनाथजीके शासन-कालमें विधवाओं-का विलाप नहीं सुनायी पड़ता था, सर्पादि दुष्ट जन्तुओंका भय नहीं था, रोगोंकी आशङ्का नहीं थी, कोई चोर नहीं था, पापका कोई स्पर्श भी नहीं करता था तथा बूढ़ोंको बालकोंके अन्त्येष्टि-संस्कार नहीं करने पड़ते थे। सभी लोग प्रसन्न थे, सभी धर्मपरायण थे तथा श्रीरामजीकी ओर देखते हुए एक-दूसरेको कष्ट नहीं पहुँचाते थे। उस समय लोग हजारों वर्षतक जीवित रहते थे, उनके हजारों पुत्र-पौत्र होते थे तथा उन्हें किसी प्रकारका रोग या शोक नहीं होता था। वृक्षोंकी जड़ें मजबूत होती थीं और वे सर्वदा फल-फूलोंसे लदे रहते थे। मेघ इच्छा होते ही वर्षा करते थे और वायु सुखकारी होकर प्रवाहित होता था। सब लोग अपने-अपने कर्मोंमें सन्तुष्ट रहकर उन्हींका आचरण करते थे। इस प्रकार श्रीरामजीके शासन-कालमें प्रजा धर्म-परायण थी तथा सब लोग सुलक्षण और धर्मनिष्ठ थे। इस तरह दस हजार वर्षोंतक श्रीरामचन्द्रजीने राज्य किया।

इस आदिकाव्यकी रचना पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने की थी। यह धर्म, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा राजाओंको विजय देनेवाला है। संसारमें जो पुरुष इसका सर्वदा श्रवण करता है, वह पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसमें आया हुआ राम-राज्याभिषेकका प्रसङ्ग सुननेसे पुत्रकी इच्छावालेको पुत्र और धनकी इच्छावालेको धन प्राप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। राजा उसका श्रवण करनेसे पृथ्वीपर विजय प्राप्त करता है और शत्रुओंको अपने अधीन कर लेता है। जो पुरुष क्रोधको जीतकर श्रद्धापूर्वक इस वाल्मीकिकृत महाकाव्यको सुनता है, वह सब प्रकारकी विपत्तियोंसे पार हो जाता है। जो लोग प्रवाससे लौटकर इसका श्रवण करते हैं, वे भगवान् श्रीरामसे अपने सभी अभीष्ट वर प्राप्त कर लेते हैं तथा उनपर देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं। जिस घरमें यह ग्रन्थ रहता है, उसके सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं। यदि रजस्वला स्त्रियाँ इसे श्रवण करें तो उनसे उत्तम पुत्र उत्पन्न होंगे। इस पुरातन इतिहासका पूजन और पाठ करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा दीर्घ आयु प्राप्त करता है। क्षत्रिय प्रणाम करके ब्राह्मणके मुखसे इस ग्रन्थका श्रवण करें, इससे उन्हें निःसन्देह ऐश्वर्य और पुत्रकी प्राप्ति होगी। जो पुरुष इस सम्पूर्ण रामायणका सदा श्रवण और पाठ करते रहते हैं, उनपर भगवान् श्रीराम सर्वदा प्रसन्न रहते हैं और श्रीराम ही सनातन विष्णु, आदिदेव, हरि और नारायण हैं। इसका पठन और श्रवण करनेसे सब देवता प्रसन्न होते हैं तथा पितरोंकी भी इसके श्रवणसे तृप्ति होती है। जो लोग श्रीरामचन्द्रजीमें भक्ति रखकर इस ऋषिकृत संहिताको लिखते हैं, उनका स्वर्गमें निवास होता है। इस शुभ और गम्भीर काव्यको सुननेवाले मनुष्यके कुटुम्ब और धन-धान्यकी वृद्धि होती है, उसे उत्तम सुख प्राप्त होता है और उसके सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। यह काव्य आयु, आरोग्य, यश, भ्रातृप्रेम और बुद्धिको बढ़ानेवाला है। अतः समृद्धिकी इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषोंको यह उत्साहवर्धक ग्रन्थ नियमपूर्वक सुनना चाहिये।

॥ युद्धकाण्ड समाप्त ॥

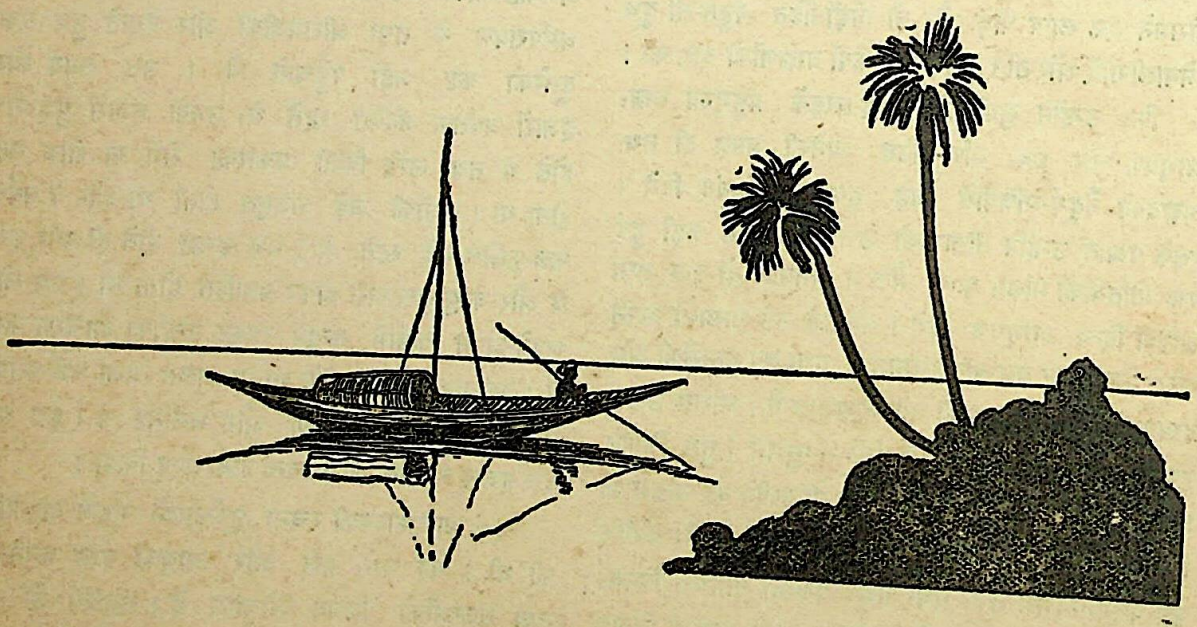

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण

## उत्तरकाण्ड

### श्रीरामके दरबारमें महर्षियोंका आगमन तथा अगस्त्य-मुनिका रावण-जन्मके प्रसङ्गमें ब्रह्मर्षि पुलस्त्यसे विश्रवाकी उत्पत्तिका वर्णन करना

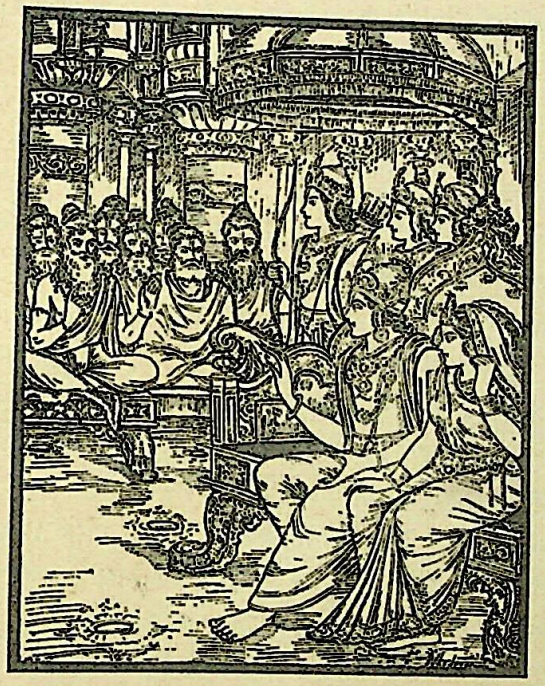

राक्षसोंका संहार करनेके पश्चात् जब भगवान् श्रीरामने राज्य ग्रहण कर लिया, तब सम्पूर्ण ऋषि-महर्षि उनका अभिनन्दन करनेके लिये अयोध्यामें पधारे। पूर्व-दिशामें रहनेवाले—कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथिके पुत्र कण्व; दक्षिण-दिशाके निवासी—स्वस्त्यात्रेय, नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, सुमुख और विमुख; पश्चिम दिशाका आश्रय लेनेवाले—नृषङ्गु, कवषी, धौम्य और महर्षि कौशेय तथा उत्तर-दिशाके नित्य-निवासी—वसिष्ठ*, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि आये। ये सभी अग्निके समान तेजस्वी, वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् तथा नाना प्रकारके शास्त्रोंका विचार करनेमें प्रवीण थे। रघुनाथजीके राजभवनमें पहुँचकर सब लोग ड्योढ़ीपर खड़े हो गये। उस समय धर्मपरायण मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य द्वारपालसे बोले—'दशरथनन्दन श्रीरामको जाकर सूचना दो कि हम अनेकों ऋषि-मुनि आपसे मिलनेके लिये आये हैं।' महर्षि अगस्त्यकी आज्ञा पाकर द्वारपाल तुरंत भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके पास गया। वह नीतिज्ञ, इशारेसे बातको समझनेवाला चतुर और धैर्यवान् था। पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् श्रीरामका दर्शन करके उसने ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्य आदिके पधारनेका समाचार सुनाया। महर्षियोंका आगमन सुनकर भगवान्‌ने द्वारपालसे कहा—'तुम जाकर उन सब लोगोंको यहाँ सुख-पूर्वक ले आओ।' [ आज्ञा पाकर द्वारपाल गया और सबको साथ ले आया। ] उनको आया देख श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर पाद्य, अर्घ्य आदिके द्वारा उन मुनियोंकी विधिवत् पूजा करके रघुनाथजीने उन्हें आदरपूर्वक एक-एक गौ अर्पण की। तत्पश्चात् सबको प्रणाम करके शुद्ध भावसे उन्हें बैठनेके लिये आसन दिये। वे आसन सोनेके बने हुए और विचित्र आकार-प्रकारवाले थे। सुन्दर होनेके साथ-साथ काफी लंबे-चौड़े भी थे। उनपर कुशके आसन रखकर ऊपरसे मृगचर्म बिछाये गये थे। आये हुए ऋषिश्रेष्ठ जब यथायोग्य आसनोंपर विराज गये, तब श्रीरामने शिष्यों और गुरुजनोंसहित उन सबकी कुशल पूछी।

उन वेदवेत्ता महर्षियोंने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'महाबाहो! हमलोग सर्वत्र सकुशल हैं। आपने सम्पूर्ण जगत्‌को रुलानेवाले रावणका वध किया; यह सबके लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। युद्धमें विजय पाकर आप अपनी

* वसिष्ठ मुनि एक शरीरसे अयोध्यामें रहते हुए भी दूसरे शरीरसे सप्तर्षिमण्डलमें रहते थे। उसी दूसरे शरीरसे उनके आनेकी बात यहाँ कही गयी है—ऐसा समझना चाहिये।



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मपत्नी सीता, हितकारी बन्धु लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न तथा माताओंके साथ यहाँ कुशलपूर्वक हैं। इस रूपमें आपको देखकर आज हम सब लोग अपने सौभाग्यकी सराहना करते हैं। प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर, अकम्पन और दुर्धर्ष-जैसे निशाचर आपलोगोंके हाथसे मारे गये। शरीरकी ऊँचाई तथा स्थूलतामें जिससे बढ़कर दूसरा कोई है ही नहीं, उस कुम्भकर्णको भी आपने हमारे भाग्यसे युद्धमें मार गिराया। त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक तथा नरान्तक आदि महाबली निशाचर भी आपके उद्योगसे मारे गये—यह बड़े आनन्दकी बात है। युद्धमें रावण आपके द्वारा मारा गया—इसे हमलोग कोई बड़ी बात नहीं समझते। परन्तु द्वन्द्वयुद्धमें [ लक्ष्मणके द्वारा ] जो रावणकुमार इन्द्रजित्का वध हुआ है—यही सबसे बढ़कर प्रसन्नताकी बात है! क्योंकि वह कालके समान आक्रमण करनेवाला था। संग्रामभूमिमें बड़ी-बड़ी मायाएँ फैलानेवाले उस निशाचरका वध किसी भी प्राणीके लिये सम्भव नहीं था; अतः हमें इन्द्रजित्का मारा जाना सुनकर ही अधिक आश्चर्य हुआ है।'

शुद्ध अन्तःकरणवाले उन महर्षियोंकी बातें सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ और वे हाथ जोड़कर उनसे पूछने लगे—'मुनिवरो! आपलोग महापराक्रमी कुम्भकर्ण, रावण, महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष, मत्त, उन्मत्त, देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, त्रिशिरा और धूम्राक्ष—इन महावीर निशाचरोंको छोड़कर केवल रावण-पुत्र इन्द्रजित्की ही प्रशंसा क्यों करते हैं? उसका प्रभाव, बल और पराक्रम कैसा था, अथवा किस कारणसे वह रावणसे भी बढ़ा-चढ़ा सिद्ध होता है—मैं इस बातको सुनना चाहता हूँ; यदि यह मेरे सुननेयोग्य हो, गोपनीय न हो, तो बतानेकी कृपा कीजिये। [ यह मेरा विनम्र अनुरोध है ] मैं आपलोगोंको आज्ञा नहीं दे रहा हूँ।'

महात्मा रघुनाथजीके वचन सुनकर महातेजस्वी महर्षि अगस्त्यने कहा—रघुनन्दन! सुनिये; मैं उसके महान् तेज और बलका वर्णन करता हूँ, जिसके कारण वह तो शत्रुओंको मार गिराता था पर स्वयं किसी शत्रुके हाथसे नहीं मारा जाता था। इस बातको बतानेके पहले मैं आपको रावणके कुल, जन्म तथा वरदान-प्राप्ति आदिका प्रसङ्ग सुनाता-हूँ। प्राचीन काल—सत्ययुगकी बात है, प्रजापति ब्रह्मा-जीके एक पुत्र हुए, जो ब्रह्मर्षि पुलस्त्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। वे साक्षात् ब्रह्माजीके समान तेजस्वी हैं। उनके गुण, धर्म और शीलका पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। उनका इतना ही परिचय देना काफी है कि वे प्रजापतिके पुत्र हैं और इसीलिये देवतालोग उनसे बहुत प्रेम करते हैं। वे बड़े बुद्धिमान् हैं और अपने उत्तम गुणोंके कारण सबके प्रिय हैं। एक बार मुनिवर पुलस्त्य धर्मानुष्ठानके लिये महागिरि मेरुके निकटवर्ती राजर्षि तृणबिन्दुके आश्रममें गये और वहीं रहने लगे। उनका मन सदा धर्ममें ही लगा रहता था। वे इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करते और तपस्यामें संलग्न रहते थे। परन्तु वहाँ उनके तपमें कुछ विघ्न पड़ने लगा। ऋषियों, नागों और राजर्षियोंकी कन्याएँ तथा अप्सराएँ भी क्रीड़ा करती हुई प्रायः उनके आश्रमकी ओर आ जाया करती थीं। वह स्थान सभी ऋतुओंमें रहनेयोग्य तथा वहाँका वन अधिक रमणीय था; इसलिये वे सदाचारिणी कन्याएँ प्रतिदिन वहाँ आकर गाती, बजाती और नाचती हुई तरह-तरहके खेल किया करती थीं। इस प्रकार वे उन तपस्वी मुनिके धर्मानुष्ठानमें बाधा डालने लगीं। महामुनि पुलस्त्य बड़े तेजस्वी थे, उन्होंने रुष्ट होकर उन्हें सुनाते हुए कहा—'कलसे जो कन्या मेरे सामने आयेगी, वह गर्भवती हो जायगी।'

महात्मा ऋषिकी यह बात सुनकर सब कन्याएँ डर गयीं और ब्रह्मशापके भयसे उन्होंने उस ओर जाना छोड़ दिया। किन्तु राजर्षि तृणबिन्दुकी कन्याने इस शापको नहीं सुना, अतः वह [ दूसरे दिन भी आकर बेखटके ] उस आश्रममें विचरने लगी। पर वहाँ उसने अपनी किसी भी सखीको उपस्थित नहीं देखा। उस समय प्रजापतिके पुत्र महातेजस्वी महर्षि पुलस्त्य अपनी तपस्यासे प्रकाशित हो वेदोंका स्वाध्याय कर रहे थे। उस कन्याने वेदमन्त्रोंका श्रवण किया और उन तपस्वी महर्षिको देखा। उनके सामने जाते ही उसके शरीरपर पीलापन छा गया और गर्भके लक्षण प्रकट हो गये। अपने शरीरमें यह दोष देखकर वह घबरा उठी और 'मुझे यह क्या हो गया' इस प्रकार चिन्ता करती हुई पिताके आश्रमपर जाकर खड़ी हुई। अपनी कन्याको उस अवस्थामें देखकर तृणबिन्दुने पूछा—'तुम्हारे शरीरकी ऐसी अवस्था कैसे हुई। यह तो तुम्हारे लिये कदापि योग्य नहीं है!' बेचारी कन्या हाथ जोड़कर बोली—'पिताजी! मेरा ऐसा रूप क्यों हो गया, इसका कोई कारण मुझे नहीं मालूम होता; मैं अभी थोड़ी देर पहले शुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षि पुलस्त्यके आश्रमपर अपनी सखियोंको खोजनेके लिये अकेली गयी थी; परन्तु वहाँ मुझे कोई भी सखी नहीं दिखायी पड़ी, उल्टे मेरे रूपमें इस प्रकार परिवर्तन हो गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह देखकर मैं डरके मारे यहाँ चली आयी हूँ।' राजर्षि तृणबिन्दु भी अपनी तपस्यासे प्रकाशमान थे। उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो मालूम हुआ कि यह सब कुछ महर्षि पुलस्त्यके ही करनेसे हुआ है। आत्मज्ञानी मुनिके शापको जानकर वे राजर्षि अपनी कन्याको साथ ले उनके आश्रमपर गये और पुलस्त्यसे बोले—'भगवन्! यह मेरी कन्या अपने गुणोंसे विभूषित है और स्वयं ही आपके पास भिक्षाके रूपमें उपस्थित हुई है; आप इसे स्वीकार करें। आप तपस्यामें लगे रहनेके कारण थक जाते होंगे, अतः यह सदा साथ रहकर आपकी सेवाशुश्रूषा किया करेगी।' धर्मात्मा राजर्षिकी बात सुनकर ब्रह्मर्षिने उस कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छा की और 'बहुत अच्छा' कहकर राजर्षिका अनुरोध स्वीकार कर लिया। तब उन्होंने मुनिको अपनी कन्या सौंप दी और स्वयं अपने आश्रममें चले आये। वह कन्या भी अपने गुणोंसे पतिको सन्तुष्ट करती हुई वहीं रहने लगी। उसके शील और सदाचारको देखकर तेजस्वी महर्षि पुलस्त्य बहुत प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले—'देवि! मैं तुम्हारे गुणोंसे बहुत सन्तुष्ट हूँ, अतः तुम्हें अपने ही समान पुत्र देता हूँ, जो माता और पिता दोनोंके कुलकी प्रतिष्ठा बढ़ायेगा तथा पौलस्त्यके नामसे विख्यात होगा। मेरे स्वाध्यायके समय तुमने वेदका श्रवण किया है; इसलिये उस पुत्रका नाम विश्रवा भी होगा।' मुनिके इस प्रकार कहनेपर वह देवी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई और थोड़े ही दिनों बाद उसने विश्रवा नामक पुत्रको जन्म दिया, जो तीनों लोकोंमें विख्यात, यशस्वी तथा धर्मात्मा हुआ। विश्रवा मुनि वेदके विद्वान्, समदर्शी, व्रत और आचारका पालन करनेवाले तथा पिताके समान ही तपस्वी हुए।

## वैश्रवणकी उत्पत्ति, तपस्या तथा लङ्कामें निवास

पुलस्त्यके पुत्र मुनिवर विश्रवा अपनी छोटी उम्रमें ही पिताकी भाँति तपस्यामें संलग्न हो गये। वे सत्यवादी, शीलवान्, जितेन्द्रिय, स्वाध्यायपरायण, बाहर-भीतरसे पवित्र, भोगोंमें अनासक्त तथा सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले थे। विश्रवाके इस उत्तम आचरणको जानकर महामुनि भरद्वाजने अपनी कन्याका, जो देवाङ्गनाके समान सुन्दरी थी, उनके साथ विवाह कर दिया। मुनिवर विश्रवाने धर्मानुसार भरद्वाजकी कन्याका पाणिग्रहण किया और प्रजाका हित-चिन्तन करनेवाली बुद्धिके द्वारा लोक-कल्याणका विचार करते हुए उन्होंने एक अद्भुत एवं पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया। उसमें सभी ब्राह्मणोचित गुण मौजूद थे। उसके जन्मसे पितामह पुलस्त्य-मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने दिव्यदृष्टिसे देखा, इस बालकमें संसारका कल्याण करनेकी बुद्धि है तथा यह आगे चलकर धनाध्यक्ष होगा, तब उन्होंने बड़े हर्षमें भरकर देवर्षियोंके साथ उसका नामकरण-संस्कार किया। वे बोले—विश्रवाका यह पुत्र विश्रवाके ही समान उत्पन्न हुआ है। इसलिये यह वैश्रवणके नामसे विख्यात होगा।'

कुमार वैश्रवण तपोवनमें रहकर आहुति डालनेसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान बढ़ने लगे। आश्रममें रहनेके कारण उन महात्माके हृदयमें भी यह विचार हुआ कि मैं उत्तम धर्मका आचरण करूँ; क्योंकि धर्म ही परम गति है। यह सोचकर उन्होंने महान् वनके भीतर कठोर नियमोंका पालन करते हुए हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। पहले तो उन्होंने केवल जलका आहार करते हुए तपस्या की; उसके बाद वे हवा पीकर रहने लगे। आगे चलकर उन्होंने हवाका भी त्याग कर दिया और वे एकदम निराहार रहने लगे। इस प्रकार उन्होंने एक हजार वर्ष एक वर्षके समान बिता दिये। तब उनकी तपस्यासे प्रसन्न हो महातेजस्वी ब्रह्माजी इन्द्रादि देवताओंके साथ उनके आश्रमपर पधारे और इस प्रकार बोले—'बेटा! तुमने उत्तम व्रतका पालन किया है, मैं तुम्हारे इस तपसे बहुत प्रसन्न हूँ; अतः तुम कोई वर माँगो।' यह सुनकर वैश्रवणने कहा—'भगवन्! मेरा विचार लोककी रक्षा करनेका है, अतः मैं लोकपाल होना चाहता हूँ।' वैश्रवणकी इस बातसे ब्रह्माजीको और भी प्रसन्नता हुई और उन्होंने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। वे वैश्रवणसे बोले—'बेटा! मैं चौथे लोकपालकी सृष्टि करनेके लिये उद्यत था। अब तुम्हीं उस पदको स्वीकार करो। जाओ, अपार धनराशिके स्वामी बनो। इन्द्र, वरुण और यमके साथ तुम्हारा चौथा स्थान होगा। यह सूर्यके समान तेजस्वी पुष्पक-विमान है, इसे अपनी सवारीके रूपमें ग्रहण करो और आजसे देवताओंकी समानता प्राप्त करो। अच्छा, अब हम अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानको जाते हैं, तुम्हारा कल्याण हो।' यों कहकर ब्रह्माजी देवताओंके साथ अपने धामको चले गये।

ब्रह्मादि देवताओंके चले जानेपर धनेशने हाथ जोड़कर अपने पितासे कहा—'भगवन्! मैंने पितामह ब्रह्माजीसे अभीष्ट वरदान प्राप्त किया है; किन्तु उन्होंने मेरे रहनेयोग्य कोई स्थान नहीं बताया है। अतः अब आप ही मेरे लिये किसी ऐसे निवासस्थानका विचार कीजिये, जहाँ रहनेसे किसी भी प्राणीको कष्ट न हो।' पुत्रके इस प्रकार कहनेपर मुनिश्रेष्ठ विश्रवा बोले—'धर्मज्ञ! सुनो। दक्षिण-समुद्रके तटपर एक त्रिकूट नामक पर्वत है, उसके शिखरपर एक विशाल पुरी है! उसका नाम लङ्का है। विश्वकर्माने उसे राक्षसोंके रहनेके लिये बनाया था। वह इन्द्रकी अमरावतीके समान रमणीय है। अतः तुम लङ्कामें ही निवास करो। उस नगरकी चहारदीवारी सोनेकी है; उसके चारों ओर चौड़ी खाइयाँ खुदी हैं। अनेकों प्रकारके यन्त्रों और शस्त्रोंसे वह सुरक्षित है। सुवर्ण और वैदूर्य-मणिके उसके फाटक हैं। भगवान् विष्णुके भयसे अब वहाँ राक्षस नहीं रहते। सब-के-सब पातालमें भाग गये हैं। अतः तुम वहाँ निवास करनेके लिये सुखपूर्वक जाओ। वहाँ रहनेमें किसी प्रकारका खटका नहीं है; कोई विघ्न-बाधा नहीं आ सकती।' अपने पिताके इस धर्मयुक्त वचनको सुनकर धर्मात्मा वैश्रवणने त्रिकूट-पर्वतके शिखरपर बनी हुई लङ्काको आबाद किया। उनके जानेपर थोड़े ही दिनोंमें वह पुरी यक्ष-राक्षसोंसे भर गयी। सभी उनकी आज्ञासे वहाँ आकर रहने लगे। समुद्रसे घिरी हुई उस लङ्का-नगरीमें धर्मात्मा वैश्रवण यक्ष और राक्षसोंके राजा होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ रहने लगे। देवता और गन्धर्व उनका यश गाते थे। उनका हृदय बड़ा विनीत था। धनके स्वामी वैश्रवण समय-समयपर पुष्पक-विमानसे आकर अपने माता-पितासे मिल जाया करते थे।

## राक्षस-वंशका वर्णन

महर्षि अगस्त्यके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—'भगवन्! आपके मुँहसे यह सुनकर कि लङ्का पहले भी राक्षसोंके ही अधिकारमें थी, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। क्या वे राक्षस रावण, कुम्भकर्ण, विकट और प्रहस्तसे तथा रावणके पुत्रोंसे भी बढ़कर बलवान् थे? उनका पूर्वज कौन था और वह महाबली किस नामसे प्रसिद्ध था? भगवान् विष्णुने उनके किस अपराधके कारण और किस तरह उन्हें लङ्कासे भगाया था? इन सब बातोंका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। इनके लिये मेरे मनमें बड़ा कुतूहल है। आप इसे दूर करें।'

श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर अगस्त्यने कहा—रघुनन्दन! ब्रह्माजीने पहले जलकी सृष्टि की और उसकी रक्षाके लिये अनेकों प्रकारके प्राणियोंको उत्पन्न किया। उनमें हेति और प्रहेति नामके दो राक्षस थे; वे दोनों परस्पर भाई और मधुकैटभके समान वीर थे। इनमें प्रहेति धार्मिक था, अतः वह तपोवनमें जाकर तपस्या करने लगा; परन्तु हेतिने विवाहके लिये बड़ा प्रयत्न किया। उस समय कालकी एक बहिन थी, जिसका नाम 'भया' था। वह अभी कुआँरी थी और उसका स्वरूप बड़ा भयंकर था। हेतिने स्वयं याचना करके भयाके साथ विवाह किया और उसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न किया, जो विद्युत्केशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। निशाचर विद्युत्केश जब बढ़कर युवावस्थाको प्राप्त हुआ तब राक्षस-श्रेष्ठ हेतिने अपने पुत्रको ब्याहनेके लिये सन्ध्याकी पुत्रीका, जो प्रभावमें अपनी माताके ही समान थी, वरण किया। सन्ध्याने सोचा—'कन्याका किसी-न-किसीके साथ ब्याह तो करना ही पड़ेगा, चलो इसीको दे दूँ।' यह विचारकर उसने अपनी पुत्री विद्युत्केशको ब्याह दी।

उस कन्याका नाम था सालकटङ्कटा। उसे पाकर निशाचर विद्युत्केश प्रसन्न हुआ और उसके साथ सुख-पूर्वक रहने लगा। कुछ कालके पश्चात् सन्ध्याकी उस कन्या-ने विद्युत्केशसे गर्भ धारण किया और मन्दराचलपर जाकर एक पुत्र उत्पन्न किया। उस नवजात शिशुको वहीं छोड़कर वह विद्युत्केशके पास चली आयी। उसका छोड़ा हुआ वह बालक मुँहमें मुट्ठी डालकर धीरे-धीरे रोने लगा। उस समय भगवान् शङ्कर बैलपर चढ़कर पार्वतीके साथ वायुमार्गसे जा रहे थे। उनके कानोंमें बालकके रोनेकी आवाज पड़ी। तब उन्होंने पार्वतीके साथ राक्षसके उस रोते हुए बच्चेको देखा। उसकी दशा देख माता पार्वतीको बड़ी दया आयी और उनकी प्रेरणासे अविनाशी भगवान् शिवने उस राक्षस-कुमारको उसकी माताके समान अवस्थाका नौजवान बना दिया और उसे अमर बनाकर पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये एक आकाशचारी विमान दे दिया। इसके बाद भगवती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्वतीने भी यह वरदान दिया कि 'आजसे राक्षसियाँ जल्दी ही गर्भ धारण करेंगी, फिर शीघ्र ही उसका प्रसव करेंगी और उनका पैदा किया हुआ बच्चा तत्काल ही बढ़कर माताके समान अवस्थाका हो जायगा।'

विद्युत्केशका वह पुत्र सुकेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। भगवान् शङ्करका वरदान पानेसे उसे बड़ा गर्व हुआ और वह भगवान्‌से मिले हुए विमानपर बैठकर इन्द्रकी भाँति सर्वत्र विचरने लगा। तदनन्तर एक दिन ग्रामणी नामक गन्धर्वने, जो विश्वावसुके समान कान्तिमान् था, सुकेशको देखा और उसे वरदानमें मिले हुए ऐश्वर्यसे युक्त एवं धार्मिक समझकर अपनी देववती नामकी कन्याका उसके साथ ब्याह कर दिया। सुकेशको पतिके रूपमें पाकर देववती बहुत सन्तुष्ट हुई और उसके साथ रहनेसे उस राक्षसकी भी शोभा बढ़ गयी। तत्पश्चात् समय आनेपर सुकेशने देववतीके गर्भसे माल्यवान्, सुमाली और माली नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। ये तीनों तीन[1] अग्नियोंकी भाँति तेजस्वी, तीन[2] शक्तियोंके समान उग्र तथा तीन[3] रोगोंकी भाँति भयंकर थे। ये तीनों उसी प्रकार बढ़ने लगे, जैसे उपेक्षावश दवा न करनेसे रोग बढ़ते हैं। उन्हें जब यह मालूम हुआ कि हमारे पिताको तपोबलके द्वारा वरदान एवं ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई है, तब वे तीनों भाई भी तपस्या करनेका निश्चय करके मेरु-पर्वतपर चले गये और वहाँ सत्य, सरलता एवं शम-दम आदि कठोर नियमोंका पालन करते हुए वे ऐसी तपस्या करने लगे, जिसका दूसरा उदाहरण संसारमें मिलना कठिन है। उनके तपके प्रभावसे देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको सन्ताप होने लगा। तब ब्रह्माजी एक श्रेष्ठ विमानपर बैठकर सुकेशके पुत्रोंके पास गये और उन्हें सम्बोधित करके बोले—'मैं वर देनेके लिये आया हूँ।' वरदाता ब्रह्माजीको आया जान वे हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! यदि आप हमारी तपस्यासे प्रसन्न हैं और हमें वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमें कोई परास्त न कर सके। हम अपने शत्रुओंको मारनेवाले, चिरंजीवी और प्रभावशाली हों; साथ ही हमलोगोंमें परस्पर प्रेम बना रहे।' ब्रह्माजीने कहा—'अच्छा, तुमलोग ऐसे ही गुणोंसे विभूषित होगे।' इस प्रकार उन्हें वरदान देकर ब्रह्माजी अपने धामको चले गये।

रघुनन्दन! वरदान पाकर वे निशाचर निर्भय हो गये और देवता तथा असुरोंको बड़ा कष्ट देने लगे। एक बार उन्होंने शिल्पकर्मके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ विश्वकर्माके पास जाकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'महामते! आप हमलोगोंके लिये हिमालय अथवा मेरु-पर्वतपर भगवान् शङ्करके महलकी तरह सुन्दर भवन तैयार कीजिये।' यह सुनकर विश्वकर्माने कहा—'दक्षिण-समुद्रके तटपर त्रिकूट और सुवेल नामसे प्रसिद्ध दो पर्वत हैं। इनके बीचवाले शिखरपर, जो हरा-भरा होनेके कारण मेघके समान नीला दिखायी देता है तथा जिसके चारों ओर टाँकीसे काटकर खाई बना दी गयी है, मैंने इन्द्रकी आज्ञासे तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लंबी एक पुरीका निर्माण किया है; वह लङ्काके नामसे विख्यात है। उसके चारों ओर सोनेकी चहारदीवारी है और उसमें सोनेके ही फाटक लगे हैं। राक्षसो! आप सब लोग अजेय वीर हैं, अतः वहीं जाकर निवास करें। लङ्काके दुर्गमें बहुत-से राक्षसोंके साथ जब आप निवास करेंगे, उस समय कोई भी शत्रु आपलोगोंको परास्त नहीं कर सकेगा।' विश्वकर्माकी बात सुनकर वे राक्षस हजारों अनुचरोंके साथ उस पुरीमें जाकर बस गये। उसकी खाई और चहारदीवारी बड़ी मजबूत बनी थी, सोनेके सैकड़ों महल उस नगरीकी शोभा बढ़ा रहे थे।

उन दिनों नर्मदा नामकी एक गन्धर्वी थी। उसके तीन कन्याएँ हुईं, जो ह्री, श्री और कीर्ति* के समान शोभा-सम्पन्न थीं। उनकी माताने सुकेशके तीनों पुत्रोंके साथ अवस्थाक्रमके अनुसार अपनी तीनों कन्याओंका ब्याह कर दिया। सुकेशके पुत्र ब्याहके पश्चात् अपनी पत्नियोंके साथ रहकर लौकिक सुखका उपभोग करने लगे। उनमें माल्यवान्‌की स्त्रीका नाम सुन्दरी था; उसका जैसा नाम था, वैसा ही गुण भी था। उसके गर्भसे वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त—ये सात पुत्र तथा अनला नामकी एक सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई। सुमालीकी चन्द्रमुखी पत्नीका नाम केतुमती था। उससे प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस और भासकर्ण—नामक पुत्रों तथा राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी नामकी कन्याओंका जन्म हुआ। ये सब सुमालीकी सन्तानें थीं। मालीकी रूपवती पत्नी वसुदा नामसे प्रसिद्ध थी। उसके गर्भसे अनल, अनिल, हर और सम्पाति—ये चार राक्षस उत्पन्न हुए, जो विभीषणके मन्त्री हैं। माल्यवान्

१. गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि। २. प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति तथा मन्त्रशक्ति। ३. वात, पित्त और कफ।

* ये तीन देवियाँ हैं, जो क्रमशः लज्जा, शोभा और कीर्तिके आधिदैविक विग्रह हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि तीनों भाई अपने पुत्रों तथा अन्य निशाचरोंके साथ बाहु-बलके घमंडमें आकर इन्द्रादि देवताओं, ऋषियों, नागों और यक्षोंको पीड़ा देने लगे। वे वायुकी भाँति सारे संसारमें विचरनेवाले तथा युद्धमें अजेय थे। उनका तेज मृत्युके समान भयंकर था। वे वरदानसे उन्मत्त होकर यज्ञादि क्रियाओंका नाश करते फिरते थे।

## राक्षसोंके उत्पातसे पीड़ित देवताओंको विष्णुका आश्वासन और उनके द्वारा राक्षसोंका संहार

अगस्त्यमुनि कहते हैं—उन राक्षसोंसे पीड़ित होकर देवता, ऋषि और तपस्वी भयसे व्याकुल हो उठे और देवाधिदेव महादेवजीकी शरणमें गये। कामका दहन और त्रिपुरासुरका नाश करनेवाले त्रिलोचनके पास पहुँचकर देवताओंने हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम किया और भयके कारण लड़खड़ाती जबानसे कहा—"भगवन्! ब्रह्माजीके वरदानसे उन्मत्त हुए सुकेशके पुत्र सम्पूर्ण प्रजाको बड़ा कष्ट पहुँचा रहे हैं। हमारे आश्रम, जहाँ सबको शरण मिलती थी, उन्होंने उजाड़ दिये। अब वे रहनेके योग्य नहीं रह गये। देवताओंको स्वर्गसे हटाकर वे स्वयं ही वहाँ अधिकार जमाये बैठे हैं और देवताओंकी भाँति स्वर्गमें विहार करते हैं। माली, सुमाली और माल्यवान्—ये तीनों राक्षस कहते हैं—'मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही रुद्र हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ तथा मैं ही देवराज इन्द्र, यमराज, वरुण और सूर्य हूँ।' इस प्रकार अहंकार प्रकट करते हुए वे दुर्धर्ष निशाचर अपने आगे रहनेवाले राक्षसोंके साथ हमें बड़ा कष्ट दे रहे हैं। देव! उनके भयसे हम बहुत घबराये हुए हैं। आप हमें अभय-दान दीजिये और हमारे मार्गमें काँटे बोनेवाले उन राक्षसोंका नाश कीजिये।"

यह सुनकर भगवान् शङ्करने उत्तर दिया—'देवताओ! [ मैंने उनके पिता सुकेशकी रक्षा की है, अतः ] वे राक्षस मेरे द्वारा मारे जानेयोग्य नहीं हैं, मैं उनका वध नहीं करूँगा; परन्तु मैं तुमलोगोंको ऐसी सलाह दूँगा, जिसके अनुसार कार्य करनेसे उन निशाचरोंका नाश हो जायगा। तुम सभी देवता और महर्षि भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ। वे अवश्य उनका वध करेंगे।' भगवान् शिवके इस प्रकार कहनेपर देवता जय-जयकारके द्वारा उनका अभिनन्दन करके निशाचरोंके भयसे पीड़ित हो विष्णुके समीप गये। शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले उन नारायणदेवके निकट जाकर उन्होंने प्रणाम किया तथा घबराहटसे भरी हुई बात कही—'देव! सुकेशके तीनों पुत्रोंने वरदानके बलसे आक्रमण करके हमारे स्थान छीन लिये हैं। त्रिकूट-पर्वतके शिखरपर लङ्का नामकी जो दुर्गम नगरी है, वहीं रहकर वे निशाचर हम सभी देवताओंको क्लेश पहुँचाते रहते हैं। मधुसूदन! आप हमारा हित करनेके लिये उनका वध करें। हम सब लोग आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारे रक्षक हों। अपने चक्रसे उनका मस्तक काटकर यमराज-को भेंट कीजिये। आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है, जो इस भयके अवसरपर हमें अभय-दान कर सके। राक्षस मदसे मतवाले हो रहे हैं। वे हमें कष्ट देकर फूले नहीं समाते, अतः आप युद्धमें उनको सेवकोंसहित मारकर हमारा भय दूर कीजिये।'

देवताओंके इस प्रकार कहनेपर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन उन्हें अभय देते हुए बोले—'देवगण! भगवान् शङ्करके वरदानसे उन्मत्त सुकेश नामक राक्षसको मैं जानता हूँ तथा उसके पुत्रोंसे भी, जिनमें माल्यवान् सबसे बड़ा है, मैं अपरिचित नहीं हूँ। वे नीच राक्षस धर्मकी मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहे हैं, अतः मैं क्रोधपूर्वक उनका विनाश करूँगा। तुमलोग निश्चिन्त हो जाओ।' सब कुछ करनेमें समर्थ भगवान् विष्णुके इस प्रकार आश्वासन देनेपर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ। वे उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये। देवताओंके इस उद्योगका समाचार निशाचर माल्यवान्ने भी सुना और अपने दोनों वीर बन्धुओंको बुलाकर कहा—'देवता और ऋषि मिलकर हमारा विनाश करना चाहते हैं, इसके लिये वे भगवान् शङ्करके पास भी गये थे; परन्तु उन्होंने हमारा वध करना स्वीकार नहीं किया। तब वे उन्हें प्रणाम करके विष्णुके लोकमें गये। वहाँ विष्णुने इन्द्र आदि देवताओंसे कहा है—'तुमलोग निर्भय रहो! मैं देवशत्रु राक्षसोंका विनाश करूँगा।' इस प्रकार उन्होंने हमें मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। अब इस विषयमें हमलोगोंके लिये जो उचित कर्तव्य हो, उसका विचार करना चाहिये। हिरण्यकशिपु तथा अन्य देवद्रोही दैत्योंकी मृत्यु इन्हीं विष्णुके हाथसे हुई है। नमुचि, कालनेमि, संह्राद, राधेय, यमलार्जुन, हार्दिक्य, शुम्भ और निशुम्भ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि बड़े-बड़े बलवान् और शक्तिशाली असुर इन्हींके हाथसे मारे गये हैं। हमें मारनेकी इच्छा रखनेवाले नारायण-देवको जीतना कठिन है—ऐसा समझकर हम सबके लिये जो उचित हो, वही करना चाहिये।'

बड़े भाई माल्यवान्‌की बात सुनकर सुमाली और मालीने कहा—'राक्षसराज! हमलोगोंने स्वाध्याय, दान और यज्ञ किये हैं। ऐश्वर्यकी रक्षा तथा उसका उपभोग भी किया है। हमें रोग-व्याधिसे रहित जीवन मिला है तथा हमने अपनी कुल-परम्परामें उत्तम धर्मकी भी स्थापना की है। यही नहीं, हमने अपने शस्त्रोंके बलसे देव-सेनारूपी अगाध समुद्रमें प्रवेश करके ऐसे-ऐसे शत्रुओंपर विजय पायी है, जो संसारमें अपनी बराबरी नहीं रखते। अतः हमलोगोंको मृत्युसे कोई भय नहीं है। नारायण, रुद्र, इन्द्र तथा यमराज—कोई भी क्यों न हों, सभी हमारे सामने खड़े होनेमें भय खाते हैं। विष्णुके मनमें भी हमलोगोंके प्रति द्वेष हो, इसका कोई कारण नहीं दिखायी देता। [ क्योंकि हमलोगोंने उनका कोई अपराध नहीं किया है। ] देवताओंके ही भड़कानेसे उनका मन हमारी ओरसे फिर गया है। इसलिये हम सब लोग एकत्र होकर परस्पर एक-दूसरेकी रक्षा करते हुए चलें और आज ही देवताओंका वध कर डालें, जिनके कारण यह उपद्रव खड़ा हुआ है।' ऐसा निश्चय करके उन महाबली निशाचरोंने युद्धके लिये अपने उद्योगकी घोषणा कर दी और समूची सेना साथ ले जम्भ, वृत्र आदि सभी राक्षस क्रोधमें भरे हुए लङ्कासे बाहर निकले। रथ, हाथी, घोड़े, गधे, बैल, ऊँट, गरुड़के समान पक्षी, सिंह, बाघ, सूअर और नीलगाय आदि वाहनोंपर सवार वे बलोन्मत्त निशाचर लङ्का छोड़कर देवलोकको चल दिये। उस समय पृथ्वी और आकाशमें कालकी प्रेरणासे अनेकों भयंकर उत्पात प्रकट होने लगे, जो राक्षसोंके विनाशकी सूचना दे रहे थे। समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी, पर्वत काँपने लगे और भयंकर दिखायी देनेवाले गीदड़ोंकी भयानक आवाज होने लगी। सम्पूर्ण भूतोंका क्रमशः लय होता दिखायी देने लगा। गीधोंका समूह राक्षसोंके ऊपर कालके समान मँड़राने लगा। लाल पैरोंवाले कबूतर और सारिकाएँ सामनेसे उड़ने लगीं। कौवे काँव-काँव करने और बिल्लियाँ गुर्राने लगीं। राक्षस बलके घमंडमें मतवाले हो रहे थे। वे कालकी फाँसीमें बँध चुके थे, इसलिये उन उत्पातोंकी अवहेलना करके युद्धके लिये चलते ही गये, लौटे नहीं। राक्षसोंकी वह सेना महान् मेघोंकी गर्जनाके समान कोलाहल करती हुई विजय पानेकी इच्छासे देवलोककी ओर बढ़ती जा रही थी। उस समय माली उस विशाल सेनाका नायक था।

देवदूतके मुखसे राक्षसोंके उद्योगकी बात सुनकर भगवान् नारायणने भी युद्धका विचार किया। वे सूर्यके समान दमकनेवाला दिव्य कवच धारण करके बाणोंसे भरा तरकश लिये गरुड़पर सवार हुए। उन्होंने अपनी कमरमें पट्टी बाँधकर उसमें चमकती हुई तलवार भी लटका ली थी। इस प्रकार शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग आदि उत्तम आयुधोंको धारण किये पर्वताकार गरुड़पर आरूढ़ हो राक्षसोंका संहार करनेके लिये वे प्रभु तुरंत चल दिये। उस समय सिद्ध, देवर्षि, बड़े-बड़े नाग, गन्धर्व और यक्ष उनकी स्तुति कर रहे थे तथा वे शङ्ख, चक्र आदि आयुधोंसे सुशोभित होते हुए राक्षस-सेनाका संहार करनेके लिये वहाँ आ पहुँचे। गरुड़के पंखोंकी हवा लगनेसे शत्रुपक्षके योद्धा क्षुब्ध हो उठे, उनके रथकी पताकाएँ चक्कर खाने लगीं; सबके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र गिर गये। इस प्रकार राक्षसराजकी वह समूची सेना ही काँपने लगी। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वतका नील शिखर अपनी शिलाओंको बिखेरता हुआ हिल रहा हो। भगवान् श्रीविष्णुका श्रीविग्रह उज्ज्वल श्यामवर्णसे सुशोभित था और अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए राक्षस नीले रंगके दिखायी देते थे। मालूम होता था कि काजलके पर्वतको चारों ओरसे घेरकर नीले मेघ उसपर जलकी धारा बरसा रहे हैं। राक्षसोंके धनुषसे छूटे हुए वज्र हवा और मनके समान वेगवाले बाण भगवान्‌के शरीरमें प्रवेश करके इस प्रकार लीन हो जाते थे, जैसे प्रलयकालमें समस्त लोक उन्हींमें प्रवेश कर जाते हैं। रथपर बैठे हुए योद्धा रथोंसहित, हाथीसवार हाथियोंके साथ, घुड़सवार घोड़ोंसहित तथा पैदल योद्धा पाँव-पयादे ही आकाशमें खड़े थे। उन सबके शरीर पर्वतके समान विशाल थे। उन्होंने सब ओरसे शक्ति, ऋष्टि, तोमर और बाणोंकी वर्षा करके भगवान् विष्णुका साँस लेना बंद कर दिया; उनका श्वास वैसे ही रुक गया, जैसे प्राणायामसे ब्राह्मणका श्वास रुक जाता है। तब भगवान् विष्णुने अपने शार्ङ्ग-धनुषको खींचकर राक्षसोंपर बाण बरसाना आरम्भ किया। वे बाण वज्रके समान कठोर और मनके समान वेगवान् थे। उन तीखे तीरोंसे विष्णुने सैकड़ों और हजारों राक्षसोंका उच्छेद कर डाला। जैसे हवा वर्षा करनेवाले बादलोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार अपनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बाण-वर्षासे राक्षसोंको भगाकर पुरुषोत्तमने अपना महान् पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। जैसे वनमें सिंहके दहाड़नेसे मतवाले हाथी काँप उठते हैं, उसी प्रकार उस शङ्खकी भयंकर आवाज सुनकर समस्त राक्षस थर्रा उठे। घोड़े नहीं ठहर सके, हाथियोंका मद उतर गया और शङ्खध्वनि सुनकर साहसहीन योद्धा रथोंसे गिर पड़े। शार्ङ्ग-धनुषसे छूटे हुए वज्रमुख बाण राक्षसोंको विदीर्ण करके पृथ्वीमें घुस जाते थे। संग्राम-भूमिमें भगवान् विष्णुके तीरोंसे छिन्न-भिन्न हुए निशाचर वज्रके मारे हुए पर्वतोंकी भाँति धराशायी होने लगे। उनके चक्रके आघातसे राक्षसोंके शरीरमें जो घाव हो गये थे, उनसे इस प्रकार रक्तकी धारा बह रही थी, मानो पर्वतोंसे गेरुमिश्रित जलका झरना गिर रहा हो। शङ्खकी ध्वनि, शार्ङ्ग-धनुषकी टंकार तथा भगवान् विष्णुकी गर्जना—इन सबके तुमुल-नादने राक्षसोंके कोलाहलको दबा दिया। भगवान्‌ने राक्षसोंके काँपते हुए मस्तकों, बाणों, ध्वजाओं, धनुषों, रथों, पताकाओं और तरकसोंको अपने बाणोंसे काट डाला। उनके बाणोंसे भयभीत और शङ्खनादसे व्याकुल हुई राक्षस-सेना लङ्काकी ओर भाग चली। विष्णुके तीरोंसे पीड़ित राक्षस-सेनाको भागते देख सुमालीने अपने बाणोंकी बौछारसे उन्हें रोका। उसने भगवान्‌को अपने बाणोंसे ढक दिया। यह देख शक्तिशाली राक्षसोंने पुनः धैर्य धारण किया। उस बलोन्मत्त निशाचरने राक्षसोंको जीवन-दान-सा देते हुए क्रोधमें भरकर आक्रमण किया था; परन्तु भगवान्‌ने अपने बाणसे गर्जते हुए सुमालीके सारथिका मस्तक काट डाला। अब उस राक्षसके घोड़े चारों ओर चक्कर काटने लगे। भागते हुए घोड़ोंके साथ सुमाली ऐसा जान पड़ता था, जैसे अजितेन्द्रिय मनुष्य विषयोंमें भटकनेवाली इन्द्रियोंके पीछे-पीछे स्वयं भी भटकता फिरता है।

यह देख मालीने धनुष लेकर गरुड़के प्रति धावा किया। उसके धनुषसे छूटे हुए बाण भगवान्‌के शरीरमें प्रवेश करने लगे। मालीके हजारों तीरोंसे पीड़ित होनेपर भी भगवान्‌को क्षोभ नहीं हुआ—ठीक उसी तरह, जैसे जितेन्द्रिय मनुष्य मानसिक व्यथाओंसे व्याकुल नहीं होता। अब भूतभावन भगवान्‌ने अपने धनुषपर टङ्कार दी और मालीके ऊपर बाणों-की वृष्टि आरम्भ की। उनके वज्र और बिजलीके समान प्रकाशित होनेवाले बाण मालीके शरीरमें घुसकर उसका रक्त पान करने लगे। अन्तमें मालीको पीठ दिखानी पड़ी और शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले भगवान्‌ने उस राक्षस-के मुकुट, ध्वजा और धनुष काटकर घोड़ोंको भी मार गिराया।

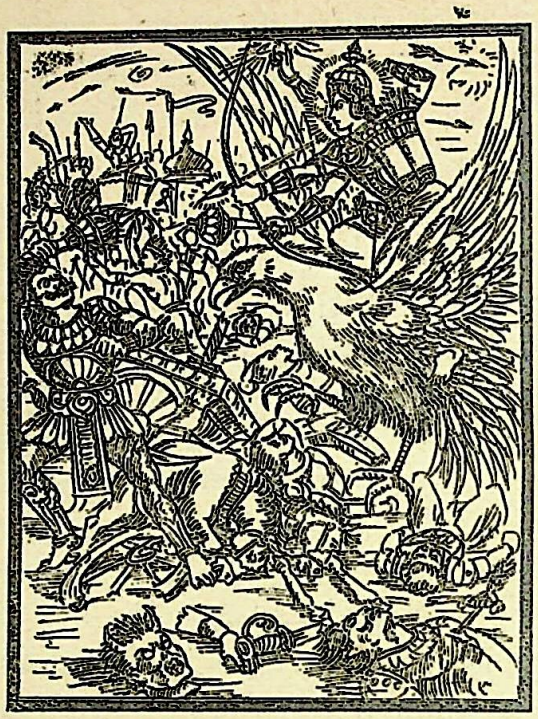

रथहीन हो जानेपर निशाचरोंका सरदार माली गदा हाथमें लेकर कूद पड़ा और गरुड़के मस्तकमें उसने करारी चोट पहुँचायी। गदाके आघातसे गरुड़को बहुत पीड़ा हुई। वे युद्धसे विमुख हो गये। उनके साथ-साथ भगवान् भी विमुख हुए-से जान पड़े। यह देख राक्षस जोर-जोरसे गरजने लगे। उनकी गर्जना सुनकर भगवान् विष्णु क्रोधमें भर गये और गरुड़की पीठपर तिरछे होकर बैठ गये। इससे राक्षसोंकी ओर उनका मुँह हो गया और उन्होंने कालचक्रके समान अपना सुदर्शनचक्र चलाकर राक्षसराज मालीके मस्तकको, जो सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान हो रहा था, काट गिराया। इससे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे 'बहुत अच्छा किया भगवन्!' ऐसा कहते हुए सिंहनाद करने लगे। मालीको मारा गया देख सुमाली और माल्यवान् दोनों शोकसे व्याकुल हो गये और सेनासहित लङ्काकी ओर भाग चले। इतनेमें गरुड़की पीड़ा कम हो गयी। वे पुनः सँभलकर लौटे और पहलेकी ही भाँति अपने पंखोंकी हवासे राक्षसोंको खदेड़ने लगे। भगवान् विष्णु भी अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा राक्षसोंको विदीर्ण करने लगे। उस समय उनके खुले हुए बाल हवासे उड़ रहे थे। भगवान्‌के बाणोंद्वारा राक्षस बुरी तरहसे पिट रहे थे। चक्रके प्रहारसे कितनोंके मस्तक कट गये, गदाकी मारसे कितनोंकी धज्जियाँ उड़ गयीं और तलवारका हाथ पड़नेसे कितने ही पर्वताकार राक्षस टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़े।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


माल्यवान्‌ने देखा, विष्णु पीछेकी ओरसे प्रहार करके मेरी सेनाका नाश कर रहे हैं; तब वह लौट पड़ा और क्रोधसे लाल आँखें करके पुरुषोत्तम विष्णुसे बोला—'नारायण ! मालूम होता है तुम्हें प्राचीन क्षात्र-धर्मका बिल्कुल ज्ञान नहीं है; तभी तो तुम साधारण मनुष्योंकी तरह युद्धसे विमुख एवं डरकर भागते हुए राक्षसोंको भी मार रहे हो। शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवता ! यदि तुम्हारे हृदयमें युद्धका हौसला है तो मैं खड़ा हूँ, देखूँ तुम्हारे अंदर कितनी ताकत है ? दिखाओ अपना पराक्रम।' माल्यवान् पर्वतके समान खड़े हुए राक्षसराज माल्यवान्‌को देखकर भगवान् विष्णुने कहा—'देवताओंको तुमलोगोंसे बड़ा भय उपस्थित हुआ है, मैंने राक्षसोंके संहारकी प्रतिज्ञा करके उन्हें अभय-दान दिया है। इस प्रकार मैं अपनी उस प्रतिज्ञाका ही पालन कर रहा हूँ। मुझे प्राण देकर भी देवताओंका प्रिय करना है; इसलिये यदि तुमलोग भागकर रसातलमें चले जाओ तो भी मैं तुम्हारा वध किये बिना न रहूँगा।' यह सुनकर राक्षसराज माल्यवान् भगवान् विष्णुको घूँसा मारकर एक धनुष पीछे हट गया। इसके बाद उसने गरुड़पर भी प्रहार किया। तब गरुड़ने कुपित होकर अपने पंखोंकी हवाके वेगसे उस राक्षसको सूखे पत्तेकी भाँति उड़ा दिया। भाईकी यह दशा देख सुमाली अपनी सेनाके साथ लङ्काकी ओर चल दिया। तत्पश्चात् माल्यवान् भी लज्जित होकर अपनी सेनाके साथ लङ्कामें चला गया।

रघुनन्दन ! इस प्रकार उन राक्षसोंका भगवान् विष्णुके साथ अनेकों बार युद्ध हुआ और प्रत्येक संग्राममें प्रधान-प्रधान नायकोंके मारे जानेपर राक्षसोंको भागना पड़ा। वे किसी प्रकार विष्णुका मुकाबला न कर सके, सदा ही उनके बलसे पीड़ित होते रहे। अतः समस्त निशाचर लङ्का छोड़कर अपनी स्त्रियोंके साथ पातालमें रहनेके लिये चले गये। राक्षस अपने पराक्रमके लिये विख्यात थे, वे साल-कटङ्कट वंशके वीर सुमालीके आश्रममें रहने लगे। राम ! आपने पुलस्त्य-वंशके जिन राक्षसोंका विनाश किया है, उनकी अपेक्षा प्राचीन राक्षसोंका पराक्रम अधिक था। सुमाली, माल्यवान् और माली तथा इनके आगे चलनेवाले योद्धा —ये सभी रावणसे बढ़कर बलवान् थे। देवताओंके लिये कण्टकस्वरूप राक्षसोंका वध शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कोई नहीं कर सकता। आप चार भुजाधारी सनातनदेव भगवान् नारायण ही हैं। आपको कोई परास्त नहीं कर सकता। आप अविनाशी प्रभु हैं और राक्षसोंका वध करनेके लिये इस लोकमें अवतीर्ण हुए हैं। आपसे ही इन प्रजाओंकी उत्पत्ति हुई है। आप शरणागतोंपर दया रखते हैं और जब-जब धर्मकी मर्यादाका नाश होने लगता है, तब-तब इस जगत्‌में अवतार धारण [ करके उसकी रक्षा ] करते हैं *। इस प्रकार मैंने आपको राक्षसोंकी उत्पत्तिका पूरा प्रसङ्ग ठीक-ठीक सुना दिया। अब आप रावण तथा उसके पुत्रोंके जन्म और अनुपम प्रभावका वर्णन सुनिये।

## रावण आदिका जन्म, तपस्या और वर-प्राप्ति

[ अगस्त्यजी कहते हैं—] विष्णुके भयसे पीड़ित होकर राक्षस सुमाली दीर्घकालतक रसातलमें अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ निवास करता रहा। इसी बीचमें धनाध्यक्ष कुबेरने लङ्काको अपना निवासस्थान बनाया। कुछ कालके पश्चात् सुमाली अपनी सुन्दरी कन्याको, जो बिना कमलकी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी, साथ ले रसातलसे निकला और मर्त्यलोकमें विचरने लगा। उस समय उसने अग्निके समान तेजस्वी तथा देवतुल्य शोभा धारण करनेवाले धनेश्वर कुबेरको पुष्पक-विमानपर विचरते देखा। वे अपने पिता पुलस्त्यनन्दन विश्रवासे मिलनेके लिये जा रहे थे। उन्हें देखकर सुमाली सोचने लगा—'क्या करनेसे हमलोगोंका भला होगा, कैसे हमारा अभ्युदय होगा ? ऐसा विचार करते हुए उसने अपनी पुत्रीसे, जिसका नाम कैकसी था, कहा—'बेटी ! अब तुम्हारे विवाहके योग्य समय आ गया है, तुम्हारी अवस्था बीत रही है। धर्मके विचारसे हम हर एकके साथ तो तुम्हारा विवाह कर नहीं सकते। तुम सब प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न साक्षात् लक्ष्मीके समान हो; अतः प्रजापतिके कुलमें उत्पन्न मुनिवर विश्रवाको, जो महर्षि पुलस्त्यके पुत्र हैं, तुम स्वयं जाकर अपना पति बनाओ। इससे तुम्हारे पुत्र भी ऐसे ही होंगे, जैसे धनेश्वर कुबेर हैं। देखो, ये कैसे अपने तेजसे सूर्यके समान दिप रहे हैं।'

* भवान्नारायणो देवश्चतुर्बाहुः सनातनः। राक्षसान् हन्तुमुत्पन्नो ह्यजय्यः प्रभुरव्ययः॥
नष्टधर्मव्यवस्थानां काले काले प्रजाकरः। उत्पद्यते दस्युवधे शरणागतवत्सलः॥ ( ७। ८। २६-२७ )


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिताकी बात मानकर कैकसी विश्रवा-मुनिके आश्रमपर जाकर एक जगह खड़ी हो गयी। इसी बीचमें पुलस्त्यनन्दन विश्रवा सायंकालका अग्निहोत्र करने लगे। पिताके प्रति आदर-बुद्धि होनेके कारण कन्याने उस भयंकर वेलाका विचार नहीं किया और मुनिके सामने जाकर नीचा मुँह किये खड़ी हो रही। उस चन्द्रमुखी सुन्दरीको देखकर परम उदार महर्षिने पूछा—'भद्रे! तुम किसकी कन्या हो? कहाँसे आयी हो? मुझसे तुम्हारा क्या काम है? अथवा किस उद्देश्यसे यहाँ तुम्हारा आना हुआ है? ये सब बातें मुझे ठीक-ठीक बताओ।' उनके इस प्रकार कहनेपर कन्या हाथ जोड़कर बोली—'ब्रह्मर्षे! मैं पिताकी आज्ञासे आपके पास आयी हूँ। मेरा नाम कैकसी है। बाकी सब बातें आप स्वतः जान लें।' यह सुनकर मुनिने ध्यान लगाया और उसके बाद कहा—'कल्याणी! तुम्हारे मनका भाव मालूम हुआ। तुम मुझसे पुत्र पानेकी अभिलाषा लेकर आयी हो; परन्तु इस दारुण वेलामें तुम्हारा मेरे पास आगमन हुआ है, इसलिये तुम्हारे पुत्र क्रूर स्वभाववाले और शरीरसे भयंकर होंगे तथा उनका क्रूरकर्मा राक्षसोंके साथ ही प्रेम होगा।' मुनिके वचन सुनकर कैकसी उनके चरणोंपर गिर पड़ी और बोली—'भगवन्! आप ब्रह्मवादी महात्मा हैं। मैं आपसे ऐसे दुराचारी पुत्र पानेकी अभिलाषा नहीं रखती, अतः आप मुझपर कृपा करें।' कैकसीके ऐसा कहनेपर मुनिवर विश्रवा बोले—'सुन्दरी! तुम्हारा जो सबसे छोटा पुत्र होगा, वह मेरे वंशके अनुरूप और धर्मात्मा होगा।'

तदनन्तर कुछ कालके बाद कैकसीने अत्यन्त भयानक क्रूर स्वभाववाले राक्षसको जन्म दिया। उसके दस मस्तक, बड़ी-बड़ी दाढ़ें, ताँबे-जैसे ओठ, बीस भुजाएँ, बहुत बड़ा मुँह और चमकीले बाल थे। रंग तो ऐसा था, मानो काजलकी ढेरी हो। उसके पैदा होते ही मेघ भयंकर स्वरमें गर्जना करने लगे, सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी, उल्कापात होने लगा, धरती काँप उठी, भयानक आँधी चलने लगी और समुद्रमें तूफान आ गया। उस समय ब्रह्माजीके समान तेजस्वी विश्रवा मुनिने पुत्रका नामकरण किया। वे बोले—'यह दस ग्रीवाएँ लेकर उत्पन्न हुआ है, इसलिये दसग्रीव नामसे प्रसिद्ध होगा।' उसके बाद महाबली कुम्भकर्णका जन्म हुआ, जिसके शरीरसे बड़ा इस जगत्में किसीका नहीं है। तत्पश्चात् विकराल मुखवाली शूर्पणखा उत्पन्न हुई। सबके बाद धर्मात्मा विभीषणका जन्म हुआ। उनके जन्मके समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई तथा देवताओंने दुन्दुभी बजायी और वे साधु-साधु कहने लगे। कुम्भकर्ण और दशग्रीव उस महान् वनमें बढ़ने लगे। कुम्भकर्ण बड़ा उन्मत्त निकला। वह भोजनसे कभी तृप्त नहीं होता था और तीनों लोकोंमें घूम-घूमकर धर्मात्मा महर्षियोंको खाता फिरता था। विभीषण बचपनसे ही धर्मात्मा थे, सदा धर्ममें स्थित रहते, स्वाध्याय करते और नियमित आहार करते हुए इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखते थे।

कुछ काल बीतनेपर धनपति वैश्रवण पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो अपने पिताका दर्शन करनेके लिये वहाँ आये। वे अपने तेजसे देदीप्यमान हो रहे थे। उन्हें देखकर राक्षसकन्या कैकसी अपने पुत्र दशग्रीवके पास आयी और कहने लगी—'बेटा! अपने भाई वैश्रवणको तो देखो, ये कैसे तेजस्वी जान पड़ते हैं। भाई होनेके नाते तुम भी इन्हींके समान हो, परन्तु अपनी अवस्था देखो—कैसी है। दशग्रीव! तुम बड़े पराक्रमी हो। ऐसा प्रयत्न करो, जिससे तुम भी वैश्रवणकी ही भाँति तेज और वैभवसे सम्पन्न हो जाओ।' माताकी बात सुनकर प्रतापी दशग्रीवको बड़ा रोष हुआ। उसने कहा—'माँ! तुम अपने हृदयकी चिन्ता छोड़ो। मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि अपने पराक्रमसे भाई वैश्रवणके समान या उनसे भी बढ़कर हो जाऊँगा।' यह कहकर उसने सोचा—तपस्यासे ही मेरा मनोरथ पूरा हो सकता है। ऐसा निश्चय करके वह सिद्धिके लिये गोकर्णके पवित्र आश्रमपर गया और वहाँ भाइयोंसहित तपस्या करने लगा। तपस्यासे उसने ब्रह्माजीको सन्तुष्ट किया और उन्होंने प्रसन्न होकर उसे विजय दिलानेवाले वरदान दिये।

इतनी कथा सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्य मुनिसे पूछा—'ब्रह्मन्! उन तीनों महाबली भाइयोंने वनमें किस प्रकार और कैसी तपस्या की?'

अगस्त्यजीने कहा—रघुनन्दन! कुम्भकर्ण अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर धर्मके मार्गमें स्थित हुआ और गर्मीके दिनोंमें अपने चारों ओर आग जला धूपमें बैठकर पञ्चाग्निका सेवन करने लगा। फिर वर्षाके समय खुले मैदानमें वीरासनसे बैठकर मेघोंके बरसाये हुए जलका आघात सहता और जाड़ेके दिनोंमें पानीके भीतर खड़ा रहता। इस प्रकार सन्मार्गमें स्थित हो प्रयत्नपूर्वक धर्मका अनुष्ठान करते हुए उसे दस हजार वर्ष बीत गये। विभीषण तो सदासे ही धर्मात्मा थे। वे नित्य धर्म-परायण हो शुद्ध आचार-विचारका पालन करते हुए पाँच हजार वर्षोंतक एक पैरसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


खड़े रहे। उनका नियम समाप्त होनेपर आकाशसे फूलोंकी वृष्टि हुई और देवता उनकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर विभीषणने अपनी दोनों बाँहें और मस्तक ऊपर उठाकर स्वाध्याय-परायण हो पाँच हजार वर्षोंतक सूर्यदेवकी आराधना की। इस प्रकार मनको वशमें रखनेवाले विभीषणके दस हजार वर्ष बड़े सुखसे बीते। दशग्रीवने दस हजार वर्षोंतक निरन्तर उपवास किया। प्रत्येक हजार वर्षके पूर्ण होनेपर वह अपना एक मस्तक काटकर आगमें होम देता था। इस प्रकार नौ हजार वर्ष बीतनेतक उसके नौ मस्तक अग्निदेवकी भेंट हो गये। जब दस हजार वर्ष पूर्ण हो गये और दशग्रीव अपना दसवाँ मस्तक काटनेको उद्यत हुआ, त्यों ही पितामह ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे। उनके साथ देवता भी थे। ब्रह्माजीने सन्तुष्ट होकर कहा—'दशग्रीव! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम धर्मके ज्ञाता हो। तुम्हारे मनमें जिस

वरको पानेकी अभिलाषा हो, उसे शीघ्र माँगो।' पितामहकी बात सुनकर दशग्रीवका चित्त प्रसन्न हो गया। उसने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और हर्ष-गद्गद वाणीमें कहा—'भगवन्! प्राणियोंके लिये मृत्युके सिवा और किसी बातका हमेशा भय नहीं रहता, अतएव मैं अमर होना चाहता हूँ।' उसके इस प्रकार कहनेपर ब्रह्माजी बोले—'तुम्हें सर्वथा अमरत्व नहीं मिल सकता। दूसरा कोई वर माँगो।' तब दशग्रीवने हाथ जोड़कर कहा—'प्रजानाथ! मैं गरुड, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओंके लिये अवध्य हो जाऊँ। दूसरे प्राणियोंसे मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। मनुष्य आदि अन्य जीवोंको तो मैं तिनकेके समान समझता हूँ।'

दशग्रीवके इस प्रकार कहनेपर भगवान् ब्रह्माजी बोले—'राक्षसश्रेष्ठ! तुम्हारी जैसी इच्छा है, सब कुछ वैसा ही होगा। अब मैं प्रसन्न होकर तुम्हें अपनी ओरसे दूसरा उत्तम वरदान देता हूँ। तुमने पहले अग्निमें अपने जिन-जिन मस्तकोंका हवन किया है, वे सब पुनः उत्पन्न हो जायँगे तथा तुम अपनी इच्छाके अनुसार जब जैसा रूप धारण करना चाहोगे, वैसा ही तुम्हारा रूप हो जायगा।' पितामहके इतना कहते ही रावणके नये मस्तक उत्पन्न हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने विभीषणसे कहा—'बेटा! तुम्हारी बुद्धि सदा धर्ममें लगी रहनेवाली है, अतः तुमपर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम भी कोई वर माँगो।' धर्मात्मा विभीषण हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं तो मुझे यह वर दें—बड़ी-से-बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर भी मेरी बुद्धि धर्मसे विचलित न हो। बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्रका ज्ञान हो जाय तथा जिस-जिस आश्रमके सम्बन्धमें मेरा जो-जो विचार हो, वह धर्मके अनुकूल ही हो और उन-उन धर्मोंका मैं पालन करूँ। यही मेरे लिये सबसे उत्तम और अभीष्ट वरदान है। जो धर्ममें लगे रहते हैं, उनके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है।' यह सुनकर प्रजापति बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने विभीषणसे कहा—'बेटा! तुम धर्ममें स्थित रहनेवाले हो, अतः तुम जो कुछ चाहते हो, वह सब पूर्ण होगा। राक्षस-योनिमें उत्पन्न होकर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्ममें प्रवृत्त नहीं होती इसलिये मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ।'

विभीषणसे ऐसा कहकर जब ब्रह्माजी कुम्भकर्णको वर देनेके लिये उद्यत हुए, तब सम्पूर्ण देवता हाथ जोड़कर उनसे बोले—'भगवन्! आप कुम्भकर्णको वरदान न दीजिये।' देवताओंके इस प्रकार अनुरोध करनेपर ब्रह्माजीने सरस्वतीका स्मरण किया। उनके चिन्तन करते ही सरस्वती देवी आ पहुँचीं और हाथ जोड़कर बोलीं—'भगवन्! मैं आ गयी। मेरे लिये क्या आज्ञा होती है?' ब्रह्माजीने कहा—'वाणी! तुम राक्षसराज कुम्भकर्णकी जिह्वापर बैठकर इसके मुँहसे देवताओंके अनुकूल बात निकालो।' सरस्वती देवी 'बहुत अच्छा' कहकर कुम्भकर्णके भीतर समा गयीं। तब ब्रह्माजीने कहा—'महाबाहु कुम्भकर्ण! तुम भी कोई अपने मनके अनुकूल वर माँग लो।' यह सुनकर कुम्भकर्णने कहा—'देवदेव! मैं अनेकानेक वर्षोंतक सोता रहूँ, यही मेरी इच्छा है।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एवमस्तु' कहकर ब्रह्माजी देवताओंके साथ चले गये। इसके बाद सरस्वती देवी भी उसके ऊपरसे उतर गयीं। अब कुम्भकर्ण-को चेत हुआ और वह दुरात्मा दुखी होकर सोचने लगा—'ओह! आज मेरे मुँहसे ऐसी बात क्यों निकल गयी? मैं समझता हूँ, ब्रह्माजीके साथ आये हुए देवताओंने ही मुझे मोहमें डाल दिया था।' इस प्रकार वे तीनों तेजस्वी भ्राता वर पाकर श्लेष्मातक (बहेरेके) वनमें गये और वहाँ सुख-पूर्वक रहने लगे।

## रावणका कुबेरको हटाकर लङ्कामें बसना, तीनों भाइयोंका विवाह और मेघनादका जन्म

रावण आदि निशाचरोंको वर प्राप्त हुआ है, यह जानकर सुमाली नामका राक्षस अपने अनुचरोंसहित भय छोड़कर रसातलसे निकला। साथ ही मारीच, प्रहस्त, विरूपाक्ष और महोदर—ये उसके चार मन्त्री भी निकले। वे सब-के-सब रोषावेशमें भरे हुए थे। सुमाली दशग्रीवके पास जा उसे छातीसे लगाकर बोला—'बेटा! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने त्रिभुवनश्रेष्ठ ब्रह्माजीसे उत्तम वर प्राप्त किया है। इससे हमलोगोंका वह मनोरथ पूरा हो गया, जिसका हम चिरकालसे चिन्तन किया करते थे। महाबाहो! लङ्का-नगरी, जिसमें तुम्हारे भाई धनाध्यक्ष निवास करते हैं, हमलोगोंकी है। पहले उसमें राक्षस ही रहा करते थे। यदि साम, दान अथवा बलप्रयोगके द्वारा पुनः उसे अपने अधिकारमें लौटाया जा सके तो हमलोगोंका काम बन जाय।' दशग्रीव बोला—'नानाजी! धनेश हमारे बड़े भाई हैं; उनके सम्बन्धमें आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये।' इस प्रकारका कोरा उत्तर पाकर सुमाली चुप हो गया। कुछ कालके पश्चात् प्रहस्तने विनयपूर्वक कहा—'महाबाहो! आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये; क्योंकि वीरोंमें इस प्रकार भ्रातृभावका निर्वाह नहीं देखा जाता। आप मेरी बात सुनिये—अदिति और दिति दोनों सगी बहिनें हैं। उन दोनोंका विवाह प्रजापति कश्यपके साथ हुआ है। उनमेंसे अदितिने देवताओंको उत्पन्न किया है, जो इस त्रिभुवनके स्वामी हैं और दितिने दैत्योंको जन्म दिया है। पहले पर्वत, वन और समुद्रोंसहित समूची पृथ्वी दैत्योंके अधिकारमें थी; क्योंकि वे बड़े शक्तिशाली थे। परन्तु विष्णुने युद्धमें दैत्योंको मारकर यह सारी त्रिलोकी देवताओंके अधीन कर दी। इस तरहका विपरीत आचरण केवल आप ही नहीं करने जा रहे हैं। [ पहले भी ऐसा हुआ है। ]'

प्रहस्तके ऐसा कहनेपर दशग्रीवका चित्त प्रसन्न हो गया। उसने कुछ देर सोचकर कहा—'बहुत अच्छा [ तुम जैसा कहते हो, वैसा ही करूँगा ]।' यों कहकर दशग्रीव उन राक्षसोंके साथ त्रिकूट-पर्वतपर गया और वहाँ उसने प्रहस्तको दूत बनाकर लङ्कामें भेजते हुए कहा—'प्रहस्त! शीघ्र जाओ और यक्षराज कुबेरसे शान्तिपूर्वक कहो—'राजन्! यह लङ्का-पुरी राक्षसोंकी है, अतः यदि आप इसे हमलोगोंको लौटा दें तो इससे हमें प्रसन्नता होगी और आपके द्वारा धर्मका पालन समझा जायगा।' तब प्रहस्त कुबेरके द्वारा सुरक्षित लङ्का-पुरीमें गया और उनसे बोला—''महाबाहो! आपके भाई दशग्रीवने मुझे आपके पास भेजा है। उन्होंने कहा है कि 'भयंकर पराक्रमी सुमाली आदि राक्षसोंका पहले इस रमणीय लङ्कापुरीपर अधिकार रहा है; इसीलिये वे अब अपनी पुरीको माँग रहे हैं।' उनकी शान्तिपूर्ण याचनापर ध्यान देकर आप यह पुरी लौटा दें।''

प्रहस्तके मुँहसे ऐसी बात सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ कुबेरने कहा—'पहले लङ्का निशाचरोंसे सूनी थी। उस समय पिताजी-ने मुझे इसमें रहनेकी आज्ञा दी और मैंने यहाँ आकर इस नगरीको बसाया। दूत! तुम जाकर दशग्रीवसे कहो—महाबाहो! यह पुरी तथा अकण्टक राज्य जो कुछ मेरे पास है, वह सब तुम्हारा भी है; मेरा राज्य या धन तुमसे बँटा हुआ नहीं है।' ऐसा कहकर धनाध्यक्ष अपने पिता विश्रवा मुनिके पास चले गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'पिताजी! आज दशग्रीवने मेरे पास दूत भेजा और कहलाया है कि इस लङ्का-नगरीमें पहले राक्षस रहा करते थे, अतः इसे राक्षसोंको लौटा दीजिये। अब मुझे इस विषयमें क्या करना चाहिये, यह आप बतानेकी कृपा कीजिये।' कुबेरके ऐसा कहनेपर मुनियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि विश्रवा बोले—'बेटा! दशग्रीवने मेरे सामने भी यह बात कही थी। इसके लिये उस दुर्बुद्धिको मैंने बहुत डाँट बतायी थी और बारंबार क्रोधपूर्वक कहा कि ऐसा करनेसे तेरा पतन हो जायगा, किन्तु इसका कुछ फल न हुआ। अतः अब तुम्हीं मेरे धर्मानुकूल एवं कल्याण-मय वचनपर ध्यान दो। रावण वर पाकर उन्मत्त हो गया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उसकी बुद्धि मारी गयी है। मेरे शापके कारण उसकी प्रकृति क्रूर हो गयी है; इसलिये अब तुम अनुचरोंसहित लङ्कापुरी-का परित्याग कर दो और कैलास-पर्वतपर जाकर अपने रहनेके लिये दूसरा नगर बसाओ। वहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ परम रमणीय मन्दाकिनीकी धारा बहती है। उस पर्वतपर गन्धर्व, देवता, अप्सरा, नाग और किन्नर आदि दिव्य प्राणी, जिन्हें स्वभावसे ही घूमना-फिरना अधिक प्रिय है, सदा रहते हुए आनन्दका अनुभव करते हैं। धनद! इस राक्षसके साथ वैर बाँधना तुम्हारे लिये ठीक नहीं होगा।' मुनिके ऐसा कहनेपर कुबेरने पिताका मान रखते हुए उनके वचनोंको स्वीकार किया और स्त्री, पुत्र, मन्त्री, वाहन और धन—सब कुछ साथ लेकर वे लङ्कासे कैलासको चले गये। तदनन्तर प्रहस्त प्रसन्न होकर मन्त्री और अनुचरोंके साथ बैठे हुए दशग्रीवके पास गया और बोला—'लङ्कापुरी खाली पड़ी है, कुबेर उसे छोड़कर चले गये। अब आप हमलोगोंके साथ उसमें प्रवेश करके स्वधर्मका पालन कीजिये।' प्रहस्तकी बात सुनकर महाबली रावणने अपनी सेना, अनुचर तथा भाइयोंसहित कुबेरद्वारा त्यागी हुई लङ्कापुरीमें प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर निशाचरोंने रावणका राज्याभिषेक किया और नील मेघके समान वर्णवाले राक्षसोंसे समूची लङ्कापुरी भर गयी।

अपना अभिषेक हो जानेपर राक्षसराज रावण भाइयों-सहित लङ्कामें रहने लगा। अब उसे अपनी बहिन शूर्पणखाके विवाहकी चिन्ता हुई और उसने दानवराज विद्युज्जिह्वके साथ उसका ब्याह कर दिया। तदनन्तर, रावण एक दिन शिकार खेलनेके लिये वनमें घूम रहा था। वहाँ उसने दितिके पुत्र मयको देखा; उसके साथ एक सुन्दरी कन्या भी थी। निशाचर दशग्रीवने मयसे पूछा—'आप कौन हैं, जो इस निर्जन वनमें अकेले घूम रहे हैं? इस मृगनयनी कन्याके साथ आप किस उद्देश्यसे यहाँ निवास करते हैं?' उसके इस प्रकार पूछनेपर मयने कहा—'राजन्! यह मेरी कन्या है। यह हेमा नामकी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न हुई है। मैं इसके लिये यो·य वर तलाश करनेके लिये इधर आ निकला हूँ। मेरे दो पुत्र भी हैं, जिनमें मायावी बड़ा और दुन्दुभि छोटा है। आपके पूछनेके अनुसार मैंने सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। अच्छा, अब आप अपना परिचय दीजिये। आप कौन है?' मयके ऐसा कहनेपर वह राक्षस विनीत भावसे बोला—'मैं पुलस्त्यनन्दन विश्रवा मुनिका, जो ब्रह्माजीसे तीसरी पीढ़ीमें हैं, पुत्र हूँ। मेरा नाम दशग्रीव है।' राक्षसराजके ऐसा कहनेपर मयने अपनी कन्याका हाथ उसके हाथमें दे दिया और प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! मेरी कन्याका नाम मन्दोदरी है, आप इसे अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार करें।' दशग्रीवने 'बहुत अच्छा' कहकर वहाँ अग्नि प्रज्वलित की और विधिपूर्वक मन्दोदरीका पाणिग्रहण किया। इसके बाद मयने एक बड़ी अद्भुत और अमोघ शक्ति भी रावणको प्रदान की, जो उसको बड़ी तपस्यासे प्राप्त हुई थी। दशग्रीवने उसी शक्तिसे लक्ष्मणको घायल किया था। इस प्रकार ब्याह करके वह लङ्कापुरीमें गया और अपने दोनों भाइयोंके लिये भी सुन्दरी स्त्रियाँ ला दीं। वैरोचनकी धेवती वज्रज्वालाको उसने कुम्भकर्णकी पत्नी बनाया और गन्धर्वराज शैलूषकी कन्या सरमाका, जो बड़ी धर्मज्ञ थी, विभीषणके साथ विवाह कर दिया। इस प्रकार वे तीनों राक्षस विवाह करके अपनी स्त्रियोंके साथ लौकिक सुख भोगते हुए वहाँ रहने लगे। तदनन्तर कुछ कालके बाद मन्दोदरीने मेघनाद नामका पुत्र उत्पन्न किया, जिसे आपलोग इन्द्रजित् कहा करते हैं। उस रावणकुमारने पैदा होते ही रोते समय मेघके समान गम्भीर नाद किया; इसलिये उसके पिता रावणने उसका नाम 'मेघनाद' रखा। वह बालक अपने माता-पिताका हर्ष बढ़ाता हुआ अन्तःपुरमें बढ़ने लगा।

## कुम्भकर्णका शयन, रावणका कुबेरके भेजे हुए दूतको मारकर उनपर चढ़ाई करना और उन्हें परास्त कर पुष्पक-विमान छीन लेना

तदनन्तर कुछ समय बीतनेपर लोकेश्वर ब्रह्माजीकी भेजी हुई घोर निद्रा मूर्त्तिमती होकर कुम्भकर्णके पास आयी। तब कुम्भकर्णने अपने भाई रावणसे कहा—'राजन्! मुझे नींद सता रही है, अतः मेरे लिये शयन करने योग्य घर बनवा दें।' राक्षसराजने विश्वकर्माके समान सुयोग्य शिल्पियोंको बुलाकर उसके लिये घर बनानेकी आज्ञा दी। शिल्पियोंने दो योजन लंबा और एक योजन चौड़ा घर बनाया, जो बड़ा ही सुन्दर था। महाबली कुम्भकर्ण उस घरमें जाकर निद्राके आवेशमें कई हजार वर्षोंतक सोता रहा। उसे बाहरका कुछ भी ज्ञान न रहा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुम्भकर्णके सो जानेपर दशग्रीव उच्छृङ्खल हो गया और देवता, ऋषि, यक्ष तथा गन्धर्वोंको पीड़ा देने लगा। नन्दन-वन आदि जो सुन्दर एवं विचित्र उद्यान थे, उन सबमें जाकर वह क्रोधपूर्वक उन्हें उजाड़ देता था। रावणके इस निरंकुश बर्तावका समाचार पाकर धनके स्वामी धर्मज्ञ कुबेरने अपने कुलके योग्य कर्तव्यका विचार किया और अपने भ्रातृ-प्रेमका परिचय देनेके लिये लङ्कामें एक दूत भेजा। उनका उद्देश्य यह था कि मैं रावणको उसके हितकी बात बताकर राहपर लाऊँ। दूत लङ्कापुरीमें जाकर पहले विभीषणसे मिला। विभीषणने धर्मके अनुसार उसका सत्कार किया और लङ्कामें आनेका कारण एवं बन्धु-बान्धवोंका समाचार पूछा। इसके बाद उन्होंने उस दूतको ले जाकर सभामें बैठे हुए रावणसे मिलाया। दूतने अपने तेजसे देदीप्यमान होते हुए राजा रावणको देखकर जय-जयकारके द्वारा उसका अभिनन्दन किया और उससे कहा—'राजन्! आपके भाई कुबेरने आपके पास कुछ सन्देश भेजा है, जो आपके सदाचार और कुल दोनोंके अनुरूप है। उन्होंने कहा है—वीर! तुमने अबतक जो कुछ दूसरोंका अपकार किया, इतना ही बहुत है। अबसे उत्तम चरित्रका संग्रह करना चाहिये। यदि हो सके तो धर्मके मार्गपर स्थित रहो, यही तुम्हारे लिये अच्छा है। तुमने नन्दन-वनको उजाड़ डाला, यह मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। तुम्हारे द्वारा अनेकों ऋषियोंका वध हुआ है, यह भी मेरे सुननेमें आया है तथा तुम्हारे विरुद्ध देवताओंका जो उद्योग हो रहा है, उसको भी मैंने सुना है। तुमको पापोंसे हट जाना चाहिये; क्योंकि इससे अपने कुलमें कलङ्क लगता है।'

दूतके मुँहसे ऐसी बातें सुनकर रावणकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने हाथ मलकर और दाँत पीसकर कहा—'दूत! तू जो कुछ कह रहा है, उसका अभिप्राय मैंने समझ लिया। अब तू अपनेको तथा जिसके भेजनेसे यहाँ आया है, उस भाईको भी मरा ही समझ। धनेशने जो बातें कही हैं, वे मेरे लिये हितकर नहीं हैं। तूने भी मेरे सामने जो धृष्टतापूर्ण वचन कहे हैं, वे क्षमाके योग्य नहीं हैं। कुबेर मेरे बड़े भाई हैं, अतः उनका वध करना उचित नहीं है—ऐसा समझकर ही मैंने आजतक उन्हें क्षमा किया है; परन्तु इस समय उनकी बात सुनकर मैंने यह निश्चय किया है कि मैं अपने बाहुबलका भरोसा करके तीनों लोकोंको जीतूँगा। इसी मुहूर्तमें एकके ही अपराधसे मैं चारों लोकपालोंको यमलोक पहुँचाऊँगा।' यों कहकर लङ्केशने तलवार उठायी और उस दूतके दो टुकड़े कर दिये। उसका मृतक शरीर उसने दुरात्मा राक्षसोंको खानेके लिये दे दिया।

तदनन्तर बलके अभिमानसे सदा उन्मत्त रहनेवाला रावण महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण और हमेशा युद्धका हौसला रखनेवाले वीर धूम्राक्ष—इन छः मन्त्रियोंके साथ लङ्कासे बाहर निकला। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो वह अपने क्रोधसे सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर डालेगा। अनेकों नगरों, नदियों, पर्वतों, वनों और उपवनोंको लाँघता हुआ वह दो ही घड़ीमें कैलास पर्वतपर जा पहुँचा। यक्षोंने जब सुना कि दुरात्मा राक्षसराज रावणने युद्धके लिये उत्साहित होकर अपने मन्त्रियोंके साथ कैलास-पर्वतपर डेरा डाला है, तो उसे राजा कुबेरका भाई समझकर उसके सामने खड़े होनेकी उन्हें हिम्मत न पड़ी और धनाध्यक्ष कुबेरके पास जाकर उन्होंने उनके भाईका सारा अभिप्राय कह सुनाया। तब कुबेरने यक्षोंको युद्धके लिये आज्ञा दे दी। फिर तो यक्ष बड़े हर्षमें भरकर चल दिये। यक्षराजकी सेनाएँ समुद्रके समान क्षुब्ध हो उठीं। उनके वेगसे वह पर्वत हिलता-सा जान पड़ा। यक्षों और राक्षसोंमें घमासान युद्ध छिड़ गया। रावणके मन्त्री बहुत पीड़ित हुए। अपनी सेनाकी दुर्दशा देख निशाचर रावणने बड़े क्रोधमें भरकर बारंबार उत्साह बढ़ानेवाली गर्जना की। उस समय यक्षोंने जल बरसानेवाले मेघोंकी भाँति गदा और मूसल आदिकी वृष्टि करते हुए रावणको घायल करके उसका वेग रोक दिया। उसे दम मारनेकी भी फुरसत नहीं मिली। यक्षोंके शस्त्रोंसे आहत होनेपर भी उसने अपने मनमें दुःख नहीं माना और कालदण्डके समान भयंकर गदा उठाकर शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश किया। फिर तो वह अपनी गदाकी मारसे यक्षोंको यमलोक पहुँचाने लगा। रावणके मन्त्री महोदर और शुक आदिने भी यक्षोंका संहार कर डाला। अब वे थोड़ी ही संख्यामें बच रहे। कई यक्ष घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। अधिकांश मारे गये और कुछ भाग गये। महाबली यक्षोंको भगा देख कुबेरकी आज्ञासे संयोधकण्टक नामका यक्ष युद्धभूमिमें आया। उसने आते ही मारीचको चक्रसे घायल कर पर्वतके नीचे गिरा दिया; किन्तु थोड़ी ही देरमें सँभलकर जब मारीचने पुनः युद्ध आरम्भ किया, तब वह यक्ष भाग खड़ा हुआ। तदनन्तर रावणने कुबेरपुरीके फाटकमें, जहाँ द्वारपालोंका पहरा था, प्रवेश किया। वहाँ सूर्यभानु नामसे विख्यात एक यक्ष द्वारकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षामें नियुक्त था। उसने रावणको रोका; परन्तु उसके रोकनेपर भी जब वह निशाचर न रुका, तब द्वारपालने फाटकमें लगे हुए एक खंभेको उखाड़कर उसे दशग्रीवके ऊपर दे मारा। उसके शरीरसे खूनकी धारा बहने लगी। तब उसने भी वही खंभा उठाकर यक्षके ऊपर प्रहार किया। खंभेकी चोटसे वह पिस गया। फिर उसकी शकल नहीं दिखायी दी। राक्षसका यह पराक्रम देखकर सभी यक्ष भाग गये। कोई नदियोंमें कूद पड़े और कोई भयसे व्याकुल हो गुफाओंमें घुस गये।

धनाध्यक्षने देखा, हजारों यक्ष भयभीत होकर भाग रहे हैं; तब उन्होंने माणिभद्र नामक एक महायक्षसे कहा—'यक्षश्रेष्ठ! रावण बड़ा पापी और दुराचारी है। तुम युद्धमें शोभा पानेवाले वीर यक्षोंकी रक्षा करो।' महाबाहु माणिभद्र बड़े दुर्धर्ष वीर थे। वे कुबेरकी आज्ञा पाकर चार हजार यक्षोंकी सेना साथ ले फाटकपर गये और राक्षसोंके साथ युद्ध करने लगे। यक्षोंने गदा, मूसल, प्रास, शक्ति, तोमर तथा मुगदरोंका प्रहार करते हुए राक्षसोंपर धावा किया। पुनः राक्षसोंके साथ उनका तुमुल युद्ध प्रारम्भ हुआ। उस समय प्रहस्तने एक हजार यक्षोंका संहार किया। महोदरने दूसरे एक हजारका सफाया कर डाला तथा क्रोधमें भरे हुए मारीचने पलक मारते-मारते बाकी दो हजार यक्षोंको मार गिराया। कहाँ यक्षोंका सरलतापूर्वक युद्ध और कहाँ राक्षसोंका मायामय संग्राम! वे अपने माया-बलके भरोसे ही यक्षोंकी अपेक्षा प्रबल सिद्ध हुए। उस महासंग्राममें धूम्राक्षने आकर क्रोधपूर्वक माणिभद्रकी छातीमें मूसलका प्रहार किया; किन्तु इससे वे विचलित नहीं हुए। तत्पश्चात् उन्होंने भी गदा घुमाकर उसे धूम्राक्षके मस्तकपर दे मारा। उसकी चोटसे व्याकुल होकर धूम्राक्ष पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देखकर दशग्रीव माणिभद्रकी ओर दौड़ा। उसे क्रोधमें भरकर आते देख माणिभद्रने उसके ऊपर तीन शक्तियोंसे प्रहार किया। चोट खाकर रावणने माणिभद्रके मुकुटपर वार किया। इससे उनका मुकुट खिसककर बगलमें आ गया। तबसे उनकी 'पार्श्वमौलि' के नामसे प्रसिद्धि हुई। माणिभद्र युद्धसे भाग गये। धनाध्यक्ष कुबेर हाथमें गदा लिये दूरसे युद्धका दृश्य देख रहे थे। उनके साथ शुक्र और प्रौष्ठपद नामके मन्त्री तथा शङ्ख और पद्म नामक धनके अधिष्ठाता देव भी थे। वे युद्धमें रावणके निकट पहुँचकर बोले—'दशग्रीव! तुम्हारी बुद्धि बिगड़ गयी है। मेरे मना करनेपर भी इस समय तुम समझ नहीं रहे हो, किन्तु आगे चलकर जब इस कुकर्मका फल पाओगे और नरकमें पड़ोगे, उस समय मेरी बात तुम्हारी समझमें आयेगी। जो माता-पिता, ब्राह्मण और आचार्यका अपमान करता है, वह यमराजके वशमें पड़कर उस पापका फल भोगता है। यह शरीर क्षणभङ्गुर है। इसे पाकर जो तपका उपार्जन नहीं करता, वह मूर्ख मरनेके बाद, जब उसे अपने दुष्कर्मोंका फल मिलता है, पश्चात्ताप करता है। किसी भी दुर्बुद्धि पुरुषको [ शुभ कर्मका अनुष्ठान और गुरुजनोंकी सेवा किये बिना ] स्वेच्छामात्रसे उत्तम बुद्धिकी प्राप्ति नहीं होती। वह जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल भोगता है। संसारके पुरुषोंको समृद्धि, सुन्दर रूप, बल, वैभव, वीरता तथा पुत्र आदिकी प्राप्ति पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानसे ही होती है।* इसी प्रकार [ अपने दुष्कर्मोंके कारण ] तुम्हें भी नरकमें जाना पड़ेगा; क्योंकि तुम्हारी बुद्धि ऐसी पापासक्त हो रही है। दुराचारियोंसे बात नहीं करनी चाहिये, यही शास्त्रोंका निर्णय है। अतः मैं भी तुमसे अब कोई बात नहीं करूँगा।'

इसके बाद रावण और कुबेर दोनों एक दूसरेपर प्रहार करने लगे। दोनोंमेंसे कोई भी न तो घबराता और न थकता ही था। कुबेरने रावणपर आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया; परन्तु राक्षसराजने वारुणास्त्रसे उसको शान्त कर दिया। अन्तमें रावणने कुबेरके मस्तकपर एक बहुत बड़ी गदासे आघात किया। इससे यक्षराज बहुत व्याकुल हो गये। उनका सारा शरीर खूनसे नहा उठा और वे जड़से कटे हुए अशोककी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। तत्पश्चात् पद्म आदि निधियोंके अधिष्ठाता देवताओंने उन्हें नन्दन-वनमें ले जाकर चेत कराया। राक्षसराज रावण धनेशको जीतकर बहुत प्रसन्न हुआ और विजय-चिह्नके रूपमें उनके पुष्पक विमानको अपने अधीन कर

---

* मातरं पितरं विप्रमाचार्यं चावमन्य वै।
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः॥
अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोऽर्जनम्।
स पश्चात् तप्यते मूढो मृतो गत्वाऽऽत्मनो गतिम्॥
कस्यचिन्न हि दुर्बुद्देरछन्दतो जायते मतिः।
यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते॥
ऋद्धिं रूपं बलं पुत्रान् वित्तं शूरत्वमेव च।
प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः॥
(१५। २१—२४)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया। उस विमानमें सोनेके खंभे और वैदूर्यमणिके फाटक लगे थे। वह सब ओरसे मोतियोंकी जालीसे ढका हुआ था। उसके भीतर ऐसे-ऐसे वृक्ष लगे थे, जो सभी ऋतुओंमें फल देनेवाले थे। उसका वेग मनके समान तीव्र था। वह चढ़नेवालेकी इच्छाके अनुसार सब जगह जा सकता था तथा वह जैसा चाहे, छोटे या बड़े रूपमें हो जाता था। उस विमानमें मणि और सुवर्णकी सीढ़ियाँ तथा तपाये हुए सोनेकी वेदियाँ बनी थीं। वह टूटने-फूटनेवाला नहीं था। देखनेमें सुन्दर और चित्तको प्रसन्न करनेवाला था। उसके भीतर अनेकों प्रकारके आश्चर्यजनक दृश्य थे। उसकी दीवारोंपर तरह-तरहके बेल-बूटे बने थे, जिनसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। साक्षात् ब्रह्माजीने उसका निर्माण किया था। उसमें सब प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुएँ उपलब्ध होती थीं। वह बड़ा उत्तम और मनको लुभानेवाला था। न अधिक ठंडा था, न अधिक गरम, सभी ऋतुओंमें आराम पहुँचानेवाला था। राक्षसराज रावण अपने पराक्रमसे जीते हुए उस विमानपर बैठकर अहंकारवश ऐसा समझने लगा कि मैंने तीनों लोकोंको जीत लिया। इस प्रकार वैश्रवणको परास्त करके वह कैलास-पर्वतसे नीचे उतरा।

## भगवान् शंकरके द्वारा रावणका मान-भङ्ग तथा उनसे चन्द्रहास खड्गकी प्राप्ति

[ अगस्त्यजी कहते हैं— ] रघुनन्दन! अपने भाई कुबेरको जीतकर राक्षसराज रावण 'शरवण' नामसे प्रसिद्ध सरकंडोंके विशाल वनमें गया, जहाँ कार्तिकेयजीकी उत्पत्ति हुई थी। वहाँसे आगे बढ़नेपर वह किसी पर्वतपर चढ़ने लगा, जहाँकी वनस्थली बड़ी रमणीय थी। इतनेमें ही उसने देखा कि पुष्पक-विमानकी गति रुक गयी। तब वह अपने मन्त्रियोंके साथ विचार करने लगा, 'क्या कारण है कि यह पुष्पक मेरी इच्छाके अनुसार नहीं चलता? इतनेमें ही भगवान् शंकरके पार्षद नन्दी रावणके पास आकर बोले—'दशग्रीव! लौट जाओ, इस पर्वतपर शंकरजी क्रीड़ा करते हैं। यहाँ सुपर्ण, नाग, यक्ष, देवता, गन्धर्व और राक्षस—किसीको नहीं आने दिया जाता।' नन्दीकी यह बात सुनकर रावण क्रोधके मारे काँपने लगा। उसकी आँखें लाल हो गयीं और वह पुष्पक-विमानसे उतरकर बोला—'कौन है यह शंकर?' ऐसा कहकर वह पर्वतके नीचे आया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा—नन्दी भगवान् शिवसे थोड़ी ही दूरपर एक चमचमाता हुआ शूल हाथमें लिये दूसरे शिवकी भाँति खड़े हैं। उनका मुँह वानरके समान था। उन्हें देखकर वह निशाचर उनका तिरस्कार करता हुआ मेघकी गर्जनाके समान भयंकर आवाज करता जोर-जोरसे हँसने लगा। यह देखकर शिवके दूसरे स्वरूप भगवान् नन्दी क्रोधमें भर गये और सामने खड़े हुए उस राक्षससे बोले—'दशानन! तूने वानररूपमें मुझे देखकर मेरी अवहेलना की है और वज्रपातके समान भयानक अट्टहास किया है; अतः तुम्हारे

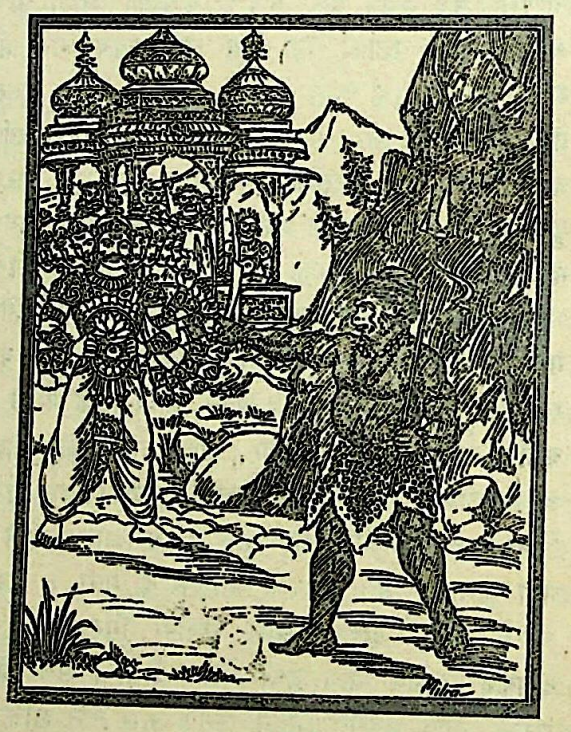

कुलका विनाश करनेके लिये मेरे ही समान पराक्रम, रूप और तेजसे सम्पन्न वानर उत्पन्न होंगे। नख और दाँत ही उनके अस्त्र होंगे और मनके समान उनका वेग होगा।'

महात्मा नन्दीके इतना कहते ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी; परन्तु महाबली रावणने उस समय नन्दीके वचनोंकी कोई परवा नहीं की और उस पर्वतके पास जाकर कहा—'पशुपते! इसके कारण यात्रा करते समय मेरे पुष्पक-विमानकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गति रुक गयी है, अतः तुम्हारे इस पर्वतको मैं जड़से उखाड़ फेंकूँगा।' ऐसा कहकर रावणने अपनी विशाल भुजाएँ पर्वतमें लगायीं और उसे उठानेका प्रयत्न किया। पर्वत हिल गया, उसके हिलते ही भगवान् शङ्करके गण काँप उठे। तब देवताओंमें श्रेष्ठ महादेवजीने अपने पैरके अँगूठेसे उस पर्वतको खिलवाड़में ही दबा दिया। फिर तो रावणकी वे भुजाएँ, जो शैल-शिखरके समान जान पड़ती थीं, उस पर्वतके नीचे दब गयीं। राक्षसने अपनी बाँहोंकी पीड़ासे रोषमें भरकर सहसा बड़े जोरसे चीख मारी, जिससे तीनों लोक काँप उठे। उस समय रावणके मन्त्रियोंने कहा—'दशग्रीव! जिनके गलेमें नीले रंगका चिह्न शोभा पाता है, उन उमानाथ महादेवजीको प्रसन्न करें। उनके सिवा दूसरा कोई शरण देनेवाला नहीं दिखायी देता। स्तुतियोंके द्वारा प्रणाम करके उन्हींकी शरणमें जाइये। भगवान् शङ्कर बड़े दयालु हैं। वे सन्तुष्ट होकर आपपर अवश्य कृपा करेंगे।' मन्त्रियोंके ऐसा कहनेपर दशानन सामवेदकी ऋचाओं तथा नाना प्रकारके स्तोत्रोंका पाठ करता हुआ भगवान् शिवको प्रणाम करने लगा। इस प्रकार रोते रोते उस राक्षसके एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये।

तब पर्वत-शिखरपर बैठे हुए भगवान् महादेव प्रसन्न हुए और उसकी भुजाओंको मुक्त करके बोले—'दशग्रीव! तुम वीर हो, तुम्हारे पराक्रमसे मैं प्रसन्न हूँ। पर्वतसे दब जानेके कारण जो तुमने अत्यन्त भयानक राव ( शब्द ) किया था, उससे भयभीत होकर तीनों लोकके प्राणी रो उठे थे। इसलिये अब तुम 'रावण'के नामसे प्रसिद्ध होगे। राक्षसराज! अब मैं तुम्हें जानेकी आज्ञा देता हूँ, जाओ।' शङ्करजीके ऐसा कहनेपर लङ्कापति रावण बोला—'महादेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो वर दीजिये। ब्रह्माजीकी दी हुई आयुका जितना अंश बीत गया है, वह पूर्ण हो जाय—उतनी आयु बढ़ जाय। इसके सिवा आप मुझे कोई अस्त्र भी प्रदान करें।' रावणकी बात सुनकर भगवान् शङ्करने उसको चन्द्रहास नामसे प्रसिद्ध एक चमकती हुई तलवार दी और उसकी आयुमें जो न्यूनता आयी थी, उसको पूर्ण कर दिया। तलवार देकर शङ्करजीने कहा—'तुम कभी इसका अनादर न करना। यदि कभी तुम्हारे द्वारा इसका तिरस्कार हुआ तो यह फिर मेरे ही पास लौट आयेगी, यह बिल्कुल निश्चित बात है।' इस प्रकार महादेवजीसे नूतन नाम पाकर रावणने उनको प्रणाम किया और वह पुष्पक-विमानपर जा बैठा। तदनन्तर वह समूची पृथ्वीपर दिग्विजयके लिये भ्रमण करने लगा। उसने इधर-उधर जा-जाकर अनेकों पराक्रमी क्षत्रियोंको पीड़ा पहुँचायी। कितने ही तेजस्वी क्षत्रिय, जो बड़े शूरवीर तथा रणोन्मत्त थे, रावणकी आज्ञा न माननेके कारण सेना और परिवारसहित नष्ट हो गये। दूसरे क्षत्रियोंने, जो बुद्धिमान् थे और उस राक्षसको अजेय समझते थे, उसके सामने हार मान ली।

## रावणके द्वारा अनरण्यका वध, यमलोकमें युद्ध और यमराजकी पराजय

तत्पश्चात् युद्धकी इच्छा लेकर राक्षसराज रावण राजाओंके नगरोंमें जाता और इन्द्र तथा वरुणके समान पराक्रमी महाराजोंसे मिलकर उनसे कहता—'राजाओ! तुम मेरे साथ युद्ध करो। अथवा अपनी पराजय स्वीकार करो; यही मेरा निश्चय है। इसके विपरीत करनेसे तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा।' तब निर्भय, बुद्धिमान् एवं धर्मानुकूल विचार रखनेवाले बहुत-से महाबली राजा परस्पर सलाह करके शत्रुकी प्रबलताको समझकर बोले—'रावण! हम तुमसे हार माने लेते हैं। सुरथ, गाधि, गय और राजा पुरूरवा—इन सबने अपनी पराजय स्वीकार की। इसके बाद वह राक्षसराज अयोध्यामें आया। उस समय महाराज अनरण्य इस पुरीके रक्षक थे। वे बलमें इन्द्रकी समानता करनेवाले थे। उनके पास आकर रावणने कहा—'तुम मुझसे युद्ध करो अथवा पराजय स्वीकार कर लो।' उस पापात्मा निशाचरके वचन सुनकर अयोध्यानरेश अनरण्यको बड़ा क्रोध हुआ और वे बोले—'राक्षसराज! मैं तुम्हें द्वन्द्व-युद्धका अवसर देता हूँ, ठहरो। शीघ्र युद्धके लिये तैयार हो जाओ। मैं भी तैयारी करता हूँ।' राजाने रावणके दिग्विजयकी बात पहलेसे ही सुन रखी थी, इसलिये उन्होंने बहुत बड़ी सेना इकट्ठी कर ली थी। वह सारी सेना इस समय राक्षसके वधके लिये उत्साहित होकर नगरसे बाहर निकली। दस हजार हाथीसवार, एक लाख घुड़सवार, कई हजार रथ और पैदल सेना पृथ्वीको आच्छादित करती युद्धके लिये चली। फिर तो राजा अनरण्य और निशाचरराज रावणमें बड़ा अद्भुत संग्राम होने लगा। राजाकी सेना रावणके सैनिकोंके सामने


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाकर नष्ट होने लगी। उसने बहुत देरतक युद्ध किया, उत्तम पराक्रम दिखलाया; परन्तु अन्ततोगत्वा जैसे पतिंगे आगमें जलकर भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार राजाकी सेना भी युद्धमें काम आ गयी। उनके बहुत ही थोड़े सैनिक शेष रह गये। तब महाराज अनरण्य क्रोधसे मूर्च्छित होकर अपने इन्द्रधनुषके समान महान् शरासनको टंकारते हुए रावणका सामना करनेके लिये आये। जैसे [ सिंहको देखकर ] मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार मारीच, शुक, सारण तथा प्रहस्त—ये चारों राक्षसमन्त्री राजा अनरण्यसे परास्त होकर भाग खड़े हुए। तत्पश्चात् इक्ष्वाकु-कुलका आनन्द बढ़ानेवाले राजाने आठ सौ बाणोंसे रावणके मस्तकपर प्रहार किया, किन्तु उस निशाचरके शरीरपर एक भी घाव नहीं हुआ। इसके बाद राक्षसराजने कुपित होकर राजाके माथेपर एक तमाचा मारा। राजा काँप उठे और व्याकुल होकर रथसे नीचे गिर पड़े। यह देख रावण हँसकर बोला—'कहो, मेरे साथ लड़ाई करनेसे तुम्हें इस समय क्या लाभ मिला?' राजाकी प्राणशक्ति क्षीण हो रही थी; उन्होंने राक्षसकी बात सुनकर कहा—'रावण! कालका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। मेरे प्राण जा रहे हैं, अतः इस समय मैं क्या कर सकता हूँ। [ मुझे सन्तोष है कि ] मैंने युद्धसे मुँह नहीं मोड़ा। युद्ध करता हुआ ही तुम्हारे हाथसे मारा गया हूँ। परन्तु तुमने [ अपने व्यङ्ग्यपूर्ण वचनसे ] इक्ष्वाकु-कुलका अपमान किया है; इसलिये मैं तुम्हें शाप देता हूँ। यदि मेरे द्वारा दान, होम, पुण्य और तपस्याका अनुष्ठान हुआ है, यदि मैंने धर्मके अनुसार भलीभाँति प्रजाका पालन किया है, तो मेरी बात सच्ची हो। महात्मा इक्ष्वाकुके इस वंशमें ही दशरथनन्दन श्रीराम उत्पन्न होंगे, जो तुम्हारे प्राणोंके ग्राहक होंगे।' राजाके इस प्रकार शाप देते ही मेघके समान गम्भीर स्वरमें देवताओंकी दुन्दुभि बज उठी और फूलोंकी वर्षा होने लगी। तदनन्तर राजा अनरण्य स्वर्ग सिधारे और निशाचरराज रावण वहाँसे अन्यत्र चला गया।

इसके बाद रावण सम्पूर्ण मनुष्योंको भयभीत करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा। एक दिन वह पुष्पक विमानपर बैठकर कहीं जा रहा था, इतनेमें बादलोंके बीचमें उसे देवर्षि नारदजी मिले। रावणने उन्हें प्रणाम किया और कुशल-प्रश्नके पश्चात् पूछा—'देवर्षे! आपके इधर पधारनेका क्या कारण है?' तब बादलोंपर विराजमान महान् तेजस्वी नारदजीने कहा—'राक्षसराज! भूलोकके प्राणी तो मृत्युके अधीन होनेके कारण यों ही मरे हुए हैं; फिर तुम भी इन मरे हुओंको क्यों मार रहे हो? मनुष्योंको क्लेश पहुँचाना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। वे बेचारे तो स्वयं ही बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे घिरे हुए हैं। वृद्धावस्था और सैकड़ों प्रकारके रोग उन्हें सताते रहते हैं। भला, ऐसे लोगोंको कोई वीर पुरुष कैसे मार सकता है। देखो इस लोककी अवस्था—कहीं कुछ मनुष्य तो आनन्दमग्न होकर बाजे-गाजे और नाच आदिसे मनोरञ्जन करते हैं तथा वहीं कुछ लोग दुःखसे पीड़ित होकर नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहाते हुए रो रहे हैं। माता, पिता तथा पुत्रके स्नेहसे और पत्नी तथा भाईके सम्बन्धमें नाना प्रकारके मनसूबे बाँधनेके कारण यह मनुष्यलोक मोहग्रस्त हो परमार्थसे भ्रष्ट हो रहा है; इसे अपने बन्धनजनित क्लेशोंका अनुभव ही नहीं होता। इन सबको निश्चितरूपसे यमराजके लोकमें जाना पड़ता है, अतः [ यदि शक्ति हो तो ] तुम यमराजको अपने काबूमें करो। उन्हें जीतनेपर तुम सबको जीत सकते हो, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

नारदजीके ऐसा कहनेपर लङ्कापति रावण उन्हें प्रणाम करके हँसता हुआ बोला—'महर्षे! मैंने आपकी बात स्वीकार कर ली। अब यमराजका वध करनेके लिये उद्यत होकर मैं दक्षिण दिशामें जाता हूँ। मैंने युद्धकी इच्छासे क्रोधपूर्वक प्रतिज्ञा की है कि चारों लोकपालोंको परास्त करूँगा; अतः यमराजके नगरमें जा रहा हूँ। संसारके प्राणियोंको कष्ट देनेवाले सूर्यपुत्र यमको मौतके घाट उतार दूँगा।' ऐसा कहकर दशग्रीवने मुनिको प्रणाम किया और मन्त्रियोंके साथ वह दक्षिण-दिशाको चल दिया। उसके जानेपर महातेजस्वी नारदजी सोचने लगे—'जो जीवोंके दान और कर्मके साक्षी हैं, जिनका तेज द्वितीय अग्निके समान है, जिन महात्मासे चेतना पाकर सम्पूर्ण जीव नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं, जिनके भयसे पीड़ित होकर समस्त त्रिभुवनके प्राणी उनसे भागते हैं, उन्हींके पास यह राक्षसराज स्वयं कैसे जायगा और किस प्रकार उनपर विजय प्राप्त करेगा—इसके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है; अतः यमराज और राक्षसका युद्ध देखनेके लिये यमलोकमें चलूँ।'

ऐसा निश्चय करके शीघ्र चलनेवाले विप्रवर नारदजी रावणके आक्रमणका समाचार सुनानेके लिये यमलोकमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, यमराज अग्निदेवको [साक्षीके रूपमें] आगे रखकर बैठे हैं और जिस प्राणीका जैसा कर्म है, उसके लिये वैसा ही फल देनेकी व्यवस्था कर रहे हैं। महर्षि नारदको आया देख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उन्होंने आतिथ्य-धर्मके अनुसार मुनिके लिये अर्घ्य आदि निवेदन करके कहा—'देवर्षे! कुशल तो है, आपके शुभागमनका क्या उद्देश्य है?' नारदजी बोले—'पितृराज! मेरी बात सुनिये, दशग्रीव नामका निशाचर अपने पराक्रमसे आपको काबूमें करनेके लिये आ रहा है। यही बतानेके लिये मैं जल्दी-जल्दी यहाँ आया हूँ। आप कालदण्डके धारण करनेवाले हैं, अतः उसके आक्रमणसे आपकी क्या हानि होगी।' इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि उस राक्षसका सूर्यके समान तेजस्वी विमान दूरसे आता दिखायी दिया। महाबली रावण यमलोकके निकट आ गया। उसने देखा, अनेकों प्राणी अपने पुण्य और पापोंका फल भोग रहे हैं। कितने ही जीवोंको मारा और क्लेश पहुँचाया जा रहा था, जिससे वे बड़े जोर-जोरसे चीखते और चिल्लाते थे। किन्हींको कीड़े खा रहे थे, कितनोंको भयंकर कुत्ते नोच रहे थे और वे दुखी हो-होकर कानोंको पीड़ा पहुँचानेवाला भयानक चीत्कार करते थे। किन्हींको अनेकों बार रक्तसे भरी हुई वैतरणी नदी पार करनेके लिये विवश किया जाता था, कितनोंको बारंबार तपायी हुई बालूपर चलाकर सन्तप्त किया जाता था। कुछ पापी असिपत्र-वनमें [ जिसके पत्ते तलवारकी धारके समान तीखे थे ] विदीर्ण किये जा रहे थे। किन्हींको रौरव-नरकमें डाला जाता था, कइयोंको नमकीन जलसे भरी हुई नदीमें डुबाया जाता था और कितनोंको छूरेकी धारोंपर दौड़ाया जाता था। कई प्राणी भूख और प्याससे तड़पते हुए पानीके लिये याचना कर रहे थे। कोई शवके समान कंकाल, दीन, दुर्बल, उदास और खुले बालोंवाले दिखायी देते थे। दूसरी ओर रावणने देखा, पुण्यात्मा जीव अपने पुण्यकर्मोंके प्रभावसे अच्छे-अच्छे घरोंमें रहकर संगीत और वाद्योंकी मनोहर ध्वनिसे आनन्दित हो रहे हैं। गो-दान करनेवाले गो-रसको, अन्न देनेवाले अन्नको और गृह प्रदान करनेवाले प्राणी गृहको पाकर अपने-अपने शुभ कर्मोंका फल भोग रहे हैं।

यह सब देखकर महाबली रावणने पापकर्मोंके कारण कष्ट भोगनेवाले प्राणियोंको बलपूर्वक यातनासे मुक्त कर दिया। इससे थोड़ी देरतक उन पापियोंको बड़ा सुख मिला। उसके मिलनेकी न तो उन्हें सम्भावना थी और न उसके विषयमें वे कुछ सोच ही सके थे। उस महान् राक्षसके द्वारा जब सभी प्रेत यातनासे मुक्त कर दिये गये, तब प्रेतोंकी रक्षा करनेवाले यमदूत क्रोधमें भरकर राक्षसराजपर टूट पड़े। फिर तो चारों ओरसे दौड़नेवाले यमराजके योद्धाओंका बड़े जोरसे कोलाहल हुआ। वे भौंरोंके समान झुंड-के-झुंड आ पहुँचे और पुष्पक-विमानके आसन, प्रासाद, वेदी और फाटक आदि तोड़ने लगे; किन्तु ब्रह्माजीके प्रभावसे तोड़नेपर भी वह ज्यों-का-त्यों हो जाता था। उसमें कोई खराबी नहीं आने पाती थी। तदनन्तर राक्षसराज रावणके मन्त्रियोंने भारी युद्ध छेड़ा। यमराजके सैनिक भी बड़े बलवान् थे। दोनों ओरसे परस्पर शस्त्रोंका प्रहार होने लगा। यमराजके योद्धाओंने रावणके मन्त्रियोंको छोड़कर उसीके ऊपर शूलोंकी वर्षा करते हुए आक्रमण किया। रावणका सारा शरीर जर्जर हो गया, वह खूनमें लथपथ हो गया और पुष्पक-विमानके ऊपर फूले हुए अशोक-वृक्षके समान प्रतीत होने लगा। तब बलवान् रावणने अपने अस्त्रबलसे यमराजके सैनिकोंपर शूल, गदा, प्रास, शक्ति, तोमर, बाण, पत्थर और वृक्षोंकी वृष्टि आरम्भ की तथा वे सैनिक भी सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें एकत्रित होकर अकेले उस राक्षसको ही मारने लगे। रावणका कवच कटकर गिर पड़ा, उसके शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी और वह क्रोधपूर्वक पुष्पक-विमान छोड़कर पृथ्वीपर उतर आया। नीचे आकर उसने अपने धनुषपर पाशुपत नामक दिव्य अस्त्रका सन्धान किया और 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए धनुषको कानतक खींचकर बाण चलाया। उस अस्त्रके तेजसे यमराजके समस्त सैनिक जलकर खाक हो गये। यह देख वह भयंकर पराक्रमी निशाचर अपने मन्त्रियोंके साथ पृथ्वीको कम्पित-सी करता हुआ जोर-जोरसे गर्जने लगा।

'मेरे योद्धा मारे गये' यह जानकर यमराजकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वे उतावले होकर सारथिसे बोले—'मेरा रथ शीघ्र ले आओ।' सारथिने तत्काल ही एक दिव्य एवं विशाल रथ लाकर खड़ा कर दिया। महातेजस्वी यमराज उस रथपर बैठे। उसमें बड़े सुन्दर घोड़े जुते थे। सारथिने उन्हें हाँका और वह रथ भयानक आवाज करता हुआ राक्षसराजके पास जा पहुँचा। मृत्यु-देवताके साथ उस विकराल रथको आया देख रावणके मन्त्री सहसा वहाँसे भाग चले; परन्तु दशग्रीवके मनमें संसारके डरानेवाले उस रथको देखकर भी न तो क्षोभ हुआ और न भय ही। यमराजने आते ही रावणपर शक्ति और तोमरोंका प्रहार करके उसके मर्मस्थानोंमें घाव कर दिया। तब रावणने भी सँभलकर उनके रथपर बाणोंकी बौछार आरम्भ की। परन्तु वह इतना पीड़ित हो चुका था कि यमराजकी छातीमें सैकड़ों शक्तियोंका प्रहार करके भी अपना बदला न चुका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सका। शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले यमराजने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए लगातार सात राततक युद्ध किया। दोनोंमें बड़ा भयंकर संग्राम हुआ, दोनों ही अपनी-अपनी विजय चाहते थे और उनमेंसे कोई भी युद्धसे पीछे पैर हटानेवाला नहीं था। अन्तमें यमराजने क्रोधसे लाल आँखें करके अपने अमोघ कालदण्डको हाथमें लेकर तोला। वे उसे रावणपर चलाना ही चाहते थे कि साक्षात् ब्रह्माजी वहाँ प्रकट हो गये और बोले—'महाबाहो!

तुम्हारे पराक्रमका कोई अन्त नहीं है, तुम इस कालदण्डसे निशाचर रावणका वध न करो। मैंने इसे देवताओंद्वारा न मारे जा सकनेका वर दिया है, वह तुम्हें असत्य नहीं करना चाहिये। कालदण्ड भी मेरा ही बनाया हुआ है, यह किसी भी प्राणीपर व्यर्थ नहीं होता। इसके प्रहारसे सबकी मृत्यु हो जाती है, अतः तुम इसे रावणके मस्तकपर न गिराओ। इसके प्रहारसे कोई एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह सकता। कालदण्ड पड़नेपर यदि रावण न मरा तो अथवा मर गया तो—दोनों ही दशाओंमें मेरी बात असत्य होगी। इसलिये हाथमें उठाये हुए इस कालदण्डको तुम रावणकी ओरसे हटा लो और मेरे सत्यकी रक्षा करो।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा यमराजने उत्तर दिया—'लीजिये, मैंने इस दण्डको हटा लिया। आप हमलोगोंके प्रभु हैं, [ अतः आपकी आज्ञाका पालन करना हमारा कर्तव्य है। ] परन्तु वरदानसे युक्त होनेके कारण यदि मेरे द्वारा इस निशाचरका वध नहीं हो सकता तो इस समय इसके साथ युद्ध करके ही मैं क्या करूँगा; इसलिये अब मैं इसकी दृष्टिसे ओझल होता हूँ।' यों कहकर यमराज रथ और घोड़ोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार यमराजको जीतकर अपने नामकी घोषणा करके दशग्रीव रावण पुष्पक-विमानपर आरूढ़ हो यमलोकसे चला गया और सूर्यपुत्र यमराज तथा महामुनि नारदजी ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गमें गये।

## रावणके द्वारा निवातकवचोंसे मैत्री, कालकेयोंका वध, वरुणपुत्रोंकी पराजय, स्त्रियोंका हरण तथा रोती हुई शूर्पणखाको आश्वासन

तदनन्तर रावणने रसातलमें जानेकी इच्छासे समुद्रमें प्रवेश किया। वहाँ वरदान पाये हुए निवातकवच नामक दैत्य निवास करते थे। उनके पास जाकर निशाचरने उन्हें युद्धके लिये ललकारा। फिर तो क्रोधमें भरे हुए दानव और राक्षस शूल, त्रिशूल, कुलिश, पट्टिश, तलवार और फरसोंसे एक दूसरेपर प्रहार करने लगे। उन्हें युद्ध करते एक वर्षसे अधिक समय बीत गया; किन्तु किसी भी पक्षकी विजय अथवा पराजय नहीं हुई और न उसकी सेना या शक्तिका ह्रास हुआ। तब अविनाशी ब्रह्माजी उत्तम विमानपर बैठकर शीघ्रतापूर्वक वहाँ आये और निवातकवचोंको युद्धसे रोककर इस प्रकार बोले—'दानवो! रावणको देवता और असुर—कोई भी युद्धमें नहीं जीत सकते। तुम सभी दानव और देववृन्द एक साथ मिलकर भी इसका नाश नहीं कर सकते; अतः मुझे तो यही अच्छा जान पड़ता है कि रावणकी तुम्हारे साथ मैत्री हो जाय।' यह सुनकर रावणने अग्निको साक्षी बना निवातकवचोंके साथ मित्रता की। इससे उसको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर निवातकवचोंसे यथोचित आदर पाकर वह एक वर्षतक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वहीं रहा। उस स्थानपर अपने नगरके समान ही उसे प्रिय भोग प्राप्त हुए तथा उसने निवातकवचोंसे सौ प्रकारकी मायाओंका ज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद वह वरुणके नगरका पता लगाता हुआ रसातलमें घूमने लगा। घूमते-घूमते वह अश्मनामक नगरमें जा पहुँचा, जहाँ कालकेय नामके दानव निवास करते थे। कालकेय बड़े बलवान् थे। रावणने उन सबका संहार कर डाला और शूर्पणखाके पति महाबली विद्युज्जिह्वके, जो संग्राममें रावणको चाट जाना चाहता था, उसने तलवारसे टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस प्रकार उसे परास्त करके राक्षसराजने एक ही मुहूर्तमें चार सौ दैत्योंका संहार कर डाला। तत्पश्चात् उसने वरुणके दिव्य भवनको देखा, जो श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल और कैलास-पर्वतके समान प्रकाशमान था। वहीं सुरभि नामकी गौ भी खड़ी दिखायी दी, जिसके थनोंसे दूध चू रहा था। कहते हैं, सुरभिके ही दूधकी धारासे क्षीरसागरका निर्माण हुआ है। रावणने उस अद्भुत गौकी परिक्रमा की और अनेकों सेनाओंसे सुरक्षित वरुणके भयंकर नगरमें प्रवेश किया। भीतर जानेपर उसे वरुणका सुन्दर भवन दिखायी दिया, जो सदा ही आनन्दमय उत्सवसे परिपूर्ण रहता था। वहाँ पहुँचकर दशग्रीवने वरुणके योद्धाओंसे कहा—'तुमलोग शीघ्र जाकर अपने राजाको सूचित करो कि राक्षसराज रावण युद्धके लिये आया है। आप चलकर उससे युद्ध कीजिये अथवा हाथ जोड़कर अपनी पराजय स्वीकार कर लीजिये। फिर आपको कोई भय नहीं रहेगा।'

यह सूचना पाकर महात्मा वरुणके पुत्र और पौत्र क्रोधमें भरे हुए निकले। उनका रावणके साथ ऐसा भयंकर युद्ध हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। निशाचर दशग्रीवके महापराक्रमी मन्त्रियोंने एक ही क्षणमें वरुणकी सारी सेनाको मार गिराया। अपनी सेनाकी यह अवस्था देख वरुणके पुत्र बाणोंसे पीड़ित होनेके कारण कुछ देरके लिये युद्धसे हट गये। तत्पश्चात् रथोंपर बैठकर आकाशमें जा पहुँचे। अब बराबरका स्थान मिल जानेसे रावणके साथ उनका भारी युद्ध छिड़ गया। वह आकाश-युद्ध देव-दानव-संग्रामके समान भयानक जान पड़ता था। वरुणके पुत्रोंने अपने अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा रावणको युद्धसे विमुख करके बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की और नाना प्रकारसे गर्जना करने लगे। यह देख महोदरको बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपनी गदासे वरुण-पुत्रोंके घोड़ोंपर चोट की। उस आघातसे घोड़ोंके प्राण निकल गये और वे रथ एवं सारथिसहित धरतीपर गिर पड़े। महात्मा वरुणके वीर पुत्र रथोंको छोड़कर अपने प्रभावसे आकाशमें ही ठहरे रहे। उन्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ। फिर धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उन्होंने बाणोंद्वारा महोदरको अच्छी तरह घायल किया और कुपित होकर रावणको चारों ओरसे घेर लिया। तब दशग्रीव कालाग्निकी भाँति क्रोधसे जल उठा और वरुण-पुत्रोंके मर्मस्थानोंमें बाणोंकी भयंकर वर्षा करने लगा। इससे उनके पैदल सैनिकोंको बड़ी पीड़ा हुई तथा वरुणके पुत्र भी घबरा उठे। यह देख वह निशाचर और भी उत्साहित होकर नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे उन्हें चोट पहुँचाने लगा। रावणकी मार खाकर वे सब-के-सब युद्धसे विमुख हो गये और पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय उनके सेवकोंने उन्हें शीघ्र ही उठाकर घर पहुँचा दिया। तत्पश्चात् रावणने वरुणके योद्धाओंसे कहा—'अब वरुणसे जाकर कहो [ वे स्वयं युद्धके लिये आवें ]।' यह सुनकर वरुणके मन्त्री प्रहासने कहा—'राक्षसराज! जिन्हें तुम युद्धके लिये बुला रहे हो, वे राजा वरुण ब्रह्मलोकमें संगीत सुनने गये हैं; फिर यहाँ व्यर्थ परिश्रम करनेसे क्या लाभ? उनके जो वीर पुत्र यहाँ मौजूद थे, उन्हें तो तुमने परास्त कर ही दिया।' मन्त्रीकी बात सुनकर राक्षसराजने वहाँ अपने नामकी घोषणा की। वह हर्षमें भरकर गर्जना करता वरुणलोकसे चल दिया तथा आकाश मार्गसे जाते हुए उसने लङ्काकी राह ली।

लौटते समय दुरात्मा रावण बड़े हर्षमें भरा था। उसने मार्गमें अनेकों राजाओं, ऋषियों, देवताओं और दानवोंकी कन्याओंका अपहरण किया। वह जिस कन्या या स्त्रीको सुन्दरी देखता, उसके रक्षक बन्धु-बान्धवोंको मारकर उसे विमानपर बैठा लेता था। वे सब-की-सब स्त्रियाँ और कन्याएँ दुखी होकर नेत्रोंसे आँसू बहा रही थीं। शोकाग्निसे प्रकट होनेवाले उनके आँसुओंकी एक-एक बूँद आगकी चिनगारी-सी जान पड़ती थी। उनकी दशा सिंहके पंजेमें पड़ी हुई हरिनियोंकी-सी हो रही थी। वे माता-पिता, भाई और पतिकी याद करके दुःख और शोकमें डूबी हुई विलाप कर रही थीं। रोते-रोते कहती थीं—'अहो! यह पापी इतना बड़ा दुराचार करके भी अपनेको धिक्कारता नहीं है! यह नीच राक्षस परायी स्त्रियोंके साथ रमण करता है, इसलिये स्त्रीके ही कारण इसका वध होगा।' सती-साध्वी स्त्रियोंके ऐसा कहनेपर देवताओंकी दुन्दुभि बज उठी और आकाशसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


फूलोंकी वर्षा होने लगी। पतिव्रता नारियोंके शापसे रावणकी शक्ति घट गयी, उसका तेज फीका पड़ गया। उनका विलाप सुनकर उस राक्षसका मन बहुत उदास हो गया।

तदनन्तर निशाचरोंसे पूजित होकर रावणने लङ्कापुरीमें प्रवेश किया। इसी समय इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली भयंकर राक्षसी शूर्पणखा, जो राक्षसराजकी बहिन थी, सहसा सामने आकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। रावणने बहिनको उठाकर धीरज बँधाया। शूर्पणखाकी आँखें रोते-रोते लाल हो गयी थीं। उनमें अब भी आँसू भरे थे। वह राक्षसी अपने भाईसे बोली—'राजन्! तुमने जबर्दस्ती मुझे विधवा बना दिया, क्या युद्धमें बहनोई और दामादकी भी रक्षा नहीं की जाती? तुम्हारे कारण अब मुझे विधवा कहलाना पड़ेगा। तुमने स्वयं ही मेरे पतिको मार डाला, क्या अब भी तुम्हें लज्जा नहीं आती?' रोती हुई बहिनकी ये बातें सुनकर दशग्रीवने उसे ढाढ़स दिया और शान्तिपूर्वक कहा—'वत्से! अब रोना व्यर्थ है, तुम्हें किसी बातका भय नहीं मानना चाहिये। मैं युद्धमें उन्मत्त हो गया था, बहनोईको पहचान न सका; इसीलिये तुम्हारे स्वामीका मेरे हाथसे वध हुआ है। इस समय तुम भाई खरके पास रहो, उसके अधीन इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंकी सेना रहेगी। खर तुम्हारी मौसीका बेटा और शूरवीर है, वह हर तरहसे तुम्हारी आज्ञाका पालन करेगा; मैं उसे दण्डकारण्यकी रक्षाके लिये शीघ्र ही भेज रहा हूँ। महाबली दूषण उसका सेनापति होगा।' ऐसा कहकर दशग्रीवने चौदह हजार पराक्रमी राक्षसोंको खरके साथ जानेकी आज्ञा दी। उन भयंकर निशाचरोंसे घिरा हुआ खर शीघ्र ही दण्डकारण्यमें आया और निर्भय होकर वहाँका अकण्टक राज्य भोगने लगा। शूर्पणखा भी उसके साथ दण्डकवनमें रहने लगी।

## मेघनादकी यज्ञके द्वारा सफलता, रावणका मधु और अपनी सेनाके साथ इन्द्रलोकपर धावा तथा मार्गमें उसे नलकूबरका शाप देना

लङ्काके पास निकुम्भिला नामका एक उपवन था। राक्षसराज रावणने उसके भीतर प्रवेश किया। वहाँ जानेपर उसे सैकड़ों यूपोंसे भरा यज्ञ होता दिखायी दिया। फिर भयानक वेष धारण किये अपने पुत्र मेघनादपर उसकी दृष्टि पड़ी। वह काला मृगचर्म, दण्ड, कमण्डलु और शिखा धारण किये हुए था। लङ्केश्वरने उसके पास जा अपनी भुजाओंसे उसका आलिङ्गन किया और पूछा—'बेटा! ठीक-ठीक बताओ, यह सब क्या कर रहे हो?' [ मेघनाद यज्ञके नियमानुसार मौन रहा। ] उस समय पुरोहित शुक्राचार्यने, जो बड़े तपस्वी थे, राक्षसराज रावणसे कहा—'राजन्! तुम्हारे पुत्रने बड़े विस्तारके साथ सात यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव-यज्ञ इसने पूर्ण कर लिये हैं। तत्पश्चात् माहेश्वर-यज्ञ प्रारम्भ होनेपर, जिसका अनुष्ठान दूसरे पुरुषोंके लिये सर्वथा कठिन है, तुम्हारे पुत्रको साक्षात् महादेवजीसे अनेकों वर प्राप्त हुए हैं। एक इच्छानुसार चलनेवाला दिव्य रथ भी मिला है, जो आकाशमें भी चल सकता है। इसके सिवा तामसी नामकी माया प्राप्त हुई है, जिसके द्वारा अन्धकार उत्पन्न किया जा सकता है। युद्ध-भूमिमें इस मायाका प्रयोग करनेपर देवता और असुरोंको भी प्रयोग करनेवालेकी गतिका पता नहीं लग सकता। इन सबके साथ बाणोंसे भरे हुए दो अक्षय तरकस, अजेय धनुष और शत्रुनाशक प्रबल अस्त्र भी तुम्हारे पुत्रने प्राप्त किये हैं।'

यह सुनकर रावणने कहा—'बेटा! यह अच्छा काम नहीं हुआ; क्योंकि इन द्रव्योंसे इन्द्र आदि देवताओंकी पूजा हुई है, जो मेरे शत्रु हैं। खैर, जो किया सो ठीक ही किया। अब चलो, महलमें चलें।' यों कहकर दशग्रीवने अपने पुत्र और विभीषणके साथ जाकर पुष्पक विमानसे उन सब स्त्रियोंको उतारा [ जिन्हें हरकर लाया गया था ]। वे अब भी आँसू बहाती हुई गद्गद कण्ठसे विलाप कर रही थीं। उनके प्रति रावणकी आसक्ति जानकर धर्मात्मा विभीषणने कहा—'राजन्! आपके ये आचरण अपने सुयश, धन और कुलका नाश करनेवाले हैं। इन बेचारी स्त्रियोंके बन्धु-बान्धवोंको मारकर आप इन्हें हर लाये हैं और इधर आपके शिरपर लात रखकर मधु नामक राक्षसने [ मौसेरी बहिन ] कुम्भीनसीका अपहरण कर लिया है।' रावण बोला—'जिसका नाम तुमने मधु बतलाया, वह कौन है?' विभीषणने कहा—'राजन्! आपका पुत्र यज्ञमें लगा था। मैं [ तपस्याके लिये ] पानीके भीतर निवास करता था और भैया कुम्भकर्ण नींदका आनन्द ले रहे थे। इसी समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


महाबली मधुने आक्रमण किया और यहाँके प्रधान-प्रधान राक्षस-मन्त्रियोंको मारकर वह कुम्भीनसीको बलपूर्वक उठा ले गया, यद्यपि वह अन्तःपुरमें भलीभाँति सुरक्षित थी। आप अपनी दूषित बुद्धिके कारण जो पापमें प्रवृत्त हुए हैं, उस कर्मका फल आपको इसी लोकमें मिल गया। इस बातको आप अच्छी तरह समझ लें।'

विभीषणका वचन सुनकर राक्षसराज रावण क्रोधसे जल उठा। उसकी आँखें लाल हो गयीं और वह बोला—'मेरा रथ शीघ्र जोतकर लाया जाय। शूरवीर योद्धा चलनेकी तैयारी करें। भाई कुम्भकर्ण और मुख्य-मुख्य निशाचर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो सवारियोंपर बैठें। आज रावणका भय न माननेवाले मधुका वध करके मित्रोंको साथ लिये युद्धकी इच्छासे देवलोककी यात्रा करूँगा।' रावणकी आज्ञासे युद्धमें उत्साह रखनेवाले राक्षसोंकी चार हजार अक्षौहिणी सेना युद्धके लिये निकली। मेघनाद समस्त सैनिकोंको साथ लेकर सेनाके आगे-आगे चला। रावण बीचमें था और कुम्भकर्ण पीछे-पीछे चलने लगा। विभीषण धर्मात्मा थे, इसलिये वे लङ्कामें ही रहकर धर्मका आचरण करने लगे। बाकी सभी निशाचर मधुपुरकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर दशग्रीवने अपनी बहिन कुम्भीनसीको देखा; किन्तु उसे मधुका दर्शन नहीं हुआ। कुम्भीनसी हाथ जोड़ अत्यन्त भयभीत होकर अपने भाई राक्षसराजके चरणोंपर गिर पड़ी। रावणने 'डरो मत' ऐसा कहते हुए उसे उठाया और कहा—'बताओ, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?' वह बोली—'राजन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे स्वामीका वध न कीजिये; क्योंकि कुलवती स्त्रियोंके लिये इसके समान भय देनेवाली दूसरी कोई बात नहीं है। नारीके लिये विधवा होना सबसे बड़ा भय और सबसे बढ़कर विपत्ति है। इसलिये आप अपना वचन सत्य कीजिये—मेरे स्वामीकी जीवन-रक्षा करके मुझे वास्तवमें निर्भय बनाइये। मेरी ओर देखिये, मैं आपसे [ अपने स्वामीके प्राणोंकी ] भीख माँगती हूँ। महाराज! आप मुझसे कह चुके हैं कि 'तुम डरो मत' [अतः अपने वचनकी लाज रखिये ]।''

रावण प्रसन्न हो गया, वह अपनी बहिनसे बोला—'तुम्हारे स्वामी कहाँ हैं? उन्हें शीघ्र बुलाओ। मैं उनके साथ देवलोक-पर विजय पानेके लिये जाऊँगा। मुझे तुमपर दया आती है और तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह भी है; इसलिये मैंने मधुको मारनेका विचार छोड़ दिया।' रावणके इस प्रकार आश्वासन देनेपर कुम्भीनसी महलमें गयी और अपने सोये हुए पतिको जगाकर प्रसन्नतापूर्वक बोली—'आर्यपुत्र! मेरे महाबली भाई दशग्रीव पधारे हैं। ये स्वर्गलोकपर विजय पानेकी इच्छासे आपको सहायक बनाना चाहते हैं। अतः आप अपने बन्धु-बान्धवोंको साथ लेकर इनकी सहायताके लिये जाइये।' पत्नीकी बात सुनकर मधुने 'बहुत अच्छा' कहते हुए उसे स्वीकार किया और राक्षसराजके पास विनीत भावसे जाकर धर्मके अनुसार उसका पूजन किया। मधुके द्वारा सम्मानित होकर दशग्रीवने उसके यहाँ एक रात व्यतीत की और दूसरे दिन सबेरे वहाँसे प्रस्थान किया। कैलास पर्वतके पास पहुँचनेपर सूर्यास्त होने लगा।

तब रावणने अपनी सेनाको वहीं ठहरानेका विचार किया। चन्द्रमाका उदय हुआ और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित निशाचरोंकी वह विशाल सेना गाढ़ निद्रामें निमग्न हो गयी; परन्तु महापराक्रमी रावण पर्वतके शिखरपर चुपचाप बैठकर चन्द्रमाकी चाँदनी तथा वृक्षोंके कारण बढ़ी हुई कैलास-पर्वतकी शोभा निहारने लगा। वहाँसे कुबेरके भवनमें गाती हुई अप्सराओंकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ती थी। संगीतकी मीठी तान, भाँति-भाँतिके फूलोंकी शोभा, शीतल वायुका स्पर्श, पर्वतकी रमणीयता, रजनीकी मधुवेला और चन्द्रमाका उदय—उद्दीपनकी इन सभी सामग्रियोंके कारण महाबली रावण कामके अधीन हो गया। इसी समय समस्त अप्सराओंमें श्रेष्ठ चन्द्रमुखी रम्भा उस मार्गसे आ निकली। उसके सुन्दर शरीरपर दिव्य वस्त्र और आभूषण शोभा पा रहे थे। अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप लगा था और केशपाशमें पारिजातके फूल गुँथे हुए थे। दिव्य पुष्पोंसे अपना शृङ्गार करके वह दिव्य उत्सवके लिये चली जा रही थी। अपनी अलौकिक शान्ति, शोभा, द्युति और कीर्तिसे युक्त होकर रम्भा उस समय दूसरी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी। रावण उसे देखते ही कामदेवके बाणोंका शिकार हो गया और खड़ा होकर अन्यत्र जाती हुई रम्भाका उसने हाथ पकड़ लिया। बेचारी अबला लज्जासे गड़ गयी और वह राक्षस मुसकराता हुआ उससे कहने लगा—'सुन्दरी! तुम कहाँ जा रही हो? किसकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये स्वयं चल पड़ी हो? किसके भाग्योदयका समय है, जो तुम्हारा उपभोग करेगा? यह सुन्दर शिला है, इसपर बैठकर विश्राम करो। इस त्रिभुवनका जो स्वामी है, वह मुझसे भिन्न नहीं है—मैं ही सम्पूर्ण लोकोंका अधिपति हूँ। त्रिलोकीका स्वामी दशानन आज तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है, सुन्दरी! मुझे स्वीकार करो।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रावणकी बात सुनकर रम्भा काँप उठी और हाथ जोड़कर बोली—'प्रभो ! प्रसन्न होइये—मुझपर कृपा कीजिये। आपको ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये; क्योंकि आप मेरे गुरु हैं—पिताके तुल्य हैं। यदि दूसरे कोई पुरुष भी मेरा तिरस्कार करनेपर उतारू हों तो आपको उनके आक्रमणसे मेरी रक्षा करनी चाहिये। मैं धर्मतः आपकी पुत्रवधू हूँ; यह आपसे सच्ची बात बता रही हूँ। इस समय आपके पुत्र नलकूबरकी सेवामें जा रही हूँ, इस कार्यमें विघ्न न डालिये। मुझे छोड़ दीजिये और सज्जनोंके मार्गपर चलिये। आप मेरे माननीय गुरुजन हैं; अतः आपके द्वारा मेरी रक्षा होनी चाहिये।' रावणने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'रम्भे ! तुम अपनेको पुत्रवधू क्यों बता रही हो ? यह बात तो उस स्त्रीके लिये लागू होती है, जो किसी एक पुरुषकी पत्नी हो। तुम्हारे देवलोककी तो स्थिति ही दूसरी है। सदासे यही नियम चला आ रहा है कि अप्सराओंका कोई पति नहीं होता।' ऐसा कहकर उस निशाचरने रम्भाको [ बलपूर्वक ] शिलापर बैठा लिया और कामासक्त होकर उसका उपभोग किया। इसके बाद उसने उस अप्सराको छोड़ दिया। तब वह भयसे काँपती हुई नलकूबरके पास गयी और हाथ जोड़कर उनके पैरोंपर गिर पड़ी।

रम्भाको इस अवस्थामें देख नलकूबरने पूछा—'कल्याणी ! यह क्या बात है ? तुम मेरे पैरोंपर क्यों पड़ी हो ?' वह थर-थर काँप रही थी। हाथ जोड़कर लंबी साँस खींचते हुए उसने जो कुछ बात हुई थी, वह सब बताकर कहा—"मैं बारंबार प्रार्थना करती रह गयी कि 'मैं आपकी पुत्रवधू हूँ, [ मुझे छोड़ दीजिये ], किन्तु उसने मेरी सारी बातें अनसुनी कर दीं और बलपूर्वक मेरे साथ अत्याचार किया। ऐसी दशामें आप मेरा अपराध क्षमा करें।" उसके ऊपर बलात्कारकी बात सुनकर वैश्रवण-कुमार नलकूबरने ध्यान लगाया और रावणकी की हुई सारी करतूतोंको जान लिया; फिर तो एक ही मुहूर्तमें उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और विधिपूर्वक आचमन करके हाथमें जल ले उन्होंने राक्षसराजको अत्यन्त भयंकर शाप दिया—'भद्रे ! तुम्हारी इच्छा न रहनेपर भी रावणने तुमपर बलात्कार किया है। अतः आजसे वह कामपीड़ित होकर यदि किसी ऐसी स्त्रीपर अत्याचार करेगा, जो उसे चाहती न हो तो उसके मस्तकके सात टुकड़े हो जायँगे।' दशग्रीवने इस रोमाञ्चकारी शापको सुना और तबसे अपनेको न चाहनेवाली स्त्रियोंके साथ बलात्कार करना छोड़ दिया। वह जिन-जिन पतिव्रता स्त्रियोंको हरकर ले गया था, वे सब नलकूबरका दिया हुआ शाप सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और देवताओंने भी दुन्दुभि बजायी।

## रावणका इन्द्रलोकपर आक्रमण, सुमालीका वध, मेघनादका इन्द्रको जीतकर लङ्कामें लाना और ब्रह्माजीका वहाँ आकर उन्हें छुड़ाना

कैलास-पर्वतको पार करके सेना और सवारियोंके साथ तेजस्वी रावण इन्द्रलोकमें जा पहुँचा। रावणका आगमन सुनकर इन्द्रको बड़ा डर लगा और वे दुखी हो विष्णुके पास जाकर बोले—'भगवन् ! मैं निशाचर रावणके लिये क्या करूँ ? वह महाबली राक्षस मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आया है। ब्रह्माजीका वर पानेके कारण वह प्रबल हो गया है। मधुसूदन ! आप देवताओंके भी देवता हैं। इस चराचर जगत्में आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो मुझे शरण दे सके। आप पद्मनाभ हैं—आपहीके नाभि-कमलसे जगत्की उत्पत्ति हुई है। आप सनातन देव श्रीनारायण हैं, आपने ही इन तीनों लोकोंको स्थापित किया और मुझे देवताओंका राजा बनाया है। स्थावर-जङ्गमसहित समस्त त्रिलोकीकी आपने ही सृष्टि की है और प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत आपमें ही प्रवेश करते हैं। देवदेव ! आप ही मुझे कोई उपाय बताइये [ जिससे मेरी विजय हो ]। क्या आप स्वयं चक्र और तलवार लेकर रावणसे युद्ध करेंगे ?' इन्द्रके ऐसा कहनेपर भगवान् नारायण बोले—"देवराज ! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये, मेरी बात सुनो; दुष्टात्मा रावणको सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी न तो मार सकते हैं और न परास्त ही कर सकते हैं; क्योंकि वरदान पानेके कारण यह इस समय अजेय हो रहा है। तुमने जो मुझे युद्धके लिये प्रेरित किया है, उसके उत्तरमें मेरा यही कहना है कि मैं निशाचर रावणसे इस समय युद्ध नहीं करूँगा; परन्तु तुम्हारे सामने इस बातकी प्रतिज्ञा करता हूँ कि 'समय आनेपर मैं ही सेनासहित उसका नाश करूँगा और देवताओंका आनन्द बढ़ाऊँगा। ये सब बातें मैंने ठीक-ठीक तुम्हें बता दीं।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तुम भी तो महान् बली हो, भय छोड़कर देवताओंको साथ ले रावणके साथ युद्ध करो।"

तदनन्तर रुद्र, आदित्य, वसु, मरुत् और अश्विनीकुमार आदि देवता युद्धके लिये तैयार होकर तुरंत अमरावती पुरीसे बाहर निकले। फिर देवता, दानव और राक्षसोंका भयंकर युद्ध होने लगा। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछार आरम्भ हो गयी। चारों ओर भयंकर आवाज गूँज उठी। इसी समय मारीच, प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, निकुम्भ, शुक, सारण, संह्राद, धूमकेतु, महादंष्ट्र, घटोदर, जम्बुमाली, महाह्राद, विरूपाक्ष, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, दुर्मुख, दूषण, खर, त्रिशिरा, करवीराक्ष, सूर्यशत्रु, महाकाय, अतिकाय, देवान्तक तथा नरान्तक—इन सभी महापराक्रमी राक्षसोंके साथ रावणके नाना महाबली सुमालीने सेनामें प्रवेश किया। देवगण महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न घोर राक्षसोंको चमकते हुए अस्त्र-शस्त्रोंसे मार-मारकर यमलोक भेजने लगे। यह देख सुमाली क्रोधमें भर गया और अनेकों प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करता हुआ देवसेनाका सामना करने लगा। उसने तीखे शस्त्रोंसे देवताओंका विध्वंस आरम्भ किया। वे उसके सामने टिक न सके। उन्हें भागते देख आठवें वसु सावित्र कुपित हो सुमालीका सामना करनेके लिये खड़े हुए। वे रथियोंकी सेनासे घिरे हुए थे। महातेजस्वी वसुने देवसेनापर प्रहार करनेवाले उस निशाचरको अपने पराक्रमसे रोक दिया। तब उन दोनोंमें भयानक एवं रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। उनमेंसे कोई भी पीछे हटनेवाला नहीं था। महात्मा वसुने अपने महान् बाणोंके प्रहारसे एक ही क्षणमें सुमालीके रथको तोड़ डाला। तत्पश्चात् उन्होंने उस राक्षसका वध करनेके लिये कालदण्डके समान भयंकर गदा हाथमें ली, जिसका अग्रभाग तेजसे देदीप्यमान हो रहा था। सावित्रने उसे सुमालीके मस्तकपर दे मारा। उसके प्रहारसे उस निशाचरके मस्तक, हड्डी तथा मांसका भी पता न लगा। सुमालीको मारा गया देख समस्त राक्षस भयभीत हो गये और एक-दूसरेको पुकारते हुए चारों ओर भाग गये। वसुके खदेड़नेसे कोई भी राक्षस युद्धभूमिमें खड़ा न हो सका।

तब रावणका बलवान् पुत्र मेघनाद समस्त राक्षसोंको लौटाकर देवताओंसे लोहा लेनेके लिये खड़ा हुआ। वह बड़े क्रोधमें भरा था। उस महारथी वीरने यथेष्ट गतिसे चलनेवाले बहुमूल्य रथपर आरूढ़ हो देवसेनापर धावा किया। उसे देखते ही सम्पूर्ण देवता इधर-उधर भागने लगे। यह देखकर देवराज इन्द्रने कहा—'देवताओ! भय न करो; युद्ध छोड़कर न जाओ, लौट आओ। मेरा पुत्र जयन्त, जो कभी किसीसे परास्त नहीं हुआ है, युद्धके लिये जा रहा है।' इन्द्रकी आज्ञा मानकर सम्पूर्ण देवता लौट आये और शचीकुमारको सब ओरसे घेरकर युद्धमें रावणके पुत्रपर प्रहार करने लगे। उस समय देवताओंका राक्षसोंके साथ और इन्द्रकुमारका रावणपुत्रके साथ युद्ध होने लगा। मेघनाद देवताओंपर शतघ्नी, मूसल, प्रास, गदा, तलवार, फरसे तथा बड़े-बड़े पर्वत-शिखर गिराने लगा। चारों ओर अन्धकार-सा छा गया, सब लोग व्यथित हो उठे। राक्षस और देवता आपसमें किसीको पहचान न सके। अन्धकारसे आच्छादित होकर वे विवेक-शून्य हो रहे थे। अतः देवता देवताओंको और राक्षस राक्षसोंको ही मारने लगे। बहुतेरे योद्धा उस युद्धसे भाग खड़े हुए। इसी बीचमें परम पराक्रमी दैत्यराज पुलोमा युद्धमें आया और शचीपुत्र जयन्तको पकड़कर उन्हें युद्धसे दूर हटा ले गया। वह शचीका पिता और जयन्तका नाना था। अपने दौहित्रको लेकर वह समुद्रमें घुस गया।

देवताओंको जब जयन्तके गायब होनेकी बात मालूम हुई, तब उनकी सारी खुशी छिन गयी और वे दुखी होकर चारों ओर भागने लगे। पुत्र लापता हो गया और देवताओंमें भगदड़ पड़ गयी है—यह देखकर देवराजने मातलिसे कहा—'मेरा रथ ले आओ।' मातलिने एक सजा-सजाया दिव्य रथ लाकर उपस्थित कर दिया, जो विशाल, वेगशाली एवं [ शत्रुओंके लिये ] अत्यन्त भयंकर था। तदनन्तर रुद्रों, वसुओं, आदित्यों, अश्विनीकुमारों और मरुद्गणोंको साथ लेकर देवराज इन्द्र नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो युद्धके लिये निकले। इसी बीचमें प्रतापी वीर दशग्रीव भी विश्वकर्माके बनाये हुए दिव्य रथपर सवार हुआ। दैत्य और निशाचर चारों ओरसे घेरकर उसकी रक्षा करने लगे। वह दिव्य रथ युद्धभूमिकी ओर इन्द्रका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा। देवताओंका राक्षसोंके साथ फिर भयंकर युद्ध छिड़ गया। जैसे मेघ जलकी धाराएँ बरसाते हैं, उसी प्रकार वे एक दूसरेपर शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे। दुष्टात्मा कुम्भकर्ण क्रोधमें भरकर दाँत, लात, भुजा, हाथ तथा शक्ति, तोमर और मुद्गर आदि जो ही पाता, उसीसे देवताओंको पीटता था। भयंकर रुद्रोंके साथ उसकी टक्कर हुई, जिसमें निरन्तर शस्त्रोंकी मार पड़नेसे वह बहुत घायल हो गया। कितने निशाचर मारे गये, कितने ही अङ्ग-भङ्ग होनेके कारण जमीनपर गिरकर छटपटाने लगे तथा कई प्राणहीन हो जानेपर भी अपने वाहनोंपर ही चिपटे



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रह गये थे। इस प्रकार देवताओंके शस्त्रोंद्वारा छिन्न-भिन्न होकर बहुतेरे राक्षस युद्धमें काम आ गये। प्राणोंसे हाथ धोकर धरतीपर पड़े हुए समस्त राक्षसोंका वह भयंकर संहार जादू-सा जान पड़ता था। युद्धके मुहानेपर खूनकी नदी बह चली। प्रतापी रावणने जब देखा कि देवताओंने मेरे समस्त सैनिकोंको मार गिराया है, तब उसके क्रोधकी सीमा न रही। वह समुद्रके समान दूरतक फैली हुई देवसेनामें घुसकर उसके योद्धाओंको मारता हुआ इन्द्रके पास जा पहुँचा। तब इन्द्रने महान् धनुषको खींचकर रावणके मस्तकपर अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी बाण मारे। इसी प्रकार महाबाहु दशग्रीवने भी इन्द्रको अपने बाणोंकी बौछारसे ढक दिया। उस समय देवराज इन्द्र युद्ध-भूमिमें खड़े हुए अपने पक्षके योद्धाओंसे बोले—'देवताओ! मैं एक बात बताता हूँ, उसे सुनो! राक्षस दशग्रीवको जीते-जी कैद कर लो, यही अच्छा होगा। यह मारा नहीं जा सकता; क्योंकि वरदानके प्रभावसे इसको तनिक भी भय नहीं है। अतः हम सब लोग इसे पकड़ लेंगे; तुम युद्धमें इस बातके लिये प्रयत्न करो।' इतना कहकर इन्द्रने रावणसे युद्ध करना छोड़ दिया और दूसरी ओर जाकर वे राक्षसोंको भयभीत करते हुए उनके साथ युद्ध करने लगे। रावणने उत्तरकी ओरसे देव-सेनामें प्रवेश किया और इन्द्रने दक्षिणकी ओरसे राक्षस-सेनामें। देवताओं-की सेना चार सौ कोसतक फैली हुई थी। रावणने उसके भीतर घुसकर समूची सेनाको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया। अपनी विशाल सेनाको नष्ट होते देख इन्द्रने निर्भय होकर रावणका सामना किया और उसे चारों ओरसे घेरकर युद्धसे विमुख कर दिया।

रावण इन्द्रके चंगुलमें फँसा है तथा दानव और राक्षसोंमें हाहाकार मचा हुआ है—यह देख मेघनाद क्रोधसे पागल हो गया। उसने महादेवजीसे मिली हुई महामायाका आश्रय ले अपनेको छिपा लिया और देवताओंकी सेनामें घुसकर उसे क्रोधपूर्वक खदेड़ना आरम्भ किया। इसके बाद देवताओंको छोड़कर वह इन्द्रपर ही टूट पड़ा; परन्तु महातेजस्वी इन्द्र अपने शत्रुके उस पुत्रको देख न सके। मेघनाद अपनी मायाके कारण बहुत प्रबल हो रहा था। वह अदृश्य होकर आकाशमें विचरने लगा और इन्द्रको घबराहटमें डालकर उनपर बाणों-की बौछार करने लगा। रावणकुमारको जब अच्छी तरह मालूम हो गया कि इन्द्र बहुत अधिक थक गये हैं, तब उन्हें मायासे बाँधकर वह अपनी सेनामें ले आया। यह देख सभी देवता सोचने लगे—अब क्या होगा! फिर तो वे क्रोधमें भर गये और रावणको ही युद्धसे विमुख करके उसपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगे। रावण आदित्यों और वसुओंका सामना पड़ जानेपर युद्धमें ठहर न सका; क्योंकि शत्रुओंने उसे बहुत पीड़ित कर दिया था। मेघनादने देखा, पिताका शरीर बाणोंके प्रहारसे जर्जर हो गया है और उनका चेहरा उदास दिखायी देता है, तब वह अदृश्य रहकर ही रावणसे बोला—'पिताजी! चले आइये, अब हमलोग घर चलें। युद्धकी समाप्ति हो जानी चाहिये। हमलोगोंकी जीत हो गयी, अतः चिन्ता छोड़कर आप प्रसन्न होइये। देवताओंकी सेना और तीनों लोकोंके स्वामी इन्द्रको मैं इनकी विशाल सेनाके बीचसे कैद कर लाया हूँ। ऐसा करके मैंने देवताओंका अहंकार चूर्ण कर दिया है।' पुत्रकी बात सुनकर निशाचरराज रावण युद्धसे निवृत्त हुआ और बड़े आदरके साथ बोला—'बेटा! इन्द्रको रथपर बैठाकर तुम सेनाके साथ यहाँसे लङ्कापुरीको चलो। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहा हूँ।' पिताकी आज्ञा पाकर रावणकुमार देवराजको साथ ले सेना

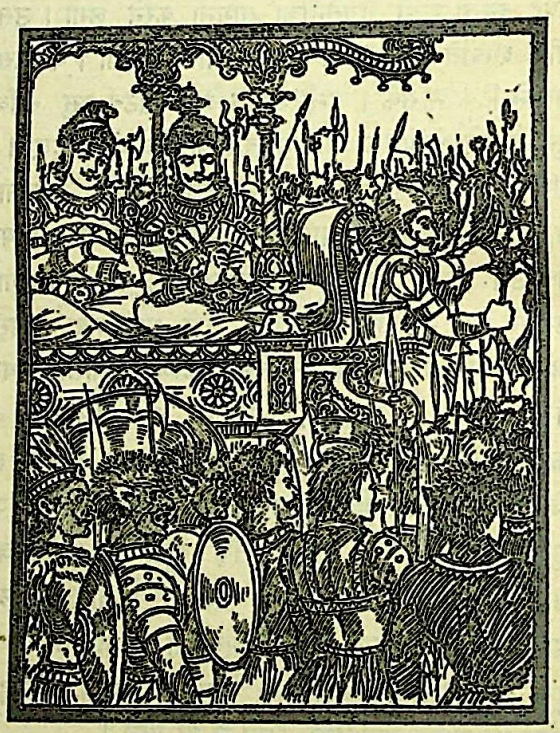

और सवारियोंसहित अपने निवासस्थानको गया। वहाँ पहुँचकर उसने युद्धमें भाग लेनेवाले निशाचरोंको विदा कर दिया।

रावणपुत्र मेघनाद जब महाबली इन्द्रको जीतकर उन्हें साथ ले अपने नगरको चला गया, तब सम्पूर्ण देवता ब्रह्माजी-को आगे करके लङ्कामें पहुँचे। ब्रह्माजी आकाशमें खड़े-खड़े ही पुत्रों और भाइयोंके साथ बैठे हुए रावणसे मिले तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उसे कोमल वाणीमें समझाते हुए बोले—'बेटा रावण ! युद्धमें तुम्हारे पुत्रकी वीरता देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ। आजसे यह संसारमें इन्द्रजित्‌के नामसे प्रसिद्ध होगा। महाबाहो ! तुम इन्द्रको छोड़ दो और बताओ, इन्हें छोड़नेके बदलेमें देवता तुम्हें क्या दें ?' तब युद्धमें विजय पानेवाला महातेजस्वी इन्द्रजित् स्वयं ही बोला—'भगवन् ! यदि इन्द्रको छोड़ना है तो मैं इसके बदलेमें अमरत्व माँगता हूँ।' यह सुनकर महातेजस्वी ब्रह्माजीने कहा—'बेटा ! इस पृथ्वीका कोई भी प्राणी सर्वथा अमर नहीं हो सकता।' मेघनाद बोला—'प्रभो ! यदि सर्वथा अमरत्व प्राप्त होना असम्भव है तो इन्द्रको छोड़नेके सम्बन्धमें जो मेरी दूसरी शर्त है, उसे सुनिये। मेरे विषयमें सदाके लिये यह नियम हो जाय कि जब मैं शत्रुपर विजय पानेकी इच्छासे संग्राममें उतरना चाहूँ और मन्त्रयुक्त हव्यकी आहुतिसे अग्निदेवकी पूजा करूँ, उस समय अग्निसे एक ऐसा रथ प्रकट हो जाया करे, जो घोड़ोंसे जुता-जुताया तैयार हो और उसपर जबतक मैं बैठा रहूँ, तबतक मुझे कोई भी न मार सके। यही मेरा निश्चित वर है। युद्धके निमित्त किये जानेवाले जप और होमको पूर्ण किये बिना ही यदि मैं युद्ध करने लगूँ, तभी मेरी मृत्यु हो।'

ब्रह्माजीने 'एवमस्तु' कहकर इन्द्रजित्‌को वह वर दे दिया। इन्द्रको छुटकारा मिला और सम्पूर्ण देवता उन्हें साथ ले स्वर्गको चले गये। उस समय इन्द्र दीन-से हो रहे थे। उनका देवोचित तेज लुप्त हो गया था और वे चिन्तामें डूबकर तरह-तरहकी बातें सोचने लगे। ब्रह्माजीने उनकी अवस्थाको लक्ष्य किया और कहा—"देवराज ! पूर्वकालमें तुमने पाप किया था, आज उसीका फल मिला है। फिर शोक क्यों करते हो ? तुम्हें याद होगा, मैंने एक उत्तम रूप और गुणसे सम्पन्न सुन्दरी स्त्रीको उत्पन्न किया था। उसका नाम अहल्या था। वह कन्या उत्पन्न होकर जब सयानी हुई, तब मेरे मनमें यह विचार उठा कि इसे किसकी पत्नी बनाऊँ। उस समय महामुनि गौतमकी स्थिरता और तपस्याविषयक सिद्धि देखकर मैंने उन्हींको पत्नीरूपमें अहल्या अर्पण कर दी। महर्षि गौतम धर्मात्मा हैं और अपनी पत्नी अहल्याके साथ आनन्दसे रहते थे। तुम कामके अधीन होकर एक दिन मुनिके आश्रमपर गये। वहाँ तुम्हें वह स्त्री दिखायी दी। फिर कामसे पीड़ित होकर तुमने उसके साथ बलात्कार किया। तेजस्वी महर्षिने तुम्हें अपने आश्रममें देख लिया। उस समय क्रोधमें भरकर उन्होंने जो शाप दिया, उसीके कारण तुम्हें इस विपरीत दशामें आना पड़ा है—शत्रुका कैदी होना पड़ा है। मुनिने कहा था—'इन्द्र ! तूने भय छोड़कर मेरी पत्नीके साथ बलात्कार किया है, इसलिये तुम्हें युद्धमें शत्रुके हाथमें जाना पड़ेगा—उसका कैदी होना पड़ेगा।' महातपस्वी गौतमने अपनी पत्नीको भी बहुत डाँटा और कहा—'दुष्टे ! तू इस आश्रमके पास ही अदृश्य हो जा।' तब अहल्या अपने स्वामीको प्रसन्न करनेके लिये बोली—'ब्रह्मर्षे ! देवराजने आपका ही रूप धारण करके मुझे कलंकित किया है। मैं अज्ञानवश उसे पहचान न सकी। मैंने स्वेच्छासे यह काम नहीं किया है, अतः आप मुझपर प्रसन्न हों।' अहल्याके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर गौतमने उत्तर दिया—'भद्रे ! इक्ष्वाकु-वंशमें एक तेजस्वी महारथीका अवतार होगा, जो संसारमें श्रीरामके नामसे विख्यात होंगे। महाबाहु श्रीरामके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही मनुष्य-शरीर धारण करके प्रकट होंगे। वे ब्राह्मण (विश्वामित्र) के कार्यसे तपोवनमें पधारेंगे। जब तुम उनका दर्शन प्राप्त करोगी उस समय पवित्र हो जाओगी। तुमने जो पाप किया है, उससे तुम्हें शुद्ध करनेमें वे ही समर्थ हैं। उनका आतिथ्य-सत्कार करके तुम मेरे पास आओगी और फिर मेरे साथ निवास कर सकोगी।' ऐसा कहकर ब्रह्मर्षि अपने आश्रममें चले गये और उनकी पत्नी कठोर तपस्या करने लगी। महाबाहु इन्द्र ! गौतम मुनिके शापसे ही यह सब कुछ प्राप्त हुआ है। तुम्हारे द्वारा जो पाप हुआ है, उसको याद करो और एकाग्रचित्त हो शीघ्र ही वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करो। देवराज ! तुम्हारा पुत्र जयन्त युद्धमें मारा नहीं गया है। उसके नाना उसे अपने साथ ले गये हैं और इस समय वह उन्हींके पास समुद्रमें मौजूद है।"

ब्रह्माजीके वचन सुनकर देवराज इन्द्रने वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान किया और वे पुनः स्वर्गमें जाकर देवताओंके राज्यका पालन करने लगे। रघुनन्दन ! यह है मेघनादका बल, जिसका मैंने आपसे वर्णन किया है। उसने देवराज इन्द्रको भी जीत लिया था, फिर दूसरे प्राणियोंकी तो बात ही क्या थी।

अगस्त्यजीकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणने कहा—'आश्चर्य है !' तथा वानरों और राक्षसोंको भी इस बातसे बड़ा विस्मय हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## हैहयराज अर्जुनके द्वारा रावणका पराभव

तब महातेजस्वी श्रीरामने विस्मित होकर महर्षि अगस्त्यसे पूछा—'भगवन्! जिस समय क्रूर निशाचर रावण पृथ्वीपर विजय करता घूम रहा था उस समय क्या कोई भी वीर नहीं था? अथवा उस समयके सभी राजा पराक्रमहीन और शस्त्रज्ञानसे शून्य थे, जिसके कारण उन्हें पराजित होना पड़ा।' श्रीरामके ये वचन सुनकर अगस्त्यजी उनसे हँसकर बोले—'राजन्! रावण इसी प्रकार सब राजाओंको परास्त करता पृथ्वीपर घूम रहा था। घूमते-घूमते वह [इन्द्रपुरी] अमरावतीके समान शोभायमान माहिष्मती पुरीमें पहुँचा। वहाँके अग्निकुण्डोंमें सर्वदा अग्नि प्रज्वलित रहती थी। उस नगरीका राजा अर्जुन था, जो अपने प्रभावके कारण साक्षात् अग्निदेवके ही समान था। जिस दिन रावण पहुँचा, उसी दिन हैहयराज अर्जुन अपनी स्त्रियोंके साथ नर्मदा-नदीमें जलक्रीडा करनेके लिये चला गया था। रावणने उसके मन्त्रियोंसे पूछा—'जल्दी बताओ, राजा अर्जुन कहाँ हैं? मैं रावण हूँ और उनसे युद्ध करनेके लिये आया हूँ। तुम उन्हें मेरे आनेकी सूचना भी दे दो।' इसपर मन्त्रियोंने कहा—'महाराज इस समय राजधानीमें नहीं हैं।'

पुरवासियोंसे राजाके बाहर जानेकी बात सुनकर रावण विन्ध्याचल-पर्वतपर आया। वहाँ पुष्पक-विमानसे उतरकर उसने नर्मदा नदीमें स्नान किया और फिर अपने मन्त्रियोंके साथ उसके रमणीय तटपर बैठ गया। बैठे-बैठे वह अपने मन्त्री शुक और सारणसे कहने लगा—'देखो, इस समय तीक्ष्णतासे तपनेवाला सूर्य आकाशके बीचों-बीच है; तथापि मुझे यहाँ बैठा जानकर वह चन्द्रमाके समान शीतल हो गया है। मेरे ही भयसे यह पवन भी नर्मदाके जलसे शीतल, सुगन्धित और श्रम-नाशक होकर बड़ी सावधानीसे बह रहा है। आपलोग इस महानदीमें स्नान करके पापोंसे मुक्त हो जायँगे। मैं भी इसके शरच्चन्द्रके समान स्वच्छ पुलिनपर महादेवजीको पुष्पाञ्जलि समर्पित करूँगा।' रावणके इस प्रकार कहनेपर प्रहस्त, शुक, सारण, महोदर और धूम्राक्षने नर्मदाजीमें स्नान किया। स्नान करके वे बाहर आये और रावणके पूजनके लिये पुष्पोंका पहाड़-सा लगा दिया। अब रावण स्नान करनेके लिये नर्मदाजीमें उतरा। स्नान करके उसने विधिवत् मन्त्र-जप किया। फिर जब वह हाथ जोड़े [महादेवजीकी पूजाके लिये] चला, तब और सब राक्षस भी उसके पीछे हो लिये। राक्षसराज रावण जहाँ भी जाता था वहाँ अपने साथ एक सुवर्णमय शिवलिङ्ग ले जाता था। उसने वह लिङ्ग बालुकामें स्थापित किया और चन्दन तथा अमृतके समान गन्धवाले पुष्पोंसे उसका पूजन किया। फिर वह उसके सामने गाने और हाथ फैलाकर नाचने लगा।

नर्मदाजीके तटपर जहाँ राक्षसराज रावण महादेवजीका पूजन कर रहा था, उससे थोड़ी ही दूरपर माहिष्मती-नरेश अर्जुन अपनी स्त्रियोंके साथ जल-क्रीडा कर रहा था। अर्जुनके हजार भुजाएँ थीं, उनका बल जाँचनेके लिये उसने उनके द्वारा नर्मदाजीकी धारा रोक दी। उसकी भुजाओंसे रुका हुआ नर्मदाजीका जल जिधर रावण बैठा पूजा कर रहा था, उस ओर उलटी गतिसे बहने लगा। उससे रावणके समर्पित किये हुए सारे पुष्प बह गये। रावणने देखा, नर्मदाजीका जल समुद्रके ज्वारके समान पश्चिमकी ओरसे बढ़कर पूर्वकी ओर बह रहा है। उसमें बाढ़ आनेका भी कोई लक्षण नहीं दिखायी दिया, क्योंकि वह पूर्ववत् ही निर्मल था। अतः रावणने बिना बोले ही उस बाढ़का कारण जाननेके लिये शुक और सारणको दाहिने हाथकी अँगुलीसे संकेत किया। रावणकी आज्ञा पाकर वे दोनों भाई आकाशमार्गसे पश्चिमकी ओर चले। आधा योजन जानेपर उन्होंने एक पुरुषको स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीडा करते देखा। उसीने अपनी हजार भुजाओंसे नदीके प्रवाहको रोक रखा था। उस अद्भुत पुरुषको देखकर शुक और सारण रावणके पास लौट आये और उससे बोले—'राक्षसराज! यहाँसे थोड़ी दूरपर कोई सालवृक्षके समान विशालकाय पुरुष है। वह बाँधकी तरह नर्मदाजीके जलको रोककर स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहा है। उसकी हजार भुजाओंसे जल रुक जानेके कारण ही नर्मदामें समुद्रके ज्वारके समान यह बाढ़ आ रही है।'

शुक और सारणके इस प्रकार कहनेपर रावण बोल उठा—'वही अर्जुन है।' और फिर युद्धकी लालसासे वह महोदर, महापार्श्व, धूम्राक्ष और शुक-सारणको साथ लेकर उस ओर चल दिया। रावण काजलके समान काला और बड़ा बलवान् था। थोड़ी ही देरमें वह नर्मदाजीके उस घाटपर आ गया। वहाँ उसने अर्जुनको स्त्रियोंसे घिरा देखा। इसपर उसने रोषसे आँखें लाल करके अर्जुनके मन्त्रियोंसे कहा—'मन्त्रियो! तुम शीघ्र ही हैहयराज अर्जुनसे कहो कि तुमसे युद्ध करनेके लिये रावण आया है।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रियोंने कहा—'इस समय महाराज स्त्रियोंके बीचमें हैं, ऐसी स्थितिमें आप युद्ध करना चाहते हैं ! अभी एक रात आप ठहरें, कल उनसे युद्ध हो सकता है। और यदि आपको बहुत जल्दी हो तो हम सबको संग्राममें मारकर आप महाराजके पास पहुँच सकते हैं।' इसपर रावणके भूखे मन्त्री अर्जुनके अमात्योंको मारकर खाने लगे। इससे अर्जुनके अनुयायियों और रावणके मन्त्रियोंका नर्मदाके तटपर बड़ा कोलाहल होने लगा। दोनों ओरसे बाण, तोमर, भाले, त्रिशूल और वज्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहार होने लगे। अन्तमें अर्जुनके सेवकोंने घबराकर स्त्रियोंके साथ क्रीडा करते हुए राजाको यह सब वृत्तान्त सुनाया। सुनकर अर्जुनने स्त्रियोंसे कहा—'तुम कोई डरना मत' और उन सबको जलसे बाहर निकाला।

अब, अर्जुनके नेत्र क्रोधसे विकृत हो गये और वह गदा लेकर बड़ी तेजीसे राक्षसोंपर टूट पड़ा। तुरंत ही विन्ध्याचल-के समान अचल प्रहस्त हाथमें मूसल लेकर उसके सामने आ डटा। उसने अत्यन्त क्रोधमें भरकर उस लोह-जटित मूसलसे अर्जुनपर वार किया और यमराजके समान भीषण गर्जना की। किन्तु शस्त्र-कुशल अर्जुनने तनिक भी न घबराकर अपनी गदासे उसका वार व्यर्थ कर दिया। इसके पश्चात् हैहयराजने अपनी पाँच सौ हाथ लंबी गदा घुमाते हुए प्रहस्तपर आक्रमण किया। उस गदाकी चोटसे प्रहस्त पृथ्वीपर गिर गया। प्रहस्तको गिरा देखकर मारीच, शुक, सारण, महोदर और धूम्राक्ष युद्धके मैदानसे खिसक गये। मन्त्रियोंके भाग जाने और प्रहस्तके गिर जानेपर तुरंत ही रावणने नृपश्रेष्ठ अर्जुनपर आक्रमण किया। फिर तो हजार भुजाओंवाले नरनाथ और बीस भुजाओंवाले निशाचरनाथका रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। वे सिंहके समान बली थे; अतः समुद्रकी तरह क्षुभित होकर मेघोंकी-सी गर्जना करने तथा रुद्र और यमराजके समान कुपित होकर एक-दूसरेपर गदाओंसे चोटें करने लगे। उस समय उन गदा-प्रहारोंको वे दोनों वीर उसी प्रकार सहन कर लेते थे, जैसे पर्वतोंने भयंकर वज्राघातोंको सह लिया था। बिजलीकी कड़कसे जैसे दिशाएँ गूँज उठती हैं, उसी प्रकार उनकी गदाओंके प्रहारोंसे सभी दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं। इसी बीचमें अर्जुनने कुपित होकर रावणके विशाल वक्षःस्थलपर पूरी शक्तिसे गदाका प्रहार किया। परन्तु रावण तो वरके प्रभावसे सुरक्षित था; अतः उसकी छातीसे टकराकर उस गदाके दो टुकड़े हो गये। तथापि अर्जुनके गदा-प्रहारसे रावण एक धनुष पीछे हट गया और रोता हुआ बैठ गया। रावणको व्याकुल देखकर अर्जुनने उसे झपटकर पकड़ लिया और अपने हजार हाथोंके द्वारा उसे रस्सियोंसे बाँध दिया। रावणके बाँधे जानेपर सिद्ध, चारण और देवताओंने 'शाबाश-शाबाश' कहते हुए अर्जुनके सिरपर फूलोंकी वर्षा की।

इस समय प्रहस्त होशमें आ गया। रावणको बँधा देखकर उसे बड़ा क्रोध हुआ और वह बड़ी तेजीसे हैहयराजकी ओर दौड़ा। उसने अर्जुनपर मूसल और शूलके प्रहार किये। परन्तु अर्जुनने तनिक भी न घबराकर प्रहस्तके छोड़े हुए उन शस्त्रोंको बीचहीमें पकड़ लिया तथा उन प्रचण्ड आयुधोंसे ही सब राक्षसोंको घायल करके भगा दिया। इसके पश्चात् वह रावणको लेकर अपने सुहृदोंके साथ नगरमें आया। उस समय ब्राह्मणोंने और पुरवासियोंने इन्द्रतुल्य महाराजपर फूलोंकी वर्षा की।

रावणको पकड़ लेना वायुको पकड़नेके ही समान था। धीरे-धीरे यह बात स्वर्गमें देवताओंके मुखसे पुलस्त्यजीने सुनी। सुनते ही वे माहिष्मती-नरेशसे मिलनेके लिये आये। आकाशसे उतरते समय वे पैरों चलकर आते हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे। राजपुरुषोंने यह सब समाचार अर्जुनसे कहा। उनकी बातोंसे हैहयराज समझ गया कि पुलस्त्यजी आये हैं। अतः वह हाथ जोड़कर तपस्वी पुलस्त्यजीको लेनेके लिये चला। उसके आगे राजपुरोहित अर्घ्य और मधुपर्क लेकर चले। पुलस्त्यजी उदय होते हुए सूर्यके समान तेजस्वी हैं। उन्हें आते देखकर अर्जुन चकित हो गया और उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्हें अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क और गौ समर्पण कर महाराज अर्जुनने गद्गद वाणीसे कहा—'मुने ! आज मैं आपके देव-वन्द्य चरणोंकी वन्दना कर रहा हूँ; अतः आज ही मैं वास्तवमें सकुशल हूँ, मेरा व्रत निर्विघ्न पूर्ण हो गया, जन्म सफल हुआ और आज ही मेरी तपस्या भी सफल हुई। ब्रह्मन् ! यह राज्य, ये स्त्री-पुत्र और हम सब लोग आपके ही हैं। आज्ञा दीजिये, हम आपकी क्या सेवा करें ?'

तब पुलस्त्यजी राजाके धर्म, अग्नि और पुत्रोंकी कुशल पूछकर उससे इस प्रकार बोले—'राजन् ! तुमने रावणको जीत लिया; अतः निःसन्देह तुम्हारा बल अतुलित है। जिसके भयसे समुद्र और वायु भी चञ्चलता छोड़कर सेवामें तत्पर रहते हैं, मेरे उस दुर्जय पौत्रको तुमने संग्राममें जीतकर बाँध लिया। इस प्रकार उसकी जगह तुमने अपने सुयशका विस्तार कर दिया है। परन्तु अब मेरे कहनेसे तुम रावणको छोड़ दो।' पुलस्त्यजीकी आज्ञा पाकर अर्जुनने आगे कुछ भी नहीं कहा;

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्नताके साथ रावणको छोड़ दिया। फिर दिव्य आभूषण, माला और वस्त्रोंसे उसका सत्कार किया तथा अग्निको साक्षी बनाकर दोनोंने आपसमें मित्रता कर ली। इस प्रकार छूटे हुए प्रतापी रावणको पुलस्त्यजीने हृदयसे लगाया; परन्तु पराजयके कारण वह लज्जित ही रहा। तदनन्तर पुलस्त्यजी ब्रह्मलोकको चले गये। इस प्रकार रावणको कार्त्तवीर्य अर्जुनके हाथसे पराजित होना पड़ा था और फिर पुलस्त्यजीके कहनेसे उसका छुटकारा हुआ था।

## वालीके द्वारा रावणका पराभव

अर्जुनसे छुटकारा पाकर राक्षसराज रावण फिर सारी पृथ्वीमें चक्कर लगाने लगा। जिस राक्षस या मनुष्यको वह बलमें बढ़ा-चढ़ा सुनता था, उसीके पास पहुँचकर उसे अभिमानपूर्वक युद्धके लिये ललकारता था। एक बार वह वालीद्वारा पालित किष्किन्धापुरीमें पहुँचा और सुवर्णमाला-धारी वालीको युद्धके लिये ललकारा। तब युद्धकी इच्छासे आये हुए रावणसे वालीके मन्त्री तार, ताराके पिता सुषेण, अङ्गद और सुग्रीवने कहा—'राक्षसराज! इस समय वाली तो बाहर गये हुए हैं। वे ही आपकी जोड़के हैं। अभी थोड़ी देर आप ठहरिये, वे चारों समुद्रोंपर सन्ध्योपासन करके आते ही होंगे। उनके तो सामने पड़ते ही आप जीवनसे हाथ धो बैठेंगे; और यदि आपको मरनेकी बहुत जल्दी हो तो दक्षिण-समुद्रपर जाइये। वहाँ आपको पृथ्वीपर स्थित अग्नि-देवके समान वालीके दर्शन होंगे।'

तब लोकोंको रुलानेवाला रावण तारको बुरा-भला कहकर पुष्पक-विमानसे दक्षिण-समुद्रपर पहुँचा। वहाँ उसने सुवर्णगिरि-के समान ऊँचे वालीको सन्ध्योपासन करते हुए पाया। काजलके समान काला रावण पुष्पकसे उतर पड़ा और वालीको पकड़नेके लिये पैरोंकी आहट न करते हुए तुरंत ही उसकी ओर चल दिया। दैवयोगसे वालीने उसे देख लिया। किन्तु उसकी खोटी नीयत जानकर भी वह घबराया नहीं और न उसकी ओर कुछ ध्यान ही दिया। उसने निश्चय कर लिया कि 'यह मुझे पकड़ना चाहता है, परन्तु मैं इस दुष्टको बगलमें दबाकर अन्य तीन समुद्रोंपर हो आऊँगा। इसके हाथ, वस्त्र और टाँगें लटकती रहेंगी। उस समय गरुडके पंजेमें दबे हुए सर्पके समान लोग इसे मेरी बगलमें दबा देखेंगे!' यह सोचकर वाली मौन ही रहा और वैदिक मन्त्रोंका जप करता रहा। जब रावणने समझा कि अब तो मैं हाथ बढ़ाकर इसे पकड़ सकता हूँ, उसी समय वालीने दूसरी ओर मुह किये हुए ही उसे इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे गरुड सर्पको दबोच लेता है। फिर उसे बगलमें दबाये हुए वह बड़े वेगसे आकाशमें उड़ा। रावण उसे बार-बार नोचता था। तो भी वायु जिस प्रकार बादलको उड़ा ले जाता है, उसी प्रकार वाली उसे बगलमें दबाये फिरता रहा। इस प्रकार रावणके हर लिये जानेपर उसके मन्त्री उसे वालीसे छुड़ानेके लिये रावणके पीछे-पीछे दौड़ते रहे। परन्तु वालीतक उनकी पहुँच न हो सकी; अतः वे सब थककर बैठ गये।

महावेगवान् वानरराज वाली रावणको लिये हुए पश्चिम-समुद्रपर पहुँचा; वहाँ स्नान-सन्ध्या और जप करके वह उत्तर-

समुद्रपर पहुँचा; उस जगह सन्ध्योपासन करके वह उसे लिये हुए ही पूर्व-समुद्रपर आया। वहाँ भी सन्ध्योपासन करके वह उसे बगलमें दबाये किष्किन्धा लौट आया। किष्किन्धाके उपवनमें पहुँचकर उसने रावणको अपनी काँखसे छोड़ दिया और बार-बार हँसकर पूछा—'कहो जी, तुम कहाँसे आये हो?' रावणकी आखें श्रमके कारण चञ्चल हो रही थीं; उसे वालीके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अद्भुत पराक्रमसे विस्मय भी बहुत हुआ और वह इस प्रकार बोला—'वानरराज! तुम तो साक्षात् इन्द्रके समान हो। मैं राक्षसराज रावण हूँ, युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ आया था, सो युद्ध आपसे मिल ही गया। अहो! आपमें कैसा अद्भुत बल, पराक्रम और गाम्भीर्य है कि आप मुझे पशुकी तरह पकड़े हुए बड़े वेगसे बिना थके चारों समुद्रोंपर घुमाते रहे। वीर! और ऐसा कौन हो सकता है, जो इस प्रकार मुझे ढो सके। ऐसी गति तो मन, वायु और गरुड—इन तीनकी ही है या निःसन्देह चौथे आप ऐसे वेगवाले हैं। वानरराज! मैंने आपका बल देख लिया। अब मैं अग्निको साक्षी बनाकर आपके साथ सदाके लिये मित्रता कर लेना चाहता हूँ। स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र और भोजन—ये सभी चीज़ें हम दोनोंकी सम्मिलित रहेंगी।' तब वानरराज और राक्षसराज दोनोंने अग्नि प्रज्वलित करके आपसमें भाईचारेका सम्बन्ध जोड़ा और एक-दूसरेका आलिङ्गन किया। फिर वे दोनों एक-दूसरेका हाथ पकड़े किष्किन्धापुरीके भीतर गये, मानो दो सिंह किसी गुफामें प्रवेश कर रहे हों। रावण वहाँ सुग्रीवकी तरह महीनेभर रहा, फिर मन्त्रीलोग आकर उसे लिवा ले गये। राजन्! इस प्रकार वालीने रावणको नीचा दिखाया था और फिर अग्निकी सन्निधिमें उससे बन्धुत्व स्थापित किया था। राम! वालीमें अतुलित बल था, किन्तु आपने उसे भी मार डाला।

## हनुमान्‌जीके बाल-चरित्रोंका वर्णन तथा अगस्त्यादि ऋषियोंका अपने-अपने आश्रमको जाना

इसके पश्चात् भगवान् श्रीरामने हाथ जोड़कर अगस्त्य-मुनिसे कहा—'वाली और रावणका बल अवश्य अतुलित था; किन्तु मेरा ऐसा विचार है कि हनुमान्‌के साथ इनके भी बलकी तुलना नहीं की जा सकती। शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव—सभीने हनुमान्‌के अंदर घर कर रखा है। समुद्रको देखकर वानर-सेना घबरा रही है—यह देखते ही उसे धैर्य बँधाकर वे सौ योजनकी छलाँग लगा गये। फिर लङ्कापुरीके आधिदैविक रूपको परास्त कर रावणके अन्तःपुरमें गये, सीताजीसे मिले और उन्हें धैर्य बँधाया। अशोक-वनमें रावणके सेनापति, मन्त्रिपुत्र, सेवक और पुत्रको इन्होंने अकेले ही मार डाला। उसके पश्चात् बन्धनसे छूटकर इन्होंने रावणसे बातें कीं और लङ्काको जलाकर भस्म कर दिया। मुनिवर! मैंने तो इन्हींके बाहुबलसे [ विभीषणके लिये ] लङ्काका राज्य, शत्रुओंपर विजय, अयोध्याका राज्य तथा सीता, लक्ष्मण, मित्र और बन्धुजनोंको प्राप्त किया है। यदि मुझे वानरराज सुग्रीवके मित्र हनुमान् न मिलते तो जानकीका पता लगानेकी भी शक्ति किसमें थी? जिस समय वाली और सुग्रीवका विरोध हुआ, उस समय सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये इन्होंने वालीको क्यों नहीं मारा? मैं तो यही समझता हूँ, उस समय इन्हें अपने बलका पता नहीं था। इसीसे ये अपने प्राणोंसे भी प्यारे सुग्रीवको दुःख भोगते देखते रहे। अतः महामुने! आप हनुमान्‌के विषयमें सब बातें यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक सुनाइये।'

श्रीरामचन्द्रजीके ये हेतुयुक्त वचन सुनकर अगस्त्यजी कहने लगे—'रघुनाथज! हनुमान्‌के विषयमें आप जो कुछ कहते हैं, ठीक ही है। बल, गति और बुद्धिमें इनकी बराबरी करनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। पूर्वकालमें मुनियोंने इन्हें यह शाप दे दिया था कि बल रहनेपर भी इन्हें अपने बलका ज्ञान नहीं रहेगा।

सुमेरु नामका एक सोनेका पर्वत है। वहीं इनके पिता केसरी राज्य करते हैं। उनकी अञ्जना नामसे विख्यात प्रियतमा पत्नी थी। उससे वायुने हनुमान्‌को उत्पन्न किया। एक दिन वह फल लानेके लिये वनकी ओर गयी हुई थी। उस समय माताके चले जानेसे और भूखकी प्रबलताके कारण बालक हनुमान् बहुत रोये। इतनेमें ही इन्हें जपा-कुसुमके समान उदय होता हुआ सूर्य दिखायी दिया। उसे फल समझकर ये सूर्यकी ओर दौड़े। यह देखकर देवता, दानव और यक्षोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—यदि बाल्यावस्थामें ही इसका ऐसा वेग और पराक्रम है तो युवावस्था होनेपर इसका बल और वेग कैसा होगा? अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देख उसे उसके दाहसे बचानेके लिये उस समय वायुदेव भी बर्फके समान शीतल होकर उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। इस प्रकार बालक हनुमान् अपने और अपने पिताके बलसे कई हजार योजन आकाश पार करके सूर्यके समीप पहुँच गये। सूर्यने यह सोचकर कि यह बालक है, गुण-दोषका अभी इसे ज्ञान नहीं है और इसके द्वारा देवताओंका भी बहुत काम होना है—इन्हें जलाया नहीं। किन्तु जब इन्द्रको यह समाचार मालूम हुआ, तब वे ऐरावतपर चढ़कर इन्हें रोकनेके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये आये। इन्होंने ऐरावतको भी एक विशाल फल समझा और ये उसे पकड़नेके लिये दौड़े। उस समय कुछ देरके लिये उनका रूप और भी भयंकर हो गया। इससे इन्द्रको भी कुछ क्रोध हो आया और उन्होंने इनपर वज्रका प्रहार किया। वज्रकी चोट खाकर ये पहाड़पर गिरे, इससे इनकी बायीं ठुड्डी टूट गयी।

हनुमान्‌को वज्रके प्रहारसे विह्वल होकर गिरते देख वायुदेव इन्द्रपर कुपित हुए। अतः उन्होंने समस्त प्रजाके भीतरसे अपनी गति समेट ली और पुत्र हनुमान्‌को लेकर गुफामें घुस गये। इससे प्रजाके मल-मूत्र रुक गये, जिसके कारण उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। इतना ही नहीं, वायुके कोपसे लोगोंके लिये साँस लेना कठिन हो गया, उनके जोड़ टूटने लगे और वे काठके समान हो गये। तीनों लोकोंमें धर्म-कर्म बंद हो गये और वेदाध्ययन तथा यज्ञादि भी बंद हो गये। तब गन्धर्व, देवता, असुर और मनुष्य आदि सभी प्रजा बेचैन होकर सुख पानेकी इच्छासे प्रजापति ब्रह्माके पास दौड़ी गयी। वहाँ देवताओंने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! हमलोग वायुसे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आये हैं। आप सबका दुःख दूर करनेवाले हैं; अतः वायुके निरोधसे हमें जो कष्ट हो रहा है, उसे दूर करनेकी कृपा करें।' प्रजाकी प्रार्थना सुनकर प्रजापति बोले—'प्रजागण! वायुके कोपका जो कारण है, वह आप सुनें। आज देवराज इन्द्रने उसके पुत्रको मारा है; इसीसे उसने क्रोध किया है। स्वयं शरीरधारी न होनेपर भी वह शरीरोंमें विचरता रहता है और उनकी रक्षा करता है। वायुके बिना यह शरीर लकड़ीके समान हो जाता है। वायु ही सबका प्राण है, वायुके सम्बन्ध-त्यागसे ही सारे संसारकी आयु समाप्त हो गयी है। अब सब प्राणी प्राणहीन होकर काठ और दीवारकी तरह निश्चेष्ट हो गये हैं। अतः अब हमें वायुके पास चलना चाहिये।' यह कहकर ब्रह्माजी देवता और गन्धर्व आदिको साथ लेकर वायुदेवके पास गये। उन्होंने देखा कि वे अपने पुत्रको गोदमें लिये बैठे हैं। उसकी दशा देखकर ब्रह्माजीको बड़ी दया आयी।

पुत्रके मारे जानेसे वायु-देवता बहुत दुखी थे। ब्रह्माजीको देखकर वे पुत्रको लिये हुए ही उनके आगे खड़े हो गये और तीन बार परिक्रमा करके उनके चरणोंमें गिर पड़े। ब्रह्माजीने अपनी विशाल भुजाओंसे पकड़कर वायुको खड़ा किया और बालक हनुमान्‌पर भी अपना हाथ फेरा। ब्रह्माके हाथका स्पर्श पाते ही ये पुनः जीवित हो गये। तब वायुदेव भी पहलेकी ही तरह सब प्राणियोंमें सञ्चार करने लगे। वायुके अवरोधसे छूटकर सब प्रजा प्रसन्न हो गयी। अब वायुका प्रिय करनेकी इच्छासे देव-पूजित ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'इन्द्र, अग्नि, वरुण, महेश्वर और कुबेर—आप सब लोग यद्यपि जानते हैं, तो भी मैं आपके हितकी बात कहता हूँ। इस बालकके द्वारा आपलोगोंके बहुत-से कार्य होंगे, अतः वायुदेवकी प्रसन्नताके लिये आप सब इसे वर दें।' तब इन्द्रने इसके गलेमें सुनहरे कमलोंकी माला डालकर कहा—'मेरे वज्रसे इसकी हनु (ठुड्डी) टूट गयी थी, इसलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम हनुमान् होगा। इसके सिवा मैं इसे दूसरा अद्भुत वर यह देता हूँ कि आजसे यह मेरे वज्रके द्वारा भी नहीं मारा जा सकेगा।' भगवान् सूर्य बोले—'मैं इसे अपने तेजका सौवाँ भाग देता हूँ। इसके सिवा जब इसमें शास्त्राध्ययनकी योग्यता आ जायगी, तब मैं ही इसे शास्त्रोंका ज्ञान कराऊँगा। इससे यह बड़ा वक्ता होगा।' वरुणने वर देते हुए कहा—'लाखों वर्षकी आयु हो जानेपर भी मेरे पाश या जलसे भी इसकी मृत्यु नहीं होगी।' यमने वर दिया कि 'यह मेरे दण्डसे अवध्य और नीरोग होगा।' कुबेरने कहा कि 'इसे युद्धमें कभी विषाद न होगा तथा मेरी यह गदा संग्राममें इसका वध न कर सकेगी।' श्रीमहादेवजीने इन्हें यह उत्तम वर दिया कि 'यह मेरे और मेरे आयुधोंके द्वारा भी अवध्य होगा।' फिर उस महारथी बालकको देखकर विश्वकर्माने कहा—'मेरे बनाये हुए जितने दिव्य अस्त्र हैं, उनमेंसे यह किसीसे भी न मारा जा सकेगा तथा यह चिरकाल-तक जीवित रहेगा।' अन्तमें ब्रह्माजी बोले—'यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होगा।'

इस प्रकार हनुमान्‌जीको देवताओंके वरोंसे अलंकृत देख ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए और वायुसे बोले—'वायो! तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओंके लिये भयंकर और मित्रोंको अभय करनेवाला होगा। इसे कोई भी जीत न सकेगा। यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा, जहाँ चाहेगा, जा सकेगा। इसकी गति कहीं भी नहीं रुकेगी और यह बड़ा यशस्वी होगा। यह युद्ध-स्थलमें भगवान् श्रीरामको प्रसन्न करनेवाले अनेकों अद्भुत काम करेगा।' इस प्रकार हनुमान्‌जीको वर देकर और वायुदेवकी अनुमति लेकर ब्रह्मा आदि सब देवता अपने-अपने स्थानोंको चले गये। वायुदेव भी पुत्रको लेकर अञ्जनाके घर आये और उसे देवताओंके दिये हुए वरदानका प्रसङ्ग सुनाकर चले गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रामजी ! इस प्रकार अनेकों वर पाकर उनके प्रभावसे ये बड़े बली हो गये हैं। अपने निजी वेगसे ये साक्षात् समुद्रके समान पूर्ण थे और निर्भय होकर ऋषियोंके स्थानपर उपद्रव किया करते थे। ये शान्तचित्त मुनियोंके यज्ञोपयोगी पात्र फोड़ डालते, अग्निहोत्र रोक देते और ढेर-के-ढेर रखे हुए वल्कलोंको नष्ट कर डालते थे। इसपर भृगु और अङ्गिरावंशीय मुनियोंने कुछ कुपित होकर इन्हें यह शाप दिया—'अरे वानर ! जिस बलके घमंडसे तू हमें कष्ट पहुँचाता है, उसे हमारे शापके प्रभावसे तू बहुत समयतक भूला रहेगा। जिस समय कोई तुझे तेरे यशका स्मरण दिलायेगा, उसी समय तेरा बल बढ़ेगा।' इस प्रकार ऋषियोंके वचनके प्रभावसे इनका तेज और ओज घट गया और ये मृदुल प्रकृतिके होकर उनके आश्रमोंमें विचरने लगे।

वाली और सुग्रीवके पिता ऋक्षरजा थे। वे सूर्यके समान तेजस्वी और समस्त वानरोंके राजा थे। उन्होंने बहुत समयतक वानरोंका राज्य किया और फिर वे मृत्युको प्राप्त हो गये। उनका देहान्त होनेपर मन्त्रियोंने पिताके स्थानपर वालीको राजा और वालीके स्थानपर सुग्रीवको युवराज बनाया। अग्निकी जैसे वायुके साथ स्वाभाविक मित्रता है, वैसे ही सुग्रीवके साथ वालीका भी बचपनसे बड़ा स्नेह था। दोनोंमें परस्पर किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं था। रामचन्द्रजी ! जिस समय वाली और सुग्रीवमें वैर ठना, उस समय वालीके भयसे भटकते रहनेपर भी सुग्रीवको हनुमान्‌के बलका स्मरण नहीं हुआ और स्वयं हनुमान् तो शापके कारण उसे भूले ही हुए थे। इसीसे सुग्रीवके साथ रहनेपर भी वालीके साथ युद्ध होनेपर उसी प्रकार चुपचाप खड़े देखा किये, जैसे कोई सिंह हाथीको देखकर चुपचाप खड़ा रहे। संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, शूरवीरता और धैर्यमें हनुमान्‌से बढ़कर हो। ये अतुलित शक्तिसम्पन्न कपिराज व्याकरणका अध्ययन करनेके लिये सूर्यकी ओर मुँह रखकर उनके आगे-आगे उदयाचलसे अस्ताचलतक जाते थे। इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, भाष्य और संग्रह—सभीका अच्छी तरह अध्ययन किया है। अन्यान्य शास्त्रोंके ज्ञान तथा छन्दःशास्त्रमें भी इनकी जोड़का कोई दूसरा विद्वान् नहीं है। ये सभी विद्याओंमें और तपस्यामें भी देवगुरु बृहस्पतिकी बराबरी करते हैं। संग्राममें प्रलयकालीन कालके समान इन हनुमान्‌जीके सामने ठहरनेकी ताब किसमें है। वास्तवमें तो इनके तथा सुग्रीव, मैन्द, द्विविद, नील, तार, अङ्गद, रम्भ, गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, प्रभ, ज्योतिर्मुख और नल आदि वानर तथा भालुओंके रूपमें आपकी सहायताके लिये देवता ही अवतीर्ण हुए हैं। रघुनाथजी ! आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने सुना दिया। हनुमान्‌जीकी बाल्यावस्थाके कर्मोंका भी मैंने वर्णन कर दिया।

अगस्त्यजीका कथन सुनकर श्रीराम, लक्ष्मण तथा समस्त वानर और राक्षसोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर अगस्त्यजी बोले—'आप सब बातें सुन चुके, इसलिये अब हम जाते हैं।' परमतेजस्वी अगस्त्यजीके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अति विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा—'आज मुझपर देवता, पितर और पितामह विशेषरूपसे प्रसन्न हैं। मुझे तथा मेरे बन्धुओंको तो सर्वदा आपके दर्शनोंसे ही सन्तोष है; अतः मैं कुछ प्रार्थना करना चाहता हूँ। मेरी एक लालसा है, आपको मुझपर अनुग्रह करके उसे पूरा करना होगा। मेरी इच्छा है कि पुरवासी और देशवासियोंको अपने-अपने कार्योंमें नियुक्त कर आप सत्पुरुषोंकी कृपासे यज्ञ करूँ; अतः आपलोग मेरे यज्ञोंके नित्य सदस्य बनें। इससे आप सबको मिलकर यहाँ निरन्तर आते रहना होगा।' श्रीरामचन्द्रजीका यह प्रस्ताव सुनकर अगस्त्यादि ऋषियोंने कहा—'ठीक है।' और फिर वे सब ऋषि अपने-अपने स्थानोंको चले गये। इधर श्रीरामचन्द्रजी विस्मित होकर उन्हीं बातोंपर विचार करते रहे। तत्पश्चात् सूर्यास्त होनेपर उन्होंने राजाओं और वानरोंको विदा करके सन्ध्योपासन किया और रात्रि होनेपर वे अन्तःपुरमें पधारे।

## श्रीरघुनाथजीका राजा जनक, युधाजित्, प्रतर्दन तथा अन्य समस्त राजाओंको एवं वानर, ऋक्ष और राक्षसोंको विदा करना तथा पुष्पक-विमानका पुनः लौटकर आना

श्रीरामचन्द्रजीका विधिवत् अभिषेक हो जानेपर पुरवासियोंने अपने हर्षको बढ़ानेवाली पहली रात्रि व्यतीत की। वह रात्रि बीतनेपर प्रातःकाल महाराज श्रीरामको जगानेवाले वन्दीजन राजमहलमें उपस्थित हुए। उनके कण्ठ बड़े मधुर थे। वे हर्षकी वृद्धि करते हुए महाराजकी यथावत् स्तुति करने लगे—'श्रीकौसल्याजीकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाले वीरवर !


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जागिये । महाराज ! आपके सोये रहनेपर तो सारा संसार ही [ धर्म-पालनकी दृष्टिसे ] सोया रहेगा । आपका पराक्रम विष्णुके समान और रूप अश्विनी-कुमारोंके समान है । बुद्धिमें आप बृहस्पतिके समान हैं तथा प्रजापालनमें स्वयं प्रजापतिके ही सदृश हैं । आपकी क्षमा पृथ्वीके समान, तेज सूर्यके समान, वेग वायुके समान और गम्भीरता समुद्रके समान है । आप शिवजीके समान युद्धमें अविचल हैं, आपकी-सी सौम्यता चन्द्रमामें ही पायी जाती है । राजन् ! आपके समान राजा तो न पहले कोई हुए हैं और न भविष्यमें ही होंगे । आप युद्धमें दुर्धर्ष हैं तथा धर्म-निरत रहकर प्रजाके हितमें तत्पर रहते हैं; अतः कीर्ति और लक्ष्मी आपको कभी छोड़ नहीं सकतीं । ककुत्स्थनन्दन ! ऐश्वर्य और धर्मकी स्थिति आपमें सदा ही रहती है ।' वन्दीजनोंने इसी प्रकार और भी सुमधुर स्तुतियाँ कीं । सूतोंने भी दिव्य स्तुतियों-द्वारा आपको जगाया । इस प्रकार स्तुतियोंके द्वारा भगवान् श्रीराम जागे । फिर श्रीनारायण जैसे नागशय्यासे उठते हैं, उसी प्रकार आप अपनी श्वेत बिछौनोंसे सुशोभित शय्याको त्याग कर उठे ।

महाराजके शय्यासे उठते ही हजारों सेवक विनयपूर्वक जलके पात्र लिये उपस्थित हो गये । उन्होंने स्नान आदि करके शुद्ध हो समयपर हवन किया और तुरंत ही इक्ष्वाकु-वंशियोंके द्वारा पूजित देवालयमें पधारे । वहाँ देवता, पितर और ब्राह्मणोंका विधिवत् पूजन कर अनेकों कर्मचारियोंके साथ बाहरकी ड्योढ़ीमें आये । इतनेमें ही वसिष्ठ आदि पुरोहित और मन्त्रिगण आपके सामने उपस्थित हुए तथा भिन्न-भिन्न देशोंके राजालोग भी आये । यशस्वी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तो भगवान्‌की सेवामें थे ही । इसी समय मुदित नामसे प्रसिद्ध सेवक भी हाथ जोड़े सभाभवनमें आये और प्रसन्नता-पूर्वक रघुनाथजीके पास बैठ गये । महाबली सुग्रीव आदि बीस वानर और अपने चार मन्त्रियोंके साथ विभीषण भी आपकी सेवामें उपस्थित हुए । जो लोग शास्त्रज्ञानमें बढ़े-चढ़े और कुलीन थे, वे भी महाराजको प्रणाम करके बैठ गये । इस प्रकार ऋषियों, राजाओं, वानरों और राक्षसोंके साथ सभामें बैठे हुए रघुनाथजी मुनियोंद्वारा सेवित देवराजसे भी बढ़कर जान पड़ते थे । जब सब लोग यथास्थान बैठ गये; तब पुराणवेत्ता महात्मालोग भिन्न-भिन्न धर्मकथाएँ कहने लगे ।

महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी इसी प्रकार [ सभामें बैठकर ] रोज-रोज नगर और राज्यके शासनकार्यकी व्यवस्था करते थे । कुछ दिन बीतनेपर उन्होंने मिथिलानरेश जनकजीसे हाथ जोड़कर कहा—'महाराज ! इक्ष्वाकु और मैथिल नरेशोंमें आपसके सम्बन्धके कारण जो प्रेम बढ़ा हुआ है, उसकी कहीं तुलना नहीं है । अतः अब आप रत्नादिके रूपमें हमारी भेंट स्वीकार करके अपनी राजधानीको पधारें । आपकी सहायताके लिये भरतजी साथ जायँगे ।' जनकजी 'अच्छा' कहकर श्रीरघुनाथजीसे बोले—'राजन् ! मैं आपके दर्शन और न्यायानुकूल व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हूँ । आपने मेरे लिये जो रत्न एकत्रित किये हैं, वे सब मैं अपनी सीता आदि पुत्रियोंको देता हूँ ।' इस प्रकार जनकजीके चले जानेपर श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर बड़ी विनयके साथ अपने मामा युधाजित्‌से कहा—'राजन् ! यह राज्य, मैं, भरत और लक्ष्मण आपके ही अधीन हैं और आप ही हमारे आश्रय हैं । महाराज केकयराज वृद्ध हैं, आपके लिये वे बहुत चिन्तित होंगे; इसलिये मुझे आपका आज ही जाना अच्छा जान पड़ता है । आप बहुत-सा धन तथा तरह-तरहके रत्न साथ ले जायँ, लक्ष्मण मार्गमें आपके साथ रहेंगे ।' युधाजित्‌ने जानेके विषयमें अपनी स्वीकृति दे दी और कहा कि 'रत्न और धन तो अक्षयरूपसे तुम्हारे ही पास रहें ।' फिर पहले रघुनाथजीने प्रणामपूर्वक अपने मामाकी परिक्रमा की; इसके बाद केकयराज-कुमारने भी राजा श्रीरामकी प्रदक्षिणा की और लक्ष्मणजीके साथ अपने देशको प्रस्थान किया । उन्हें विदा करके रघुनाथजीने अपने सखा काशिराज प्रतर्दनका आलिङ्गन करके कहा—'राजन् ! आपने [ राज्याभिषेकके काममें ] भरतके साथ उद्योग करके अपने महान् प्रेम और सौहार्दका परिचय दिया । अब आप अपनी रमणीय राजधानी काशीपुरीको पधारें ।' ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजी अपने उत्तम सिंहासनसे उठे और उन्हें हृदयसे लगा लिया । इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीसे विदा होकर काशिराज प्रतर्दन वाराणसीकी ओर गये । इसके पश्चात् उन्होंने हँसते हुए अत्यन्त मधुर शब्दोंमें अन्य तीन सौ राजाओंसे कहा—'मेरे ऊपर आपलोगोंका अविचल प्रेम है, जिसकी रक्षा आपने अपने ही तेजसे की है । आपलोगोंमें धर्म और सत्य निरन्तर निवास करते हैं । आप महापुरुषोंके प्रभाव और तेजसे ही मैं दुर्बुद्धि राक्षसाधम रावणको मार सका हूँ । आपके साथ हमारा समागम तो महात्मा भरतके ही कारण हुआ है । आप सबने जनक-नन्दिनीके हरे जानेका समाचार सुनकर ही हमारी सहायताका उद्योग आरम्भ कर दिया था । अब आपको इधर बहुत समय बीत गया है, इसलिये मुझे आपका जाना ही उचित जान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पड़ता है।' इसपर राजाओंने अत्यन्त हर्षमें भरकर कहा—'राम! हमारे सौभाग्यसे ही आप विजयी और राज्यपर प्रतिष्ठित हुए हैं, हमारे सौभाग्यसे ही आपने शत्रुको परास्त करके सीताजी प्राप्त की हैं। हमारी सबसे बड़ी मनोरथ-सिद्धि और प्रसन्नताकी बात तो यही है कि हम आपको शत्रुका संहार करके विजयी देख रहे हैं। महाबाहो! आपके प्रति हमारा बड़ा प्रेम है, अतः हमें सदा ही आपका स्मरण रहेगा। साथ ही हमारे प्रति भी आपका स्नेह सर्वदा बना रहे।' रघुनाथजीने कहा 'अवश्य।' इससे सब राजा बड़े प्रसन्न हुए और उनसे यथायोग्य सम्मानित हो अपने-अपने देशको चले गये।

भरतजीकी आज्ञासे अयोध्यामें श्रीरामचन्द्रजीकी सहायताके लिये कई अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई थी। उसके सभी सैनिक और वाहन उत्साही तथा सुदृढ़ थे। उन अक्षौहिणियोंके नायक सभी नृपति महानुभाव अब प्रसन्नतापूर्वक अयोध्यासे प्रस्थित हुए। उस समय उनके हजारों हाथी-घोड़ोंसे पृथ्वी डगमगाने लगी। चलते समय वे बली और मानी राजा आपसमें कहने लगे—'हमने तो श्रीराम और रावणको संग्राममें आमने-सामने देखा भी नहीं। भरतने युद्ध समाप्त हो जानेपर हमें व्यर्थ ही एकत्रित किया। इसमें सन्देह नहीं, यदि हमलोग युद्धस्थलमें पहुँच जाते तो अवश्य ही राक्षसोंको नष्ट कर डालते। श्रीराम और लक्ष्मणके बाहुबलसे सुरक्षित होकर हम समुद्रके उस पार बड़े निर्भय होकर युद्ध करते।' राजालोग इसी प्रकारकी और भी अनेकों बातें करते हर्षपूर्वक अपने राज्योंमें पहुँच गये। अपने-अपने नगरमें जाकर इन राजाओंने श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये घोड़े, सवारियाँ, रत्न, मतवाले हाथी, उत्तम चन्दन, दिव्य आभूषण, मणि, मोती, मूँगे, रूपवती दासियाँ, बकरियाँ, भेड़ें और तरह-तरहके बहुत-से रथ भेंट किये। वह सब सामग्री लेकर श्रीरघुनाथजीने प्रसन्नतापूर्वक सुग्रीव, विभीषण तथा अन्य सब वानर और राक्षसोंको दे दी, जिनके सहयोगसे उन्होंने विजय प्राप्त की थी। उन महाबली वानर और राक्षसोंने श्रीरामजीके दिये हुए वे रत्न अपने सिर और भुजाओंपर बाँध लिये।

फिर भगवान् श्रीरामने महाबाहु अङ्गद और हनुमान्‌को गोदमें भरकर सुग्रीवसे कहा—'वानरराज! ये अङ्गद आपके सुपुत्र हैं और हनुमान् आपके मन्त्री हैं। ये सर्वदा हमारे हितमें तत्पर रहते हैं, अतः इनका विशेष सत्कार होना चाहिये।' ऐसा कहकर महायशस्वी श्रीरामने अपने शरीरके आभूषण उतारे और उन्हें अङ्गद तथा हनुमान्‌को पहना दिया। फिर उन्होंने नील, नल, केसरी, कुमुद, गन्धमादन, सुषेण, पनस, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, गवाक्ष, विनत, धूम्र, बलीमुख, प्रजङ्घ, सन्नाद, दरीमुख, दधिमुख और इन्द्रजानु आदि वानर-यूथपतियोंको सम्बोधन करके उन्हें प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे एकटक देखते हुए बड़े ही मधुर और विनम्र शब्दोंमें कहा—'आपलोग मेरे सुहृद्, शरीर और भाई ही हैं; आपने ही मुझे दुःखसे उबारा है। आप-जैसे श्रेष्ठ सुहृदोंको पाकर राजा सुग्रीव भी धन्य हैं।' यह कहकर रघुनाथजीने उन्हें यथायोग्य आभूषण और बहुमूल्य हीरे दिये तथा उनका आलिङ्गन किया। इसी प्रकार रहते-रहते वानरोंको यहाँ एक महीनेसे भी अधिक हो गया; किन्तु रघुनाथजीके प्रेमके कारण उन्हें वह एक मुहूर्तके समान ही जान पड़ा। उन कामरूपी वानरों, पराक्रमी राक्षसों और महाबली भालुओंके साथ श्रीरामचन्द्र भी बड़े प्रसन्न रहते थे। रीछ और वानरोंको भी बड़ा आनन्द था, उनका शिशिर-ऋतुका दूसरा महीना भी वहाँ सुखपूर्वक बीत गया। इक्ष्वाकुनरेशोंकी सुरम्य राजधानीमें वे बड़े प्रेमसे रहते थे; अतः श्रीरघुनाथजीके प्रेमवश उनका समय बड़े आरामसे बीत जाता था।

इस तरह वानर, राक्षस और भालुओंके सुखपूर्वक रहते हुए एक दिन महातेजस्वी श्रीरघुनाथजीने सुग्रीवसे कहा—'सौम्य! अब आप देवता और असुरोंके लिये भी अजेय किष्किन्धापुरीको जायँ और वहाँ अपने मन्त्रियोंके साथ निष्कण्टक राज्य करें। अङ्गदपर आप विशेषरूपसे प्रेमदृष्टि रखें तथा हनुमान्, महाबली नल, अपने ससुर सुषेण, वीरवर तार, अजेय कुमुद, महाबली नील, वीर शतबलि, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, अजेय ऋक्षराज महाबली जाम्बवान् और गन्धमादन—इन सबको भी सर्वदा स्नेहकी दृष्टिसे देखें। इनके सिवा पराक्रमी ऋषभ, सुपाटल, केसरी, शरभ, शुम्भ, शङ्खचूड तथा और भी जिन-जिन महानुभावोंने मेरे लिये प्राणोंकी बाजी लगा दी थी, उन सबपर आप प्रेमदृष्टि रखें, कभी उनका अप्रिय न करें।' यह कहकर श्रीरघुनाथजीने बार-बार सुग्रीवका आलिङ्गन किया और फिर मधुर वाणीमें विभीषणसे कहा—'राक्षसराज! मैं, आपके नगरनिवासी राक्षस और भाई कुबेर भी आपको धर्मज्ञ समझते हैं; अतः आप धर्मपूर्वक लङ्काका राज्य करें, अधर्ममें कभी मन न ले जायँ। जो राजा बुद्धिमान् होते हैं, वे बहुत दिनोंतक पृथ्वीका राज्य भोगते हैं। अब आप निश्चिन्त होकर जायँ और सुग्रीवके साथ मेरा भी सदा प्रेमपूर्वक स्मरण करते रहें।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भगवान् श्रीरामकी बातें सुनकर वानर, भालू और राक्षसोंने 'धन्य-धन्य' कहकर उनकी पुनः-पुनः प्रशंसा की। वे बोले—'महाबाहु राम! स्वयम्भू ब्रह्माके समान आपमें सर्वदा मधुरता रहती है तथा आपकी बुद्धि और पराक्रम भी अद्भुत हैं।' वानर और राक्षस जिस समय ऐसा कह रहे थे, उसी समय हनुमान्‌जीने विनम्र होकर कहा—'महाराज! आपके प्रति मेरा स्नेह सर्वदा बना रहे तथा आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति रहे। आपके सिवा कहीं अन्य मेरा मन न जाय। वीरवर! जबतक पृथ्वीपर रामकथा रहे, तबतक निःसन्देह मेरे प्राण इसी शरीरमें रहें। आपके उस चरितामृतको सुनकर मैं अपनी उत्कण्ठाको दूर करता रहूँगा।' हनुमान्‌के ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने सिंहासनसे उठकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और स्नेहपूर्वक ये वचन कहे—'कपिश्रेष्ठ! निःसन्देह ऐसा ही होगा। जिस समयतक संसारमें मेरी यह कथा रहेगी, तबतक तुम्हारा भी सुयश रहेगा और तुम्हारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे तथा मेरी कथा तो तबतक रहेगी, जबतक ये लोक रहेंगे। कपिवर! तुमने जो उपकार किये हैं उनमेंसे एक-एकके लिये भी मैं अपने प्राण निछावर कर सकता हूँ। तुम्हारे अन्य उपकारोंके लिये तो मैं ऋणी ही रहूँगा। [ मैं तो यही चाहता हूँ कि ] तुमने जो-जो उपकार किये हैं, वे मेरे शरीरमें ही पच जायँ; उनका बदला चुकानेका मुझे कभी अवसर ही न मिले; क्योंकि प्रत्युपकार पानेकी योग्यता तो पुरुषमें आपत्तिके समय ही आती है।'* ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने अपने गलेसे एक चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार निकालकर हनुमान्‌जीके गलेमें बाँध दिया।

श्रीरामचन्द्रजीके ये विदाईके शब्द सुनकर वानरलोग उठे और उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम करके वहाँसे चल दिये। श्रीरामजीको छोड़ते समय वे सभी दुःखसे अचेत-से हो रहे थे; किसीके गलेसे आवाज नहीं निकलती थी तथा सभीकी आँखें आँसुओंसे तर थीं। किन्तु जब स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने ही प्रसन्नतापूर्वक उनसे जानेको कहा, तब जिस प्रकार जीव शरीरको छोड़कर जाता है, उसी प्रकार वे रघुवंशवर्धन श्रीरामको प्रणाम करके नेत्रोंमें जल भरे वहाँसे चल दिये।

भगवान् श्रीराम ऋक्ष, वानर और राक्षसोंको विदा करके बहुत प्रसन्न हुए। एक दिन वे दोपहरके बाद अपने भाइयोंके साथ बैठे थे। उस समय उन्होंने आकाशसे यह मधुर वाणी सुनी—"प्रभो! मैं कुबेरके भवनसे लौटा हुआ पुष्पक-विमान हूँ। आप मेरी ओर प्रसन्न वदनसे देखनेकी कृपा करें। आपकी आज्ञासे मैं कुबेरकी सेवाके लिये उनके भवनमें गया था; परन्तु उन्होंने मुझसे कहा—'सौम्य! पुत्र, बान्धव और साथियोंसहित रावणके मारे जानेसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। ऐसा करके लङ्काके साथ परमात्मा श्रीरामने तुमको भी जीत लिया है। अतः मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम उन्हींकी सवारीमें रहो। भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण लोकोंके आश्रय हैं; तुम उनकी सवारीके काम आओ—यह मेरी बड़ी इच्छा है; इसलिये तुम निश्चिन्त होकर जाओ।' इस प्रकार मैं महात्मा कुबेरजीकी आज्ञासे ही आपकी सेवामें आया हूँ, आप मुझे स्वीकार करें। मैं सभी प्राणियोंके लिये अजेय हूँ और कुबेरजीकी आज्ञासे आपके इच्छानुसार सब लोकोंमें विचरूँगा।"

पुष्पकके इस प्रकार कहनेपर महाबली रघुनाथजीने कहा—'विमानश्रेष्ठ! यदि ऐसी बात है तो मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। यदि कुबेरजी ही ऐसी कृपा कर रहे हैं तो हमें मर्यादा-भङ्गका दोष नहीं होगा।' फिर उन्होंने लाजा, पुष्प, धूप और चन्दन आदिसे पुष्पकका पूजन किया और उससे कहा—'अब तुम जाओ; जब मैं स्मरण करूँ, तब आ जाना। देखो, स्वेच्छासे जाते समय तुम किसीसे टकरा मत जाना।' तब पुष्पक-विमान 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर अपनी अभीष्ट दिशाको चला गया। उसके चले जानेपर भरतजीने हाथ जोड़कर कहा—'वीर! आप देवस्वरूप हैं; इसीसे आपके शासनकालमें जो मनुष्य नहीं हैं, उन्हें भी कई बार [ मनुष्योंकी तरह ] सम्भाषण करते सुना जाता है। इस समय सभी लोग नीरोग दिखायी देते हैं; बूढ़ोंके पास भी मृत्यु नहीं फटकती, स्त्रियाँ बिना कष्ट सहे प्रसव करती हैं, मनुष्य हृष्ट-पुष्ट हैं, पुरवासियोंमें बड़ा हर्ष दिखायी देता है, मेघ समयपर वर्षा करते हैं, उनसे अमृततुल्य जलकी वृष्टि होती है तथा शीतल, सुखकारी और स्वास्थ्यप्रद वायु चलती है। राजन्! नगर और राज्यके सभी लोग कहते हैं कि ऐसे राजाकी चिरकालतक हमारे ऊपर छत्रछाया रहे।' भरतजीकी ये मीठी-मीठी बातें सुनकर श्रीरघुनाथजी बड़े प्रसन्न हुए।

---

* एवमेतत्कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः।
चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका॥
तावत्ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा।
लोका हि यावत्स्थास्यन्ति यावत्स्थास्यन्ति मे कथाः॥
एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥
(४०। २१–२४)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# गर्भिणी सीताजीका मुनियोंके आश्रम देखनेकी इच्छा प्रकट करना, रघुनाथजीका मित्रोंके मुखसे लोकापवादके विषयमें सुनना तथा सीताजीको वनमें छोड़नेके लिये लक्ष्मणजीको आज्ञा देना

धर्मज्ञ श्रीराम दिनके पूर्वभागमें धर्मकार्य करते थे और बाकी आधे दिन अन्तःपुरमें रहते थे। सीताजी भी पूर्वाह्णमें देव-पूजन आदि करके सब सासुओंकी समान रूपसे पूजा करती थीं। इन दिनों श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीको गर्भके मङ्गलमय चिह्नोंसे युक्त देखा। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने सीताजीको बधाई दी। फिर वे देवकन्याके समान सुन्दरी सीताजीसे बोले—'वैदेही! यह तुम्हारे पुत्र-प्राप्तिका समय है; प्रिये! कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है; मैं तुम्हारा कौन मनोरथ पूर्ण करूँ?' इसपर सीताजीने मुसकराकर कहा—'रघुनन्दन! मेरी इच्छा गङ्गा-तटपर रहनेवाले तपोनिष्ठ ऋषियोंके पवित्र आश्रमोंको देखनेकी है। मेरी बड़ी अभिलाषा है कि कम-से-कम एक रात मैं फल-मूल खानेवाले महर्षियोंके तपोवनोंमें निवास करूँ।' पुण्यकर्मा रघुनाथजीने उसके लिये अपनी स्वीकृति दे दी। वे बोले—'वैदेही! निश्चिन्त रहो, कल तुम निःसन्देह वहाँ जा सकोगी।' जानकीजीसे ऐसा कहकर वे मित्रोंके साथ बीचके खण्डमें चले गये।

वहाँ बैठनेपर विजय, मधुमत्त, कश्यप, मङ्गल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्त्र और सुमागध आदि हँसमुख लोग तरह-तरहकी विनोदपूर्ण बातें कहकर महाराज श्रीरामको प्रसन्न करने लगे। इस समय किसी कथाके प्रसङ्गसे श्रीरघुनाथजीने पूछा—'भद्र! आजकल राजधानी और राज्यमें किस बातकी चर्चा विशेषरूपसे होती है। नगर और राज्यके लोग मेरे, सीताके, भरतके और लक्ष्मणके विषयमें क्या कहते हैं तथा शत्रुघ्न और माता कैकेयीके विषयमें उनके क्या विचार हैं?' इसपर भद्रने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! पुरवासियोंमें आजकल अच्छी ही चर्चा होती है। अपनी राजधानीमें तो लोग अधिकतर, आपकी विजयका ही वर्णन करते हैं, जो आपको रावणके वधसे प्राप्त हुई है।'

भद्रके इस प्रकार कहनेपर श्रीरघुनाथजी बोले—'तुम जो कुछ बातें हों, वे सब-की-सब ठीक-ठीक कहो। पुरवासी-लोग क्या अच्छा कहते हैं और क्या बुरा? मैं सब बातें सुनकर जिन्हें वे अच्छी समझते हैं, उन्हें ग्रहण करूँगा और जिन्हें बुरी बताते हैं, उन्हें त्याग दूँगा। तुम विश्वास रखकर किसी भी प्रकारका भय या चिन्ता न करते हुए वे सब बातें सुना दो।' श्रीरामचन्द्रजीने जब यह कहा, तब भद्र हाथ जोड़कर बड़ी सावधानीसे मधुर वचनमें बोला—"राजन्! सुनिये; नगरके लोग चौपाल, बाजार, गली और बाग-बगीचोंमें आपके विषयमें जो भली-बुरी बातें कहते हैं, वे सब निवेदन करता हूँ। [ वे कहते हैं—] 'श्रीरामजीने समुद्रपर पुल बाँधकर तो बड़ा ही दुष्कर कार्य किया है। ऐसी बात तो पूर्वकालके देवता या दानवोंने भी नहीं सुनी होगी। रावण बड़ा दुर्जय था, उसे इन्होंने सारी सेना और वाहनोंके साथ नष्ट कर दिया तथा राक्षसोंसहित रीछ और वानरोंको भी अपने वशमें कर लिया; किन्तु ये रावणको मारकर सीताको ले आये और उनपर किसी भी प्रकारका दोष प्रकट न करके उन्हें घरमें रख लिया। इनके हृदयमें सीताके सम्भोगका सुख कैसा घर कर गया है! जिन्हें रावण बलपूर्वक गोदमें उठाकर ले गया, जो लङ्कामें ले जायी गयीं और अशोक-वाटिकामें राक्षसोंके अधीन होकर रहीं, उनको भी इन्होंने निन्दनीय नहीं समझा। अब हमलोगोंको भी स्त्रियोंकी ऐसी बातें सहनी पड़ेंगी; क्योंकि राजा जैसा करता है, प्रजा भी उसीका अनुकरण करने लगती है।' महाराज! सभी नगरों और प्रान्तोंमें लोग ऐसी ही तरह-तरहकी बातें कह रहे हैं।"

भद्रकी ये बातें सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अन्य सब मित्रोंसे भी पूछा—'बताओ, भद्रने जो कुछ कहा है वह आपलोगोंकी दृष्टिमें कहाँतक ठीक है?' इसपर सभीने पृथ्वीपर सिर रखकर श्रीरामको प्रणाम किया और एक स्वरसे कहा—'देव! निःसन्देह यह बात ऐसी ही है।' इस प्रकार सबके मुँहकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अपने सभी सखाओंको विदा कर दिया।

सखाओंको विदा करके श्रीरघुनाथजीने विचार कर अपना कर्त्तव्य निश्चित किया और फिर अपने समीपस्थ द्वारपालसे कहा—'शीघ्र ही सुमित्रानन्दन लक्ष्मण, महाभाग भरत और अजेय शत्रुघ्नको ले आओ।' भगवान् श्रीरामकी आज्ञा पाकर द्वारपालने प्रणाम किया और सीधा लक्ष्मणजीके महलमें पहुँचा। वहाँ हाथ जोड़कर जय-जयकार करते हुए बोला—'कुमार! शीघ्र पधारिये, महाराज आपसे मिलना चाहते हैं।' लक्ष्मणजीने कहा 'अच्छा' और फिर वे उसी समय रथपर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चढ़कर महाराज श्रीरामके महलकी ओर चल दिये। इसके पश्चात् द्वारपाल भरतजीके पास गया और हाथ जोड़कर जय-जयकार करते हुए विनयपूर्वक बोला—'महाराज आपको देखना चाहते हैं।' द्वारपालके मुँहसे भगवान् श्रीरामकी आज्ञा सुनकर भरत तुरंत ही आसनसे खड़े हो गये और पैदल ही रघुनाथजीके पास चल दिये। उन्हें जाते देखकर द्वारपाल बड़ी फुर्तीसे हाथ जोड़े शत्रुघ्नजीके पास पहुँचा और उनसे कहा—'रघुश्रेष्ठ! पधारिये, महाराज आपको देखना चाहते हैं। श्रीलक्ष्मणजी और परमयशस्वी भरतलालजी पहले ही वहाँके लिये पधार चुके हैं।' द्वारपालकी बात सुनकर शत्रुघ्नजी आसनसे उठे और पृथ्वीको सिर झुकाकर रघुनाथजीके पास चल दिये। द्वारपाल श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचा और हाथ जोड़कर उन्हें सभी भाइयोंके पधारनेकी सूचना दी। कुमारोंका आगमन सुनकर आप बोले—'तुम शीघ्र ही कुमारोंको मेरे पास ले आओ। मेरा जीवन इन्हींपर अवलम्बित है, ये मेरे प्यारे प्राण ही हैं।' महाराजकी आज्ञा पाकर कुमार श्वेत वस्त्र धारण किये हाथ जोड़े बड़ी सावधानी और विनयके साथ राजभवनमें आये। उन्होंने देखा कि श्रीमहाराजका मुख शोभाहीन कमलके समान मुरझाया हुआ है। तुरंत ही वे चरणोंमें सिर झुकाकर सावधानीसे एक ओर खड़े हो गये। भगवान् श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगाया और अपने हाथोंसे उठा-उठाकर आसनोंपर बैठाया। फिर उनसे कहा—'राजकुमारो! आप लोग मेरे सर्वस्व हैं, आप ही मेरे जीवन हैं और आपलोगोंके दिये हुए राज्यका ही मैं पालन करता हूँ। आप सभी शास्त्रज्ञ हैं और बुद्धिकी दृष्टिसे भी बहुत प्रामाणिक हैं। अतः आप सब लोग मिलकर मेरी एक बातका अनुमोदन करें।'

महाराज श्रीरामके इस प्रकार कहनेपर सभी भाई चौकन्ने हो गये, सभीका चित्त उद्विग्न हो गया कि न जाने आज महाराज क्या कहेंगे। इस प्रकार सब भाई उद्विग्नचित्त हुए बैठे थे कि इसी समय श्रीरामचन्द्रने उदास मुखसे कहा—"आप सब लोग मेरी बात सुनें, मनको इधर-उधर न ले जायँ। पुरवासियों और प्रान्तके लोगोंमें सीताजीके विषयमें बड़ा अपवाद फैला हुआ है। मेरे प्रति भी उनका बड़ा घृणापूर्ण भाव है। ये सब बातें मेरे कलेजेको काटे डालती हैं। मैंने इक्ष्वाकुवंशी महानुभावोंके कुलमें जन्म लिया है और सीता भी महात्मा जनकोंके पवित्र कुलमें उत्पन्न हुई हैं। लक्ष्मण! तुम तो यह जानते ही हो कि किस प्रकार रावण निर्जन दण्डकारण्यसे उन्हें हरकर ले गया था। उसको मैंने मार भी डाला। उसके बाद लङ्कामें ही सीताजीके विषयमें मेरे मनमें यह विचार हुआ था कि इनके इतने दिनोंतक यहाँ रह चुकनेपर मैं इन्हें राजधानीमें कैसे ले जा सकूँगा। लक्ष्मण! उस समय अपनी पवित्रताका परिचय देनेके लिये सीताने तुम्हारे सामने ही अग्निमें प्रवेश किया था और देवताओंकी सन्निधिमें स्वयं अग्निदेवने उन्हें निर्दोष बताया था। यही नहीं, आकाशचारी वायु, चन्द्रमा और सूर्यने भी देवता और ऋषियोंके सामने वही बात कही थी। स्वयं मेरी अन्तरात्मा भी यशस्विनी सीताको शुद्ध समझती है। इसीसे मैं इन्हें लेकर अयोध्या आया था।' परन्तु इस समय पुरवासियों और प्रान्तके लोगोंमें बड़ी निन्दा हो रही है। इससे मुझे बड़ा शोक हो रहा है। पुरुषश्रेष्ठो! मैं लोकनिन्दाके भयसे तो अपने प्राण भी त्याग सकता हूँ और आप सबको भी छोड़ सकता हूँ; फिर सीताको त्यागना कौन बड़ी बात है! अतः लक्ष्मण! कल सबेरे सुमन्त्रके रथपर चढ़कर और उसीपर सीताको भी चढ़ाकर गङ्गाजीके उस पार जाओ तथा तमसा-नदीके तीरपर जहाँ महर्षि वाल्मीकिका दिव्य आश्रम है, निर्जन वनमें तुम सीताको छोड़कर तुरंत लौट आओ। बस, जैसा मैं कहता हूँ वैसा ही करो; सीताके विषयमें मुझसे कोई दूसरी बात मत कहना। अब तुम जाओ, इस विषयमें कोई सोच-विचार मत करो। यदि इसमें तुम किसी भी प्रकारकी अड़चन डालोगे तो उससे मुझे बड़ी अप्रसन्नता होगी। मैं आपलोगोंको अपने चरणोंकी और जीवनकी शपथ दिलाता हूँ कि मेरे इस निर्णयके विरुद्ध आप न तो कुछ कहें और न किसी प्रकारकी प्रार्थना करें। यदि आप मेरा सम्मान करते हैं और मेरी आज्ञामें रहना चाहते हैं तो अब सीताको यहाँसे ले जायँ और मेरी आज्ञाका पालन करें। सीताने भी पहले मुझसे कहा था कि 'मैं गङ्गातटपर ऋषियोंके आश्रम देखना चाहती हूँ; अतः उनकी यह इच्छा पूरी करो।" इस प्रकार कहते-कहते श्रीरघुनाथजीके नेत्र आँसुओंसे भर गये और फिर अपने भाइयोंके साथ वे महलमें चले गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीताका वनवासके लिये विसर्जन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# लक्ष्मणजीका सीताजीको ले जाकर वनमें छोड़ना तथा मुनिवर वाल्मीकिका उन्हें अपने आश्रमपर ले आना

रात बीतनेपर दीनचित्त लक्ष्मणने उदास होकर सुमन्त्रसे कहा—'सारथे ! शीघ्र ही रथ लाओ। महाराजकी आज्ञासे मैं सीताजीको पुण्यकर्मा महर्षियोंके आश्रमोंपर ले जाऊँगा।' सुमन्त्रजी 'जो आज्ञा' कहकर तुरंत ही उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ एक रथ ले आये। उसपर बड़ा ही सुन्दर और सुखप्रद आसन बिछा हुआ था। फिर उन्होंने लक्ष्मणजीसे कहा—'प्रभो! रथ तैयार है; अब जो कुछ करना हो, कीजिये।' सुमन्त्रके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणजी राजमहलमें गये और सीताजीके पास जाकर बोले—'देवि ! आपने महाराजसे मुनियोंके आश्रमोंपर जानेकी इच्छा प्रकट की थी और महाराजने उसके लिये प्रबन्ध करनेका वचन दिया था; अतः अब महाराजकी आज्ञासे आप शीघ्र ही मेरे साथ गङ्गा-तीरपर ऋषियोंके पवित्र आश्रमोंमें चलें। मैं आपको मुनिजनसेवित वनोंमें ले चलूँगा।'

महात्मा लक्ष्मणजीके इस प्रकार कहनेपर सीताजी बड़ी प्रसन्न हुईं और चलनेके लिये तैयार हो गयीं। उन्होंने तरह-तरहके बहुमूल्य वस्त्र और रत्न आदि लेकर चलते हुए लक्ष्मणजी-से कहा—'ये सब बहुमूल्य आभूषण, वस्त्र और रत्न आदि मैं मुनिपत्नियोंको दूँगी।' लक्ष्मणजीने 'बहुत अच्छा' कहकर सीताजीको रथपर चढ़ाया और रघुनाथजीकी आज्ञाको ध्यानमें रखते हुए उस तेज घोड़ोंवाले रथपर चढ़कर चल दिये। तब सीताजीने उनसे कहा—'लक्ष्मण ! मुझे बहुत-से अपशकुन दिखायी दे रहे हैं। मेरी दायीं आँख फड़कती है, हृदय बेचैन-सा जान पड़ता है, मन घबरा रहा है, अधीरता बढ़ रही है और सारी पृथ्वी सूनी-सी जान पड़ती है। भ्रातृवत्सल लक्ष्मण ! तुम्हारे भाई सकुशल रहें, मेरी सब सासुएँ समानरूपसे सानन्द रहें तथा नगर और जनपदमें भी सब लोग सकुशल रहें।' सीताने हाथ जोड़कर देवताओंसे ऐसी प्रार्थना की। लक्ष्मणजीने भी सीताजीके अपशकुनोंका अर्थ समझते हुए उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया और कुम्हलाते हुए हृदयसे कहा—'कल्याण हो।'

रात्रिमें इन लोगोंने गोमती-तटपर एक आश्रममें विश्राम किया। दूसरे दिन उठकर लक्ष्मणजीने सूतसे कहा—'जल्दी ही रथ जोड़ो, आज मैं गङ्गाजल सिरपर चढ़ाऊँगा।' आज्ञा पाते ही सारथिने घोड़ोंको रथमें जोत दिया और फिर हाथ जोड़कर सीताजीसे कहा—'रथपर विराजिये।' सारथिके प्रार्थना करनेपर सीताजी रथपर सवार हुईं। इस प्रकार लक्ष्मण और सारथिके साथ सीताजी दोपहरके समय पापनाशिनी गङ्गाजीके तटपर पहुँचीं। गङ्गाजीकी धारा देखकर लक्ष्मणजी आतुर होकर जोर-जोरसे रोने लगे। उन्हें व्याकुल देखकर सीताजी बोलीं—'लक्ष्मण ! गङ्गातटपर आकर तुम रोने क्यों लगे ? मैं तो बहुत दिनोंसे यहाँ आनेके लिये उत्सुक थी। अब हर्षका समय आनेपर तुम मुझे दुखी क्यों कर रहे हो ? पुरुषश्रेष्ठ ! श्रीरामके पास तो तुम सदा ही रहते हो। अब उनसे दो दिनका बिछोह होनेपर ही इतने शोकाकुल हो गये। लक्ष्मण ! वे तो मुझे भी प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं; परन्तु देखो, मैं तो इस प्रकार शोकातुर नहीं हूँ। तुम ऐसी नादानी मत करो। मुझे गङ्गाके उस पार ले चलो और तपस्वियोंके दर्शन कराओ। मैं उन्हें वस्त्र और आभूषण दूँगी। फिर मुनियोंका यथायोग्य अभिवादन कर वहाँ एक रात ठहरकर हम अयोध्या लौट चलेंगे। कमलनयन श्रीरामके दर्शनोंके लिये तो मेरा मन भी उत्कण्ठित हो रहा है।'

सीताजीके ये वचन सुनकर लक्ष्मणजीने अपनी आँखें पोंछ लीं और नाविकोंको बुलाया। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज ! नाव तैयार है।' लक्ष्मणजीने उस विस्तृत और सुसज्जित नौकापर पहले सीताजीको चढ़ाया और फिर स्वयं चढ़े। उन्होंने सुमन्त्रको रथके साथ वहीं ठहरनेको कह दिया, तथा नाववालेसे कहा—'चलो।' गङ्गाके उस तटपर पहुँच-कर उन्होंने आँखोंमें आँसू भर लिये और सीतासे हाथ जोड़कर कहा—'सीते ! मेरे हृदयमें सबसे बड़ा काँटा यही खटक रहा है कि आज रघुनाथजीने बुद्धिमान् होकर भी मुझे वह काम सौंपा है, जिसके कारण लोकमें मेरी निन्दा होगी। इस समय तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। देवि ! आप प्रसन्न हों, मुझे दोष न दें।' यह कहकर और हाथ जोड़कर लक्ष्मणजी पृथ्वीपर गिर गये। लक्ष्मणजी रो रहे हैं और हाथ जोड़कर अपनी मृत्यु चाह रहे हैं—यह देखकर सीताजी बहुत घबरा गयीं और उन्होंने उनसे कहा—'लक्ष्मण ! क्या बात है ? मैं तो कुछ समझ नहीं रही हूँ। महाराज तो कुशलसे हैं न ? मैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तुम्हें महाराजकी ही शपथ देकर पूछती हूँ—जिस बातसे तुम्हें इतना सन्ताप हो रहा है, वह सब मुझसे सच-सच कहो। मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ।'

सीताजीके इस प्रकार प्रेरित करनेपर लक्ष्मणजी सिर झुकाकर गद्‌गद कण्ठसे बोले—'सीते! रघुनाथजीने सभामें आपके विषयमें नगर और राज्यमें फैला हुआ भयंकर अपवाद सुना। इससे उनका मन सन्तप्त हो उठा और वे मुझसे सब बातें कहकर महलमें चले गये। आप मेरे सामने निर्दोष प्रमाणित हो चुकी हैं, तो भी महाराजने लोकापवादसे डरकर आपको त्याग दिया है। आप कोई और बात न समझें। अब महाराजकी आज्ञासे और आपकी भी ऐसी ही इच्छा समझकर मैं आश्रमोंके पास ले जाकर आपको वहीं छोड़ दूँगा। यही श्रीगङ्गाजीके तटपर ब्रह्मर्षियोंका तपोवन है। यह बड़ा ही पवित्र और रमणीय है। आप विषाद न करें। यहाँ परमयशस्वी विप्रवर वाल्मीकिजी रहते हैं। वे मेरे पिता दशरथजीके घनिष्ठ मित्र हैं। उनके आश्रममें आप सुखपूर्वक निवास करें। आप रघुनाथजीको हृदयमें रखकर सर्वदा पातिव्रत्यका पालन करें। देवि! ऐसा करनेसे ही आपका परम कल्याण होगा।'*

लक्ष्मणजीके ये कठोर वचन सुनकर सीताजी विषादमें डूब गयीं और पृथ्वीपर गिर पड़ीं। दो घड़ीतक वे अचेत-सी रहीं। उनकी आँखें भर आयीं और फिर वे कातर कण्ठसे लक्ष्मणजीसे कहने लगीं—'लक्ष्मण! मैंने पूर्वजन्ममें ऐसा कौन-सा पाप किया था, किसका स्त्रीसे बिछोह कराया था, जो शुद्ध आचरणवाली होनेपर भी महाराज मुझे त्याग रहे हैं। सौम्य! यदि मुनिजन मुझसे पूछेंगे कि 'तुमने क्या अपराध किया था, किस कारणसे महात्मा श्रीरामने तुम्हें त्यागा है?' तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी? इस समय मैं गङ्गाजीमें डूबकर अपने प्राण भी नहीं त्याग सकती; क्योंकि ऐसा करनेसे मेरे पतिदेवका राजवंश नष्ट हो जायगा। किन्तु लक्ष्मण! तुम तो वैसा ही करो, जैसी महाराजने तुम्हें आज्ञा दी है। मुझ दुखियाको छोड़ जाओ। तुम्हें तो राजाज्ञाका ही पालन करना चाहिये। अब मेरी बात सुनो—'मेरी सब सासुओंको समानरूपसे हाथ जोड़कर और सिर नवाकर प्रणाम करना तथा महाराजसे और अन्य सबसे भी सिर झुकाकर मेरी कुशल कहना। महाराज धर्ममें सावधान रहने-वाले हैं, उनसे कहना—'रघुनन्दन! वास्तवमें तो आप जानते ही हैं कि सीता शुद्धचरित्रा है, सर्वदा ही आपके हितमें तत्पर रहती है और आपके प्रति प्रेम एवं भक्ति रखनेवाली है। आपने केवल लोकापवादसे डरकर ही मुझे त्यागा है; अतः आपकी जो निन्दा हो रही है, वह मुझे दूर करनी होगी; क्योंकि मेरे परम आश्रय तो आप ही हैं।' उनसे यह भी कहना कि 'आप धर्मपूर्वक बड़ी सावधानीसे पुरजनोंके साथ वैसा ही बर्ताव करें जैसा अपने भाइयोंके साथ करते हैं। पुरवासियोंके प्रति धर्मानुकूल आचरण करना ही आपका परम धर्म है और इसीसे आपको उत्तम यशकी प्राप्ति हो सकती है। पुरुषोत्तम! अपने शरीरके लिये तो मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है; अतः पुरवासियोंका मेरे विषयमें जैसा अपवाद है, वह भले ही बना रहे। स्त्रीके लिये तो पति ही देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है; इसलिये उसे प्राणोंकी बाजी लगाकर भी विशेषरूपसे पतिका प्रिय करना चाहिये।'* मेरी ओरसे ये सब बातें रघुनाथजीसे कहना और आज तुम भी मुझे देख जाओ, [ मैं इस समय गर्भवती हूँ ]।"

सीताजीके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणजी अत्यन्त कातर हो गये। उन्होंने पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया, किन्तु मुँहसे कोई शब्द न निकाल सके। फिर उनकी प्रदक्षिणा करके जोर-जोरसे रोते हुए कुछ देर सोचकर बोले—'साध्वि! मुझसे आप यह क्या कह रही हैं? इससे पहले तो मैंने कभी आपका रूप देखा नहीं, केवल चरणोंके ही दर्शन किये हैं। अब श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपस्थितिमें इस निर्जन वनमें मैं आपको कैसे देख सकता हूँ।' † यह कहकर उन्होंने सीताजीको पुनः प्रणाम किया और नावपर चढ़ गये। नावपर चढ़कर उन्होंने मल्लाहको उसे चलानेकी आज्ञा दी और वे

---

* पतिव्रतात्वमास्थाय रामं कृत्वा सदा हृदि।
श्रेयस्ते परमं देवि तथा कृत्वा भविष्यति॥ (४७।१८)

* यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात् कीर्तिरनुत्तमा॥
यत्तु पौरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात्।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ॥
यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन।
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः।
(४८।१५-१८)

† ··· दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे॥
कथमद्य हि पश्यामि रामेण रहितां वने।·····
(४८।२१-२२)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## सीताजीको वाल्मीकिका आश्वासन

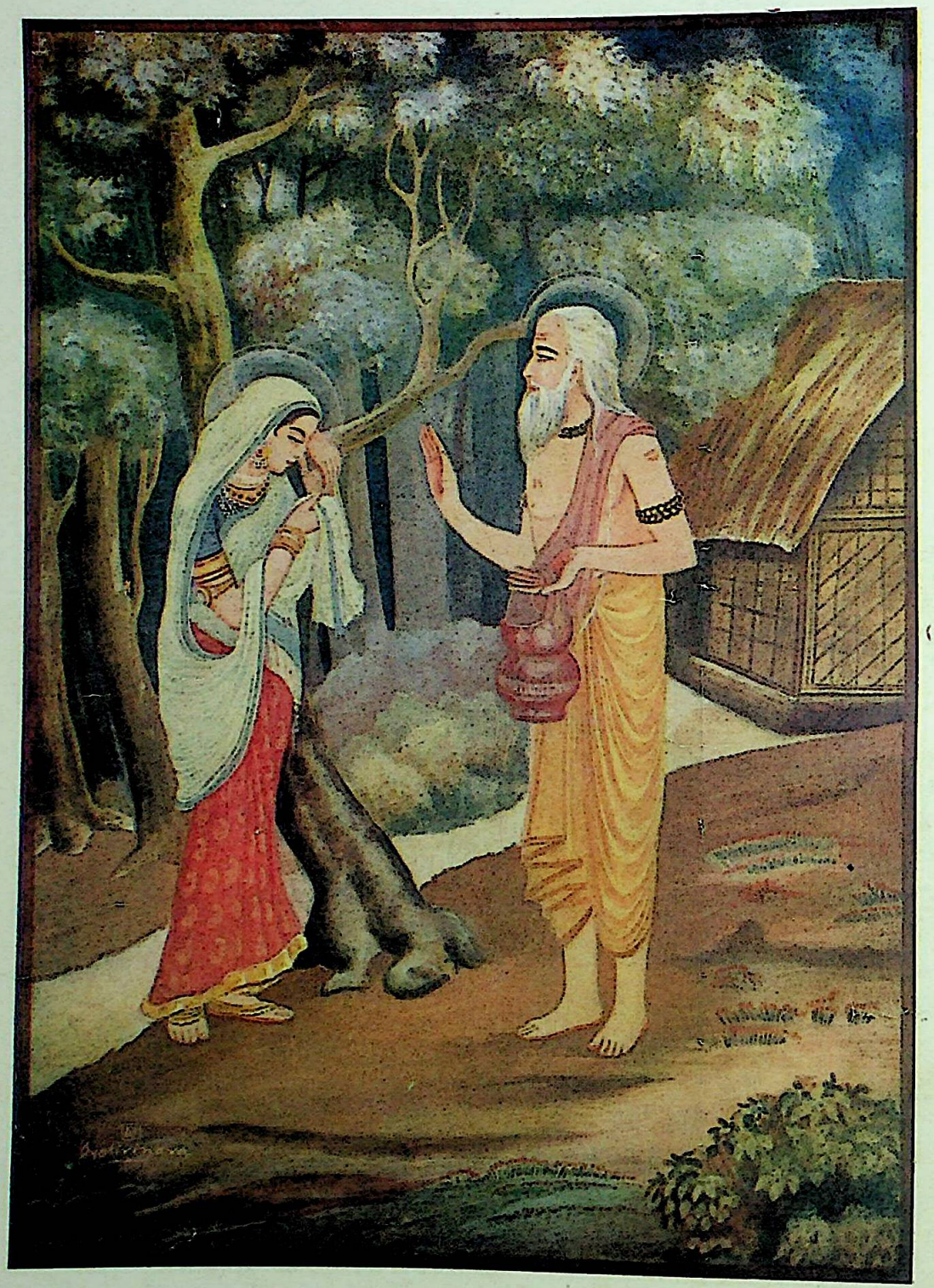

तां सीतां शोकभारार्त्तां वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः । उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा ॥
अपापां वेद्मि सीते ते तपोलब्धेन चक्षुषा । विस्रब्धा भव वैदेहि साम्प्रतं मयि वर्तसे ॥
(उत्तर० ४९ । ६, १०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोकके भारसे दबे हुए गङ्गाजीके उत्तरी तटपर पहुँचे। दुःखके कारण वे अचेत-से हो रहे थे, फिर भी जल्दीसे रथपर चढ़ गये और बार-बार घूम-घूमकर नदीके दूसरे तटपर अनाथकी तरह बिलखती हुई सीताको देखते चल दिये। सीताजीने जब देखा कि रथ और लक्ष्मणजी दूर निकल गये, तब वे एकदम घबराकर शोकमें डूब गयीं। अब उन्हें कोई भी अपना रक्षक नहीं दिखायी देता था, अतः वे अत्यन्त दुःखातुर होकर जोर-जोरसे रोने लगीं।

सीताजीको रोते देखकर कुछ मुनिकुमार तीक्ष्णबुद्धि वाल्मीकिजीके पास गये। उन्होंने मुनिके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें सीताके रोनेके विषयमें सब बातें सुनायीं। वे बोले—'भगवन्! आप स्वयं चलकर देख सकते हैं, हमने नदीके तीरपर एक दुखिया स्त्रीको रोते देखा है। उसे पहले हमने कभी नहीं देखा। वह साक्षात् लक्ष्मीजीके समान है। वह अत्यन्त शोकाकुल

है और अनाथकी तरह छटपटा रही है।' यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी सीताके पास गये और उन्हें अपने तेजसे आह्लादित करते हुए मधुर वाणीमें बोले—'पतिव्रते! तुम राजा दशरथकी पुत्रवधू, श्रीरामकी प्यारी महारानी और राजा जनककी पुत्री हो; मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। जिस समय तुम यहाँ आ रही थीं, तभी अपनी धर्म-समाधिके द्वारा मुझे पता लग गया था। मैंने स्वयं ही सारा कारण भी जान लिया है। त्रिलोकीमें जो कुछ हो रहा है, वह सब मुझे मालूम है। मैं तपोमयी दृष्टिसे जानता हूँ कि तुम निष्पाप हो। वैदेही! मेरे आश्रमके पास ही कुछ तपस्विनी स्त्रियाँ तप कर रही हैं, वे अपनी बच्चीके समान तुम्हारा सर्वदा पालन करेंगी। अब तुम सब प्रकारकी आशङ्का और चिन्ता छोड़ दो; अपने ही घरमें आयी हो, ऐसा समझकर विषाद मत करो।'

मुनिवर वाल्मीकिका यह अत्यन्त अद्भुत भाषण सुनकर सीताने उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'जो आज्ञा।' फिर मुनिवरके चलनेपर वे हाथ जोड़े उनके पीछे हो लीं। मुनि वाल्मीकिको सीताके साथ आते देख मुनिपत्नियाँ उनके पास आयीं और उनसे प्रसन्नता-पूर्वक बोलीं—'मुनिवर! आपका स्वागत है। हम सब आपको प्रणाम करती हैं। कहिये, हम आपकी क्या सेवा करें?' उनके ये वचन सुनकर वाल्मीकिजी बोले—'ये महामति श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी सीताजी आयी हैं। ये राजा दशरथकी पुत्रवधू, महाराज जनककी पुत्री और बड़ी पतिव्रता हैं। इनका कोई अपराध न होनेपर भी पतिदेवने इन्हें त्याग दिया है। अब मुझे ही इनका पालन करना है। अतः आप सब इनपर अत्यन्त स्नेहदृष्टि रखें। मेरे कहनेसे तथा बड़े कुलकी होनेसे ये आपलोगोंकी विशेष आदरणीया हैं।' इस प्रकार सीताको बार-बार मुनिपत्नियोंको सौंपकर महायशस्वी वाल्मीकिजी शिष्योंके साथ फिर अपने आश्रमपर लौट आये।

## सुमन्त्रका भृगुऋषिके शापकी कथा कहकर लक्ष्मणजीको शान्त करना, उनका रघुनाथजीके पास पहुँचना और रघुनाथजीका लक्ष्मणकी प्रशंसा करते हुए राजा नृगकी कथा सुनाकर पुनः राज्यकार्य सँभालनेके लिये अपनी इच्छा प्रकट करना

दीनचित्त लक्ष्मणजीने जब देखा कि मुनिवर वाल्मीकि सीताजीको अपने आश्रममें ले गये हैं, तब उन्हें बड़ा ही सन्ताप हुआ। उन्होंने राजमन्त्री और सारथि सुमन्त्रसे कहा—'सारथे! भला, रघुनाथजीको इससे बढ़कर दुःख क्या होगा कि उन्हें अपनी पवित्र आचरणवाली धर्मपत्नी सीताका परित्याग करना पड़ा। पहले श्रीरामजीको पिताके वचनसे


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौदह वर्षोंतक निर्जन वनमें रहना पड़ा है। अब उससे भी बढ़कर दुःखकी बात यह हुई कि उन्हें सीताजीको निर्वासित करना पड़ा। सीताजीके विषयमें हीन वचन बोलनेवाले पुरवासियोंके कारण ऐसा कीर्तिनाशक काम करके श्रीरामचन्द्रजीने कौन-सा धर्म कमाया ?' लक्ष्मणजीकी ऐसी ही अनेक प्रकारकी बातें सुनकर बुद्धिमान् सुमन्त्रने श्रद्धापूर्वक ये वचन कहे—'सुमित्रानन्दन ! सीताजीके लिये आप सन्तप्त न हों। यह बात ब्राह्मणोंने आपके पिताजीके सामने ही जान ली थी। उस समय दुर्वासाजीकी कही हुई यह बात आससे या भरतजीसे कहनेके लिये महाराजने मुझे मना कर दिया था। सौम्य ! यद्यपि यह बात मुझे आपके आगे कहनी तो नहीं चाहिये, तथापि यदि आप सुननेके लिये उत्सुक हों तो सुनिये। परन्तु कुमार भरत या शत्रुघ्नजीके आगे आप यह बात न कहें।' सुमन्त्रके ये गम्भीर अर्थवाले वचन सुनकर लक्ष्मणजी बोले—'सुमन्त्रजी ! जो सच्ची बात हो, वह अवश्य कहिये।'

तब महात्मा लक्ष्मणजीकी प्रेरणासे सुमन्त्रजी दुर्वासा-ऋषिकी कही हुई बात सुनाने लगे—"लक्ष्मणजी ! पहले अत्रिके पुत्र महामुनि दुर्वासाजीने वसिष्ठजीके पवित्र आश्रमपर वर्षा-ऋतुके चार महीने बिताये थे। एक बार आपके तेजस्वी पिताजी महात्मा वसिष्ठजीके दर्शनोंके लिये स्वयं ही उस आश्रमपर गये। वहाँ उन्होंने वसिष्ठजीकी बायीं ओर एक सूर्यके समान तेजस्वी महामुनिको बैठे देखा। तब राजाने दोनों ही मुनिवरोंका अत्यन्त विनयके साथ अभिवादन किया। उन्होंने आसन, पाद्य और फल-मूल आदिके द्वारा राजाका सत्कार किया तथा महाराज भी कुछ समय उनके साथ वहीं रहे। वहाँ दोपहरके समय एक जगह बैठनेपर उन महर्षियोंमें तरह-तरहकी मधुर कथाएँ हुआ करती थीं। एक दिन किसी कथाके प्रसङ्गसे ही महाराजने हाथ जोड़कर अत्रिनन्दन तपोधन दुर्वासाजीसे कहा—'भगवन् ! मेरा वंश कितने समयतक चलेगा ? मेरे रामकी कितनी आयु होगी तथा और सब पुत्रोंकी भी कितनी आयु है ? रामजीके जो पुत्र होंगे, उनकी आयु कितनी होगी ? कृपया मेरे वंशके विषयमें ये सब बातें बताइये।' दशरथजीके ये वचन सुनकर महातेजस्वी दुर्वासाजी कहने लगे—'राजन् ! सुनिये, एक पुरानी घटना है। एक बार देवासुर-संग्राममें असुरोंने देवताओंसे पीड़ित होकर भृगुपत्नीकी शरण ली और उससे अभय-दान पाकर वे वहाँ बेखटके रहने लगे। भृगुपत्नीने दैत्योंको आश्रय दिया है—यह देखकर देवेश्वर भगवान् विष्णुने अपने पैनी धारवाले चक्रसे भृगुपत्नीका सिर काट लिया। अपनी पत्नीका वध हुआ देख भृगुजीने कुपित होकर विष्णुभगवान्‌को शाप दिया—'जनार्दन ! मेरी स्त्री मारने-योग्य नहीं थी, फिर भी तुमने उसे मारा है; इसलिये तुम्हें मानवलोकमें जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ तुम अनेकों वर्षोंतक पत्नीका वियोग सहोगे।' किन्तु फिर इस प्रकार शाप देनेके कारण उनके चित्तको बड़ा कष्ट हुआ और वे विष्णुभगवान्‌की ही आराधना करने लगे। तब भक्तवत्सल भगवान्‌ने उनके तपसे प्रसन्न होकर कहा—'लोकोंका प्रिय करनेके उद्देश्यसे मैं तुम्हारे शापको ग्रहण करता हूँ।'

"इस प्रकार महातेजस्वी भगवान् विष्णुको भृगुऋषिका शाप हुआ था। इस समय वे ही तीनों लोकोंमें 'राम' नामसे विख्यात आपके पुत्र हुए हैं। श्रीरामचन्द्रजी बहुत समयतक अयोध्याका राज्य करेंगे। उनके अनुयायी भी बहुत सुखी और धन-धान्य-सम्पन्न रहेंगे। वे यहाँ ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके फिर ब्रह्मलोकको जायँगे। वे बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले अश्वमेध यज्ञ करेंगे तथा अनेकों राजवंशोंको स्थापित करेंगे। सीताजीके गर्भसे उनके दो पुत्र होंगे।" ये सब बातें कहकर महामुनि दुर्वासाजी चुप हो गये। उनके चुप हो जानेपर महाराज भी दोनों मुनीश्वरोंको प्रणाम करके अयोध्यामें लौट आये। इस प्रकार दुर्वासा मुनिकी कही हुई ये सब बातें मैंने उस समय सुनी थीं और यह समझकर कि ये असत्य नहीं हो सकतीं इन्हें अपने हृदयमें ही रख लिया था—किसीसे कहा नहीं था। अतः जैसा दुर्वासाजीका कथन है, उससे यही अनुमान होता है कि रघुनाथजी सीताजीके पुत्रोंका अभिषेक अयोध्यामें न करके किसी दूसरी जगह करेंगे; अतः ऐसा ही विधान होनेके कारण रघुनाथजी या सीताजीके लिये आपको दुखी नहीं होना चाहिये, आप धैर्य धारण करें।"

सूतके ये अद्भुत वचन सुनकर लक्ष्मणजीको बड़ा ही हर्ष हुआ और वे 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' कहने लगे। रास्तेमें इसी प्रकार बातें करते-करते उन्हें सूर्यास्त हो गया, अतः उन्होंने केशिनी नदीके तीरपर रात्रि बितायी। रातभर वहाँ रहकर प्रातःकाल होनेपर लक्ष्मणजी आगे बढ़े तथा दोपहरके समय अयोध्यापुरीमें पहुँचे। वहाँ राजमहलके दरवाजेपर पहुँचकर वे रथसे उतरे और सिर नीचा किये बिना रोक-टोक भीतर चले गये। रघुनाथजी उदास हुए एक सिंहासनपर विराजमान थे। लक्ष्मणजीने खिन्न चित्तसे उनके चरण पकड़े

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


और हाथ जोड़कर कातर वाणीसे कहा—'महाराजकी आज्ञासे मैं सीताजीको गङ्गा-तटपर महर्षि वाल्मीकिके पवित्र आश्रममें छोड़ आया हूँ। अब पुनः आपकी चरण-सेवाके लिये उपस्थित हूँ। पुरुषसिंह! आप शोक न करें, कालकी ऐसी ही गति है। आप-जैसे बुद्धिमान् और मनस्वी लोग शोक नहीं किया करते। संसारमें जितने सञ्चय हैं, उनका अन्त क्षयमें ही होता है; इसी प्रकार उत्थानका अन्त पतन, संयोगका अन्त वियोग और जीवनका अन्त मरण है। अतः पुत्र, स्त्री, मित्र और धनमें विशेष आसक्ति नहीं करनी चाहिये; क्योंकि इनका वियोग निश्चित है।* रघुनन्दन! आप आत्मासे आत्मा और मनसे मनको तथा सम्पूर्ण लोकोंको भी संयत रखनेमें समर्थ हैं; फिर अपने शोकको काबूमें करना आपके लिये कौन बड़ी बात है।'

लक्ष्मणजीके ये अत्यन्त अद्भुत वचन सुनकर श्रीरघुनाथजी बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—"सौम्य! तुम बड़े बुद्धिमान् हो; तुम्हारे समान अपने बड़े भाईके मनोभावोंका अनुसरण करनेवाला भाई, विशेषतः इस समय, मिलना कठिन है। शुभलक्षण! अब मेरे मनमें जो बात है, वह सुनो और सुनकर वैसा ही करो। मुझे पुरवासियोंका काम किये बिना चार दिन बीत चुके हैं, यह बात मेरे हृदयमें खटक रही है; अतः पुरुषश्रेष्ठ! तुम प्रजा, पुरोहितजी, मन्त्रिवर्ग तथा जिन स्त्री-पुरुषोंका कोई कार्य हो, उन सबको बुलाओ। जो राजा नित्यप्रति पुरवासियोंके कार्य नहीं करता, वह निःसन्देह घोर नरकमें पड़ता है। सुना जाता है कि पहले नृग नामका एक बड़ा ही यशस्वी, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी और पवित्र विचारोंवाला राजा था। एक बार उसने पुष्करक्षेत्रमें सुवर्णसे विभूषित बछड़ोंवाली एक करोड़ गौएँ ब्राह्मणोंको दान कीं। संयोगसे उनमेंसे उञ्छवृत्तिवाले किसी ब्राह्मणको दान की हुई एक बछड़ेवाली गाय अन्य गौओंके साथ चली गयी। बेचारा भूखा ब्राह्मण उस गायको सारे राज्यमें जहाँ-तहाँ ढूँढ़ता फिरा; परन्तु कई वर्षोंतक खोज करनेपर भी वह उसे दिखायी न दी। अन्तमें कनखल पहुँचनेपर उसने अपनी गाय एक ब्राह्मणके घरमें देखी। ब्राह्मणने अपने रखे हुए 'शबला' नामसे उसे पुकारा। गौने वह पूर्वपरिचित स्वर सुना और उस स्वरको पहचानकर वह उसके पीछे हो ली। जो ब्राह्मण उस गौका पालन कर रहा था, वह भी जल्दीसे उसके पीछे-पीछे चल दिया और उस ब्राह्मणसे जाकर कहा कि 'यह गौ तो मेरी है। मुझे नृपश्रेष्ठ नृगने यह दानके रूपमें दी थी।' फिर तो उन दोनों ब्राह्मणोंमें बहुत अधिक विवाद होने लगा। अन्तमें वे दोनों लड़ते-झगड़ते दानकर्ता नृगके पास गये; परन्तु वे राजमहलके दरवाजेतक पहुँचकर भी राजाके समीप जानेकी आज्ञा नहीं प्राप्त कर सके। उन्हें वहाँ रहते कई दिन-रात बीत गये। इससे उनका क्रोध बहुत बढ़ गया और उन दोनोंने कुपित होकर ये कठोर शब्द कहे—'हम कार्यार्थियोंका कार्य करनेके लिये तुम हमें दर्शन नहीं दे रहे हो, इसलिये तुम सब प्राणियोंसे छिपकर रहनेवाले गिरगिट बनोगे और सैकड़ों-हजारों वर्षोंतक गड्ढेमें पड़े रहोगे। कलियुग आरम्भ होनेके पहले पृथ्वीका भार उतारनेके लिये इस लोकमें स्वयं विष्णुभगवान् 'वासुदेव' (श्रीकृष्ण) नामसे अवतीर्ण होंगे। वे ही तुम्हारा उद्धार करेंगे। इतने समयमें तुम्हारे इस पापका प्रायश्चित्त हो जायगा।' इस प्रकार शाप देकर वे दोनों ब्राह्मण शान्त हो गये और वह गाय उन्होंने किसी ब्राह्मणको दे दी। अब उस भयंकर शापको वह राजा भोग रहा है। अतः जिनका कोई काम हो, उनकी उपेक्षा करना राजाओंके लिये बड़ी बुराईकी बात है; इसलिये कार्यार्थी लोगोंको शीघ्र ही मेरे सामने पहुँचानेकी व्यवस्था करो।"

## ऋषियोंकी प्रेरणासे श्रीरामचन्द्रजीका शत्रुघ्नको लवणासुरके वधके लिये भेजना, रास्तेमें शत्रुघ्नका वाल्मीकिजीके स्थानपर ठहरना तथा उसी रातमें कुश-लवका जन्म होना

श्रीराम और लक्ष्मण इसी प्रकार बात-चीत कर रहे थे कि रात हो गयी। वसन्त-ऋतुका समय था, इसलिये न विशेष सर्दी थी न गर्मी। दूसरे दिन स्वच्छ प्रभात हुआ। श्रीरघुनाथजी प्रातःकृत्यसे निवृत्त हो पुरवासियोंके

* सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः। संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥
तस्मात् पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च। नातिप्रसङ्गः कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवम्॥ (५२। ११-१२)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कार्य करनेके लिये बाहर निकले। उसी समय सुमन्त्रने आकर कहा—'रघुनन्दन ! राजद्वारपर भृगुपुत्र च्यवन तथा कुछ अन्य तपस्वी खड़े हैं। वे यमुना-तटपर रहनेवाले हैं और आपके दर्शनोंके लिये जल्दी कर रहे हैं।' धर्मात्मा श्रीराम बोले—'सुमन्त्रजी ! उन्हें जल्दी ही भीतर बुलवाइये।' तब द्वारपाल उन परमतेजस्वी महर्षियोंको भीतर ले गया। वे सौसे भी अधिक थे। उन्होंने समस्त तीर्थोंके जलसे भरे हुए घड़े और फल-मूल आदि श्रीरामचन्द्रजीको भेंट किये और श्रीरघुनाथजीने उन्हें बड़े प्रेमसे स्वीकार किया। फिर उन्होंने उन महामुनियोंसे कहा—'महात्माओ ! ये आसन हैं, इनपर आप यथायोग्य विराज जाइये।' यह सुनकर सभी महर्षिगण सोनेके सुन्दर आसनोंपर बैठ गये। तब श्रीरामचन्द्रने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे कहा—'आपलोगोंका शुभागमन कैसे हुआ ? आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? मैं प्रसन्नतापूर्वक महर्षियोंकी सभी इच्छाएँ पूर्ण करनेको तैयार हूँ; मैं आपसे सच कहता हूँ, मेरा यह सारा राज्य और जीवन ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये ही है।'

रघुनाथजीके ये वचन सुनकर उन यमुनातीरवासी सभी महर्षियोंने उनकी एक स्वरसे प्रशंसा की और अत्यन्त हर्षके साथ कहा—'पुरुषोत्तम ! ये बातें आपके ही योग्य हैं। दूसरे अनेकों राजा तो परम पराक्रमी और बलवान् होनेपर भी एक बार प्रतिज्ञा कर चुकनेके बाद भी इस कामकी कठिनता देखकर पीछे हट गये हैं। परन्तु आपने तो हमारे आनेका कारण जाने बिना ही केवल ब्राह्मणोंके प्रति आदरका भाव होनेसे हमारा काम करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली है; इसलिये आप अवश्य यह काम कर सकेंगे। आप ही ऋषियोंको महान् भयसे बचानेमें समर्थ हैं।'

ऋषियोंके इस प्रकार कहनेपर श्रीरघुनाथजी बोले—'मुनिगण ! कहिये न, क्या काम है ? अब आप भयकी तो कोई आशङ्का ही न करें।' इसपर भृगुवंशी महर्षि च्यवन बोले—'राजन् ! पहले सत्ययुगमें एक बड़ा बुद्धिमान् दैत्य था। वह लोलाका ज्येष्ठ पुत्र था, उसका नाम था मधु। वह बड़ा ही ब्राह्मणभक्त और शरणागतवत्सल था, उसकी बुद्धि स्थिर थी। अत्यन्त उदार स्वभाववाले देवताओंके साथ भी उसकी गहरी मित्रता थी। मधु बड़ा ही पराक्रमी और धर्मनिष्ठ था; उसने भगवान् शिवकी बड़ी पूजा की, जिससे महादेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने त्रिशूलसे एक चमचमाता हुआ शूल प्रकट करके उसे मधुको दिया। फिर इस प्रकार कहा—'तुमने मुझे प्रसन्न करनेवाला यह बड़ा अनुपम धर्म किया है; अतः मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें यह उत्तम अस्त्र देता हूँ। जबतक तुम देवता और ब्राह्मणोंसे विरोध नहीं करोगे तबतक तुम्हारा यह शूल बना रहेगा, नहीं तो यह नष्ट हो जायगा। जो पुरुष निःशङ्क होकर तुम्हारे सामने युद्ध करनेके लिये आयेगा, उसे यह शूल भस्म करके फिर तुम्हारे ही हाथमें लौट आयेगा।' भगवान् रुद्रसे ऐसा वर पाकर उस महान् असुरने उन्हें प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! आप समस्त देवताओंके स्वामी हैं; अतः मेरी इच्छा है कि यह शूल मेरे वंशधरोंके पास भी रहे।' इसपर सर्वभूतपति श्रीमहादेवजीने कहा—'ऐसा तो नहीं हो सकता; किन्तु मुझे प्रसन्न जानकर तुमने जो बात कही है, वह भी विफल नहीं होनी चाहिये। इसलिये तुम्हारे एक पुत्रके पास यह शूल रहेगा और जबतक यह उसके हाथमें रहेगा, तबतक उसे कोई भी प्राणी नहीं मार सकेगा।''

''महादेवजीसे यह अद्भुत वर पाकर मधुने एक बड़ा ही तेजस्वी भवन तैयार कराया। उसकी पत्नी महाभागा कुम्भीनसी थी, जिसने विश्वावसुके द्वारा अनलाके गर्भसे जन्म लिया था। उसका पुत्र लवण है। वह बड़ा ही पराक्रमी और क्रूर प्रकृतिका है। उस दुष्टने बचपनसे ही पापाचरण किये हैं। पुत्रको ऐसी दुष्ट प्रकृतिका देखकर मधु मन-ही-मन कुढ़ता रहता था। अन्तमें वह उस देशको छोड़कर समुद्रमें रहनेके लिये चला गया। चलते समय वह शूल उसने लवणको दे दिया और उसे वरदानकी बात भी बता दी। अब वह दुष्ट उस शूलके प्रभावसे अपनी दुष्टताके कारण तीनों लोकोंको और विशेषतः तपस्वियोंको बहुत दुःख पहुँचाता है। बेचारे भयभीत ऋषि अनेकों राजाओंसे अभयकी भिक्षा माँग चुके हैं, परन्तु अभीतक उन्हें कोई भी रक्षक नहीं मिला। आपने सेनाके साथ रावणका संहार किया था—यह सुनकर हम आपके पास आये हैं। पृथ्वीमें और कोई हमें अपना रक्षक दिखायी नहीं देता। हमलोग लवणके भयसे पीड़ित हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये। श्रीरामजी ! इस प्रकार हमारे सामने जो भयका कारण उपस्थित हो गया है, वह हमने आपके आगे निवेदन कर दिया। आप इसे दूर करनेमें समर्थ हैं, अतः आप हमारी यह अभिलाषा पूर्ण करें।''

तब रघुनाथजी हाथ जोड़कर उन ऋषियोंसे बोले—'वह लवण खाता क्या है ? उसके रहने-सहनेका ढंग क्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है और किस स्थानपर वह रहता है ?' ऋषियोंने उसके विषयमें सब बातें कह सुनायीं—'उसका आहार तो सभी जीव हैं, तथापि अधिकतर वह तपस्वियोंको खाता है। उसका रहन-सहन बड़ा भीषण है और वह मधुवनमें रहता है। वह प्रतिदिन सहस्रों सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी और मनुष्योंको मारकर खा जाता तथा बीच-बीचमें वह अन्यान्य जीवोंको भी खाता रहता है।' इसपर रघुनाथजीने उन महर्षियोंसे कहा—'आपलोग भय छोड़ दें, मैं उस राक्षसको अवश्य मरवा डालूँगा।' इस प्रकार मुनियोंसे प्रतिज्ञा करके उन्होंने अपने सब भाइयोंसे एक साथ कहा—'लवणको कौन वीर मारेगा ? उसे किसके हिस्सेमें रखा जाय ? उसे महाबाहु भरत मारेंगे या शत्रुघ्न ?' रघुनाथजीके इस प्रकार कहनेपर भरतजी बोले—'उसे मैं मारूँगा, कृपया मुझे यह काम सौंपा जाय।' भरतजीके ये धीरता और वीरतापूर्ण शब्द सुनकर शत्रुघ्नजी सुवर्णसिंहासन छोड़कर खड़े हुए और महाराज श्रीरामको प्रणाम करके बोले—'रघुनन्दन! मझले भैया तो अनेकों कार्य कर चुके हैं। पिछले दिनोंमें जब अयोध्यापुरी आर्यचरणोंसे शून्य थी, तब इन्होंने ही इसकी व्यवस्था की थी। उन दिनों ये नन्दिग्राममें बड़ी दुःखमयी शय्यापर शयन करते थे, फल-मूलसे निर्वाह करते थे और जटा तथा चीरवस्त्र धारण किये रहते थे। ऐसे-ऐसे दुःख उठा चुकनेपर अब इस सेवकके रहते इन्हें और कष्ट न दिया जाय।' शत्रुघ्नके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी बोले—'शत्रुघ्न ! अच्छी बात है, तो तुम्हीं मेरी इस आज्ञाका पालन करो। मैं मधुके सुन्दर नगरमें ही तुम्हारा राज्याभिषेक भी कर दूँगा। यदि तुम ऐसा समझते हो तो भरतको यहीं रहने दो। तुम स्वयं शूरवीर, विद्वान् और राज्य स्थापित करनेमें समर्थ हो। वहाँकी राजधानी मधुरा (मथुरा) यमुनाके तटपर है और उधरके गाँव भी सुन्दर हैं। देखो, जो वीर किसी राज्यमें एक राजवंशका उच्छेद करके फिर दूसरे राजाको स्थापित नहीं करता, वह नरकमें जाता है। अतः तुम मधुके पुत्र पापी लवणासुरको मारकर धर्मपूर्वक वहाँका राज्य-शासन करो। यदि तुम मेरी बात मानो तो मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसके विरोधमें कोई उत्तर न देना। बालकोंको अवश्य ही अपने बड़ोंकी आज्ञाका पालन करना चाहिये।'

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर शत्रुघ्नजी बड़े लज्जित हुए। फिर वे धीरे-धीरे बोले—'राजन्! इस बातमें तो मुझे अधर्म जान पड़ता है। भला, बड़े भाइयोंके रहते छोटेका अभिषेक कैसे किया जा सकता है। फिर भी आपकी आज्ञाका पालन तो मुझे अवश्य करना चाहिये; क्योंकि मैंने आपसे तथा वेदोंमें भी यह बात सुनी है। वास्तवमें तो मझले भैयाके प्रतिज्ञा कर चुकनेपर मुझे बोलना ही नहीं चाहिये था। मेरे मुँहसे ये बड़े ही अनुचित शब्द निकल गये कि 'लवणको मैं मारूँगा।' पुरुषोत्तम ! उन अनुचित शब्दोंके कारण ही मेरी यह दुर्गति हो रही है। बड़े भाईके बोलनेपर मुझे कुछ उत्तर भी नहीं देना चाहिये। ऐसा करना भी अधर्मपूर्ण और परलोकमें दुःख देनेवाला होगा। अतः अब मैं आपकी आज्ञा होनेपर कोई दूसरा उत्तर भी नहीं दे सकता। ऐसा न हो कि उस दूसरी बातके बदले भी मुझे दण्ड भोगना पड़े। मैं आपकी इच्छाके अनुसार ही कार्य करूँगा; किन्तु इससे मुझे जो अधर्म हो, उसका नाश आप करें।'' महात्मा शत्रुघ्नके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर भरत और लक्ष्मणसे कहा—'तुम दोनों राज्याभिषेककी सामग्री ले आओ, मैं पुरुषश्रेष्ठ शत्रुघ्नका आज ही राज्याभिषेक करूँगा। मेरी आज्ञासे पुरोहित, वैदिक ऋत्विज् और मन्त्रीगण—सभीको बुलाओ।'

महाराजकी आज्ञा पाकर महारथी भरत और लक्ष्मणने वैसा ही किया। वे पुरोहितजीके साथ अभिषेककी सामग्री लेकर राजभवनमें आये। उनके साथ ही अनेकों राजा और ब्राह्मण-लोग भी वहाँ आ पहुँचे। फिर महात्मा शत्रुघ्नजीका अभिषेक किया गया। इससे रघुनाथजी तथा समस्त पुरवासियोंको बड़ा हर्ष हुआ। शत्रुघ्नजी राज्याभिषिक्त होकर सूर्यके समान सुशोभित हुए। इस समय कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी तथा राजभवनकी अन्य राजमहिलाओंने सब प्रकारके माङ्गलिक कार्य किये। शत्रुघ्नजीका अभिषेक होनेसे यमुना-तीरवासी ऋषियोंको निश्चय हो गया कि अब लवणासुर मारा गया। इसके पश्चात् रघुनाथजीने शत्रुघ्नको गोदमें लेकर उनका तेज बढ़ाते हुए मधुर वाणीमें कहा—'सौम्य शत्रुघ्न ! यह दिव्य बाण अमोघ है, इसके द्वारा तुम लवणासुरको मार डालोगे। जिस समय भगवान् विष्णु प्रलयकालीन समुद्रमें शयन करते थे और उन्हें देवता या असुर कोई भी नहीं देख पाता था, उस समय सबसे अदृश्य रहकर ही उन्होंने दुरात्मा मधु और कैटभका वध करनेके लिये इसकी रचना की थी; क्योंकि उस समय वे तीनों लोकोंकी सृष्टि करना चाहते थे और मधु, कैटभ तथा अन्य सब राक्षस उसमें विघ्न उपस्थित कर रहे थे। मैंने रावणका वध करनेके लिये भी इस बाणका प्रयोग नहीं किया, क्योंकि मुझे इसके द्वारा बहुत-से प्राणियोंका नाश हो जानेकी आशङ्का थी। लवणके पास जो महादेवजीका दिया हुआ मधुका दिव्य और महान् शूल है, उसे वह महलमें रखता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है और बार-बार उसका पूजन किया करता है। उसे महलमें ही छोड़कर वह दिशा-विदिशाओंमें जाकर आहार बटोरता है। जब कभी कोई पुरुष उसे युद्धकी इच्छासे ललकारता है, तब उस शूलको लेकर ही वह उसे भस्म कर देता है। अतः तुम जिस समय उसके पास वह शूल न हो और वह नगरमें भी न पहुँचा हो, उसी समय नगरके द्वारपर पहुँचकर शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो उसकी प्रतीक्षा करो। यदि तुम भवनमें घुसनेसे पहले ही उस राक्षसको युद्धके लिये ललकारोगे तो अवश्य मार सकोगे; नहीं तो फिर वह अवध्य हो जायगा। यह मैंने तुम्हें उस शूलसे बचनेका उपाय बता दिया; क्योंकि भगवान् शिवके विधानको पलटना बड़ा कठिन काम है।'

शत्रुघ्नजीको इस प्रकार समझाकर और उनकी प्रशंसा करके श्रीरामचन्द्रजीने फिर कहा—'पुरुषश्रेष्ठ! ये चार हजार घोड़े, दो हजार रथ, सौ हाथी और रास्तेमें तरह-तरहके सामानकी दूकानें लगानेवाले बनिये लोग तुम्हारे सथ जायँगे। तुम भी दस लाख सुवर्ण-मुद्रा लेकर जाओ। इस प्रकार पर्याप्त धन और सवारियाँ अपने साथ रखो। इस सेनाका भलीभाँति भरण-पोषण किया गया है; यह हर्ष तथा उत्साहसे पूर्ण, सन्तुष्ट और आज्ञा-के अधीन रहनेवाली है। इसे मधुर भाषणसे और धन देकर प्रसन्न रखना। तुम इस प्रकार जाना, जिससे लवणासुरको यह सन्देह न हो कि ये युद्ध करनेके लिये आये हैं। जब ग्रीष्म-ऋतु निकल जाय और वर्षा होने लगे, उस समय तुम उसका वध करना; क्योंकि उस दुष्टके नाशका वही समय है। सैनिकोंको तुम महर्षियोंके साथ जाने दो, जिससे ग्रीष्मके अन्तमें ये गङ्गाजी-को पार कर लें। फिर सेनाको वहीं नदीके तीरपर छोड़कर तुम स्वयं धनुष लेकर आगे जाना।' श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर शत्रुघ्नजीने अपने प्रधान सेनापतियोंको बुलाया और उनसे कहा—'देखो—मार्गमें जहाँ-जहाँ डेरा डालना है, उन पड़ावोंकी सूची तैयार कर दी गयी है। इसके अनुसार ही तुम्हें ठहरना चाहिये, जिससे किसीको कष्ट न हो।' सेनापतियोंको इस प्रकार समझाकर उन्होंने सेनाको विदा कर दिया।

इसके पश्चात् वे एक महीनेतक अयोध्यामें रहे। फिर [ जब चलनेको हुए तो ] उन्होंने कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीको प्रणाम किया, भगवान् श्रीरामकी परिक्रमा करके उन्हें सिर नवाया तथा लक्ष्मण, भरत और पुरोहित वसिष्ठजीको भी हाथ जोड़कर प्रणाम किया। इसके बाद रघुनाथजीकी आज्ञा लेकर वे वहाँसे चले। रास्तेमें दो रात ठहरकर वे महर्षि वाल्मीकिके पवित्र आश्रमपर पहुँचे। उन्होंने मुनिवर-को प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैं रघुनाथजीके कामसे इधर आया हूँ; आज रातको यहाँ ठहरना चाहता हूँ, कल सबेरे ही पश्चिमकी ओर चला जाऊँगा।' शत्रुघ्नजीके वचन सुनकर महर्षि वाल्मीकिने हँसकर कहा—'महाभाग! आपका स्वागत है, रघुवंशियोंका तो यह अपना ही आश्रम है। आप निःशङ्क होकर मेरी ओरसे आसन, पाद्य और अर्घ्य स्वीकार करें।' इस प्रकार सत्कार ग्रहण करके शत्रुघ्नजीने फल-मूल आदिका भोजन किया, इससे उन्हें बड़ी तृप्ति हुई।

दैवयोगसे जिस रातमें शत्रुघ्नजी वाल्मीकि मुनिकी पर्णशालामें टिके थे, उसी रात सीताजीके दो पुत्र उत्पन्न हुए। आधी रातके समय कुछ मुनिकुमारोंने वाल्मीकिजीको यह शुभ समाचार सुनाया। वे बोले—'भगवन्! श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नीने दो पुत्रोंको जन्म दिया है, अतः आप उनकी प्रेतबाधा निवृत्त करनेवाली रक्षा करें।' मुनिकुमारोंकी बात सुनकर मुनि वाल्मीकि उस स्थानपर गये और बालचन्द्रके समान दो तेजस्वी बालकोंको देखकर बड़े हर्षित हुए। उन्होंने एक कुशाओंका मूठा और उनके लव[1] लेकर उनके द्वारा उन दोनों बालकोंकी भूतबाधा निवारण करनेके लिये रक्षाकी व्यवस्था की और कहा—'इनमें जो बड़ा है, उसका मार्जन

१. काटे हुए कुशोंके ऊपरके भागको 'कुश' कहते हैं और नीचेके भागको 'लव'।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धा स्त्रियोंको मन्त्रशुद्ध कुशोंसे करना चाहिये, इससे उसका नाम 'कुश' होगा तथा जो छोटा है, उसका मार्जन लवोंसे होना चाहिये, अतः उसका नाम 'लव' होगा। इस प्रकार ये दोनों बालक मेरे रखे हुए 'कुश' और 'लव' नामोंसे विख्यात होंगे।' निष्पाप वृद्धा स्त्रियोंने मुनिके हाथसे रक्षाके साधनभूत कुशाओंके मूँठे ले लिये और उनके द्वारा बालकोंको सुरक्षित किया। जिस समय वे बालकोंकी रक्षा कर रही थीं, शत्रुघ्नजीके कानोंमें आधी रातके समय श्रीराम और सीताके नाम, गोत्र तथा दो बालक होनेकी बात पड़ी। वे उसी समय पर्णशालामें गये और बोले—'माताजी! बड़े सौभाग्यकी बात है।' फिर तो उन्होंने वह श्रावणकी रात हर्षके कारण बात-की-बातमें बिता दी। प्रातःकाल होनेपर उन्होंने पूर्वाह्णके कृत्य किये और मुनिवर वाल्मीकिसे आज्ञा ले पश्चिमकी ओर चल दिये। यमुना-तीरतक पहुँचनेसे पहले उन्होंने रास्तेमें सात रात मुनियोंके आश्रमोंपर निवास किया। वहाँ पहुँचकर भी वे च्यवन आदि मुनियोंके साथ तरह-तरहकी पवित्र कथाएँ कहते-सुनते निवास करते रहे।

## शत्रुघ्नजीका महर्षि च्यवनके मुखसे लवणासुरके बलका वर्णन सुनना तथा उसके साथ युद्ध करके उसे मारना

एक दिन रात्रिके समय शत्रुघ्नजीने महर्षि च्यवनसे लवणासुर और शूलके बलके विषयमें प्रश्न किया और यह भी पूछा कि उस प्रचण्ड शूलके द्वारा उसने द्वन्द्वयुद्धमें किन-किनका वध किया है। महात्मा शत्रुघ्नजीके ये वचन सुनकर महातेजस्वी च्यवन मुनिने कहा—'पूर्वकालमें अयोध्यापुरीमें युवनाश्वके पुत्र महाराज मान्धाता बड़े बलवान् थे, वे तीनों लोकोंमें बड़े पराक्रमी माने जाते थे। उन्होंने सारी पृथ्वीको अपने अधीन कर लिया और फिर यहींसे स्वर्गलोकको भी जीतनेका उद्योग करने लगे। इन्द्रको जब राजाके इस विचारका पता लगा, तब उन्होंने उनसे प्रेमपूर्वक कहा—'पुरुषश्रेष्ठ! अभी तो तुम सारे मर्त्यलोकके भी राजा नहीं हो। यदि सारी पृथ्वी तुम्हारे अधीन हो जाय तो तुम अपने सेवक, सेना और सवारियोंके साथ स्वर्गलोकपर भी शासन कर सकते हो।' इसपर मान्धाताने पूछा—'देवराज! पृथ्वीपर मेरी आज्ञा कहाँ नहीं मानी जाती?' तब इन्द्रने कहा—'मधुवनमें मधुदैत्यका पुत्र लवणासुर रहता है, वह तुम्हारी आज्ञा नहीं मानता।' इन्द्रके इन वाक्योंसे महाराज मान्धाता बड़े लज्जित हुए और इस मर्त्यलोकमें ही लौट आये। यहाँ आकर उन्होंने युद्ध करनेकी इच्छासे लवणके पास दूत भेजा। दूतने लवणके पास जाकर बहुत-सी कठोर बातें कहीं, इसलिये उसे वह उसी समय खा गया। दूतको देर होती देखकर राजा बड़े क्रुद्ध हुए और वे बाणोंकी वर्षा करके उस राक्षसको सब ओरसे पीड़ित करने लगे। तब लवणासुरने हँसकर वह शूल उठाया और समस्त साथियोंसहित राजा मान्धाताका वध करनेके लिये उसे उनपर छोड़ा। वह चमचमाता हुआ शूल तुरंत ही संपूर्ण सेवक, सेना और सवारियोंके साथ राजा मान्धाताको भस्म करके फिर लवणासुरके हाथमें आ गया। इस प्रकार अपनी सारी सेनाके साथ महाराज मान्धाता मारे गये। सौम्य! इस शूलकी शक्ति बहुत ही बढ़ी-चढ़ी और अतुलनीय है। अतः कल सबेरे जबतक वह राक्षस उस अस्त्रको न ले, तबतक आप निःसन्देह उसका वध कर सकेंगे और इस प्रकार निश्चय ही आपकी विजय होगी।''

इस प्रकार उनकी विजय चाहनेवाले मुनियोंके साथ बात करते-करते ही शत्रुघ्नकी वह रात बीत गयी। दूसरे दिन प्रातःकाल होनेपर वह राक्षस आहारकी खोजमें नगरसे बाहर निकला। इसी समय वीरवर शत्रुघ्न यमुना पार करके मथुरापुरीके द्वारपर धनुष हाथमें लेकर बैठ गये। मध्याह्न होनेपर वह क्रूरकर्मा राक्षस हजारों प्राणियोंका बोझा लिये वनसे लौटा। उस समय उसने शत्रुघ्नजीको नगरके द्वारपर शस्त्रास्त्र लिये बैठे देखा। वह उनसे बोला—'नराधम! मालूम होता है तुम्हें मौतने घेर रखा है; भला, इन हथियारोंसे तुम मेरा क्या कर लोगे। तुम्हारे-जैसे तो हजारों अस्त्र-शस्त्रधारी पुरुषोंको मैं खा चुका हूँ। आज मेरा यह आहार भी पूरा नहीं है। मूर्ख! आज स्वयं ही तुम मेरे मुँहमें कैसे आ पड़े?' वह राक्षस इसी प्रकारकी बातें कहकर हँस रहा था; इससे पराक्रमी शत्रुघ्नजीका क्रोध भड़क उठा और वे बोले—'मैं महाराज दशरथका पुत्र और मतिमान् श्रीरामचन्द्रजीका भाई हूँ; मेरा नाम शत्रुघ्न है और मैं हूँ भी शत्रुओंका संहार करनेवाला ही। इस समय मैं तुम्हारा वध करनेके लिये ही आया हूँ। मैं युद्ध करना चाहता हूँ, इसलिये तुम मुझसे द्वन्द्वयुद्ध करो। तुम सभी प्राणियोंके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शत्रु हो, इसलिये अब मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकते।' इसपर राक्षसने हँसकर कहा—'मूर्ख! आज तुम भाग्यसे ही मिल गये हो; मैंने तुम-जैसे अनेकों पुरुषाधमोंको मारा है और तिनकेकी तरह उन्हें मिट्टीमें मिला दिया है। जरा ठहर जाओ, मैं अभी अपना अस्त्र लाता हूँ।' शत्रुघ्नने कहा—'किसी भी बुद्धिमान्‌को अपने सामने आये हुए शत्रुको छोड़ना नहीं चाहिये। जो अविचारके कारण शत्रुको अवसर दे देते हैं, वे मन्दबुद्धि कायरोंकी तरह मारे जाते हैं। तुमने जिस समय दूसरे वीरोंको जीता था, उस समय शत्रुघ्नका जन्म नहीं हुआ था। आज तो मेरे बाणोंकी चोट खाकर तुम्हें यमराजके घर जाना पड़ेगा। तुम जिस समय मेरे बाणोंसे दग्ध होकर गिर जाओगे, उस समय इस नगर और राज्यमें मङ्गल-ही-मङ्गल हो जायगा। आज यह वज्रके समान तीखी नोकवाला बाण मेरे हाथसे छूटकर तुम्हारे हृदयमें घुस जायगा।'

शत्रुघ्नजीके इस प्रकार कहनेपर उस राक्षसने क्रोधातुर होकर शत्रुघ्नजीके वक्षःस्थलपर एक विशाल वृक्ष फेंका, परन्तु उन्होंने उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। उस वारको विफल हुआ देखकर उसने और भी अनेकों वृक्ष फेंके, परन्तु शत्रुघ्नजीने उनमेंसे प्रत्येकको तीन या चार बाण छोड़कर काट डाला। फिर उन्होंने उस राक्षसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी, किन्तु वह तनिक भी विचलित न हुआ। अब महाबली लवणने हँसते हुए एक वृक्ष उठाया और उससे शत्रुघ्नजीके सिरपर चोट की। इससे उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो गया और उन्हें मूर्च्छा हो आयी। शत्रुघ्नके मूर्च्छित होकर गिरनेसे ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराओंमें बड़ा हाहाकार मच गया। शत्रुघ्नजीको भूमिपर गिरा देखकर लवणने समझा कि ये मर गये। इसलिये वह शूल नहीं लाया और अपनी भोजन-सामग्रीको एकत्रित करने लगा। थोड़ी ही देरमें उन्हें चेत हो गया और वे फिर अस्त्र-शस्त्र लेकर नगरके द्वारपर खड़े हो गये। यह देखकर ऋषियोंने उनका अभिनन्दन किया।

अब शत्रुघ्नजीने अपना दिव्य और अमोघ बाण निकाला। उसका तेज बड़ा ही प्रचण्ड था और दसों दिशाओंमें फैला हुआ था। वह बाण कालाग्निके समान देदीप्यमान था। उसे देखकर सभी प्राणी भयभीत हो गये। देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि और अप्सराओंके साथ सारा संसार सन्तप्त हो उठा। अन्तमें वे सब ब्रह्माजीके पास पहुँचे। तब ब्रह्माजीने कहा—'देवताओ! यह सनातन बाण लोककर्ता भगवान् विष्णुका है। उन्होंने मधु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंका वध करनेके लिये इसे बनाया था। आपलोग निश्चिन्त होकर जाइये और महात्मा शत्रुघ्नजीके हाथसे लवणासुरका वध होता देखिये।' देवदेव ब्रह्माजीके ये वचन सुनकर देवतालोग उस स्थानपर आये, जहाँ शत्रुघ्नजी और लवणासुरका युद्ध हो रहा था। शत्रुघ्नजीने जोरसे सिंहनाद किया और वह राक्षस उनकी ललकार सुनकर फिर युद्धके लिये तैयार होकर उनके सामने आ गया। धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्नजीने कानतक अपना धनुष चढ़ाया और वह

महाबाण लवणके विशाल वक्षःस्थलपर छोड़ दिया। वह तुरंत ही उसके हृदयको विदीर्ण करके रसातलमें घुस गया, तथा रसातलमें जाकर वह देवपूजित दिव्य बाण उसी समय फिर शत्रुघ्नजीके पास आ गया। शत्रुघ्नजीके बाणसे विदीर्ण होकर लवणासुर वज्रके मारे हुए पर्वतके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा तथा वह दिव्य शूल उसके मारे जानेपर सब देवताओंके देखते-देखते भगवान् रुद्रके पास आ गया। इस प्रकार दशरथनन्दन शत्रुघ्नने विजय प्राप्त की और लवणासुर मारा गया; अतः देवता, ऋषि, नाग और अप्सराओंने निर्भय होकर शत्रुघ्नजीका अभिनन्दन किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# देवताओंसे वर पाकर शत्रुघ्नजीका शूरसेन जनपदकी स्थापना करना और फिर वाल्मीकिजीके आश्रमपर होते हुए भगवान् श्रीरामके दर्शनोंके लिये अयोध्या जाना

लवणके मारे जानेपर इन्द्र और अग्नि आदि देवताओंने आकर शत्रुघ्नजीसे मधुर शब्दोंमें कहा—'वत्स ! बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि तुम्हें विजय प्राप्त हुई और राक्षस लवण मारा गया। अब तुम कोई वर माँगो।' देवताओंके वचन सुनकर महाबाहु शत्रुघ्नजीने हाथ जोड़कर कहा—'यह देवनिर्मित रमणीय और मनोहारिणी मधुपुरी शीघ्र ही एक सुसमृद्ध राजधानी बन जाय—यही मेरा मुख्य वर है।' देवताओंने प्रसन्न होकर कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो। यह रमणीय पुरी निःसन्देह शूरवीरोंकी सेनासे सम्पन्न होगी।' यह कहकर देवतालोग स्वर्गमें चले गये तथा महातेजस्वी शत्रुघ्न भी गङ्गा-तटसे अपनी सेना ले आये। इस प्रकार श्रावण मासमें शत्रुघ्नजीने उस पुरीपर अपना अधिकार जमाया। इससे वह शूरसेनोंका देश निर्भय हो गया। वहाँके खेत हरे-भरे हो गये, वर्षा समयपर होने लगी और वहाँके निवासी शत्रुघ्नजीके भुजबलसे सुरक्षित होकर नीरोग तथा बलवान् हो गये। वह पुरी अर्धचन्द्राकारमें यमुनाजीके तटपर सुशोभित हुई तथा सुन्दर-सुन्दर भवन, चौराहे, बाजार और गलियाँ उसकी शोभा बढ़ाने लगीं। उसमें चारों वर्णोंके लोग बस गये और तरह-तरहका व्यापार होने लगा। इस प्रकार उसे खूब सुसम्पन्न देखकर शत्रुघ्नजीको बड़ा हर्ष हुआ। फिर उन्होंने सोचा—'अब बारहवाँ वर्ष प्रारम्भ हो गया है, इसलिये मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका दर्शन करूँगा।' अतः [ राज्यकी व्यवस्थाके लिये ] अपने प्रधान-प्रधान मन्त्री और सेनापतियोंको वहीं छोड़ वे अच्छे-अच्छे घोड़ोंवाले सौ रथ लेकर अयोध्याकी ओर चल पड़े।

मार्गमें सात-आठ स्थानोंपर पड़ाव डालते हुए वे महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर आकर ठहरे। वहाँ मुनिके चरणोंमें प्रणाम कर उन्होंने उनके हाथसे पाद्य और अर्घ्य आदि ग्रहण किये। मुनिने उनसे अनेक प्रकारकी मीठी-मीठी बातें कहीं। वे बोले—'लवणासुरको मारकर आपने बड़ा ही दुष्कर कार्य किया है। इससे देवताओं तथा सभी प्राणियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई है। इस प्रकार आपने यह संसारका बड़ा ही प्रिय कार्य किया है।' यह कहकर महामति वाल्मीकिजीने उनका माथा सूँघा तथा उनका और उनके साथियोंका आतिथ्य किया। शत्रुघ्नजीने भोजन किया और रामचरित सुना, जो गानकी मधुरताके कारण बड़ा ही प्रिय जान पड़ता था। इस रामचरितमें भगवान् श्रीरामके पूर्व चरित्र काव्यबद्ध किये गये थे। यह काव्य-गान वीणाकी लयके साथ हो रहा था। मन्द, मध्यम और उच्च स्वरसे युक्त था तथा संस्कृत-भाषामें व्याकरण और संगीतशास्त्रके लक्षणोंके अनुसार गानोचित तालके साथ गाया गया था। इस अद्भुत गानको सुनकर शत्रुघ्नजी मूर्च्छित-से हो गये, उनके नेत्रोंमें जल भर आया और बार-बार लंबी साँस लेने लगे। उस गानमें उन्होंने बीती हुई बातोंको वर्तमानकी तरह सुना। उनके साथी भी उस गानको सुनकर बड़े आश्चर्यमें भरकर कहने लगे—'यह क्या है, हमलोग कहाँ हैं, यह कोई स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं ? जिन बातोंको हम पहले देख चुके हैं, उन्हींको इस आश्रममें ज्यों-की-त्यों सुन रहे हैं! यह उत्तम गान क्या हम स्वप्नमें सुन रहे हैं ?' फिर अत्यन्त विस्मयमें पड़कर उन्होंने शत्रुघ्नजीसे कहा—'महाराज ! आप इस विषयमें मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीसे पूछनेकी कृपा करें।' इसपर शत्रुघ्नजीने कहा—'मुनिके इस आश्रममें ऐसी अनेकों आश्चर्यजनक घटनाएँ होती रहती हैं। उनके विषयमें उनसे कुछ पूछ-ताछ करना उचित नहीं है।' सैनिकोंसे यह कहकर उन्होंने महर्षि वाल्मीकिको प्रणाम किया और अपने डेरेपर चले आये।

उस रामचरितसम्बन्धी अद्भुत गानके विषयमें चिन्तन करते रहनेसे रातमें शत्रुघ्नजीको नींद नहीं आयी। वीणाके लयके साथ गाये गये उस सुमधुर गानकी आवाज उनके कानोंमें गूँजती रहनेके कारण उनकी शेष रात्रि बहुत जल्द बीत गयी। रात्रि बीतनेपर प्रातःकृत्यसे निवृत्त होकर उन्होंने मुनिवर वाल्मीकिसे हाथ जोड़कर कहा—'भगवन् ! मैं रघुकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करना चाहता हूँ; अतः आपकी आज्ञा पाकर अपने इन साथियोंके सहित मेरी इच्छा अयोध्यापुरीको जानेकी है। इसपर मुनिने उन्हें हृदयसे लगाकर विदा किया। शत्रुघ्नजीने उन्हें प्रणाम किया और एक देदीप्यमान रथपर चढ़कर श्रीराम-दर्शनकी लालसासे तुरंत ही अयोध्याकी ओर चल दिये। अयोध्या पहुँचकर वे सीधे श्रीरामचन्द्रजीके महलमें गये। वहाँ उन्होंने पूर्णचन्द्रके समान मनोहर मुखवाले श्रीरामको मन्त्रियोंके बीचमें बैठे देखा।



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो देवताओंके बीचमें इन्द्र विराजमान हों। शत्रुघ्नने परम तेजस्वी महाराज श्रीरामको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनसे कहा—'महाराज! आपने जिस कामके लिये आज्ञा दी थी, वह सब मैं कर आया हूँ। पापी लवण मारा गया और उसकी पुरी भी बस गयी। आपके बिना ये बारह वर्ष तो मैंने बिता दिये; अब और अधिक आपसे दूर रहनेका मुझमें साहस नहीं है; अतः अब आप मुझपर कृपा करें।'

शत्रुघ्नजीके इस प्रकार कहनेपर रघुनाथजी बोले—'वीर! विषाद न करो। समय-समयपर मुझे देखनेके लिये अयोध्या आते रहना। निःसन्देह मुझे भी तुम प्राणोंसे बढ़कर प्रिय हो, परन्तु राज्यका पालन करना भी तो जरूरी है; अतः अभी सात दिन तो तुम मेरे साथ रहो; उसके बाद अपने सेवक, सेना और सवारियोंके साथ मथुराको चले जाना।' श्रीरामचन्द्रजीके ये धर्मयुक्त वचन सुनकर शत्रुघ्नजीने दीन वाणीसे 'अच्छा' कहकर उन्हें स्वीकार किया। फिर रघुनाथजीकी आज्ञाके अनुसार सात दिन ठहरकर वे चलनेको तैयार हो गये। उन्होंने सत्यपराक्रमी भगवान् श्रीराम तथा भरत और लक्ष्मणजीसे विदा ली और अपने विशाल रथपर सवार हुए। लक्ष्मण और भरतजी बहुत दूरतक उन्हें पहुँचानेके लिये साथ-साथ गये। तत्पश्चात् शत्रुघ्न अपनी राजधानीको चल दिये।

## श्रीरामचन्द्रजीका एक शूद्र-तपस्वीको मारकर ब्राह्मणके मृत पुत्रको जीवन-दान देना तथा अगस्त्यजीके आश्रमपर होकर अयोध्या लौट आना

शत्रुघ्नजीको विदा करके भगवान् श्रीराम दोनों भाइयोंके साथ धर्मपूर्वक राज्य-पालन करते हुए आनन्दसे रहने लगे। इसके कुछ दिन पश्चात् राज्यके भीतर रहनेवाला एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने मरे हुए पुत्रको लेकर राजद्वारपर आया। वह स्नेह और दुःखके कारण रो रहा था और बार-बार 'बेटा! बेटा!' की पुकार मचाता हुआ कह रहा था—'हाय! मैंने पूर्वजन्ममें ऐसा कौन-सा पाप किया था, जिसके कारण आज इन आँखोंसे मैं अपने एकमात्र पुत्रकी मृत्यु देख रहा हूँ। बेटा! अब तेरे शोकमें थोड़े ही दिनोंमें मैं और तेरी माता भी अवश्य मौतके मुँहमें चले जायँगे। मुझे तो याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी झूठ बोला हो, किसीकी हिंसा की हो अथवा किसी भी प्राणीको कष्ट पहुँचाया हो। न जाने किस पापसे मेरा यह बेटा पितृकर्म किये बिना ही इस बाल्यावस्थामें ही यमराजके घर चला गया। श्रीरामजीके राज्यमें तो ऐसी भयंकर अकाल-मृत्यु न पहले कभी देखी गयी थी और न सुनी ही गयी थी; अतः निःसन्देह रामजीका ही कोई महान् पाप होना चाहिये, जिसके कारण इनके राज्यमें बालकोंकी मृत्यु होने लगी। इसलिये राम! आप मौतके पंजेमें पड़े हुए इस बालकको जीवित करें, नहीं तो मैं अनाथकी तरह अपनी स्त्रीके साथ राज-द्वारपर ही प्राण दे दूँगा। राजाके दोषसे जब प्रजाका विधिवत् पालन नहीं होता, तब उसे ऐसी आपत्तियोंका सामना करना पड़ता है। राजाके दुराचारी होनेपर ही प्रजामें अकाल-मृत्यु होती है। अतः यह स्पष्ट है कि नगर या राज्यमें कहीं राजासे ही अपराध हुआ है, इसीसे यह बालमृत्यु हुई है।' इसी तरह अनेक प्रकारके वाक्योंसे उसने बार-बार राजाके सामने अपना दुःख निवेदन किया और दुःखसे सन्तप्त होकर वह अपने मृत पुत्रका आलिङ्गन करता रहा।

महाराज श्रीरामने उस ब्राह्मणका दुःख और शोकसे भरा करुण क्रन्दन सुना। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने मन्त्री, महर्षि वसिष्ठ, वामदेव तथा महाजनोंसहित अपने भाइयोंको बुलाया। तब वसिष्ठजीके साथ मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम और नारद—ये आठ ब्राह्मण आये और उन्होंने महाराज रामको 'जय हो'

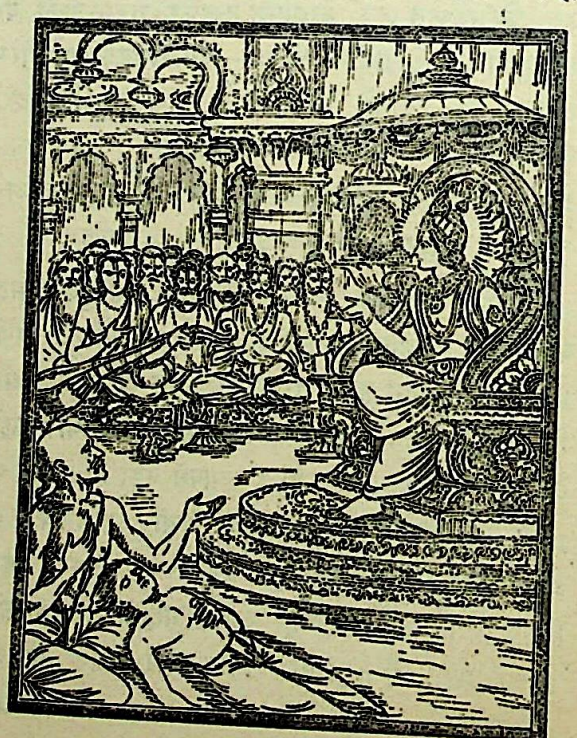

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कहकर आशीर्वाद दिया। इन सब ब्राह्मणोंको आसनोंपर बैठाया गया और रघुनाथजीने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। जब सब लोग यथास्थान बैठ गये, तब श्रीरामचन्द्रजीने सब बातें सुनाकर उनसे कहा कि 'यह ब्राह्मण राजद्वारपर धरना दिये पड़ा है।'

महाराजके ये दीनतायुक्त वचन सुनकर अन्य सब ऋषियों-की सन्निधिमें नारदजीने कहा—'राजन्! जिस कारणसे इस बालककी अकाल-मृत्यु हुई है, वह सुनिये! पहले सत्ययुगमें केवल ब्राह्मण ही तपस्वी हुआ करते थे। उस समय कोई ब्राह्मणेतर मनुष्य किसी तरह भी तपस्यामें प्रवृत्त नहीं होता था। ब्राह्मणकी प्रधानता होनेसे उस युगमें अज्ञानका भी अभाव था तथा सब लोग अकाल-मृत्युसे रहित और दीर्घदर्शी होते थे। फिर त्रेतायुग आया। इसमें सुदृढ़ शरीरवाले क्षत्रियोंकी प्रधानता हुई और वे भी उसी प्रकारकी तपस्या करने लगे। परन्तु सत्ययुगमें जो पुरुष थे, वे तप और पराक्रमकी दृष्टिसे इनकी अपेक्षा बढ़े-चढ़े थे। इस प्रकार पूर्वयुगमें जहाँ ब्राह्मण उत्कृष्ट और क्षत्रिय अपकृष्ट थे, वहाँ त्रेतायुगमें वे समान हो गये। यह देखकर मनु आदि धर्माचार्योंने; सर्वलोकसम्मत चातुर्वर्ण्यव्यवस्थाकी स्थापना की। इस युगमें अधर्मने अपना एक पैर रखा; अतः अधर्मका संयोग होनेसे लोगोंका तेज कुछ घट गया तथा आगे और भी घट जायगा। सत्ययुगमें कृषि आदि जीविकाके राजस साधन मलके समान त्याज्य थे और 'अनृत' नामसे प्रसिद्ध थे। [उस समय लोग बिना जोते-बोये ही अपना निर्वाह करते थे।] किन्तु जब अधर्मने अपना एक पैर रखा, तब वह अनृत ही जीविकाका प्रधान साधन हो गया। इससे लोगोंकी आयु पहलेकी अपेक्षा कम हो गयी। अतः पृथ्वीपर अधर्मका यह अनृतरूप चरण पड़नेपर सत्यधर्मपरायण पुरुष [उसके दुष्परिणाम—आयुःक्षयसे बचनेके लिये] शुभकर्मोंका ही आचरण करते हैं। तथापि त्रेतायुगमें ब्राह्मण और क्षत्रिय—दो ही वर्ण तपस्या करते हैं; अन्य वर्ण सेवाकार्य किया करते हैं। द्वापरयुगमें वैश्य भी तप करने लगते हैं, परन्तु शूद्रका तपस्या करना तो द्वापरयुगमें भी अधर्म माना जाता है। वही शूद्र दुर्बुद्धिवश इस समय आपके राज्यमें तप कर रहा है। उसीके कारण यह बालमृत्यु हुई है। यदि कोई मूर्ख मनुष्य किसी राजाके राज्यमें कोई अधर्म या न करने-योग्य काम करता है तो उसका वह कार्य उस राज्यके अनैश्वर्यका कारण बन जाता है और उस राजाको भी निःसन्देह नरकमें जाना पड़ता है। इसी प्रकार जो राजा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करता है, वह प्रजाके वेदाध्ययन, तप और शुभकर्मोंके पुण्यका छठा भाग प्राप्त करता है। अतः आप अपने राज्यमें खोज कराइये और जहाँ कोई पाप होता दिखायी दे, उसे दूर करनेका प्रयत्न कीजिये; ऐसा करनेसे धर्मकी वृद्धि होगी, मनुष्योंकी आयु बढ़ेगी और यह बालक भी जी उठेगा।'

नारदके ये अमृतमय वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको अपार आनन्द हुआ और उन्होंने लक्ष्मणजीसे कहा—'सौम्य! जाओ, इन ब्राह्मणदेवताको सान्त्वना दो और इनके बालकका शरीर तैलपात्रमें डुबाकर रखवा दो। उसके शरीरकी रक्षाका ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये, जिससे उसका कोई भी अङ्ग विकृत या नष्ट न हो।' लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर उन्होंने मन-ही-मन पुष्पक-विमानका स्मरण किया। रघुनाथजीका अभिप्राय समझकर वह सुवर्णजटित विमान एक मुहूर्त्तमें ही वहाँ उपस्थित हो गया। भगवान् श्रीराम महर्षियोंको प्रणाम करके पुष्पकपर सवार हुए। उन्होंने धनुष, भाथा और एक चमचमाती हुई तलवार ली और भरत तथा लक्ष्मणजीको नगरकी रक्षाका भार सौंप दिया। पहले वे इधर-उधर ढूँढ़ते हुए पश्चिमदिशामें गये, फिर हिमालयसे घिरी हुई उत्तरदिशाकी ओर गये; परन्तु उन दोनों दिशाओंमें उन्हें थोड़ा-सा भी पाप नहीं दिखायी दिया। इसके पश्चात् उन्होंने पूर्वदिशाका भी निरीक्षण किया। किन्तु वहाँ भी शुद्ध सदाचारका पालन होता था। वहाँसे वे दक्षिणकी ओर गये। वहाँ शैवल पर्वतके उत्तरकी ओर उन्हें एक विशाल सरोवर दिखायी दिया। उस सरोवरके तटपर उन्होंने एक तपस्वीको कठोर तपस्या करते देखा। वह नीचेको मुँह किये लटका हुआ था। उस तपस्वीके पास जाकर भगवान् श्रीरामने पूछा—'तपोवृद्ध! तुम्हें किस वस्तुकी इच्छा है? स्वर्ग चाहते हो या कोई और वस्तु? ऐसा कौन पदार्थ है, जिसके लिये तुम ऐसी कठोर तपस्या कर रहे हो? इसके सिवा यह भी ठीक-ठीक बताओ कि तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—किस जातिके हो?'

पुण्यकर्मा श्रीरामके ये वचन सुनकर तपस्वी बोला—'मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ और इसी शरीरसे देवत्व प्राप्त करना चाहता हूँ; इसीलिये मैं ऐसा उग्र तप कर रहा हूँ। मेरा नाम शम्बूक है।' वह इस प्रकार कह ही रहा था कि श्रीरामचन्द्रजीने म्यानसे चमकीली तलवार निकालकर उसका सिर उड़ा दिया। उसका वध होते ही इन्द्र और अग्नि आदि देवता पुष्प बरसाते हुए 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' कहकर भगवान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्रीरामकी प्रशंसा करने लगे। वे बोले—'देव! आपने यह देवताओंका ही कार्य किया है; आपके कारण ही यह शूद्र [सशरीर] न जा सकेगा; अतः आप जो वर चाहें, माँग लें।' तब स्वर्गमें श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर देवराज इन्द्रसे कहा—'यदि देवता प्रसन्न हैं तो मैं यही वर चाहता हूँ कि वह ब्राह्मण-पुत्र जी उठे।' रघुनाथजीके वचन सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'राम! आप निश्चिन्त रहें; वह ब्राह्मणबालक तो जिस समय आपने इस शूद्रको मारा उसी समय जी उठा। आपका शुभ हो, कल्याण हो। अब हम अगस्त्यजीका आश्रम देखने जाना चाहते हैं। उन परमतेजस्वी महर्षिकी दीक्षा समाप्त हो चुकी है। उन्हें जलशय्या लिये पूरे बारह वर्ष बीत चुके हैं। अतः हम उनका अभिनन्दन करनेके लिये जा रहे हैं, आप भी उनके दर्शनोंके लिये चलिये।'

देवताओंकी आज्ञा स्वीकार करके रघुनाथजी पुष्पक-विमान-पर चढ़े। देवगण अपने विशाल विमानोंके द्वारा अगस्त्याश्रमको चले तथा रघुनाथजी उनके पीछे हो लिये। तपोनिधि अगस्त्यजीने देवताओंको आया देखकर उन सबका समानरूपसे सत्कार किया तथा देवगण उनका अभिनन्दन कर अपने अनुचरोंसहित स्वर्गको चले गये। देवताओंके चले जानेपर रघुनाथजीने पुष्पक-विमानसे उतरकर अगस्त्य-मुनिको प्रणाम किया। परमतेजस्वी अगस्त्यजीने कहा—'रघुनाथजी! आपका स्वागत है; आपने यहाँ पदार्पण किया, यह मेरे लिये सौभाग्य-की बात है। अनेकों उत्तम गुणोंके कारण आपके प्रति मेरा बड़े आदरका भाव है, आप मेरे आदरणीय अतिथि हैं और सर्वदा मेरे मनमें बसे रहते हैं। आज रातको इस आश्रमपर आप मेरे पास ही रहिये। आप साक्षात् नारायण हैं, सब कुछ आपमें ही स्थित है तथा आप ही समस्त देवताओंके स्वामी और सनातन पुरुष हैं। कल प्रातःकाल आप पुष्पक-विमानद्वारा अपने नगरको पधारें। सौम्य! देखिये; यह विश्वकर्माका बनाया हुआ दिव्य आभूषण है, मेरा प्रिय करनेके लिये आप इसे ग्रहण करें।'

श्रीरामचन्द्रजीने वह आभूषण ले लिया और फिर अगस्त्य-जीकी आज्ञासे सन्ध्योपासनके लिये पवित्र सरोवरपर गये। वहाँ आचमन कर उन्होंने सायंकालकी सन्ध्या की और फिर आश्रमपर लौट आये। अगस्त्यजीने उनके भोजनके लिये कन्द-मूल और भात आदि पवित्र पदार्थ अर्पण किये। नरश्रेष्ठ श्रीराम वह अमृततुल्य भोजन करके बड़े प्रसन्न हुए और रात्रिमें वहीं सोये। सबेरे उठकर उन्होंने प्रातःकृत्य किये और वहाँसे जानेके विचारसे अगस्त्यजीके पास जा उन्हें प्रणाम करके कहा—'भगवन्! मैं अपने स्थानको जानेकी आज्ञा चाहता हूँ। आपके दर्शनोंसे मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया। अब अपनेको पवित्र करनेके लिये फिर कभी आपके दर्शनोंके लिये आऊँगा।' श्रीरामजीके ये वचन सुनकर धर्मचक्षु तपोधन अगस्त्यजी बड़े प्रसन्न हुए और उनसे बोले—'रघुनन्दन! आपके ये सुन्दर वचन बड़े ही अद्भुत हैं। आप तो स्वयं ही समस्त प्राणियोंको पवित्र करनेवाले हैं। जो लोग एक मुहूर्त्तके लिये भी आपके दर्शन पा लेते हैं, वे पवित्र, स्वर्गके अधिकारी और देवताओंके भी पूज्य हो जाते हैं। इस प्रकार आप सभी देहधारियोंको पवित्र करनेवाले हैं। पृथ्वीमें जो लोग आपकी कथाएँ कहते हैं, वे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। [फिर आपकी तो बात ही क्या है] आप निश्चिन्त होकर पधारें, आपके मार्गके सब विघ्न दूर हों तथा आप धर्मपूर्वक राज्य-शासन करें; क्योंकि आप ही संसारके परम आश्रय हैं।'

मुनिके इस प्रकार कहनेपर श्रीरघुनाथजीने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया तथा अन्य सब ऋषियोंका भी यथोचित अभिवादन कर वे स्वर्णजटित पुष्पक-विमानपर चढ़ गये। जाते समय ऋषियोंने उन्हें सब ओरसे आशीर्वाद दिया। फिर वे जगह-जगह सम्मान पाते मध्याह्नके समय अयोध्यामें पहुँचे। वहाँ जाकर इच्छानुसार चलनेवाले उस विमानको छोड़ दिया और कहा—'अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।' फिर वे ड्योढ़ीके भीतर खड़े हुए द्वारपालसे बोले—'तुम अभी जाकर भरत और लक्ष्मणको मेरे आनेकी सूचना दो और उन्हें बुला लाओ।'

## अश्वमेध-यज्ञके विषयमें सम्मति देते हुए लक्ष्मणजीका इन्द्रकी ब्रह्महत्या-निवृत्तिकी कथा सुनाना तथा श्रीरामचन्द्रजीका यज्ञकी तैयारी कराना

महाराज श्रीरामकी आज्ञा पाकर द्वारपाल कुमार भरत और लक्ष्मणको ले आया। उन्हें देखकर श्रीरामचन्द्रजीने उनका आलिङ्गन किया और कहा—'मैंने ब्राह्मणका काम तो यथावत् कर दिया। अब मैं राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान करना चाहता हूँ, जो राजधर्मकी चरम सीमा है। मेरे विचारसे राजसूय-यज्ञ अक्षय और अविनाशी फल देनेवाला है तथा वह समस्त पापोंको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नष्ट कर देता है । तुम दोनों मेरे आत्मा ही हो, अतः मेरी इच्छा तुम्हारे साथ इस यज्ञका अनुष्ठान करनेकी है । इस समय मेरे साथ तुम भी विचार करो कि हमारे लिये कौन कर्म इस लोक और परलोकमें कल्याण करनेवाला होगा ।'

श्रीरामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर भरतजीने हाथ जोड़कर

कहा—'महाराज ! धर्म, पृथ्वी और यश—इनकी स्थिति आपमें ही है । देवतालोग जैसे ब्रह्माजीको मानते हैं, उसी प्रकार हम और समस्त राजालोग आपको ही महापुरुष और सब लोकोंका स्वामी समझते हैं । पुत्र जैसे पिताको देखते हैं, उसी प्रकार आपके प्रति सब राजाओंका भाव है । राघव ! आप सम्पूर्ण पृथ्वी और समस्त प्राणियोंके भी आश्रय हैं । फिर आप ऐसा यज्ञ कैसे कर सकते हैं, जिसमें पृथ्वीके समस्त राजवंश और वीर पुरुषोंका हमारे कोपके कारण संहार होनेकी सम्भावना हो ।' भरतजीके ये अमृततुल्य वचन सुनकर रघुनाथजीको अतुलित आनन्द हुआ और वे बोले—'भरत ! तुम्हारा यह कथन बड़ा ही उदार, धर्मसंगत और पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला है । मेरे हृदयमें राजसूय-यज्ञका संकल्प उठ रहा था, किन्तु तुम्हारे सत्परामर्शसे मैं उसे बदल देता हूँ; क्योंकि अच्छी बात तो बालकोंकी भी माननी चाहिये ।'

श्रीराम और भरतके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणजीने कहा—'रघुनन्दन ! अश्वमेध-महायज्ञ सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है; अतः आप इस पावन और सर्वश्रेष्ठ यज्ञको करनेका विचार करें तो अच्छा है । सुनते हैं कि पूर्वकालमें जब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी थी, तब वे अश्वमेधके द्वारा ही उस पापसे मुक्त हुए थे । महाबाहो ! पूर्वकालमें जब देवता और असुरोंमें मेल था, उस समय वृत्र नामका एक बड़ा भारी लोकमान्य दैत्य था । वह सौ योजन चौड़ा और इससे तिगुना ऊँचा था । यही नहीं, वह बड़ा भारी धर्मज्ञ, कृतज्ञ और बुद्धिमान् भी था तथा सारी पृथ्वीका बड़ी सावधानीसे धर्मपूर्वक शासन करता था । उसके राज्यमें पृथ्वी सब प्रकारकी अभीष्ट वस्तुएँ उत्पन्न करती थी तथा फल, फूल और मूल सरस होते थे । पृथ्वी बिना जोते-बोये ही अन्न उत्पन्न करती थी तथा पूर्णतया धन-धान्यसम्पन्न थी । इस प्रकार वह बड़े ही विस्तृत और अद्भुत राज्यका शासन कर रहा था । इसी समय उसे यह विचार हुआ कि मैं कठोर तप करूँ । क्योंकि परम कल्याणका साधन तो तप ही है और सब प्रकारका सुख तो मोहमात्र है । अतः उसने अपने बड़े पुत्रको पुरवासियोंको सौंप दिया और स्वयं समस्त देवताओंको सन्तप्त करता हुआ उग्र तप करने लगा ।

"तब इन्द्रादि सब देवता उस वनमें पहुँचे जहाँ वृत्रासुर तप कर रहा था । उन्होंने देखा कि असुरश्रेष्ठ वृत्रासुरका तेज ऐसा बढ़ गया है कि वह तीनों लोकोंको मानो तपाये डालता है । उसे देखते ही देवतालोग घबरा गये और सोचने लगे—हम इसे कैसे मारें; क्या किया जाय, जिससे हमारी पराजय न हो ? देवतालोग ऐसा सोच ही रहे थे कि इन्द्रने अपना वज्र उठाकर वृत्रासुरके सिरपर मार दिया । इन्द्रका वज्र प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर और बड़ी चमचमाहटवाला था । जब उससे कटकर वृत्रासुरका सिर गिरा, तब सारा संसार भयभीत हो गया । निरपराध वृत्रका वध करना उचित नहीं था; अतः इन्द्र उसके कारण बहुत चिन्तित हुए और सब लोकोंके सीमावर्ती अन्धकारमय प्रदेशमें चले गये । जानेके समय ब्रह्महत्या उनके पीछे लग गयी और उनके शरीरपर गिरकर उसने उन्हें दुःखातुर कर दिया । सब लोकोंके अन्तमें जाकर वे कुछ समयतक अचेत और संज्ञाशून्य-से होकर पड़े रहे । इन्द्रके न रहनेसे सारा संसार व्याकुल हो उठा । पृथ्वी उजड़ी-सी हो गयी, क्योंकि इसके जल और वन—सब सूख गये । नदियों और सरोवरोंमें जलका एकदम अभाव हो गया तथा वर्षा न होनेसे सब जीवोंमें बड़ी घबराहट फैल गयी । यह देखकर अग्नि आदि देवता त्रिभुवनपति भगवान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विष्णुका पूजन कर उनकी बार-बार स्तुति करने लगे—'परमेश्वर ! आप जगत्‌के पिता तथा सबके पूर्वज और परम आश्रय हैं। समस्त प्राणियोंकी रक्षाके लिये ही आपने यह विष्णुरूप धारण किया है। इस वृत्रका वध भी वास्तवमें आपने ही किया है। किन्तु इसके कारण ब्रह्महत्या इन्द्रको कष्ट पहुँचा रही है, अतः आप उसकी निवृत्तिका उपाय बताइये।' इसपर विष्णुने कहा—'परम पवित्र अश्वमेध-यज्ञके द्वारा मेरी आराधना करनेसे इन्द्र पुनः देवराजका पद प्राप्त कर लेंगे और फिर उन्हें किसी प्रकारका भय भी नहीं रहेगा।' देवताओंको ऐसा आदेश देकर विष्णुभगवान् अपने लोकको चले गये।

"तब बृहस्पतिजीको साथ लेकर सब देवता उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ इन्द्र छिपे थे। उन्हें ब्रह्महत्यासे आविष्ट देखकर वे उन्हींको आगे रखकर अश्वमेध-यज्ञ करने लगे। जब यज्ञ समाप्त हुआ, तब ब्रह्महत्याने आकर कहा कि 'मेरे लिये कोई स्थान बताओ।' देवताओंने उससे कहा—'तू अपने चार भाग कर दे।' तब ब्रह्महत्याने अपने चार भाग करके कहा—'मैं अपने एक भागसे तो इच्छानुसार वर्षाके चार महीनोंमें जलसे भरी हुई नदियोंमें रहूँगी, दूसरे भागसे सर्वदा पृथ्वीमें निवास करूँगी, तीसरे अंशसे तीन दिनतक युवती स्त्रियोंमें रहूँगी—इससे उनका दर्प नष्ट होता रहेगा और चौथे भागसे उन लोगोंमें निवास करूँगी, जो ब्राह्मणोंको झूठा दोष लगाकर सताया करते हैं।' तब देवताओंने कहा—'तुम जैसा कहती हो, वैसा ही हो।' फिर सब देवताओंने प्रसन्न होकर इन्द्रकी वन्दना की तथा इन्द्र भी निष्पाप और सन्तापशून्य हो गये। इन्द्रके अपने पदपर प्रतिष्ठित हो जानेसे सारा संसार भी शान्त हो गया। रघुनाथजी ! इस अश्वमेध-यज्ञका ऐसा प्रभाव है, अतः आप इसीका अनुष्ठान करें।"

लक्ष्मणके ये वचन सुनकर परम तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'लक्ष्मण ! अश्वमेधके विषयमें तुम जो कुछ कहते हो, वह बहुत ठीक है। मैं इस यज्ञके विशेषज्ञ वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि और कश्यप आदि सभी ब्राह्मणोंको एकत्रित करके उनकी सलाहसे सर्वलक्षणसम्पन्न घोड़ा छोड़ूँगा।' रघुनाथजीका यह वचन सुनकर लक्ष्मणजी सब ब्राह्मणोंको बुलाकर ले आये। रघुनाथजीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। और उन सबने आशीर्वादोंद्वारा उनका सत्कार किया। फिर श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर उनसे अश्वमेध-यज्ञके विषयमें निवेदन किया। ऋषियोंने उनका प्रस्ताव सुनकर श्रीमहादेवजीको नमस्कार किया और सब प्रकारसे उस यज्ञकी प्रशंसा की। ब्राह्मणोंके वे अद्भुत वाक्य सुनकर भगवान् श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और उस कर्मके लिये उनकी भी स्वीकृति समझकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'महाबाहो ! तुम सुग्रीवके पास सँदेसा भेजो कि वे बहुत-से प्रधान-प्रधान वानरोंके साथ इस यज्ञ-महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये आयें। अतुलित पराक्रमी विभीषणको भी बहुत-से राक्षसोंके साथ यज्ञमें आना चाहिये। हमारे हितैषी अन्य राजाओंका भी यज्ञकी देख-भालके लिये यहाँ जल्दी ही आना बहुत जरूरी है। हमारे राज्यके जो धर्मनिष्ठ ब्राह्मण देशान्तरोंमें चले गये हैं, उन सबको निमन्त्रण भेजने चाहिये तथा तपोधन ऋषियों एवं अन्य देशोंके ब्राह्मणोंको भी पत्नियोंसहित बुलाना चाहिये। नैमिषारण्यमें गोमती नदीके तटपर यज्ञशाला बनानेकी आज्ञा दो, क्योंकि वह स्थान बड़ा ही पवित्र है। वहाँ यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये सर्वत्र शान्तिविधान प्रारम्भ करा दो। अनेकों धर्मज्ञ पुरुष नैमिषारण्यमें इस महायज्ञके दर्शन करेंगे तथा हमारे द्वारा विधिवत् सम्मानित और तृप्त होकर जायँगे; अतः तुम सभीको निमन्त्रित करो। पहले एक लाख बैल चावल लेकर तथा दस हजार बैल तिल, मूँग, चना, कुलथी, उड़द और नमक लेकर चलें। इन्हींके प्रमाणसे घी-तेल आदि भी जाने चाहिये; साथ ही सुगन्धित द्रव्यका जाना भी आवश्यक है। भरतजी कई करोड़ सोने-चाँदीके सिक्के आगे लेकर बड़ी सावधानीके साथ यात्रा करें। उनके साथ सेना भी जानी चाहिये तथा रास्तेमें दूकानें लगानेवाले बनिये, रसोइये, वेदज्ञ ब्राह्मण, बालक, बूढ़े, ब्राह्मणलोग, नौकर, बढ़ई, खजानची, सब माताएँ, कुमारोंका रनिवास, मेरी पत्नीकी सुवर्ण-प्रतिमा और यज्ञ-दीक्षामें कुशल ब्राह्मणलोग भी भरतजीके साथ ही जायँ।'

भरतजीने राजाओं तथा उनके अनुयायियोंके लिये बहुमूल्य डेरोंकी व्यवस्था की तथा उनमें अन्न, पान और वस्त्र आदिका भी पूरा प्रबन्ध करा दिया। इसके बाद वे शत्रुघ्नको साथ लेकर चल दिये। उस यज्ञमें सुग्रीवसहित प्रधान-प्रधान वानर तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण भोजन परोसनेका काम करते थे तथा राक्षसोंसहित विभीषणके जिम्मे उग्र तपस्वी महात्मा ऋषियोंकी सेवाका प्रबन्ध था। भगवान् श्रीरामने यज्ञकी सारी सामग्री भेजकर यज्ञके लक्षणोंसे सम्पन्न एक काला घोड़ा छोड़ा। उसकी रक्षाके लिये ऋत्विजोंसहित लक्ष्मणजीको नियुक्त किया और स्वयं सेना लेकर नैमिषारण्यकी ओर चले।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वहाँ यज्ञशाला बड़ी ही अद्भुत बनायी गयी थी, उसे देखकर महाबाहु श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और बोले 'यह स्थान बड़ा ही सुन्दर है।' जब श्रीरामचन्द्रजी नैमिषारण्यमें पहुँच गये, तब सभी राजा उपहार लेकर उपस्थित हुए। श्रीरामने उनका यथोचित सत्कार किया। राजाओंके सत्कारका काम भरत और शत्रुघ्नको सौंपा गया था तथा लक्ष्मणजीकी रक्षामें अश्वको घुमानेकी विधि पूरी हुई। अब भगवान् श्रीरामका अश्वमेध यज्ञ विधिवत् आरम्भ हुआ। उस यज्ञमें केवल एक ही बात सुन पड़ती थी—'जबतक याचक सन्तुष्ट न हों, उनके इच्छानुसार दिये जाओ।' इसके सिवा कोई दूसरा शब्द वहाँ सुनायी नहीं देता था। जबतक याचकोंके मुँहसे कोई शब्द न निकलता, तबतक राक्षस और वानर उन्हें देते ही रहते। वहाँ कोई भी पुरुष दीन, दुखी या मलिन नहीं था; सब लोग हृष्ट-पुष्ट ही दिखायी देते थे। उस यज्ञमें जो चिरजीवी महात्मा लोग थे, उन्हें ऐसे किसी भी यज्ञका स्मरण नहीं था, जिसमें दानकी ऐसी धूम रही हो। जिसे सुवर्णकी इच्छा थी, वह सुवर्ण पाता था; धनकी इच्छावाला धन पाता था और रत्नार्थीको रत्न दिये जाते थे। वहाँ रात-दिन दिये जानेवाले चाँदी, सोने, रत्न और वस्त्रोंकी ढेरियाँ लगी रहती थीं। तपस्वियोंका कथन था कि ऐसा यज्ञ तो कभी इन्द्र, चन्द्र, यम और वरुण-के यहाँ भी नहीं देखा गया। नृपश्रेष्ठ भगवान् श्रीरामका यह सर्वगुणसम्पन्न यज्ञ एक वर्षसे भी अधिक समयतक होता रहा।"

## श्रीरामका कुश-लवके मुखसे रामायण-गान सुनना और सीताका अपनी शुद्धिका प्रमाण देकर भूमिमें प्रवेश करना

इस प्रकार जब वह अत्यन्त अद्भुत यज्ञ हो रहा था, उस समय भगवान् वाल्मीकि-मुनि अपने शिष्योंके साथ उसमें शीघ्रतापूर्वक पधारे। उन्होंने ऋषि-समुदायके साथ उस दिव्य एवं अद्भुत यज्ञको देखा और अपने लिये एकान्त स्थानमें सुन्दर पर्णशालाओंकी व्यवस्था करायी। उनकी कुटी बड़ी सुन्दर बनी थी। उसके पास भगवान् श्रीरामकी ओरसे खाद्य पदार्थोंसे भरे हुए कई छकड़े और उत्तम-उत्तम फल-मूल रखवा दिये गये थे। वाल्मीकिजीने अपने दो शिष्य—कुश और लवसे कहा—'तुम दोनों भाई एकाग्र-चित्त होकर बड़े आनन्दके साथ सम्पूर्ण रामायण-काव्यका गान करो। ऋषियों और ब्राह्मणोंके पवित्र स्थानोंपर, गलियोंमें, राजमार्गोंपर तथा राजाओंके भवनोंमें भी इसका गान करना। श्रीरामचन्द्रजीके घरके दरवाजेपर, जहाँ ब्राह्मण-लोग यज्ञ-कार्य कर रहे हैं वहाँ और ऋत्विजोंके आगे इस काव्यका विशेषरूपसे गान करना चाहिये। यहाँ पर्वतोंके शिखरोंपर नाना प्रकारके स्वादिष्ट फल लगे हैं। [ भूख लगनेपर ] उन्हें खा लिया करना और उत्साहपूर्वक काव्यका गान करते रहना। यहाँके मीठे फल-मूल खा लेनेसे तुम दोनों बच्चोंको न तो थकावट होगी और न तुम्हारे गलेकी मधुरता ही नष्ट होगी। यदि महाराज श्रीराम तुम्हें गान सुननेके लिये बुलायें तो उनसे तथा वहाँ बैठे हुए ऋषि-मुनियोंसे यथायोग्य विनयपूर्ण बर्ताव करना। मैंने पहले भिन्न-भिन्न संख्याके श्लोकोंसे युक्त रामायण-काव्यके सर्गोंका जिस तरह तुम्हें उपदेश किया है, उसीके अनुसार प्रतिदिन बीस-बीस सर्गोंका मधुर स्वरसे गान करना। धनकी इच्छासे थोड़ा भी लोभ न करना। आश्रममें रहकर फल-मूल भोजन करनेवाले वनवासियोंको धनसे क्या काम। यदि रघुनाथजी पूछें—'तुम दोनों किसके पुत्र हो?' तो महाराजसे इतना ही कह देना कि 'हम दोनों महर्षि वाल्मीकिजीके शिष्य हैं।' ये वीणाके सात तार हैं, इनसे बड़ी मधुर आवाज निकलती है। इसमें अपूर्व स्वरोंका प्रदर्शन करानेवाले ये स्थान बने हैं। इनके स्वरोंको झंकृत करके—मिलाकर मधुर स्वरमें काव्यका गान करना। प्रारम्भसे ही इसका गान होना चाहिये। तुमलोग कोई ऐसा बर्ताव न करना, जिससे राजाका अपमान हो; क्योंकि राजा धर्मकी दृष्टिसे सम्पूर्ण प्राणियोंका पिता होता है। अतएव तुम दोनों भाई प्रसन्न एवं एकाग्रचित्त होकर कल प्रातःकालसे ही वीणाके लयपर मधुर स्वरसे रामायण-गान आरम्भ कर दो।' मुनिके इस प्रकार आदेश देनेपर सीताके वे दोनों कुमार 'बहुत अच्छा, हम ऐसा ही करेंगे' यह कहकर आश्रम-से चल दिये।

रात्रि व्यतीत होनेपर जब सबेरा हुआ, तब स्नान-सन्ध्याके पश्चात् समिधा-होमका कार्य पूरा करके वे दोनों भाई वाल्मीकिजीके कथनानुसार वहाँ रामायण-गान करने लगे। रघुनाथजीने भी वह गान सुना, जो पूर्ववर्ती आचार्योंके बताये हुए नियमोंके अनुकूल था। संगीतकी विशेषताओंसे युक्त स्वरोंके अलापनेकी अपूर्व शैली थी। द्रुत, मध्य और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलम्बित—इन तीन प्रकारकी गतियोंसे बँधा और वीणाके लयसे मिलता हुआ उन दोनों बालकोंका मधुर गान सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने कर्मानुष्ठानसे अवकाश मिलनेपर बड़े-बड़े मुनियों, राजाओं तथा वेदवेत्ता विद्वानोंको बुलाया। पौराणिकों, वैयाकरणों, बड़े-बड़े ब्राह्मणों, स्वरों और लक्षणोंके ज्ञाताओं, गीत सुननेके लिये उत्सुक द्विजों, सामुद्रिक लक्षणों तथा संगीत-विद्याके जानकारों, भिन्न-भिन्न छन्दोंके चरणों, उनके अन्तर्गत गुरु-लघु अक्षरों तथा उनके सम्बन्धके ज्ञाताओं, वैदिक छन्दों-के विद्वानों, स्वरोंकी ह्रस्व-दीर्घ आदि मात्राओंके विशेषज्ञों, ज्योतिष विद्याके पारङ्गत पण्डितों, कर्मकाण्डियों, कार्यकुशल पुरुषों, तर्कके प्रयोगमें निपुण नैयायिकों, बहुश्रुत विद्वानों, छन्द, पुराण और वेदोंको जाननेवाले द्विजवरों, चित्रकलाके जाननेवालों, धर्मशास्त्रके अनुकूल सदाचारके ज्ञाताओं, दर्शनसूत्रोंके विद्वानों तथा संगीत और नृत्य विद्याकी विशेष जानकारी रखनेवाले लोगोंको एकत्रित करके भगवान् श्री-रामने रामायण-गान करनेवाले उन दोनों बालकोंको सभामें बुलाया। सभासदोंमें श्रोताओंका हर्ष बढ़ाने-वाली बातें होने लगीं और मुनिकुमारोंने अपना गान आरम्भ किया; फिर तो मधुर संगीतका तार बँध गया। बड़ा अलौकिक गान था। उसकी विशेषताओंके कारण किसी भी श्रोताको सुननेसे तृप्ति नहीं होती थी। मुनियोंके समुदाय और महापराक्रमी राजा आनन्दमग्न होकर उन दोनोंको बारंबार निहार रहे थे, मानो उनकी रूपमाधुरीको नेत्रोंसे पी रहे हों। वे सब परस्पर कहने लगे—'इन दोनों कुमारोंकी आकृति श्रीरामचन्द्रजीसे बिल्कुल मिलती-जुलती है। ये बिम्बसे प्रकट हुए प्रतिबिम्ब-से जान पड़ते हैं। यदि इनके सिरपर जटा और शरीरपर वल्कल-वस्त्र न होते तो हमें श्रीरामचन्द्रजीमें तथा गान करनेवाले इन दोनों कुमारोंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता।' नगर और प्रान्तमें निवास करनेवाले मनुष्य इस प्रकार बातें कर रहे थे, इतनेमें ही नारदजीके कहे हुए प्रथम सर्ग—मूलरामायणका आरम्भसे ही गान प्रारम्भ हुआ। वहाँसे लेकर बीस सर्गोंतकका उन्होंने गान किया। तत्पश्चात् अपराह्णका समय हो गया। उतनी देरमें बीस सर्गोंका गान सुनकर भ्रातृवत्सल रघुनाथजीने भरतजीसे कहा—'इन दोनों बालकोंको सोनेके अठारह हजार सिक्के पुरस्कारके रूपमें दे दो। इसके अलावे यदि और किसी वस्तुके लिये भी इनकी इच्छा हो तो उसे भी शीघ्र ही दे दो।' भाईकी आज्ञा पाकर भरत उन दोनोंको अलग-अलग सुवर्ण-मुद्राएँ देने लगे; किन्तु उन दोनों भाइयोंने उन्हें नहीं लिया। वे विस्मित होकर कहने लगे—'इनका क्या होगा। हम वनवासी हैं। जंगली फल-फूलसे हमारा जीवन-निर्वाह होता है, फिर यह सोना-चाँदी वनमें ले जाकर हम क्या करेंगे।' उनकी बातें सुनकर सबके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ। श्रोतागण और श्रीरामचन्द्रजी—सभी आश्चर्यचकित हो गये। तब रघुनाथजी-को यह जाननेकी उत्सुकता हुई—'इन लोगोंने इस काव्यकी शिक्षा किससे प्राप्त की है?' इसलिये उन्होंने दोनों

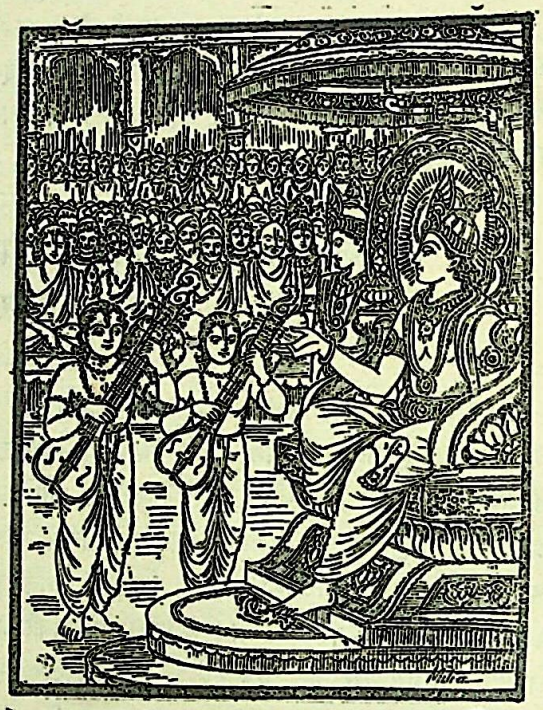

मुनिकुमारोंसे पूछा—'इस महाकाव्यकी श्लोक-संख्या कितनी है? इसकी समाप्ति कहाँपर हुई है? तथा इसके निर्माण करनेवाले मुनिश्रेष्ठ कौन हैं और कहाँ रहते हैं?'

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर मुनिकुमारोंने उत्तर दिया—'महाराज! जिस सम्पूर्ण चरित्रको हमने आपको सुनाया है, उस महान् काव्यके रचयिता भगवान् वाल्मीकि हैं। वे इस यज्ञमें पधारे हुए हैं। उनके बनाये इस महाकाव्यमें चौबीस हजार श्लोक और एक सौ उपाख्यान हैं। उन महात्माने आदिसे लेकर अन्ततक पाँच सौ सर्ग तथा छः काण्डोंका निर्माण किया है। इनके सिवा उन्होंने उत्तरकाण्डकी भी रचना की है। महर्षि वाल्मीकि ही हमलोगोंके गुरु हैं और उन्होंने ही आपके चरित्रको काव्यका रूप दिया है। इसमें आपके जीवनतककी सारी बातें आ गयी हैं। राजन्! यदि आपने इसे सुननेका विचार किया हो तो यज्ञ-कर्मसे अवकाश मिलनेपर इसके लिये निश्चित समय निकालिये और अपने भाइयोंके साथ बैठकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमित रूपसे सुनिये।' रघुनाथजीने कहा—'बहुत अच्छा, [ हम इस काव्यको सुनेंगे ]।' तत्पश्चात् उनकी आज्ञा ले दोनों भाई—कुश और लव प्रसन्नतापूर्वक उस स्थानपर गये, जहाँ मुनिवर वाल्मीकिजी ठहरे हुए थे। श्रीरामचन्द्रजी भी महात्मा मुनियों और राजाओंके साथ उस मधुर संगीतको सुननेके पश्चात् यज्ञशालामें चले गये।

इस प्रकार रघुनाथजी ऋषियों, राजाओं और वानरोंके साथ कई दिनोंतक वह उत्तम रामायण-गान सुनते रहे। उस कथासे ही उन्हें यह मालूम हुआ कि कुश और लव दोनों कुमार सीताके ही सुपुत्र हैं। यह जानकर सभामें बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीने सदाचारी एवं बुद्धिमान् दूतोंको बुलाया और कहा—'तुमलोग भगवान् वाल्मीकिके पास जाकर मेरी ओरसे कहो—'यदि सीताका चरित्र शुद्ध है, यदि उनमें किसी तरहका पाप नहीं है तो आपकी आज्ञासे वे यहाँ आकर जन-समुदायमें अपनी शुद्धता प्रमाणित करें।' तुम इस विषयमें महर्षि वाल्मीकि तथा सीताके हार्दिक अभिप्रायको भी जान लेना, क्या वे यहाँ आकर अपनी शुद्धिका विश्वास दिलाना चाहती हैं? इन सब बातोंको अच्छी तरह समझकर शीघ्र लौटो और मुझसे सब समाचार कहो। कल सवेरे मिथिलेशकुमारी जानकी यहाँ आयें और मेरा कलङ्क दूर करनेके लिये भरी सभामें शपथ करें।" रघुनाथजीके ये अद्भुत वचन सुनकर दूत 'जो आज्ञा' कहकर मुनिवर वाल्मीकिके समीप गये और अपने तेजसे प्रज्वलित होनेवाले उन परम कान्तिमान् महात्माको प्रणाम करके उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके कहे हुए वचन उन्हें मधुर एवं कोमल शब्दोंमें कह सुनाये। दूतोंकी बात सुनकर और श्रीरामके हार्दिक अभिप्रायको समझकर उन महातेजस्वी मुनिने कहा—'तुम्हारा कल्याण हो, ऐसा ही होगा। रघुनाथजी जो आज्ञा देते हैं, सीता वही करेंगी; क्योंकि पति स्त्रीके लिये देवता है।'

मुनिके ऐसा कहनेपर राजदूत लौट आये और उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीसे वाल्मीकिजीकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। इससे भगवान् श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने वहाँ आये हुए ऋषियों तथा राजाओंसे कहा—'आप सब लोग अपने शिष्यों और अनुचरोंके साथ कल सीताकी शपथ सुनें; दूसरे लोग भी जो सुनना चाहते हों, सुन लें।' महात्मा रघुनाथजीके वचन सुनकर समस्त महर्षियोंके मुखसे 'धन्य-धन्य' की ध्वनि गूँज उठी। सभी उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'नरश्रेष्ठ! इस पृथ्वीपर सभी उत्तम बातें केवल आपमें ही सम्भव हैं, दूसरे किसीमें नहीं।' इस प्रकार दूसरे दिन सीतासे शपथ लेनेका निश्चय करके शत्रुसूदन श्रीरामने सबको विदा किया।

रात बीती, सबेरा हुआ और महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी यज्ञशालामें पधारे। फिर उन्होंने समस्त ऋषियोंको बुलवाया। वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, विश्वामित्र, दीर्घतमा, महातपस्वी दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, वामन, दीर्घजीवी मार्कण्डेय, महायशस्वी मौद्गल्य, गर्ग, च्यवन, धर्मज्ञ शतानन्द, तेजस्वी भरद्वाज, अग्निपुत्र सुप्रभ, नारद, पर्वत, महायशस्वी गौतम तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले अन्य बहुतेरे महर्षि कौतूहलवश वहाँ एकत्रित हुए। पराक्रमी राक्षस और महाबली वानर भी वहाँ मौजूद थे। नाना देशोंसे पधारे हुए हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सीताकी शपथ सुननेको उपस्थित हुए। मुनिवर वाल्मीकिजीने जब सुना कि सभी लोग एकत्रित हो पत्थरकी भाँति निश्चल होकर बैठे हैं, तब वे सीताको साथ लेकर वहाँ आये। आगे-आगे मुनि थे और पीछे-पीछे सीता सिर झुकाये चली आ रही थीं। उनके हाथ जुड़े हुए थे और नेत्रोंसे आँसू गिर रहे थे। वे मन-ही-मन भगवान् श्रीरामका चिन्तन कर रही थीं।

उस समय दर्शकोंमें कुछ लोग श्रीरामको, कुछ सीताको और कुछ दोनोंकी ही प्रशंसा कर रहे थे। जन-समुदायके बीचमें सीताके साथ प्रवेश करके मुनिवर वाल्मीकि रघुनाथजीसे इस प्रकार बोले—'दशरथनन्दन! यह सीता उत्तम व्रतका पालन करनेवाली और धर्मपरायणा है। इसे आपने लोकापवादके भयसे मेरे आश्रमके समीप त्याग दिया था। अब सीता अपनी शुद्धताका विश्वास आपलोगोंको स्वयं दिला देगी। इसके लिये आप इसे आज्ञा दें। ये दोनों कुमार कुश और लव जानकीके गर्भसे जुड़वे पैदा हुए हैं। ये आपके ही पुत्र हैं और आपके ही समान दुर्धर्ष वीर हैं। यह मैं आपको सच्ची बात कह रहा हूँ। मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा भी कभी कोई पाप नहीं किया है और हजारों वर्षोंतक भारी तपस्या की है। यदि मिथिलेश-कुमारी सीतामें कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्याका कोई फल न मिले। मैंने अपनी पाँचों इन्द्रियों और मन-बुद्धिके द्वारा सीताकी शुद्धताका भलीभाँति निश्चय करके ही इसे अपने आश्रयमें ग्रहण किया था। यह मुझे जंगलमें एक झरनेके पास मिली थी। इसका आचरण सर्वथा शुद्ध है। पाप इसे छू भी नहीं सका है। यह पतिको ही देवता मानती है और इसके विचार परम पवित्र हैं। मैंने


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दिव्य दृष्टिसे यह जान लिया था कि आपने अपनी प्रियतमा सीताको सर्वथा विशुद्ध जानते हुए भी लोकापवादके भयसे ही त्याग दिया है।'

महर्षि वाल्मीकिके ऐसा कहनेपर रघुनाथजी सीताकी ओर एक बार दृष्टि डालकर उस जनसमुदायके बीच हाथ जोड़कर बोले—'ब्रह्मन्! आप धर्मके ज्ञाता हैं। सीताके सम्बन्धमें आप जो कुछ कहते हैं, वह सब ठीक है। आपके इन विशुद्ध वचनोंसे मैं जानकीकी शुद्धतापर विश्वास कर लेता हूँ। एक बार पहले भी मैंने देवताओंके सामने विदेहकुमारीकी परीक्षा करके इनकी पवित्रताका निश्चय कर लिया था। इन्होंने शपथ करके भी मुझे पूरा विश्वास दिला दिया था। तभी इन्हें मैं अपने साथ राजभवनमें लाया था; किन्तु आगे चलकर बड़े जोरका लोकापवाद उठा, जिसके कारण मुझे पुनः इनका त्याग करना पड़ा। इस प्रकार यह जानते हुए भी कि सीता सर्वथा निष्पाप हैं—समाजके भयसे मैंने इन्हें छोड़ दिया था; अतः आप मेरे इस अपराधको क्षमा करें। मैं यह भी जानता हूँ कि ये जुड़वे उत्पन्न हुए कुमार कुश और लव मेरे ही पुत्र हैं। तथापि जन-समुदायमें शुद्ध साबित हुई मिथिलेशकुमारीमें ही मेरा प्रेम हो सकता है।' रघुनाथजीका अभिप्राय जानकर सीताकी शपथके समय प्रधान-प्रधान देवता भी उपस्थित हो गये। आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, साध्य, महर्षि, नाग, सुपर्ण और सिद्ध—ये सभी प्रसन्नचित्त हो ब्रह्माजीको आगे करके वहाँ आ पहुँचे। देवताओं और ऋषियोंको देखकर नरश्रेष्ठ श्रीरघुनाथजी पुनः बोले—'यद्यपि मुझे महर्षि वाल्मीकिके निर्दोष वचनोंसे ही पूरा विश्वास हो गया है, तो भी इस जन-समाजके बीच विदेहकुमारीकी शुद्धता प्रमाणित हो जानेपर मुझे अधिक प्रसन्नता होगी।'

तदनन्तर दिव्य सुगन्ध फैलाकर मनको आनन्द देनेवाली परम पवित्र वायु चलने लगी। वहाँ जितने लोग एकत्रित हुए थे, सबका चित्त प्रसन्न हो गया। समस्त राष्ट्रोंसे आये हुए मनुष्योंने सत्ययुगके समान यह अद्भुत और अचिन्त्य घटना अपनी आँखों देखी। सीता गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए थीं। सबको उपस्थित जानकर वे हाथ जोड़े, दृष्टि और मुखको नीचे किये बोलीं—'मैं रघुनाथजीके सिवा दूसरे किसी पुरुषका [ स्पर्श तो दूर रहा ] मनसे चिन्तन भी नहीं करती; यदि यह सत्य है तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें। यदि मैं मन, वाणी और क्रियाके द्वारा केवल श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा करती हूँ तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें। भगवान् श्रीरामको छोड़कर मैं दूसरे किसी पुरुषको नहीं जानती; मेरी कही हुई यह बात यदि सत्य हो, तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें।'*

विदेहकुमारी सीताके इस प्रकार शपथ करते ही पृथ्वीसे एक अद्भुत सिंहासन प्रकट हुआ। वह बड़ा ही सुन्दर और दिव्य था। महान् पराक्रमी नाग उसे अपने सिरपर धारण किये हुए थे। उन नागोंका शरीर दिव्य था तथा वे दिव्य रत्नोंसे विभूषित थे। सिंहासनके साथ ही पृथ्वी देवी भी प्रकट हुईं। उन्होंने मिथिलेशकुमारी सीताको अपनी दोनों भुजाओंसे गोदमें उठा लिया और स्वागतपूर्वक उनका अभिनन्दन करके

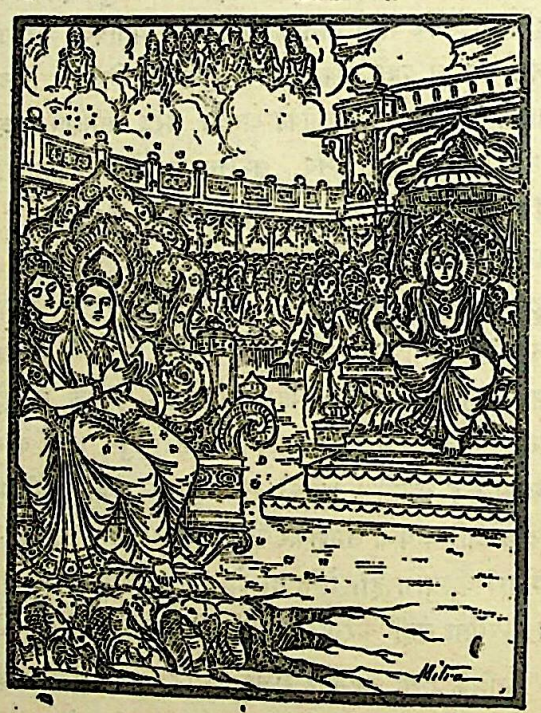

उन्हें उस सिंहासनपर बैठा दिया। सिंहासनपर विराजमान होकर जब सीतादेवी रसातलमें प्रवेश करने लगीं, तब उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी लगातार वृष्टि हुई। उस समय देवताओंके मुँहसे सहसा 'धन्य-धन्य'की ध्वनि सुनायी देने लगी। वे बोले—

* यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥ (९७। १४–१६)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


'सीते ! तुम धन्य हो, जिसका शील इतना सुन्दर और पवित्र है।' यज्ञमण्डपमें आये हुए मुनि और राजालोग यह अद्भुत घटना देखकर आश्चर्यसे भर गये। कोई हर्षनाद करने लगे और कोई ध्यानमग्न हो गये। कोई श्रीरामकी ओर निहारने लगे और कोई सीताकी ओर। कितने तो अपनी सुध-बुध खो बैठे। सीताका भूतल-प्रवेश देखकर वे सब हर्ष-शोक आदिमें डूब गये। थोड़ी देरतक वहाँका सारा जन-समुदाय मोहाच्छन्न-सा हो गया।

## श्रीरामचन्द्रजीका खेद, ब्रह्माजीका सान्त्वना देकर जाना और श्रीरामका शेष उत्तरकाण्ड सुनना

सीताके भूमिमें प्रवेश कर जानेपर श्रीरामचन्द्रजीके पास बैठे हुए सम्पूर्ण वानर और ऋषि-मुनि 'धन्य-धन्य' कहने लगे; किन्तु स्वयं भगवान् श्रीराम बहुत दुखी हुए। उनका मन उदास हो गया और वे गूलरके डंडेका सहारा लिये खड़े हो सिर झुकाये नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे। कुछ देरतक इस अवस्थामें रहकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—'आज मेरा मन अभूतपूर्व शोकमें डूबना चाहता है; क्योंकि इस समय मेरी आँखोंके सामनेसे मूर्तिमती लक्ष्मीके समान सीता अदृश्य हो गयीं। पहली बार जानकी समुद्र-पार लङ्कामें जाकर मेरी आँखोंकी ओट हुई थीं किन्तु जब वहाँसे भी मैं उन्हें लौटा लाया, तब पृथ्वीके भीतरसे ले आना कौन बड़ी बात है। भगवति वसुन्धरे ! तुम मेरी पूजनीया हो, मेरी सीताको लौटा दो। अन्यथा मैं अपना क्रोध दिखाऊँगा। उस समय तुम्हें मेरे प्रभावका ज्ञान होगा। देवि ! वास्तवमें तुम्हीं मेरी सास हो। राजा जनक हाथमें फाल लिये तुम्हींको जोत रहे थे, जिससे तुम्हारे भीतरसे सीताका प्रादुर्भाव हुआ, अतः या तो तुम सीताको लौटा दो अथवा मेरे लिये भी अपनी गोदमें जगह दो; क्योंकि पाताल हो या स्वर्ग, मैं सीताके साथ ही सुखी रह सकता हूँ।'

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर देवताओंसहित ब्रह्माजी बोले—'श्रीराम ! आप उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हैं। आपको अपने मनमें खेद नहीं मानना चाहिये। आप अपने पूर्व स्वरूपको स्मरण करें, साध्वी सीता सर्वथा शुद्ध हैं। वे सदा आपके ही परायण रहती हैं, अब पुनः परम धाममें आपकी उनसे भेंट होगी—इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है। अब इस सभामें मैं आपसे जो कुछ कहता हूँ, उसपर ध्यान दीजिये। आपके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाला यह काव्य, जिसे आपने सुना है, सब काव्योंसे उत्तम है। इसमें आपके जीवनका विस्तारके साथ वर्णन है तथा सीताके अन्तर्धान होनेके बाद जो भविष्यमें होनेवाली बातें हैं, उनका वर्णन भी महर्षि वाल्मीकिने उत्तरकाण्डमें कर दिया है। रघुनन्दन ! यह आदिकाव्य है और इसकी आधारशिला आप ही हैं—आपके ही जीवन-वृत्तान्तको लेकर इस काव्यकी रचना हुई है। रघुकुलकी शोभा बढ़ानेवाले आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा यशस्वी नहीं है, जो काव्योंके नायक होनेका गौरव प्राप्त कर सके। आपने तथा देवताओंके साथ मैंने भी इस काव्यका श्रवण किया है, यह दिव्य और अद्भुत है। इसमें कोई भी बात छिपायी नहीं गयी है। इस काव्यमें लिखी हुई सभी बातें सत्य हैं, अतः नरश्रेष्ठ ! आप धर्मपूर्वक एकाग्रचित्त होकर शेष रामायण-काव्यको भी सुन लीजिये। उसमें आपको अपने भविष्य चरित्रोंका चित्रण मिलेगा।'

इतना कहकर तीनों लोकोंके स्वामी ब्रह्माजी देवताओंके साथ अपने लोकको चले गये। तब परम तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वाल्मीकिसे कहा—'भगवन् ! ये ब्रह्मलोकके निवासी महर्षि उत्तरकाण्डका शेष अंश सुनना चाहते हैं, अतः मेरे भविष्य चरित्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले उत्तरकाण्डका पाठ कल सवेरे प्रारम्भ हो जाना चाहिये।' ऐसा निश्चय करके रघुनाथजीने जन-समुदायको विदा कर दिया और कुश तथा लवको साथ लेकर वे पर्णशालामें आये। वहाँ सीताकी चिन्ता करते-करते ही उन्होंने रात्रि व्यतीत की। रात्रि व्यतीत होनेपर जब प्रभातका समय हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने बड़े-बड़े मुनियोंको बुलाकर अपने दोनों पुत्रोंसे कहा—'अब तुम निःशङ्क होकर शेष रामायणका गान आरम्भ करो।' महात्मा महर्षियोंके यथास्थान बैठ जानेपर कुश और लवने भगवान्‌के भविष्य जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले उत्तरकाण्डका गान सुनाया।

इधर अपनी सत्यरूप सम्पत्तिके बलसे सीताजीके भूमिमें प्रवेश कर जानेपर भगवान् श्रीरामका मन बहुत दुखी हुआ। विदेहकुमारीको न देखनेसे उन्हें यह सारा संसार सूना जान पड़ने लगा। तदनन्तर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमललोचन श्रीरामने समस्त जन-समुदायको विदा करके सीताका चिन्तन करते हुए अयोध्यामें प्रवेश किया। उन्होंने सीताके सिवा दूसरी किसी स्त्रीसे विवाह नहीं किया। प्रत्येक यज्ञमें जब-जब धर्मपत्नीकी आवश्यकता होती, रघुनाथजी सीताकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनवा लिया करते थे। इस प्रकार राज्य करते हुए भगवान् श्रीरामका समय सदा धर्म-पालनके प्रयत्नमें ही बीतता था। उनके राज्यमें समयपर वर्षा होती थी, कभी अकाल नहीं पड़ता था। सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न दिखायी देती थीं तथा नगर और प्रान्तमें निवास करनेवाले मनुष्य हृष्ट-पुष्ट रहते थे। श्रीरामके राज्य करते समय किसीकी अकाल-मृत्यु नहीं होती थी, प्राणियोंको कोई रोग नहीं सताता था और संसारमें कोई उपद्रव खड़ा नहीं होता था।

इसके बाद दीर्घकाल व्यतीत होनेपर पुत्र-पौत्रोंसे घिरी हुई परम यशस्विनी श्रीराम-माता कौसल्या कालधर्मके अनुसार मृत्युको प्राप्त हुईं। सुमित्रा तथा कैकेयीने भी उन्हींका अनुसरण किया। वे सब रानियाँ नाना प्रकारके धर्मोंका अनुष्ठान करके स्वर्गमें गयीं और बड़ी प्रसन्नताके साथ राजा दशरथसे मिलीं। उन्हें समस्त धर्मोंका पूरा-पूरा फल प्राप्त हुआ। रघुनाथजी समय-समयपर अपनी सभी माताओंके निमित्त बिना किसी भेद-भावके तपस्वी ब्राह्मणोंको बड़े-बड़े दान दिया करते थे। श्राद्धमें उपयोगी उत्तम-उत्तम वस्तुएँ ब्राह्मणोंको देते तथा पितरों और देवताओंको सन्तुष्ट करनेके लिये बड़े-बड़े दुस्तर यज्ञोंका अनुष्ठान करते थे। इस प्रकार यज्ञोंके द्वारा सर्वदा विविध धर्मोंका पालन करते हुए रघुनाथजीके कई हजार वर्ष सुखपूर्वक बीत गये।

## भरत और लक्ष्मणके पुत्रोंका भिन्न-भिन्न देशोंके राज्यपर अभिषेक

कुछ कालके पश्चात् केकय-देशके राजा युधाजित्ने अपने गुरु ( पुरोहित ) ब्रह्मर्षि गार्ग्यको, जो अङ्गिराके पुत्र तथा अत्यन्त तेजस्वी थे, महात्मा रघुनाथजीके पास भेजा। उनके साथ श्रीरामचन्द्रजीको प्रेमोपहारके रूपमें अर्पण करनेके लिये उन्होंने दस हजार घोड़े, बहुत-से कम्बल, तरह-तरहके रत्न, विचित्र-विचित्र वस्त्र और सुन्दर आभूषण भी दिये थे। परम बुद्धिमान् श्रीरामने जब सुना कि मामा अश्वपतिके भेजे हुए महर्षि गार्ग्य बहुमूल्य भेंट-सामग्री लिये अयोध्यामें पधार रहे हैं, तब उन्होंने भाइयोंके साथ एक कोस आगे बढ़कर उनकी अगवानी की और जैसे इन्द्र बृहस्पतिकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार श्रीरामने महर्षि गार्ग्यका स्वागत-सत्कार करके राजाका दिया हुआ वह धन स्वीकार किया। इसके बाद मामाका कुशल-मङ्गल पूछकर वे मुनिको अयोध्यापुरीमें ले आये और उन्हें एक उत्तम आसनपर बिठाकर पूछने लगे—'भगवन्! मामाने मेरे लिये क्या संदेश दिया है? जिसे कहनेके लिये स्वयं आपने यहाँतक पधारनेका कष्ट किया?' श्रीरामके वचन सुनकर महर्षिने कहा—'महाबाहो! आपके मामाने कहा है कि सिन्धु-नदीके दोनों किनारोंके देश बड़े ही सुन्दर हैं। वहाँ फल-मूल बहुत होते हैं, जिनके कारण वहाँकी शोभा बहुत बढ़ी हुई है। शैलूष नामवाले गन्धर्वके तीन करोड़ पुत्र, जो अत्यन्त बलवान् हैं, उन देशोंकी रक्षा करते हैं। आप उन्हें जीतकर गन्धर्वोंकी नगरीको अपने अधिकारमें कर लें और दोनों किनारोंके देशोंमें अपनी ओरसे एक-एक नगर बसायें। आप ही लोग ऐसा करनेमें समर्थ हैं, दूसरोंकी वहाँतक पहुँच नहीं है।'

महर्षिके मुँहसे मामाका संदेश सुनकर भगवान् श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और 'बहुत अच्छा' कहकर उन्होंने भरतकी ओर देखा। फिर हाथ जोड़कर ब्रह्मर्षिसे कहा—'द्विजवर! भरतके ये दोनों कुमार—तक्ष और पुष्कल बड़े वीर हैं। ये भरतको आगे रखकर सेनाके साथ सिंध-देशमें जायँगे और गन्धर्वके पुत्रोंको मारकर पृथक्-पृथक् दो नगर बसायेंगे। भरत अत्यन्त धार्मिक हैं, उन नगरोंमें अपने पुत्रोंको अभिषिक्त करके ये फिर मेरे पास लौट आयँगे।' ब्रह्मर्षिसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने भरतको सेनाके साथ वहाँ जानेकी आज्ञा दी और दोनों कुमारोंका पहले ही राज्याभिषेक कर दिया। तत्पश्चात् उत्तम नक्षत्रमें अङ्गिराके पुत्र महर्षि गार्ग्यको आगे करके सेना और कुमारोंके साथ भरतने यात्रा की। भगवान् श्रीराम भी दूरतक उनके साथ-साथ गये। उस सेनामें प्रत्येक योद्धा हर्ष और उत्साहसे भरा हुआ तथा शरीरसे भी पुष्ट था। डेढ़ महीनेका रास्ता तय करके वह विशाल सेना केकय-देशमें पहुँची। मार्गमें किसीको किञ्चित् भी कष्ट नहीं हुआ। जब केकयराज युधाजित्ने सुना कि महर्षि गार्ग्यके साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्वयं भरत सेनापति होकर आ रहे हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे भारी जन-समुदायके साथ नगरसे निकलकर भरतसे मिले और उनके साथ शीघ्रतापूर्वक गन्धर्व-देशकी ओर चले। भरत और युधाजित् दोनोंने अपनी-अपनी सेनाएँ साथ लेकर बड़ी तीव्र गतिसे गन्धर्वोंकी नगरीपर आक्रमण किया। भरतका आगमन सुनकर महापराक्रमी गन्धर्व युद्धकी इच्छासे एकत्रित होकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। फिर तो दोनों ओरकी सेनाओंमें बड़ा भयंकर और रोंगटे खड़े कर देनेवाला युद्ध छिड़ गया। यह संघर्ष लगातार सात राततक चलता रहा; परन्तु दोनोंमेंसे किसी भी पक्षकी विजय नहीं हुई। चारों ओर खूनकी नदियाँ वह चलीं। तलवार, शक्ति और धनुष उस नदीमें विचरनेवाले ग्राहोंके समान जान पड़ते थे। रक्तकी धारामें मनुष्योंकी लाशें बह जाती थीं।

तदनन्तर भरतने क्रोधमें भरकर गन्धर्वोंपर काल-देवताके भयंकर अस्त्रका, जो संवर्त नामसे प्रसिद्ध है, प्रयोग किया। उन्होंने गन्धर्वोंको काल-पाशके द्वारा बाँधकर संवर्तास्त्रके द्वारा नष्ट कर दिया। इस प्रकार महात्मा भरतने तीन करोड़ गन्धर्वोंका क्षणभरमें सफाया कर डाला। ऐसा भयंकर युद्ध देवताओंने भी कभी देखा हो, ऐसा उन्हें याद नहीं आता था। समस्त गन्धर्वोंके मारे जानेपर कैकेयीकुमार भरतने दो समृद्धिशाली नगर बसाये, वे दोनों ही बड़े सुन्दर थे। गन्धर्व-देशके नगरका 'तक्षशिला' नाम रखकर उन्होंने तक्षको वहाँका राजा बनाया और गान्धार-देशमें पुष्कलावत नगर बसाकर उसका राज्य पुष्कलको सौंप दिया। वे दोनों ही नगर धन-धान्य और रत्नोंसे भरे थे। सुन्दर-सुन्दर वन और उपवन उनकी शोभा बढ़ाते थे। गुणोंमें वे एक-दूसरेसे बढ़े हुए-से जान पड़ते थे। दोनों स्थानोंकी शोभा मनोहर थी। वहाँका व्यवहार शुद्ध और सरल था। नगरोंके बीचमें बगीचे, सवारियोंके अड्डे और अलग-अलग बाजार थे। अच्छे-अच्छे भवन तथा सतमहले मकान वहाँकी शोभा बढ़ा रहे थे। अनेकों शोभा-सम्पन्न देवमन्दिरों तथा ताल, तमाल, तिलक और मौलसिरी आदिके वृक्षोंसे भी उन दोनों नगरोंकी रमणीयता बढ़ गयी थी। पाँच वर्षोंमें उन राजधानियोंको अच्छी तरह आबाद करके महाबाहु भरत पुनः अयोध्यामें लौट आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने द्वितीय धर्मराजके समान महात्मा श्रीरघुनाथजीको प्रणाम किया और गन्धर्वोंके मारे जानेका यथावत् समाचार कह सुनाया।

भरतके मुँहसे वहाँका सब वृत्तान्त सुनकर भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! तुम्हारे दोनों पुत्र अङ्गद और चन्द्रकेतु धर्मके ज्ञाता हैं। इनमें राज्यकी रक्षाके लिये उपयुक्त दृढ़ता और पराक्रम है; अतः मैं इनका भी राज्याभिषेक करूँगा। तुम इनके लिये किसी अच्छे देशका चुनाव करो, जो सुन्दर होनेके साथ ही विघ्न-बाधाओंसे रहित हो, जहाँ ये दोनों धनुर्धर वीर आनन्दपूर्वक रह सकें तथा जहाँ निवास करनेसे दूसरे राजाओंको उद्वेग न हो, किसी आश्रमको भी कष्ट न पहुँचे और हमलोगोंको किसीकी दृष्टिमें अपराधी न बनना पड़े।' श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर भरतने उत्तर दिया—'आर्य! कारुपथ नामक देश बड़ा सुन्दर है। वहाँ किसी प्रकारकी रोग-व्याधिका भय नहीं है। वहीं महात्मा अङ्गदके लिये नयी राजधानी बसायी जाय तथा चन्द्रकेतुके रहनेके लिये चन्द्रकान्त नामका नगर बनवाया जाय, जो सुन्दर और आरोग्यवर्धक हो।' भरतकी यह बात श्रीरामने स्वीकार की और कारुपथ देशको अपने अधीन करके अङ्गदको वहाँका राजा बना दिया। अनायास ही अद्भुत पराक्रम करनेवाले रघुनाथजीने अङ्गदके लिये अङ्गदीया नामकी रमणीय पुरी बसायी, जो सब ओरसे सुरक्षित थी। चन्द्रकेतुका मल्लके समान हृष्ट-पुष्ट शरीर था, उनके लिये मल्लदेशमें 'चन्द्रकान्ता' नामसे विख्यात दिव्य पुरीका निर्माण किया गया, जो अपनी शोभासे स्वर्गको मात करती थी। इससे अजेय वीर श्रीराम, लक्ष्मण और भरतको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने स्वयं जाकर दोनों कुमारोंका अभिषेक किया। फिर उन दोनोंको सावधान करके अङ्गदको पश्चिम तथा चन्द्रकेतुको उत्तर दिशामें भेजा गया। अङ्गदके साथ स्वयं लक्ष्मण गये और भरत चन्द्रकेतुके सहायक हुए। लक्ष्मणने अङ्गदीया पुरीमें एक वर्षतक निवास किया। उनका दुर्धर्ष पुत्र जब राज्यको दृढ़तापूर्वक सँभालने लगा, तब वे पुनः अयोध्याको लौट आये। भरत भी चन्द्रकान्ता नगरीमें एक वर्षसे कुछ अधिक कालतक ठहरे रहे। जब चन्द्रकेतुका राज्य दृढ हो गया, तब वे फिर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवामें आ गये। लक्ष्मण तथा भरत दोनोंका रघुनाथजीके चरणोंमें अनुराग था, दोनों ही परम धार्मिक थे। श्रीरामकी सेवामें रहते उन्हें बहुत समय बीत गया, पर स्नेहवश उनको कुछ मालूम न हुआ। वे पुरवासियोंके कार्यमें सदा ही संलग्न रहते और धर्म-पालनके लिये प्रयत्न किया करते थे। इस प्रकार उनके दस हजार वर्ष व्यतीत हो गये। वे तीनों भाई धर्ममयी अयोध्यापुरीमें वैभवसे सम्पन्न होकर रहते थे; उनके मनकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो गयी थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## काल और दुर्वासाका आगमन तथा श्रीरामके त्याग देनेपर लक्ष्मणका सशरीर परलोक-गमन

तदनन्तर कुछ समय और बीत जानेपर, जब कि श्रीराम धर्मपूर्वक अयोध्यामें राज्य कर रहे थे, साक्षात् काल तपस्वीके रूपमें राजभवनके द्वारपर आया। वहाँ लक्ष्मणको उपस्थित देख वह बोला—'मैं अमिततेजस्वी महर्षि अतिबलका दूत हूँ। मेरा नाम महाबल है, मैं कुछ कार्यवश भगवान् श्रीरामसे मिलनेके लिये आया हूँ।' उसकी बात सुनकर लक्ष्मण बड़ी शीघ्रताके साथ अंदर गये और तपस्वीके आगमनका समाचार श्रीरामचन्द्रजीको निवेदन करते हुए बोले—'भगवन्! एक ऋषि दूतके रूपमें आपसे मिलनेके लिये आये हैं। वे अपनी तपस्यासे सूर्यके समान दिप रहे हैं।' लक्ष्मणकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'तात! उन महातेजस्वी मुनिको भीतर बुला ले आओ।' 'बहुत अच्छा' कहकर लक्ष्मणने उनकी आज्ञा स्वीकार की और अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाले मुनिको श्रीरामके पास बुला ले आये। महातेजस्वी रघुनाथजीने अर्घ्य आदि निवेदन करके महर्षिकी पूजा की और शान्तभावसे उनकी कुशल पूछते हुए कहा—'महामते! आपका स्वागत है। आप जिनके दूत होकर यहाँ पधारे हैं, उनका संदेश सुनाइये।' मुनिने उत्तर दिया—'यदि आप हमारे हितपर दृष्टि रखें तो जहाँ हम और आप दो ही आदमी रहें, वहीं इस बातको कहना उचित है। यदि आप मुनिश्रेष्ठ अतिबलके वचनोंपर ध्यान दें तो आपको यह भी प्रतिज्ञा करनी होगी कि जो कोई मनुष्य हम दोनोंकी बातचीत सुन ले अथवा हमें वार्तालाप करते देख ले, वह आपके द्वारा मारा जायगा।' श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर इस बातके लिये प्रतिज्ञा की और लक्ष्मणसे कहा—'महाबाहो! द्वारपालको विदा कर दो और स्वयं ड्योढ़ीपर खड़े होकर पहरा दो। जो मेरी और मुनिकी बातचीत सुनेगा या बात करते समय हमें देख लेगा, वह मेरे द्वारा मारा जायगा।' इस प्रकार लक्ष्मणको दरवाजेपर तैनात करके रघुनाथजी बोले—'मुने! अब आप निःशङ्क होकर अपनी बात कहिये, अपने हृदयका अभिप्राय प्रकट कीजिये।'

मुनिने कहा—"राजन्! मुझे ब्रह्माजीने भेजा है। मैं आपका पुत्र हूँ और आपके पुरातन स्वरूपसे मायाद्वारा प्रकट हुआ हूँ। मेरा नाम काल है। मैं सबका संहार करनेवाला हूँ। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजीने आपको यह संदेश दिया है—'सौम्य! आपने लोकोंकी रक्षाके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हो गयी। पूर्वकालमें समस्त लोकोंको मायाद्वारा अपनेमें ही लीन करके आपने महासमुद्रके जलमें शयन किया था, फिर इस सृष्टिके प्रारम्भमें सबसे पहले मुझे प्रकट किया और प्रजाकी सृष्टि रचनेका भार मुझपर रखा। तब मैंने आप जगदीश्वरकी उपासना करके प्रार्थना की—'प्रभो! आप सम्पूर्ण भूतोंमें रहकर उनकी रक्षा कीजिये; क्योंकि आप ही मुझे ज्ञान और क्रिया-शक्ति प्रदान करनेवाले हैं।' तब आप मेरा अनुरोध स्वीकार करके प्राणियोंकी रक्षाके लिये अपरिमेय सनातन पुरुषरूपसे जगत्पालक विष्णुके रूपमें प्रकट हुए। फिर आपहीने अदितिके गर्भसे परम पराक्रमी वामनरूपमें अवतार लिया। तबसे आप अपने भाई इन्द्रादि देवताओंकी शक्ति बढ़ाते और आवश्यकता पड़नेपर उनकी सहायता करते रहते हैं। जगदीश्वर! जब रावणके द्वारा प्रजाका विनाश होने लगा, उस समय आपने उस निशाचरका वध करनेकी इच्छासे मनुष्य-शरीरमें अवतार लेनेका निश्चय किया और स्वयं ही ग्यारह हजार वर्षोंतक मर्त्यलोकमें निवास करनेकी अवधि निश्चित की थी। अब वह समय पूरा हो गया है। यदि और अधिक कालतक यहाँ रहकर प्रजाजनोंका पालन करनेकी इच्छा हो तो आप यहाँ रह सकते हैं; अथवा यदि परमधाममें पधारनेका विचार हो तो आप पुनः विष्णुरूपमें प्रतिष्ठित होकर सम्पूर्ण देवताओंको सनाथ एवं निश्चिन्त करें।' ऐसा ब्रह्माजीने कहा है।"

कालके मुँहसे ब्रह्माजीका संदेश सुनकर रघुनाथजी हँसते हुए बोले—'काल! [तुम्हारे द्वारा] देवाधिदेव ब्रह्माजीकी ये अद्भुत बातें सुननेको मिलीं; इसलिये तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैंने [स्वयं] तुम्हारा चिन्तन किया था, अतः तुम्हारा आगमन मेरी हार्दिक इच्छाके अनुकूल ही हुआ है। तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये मेरा यह अवतार हुआ था। [अब इसका उद्देश्य पूरा हो गया;] अतः मैं जहाँसे आया था, वहीं चलूँगा।'

इन दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि महर्षि दुर्वासा राजद्वारपर पहुँचकर लक्ष्मणसे बोले—'मुझे शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीसे मिलाओ, देर होनेसे मेरे कार्यमें बाधा पड़ेगी।' मुनिके वचन सुनकर लक्ष्मणने उन्हें प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! रघुनाथजीको इस समय अवकाश नहीं है। थोड़ी देरतक प्रतीक्षा कीजिये अथवा मुझसे कहिये,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


क्या कार्य है ? [ यदि मेरे योग्य हो तो ] मैं स्वयं ही आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ।' यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ क्रोधसे

तमतमा उठे और लक्ष्मणसे बोले—'सुमित्राकुमार ! तुम इसी क्षण श्रीरामचन्द्रजीको मेरे आनेकी सूचना दो, नहीं तो इस राज्य और नगरके साथ ही तुमको और श्रीरामको भी शाप दे दूँगा ।' दुर्वासाका यह भयंकर वचन सुनकर लक्ष्मणने सोचा—'अकेले मेरी ही मृत्यु हो, यह अच्छा है; सबका विनाश नहीं होना चाहिये ।' ऐसा निश्चय करके लक्ष्मणने रघुनाथजीसे दुर्वासाके आगमनका समाचार कहा । लक्ष्मणकी बात सुनकर श्रीराम कालको विदा करके तुरंत ही निकले और अत्रिपुत्र दुर्वासासे मिले । उन्होंने उन तेजस्वी महात्माको प्रणाम करके हाथ जोड़कर पूछा—'भगवन् ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ?' दुर्वासाने कहा—'धर्मवत्सल ! सुनिये—मैंने एक हजार वर्षतक उपवास किया है, आज उसकी समाप्तिका दिन है; अतः आपके यहाँ जो भी अन्न तैयार हो, उसमेंसे मैं भोजन करनो चाहता हूँ ।' मुनिकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने महर्षिको जो कुछ रसोईमें बना था, भोजन कराया । अमृतके समान मधुर अन्न ग्रहण करके दुर्वासा-मुनि तृप्त हुए और रघुनाथजीको साधुवाद दे अपने आश्रमको चले गये । इसके बाद कालके वचनोंका स्मरण करके उन्हें दुःख हुआ और उनपर बुद्धिपूर्वक विचार करके वे इस निर्णयपर पहुँचे कि अब यह सब कुछ भी न रहेगा । ऐसा सोचकर वे चुप हो रहे ।

श्रीरामचन्द्रजीको खिन्न देखकर लक्ष्मणने कहा—'महाबाहो ! आपको मेरे लिये संतप्त नहीं होना चाहिये; क्योंकि कालकी ऐसी ही गति है । यह पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार निश्चित होती है । आप चिन्ता छोड़ मेरा वध करके अपनी प्रतिज्ञाका पालन कीजिये । प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाले मनुष्योंको नरकमें जाना पड़ता है । इसलिये महाराज ! यदि आपका मुझपर प्रेम हो, यदि आप मुझे कृपापात्र समझते हों तो निःशङ्क होकर मुझे प्राणदण्ड दीजिये और इस प्रकार अपने धर्मकी वृद्धि कीजिये ।' लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीराम विचलित हो उठे और उन्होंने मन्त्रियों तथा पुरोहितको बुलाकर उनसे तापस मुनिके सामने की हुई अपनी प्रतिज्ञा तथा दुर्वासाके आगमनका सारा समाचार कह सुनाया । यह सुनकर मन्त्री और उपाध्याय सब चुप हो गये, तब महातेजस्वी महर्षि वसिष्ठने कहा—'महाबाहो ! काल बड़ा प्रबल है; तुम लक्ष्मणका परित्याग कर दो, प्रतिज्ञा झूठी न करो; क्योंकि उसके नष्ट होनेपर धर्मका नाश होता है और धर्मका लोप हो जानेपर देवता, ऋषि तथा चराचर प्राणियोंसहित समूची त्रिलोकीका विनाश हो सकता है; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । अतएव नरश्रेष्ठ ! तुम त्रिभुवनकी रक्षापर दृष्टि रखते हुए लक्ष्मणको त्याग दो । इससे सम्पूर्ण जगत्‌को तुम सुखी कर सकते हो ।'

पुरोहितकी धर्मानुकूल बात सुनकर, जो वहाँ एकत्रित हुए सभीको सम्मत थी, श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्राकुमार ! धर्मका नाश न हो, इसके लिये मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ । साधु पुरुषोंका त्याग किया जाय अथवा वध, दोनों एक-से हैं ।' रघुनाथजीके इतना कहते ही लक्ष्मणके नेत्रोंमें आँसू भर आये । वे तुरंत वहाँसे चल दिये, अपने घरतकमें नहीं गये । सरयूके किनारे पहुँचकर उन्होंने आचमन किया और हाथ जोड़ सम्पूर्ण इन्द्रियोंको काबूमें करके प्राणवायुको स्थिर कर लिया । लक्ष्मणने योगयुक्त होकर साँस लेना बंद कर दिया है—यह देख इन्द्र आदि देवता, ऋषि तथा अप्सराएँ उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं । महाबली लक्ष्मण अपने शरीरके साथ ही मनुष्योंकी दृष्टिसे ओझल हो गये । देवराज इन्द्र उन्हें साथ लेकर स्वर्ग पधारे । भगवान् विष्णुके चतुर्थ अंश लक्ष्मणको आया देख सभी देवता हर्षमें भर गये और उन सबने प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मणकी पूजा की ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## श्रीरामचन्द्रजीका भाइयों, पुरवासियों तथा सुग्रीव आदि वानरों एवं रीछोंके साथ परधाम जानेका निश्चय

लक्ष्मणका त्याग करके श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा दुःख हुआ । वे पुरोहितों, मन्त्रियों एवं महाजनोंसे बोले—'आज मैं यहाँके राज्यपर धर्मानुरागी भाई भरतका अभिषेक करूँगा और इन्हें अयोध्याका स्वामी बनाकर आज ही लक्ष्मणके पथका अनुसरण करूँगा ।' रघुनाथजीकी यह बात सुनकर प्रजावर्गके लोग धरतीपर माथा टेककर पड़ गये । वे सब-के-सब प्राणहीन-से हो रहे थे । भरतका तो होश ही उड़ गया; वे राज्यकी निन्दा करते हुए बोले—'राजन् ! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, मुझे आपके बिना राज्य नहीं

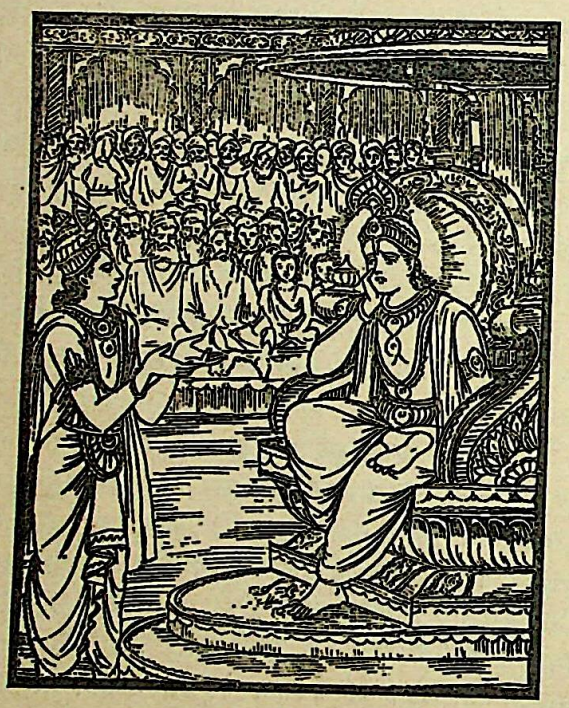

चाहिये । कुश और लवका राज्याभिषेक कीजिये । दक्षिण-कोसलमें कुशको और उत्तर-कोसलमें लवको राजा बनाइये । तेज चलनेवाले दूत शीघ्र ही शत्रुघ्नके पास भी जायँ और उन्हें हमलोगोंकी इस महायात्राका वृत्तान्त सुनायें । इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये ।'

भरतकी बात सुनकर तथा नगर-निवासियोंको नीचे मुँह किये दुःखसे सन्तप्त होते देख महर्षि वसिष्ठने कहा—'वत्स श्रीराम ! पृथ्वीपर पड़े हुए इन प्रजाजनोंकी ओर देखो, इनका अभिप्राय जानकर उसीके अनुसार कार्य करो; इनकी इच्छाके विपरीत करके इन बेचारोंका दिल न दुखाओ ।' वसिष्ठजीके कहनेसे रघुनाथजीने प्रजाजनोंको उठाया और सबसे पूछा 'मुझे क्या करना चाहिये ?' तब प्रजाजनोंने कहा—'रघुनन्दन ! आप जहाँ जायँगे, वहाँ हम भी साथ-साथ चलेंगे । यदि पुरवासियोंपर आपका प्रेम और स्नेह हो तो हम सभी अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ आपके पीछे-पीछे चलनेको उद्यत हैं । यदि आप हमें त्याग देनेयोग्य नहीं समझते तो तपोवन, दुर्गम स्थान, नदी अथवा समुद्रमें—जहाँ भी आप जायँ, हम सबको साथ ले चलें । यही हमारे ऊपर आपकी सबसे बड़ी कृपा होगी, यही सर्वोत्तम वरदान होगा । आपके पीछे चलनेमें ही हमें सदा हार्दिक प्रसन्नता होगी ।' पुरवासियोंकी दृढ भक्ति देख श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर उनकी इच्छाका अनुमोदन किया और अपने कर्तव्यका निश्चय करके उन्होंने उसी दिन दक्षिण-कोसलके राज्यपर कुशको और उत्तर-कोसलके सिंहासनपर लवको अभिषिक्त कर दिया । इस प्रकार दोनों पुत्रोंका अभिषेक कर रघुनाथजीने उन्हें अपने-अपने नगरोंमें रवाना किया और महात्मा शत्रुघ्नके पास दूत भेजा ।

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर शीघ्रगामी दूत तुरंत मथुरापुरीको चल दिये । उन्होंने रास्तेमें कहीं भी मुकाम नहीं किया । तीन दिन और तीन रात लगातार चलकर वे मथुरा पहुँचे और अयोध्याकी सारी बातें उन्होंने शत्रुघ्नसे कह सुनायीं । श्रीरामकी प्रतिज्ञा, लक्ष्मणका परित्याग, दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक तथा पुरवासियोंका श्रीरामके साथ जानेका निश्चय आदि सब बातें बताकर दूतोंने यह भी कहा कि परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामने कुशके लिये विन्ध्य-पर्वतके किनारे कुशावती नामक रमणीय नगरीका निर्माण कराया है तथा लवके लिये श्रावस्ती नामसे प्रसिद्ध सुन्दर पुरी बसायी है । इस प्रकार सब बातें निवेदन करके दूतोंने कहा—'राजन्! शीघ्रता कीजिये ।' अपने कुलका भयंकर संहार होनेवाला है—यह सुनकर शत्रुघ्नने समस्त प्रजा तथा काञ्चन नामक पुरोहितको बुलाया और उनसे सब बातें यथावत् कह सुनायीं । इसके बाद राजा शत्रुघ्नने अपने दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक किया । सुबाहुको मथुराका राज्य मिला और शत्रुघातीको वैदिशका । मथुराकी सेनाके दो भाग करके उन्होंने दोनों पुत्रोंको बाँट दिये तथा धनका भी विभाग करके उन दोनोंको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी-अपनी राजधानीमें स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् शत्रुघ्न एकमात्र रथ लेकर अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए। पुरीमें पहुँचकर उन्होंने देखा, महात्मा श्रीराम अपने तेजसे अग्निके समान दमक रहे हैं। उनके शरीरपर महीन रेशमी वस्त्र शोभा पा रहा है तथा वे अविनाशी महर्षियोंके साथ विराजमान हैं। निकट जा हाथ जोड़कर उन्होंने रघुनाथजीको प्रणाम किया और धर्मका चिन्तन करते हुए इन्द्रियोंको काबूमें करके वे धर्मके ज्ञाता श्रीरामसे बोले—'रघुनन्दन! मैंने अपने दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक कर दिया है और आपके साथ चलनेका दृढ़ निश्चय करके मैं यहाँ आया हूँ। आज इसके विपरीत आप कुछ न कहियेगा; क्योंकि इससे बढ़कर मेरे लिये कोई दूसरा दण्ड न होगा। मैं नहीं चाहता कि मेरे द्वारा आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन हो।' शत्रुघ्नका दृढ़ विचार जान श्रीरामचन्द्रजीने 'अच्छा' कहकर उन्हें चलनेकी स्वीकृति दे दी।

तत्पश्चात् रघुनाथजीके लीला-संवरणका समय जानकर देवता, ऋषि और गन्धर्वोंसे उत्पन्न हुए कामरूपी वानर, रीछ तथा राक्षसगण झुंड-के-झुंड वहाँ आ पहुँचे। वे बोले—'राजन्! हम भी आपके साथ चलनेके लिये आये हैं। यदि आप हमें साथ लिये बिना ही चले जायँगे तो आपका यह कार्य हमलोगोंको यमदण्डके प्रहारसे मार गिरानेके समान होगा।' इसी बीचमें महाबली सुग्रीव भी आ गये और भगवान्‌को विधिवत् प्रणाम करके अपना अभिप्राय निवेदन करनेके लिये उद्यत हो इस प्रकार बोले—'महाराज! मेरा भी आपके साथ ही चलनेका निश्चय है। मैं वीरवर अङ्गदको राज्यपर अभिषिक्त करके आया हूँ।' सुग्रीव आदि सभी वानरोंकी बातें सुनकर भगवान्‌ने मुसकराते हुए उन्हें स्वीकृति दे दी! इसके बाद वे राक्षसराज विभीषणसे बोले—'निशाचरराज! जबतक संसारकी प्रजा जीवन धारण करेगी तबतक तुम लङ्कामें जीवित रहोगे। चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी एवं मेरी कथा जबतक इस जगत्‌में कायम रहेगी तबतक भूमण्डलपर तुम्हारा राज्य बना रहेगा। मैंने मित्रभावसे ये बातें तुमसे कही हैं। तुम संसारमें रहकर धर्मके अनुसार प्रजाकी रक्षा करना तथा मेरी बातका उत्तर न दो। इसके सिवा मैं तुमसे एक बात और कहना चाहता हूँ। हमारे इक्ष्वाकु-कुलके देवता हैं—भगवान् जगन्नाथ (श्रीशेषशायी भगवान् विष्णु)। इन्द्र आदि देवता भी उनकी निरन्तर आराधना करते रहते हैं। तुम भी सदा उनकी पूजा करते रहना।' राक्षसराज विभीषणने रघुनाथजीकी आज्ञाको अपने हृदयमें धारण किया और 'बहुत अच्छा' कहकर उसका पालन स्वीकार किया। विभीषणसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीसे बोले—'वानरश्रेष्ठ! तुमने दीर्घकालतक जीवित रहनेका निश्चय किया है, अपनी इस प्रतिज्ञाको व्यर्थ न करो। संसारमें जबतक मेरी कथाओंका प्रचार रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।' महात्मा रघुनाथजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जीको बड़ा हर्ष हुआ और वे इस प्रकार बोले—'भगवन्! संसारमें जबतक आपकी पावन कथाका प्रचार रहेगा, तबतक आपके आदेशका पालन करता हुआ मैं इस पृथ्वीपर ही रहूँगा।' इसके बाद भगवान्‌ने वृद्ध जाम्बवान्, मैन्द तथा द्विविदसे भी कहा—'जबतक कलियुग न आ जाय, तबतक तुम सब लोग जीवन धारण करो।' इन लोगोंसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी अन्य सभी रीछों और वानरोंसे बोले—'मैं तुमलोगोंकी बातें स्वीकार करता हूँ, तुम सभी मेरे साथ चलो।'

## भाइयोंसहित श्रीरामका विष्णुस्वरूपमें प्रवेश तथा साथ आये हुए सब लोगोंको सन्तानक-लोककी प्राप्ति

तदनन्तर रात्रि बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब विशाल वक्षःस्थलसे सुशोभित महायशस्वी कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी पुरोहितसे बोले—'मेरे अग्निहोत्रकी प्रज्वलित आग ब्राह्मणोंके साथ आगे-आगे चले। लंबे मार्गकी इस यात्राके समय मेरे वाजपेय यज्ञका सुन्दर छत्र भी चलना चाहिये।' तत्पश्चात् तेजस्वी वसिष्ठमुनिने महाप्रस्थान कालके लिये उचित समस्त धार्मिक क्रियाओंका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया। फिर भगवान् श्रीराम सूक्ष्म वस्त्र धारण किये दोनों हाथोंमें कुश लेकर वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते सरयूनदीके तटकी ओर चले। उस समय वे वेदपाठके सिवा किसीसे भी कोई बात नहीं करते थे। चलनेके अतिरिक्त उनमें और कोई चेष्टा दिखायी नहीं देती थी तथा वे लौकिक सुखका परित्याग करके देदीप्यमान सूर्यकी भाँति घरसे निकलकर सरयूके पथपर आगे बढ़ रहे थे। भगवान्‌के दाहिने भागमें पद्मा नामसे प्रसिद्ध श्रीदेवी और बायें भागमें भूदेवी विद्यमान थीं तथा श्रीरामकी संहार-शक्ति उनके आगे-आगे चल रही थी। नाना प्रकारके बाण,


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल एवं उत्तम धनुष तथा दूसरे-दूसरे अस्त्र-शस्त्र—सभी पुरुष-शरीर धारण करके भगवान्‌के साथ चले। चारों वेद ब्राह्मणका रूप धारण करके चल रहे थे। सबकी रक्षा करनेवाली गायत्री देवी, ॐकार और वषट्‌कार सभी रघुनाथजीका अनुगमन कर रहे थे। महात्मा ऋषि तथा समस्त ब्राह्मण भी उनके पीछे-पीछे गये। अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भी बालकों, वृद्धों, दासियों, रक्षकों तथा सेवकोंके साथ श्रीरामके साथ चलीं। भरत और शत्रुघ्न अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ अपने आश्रय-स्वरूप भगवान् श्रीरामका अनुसरण कर रहे थे। सभी श्रेष्ठ पुरुष अग्निहोत्रकी अग्नियों तथा स्त्री-पुत्रोंको साथ लेकर भगवान्‌के पीछे-पीछे इस महायात्रामें सम्मिलित थे। मन्त्री और भृत्य-वर्ग भी अपने पुत्रों, पशुओं, बन्धुओं तथा अनुचरोंसहित यात्रा कर रहे थे; प्रजावर्गके सब लोग रघुनाथजीके गुणोंपर मुग्ध थे। अतः वे स्त्री, पुरुष, पशु-पक्षी तथा बन्धु-बान्धवोंसहित श्रीरामके अनुगामी हुए। उन सबके हृदयमें प्रसन्नता थी और सभी पापसे रहित थे। हृष्ट-पुष्ट वानरगण स्नान करके बड़ी प्रसन्नताके साथ किलकारियाँ मारते हुए भगवान्‌के साथ जा रहे थे। वह सारा समुदाय ही श्रीरामका भक्त था। उनमेंसे कोई भी ऐसा नहीं था जो उदास, लज्जित अथवा दुःखित हो। वहाँ एकत्रित हुए सब लोगोंके हृदयमें हर्ष छा रहा था। यह एक अद्भुत बात थी। प्रान्तके लोगोंमेंसे जो श्रीरामकी यात्रा देखनेके लिये आये थे, वे भी यह सब समारोह देखते ही भगवान्‌के साथ परम धाम जानेको तैयार हो गये। रीछ, वानर, राक्षस तथा पुरवासी मनुष्य बड़ी भक्तिके साथ श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे एकाग्रचित्त होकर चल रहे थे। चराचर प्राणियोंमेंसे भी जिन्होंने भगवान्‌को जाते देखा, वे उनके साथ हो लिये। पशु, पक्षी आदि कोई भी बाकी न रहे। उस समय अयोध्यामें साँस लेनेवाला कोई छोटे-से-छोटा प्राणी भी नहीं रह गया था।

अयोध्यासे डेढ़ योजन दूर जाकर भगवान्‌ने पश्चिमाभिमुख हो पुण्यसलिला सरयूका दर्शन किया। उसमें सब ओर भँवरें उठ रहे थे। वहाँ इधर-उधर घूम-फिरकर भगवान् श्रीराम प्रजावर्गके साथ एक उत्तम स्थानपर आये। इसी समय लोक-पितामह ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं और महात्माओंसे घिरे हुए उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ रघुनाथजी परम धाम पधारनेके लिये उपस्थित थे। उनके साथ करोड़ों दिव्य विमान शोभा पा रहे थे। सारा आकाशमण्डल दिव्य तेजसे आच्छादित हो ज्योतिर्मय हो रहा था। पुण्य कर्म करनेवाले स्वर्गवासी वहाँ अपने तेजका प्रकाश फैला रहे थे। परम पवित्र, सुगन्धित एवं सुखदायिनी हवा चलने लगी। देवताओंद्वारा गिराये हुए फूलोंकी अधिक मात्रामें वर्षा होने लगी। उस समय सैकड़ों प्रकारके बाजे बजने लगे तथा गन्धर्वों और अप्सराओं-का समुदाय एकत्रित हो गया। इतनेमें रघुनाथजीने सरयूके जलमें प्रवेश करनेके लिये आगे पैर बढ़ाया। तब ब्रह्माजी

आकाशसे ही बोले—'विष्णुस्वरूप रघुनन्दन! आइये, आपका प्रत्येक विधान मङ्गलमय है। हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो आप अपने परमधामको पधार रहे हैं। देवतुल्य तेजस्वी भाइयोंके साथ आप अपने जिस स्वरूपमें प्रवेश करना चाहें, करें। आपकी इच्छा हो तो चतुर्भुज विष्णुरूपमें ही स्थित हों अथवा अपने सनातन आकाशमय अव्यक्त ब्रह्मरूपसे विराजमान हों। भगवन्! आप ही सम्पूर्ण लोकोंके आश्रय हैं; आपको यथार्थ-रूपसे कोई नहीं जानते। आप अचिन्त्य, अविनाशी तथा जरादि अवस्थाओंसे रहित परब्रह्म हैं।' ब्रह्माजीके वचन सुनकर परम बुद्धिमान् रघुनाथजीने कुछ निश्चय करके भाइयोंके साथ शरीरसहित अपने वैष्णव तेजमें प्रवेश किया। फिर तो इन्द्र और अग्नि आदि सम्पूर्ण देवता, साध्य और मरुद्गण भी विष्णुस्वरूपमें स्थित हुए भगवान् श्रीरामकी स्तुति करने लगे।* तदनन्तर दिव्य ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव और राक्षस—सब-के-सब

* ततः पितामहो वाणीं त्वन्तरिक्षादभाषत।
आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव॥
भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम्।
यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भगवान्‌का गुणगान करने लगे। वह सारा समुदाय कृतार्थ होनेके कारण आनन्दमग्न हो गया।

इसके बाद विष्णुरूपमें विराजमान महातेजस्वी श्रीराम ब्रह्माजीसे बोले—'सुव्रत! इस सम्पूर्ण जन-समुदायको भी आप उत्तम लोक प्रदान करें। ये सब लोग स्नेहवश मेरे पीछे आये हैं। ये सब-के-सब यशस्वी और मेरे भक्त हैं। इन्होंने मेरे लिये अपने लौकिक सुखोंका परित्याग कर दिया है, अतः ये सर्वथा मेरे अनुग्रहके पात्र हैं।' भगवान् विष्णुके वचन सुनकर जगद्गुरु ब्रह्माजी बोले—'भगवन्! यहाँ एकत्रित हुए सब लोग सन्तानक नामके लोकोंमें जायँगे तथा और प्राणी भी, जो सब पदार्थोंमें भक्तिपूर्वक आपका ही चिन्तन करते हुए प्राण त्याग करेंगे, वे इन सन्तानक लोकोंमें ही जायँगे। वे लोक ब्रह्मलोकसे भी ऊपर हैं तथा उनमें ब्रह्मधामके सभी गुण वर्तमान हैं।' तत्पश्चात् वानर और भालू जिस-जिस देवतासे प्रकट हुए थे, उसीके स्वरूपको प्राप्त हो गये। सुग्रीवने सूर्यमण्डलमें प्रवेश किया। इस प्रकार सब देवताओंके देखते-देखते रीछ और वानर अपने-अपने पिताके स्वरूपमें मिल गये। उस समय जो-जो सरयूके गोप्रतार-घाटपर आये थे, उन सबने आनन्दके आँसू बहाते हुए सरयूके जलमें डुबकी लगायी। फिर सभी प्राण और मनुष्य-शरीरका त्याग करके विमानपर जा बैठे। इसी प्रकार पशु-पक्षी आदि प्राणियोंने भी सरयूके जलमें गोता लगाकर दिव्य एवं तेजस्वी शरीर धारण किया और सब-के-सब दिव्य लोकको प्राप्त हुए। स्थावर और जङ्गम—सभी तरहके प्राणी सरयूके जलमें स्नान करके देवलोकमें जा पहुँचे। इस प्रकार वहाँ आये हुए सब प्राणियोंको सन्तानक लोकोंमें स्थान देकर लोकगुरु ब्रह्माजी हर्षमें भरे हुए देवताओंके साथ अपने लोकमें चले गये।

## रामायण-काव्यका उपसंहार और इसकी महिमा

[ कुश और लव कहते —हैं ] महर्षि वाल्मीकिजीका बनाया हुआ रामायण नामक उपाख्यान उत्तरकाण्डसहित इतना ही है। ब्रह्माजीने भी इसका आदर किया है। इस प्रकार भगवान् श्रीराम पहलेकी ही भाँति अपने विष्णुरूपसे प्रतिष्ठित हुए। वे स्थावर-जङ्गमसहित समस्त त्रिलोकीमें व्याप्त हैं। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और ऋषि ये सब लोग सदा प्रसन्नतापूर्वक रामायण-काव्यका श्रवण करते हैं। यह उपाख्यान आयु और सौभाग्यको बढ़ाता तथा पापोंका नाश करता है। रामायण वेदके समान है। विद्वान् पुरुषको श्राद्धोंमें इसे पढ़कर सुनाना चाहिये। इसके पाठसे पुत्रहीनको पुत्र और धनहीनको धन मिलता है। जो प्रतिदिन इसके श्लोकके एक चरणका भी पाठ करता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। इसकी कथा सुनानेवाले वाचकको वस्त्र, गौ और सुवर्णकी दक्षिणा देनी चाहिये। वाचकके संतुष्ट होनेपर सभी देवता संतुष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य आयु बढ़ानेवाले इस रामायण-काव्यका पाठ करता है, उसे इस लोकमें पुत्र-पौत्रकी प्राप्ति होती है और परलोकमें भी उसका बड़ा सम्मान होता है। प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्न अथवा सायंकालमें जो रामायणका नित्य पाठ करता है, उसे कोई दुःख नहीं होता। [ रघुनाथजीके परमधाम पधारनेके पश्चात् ] अयोध्यापुरी बहुत वर्षोंतक सूनी पड़ी रहेगी। फिर राजा ऋषभके समयमें यह आबाद होगी। प्रचेताके पुत्र महर्षि वाल्मीकिजीने अश्वमेध-यज्ञकी समाप्तिके बादकी कथा एवं उत्तरकाण्डसहित इस रामायण-नामक ऐतिहासिक काव्यका निर्माण किया है, जो ब्रह्माजीके द्वारा भी अनुमोदित है।

॥ उत्तरकाण्ड समाप्त ॥

*संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण समाप्त*

---

वैष्णवीं तां महातेजो यद् वाऽऽकाशं सनातनम्। त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वां केचित् प्रजानते ॥
... ... ...। त्वामचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं चाजरं तथा ॥
पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः। विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ॥
ततो विष्णुमयं देवं पूजयन्ति स्म देवताः। साध्या मरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥

( ११० । ८–१३ )

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

( लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

## आदर्श गुण

रघुकुलभूषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान मर्यादा-रक्षक आजतक दूसरा कोई नहीं हुआ—यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा थे। वे धर्म-की रक्षा और लोकोंके उद्धारके लिये ही अवतीर्ण हुए थे। तथापि अपनी लीलामें उन्होंने कहीं भी अपने मुखसे ऐसी कोई बात नहीं कही, जिसमें ईश्वरताका अभिमान झलकता हो। उन्होंने सदा सबके सामने अपनेको एक सदाचारी आदर्श मनुष्य ही सिद्ध करनेकी चेष्टा की। उनके आदर्श लीला-चरित्रोंके पढ़ने, सुनने और स्मरण करनेसे हृदयमें अत्यन्त पवित्र भावोंकी लहरें उठने लगती हैं और मन मुग्ध हो जाता है। उनका प्रत्येक कर्म अनुकरण करने योग्य है। श्रीराम सद्गुणोंके समुद्र थे। सत्य, सुहृदता, मृदुता, दया, क्षमा, वीरता, धीरता, गम्भीरता, अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान, पराक्रम, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरति, संयम, निःस्पृहता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, त्याग, मर्यादा-संरक्षण, एकपत्नीव्रत, प्रजा-रञ्जकता, ब्राह्मण-भक्ति, मातृ-पितृ-भक्ति, गुरु-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, मैत्री, शरणागत-वत्सलता, सरलता, व्यवहार-कुशलता, प्रतिज्ञा-पालन, साधु-रक्षण, दुष्ट-दलन, निर्वैरता, लोकप्रियता, अपिशुनता, बहुज्ञता, धर्मज्ञता, धर्मपरायणता, पवित्रता आदि सभी गुणोंका मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराममें पूर्ण विकास हुआ था। संसारमें इतने महान् गुण एक व्यक्तिमें कहीं नहीं पाये जाते। वाल्मीकीय रामायणके बाल और अयोध्याकाण्डोंके आदिमें भगवान् रामके गुणोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है, उसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

माता-पिता, बन्धु-मित्र, स्त्री-पुत्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका जैसा असाधारण आदर्श बर्ताव था, उसे स्मरण करते ही मन आनन्दमग्न हो जाता है। श्रीराम-जैसी लोक-प्रियता कहीं देखनेमें ही नहीं आती। उनकी लीलाके समय ऐसा कोई भी प्राणी नहीं था, जो श्रीरामके प्रेमपूर्ण मधुर बर्तावसे मुग्ध न हो गया हो।

कैकेयीका रामके साथ अप्रिय एवं कठोर बर्ताव भगवान्‌की इच्छा और देवताओंकी प्रेरणासे लोक-हितार्थ हुआ था। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कैकेयीको श्रीराम प्रिय नहीं थे; क्योंकि जिस समय मन्थराने रानी कैकेयीको रामके विरुद्ध उकसानेकी चेष्टा की है, उस समय स्वयं कैकेयीने ही उसे यह उत्तर दिया है—

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति॥
भ्रातॄन् भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत् पालयिष्यति।
संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम्॥
× × ×
यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु॥
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा।
मन्यते हि यथाऽऽत्मानं तथा भ्रातॄंस्तु राघवः॥
( २।८।१४-१५, १८-१९ )

'कुब्जे! राम धर्मके ज्ञाता, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र होनेके साथ ही महाराजके बड़े पुत्र हैं। अतः युवराज होनेका अधिकार उन्हींको है। वे दीर्घजीवी होकर अपने भाइयों और नौकरोंका पिताकी भाँति पालन करेंगे। भला, उनके अभिषेककी बात सुनकर तू इतनी जल क्यों रही है? मेरे लिये जैसे भरत आदरके पात्र हैं, वैसे ही—बल्कि उससे भी बढ़कर राम हैं। वे कौसल्यासे भी बढ़कर मेरी सेवा किया करते हैं। यदि रामको राज्य मिल रहा है तो उसे भरतको ही मिला समझ; क्योंकि रामचन्द्र अपने भाइयोंको अपने ही समान समझते हैं।' कैसा सुन्दर वात्सल्य-प्रेम है! श्रीरामपर कैकेयीका कितना प्रेम, विश्वास और भरोसा था। इससे यह स्पष्ट समझमें आ जाता है कि कैकेयीका कठोर बर्ताव उसके स्वभावसे नहीं हुआ, वैसा होना ही था।

## श्रीरामकी मातृ-भक्ति

श्रीरामकी मातृ-भक्ति बड़ी ही आदर्श थी। उसका ठीक-ठीक वर्णन करना असम्भव है, अतः यहाँ संकेतमात्र ही लिखा जाता है—

माता कौसल्या तथा अन्य माताओंकी तो बात ही क्या है, माता कैकेयीके द्वारा कठोर-से-कठोर व्यवहार किया जानेपर भी उसके प्रति श्रीरामका व्यवहार तो सदा भक्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## प्रजापालक राम

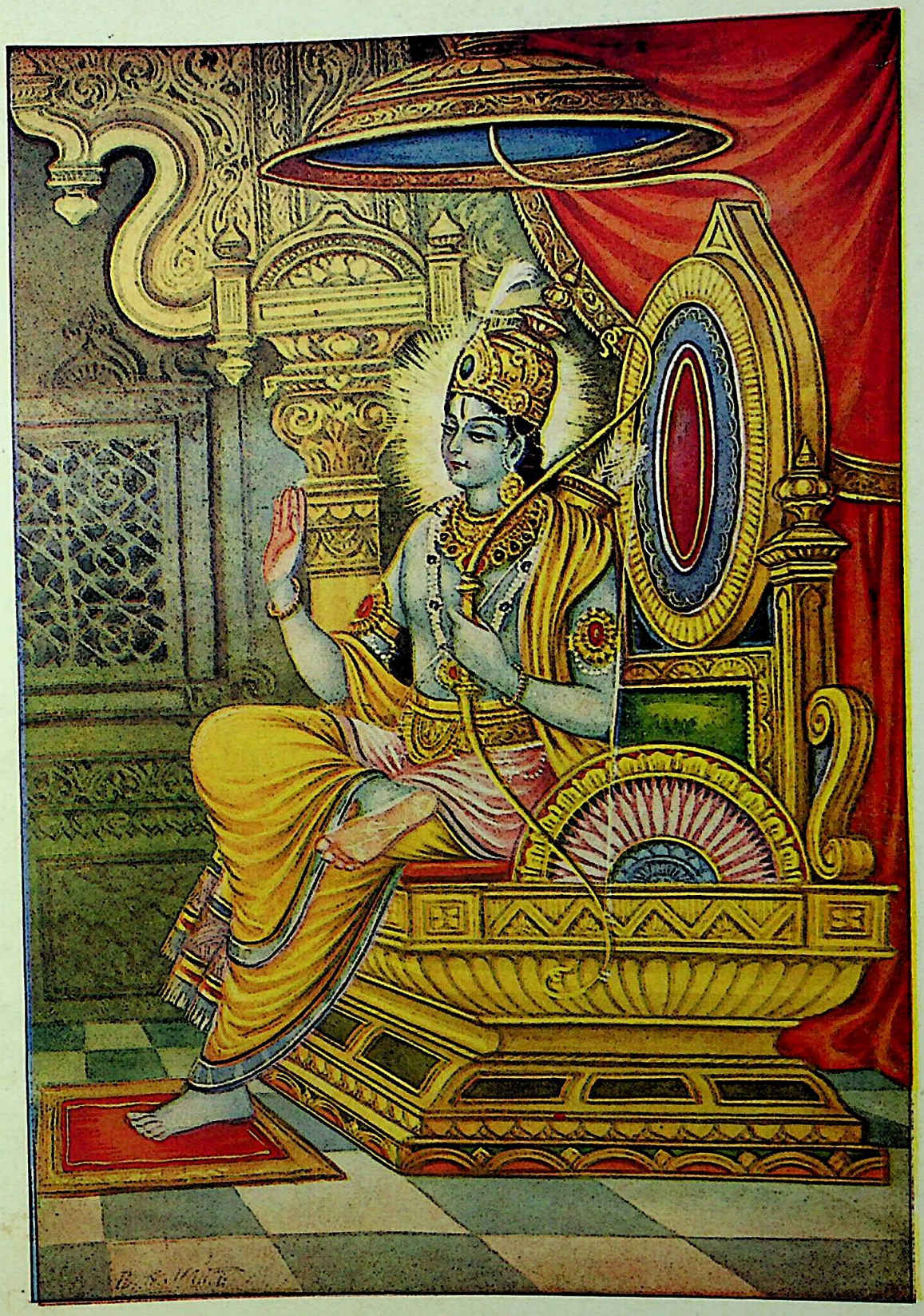

दान्तैः सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैर्नृणाम्। गुणैर्विरोचते रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः॥
तमेवंगुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्। लोकपालोपमं नाथमकामयत मेदिनी॥
(अयोध्या० २। ४७-४८)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


और सम्मानसे पूर्ण ही रहा। माता कौसल्याके महलसे लौटते समय कुपित हुए भाई लक्ष्मणसे उन्होंने स्वयं कहा है—

यस्या मदभिषेकार्थे मानसं परितप्यति।
माता नः सा यथा न स्यात् सविशङ्का तथा कुरु॥
तस्याः शङ्कामयं दुःखं मुहूर्त्तमपि नोत्सहे।
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम्॥
न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन।
मातॄणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम्॥
(२।२२।६-८)

'लक्ष्मण! मेरे राज्याभिषेकके कारण जिसके चित्तमें सन्ताप हो रहा है, उस माता कैकेयीको जिससे मेरे ऊपर किसी तरहका सन्देह न हो वही काम करो। उसके मनमें सन्देहके कारण उत्पन्न हुए दुःखकी मैं एक मुहूर्तके लिये भी उपेक्षा नहीं कर सकता। मैंने कभी जान-बूझकर या अनजानमें माताओं या पिताजीका कभी थोड़ा भी अप्रिय कार्य किया हो—ऐसा याद नहीं पड़ता।'

इसके सिवा और भी बहुत-से उदाहरण श्रीरामकी मातृ-भक्तिके मिलते हैं। चित्रकूटसे लौटते समय भरतसे भी रामने कहा था कि 'भाई भरत! माता कैकेयीने तुम्हारे लिये कामनासे या राज्य-लोभसे यह जो कुछ किया है, उसको मनमें न लाना। उनके साथ सदा वैसा ही बर्ताव करना, जैसा अपनी पूजनीया माताके साथ करना चाहिये।' उसी समय शत्रुघ्नसे भी कहा है—'भाई! मैं तुम्हें अपनी और सीताकी शपथ दिलाकर कहता हूँ कि तुम कभी माता कैकेयीपर क्रोध न करना, सदा उनकी सेवा ही करते रहना।' वनमें रहते समय एक बार लक्ष्मणने कैकेयीकी निन्दा की, उसपर आपने यही कहा—'भाई! माता कैकेयीकी तुमको निन्दा नहीं करनी चाहिये'—इत्यादि। इससे यह पता चलता है कि श्रीरामकी अपनी अन्य माताओंके प्रति कैसी श्रद्धा और भक्ति रही होगी। राजा दशरथकी अन्य रानियोंने उनके वन जाते समय विलाप करते हुए कहा था—

कृत्येष्वचोदितः पित्रा सर्वस्यान्तःपुरस्य च।
गतिश्च शरणं चासीत् स रामोऽद्य प्रवत्स्यति॥
कौसल्यायां यथा युक्तो जनन्यां वर्तते सदा।
तथैव वर्ततेऽस्मासु जन्मप्रभृति राघवः॥
(२।२०।२-३)

'जो राम किसी काम-काजके विषयमें पिताके कुछ न कहनेपर भी सारे अन्तःपुरकी गति और आश्रय थे, वे ही आज वनमें जा रहे हैं। वे जन्मसे ही जैसी सावधानीसे अपनी माता कौसल्याके साथ बर्ताव करते थे, उसी प्रकार हम सबके साथ भी करते थे।'

इससे बढ़कर श्रीरामकी मातृ-भक्तिका प्रमाण और क्या होगा।

## पितृ-भक्ति

इसी प्रकार श्रीरामकी पितृ-भक्ति भी बड़ी अद्भुत थी। रामायण पढ़नेवालोंसे यह बात छिपी नहीं है कि पिताका आज्ञापालन करनेके लिये श्रीरामके मनमें कितना उत्साह, साहस और दृढ़ निश्चय था। माता कैकेयीसे बातचीत करते समय श्रीराम कहते हैं—

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च॥
(२।१८।२८-२९)

न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया॥
(२।१९।२२)

'मैं महाराजके कहनेसे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीव्र विषका पान कर सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ। पिताकी सेवा और उनकी आज्ञाका पालन करना, इससे बढ़कर संसारमें दूसरा कोई धर्म नहीं है।'

इसी तरहके वहाँ और भी बहुत-से वचन मिलते हैं। उसके बाद माता कौसल्यासे भी उन्होंने कहा है—

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्॥
(२।२१।३०)

'मैं चरणोंमें सिर रखकर आपसे क्षमा माँगता हूँ। मुझमें पिताके वचन टालनेकी शक्ति नहीं है। अतः मैं वनको ही जाना चाहता हूँ।'

इसके सिवा लक्ष्मण, भरत और ऋषि-मुनियोंसे बात करते समय भी रामने पितृ-भक्तिके विषयमें बहुत कुछ कहा है। श्रीरामचन्द्रके बालचरित्रका संक्षेपमें वर्णन करते हुए भी यह बात कही गयी है कि श्रीराम सदा अपने पिताकी सेवामें लगे रहते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## एकपत्नीव्रत

श्रीरामका एकपत्नीव्रत भी बड़ा ही आदर्श था। श्रीरामने स्वप्नमें भी कभी श्रीजानकीजीके सिवा दूसरी स्त्रीका वरण नहीं किया। सीताको वनवास देनेके बाद यज्ञमें स्त्रीकी आवश्यकता होनेपर भी उन्होंने सीताकी ही स्वर्णमयी मूर्तिसे काम चलाया। यदि वे चाहते तो कम-से कम उस समय तो दूसरा विवाह कर ही सकते थे। उससे संसारमें भी उनकी कोई अपकीर्ति नहीं होती। परन्तु भगवान् तो मर्यादा-पुरुषोत्तम ठहरे। उनको तो यह बात चरितार्थ करके दिखानी थी कि जिस प्रकार स्त्रीके लिये पातिव्रतका विधान है, उसी तरह पुरुषके लिये भी एकपत्नीव्रत परमावश्यक है। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध भोग भोगनेके लिये नहीं, अपितु धर्माचरणके लिये है।

भगवान् श्रीरामका सीताके साथ कितना प्रेम था, इसका कुछ दिग्दर्शन सीता-हरणके बादका प्रसङ्ग पढ़नेसे हो सकता है। श्रीराम परम वीर, धीर और सहिष्णु होते हुए भी उस समय एक साधारण विरहोन्मत्त पागलकी भाँति पशु-पक्षी, वृक्ष-लता और पर्वतोंसे सीताका पता पूछते और नाना प्रकार-के विलाप करते हुए एक वनसे दूसरे वनमें भटकते फिरते हैं। कहीं-कहीं तो शोकसे विह्वल और मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं एवं 'हा सीते! हा सीते!' पुकार उठते हैं। उस समयका वर्णन बड़ा ही करुणापूर्ण और हृदय-विदारक है।

## भ्रातृ-प्रेम

श्रीरामका भ्रातृ-प्रेम भी अतुलनीय था। लड़कपनसे ही श्रीराम अपने भाइयोंके साथ बड़ा प्रेम करते थे। सदा उनकी रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे। चारों भाई एक साथ ही घोड़ोंपर चढ़कर विचरण किया करते थे। रामचन्द्रजीको जो भी कोई उत्तम भोजन या वस्तु मिलती थी, उसे वे पहले अपने भाइयोंको देकर पीछे स्वयं खाते या उपयोगमें लाते थे। यद्यपि श्रीरामका सभी भाइयोंके साथ समान भावसे ही पूर्ण प्रेम था, उनके मनमें कोई भेद नहीं था, तथापि लक्ष्मणका श्रीरामके प्रति विशेष स्नेह था। वे थोड़ी देरके लिये भी श्रीरामसे अलग रहना नहीं चाहते थे। श्रीरामका वियोग उनके लिये असह्य था, इसी कारण विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये भी श्रीरामके साथ ही वनमें गये। वहाँ राक्षसोंका विनाश करके दोनों भाई जनक-पुरमें पहुँचे। धनुषभङ्ग हुआ। तदनन्तर विवाहकी तैयारी हुई और चारों भाइयोंका विवाह साथ-साथ ही हुआ। विवाहके बाद अयोध्यामें आकर चारों भाई प्रेमपूर्वक रहे।

कुछ दिनोंके बाद अपने मामाके साथ भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये। श्रीराम और लक्ष्मण पिताके आज्ञानुसार प्रजाका कार्य करते रहे। श्रीरामके प्रेमभरे बर्तावसे उनके गुण और स्वभावसे सभी नगर-निवासी और बाहर रहनेवाले ब्राह्मणादि वर्णोंके मनुष्य मुग्ध हो गये। फिर राजा दशरथने मुनि वसिष्ठकी आज्ञा और प्रजाकी सम्मतिसे श्रीरामके राज्याभिषेकका निश्चय किया। राजा दशरथजीके मुखसे अपने राज्याभिषेककी बात सुनकर श्रीराम माता कौसल्याके महलमें आये। माता सुमित्रा और भाई लक्ष्मण भी वहीं थे। उस समय श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मणसे कहते हैं—

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम्।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता॥
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये॥

(२। २४। ४३-४४)

लक्ष्मण! तुम मेरे साथ इस पृथ्वीका शासन करो। तुम मेरे दूसरे अन्तरात्मा हो। यह राज्यलक्ष्मी तुम्हें ही प्राप्त हुई है। तुम मनोवाञ्छित भोग और राज्य-फलका उपभोग करो। मेरा जीवन और राज्य सब तुम्हारे लिये ही है।'

इसके बाद इस लीला नाटकका पट बदल गया। माता कैकेयीके इच्छानुसार राज्याभिषेक वन-गमनके रूपमें परिणत हो गया। सुमन्त्रके द्वारा बुलाये जानेपर जब श्रीराम महल-में गये और माता कैकेयीसे बातचीत करनेपर उन्हें वरदान-की बात मालूम हुई, तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। तदनन्तर माता कौसल्यासे विदा माँगने गये, वहाँ भी बहुत बातें हुईं; परन्तु श्रीरामने एक भी शब्द भरत या कैकेयीके विरुद्ध नहीं कहा, बल्कि भरतकी बड़ाई करते हुए माताको धैर्य दिया और कहा कि 'भरत मेरे ही समान आपकी सेवा करेगा।' उसी समय सीताको घरपर रहनेके लिये समझाते हुए कहते हैं—

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम॥

(२। २६। ३३)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


'सीते ! मेरे भाई भरत-शत्रुघ्न मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। अतः तुम्हें उनको अपने भाई और पुत्रके समान या उससे भी बढ़कर प्रिय समझना चाहिये।'

वन-गमनका समाचार सुनकर लक्ष्मणके मनमें भारी दुःख और क्रोध हुआ। उसे भी श्रीरामने नीति और धर्मसे परिपूर्ण बहुत ही मधुर और कोमल वचनोंसे शान्त किया। फिर जब लक्ष्मणने साथ चलनेके लिये प्रार्थना की, उस समय उनको वहीं रहनेके लिये समझाते हुए श्रीरामने कहा है—

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे॥
(२।३१।१०)

'लक्ष्मण ! तुम मेरे स्नेही, धर्म-परायण, धीर और सदा सन्मार्गमें स्थित रहनेवाले हो। मुझे प्राणोंके समान प्रिय, मेरे वशमें रहनेवाले, आज्ञा-पालक और सखा हो।'

बहुत समझानेपर भी जब लक्ष्मणने अपना प्रेमाग्रह नहीं छोड़ा, तब भगवान्‌ने उनको संतुष्ट करनेके लिये अपने साथ ले जाना स्वीकार किया। वनमें रहते समय भी श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकारसे लक्ष्मण और सीताको सुख पहुँचाने तथा प्रसन्न रखनेकी चेष्टा किया करते थे।

भरतके सेनासहित चित्रकूट आनेका समाचार पाकर जब श्रीराम-प्रेमके कारण लक्ष्मण क्षुब्ध होकर भरतके प्रति न कहने योग्य शब्द कह बैठे, तब श्रीरामने भरतकी प्रशंसा करते हुए कहा—

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते॥
भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे॥
यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद् भस्म तत् कुरुतां शिखी॥
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथाऽऽगतः॥
(२।९७।५-६, ८, ११)

'लक्ष्मण ! मैं सत्य और अपने आयुधकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और सारी पृथ्वी—सब कुछ तुम्हीं लोगोंके लिये चाहता हूँ। लक्ष्मण ! मैं भाइयोंकी भोग्य-सामग्री और उनके सुखके लिये ही राज्य चाहता हूँ। मेरे विनयी भाई ! भरत, तुम और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई सुख होता हो तो उसमें आग लग जाय। मैं समझता हूँ कि मेरे वनसे आनेकी बात कानमें पड़ते ही भरतका हृदय स्नेहसे भर गया है, शोकसे उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं; अतः वह मुझे देखनेके लिये आ रहा है। उसके आनेका कोई दूसरा कारण नहीं है।'

इसके सिवा वहाँ यह भी कहा है कि 'भरत मनसे भी मेरे विपरीत आचरण नहीं कर सकता। यदि तुम्हें राज्यकी इच्छा है तो मैं भरतसे कहकर दिला दूँ।'

लक्ष्मणका जो भरतके प्रति सन्देह था, वह उपर्युक्त बातें सुननेसे नष्ट हो गया।

उसके बाद जब भरत आश्रममें पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लेट गये, तब श्रीरामने उनको देखा। अपने हाथोंसे उठाकर भरतका हृदयसे आलिङ्गन किया। उनको गोदमें बैठाकर और उनका सिर सूँघकर आदरपूर्वक सब समाचार पूछे और कहा—'भाई ! तुम चीर और जटा धारण करके यहाँ क्यों आये ?' इसपर भरतने श्रीरामको अयोध्या लौटानेकी बहुत चेष्टा की। भरत तथा रामके प्रेम और बर्तावको देखकर सारा समाज चकित हो गया। अन्तमें जब भरतने यह बात समझ ली कि श्रीराम अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ेंगे, तब भरतने श्रीरामसे उनकी पादुकाएँ माँगीं। भरतकी प्रार्थना स्वीकार करके श्रीरामने अपनी पादुका देकर भरतको विदा कर दिया। वे उन पादुकाओंको आदरपूर्वक सिरपर धारण करके अयोध्या लौट आये। उन पादुकाओंका राज्याभिषेक करके उनके आज्ञानुसार राज्यका शासन करने लगे और स्वयं श्रीरामकी ही भाँति मुनिवेष धारण करके नन्दिग्राममें रहे।

उसके बाद सीता-हरण हुआ। लङ्कापर चढ़ाई की गयी। रावणके साथ भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। वहाँ एक दिन रावणके शक्ति-बाणसे लक्ष्मणके मूर्च्छित हो जानेपर श्रीरामने जैसी विलाप-लीला की, उससे छोटे भाई लक्ष्मणपर उनका कितना प्रेम था, उसका पता चलता है। वहाँ श्रीरामने कहा है—

यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥
इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः।
इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः॥
(६।१०१।१२-१३)

'महातेजस्वी लक्ष्मणने वन आते समय जिस प्रकार मेरा अनुसरण किया था, उसी प्रकार अब मैं इनके साथ यमलोकको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाऊँगा। ये सर्वदा ही मेरे प्रिय बन्धु और अनुयायी रहे हैं, हाय! कपटयुद्ध करनेवाले राक्षसोंने आज इन्हें इस अवस्थामें पहुँचा दिया।'

जो भाई अपने लिये सब कुछ छोड़कर मरनेको और सब तरहका कष्ट सहनेको तैयार हो, उसके लिये चिन्ता और विलाप करना तो उचित ही है, परन्तु श्रीरामने तो इस प्रसङ्गमें विलापकी पराकाष्ठा दिखाकर भ्रातृ-प्रेमकी बड़ी ही सुन्दर शिक्षा दी है।

श्रीहनुमान्‌जीद्वारा संजीवनी-बूटी मँगवाकर सुषेणने लक्ष्मणको स्वस्थ कर दिया। युद्धमें रावण मारा गया। लङ्कापर विजय हो गयी। भगवान् राम अयोध्या लौटनेके लिये तैयार हुए। उस समय विभीषणने श्रीरामको बड़े आदर और प्रेमसे विनयपूर्वक कुछ दिन रुकनेके लिये कहा। तब श्रीरामचन्द्रजीने उत्तर दिया—

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया॥
(६। १२१। १८-१९)

राक्षसेश्वर! मुझे तुम्हारी बात माननी ही चाहिये। परन्तु मेरा मन भाई भरतसे मिलनेके लिये छटपटा रहा है। जिसने चित्रकूटतक आकर मुझे लौटा ले जानेके लिये सिर झुकाकर प्रार्थना की थी और मैंने उसके वचनोंको स्वीकार नहीं किया था [ उस प्राणप्यारे भाई भरतसे मिलनेमें मैं अब कैसे विलम्ब कर सकता हूँ। ] इत्यादि।

इसके बाद विमानमें बैठकर श्रीराम सीता, लक्ष्मण और सब मित्रोंके साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ भी भरतसे मिलते समय उन्होंने अद्‌भुत भ्रातृ-प्रेम दिखलाया है।

राज्य करते समय भी श्रीराम हर एक कार्यमें अपने भाइयोंका परामर्श लिया करते थे। जिस किसी प्रकारसे उनको सुख पहुँचाने और प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे।

एक समय लवणासुरके अत्याचारोंसे घबराये हुए ऋषियोंने उसे मारनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना की। भगवान्‌ने सभामें प्रश्न किया कि लवणासुरको कौन मारेगा? किसके जिम्मे यह काम रखा जाय?' तुरंत ही भरतने उसे मारनेके लिये उत्साह प्रकट किया। इसपर शत्रुघ्नने कहा कि 'भरतजीने तो और भी बहुत-से काम किये हैं, आपके लिये भारी-से-भारी कष्ट सहन किये हैं। फिर भरतजी बड़े भी हैं। मुझ सेवकके रहते हुए यह परिश्रम इनको नहीं देना चाहिये। इस कार्यके लिये तो मुझे ही आज्ञा मिलनी चाहिये।' तब श्रीरामजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके कहा कि 'वहाँका राज्य भी तुम्हींको भोगना पड़ेगा, मेरी आज्ञाका प्रतिवाद न करना।' शत्रुघ्नको राज्याभिषेककी बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने बहुत पश्चात्ताप किया। परन्तु रामाज्ञा समझकर उसे स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार वचनोंमें बाँधकर उनकी इच्छा न रहनेपर भी छोटे भाईको राज्य-सुख देना राम-सरीखे बड़े भाईका ही काम था।

इसके बाद प्रतिज्ञामें बँध जानेके कारण जब भाई लक्ष्मणका त्याग करना पड़ा; उस समय श्रीरामके लिये लक्ष्मणका वियोग असह्य हो गया। वहाँपर कविने कहा है—

विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःखशोकसमन्वितः।
पुरोधसो मन्त्रिणश्च नैगमांश्चेदमब्रवीत्॥
अद्य राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम्।
अयोध्यायाः पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम्॥
प्रवेशयत संभारान् मा भूत् कालात्ययो यथा।
अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम्॥
(७। १०७। १–३)

लक्ष्मणका त्याग करके श्रीराम दुःख और शोकमें निमग्न हो गये तथा पुरोहित, मन्त्री और महाजनोंको बुलाकर उनसे कहने लगे—'मैं आज ही धर्मपर प्रेम रखनेवाले भरतका अयोध्याके राज्यपर अभिषेक करके वनमें जाऊँगा। शीघ्र ही समस्त सामग्रियाँ इकट्ठी की जायँ। देरी न हो; क्योंकि मैं आज ही जिस जगह लक्ष्मण गया है, वहाँ जाना चाहता हूँ।'

इसपर भरतने राज्यकी निन्दा करते हुए कहा—'मैं आपके बिना पृथ्वीका राज्य तो क्या, कुछ भी नहीं चाहता। अतः मुझे भी साथ ही चलनेकी आज्ञा दीजिये।' इसके बाद भरतके कथनानुसार शत्रुघ्नको भी मथुरासे बुलाया गया और मनुष्य-लीलाका नाटक समाप्त करके अपने भाइयोंसहित श्रीराम परमधाम पधार गये।

श्रीरामके भ्रातृ-प्रेमका यह केवल दिग्दर्शनमात्र है। भाइयोंके लिये ही राज्य ग्रहण करना, भाई भरतके राज्याभिषेकके प्रस्तावसे परमानन्दित होकर अपना हक छोड़ देना, जिसके कारण राज्याभिषेक रुका, उस भाईकी माता कैकेयीपर पहलेकी भाँति ही भक्ति करना, भरतका मुक्तकण्ठसे गुण-गान करना, भरतपर शङ्का और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


क्रोध करनेपर लक्ष्मणको समझाना, लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर प्राणत्याग करनेके लिये तैयार हो जाना, समय-समयपर भाइयोंको पवित्र शिक्षा देना, स्वार्थ छोड़कर सबपर प्रेम करना, शत्रुघ्नसे जबर्दस्ती राज्य करवाना, लक्ष्मणके वियोगको न सहकर परमधाममें पधार जाना—इत्यादि श्रीरामके आदर्श भ्रातृ-प्रेमपूर्ण कार्योंसे हम सबको यथायोग्य शिक्षा लेनी चाहिये।

## सख्य-प्रेम

श्रीरामका अपने मित्रोंके साथ भी अतुलनीय प्रेमका बर्ताव था। वे अपने मित्रोंके लिये जो कुछ भी करते, उसे कुछ नहीं समझते थे, परन्तु मित्रोंके छोटे-से-छोटे कार्यकी भी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। इसका एक छोटा-सा उदाहरण यहाँ लिखा जाता है। अयोध्यामें भगवान्‌का राज्याभिषेक होनेके बाद बंदरोंको विदा करते समय मुख्य-मुख्य बंदरोंको अपने पास बुलाकर प्रेमभरी दृष्टिसे देखते हुए श्रीरामचन्द्रजी बड़ी सुन्दर और मधुर वाणीमें कहने लगे—

सुहृदो मे भवन्तश्च शरीरं भ्रातरस्तथा॥
युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात् काननौकसः।
धन्यो राजा च सुग्रीवो भवद्भिः सुहृदां वरैः॥

(७। ३९। २३-२४)

'वानरो! आपलोग मेरे मित्र हैं, भाई हैं, शरीर हैं। आपलोगोंने सङ्कटसे मुझे उबारा है। आप-सरीखे श्रेष्ठ मित्रोंके साथ राजा सुग्रीव धन्य हैं।' इसके सिवा और भी बहुत जगह श्रीरामने अपने मित्रोंके साथ प्रेमका भाव दिखाया है। सुग्रीवादि मित्रोंने भी भगवान्‌के सख्य-प्रेमकी बारंबार प्रशंसा की है। वे उनके बर्तावसे इतने मुग्ध रहते थे कि उनको धन, जन और भोगोंकी स्मृति भी नहीं होती थी। वे हर समय श्रीरामचन्द्रके लिये अपना प्राण न्योछावर करनेको प्रस्तुत रहते थे। श्रीराम और उनके मित्र धन्य थे, मित्रता हो तो ऐसी हो।

## शरणागत-वत्सलता

यों तो श्रीरामकी शरणागत-वत्सलताका वर्णन वाल्मीकीय रामायणमें स्थान-स्थानपर आया है; किन्तु जिस समय रावणसे अपमानित होकर विभीषण भगवान् रामकी शरणमें आया है, वह प्रसङ्ग तो भक्तोंके हृदयमें उत्साह और आनन्दकी लहरें उत्पन्न कर देता है।

धर्मयुक्त और न्यायसङ्गत बात कहनेपर भी जब रावणने विभीषणकी बात नहीं मानी, बल्कि उसका भरी सभामें अपमान कर दिया, तब विभीषण वहाँसे निराश और दुखी होकर श्रीरामकी शरणमें आया। उसे आकाश-मार्गसे आते देखकर सुग्रीवने सब वानरोंको सावधान होनेके लिये कहा। इतनेमें ही विभीषणने वहाँ आकर आकाशमें ही खड़े-खड़े पुकार लगायी कि, 'मैं दुरात्मा पापी रावणका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। मैं रावणसे अपमानित होकर भगवान् श्रीरामकी शरणमें आया हूँ। आपलोग समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले श्रीरामको मेरे आनेकी सूचना दें।'

यह सुनकर सुग्रीव तुरंत ही भगवान् रामके पास गये और राक्षस-स्वभावका वर्णन कर श्रीरामको सावधान करते हुए रावणके भाई विभीषणके आनेकी सूचना दी। साथ ही यह भी कहा कि 'अच्छी तरह परीक्षा करके, आगे-पीछेकी बात सोचकर जैसा उचित समझें वैसा करें।' इसी प्रकार वहाँ बैठे हुए दूसरे बंदरोंने भी अपनी-अपनी सम्मति दी। सभीने विभीषणपर सन्देह प्रकट किया, पर श्रीहनुमान्‌जीने बड़ी नम्रताके साथ बहुत-सी युक्तियोंसे विभीषणको निर्दोष और सचमुच शरणागत समझनेकी सलाह दी। इस प्रकार सबकी बातें सुननेके अनन्तर भगवान् श्रीरामने कहा—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥

(६। १८। ३)

'मित्रभावसे आये हुए विभीषणका मैं कभी त्याग नहीं कर सकता। यदि उसमें कोई दोष हो तो भी उसे आश्रय देना सज्जनोंके लिये अनुचित नहीं है।' इसपर भी सुग्रीवको सन्तोष नहीं हुआ। उसने शङ्का और भय उत्पन्न करनेवाली बहुत-सी बातें कहीं। तब श्रीरामने सुग्रीवको फिर समझाया—

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥

× × ×

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप॥

× × ×

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥

(६। १८। २३, २७, ३३-३४)



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वानरेश्वर ! यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वीभरके पिशाच, दानव, यक्ष और राक्षसोंको अँगुलीके अग्रभागसे ही मार सकता हूँ [ अतः डरनेकी कोई बात नहीं है ]। परंतप ! यदि कोई शत्रु भी हाथ जोड़कर दीनभावसे शरणमें आकर अभय-याचना करे तो दया-धर्मका पालन करनेके लिये उसे नहीं मारना चाहिये। मेरा तो यह विरद है कि जो एक बार भी 'मैं आपका हूँ' यों कहता हुआ शरणमें आकर मुझसे रक्षा चाहता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ। वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ! [ उपर्युक्त नीतिके अनुसार ] मैंने इसे अभय दे दिया, अतः तुम इसे ले आओ—चाहे यह विभीषण हो या स्वयं रावण ही क्यों न हो।'

बस, फिर क्या था। भगवान्‌की बात सुनकर सब मुग्ध हो गये और भगवान्‌के आज्ञानुसार तुरत ही विभीषणको ले आये। विभीषण अपने मन्त्रियोंसहित आकर श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा—'भगवन् ! मैं सब कुछ छोड़कर आपकी शरणमें आया हूँ। अब मेरा राज्य, सुख और जीवन—सब कुछ आपके ही अधीन है।' इसके बाद श्रीरामने प्रेमभरी दृष्टि और वाणीसे उसे धैर्य दिया और लक्ष्मणसे समुद्रका जल मँगाकर उसका वहीं लङ्काके राज्यपर अभिषेक कर दिया।

## कृतज्ञता

वास्तवमें देखा जाय तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर थे। उनकी अपार शक्ति थी, वे स्वयं सब कुछ कर सकते थे और करते थे; उनका कोई क्या उपकार कर सकता था। तथापि अपने आश्रितजनोंके प्रेमकी वृद्धिके लिये उनकी साधारण सेवाको भी बड़े-से-बड़ा रूप देकर आपने अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।

सीताको खोजते-खोजते जब श्रीराम युद्धमें रावणद्वारा मारकर गिराये हुए जटायुकी दशा देखते हैं, उस समयका वर्णन है—

निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तं तं गृध्रराजं परिगृह्य राघवः।
क्व मैथिली प्राणसमा गतेति विमुच्य वाचं निपपात भूमौ॥
(३। ६७। २९)

'जिसके पंख कटे हुए थे, समस्त शरीर लहू लुहान हो रहा था, ऐसे गीधराज जटायुको हृदयसे लगाकर श्रीरघुनाथजी 'प्राणप्रिय जानकी कहाँ गयी ?' इतना कहकर पृथ्वीपर गिर पड़े।'

फिर रावणका परिचय देते और सीताको ले जानेकी बात कहते-कहते ही जब पक्षिराजके प्राण उड़ जाते हैं, तब भगवान् श्रीराम स्वयं अपने हाथोंसे उसकी दाह-क्रिया करते हैं। कैसी अद्भुत कृतज्ञता है !

इसी तरह और भी बहुत-से प्रसङ्ग हैं। वानरों, राजाओं, ऋषियों और देवताओंसे बात करते समय आपने जगह-जगह-पर कहा है कि 'आपलोगोंकी सहायता और अनुग्रहसे ही मैंने रावणपर विजय प्राप्त की है।'

जब श्रीहनुमान्‌जी सीताजीका पता लगाकर भगवान् रामसे मिले हैं, उस समय उनके कार्यकी बारंबार प्रशंसा करके अन्तमें रघुनाथजीने यहाँतक कहा है कि 'हनुमान् ! जानकीका पता लगाकर तुमने मुझे, समस्त रघुवंशको और लक्ष्मणको भी बचा लिया। इस प्रिय कार्यके बदलेमें कुछ दे सकूँ, ऐसी कोई वस्तु मुझे नहीं दिखायी देती। अतः अपना सर्वस्व यह आलिङ्गन ही मैं तुझे देता हूँ।' इतना कहकर हर्षसे पुलकित श्रीरामने हनुमान्‌को हृदयसे लगा लिया। राज्याभिषेक हो जानेके बाद हनुमान्‌को विदा करते समय हनुमान्‌की सेवा और कार्योंका स्मरण करके भगवान् राम कहते हैं—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यस्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥
(७। ४०। २३-२४)

'हनुमान् ! तुम्हारे एक-एक उपकारके बदलेमें मैं अपने प्राण दे दूँ तो भी शेष उपकारोंके लिये तो हम तुम्हारे ऋणी ही बने रहेंगे। तुम्हारे द्वारा किये हुए उपकार मेरे शरीरमें ही विलीन हो जायँ—उनका बदला चुकानेका मुझे कभी अवसर ही न मिले; क्योंकि आपत्ति आनेपर ही मनुष्य प्रत्युपकारका पात्र होता है।' इससे पता चलता है कि भगवान् श्रीरामका कृतज्ञताका भाव कितना आदर्श था।

## प्रजा-रञ्जकता

श्रीरामचन्द्रजीमें प्रजाको हर तरहसे प्रसन्न रखनेका गुण भी बड़ा आदर्श था। वे अपनी प्रजाका पुत्रसे भी बढ़कर वात्सल्य प्रेमसे पालन करते थे। सदा-सर्वदा उनके हितमें रत रहते थे। यही कारण था कि अयोध्यावासियोंका उनपर अद्भुत प्रेम था।

श्रीरामके वनगमनका, चित्रकूटमें भरतके साथ प्रजासे मिलनेका और परमधाममें पधारनेके समयका वर्णन पढ़नेसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पता चलता है कि आरम्भसे लेकर अन्ततक प्रजाके छोटे-बड़े सभी स्त्री-पुरुषोंका श्रीराममें बड़ा ही अद्भुत प्रेम था। वे हर हालतमें श्रीरामके लिये प्राण न्योछावर करनेको तैयार रहते थे। उन्हें भगवान् रामका वियोग असह्य हो गया था।

जब श्रीरामचन्द्रजी वनमें जाने लगे, तब प्रजाके अधिकांश लोग प्रेममें पागल होकर उनके साथ हो लिये। भगवान् श्रीरामने बहुत-कुछ अनुनय-विनय की। किन्तु चेष्टा करनेपर भी वे प्रजाको लौटा न सके। आखिर उन्हें सोते हुए छोड़कर ही श्रीरामको वनमें जाना पड़ा। उस समयके वर्णनमें यह भी कहा गया है कि पशु-पक्षी भी उनके प्रेममें मुग्ध थे। उनके लिये श्रीरामका वियोग असह्य था। परमधाममें पधारते समयका वर्णन भी ऐसा ही अद्भुत है।

इसके सिवा जिस सीताके वियोगमें श्रीरामने एक साधारण विरह-व्याकुल कामी मनुष्यकी भाँति पागल होकर विलाप किया था, उसी सीताको—यद्यपि वह निर्दोष और पति-परायणा थी तो भी, प्रजाकी प्रसन्नताके लिये त्याग दिया। इससे भी उनकी प्रजा-रञ्जकताका आदर्श भाव व्यक्त होता है।

## श्रीरामका महत्त्व

श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा भगवान् विष्णुके अवतार थे, यह बात वाल्मीकीय रामायणमें जगह-जगह कही गयी है। जब संसारमें रावणका उपद्रव बहुत बढ़ गया, देवता और ऋषिगण बहुत दुखी हो गये, तब उन्होंने जाकर ब्रह्मासे प्रार्थना की। पितामह ब्रह्मा देवताओंको धीरज बँधा रहे थे, उसी समय भगवान् विष्णुके प्रकट होनेका वर्णन इस प्रकार आता है—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः॥
(१। १५। १६-१७)

'उसी समय महान् तेजस्वी जगत्पति भगवान् विष्णु मेघपर चढ़े हुए सूर्यके समान गरुड़पर सवार हो वहाँ आ पहुँचे। उनके शरीरपर पीताम्बर और हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुध एवं चमकीले स्वर्णके बाजूबंद शोभा पा रहे थे। सभी देवताओंने उनको प्रणाम किया।'

इसके बाद देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान्‌ने राजा दशरथके घर मनुष्यरूपमें अवतार लेना स्वीकार किया। फिर वहीं अन्तर्धान हो गये।

श्रीरामचन्द्रजीका विवाह होनेके बाद जब वे अयोध्याको लौट रहे थे, उस समय रास्तेमें परशुरामजी मिले। श्रीराम विष्णुके अवतार हैं या नहीं—इसकी परीक्षा करनेके लिये उन्होंने श्रीरामसे भगवान् विष्णुके धनुषपर बाण चढ़ानेके लिये कहा; तब श्रीरामचन्द्रजीने तुरंत ही उनके हाथसे दिव्य धनुष लेकर उसपर बाण चढ़ा दिया और कहा 'यह दिव्य वैष्णव बाण है। इसे कहाँ छोड़ा जाय?' यह देख-सुनकर परशुरामजी चकित हो गये। उनका तेज श्रीराममें जा मिला। उस समय श्रीरामकी स्तुति करते हुए परशुरामजी कहते हैं—

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
धनुषोऽस्य परामर्शाद् स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप॥
(१। ७६। १७)

'आपका कल्याण हो। इस धनुषके चढ़ानेसे मैं जान गया कि आप मधु-दैत्यको मारनेवाले, देवताओंके स्वामी, साक्षात् अविनाशी विष्णु हैं।' इस प्रकार श्रीरामके प्रभावका वर्णन करके और उनकी प्रदक्षिणा करके परशुरामजी चले गये।

रावणका वध हो जानेके बाद जब ब्रह्मासहित देवता-लोग श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और उनसे बातचीत करते हुए श्रीरामने यह कहा कि 'मैं तो अपनेको दशरथजी-का पुत्र राम नामका मनुष्य ही समझता हूँ! मैं जो हूँ, जहाँसे आया हूँ यह आपलोग ही बतायें।' इसपर ब्रह्माजीने सबके सामने सम्पूर्ण रहस्य खोल दिया। वहाँ रामके महत्त्वका वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—

भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥
(६। ११७। १४–१६)

'आप साक्षात् चक्रपाणि लक्ष्मीपति प्रभु श्रीनारायणदेव हैं। आप ही भूत-भविष्यके शत्रुओंको जीतनेवाले और एक-शृङ्गधारी वराह-भगवान् हैं। आप आदि, मध्य और अन्तमें सत्यरूपसे परिपूर्ण अविनाशी ब्रह्म हैं। आप सम्पूर्ण लोकोंके परमधर्म चतुर्भुज विष्णु हैं। आप ही अजित, पुरुष, पुरुषोत्तम, हृषीकेश तथा खड्ग और शार्ङ्ग-धनुष-धारी विष्णु हैं और आप ही महाबलवान् कृष्ण भी हैं।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह और भी बहुत कुछ कहा है । वहीं राजा दशरथ भी लक्ष्मणके साथ बातचीत करते समय श्रीरामकी सेवाका महत्त्व बतलाकर कहते हैं—

एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसंमितम् ।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः ॥
अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलं त्वया ।
एनं शुश्रूषताव्यग्रं वैदेह्या सह सीतया ॥
( ६ । ११९ । ३१-३२ )

'सौम्य ! परन्तप राम साक्षात् अविनाशी अव्यक्त ब्रह्म हैं । इनका प्रभाव वेदमें वर्णित है । ये देवोंके हृदय और परम रहस्यमय हैं । जनक-नन्दिनी सीताके सहित इनकी सेवा करके तुमने पवित्र धर्मका आचरण और बड़े भारी यशका लाभ किया है ।'

इसके सिवा और भी अनेक बार ब्रह्माजी, देवता और महर्षियोंने श्रीरामके अमित प्रभावका यथासाध्य वर्णन किया है । मनुष्य-लीला समाप्त करके परमधाममें पधारनेके प्रसङ्गमें भी यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर थे । अतः वाल्मीकीय रामायणको प्रामाणिक ग्रन्थ माननेवाला कोई भी मनुष्य श्रीरामके ईश्वर होनेमें शङ्का कर सके, ऐसी गुंजाइश नहीं है ।

## पराक्रम

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके बल, पराक्रम, वीरता और शस्त्र-कौशलके विषयमें तो कहना ही क्या है । सम्पूर्ण रामायणमें इसका वर्णन भरा पड़ा है । कहींसे भी युद्धका प्रसङ्ग निकालकर देख सकते हैं । विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करते समय उन्होंने बात-की-बातमें ताड़का और सुबाहुको मारकर मारीचको मानवास्त्रके द्वारा सौ योजन दूर समुद्रके बीचमें गिरा दिया ।

जनकपुरमें जिस धनुषको बड़े-बड़े वीर और महाबली राजा अत्यन्त परिश्रम करके भी नहीं हिला सके, उसीको श्रीरामने अनायास ही उठाकर तोड़ दिया । विष्णुके धनुषपर बाण चढ़ाकर परशुरामजीका तेज हर लिया । पञ्चवटीमें चौदह हजार राक्षसोंको जरा-सी देरमें बिना किसीकी सहायताके मार गिराया । वाली-जैसे महायोद्धाको एक ही बाणसे मार डाला । धनुषपर बाण चढ़ानेमात्रसे ही समुद्रमें खलबली मच गयी और वह भयभीत होकर शरणमें आ गया । लङ्कामें जाकर भयंकर युद्धमें राक्षसोंसहित कुम्भकर्ण और रावणका वध करके समस्त संसारमें विजयका डंका बजा दिया ।

## क्षमा

ऐसे बड़े पराक्रमी होनेपर भी श्रीरघुनाथजी इतने क्षमाशील थे कि वे अपने प्रति किये हुए किसीके अपराधको अपराध ही नहीं मानते थे । उन्होंने जहाँ कहीं भी क्रोध और युद्धकी लीला की है, वह अपने आश्रितों और साधु-पुरुषोंके अपराधका बदला लेकर इसी बहाने दुष्टोंको निर्दोष बनानेके लिये ही की है । मन्थरा-जैसी दासीके अपराधका उन्होंने कहीं जिक्र भी नहीं किया ।

## उपसंहार

श्रीरामके महत्त्वपूर्ण असंख्य आदर्श गुणोंका लेखनीद्वारा वर्णन करना असम्भव ही है । आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीसे लेकर आजतक सभी प्रधान-प्रधान कवियोंने श्रीरामचरितका वर्णन करके अपनी वाणीको सफल बनानेकी चेष्टा की है, परन्तु श्रीरामके गुणोंका पार कहीं कोई नहीं पा सका । मैंने तो जो कुछ भी लिखा है, वह केवल श्रीवाल्मीकीय रामायणके आधारपर बहुत ही संक्षेपमें लिखा है । वह भी मेरा केवल साहसमात्र ही है, क्योंकि न तो मुझे संस्कृत-भाषाका विशेष ज्ञान है और न हिन्दीका ही । अतः विज्ञ पाठकजन त्रुटियोंके लिये क्षमा करें । इसे पढ़-सुनकर यदि कोई भगवत्प्रेमी भाई किसी अंशमें लाभ उठा सकेंगे तो मेरे लिये वह बड़े सौभाग्यकी बात होगी और मैं उनका आभारी रहूँगा ।

## अभिलाषा

कब यह रसना राम रटैगी ।
छाँड़ि सकल जंजाल जगतके, बाद-बिबाद तजैगी ॥
उमँगि-उमँगि सिय-राम नाम लै, मनमें मोद भरैगी ॥
पर-अवगुन न भनै, निसि-बासर हरि-गुन-गान करैगी ॥
मधुर सुधा-रस रुचिर नाम की रुचि सों स्वाद चखैगी ॥
'स्नेहलता' कब जुगल-माधुरी नैनन माँहि बसैगी ॥

श्री-सेविका विद्यावती गुप्त 'स्नेहलता'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सीताजीका आदर्श जीवन

( लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका )

## ( १ ) उपक्रम

संसारकी पतिव्रता स्त्रियोंमें पतिपरायणा सीताका स्थान बहुत ऊँचा है। रामायणमें वर्णित समस्त स्त्री-चरित्रोंमें सीताजीका चरित्र सर्वोत्तम, सर्वथा आदर्श और अनुकरण करने योग्य है—इसमें तो कहना ही क्या है; हिंदू-समाजकी सभी स्त्रियोंके लिये प्रत्येक परिस्थितिमें सीताजीका जीवन पथ-प्रदर्शक है। सीताजीकी तरह असाधारण पातिव्रत्य, त्याग, शील, निर्भयता, शान्ति, क्षमा, सौहार्द, सहनशीलता, धर्मपरायणता, नम्रता, संयम, सेवा, सदाचार, व्यवहार-पटुता, साहस, शौर्य आदि गुण एक साथ संसारकी दूसरी किसी भी स्त्रीमें शायद ही मिल सकें। श्रीसीताजीके सदृश पवित्र जीवन और अनुपम पति-भक्तिका उदाहरण जगत्‌के इतिहासमें मिलना कठिन है। आरम्भसे लेकर अन्ततक सीताजीकी सभी बातें पवित्र और आदर्श हैं। उनके जीवनकी कोई भी घटना ऐसी नहीं है, जिससे हमारी माताओं, बहुओं, बहिनों एवं बेटियोंको उत्तम शिक्षा न मिले। संसारमें आजतक जितनी स्त्रियाँ हुई हैं, उनमें सीताजीको सर्व-शिरोमणि पतिव्रता कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी।

माया-मृगको पकड़नेके लिये श्रीरामके चले जानेके बाद रामके समान स्वरमें मारीचद्वारा कहे हुए 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' आदि शोकयुक्त वचन सुनकर घबरायी हुई सीताने लक्ष्मणके प्रति जो कठोर वचन कहे थे, उनमें भी प्रचुर पति-प्रेमका आदर्श भरा हुआ है; किन्तु श्रीलक्ष्मणजीका सीताके प्रति जैसा पवित्र मातृ-भाव था, उसे देखते हुए सीताजीका वह व्यवहार अनुचित प्रतीत होता है; इसीलिये स्वयं सीताजीने ही आगे चलकर इसपर पश्चात्ताप किया है। हमारी माँ-बहिनोंको इससे यही शिक्षा लेनी चाहिये कि स्वामीके संकटापन्न होनेकी आशङ्का होनेपर उनकी सहायताके लिये तो प्राणपर्यन्त चेष्टा करना स्त्रीका कर्तव्य है, परन्तु अपने किसी पवित्र अनुयायी या कुटुम्बीको ताने मारना या कड़े वचन कहना उचित नहीं है।

आगे-पीछेके वर्णनोंसे इस बातका अनुमान लगाया जाता है कि नैहरमें भी सीताजीका सबके साथ बड़े ही प्रेमका बर्ताव था, छोटे-बड़े सभी स्त्री-पुरुष सीताजीको हृदयसे चाहते थे; परन्तु वाल्मीकीय रामायणमें श्रीसीताजीके बाल-चरित्रका वर्णन नहीं है। वन-गमनके समय कहे हुए सीताके ही वचनोंसे यह बात मालूम होती है कि माता-पिताके द्वारा उन्हें नैहरमें ही बहुत उपयोगी शिक्षा मिल चुकी थी, उन्होंने वहीं सदाचार और संयमका अभ्यास कर लिया था तथा सुख-दुःखको समान समझकर हर एक परिस्थितिमें प्रसन्न रहनेकी शक्ति प्राप्त कर ली थी। यह बात लीलाकी दृष्टिसे कही जाती है। यों तो जानकीजी साक्षात् जगदम्बा ही थीं।

## ( २ )

## सेवाके लिये प्रेमाग्रह

वनके लिये प्रस्थान करते समय जब श्रीरामचन्द्रजी सीतासे मिलनेके लिये महलमें गये और उन्होंने यकायक उनसे अपने वन-गमनकी बात कही, उस समय तुरंत ही सीताने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। वे कहती हैं—

न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा॥
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्॥

× × × ×

प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते॥

× × × ×

सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः।
अचिन्तयन्ती त्रील्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम्॥
शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी।
सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगन्धिषु॥

× × × ×

अनन्यभावामनुरक्तचेतसं
त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम्।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां
नातो मया ते गुरुता भविष्यति॥
( २। २७। ६-७, ९, १२-१३, २१ )

'नारीके लिये इस लोक और परलोकमें पति ही आश्रय देनेवाला है। पिता, पुत्र, माता, सखियाँ तथा अपना यह शरीर भी उसका सच्चा सहायक नहीं है। यदि आप आज ही दुर्गम वनकी ओर प्रस्थान कर रहे हैं तो मैं रास्तेके कुश-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्टकोंको कुचलती हुई आपके आगे-आगे चलूँगी।···ऊँचे-ऊँचे महलोंमें रहना, विमानोंपर चढ़कर घूमना अथवा अणिमादि सिद्धियोंद्वारा आकाशमें विचरना—इन सबकी अपेक्षा स्त्रीके लिये किसी भी अवस्थामें पतिके चरणोंकी छायामें रहना विशेष महत्त्व रखता है।···अतः मैं उस वनमें उसी प्रकार निवास करूँगी, जिस प्रकार अपने पिताके घरमें रहती थी। वीरशिरोमणे! वहाँ मुझे त्रिलोकीके किसी भी विषयका चिन्तन नहीं होगा, सदा पातिव्रत-धर्मका स्मरण करती हुई आपकी सेवामें लगी रहूँगी।···नियमपूर्वक रहकर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करूँगी और आपके साथ मीठी-मीठी सुगन्धसे भरे हुए वनोंमें विचरूँगी।···मेरे हृदयका सम्पूर्ण प्रेम एकमात्र आपको ही अर्पित है, आपके सिवा और कहीं मेरा मन नहीं जाता। यदि आपसे वियोग हुआ तो निश्चय ही मेरी मृत्यु हो जायगी। इसलिये आप मेरी याचना सफल करें, मुझे साथ ले चलें। मेरे साथ रहनेसे आपपर कोई भार नहीं पड़ेगा।'

इसी तरहके और भी प्रेम और धर्मसे भरे हुए वचन सीताने उस अवसरपर कहे हैं। भगवान् रामके मुखसे वनके नाना क्लेशोंको सुनकर भी सीता अपने निश्चयसे तनिक भी विचलित नहीं हुईं। वे पति-सेवाके सामने संसारके सुख और वैभवको कितना तुच्छ समझती थीं, पतिके चरणोंमें उनका कितना प्रगाढ़ प्रेम था, वे किस प्रकार तन-मनसे उनकी सेवा करना चाहती थीं—ये सब बातें वहाँका प्रसङ्ग पढ़नेसे ही ठीक समझमें आ सकती हैं। भगवान्‌से वन-गमनकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये सीताने हठपूर्वक पूरी कोशिश की। साम, दान, नीति आदि सभी उपायोंका अवलम्बन किया।

अन्तमें सीताजीके प्रेमकी विजय हुई। श्रीरामने प्रेमपूर्वक सीताको साथ ले चलना स्वीकार कर लिया। इस कथासे यह सिद्ध होता है कि स्त्रीको पति-सेवाके लिये—अपने सुखके लिये नहीं—आग्रहपूर्वक पतिकी आज्ञाको दुहरवानेका अधिकार है। वह प्रेमसे पति-सुखके लिये ऐसा आग्रह कर सकती है। सीताजीके इस प्रेमाग्रहकी सभी प्रशंसा करते हैं, कोई निन्दा नहीं करता। क्योंकि सीता केवल पति-प्रेम और पति-सेवाके लिये ही समस्त सुखोंको तिलाञ्जलि देकर वनमें गयी थीं, किसी इन्द्रिय-सुखरूप स्वार्थके लिये नहीं। इसीलिये सीताका यह व्यवहार पातिव्रत-धर्मकी दृष्टिसे आदर्श माना गया है। इससे पुरुषोंको भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि सहधर्मिणी पत्नीकी इच्छाके बिना उसे छोड़कर अन्यत्र चले जाना उचित नहीं है। यदि पति स्त्रीकी सुविधाके लिये उसे अपने साथ न रखना चाहता हो, तो भी स्त्रीको कष्ट और आपत्तिके समय पतिको सुख पहुँचानेके लिये—उसकी सेवा करनेके उद्देश्यसे उसके साथ रहना चाहिये। यह बात अवश्य है कि सर्वदा सबके लिये एक-सी व्यवस्था नहीं हो सकती; अतः समय और परिस्थिति देखकर ही कार्य करना चाहिये।

## ( ३ )

## सहिष्णुता

सीताने वनमें रहकर तो बड़े-बड़े कष्टोंको सहर्ष सहन किया ही था, इसके सिवा उनकी सहिष्णुताका एक और उदाहरण मिलता है। वन-गमनके समय जब कैकेयीने सीताको वनवासके योग्य वस्त्र पहननेके लिये दिये, उस समय रनिवासकी अन्य स्त्रियों एवं राजा दशरथके दुःखका तो कहना ही क्या, वसिष्ठ-सरीखे तपोनिष्ठ महर्षिका मन भी क्षुब्ध हो उठा था और उन्होंने बड़े कठोर शब्दोंमें कैकेयीकी भर्त्सना की तथा सीताको वल्कल-वस्त्र पहननेसे मना किया; परन्तु ऐसी घटनाके समय भी सीताके मनमें कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ। वे कैकेयीके प्रति की गयी वसिष्ठजीकी आलोचनाको केवल चुपचाप सुनती रहीं। इतना ही नहीं, प्रत्युत सासके आज्ञानुसार उन वस्त्रोंको उन्होंने धारण भी कर लिया और वसिष्ठजीकी आज्ञा होनेपर भी अपने निश्चयको नहीं बदला। उस प्रसङ्गपर कविने कहा है—

तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये
गुरौ नृपस्याप्रतिमप्रभावे।
नैव स्म सीता विनिवृत्तभावा
प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा॥
( २। ३७। ३७ )

अर्थात् राजसभामें अनुपम प्रभावशाली राजगुरु ऋषि-शिरोमणि वसिष्ठजीके इस प्रकार कहते रहनेपर भी प्रिय पतिका अनुकरण करनेकी इच्छा रखनेवाली सीताने अपना विचार नहीं बदला।

इस प्रसङ्गसे भी यह शिक्षा मिलती है कि सास या उसीके समान बड़ी-बूढ़ी कोई भी स्त्री कुछ कड़ी बात कहे या प्रतिकूल बर्ताव करे तो उसे खुशीके साथ सहन करना चाहिये और विपत्तिके समय पति-सेवाके लिये कहीं पतिके साथ जाय तो उन्हींकी भाँति सादगीसे रहना चाहिये, शृङ्गारादिके मोहमें नहीं पड़ना चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## (४)
## वनमें सीताकी पति-सेवा

पति-सेवामें ही सदा प्रसन्न रहनेवाली सीता वनमें जाकर अपने समस्त भौतिक सुखोंको भूल जाती हैं। उन्हें राज-पाट, महल-बगीचे, धन-दौलत और दास-दासियोंकी कुछ भी स्मृति नहीं होती। वे निरन्तर भगवान् श्रीरामकी ही सेवामें तत्पर रहतीं तथा उनके आज्ञानुसार अर्घ्य, पाद्य आदिसे वनवासी ऋषियोंका यथायोग्य सत्कार किया करती थीं। वे निर्जन वनमें घरकी भाँति ही निर्भय रहतीं। उनका मन सदा श्रीराममें ही संलग्न रहता और वनमें वे श्रीरामके साथ बड़ी प्रसन्नतासे रहती थीं। चित्रकूटसे पञ्चवटी जाते समय जब श्रीरामचन्द्रजी अत्रिके आश्रमपर ठहरे, उस समय अनसूया-ने सीताको बड़ा ही सुन्दर पातिव्रत-धर्मका उपदेश दिया। उसे सुनकर सीताने अनसूयाके उपदेशका समर्थन करते हुए कहा—

यद्यप्येष भवेद्भर्ता अनार्यो वृत्तिवर्जितः।
अद्वैधमत्र वर्तव्यं तथाप्येष मया भवेत्॥
किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवत् पितृवत् प्रियः॥
(२। ११८। ३-४)

'यदि मेरे पतिदेव अनार्य और जीविकारहित होते, तब भी मैं बिना किसी दुविधाके इनकी सेवामें संलग्न रहती। फिर जब ये अपने गुणोंके कारण ही सबकी प्रशंसाके पात्र बने हुए हैं तथा दयालु, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, स्थायी प्रेम करनेवाले और माता-पिताकी भाँति हितैषी हैं, तब इनकी सेवाके विषयमें कहना ही क्या है।'

इसके सिवा उसी प्रसङ्गमें सीताने श्रीरामके बल और गुणोंका बखान करते हुए यह भी कहा है कि 'जब मैं पतिके साथ निर्जन वनमें आने लगी, उस समय मेरी सास कौसल्याने मुझे जो कर्तव्यका उपदेश दिया था, वह मेरे हृदयमें ज्यों-का-त्यों अङ्कित है। उसके पहले मेरे विवाह-कालमें अग्निके समीप माताने मुझे जो शिक्षा दी थी, वह भी अच्छी तरह याद है। मैं जानती हूँ कि स्त्रीके लिये पति ही गुरु और सर्वस्व है। उसके लिये पति-सेवासे बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है'—इत्यादि।

इस प्रसङ्गसे पता चलता है कि सीताके पति-सेवा-विषयक भाव कितने ऊँचे थे। माता-पिता और सासकी शिक्षाको वे कितना आदर देती थीं।

## (५)
## निर्भयता

सीताके तेज और निर्भयताका नमूना भी देखिये। जिस अतुल-पराक्रमी रावणका नाम सुनकर देवतालोग भी घबरा जाते थे, उसीको सीता निर्भयताके साथ कैसा उत्तर देती हैं। वे रावणके दाँवमें पड़ी हुई भी अत्यन्त क्रोधसे उसका तिरस्कार करती हुई कहती हैं—

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा॥
× × ×
सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि॥
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि।
अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि॥
अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि।
रामस्य सदृशीं भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि॥
(३। ४७। ३७, ४२-४४)

'तू सियार है और मैं सिंहनी हूँ, मैं तेरे लिये सर्वथा दुर्लभ हूँ। फिर भी क्या तू मुझे पानेका हौसला रखता है? जैसे कोई सूर्यकी प्रभाको नहीं छू सकता, उसी प्रकार तू मुझे छू भी नहीं सकता। तेरी इतनी हिम्मत कि तू श्रीरामकी प्यारी स्त्रीका अपहरण करना चाहता है! अवश्य ही तू सूर्य और चन्द्रमाको हाथसे पकड़नेकी अभिलाषा करता है। यदि तू श्रीरामजीकी प्यारी पत्नीपर बलात्कार करना चाहता है तो निश्चय ही जलती हुई आगको देखकर भी उसे कपड़ेमें बाँधकर ले जानेकी इच्छा करता है और लोहेकी तीखी सलाखोंके बीचमें विचरना चाहता है।'

इसके सिवा उन्होंने यह भी कहा कि 'तुझमें और श्रीरामचन्द्रजीमें उतना ही अन्तर है, जितना सिंह और सियार-में, समुद्र और नालेमें, अमृत और काँजीमें, सोने और लोहेमें, चन्दन और कीचड़में, हाथी और बिलावमें, गरुड़ और कौवेमें'—इत्यादि।

इससे यह सीखना चाहिये कि अपने पातिव्रत-धर्म और परमात्माके बलपर किसी भी अवस्थामें स्त्रीको डरना उचित नहीं है। अन्यायका प्रतिवाद निर्भयतासे करना चाहिये। परमात्माके बलपर सच्चा भरोसा होगा तो भगवान् अवश्य ही सहायता करेंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

## धर्म-पालनमें दृढ़ता

किसी प्रकारके प्रलोभनसे, भयसे या बड़ी भारी विपत्ति आनेपर भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये—इस बातकी शिक्षा भी हमें सीताके जीवनसे मिलती है। लङ्काकी अशोक-वाटिकामें सीताका धर्म नष्ट करनेके लिये दुष्ट रावणने कम चेष्टा नहीं की। वह स्वयं अपनी स्त्रियोंके साथ अशोक-वाटिकामें गया; सीताको अपना वैभव दिखाकर उनका मन विचलित करनेके लिये बड़े-बड़े प्रलोभन दिये, बार-बार अनुनय-विनय की। इसपर भी सीता अपने धर्मपर अटल रहकर दुष्ट रावणका नीतियुक्त शब्दोंमें सदा तिरस्कार ही करती रहीं। जब रावणने बार-बार श्रीरामके प्रति कठोर शब्द कहे और सीताको अनेक प्रकारका भय दिखलाया, यहाँतक कि मायासे बना हुआ श्रीरामका सिर भी लाकर उनके सामने रख दिया, उस समय इन सब बातोंसे महान् दुखी होकर सीता मरनेके लिये तैयार हो गयीं; परन्तु धर्मसे डिगनेकी भावना कभी स्वप्नमें भी उनके मनमें नहीं उठी। उनका मन दिन-रात श्रीरामके चरणोंमें ही लगा रहता था। राक्षसियोंने भी सीताको भय और प्रलोभन दिखलाकर बहुत तंग किया। परन्तु सीता तो सीता ही ठहरीं। धर्म-त्यागकी तो बात ही क्या, उन्होंने विपत्तिसे बचनेके लिये छलसे भी कभी अपने बाहरी बर्तावमें भी कोई दोष नहीं आने दिया। उनके निर्मल और धर्मसे परिपूर्ण मनमें कभी कोई बुरी स्फुरणा भी नहीं आयी। सुन्दरकाण्डमें यह प्रसङ्ग ध्यानपूर्वक पढ़नेयोग्य है। वहाँ अशोकवाटिकामें रहकर सीता किस प्रकार जीवन बिताती हैं—इसका बड़ा ही हृदय-स्पर्शी वर्णन है। वे विलाप करती हुई कहती हैं—

न हि मे जीवितेनार्थो नैवार्यैर्न च भूषणैः।
वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम्॥
× × ×
धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका॥
चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं निशाचरम्॥
(५। २६। ५, ७-८)

'महारथी श्रीरामजीके बिना इन राक्षसियोंमें रहते हुए मुझे जीवनसे, धनसे और आभूषणोंसे कुछ भी मतलब नहीं है। मैं बड़ी अनार्या और असती हूँ; मुझे धिक्कार है, जो उनसे अलग होकर मैं एक मुहूर्त भी इस पापी जीवनको धारण किये हुए हूँ। इस राक्षस रावण-को तो मैं बायें पैरसे भी नहीं छू सकती, फिर उसे चाहने-की तो बात ही क्या है'—इत्यादि।

इससे स्त्रियोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पतिके वियोगमें भीषण आपत्ति आनेपर भी पतिके ही चरणोंका ध्यान रहे। मनमें भगवान् और धर्मके बलपर पूरी वीरता, धीरता और साहस रहे। स्वधर्म-पालनके लिये प्राणोंकी भी आहुति देनेके लिये सदा तैयार रहे।

(७)

## सावधानी

सीताकी सावधानी भी अनुकरण करनेयोग्य है। जब हनुमान्‌जी अशोक-वाटिकामें गये हैं, तब सीताने अपने बुद्धि-कौशलसे सब प्रकार उनकी परीक्षा की है। जबतक उन्हें यह विश्वास न हुआ कि हनुमान् सचमुच श्रीरामके दूत हैं और मुझे ढूँढ़नेके लिये ही यहाँ आये हैं, तबतक उन्होंने हनुमान्‌से खुले दिलसे बात नहीं की। हनुमान्‌के साथ बहुत-सी बातचीत हो जानेके बाद कवि कहते हैं—

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता।
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छति॥

अर्थात् इस प्रकार विश्वसनीय कारणों तथा श्रीराम और लक्ष्मणके शारीरिक चिह्नोंका वर्णन करके हनुमान्‌जीने शोकसे दुर्बल हुई सीताको अपना विश्वास दिलाया, तब उन्होंने हनुमान्‌को रामका दूत समझा।

इसके बाद जब हनुमान्‌ने राम-नामाङ्कित मुद्रिका प्रदान करके उस विश्वासको और दृढ़ बना दिया, तब सीताने उन्हें अपने साथ बातचीत करनेकी आज्ञा दी—

अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम्।
यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना॥
(५। ३६। १०)

'हनुमान्! यदि तुम आत्मज्ञानी रामके भेजे हुए हो तो मेरे साथ बातचीत कर सकते हो।'

(८)

## प्रेम

सीताका श्रीराममें अलौकिक प्रेम था। हनुमान्‌से श्रीरामचन्द्रजीका सन्देश पाकर उनके आनन्दका पार नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रहता। बातचीत आरम्भ होते ही वे उनसे पहले अपने स्वामी और देवरका कुशल-समाचार ही पूछती हैं। स्वयं भी उन्हींके गुणोंका बार-बार वर्णन करती हैं। बात करते-करते प्रेममें विह्वल होकर रोने लगती हैं।

पहले जब हनुमान् प्रत्यक्ष नहीं हुए थे, उस समय उनके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका वर्णन सुनकर कई तरहकी कल्पना करती हुई सीता स्वयं ही अपनी स्थितिका वर्णन इस प्रकार करती हैं—

रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या विचिन्त्य वाचा स्तुवती तमेव।
तस्यानुरूपं च कथां तदर्थामेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि॥
अहं हि तस्याद्य मनोभवेन संपीडिता तद्गतसर्वभावा।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव तथैव पश्यामि तथा शृणोमि॥

'मैं बुद्धिसे निरन्तर श्रीरामका ही चिन्तन करती रहती हूँ। वाणीसे उन्हींका वर्णन करती हूँ। उसीके अनुसार उनके विषयकी बातें मुझे सुनायी दे रही हैं और वैसी ही घटना मैं देख रही हूँ। मेरे समस्त भाव उन्हींमें समर्पित हैं, उन्हींकी अभिलाषासे सन्तप्त होकर मैं निरन्तर उनका ही चिन्तन करती रहती हूँ। अतः वैसा ही सुनती और देखती हूँ।'

भगवान् श्रीराममें सीताका कितना प्रेम था, अपने प्रियतमसे मिलनेके लिये उनके हृदयमें कितनी व्याकुलता थी—इसका पता रावणद्वारा उनके हरे जानेसे लेकर लङ्का-विजयतकके उनके विविध वचनोंसे लगता है। उस प्रसङ्ग-को पढ़ते-पढ़ते कठोर हृदयका मनुष्य भी रो पड़ता है, फिर भावुक हृदयके विषयमें तो कहना ही क्या है। भगवान् श्रीरामने सीताके प्रेमकी बारंबार प्रशंसा की है। उन्होंने स्वयं साधारण-से-साधारण विषयी मनुष्योंकी भाँति सीताके लिये विलाप करके सीताके प्रेमको प्रमाणित किया है। वे सीताके वियोगमें व्याकुल होकर रोते और विलाप करते हुए ऋषि-कुमारों, सूर्य, पवन, पशु-पक्षी और वृक्ष-लताओंसे भी सीताका पता पूछते फिरे हैं।

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान् श्रीराम अत्यन्त कामी थे। बात यह थी कि सीताजीका श्रीराममें इतना गाढ़ प्रेम था और वे उनके लिये इतनी व्याकुल थीं कि उसके कारण सर्वथा निःस्पृह श्रीरामको भी वैसा ही बर्ताव करना पड़ा। भगवान्का तो यह विरद ही ठहरा—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

—अतएव महाविरही और अतिकामी साधारण मनुष्यकी भाँति लीला करके उन्होंने उपर्युक्त सिद्धान्तको चरितार्थ कर दिया। इससे हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि यदि हम भगवान्को पानेके लिये उनके विरहमें व्याकुल होंगे तो भगवान्को भी हमसे मिलनेके लिये उतना ही व्याकुल होना पड़ेगा। अतएव हम सब उनमें ऐसा ही प्रेम बढ़ानेकी चेष्टा करें

( ९ )

## पर-पुरुषसे परहेज

हनुमान्जीसे बातचीत करते-करते जब भगवान् श्रीरामके गुण, प्रभाव और पराक्रमको याद करती हुई सीता उनके वियोग-दुःखसे व्याकुल हो गयीं, उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली, उस समय हनुमान्ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—

श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः।
चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंकुलाम्॥
अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव स राक्षसात्।
अस्माद् दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते॥
× × ×
द्रक्ष्यस्यद्यैव वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम्।
व्यवसायसमायुक्तं विष्णुं दैत्यवधे यथा॥
(५। ३७। २०-२१, २४)

'मेरे वचन सुनते ही रघुनाथजी वानर और भालुओंकी विशाल सेना लेकर तुरंत यहाँके लिये चल पड़ेंगे। अथवा आप मेरी पीठपर बैठ जाइये, मैं आज ही आपको राक्षसके दुःखसे मुक्त कर दूँगा।.....ऐसा करनेसे आप आज ही दैत्य-वधके लिये प्रयत्न करनेवाले भगवान् विष्णुकी भाँति राक्षस-वधके उद्योगमें लगे हुए लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीको देख सकेंगी।'

हनुमान्जीने सीताजीसे यह भी कहा कि 'मुझमें रावण-सहित समूची लङ्काको भी उठाकर ले जानेकी शक्ति है। जब मैं आपको लेकर यहाँसे चलूँगा, उस समय समूचे लङ्का-निवासी मिलकर भी मेरा पीछा नहीं कर सकेंगे। मैं शीघ्र ही आपको श्रीरघुनाथजीके पास पहुँचा दूँगा।'

हनुमान्के इन वचनोंको सुनकर सीता मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुईं और कहने लगीं—

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम॥
यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात्।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती॥


CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम्।
मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत्॥
(५। ३७। ६२—६४)

'वानरश्रेष्ठ! पति-भक्तिकी ओर दृष्टि रखकर मैं भगवान् श्रीरामके सिवा दूसरे किसी पुरुषके शरीरका स्वेच्छासे स्पर्श नहीं करना चाहती। रावणके शरीरसे जो मेरा स्पर्श हो गया, वह तो उसके बलात्कारके कारण हुआ है। उस समय मैं असमर्थ, असहाय और बेबस थी; क्या करती? अब तो यदि श्रीरघुनाथजी राक्षसोंसहित रावणको मारकर मुझे यहाँसे ले चलें, तो यही उनके योग्य पराक्रम होगा।'

भला, विचार कीजिये—हनुमान्-सरीखे सेवक, जो सीतामें सच्चे हृदयसे मातृ-भाव रखते हैं और जिन्होंने श्रीराम-सीताकी सेवा करना ही अपने जीवनका परम ध्येय मान रखा है, पतिव्रत-धर्मकी रक्षाकी दृष्टिसे सीता उनका भी स्पर्श नहीं करना चाहतीं—यद्यपि वे घोर विपत्तिमें पड़ी हुई हैं, उन्हें अपने स्वामीसे मिलनेकी अतिशय उत्कण्ठा है और उनके पास जानेके लिये उन्हें ऐसा स्वर्ण-संयोग प्राप्त हो गया है। धर्मपर कैसी दृढ़ आस्था है! इसमें यह सीखनेकी बात है कि भारी आपत्तिके समय भी स्त्रीको यथासाध्य पर-पुरुषका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

( १० )

## क्षमा

रावणका वध और भगवान् श्रीरामकी विजय होनेके बाद विजयकी खबर देनेके लिये जब हनुमान्‌जी सीताके पास गये, उस समय भगवान् श्रीरामका सन्देश देकर उन्होंने सीतासे यह भी कहा कि 'जिन दुष्ट राक्षसियोंने आपको पहले बहुत धमकाया, डराया और दुःख दिया है, उन सबको मैं मार डालना चाहता हूँ; आप मुझे आज्ञा दें।' उस समय सीता चाहतीं तो हनुमान्‌को संकेत करके उन सबसे अपना बदला ले सकती थीं; परन्तु सीता तो परम दयालु साक्षात् भगवान् श्रीरामकी अर्द्धाङ्गिनी ठहरीं; वे ऐसा क्यों करने लगीं। दीनोंपर प्रेम रखनेवाली तपस्विनी सीताने कहा—

विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम।
भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च॥
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते।
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः॥
× × × ×
पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥
(६। ११३। ३७-३८, ४३)

'वानरश्रेष्ठ! ऐसा कौन मूर्ख है, जो दूसरोंकी आज्ञा पालन करनेवाली दासियोंपर क्रोध करेगा। क्योंकि मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंका ही फल भोगता है। भाग्यकी विषमता और पूर्वकृत पापोंके कारण ही मुझे यह सब दुःख प्राप्त हुआ है। यह सब भाग्यकी ही लीला है, इसमें दूसरोंका कोई दोष नहीं है। अतः तुम राक्षसियोंके मारनेकी बात मत कहो। ···कोई पापी, धर्मात्मा या वधके योग्य अपराध करनेवाला ही क्यों न हो, साधुको तो सबपर दया ही करनी चाहिये; क्योंकि अपराध सभीसे होते आये हैं'—इत्यादि।

( ११ )

## अग्नि-परीक्षा

जब हनुमान्‌ने अशोक-वाटिकासे लौटकर श्रीरामसे यह कहा कि 'सीता आपका दर्शन करनेके लिये आतुर हो रही हैं' तब श्रीरामचन्द्रजीके आज्ञानुसार विभीषण सीताको स्नान करवाकर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके उनके पास ले आये। बहुत दिनोंके बाद प्रियतम पति श्रीरामचन्द्रजीके पूर्णचन्द्र-सदृश मुखको देखकर सीताका सारा दुःख दूर हो गया और उनका मुख निर्मल चन्द्रमाकी भाँति चमक उठा। परन्तु उसी समय बहुत-सी बातोंके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—

यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां प्रतिमार्जता।
तत्कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकाङ्क्षिणा॥
× × × ×
कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम्।
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहृल्लोभेन चेतसा॥
× × × ×
यदर्थं निर्जिता मे त्वं सोऽयमासादितो मया।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामिति॥
(६। ११५। १३, १९, २१)

'अपमानका मार्जन करनेके लिये मनुष्यका जो कर्तव्य होता है, उसे मैंने अपने मानकी रक्षाके लिये रावणको मारकर पूरा कर दिया। जिस उद्देश्यसे मैंने तुम्हें रावणके चंगुलसे छुड़ाया है, वह पूरा हो गया। अब मेरी तुझमें आसक्ति नहीं है। क्योंकि कोई भी कुलीन और तेजस्वी पुरुष दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीको प्रेमके लोभमें पड़कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्वीकार नहीं कर सकता। अतः तुम्हारा जहाँ मन हो चली जाओ।'

श्रीरामके इन कठोर और भयंकर वचनोंको सुनकर उस समय सती सीताकी जो दशा हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। स्वामीके वाग्बाणोंसे सीताके मनमें भीषण घाव हो गया, वे फूट-फूटकर रोने लगीं। फिर उन्होंने हृदय-स्पर्शी शब्दोंमें गद्गद वाणीसे कहा –

'स्वामी! आप साधारण पुरुषोंकी भाँति ऐसे कठोर और अनुचित वचन मुझे क्यों कह रहे हैं? मैं अपने शीलकी शपथ करके कहती हूँ, आप मुझपर विश्वास रखें। प्राणनाथ! हरण करके लाते समय रावणने मेरे शरीरका अवश्य स्पर्श किया था; किन्तु उस समय मैं परवश थी। इसके लिये तो मैं दोषी ठहरायी नहीं जा सकती। मेरा हृदय मेरे अधीन है और उसपर स्वप्नमें भी किसी दूसरेका अधिकार नहीं हुआ है। फिर यदि आपको यही करना था तो जब हनुमान्‌को मेरे पास भेजा था, उसी समय मेरा त्याग कर दिया होता, ताकि अबतक मैं अपने प्राणोंका ही त्याग कर देती।'

इस प्रकार सीताने और भी बहुत कुछ कहा, परन्तु श्रीरामने उनकी बातोंका कोई उत्तर नहीं दिया। तब वे दीनभावसे ध्यानमग्न लक्ष्मणको सम्बोधित कर दीनतापूर्वक रोती हुई बोलीं—'लक्ष्मण! इस मिथ्यापवादसे कलङ्कित होकर मैं जीना नहीं चाहती। मेरे दुःखकी निवृत्तिके लिये तुम यहीं चिता तैयार कर दो। मेरे प्रिय पतिने मेरे गुणोंसे अप्रसन्न होकर जनसमुदायमें मेरा त्याग किया है। अब मैं इस जीवनका अन्त करनेके लिये अग्निमें प्रवेश करूँगी।' विदेहनन्दिनी सीताके वचन सुनकर लक्ष्मण पहले तो कुछ खिन्न हुए, किन्तु पीछे आकार और संकेतसे श्रीरामका रुख समझकर उन्होंने तुरंत ही चिता तैयार कर दी। सीताने पहले श्रीरामकी प्रदक्षिणा की, उसके बाद देवता और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके प्रज्वलित अग्निके समीप जा हाथ जोड़कर कहा—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥
यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥
(६। ११६। २५-२६)

'हे लोक-साक्षी अग्निदेव! यदि मेरा मन कभी श्रीरघुनाथजी-से न हटा हो तो आप सब प्रकारसे मेरी रक्षा करें। यदि मैं वास्तवमें शुद्धचरित्र हूँ और मुझे भ्रमवश श्रीरघुनाथजी दुष्टा समझ रहे हैं तो आप मेरी सब प्रकारसे रक्षा करें।'

इतना कहकर अग्निकी प्रदक्षिणा करके सीता निर्भयता-पूर्वक धधकती हुई प्रचण्ड अग्निमें प्रवेश कर गयीं। सब ओर हाहाकार मच गया। ब्रह्मा, शिव, कुबेर, इन्द्र, यमराज और वरुण आदि बड़े-बड़े देवता वहाँ उपस्थित हुए। उस समय ब्रह्माजीने श्रीराम और सीताके रहस्यकी बहुत-सी बातें कहीं।

इतनेमें ही भगवान् अग्निदेव सीताको लेकर अकस्मात् अपने देवरूपसे प्रकट हो गये और जनकात्मजा सीताको रामके प्रति अर्पण करते हुए बोले—

....एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते॥
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा।
सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यं न त्वामत्यचरच्छुभा॥
रावणेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा।
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जने सती॥
रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा।
रक्षिता राक्षसीभिश्च घोराभिर्घोरबुद्धिभिः॥
प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली।
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना॥
विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम्।
न किंचिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते॥
(६। ११८। ५–१०)

'राम! यह तुम्हारी सीता है। इसमें किसी प्रकारका पाप नहीं है। इस सती-साध्वीने मन, बुद्धि, वचन या नेत्रोंके द्वारा कभी तुम्हारे विपरीत कोई आचरण नहीं किया। राक्षस रावण बलके कारण उन्मत्त था। वह तुम्हारी अनुपस्थितिमें इस बेचारीको बलपूर्वक सूने आश्रमसे ले गया। उसने इसे अपने अन्तःपुरमें कैद करके रखा और क्रूर स्वभाववाली भयंकर राक्षसियोंका पहरा बैठा दिया; फिर भी इसका चित्त तुम्हींमें लगा रहा और यह तुम्हारा ही चिन्तन करती रही। इसे तरह-तरहके लोभ दिये गये और बहुत डाँट-डपट भी बतायी गयी; परन्तु तुम्हींमें चित्त लगा रहनेके कारण इसने उस राक्षसका तो चिन्तन भी नहीं किया। इसका भाव विशुद्ध है और यह सर्वथा निर्दोष है; तुम इसे स्वीकार करो। अब इस विषयमें कुछ और मत कहना—यही मेरी आज्ञा है।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri

अग्निदेवके वचन सुनकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए। उनके नेत्र हर्षसे भर आये और उन्होंने कहा—

अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा॥
बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः।
इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्य हि॥
अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम्।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम्॥
इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा।
रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः॥
न च शक्तः सुदुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम्।
प्रधर्षयितुमप्राप्यां दीप्तामग्निशिखामिव॥
नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा॥
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा॥
अवश्यं च मया कार्यं सर्वेषां वो वचो हितम्।
स्निग्धानां लोकनाथानामेवं च वदतां हितम्॥

(६। ११८। १३–२०)

'लोकदृष्टिमें सीताकी पवित्रताकी परीक्षा आवश्यक थी, क्योंकि यह बहुत समयतक रावणके अन्तःपुरमें रही है। यदि मैं जानकीकी परीक्षा न करता तो लोग यही कहते कि दशरथपुत्र राम बड़ा ही मूर्ख और कामी है। जनकनन्दिनी सीताका मन अनन्यभावसे मुझीमें लगा रहता है और यह मेरे ही चित्तका अनुसरण करनेवाली है—यह बात मैं भी जानता हूँ। यह अपने तेजसे स्वयं ही सुरक्षित है; इसलिये समुद्र जिस प्रकार अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता, उसी प्रकार रावण इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि-शिखाका कोई स्पर्श नहीं कर सकता, उसी प्रकार दुष्ट रावण अपने मनसे भी इसपर अधिकार नहीं कर सकता था; यह तो उसके लिये सर्वथा अप्राप्य थी। रावणके अन्तःपुरमें रहनेपर भी इसका किसी प्रकार तिरस्कार नहीं हो सकता था; क्योंकि प्रभा जैसे सूर्यसे अभिन्न है, उसी प्रकार इसका मुझसे कोई भेद नहीं है। जनकदुलारी सीता तीनों लोकोंमें पवित्र है; इसलिये आत्माभिमानी पुरुष जैसे कीर्तिका लोभ नहीं छोड़ सकते, वैसे ही मैं इसका त्याग नहीं कर सकता। आप सभी लोकपालगण मेरे प्रेमी हैं और मेरे हितकी ही बात कर रहे हैं; इसलिये मुझे आपकी हितभरी बात अवश्य मान लेनी चाहिये।'

इतना कहकर उन्होंने अत्यन्त आनन्दपूर्वक सती सीताजीको स्वीकार कर लिया। इस प्रसङ्गसे यह सीखना चाहिये कि स्त्रीको किसी भी स्थितिमें पतिपर कोप नहीं करना चाहिये, बल्कि उसे सन्तोष करानेके लिये न्यायानुकूल चेष्टा ही करनी चाहिये।

(१२)

## गृहस्थ-धर्म

जब सीताजी लङ्कासे अयोध्या लौट आती हैं, तब वे आते ही बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों और सभी सासुओंके चरणोंमें प्रणाम करती हैं, घरमें रहकर देवताओंका पूजन करती हैं तथा सभी सासुओंकी समान भावसे सेवा करती हैं। इस प्रकार सीता घरके सभी कार्य सुचारुरूपसे सम्पन्न करके सबको मुग्ध कर देती हैं। सीताजी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—इन सभी देवरोंको पुत्रवत् समझती थीं और खान-पान आदिमें उनके साथ किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं रखती थीं। इससे यह शिक्षा मिलती है कि स्त्रियोंको विदेशसे लौटते ही घरमें सभी बड़ी-बूढ़ियोंको प्रणाम करना चाहिये, सबकी समान भावसे सेवा करनी चाहिये, घरका सब काम सुचारुरूपसे करना चाहिये और अपने देवर आदिके साथ शुद्ध और समान भावसे यथायोग्य बर्ताव करना चाहिये।

(१३)

## सीताका परित्याग

सीताके परित्यागका प्रसङ्ग बड़ा ही रोमाञ्चकारी है। इसे उत्तरकाण्डमें ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये। सीता सब प्रकारसे परम पवित्र हैं, इस बातको भगवान् श्रीरामचन्द्र पूर्णतया जानते थे। लङ्कामें अग्नि-परीक्षाके द्वारा सीताको सबके सामने भी पवित्र सिद्ध कर चुके थे। यह सब होते हुए भी लोकापवादपर ध्यान देकर प्रजाको सन्तुष्ट करनेके लिये उन्होंने निर्दोष सीताका परित्याग कर दिया। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न आदि किसी भी भाईको यह बात अच्छी नहीं लगी; परन्तु उनके पास इसका कोई उपाय नहीं था।

यद्यपि लक्ष्मणकी इच्छा नहीं थी, तो भी उन्हें बड़े भाईकी आज्ञा मानकर सीताको वनमें छोड़नेके लिये जाना पड़ा। वनमें जाकर जब लक्ष्मणने सब बातें कहीं और सीताको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मालूम हुआ कि 'वे निर्दोष होते हुए भी त्याग दी गयी हैं' तब उनके दुःखका पारावार नहीं रहा। ऐसे संकटके समय भी सीताने अपने पतिपर किसी तरहका दोषारोपण नहीं किया। बल्कि लक्ष्मणके साथ सन्देश भेजते हुए यह कहा—

श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलिप्रग्रहेण च।
शिरसा वन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम्॥
शिरसाभिनतो ब्रूयाः सर्वासामेव लक्ष्मण।
वक्तव्यश्चापि नृपतिर्धर्मेषु सुसमाहितः॥
जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव।
भक्त्या च परया युक्ता हिता च तव नित्यशः॥
अहं त्यक्ता च ते वीर अयशोभीरुणा जने।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः॥
मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः।
वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः॥
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा॥
यत्तु पौरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात्।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ॥
यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन।
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः॥

(७। ४८। १०–१७)

"सब सासुओंको समान रूपसे हाथ जोड़कर प्रणाम करें तथा महाराजके चरणोंमें सिर रखकर मेरी कुशल कहें। इसी प्रकार और सबसे भी सिर झुकाकर मेरी कुशल कहें। फिर अपने धर्ममें सावधान महाराजसे इस प्रकार कहें—'रघुनाथजी! सीता वस्तुतः शुद्ध है और सर्वदा आपके प्रति अत्यन्त भक्तियुक्त तथा आपके हितमें तत्पर रहनेवाली है—यह बात आप जानते ही हैं। वीर! आपने अपने अपयशसे डरकर ही मेरा त्याग किया है। अतः आपकी जो निन्दा, जो अपकीर्ति हो रही है, उसका मुझे मार्जन करना होगा; क्योंकि आप ही मेरे परम आश्रय हैं।' फिर आप महाराजसे यह भी कहें कि 'आप जैसा बर्ताव अपने भाइयोंसे करते हैं, वैसा ही सर्वदा पुरवासियोंके साथ भी करें—इस मिथ्या अपवादके कारण खीझकर उनके प्रति किसी प्रकारका दुर्व्यवहार न कर बैठें। पुरवासियोंके साथ धर्मानुकूल आचरण करना ही आपका परम धर्म है और उससे आपको उत्तम यशकी प्राप्ति होगी। पुरुषोत्तम! मुझे अपने शरीरकी तो कुछ भी चिन्ता नहीं है। पुरवासियोंका मेरे विषयमें जैसा अपवाद है, वह उसी प्रकार बना रहे—मैं इसकी परवा नहीं करती। स्त्रीके लिये तो पति ही देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है।"

कैसे मार्मिक शब्द हैं। धन्य सती सीता और धन्य उनका धर्मप्रेम! धन्य भारतका सती-धर्म और धन्य भारतीय देवियोंका अपूर्व त्याग!

इस प्रकार सीतासे बातचीत होनेके अनन्तर लक्ष्मण उन्हें प्रणाम करके रोते हुए लौट गये। इधर दुःखके भारसे पीड़ित आदर्श पतिव्रता सीता वनमें रोने लगीं। उनके रुदनको सुनकर वाल्मीकि ऋषि उन्हें अपने आश्रममें ले गये। सीता उनके आश्रमपर ऋषिपत्नियोंके पास रहीं।

इस प्रसङ्गमें बहुत कुछ सीखनेकी बातें हैं। सीताके उपर्युक्त शब्द नित्य पाठ करने योग्य हैं। उनका भाव समझकर उसीके अनुसार पतिव्रता स्त्रियोंको अपना जीवन बनाना चाहिये।

(१४)

## पाताल-प्रवेश

जो स्त्री अपने धर्मका प्राण-पणसे पालन करती है, उसका अन्तिम परिणाम अच्छा ही होता है। अश्वमेध-यज्ञ करते समय जब भगवान् श्रीरामचन्द्रको कुश-लवके द्वारा रामायणका गान सुनते-सुनते उसमें वर्णित प्रसङ्गसे यह मालूम हुआ कि ये बालक सीताके ही पुत्र हैं, तब उनकी आज्ञासे सीता वहाँ बुलायी गयीं। सती सीता श्रीरामका ही ध्यान करती हुई सिर नीचा किये हाथ जोड़कर वाल्मीकि ऋषिके पीछे-पीछे रोती हुई आयीं। उस समय वाल्मीकि मुनिने सभामें आकर जो कुछ कहा, उससे सारा लोकापवाद मिट गया और सारी सभा सीता-रामके जय-जयकारसे ध्वनित हो उठी। वाल्मीकिने सीताके निष्पाप होनेकी बात कहते हुए यहाँतक कह डाला—

× × ×
बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली॥
× × ×
इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता।
लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति॥

(७। ९६। १९, २२)

'मैंने हजारों वर्षोंतक तप किया है। उसकी शपथ करके कहता हूँ कि यदि सीता दुष्ट आचरणवाली हो तो उन सब तपोंका फल मुझे न मिले। यह सीता पतिको ही देवता माननेवाली, निष्पाप तथा पवित्र और सुन्दर आचरणोंसे युक्त है। तुम लोकापवादसे डरते हो, अतः यह तुम्हें विश्वास दिलायेगी।'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकिकी शपथ सुनकर और सीताको सभामें आयी देख श्रीराम गद्‌गद हो गये और कहने लगे—'महाभाग! आपके निष्कपट वचनोंसे मुझे पूरा विश्वास हो गया है। पहले लङ्कामें भी सब देवताओंके सामने इसने अग्नि-परीक्षा देकर मुझे विश्वास दिलाया था। मैं स्वयं भी जानता हूँ कि जानकी सब प्रकारसे शुद्ध है और कुश-लव मेरे ही पुत्र हैं; तथापि लोकापवाद हो जानेपर प्रजाको सन्तुष्ट करनेके लिये मैं प्रिया सीताको त्यागनेके लिये बाध्य हो गया। अतः आप क्षमा करें।'

उस समय सभामें ब्रह्मादिक सब देवता भी आ गये। तब रामने फिर कहा—'मुझे तो यह विश्वास हो गया है कि जानकी शुद्ध है। परन्तु जब समस्त जगत्‌के सामने सीता पवित्र सिद्ध हो जायगी, तभी मैं प्रसन्न होऊँगा।'

इसी समय काषाय-वस्त्र धारण किये सती सीता नीचा सिर किये भूमिकी ओर देखती हुई हाथ जोड़कर बोलीं—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

(७। ९७। १४–१६)

'यदि मैंने श्रीरामके सिवा किसी दूसरेका कभी मनसे भी चिन्तन न किया हो तो पृथ्वी देवी मुझे अपने अंदर स्थान दें। यदि मैंने मन, कर्म और वाणीसे केवल रामका ही पूजन किया हो तो पृथ्वी माता मुझे मार्ग दें। यदि मैं यह सत्य कहती हूँ कि रामसे बढ़कर मैं कुछ भी नहीं समझती तो माधवी देवी मुझे अपनेमें स्थान दें।'

सीताके इस प्रकार शपथ करते ही अकस्मात् धरती फटी, उसमेंसे एक उत्तम और दिव्य सिंहासन निकला। उसे दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित दिव्य देहधारी नागोंने धारण कर रखा था। उसपर पृथ्वी देवी बैठी थीं। माता पृथ्वीने सीताका दोनों हाथोंसे आलिङ्गन किया तथा उनका स्वागत करके अपनी गोदमें बैठा लिया। इतनेमें सबके देखते-देखते सिंहासन पातालमें प्रवेश कर गया। आकाशसे पुष्प-वृष्टि होने लगी और सती सीताके जय-जयकारसे आकाश-मण्डल गूँज उठा।

(१५)

## उपसंहार

सीताने अपने जीवनमें कठोर परीक्षाएँ देकर स्त्रीमात्रके लिये यह सिद्ध कर दिखाया कि जो स्त्री आपत्तिकालमें भी धर्मका पालन करेगी, वह सदाके लिये परमानन्दमें मग्न रहेगी और उसकी कीर्ति संसारमें सदाके लिये अमर हो जायगी। सीताकी पति-भक्ति, सासुओंके प्रति सेवा-भाव, सबका सम्मान करनेकी चेष्टा, सबके साथ यथायोग्य प्रेमका बर्ताव, ऋषियोंकी सेवा, कुश-लव-जैसे वीर पुत्रोंको जन्म देना, उनको शिक्षा देनेकी पटुता, साहस, धैर्य, तप, वीरत्व, धर्म-परायणता, निर्भयता, क्षमा आदि सभी गुण पूर्ण विकसित और अनुकरणीय हैं। संसारमें जो कोई स्त्री प्रमाद, मोह और आसक्तिको छोड़कर सीताके चरित्रका अनुकरण करेगी, उसके अपने कल्याणमें तो कहना ही क्या है, वह अपने पति, पुत्र और कुटुम्बवालोंका भी उद्धार कर देगी। ऐसी सती-शिरोमणि पतिव्रता स्त्री दर्शन और पूजनके योग्य है और अपने चरित्रसे जगत्‌को पवित्र करनेवाली है।

यद्यपि श्रीसीताजी साक्षात् भगवती हैं, तथापि उन्होंने अपने मनुष्य-जीवनमें जो-जो चरित्र किये हैं, वे सब-के-सब ऐसे हैं कि जिनका अनुकरण इच्छा करनेपर हर एक स्त्री कर सकती है। उनके चरित्र अलौकिक न होकर ऐसे व्यावहारिक हैं कि जिनका आचरण करके सभी स्त्रियाँ लाभ उठा सकती हैं।

## मैथिलीको आश्वासन

*तेरे प्रेम-सिन्धुमें रमा है राम-रस ही।*
*करते बनेगा आर्द्र अवनीको बस ही॥*
*तेरे घनश्याम आवैं, धैर्य धर मैथिली!*
*कोटि सिर क्यों न हों, रावणके दस ही॥*

—मैथिलीशरण गुप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

भगवान् मनुका वचन है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

'इतिहास एवं पुराणोंके अध्ययनसे वेदोंका ज्ञान बढ़ाना चाहिये—परिष्कृत करना चाहिये। जो कोई मनुष्य इतिहास-पुराणोंका ज्ञान प्राप्त किये बिना ही वेदोंमें हाथ डालता है, उससे वेद डरते हैं कि कहीं यह हमपर प्रहार न कर बैठे—अर्थका अनर्थ न कर डाले।'

प्रथम तो वेदोंके अध्ययनका अधिकार ही सबको नहीं है। फिर वेदोंकी भाषा अत्यन्त प्राचीन एवं अर्थ अत्यन्त गम्भीर एवं दुरूह होनेके कारण उसे सब लोग सुगमतासे समझ नहीं सकते। युग-धर्मके अनुसार वेदोंके पठन-पाठनकी परम्परा भी क्रमशः उठती चली जा रही है। ब्राह्मणोंमें भी वैदिक विद्वान् खोजनेपर भी कठिनतासे मिलते हैं। कारण यही है कि वेदोंका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करनेके लिये प्रचुर समय एवं प्रखर बुद्धिकी आवश्यकता है और वर्तमान युगमें दोनोंकी ही न्यूनता दृष्टिगोचर हो रही है। मनुष्यकी आयु और बुद्धि दोनोंका ही क्रमशः ह्रास होता चला जा रहा है। वेदोंके अध्ययनके लिये ब्रह्मचर्यकी भी परमावश्यकता है और ब्रह्मचर्याश्रमका तो प्रायः लोप ही होता जा रहा है। इन्हीं सब बातोंका विचार करते हुए हमारे त्रिकालदर्शी महर्षियोंने वैदिक ज्ञानको सरल एवं सुबोध भाषामें एवं रोचक ढंगसे जन-साधारणके सामने रख देनेके उद्देश्यसे ही इतिहास एवं पुराणोंकी रचना की। इतिहास-ग्रन्थोंमें रामायण और महाभारत—ये दो ही ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं। दोनों ही ग्रन्थ भारतीय वाङ्मयके मुकुट-मणि एवं आर्य-सभ्यताके गौरवरूप हैं। दोनोंमें ही भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, नीति एवं धर्मकी शिक्षा कूट-कूटकर भरी हुई है। एकमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी दिव्य लीलाओंका वर्णन है तो दूसरेमें मालामें सूतकी भाँति लीला-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा ओतप्रोत है। दोनोंमें ही भारतीय संस्कृतिका जीता-जागता रूप दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत-साहित्यमें दृश्य एवं श्रव्य काव्यके जितने भी ग्रन्थ बने, उन सबकी रचना प्रायः इन्हीं दोनों ग्रन्थोंके आधारपर हुई है।

आर्य-जातिके ऋषिप्रणीत सच्चे इतिहास होनेके साथ-साथ दोनों ही ग्रन्थोंका कविताकी दृष्टिसे भी बहुत ऊँचा स्थान है। फिर भी महाभारतकी 'इतिहास' संज्ञा ही है, उसकी काव्योंमें गणना नहीं है। उसमें महाकाव्यके लक्षण भी नहीं घटते। इतिहासके साथ-साथ 'आदिकाव्य' कहलानेका गौरव तो वाल्मीकीय रामायणको ही प्राप्त है। काव्यकी विशेषता यही है कि उसके द्वारा हमें 'कान्ता-सम्मित' उपदेश मिलता है। जहाँ वेद 'सत्यं वद,' 'धर्मं चर', 'आचारान्मा प्रमदः', 'प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः' आदि विधि-वाक्योंके द्वारा गुरुकी भाँति उपदेश करते हैं; और इतिहास-पुराण हमें 'रामवद्वर्तितव्यं न रावणवत्' इस रूपमें मित्रकी भाँति हितपूर्ण सलाह देते हैं, वहाँ काव्य हमें कान्ताकी भाँति रोचक एवं मधुर शब्दोंमें प्यारभरी मृदु मन्त्रणा देते हैं। 'मातृदेवो भव,' 'पितृदेवो भव' इत्यादि वेदवाक्योंका हमपर उतना असर नहीं होता, जितना भगवान् श्रीरामकी मातृभक्ति एवं पितृभक्तिके काव्यमय वर्णनका। इस प्रकारके 'कान्ता-सम्मित' उपदेश देनेवाले काव्योंमें वाल्मीकीय रामायणका स्थान सर्वोपरि है। रचना-कौशल एवं काव्य-वस्तु दोनोंकी दृष्टिसे ही रामायण जगत्के समस्त काव्योंका शीर्षस्थानीय है।

मनुष्यको कैसी स्थितिमें किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये; किस प्रकार अपने कुटुम्बके एवं संसारके दूसरे व्यक्तियोंको सुख पहुँचानेके लिये अपने सब प्रकारके सुखोंका त्याग करके स्वयं हर तरहका कष्ट सहन करनेको तैयार रहना चाहिये; किस प्रकार सत्य, न्याय, सदाचार और प्रतिज्ञा-पालनपर दृढ़ रहकर जीवनको आदर्श बनाना चाहिये—इत्यादि सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक शिक्षाओंका तो वाल्मीकीय रामायण भंडार ही है। इसमें पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी पवित्र मनुष्य-लीलाका सर्वाङ्ग-सुन्दर चित्रण किया गया है। साथ ही जगज्जननी जानकीका आदर्श पातिव्रत्य, भरतका अनुपम भ्रातृप्रेम और त्याग, राजा दशरथका अपूर्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri

वात्सल्य-प्रेम, कौसल्याका महान् सौजन्य, श्रवणकी अनुकरणीय पितृभक्ति, हनुमान्‌जीकी अनुलनीय स्वामिभक्ति, विभीषणकी असाधारण न्यायप्रियता, अयोध्याकी प्रजाका श्रीरामके प्रति स्वाभाविक स्नेह तथा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका सबके साथ श्रद्धा, दया एवं प्रेमपूर्ण यथायोग्य बर्ताव—इत्यादि सभी विषयोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन हुआ है। इसके श्लोक बड़े ही मधुर, काव्योचित गुणों एवं अलंकारोंसे विभूषित, ताल-स्वर-के साथ गाये जाने योग्य एवं गम्भीर अर्थसे युक्त हैं। इसमें शृङ्गारादि सभी रसोंका बड़े ही सुन्दर ढंगसे समावेश किया गया है। करुण-रस तो इस ग्रन्थका प्राण ही है। इस प्रकार यह ग्रन्थ सभी दृष्टियोंसे अत्यन्त उपादेय है।

वाल्मीकीय रामायण उच्च कोटिका महाकाव्य होनेके साथ ही भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी अवतार-लीलाका सच्चा इतिहास है—इस बातको हमें नहीं भूलना चाहिये। साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीने ग्रन्थकर्ताको ग्रन्थ-रचनाके पूर्व यह वरदान दिया था कि 'राम-चरितसम्बन्धी सारी बातें तुम्हें अपने-आप विदित हो जायँगी।' इसी वरदानके अनुसार सारी बातोंको भलीभाँति जानकर महर्षिने उन्हें अपने चरित-नायकके अवतार-कालमें ही श्लोकबद्ध करके उन्हींके पुत्र कुश और लवको कण्ठस्थ करा दिया तथा उन्हींके द्वारा आगे होनेवाली घटनाओंसहित पूरा-का-पूरा चरित्र स्वयं चरित-नायकको भरी सभामें सुनवा दिया। इससे बढ़कर इस ग्रन्थकी ऐतिहासिकता-का प्रमाण और क्या हो सकता है। ऐसी दशामें इसमें असत्य, प्रमाद अथवा अतिशयोक्तिकी कल्पना भी नहीं हो सकती। ऐसे सर्वमान्य एवं सर्वोपयोगी ग्रन्थका जनतामें जितना भी प्रचार होगा, उतना ही जगत्‌का कल्याण होगा।

मेरी रायमें इस ग्रन्थको पढ़ने-सुननेका अधिकार मनुष्य-मात्रको है, चाहे वह किसी भी समुदाय अथवा जातिका क्यों न हो। प्रत्येक मनुष्य इसका अध्ययन करके इसमें आये हुए उत्तमोत्तम उपदेशोंको यथाधिकार आचरणमें लाकर अपने मनुष्य-जीवनको अदर्श एवं सफल बना सकता है।

इन्हीं सब बातोंको दृष्टिमें रखकर—जिस प्रकार गतवर्ष महाभारतका संक्षिप्त अनुवाद 'कल्याण'के बारह अंकोंमें निकाला गया था, उसी प्रकार इस वर्ष वाल्मीकीय रामायणका संक्षिप्त अनुवाद विशेषाङ्कके रूपमें निकालनेका विचार हुआ। कथाओंका संक्षेप करते समय यथासम्भव इस बातका ध्यान रखा गया है कि कोई विशेष महत्त्वपूर्ण तथा सार्व-जनिक दृष्टिसे अधिक उपयोगी अंश न छूटने पाये। फिर भी ऐसा सम्भव है कि कोई अधिक उपयोगी अंश छूट गया हो और उसके स्थानमें कोई कम महत्त्वका स्थल दे दिया गया हो। इस प्रकारकी भूलोंके लिये हम प्रेमी पाठकोंसे हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हैं। यदि कोई प्रेमी महानुभाव, जिन्होंने पूरे ग्रन्थका अध्ययन किया हो, हमें इस प्रकारकी कोई भूल बतायेंगे तो हम उनके आभारी होंगे।

अनुवाद कैसा हुआ है—इसका निर्णय तो विज्ञ पाठक ही कर सकेंगे। मुझे तो इस कार्यमें सहयोग देनेसे लाभ-ही-लाभ हुआ है। इस ग्रन्थका संक्षेप करनेके बहाने मुझे इसका विचारपूर्वक पठन; इसमें आयी हुई पवित्र कथाओंका आलोचन; भगवान् श्रीरामके अनुपम आदर्श गुणों एवं यथायोग्य बर्तावका चिन्तन; भरत, लक्ष्मण, हनुमान् आदिके चरित्रोंका परिशीलन तथा भक्ति, ज्ञान एवं सदाचारसे पूर्ण उपदेशोंका मनन करनेका सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ—इसके लिये मैं अपनेको धन्य मानता हूँ।

अनुवादका कार्य पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री तथा श्रीमुनिलालजीने मिलकर पूरा किया है। अनुवाद-संशोधन तथा प्रूफ आदि देखनेमें सम्पादकीय विभागके अतिरिक्त कई एक बन्धुओं एवं मित्रोंसे बहुमूल्य सहायता प्राप्त हुई है, जिसके लिये मैं उन सबका कृतज्ञ हूँ। आधुनिक परिपाटीके अनुसार उन्हें धन्यवाद देना तो उनके कार्यका महत्त्व घटाना होगा। इस कार्यमें कई विद्वानोंका सहयोग होनेपर भी दृष्टिदोषसे भूलोंका रह जाना तो सर्वथा सम्भव ही है। इसके लिये मैं सबसे हाथ जोड़कर क्षमा माँगता हूँ।

विनीत—

जयदयाल गोयन्दका

C21
गो. ६२
महिला मंडल पु: ...
रा.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कल्याणके नियम

**उद्देश्य**—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

## नियम

( १ ) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

( २ ) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ७॥) और भारतवर्षसे बाहरके लिये १०) ( १५ शिलिंग ) नियत है। **बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।**

( ३ ) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं, किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

**( ४ ) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

( ५ ) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

( ६ ) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जाने-की अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

( ७ ) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क ( चालू वर्षका विशेषाङ्क ) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर दिसम्बरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला करेंगे।

( ८ ) सात आना एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है। ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो ।≈) बाद दिया जा सकता है।

## आवश्यक सूचनाएँ

( ९ ) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण' की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

( १० ) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

( ११ ) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।

**( १२ ) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये।** वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।

**( १३ ) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये।** 'कल्याण' के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १) से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

( १४ ) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

**( १५ ) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर ( नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें ), पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।**

( १६ ) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि व्यवस्थापक "कल्याण" पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर ) के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे भेजने चाहिये।

(१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कुछ कम नहीं लिया जाता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5 JAN 1963

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता—कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस ( गो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.